

अज्ञातकर्ता विरचित

वैराग्य शतक प्राभृत



मंगल देशना
अर्हं श्री मुनि 108 प्रणम्यसागर जी महाराज

अज्ञातकर्ता विरचित
वैराग्य शतक प्राभृत

मंगल देशना
अर्ह श्री मुनि 108 प्रणम्य सागर जी महाराज

प्रकाशक
आर्हत विद्या समिति

कृति	: अज्ञातकर्ता विरचित वैराग्यशतक प्राभृत	
आशीर्वाद	: परम पूज्य सन्त शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज परम पूज्य आचार्य श्री 108 समयसागर जी महाराज	
प्रणेता	: अर्ह श्री मुनि 108 प्रणम्य सागर जी महाराज	
पुण्यार्जक	: राकेश जी, निर्मला जी, निमेश, पलक, हिरण्यगर्भ, हर्षुल, शुभम एवं समस्त बाकलीवाल परिवार, मानसरोवर, जयपुर	मंजू देवी सेठी, नितिन जैन, वर्षिका जैन, रिवान जैन, नेमिसागर कॉलोनी, जयपुर
संस्करण	: प्रथम, नवम्बर 2024	
प्रतियाँ	: 1000	
आईएसबीएन	: 978-81-976900-0-6	
प्रकाशक	: आर्हत विद्या समिति, गोटेगाँव मोबाइल: 9425837476	
प्राप्ति स्थान	: 1. आर्हत विद्या समिति, गोटेगाँव, मोबाइल : 9425837476 (नवीन जैन) 2. आचार्य अकलंक देव जैनविद्या शोधालय समिति 109, शिवाजी पार्क, देवास रोड, उज्जैन (म. प्र.) दूरभाष: 2519071	



परम पूज्य सन्त शिरोमणि आचार्य श्री
108 विद्यासागर जी महाराज



अर्ह श्री मुनि 108 प्रणम्य सागर जी महाराज

पूर्व नाम	: ब्र. सर्वेश जी
पिता	: श्री वीरेन्द्रकुमार जी जैन
माता	: श्रीमती सरितादेवी जैन
जन्म	: 13.09.1975, भाद्रपद शुक्ल अष्टमी
जन्म स्थान	: भोगाँव, जिला-मैनपुरी (उ.प्र.)
शिक्षा	: बी. एस. सी. (अंग्रेजी माध्यम)
भाई	: सचिन जैन
बहिन	: सपना जैन
गृहत्याग	: 09.08.1994
क्षुल्लक दीक्षा	: 09.08.1997, नेमावर
ऐलक दीक्षा	: 05.01.1998, नेमावर
मुनि दीक्षा	: 11.02.1998, माघसुदी 15, बुधवार, मुक्तागिरिजी
दीक्षा गुरु	: सन्त शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

अर्ह श्री मुनि 108 प्रणम्य सागर जी महाराज द्वारा साहित्य सृजन

संस्कृत भाषा में टीका ग्रन्थ

1. लिङ्गपाहुड़ (नन्दिनी टीका)
2. शील पाहुड़ (नन्दिनी टीका)
3. समाधि तन्त्र (आर्हतभाष्य)
4. चैतन्य चन्द्रोदय (चन्द्रिका टीका)
5. बारसाणुवेक्खा (कादम्बिनी टीका)
6. आत्मानुशासन (स्वस्ति टीका)
7. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय (मंगला टीका)
8. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका ('नीति-पथ')
9. तत्त्वार्थ सूत्र (तत्त्व संदीपिनी टीका, संस्कृत-प्राकृत)
10. संस्कृत एवं प्राकृत भक्ति (आठ भक्तियों की टीका)
11. ज्ञानांकुशम्

हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ

1. सत्सकर्म पंजिका
2. दश भक्ति टीका
3. प्रवचनसार (सरोज भास्कर टीका)
4. कथा कोश
5. सत्य शासन परीक्षा
6. युक्त्यनुशासन
7. नाममाला (भाष्य)
8. सत्संख्यादि अनुयोगद्वार
9. पात्रकेसरी स्तोत्र
10. अद्याष्टक स्तोत्र
11. संन्यास एषोस्तु किमात्मघातः
12. चतुर्विंशति तीर्थकर स्तुति (आ. माघनन्दि)

13. नियमसार
14. समयसार
15. परीक्षामुख
16. प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी

पद्यानुवाद

1. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय
2. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका
3. तत्त्वार्थ सूत्र
4. पात्र केसरी स्तोत्र
5. कल्याणमन्दिर स्तोत्र
6. श्री वर्धमान स्तोत्र
7. मंगलाष्टक
8. माघनन्दी कृत अभिषेक पाठ
9. उपयोग शतक

प्रवचन ग्रंथ

1. बारसाणुवेक्खा
2. नई छहढाला प्रवचन
3. परमात्म योग (समाधि तन्त्र)
4. जीव विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय - 2)
5. मनोविज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-6)
6. लोक विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-3, 4)
7. व्रत विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-7)
8. अध्यात्म योग (इष्टोपदेश)
9. प्रवचनसार का सार (गाथा 1-175)
14. कर्म बंध विज्ञान
15. धर्म का मर्म (अपने को समझें)
16. राम कथा
17. पञ्च लब्धि

18. स्त्री को मोक्ष क्यों नहीं
19. मेरी भावना को अपनी भावना बनाएँ
20. तत्त्व विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-१)
21. जीव विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-२)
22. सिद्ध भक्ति
23. नीतिवाक्यामृत Part 1 - आदर्श जीवन की नीतियाँ
24. जिंदगी क्या है?

संस्कृत भाषा में मौलिक काव्य ग्रन्थ

1. स्तुति पथ
2. श्रायस पथ
3. सिद्धोदयाष्टकम्
4. श्री वर्धमान स्तोत्र
5. अनासक्त महायोगी (आचार्य श्री का जीवनवृत्त)
6. उपयोग शतकम्
7. अर्ह अष्टाङ्ग योग शतकम्
8. आ. श्री शान्तिसागर स्तुति शतकम्
9. श्री शान्तिनाथ स्तोत्र (शतकम्)
10. गोवैभवशतकम् (आयुर्वेद सम्बन्धी)
11. चतुर्विंशति-जिनस्तोत्रम् (पूजा एवं विधान)
12. न्यायसूत्रम्

प्राकृत भाषा में मौलिक ग्रन्थ

1. तित्थयर भावणा (सोलहकारण भावनाओं पर प्राकृत गाथाएँ)
2. दार्शनिक प्रतिक्रमण
3. अष्टपाहुड़ (प्राकृत टीका 16)
4. धम्मपह
5. प्राकृत रचना भास्कर
6. प्राकृत शिक्षा भाग 1-2-3-4

7. गोम्मटेस पडिमा भक्ति
8. वीयराय भक्ति
9. पागद धजगीद
10. जिणवाणि थुदि
11. चउवीस जिणभक्ति
12. भजन
13. वड्डमाण सामि थुदि
14. णवदेवदा थुदि
15. बारह भावणा
16. सुयपंचमी थुदि

अन्य मौलिक कृतियाँ

1. युगद्रष्टा (भगवान ऋषभदेव पर उपन्यास)
2. जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य
3. खोजो मत पाओ (लाइफ मैनेजमेंट)
4. आलेख पथ (20 सैद्धान्तिक आलेख)
5. समयसार का ज्ञानी आत्मा कौन?
6. अन्तर्गून्ज (भजन एवं हायकू)
7. लहर पर लहर (कविता संग्रह)
8. बेटा! (शिक्षाप्रद सूक्तियाँ)
9. नई छहढाला
10. लक्ष्य (जीवंधर चरित्र)
11. मुनिसुव्रतनाथ विधान
12. महामह नन्दीश्वर विधान
13. मुनिसुव्रत भगवान आराधना

संकलन

1. संवाद (आचार्य श्री और बाबा रामदेव की चर्चा)
2. A Talk (संवाद का अंग्रेजी अनुवाद)
3. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय अनुशीलन

अर्ह बुक्स

1. अर्ह abc
2. अर्ह बोध
3. अर्ह दोहावली
4. अर्ह ध्यान योग

अंग्रेजी भाषा में

1. Fact of Fate (Article)
2. Twelve Contemplation
3. I Love You My Soul

प्रस्तावना

पंथ नहीं, पथ अपनाओ

पूज्य गुरुदेव संतशिरोमणि आचार्य विद्यागुरु की फुलवारी के महकते सुमन, प्राकृत, संस्कृत भाषा मर्मज्ञ, 'सर्वेश' की खोज में अहर्निश लीन एवं **अर्ह ध्यान योग** के द्वारा जन-जन को जगाने वाले मुनिवर श्री प्रणम्यसागर जी ने लुप्तप्राय वैराग्यशतक ग्रन्थ को अपने चिन्तन एवं उपदेश का विषय बनाकर संसार की असारता, जिनदेव कथित जिनोपदेश का सरलीकरण करके मानव जीवन को सार्थक बनाने हेतु करने योग्य कार्यों का प्रतिपादन अनेक ऐतिहासिक, पौराणिक उदाहरणों, आचार्यश्री विद्यासागर जी के यथास्थान संस्मरणों तथा अनेक नीति वाक्यों आदि के द्वारा आत्मपिपासु सुधी श्रावकों के लिए आत्मसात कराने का प्रयास इस ग्रन्थ के द्वारा किया है।

राग पथ का राही, वैराग्य पथ को तभी स्वीकार करता है जब वह बारह भावनाओं (अनुप्रेक्षाओं) का बारबार चिन्तन करता है। वह मुनि ही भाग्यशाली है, जो संसार और इन्द्रिय विषयों, भोगों से विरक्त रहने के लिए निरन्तर बारह भावनाओं का चिन्तन करते हैं। बारह भावनाओं का बारबार चिन्तन ही वैराग्य की जननी है।

लेकिन बारह भावना, वैराग्य भावना आदि के रटे रटाये पाठ तो हमने अभी तक खूब किए हैं, किन्तु उसके मर्म की गहराई को समझे बिना वह **"शिकारी जंगल में आता है, जाल फैलाता है"** ...तोते वाले ही कहानी बनकर रह गए, क्योंकि हमने संसार की असारता को शाब्दिक रूप में ही सुना, समझा, परखा भी, लेकिन उसे स्वीकार नहीं किया।

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी द्वारा इसी विचित्रता का रहस्य इस कृति को माध्यम बनाकर उद्घाटित कर मोही, अज्ञानियों को झकझोर कर जगाने का प्रयास किया गया है, क्योंकि संसार की असारता और असलियत जानकर अनुरक्ति की ओर बढ़ते कदम, क्षण भर में ही विरक्ति की ओर मुड़ जाते हैं।

कृति परिचय- लुप्तप्राय वैराग्यशतक की यह कृति मुनिश्री को ब्रह्मचारी संतोष जी जैन (जबलपुर) से प्राप्त हुई थी, जिसके लेखक अज्ञात हैं। ग्रन्थ की भाषा प्राकृत, गाथाओं की संख्या 104, छंद आर्यावृत है। ग्रन्थ का मूल प्रतिपाद्य दैनंदिनी जीवन में राग छुड़ा कर वैराग्य की ओर लाना और धर्म की प्रेरणा देना है।

104 गाथाओं में बारह भावनाओं के साथ अनेक विषय फूल में खुशबू की तरह समाहित हैं। जैसे- संसार की असारता, क्षणभंगुरता एवं स्वभाव, धन प्राप्ति की लालसा, दान की सार्थकता, संयम की सार्थकता, दृढ श्रद्धा की व्यवहार, अच्छे कार्यों को तुरन्त करने की प्रेरणा, चलना द्वारा बौद्ध भिक्षुओं की परीक्षा, श्रेणिक द्वारा मुनिराज पर उपसर्ग, नवधा भक्ति, गर्भ से मरण तक के दुःख, देवशास्त्र गुरु की भक्ति का फल, समता भाव का प्रभाव, साधु की संगति का असर, पंथ नहीं पथ अपनाओ, धर्मकार्यों में जागृत रहने की प्रेरणा, कालचक्र की पराधीनता, जीवन का संतुलन कैसे करें, देवकी के सपनों का फल, कृष्ण का पुण्योदय, चारों

गतियों में जीव का भ्रमण, जैन दर्शन की आवश्यकता, लोक की संरचना संबंधी भ्रांतियाँ, जैन-बौद्ध दर्शन में अन्तर, जीव-कर्म का सम्बन्ध, देश एवं सामाजिक हित के कार्य एवं कर्तव्य, व्यावहारिक एवं पारमार्थिक दृष्टिकोण, राजा श्रेणिक को अपराध बोध, सांसारिक संबंधों की अनित्यता, धर्म में आनन्द, कर्मबंध एवं कर्मफल की प्रक्रिया, आत्मा का हित स्वयं से होता है, अन्य से नहीं, ध्यान और दुर्ध्यान, समय का सदुपयोग, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव शुद्धि आदि अनेक महत्वपूर्ण बिन्दु सरल बोधगम्य तथा अनेक दृष्टान्तों के माध्यम से समझाये गए हैं, जिसे पढ़कर नवोदित पाठक भी धर्म एवं अध्यात्म के मर्म को समझकर चुम्बक की तरह स्वतः ही स्वाध्याय की ओर आकर्षित होकर जग-जीवन और कर्म के रहस्य का समझने में समर्थ बन जायेगा।

अतः अर्थ, व्यर्थ, अनर्थ के कामों को छोड़कर मन को समर्थ शक्तिशाली कैसे बनाया जाए? इस चिन्तन का श्रीगणेश इन्हीं उपायों से होगा, क्योंकि व्यर्थ, अनर्थ के कार्यों को करने की सामर्थ्य जीव की अज्ञानता का परिचायक है, तो ज्ञान आत्मानुरक्ति का। इसलिए स्वाध्याय को परम तप कहा गया है, जिससे आत्मा की शक्ति उद्घाटित होती है और वह व्यर्थ, अनर्थ के कामों से खुद को बचाकर सन्मार्ग पर प्रवृत्त हो जाता है। संसार की असारता, जीवन की क्षणभंगुरता, मृत्यु का भय जिस जीव को उत्पन्न हो जाता है वही राम, महावीर, पंच परमेष्ठी के मार्ग का अनुगामी बनता है। कहा भी गया है, **"जब तक मौत नजर नहीं आती, जिंदगी राह पर नहीं आती।"**

यही तो सच्चे गुरु और जिनोपदिष्ट धर्म की विशालता तथा महानता है कि जैनधर्म किसी का धर्म परिवर्तन नहीं, अपितु हृदय परिवर्तन करके जीवन ही परिवर्तित कर देता है। जिस तरह अपने अस्तित्व को विराटता प्रदान करने के लिए बड़ी-बड़ी नदियाँ चलकर स्वयं विशाल सागर की ओर आती हैं, वह अपने अस्तित्व को मिटाती नहीं, किन्तु उसमें समर्पित होकर स्वयं सागर के विराट रूप को धारण कर लेती है, उसी प्रकार सुधी आत्मपिपासु आत्मा पंथ भेद से ऊपर उठकर आत्मनिरीक्षण करते हुए सच्चा, वास्तविक समीचीन आत्मा का उपदेश पाकर पंथ के गलियारों से बाहर निकलकर आत्मोन्नति के पथ पर आकर अपने गंतव्य को प्राप्त कर लेता है।

व्यस्तता, व्यर्थता और जीवन की अस्त-व्यस्तता से सभी बाहर आए और सत्पथ के राही बनकर सभी मानव जीवन की सार्थकता को प्राप्त करें। यही मंगल भावना।।

टीम अर्ह

अनुक्रमणिका

गाथा क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
गाथा: 01	इस असार संसार में, जिनदेव द्वारा उपदेशित जिनधर्म ही, सेवन करने योग्य है	1
गाथा: 02	मनुष्य की धन प्राप्ति की लालसा का दिग्दर्शन	17
गाथा: 03	कल किये जाने वाले कार्य को आज करने की प्रेरणा	31
गाथा: 04	संसार के स्वभाव का वर्णन	45
गाथा: 05	धर्मकार्यों में जागृत रहने की प्रेरणा	60
गाथा: 06	कालरूपी घटीयंत्र के द्वारा सभी प्राणी घुमाये जाते हैं	75
गाथा: 07	काल के सम्मुख सभी प्रकार की विवशता	90
गाथा: 08	काल के वशीभूत सभी प्राणी हैं	94
गाथा: 09	धर्म कराने की प्रेरणा: काल किसी भी जीव को नहीं छोड़ता है	102
गाथा: 10	अनादिकाल से जीवों की एकेन्द्रिय आदि पर्यायों में उत्पत्ति की निरन्तरता	104
गाथा: 11	सम्बन्धों की सीमा श्मशान घाट तक ही होती है	112
गाथा: 12	एक 'धर्म' ही है जो परलोक में जीव के साथ जाता है	116
गाथा: 13	कर्मबद्ध आत्मा संसार में रहता है तथा कर्ममुक्त आत्मा मोक्षमहल में रहता है	119

अनुक्रमणिका

गाथा क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
गाथा: 14	स्वजनों का साथ भी जल की बूंद के समान नष्ट हो जाने वाला है	125
गाथा: 15	बल, यौवन आदि सभी, काल के द्वारा नष्ट होने वाले हैं	128
गाथा: 16	असार संसार के दुःखों का चित्रण	133
गाथा: 17	गर्भवास का चित्रण	141
गाथा: 18	यह जीव एक-एक योनि में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है	144
गाथा: 19	तीनों लोकों में जीव का रक्षक या शरण कोई नहीं है	150
गाथा: 20	जीव की वेदना को दूर करने में कोई समर्थ नहीं है	158
गाथा: 21	पुत्र, स्त्री आदि सुख के हेतु नहीं, अपितु संसार बढ़ाने में हेतु हैं	162
गाथा: 22	संसार में संबंधों की अनित्यता का दर्शन	166
गाथा: 23	संसारी जीवों ने उन्हीं जाति, कुल, योनि आदि में अनन्त बार जन्म-मरण किया है	175
गाथा: 24	लोक में वह थोड़ा सा स्थान भी शेष नहीं है, जहाँ जीवों ने सुख-दुःख न पाया हो	182
गाथा: 25	सम्पन्नतादि, संबंधादि आत्मा से पृथक् हैं	187
गाथा: 26	सुख-दुःख भोगता हुआ पर्यटन करता है	192

अनुक्रमणिका

गाथा क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
गाथा: 27	आत्मा अपना हित या अहित स्वयं करता है, कोई अन्य नहीं करता है	199
गाथा: 28	यह जीव स्वयं किये शुभाशुभ कर्मों के फल को स्वयं भोगता है	207
गाथा: 29	कर्म के वश से, जीव व शरीर का सम्बन्ध हुआ है	208
गाथा: 30	क्षणभंगुर शरीर में मूर्छा कैसी?	215
गाथा: 31	इस संसार में आने-जाने वाले अंजानों के बीच कुटुंब, परिवार का रिश्ता कैसा?	220
गाथा: 32	अल्पस्थायी मनुष्यभव में, क्षणस्थायी शरीर से, धर्म करना ही श्रेष्ठ है	224
गाथा: 33	इस असार एवं दुःखरूप संसार से ममत्व क्यों?	231
गाथा: 34	समय रहते धर्मसाधन करना चाहिए	238
गाथा: 35	धर्म साधन का वास्तविक समय युवावस्था ही है	240
गाथा: 36	शारीरिक रूप, सौंदर्यादि सब क्षणभंगुर हैं इनसे राग कैसा?	252
गाथा: 37	चंचला लक्ष्मी और इंद्रिय सुखों में मोहित नहीं होना चाहिए	255
गाथा: 38	इस संसार में स्वजनों का संयोग भी क्षणस्थायी है	266
गाथा: 39	ब्रह्ममुहूर्त में आत्मा का चिंतन, श्रेष्ठ परिणामदायक है	270

अनुक्रमणिका

गाथा क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
गाथा: 40	जीवन अधर्म में नहीं अपितु धर्म में व्यतीत करना चाहिए	274
गाथा: 41	जो सोचता है मैं धर्म कल कर लूँगा, उसका ऐसा सोचना ही नादानाई है	282
गाथा: 42	बीतती हुई आयु को पुनः लाने में कोई भी समर्थ नहीं है	288
गाथा: 43	आयु की समाप्ति के बाद, इस जीव को कोई नहीं रोक सकता है	291
गाथा: 44	जीवनादि की नश्वरता को बताते हुए, धर्म करने की प्रेरणा की जा रही है	304
गाथा: 45	जीवन की नश्वरता को पुनः प्रकाशित करते हुए, बोध प्राप्ति की प्रेरणा	305
गाथा: 46	काल के द्वारा मारे गये सभी प्राणी, कर्मानुसार कहीं के कहीं जाते हैं	309
गाथा: 47	यह संसारी प्राणी, भव-भव में अनन्त शरीरों को धारण कर चुका है	317
गाथा: 48	वियोग में रोती हुई माताओं के आँसुओं का प्रमाण, सागर के जल से अधिक है	323
गाथा: 49	नरकों के दुःख से भी अनन्तगुणा दुःख, निगोद में होता है	329
गाथा: 50	कर्मों के वशीभूत हुआ जीव, निगोद में निवास करता है	329
गाथा: 51	इस जीव ने निगोद से निकलकर, मनुष्य होकर जिनधर्म को भी प्राप्त किया है	334
गाथा: 52	जिनधर्म को प्राप्त करके भी, प्रमादरूपी भयानक-दोष से होने वाली हानि	347

अनुक्रमणिका

गाथा क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
गाथा: 53	प्रमाद ही आत्मा का शत्रु है, उस प्रमादरूपी दोष का वर्णन करने वाली गाथा	349
गाथा: 54	प्रमाद रूपी दोष के कारण, जिनधर्म का संचय न करने से होने वाली हानि	351
गाथा: 55	जीव चतुर्गति रूप संसार में, नाना पर्यायों को धारण करता हुआ दुख भोगता है	361
गाथा: 56	धन, स्वजनादि सांसारिक वैभव भी, कर्म के कारण छूट जाते हैं	365
गाथा: 57	यह जीव संसार में परिभ्रमण करने के कारण स्थान-स्थान पर बसा है	367
गाथा: 58	यह जीव संसार में पर्यटन के कारण ही सुख-दुःख का भागी होता रहता है	376
गाथा: 59	यह जीव संसार में राजा, रंक आदि विभिन्न रूपों को धारण करता रहता है	379
गाथा: 60	अपने कर्मों से प्रेरित यह जीव, चारों गतियों में जन्म लेता है	383
गाथा: 61	इस जीव ने अनंतबार नरकों में जन्म लेकर भयंकर वेदनाओं को सहा है	393
गाथा: 62	इस जीव ने देव और मनुष्य पर्यायों में भी अनेकों दुःखों को सहा है	395
गाथा: 63	यह जीव अनेक दुःखों से सहित तिर्यचगति में भी अनंतबार जन्मा और मरा है	398
गाथा: 64	इस जीव ने शारीरिक और मानसिक दुःखों को इसी संसार में प्राप्त किया है	408
गाथा: 65	संसार में ही जीव ने अनंतबार भूख और प्यास की भयंकर वेदना को सहा है	411

अनुक्रमणिका

गाथा क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
गाथा: 66	संसारी प्राणी को किस प्रकार भूख की वेदना सताती है, उसका विवेचन	414
गाथा: 67	कठिनाई से प्राप्त मनुष्य जीवन से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है।	424
गाथा: 68	दुर्लभ मनुष्यभव को प्राप्तकर, धर्म में लगाना श्रेयस्कर है; खेद करना व्यर्थ है	425
गाथा: 69	मनुष्य जन्म प्राप्त होने पर, मात्र जिनधर्म का ही सेवन करना चाहिए	429
गाथा: 70	शरीरादि सभी परिग्रहों को छोड़कर, परलोक की चिंता करना चाहिए	440
गाथा: 71	इस संसार में सुख के सभी साथी हैं किन्तु दुख अकेले ही भोगना पड़ता है	442
गाथा: 72	जीवन पत्ते पर लटकती हुई ओस की बूँद के समान क्षणस्थायी है	444
गाथा: 73	मनुष्य जीवन बार-बार नहीं मिलता है, इसलिए रत्नत्रय की प्राप्ति में उपयोग लगाना चाहिए	452
गाथा: 74	बालक हो या वृद्ध; आयु की समाप्ति पर, सभी को मरना ही पड़ता है	456
गाथा: 75	संसार में प्राणियों के मरण को देखकर पापों से मुक्त होना चाहिए	458
गाथा: 76	तीव्र कर्मों से बन्धे हुए जीवों के लिए उपदेश कार्यकारी नहीं होता है	466
गाथा: 77	अनन्तसुखस्वरूप मोक्ष में आदरभाव करना, धन-स्वजन आदि सांसारिक वैभवों में नहीं	473
गाथा: 78	लोग सभी प्रकार से दुःख स्वरूप संसार को भी नहीं त्यागना चाहते हैं	485

अनुक्रमणिका

गाथा क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
गाथा: 79	यह जीव अपने किये कर्मों के फल स्वरूप ही घोर दुःख पाता है	488
गाथा: 80	तिर्यचों के दुःखों का वर्णन	500
गाथा: 81	तिर्यचों के दुःखों का पुनः दिग्दर्शन	509
गाथा: 82	वर्षाऋतु में तिर्यचों को होने वाले दुःखों का वर्णन	514
गाथा: 83	तिर्यचों के भव में यह जीव, लाखों दुःखों को सहता हुआ, संसार में रहा है	527
गाथा: 84	नरकों के दुःखों का वर्णन	529
गाथा: 85	यह जीव सातों नरकों में ऊष्ण और शीत की वेदना को सहता है	540
गाथा: 86	मनुष्यभव में होने वाले दुःखों का वर्णन	546
गाथा: 87	यह जीव संसार रूपी वन में अकेला ही भ्रमण करता है	555
गाथा: 88	संसार में जीवों को प्राप्त होने वाले दुःखों का वर्णन	567
गाथा: 89	संसारी प्राणी मोह के उदय में, संसार से व्याकुलित नहीं होते हैं	575
गाथा: 90	कालरूपी अरहट्ट से बचने के लिए मृत्युंजयी बनना चाहिए	590
गाथा: 91	प्रमाद को छोड़कर, आत्मकल्याण के मार्ग में लगना चाहिए	601

अनुक्रमणिका

गाथा क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
गाथा: 92	अति दुर्लभ जिनशासन के विषय में भ्रमित नहीं होना चाहिए	617
गाथा: 93	प्रमाद जीव का शत्रु है और यही दुःख का मूल भी है	624
गाथा: 94	इस नश्वर शरीर से ही शाश्वत सुखरूप धर्म की प्राप्ति होती है	632
गाथा: 95	गुणरूप वैभव से संपन्न व्यक्ति के पास ही धर्मरूपी रत्न होता है	647
गाथा: 96	मिथ्यात्व को त्यागे बिना जिनशासन का लाभ नहीं मिल सकता	661
गाथा: 97	जिनेन्द्रदेव का जिनधर्म ही श्रेष्ठ है उसी का सेवन करना चाहिए	675
गाथा: 98	अनन्त संसार का कारणभूत मिथ्यात्व शीघ्रता से छोड़ देना चाहिए	690
गाथा: 99	सच्चे धर्म की परीक्षा करने में कुशलता ही, विज्ञान की कसौटी है	701
गाथा: 100	जिनधर्म ही कल्पवृक्ष है तथा स्वर्ग और मोक्षसुखरूप फल को देने वाला है	715
गाथा: 101	जिनधर्म ही बंधु है, सच्चा मित्र और गुरु है, वही मोक्षमार्ग में रथस्वरूप है	729
गाथा: 102	संतप्त-संसार में अमृत के समान शीतल जिनवचन का सेवन करना चाहिए	732
गाथा: 103	संसाररूपी रेगिस्तान में, मोक्षरूपी सुख-शांति को देने वाले, जिनधर्मरूपी कल्पवृक्ष की शरण को प्राप्त करो	736
गाथा: 104	जिनधर्म प्राप्त होने पर, मोक्ष प्राप्ति का पुरुषार्थ, शीघ्रता से करना चाहिए	748

अज्ञातकर्ता विरचित वैराग्यशतक प्राभृत

गाथा: 01

इस असार संसार में, जिनदेव द्वारा उपदेशित
जिनधर्म ही, सेवन करने योग्य है।

मङ्गलाचरण

आर्यावृत्तम्

संसारंमि असारे, णत्थि सुहं वाहि-वेअणा-पउरे।

जाणंतो इह जीवो, ण कुणइ जिणदेसियं धम्मं ॥1॥

अन्वयार्थ- (वाहि-वेअणा-पउरे असारे संसारंमि) व्याधि यानी शारीरिक दुख, वेदना यानी मानसिक दुख 'ऐसे दुखों' की, प्रचुरता है 'जिसमें ऐसे इस' असार, संसार में (सुहं) सुख (णत्थि) नहीं, है (जीवो) जीव (इह) इस प्रकार (जाणंतो) जानता हुआ 'भी' (जिण-देसियं धम्मं) जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा, उपदेशित, धर्म को (ण) नहीं (कुणइ) करता है 'यह बड़े आश्चर्य एवं स्वयं के लिए खेद की बात है ॥1॥



आज आप लोगों के पुण्य योग से, मुझे एक ऐसे ग्रन्थ की प्राप्ति हुई है, जिस ग्रन्थ के बारे में अक्सर कहें तो कोई भी नहीं जानता। यह ग्रन्थ किस कर्ता का है? किन आचार्यों के द्वारा बना हुआ है? इसके विषय में भी इसका कोई अता-पता नहीं है। यह कृति, एक छोटी सी कृति है, जो मेरे पास कुछ दिनों पहले, एक **जबलपुर के ब्रह्मचारी सन्तोष जैन हैं 'दानपति'** के नाम से, उन्होंने इसको थोड़ा सा व्यवस्थित करके, अन्वयार्थ के साथ में इसको प्रकाशित करने का पुरुषार्थ किया था और उसकी एक प्रति आज हमें सहसा उपलब्ध हो गई। वह हमारे लिए ही उन्होंने भेंट की थी और मैं सोच रहा था कि सिद्ध भक्ति पूरी हो गई है, अब इन्हें कौन सी भक्ति कराई जाए? तब इस कृति के माध्यम से भी विचार बना कि आप लोगों के लिए यह कृति एक स्वाध्याय के रूप में, प्रवचन के रूप में प्रस्तुत की जाए।

वैराग्य शतक परिचय

आप लोगों को विषय बहुत हल्का चाहिए पड़ता है। सबकी समझ में आने वाला होना चाहिए, ऐसा विषय समझ में आता है। ऐसा विषय चाहिए पड़ता है और इस तरह की खोज करते-करते आज यह... '104' इसके अन्दर छन्द हैं और इसका नाम **वैराग्य शतक** है, यह वैराग्य शतक आज उपलब्ध हुआ। अज्ञात कृति

है, अभी ढंग से यह publish भी नहीं हुआ है और इसकी वाचना यहाँ से, आज से प्रारम्भ करने का, अब मन बना हुआ है। **प्राकृत भाषा** में इसकी गाथाएँ हैं और बड़ी सरल हैं क्योंकि आप वैराग्य की बात आराम से सुन सकते हैं। आप वैराग्य भावना पढ़ते हैं, बारह भावना पढ़ते हैं तो वही सारा विषय **104 छन्दों** में आपके समक्ष यहाँ पर, किन्हीं आचार्यों ने इसको संजो करके रखा है। अब इस ग्रन्थ की जो भी विषय वस्तु है, वह विषय वस्तु वैराग्य से सम्बन्धित है यानी जो हमारे रोजमर्रा की जिन्दगी में हमारे जो विचार रहते हैं, हमारे जो कार्य रहते हैं, उनसे हमारा राग छुड़ा करके **हमें वैराग्य की ओर लाना और धर्म करने की प्रेरणा देना**, यह इस कृति का प्रमुख विषय है।

यह संसार कैसा है?

इसको ध्यान में रखते हुए यहाँ पर आज हम, यह प्रथम छन्द इसका पढ़ते हैं...

संसारंमि असारे, णत्थि सुहं वाहि-वेअणा-पउरे।

जाणंतो इह जीवो, ण कुणइ जिणदेसियं धम्मं ॥1॥

प्राकृत भाषा है, आप बिना ग्रन्थ के भी पढ़ सकते हैं और एक बार और पढ़ेंगे तो आपको इसका अर्थ भी प्रतिभाषित होने लग जाएगा। अब थोड़ा इसका अर्थ समझते हैं। कितने सरल-सरल से छन्द आपके सामने प्रस्तुत किए गए हैं। **‘संसारंमि असारे’** यह संसार देखा जाए तो संसार कैसा है? असार है। बहुत जल्दी कह देते हो आप...असार है। कुछ चीजें तो इतनी ज्यादा रट गई हैं कि अब वैराग्य का रंग चढ़ ही नहीं सकता, हम कितना भी कुछ करें। शुरुआत आचार्य इस **संसार की असारता** से करते हैं कि संसार कैसा है? असार है। असार का मतलब जिसमें कुछ भी सार नहीं निकलता लेकिन फिर भी हम जिन्दगी भर, इस संसार में सार ढूँढते हैं, यह भी उतना ही बड़ा सच है। यह सच हमें ज्ञात रहता है कि संसार में सार नहीं है, फिर भी मन कहता है...शायद मिल जाएगा और हम संसार में उस सार को ढूँढने के लिए, हर रोज प्रयत्नशील रहते हैं, हर रोज हम अपनी एक नई धुन रमाते हैं और हर रोज एक नई धुन में, एक नया काम करने के लिए तैयार रहते हैं, यही संसार की विचित्रता है।

संसार की असारता जानकर संसार से विरक्ति होनी चाहिए

संसार की असारता को समझने पर भी, अगर संसार से हमें विरक्ति नहीं होती, संसार के क्रियाकलापों से हमारा मन नहीं हटता तो संसार की असारता का ज्ञान हमारे कोई काम का नहीं होता। यह संसार की असारता कैसे समझ में आए? इसी से समझ में आती है कि इस संसार में सुख नहीं है। **‘णत्थि सुहं’** इस संसार की असारता कब प्रतिभाषित होती है? जब हमें लगता है कि संसार में कोई सुख नहीं है। जब तक हमें लगता है कि सुख मिल सकता है, सुख मिल सकता है तब तक तो सार दिखाई देता है और जब हमें लगने लग जाता है कि नहीं! सुख की खोज में हम बहुत थक गए और दुःख ही हाथ लग रहा है, तब हमें लगता है कि नहीं! संसार में कोई सार नहीं है। संसार में दुःख ही दुःख हैं महाराज! तब कहने में आता है।

शरीर का नाम ही संसार है

आचार्य कहते हैं...आप कितना भी संसार में सार खोजने की कोशिश करेंगे लेकिन इसमें सार आपको प्राप्त होगा नहीं। क्योंकि इस संसार में सुख नहीं है और सुख क्यों नहीं है? क्योंकि यहाँ पर **‘वाहि-वेअणा-पउरे’ संसार कैसा है? व्याधियों और वेदनाओं की प्रचुरता से भरा हुआ है।** संसार के अन्दर अगर देखा जाए तो हमारा शरीर का नाम ही संसार है, जिसमें हम जी रहे हैं। शरीर है तो संसार है और शरीर का सुख मिलता है तभी हमें दूसरे सुखों की प्राप्ति की अभिलाषा होती है। अब अगर शरीर में ही सुख न मिले तो फिर हमें कहीं पर भी सुख दिखाई नहीं देता। यही सुख की बात यहाँ पर कही जा रही है कि संसार में सुख नहीं है क्योंकि यह संसार व्याधियों और अनेक तरह की वेदनाओं, पीड़ाओं से भरा हुआ है। व्याधियों की भी प्रचुरता है और शारीरिक पीड़ा, मानसिक पीड़ाओं की भी प्रचुरता है।

इस संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?

इस तरह की प्रचुरता से भरे हुए इस संसार में, यह जीव **‘जाणंतो’** अर्थात् जानता हुआ भी यह जीव **‘जिणदेसियं धम्मं ण कृणइ’** जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए धर्म को नहीं करता है, यह बड़े आश्चर्य की बात दिखाई देती है, सबसे बड़ा आश्चर्य! आचार्य यहाँ पर बिना किसी मंगलाचरण के, सीधे-सीधे ग्रन्थ की भूमिका बनाते हुए और ग्रन्थ को शुरुआत करते हुए, सीधा-सीधा यहाँ पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए हमें उपदेश दे रहे हैं। इस संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? जीव जान रहा है कि संसार में सुख नहीं है। शरीर व्याधियों का मन्दिर है, अनेक तरह की शारीरिक-मानसिक पीड़ाएँ हमारे सामने आ रही हैं लेकिन फिर भी यह जिनेन्द्र **भगवान के द्वारा बताए हुए धर्म का आचरण नहीं करता**, यह सबसे बड़ा आश्चर्य है। इस आश्चर्य के साथ में इस ग्रन्थ की शुरुआत होती है। सुन रहे हो? आश्चर्य! आपको नहीं लगेगा, आश्चर्य जो वैराग्य को प्राप्त ऋषि-मुनि होते हैं, उनको उत्पन्न होता है। किन को देखकर, किनको देखकर? आप लोगों को देखकर।

संस्मरण- आचार्य श्री का वैराग्य

एक बार आचार्य महाराज से किन्हीं विद्वान पण्डित जी ने पूछा था...आचार्य श्री आपको वैराग्य कैसे हुआ? आप लोग भी पूछते ही रहते हो, कभी-कभी हमसे भी पूछ लेते हैं लोग और जिज्ञासा कई लोगों की बनी हुई है कि महाराज कभी न कभी बतायेंगे कि वैराग्य आपको कैसे हुआ? वह कभी न कभी आएगा, आप लोग सुनते रहेंगे तो किसी न किसी दिन, वह कभी न कभी आ ही जाएगा। आपके अन्दर यह भावना होनी चाहिए कि हमें सुनना है, हमें समझना है और कभी न कभी वह भाव बनेगा तो बताया भी जा सकता है। लेकिन अभी हम बात कर रहे हैं, आचार्य श्री की, जिनके सामने एक विद्वान महोदय ने प्रश्न किया कि आचार्य श्री आपको वैराग्य क्यों हुआ? कैसे इतनी सी कम उम्र में आपको वैराग्य हो गया? आचार्य श्री कहते हैं...**आप लोगों की दशा को देखकर, आप लोगों के चेहरों को देखकर।**

पूर्व जन्म के बैरागी

यह सुनकर के उन विद्वान महोदय ने कहा- हाँ! समझ में आता है, आपको हमारे चेहरे या हमारी दशा तो बाद में समझ में आई होगी लेकिन आपकी संसार की दशा पहले समझ में आ गई। यह संसार की दशा, उन्हीं लोगों को समझ में आती है, जो पूर्व जन्म के बैरागी हुआ करते हैं। ऐसा यह वैराग्य का भाव भी एक बहुत बड़ा भाव होता है, जीवन की अद्वितीय घटना होती है। संसार में सुख नहीं है, व्याधियाँ शरीर में लगी हुई हैं, अनेक तरह की मानसिक-शारीरिक पीड़ाएँ बनी हुई हैं और फिर भी यह सब जानते हुए भी, हम जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए धर्म का आचरण नहीं कर पा रहे हैं। यह कितना बड़ा, हमारे भीतर एक प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है और यही प्रश्न चिन्ह ऋषियों-मुनियों के वैराग्य के लिए पुष्टि करने का कारण होता है और आप लोगों की इस मनोदशा को देखकर के, उन्हें आश्चर्य व्यक्त करने के लिए एक कारण बन जाता है।

संसार के सुख की चाह में जीवन व्यतीत कर देते हैं

आप जब भी अपने जीवन में, किसी भी तरह से आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं तो अनेक-अनेक तरह की planning करते हैं और अनेक-अनेक तरह से, अपने जीवन में सोचते रहते हैं कि हमें जीवन में, इस कार्य से सुख मिल जाएगा, उस कार्य से सुख मिल जाएगा और यह करते-करते आपके लिए वह जीवन निकल जाता है। **लेकिन आप धन का अर्जन आदि करने में इतना समय व्यतीत कर देते हैं कि फिर आपकी धर्म के अर्जन करने का समय मिलता ही नहीं है।** अगर केवल इतना सा विचार कर लिया जाए कि शरीर व्याधियों का घर है और शरीर के लिए जब सुख नहीं है तो अब हमें संसार में किससे सुख मिलेगा? सबसे **पहला सुख- निरोगी काया, दूजा सुख- घर में हो माया, तीजा सुख... बस इसके आगे कुछ पता ही नहीं होता। तीजा सुख- सुलक्षणा नारी।** अब नहीं बोलोगे? तीजा सुख सुलक्षणा नहीं समझते हो, कुलक्षणा नहीं कह रहा हूँ, सुलक्षणा नारी और **चौथा सुख- सुत हो आज्ञाकारी।** चार चरण! हमें अपनी उम्र में जीने के लिए मिलते हैं। चार चरण में, यह चार तरह के सुख हमारे सामने अगर आते हैं तो हम इन पर भी थोड़ा सा ध्यान दे सकते हैं।

पहला सुख- निरोगी काया...दूसरा सुख- माया

पहला सुख- निरोगी काया। आज के समय में काया का सुख भी अगर प्राप्त हो जाए तो यह भी एक बहुत बड़ी बात है। उस काया के सुख के साथ में, माया मिल जाए तो फिर और बड़ी बात हो गई। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि काया का सुख नहीं मिल पाता है लेकिन माया का सुख मिलता है, तो भी लगा रहता है, चलो! कुछ बात नहीं। सारी माया का उपयोग किसमें हो रहा है? काया के सुख को बनाए रखने में हो रहा है। सारा पैसा कहाँ जा रहा है? doctors के पास जा रहा है, checkup कराने में जा रहा है। नई-नई जगहों पर, नए-नए hospitals में, जो है checkup कराने में जा रहा है और दवाइयाँ खाने में जा रहा है। यह भी हमारे अन्दर की एक दौड़ बन जाती है, तो उस समय पर भी हम यह सोच कर के कि भाई! चलो कम से कम हमें धन से सुख मिलेगा, काया से सुख मिलेगा, हम अपने प्रयास करते रहते हैं।

तीसरा सुख- सुलक्षणा नारी

फिर तीसरा सुख- सुलक्षणा नारी। नारी कैसी होनी चाहिए? अच्छे विशिष्ट लक्षणों वाली होनी चाहिए, गुणवान होनी चाहिए। अगर ऐसी नारी मिल जाती है, तो सुख की वृद्धि हो जाती है। नहीं तो वह नारी, आरी बन जाती है। वह नारी! नारी न रह कर के आरी बन जाती है। अगर वह सुलक्षणा नहीं है, कुछ विलक्षणा निकली, कुछ कुलक्षण निकली तो फिर वह आरी जैसी गले पर कटती रहती है। नारी का सुख भी अपने आप में बहुत बड़ा सुख है। अगर नारी धार्मिक हो, पति और पत्नी का एक जैसा धर्म का विचार हो तो बहुत बड़ा दाम्पत्य सुख, जीवन में मिलने लग जाता है। इसको तीसरा सुख कहा है।

उदाहरण...सुलक्षणा रानी चेलना

जब रानी चेलना राजा श्रेणिक के घर में आ गई और वह किसी भी तरह से, जब आने के बाद में थोड़ा सा व्यथित तो हुई लेकिन अभय कुमार की बातों में आ गई। अभय कुमार की चतुराई भरी बातों में आकर के, उसने इतना बड़ा एक मन बना लिया और मन बनाने के साथ-साथ, अभय कुमार ने भी उसको जल्दी से रथ पर बिठा लिया। आपकी भाषा में बोले तो एक तरह से उसको भगा कर ले आए। वह थोड़ा सा मन बनाई, कुछ सोच भी नहीं पाई, विचार भी नहीं कर पाई। थोड़ा सा कहना चाहिए...जैसे बच्चियाँ होती हैं, उन्हें फुसला लिया जाता है, उसके साथ भी समझ लो कुछ वैसा ही हो गया। किसी के गुणों की चर्चा की गई, मन मोहित हो गया, थोड़ा सा उसको फुसला लिया, जबरदस्ती उसको रथ पर बिठा लिया। राजगृही नगर में ले आए, मगध के राजा के समक्ष और उसके लिए, उसके रूप को देखकर के, दोनों एक-दूसरे से मोहित भी हो गए और विवाह भी हो गया। विवाह हो तो गया...अब विवाह होने के बाद में जब दो, पाँच, दस दिन, 15 दिन निकल जाते हैं, जो मेहन्दी लगी रहती है जब थोड़ी सी झर जाती है, हट जाती है, सूख जाती है, तब थोड़ा सा फिर एक अलग चिन्तन शुरु होता है। नई बहू आती है, विवाह होने के बाद में, 15 दिन, एक महीने तो एक ही रंग में रहती है बस! नई बहू है, नई बहू है, नई बहू है और बहू भी नई-नई, नई मूड में रहती है कि हाँ! अभी मैं नई बहू, नई बहू। कब तक नई बहू?

जो हाथ-पैरों में मेहन्दी लगी थी, वह जब हल्की पड़ जाए, छूटने लग जाए और फिर जीवन बिल्कुल सामान्य से चलने लग जाए। एक महीने के बाद में, फिर दिमाग ठण्डा होता है। एक महीने तक तो बस उसे कुछ नहीं दिखता है- मैं, मेरा पति! पति का प्रेम पत्नी के लिए, पत्नी का प्रेम पति के लिए, एक महीने तक बड़ा अच्छा चलता है। उसके बाद में फिर जब ठण्डक आती है, जब रंग उतरता है तब फिर इधर-उधर सोच करके, विचार करना पड़ता है कि हमने क्या किया? हम यहाँ आए, हमारा उद्देश्य क्या था? हमारे भीतर का जो जीवन है, वह हम जो जी रहे हैं, वह क्या हम अपने उद्देश्यों की पूर्ति के साथ में जी पा रहे हैं? घर का माहौल कैसा है? सास कैसी है? ससुर कैसा है? भाई कैसा है? क्या बोलते हैं उसको? ननद! वह ननद कैसी है? यह सब विचार भी शुरु के दिनों में नहीं होता है। शुरु के दिन में तो पति के साथ एक मोह में, एक-आध महीना निकल जाता है। उसके बाद में जब यह मेहन्दी हल्की पड़ जाती है, जब बिल्कुल सामान्य से, जब कोई फिर धीरे-धीरे तवज्जी देना भी, घर में कब तक कोई नई बहू-नई बहू कहेगा। काम भी करोगी कि

नहीं? रोजाना की तरह कब तक सजती रहोगी? सामान्य से भी कभी कपड़े पहन कर के सामान्य रहोगी कि नहीं? कि रोजाना ही ऊपर से नीचे का सोलह श्रृंगार चाहिए?

यह एक महीने तक कोई कुछ नहीं कहता। एक महीने के बाद में धीरे-धीरे यह सब शुरू होने लग जाता है। क्यों हँस रहे हो? क्या हो गया? सही नहीं बोल रहा हूँ क्या? जब यह धीरे-धीरे कम होने लग जाता है, तब समझ में आता है हम कौन हैं? क्या हैं? क्या कर रहे हैं?

राज्य का माहौल क्या है ?

अब रानी चलना को एक महीने के बाद में, अब समझ में आता है कि राज्य का माहौल क्या है? एक महीना हो गया...यहाँ न तो कोई धर्म की चर्चा है, न यहाँ पर कोई धर्म का पाठ होता है, न यहाँ पर कोई जिन मन्दिर है, न कोई मन्दिर जाता है, न यहाँ पर निर्ग्रन्थ गुरु आते हैं, न कोई स्वाध्याय होता है। हमने यह बातें सुन रखी थी...राजा श्रेणिक के यहाँ पर बहुत बड़ा जिन धर्म का माहौल है, बहुत बड़ा जिनेन्द्र भगवान का भक्त है। वहाँ पर हमेशा जिन मन्दिरों में भीड़ लगी रहती है, सब राजमहल के लोग जिन मन्दिर में भगवान के दर्शन करने जाया करते हैं, यहाँ कुछ भी नहीं दिख रहा है। एक महीना आए हुए हो गया, कोई मन्दिर का नाम ही नहीं लेता है। किसी ने पूछा तक नहीं, चलो बहू! आज मन्दिर चले, कोई मन्दिर ले जाए। जब उसने पूरे महल का माहौल देखा और उसमें कहीं पर भी, न राजा के मन में जिन धर्म की भावना देखी, न किसी के मन में देखी, तब उसके मन में पीड़ा उत्पन्न होने लग गई।

रानी चलना की मनः स्थिति

अब वह विचार करने लग गई...यह मैं कहाँ फँस गई? यह मैं अभय कुमार के द्वारा ठग ली गई। मैं अभय कुमार की बातों में आ गई, इसने मुझे ठग लिया। इसने मुझे पागल बना दिया और मैं भी उस समय पर इसकी बातों में आ गई। कैसी मैं मूर्ख थी कि मैं अपने मोह के कारण से, कुछ विचार भी नहीं कर पाई? अपने पिता से भी नहीं कुछ कह पाई, पूछ भी नहीं पाई और उनको भी नहीं बता पाई कि मैं जा रही हूँ, और मैं इसके चक्कर में कैसी आ गई? कैसा मेरा सिर घूम गया? ये सब बातें, पश्चाताप होता है, हर बेटी को होता है। जो बेटी पिता को-माँ को बिना बताए घर से दूर जाकर के, किसी भी तरह से विवाह आदि कर लेती है, उसके लिए पन्द्रह दिन बाद, महीने भर बाद, यह विचार आना अवश्य शुरू हो जाता है। उसका दिमाग ठण्डा जब पड़ता है, उसका मोह जब एक महीने बाद कम होता है तो उसके लिए तब याद सबकी आने लग जाती है।

पश्चाताप का भाव

अब वह देख रही है, यह मेरे दिमाग में कैसा मोह छा गया था? क्या मेरे को सूझ गया था कि मैंने अपने पिता को बताए बिना, यहाँ तक आने का साहस कर लिया? अगर मुझे यहाँ आना ही था तो मैं अपने पिता को भी बता के आ सकती थी। पिता कोई मेरे लिए मना तो नहीं करते। वह भी हमेशा अच्छे सम्बन्धों की

तलाश करते। आखिर उनके सामने, अगर यह भावना आती तो वह देखते कि राजा जैन धर्म का अनुयायी है या नहीं है? लेकिन हमने उन्हें इतना भी मौका नहीं दिया और हम इस अभय कुमार की बातों में आकर के, ठग लिए गए। यहाँ कोई भी न णमोकार बोलता है, न कोई यहाँ पर भगवान के जिनालय में जाता है, न कोई यहाँ पर किसी भी तरह के आचार्यों के शास्त्र पढ़ता है, कुछ भी यहाँ माहील ही नहीं है।

जिन धर्म के बिना जीने का क्या सुख?

उसके मन के अन्दर यह पीड़ा बढ़ने लग गई। उसके चेहरे की खुशी धीरे-धीरे जाने लग गई, मन में विचार करने लग गई... **जिन धर्म के बिना जीवन जीना! मर जाना बेहतर है लेकिन जिन धर्म के बिना जीवन जीना अच्छा नहीं है।** पति भी मिला है, वह पति का सुख कितना? अपने मन में विचार करने लग गई, अरे! हमसे तो अच्छी वे विधवा स्त्रियाँ हैं, कम से कम जो जिन-धर्म का पालन करते हुए अपना जीवन तो जी रही हैं। क्योंकि पति के साथ रहना इतना जरूरी नहीं है, जितना जिन-धर्म के साथ रहना जरूरी है। जिन-धर्म के बिना यदि जीवन जिया जा रहा है, तो वह मरण के समान है। अब उसके संस्कार उसके स्मिर चढ़ करके बोलने लग गये।

रानी चेलना का पिता, राजा चेटक जिन धर्म का दृढ़ भक्त था

वे राजा चेटक के संस्कार थे। कभी आपको सुनाया था, बताया था, राजा चेटक जिन धर्म का बहुत दृढ़ भक्त था। भले ही उसकी सात-सात कन्यायें थी, उसका मन था कि मैं अपनी हर एक कन्या का विवाह उसी राजा के साथ करूँगा, जो जिनेन्द्र भगवान को मानने वाला हो, जिन भक्त हो, यह उसकी **प्रतिज्ञा** थी। जिन लोगों को इस श्रेणिक चरित्र के बारे में पता नहीं होता, वह कहते हैं कि जब राजा चेटक का यह भाव था कि मैं अपनी कन्याओं का विवाह केवल जिन धर्मानुयायी के साथ करूँगा तो रानी चेलना से उसका विवाह हो कैसे गया? श्रेणिक का विवाह रानी चेलना से हो कैसे गया? ऐसे हो गया जैसे आपको यह कहानी बताई जा रही है। उसकी मर्जी से हो गया।

चेलना की मनोव्यथा

अब जब उसके मन में आया कि इस तरह का जीवन बिल्कुल व्यर्थ है। **स्त्री का जन्म लेकर के मर जाना अच्छा है लेकिन बिना जिनेन्द्र भगवान के दर्शन के जीना अच्छा नहीं है।** अगर जिनेन्द्र भगवान का धर्म मिला है, इस कुल में जन्म मिला है, तो इस कुल को किसी भी तरीके से छोड़ देना मतलब थोड़े से फलों की इच्छा करने के लिए, किसी भी तरह के, कोई भी, तात्कालिक सुख की प्राप्ति करने के लिए, विष फल खा लेने के समान है। ऐसा विचार उसके मन में आने लग गया। यह पति का सुख, इन्द्रियों का सुख, यह कब तक हमारे साथ रहेगा? हमारा तो जिन धर्म पर श्रद्धा था, उससे हमें जो सुख मिलता था, भगवान की पूजा से जो सुख मिलता था, मुनि महाराज को आहार देने से जो सुख मिलता था, वह सुख तो हमारा चला ही गया। अब यहाँ पर हम कहाँ फँस गए? किससे कहें? राजा बिल्कुल भी जैन धर्म का नाम नहीं लेता। किसी भी तरह से राजा के कोई मनोभाव, जिन धर्म के अनुसार दिखाई नहीं देते। अब हम अपनी बात

किससे कहने जाएँ? अपना दुखड़ा किससे रोएँ? अब वह भीतर ही भीतर अपने मन में रोने लगती है, दुःखी होने लग जाती है। विचार करती है कि मेरी श्रद्धा का फल, यह कैसा मुझको मिलने लगा? मैंने खूब दर्शन पाठ पढ़े थे, खूब भगवान का दर्शन किया था और खूब यह भावना की थी...

जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भूवंचक्रवर्त्यपि।

स्यां चेदोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मानुवासितः ॥11॥ देवदर्शन स्तोत्र

कभी सुना है यह श्लोक? नहीं सुना? दर्शन पाठ भी नहीं पढ़ा, आज तक कभी भगवान के सामने दर्शन करते हुए! आप सोचो! कि पहले के राजा लोग भी अपने बच्चों को पढ़ाते थे लेकिन पढ़ाने के साथ कितना बड़ा संस्कार डाल देते थे। इसे कहते हैं- **संस्कार**। एक बार अगर संस्कार बेटा-बेटी में डल गया, दुनिया में कहीं भी चला जाएगा, उसके भीतर का संस्कार उजागर होगा तो चोरी-छुपे दुःखी होकर के, किसी भी तरीके से वह अपने संस्कार को जागृत कर लेगा तो उसी से उसका कल्याण होने लग जाएगा।

आज के बच्चों में लौकिक शिक्षा का महत्व संस्कार से ज्यादा

रानी चेलना को संस्कार किससे मिले? अपने पिता से मिले, अपनी माँ से मिले और वह संस्कार उसके साथ में बड़े होने के साथ, पढ़ाई इतनी जरूरी नहीं है, जितने जरूरी संस्कार होते हैं। लेकिन आज के माता-पिताओं को पढ़ाई जरूरी दिखाई देती है, संस्कार जरूरी दिखाई नहीं देते हैं। हमारे बेटा-बेटी जिनेन्द्र भगवान की बारे में कोई A B C D जानते हैं कि नहीं जानते हैं? जिनेन्द्र भगवान को ही हम भगवान क्यों कहते हैं? इस बारे में भी उनका कोई स्पष्ट विचार होता है कि नहीं होता है? हम निर्ग्रन्थ गुरुओं की पूजा क्यों करते हैं? हमारे गुरु निर्ग्रन्थ क्यों रहते हैं? इस बारे में हमारे बेटा-बेटियों को कुछ पता होता है कि नहीं होता है? हम इस संसार में रहते हुए भी धर्म का आचरण क्यों करते हैं? क्या धर्म करने से हमारे लिए परलोक में मिलेगा, क्या इस लोक में मिलेगा? धर्म के लिए हमारी आत्मा जीवादि सात तत्त्वों का ज्ञान होना कितना जरूरी है या नहीं है? यह कोई भी माता-पिता अपने बेटे-बेटी के बारे में सोचते नहीं हैं। सभी माता-पिता को बस! अपने बेटों की पढ़ाई दिखती है, अच्छे-अच्छे colleges में, अच्छे-अच्छे institutes में, उनको वहाँ भेज दो और तुम सब यहाँ आकर के बैठ जाओ बस! तुम्हारे से हम खोपड़ी खाएँ, जिनसे हमें कुछ मिलना-जुलना नहीं है, इनसे अपना सिर फोड़ी, इनका कुछ होना नहीं है। जिन्होंने दुनिया के सब रंग देख लिए, सारे रंग देखने के बाद, अब यहाँ पर आकर के बैठे हैं, अब इनके ऊपर कोई रंग चढ़ना नहीं है। बेटा-बेटियाँ सब खाली हो गए हैं, घर सब खाली कर दिए हैं। शिविर लगने वाले हैं, आगे दस-लक्षण पर्व आने वाले हैं। **दशलक्षण पर्व** में भी जब धर्म की बात आएगी, धर्म कार्य में आगे होने की बात आएगी तो यही सब लोग फिर आगे आगे आकर के बैठ जायेंगे। कब तक तुमसे हम खोपड़ी खायेंगे? न तुम्हारी खोपड़ी हमारे काम की, न हमारी खोपड़ी तुम्हारे काम की। समझ में आ रहा है कि नहीं आ रहा है? आप कहोगे महाराज फिर हम कहाँ जाएँ?

बच्चों को दशलक्षण पर्व में धर्म के संस्कार लेने के लिए आमंत्रित करना

आप हमारा अपमान कर रहे हो, हम over age हो गए तो आप हमको बिल्कुल retired समझते हो।

आप हमको किसी काम का नहीं समझते हो। ऐसा नहीं है! काम के तो तुम इतने हो कि अगर तुम थोड़ा सा जागृत हो जाओ तो जो काम तुम्हारे बेटा-बेटी नहीं कर सकते, उससे बढ़कर काम तुम कर सकते हो। काम के तो बहुत हो लेकिन अगर जैसा बताया जाए वैसा काम करो तो काम के हो। आने वाले दशलक्षण पर्व में आप एक काम करो। अभी तक आप अपने बेटा-बेटियों के लिए, तब घर में बुलाते थे जब घर में किसी का विवाह होता था, घर में कोई विशेष कार्यक्रम होता था, कभी कोई छुट्टी मिलती थी। अबकी बार आप अपने बेटा-बेटियों को इसलिए बुलाओ कि बेटा दस दिन आकर के मुनि महाराज के समक्ष तुम्हें सतना में धर्म करना है, इसलिए बुलाओ। कहीं भी पढ़ रहे हो, कहीं भी service कर रहे हो, उनको आज से ही निमंत्रण देना शुरू करो, आज से ही कहना शुरू करो। दस दिन अगर तुमने धर्म के नहीं निकाल पाए अपने पूरी वर्ष के अन्दर या अपने पूरे जीवन के अन्दर तो तुम्हारा जीवन किसी काम का नहीं है। कम से कम इन दिनों में आकर के, जब सुबह से शाम तक धर्म की चर्चा होती है, थोड़ा सा सुनो तो। हम तुम्हें अभी तक नहीं सिखा पाए, नहीं समझा पाए, आज हमारे पुण्य से, हमारे नगर में मुनि महाराज हैं। वे दिन भर तुम्हारे लिए धर्म को प्रदान करेंगे, दिन भर तुम्हें धर्म की शिक्षा देंगे। एक दस दिन के लिए समय निकाल कर के आओ। मानो कि अपनी जिन्दगी में दस दिन थे ही नहीं, ऐसा सोच कर के आओ, तब कुछ बात बनेगी।

दोनों का कल्याण होगा

नहीं तो यह स्थिति रहेगी तो सब कुछ फीका-फीका दिखाई देगा। यह माहौल नहीं चाहिए, इससे चार गुना, दस गुना अच्छा माहौल तब बनेगा, जब आप अपने bangalore, pune में पढ़ने वाले, indore और bhopal में पढ़ने वाले या US-UK में service करने वाले बच्चों से कहो कि दस दिन यहाँ आकर के, अपना धर्म ध्यान करने का मन बनाओ। जो संस्कार तुम्हें दिए हैं हमने, वह कुछ काम में आएँगे कि नहीं आएँगे? अगर नहीं दे पाए हैं तो उन संस्कारों को यहाँ आकर के ग्रहण करो। उनको आगे बिठालना, तुम पीछे कुर्सियों पर बैठना। तुमको भी धर्म ध्यान करने को मिलेगा, उनको भी धर्म ध्यान करने को मिलेगा, दोनों का कल्याण होगा। इस तरह से अपनी बुद्धि का उपयोग करना शुरू करो तो तुम काम के हो, नहीं तो कोई काम के नहीं हो।

एक सच्ची घटना

धर्म का संस्कार अगर बच्चों में नहीं होगा तो क्या होगा? एक बार मैं पनागर में अभी जब चतुर्मास कर रहा था, पनागर का पिछली साल का ही चतुर्मास था। वहाँ पर आहार करने के बाद में, मन्दिर में प्रवेश कर रहा था। आप सोचो! एक घटना मैं जो आपको बता रहा हूँ। एक स्त्री उसी समय पर संयोग से वहाँ सामने आ गई और वह स्त्री को देखकर के जो साथ में चलने वाले लोग थे, उन्होंने एकदम से मेरे कान में कहा... महाराज! आपने क्या देखा? मैंने कुछ नहीं देखा। महाराज! यह जो अभी स्त्री आपके पास से निकल कर के गई है, यह जैन लड़की है और यहाँ आकर के, यहाँ इस्लाम धर्म में यह विवाहित हो गई है। इसलिए यह आपसे नजर बचा कर के निकल के गई है और आप देखो इसका पति पीछे-पीछे यह जा रहा है। मन्दिर के सामने से निकल रही है, आप मन्दिर में प्रवेश कर रहे हो और आपसे मुँह बचा करके निकली है। हाथ भी जोड़ने की हिम्मत नहीं कर पाई क्योंकि इसका पति पीछे चल रहा था। यह नागपुर की है, अच्छी पढ़ी-लिखी

घराने की थी और यहाँ पर आकर के अगर देखोगे तो इस तरीके का वातावरण है, इस तरीके का माहौल है, इस तरीके का घर है कि दूर से कोई देख ले तो घर में जा कर एक दिन रोटी न खा पाए। इतने गन्दे माहौल में यहाँ पर रह रही है, यह देखो महाराज! इस दुनिया के अन्दर क्या हो रहा है? कोई संस्कार नहीं बचा, कोई भावना नहीं बची। शायद माता-पिताओं ने ऐसे संस्कार पहले भी नहीं दिए होंगे।

बच्चों को दिए गए संस्कार उन्हें धर्म में स्थित रहने में सहायक होते हैं

नहीं तो कुछ बेटियाँ ऐसी भी होती हैं कि जो जब दूसरे किसी भी धर्म में चली भी जाती हैं, उसके बाद भी तड़पती हैं। ऐसी भी बेटियाँ कई मेरे सामने आती हैं...मेरा विवाह तो हो गया इनसे लेकिन हमारे घर में, हमारे पति, घर के लोग हमें अपना धर्म किसी भी तरह से करने के कोई परेशानी पैदा नहीं करते महाराज! आप हमें थोड़ी सी धर्म की राह पर लाने के लिए हमें कुछ समझाओ, हमें कुछ बताओ कि मैं कैसे फिर से अपने धर्म में स्थित रह पाऊँ? ऐसी भी बेटियाँ होती हैं। इन बेटियों में जो अन्तर दिखाई देता है, वह कैसे आता है? अगर आपने अपनी बेटियों को कभी, इस तरीके के बेटों को कभी इस तरीके के संस्कार दिए होंगे और उन संस्कारों में इस तरीके की भावना रही हो। यह दर्शन पाठ में लिखा हुआ रहता है-

‘जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भूवंचक्रवर्त्यपि’

संस्कार- अपना और दूसरों का हित हो और आत्मा की उन्नति हो

हे भगवन्! मैं आज आपसे भावना कर रहा हूँ कि मुझे जिन धर्म पाकर के इतना सौभाग्य लगता है, इतना आनन्द लगता है कि इस जिन धर्म को छोड़कर के, अगर कोई मुझसे कहे कि मैं तुझे चक्रवर्ती बनाए देता हूँ, तू जिन धर्म छोड़ दे तो मैं कभी जिन धर्म नहीं छोड़ूँगा, चक्रवर्तीपने को छोड़ दूँगा। हजारों-करोड़ों का package छोड़ दूँगा लेकिन कभी जिन धर्म नहीं छोड़ूँगा। यह सिखाया जाता था संस्कारों में...यह कट्टरता नहीं है, यह संस्कार हैं। अच्छे संस्कारों को संस्कार कहा जाता है, बुरे संस्कारों को कट्टरता कही जाती है। जिन संस्कारों से दूसरों के लिए हानियाँ पहुँचें, जो दूसरों को ठगे, वह कट्टरता के संस्कार होते हैं लेकिन जिन संस्कारों से आत्मा की उन्नति हो, अपना हित हो और दूसरों का भी उसमें हित समाहित हो, उन्हें संस्कार कहा जाता है। इसको दृढ़ संस्कार बोलते हैं। यह पहले बचपन से सिखाए जाते थे, आज भी सिखाए जाते हैं।

धर्म पर श्रद्धान से रक्षा कवच तैयार होता है

आज भी, दर्शन पाठ इसलिए पढ़ाया जाता था, कहा जाता था...बेटा! रोजाना भगवान का दर्शन करते हुए पाठ पढ़ना। यह भावना करना और यह भावना अगर भीतर एक बार बैठ जाए कि मैं चक्रवर्ती भी क्यों न बन जाऊँ लेकिन कभी जिन धर्म को छोड़ूँगा नहीं। सोचो! कितना बड़ा यह श्रद्धान आपके अन्दर होगा और **इस श्रद्धान से आपकी कितनी बड़ी रक्षा कहीं पर भी रह करके हो सकती है।** कितनी ऐसी बेटियाँ हैं, बेटे हैं जो पर घरों में जाकर के अगर मुझसे भी list माँगेंगे तो बीस-पच्चीस की list तो मैं खड़े-खड़े बता दूँगा। जो दूसरे घरों में जाकर के दुःखी बैठे हैं और उनके माता-पिता हमारे पास आकर के कहते हैं कि

महाराज! बेटी दुःखी है। बेटी दुःखी है तो अब मैं क्या करूँ? जब तक उसके लिए समझाने की बात थी, उसे समझाते रहे। बेटी के ऊपर मोह का नशा चढ़ा हुआ था, उसे कुछ समझ में नहीं आया। अब उसने जो कर लिया और एक महीने के बाद, दो महीने के बाद में, अब सब कुछ बिगड़ने लग गया, घर का माहौल बिगड़ने लग गया। बेटी दुःखी है, tension में है। अब वह पति वैसा दिखता नहीं है, घर के माहौल वैसा होता नहीं है। अब क्या करें? अब क्या कर सकते हैं? अब उसको उसके हाल पर छोड़ दो, अब क्या कर सकोगे? **इन बेटियों के लिए, बेटों के लिए, जब तक धर्म के संस्कार नहीं होंगे, तब तक इनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं होगा।** इन्हें अपनी जवानी के समय में ये सब चीजें याद नहीं आती क्योंकि उस समय पर एक जवानी का नशा अलग होता है। लेकिन अगर पहले से ही इनको धर्म के माहौल से touch रख कर के इनको आगे बढ़ाया जाता है, तो उस युवावस्था में भी यह धर्म के संस्कारों के साथ आगे बढ़ते हुए, अपने अन्दर यह भावना ले आते हैं...कहीं भी रहेंगे, कुछ भी करेंगे लेकिन जिन धर्म को नहीं छोड़ेंगे। कितनी बड़ी भावना है... **‘स्यां चेदोऽपि दरिद्रोऽपि’ चेट** मतलब होता है...मैं किसी का दास भी हो जाऊँ, मैं दरिद्र भी हो जाऊँ तो भी मंजूर है। लेकिन वह दरिद्रता मेरे लिए **‘जिनधर्मानुवासितः’** मेरे मन में जिनेन्द्र भगवान का धर्म हमेशा वास करे। उसके कारण मेरे मन के अन्दर हमेशा जिनधर्म के प्रति भावना बनी रहे, चाहे भले ही मैं दरिद्र क्यों न बना रहूँ। मैं दरिद्री बनना पसन्द है, चक्रवर्ती बनना पसन्द नहीं है। लेकिन जिन धर्म को छोड़कर मैं चक्रवर्ती भी नहीं बनना चाहता हूँ।

जीवन का उद्देश्य अच्छा होगा तभी कुछ मिलेगा

जब इस तरह के संस्कार बेटे-बेटियों को मिलेंगे तब उन्हें समझ में आएगा कि package की कीमत है या भीतर के संस्कारों की कीमत है? जब इस तरह के संस्कारों से ओत-प्रोत बेटे-बेटियाँ होंगे तब उन्हें कहीं आसाम-नागालैंड, ऐसी जगहों पर जाकर के समझ में आएगा कि जहाँ पर शुद्ध शाकाहार भोजन भी न मिले, वहाँ जाने की जरूरत है या अपना धर्म करते हुए अपने घर में ही रहकर के, चाहे कुछ हमें अपने मन को मारना पड़े लेकिन हमें अपना धर्म छोड़ने की जरूरत नहीं है। यह संस्कार तब आते हैं जब हमें जिन धर्म का कुछ ज्ञान होता है। कितना बड़ा धर्म है! **दुनिया में हर तरह का सुख देने वाला, स्वर्गों का सुख देने वाला, वर्तमान में सदाचार से जीवन चलाने वाला, शाकाहार से, दया से, परिपूर्ण धर्म जिसके अन्दर आत्मा जीव आदि सात तत्त्वों का वर्णन करके, हमें मोक्ष तक प्राप्त कराने की विधि बताई जाती है, ऐसे पवित्र धर्म को आज लोग छोड़ कर के IIT, BAMS, MBBS, IAS इन सब degrees में तो लगे हुए हैं लेकिन जिन धर्म को छोड़कर के अगर कर रहे हैं तो ये degrees कोई काम की नहीं है। अगर यह धर्म के साथ चल रहा है तो ठीक है लेकिन अगर धर्म का कुछ ज्ञान नहीं है...veg मिला तो veg खा लिया, non veg मिला तो non veg खा लिया। मन्दिर तो सालों से नहीं गए, भगवान जिनेन्द्र देव क्या होते हैं? जानते ही नहीं हैं। जब कभी मम्मी ने धक्का देकर के पहुँचा दिया तो चले गए, धोक दे कर के चले आए। कभी हमने jainism की A B C D नहीं सीखी। तुम्हारा यह सारा का सारा ज्ञान किसी काम का नहीं है। हर व्यक्ति के जीवन में एक उद्देश्य, अगर अच्छे हुआ करते हैं तो व्यक्ति अपने जीवन में सब कुछ पा लेता है।**

नाम का महत्व

कोई श्रीराम company का एक बहुत बड़ा व्यापारी, छह हजार करोड़ रुपए का व्यापार छोड़ कर के एक सामान्य जीवन जीने के लिए, आज तत्पर हो गया है, ऐसी एक news हमें आज बताई गई। कितने करोड़? छह हजार करोड़ रुपए को अपने workers को देकर के, अपनी company में काम करने वाले लोगों को देकर के, वह उससे मुक्त हो गया। ऐसा व्यापारी बिल्कुल सादा जीवन जीने वाला, सादा कार में घूमने वाला, mobile तो use करता ही नहीं है। तुम इन लोगों से क्या सीखोगे? त्याग भी उसके नाम के साथ जुड़ा हुआ है...त्याग राजन उसका नाम है। देखो! यह नाम का कितना बड़ा महत्व होता है? जिसके नाम के साथ त्याग जुड़ा हुआ हो। कभी तुम जिन धर्म में जन्म लेने के बाद में अपने बच्चों का नाम त्याग जैन रख सकते हो? नहीं महाराज! एक तो वह आधे अक्षर से शुरू होता है, आधे अक्षर से शुरू होने का नाम तो कभी रखना ही नहीं बच्चों का, ऐसा भ्रम पैदा कर रखा है। फिर त्याग! त्याग का नाम नहीं रख सकते हैं। अगर आप भोगराज कहोगे तो रख सकते हैं, योग राज नहीं रख सकते। नाम के इस महत्व को समझो कि जिसके नाम में भी त्याग लगा हुआ हो, वह व्यक्ति जिसने एक छोटे से स्तर से business शुरू किया, आज वह बहुत बड़ा हो गया लेकिन उससे भी उसको मोह नहीं है।

जीवन में आदर्श बनाने से ही जीवन की सार्थकता

हम कभी अपने जीवन में अगर आदर्श बना कर के रखेंगे कि हमें अपनी उम्र के 80 साल में, 70 साल में अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करने के बाद में, हमें अपना जीवन किस तरह से जीना है? किस तरह से हमें अपने जीवन को धर्म के अनुसार आगे बढ़ाना है? तभी आपकी जीवन की सार्थकता होगी अन्यथा जीवन की कोई सार्थकता बनती नहीं है। संस्कार अपने अन्दर डालने पड़ते हैं, बच्चों के अन्दर भी संस्कार डालने पड़ते हैं। और बच्चों को यह सिखाना पड़ता है...बेटा! भूखे रहना ठीक है, प्राण छोड़ देना ठीक है लेकिन कभी भी माँस नहीं खाना, अण्डा नहीं खाना, शराब नहीं पीना, गलत चीजों को नहीं खाना, भले ही कितना ही हमें भूखा रहना पड़ जाए। जिनेन्द्र भगवान का जहाँ मन्दिर हो, वहाँ पर दर्शन पहले करना, उसके बाद में भोजन करना, यह भी एक बहुत बड़ा संस्कार होता है।

घर के पास मन्दिर है और मन्दिर न जाने वाले— अधर्मी, अपवित्र, अशुचि

जहाँ जिनेन्द्र भगवान के मन्दिर हो और रहने वाले जैन लोग वहाँ आस-पास रह रहे हो और बिना मन्दिर के अगर वह भोजन कर लेते हैं तो उनसे बड़ा अधर्मी, उनसे बड़ा अपवित्र, अशुचि, इसके लिए जो भी शब्द आपके मुँह में आ सकता हो, आप बोल सकते हो। हमारी मर्यादा है। समझ लेना उससे बड़ा कोई पापी नहीं हो सकता। पाप का बन्ध उनके लिए ज्यादा है, जिनके पास में मन्दिर है। जिनके आस-पास मन्दिर है और मन्दिर नहीं जा रहे, उनको ज्यादा पाप का बन्ध होगा बजाय उनके कि जिनके लिए मन्दिर है ही नहीं। उनके पास तो चलो भाई! चार किलोमीटर तक कोई मन्दिर नहीं है, हमें मन्दिर जाने के लिए 40 किलोमीटर जाना पड़ता है, तो आपको उसका उतना पाप नहीं लगेगा जितना कि आप आधा किलोमीटर, एक किलोमीटर की range में भी मन्दिर होने पर आप मन्दिर नहीं आते हैं तो आप ध्यान रखना बहुत बड़े पाप के भागी बनते हैं।

संस्कार विहीन बच्चे न धर्म के, न समाज के, न माता-पिता के काम के होते हैं

यह बच्चों के अन्दर संस्कार होने चाहिए...पहले मन्दिर जाओ तब भोजन मिलेगा। यह संस्कार बचपन से पड़ जाता है, तो भोजन करने से पहले उसे याद आने लग जाता है कि मन्दिर गया था कि नहीं गया था? अगर आपने संस्कार नहीं दिए तो बच्चे भाग जाएँगे। तुम्हारे भी नहीं रहेंगे, धर्म के भी नहीं रहेंगे, किसी के भी नहीं रहेंगे।

रानी चलना के चेहरे पर मलिनता देख कर राजा श्रेणिक का चिन्तित होना

यह संस्कार रानी चलना के लिए जो राजा चेटक ने दिए...आज उसके सामने, सामने खड़े हुए हैं और वह मन में दुःखी है, म्लान हो रही है। भीतर ही भीतर उसके मन के अन्दर का यह दुःख प्रकट होने लगा, उसके चेहरे पर मलिनता आने लगी, सारा उसका चेहरा मुरझा गया। राजा श्रेणिक ने देखा क्या हो गया? अभी तक तो बहुत सुन्दर लगती थी, खुश रहती थी, अच्छी दिखती थी। आज यह क्या हो गया? इस चेहरे पर प्रसन्नता कहाँ चली गई? किस गम में डूब गई? क्या सोच आ गया तेरे अन्दर? क्या शोक का भाव आ गया? किसी ने कुछ कह दिया क्या? मुझे बताओ, किसने क्या अपमान कर दिया? क्या बहुत रानियों के बीच में भी किसी ने कोई तुम्हारे लिए व्यंग कर दिया? क्या हो गया? किसके लिए मैं कौन सा दण्ड दूँ? यह मेरे अधिकार में है लेकिन यह बताओ कि तुम्हें दुःख किस बात का है? श्रेणिक ने पूछा...दुःख किस बात का है? चेहरे पर खुशी क्यों नहीं दिख रही है? भीतर कौन सा क्लेश दिखाई दे रहा है, जिसके कारण से सब कुछ अस्त-व्यस्त सा नजर आ रहा है?

रानी चलना के मन की व्यथा...घर में जैन धर्म का अभाव देख कर

तब उसे कहना पड़ा...मैं आपको दुःखी नहीं करना चाहती लेकिन मेरे मन के अन्दर का दुःख है। अगर वह आप सुनना चाहते हो तो मैं बता सकती हूँ। समझदार स्त्रियों की भाषा क्या होती है? मैं आपको दुःखी नहीं करना चाहती लेकिन मेरा दुःख अगर आप पूछ ही रहे हो तो मैं आपको बता सकती हूँ कि मेरा दुःख क्या है? क्योंकि वह भी एक राजा है और उसे दिख रहा है कि बौद्ध धर्म का अनुयायी बन चुका है। अब उस राजा के लिए मैं कुछ अलग से कहूँगी, उसको भी विकल्प होगा, उसको भी दुःख होगा और घर में वैसा माहौल नहीं है। क्या करें? उसने कह दिया...मुझे राज्य में कोई दुःख नहीं है, महल में कोई दुःख नहीं है, मेरे सुख सम्पदाओं में कोई कमी नहीं है। किसी ने मेरा कोई अपमान नहीं किया, किसी ने मुझसे गलत नहीं बोला। आदर-सम्मान सब मुझे अच्छा मिल रहा है...आपसे भी, पूरे महल से भी, सब लोगों से लेकिन मेरे भीतर का मन यहाँ आकर के, यहाँ के माहौल से दुःखी है। वह माहौल क्या है? सब कुछ अच्छा माहौल है, हर तरह की रंगेलियाँ हैं, हर तरह की भोग सम्पदाएँ हैं लेकिन जो धर्म का माहौल मैं सोच करके आई थी, वह धर्म का माहौल मुझे यहाँ पर दिखाई नहीं दिया। कौन सा धर्म? यहाँ तो धर्म का माहौल ही है। यहाँ तो कोई किसी के लिए कुछ न पाप करता है, न कोई किसी का माँस खाता है, न कोई शराब पीता है। नहीं! यह धर्म नहीं, यह तो सामान्य से सभी लोगों का धर्म होता है।

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन न मिलने पर, निर्ग्रन्थ गुरुओं को आहार न देने का दुःख

जो मेरी आत्मा का धर्म, जिससे मेरी श्रद्धा जुड़ी हुई है, वह धर्म नहीं दिखाई दे रहा है। यह तो सब बाहर के आचरण हैं लेकिन भीतर की श्रद्धा जिस जिनेन्द्र भगवान से हमारी जुड़ी हुई है, वह जिनेन्द्र **भगवान के मुझे अभी दर्शन** नहीं हो रहे हैं। निर्ग्रन्थ गुरुओं को मैं **आहार** नहीं दे पा रही हूँ, उनका महल में आगमन नहीं हो रहा है। यहाँ पर मुझे किसी भी तरह के, भगवान की पूजा आदि करने का कोई भी माहौल दिखाई नहीं दे रहा है। इस कारण से मेरे मन के अन्दर दुःख उत्पन्न हुआ है, राजन! और कोई दुःख मुझे नहीं है। समझो! सुखी रहने वाले लोगों, पैसा कमाने वाले लोगों, कभी यह भी दुःख के कारण हो सकते हैं क्या? महाराज को आहार न दे पाऊँ, दुःख होता है कभी? तब होता है, जब हाथ में कहीं paralysis हो जाए या कहीं टूट जाए या कट जाए तब होगा। जब हाथ है तब नहीं होगा। कुछ सफेद दाग निकल आते हैं, कुछ बीमारियाँ हो जाती हैं, अब महाराज आहार दे पाऊँगा कि नहीं? तब होता है। जब स्वस्थ होते हैं तब नहीं होता है। तब तो याद भी नहीं आती है, यह सब योग्यताओं का मूल्यांकन तभी होता है जब हमारे सामने इस तरीके की स्थितियाँ बन जाती हैं।

राजा श्रेणिक का उदार चित्त

उस रानी चलना के लिए यह भावना, जब कहने में आ गई, राजा श्रेणिक ने सुन ली और श्रेणिक ने कहा... तुम केवल अगर इतनी सी बात के लिए दुःखी हो तो मैं तुमसे कहता हूँ...तुम्हें जिस भी तरह से धर्म का आचरण करना है, तुम्हें जिस भी तरह से **अपना धर्म पालन** करना है, मैं तुम्हें पूरी स्वतंत्रता देता हूँ। तुम इस राज्य में रहकर के जैसे चाहो वैसे अपने धर्म का पालन कर लो। यह भी एक बहुत अच्छे दम्पति के गुण होते हैं, एक अच्छे पति के गुण होते हैं तभी इस तरीके की अच्छी भावनाएँ बनती हैं कि अगर सामने वाला अपने धर्म का पालन करना चाहता है तो वह अपने धर्म का पालन कर पाए। राजा है, उदार चित्त रखना पड़ता है। रानी की प्रसन्नता जरूरी है क्योंकि वह पट्टरानी है और अगर वह धर्म करना चाहती है तो उसे धर्म करने दिया जाए। जब रानी ने सुन लिया तो वह अपने आप में बहुत प्रसन्न हो गई और खुश हो गई कि राजा ने मुझे यहाँ पर धर्म करने की अनुमति दे दी है। उसे इतनी खुशी उत्पन्न हुई, जो खुशी उसे राजमहल के राज्य सम्पदाओं को भोगने से नहीं हो रही थी, वह खुशी केवल इस बात से हो गई कि अब मैं मन्दिर में, भगवान जिनेन्द्र देव के सामने बैठ कर के भगवान की पूजा करूँगी, भगवान का दर्शन करूँगी।

धर्म का भीतर से श्रद्धान होने पर ही बेटा-बेटी का उद्धार

इसे कहते हैं- धर्म। इस तरह का जब उल्टा भाव आने लग जाए। उल्टा भाव का मतलब सारा सुख सम्पत्ति एक तरफ और मन्दिर जाने का सुख एक तरफ। तब समझना पड़ता है कि हाँ! भीतर से कुछ श्रद्धान है, भीतर कुछ धर्म है। अभी तो मम्मी-पापा ढकेल के भेज देते हैं, दर्शन कर आते हैं, बस! अपना मुँह दिखा आते हैं भगवान को और समाज के लोगों को। ताकि पता पड़े कि बेटा मन्दिर आता है, बेटी मन्दिर आती है। यह भी समाज में जरूरी होता है। मम्मी को भी, पापा को भी यह सन्तोष रहे कि हाँ! बेटा मन्दिर चला जाता है लेकिन जिनधर्म के प्रति श्रद्धान की गहरी भावना, सारा इन्द्रियों का सुख, राजमहल का सुख, रानी का सुख एक तरफ और भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा का सुख, दर्शन का सुख, मुनि महाराज के प्रवचन सुनने का

सुख, उन्हें आहार देने का सुख एक तरफ। यह सुख की इस तरीके से, जब भीतर से लालसा उत्पन्न हो जाए तब समझना धर्म भीतर से आया है। धर्म का श्रद्धान भीतर से बना है और इस तरह का, धर्म का श्रद्धान भीतर से बना होगा तो वह बेटी हो, चाहे बेटा हो, दुनिया के किसी भी कोने में वह रह लेगा, वहीं पर अपने धर्म की प्रभावना करने के लिए तत्पर हो जाएगा। संस्कार होना चाहिए। किसी भी जगह पर होगा तो भी वहाँ पर रह करके धर्म करने को तत्पर हो जाएगा, धर्म से मुँह नहीं मोड़ेगा।

पश्चाताप हो तो ही धर्म हमारा रक्षक बनता है

सोचो उस पनागर की उस बेटी के लिए, उस बहू के लिए, क्या कहा जाए? मैं सोच करके रह गया, दंग रह गया कि देखो! ऐसा भी जो मैं सुना करता था, कितने छोटे से शहर में मेरे सामने-सामने आ गया। जहाँ पर रहने के बाद, उस बेटी के मन में कोई तड़पन भी नहीं है कि मुझे दर्शन करना चाहिए, मुझे महाराज के पास पहुँचना चाहिए। वह तड़प भी नहीं सकती है, अब वह भीतर से तड़प रही है, नहीं तड़प रही, यह भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वह तड़पेगी तो उसके लिए वह घातक हो जाएगा। वह ऐसी जगह पर है। वहाँ पर तड़पना भी मुश्किल है, लेकिन वह तड़पन है या नहीं। अगर होती है, तो भी कहीं न कहीं धर्म हमारा रक्षक बनता है। अगर भीतर विचार होता है, भीतर अगर हमारे अन्दर चाह होती है तो कहीं न कहीं रास्ता भी बन जाता है लेकिन वह रास्ता तो तब बने जब भीतर कोई चाह हो।

‘जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भूवंचक्रवर्त्यपि’

ऐसी कई बेटियाँ, बहू बनकर के हमारे पास में आती हैं, जो गलत रास्तों पर चली गईं लेकिन उनके भीतर का संस्कार जागृत हुआ। वापस आती हैं, फिर से अपने धर्म के लिए समर्पित होती हैं। हर तरह का प्रायश्चित लेती हैं और उसके बावजूद यह स्थितिकरण करने का मन बनाती हैं कि मैं अपने ही धर्म में स्थित रहना चाहती हूँ क्योंकि भीतर इच्छा है, संस्कार है। अब वह चाह भी कब होगी? जब कुछ भीतर से हमारे अन्दर यह भावना हुई होगी कि नहीं! **‘जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भूवंचक्रवर्त्यपि’** यह संस्कार हर बेटा- बेटा के अन्दर होना चाहिए। Engineer, Doctor, CA, CS, IAS, IPS बनना इतना जरूरी नहीं है बेटा! जितना जिनधर्म के अनुसार आचरण करना जरूरी है। जिनैन्द्र भगवान की जो धर्म की दिशा है उस दिशा के अनुसार चलना जरूरी है और कभी भी अपने **धर्म का श्रद्धान** छोड़कर के, अन्य किसी भी तरह की पढ़ाइयों से, degrees से अपना श्रद्धान बिगाड़ने की कोशिश न हो, वह संस्कार जरूरी है। इस तरह के संस्कार अगर होंगे तो आपके बेटे, यहाँ दशलक्षण के दस दिनों में हमें जरूर दिखाई देंगे।

दशलक्षण के दस धर्म का भाव सिर्फ 10 दिनों के अन्दर ही आता है

अब आप अपने सम्बन्ध बनाने के लिए और अब आपके सम्बन्ध कितने धार्मिक हैं? इस बात की परीक्षा करने के लिए, आप परीक्षा कर लेना और मुझे वह उपस्थिति चाहिए, जो उपस्थिति मैंने अभी यहाँ पर नहीं देखी है। वह मैं दीपावली पर नहीं देखना चाहूँगा, वह मैं दशलक्षण पर देखना चाहूँगा। मुझे मत चलाने की कोशिश करना कि वे दीपावली पर आएँगे। दीपावली पर तो वे अपने मन से आएँगे। अभी उनको बुलाना

ताकि उनके लिए कुछ एक नया भाव पैदा हो क्योंकि दशलक्षण के दस दिनों का जो धर्म का भाव होता है, वह साल भर के 355 दिनों में वह भाव नहीं आता, जो सिर्फ 10 दिनों के अन्दर आता है। यह ध्यान रखना! इसलिए कह रहा हूँ... यहाँ का कोई भी बन्दा अगर कहीं बाहर गया तो सबसे बड़ा गद्दार कहलाएगा, यह ध्यान रखना। **धर्म का गद्दार!** सबको ध्यान में रखना है, इधर-उधर किसी भी तरीके की बातें नहीं करना है। धर्म के 10 दिनों में छोटे से लेकर के बड़े तक को, सबको यहाँ पर एक साथ बैठ कर के धर्म करने का माहौल बनना चाहिए। अपने-अपने मन्दिरों का कोई राग नहीं आलापे। मन्दिरों की बात सिर्फ एक nominal औपचारिक रूप में पूरी करने के बाद में, **पूरी समाज को एक साथ मिल बैठ कर के यहाँ, छोटे से लेकर के बड़े तक को, धर्म करने का लाभ मिलेगा,** ऐसी योजना यहाँ बनाना है। दिन भर आपको यहाँ पर उपस्थित रहना है, रात में आप अपनी सुविधा के अनुसार, अपने घरों में प्रवेश कर सकते हैं। महिलाओं को भी पूरा लाभ मिलेगा, बच्चों को भी लाभ मिलेगा, बड़ों को भी लाभ मिलेगा। दस दिन के लिए अपने व्यापार पहले से ही adjust करके रखना क्योंकि उस समय पर का फतवा, कुछ अलग जारी भी हो सकता है। समझ आ रहा है न! अभी सिर्फ आपकी चेतावनी दी जा रही है, आप चेतते रहिए।

गाथा: 02

मनुष्य की धन प्राप्ति की लालसा का दिग्दर्शन

अज्जं कल्लं परं परारिं, पुरिसा चिंतंति अत्थ-संपत्तिं।
अंजलि-गयं व तोयं, गलंतमाऽऽं ण पिच्छंति ॥2॥

अन्वयार्थ- (पुरिसा) पुरुषगण (अज्जं) आज (कल्लं) कल यानी आने वाला दूसरा दिन 'अथवा' दूसरे वर्ष में (परं) परसों यानी तीसरा दिन 'अथवा' तीसरे वर्ष में 'अथवा' (परारिं) आगे आने वाले वर्षों में 'इस प्रकार आगामी दिनों-वर्षों में भी' (अत्थ-सं-पत्तिं) धन की, अत्यधिक, प्राप्ति को (चिंतंति) सोचते हैं 'किन्तु' (अंजलि-गयं) अंजुलि से, जाते हुए (तोयं व) जल के, समान (गलंतं आऽं) गलती हुई अर्थात् कम होती हुई, आयु को (ण) नहीं (पिच्छंति) देखते हैं ॥2॥

समवशरण में विराजित सर्वज्ञ के दर्शन की दुर्लभता

जीवन में वह क्षण जब हम समवशरण में प्रवेश करें, जीवन का वह क्षण जब हम साक्षात् तीर्थंकर भगवान का दर्शन करें, जीवन का वह क्षण जब हमें अरिहन्त परमात्मा के दर्शन हो, वह क्षण अपने आप में बहुत दुर्लभ होता है। उस क्षण के लिए अगर हम कल्पना भी करते हैं तो वह कल्पना भी हमारे लिए बहुत पुण्य प्रदान करने वाली और हमारे भावों को पवित्र बनाने वाली होती है। जब कोई भी व्यक्ति अपने घर से चलता है और रास्ते में चलते हुए किसी भी तरह से विचार करता हुआ जाता है कि मैं जहाँ जा रहा हूँ, वहाँ जाकर के क्या पूछूँगा? क्या कहूँगा? उसका वह विचार होना एक स्वाभाविक है कि मैं रास्ते में जा रहा हूँ, वहाँ पहुँचूँगा तो वहाँ पर क्या देखूँगा? क्या पूछूँगा? क्या कहूँगा? इस तरह से मन में चलता रहता है।



दर्शन की सार्थकता

लेकिन इन सब विचारों से भी परे एक सबसे महत्वपूर्ण जो चीज होती है, वह होती है- दर्शन करना। जब हम भगवान के दर्शन करने के लिए, गुरु के दर्शन करने के लिए घर से निकलते हैं तो भाव में अनेक तरह के उथल-पुथल हो सकते हैं, विचार अनेक प्रकार से सामने आ सकते हैं लेकिन उन सब विचारों का अन्त हो जाता है, जब हमें प्रभु का या गुरु का दर्शन हो जाता है। यही उस दर्शन की सार्थकता कहलाती है। राजा श्रेणिक घर से दर्शन करने के लिए, मन में अनेक प्रश्न लेकर के निकले। प्रश्न रास्ते में उत्पन्न होते हैं लेकिन जिसके सामने हम पहुँचते हैं, जिसका दर्शन करना चाहते हैं उसके दर्शन होने के बाद में फिर कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होते। वह सारे प्रश्न रहते तो भीतर ही हैं लेकिन न जाने कैसा होता है? क्या होता है? मन में ऐसा भाव आता है कि यह प्रश्न अभी इस समय पूछने लायक नहीं है। जब तक हम रास्ते में होते हैं तब तक लगता है

कि हम वहाँ पहुँचेंगे, पूछेंगे। यह प्रश्न हमारे लिये बहुत दिन से बना हुआ है लेकिन जब हम दर्शन कर लेते हैं तो उस समय लगता है कि यह प्रश्न अभी पूछने लायक नहीं है। अभी इस प्रश्न की यहाँ आवश्यकता नहीं है। क्यों नहीं है? क्योंकि अभी हमारे लिए दर्शन हो रहा है और दर्शन में सिर्फ दर्शन ही होता है तो वह दर्शन...दर्शन होता है। क्या सुना? **दर्शन में सिर्फ दर्शन ही हो तो दर्शन...दर्शन होता है; नहीं तो वह फिर एक प्रदर्शन बन जाता है।** अगर हमारे जीवन में प्रभु का दर्शन करते हुए, गुरु का दर्शन करते हुए सिर्फ दर्शन का भाव रहता है और दर्शन हो जाते हैं और दर्शन होने के बाद में जब हम इत्मीनान से बैठ जाते हैं, गुरु की वाणी सुन लेते हैं, उसके बाद में जो प्रश्न उत्पन्न होते हैं, वे प्रश्न कुछ सार्थक होते हैं। इसलिए आपने देखा होगा, जब राजा श्रेणिक शुरु में प्रश्न पूछते हैं तो पूछते तो हैं लेकिन पूछते हुए भी ऐसा लगता नहीं है कि पूछ रहे हो। ऐसा लगता है जैसे जबरदस्ती पूछवाया जा रहा हो।

जिज्ञासा से उत्पन्न प्रश्न का महत्व

लेकिन जब प्रवचन होने के बाद में प्रश्न पूछा जाता है तो प्रश्न, प्रश्न सा लगता है। क्योंकि हमने जो सुना है, उस सुनने में से ही हमारे अन्दर कोई जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। जब ऐसी जिज्ञासा आगे बढ़ती है, तभी हमारे परिणामों में रागों की, कषायों की, मोह की कुछ कमी आती है। इसलिए हमारे सामने हमेशा **वैराग्य की चर्चा** अवश्य होते रहना चाहिए। किसकी चर्चा? वैराग्य की! राग की चर्चा करने के लिए तो सारा संसार है ही। राग, द्वेष, मोह, कषायों की चर्चा करने के लिए तो आप किसी भी चौराहे पर खड़े हो जाओ, किसी भी व्यक्ति से सामने बातें करने लग जाओ, किसी के भी हाथ मिला लो और शुरु हो जाओ...शुरु हो जाएगा। लेकिन उस राग से हटकर अगर आपको कोई दूसरी विराग भाव की चर्चा करनी है, कोई निर्मोह भाव की चर्चा करनी है तो आपके लिए ऐसे ही स्थानों पर उपस्थित होना पड़ेगा। गुरुओं के निकट आना पड़ेगा, दर्शन भी करना पड़ेगा और दर्शन करने के बाद में शान्ति से बैठ कर के थोड़ा सा उनको अगर सुनने का अवसर मिल जाए तो सुनना भी पड़ेगा। तभी आपके लिए कुछ थोड़ा सा मन के अन्दर नया भाव आ सकता है, **राग से विरागता का परिचय** तभी हो सकता है।

राग से विरागता का परिचय

जैन आचार्यों की सबसे बड़ी विशेषता रही कि उन्होंने हमेशा इस बात पर जोर दिया कि संसार का राग, शरीर का राग, इस राग में जो हमारा मन जुड़ा हुआ रहता है, उससे थोड़ा सा हमारा मन हटे। हम किसी भी तरह के, कोई भी क्लबों में, किसी भी तरह का कोई भी programme करते हैं तो हर programme के अन्दर भी हमारा राग ही जुड़ जाता है। चार लोग मिलते हैं और जब मिलेंगे तो बड़े प्रेम भाव से मिलना पड़ेगा, राग भाव से मिलना पड़ेगा, उदासीनता से तो मिलना होता नहीं है। हम उनके साथ मिलेंगे, बैठेंगे, खायेंगे, पियेंगे, enjoy करेंगे, इन सबसे भी क्या होता है? राग बढ़ता है। उस राग को बढ़ाने में हमें अच्छा लगने लग जाता है, तो उस समय पर हमें कभी अगर आचार्यों की, ऋषियों, मुनियों की कोई बात याद आ जाए तो हमारे अन्दर कुछ विरागता का विचार आ सकता है। इसी वैराग्य का विचार लेकर के, विरागता का विचार लेकर के ऋषियों, मुनियों ने बहुत कुछ लिखा है। कल आपको उसी में से पहला काव्य सुनाया था, आज दूसरे काव्य की बारी है-

अज्जं कल्लं परं परारिं, पुरिसा चिंतंति अत्थ-संपत्तिं।

अंजलि-गयं व तोयं, गलंतमाऽऽउं ण पिच्छंति ॥2॥

क्या कहते हैं आचार्य ? ‘अज्जं कल्लं परं परारिं’ आज, कल; आज के लिए प्राकृत में क्या बोलते हैं? ‘अज्ज’! ‘अज्ज’ से आज बनता है। आज शब्द हिन्दी का है, ‘अज्ज’ शब्द प्राकृत का है, ‘अद्य’ शब्द संस्कृत का है। ‘अद्य’! ‘अद्य’ अर्थात् आज, ‘अज्ज’ अर्थात् आज। आचार्य कहते हैं- हम हमेशा चिन्तन करते हैं, आज के लिए भी ‘अज्ज’...कल्लं कल के लिए भी, कल्लं अर्थात् कल। ‘अज्जं कल्लं परं’ ‘परं’ अर्थात् फिर कल के बाद में जो दूसरा दिन आएगा, वह ‘पर’ कहलाएगा, जिसे हम परसों कहते हैं- उसको ‘पर’ कहा जाता है- परं! ‘परारिं’ अर्थात् और उस परसों के बाद में और आगे का जो समय होगा, वह सब ‘परारिं’ कहलाएगा।

अर्थ प्राप्ति की चिन्ता

‘पुरिसा चिंतंति अत्थ-संपत्तिं’ अनेक मनुष्य अर्थ की प्राप्ति की चिन्ता करते हैं। आज कितना धन मिलेगा? कल कितना मिलेगा? परसों कितना मिलेगा? एक महीने में कितना इकट्ठा हो जाएगा? छह महीने में कितना हो जाएगा? वर्ष भर में वह कितना हो जाएगा? यह चिन्तन करते रहते हैं। सभी करते हैं न? हमारा Package आज कितना चल रहा है? कितनी saving हो रही है? कितना खर्च हो रहा है? कितना हम जो है, आगे और आने वाले time में उसमें plus करते चले जाएंगे? छह महीने के बाद में, एक साल के बाद में, पाँच साल के बाद में हम कितने करोड़ के असामी हो जाएंगे। यह सारी planning करता रहता है।

धन की चिन्ता रहती है, आयु की नहीं

आचार्य कहते हैं- ‘अंजलि गयं व तोयं’ जैसे अंजुलि से निकला हुआ जल होता है, वह जल निकलता चला जाता है, ऐसे ही ‘गलंतमाऽऽउं’ ‘गलंत’ अर्थात् गलती हुई आयु को ‘ण पिच्छंति’ यह जीव उसको नहीं देखता है। किसको देखता है? धन को तो देखता है। चार साल बाद इतना हो जाएगा? पाँच साल बाद इतना हो जाएगा, बीस साल बाद इतना हो जाएगा। हम इतने बड़े हो जाएंगे, हमारे पास इतना इकट्ठा हो जाएगा। धन के लिए देखता है, चिन्तन करता है। यह नहीं सोचता कि हमारी आयु आज कम हो रही है। आज की आयु निकल गई, कल फिर निकल जाएगी, परसों फिर निकल जाएगी। एक वर्ष निकल गया, पाँच वर्ष निकल गए, किसी-किसी के तो अस्सी वर्ष भी निकल गए। **आयु जो गल रही है, उस आयु के बारे में विचार नहीं करता।** विचार किसके बारे में करता है? धन बढ़ रहा है, धन बढ़ रहा है, धन बढ़ रहा है; इसके बारे में विचार करता है।

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्षहेतुं कालस्य निर्गमम्।

वाञ्छतां धनिनामिष्टं जीवितात्सुतरां धनम् ॥15॥ इष्टोपदेश

यह भी कहा गया है। आयु की वृद्धि होती है, तो दिखाई देता है लेकिन जिसमें आयु का क्षय हो रहा है वह आयु का क्षय उसे दिखाई नहीं देता। धन की वृद्धि हो रही है, यह दिखाई देता है। लेकिन उस धन के साथ-साथ हमारा जीवन गल रहा है यह दिखाई नहीं देता। बाहर की चीज दिख जाना, यह मोह का परिणाम

है, राग का परिणाम है और भीतर की चीज दिख जाना, यह विरागता का परिणाम है, निर्मोह भाव का परिणाम है। अगर आपको धन दिखाई देता है कि धन बढ़ रहा है, धन बढ़ रहा है, धन बढ़ रहा है तो यह किसका परिणाम समझना? मोह का परिणाम। अगर आपकी दृष्टि में यह आ जाए कि देखो! आयु गल रही है, आयु कम हो रही है, आयु अब हमारी कितनी निकल गई? इतनी बची है, तो यह किसका परिणाम है? यह निर्मोह भाव का परिणाम है, यह विरागता का परिणाम है।

आयु का उल्टा गणित

हम कर तो दोनों ही काम सकते हैं। लेकिन हम अपने जीवन में कभी भी इस तरह का विचार नहीं करते कि हमारी आयु गल रही है। आयु की हम वृद्धि कहते हैं, आयु बढ़ रही है। हम १० साल के थे महाराज! १५ साल के हो गए, २५ साल के हो गए, ५० साल के हो गए। क्या कर रहे हैं हम? क्या बोलते हैं हम? आयु बढ़ रही है। आयु को बढ़ा कर बताते हैं और यहाँ उल्टा गणित चल रहा है। समझना इस गणित को! लौकिक गणित और अलौकिक गणित में क्या अन्तर होता है?

भौतिक जगत के विज्ञान और अन्तर्जगत के विज्ञान में अन्तर

भौतिक जगत के विज्ञान और अन्तर्जगत के विज्ञान में क्या अन्तर होता है? भौतिक जगत के विज्ञान में हम हमेशा चीजों को मोह के साथ बोलते हैं, राग के साथ बोलते हैं और अन्तर्जगत का विज्ञान आ जाता है तो हम विरागता के साथ बोलते हैं। भौतिक जगत के विज्ञान में व्यक्ति जब रहता है तो कहेगा कि मेरी आयु बढ़ रही है, मेरी आयु बढ़ रही है और हर व्यक्ति यह जान लेता है कि मेरी आयु बढ़ते-बढ़ते... मैं ५० साल का हो गया, ६० का हो गया, ८० का हो गया तो उसे बढ़ती हुई आयु दिखाई देती है। उसी के साथ में अगर अन्तर्जगत का वह विज्ञान रखे तो वह क्या सोच सकता है कि मेरी आयु गल रही है, गल रही है, गल रही है। Attitude तो हमें दोनों प्रकार के रखने चाहिए। अनेकान्त दर्शन में दोनों तरह के attitude बताए गए हैं। लेकिन जब हमारा एक ही तरह का attitude बन जाता है तो वह हमारे अन्दर भ्रम उत्पन्न कर देता है और जब भ्रामकता की स्थिति आ जाती है, तो फिर हम उस भ्रम में ही जीना पसन्द करते हैं, हम उससे हटना पसन्द नहीं करते। इसलिए जब हमारे सामने कोई भी प्रकरण आता है, आपकी कौन सी आयु है? आपका कौन सा birthday है तो आप बड़े गर्व से कहते हो... मेरा 89th birthday है। आप यह तो कह देते हो कि 89 नम्बर का birthday है लेकिन आपके मन में यह विचार नहीं आता कि 89 years has passed. वे हमारे जीवन से निकल गए। इस विषय में अगर विचार आए तो यह विचार कहलाएगा- अध्यात्म का विचार। भौतिकता के विचार में और अध्यात्म के विचार में सिर्फ इतना ही अन्तर होता है।

अध्यात्म का विचार

चीजें जिस तरीके से बह रही हैं, वह तो बह रही हैं; जो घटित हो रहा है, वह तो होगा और आपके विचार से कोई चीज रुक नहीं सकती है। लेकिन आपके सोचने का तरीका क्या है? बस! यह depend करता है इस बात पर कि आप उसको किस रूप में देख रहे हैं। अगर आपके सोचने का तरीका आध्यात्मिक होगा तो

आप विचार करोगे कि हमारे इतने वर्ष गुजर गए और अगर आपके सोचने का तरीका भौतिक होगा तो आप कहोगे कि हम इतने वर्ष के हो गए। आप कहोगे हम 89 years के हो गए, 90 वर्ष के हो गए, 99 के हो गए, यह हम हो गए और जब आध्यात्मिक दृष्टि से कहोगे तो कहोगे कि इतने वर्ष खो गए। जो है वह तो है ही है। लेकिन अगर आपके भीतर का अध्यात्म आपको प्रेरित कर रहा होगा तो आपके भीतर का विचार भी भीतर से निकलेगा और वह भीतर की बात ही आपके अन्दर कहेगा और अगर आप भीतर से अपने अन्दर विचार करते हुए सोचेंगे तो आपके मन में लगेगा कि वास्तव में हम ९९ वर्ष के हो गए या ९९ वर्ष के खो गए। हमने ९० वर्ष निकाले हैं या ९० वर्ष हमारे निकल गए हैं। जब हम यह सोचते हैं कि इतना वर्ष निकल गया है, तो क्या फायदा मिलेगा? जब हम यह सोच लेते हैं कि इतने वर्ष के हो गए तो क्या फायदा मिलेगा? इसमें भी अन्तर होगा। जब हम यह सोच लेते हैं कि हम ९० वर्ष के हो गए तो हमें होने का एक उत्साह उत्पन्न होता है। हम इतने हो गए, उनकी अपेक्षा से हम तो बहुत बड़े हो गए और यह होने का हमारे अन्दर एक अहं आता है, तो हमारे अन्दर एक अच्छा उत्साह उत्पन्न करता है कि अभी हमें आगे और भी होना है। जब हम अध्यात्म की दृष्टि से विचार करते हैं कि इतने वर्ष हमारे खो गए तो हम फिर विचार कर पाएँगे कि जो वर्ष बचे हैं, उनका हमें क्या करना है? जो बची हुई आयु है, उसकी सार्थकता का विचार आपके अन्दर तभी आएगा जब आप यह सोचेंगे कि इतने वर्ष हमारे खो गए।

आयु प्रति क्षण गल रही है

आयु गल रही है, क्षण-क्षण गल रही है। आज, कल, परसों करते-करते बरसों निकल जाते हैं और यह आयु गलते-गलते जैसे एक अंजुलि पानी हमारी हाथों में हो और वह अंजुलि पानी धीरे-धीरे, एक-एक बूंद करते-करते, टप-टप करते-करते, धीरे-धीरे पूरा खाली हो जाता है। अंजुलि में पानी कैसे टिकेगा? इस अंजुलि की उपमा क्यों दी? क्योंकि अंजुलि आप कितनी भी tight करके रख लो, वह अंजुलि का पानी एक-एक बूंद रिस ही जाएगा, धीरे-धीरे करके वह निकलेगा। इसी तरह से आयु का हर एक निषेक धीरे-धीरे करके हर क्षण निकलता चला जा रहा है, हर क्षण आयु गल रही है। ऐसा नहीं है कि एक दिन बाद आयु पूरी एक दिन की कम होगी, एक महीने बाद एक महीने की आयु कम होगी। हर क्षण वह प्रक्रिया चल रही है। जब इस क्षण वाली प्रक्रिया पर हम ध्यान देते हैं तो उस समय पर हमारे अन्दर यह विचार आने की सम्भावना रहती है, हमारे भीतर अध्यात्म जागृत होने की सम्भावना रहती है कि हम अपने आप को यह समझने की कोशिश करें कि इस मनुष्य जीवन में हमने क्या सार्थक किया है? वह हमें सार्थक काम की प्रेरणा देगा, जीवन को सार्थक बनाने के लिए हमें यह विचार प्रेरित करेगा। इसलिए आचार्य कहते हैं—आपको **गलती हुई आयु को देखना है**। अगर आप यह आयु को गलता हुआ नहीं देख रहे हैं तो फिर आपको केवल धन की तृष्णा बढ़ती चली जाएगी और इतनी बढ़ जाती है...धन की तृष्णा! इतनी बढ़ जाती है कि आचार्य कह जाते हैं— इतने पुराने-पुराने पाँचवीं शताब्दी के आचार्य पूज्यपाद जैसे महाराज लिख जाते हैं कि इस आदमी के अन्दर धन की तृष्णा, **‘जीवितात्सुतरां’** यानी जीवन से भी ज्यादा धन की इच्छा करने लग जाता है। **‘वाञ्छतां धनिनामिष्टं जीवितात्सुतरां धनम्’** यानी धन से भी ज्यादा जीवन की इच्छा हो जाना या जीवन में केवल धन की इच्छा बढ़ते चले जाना और इतनी इच्छा बढ़ जाना कि बस धन ही धन दिखाई दे, जीवन की भी इच्छा न रहे, एक ऐसी स्थिति भी बन जाती है। मतलब आदमी को क्या लगता है कि बस! धन आ रहा है कि नहीं आ रहा है? धन आ रहा है कि नहीं आ रहा है? धन आ रहा है कि नहीं आ

रहा है? बस! मर रहा है इसकी चिन्ता भी नहीं रहती। वह तो मैं जी जाऊँगा, वह तो मैं गोलियाँ खा लूँगा, मैं दवाई ले लूँगा, मैं उस फलाने डॉक्टर के पास चला जाऊँगा; तू तो यह बता आज profit कितनी हुई? आज ग्राहक कितने आए? आदमी बिस्तर पर भी पड़ा हो तो भी उसे अपने जीवन की चिन्ता नहीं रहती, उससे भी ज्यादा चिन्ता उसे किसकी हो जाती है? धन की हो जाती है। जब धन की चिन्ता हो जाती है तो फिर उसे अपनी गलती हुई आयु भी... गलती यानी जो आयु गल गई है, वह गलती हुई आयु भी उसे दिखाई नहीं देती है, यही उसके जीवन की सबसे बड़ी गलती हो जाती है। जीवन की सबसे बड़ी गलती क्या? **गलती हुई आयु को न देख पाना जीवन की सबसे बड़ी गलती है।** उसको क्या देखना महाराज! वह तो गल ही रही है। गल रही है, तब भी उसको देखो। देखने का मतलब है कि आपका विचार उस ओर जा रहा है... जैसे बर्फ रखी हुई है तो वह उसका पानी बन रहा है, बनेगा लेकिन आप उसका पानी बनता हुआ देखो कि कितना बर्फ पानी में convert हो चुका है। कितनी बर्फ थी और कितना पानी निकल गया, अब वह बर्फ कितनी सी बची है? जैसे बर्फ धीरे-धीरे, धीरे-धीरे घुलती जाती है और बच्चा क्या देखता है? इतनी घुल गई, इतनी घुल गई; यह पानी इतना निकल गया, इतना हमने इसको खा लिया, इतना खा लिया, कितनी बची है, यह नहीं देखता।

अध्यात्म की दृष्टि से देखो आयु का गणित

बस! यही अध्यात्म की दृष्टि होती है, कितना हमारे लिए आयु बची है? उसको जान लेना और यह आयु का गणित अगर आपको आने लगेगा तो शायद एक विचार आपके अन्दर आने लग जाए कि इस बड़ी हुई आयु की आपके अन्दर जितनी खुशी होती है, उससे ज्यादा खुशी इस बात की होनी चाहिए कि जो आयु बची है, अब हम उसमें कुछ अच्छा काम करेंगे। आजकल यह चलन बहुत ज्यादा देखने को मिलता है कि लोग अपने ९० वर्ष पूरे होते हैं, ८० वर्ष पूरे होते हैं, कोई ७५ वर्ष पूरे हो जाते हैं...silver jubilee मनाते हैं। मतलब जैसे कि क्या कर लिया है? ७५ वर्ष की आयु निकल गई तो क्या बड़े-बड़े कीर्तिमान स्थापित कर लिए हैं। फिर क्या करेंगे? अपने परिवार के साथ में, अपने बच्चों के साथ में कहीं स्थान पर जाकर के कोई एक party arrange करेंगे, अपने रिश्तेदारों को बुलाएँगे और सबके साथ में बैठकर के discuss करेंगे...मैं ८० साल का हो गया, मैं ९० साल का हो गया। पिताजी की Birthday मनाई जा रही है...९०वाँ, १००वाँ।

वयानुसार कार्य ही शोभा पाता है

इस तरह से जब यह आयोजन वृद्धावस्था में कोई कर रहा होता है, तो यह आपको सोचने की बात है कि यह आयोजन करना आप लोगों के लिए अच्छा लगता है? बताओ? आयोजन करना अच्छा लगता है? हो सकता है कि बच्चों को लगता हो, हमारे पिताजी की उम्र इतनी हो गई है तो हम अपने पिताजी को भी और खुशियाँ दे, कोई उनके लिए और उत्साह बढ़ाएँ, इसलिए हम उनके लिए इस तरह का कोई आयोजन करें। यह विचार तो अच्छा है लेकिन इस तरह से birthday का अपने अन्दर उत्साह मनाना और इस तरह से उत्सव करना, यह कहीं पर भी कदाचित् अध्यात्म दृष्टि से उचित नहीं लगता है। हो सकता है आपको भौतिक दृष्टि से उचित लगता हो। आपको अच्छा लगता है इसलिए आप करते होंगे। अध्यात्म दृष्टि से यह बात बिल्कुल भी उचित नहीं लगती। अध्यात्म दृष्टि से तो वह बात उचित लगती है, जब से आपने अपने जीवन

में कोई आध्यात्मिक उन्नति का सोपान तैयार करने के लिए आपने कोई प्रगति की हो।

जीवन की सार्थकता

आपने अपने जीवन में कहीं से कोई आध्यात्मिक उन्नति करने के लिए कुछ अपने जीवन को अलग तरीके से कहीं पर चलाया हो, मोड़ा हो, भौतिक जीवन से हटकर के आप आध्यात्मिकता की ओर आए हो, असंयम से संयम की ओर आए हो, आपके अन्दर कहीं राग, मोह की कमी होने के बाद में विचार उपजा हो कि बस! अब आज के बाद में हम अपना जीवन अपने लिए जियेंगे। हम अपने परिवार के मोहादि, रागादि के चक्कर में न पड़कर के, हम केवल अपने आत्मा की सार्थकता के लिए अपना जीवन जियेंगे। जहाँ से यह चीज शुरू होती है, वहाँ से कुछ नया जीवन शुरू होता है और यह जीवन उतना ही माना जाता है, जितना आपने इतना जीवन जी लिया है। ये चीजें अगर हमारे दिमाग में रहती हैं, तभी हमें जीवन की सार्थकता समझ में आ पाती है।

जीवन की सार्थकता का दृष्टान्त

एक घर में एक ऋषि महात्मा आहार करने के लिए गए और ऋषि महात्मा किस लिए घर में जाते हैं? आहार करने के लिए। गए और वहाँ पर घर-परिवार के लोग थे और घर-परिवार के लोगों ने वहाँ पर उन महात्मा के लिए भोजन कराया और भोजन कराने के बाद में जब वे महात्मा चलने लगे तो उन्होंने पूछा। वहाँ पर एक बहू भी थी, उसका पति भी था तो बहू से पूछा...थोड़ी बहू समझदार समझ में आ रही थी क्योंकि ज्यादातर बहुएँ ही समझदार होती हैं। श्रेणिक! सुन रहे हो? समझदार थी! कौन? चलना भी एक समझदार बहू थी। बहू से पूछ लिया...बेटा! तेरी उम्र क्या है? बहू ने कहा...मेरी उम्र ५ साल की है। कितनी? ५ साल। महात्मा ने कुछ नहीं कहा। महात्मा ने पूछा...बेटा! तेरे पति की उम्र क्या है? पति तो अभी पैदा ही नहीं हुआ है। तेरी जो सासू माँ है, उनकी उम्र क्या है? उनकी उम्र अभी एक महीने की है। तेरे जो ससुर साहब हैं, उनकी उम्र क्या है? उनकी उम्र भी दो महीने की है। ऐसी बातें महात्मा के सामने उस बहू ने कह दी और महात्मा सुन रहे थे, बहू भी सुन रही थी और बहू के साथ में जो भी घर-परिवार के लोग खड़े थे, वे भी सुन रहे थे। अब सासू तो सासू ही होती है। समझदार हो तो शायद शान्त रह जाए, जिन्होंने समझ लिया हो कि बहू क्या कह रही है? और अगर नहीं हो तो फिर ऐसा लगता है कि बहू ने मेरा महात्मा के सामने अपमान कर दिया। चाहे वह चलना हो, चाहे और कोई हो, सबके साथ में यही होता है।

महात्मा ने पूछा कि तुम्हारी उम्र क्या है? उसने अपनी उम्र तो बता दी और पति के लिए कहती है कि अभी तो वे पैदा ही नहीं हुए तो सासू माँ को बड़ा बुरा लगा कि तू अपने पति के लिए कैसा बोलती है? और तूने मेरी उम्र एक महीना बताई, अपने पिताजी की उम्र तूने दो महीने बताई। तू इतनी बड़ी हो गई कि अपनी उम्र ५ साल की बता रही है। जब यह सब वातावरण बनने लग गया और परेशानी खड़ी हो गई तो उस बहू ने कहा कि आप ही महाराज से जाकर के पूछ लो, महात्मा से जाकर के पूछ लो कि हमने सही बोला कि नहीं

बोला। सब लोग इकट्ठे होकर के महात्मा के पास पहुँच गए और कहने लगे...बताओ? यह बहु क्या ऊटपटाँग बोलती रहती है और आप उसको आशीर्वाद देकर के आ गए। आप उसको अच्छा सा धर्म-वृद्धि का आशीर्वाद देकर के आ गए और बाकी के लोगों की तरफ आपने देखा भी नहीं। तब महात्मा कहते हैं- देखो! तुम्हारी बहू ने जो कहा है बिल्कुल सही कहा था, आप समझ नहीं पाए। उसका कहना यह था कि मेरी उम्र ५ साल की इसलिए है कि ५ साल पहले मैंने जीवन-पर्यन्त के लिए कुछ ऐसे नियम लिए थे जिनके कारण से मेरे जीवन की सार्थकता बन रही है। **मैं रात्रि में भोजन नहीं करूँगी, मैं अण्डा, मांस, शराब का सेवन नहीं करूँगी।** ये नियम उसने ५ साल पहले लिए थे। इसलिए उसने कहा मेरी उम्र ५ साल की है। उसके पति ने तो अभी कोई नियम लिया ही नहीं है, इसलिए उसने कहा कि मेरे पति की अभी उत्पत्ति ही नहीं हुई है, अभी जन्म ही नहीं हुआ है। उसकी सासू माँ ने भी एक महीने पहले ही कुछ व्रत लिए हैं, उसके पिता ने भी दो महीने पहले कुछ व्रत लिए हैं, इसलिए उसने कहा कि इनकी उम्र एक महीना है, दो महीना है।

जीवन की सार्थकता - संयम धारण

वास्तव में आदमी की उम्र उतनी ही होती है, जितना वह संयम के साथ जीना प्रारम्भ करता है और जितना संयम से जी पाता है। असंयम की क्या उम्र गिनना, असंयम की उम्र तो अनन्त काल से चली आ रही है। अनन्त काल से यह जीव हमेशा असंयमी ही रहा है। इसलिए जहाँ से संयम शुरू हो, self control जहाँ से शुरू होता है, जहाँ से हम अपने आप पर controlling करना शुरू करते हैं, संयम जहाँ से शुरू होता है, जीवन की सार्थकता वहाँ से बनती है। **आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जीवन जहाँ से शुरू होता है, जीवन की सार्थकता वहाँ से बनती है** और यही जीवन चल रहा है- राजा श्रेणिक का और चेलना का।

राजमहल में भक्ति का माहौल

श्रेणिक ने चेलना के कहने पर उसे यह कह दिया कि आपको जो भी धर्म ध्यान करना है, आपको अपने तरीके से जो भी जैन धर्म की आराधना करना है, वह आप कर लीजिए, कोई दिक्कत नहीं है। अब चेलना ने क्या किया? खुश होकर के अच्छे ढंग से उसने जिन-मन्दिर, अपने ही महल में स्थापित करवा लिया। रोजाना जिनेन्द्र भगवान की पूजा, भक्ति सबके साथ में ले-ले करके, तुम भी चलो, तुम भी चलो, सबके साथ में ले-ले करके उसने जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति से सबको जोड़ दिया। जब देखो तब...आज यह पूजा होनी है, आज यह विधान होना है, आज इन भगवान का नाम लेना है, आज इन भगवान की जाप करना है, इनका विधान करना है। आए दिन पूजा-विधान और भक्ति के माहौल से उस राजमहल में जैन धर्म की भावनाएँ पूरे राजमहल में फैलने लग गई। एक स्त्री भी अगर जागृत हो जाती है, तो पूरे परिवार को भी सम्भाल लेती है और पूरी समाज को भी सम्भाल सकती है।

जागृत स्त्री - संस्कारित समाज

एक स्त्री के अन्दर अगर धर्म की दृढ़ भावना आ जाती है, तो वह सबके अन्दर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे करके

वह भावना पैदा कर देती है। लेकिन वह भावना भीतर की दृढ़ श्रद्धा के साथ में होनी चाहिए। राजमहल के अन्दर जैन धर्म की बातें नहीं होती थी, अब हर कोई तीर्थंकरों की बातें करने लग गया। हर कोई णमोकार पढ़ने लग गया, हर कोई जिनेन्द्र भगवान के गुणगान गाने लग गया, हर कोई आपस में जय जिनेन्द्र करने लग गया और इस तरह की प्रभावना चारों ओर दिखने लग गई। वहाँ पर जो राजा था, बौद्ध धर्म का अनुयायी था तो बौद्ध उपासक, बौद्ध गुरु वहाँ पर आया-जाया करते थे। मगध सम्राट का वह राजगृही नगर था और वहाँ पर वह उनकी राजधानी हुआ करती थी और वहाँ पर अनेक बौद्ध लोग आया-जाया करते थे। जब उन्हें पता पड़ा कि राजा के घर में माहौल बिगड़ रहा है और राजा पहले बौद्ध था, जब से चलना रानी आई है तब से माहौल पूरा जैन धर्म का हो रहा है, तो उन बौद्ध भिक्षुओं को चिन्ता पड़ गई और वह राजा के पास में आए। देखा, सुना, पूछा और राजा से बातचीत की। राजन्! आप तो बौद्ध धर्म के मानने वाले थे, आपके राज्य में तो बौद्ध धर्म का बोलबाला था, अब यह धीरे-धीरे बोलबाला कम क्यों हो रहा है? यह धीरे-धीरे जैन धर्म की बात कहाँ से आने लग गई? आप राजा हो, आप जैसा कहोगे वैसा होना चाहिए। आपके राज्य में आपके बौद्ध धर्म के होते हुए भी, आप स्वयं बौद्ध को मानते हो, फिर यह जैनत्व की बात कहाँ से आ गई? राजन्! यह अच्छा नहीं हो रहा।

राजा श्रेणिक की असमर्थता

राजा कहते हैं- मैं क्या करूँ? वह रानी चलना है। उसको मैंने धर्म करने की स्वतंत्रता दे रखी है और वह जिस तरह से भी अपना धर्म करती है, करती है। उसकी प्रभावना से प्रभावित होकर के जो लोग भी जिस तरह से भी समझ रहे हैं, मान रहे हैं, उसको सुन रहे हैं, हो रहा है। मैं उससे अब मना करने की स्थिति में नहीं हूँ क्योंकि मैंने उसके लिए स्वयं स्वीकृति दी है। जब तक उसके लिए ऐसा नहीं हो रहा था, वह रुग्ण होती चली जा रही थी, वह अप्रसन्न रहती थी और जब से वह ऐसा करने लगी, वह प्रसन्न रह रही है। मेरी रानी है तो मुझे अपनी रानी को प्रसन्न रखना पहले जरूरी है। अब वह जैन धर्म कर रही है, बौद्ध धर्म कर रही है, इससे मुझे कोई मतलब नहीं है। मेरा धर्म क्या है, वह मुझे पता है। मैं बौद्ध हूँ लेकिन अब वह अपना धर्म अपने तरीके से पालन कर रही है, तो अब उसे मैं तो नहीं समझा सकता। अगर आप अपने आप को समर्थ समझे तो मैं आपके लिए इतनी अनुमति दे सकता हूँ कि आप उसके पास में चले जाएँ और उसे समझा दें। हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं है।

भिक्षुओं द्वारा रानी चलना को समझाने की असफल कोशिश

अनेक बौद्ध भिक्षु एक साथ इकट्ठे होकर के और रानी चलना के पास गए। वहाँ पहुँचने के उपरान्त रानी से कहा - रानी, यह आप क्या कर रही हैं? आपको पता नहीं है, दुनिया में एक ही श्रेष्ठ धर्म है, जिसमें चार आर्य सत्य बताए जाते हैं। दुःख है, दुःख की मुक्ति का उपाय है। यह उपाय अगर कहीं पर भी है संसार से दुख से मुक्ति का उपाय, तो केवल बौद्ध धर्म में है। बौद्ध धर्म ही एकमात्र पवित्र धर्म है और इसी धर्म का जो आलम्बन लेता है, उसी को सुख मिलता है...यह महात्मा बुद्ध ने कहा है। इसलिए आपको इसी धर्म की आराधना करनी चाहिए। यह आप कहाँ जैन धर्म की आराधना में पड़ गई। जिनके साधु नग्न होते हैं, फकीरों की तरह घूमते रहते हैं, जिनके पास न वस्त्र होते हैं, न भोजन की कोई उनकी व्यवस्था होती है, घरों-घरों

घूमते रहते हैं, मिल गया तो ठीक है, नहीं मिल गया तो उपवास कर लेते हैं। उपवास कर लिया तो उनकी बुद्धि तो कुछ काम करती नहीं है। बुद्धिहीन, विवेकहीन बेचारे कहीं भी बैठे-बैठे उपवास करते-करते सल्लेखना कर जाते हैं। यह सिखाया है महावीर ने? उपवास से शरीर सुखा लो, शरीर सूख जाए तो सल्लेखना कर लो, मर जाओ, चले जाओ; बस! इसका नाम धर्म है, यही जैन धर्म बता रखा है? आप कौन से धर्म के चक्कर में पड़ी हो? कैसे नग्न साधु होते हैं? मैले-कुचैले, न कभी नहाते हैं, न कभी धोते हैं, न कभी बाल अपने उचेलते हैं, न कभी तेल लगाते हैं, न साबुन लगाते हैं और आप ऐसे गन्दे साधुओं की उपासना में लग गई। ऐसा महावीर भगवान ने धर्म बताया? अरे! उससे अच्छा धर्म यह गौतम बुद्ध ने बताया था, जिस धर्म के उपासक हम भिक्षु देखो! कितनी संख्या में यहाँ घूम रहे हैं और ये सब परम ज्ञानी हैं। इतने ज्ञानी हैं कि इनसे कोई वाद-विवाद भी नहीं कर सकता है। हम सबके अन्दर भविष्य भी दिखाई देता है। त्रिकालदर्शी हमारे आचार्य हैं और वह आचार्य भी हमारे साथ में आए हुए हैं।

रानी चेलना की समझदारी

जब रानी चेलना ने उनकी ऐसी गर्व से भरी हुई बातें सुनी तो वह शान्त रही। इस बात को लेकर के कि इनको अपने धर्म और अपने धर्माचार्यों का, अपने धर्म के साधुओं पर इतना गर्व है और ये इतनी बड़ी-बड़ी बातें कह रहे हैं कि इनके आचार्य त्रिकालदर्शी हैं, परम ज्ञानी हैं तो वह रानी शान्त रह गई। कहने लगी... बहुत अच्छा, हम आपको त्रिकालदर्शी मानते हैं और हम आपके लिए यह प्रार्थना करते हैं कि कल आप हमारे घर में अपने अन्य और भी बौद्ध भिक्षुओं को लेकर के आना और अपने बड़े बौद्ध आचार्यों को लेकर के आना जो त्रिकालदर्शी हो। त्रिकालदर्शी समझते हो? मतलब भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों को देखने वाले; ऐसे ज्ञानी, ऐसे प्रत्यक्षदर्शी तुम्हारे यहाँ अगर साधु हैं तो उन्हें लेकर के आना। कल सबके लिए हमारे यहाँ पर आतिथ्य स्वीकार करने के लिए उनसे निवेदन करना और सबका भोजन यहीं पर होगा, इसी राजमहल में होगा। रानी को क्यों कहना पड़ा? समझदार आदमी कभी अपने धर्म का दूसरे पर आरोपण करके उसे थोपना नहीं चाहता है। भगवान महावीर की शिक्षाओं में अनेकान्तवाद की यह शिक्षा भी आपको ध्यान में रखनी चाहिए और अनेकान्तवाद की इस शिक्षा में कोई भी जैन आपने कभी भी जीवन में देखा हो, इतिहास में पढ़ा हो, किसी भी जैन ने जबरदस्ती किसी पर अपना धर्म नहीं थोपा। जैन ने कभी भी किसी के लिए जबरदस्ती करके अपने धर्म का धर्मान्तरण किसी का नहीं करवाया। जैन एक वह धर्म है जिसका आचरण देख करके, जिसका चरित्र देख करके, जिसका ज्ञान देख करके, जिसकी श्रद्धा देख करके आदमी अपने आप उस जैन धर्म को स्वीकार करने लग जाता है, हमें किसी धर्मान्तरण की जरूरत नहीं होती।

बौद्ध धर्म के अनुसार कष्टमय जीवन से कभी भी सुख की प्राप्ति नहीं

सबसे नासमझ आदमी वह कहलाता है जो किसी पर जबरदस्ती अपना धर्म थोपता है। जब आपने कभी रानी चेलना की यह कहानी सुनी हो तो शायद आपको यह लगने लगा हो कि रानी चेलना ने गलत किया। बौद्ध भिक्षुओं के साथ में गलत किया, अपमान किया; आपने वह कहानी सुनी हो तो, जो आगे आने वाली है। लेकिन उसने यह क्यों किया? वह अपना धर्म कर रही है, बौद्ध भिक्षुओं ने आकर के उसे challenge दिया। जब कोई किसी धर्म का उपासक हो और आप उसके धर्म के, उनके आराध्य की निन्दा करे तो फिर

वह कायर बनकर के शान्त बनकर के वह व्यक्ति रह नहीं सकता जिसके अन्दर उन आराध्य के प्रति आस्था होगी। उन बौद्ध भिक्षुओं ने जैन साधुओं की निन्दा की। ये नग्न होते हैं, अज्ञानी होते हैं, पशुओं की तरह घूमते रहते हैं, क्या नग्न होने से ही मोक्ष मिलता है? नग्न तो पशु भी होते हैं। उदाहरण तो सब देना जानते हैं। खाने-पीने को नहीं मिलता है, इसलिए घरों-घरों में घूमते हैं। किसी के यहाँ मिल गया तो भोजन कर लेते हैं, नहीं मिला तो उपवास कर लेते हैं। उपवास हो गया तो अपने आप को तपस्वी कहने लग जाते हैं; मैंने उपवास कर लिया, तपस्वी हो गया। एक उपवास हो गया, दो उपवास हो गए, शरीर क्षीण हो गया, धीरे-धीरे शरीर बिल्कुल नष्ट हो गया तो कह देते हैं हम सल्लेखना करने बैठ गए। इसको भी वह तपस्या कह देते हैं, बहुत बड़ा व्रत कह देते हैं। ये सब महावीर ने पूरा कष्टमय जीवन जीने की पद्धति बताई है। जो यहाँ पर कष्टमय है, वह भला दूसरे जन्म में कैसे सुखमय जीवन जी सकेगा? जिसको यहाँ कष्ट है, उसको अगले जन्म में भी कष्ट मिलता है। जो यहाँ पर सुख से जीवन जियेगा, वही अगले जन्म में सुख से जीवन जियेगा। इसलिए रानी! यह बात समझ लो, जैन धर्म में कोई भी सुख की बात नहीं है। न इस लोक में सुख मिलता है, न परलोक में सुख मिलता है। यह सिर्फ ढोंग है, दिखावा है। राजा बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं, आप उनकी रानी हैं तो आपको भी बौद्ध भिक्षुओं का ही सम्मान करना चाहिए। उन्हीं के आश्रम में आना चाहिए, उन्हीं की बातों को सुनना चाहिए और आपको भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेना चाहिए।

चेलना रानी द्वारा बौद्ध भिक्षुओं की परीक्षा

यह सब सुनने के बाद में रानी चेलना ने अपने मन में यह निर्णय लिया कि आप अगर अपने बौद्ध भिक्षुओं को परम ज्ञानी कहते हैं, त्रिकालदर्शी कहते हैं तो कल मैं आपको भोजन पर आमंत्रण करने के लिए बुला रही हूँ...आना! यह जो दम्भ देखने को मिला, उसके कारण से उसने उन बौद्ध भिक्षुओं को अपने यहाँ पर बुलाया और दूसरे दिन सब बौद्ध भिक्षु अपने बड़े-बड़े धर्माचार्यों को लेकर के वहाँ पहुँच गए। जब पहुँच गए तो सबके सामने अच्छे व्यंजन परोसे गए। खाने में तो सभी निष्णात होते हैं, कुशल होते हैं। राजमहल में पहुँचने के बाद में अच्छे रसीले भोजन मिले, इससे बढ़कर के सुखद दिन और क्या हो सकता है? सबने बढ़िया जायकेदार अच्छा भोजन किया और भोजन करते-करते रानी ने क्या किया कि सबकी जो पादुकाएँ बाहर उतरी थी, उन सबकी एक-एक पादुका को लेकर के उसने एक व्यक्ति से कह करके उन सब पादुकाओं को मँगवाया और सबका इतना अच्छा चूरा बनवाया। भोजन करने के बाद में रायता पिलाया जाता है, आजकल तो कुछ होता ही नहीं है। पहले जब ज्यौनार हुआ करती थी, पंक्तिबद्ध बैठकर के जब लोग भोजन किया करते थे तो पहले तो अच्छा बढ़िया-बढ़िया पूरी, हलवा, रसगुल्ला, सब बढ़िया-बढ़िया भोजन कराया जाता था...फिर last में जो है रायता आता था। किसके लिए? जो भोजन आपने किया है, वह सारा का सारा बढ़िया digest होने के लिए बढ़िया रायता आता था। बस! उसने उस last में अच्छा जायकेदार रायता बनाया मसाले का और सारे मसाले के अन्दर उसने उनकी एक-एक पादुका का अच्छा बढ़िया चूरमा बना करके, उसे मसाले की तरह मिलाकर के उनको पिलवा दिया। अब यह उसने कर दिया। आपको लगेगा कि उसने गलत किया। पहली बार अगर कोई वास्तव में इस इतिहास को पढ़ेगा तो रानी चेलना से कहेगा कि उसने गलत किया, उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था। हमने भी जब पहली बार पढ़ा तो मुझे भी ऐसा ही लगा कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था लेकिन उसने ऐसा कर दिया।

इतिहास की सत्य घटना

अब इतिहास की सत्य घटना है। जब सभी आचार्यों ने कहा है तो हमें भी कहने में क्या बुराई है? लेकिन अगर हम किसी के मनोभाव को देखे तो उसका मनोभाव क्या था? यह जो दम्भ दे रहे थे, निन्दा एक तरफ है। चलो ठीक है! आपने जैन साधुओं की निन्दा की, उनको ढोंगी कहा, पशु कहा, उसने सब सुन लिया। उसके अन्दर उसकी आस्था को क्या ठेस लगी? उसने कुछ भी व्यक्त नहीं किया। उसने शान्ति से वह कड़वा घूंट पी लिया। लेकिन जो आप अपने लिए दम्भ दे रहे थे कि ये मेरे धर्माचार्य परमज्ञानी हैं, त्रिकालदर्शी हैं, उसने इस बात के लिए वह परीक्षा की। तुम्हारे साधु त्रिकालदर्शी हैं, तुम अपने आप को सर्वज्ञ कहते हो, परमज्ञानी कहते हो...चलो! कल मेरे यहाँ पर भोजन करने के लिए आना। इसलिए उसने सबको बुलाया और जब भोजन करने के बाद में सब लोग प्रस्थान करने लगे तो सबकी एक-एक पादुका गायब। अब जब सबने एक दूसरे की तरफ देखा कि सबकी एक पादुका गायब है, तो जरूर कुछ न कुछ गड़बड़ है। अब हड़कम्प मच गया। सब एक दूसरे से कहने लगे, कुछ न कुछ अब जो है, मेरे साथ गलत हुआ है और अपनी परीक्षा ली गई है अभी यह पादुका कहाँ है? पूछा गया तो रानी ने कहा...आप लोग त्रिकालदर्शी हैं। अगर आपको दिखाई दे तो आप बता सकते हैं कि आपकी पादुकाएँ कहाँ छुपी रखी हैं? कहाँ हैं?

जब राजा तक यह बात पहुँची तो रानी ने क्या कहा?

उन्होंने चारों तरफ देख लिया, घर के चारों तरफ, बाहर lawn में, इधर-उधर सब जगह ढूँढ लिया और ढूँढने के बावजूद भी किसी भी साधक को, भिक्षु को कुछ नहीं मिला। फिर वे आकर के इस रानी के पास बोले... देखो रानी! बहुत हो गया। अब जरूर यह बता दो, हमारी पादुकाएँ कहाँ हैं? सब लोगों की पादुकाएँ गायब हैं। यह बहुत बड़ा अपमान है। यह जरूर बताना पड़ेगा, सबकी पादुकाएँ कहाँ चली गई हैं? तब रानी ने कहा...आप सबकी पादुकाएँ आपके ही पास हैं। किसके पास में हैं? आप ही के पास में हैं। फिर और ज्यादा वे भीचक्के रह गए कि मेरे ही पास में हैं, कहाँ हैं मेरे पास में? फिर उनको धीरे-धीरे यह समझ आया कि यह रानी बता नहीं रही है और सिर्फ एक ही बात बोल रही है, आपकी पादुकाएँ आपके ही पास में हैं, आप देख लो। तब उन्हें स्वतः संज्ञान में आया...जरूर इसने मेरे साथ, हम लोगों के साथ में कुछ गड़बड़ कर दी है और फिर उस समय पर उन धर्माचार्यों ने कहा- जब यह कह रही है, अपने पास में हैं तो इसका मतलब और कुछ नहीं हो सकता है, अपने पास में तो इसका ही भोजन है। अपने पास में केवल अपना भोजन है मतलब इसने भोजन के साथ ही उन पादुकाओं का चूरमा मिलाकर के पिला दिया, ऐसा लगता है। फिर उन बौद्ध भिक्षुओं ने उस समय पर सारी उल्टी कर दी और उल्टी करके फिर उसमें देखा कि वास्तव में उसमें ऐसे कण हैं, जो ये कण बताते हैं कि ये सब उन्हीं अपनी पादुका के ही ये कण हैं। यह बात पूरे राजमहल में आग की तरह फैल गई। राजा के पास तक यह बात पहुँच गई। रानी चलना ने बौद्ध भिक्षुओं का अपमान किया, उनकी परीक्षा लेकर के उनका निरादर किया और यह बात जब राजा श्रेणिक के पास पहुँची तो राजा श्रेणिक को भी अच्छा नहीं लगा और उन्होंने रानी से कहा, रानी चलना से कहा- देखो रानी! अभी तक तुमने जो अपना धर्म किया था, वह सब अच्छा था। लेकिन तुमने आज जो किया है, यह बात आज मुझे अच्छी नहीं लगी। तुमने बौद्ध गुरुओं का अपमान करके मेरा अपमान किया, मेरी आस्था को ठेस पहुँचाई तो रानी चुप रही।

मौन की शक्ति

चुप रहना भी एक बहुत बड़ा गुण है। तुरन्त सफाई नहीं देना, तुरन्त उत्तेजित नहीं होना। अगर राजा उस समय पर किसी तरह से अपने मन में क्रोध उत्पन्न कर रहा है, तो उसको शान्ति से सुन लेना और वह उस समय पर शान्त रहकर के राजा से कुछ नहीं बोली। उसने इतना ही कहा कि मैंने कुछ नहीं किया, इन्होंने ही अपने घमण्ड में, अपने दम्भ में हमारे सामने कहा था कि हम परमज्ञानी हैं, हम त्रिकालदर्शी हैं, हमने केवल उनकी परीक्षा करने के लिए ऐसा कार्य किया। मेरा और उसके पीछे इनका अपमान करने का कोई भाव नहीं है। लेकिन राजा ने कहा- नहीं! तुमने अपमान तो इनका कर दिया। उन्हीं की पादुकाएँ आपने उन्हीं को खिला दी, इससे बड़ा अपमान और क्या होगा? कोई ऊपर से मार देता तो फिर भी इतना अपमान नहीं होता, आपने उन्हीं की पादुकाएँ उन्हीं को खिला दी, यह बहुत बड़ा अपमान हो गया। तब रानी कहती है- मेरा अपमान करने का भाव नहीं, मैं किसी भी साधु का कभी अपमान नहीं करती। इन्होंने अपमान के वचन मेरे साधुओं के लिए बोले, निर्ग्रन्थता के लिए इन्होंने अपमान के वचन बोले, फिर भी मैंने कुछ नहीं कहा। लेकिन इन्होंने जब यह दम्भ दिखाया कि हम त्रिकालदर्शी हैं तो हमने उसकी परीक्षा करने के लिए ऐसा किया कि क्या यह वास्तव में त्रिकालदर्शी हैं? और जब कोई भी उसमें त्रिकालदर्शी नहीं मिला; सब अपनी आँख, नाक सब नीची करके वहाँ से निकल गए। तो सबके अन्दर एक अपमान का भाव तो भीतर से पैदा हो गया और सबके अन्दर भीतर से एक ऐसा भाव पैदा हो गया कि इसका भी बदला कभी न कभी लिया जाएगा। **साधु ही अगर बदला लेने की सोचने लग जाए तो फिर दुनिया में साधुता कहाँ बचेगी?** यह अन्तर आपको जैन साधु और अन्य साधुओं के बीच का अन्तर देख करके समझ में आएगा और ये उस समय के विवाद हैं, जब बौद्ध धर्म भी अपनी चरम पर था, जैन धर्म भी अपने चरम पर था लेकिन जहाँ जैसे साधुओं का प्रभाव पड़ जाता था, वहाँ के राजा लोग उस तरह से उस धर्म को स्वीकार कर लेते थे, उसके प्रभाव में आ जाते थे।

श्रद्धान दृढ़ होना चाहिए

देखो! एक घर में, एक राज्य में एक राजा बौद्ध है और रानी स्त्री होकर के, अबला होकर के भी चलना है। जैन होने के लिए, जैन धर्म की प्रभावना करने के लिए दृढ़ श्रद्धान के साथ कितनी कटिबद्ध है? यह बात अभी पूरी नहीं हुई है। बात तो अभी आगे और बढ़ेगी लेकिन आपको यह देखना है कि माहील धर्म के कारण से कैसा घर में बिगड़ने लग जाता है और यह माहील कैसे बिगड़ा? सब अपने-अपने धर्म का अनुसरण करे तो कोई माहील नहीं बिगड़ता लेकिन जब कोई दूसरे को challenge देता है, तो माहील बिगड़ने लग जाता है। इसलिए आचार्यों ने कहा- **अपना धर्म करो, अपने धर्म के लोगों को सम्भालो।** दूसरा अपने आप अगर कुछ सीखकर के आने की इच्छा करे तो उसका स्वागत है, नहीं तो किसी को भी जबरदस्ती करके कभी किसी का धर्मान्तरण मत करो। इसलिए कभी भी जैन आचार्यों ने किसी धर्म से धर्म का धर्मान्तरण नहीं किया। लेकिन अगर कभी जैन बने भी हैं तो नए जैन कैसे बनते हैं? जिन्होंने सदाचरण करने का संकल्प कर लिया हो, जिन्होंने दिगम्बरत्व को, निर्ग्रन्थता को अपनी श्रद्धा का विषय बना लिया हो, वह कोई भी व्यक्ति अपने अन्दर **जैनत्व का भाव धारण करके जैन बन सकता है** और जैन बन जाता है। इसके लिए कोई धर्मान्तरण करने की प्रक्रिया नहीं होती है, कोई कट्टरता नहीं होती है लेकिन यह प्रक्रिया सहज

रूप में चला करती है और इस तरह की प्रक्रिया वहीं पर हो पाती है, जहाँ पर स्वयं दृढ़ श्रद्धानी लोग हुआ करते हैं। इसलिए कभी भी आप अपने धर्म को, अपनी श्रद्धा को उस तरह से दृढ़ बना कर के रखो...कष्ट आएँगे, उपद्रव होंगे लेकिन आपकी श्रद्धा अगर मजबूत होगी तो सब कुछ धीरे-धीरे सही हो जाएगा। रानी चेलना का उदाहरण आज के समय में सबके लिए एक आदर्श उदाहरण है। आज के समय में आज के बेटे-बेटियों के लिए रानी चेलना का यह चरित्र अपने आप में बहुत बड़ा उदाहरण है इस बात का कि हमें अपनी धर्म रक्षा करने के लिए किस तरह से तत्पर रहना चाहिए और यह धर्म केवल बाहरी नहीं है, यह भीतरी धर्म है।

इस धर्म की रक्षा करने के लिए, आत्म-धर्म की रक्षा करने के लिए अगर कोई किसी भी तरीके से challenge भी करता है, तो उसके लिए भी तत्पर रहना, यह भी आपको ऐसी बहादुर नारियों के उदाहरण से ही समझ में आएगा। जैन धर्म के अन्दर अगर वीर नारियों की, बहादुर नारियों की अगर गणना की जाएगी तो पहला नाम रानी चेलना का ही आएगा। अभी तो वीरता के कुछ किस्से और बाकी हैं, धीरे-धीरे आपके सामने आयेंगे।

गाथा: 03

कल किये जाने वाले कार्य को आज करने की प्रेरणा

जं कल्ले कायव्वं, तं अज्जं चिय करेह तुरमाणा।

बहुविग्घो हु मुहत्तो, मा अवरणं पडिक्खेह॥3॥

अन्वयार्थ- 'हे प्राणियो!' (जं) जो 'करने योग्य कार्य' (कल्ले) कल को (कायव्वं) करने योग्य हो (तं) उसको (अज्जं) आज (चिय) 'ही' (तुरमाणा) तुरन्त यानी शीघ्र (करेह) करो 'क्योंकि' (मुहत्तो) मुहूर्त यानी थोड़ा सा काल 'भी' (हु) नियम से (बहु-विग्घो) बहुत, विघ्न यानी अनेक, बाधाओं वाला है 'तुम' (अवरणं) अपराह्न यानी दोपहर तक की 'भी' (पडिक्खेह) प्रतीक्षा (मा) मत करो ॥3॥

धर्म प्रेमी भव्य आत्माओं,

शुभस्य शीघ्रम्



आप सभी के लिए वैराग्य शतक के माध्यम से वैराग्य भावनाओं को बढ़ाने के लिए प्रयास पहले से ही जारी है और उसी क्रम में जब राजा श्रेणिक पूछ बैठते हैं कि हम अपने घर की जिम्मेदारियों को पूरा करके, कैसे हम वैराग्य पथ पर आगे बढ़ें? यह प्रश्न ही अपने आप में बताता है कि अभी हमारे लिए मार्ग पर आगे बढ़ने में बड़ा विलम्ब है। अभी हमें वैराग्य पथ पर चलने की कोई जल्दी नहीं है क्योंकि हमारे सामने जिम्मेदारियाँ हैं और जिम्मेदारियों को पूर्ण करना भी हमारा कर्तव्य है। किन्तु जो वैराग्य पथ का रसिक होता है, उसके लिए आचार्य कहते हैं कि हमें किसी भी अच्छे कार्य में, श्रेयस्कर कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिए। कल भी आपसे कहा था...आयु गल रही है और हम भूल में न रहें, गलती न करें। हम इस बात को समझे कि आयु गल रही है और यह किसी भी क्षण गल कर के पूर्ण हो सकती है। जो वैराग्य पथ पर चलने वाले हैं, वे हमेशा यही ध्यान रखते हैं कि भीतर की आयु कर्म का कोई भी हमारे अन्दर विश्वास नहीं है, वह कितनी है? कैसी है? कब पूर्ण होगी? यह बात जरूर है कि हम बहुत आगे की सोच करके चलते हैं लेकिन जिन्हें धर्म के साथ आगे बढ़ने के लिए तत्पर होना पड़ता है, जिन्हें वैराग्य पथ पर आगे बढ़ने का मन होता है, वह ऐसा नहीं सोचते कि यह काम हम आज नहीं कल, कल नहीं परसों कर लेंगे, अभी क्या पड़ी है जल्दी, बरसों हैं, कर लेंगे। यह विचार यहाँ पर पहली बार आचार्यों के द्वारा छन्दों के रूप में लिखे हुए मिल रहे हैं, जिन्हें हम अक्सर हिन्दी के कुछ जुमलों के रूप में सुना करते थे। क्या सुना करते थे?

**आज नहीं कल, कल नहीं परसों,
क्या पड़ी है जल्दी, अभी तो हैं बरसों।**

ये सब जुमले ऐसा लगता है कि ये सब आचार्यों की इन्हीं भाषाओं से निकल कर के आए हैं। कल आपको

बताया था- ‘अज्जं कल्लं, कल्लं परं परारिं’ यह आज नहीं कल, कल नहीं परसों, परसों नहीं बरसों, ये सब विचार जब हमारे सामने आते हैं तो यहाँ पर हमें ऋषि-मुनि किस बात के लिए सचेत करते हैं? आज हम तीसरी गाथा पढ़ते हैं, इसी वैराग्य शतक की -

जं कल्ले कायव्वं, तं अज्जं चिय करेह तुरमाणा।

बहुविग्घो हु मुहुत्तो, मा अवरण्हं पडिक्खेह॥

कहते हैं- ‘जं कल्ले कायव्वं’ जो तुझे कल करने योग्य है, ‘तं अज्जं चिय करेह’ उसको आज ही कर ले, ‘**तुरमाणा**’ त्वरित गति से कर ले, जल्दी कर ले, शीघ्र कर ले। हमेशा ऋषि-मुनि इसी उपदेश के माध्यम से हम लोगों को सचेत करते हैं कि आपको जो अच्छा कार्य कल करने योग्य विचार में आ रहा है, उसे आज ही कर लो। उपदेश तो यही दिया जाएगा। श्रेयस्कर कार्य में विलम्ब करना मनुष्य के लिए विवेक पूर्ण नहीं है, क्योंकि आयु का कुछ भी विश्वास नहीं है। इसलिए हमेशा आचार्य कहते हैं कि अच्छे कार्यों को तुरन्त कर लेना चाहिए। ‘**बहुविग्घो हु मुहुत्तो**’ एक मुहूर्त में तो न जाने कितने विघ्न उत्पन्न हो सकते हैं? कितने समय में? एक मुहूर्त में। एक मुहूर्त में भी विघ्न उत्पन्न हो सकते हैं तो फिर बहुत लम्बे समय की बात को हम कैसे समझे? कैसे हम उसको टाल करके प्रतीक्षा करें? एक मुहूर्त में भी न जाने किस तरह से परिस्थितियाँ बदल जाएँ, क्या घटित हो जाए? हमारे लिए कुछ का कुछ हो जाए। एक मुहूर्त में भी सब तरह से आपसी वातावरण बदल सकता है, एक मुहूर्त में भी सब कुछ change हो सकता है। क्या change हो सकता है एक मुहूर्त में?

करणीय कार्य एवं आत्महित के कार्य शीघ्र करें

एक व्यक्ति था और वह अपने घर पर आराम से रह रहा था। अभी-अभी की एक घटना दमोह के पास की है। गाँव में खेती भी करता था, गाँव के लोग भी उसके साथ में खेती किया करते थे और कुछ गाँव के लोगों की आपस में कुछ ऐसी थोड़ी बहुत खेती आदि के कारण से ईर्ष्या वगैरह बनी रहती है। उस किसान का या किसी व्यक्ति का एक दूसरे व्यक्ति ने murder कर दिया और जब murder होने के बाद में और जो उसके घर के लोग थे, उन्होंने जब उसकी गवाही दी तो उसकी गवाही में एक नाम एक जैन व्यक्ति का भी लगा दिया। जबकि उसका उससे कोई लेना-देना नहीं, कहीं दूर-दूर से कुछ लेना-देना नहीं लेकिन इसलिए लगा दिया कि भाई! अब ये नाम पूछे ही जा रहे हैं कि कौन-कौन इसमें शामिल हैं? उस नाम में जो है, उन जिस-जिस से उसकी ईर्ष्या थी, उसने उन सबके नाम लगा दिए। उस व्यक्ति को अचानक से ऐसे case में तुरन्त न तो सुनवाई होती है, न तो तुरन्त कोई उसका इलाज होता है और उसे कुछ समय के लिए जेल भी जाना पड़ गया और जेल जाकर के वह कुछ महीनों तक जेल में रहा। आपत्ति कहाँ से आकर के गिर पड़े, कुछ कहा नहीं जा सकता। हम समझते हैं कि यह काम समय पर हो जाएगा। आज नहीं कल, कल नहीं परसों कर लेंगे और यही सोचते-सोचते वर्षों भी निकल जाते हैं लेकिन वह कल नहीं आता है। लेकिन कौन सा काम हमें तुरन्त कर लेना चाहिए? आचार्य कहते हैं- करने योग्य कार्य को तुरन्त कर लेना चाहिए। एक करने योग्य कार्य होते हैं और एक नहीं करने योग्य कार्य होते हैं। करणीय जो कार्य होते हैं, उन्हें तुरन्त करो। आत्महित के जो कार्य हैं, उन्हें तुरन्त करो। अगर आप उसमें सोचते रहोगे, विलम्ब करते रहोगे तो वह विलम्ब आपके लिए बहुत घातक भी सिद्ध हो सकता है। कभी-कभी आपने देखा होगा, आपके मन में

किसी भी तरह का कोई भी नियम, व्रत आदि लेने का भाव होता है, कभी-कभी तत्काल में भाव बनता है लेकिन अगर आप उस समय पर विचार करके रह जाते हैं कि अभी नहीं और देखते हैं, और सोचते हैं तो फिर आपके लिए विलम्ब होता चला जाता है, आप सोचते ही रह जाते हैं। इसलिए अच्छे कार्य तुरन्त कर लेने के लिए आचार्यों ने हमें प्रेरित किया है कि अगर हम कोई भी कार्य अच्छा है और तुरन्त कर लेते हैं तो हो जाता है और सोचते रहोगे, टालते रहोगे तो वह टलता ही चला जाता है।

शुभ एवं आत्महित के कार्य हेतु अधिक विचार-विमर्श न करें

एक छोटी सी भी अगर आपकी कोई आदत है और आप उससे अपने आप को बचाना चाहते हैं और सोचते हैं कि यह कार्य हो जाए तो बहुत अच्छा हो जाए। मान लो आप आलू खाते हैं, रात्रि में भोजन करते हैं, किसी भी तरह का कोई तम्बाकू, सिगरेट आदि का नशा करते हैं और आप सोचते रहते हैं कि ये कर लेंगे, कर लेंगे; छोड़ देंगे, छोड़ देंगे तो वह कभी नहीं छूटता। आपके लिए मन में बस विचार आएगा और विचार आए और तुरन्त ही आप उस समय पर यह कार्य कर ले तो कार्य हो जाता है और अगर आपने उसमें विलम्ब किया तो वह कार्य टलता ही चला जाता है। इसलिए जब भी कभी आपके मन में श्रेयस्कर विचार उत्पन्न हो, उस कार्य को तुरन्त करने का मन बना लेना चाहिए और तुरन्त कर लेना चाहिए। लेकिन आप लोगों की स्थिति ऐसी बनती है कि कोई भी कार्य जब तक घर में, परिवार में विचारपूर्वक नहीं किया जाए, तब तक वह कार्य आपका सम्पादित होता ही नहीं है। जबकि आत्महित के कार्य किसी दूसरों के विचार के साथ नहीं होते हैं, वह सिर्फ अपने और अपने निर्णयों के साथ होते हैं। क्या सुना? आत्महित के कार्यों में दूसरों का विचार नहीं करना पड़ता। दूसरों का विचार करोगे तो दूसरा अपना विचार आपको दे देगा। वह कहेगा कि आप क्या सोच रहे हो? आप क्या कर रहे हो? इतनी जल्दी क्या पड़ी है, आपको कोई भी कार्य करने की? थोड़ा सोच-समझ के कर लेना, अभी यह काम सामने है, इस काम को निपटा लो, इस काम में भी दो साल लग जायेंगे, तब तक आप वह विचार और अपना दृढ़ बना लो, उसके बाद देख लेना। वह एक काम निपटाने के लिए साल, दो साल के लिए सोचता है, उसके बाद में तो भूल ही जाता है कि हमने क्या विचार किया था, अब उसका मन ही नहीं रहता कि हमारे अन्दर कोई ऐसा भाव भी आया था। हो सकता है, राजा श्रेणिक का यह भाव आज इस कुर्सी पर बैठ कर आया हो। शायद आपके लिए भी यह भाव तब आए, जब आप इस कुर्सी पर बैठो और हो सकता है कि इस कुर्सी पर ही बैठ कर के ऐसी भावना बनती हो और अगर यह भावना इस कुर्सी पर ही बैठ कर के बनती है, तो भी समझ लेना यह बहुत उत्तम भावना है और यह बहुत उत्तम अवसर है कि हमें कम से कम इस कुर्सी पर बैठ कर के भाव तो बनता है कि हम कैसे वैराग्य पथ पर आगे बढ़ें? यह विचार आपके अन्दर अगर आता है, तो यह विचार अपने आप में बहुत अच्छा विचार होता है और यह विचार अगर वास्तव में अपना हो तो आपको अपनी diary में note करके रखना चाहिए कि इस क्षण, इस समय पर हमारे मन में यह भाव आया था, यह विचार आया था। वह स्वर्णिम क्षण है अगर यह आपका अपना विचार हो तो। ऐसा तो नहीं कि आज हमें प्रश्न करना था तो हमें प्रश्न पूछना पड़ा किसी से? प्रश्न हमारा अगर अपना होता है और वह विचार अगर हमारा खुद का होता है, तो फिर उस विचार के माध्यम से हम अपने जीवन में कभी न कभी समाधान प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए अच्छे विचार, अच्छे प्रश्न अपनी diary में note करके रखना चाहिए कि हमारे जीवन में कब अच्छा समय आया, जब हमारे लिए कोई अच्छा आत्महित का विचार हमारे अन्दर उत्पन्न हुआ और वह विचार यही है, जो विचार यहाँ पर कराया जा

रहा है।

जो तुम्हें कल करना है उसे आज कर लो, शीघ्र कर लो, जल्दी कर लो, विलम्ब मत करो और वह जल्दी भी इतनी कि एक मुहूर्त की भी देरी मत लगाओ। एक मुहूर्त में भी कई विघ्न उपस्थित हो सकते हैं, इसलिए **‘मा अवरणं पडिक्खेह’** अपराह्न की भी प्रतीक्षा मत करो, अपराह्न को भी मत देखो कि भाई जब दोपहर आएगी, शाम आएगी तब कर लेंगे। आज का विचार तुरन्त आज ही आपको कार्यान्वित कर लेना चाहिए। यह विचार हमें ऋषियों, मुनियों ने दिया है और यह विचार उनके लिए होता है, जो कुछ न कुछ धर्म-साधना का अभ्यास करते हैं। अगर आपके मन में आज पूजा करने का विचार आया है, तो आपके लिए वह पूजा अगर आज हो जाएगी, तुरन्त हो जाएगी तो, तो हो जाएगी और अगर आप सोचते रहोगे कि यह पूजा आज नहीं कर पाए, हम कल कर लेंगे, परसों कर लेंगे तो कई परसों निकल जायेंगे। अच्छे काम के लिए जिस समय पर मन बने, उसी समय पर कर लो। व्रत करने का मन बने, व्रत कर लो। उपवास करने का मन बने, उपवास कर लो। जाप करने का मन बने, जाप कर लो; सामायिक करने का मन बने, उसी समय कर लो। ध्यान करने का मन बने, उसी समय कर लो। सोचते रहोगे कि यह ध्यान अब हम अभी नहीं, थोड़ी देर बाद कर लेंगे, शाम को कर लेंगे तो वह शाम कभी नहीं आएगी। क्योंकि वह भाव आपका बनना तब होता है, जब बहुत कुछ भीतर से आपके अन्दर कोई विशुद्धि के परिणाम उत्पन्न हो रहे हो तभी आपको धर्म साधना के भाव बनते हैं। नहीं तो धन अर्जन के भाव ही हमेशा आपके बने रहते हैं, धर्म साधना के भाव नहीं बनते। धनार्जन के भाव तो बड़े सरल हैं लेकिन धर्मार्जन के भाव कठिन हो जाते हैं, जब कभी मन बनता है। इसलिए ऐसे बहुत से लोग मिलेंगे आपको, जिनका मन कभी बना कि हम भी वैराग्य के पथ पर चलें लेकिन वह कुछ सोच करके रह गए, कुछ अपने मम्मी-पापा से पूछ कर के रह गए और कुछ मम्मी-पापा ने अगर मना कर दिया तो तुरन्त उनकी मान कर के रह गए। आज वह जिन्दगी में कहीं न कहीं पछताते भी हैं, ऐसे बहुत से लोग होते हैं। यह जीवन हम आत्महित के कार्यों के लिए समर्पित करते, आत्महित के कार्यों में इस जीवन को निकालते और इस तरीके का अगर हमारा जीवन आगे बढ़ता है, तो वही जीवन श्रेयस्कर माना जाता है।

तुरन्त दान, महा कल्याण

जब हमारे सामने इस तरह की भावना बन रही हो और हम उस समय पर ज्यादा सोच-विचार करने लग जाँ तो भी वह भावना हमारी छूट जाती है। इसलिए कहा जाता है...**तुरन्त दान, महा कल्याण**। दान की भी भावना ऐसी भावना है। अगर आपके मन में किसी वस्तु का त्याग करने की भावना है, धन का त्याग करने की भावना है तो तुरन्त उस भावना को कर लो, उसको तुरन्त उसकी पूर्ति कर लो। अगर आपने उसमें विलम्ब किया तो फिर अगले क्षण आपका मन बदल जाएगा। यहाँ तक कहा जाता है कि भाई! जिस समय पर दान देने का भाव आए, जिस हाथ से देने का भाव आए, उसी हाथ से दे देना। अगर टेढ़े हाथ में ही कोई चीज रखी हुई है तो टेढ़े ही हाथ में, बाएँ हाथ से ही दे देना; सीधे में लाने की कोशिश मत करना, नहीं इतनी देर में भाव बदल जाएगा। इतना तक ऋषियों, मुनियों ने कहा है क्योंकि ये भाव क्षण-क्षण में बदलते हैं। आपके अन्दर अगर आज किसी भी द्रव्य, क्षेत्र, काल के माध्यम से भाव में परिवर्तन आया है तो यह आज

ही का है, अभी का है, इसी समय का है, अगले क्षण चला जाएगा। अभी बैठे हो, आपके अन्दर जो विशुद्धि के परिणाम होंगे, वह परिणाम आपको यहाँ से उठने के बाद नहीं होंगे। जब आप अपने समक्ष किसी भी तरह का कोई भी कार्य देखते हो और उससे आपका जुड़ाव हो जाता है और उस समय पर आपके भावों में जो परिवर्तन आ जाता है, वह परिवर्तन हमें देखते रहना चाहिए, महसूस करते रहना चाहिए। चाहे वह परिवर्तन भगवान की पूजा करते समय आ रहा हो, चाहे वह परिवर्तन गुरु के उपदेश सुनते समय आ रहा हो, उस परिवर्तनीय भाव को अगर हम देखते रहेंगे, पकड़ते रहेंगे तो वह हमारे लिए बहुत कुछ आगे अच्छा फल देने में कारण बन सकता है। इसलिए ज्यादा सोच-विचार करने वाले लोग न कभी भगवान की अच्छे से भक्ति कर सकते हैं और न कभी वैराग्य के पथ पर आगे बढ़ सकते हैं और अगर बढ़ जाते हैं तो उनकी percentage बहुत कम रहती है। सोचते-सोचते जिनकी उम्र 80 की हो जाए, 90 की हो जाए, बुद्धि जागृत रहे और वह आचार्य गुरुदेव के पास में पहुँच जाएँ, मुनि महाराज के पास में पहुँच जाएँ, ऐसे पुण्यात्मा जीव बहुत कम मिलते हैं।

आत्म कल्याण की कोई उम्र नहीं

अभी एक कोई पुण्यात्मा जीव महाराष्ट्र के, कोल्हापुर के आचार्य श्री के पास पहुँचे। शायद 98 की उनकी उम्र है। आ गई जागृति। वह अपने समय के बहुत अच्छे, किसी तीर्थ के, कुन्थलगिरी तीर्थ के अच्छे संरक्षक रहे। प्रतिष्ठा के पदों पर उन्होंने अपने सामाजिक कार्यों का निर्वहन किया और उसके उपरान्त सब कुछ करने के बावजूद भी उन्होंने अपना सब कुछ त्याग करके आचार्य श्री के चरणों में अपना समर्पण कर दिया। वह समर्पण ऐसा हो गया कि उनके लिए पिछले एक डेढ़ महीने से आचार्य श्री के निकट उन्हें रहने को मिल रहा है और उसी के दौरान आचार्य श्री के माध्यम से उन्हें क्षुल्लक दीक्षा की भी प्राप्ति हो गई। ऐसे क्षण हर किसी को नहीं मिलेंगे। आप सोचो कि ऐसे ही हम करेंगे, जब 98 के हो जायेंगे तब जायेंगे आचार्य श्री के पास... पहुँच गए तुम? आपके लिए अगर मन में विचार इस तरीके के आते हैं तो यह आपको अपने धोखा देने के विचार हैं। आप उनको देख कर के तो सोच सकते हो लेकिन हम लोगों को देख कर के भी तो कुछ सोच सकते हो। हर व्यक्ति बहाने ढूँढता है। जिसको कुछ करना नहीं होता है, वह बहाने इतने अच्छे ढूँढता है कि वह न बहाना कभी पूरा होगा, न उसका कभी विचार पूरा होगा। जैसे कहावत कहते हैं... **‘न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी’** बस! वही काम है आप लोगों के कि जब यह हो जाए, जब वह हो जाए, जब यह हो जाए, जब वह हो जाए, उसके बाद में कुछ कर लेंगे और वह कभी होता नहीं और वह अपना विचार जैसा है, वैसा का वैसा बना रह जाता है। यह बात यहाँ पर बड़ी हितकर कही जा रही है। जिनके अन्दर राग की कमी होती है, वह अपने भावों की विशुद्धि को देखते हुए तुरन्त उस राग की कमी को और बढ़ाते हुए और अधिक राग को कम करते हुए यह विचार कर लेते हैं कि अगर हमने इस समय पर कुछ अच्छा कर लिया तो अच्छा हो जाएगा अन्यथा आजकल तो क्या करें? कब, कौन सा दर्द शुरू हो जाए? कब कौन सा रोग जो है detect हो जाए? कब क्या हो जाए? कुछ भी कहने की बात नहीं है। देख तो रहे हो सब जगह... चारों ओर आँख उठा कर के देखो, कैसे दुनिया के अन्दर रोगों की आग लगी है? कोई भी व्यक्ति के लिए अच्छा भला व्यक्ति जी रहा होता है, अचानक से check कराने जाता है, third stage का cancer, fourth stage का cancer, खेल खत्म। अब बस दिन गिनो उल्टे, अब कुछ नहीं बचा। ये स्थितियाँ बनने से पहले अगर हम कुछ अपने लिए कर लेते हैं तो यह साहस का काम कहलाता है और यही साहसिक

काम की प्रशंसा की जाती है, ऐसे वैरागियों की प्रशंसा की जाती है। इसमें विचार करते रहने से, विलम्ब होते रहने से आपके मन के भाव धीरे-धीरे गिरते चले जाते हैं। माता-पिता तो कभी भी, घर-परिवार के लोग तो कभी भी किसी के लिए नहीं कहेंगे कि हाँ बेटा! यह बहुत अच्छा काम है अच्छे से कर ले। ऐसा कोई माता-पिता नहीं मिलेगा। बहुत कम, एकाध, लाखों में एक मिलेगा कोई मिलेगा तो। अन्यथा सबके लिए यही स्थिति बनेगी...नहीं बेटा! यह अभी का काम नहीं है, अभी तो तुम थोड़ा सा अपने घर पर रहकर के माता-पिता की सेवा करो, पढ़ो लिखो, थोड़ा सा ब्याह कर लो। फिर उसके बाद में, बाद में देखना, ये सब बाद के काम हैं। यह बाद होते-होते, बाद होते-होते, सब लोग यहाँ बैठे हैं, सब बाद में देख ही रहे हैं अब। कब आएगा, कब आएगा time, कब आएगा? Time कभी भी आता नहीं है, उसे हमें अपने पुरुषार्थ से बुला लेना पड़ता है और इस तरह की विचारधारा जिसके अन्दर रहती है, वह व्यक्ति ही इन क्षणों का सदुपयोग कर पाता है। यही वैराग्य का भाव है। आपके हाथ में आया हुआ पानी गल रहा है और वह पानी गलते-गलते यही सन्देश दे रहा है कि आयु जा रही है, आयु गिर रही है। आप जल्दी से आत्महित के कार्य में अपने आप को संलग्न कर लीजिए। लेकिन हम भी इतने ढीठ हो चुके होते हैं कि सोचते हैं अभी नहीं, अभी नहीं, अभी तो थोड़ा-सा समय और है। अभी उम्र ही क्या है? अभी तो यह बच्चे सामने हैं, बेटे सामने है, बेटे सामने हैं, सब सामने-सामने रहते हैं और सब सामने-सामने से निकल भी जाते हैं। Corona ने सब कुछ सिखाया है, सब कुछ दिखाया है। नहीं देखा? सब देखा है न? लेकिन फिर भी आत्महित के कार्य करने में हम अगर पीछे रहते हैं तो वह कार्य हमारे लिए बहुत ही ज्यादा नुकसानदेह हो जाता है। इसलिए इस बात को ध्यान में रखो कि आत्महित के कार्यों में बहुत ज्यादा विलम्ब नहीं करना चाहिए। किसका श्रृंगार करना? किसको सजाना? देह का श्रृंगार करते-करते अगर थकान नहीं उत्पन्न होती तो कभी आपको आत्महित की बात उत्पन्न नहीं हो सकती और हर आदमी शरीर और परिवार के कार्य में ही लगा हुआ है। सांसों का विश्वास आदमी के अन्दर इस तरह से बैठा हुआ है कि जैसे सांसों हम खरीद करके लाए हैं और जब तक यह हम हैं, तब तक हमारी सांसों हमारे साथ चलती रहेंगी। लेकिन हमेशा, कभी न कभी, कवियों ने इस तरह की चेतावनी हमें दी है-

**मानव तू देह से, न इतना दुलार कर,
मानव तू सांसों से इतना मत प्यार कर।
मानव तू देह से, न इतना दुलार कर,
मानव तू सांसों से इतना मत प्यार कर।
सांसें छल जाएँगी किस क्षण विश्वास नहीं,
आत्मा अविनश्वर है उसका श्रृंगार कर,
आत्मा अविनश्वर है उसका श्रृंगार कर।**

किसका श्रृंगार करना है? आत्मा का श्रृंगार करना है। यह श्रृंगार तभी सम्भव है जब हमारे जीवन में यह विचार बना रहे कि हम धर्म को ही महत्व दें। धर्म ही हमारे लिए सब कुछ हो तो श्रृंगार हो जाता है और धर्म अगर हमारे जीवन में सब कुछ होता है, तो फिर हमें हर समय धर्म और धर्मात्मा का स्मरण निरन्तर बना रहता है।

मंच, माला और माइक...एक नशा

आज सामने कुछ नए-नए से लोग बैठे हैं, नया-नया गुलाबी दुपट्टा डाल कर। सब जैन बन्धु ही हैं लेकिन आज अतिथि के रूप में क्यों उपस्थित हुए हैं? जो रोजाना उपस्थित होते थे, उन्हीं में से अतिथि हो गए हैं या कुछ विशेष अतिथि होकर के यहाँ उपस्थित हुए हैं? रोजाना नहीं आते थे? आप अगर आज विशेष रूप से अतिथि बनकर के यहाँ आए हैं तो आज आने में यह आपकी बहुत बड़ी गलती हो गई। जैन बन्धु होने के बाद में आपको विशेष रूप से अतिथि होकर के यहाँ पर invite किया जाए और आप यहाँ विशेष अतिथि के रूप में आएँ, यह अच्छी बात नहीं लगती। जैन बन्धुओं के लिए तो चाहे वह कोई social group हो, चाहे कोई भी group हो; हर किसी का कर्तव्य यहाँ पर बिना किसी invitation के आने का है और आना चाहिए। यह कार्य अगर जैन बन्धुओं के लिए होगा निरन्तर तो अच्छा लगेगा लेकिन जैन बन्धुओं को अगर आप अतिथि बनाकर के सामने बिठा लो तो यह हमारे कोप के पात्र बनेंगे। आगे अब गलती मत करना तुम! सुन रहे हो कि नहीं व्यवस्थापकों? यह तुम्हारा कर्तव्य है। रोजाना हम इतनी कोई दूरियों पर नहीं हैं कि हम रोजाना आकर के उपदेश न सुन सकें। अगर हमारे लिए समय निकलता है, तो हम उस समय का सदुपयोग करना सीखें। हम अतिथि बनकर के वहाँ जाएँ, जहाँ पर हमारे लिए कोई entry करने में दिक्कत होती हो, हमें कहीं किसी से पूछना पड़ता हो। यह तो तुम्हारी अपनी ही सभा है और अपनी ही सभाओं में अगर आप अतिथि बनकर के आयेंगे तो फिर हमारे लिए यह बात अच्छी नहीं लगेगी। आप सभी के लिए यह भावना होनी चाहिए कि हम अपना मनोभाव इस तरह का बनाएँ कि हम प्रतिदिन सभा में उपस्थित हो और सभा में उपस्थित होते हुए भी अगर हम वास्तव में विशिष्ट हैं तो आप इस side न बैठ कर के इस side बैठने की कोशिश करें तो आपको विशिष्टता का दर्जा प्राप्त होगा। अपने मन के अन्दर इस तरह के भाव बनाओ कि अगर हमें किसी भी तरह से धर्म में श्रद्धा है, तो वह धर्म की श्रद्धा हमारी दिखनी चाहिए। श्रद्धा होती है तो सिर चढ़ कर के बोलती है। किसी के लिए सिर चढ़ाना नहीं पड़ता; सिर चढ़ कर के श्रद्धा अपने आप बोलती है, जैसे रानी चेलना की बोलती है।

रानी चेलना की जैन धर्म पर श्रद्धा

रानी चेलना ने अपने अन्दर जो भाव संजोए, जो श्रद्धा बनाई, आज अकेली होते हुए भी दूसरे राज्य में एक नारी, एक स्त्री दूसरे राजघराने में अकेली होते हुए भी कितनी समर्थ हो जाती है? कितना उसके अन्दर एक विश्वास अपने आत्मा का उत्पन्न हो जाता है कि वह सबके सामने कहने के लिए तत्पर हो जाती है कि जैन धर्म से अच्छा दुनिया में कोई दूसरा धर्म नहीं है। यह अपनी श्रद्धा उसके अन्दर से जब बोलने लग जाती है और वह उस श्रद्धा को बरकरार बनाए रखने के लिए अपनी परीक्षा भी देती है और दूसरों की परीक्षा भी लेती है। उसने उन बौद्ध गुरुओं की परीक्षा की और परीक्षा में जब देखा कि ये कोई भी त्रिकालदर्शी नहीं हैं, ये कोई भी सर्वज्ञ नहीं हैं; राजा श्रेणिक ने उनसे कहा कि तुमने यह क्या कर दिया? मेरे गुरुओं का अपमान किया तो उसने कहा...अपमान नहीं किया, मैंने परीक्षा ली थी। उन्होंने दम्भ भर कर के मुझसे कहा था, यह हमारे धर्माचार्य त्रिकालदर्शी हैं, परम ज्ञानी हैं, इनके ज्ञान की परीक्षा मैंने ली थी। जब श्रेणिक ने यह सुना कि इस तरीके से परीक्षा लेने के उपरान्त इस रानी के मन के अन्दर यह भाव आया तो राजा श्रेणिक थोड़े



से शान्त तो हो गए लेकिन उन्हें लगा कि कहीं न कहीं हमें ऐसा लग रहा है कि रानी के अन्दर बौद्ध धर्म के प्रति द्वेष का भाव है। जबकि रानी के अन्दर बौद्ध धर्म के प्रति कोई द्वेष का भाव नहीं, वह अपनी धर्म साधना कर रही थी। बौद्ध गुरुओं ने ही आकर के, भिक्षुओं ने ही आकर के राजा को भड़काने का प्रयास किया कि राजन! यहाँ से बौद्धों का प्रभाव समाप्त हो रहा है, अपनी रानी को समझाने की कोशिश करो। तब राजा ने कहा, तुम ही समझाने चले जाओ और वे गए तो वे उसके चक्कर में ऐसे पड़े कि उन्हें अपमानित होकर के वहाँ से निकलना पड़ा। लेकिन कुछ दिनों के बाद में फिर एक घटना घटित होती है। उसी राजा के राज्य में एक बहुत बड़ा फिर से बौद्ध भिक्षुओं का एक संघ आने लगा। संघ का आगमन होना है और सभी प्रजाजन उस संघ की आगवानी के लिए जायेंगे क्योंकि राजा बौद्धों को मानने वाला है। अब उस समय पर राजा चलना रानी से कहता है...बौद्ध भिक्षुओं का संघ आ रहा है, आपको भी उनकी आवभगत के लिए चलना है और आपको भी उनका आदर सत्कार करना है। रानी चलना कहती है कि मैं कभी किसी का निरादर नहीं करती राजन! आपको यह गलतफहमी हो गई है कि मैंने बौद्ध भिक्षुओं का पहले अपमान किया। उसका मैंने आपको कारण बताया था और अगर आपकी यही जिद है कि हम उनके लिए सामने पहुँचे, हम उनके पास जाएँ तो हम चलेंगे। आप चिन्ता नहीं करो लेकिन गुरु तो हम उन्हें तब मानेंगे जब वह हमारी परीक्षा में सफल हो जायेंगे। हम कोई ऐसे लोग नहीं हैं जो किसी भी तरह के चमत्कार या किसी भी तरह की बहुतायत संख्या को देख कर के, हम कोई भी अपने भावों में बह जाएँ। आप कहते हो कि वह बहुत बड़े प्रभावक हैं, बहुत बड़े धर्म गुरु हैं, यह बहुत बड़े क्या होते हैं? अगर कोई वास्तव में भीतर से सच्चा है, तो उसे बहुत बड़ा होने की भी जरूरत नहीं है। सच्चा आदमी अकेला भी होगा तो हम उसको गुरु मान लेंगे। उसके साथ में 500 की फौज है इसलिए बड़ा है, यह हमारे लिए नहीं हो सकता है, हम परीक्षा लेंगे। मुझे विश्वास है कि जिस तरीके के जैन गुरु होते हैं, निर्ग्रंथ गुरु होते हैं, अगर उस तरीके की साधना, उस तरीके का आडम्बर रहित सच्चा आचरण, उस तरीके का दम्भ रहित किसी भी तरीके का कार्य, बोलने का कार्य अगर उनका होगा और हम उनकी परीक्षा लेकर के अगर यह समझ पाए कि वह भीतर से सच्चे हैं तो राजन! आप बिल्कुल चिन्ता नहीं करो, हम उन धर्म गुरुओं को भी मान लेंगे, हम बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को भी ग्रहण कर लेंगे, हम बौद्ध बन जायेंगे लेकिन बिना परीक्षा के नहीं।

चेलना का आत्मविश्वास और बहादुरी...स्त्रियों के लिए उदाहरण

कौन कह रहा है? चेलना कह रही है। किससे कह रही है? एक स्त्री के अन्दर कितना आत्मविश्वास, बहादुरी के साथ में अपने पति का सामना करते हुए भी सामने आ सकता है, यह आप इस चेलना से सीखो। राजा कहता है कि निर्ग्रंथ गुरुओं के प्रति तुम्हारी श्रद्धा है, बौद्ध गुरुओं के प्रति तुम्हारी श्रद्धा नहीं है; ऐसा क्यों है? रानी कहती है...आपने निर्ग्रंथ गुरुओं के बारे में गलत सोच रखा है। वे निष्परिग्रही होते हैं, वे दया धर्म के साथ अपना जीवन जीने वाले होते हैं, उनके जीवन में किसी तरीके का कोई दम्भ पूर्ण आचरण नहीं होता है, वे दिखावा नहीं करते हैं। वे जिस तरह का अपना आचरण रखते हैं, वह आचरण उनकी अपनी आत्मा के लिए होता है, दूसरों के लिए नहीं होता है। इस तरह की परीक्षा में अगर कोई दूसरा pass हो जाता है, तो मैं उसको भी स्वीकार कर लूँगी। मेरा कोई इसमें आग्रह नहीं है लेकिन बिना परीक्षा किए हुए नहीं। परीक्षा कितनी बड़ी चीज होती है? यह दूसरे नाम से नहीं चलती है कि उसके इतने follower हैं, उसका इतना बड़ा वहाँ पर प्रभावना है, वह PM के पास जाता है, CM के पास जाता है, यहाँ से बुलावा आता है,

वहाँ से बुलावा आता है, ये सब बातों में पड़ने वाले लोग विवेक पूर्ण लोग नहीं कहलाते हैं। विवेकी व्यक्ति वह देखता है कि इसकी हकीकत क्या है? यह व्यक्ति कहाँ से बोल रहा है? यह क्या है? इसने कहाँ से सीखा है? किसका अनुसरण कर रहा है? इसकी सत्यता क्या है? इसका स्वयं का अपना जीवन क्या है? किसी की भी गहराई में जाकर के देख लेना, उनका स्वयं का जीवन या तो तुम्हें देखने नहीं दिया जाएगा, वहाँ तक तुम पहुँच नहीं पाओगे। दुनिया में जितने भी बड़े-बड़े गुरु हैं, उनके आश्रमों के उन कमरों तक तुम कभी पहुँच नहीं पाओगे, जाकर देख लेना आप। जो निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु रहते हैं, वे हमेशा खुले बैठे रहते हैं, उनके कोई कमरे नहीं होते हैं, कहीं भी अगर कमरे में भी बैठे होंगे तो किसी को रोकते नहीं हैं और कभी भी आपके लिए उनकी entry हो सकती है; निर्ग्रन्थ गुरुओं की सबसे बड़ी पहचान है। उनका कोई मठ नहीं, कोई आश्रम नहीं, उनके लिए कोई रोकने वाला नहीं और अगर कोई सुन भी लेते हैं कभी कि किसी को रोकने के लिए कहा जा रहा है, तो वह खुद कमरे से उठ कर के बाहर आ जाते हैं। भैया! किसी को रोकने मत, आने दो। लेकिन आपको इतने साधारण लोग कभी भी असाधारण नजर नहीं आयेंगे। आपको हमेशा असाधारण लोगों में ही असाधारणता नजर आएगी क्योंकि वहाँ तक आपकी पहुँच नहीं हो सकती है और इसी कारण से एक बहुत बड़ा माहौल बनाया जाता है। बड़े बाबा, बड़े बाबा, बड़े गुरु, बड़े गुरु, यह जो बड़ा-बड़ा जो माहौल बनाया जाता है, यह माहौल इसलिए बनाया जाता है लेकिन जो वास्तव में विवेकी लोग होते हैं, वे हमेशा असली की पहचान, नकली की पहचान जानते हैं। यह असली और नकली की पहचान अगर आपको नहीं आई तो आप कभी भी विवेकवान नहीं कहला सकते, आपके अन्दर कभी भी सच्ची श्रद्धा नहीं आ सकती। केवल चमत्कारों से, विभूति-भूति लगा लेने से, किसी भी तरीके का मन्त्र फेंक देने से, किसी भी तरीके की कोई भी ऐसे आयोजन कर लेने से जिसमें कि भीड़ दिखाई दे जाए, इससे विवेकी लोग चमत्कृत नहीं होते हैं। अन्धविश्वासी लोग, जिन्हें केवल भीड़ को देख कर के चलना है, वे तो हो जायेंगे लेकिन विवेकवान पुरुषों के लिए तो यही चाहिए कि व्यक्ति की सच्चाई क्या है? और व्यक्ति के व्यक्तित्व की सच्चाई क्या है? रानी चेलना ने कहा, मेरा कोई आग्रह नहीं है, जिस तरह से बाजार में अनेक तरह की दुकानें होती हैं, राजन! ऐसे धर्म की भी सबकी अपनी अपनी दुकानें मान कर चलो। मैं किसी की निन्दा नहीं कर रही हूँ, लेकिन हर दुकान पर माल सच्चा होता है, ऐसा नहीं कह सकती। माल जिस दुकान पर सच्चा होगा, मैं उसी दुकान की ग्राहक बनूँगी। बस! मेरा इतना ही आग्रह है, और कोई आग्रह नहीं है। सच्चे माल की परख तो करनी ही पड़ेगी। सच्चे गुरु की परख, सच्चे देव की परख, कह देने से कोई सर्वज्ञ बन जाता है? सर्वज्ञता की तो परख कर ही ली थी उसने।

बौद्ध भिक्षुओं की दूसरी बार परीक्षा

अब बात आई आगे; उन भिक्षुओं के समक्ष जाना है तुम्हें... चली जाऊँगी आप चिन्ता नहीं करो। भिक्षु आए, राज्य के एक बहुत बड़े किसी बगीचे में, उद्यान में एक बहुत बड़ा मण्डप बनाया गया और उस मण्डप में वे सारे भिक्षु उपस्थित हुए। सब लोग आए, सबके लिए दर्शन हो रहे थे, रानी भी वहाँ पर चलने के लिए तत्पर हुई। रानी वहाँ अपनी पालकी के साथ में पहुँची और जब रानी के आगमन का समाचार मिला तो वहाँ के सारे भिक्षु बिल्कुल शान्त भाव से बैठ गए। सब बिल्कुल ध्यान में बैठ गए जैसे कि पहले किसी ने उनको बता दिया हो। जब सब ध्यान में बैठ गए तो रानी ने देखा कि यहाँ पर ये सब लोग बिल्कुल ध्यान में बैठे हैं तो वहाँ पर खड़े हुए उन्हीं के एक संघस्थ ब्रह्मचारी से, उससे पूछ लिया...भाई! ये लोग क्या कर रहे हैं?

बोले...ये लोग ध्यान में हैं। ध्यान में ये कहाँ पहुँच जाते हैं? ध्यान में ये मोक्ष में पहुँच जाते हैं। कहाँ पहुँच जाते हैं? मोक्ष में पहुँच जाते हैं, सिद्ध लोक में पहुँच जाते हैं। अपनी देह का इन्हें भास-आभास नहीं रहता है, ये इतने परम ध्यानी हैं कि ये सिद्ध लोक में पहुँच जाते हैं, ये अभी मोक्ष में हैं। रानी ने सोचा...ये सभी मोक्ष में हैं, ये सभी मोक्ष में पहुँच गए हैं तो फिर इन्हें मोक्ष में ही रहना चाहिए। रानी ने एक कौतूहलवश क्या किया कि उस पाण्डाल के आगे आग लगवा दी और हल्ला हो गया...आग लग गई, आग लग गई, आग लग गई और जैसे ही हल्ला कानों में पहुँचा, आग लग गई, आग लग गई तो सारे वे बौद्ध भिक्षु उठकर के पण्डाल से बाहर दौड़ने लग गए, भागने लग गए और बाहर आ गए। अब रानी ने तो यह तमाशा कर दिया और यह बात राजा तक पहुँच गयी। जब रानी राजमहल में पहुँची तो राजा और कुपित हो गया...क्या कर दिया तुमने आज? इसी के लिए वहाँ गई थी? आग लगाने के लिए गई थी? यही सिखाया तुम्हें, तुम्हारे धर्म गुरुओं ने? यही सिखाया तुम्हें भगवान महावीर स्वामी ने कि दूसरों के पण्डाल में जाकर आग लगा देना। राजा कुपित हो गया। क्या तुम्हारे धर्म में दूसरों के लिए इस तरीके से आग लगाना, उनकी हिंसा कर देना सिखाया गया है क्या? रानी कहती है...राजन! आप नाराज न हों। अगर आप धैर्य पूर्वक हमारी बात को सुने तो हम आपको एक बहुत अच्छी युक्ति के साथ में एक बहुत अच्छी कहानी बताते हैं और उसको सुनने से आपके परिणामों में शान्ति जरूर आ जाएगी। मेरी बात बस आप सुन लीजिए। क्या सुनाना चाहती हो? सुनाओ? बैठा हूँ। आप नाराजी से मत सुनिए, शान्ति से सुनिए तो मैं आपके चित्त का समाधान कर पाऊँगी। राजा बैठ गया और रानी सुनाने लग गई।

राजन! कौशाम्बी नगरी की एक बात है, वहाँ के राज्य में एक राजा भी रहते थे, वहाँ पर सेठ भी रहते थे और सेठों में दो सेठ ऐसे थे, जिनकी आपस में बड़ी मित्रता थी। मित्रता होने के नाते उन्होंने अपने विवाह के उपरान्त आपस में एक वायदा कर लिया कि अगर तुम्हारे लिए पुत्र हो और हमारे लिए पुत्री हो तो हम अपने पुत्र और पुत्री का विवाह आपस में करा देंगे। ऐसा उन्होंने आपस में एक agreement कर लिया। कालान्तर में संयोग से उसके पुत्र हो गया, उसके पुत्री हो गई। अब जब पुत्र और पुत्री हो गई तो वह जो पुत्र हुआ, वह पुत्र की जो आकृति थी, आकार था, वह नाग के आकार का था। कैसे आकार का? नाग के आकार का, सर्प के आकार का था, वह बड़ा विचित्र था। लेकिन दोनों सेठों ने आपस में एक दूसरे की बात को रखते हुए उनके बड़े हो जाने के बाद में उन पुत्र और पुत्रियों का विवाह करा दिया। विवाह हो गया और विवाह के उपरान्त वह जो पुत्री थी, उस पुत्री की माँ कहती है...बेटी! देख तेरा भाग्य कैसा है? तेरे पिता ने पहले से ही यह सम्बन्ध बना रखा था, इसलिए तुझे ऐसे कुरूप, इस नाग के आकार वाले पति के साथ में तेरा विवाह करना पड़ रहा है। यह तेरा विवाह हुआ है; तुझे कैसे जीवन में सुख मिलेगा? लेकिन क्या करूँ? अब मेरी मजबूरी है, जो बात पहले कर दी है उसको निभाना पड़ेगा और उसका विवाह करने के उपरान्त उसकी माँ के लिए बड़ा दुःख हुआ। बेटी कुछ दिनों तक जाकर के उस पति के साथ में रही और फिर जब घर पर वापस आई तो फिर उसकी माँ ने कहा...बेटी! तू दुःखी है कि सुखी है? बेटी ने जो हाल था, वह सारा हाल बताया कि यह पति दिन भर तो नाग के आकार में रहता है और रात्रि में अच्छा सुन्दर मनुष्य बन जाता है। रात्रि में तो यह हमारे लिए सुख का कारण बन जाता है लेकिन दिन में दुःख का कारण बनता है। उसकी बेटी ने उससे कहा कि यह दिन में और रात में जब इस तरह से भेष बदल लेता है, तो मैं यह सोच रही हूँ कि आखिर यह कब तक चलेगा? सभी लोग यह समझते हैं कि इसका पति कितना कुरूप है? लेकिन यह रात्रि

में अपने आप बहुत सुन्दर मनुष्य बन जाता है और दिन में यह नाग बन जाता है। क्या करें? उसकी माँ ने कहा...बेटी! एक काम करना, जिस समय पर यह अपना शरीर बदलता है, उस शरीर को तू एक सन्दूक में बन्द कर लेना। उसका वह शरीर बदलता हुआ उसे दिखाई देता था और उसने उस शरीर को एक दिन सन्दूक में बन्द कर लिया। कौन सा शरीर? जो नाग का शरीर होता था, शाम के समय पर, रात के समय पर वह शरीर छोड़ देता था और दूसरा शरीर बना लेता था। अब वह जब सन्दूक में बन्द कर दिया तो फिर उस माँ ने उस शरीर को उसके लिए बुला लिया और उस सन्दूक में आग लगा दी। आग लगने से क्या हुआ? वह शरीर उसका जल गया और हमेशा के लिए वह सुन्दर मनुष्य बनकर के रहने लग गया। उसकी बेटी हमेशा के लिए सुन्दर मनुष्य के, सुन्दर पति के साथ में रहने लग गई। यह कहानी किसने सुनाई? चेलना ने सुनाई। किसको सुनाई? श्रेणिक राजा को सुनाई। राजन! इसी तरह से हमसे कहा गया था...ये परम समाधि में लीन हो गए हैं, ये मोक्ष में पहुँच गए हैं, ये सिद्धलोक के वासी हो गए हैं, इनका ध्यान इतना उत्कृष्ट है कि अब इन्हें अपनी देह का भी भान नहीं रहा है। हमने इसलिए सोचा कि अगर इनका शरीर जल जाएगा तो ये हमेशा सिद्ध लोक में ही रहे आयेंगे, उसी के सुख में मग्न रहेंगे। क्यों इन्हें संसार का दुःख भोगना पड़ेगा? इसलिए हमने उस पण्डाल में आग लगवाई थी...राजन! लेकिन हम क्या करें? वे सभी भाग खड़े हुए, कोई सिद्धलोक में नहीं पहुँचा, कोई परम समाधि में नहीं था, कोई ध्यान में नहीं था। यह सब ढोंग कर रहे थे और ढोंग करके लोगों को बेवकूफ बनाते हैं। यह सारा ढोंग का आचरण हमने इनका देख लिया और इसी कारण से हमारे अन्दर विश्वास नहीं हुआ कि हम इनके चरणों में नमस्कार करें और इसलिए हम वहाँ से आ गए। राजन!

राजा श्रेणिक की रानी चेलना के प्रति नाराजगी

हमने इनके लिए अच्छा ही सोचा था, आप बताओ अगर कोई सिद्धलोक में पहुँच गया है, तो क्या वहाँ से लौट करके, फिर से शरीर धारण करता है क्या? ये सिद्ध लोक में पहुँच जाना भी क्या अपने घर में पहुँचने की तरह खेल है क्या? जब मन आए तब कोई सिद्ध लोक पहुँच गया, जब मन आए तब सर्वज्ञ बन गए, जब मन आए तब घोषणा कर दी, हमें बोधि की प्राप्ति हो गई, हम बुद्ध हो गए। ये सब क्या तमाशे हैं? ये सब घोषणाओं से होने वाली चीजें हैं क्या? न जाने कितने शिष्यों के लिए बुद्ध ने घोषणा कर दी – यह शिष्य हमारा बुद्ध बन गया, यह शिष्य हमारा बुद्ध बन गया, यह शिष्य हमारा बुद्ध बन गया। अरे भई! घोषणाओं से बुद्ध बनते हैं क्या? बुद्ध बनने की भी कोई योग्यता होती है कि कोई उसके लिए अन्दर अगर बुद्धता आ गई है तो उसकी भी कोई परीक्षा या उसका भी कुछ observation होता है कि नहीं होता है? यह बात जब राजा से कही इस रानी चेलना ने तो राजा उस समय पर निरुत्तर रह गए। निरुत्तर तो रह गए लेकिन उनके मन में अभी भी बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा नहीं हटी। वे रानी चेलना की बातों का उत्तर नहीं दे पा रहे इसलिए निरुत्तर रह गए लेकिन उनके मन में अभी भी यह लग रहा है कि रानी ने गलत किया। रानी की ऐसा खिलवाड़ नहीं करना चाहिए और रानी ने यह खिलवाड़ नहीं किया, रानी ने यह परीक्षा ली और वह परीक्षा लेने का कारण क्या था? उनका यह ढोंगी आचरण दिखाना और लोगों के सामने प्रस्तुत करना कि हम मोक्ष में पहुँच जाते हैं और मोक्ष में पहुँच गए तो फिर मोक्ष से लौट कर के क्यों आ जाते हैं? यह बताने के लिए रानी ने इस तरह का कृत्य किया। लेकिन राजा के लिए इस बात से भी बड़ी परेशानी हुई और राजा मन ही मन रानी के प्रति थोड़ा सा बिगड़ गया और रानी के प्रति उसका जो एक भाव था कि यह हमेशा

पहले जिस तरीके से धर्मसहिष्णु दिखाई देती थी, अब वैसी नहीं दिखाई दे रही है। इसका आग्रह जैनों के प्रति ज्यादा है और इसका दुराग्रह बौद्धों के प्रति दिखाई दे रहा है। इसलिए राजा के मन में आया कि अब समय आएगा तो हम भी कभी देखेंगे, हम भी कभी परीक्षा लेंगे लेकिन उसने उस समय पर कुछ नहीं कहा और रानी की बात सुनकर के वह शान्त रह गया।

गुरु-परीक्षा

ये बहुत बड़ी-बड़ी युद्ध हैं, बहुत बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हैं। भगवान की परीक्षा करना, कौन से धर्म गुरुओं को माना जाए? कौन से धर्मशास्त्रों को माना जाए? कौन से भगवान को माना जाए? क्योंकि दुनिया में भगवान की भी बाढ़ आई हुई है। हाँ! बाढ़ है बाढ़, कितने भगवान हैं? अब उनके बीच में कोई एक तो सच्चा तो होगा, नहीं समझ में आया? आचार्य समन्तभद्र परीक्षा लेते हैं तो वे कहते हैं- **‘कश्चित् एको भवेत् गुरु’** मैं मानता हूँ कि बहुत सारे भगवान हैं। दुनिया के लोग अपने आपको सर्वज्ञ कह रहे हैं लेकिन एक तो उनमें गुरु होगा, एक तो उनमें सच्चा होगा। बस! उस एक की खोज करना है कि सच्चा कौन है? **‘कश्चित् एको भवेत् गुरु’** कोई तो एक होगा, जो गुरु वास्तव में होगा, जो वास्तव में अन्धकार रहित होगा, जो वास्तव में सर्वज्ञ होगा और उस सर्वज्ञ की परीक्षा आचार्य समन्तभद्र महाराज ने भी ली। सर्वज्ञता के लक्षण क्या होते हैं? सर्वज्ञ व्यक्ति किस तरह के आचरण करने वाला होता है? सर्वज्ञ होने के लिए आत्मा में कितनी वीतरागता आनी चाहिए? ये सब विचार करने पर ही परीक्षार्थी लोग भगवान को अपनाते हैं, शास्त्रों को अपनाते हैं, गुरुओं को अपनाते हैं। केवल पन्थ के व्यामोह में नहीं, पन्थ के व्यामोह में पड़कर के जो लोग कुछ अपना लेते हैं, उन्हें अपने गुरुओं पर भी विश्वास नहीं रहता है। यही तो वजह है कि आज जैन धर्मावलम्बियों को भी देखोगे तो उन्हें अपने धर्म गुरुओं के पास आना-जाना तो होता है लेकिन उन्हें कोई श्रद्धा नहीं होती है। इसीलिए उन्हें जहाँ कहीं भी दिखाई देता है कि हमारी मनोकामनाएँ यहाँ सिद्ध हो रही हैं, वहाँ सिद्ध हो रही हैं, वे वहीं पहुँच जाते हैं। यह बाबा आ रहे हैं, वह बाबा आ रहे हैं, वे वहीं पहुँच जाते हैं। ऐसे कितने ही लोग होंगे जो कौन-कौन से बाबाओं के चक्कर में पड़ चुके होंगे और उनकी कृपा ले चुके होंगे। ऐसे कितने ही जैन होंगे और वे सब जैन लोग जानते हैं कि यह सब कुछ, कुछ नहीं है लेकिन फिर भी मन है कि मानता नहीं है... बस! वही वाली बात है। अब मन कब मानता है? जब मन में श्रद्धा हो तो माने, इसलिए जैन धर्मावलम्बियों का भी अपने जैन गुरुओं के प्रति विश्वास नहीं होता, यह बात पक्की होती है। क्योंकि वे भी जब कभी आयेंगे, जब कभी सामने बैठेंगे, जब कभी उनके लिए कुछ भी देखने को मिलेगा तो उनके अन्दर भी ज्ञान तो है नहीं है, क्या देखेंगे? जब आदमी के अन्दर कोई ज्ञान हो, श्रद्धान हो तब तो वे अपनी दृष्टि से किसी दूसरे को देखे। जब जैन धर्मावलम्बियों में ही ज्ञान नहीं है कि जैन मुनियों के अन्दर का सत्य क्या है? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र क्या होता है? उसकी A B C D जब उन्हें ही नहीं मालूम होती है, तो उन्हें भी उन गुरुओं पर श्रद्धान नहीं होने के कारण से सब जगह चक्कर लगाने को मजबूर होना पड़ता है और होते रहते हैं।

शुभ संयोग का सदुपयोग

इसलिए कह रहा था...जैनों की सभा में जैनों को अतिथि बनकर के नहीं आना है। अगर यह तुम्हारी सभा

है, तो तुम यहाँ पर आकर के एक सामान्य व्यक्ति की तरह बैठो। जिसको देखकर के तुम्हें यह लगे कि हमें अगर जैन गुरुओं का, अपने साधुओं का सानिध्य मिला है, तो कुछ हम इनसे ज्ञान प्राप्त कर ले, कुछ हम इनसे विवेक प्राप्त कर ले, जो हमारे जीवन में काम आए और हमारे अन्दर का कोई भी मोह, मूढ़ता अगर दूर हो जाए तो समझ लेना कि हमारा यहाँ पर आना सार्थक हो गया। अपनी मूढ़ताओं को दूर करने के लिए यहाँ आओ। जो हमारी बुद्धि में भ्रम पड़े हुए हैं, उनको दूर करने का अगर आपको कोई सौभाग्य मिलेगा तो तभी मिलेगा जब आप एक घण्टा यहाँ सुनोगे। अतिथि बनकर के जब कभी दर्शन करने आओगे तो उससे कुछ नहीं होगा। क्योंकि आपको कुछ पता ही नहीं है...देव किसे कहते हैं? शास्त्र किसे कहते हैं? गुरु किसे कहते हैं? गुरु के प्रति भक्ति होने पर हमारे मन के अन्दर अपने आप ऐसे भाव उमड़ते हैं कि अगर गुरु हमारे आसपास हैं तो उनके दर्शन किए बिना तो हमारे अन्दर भोजन जाना ही नहीं चाहिए। लोगों के अन्दर, कम से कम शहरवासियों के अन्दर तो यह नियम हो जाना चाहिए कि जब गुरु चर्या पर निकल जाते हैं, उसके बाद ही हमारा भोजन शुरू हो। इतनी भी अगर भावना आ जाती है, तो यह बहुत बड़ी श्रद्धा की भावना कहलाती है। गुरु का चर्या पर निकलने का १० बजे का समय होता है। जब उनके लिए आहार करने को निकल जाएँ, उसके बाद ही हम अपना भोजन करेंगे। तभी भोजन होता है न? पहले गुरु का भोजन हो जाए, उसके बाद में हम भोजन करेंगे। भले ही वे उस दिन भोजन करने निकले, न निकले, कोई बात नहीं लेकिन कम से कम यह विचार आता रहे...गुरु कहीं भी हो, यहाँ हो, वहाँ हो, उनका समय होता है 9:30 बजे से लेकर के 10- सवा 10 बजे तक का, हम उतना समय निकालने के बाद ही भोजन करेंगे। अगर दर्शन उपलब्ध हुए तो हम दर्शन करके भोजन करेंगे और अगर हम कहीं दूर हुए तो भी हम उस time को निकलने के बाद भोजन करेंगे।

सामाजिक जिम्मेदारी

कम से कम शहरवासियों के अन्दर यह भावना होनी चाहिए, पूछताछ होनी चाहिए, महाराज! कितने बजे आहार के लिए निकले? इतना तो अपने अन्दर जिज्ञासा रखो, इतनी तो पूछताछ रखो। यह रोजाना का भाव आपके लिए श्रद्धा के साथ उत्पन्न होने वाला भाव होगा और यह भाव तभी आएगा जब आप में श्रद्धा होगी। नहीं तो हमें पता ही नहीं है, कहाँ क्या हो रहा है? कब क्या programme हो रहा है? कहाँ क्या आयोजन हो रहा है? जब बुलाया जाएगा तब तो पता पड़ेगा, महाराज! हमारे पास तो कोई invitation आया ही नहीं। ये बातें जब हम समाज-जन के मुँह से सुनते हैं तो मुझे बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता। मुझे लगता ही नहीं कि यह व्यक्ति कोई समाज का व्यक्ति है। जब समाज का व्यक्ति यह बोले कि हमारे लिए कोई सूचना ही नहीं। भाई! सारी सूचनाएँ इस पाण्डाल में यहाँ दी जाती हैं, इस भवन में दी जाती हैं। यहाँ उपस्थित हो और यहाँ पर दी जाने वाली सूचनाओं के अनुसार आपको चलना है, किसी दूसरे की सूचनाओं का आपको इन्तजार नहीं करना है। जो सूचना यहाँ बैठ कर के मिल रही हैं, उनको अपने आप की सुनना है और उसी से चलना है। सारी सूचनाएँ यहाँ से उपस्थित होनी चाहिए, यहाँ से deliver होनी चाहिए। यह विचार जब तक जैन समाज में चलेगा कि यह हमको नहीं बताया गया, वह हमको नहीं बताया गया। तब तक ऐसा लगता है कि आप कुछ काम के नहीं हो, सिर्फ काम बिगाड़ने वाले लोग हो। जिन्हें काम का होना होता है, वे खुद काम की बात सामने आकर के बैठ कर के सुनता है और सबके कान में सब कुछ पहुँच चुका होता है। यह इतनी भली समाज होती है कि हम अगर विचार भी कर ले, बोले नहीं मुँह से तो भी इनके कान

मैं बातें पहुँच जाती हूँ, जो हमने विचार कर ली हैं, यह इतनी भली समाज होती है। नहीं समझ में आया? यह इतनी बुद्धिमान समाज है और कोई बात अगर मुँह से निकल गई और एक के पास पहुँची हो, दूसरे के पास न पहुँची हो, ऐसा सम्भव ही नहीं है। फिर भी आदमी अगर इस तरीके की विचारधारा सामने रखता है, तो सामाजिक एकता के विखण्डन में वह कार्य कर रहा है, यह सोचना चाहिए। सामाजिक एकता का मतलब? सब समाज के लिए एक भाव, सब समाज के लिए एक उपदेश, सारी समाज के लिए एक सूचना, यह सामाजिक एकता में होता है। इस तरह की एकता अगर बनी रहेगी तो इस चतुर्मास में आनन्द आपको जितना अभी आ रहा है, उससे अभी चार गुना आगे और आगे आएगा, अगर यह एकता बना कर रखोगे। अपने-अपने group में ग्रुपबाजी करोगे तो सारा माहौल बिगड़ा रहेगा। मैं पहले भी कह चुका हूँ...हमारे सामने सिर्फ समाज होनी चाहिए और कुछ नहीं। मुझे कोई group से कोई मतलब नहीं है। जो हमारे सामने बैठेगा, जो हमारी बात सुनेगा, जो इस सभा में उपस्थित होगा, वह सिर्फ मेरा है, वह मेरा भक्त है। उससे मुझे मतलब है, बाकी तुम कोई भी बने रहो, मुझे किसी से कोई मतलब नहीं है। यह बात हमेशा ध्यान रखो कि हम गुरु के समक्ष सिर्फ एक सामान्य सामाजिक प्राणी हैं और कुछ नहीं हैं और यही बात हर एक व्यक्ति के अन्दर होनी चाहिए। जो अतिथि हैं, वे दूसरे होने चाहिए, समाज का कोई व्यक्ति कभी अतिथि के रूप में हमारे सामने न आए। बुरा मत मानना आज आप लोग, कहीं सोचोगे आज हम कहाँ फँस गए? जो विचार आपको यहाँ दिए जा रहे हैं, उन्हें दूसरों को भी बता देना और इन्हीं विचारों पर आगामी समय में अमल होना है।

गाथा: 04

संसार के स्वभाव का वर्णन

ही संसार-सहावं, चरियं णेहाणुराय-स्तावि ।
जे पुव्वण्हे दिट्ठा, ते अवरण्हे ण दीसन्ति ॥4॥

अन्वयार्थ- (ही) हा! 'खेद है देखो!' **(संसार-सहावं चरियं)** संसार के, स्वभाव 'और उस संसार के' आचरण को 'कि उस संसार में' **(णेह-अणुराय-स्ता-अवि)** स्नेही, अनुरागी 'और' आसक्त, भी **(जे)** जो 'प्राणिगण' **(पुव्वण्हे)** पूर्वाह्न अर्थात् सुबह/प्रातःकाल में **(दिट्ठा)** देखे गये थे **(ते)** वे 'प्राणिगण' **(अवरण्हे)** अपराह्न में यानी दोपहर में **(ण)** नहीं **(दीसन्ति)** दिखते हैं ॥4॥

नवधा भक्ति

राजा श्रेणिक के माध्यम से प्रश्न किया गया है कि हमें महाराज की, मुनि महाराज की नवधा भक्ति किस प्रकार से करनी चाहिए? नवधा भक्ति करने के प्रकार नौ ही हैं और उन नौ प्रकार से जो भक्ति की जाती है, उस भक्ति में किसी भी भक्ति को छोड़ा नहीं जाता है। जब हम प्रतिग्रहण करते हैं, उच्चासन पर बिठाते हैं, प्रक्षालन करते हैं, पूजन करते हैं और उसके उपरान्त नमोस्तु करके मन-वचन-काय की शुद्धि बोल कर के, आहार जल शुद्धि कह कर के जब हम मुनि महाराज के लिए आहार प्रदान करते हैं तो यह सारी प्रक्रिया ही नवधा भक्ति के अन्तर्गत आती है और यह नवधा भक्ति अपने आप में एक विशिष्ट भक्ति है क्योंकि जैन धर्म के अन्दर जो जैन गुरु होते हैं, निर्ग्रन्थ मुनिराज होते हैं, उनके अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के जो भाव होते हैं और उसके अनुरूप जो उनकी चर्या होती है, उस चर्या को बनाए रखने के लिए उन्हें जब कभी आहार आदि ग्रहण करना होता है, तो वह आहार आदि ग्रहण करने का भी एक भक्ति पूर्वक, एक विधान आचार्यों ने किया। वह एक सामान्य भिक्षु की तरह नहीं होते कि उन्हें कहीं पर भी जाकर के भिक्षा माँगनी पड़े लेकिन भिक्षा नहीं माँगते हुए भी वह एक तरह से भिक्षाचर्या ही होती है, जिसमें स्वयं के लिए, किसी भी प्रकार की इच्छा के बिना बने हुए भोजन को दूसरे किसी भी गृहस्थ के घर में जाकर के ग्रहण करना और भोजन करके पुनः अपने ज्ञान-ध्यान के प्रक्रम में लग जाना। यह जो चर्या है, इस चर्या को समझते हुए ही हम समझ पाते हैं कि इस तरह की चर्या करने वाली जो आत्मायें हैं, जो जीव हैं वे किस श्रद्धान के साथ में, किस दृढ़ता के साथ में चर्या करते हैं? वह चर्या करने के लिए उनके अन्दर क्या भावनाएँ होती हैं? जब तीव्र वैराग्य की भावनाएँ होती हैं, तब इस तरह की चर्या का पालन होता है और उस वैराग्य की भावना को ही आगे बढ़ाते हुए आचार्यों ने कहा है...

संसार की क्षणभंगुरता और अनित्यता

वैराग्य शतक आपके सामने चल रहा था, आज चतुर्थ नम्बर की मैं वह आर्या छन्द पढ़ रहा हूँ,

ही संसार-सहावं, चरियं णेहाणुराय-स्तावि ।

जे पुव्वण्हे दिट्ठा, ते अवरण्हे ण दीसंति ॥4॥

आचार्य कहते हैं... जब कोई चीज पर खेद व्यक्त किया जाता है, तो उसके लिए हा, ही इस प्रकार के अव्यय सूचक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। खेद की बात है, इस संसार के स्वभाव को देखो! इस संसार की चर्या को देखो! इस संसार में रहने वाले जीवों के विचारों को देखो! और उनके जो कार्य दिखाई दे रहे हैं, उन सबको देखो! यह सब अगर आपको गौर से देखने में आएँगे तो आपको एक खेद नजर आएगा कि इस संसार में रहने वाले लोग 'णेहाणुराय-स्तावि' नेह से, स्नेह से, अनुराग से रक्त होकर के भी मतलब उससे अनुरक्त होकर के भी 'जे पुव्वण्हे दिट्ठा' जो पूर्वाह्न में दिखाई देते हैं जो लोग, 'ते अवरण्हे ण दीसंति' वे अपरान्ह में भी दिखाई नहीं दे पाते हैं। क्या कहा जा रहा है? संसार की क्षणिकता का यह बहुत बड़ा विचार है और संसार की क्षणिकता बनती है जब हम मनुष्य के जीवन को क्षणिक देखते हैं। मनुष्य के जीवन की इस क्षणिकता का विचार करने पर ही हमारे अन्दर किसी शाश्वत तत्त्व की प्राप्ति की अभिलाषा उत्पन्न होती है। अगर इस संसार में केवल दुःख ही होता, केवल इस तरह के क्षणिक विचारों को देखकर के हम दुःखी ही रह जाते और हमें कोई सुख की राह नहीं मिलती तो हमारे लिए एक बहुत बड़ी हानि हो जाती। दुःख को तो हम समझ पाते हैं लेकिन सुख की ओर चल नहीं पाते हैं। ये चीजें संसार में सभी को दिखाई दे जाती हैं। जो सुबह किसी भी तरह से किन्हीं लोगों में अनुराग को प्राप्त थे, किन्हीं लोगों में स्नेह को प्राप्त थे और उसी में संलग्न थे लेकिन दोपहर आने तक, शाम आने तक उनकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। ऐसा कई बार देखने में आ जाता है और यह देख कर के भी हमारे अन्दर दुःख तो होता है लेकिन हम सुख की तरफ नहीं चल पाते। दुःख है, दुःख को समझ लेना अलग बात है लेकिन सुख की ओर कदम उठा लेना अलग बात है।

बौद्धों के यहाँ पर दुःख को प्रमुख माना गया। दुःख है, दुःख का उपाय है, दुःख के कारण हैं और दुःख से मुक्ति का उपाय भी है। यह दुःख की स्थिति को बने रहना, यह तो माना लेकिन सुख क्या है? सुख कैसे मिलता है? सुख का क्या उपाय है? यह नहीं बताया गया। इसलिए यह समझना जरूरी है कि दुःख होना, दुःख की स्थिति रहना, दुःख के कारण जान लेना और दुःख के उपायों को भी कर लेना, यह सब तो हो जाता है लेकिन इससे भी बढ़कर के चीज होती है कि हम सुख को जानें। अगर दुःख है, तो सुख भी है; कोई चीज संसार में क्षणिक है, तो कोई शाश्वत भी है। अगर संसार में हमें हर जगह पर क्षणभंगुरता दिखाई देती है, तो कहीं पर कोई शाश्वतता भी है। जब हम क्षणभंगुर को देख कर के उससे विरक्त होते हैं, तब हमारे अन्दर शाश्वत की ओर उन्मुख होने का विचार आता है। आचार्य इसीलिए कहते हैं कि पहले आप क्षणभंगुरता को समझो, अनित्यता को समझो और अनित्यता को समझ कर के जब आपके मन के अन्दर यह विचार आएगा कि संसार का हर कार्य कर्म के ऊपर आधारित है, दूसरों पर आधारित है। संसार का हर कार्य मेरे करने से होने वाला नहीं है। इस संसार में लोग न जाने कितना-कितना सोचते हैं लेकिन कौन कितना सा कर पाता है? कितने तरह के लोग योजनाएँ बनाते हैं, विचार बनाते हैं लेकिन कोई-कोई ही अपनी उन

योजनाओं को थोड़ा बहुत पूरा हुआ देख पाता है। क्योंकि योजनाएँ भी लम्बी होती हैं और व्यक्ति की उम्र भी छोटी होती है। इतनी लम्बी योजनाएँ हो जाती हैं कि व्यक्ति की उम्र छोटी पड़ जाए। जब इस तरह की क्षणिकताओं का विचार किया जाएगा तो आपके अन्दर एक दुःख से हटने का विचार तो होगा लेकिन अब सुख कहाँ मिलेगा? सुख की ओर आने के लिए हमें किधर झुकना पड़ेगा? सुख के लिए हमें किस पर श्रद्धा करना पड़ेगा? किसका ज्ञान करना पड़ेगा? ये चीजें जानना बहुत महत्वपूर्ण हैं। दुःख को हम समझ कर के अगर सुख की ओर आए तो वह दुःख भी कारगर हुआ, जिस दुःख को हमने दुःख समझा। आपने किसी की मृत्यु देखी; क्षणिक आपके लिए दुःख हुआ लेकिन उस दुःख होने के बाद में अगर आप सुख की ओर आए तो, तो वह दुःख कारगर सिद्ध हुआ क्योंकि उस दुःख ने कोई आपके लिए सुख की ओर आने का उपाय दिया। लेकिन अगर आप थोड़ी ही देर बाद फिर normal हो गए और आप उस दुःख को भी दुःख न मान कर के फिर अपनी उसी तरह की दौड़ में दौड़ने लग गए तो वह दुःख भी उस सुख की ओर आने का कारण नहीं बनता। इसीलिए कहना पड़ता है... **‘रोग बुढ़ापा मरणत रोय, फिर भी सुख का बीज न बोय’** यह क्या है? कहाँ की लाइन है? छहढाला नहीं, नई छहढाला। यह लाइन इसलिए बीच में आ जाती है...

**गर्भवास निकसन दुःख भूला, यौवन मद में रहता फूला,
रोग बुढ़ापा मरणत रोय, फिर भी सुख का बीज न बोय ॥११॥ नई छहढाला**

अमूल्य मानव जीवन का विनाश / गर्भ से मरण तक

हर तरह का दुःख हमारे जीवन में सामने आ जाता है। हम उससे थोड़ी देर के लिए अपने मन को लगाते हैं और फिर हटा लेते हैं और फिर हम normal हो जाते हैं। हम उस दुःख को भूलने की कोशिश में लग जाते हैं और भूल भी जाते हैं। सब भूल गए, कैसे गर्भ में रहे थे? कैसे गर्भ से निकले? कैसे बचपना बीता? सब भूल गए। यौवन के मद में आए तो ऐसे फूल गए कि सारे हम दुःख भूल गए जो पिछले जीवन में या इस जीवन में भी हमने गर्भ से लेकर के, बचपन से लेकर के बड़े तक प्राप्त किए थे...सब भूल गए। फिर भूलते-भूलते बीच में यौवन आ गया। फूलते-फूलते हम थोड़ा सा इतना फूल गए कि आगे बढ़ते-बढ़ते जब हमारे लिए ये आने लग गया कि अब यौवन भी जाने लगा तो फिर रोग आए, बुढ़ापा आया, मरने की तरह-तरह की बारियाँ आईं। कई बार होता है, आदमी के जीवन में मरने की बारियाँ भी आती हैं। जब कोई ऐसा आपके लिए कभी अचानक से accident हुआ हो कि आपको लगा हो कि बस! अब गए लेकिन कुछ अच्छा पुण्य था, आयु कर्म था कि बच गए जो आज यहाँ बैठे हो। ऐसे भी अवसर आपके जीवन में आते हैं जब गाड़ी बिल्कुल पलटी खा जाती है, किसी भी गड्ढे में गिर पड़ती है, चार बार घूम जाती है गाड़ी उल्टी होकर के और फिर भी हम उसमें से सुरक्षित बच कर के आ गए...गाड़ी भले ही चकनाचूर हो गई हो। यह मरण के वे क्षण होते हैं, मरण की बारियाँ होती हैं जिन्हें हम प्रत्यक्ष देख रहे होते हैं लेकिन हमारे पुण्य से शायद हमें अपने जीवन में कुछ और अच्छा करना होगा या हमारे जीवन में कुछ पिछला कर्म का ऐसा तीव्र पुण्य होगा जो उस घटना से भी हम बच पाए। यह मरण की बारियाँ भी आती हैं आदमी को संकेत देने के लिए कि थोड़ा सा सचेत हो जाओ। बच गए हो, अब थोड़ा सा बची हुई उम्र में कुछ अच्छा कर लो, नहीं तो आँखें बन्द ही होने वाली थी। ऐसी कई घटनाएँ आदमी के जीवन में हो जाती हैं और उसके बावजूद भी

फिर आदमी को थोड़ी सी चोट लगी, खरोंच लगी और कहीं कुछ हड्डी भी अगर टूट गई तो वह फिर जुड़ गई और वह फिर से बराबर खड़ा हो गया और फिर से वह सब भूल गया। वह क्षण भी भूल गया कि वह क्षण कितना खतरनाक था। जिस क्षण में हमारी गाड़ी का accident हुआ, पलटी खाई और उस क्षण में हमारे बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। कभी-कभी तो उस गाड़ी में बैठे हुए चार लोगों में तीन की मृत्यु हो गई, बस! केवल मैं बचा था। हम सब भूल गए और वह सब भूलने के बावजूद फिर हम उसी में लग गए, उसी गोरखधंधे में, उसी 99 के चक्कर में फिर पड़े। फिर 99, फिर 999, फिर 9999, फिर गाड़ी बस! उसी पर अटकती है। उसी चक्कर में पड़ते-पड़ते हमारे जीवन के फिर वे क्षण निकलने लग गए और हम फिर भूल गए लेकिन सुख का बीज हमने बोया ही नहीं। आदमी मरता है, रोगों से तड़पता है, मर-मर के भी जी लेता है लेकिन **‘फिर भी सुख का बीज न बोय’** सुख का बीज नहीं बो पाता। वह सुख का बीज कैसे बोया जाता है? वह सुख का बीज कहाँ मिलता है? सुख के बीज बोने वाले लोग कौन से होते हैं? क्या सोच कर के सुख का बीज बोया जाता है?

हमें किसके साथ रहना है?

अगर संसार में दुःख है, तो उस दुःख का कारण है और उस दुःख के कारण को अगर हमने समझ लिया तो फिर हम सुख की ओर चलने का पुरुषार्थ अवश्य करने ही लग जाते हैं। लेकिन हम हर दुःख के कारण को दूर करके ऐसा सोचना चाहते हैं कि यह दुःख तो हमारे जीवन में अभी क्षणिक आया था। यह तो चला जाएगा। सुख permanent हमारे जीवन में इसके बाद बस आने ही वाला है। इसके बाद अब जो मिलेगा वह सुख होगा, बस! यह थोड़ा सा हट जाए। हड्डी टूट गई थी, बस! थोड़ी जुड़ जाए, फिर तो सुख ही सुख है। यह सोच कर के ही व्यक्ति उस दुःख से अपने आप को बचाने की कोशिश में बहुत कुछ समय निकाल लेता है और वह दुःख छूटता नहीं। कोई भी हड्डी एक बार टूटने के बाद में वापस जुड़ भी जाए तो कहीं न कहीं उसका joint का pain रह ही जाता है। किसी भी body पर कहीं कोई scratch आ जाए, कोई खरोंच हो जाए, कहीं कोई line खिंच जाए या कहीं कोई फोड़ा-फुंसी हो जाए, उसके बाद भी उसके ऊपर कुछ न कुछ spot वहाँ पर रह ही जाता है। उसके बावजूद भी वह कुछ न कुछ और दूसरी बीमारी भी दे कर के कभी-कभार चला जाता है।

जब यह सब देखने के बाद भी हमारे मन के अन्दर यह विचार रहता है कि नहीं! यह दुःख बस अभी थोड़ी देर का है, उसके बाद चला जाएगा और हम सुखी होंगे। फिर से जो वैराग्य का क्षण आना था, उस क्षण को हम टाल करके राग के क्षण की फिर से प्रतीक्षा करने लग जाते हैं। हमें रहना किसके साथ में है? राग के साथ रहना है, वैराग्य के साथ नहीं रहना है। सुख का बीज किसके साथ रहने पर बोया जाएगा? राग के साथ रहने पर सुख का बीज होगा कि वैराग्य के साथ रहने पर सुख का बीज होगा? सुख का बीज जिन्होंने बो लिया होता है, उन्हें फिर राग अच्छा लगता है कि वैराग्य अच्छा लगता है? अगर आप कहो कि हमने सुख का बीज बो लिया, हम सम्यग्दृष्टि हो गए, हमारे अन्दर देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा बन बैठी तो फिर क्या समझें कि अब आपको संसार का सुख अच्छा नहीं लगता? बोलो! लगता है कि नहीं लगता है? संसार का सुख भी अच्छा लगता है महाराज! और हमारी स्थिति तो ऐसी है कि देव-शास्त्र-गुरु भी अच्छे लगते हैं और

संसार का सुख भी अच्छा लगता है। हमें खुद ही समझ नहीं आता कि हमारे भीतर क्या हो रहा है? देव-शास्त्र-गुरु भी अच्छे लगते हैं, भगवान भी अच्छे लगते हैं, भगवान की वाणी सुनना भी अच्छा लगता है, मुनि महाराज के दर्शन करना भी अच्छा लगता है, सब अच्छा लगता है। लेकिन संसार का दुःख भी, दुःख होते हुए भी, देख कर के भी, महसूस करके भी उसे छोड़ कर के कोई और सुख की प्राप्ति करने का साहस नहीं होता। ऐसा ही होता है?

देव-शास्त्र-गुरु भक्ति-रोग मुक्ति का साधन

कई लोग जब इस तरह के भावों में आ जाते हैं तो उनके ऊपर भी एक अलग तरीके का नशा सा आ जाता है। देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का भी एक अलग नशा होता है। यह नशा किससे पैदा होता है? यह श्रद्धा से पैदा होता है। जब आदमी के लिए किसी भी प्रकार का संसार में दुःख उसे पीड़ित करने लग जाता है, तो फिर वह उस दुःख को दूर करने के लिए देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का सहारा लेता है। तब उसके अन्दर का वह नशा उसके उन दुःखों को दूर करता है। यह भी एक नशा कहा गया है लेकिन यह अच्छा नशा है। अब आप कहोगे...नशा, नशा ही होता है। अच्छा और बुरा क्या होता है? अगर आपके लिए इस तरह का नशा चढ़ेगा तो क्या होगा? आप बहुत सारी बीमारियों से बचे रहोगे, बहुत सारी बुराइयों से बचे रहोगे, बहुत सारी दिक्कतों से बचे रहोगे। यह देखो! एक सामने बंदा बैठा है, यह लखनऊ से आया है। दिख रहा है न, बिल्कुल दाढ़ी-वाढ़ी लगाये है बहुत अलग ही दिखाई दे रहा है। यह कहता है...कल driving करके आया लखनऊ से चलकर के यहाँ पर, सिर्फ इसलिए कि महाराज के दर्शन करने जाना है। सिर्फ इस नशे में खुद driving करके आया है। घर, परिवार, बच्चे, माता-पिता सबको छोड़ के आया है। आज उसको सुबह-सुबह जाना था, उसकी गाड़ी के सामने किसी ने गाड़ी खड़ी कर दी तो वह सुबह-सुबह नहीं जा पाया। सोचता है कि चलो! अच्छा ही हुआ है अगर किसी ने हमारे लिए व्यवधान कर दिया। मुझे आज और मुनि महाराज के दर्शन होंगे, घर तो एक दिन बाद भी पहुँच जाऊँगा। ऐसे-ऐसे भी नशेलची होते हैं, यह भी एक नशा है। अब इस नशे में देखो कि वह आदमी कहता है कि हमारे लिए जब घर से दिक्कतें होने लग जाती हैं, घर के लोग जब हमारे लिए तरह-तरह का क्लेश देने लग जाते हैं तो हमारे मुँह में छाले से आ जाते हैं। ऐसी भीतर से हमारे अन्दर पीड़ा उत्पन्न हो जाती है, अपने क्लेशों के कारण से हमारे शरीर में दर्द होने लग जाता है, मुँह में छाले आ जाते हैं। उन छालों को दूर करने के लिए हम क्या करते हैं? जो महाराज! आपके बताए हुए जो शास्त्र हैं, उन शास्त्रों को पढ़ते हैं, आपके प्रवचन सुनने लग जाते हैं और उससे हम अपने छाले ठीक कर लेते हैं। अब पूछो उससे कि वे छाले उसके मुँह के छाले हैं कि दिल के छाले हैं? कौन से छाले ठीक होते हैं उससे? क्या समझ आ रहा है? क्या यह भी कोई एक उपचार हो सकता है कि हमारे मुँह में छाले हुए हो, dentist बैठे हैं, राजा श्रेणिक बनकर के आज यहाँ, physiotherapist उनकी madam हैं कि कोई भी ऐसी भी therapy हो सकती है कि क्या हम अनेक रोगों के इलाज में भी भगवान की भक्ति को ला सकें, हम अनेक रोगों के इलाज में भी शास्त्रों के स्वाध्याय को ला सकें, हम अनेक रोगों के इलाज में भी मुनि महाराज के प्रवचन के सुनने को भी एक remedy बना सकें। यह सम्भव है क्या? अगर यह सम्भव है तो इसका मतलब है कि हमारे अन्दर श्रद्धान है और श्रद्धान से ही हम अपने दुःखों को दूर करने की क्षमता रख पाते हैं। यह श्रद्धान ही होता है, जिसके माध्यम से हम दुःख की तमाम फसलों के बीच में बैठ कर के भी वह सुख का बीज भी अपने अन्दर बो लेते हैं।

देव-शास्त्र-गुरु के प्रति श्रद्धा ही सुख का बीज है

हमने दुःख की फसलें चारों ओर खड़ी कर रखी हैं और वह हो ही जाती हैं... अगर घर है, गृहस्थी है, पत्नी है, बच्चे हैं, कारोबार है, माता-पिता हैं, हर तरह का क्लेश बना ही रहता है। यह भी एक कम क्लेश नहीं होता है कि हम मुनि महाराज के प्रवचन सुनने जाना चाहते हैं, जाना चाहते हैं और 8:30 बजे निकलना चाहते हैं घर से... 'अभी मत जाओ, अभी माँ की तबीयत खराब है, अभी बेटे को स्कूल छोड़ने जाना है, अभी वह मन्दिर गई हैं, वह जब लीट के आ जाएँ तब तुम जाना, घर पर कोई है नहीं है' तमाम तरह के क्लेश हैं। अब इन क्लेशों को भी अगर हम समझें तो इनके बीच में भी कैसे हम समय निकालें? सुख का बीज बोने का समय कब निकालें? कहाँ निकालें? तुम यहाँ घर बैठे-बैठे समय नहीं निकाल पा रहे हो, आदमी दौड़-दौड़ कर 300 किलोमीटर से आ जाता है। यह उदयपुर वाले बैठे हैं, कितने किलोमीटर दूर से आए? 900 किलोमीटर हो जाता है, बताओ? यह और बैठे हैं मुजफ्फरनगर वाले, 1 हजार किलोमीटर दूर से आए हैं। आदमी कहाँ-कहाँ से समय निकाल लेता है? और जब आता है, कुछ भाव लेकर के आता है, जितनी देर उसको अपने शहर से इस शहर में आने में लगती है तो वह सोचता है, एक दिन तो हमारा आने में ही लग गया। अब अगर एक दिन भी हम मुनि महाराज के पास नहीं रुके तो दूसरे दिन हम जाएँगे तो बस आने ही और जाने में सब समय निकल गया। तीन दिन हम रुके कहाँ? आदमी सोच करके आता है, भाई! एकाध दिन छुट्टी मिलती है, एक दो दिन समय मिलता है, तो हम यहाँ पर आए हैं, थोड़ा सा रुके। रुक कर के ही अगर हम थोड़ा सा सान्निध्य प्राप्त कर पाएँगे, कुछ सीख पाएँगे तो ही हमें कुछ लाभ मिलेगा।

यह विचार करके जो दूर-दूर से आते हैं, उनके मन में भी कुछ श्रद्धा तो होती है और वह श्रद्धा किसके प्रति? देव-शास्त्र-गुरु के प्रति वह श्रद्धा होती है और उस श्रद्धा से उनके बहुत काम भी बनते हैं। अगर उस श्रद्धा को हम बरकरार बनाए रखें और उस श्रद्धा से ही हम सोचे कि यही श्रद्धा हमारे लिए सुख का बीज है। यह क्या है? सुख का बीज बो रहे हैं। हम अगर कहीं पर भी गुरु के दर्शन करने गए, उनसे किसी भी तरह की हमने वहाँ पर अपनी भक्ति दिखाई, किसी भी तरह का हमने अपनी भक्ति का भाव उनके समक्ष रखा, यह सब हमारे अन्दर के सुख के बीज होते हैं और इन सुख के बीजों का हम अगर इस तरह से पोषण करते रहते हैं तो यही सुख के बीज फलते रहते हैं, बड़े-बड़े बनते रहते हैं। इन्हीं सुख के बीजों के कारण से हमारे जीवन में सुख क्या हो सकता है, यह समझ में आ सकता है।



राजा श्रेणिक बौद्ध धर्म को मान रहे हैं। यह उनका पूरा अभी back की reel चल रही है। उनका जीवन अतीत का किस तरीके का रहा? अतीत का जीवन सबका ही बुरा होता है, अगर संभलता है, तो थोड़ा सा वर्तमान ही संभलता है। किसी का भी अतीत देखोगे, सबका अतीत आपको ऐसा ही मिलेगा।

अतीत नहीं, वर्तमान महत्वपूर्ण

यहाँ तक कि भगवान महावीर स्वामी का भी अतीत देखोगे तो ऐसा ही मिलेगा। कोई ऐसा नरक नहीं है,

जहाँ पर भगवान महावीर स्वामी का जीव न गया हो। कोई ऐसी पर्याय नहीं है जहाँ भगवान महावीर स्वामी ने जन्म न लिया हो। अतीत सबका ऐसा ही होता है। अतीत को सोच करके हमें यह नहीं सोचना कि राजा श्रेणिक ऐसा! वे तो बुद्ध हैं, हम तो जैन हैं। हम क्यों राजा श्रेणिक बने यहाँ पर कुर्सी पर बैठने के लिए? ऐसा भी सोच सकते हैं कुछ पढ़े लिखे लोग। वे अभी न बुद्ध हैं, न शुद्ध हैं, वह सब उसका अतीत चल रहा है। आपको तो केवल इस बात पर विचार करना है कि वह भगवान महावीर स्वामी के समवशरण का सबसे पहला श्रावक है, सबसे पहला श्रोता है, यह भाव बस हमारे दिमाग में रहना है। इसके आगे पीछे की तो history सबकी इसी तरह की रहती है। बौद्ध मत को मानने वाला है। रानी चलना उसकी भले ही पटरानी है लेकिन अब वह जब से यह धर्म का वातावरण और आपस में friction शुरू हुआ, तब से राजा के मन में भी यह विचार चलने लगा कि इस रानी ने दो बार मेरे बौद्ध गुरुओं का अपमान कर दिया। रानी से कह कुछ नहीं सका लेकिन यह उसे महसूस तो हुआ कि इसने मेरे गुरुओं का अपमान किया और अपमान मैंने सहन कर लिया। लेकिन मैं कुछ उत्तर नहीं दे पाया, यह बात अलग है और उसके भीतर ही भीतर यह बात रही, एक आग सी लगी रही कि कभी न कभी हमें भी मौका मिलेगा। जिसको जो चाह होती है, वह मिल ही जाता है। राजा था! राजाओं में सब तरह के व्यसन भी होते हैं और एक व्यसन जो अक्सर लोगों के लिए कम सुनने में आता है, इसको भी पूर्व आचार्यों ने व्यसन के रूप में रखा है...जिसे आखेट व्यसन कहते हैं। आखेट मतलब शिकार करना। आज भी अनेक गाँव के मुखियाओं का, अनेक गाँव के लोगों का यह शौक मिलता है। आज भी आप देख सकते हो...लोग सैर-सपाटे पर निकल जाते हैं। क्या करेंगे? आज जंगल में जा रहे हैं, आज अपने पास में एक अच्छी rifle रखी, कोई अच्छी बन्दूक रखी और वह जो है किसी हिरण को मारना, किसी जीव का शिकार करना, इसमें मजा आता है। इसलिए आचार्यों ने इसको पाप में रखा। शिकार यह व्यसन है, यह बहुत बड़ा पाप है, सप्त व्यसनों में आप इसको भी त्यागे। यह बड़ी-बड़ी बुराईयाँ हैं, जिन्हें त्यागने के लिए कहा गया। शिकार करने की भी एक आदत आदमी की ऐसी रहती है कि वह उस जीव के पीछे पड़ जाता है, उस पशु के पीछे पड़ जाएगा और उसको मार कर के ही अपने आप में प्रसन्नता हासिल करेगा कि आज हम जो सैर-सपाटे पर निकले थे, किसलिए? किसी एक को मार के तो कम से कम सांस लेंगे ही। यह उसका विचार रहता है और दिन भर में एक न एक जीव अगर उसने मार लिया तो उसका वह सैर सपाटा करना सार्थक हो गया। इस विचार से राजा लोग निकला करते हैं।

राजा श्रेणिक की बदले की भावना

राजा श्रेणिक भी एक दिन ऐसे निकले, जंगल में पहुँचे। शिकार करने के लिए निकले और वह शिकार तो दिखा नहीं, दिख गए एक दिगम्बर साधु। सामने खड़े हैं, कायोत्सर्ग में खड़े हैं, आँखें बन्द हैं। चारों ओर उनके एक अद्भुत प्रभाव है, उनकी अद्भुत कान्ति है और एकान्त बियावान जंगल में आसपास उनके कोई भी नहीं है। निश्चिन्त होकर के, बिल्कुल निस्पृह होकर के खड़े हुए हैं। श्रेणिक को देखते ही बना और देखते ही उसके लिए यह विचार आया कि यह कौन हैं? पहले पूछ लिया जाए। अपने अनुचर से पूछा- यह कौन हैं? यहाँ जंगल में एकान्त में खड़े हुए हैं? आँखें बन्द हैं, शायद ध्यान कर रहे हैं। अनुचर कहता है- राजन! यह ध्यान-व्यान कुछ नहीं कर रहे, यह तो सब ढोंगी हैं। इन्हें कहीं दुनिया में जगह नहीं मिलती, इसलिए यह जंगलों में आकर के एकान्त में अपना समय निकालते हैं। यह देखने के लिए ही दिगम्बर हैं, भीतर से अनेक तरह से मलिन चित्त के साथ में रहने वाले लोग हैं। जैसे यह ऊपर से मलिन दिखाई दे रहे हैं, ऐसे ही यह

भीतर से भी मलिन हैं। ऊपर से उनकी मलिनता वह स्पष्ट दिखाई दे रही थी क्योंकि दिगम्बर मुनि महाराज के शरीर पर मल लगा होना स्वाभाविक है। जैसे यह ऊपर से मलिन दिखाई दे रहे हैं, ऐसे ही राजन! ये भीतर से मलिन हैं, ये ढोंगी हैं, ये पाखंडी हैं। वह जो अनुचर था, वह अनुचर कौन होगा? वह उनका अनुचर भी बौद्ध धर्म को मानने वाला उनका अनुचर था। सामने दिगम्बर मुनिराज को देख कर के उसके मन में भी एक क्रोध का भाव आ गया और उसने भी राजा को इस तरीके से उसका सिर चढ़ाया कि राजा के दिमाग में भी आ गया कि यह सही कह रहा है। रानी की बातें उसे याद में आ गई कि रानी ने बौद्ध साधुओं के लिए किस तरीके से परीक्षा ली? उन्हें किस तरीके से दुःखी बनाया? उस अपमान का बदला लेने का भाव उसके अन्दर आ गया कि अगर रानी ने हमको भी कुछ सिखाया है, तो अब हम भी रानी को कुछ सिखाएँगे और यह विचार आते ही वह सामने उन मुनि महाराज को देखकर के क्रोध से भर गया, अति क्रोध से भर गया। भीतर उसके अन्दर एक पहले का अपमान का दंश तो था ही, उस अपमान के कारण से उसके अन्दर का यह भाव चल ही रहा था कि इस अपमान का कभी न कभी बदला लेना है और आज उसी में मुनि महाराज दिखाई दे रहे हैं, जैन साधु दिखाई दे रहे हैं और उसे लग रहा है कि आज अगर हम इनके साथ कुछ दुर्व्यवहार करेंगे तभी हमारे अन्दर कुछ शान्ति मिलेगी। क्योंकि तभी वह जो हमारा अपमान हुआ है, उसका हम कुछ अपने मन के अन्दर वह भाव ले पाएँगे कि इस अपमान का हमने बदला ले लिया, इससे हम मुक्त हो गए।

महा मुनिराज के समता भाव का दर्शन

राजा श्रेणिक ऐसा विचार कर रहा है, क्रोध से भर गया है और सामने वह मुनि महाराज खड़े हुए हैं। जिन्हें कुछ पता नहीं है, कौन मेरे सामने है? जिनके लिए न कोई शत्रु है, न कोई मित्र है। जिन्हें किसी राजा और रंक का भी कोई भेद नहीं है। जिनकी दृष्टि में सब कुछ एक समान है और जो केवल और केवल अपनी आत्मा की प्राप्ति करने के लिए, केवल अपनी आत्मा का ध्यान लगाने के लिए उस कायोत्सर्ग की अवस्था में खड़े हैं। शरीर को भी उन्होंने एक तरह से छोड़ दिया है क्योंकि कायोत्सर्ग में वह शरीर को छोड़कर के इस तरह से स्थित हो गए कि उनके अन्दर का वह सारा का सारा उपयोग, उनका मन, उनका चित्त, उनका अन्तःकरण, सब कुछ अपनी आत्मा में लग रहा है। वह संसार को, शरीर को, भोगों को एक तरह से अपने दुःख का कारण समझ कर के कि केवल बस! सुख है तो आत्मा में है, इसके अलावा कहीं नहीं है और वह शान्त निस्पृह होकर के खड़े हुए हैं। सारा उनका मनोभाव अपनी आत्मा में लगा हुआ है, बाहर के संसार के किसी भी व्यक्ति से न उन्हें कोई राग है, न कोई द्वेष है। सबके प्रति उनके अन्दर दया का भाव है, क्षमा का भाव है, इसके अलावा और कोई किसी भी व्यक्ति के प्रति कोई मलिनता नहीं। उनका मनोभाव बिल्कुल सम भावों के साथ है, परम ज्ञान की अवस्था में वे स्थित हैं। बहुत समय से वह उस दिगम्बरत्व का अभ्यास करते हुए बहुत सामर्थ्यवान भी बन चुके हैं और उनके अपने सामर्थ्य से अनेक तरह की उनके पास पास में शक्तियाँ ऋद्धियों के रूप में भी आ चुकी हैं लेकिन फिर भी वह उनसे बिल्कुल परे हैं। उन ऋद्धियों के उपयोग से, सिद्धियों के उपयोग से भी दूर हैं क्योंकि जिसे आत्म-सिद्धि करना होता है, उसे अन्य किसी क्षुद्र सिद्धियों की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके प्रभाव से कुछ हो जाए तो हो जाए। स्वयं उनके अपने शरीर के प्रभाव से कुछ वातावरण निर्मित हो जाए तो हो जाए, अन्यथा वे अपनी सिद्धि का प्रयोग अपनी सुरक्षा के लिए नहीं करते। वह सब कुछ समर्थ होकर के भी शान्त खड़े हुए हैं। किसी का न कुछ बिगाड़ना है, न कभी किसी के लिए कुछ अहित करना है, न कभी किसी के लिए कोई पीड़ा पहुँचाना है और ऐसी

अहिंसा आदि पाँच महाव्रतों का पालन करते हुए, उन्हीं व्रतों के प्रभाव से अपनी आत्मा को शुद्ध करते हुए केवल आत्मध्यान में मग्न हैं। सिद्धों का ध्यान, आत्मा का ध्यान, आत्मा में ही सिद्धों की छाया देखना और आत्मा में ही सिद्धों का आकार देखना। बस! यही उनके ध्यान का एक मात्र कार्य रहता है और उस कार्य में वह लगे हुए हैं। कौन क्रोध कर रहा है? कौन क्या कह रहा है? कौन क्या किसी को कान में भर रहा है? इन बातों से उन्हें कोई प्रयोजन ही नहीं।

प्राणी मात्र के प्रति समता भाव का प्रभाव

आप सोचो! जंगल में, एकान्त स्थान में ऐसे मुनि महाराज के समक्ष जब यह श्रेणिक राजा अपने क्रोध को भड़काते हुए और उस अपमान की पूर्ति करते हुए जब विचार करते हैं तो उनके मन में आता है कि आज यह अपमान का बदला लेने का सबसे अच्छा मौका है। रानी ने मुझे बहुत बार दुःखी बनाया है। अब मैं आज इस अपमान का बदला लेकर के रानी को भी बताऊँगा कि देखो! तुम्हारे कृत्य का फल क्या होता है? उस राजा ने अपने पास रहने वाले बड़े-बड़े क्रूर 500 कुत्ते, जो उसके अपने पालतू थे, उसके आदेश पर दूसरों पर झपट्टा मारने को तैयार होते हैं, ऐसे 500 कुत्ते उसने एक साथ उन मुनि महाराज की ओर दौड़ा दिए कि आज इनका बदल इन कुत्तों से खाता हुआ देखूँगा तो मुझे शान्ति मिलेगी। जब ये कुत्ते नोंच-नोंच करके इनके शरीर को खाएँगे तब हम देखेंगे, ये कौन सा ध्यान कर रहे हैं? वह 500 के 500 कुत्ते, समझ लो जैसे कि बड़े-बड़े व्याघ्र जैसे हो, बाघ जैसे हो ऐसे पालतू कुत्ते; मांसाहारी, सब प्रकार से क्रूरता को धारण करने वाले और वे 500 कुत्ते एक साथ दौड़ा दिए और वे कुत्ते जैसे ही उन मुनि महाराज के पास पहुँचते हैं, उनकी range में पहुँचते हैं, वे कुत्ते बिल्कुल वहाँ पहुँच कर के अपने आप शान्त हो जाते हैं। वह बिल्कुल जैसे किसी ने कीलित कर दिया हो, वहीं के वहीं बैठे के बैठे रह जाते हैं। यहाँ से दौड़ कर के गए, झपटने के लिए गए और वहाँ झपटने से पहले ही, उनके पास पहुँचने से पहले ही बिल्कुल वहाँ पर एकदम से न जाने कौन सा मंत्र पढ़ दिया किसी ने और वे एकदम से बिल्कुल शान्त हो गए। वह कुत्ते 500 के 500 उनके पास ऐसे दुम दबा कर के बैठ गए जैसे किसी दूसरे स्वामी ने उनसे कह दिया हो कि नहीं! यहीं बैठ जाना हिलना नहीं। जब राजा ने देखा, मेरे कुत्ते मेरी आज्ञा में गए और किसी दूसरे की आज्ञा से वे वहीं पर कीलित हो गए तो इन पर भी इसका जोर चल गया। मानी कि इसने कोई मंत्र कर दिया हो, इन मुनिराज ने कोई मंत्र कर दिया हो और उनको कीलित कर दिया हो। ऐसा विचार उसके दिमाग में आ गया और वह इस विचार के साथ में और ज्यादा आक्रोशित हो गया। क्योंकि राजा ने अगर कोई क्रोध से वार किया हो और उस वार का प्रतिफल न निकले तो क्रोध और बढ़ जाता है और उसका क्रोध और बढ़ गया।

राजा श्रेणिक द्वारा मुनिराज पर उपसर्ग

कोई बात नहीं, इन्होंने 500 कुत्ते तो कीलित कर दिए लेकिन अब मैं और कुछ देखता हूँ और कुछ सोचता हूँ, जिस पर इसके मंत्र का प्रभाव न पड़े और वह ऐसा विचार ही कर रहा था, सोच ही रहा था कि उसी समय पर एक बहुत बड़ा नाग फन फैलाता हुआ सामने आता हुआ दिखाई दिया। राजा गुस्से में था, उसने सोचा मुनिराज से कैसे बदला लिया जाए? उसने उस नाग को मारकर मुनि महाराज के गले में डाल दिया और वहाँ से चला गया। मुनि महाराज तो इसको उपसर्ग समझ कर और ध्यान में लीन हो जाते हैं। वे

बैठे-बैठे ही समाधि ले लेंगे, खड़े हैं तो खड़े-खड़े ही समाधि ले लेंगे, अपने उपसर्ग का निवारण खुद अपने हाथ से नहीं करेंगे। यह दिगम्बर मुनि महाराज की बहुत बड़ी विशेषता होती है और वह उस उपसर्ग का निवारण अपने हाथ से करने की तो बात दूर, उसे एक उपसर्ग मान कर के वह सोच करके कि जब तक यह उपसर्ग नहीं हटता है, तब तक के लिए हम अपने आत्म-ध्यान में, अपने आत्म-भाव में और अधिक गहराई से स्थित होते हैं और वह स्थित हो गए। राजा श्रेणिक चले गए, उस दिन का उनका शिकार का काम पूरा हो गया। वह अपने घर पहुँचे, राज महल में पहुँचे, एक दो दिन तक तो वे दूसरे और कार्यों में उलझे रहे, उन्हें कुछ याद ही नहीं आई। दो दिन बाद, तीन दिन बाद कुछ याद आती है, तो वह जब रानी सामने आती है तो उससे कहते हैं- अरे! तुम्हें पता है? मुझे दो दिन पहले, तीन दिन पहले जंगल में एक साधु मिले थे, जो तुम्हारे बड़े आराध्य हैं। उनको मैंने देख कर के कुछ वैसा ही किया जैसे तुमने हमारे बौद्ध साधुओं के लिए किया था। पहले तो हमने उनके ऊपर कुत्ते दौड़ाए, वे कुत्ते तो उन्होंने अपने मंत्र से कीलित कर दिए लेकिन जब हमने उनके ऊपर एक बहुत बड़ा भारी नाग मार कर के उनके गले में डाल दिया तब मुझे लगा कि हाँ! यह मैंने काम बहुत अच्छा कर दिया और रानी चलना ने जब यह सुना कि आपने ऐसा कृत्य कर लिया तो वह भीतर से तड़पने लग गई। आपने एक मरे हुए नाग को मुनि महाराज के गले में डाला है, आज बता रहे हो तीन दिन पहले की बात? आप क्या सोच रहे हो? कि उन मुनि महाराज के ऊपर आपने वह नाग डाल कर के उन्हें ध्यान से विचलित कर दिया क्या? अरे! वह तो उसको उपद्रव मान कर के, उपसर्ग मान कर के अभी तक ध्यान में बैठे होंगे। ऐसा कोई साधु नहीं होता, जो इतना बड़ा उपसर्ग को सहन करने के बाद में, इतना नाग उसके गले में डाला हो और वह ध्यान में बैठा रहे। नहीं! राजन, जिन्हें मैं अपना गुरु मानती हूँ वे अगर मेरे गुरु होंगे तो वे आज भी वहीं बैठे हुए मिलेंगे, उसी स्थिति में बैठे हुए मिलेंगे, आप उन्हें जिस स्थिति में छोड़ कर के आए हैं, वे उसी स्थिति में मिलेंगे। राजा को विश्वास नहीं होता। ऐसा हो ही नहीं सकता। वे तो कब का वह नाग-वाग उठा करके, छोड़ कर के भाग गए होंगे रात के अंधेरे में। राजन! वे न रात के अंधेरे में भाग सकते हैं, न दिन के उजाले में भाग सकते हैं; वे जहाँ होंगे वैसे ही बैठे होंगे। अगर किसी ने उनका उपसर्ग दूर किया होगा तो उन्होंने ध्यान छोड़ा होगा और अगर नहीं उपसर्ग दूर किया होगा तो आज भी वह वैसे ही बैठे होंगे। मैं उन्हीं गुरु की बात कर रही हूँ, जिन गुरु के प्रति हमारी श्रद्धा है और वह गुरु कभी भी अपने ध्यान से, अपने स्वभाव से विचलित नहीं हो सकते। आप कष्ट करके अभी सब काम छोड़ कर के मेरे साथ चलिए और हम वहाँ पहुँचे जहाँ पर आपने कृत्य किया था।

रानी चलना द्वारा उपसर्ग का निवारण

राजा उसी समय पर यह सोच कर के कि अब तो वहाँ पर कोई भी मिलेगा नहीं, कोई दिखेगा नहीं, चलो इस रानी को भी लेकर के चलते हैं और यह रानी को लेकर के, अपने अनेक और सैनिकों को लेकर के राजा वहाँ से निकल दिए। चले और जाकर के उसी स्थान पर उन्होंने देखा कि वह मुनि महाराज ज्यों के त्यों वैसे के वैसे ही खड़े हुए हैं और वह नाग उनके गले में पड़ा हुआ है। नाग तो गले में पड़ा ही है, जंगल है, जंगल में चींटियाँ, चींटे तो अथाह होते हैं। उस नाग पर चींटियाँ जितनी लग रही हैं, उससे ज्यादा उनके शरीर पर चींटियाँ लग रही हैं और शरीर में चींटियों ने बिल्कुल ऐसे गड्ढे बना दिए कि शरीर को बिल्कुल खोद कर रख दिया हो। चारों ओर से खून बह रहा है, पूरा शरीर लाल-लाल सूज गया है और वह मुनि महाराज वैसे के वैसे ही खड़े हुए हैं, जैसा राजा उन्हें खड़ा छोड़ गया था।

राजा ने देखा, रानी ने देखा और यह देख कर के रानी ने सबसे पहले राजा से कहा...राजन! देख लिया आपने, ये हैं दिगम्बर मुनि महाराज! ये हैं सच्चे साधु! ये हैं आत्म-ध्यान में लगे रहने वाले साधु! लेकिन अब बहुत देर हो चुकी है। अगर हम इनका यह उपसर्ग दूर नहीं करेंगे तो इनका यह कष्ट और बढ़ता चला जाएगा और रानी उसी समय पर पहले उस नाग को हटाती है और बड़ी सावधानी के साथ में धीरे-धीरे उन चींटियों को हटाती है। दूसरी जगह गुड़, शक्कर रखकर के चींटियों की दिशा बदलती है और उस सब कुछ करने के बाद में, देखने के बाद में वह राजा श्रेणिक देखते हैं कि वह मुनि महाराज अभी भी ज्यों की त्यों कायोत्सर्ग की स्थिति में हैं। अभी भी उन्होंने आँखें नहीं खोली। रात्रि हो गई और रात्रि में मुनि महाराज न चलते हैं, न किसी तरह का कोई वचन बोलते हैं और वह मुनि महाराज उसी तरह से खड़े रहे जैसे खड़े हैं। रानी ने कहा- रात में मुनि महाराज बोलेंगे नहीं। तब क्या करना? जब मुनि महाराज अपना ध्यान खोलेंगे तभी हमें आशीर्वाद मिलेगा। तभी उनकी बात को सुनकर के हम आगे जाएँगे, तभी हम कहीं अब अपने राजमहल में जाएँगे। तब रानी के कहने पर राजा ने वहीं डेरा डाले रखा, रात भर उन मुनि महाराज के पास में रहा, देखता रहा और मुनि महाराज ज्यों के त्यों उसी स्थिति में खड़े रहे। जितनी उससे सेवा बन सकती थी, वह उसने कर ली लेकिन उसका मानो उनके ऊपर कोई असर ही नहीं और सुबह होने के बाद में जब दिन निकल आता है तब मुनि महाराज ने अपना कायोत्सर्ग छोड़कर के, ध्यान छोड़कर के अपनी आँख खोलने की कोशिश की। जब आँख खोली तो सामने रानी भी बैठी थी और राजा भी बैठा था। मुनि महाराज को सब कुछ पता था, वे परम ज्ञानी थे। उन्हें पता था कि यह राजा क्यों इस तरह से कृत्य किया है? रानी ने भी उनके चरणों में प्रणाम किया, राजा ने भी उनके चरणों में प्रणाम किया और उन्होंने एक समान भाव से, प्रसन्न भाव से जैसा रानी के लिए आशीर्वाद दिया, वैसा ही आशीर्वाद राजा श्रेणिक के लिए दिया।

उपसर्गकर्ता के प्रति भी उपकृत भाव

जिस दृष्टि से उन्होंने रानी को देखा, उसी दृष्टि से उन्होंने राजा को भी देखा और राजा उस समय पर उनके पास में बैठा हुआ कांपने लग गया कि मुनि महाराज के क्रोध से कहीं अब मेरा अभिषेक न हो जाए। लेकिन उसने देखा कि मुनि महाराज के चेहरे पर बिल्कुल भी क्रोध नहीं और उन्होंने बड़े स्नेह भाव से आशीर्वाद दिया। तब रानी ने कहा- राजन! ये वह मुनि महाराज हैं जिनके लिए दुनिया में कोई न शत्रु है, न कोई मित्र है; इनके लिए अपनी आत्मा ही परम मित्र है और सिद्ध भगवान ही इनके ध्येय होते हैं, इसके अलावा इन्हें कोई दूसरा ध्येय बनाना नहीं होता है। चाहे इनके साथ में कोई अच्छा करे, चाहे बुरा करे, ये मुनि महाराज के अन्दर किसी से भी राग और द्वेष उत्पन्न नहीं होता। हम और आप समझ लेते हैं कि हमने महाराज के लिए कुछ अच्छा कर दिया, हमने महाराज के लिए कुछ बुरा कर दिया। बुरा करने वालों को भी कई बार अच्छा लग जाता है लेकिन राजन! आप देखो, आपके सामने यह मुनि महाराज कितने स्नेह भाव से देख रहे हैं मानो कि आप इनके कितने बड़े मित्र हो। मुनि महाराज ने जब उनकी ओर ऐसे स्नेह भरे भावों से देखा तो राजा श्रेणिक ने उनके चरणों में प्रणाम करके उनसे प्रार्थना की कि आपने इतना बड़ा उपसर्ग सहन करने के बावजूद भी हमारे लिए बुरा क्यों नहीं सोचा? तब मुनि महाराज कहते हैं...बेटा! तुमने हमारे लिए बुरा कुछ नहीं किया, तुमने हमारे लिए बहुत अच्छा किया। जिस शरीर से निस्पृह होकर के मैं आत्मा का ध्यान करता था, उस शरीर की निस्पृहता में, उस शरीर से ममत्व का त्याग करने में, उस शरीर से आसक्ति को छुड़ाने में तुमने हमारे लिए बड़ा सहयोग किया। हम तो इस शरीर को एक हाड़-मांस का पुतला ही मानते

हैं, इसके अलावा कुछ मानते ही नहीं। इस शरीर को देखकर के आपको राग या द्वेष उत्पन्न होता है लेकिन हमारे लिए तो यह शरीर केवल एक हाड़-मांसका कंकाल है, पुतला है। यह तो मिटना ही है, जलना ही है, गलना ही है। इससे ज्यादा दुःख तो हमने नरकों में प्राप्त किए हैं, तुमने तो कुछ नहीं दिया। इससे ज्यादा दुःख तो हमारे लिए पशु योनि में प्राप्त हुए हैं जब कितनी बार हमें काटा गया, मारा गया, कितनी बार हमें औंधा लटका करके हमारे ऊपर गरम गरम जल डाल कर के हमारी खाल को खींचा जाता है और हम कितनी तरह की वेदनाएँ अनेक-अनेक जन्मों में नरक गति में, पशु गति में भोग चुके होते हैं। हम उसी को याद कर रहे थे, यह कुछ भी नहीं लग रहा था, ये तो चीटियाँ थी, कुछ नहीं था। शरीर को अपने से पृथक देखने का हमें सौभाग्य मिला। राजन! तुमने हमारे ऊपर बड़ा उपकार किया। जो ध्यान हमारा आज रात्रि में लगा, तीन दिन से लग रहा था, ऐसे ध्यान की तो हम न जाने कितने वर्षों से प्रतीक्षा कर रहे थे। तुमने बड़ा उपकार किया और इस तरह की राजा के सामने, राजा के समक्ष उन मुनि महाराज ने जब राजा के उपकार का वर्णन किया तो राजा उस समय पर पानी पानी हो गया। जो भी उसके अन्दर गलत विचार थे, जितनी भी उसके अन्दर मिथ्यात्व के कारण से उल्टी बुद्धि चल रही थी, वह सारी की सारी बुद्धि उसकी अब सुल्टी।

साधु की संगति का असर

एक बड़े डाकू को भी, एक बड़े शैतान को भी line पर लाने के लिए एक बड़ा महात्मा चाहिए पड़ता है और उस महात्मा को इतनी आग में गुजरना पड़ेगा, तब जाकर के एक शैतान एक आदमी बनेगा। यह बहुत बड़ा काम है। एक कमठ को सज्जन बनाने के लिए एक पारसनाथ की जरूरत पड़ती है और किसी से वह सज्जन नहीं बन सकता। एक डाकू को सज्जन बनाने के लिए भी एक बहुत बड़े साधु की जरूरत पड़ती है और किसी से वह साधु नहीं बन सकता। इसलिए देखा होगा आपने, बड़े-बड़े डाकू भी साधु बन गए हैं। किनकी संगति में आकर के? ऐसे ही तपस्वियों की संगति में आकर के, ऐसे ही साधुओं की संगति में आकर के और वह राजा श्रेणिक उस समय पर उनके चरणों में बैठा-बैठा अब न जाने क्या-क्या सोच रहा है? उसे सारा अपना अतीत याद आ रहा है, सब उसे बौद्ध साधु याद आ रहे हैं, उसे सब वे घटनाएँ याद आ रही हैं और आज उसके सामने यह दिखाई दे रहा है। जिनके लिए न कोई दुनिया में शत्रु है, न कोई दुनिया में मित्र है। फिर भी कुछ न कुछ लोग किसी न किसी तरह से कोई भी कार्य में मुनि महाराज के लिए भी विघ्न पैदा करके या किसी भी तरह का, उनसे भी जो है, द्वेष अपने मन में बांध करके अपने आप को सुखी बनाने की कोशिश आज भी लोग किया करते हैं, यह होता रहता है। मुनि महाराज से द्वेष होना स्वाभाविक बात है। यह मत समझना कि आज नहीं होता ऐसा, सब कुछ होता है। यह जो उदयपुर वाले लोग बैठे हैं, इस उदयपुर में कभी जाकर के देखना कि वहाँ पर तेरापंथ, बीसपंथ का बहुत बड़ा झंझट है। मैं आठ महीने उदयपुर में रहा हूँ। चतुर्मास के बाद और अगले चतुर्मास से पहले तक उदयपुर में समय निकाला। बस! चतुर्मास उदयपुर में नहीं हुआ, यह ध्यान रखना। चतुर्मास हुआ भिंडर में। फिर भिंडर में चतुर्मास करने के बाद में उदयपुर आया और उदयपुर में पूरा time निकाला और अगले चतुर्मास जाने के लिए फिर मंदसौर जाना हुआ तो वहाँ से फिर मंदसौर गया। उस दौरान भी सब कुछ देखने को मिला। दूसरे लोगों की बात तो छोड़ी, आज जैन समाज के लोग भी कम नहीं हैं।

पंथों में विभक्त जैन समाज

समाज में ही समाज के लोग मुनि महाराज से द्वेष रखते हैं, आज भी खूब अच्छे से अनुभव में आता है। एक पंथ के लोग दूसरे पंथ से भी द्वेष रखने लग जाते हैं, यह भी खूब देखने को मिलता है। वहाँ तेरापंथ है, बीसपंथ है, ऐसी वहाँ पर समाजों में स्थितियाँ बनी हुई हैं कि तेरापंथी साधु बीसपंथी मन्दिर में नहीं जाता, बीसपंथी साधु तेरापंथी मन्दिर में नहीं जाता। जो बीसपंथी समाज के लोग हैं, वह तेरापंथी साधु के पास नहीं जाएंगे; तेरापंथी समाज के जो लोग हैं, वे बीसपंथी साधु के पास नहीं जाएंगे, मन्दिर में नहीं जाएंगे; इतना पंथवाद वहाँ पर बढ़ चढ़ कर के है। बहुत जगह पर है, एक उदाहरण उसका उदयपुर भी है। बुरा मानने की तो कोई बात ही नहीं है, यथार्थ सबके समक्ष है। आप भी जाओगे, आपको भी देखने को मिलेगा। उन परिस्थितियों में भी साधु को रहना पड़ता है। साधु तो नया है, समाज के लिए नया होता है, हमारे लिए तो स्थान ही नया था, सब कुछ नया था। शहर नया, लोग नए हैं लेकिन धारणा क्या रहती है? ये उनके शिष्य हैं, ये उस पंथ के हैं तो दूसरे पंथ के लोग एक अलग तरह का व्यवहार करते हैं। वह व्यवहार राग से नहीं हो सकता है, वह व्यवहार द्वेष के साथ ही होता है। अगर राग होगा तो तो कहीं न कहीं नवधा भक्ति हो जाएगी। नवधा भक्ति जानते हो राजा श्रेणिक! कैसे होती है? नवधा भक्ति अनुराग से होती है और जब द्वेष आ जाता है तो फिर नवधा भक्ति का भी भाव नहीं रहता है। जैन लोगों को भी दिगम्बर साधु, दिगम्बर न दिखाई दे पंथ के व्यामोह में, सुन रहे हो? नवधा भक्ति करने का भाव न आए, ऐसा भी सम्भव है। लेकिन कहीं-कहीं पर जब साधु अपनी समता के साथ में रहता है, तो मैंने यह भी देखा, जिस sector में मैं रुका हुआ था, उसी के पास में एक दूसरा sector था, वहाँ के लोग पूरे दौरान जब तक मेरा वहाँ प्रवास रहा, बहुत कम आए गए और यही सोच करके नहीं आए कि ये उस पन्थ के साधु हैं। लेकिन अन्त-अन्त तक उनकी बुद्धि में परिवर्तन आया। अन्त-अन्त तक वह निवेदन करने आए और निवेदन करने जब तक आए तब तक हमारा जाने का मन हो चुका था, उदयपुर से निकलने का मन हो चुका था। लेकिन जाते-जाते हमने उनकी दो दिन दिए और दो दिन देने के बाद में उनके दिमाग में आया कि महाराज! हमने बहुत बड़ी गलती कर ली जो आपका सानिध्य हमें बहुत लम्बे समय तक नहीं मिल पाया। उस स्थान पर भी गया, उस sector में भी गया, जहाँ के लोग इस तरह की कट्टरता रखते थे। लेकिन हम भी देख रहे थे कि हमारे अन्दर कोई कट्टरता नहीं है, कट्टरता है आपके अन्दर। आपको क्या करना है? आपको तो साधु के दर्शन करना है, नवधा भक्ति करना है। साधु को अगर कहोगे, दो वचन सुना दो तो दो वचन सुना देगा, नहीं तो साधु अपना ध्यान करेगा, अपना स्वाध्याय करेगा। यह बात भी उन्हें समझने में, सीखने में छः महीने लग गए। लेकिन अन्त तक उन्हें यह बात समझ में आ गई और दो दिन के अन्दर उस sector-4 में जो प्रभावना हुई, उसके बाद में सब लोग कहने लगे- महाराज! चतुर्मास यहीं करो, महाराज! चतुर्मास यहीं करो। तब हमने कहा-बेटा! यह वह महाराज नहीं हैं, जो महाराज चतुर्मास यहीं करो, कहने पर और आपके नारियल चढ़ाने पर तुरन्त चतुर्मास करने बैठ जाएँ। इनके चतुर्मास के लिए बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं, इनके चतुर्मास के लिए इनके गुरु के पास जाना पड़ता है और उनके गुरु के पास भी बहुत बार नाक रगड़नी पड़ती है। एक बार में तो वे चीहते तक नहीं हैं, चीह्ला समझते हो न? बुंदेलखंड में बोलते हैं...इनने चीहो ही नहीं...देखो ही नहीं। पहचानते तक नहीं एक बार, दो बार में, चार बार में तो तुम चतुर्मास की बात कर रहे हो। इतना सरल नहीं होता चतुर्मास, तुम्हें अभी पता ही क्या है कि कौन से गुरु के शिष्य हैं? लेकिन ठीक है, तुमने आज इतनी भावना भा ली, आज तुम्हारे लिए इतना परिणाम निर्मल हो गया, तुम्हारे कर्म इसी से कट गए। आगे

भावना भाओ, भाग्य में होगा तो मिलेगा, अभी तो मेरा प्रस्थान कहीं आगे के लिए हो रहा है।

समाज कल्याण हेतु विचारों में परिवर्तन आवश्यक

आदमी के जीवन में भी परिवर्तन आता है, समता भाव के साथ में अनेक लोगों के अन्दर जो आग्रह रहते हैं, वे टूट जाते हैं लेकिन साधु को समता बनाए रखनी पड़ती है। पंथ के द्वेष में भी साधु को रहना पड़ता है, समाज के लोगों के भी द्वेष में साधु को रहना पड़ता है। जो लोग प्रतिदिन आएंगे, नमोस्तु करेंगे लेकिन अगर उनकी भी कहीं कोई बात उन्हें ऐसा लगे कि इन साधु के कारण से हमारी बात नहीं बन रही है, हमारी बात बिगड़ रही है, तो वह भी साधु को अपना द्वेषी बना लेता है। उन्हीं का अर्घ्य चढ़ाएगा और उन्हीं के लिए अपने मन में दुश्मनी साध लेगा। ये सब कुछ होता है, साधु सब देखता रहता है, जानता रहता है, लेकिन क्या करें? वह समता भाव के साथ में यह सोच कर के, सबके अपने-अपने विचार, सबके अपने-अपने परिणाम, सबके अपने-अपने कर्म हैं। इन कर्मों के कारण से किसी के लिए भी कोई ऐसा कर्म बंध न हो जाए, भगवन्! कि मेरे निमित्त से किसी की कोई दुर्गति हो जाए। बस! इतना विचार करता है साधु। मेरे निमित्त से दुर्गति न हो जाए, साधु को इतनी दया आती है लेकिन जिस पर दया आती है, उसको दया साधु पर नहीं आती। राजा श्रेणिक जैसे लोग दुनिया में आज नहीं है, ऐसा मत समझना। यह तो उदाहरण है, हर समय पर रहे हैं, हर समय पर रहते हैं लेकिन कुछ उदाहरण विश्व विख्यात हो जाते हैं और कुछ उदाहरण हमेशा चलते रहते हैं। उनके कोई नाम नहीं ले पाता लेकिन इस तरह की परिस्थितियाँ हमेशा बनी रहती हैं।

पंथ नहीं, पथ अपनाओ

इसलिए जैन समाज के भक्त लोगों! अपने मनोभावों को खुद टटोलो, खुद अपने मनोभावों को अच्छा बना कर के रखो कि हमारे अन्दर किसी भी दिगम्बर साधु के प्रति द्वेष भाव उत्पन्न न हो, इस तरह का विचार अपने अन्दर रखो। पंथ बाद में आते हैं, यह मैं किसी एक पंथ के लिए नहीं कह रहा, दोनों पंथों के लिए कह रहा हूँ, सभी पक्ष-विपक्षों के लिए कह रहा हूँ। हम किसी की नवधा भक्ति करें या न करें, अलग बात है लेकिन हमारे मन में साधु से द्वेष भाव कभी भी उत्पन्न नहीं होना चाहिए। यह हमारे मन का भाव होना चाहिए। अगर हमें साधु के बारे में ज्ञात है कि यह साधु किस तरह के आचरण वाले हैं? किस तरह के स्वभाव वाले हैं? तो हमें अपने पंथ के व्यामोह को छोड़ कर के यह देखना चाहिए कि ये साधु दंद-फंदों में नहीं पड़े होते हैं, आडम्बरों में नहीं पड़े हैं; ये अपने ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय में लगने वाले साधु हैं। हमें सारे पंथवाद को छोड़ कर के, सारे हमें व्यामोह को छोड़ कर के उनके प्रति अपनी आराधना, अपनी भक्ति में अपना मन लगाना चाहिए और इस तरह का अगर हम कार्य करने लगेंगे तो उसी में हमारा भला होगा। न कि यह सोच करके कि हम तो उनके भक्त हैं और इनके पास जाएंगे तो फिर वे क्या कहेंगे? आज समाज के अन्दर यह भक्तों का बहुत बड़ा बंटवारा होने लगा है।

परीक्षा एवं परीक्षा के लिए सम्यग्ज्ञान आवश्यक

साधु नहीं होते ऐसा मत समझो, भले ही वह दिगम्बर हो लेकिन उसको भी सच्चे साधु के रूप में आप नहीं

देख पाएंगे; दिगम्बरों में भी सच्चा साधु देखने वाली आँख भी आपके अन्दर होनी ही चाहिए। प्रभावना के नाम पर ढोंग तरह-तरह के पलते हैं लेकिन प्रभावना के नाम पर पलने वाले वे ढोंग सिर्फ उन्हीं की आँखों में धूल झोंकते हैं, जिनके अन्दर सम्यग्ज्ञान नहीं होता है। जिनके अन्दर सम्यग्ज्ञान होता है, वे कभी भी इस तरह के ढोंगों में नहीं पड़ते हैं। सच्चे श्रावक को हमेशा सम्यग्ज्ञान की आराधना करने के लिए आगे आना चाहिए। जहाँ सम्यग्ज्ञान की आराधना न हो, जहाँ सम्यग्दर्शन की बातें न हो, जहाँ सम्यग्चारित्र का अनुपालन न हो, वे सब स्थान हमारे लिए कोई काम का नहीं है, यह भी आपको ध्यान में रखना चाहिए। यह विचार अगर श्रावक के मन में खुले दिमाग से, खुले हृदय से नहीं होगा तो श्रावक न अपना भला कर पाएगा और न उसके लिए कभी भी साधु की भक्ति का कोई फल मिलेगा। ज्यादातर श्रावक भी अंधभक्त दिखाई देते हैं। कोई पंथ के कारण से अंधभक्त बने हुए हैं, कोई साधु के व्यामोह में अंधभक्त बने हुए हैं खुली दृष्टि, उदार दृष्टि शास्त्र ज्ञान की दृष्टि रखने वाले श्रावक गिनतियों के होते हैं, उंगलियों पर गिनने वाले होते हैं। बाकी भीड़ से अपेक्षा कभी की नहीं जा सकती कि वह ऐसी अपनी दृष्टि बना पाए। इसलिए सम्यग्ज्ञान समझो कितनी बड़ी चीज है। रानी चलना की तरह अपने अन्दर सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर विश्वास लाना, यह आपके सम्यग्दर्शन की नींव है और इसी नींव से आपके अन्दर सुख का बीज बोया जा सकता है। जिस सुख के बीज बोने के लिए मैं आपसे कह रहा हूँ **‘फिर भी सुख का बीज न बोय’** सुख का बीज कैसे बोया जाएगा? यह आपको समझना पड़ेगा और इसके लिए आपको सतत जागृत रहना पड़ेगा। यह जागृति अगर आपके अन्दर रहेगी तो आपका कल्याण होगा।

गाथा: 05

धर्मकार्यों में जागृत रहने की प्रेरणा

मा सुअह जग्गिय(अ)व्वे, पलाइय(अ)व्वंमि कीस वीसमेह।
तिण्णि जणा अणुलग्गा, रोगो अ जरा अ मच्चू अ ॥5॥

अन्वयार्थ- 'हे प्राणियों!' (जग्गियव्वे) जागने योग्य 'धर्म कार्य' में (मा) मत (सुअह) सोवो अर्थात् शयन करो, (पलाइयव्वंमि) पलायन करने योग्य 'इस जगत' में (कीस) कैसे (वीसमेह) विश्राम करते हो 'जबकि' (रोगो) रोग (जरा) बुढ़ापा (अ) और (मच्चू) मृत्यु 'ये' (तिण्णि जणा) तीनों, लोग 'तुम्हारे' (अणुलग्गा) पीछे लगे हुए हैं ॥5॥

धर्म प्रेमी भव्य आत्माओं,



आज की इस मंगल सभा में हम जिस भाव के साथ प्रतिदिन कुछ ऐसी बातें सुनते हैं, जिससे कि हमारी चेतना थोड़ी सी जागृत हो सके और वह क्रम एक 'वैराग्य शतक' नामक जो ग्रन्थ है, उसकी कुछ गाथाओं के माध्यम से चल रहा है। उसी क्रम में आचार्य आगे कह रहे हैं...

मा सुअह जग्गिय(अ)व्वे, पलाइय(अ)व्वंमि कीस वीसमेह।
तिण्णि जणा अणुलग्गा, रोगो अ जरा अ मच्चू अ ॥5॥

चेतना जागृत करना

यह प्राकृत भाषा में कुछ उपदेश दिया गया। कहते हैं... 'मा सुअह जग्गियव्वे' जागृत होने योग्य जो रास्ता है, जागृत होने योग्य जो तत्त्व है, उसके विषय में शयन मत करो, उसके विषय में सोओ मत। कुछ चीजें दुनिया में ऐसी भी होती हैं, जो हमें आँखों से दिखाई नहीं देती लेकिन उसके विषय में यदि हमारा कभी विचार ही नहीं होता तो हम विचार शून्य होने के कारण से उस विषय में सोए हुए कहलाते हैं। इसी तरह की चेतना जागृत करते हुए यहाँ आचार्य कह रहे हैं कि जो जागृत रहने योग्य तत्त्व है, उसके विषय में सोओ मत। जागृत हमें जहाँ रहना है, उस जगह पर सोओ मत। जागृत हमें जिस विषय में रहना है, उस विषय में, उस subject के लिए सोओ मत। उसको विचार करके देखो, उसको ध्यान से देखो, उसको जाग कर के अनुभूत करो। कुछ विषय ऐसे होते हैं, विषय का मतलब कुछ subject ऐसे होते हैं, जिनके विषय में हमारा कभी भी ध्यान नहीं जाता और हम पूरा जीवन भी जीते हैं तो भी हम उन subject के बारे में कभी सोचते

नहीं; यह हमारा उस subject के प्रति सोना ही कहलाता है। जिसे कहते हैं- एक भीतरी निद्रा। एक बाहरी निद्रा होती है, जिसे हम महसूस कर लेते हैं, जब हमारी आँखें खुल जाती हैं। हम सोचते हैं...हम बाहरी निद्रा से जागृत हो गए हैं। लेकिन हमारे भीतर एक आध्यात्मिक जागृति जब तक नहीं आती, तब तक हमारी भीतरी निद्रा बनी रहती है। भीतरी निद्रा को दूर करने के लिए एक आध्यात्मिक जागृति की जरूरत होती है और उसी जागृति की ओर निर्देश करते हुए यहाँ कहा जा रहा है...तुम सोओ मत।

अब यह बात किसी सोने वाले व्यक्ति से नहीं कही जा रही कि तुम सोओ मत क्योंकि अगर हम यह समझें कि किसी को जगाने के लिए यह बात कही जा रही है कि तुम सोओ मत तो वह व्यक्ति सोते हुए कभी नहीं सुनेगा। जो सो कर के उठ चुका है, जाग चुका है, व्यवहार से जो अपनी निद्रा तोड़ चुका है और उस निद्रा के टूटने के बावजूद भी जो सोया हुआ है, उसको जगाने के लिए ये उपदेश होते हैं। बाहर से हम जागे हुए हैं, हमारी आँखें खुली हुई हैं, हमारा मन सोच रहा है, हमारे कान बिल्कुल खड़े हैं। खड़े होने का मतलब? हम बिल्कुल alert होकर के सुन रहे हैं। उसके बावजूद भी हमें यह कहा जा रहा है कि तुम सोओ मत यानी कहीं न कहीं आचार्यों को पता है; ऋषियों, मुनियों को पता है कि कान खड़े होने के उपरान्त भी, आँखें खुली होने के उपरान्त भी हम सो सकते हैं। यह हमारा भीतर का जो शयन है, वह जागृत जब तक नहीं होता, तब तक हमारे भीतर किसी भी तरह की आध्यात्मिकता की कोई भी विचारधारा प्रविष्ट नहीं करती। उसी विचारधारा को प्रविष्ट कराने के लिए यह उपदेश है; उनके लिए है जो बाहर से नहीं सो रहे हैं किन्तु भीतर से सो रहे हैं।

उपदेश उनके लिए जिनका भीतर से शयन चल रहा है

उपदेश उनके लिए नहीं है जो बाहर से भी सो रहे हैं। उपदेश उनके लिए है, जो बाहर से तो जाग चुके हैं लेकिन अभी भीतर से उनका शयन चल रहा है, भीतर से सो रहे हैं। यह भीतर से जगाने का क्रम जो हमारे अन्दर निरन्तर अगर बन जाता है तो वह गुरु के उपदेश से बनता है। इसलिए कहा जा रहा है...सोओ मत, जागते रहो; जागने की कोशिश करो। बाहर से नहीं, थोड़ा भीतर से भी जागो और भीतर से जागने का मतलब वही होता है कि जब हम बाहर से जागने के लिए तैयार हो जाते हैं तो हमें क्या दिखाई देता है? हमें दिखाई देने लग जाता है कि हम ये हैं। ये हैं का मतलब? हम एक आदमी हैं, हम एक स्त्री हैं, हम इतनी बड़ी उम्र के हैं, हम यहाँ के management करने वाले director हैं, हम यहाँ के management group के हैं, हम एक शिक्षक हैं, हम एक principal हैं। हम किसी भी cloth merchant के कोई बहुत बड़े manager हैं, ये सब चीजें हमें एकदम से पता पड़ जाती हैं। कब? सोते समय? जाग करके। जैसे ही हम जाग जाते हैं तो हमें पता पड़ जाता है और जब हम सो जाते हैं तो हम भूल ही जाते हैं कि हम कोई व्यक्ति हैं, कि आदमी हैं, कि स्त्री हैं, कि पुरुष हैं, कि doctor हैं, कि शिक्षक हैं, कि principal हैं, क्या हैं? हम सब भूल जाते हैं। जब हम भूल गए, वह काल हमारा एक शयन का काल है और जब हम उठ गए तो उसी समय पर हम जाग गए और जागने पर हमने अपनी पहचान कर ली यानी जागने का सम्बन्ध हमारी पहचान से हुआ। अगर हम जागे तो तो पहचान होती है हमारी हमको और अगर हम नहीं जागे तो हमारी पहचान हमको भी नहीं रहती है। यह आपको जागने और सोने के क्रम से निरन्तर महसूस होने वाली चीज है। जो

आपको पहले बताई जा रही है कि आप पहले यह महसूस करने लग जाओ। हम भी अपनी पहचान करने के लिए जब आँखें खोलते हैं, तभी पहचान होती है और अगर आँखें बन्द होती हैं तो हमको भी हमारी पहचान पता नहीं होती है। हमारी क्या identity है? हमें खुद पता नहीं होता है और जैसे ही हम जागृत हो जाते हैं, हमें अपना ID card भी पता पड़ जाता है, identity भी पता पड़ जाती है। ठीक इसी तरह से आचार्य कहते हैं, एक भीतर की भी जागृति है और वह भीतर की जागृति होगी तो हमें भीतर की पहचान होगी। भीतर की पहचान करने के लिए भीतर से जागना, बाहर की पहचान के लिए बाहर से जागना तो बाहर से तो हम जाग लेते हैं, सो लेते हैं। यह सब आसान हो जाता है क्योंकि यह सब शरीर आश्रित है लेकिन भीतर से जागने का मतलब? हमें यह पहचान होने लग जाए.. **‘कोऽहम्’**? थोड़ी भी संस्कृत आपको पता ही होगी, **कः, कौ, के** थोड़ा पढ़ते होंगे... **‘कोऽहम्’** अर्थात् **मैं कौन हूँ?**

मैं कौन हूँ?

यह विचार आने का नाम है- भीतर की जागृति की ओर बढ़ना। **कोऽहम्?** मैं कौन हूँ? अब आप कहोगे मैं कौन हूँ? यह तो मुझे पता ही है, मैं एक आदमी हूँ, मैं फलाना सेठ हूँ, मैं यहाँ के management का बहुत बड़ा व्यक्ति हूँ, मैं doctor हूँ, engineer हूँ। ये तमाम जैसी चीजें आपके साथ में आती हैं तो भी जागृति नहीं है क्योंकि यह भी आपकी अपनी पहचान नहीं है। यह पहचान आपने बनाई है। पहचान वह होती है जो original होती है और original जो पहचान होती है, वह बनानी नहीं पड़ती है। वह always eternal रहने वाली चीज होती है। वह पहचान जो हमने बनाई है, वह artificial है और जो पहचान हमारी हमेशा बनी रहे, वह हमारी original है। अभी हम अगर आपसे पूछें, आपकी identity क्या है? आप अपनी original identity भी नहीं बता पायेंगे।

आपकी identity क्या है?

आपका original ID क्या है? वह भी आप नहीं बता पायेंगे क्योंकि आपके लिए अभी अपनी पहचान जब तक नहीं होगी, तब तक आपको यह जागृति नहीं आएगी और जागृति नहीं आएगी, तब तक अपनी पहचान भी नहीं आएगी। पहचान के लिए यह जरूरी है कि हमें पता हो कि मैं कौन हूँ? **‘कोऽहम्’** यह दुनिया का एक सबसे बड़ा ऐसा प्रश्न है कि हम तमाम exam देने के बावजूद भी अगर इस प्रश्न की ओर incline नहीं होते हैं, अपने mind को incline नहीं करते हैं तो इसका मतलब है कि हमने सब कुछ देखने के बाद, जानने के बावजूद भी वह नहीं जाना जो हमें जानने के लिए मनुष्य जन्म मिला था। मनुष्य जन्म की सार्थकता, अन्य योनियों में यह जानने को नहीं मिलता। यह केवल और केवल मनुष्य योनि में ही जानने को मिल सकता है। मैं कौन हूँ? यह एक ऐसा प्रश्न है, अगर यह प्रश्न भी आपके अन्दर स्वतः उत्पन्न होने लग जाए तो आदमी की आध्यात्मिक जागृति बढ़ने लग जाए, केवल प्रश्न उत्पन्न होते ही। इसीलिए यहाँ कहा जा रहा है कि जागने योग्य कार्य में मत सोओ; तुम जागने योग्य कार्य में तो सोए हुए हो और जिन कार्यों में सोना चाहिए, उनमें जाग रहे हो। थोड़ा ऐसा लग रहा है कि यहाँ कुछ उल्टा सा चल रहा है। जिन कार्यों में हमें सोना चाहिए, उनमें तो हम जाग रहे हैं और जिन कार्यों में हमें जागना चाहिए, उन कार्यों में हम सो रहे हैं। कुछ ऐसा इस उपदेश से ध्वनित हो रहा है। अगर आपकी दृष्टि वहाँ तक पहुँच सके तो हम आपको

वहाँ तक ले जा सकते हैं। हमें किन कार्यों में जागना चाहिए? जो कार्य हमारे अपनी पहचान दिलाने वाले, अपनी पहचान को बताने वाले कार्य हैं, उन कार्यों में हमें जागना चाहिए और जो कार्यों से हमारी पहचान कुछ दिनों के लिए बन जाती है, कुछ समय के लिए होती है, उन कार्यों में हमें सो जाना चाहिए। मतलब क्या हुआ? आपकी जिन-जिन कार्यों से बाहर की पहचान बन रही है या जिन-जिन कार्यों से आप अपने आप को identify करते हैं, जैसे कि मान लो आप अपने घर में भी पहुँच कर के इस तरह से सोचते हैं कि मैं एक पिता हूँ, अपनी पत्नी का मैं एक पति भी हूँ, अपने पिता का मैं एक पुत्र भी हूँ, आप ये सब चीजें अपने घर में पहुँचने के बाद में विचार करने लग जाते हैं और जब आप अपने job पर होते हैं या किसी business में होते हैं तो वहाँ पर आप अपने आप को एक businessman की तरह देखते हैं, एक employee की तरह देखते हैं। यह विचार आपके अन्दर जो आता है, यह सब बाहरी पहचान का है और बाहर से ही आपको पहचान दिला रहा है। इन सब कार्यों में हम जाग रहे हैं लेकिन कुछ समय ऐसा भी निकालना चाहिए, जब हमें यह आभास हो सके कि इन कार्यों में हम सो जाएँ और उस पहचान के कार्य में हम जग जाएँ, जिसकी ओर हमें इंगित किया जा रहा है। यह भी ध्यान रखना, दोनों प्रकार की जागृति एक साथ, एक time पर आपको अनुभव में नहीं आएगी। यह बात अलग है कि आप एक जागृति रखते हुए दूसरी जागृति को गौण कर सकते हैं, दूसरी जागृति रखते हुए पहली जागृति को गौण कर सकते हैं। लेकिन दोनों जागृतियाँ एक साथ नहीं आयेंगी। लेकिन मनुष्य के जीवन में दोनों प्रकार की जागृति होने का समय निकालना जरूरी है।

शिक्षा का उद्देश्य

आज आप लोग यहाँ उपस्थित हुए हैं। अतिथि के रूप में बहुत सारे school के शिक्षक यहाँ पर उपस्थित हुए हैं और शिक्षा का उद्देश्य भी क्या है? जागृति पैदा करना। किसी भी तरह का अगर कोई भी हमें अच्छा विचार भी किसी के लिए देना होता है, तो वह विचार भी तब पहुँचता है, जब बन्दा जाग रहा हो। अच्छे कार्य के लिए, अच्छे उद्देश्यों के लिए जागृति पैदा करना, यह हमारा, शिक्षकों का सबका परम उद्देश्य होता है और ये जागृतियाँ आज धीरे-धीरे लुप्त हो रही हैं हमारी भारतीय संस्कृति से। पहले के लोग इन जागृतियों में बहुत अच्छे ढंग से जागते थे। जैसे-जैसे हमारे ऊपर ये शिक्षाओं का burden बढ़ने लगा, course books का burden बढ़ने लगा, बाहर की शिक्षाओं के ही हम केवल आदी हो गए, हम अपनी भीतरी शिक्षाएँ, अन्तर जगत की शिक्षाओं से हम थोड़ा सा सुप्त हो गए, जिसे हम आध्यात्मिक जगत की शिक्षाएँ कहते हैं, आध्यात्मिक जागरण की चीज कहते हैं, वे चीजें लुप्त होने लग गई और उस विषय में हम सो गए कि हमें अब यह पता नहीं है कि मैं कौन हूँ? न शिक्षकों को पता होता है, न विद्यार्थियों को पता होता है। क्या हमें कभी इस चीज की आवश्यकता महसूस होती है? कि हम कभी यह जानने का या इस चीज को experience करने का कभी time निकाले कि मैं कौन हूँ? कभी आवश्यकता महसूस नहीं होती? हम जिस तरह का जीवन जी रहे हैं उसमें हमें परिपूर्ण लगता है कि हाँ! यह जीवन हमारा सही चल रहा है। लेकिन यह जागृति हमारे अन्दर अगर भीतर की नहीं आती है, तो ऋषि-मुनियों का कहना है...हमने जीवन भर आँखें खोल कर के भी कुछ नहीं किया। केवल हम मोह-माया के चक्कर में पड़े रहे। यह सब कौन सा चक्कर है? मोह माया का चक्कर है। मोह होता है, माया उत्पन्न होती है। अनेक तरह के हम भ्रमों में पड़ जाते हैं और उसी के कारण से जिन कार्यों में जागना चाहिए, उन कार्यों में तो सो जाते हैं और जिन कार्यों में सोना चाहिए उनमें हम जागते रहते हैं। हम अपने मन की इच्छा की पूर्ति के कार्यों में तो जागते हैं लेकिन मन को समझने के कार्य

में नहीं जागते हैं कि यह मन में इच्छा आती कहाँ से है? क्या केवल इच्छाओं के पिण्ड का नाम ही मन है या मन कुछ और भी चीज है, इस मन को कहीं और भी लगाया जा सकता है?

अध्यात्म गुरु की आवश्यकता

इस तरह का कोई भी विचार हमें जब शिक्षा जगत से नहीं मिलता, तब जाकर के हमें गुरुओं की आवश्यकता पड़ती है। तभी हमें अध्यात्म के माध्यम से वह गुरु जगाते हैं और वह जगाने का अगर समय आ जाता है तो जागने वाले लोग अपने आप सामने आकर के बैठ जाते हैं। इनका समय आ गया है जागने का, इसलिए ये यहाँ आकर के बैठे हैं, यह एक अच्छा संयोग होता है, एक अच्छा time है आपके लिए जो आप यहाँ आ पाए, किसी भी कारण से आ पाए। लेकिन यह जागना जरूरी इसलिए है क्योंकि इस संसार में सब कुछ जो है, वह जा रहा है। क्या हो रहा है? जा रहा है। एक बहुत अच्छा शब्द यहाँ लिखा है- **‘पलाइय(अ)व्यंमि कीस वीसमेह’** यहाँ पर सब कुछ पलायन हो रहा है, यहाँ कुछ भी टिक नहीं रहा है। यहाँ सब कुछ जा रहा है, सब कुछ पलायन हो रहा है। हमारी पहचान भी पलायन हो रही है, हम भी पलायन कर रहे हैं, हम भी यहाँ से जाने वाले हैं। क्या सोच रहे हो? हमसे मतलब? आप कहोगे महाराज! अभी आपको कहाँ जाना है? अभी तो दीपावली तक तो आपको यहीं पर रहना है, आप bounded हो। हम कहीं भी रहें लेकिन फिर भी जाना सबका स्वभाव है। यह संसार पलायन कर रहा है, इस संसार में कुछ भी यहाँ पर टिकने वाला नहीं है। इस संसार में हर चीज बहुत तीव्र गति से आगे बढ़ रही है, हर चीज यहाँ पर पलायन कर रही है। जो चीज आज हमें सामने दिखाई देती है, अगले दिनों में, अगले क्षणों में वह सामने नहीं आती। कहाँ चली जाती है? कहाँ विलुप्त हो जाती है? चाहे वह चेतन वस्तु हो, चाहे अचेतन वस्तु हो, हर चीज यहाँ पलायन कर रही है। आचार्य कहते हैं- कहाँ विश्राम कर रहे हो? जहाँ पर हर चीज घूम रही है, दौड़ रही है, वहाँ पर तुम कहाँ, कौन सी मोह की निद्रा में सो रहे हो? उस निद्रा से जगाने के लिए कह रहे हैं...देखो! जब आदमी सो रहा होता है और उसके लिए कोई भी भागने वाली चीज भागती हुई दिखाई दे रही होती है लेकिन उसे पता नहीं होता है कि हम किसके कारण से भाग रहे हैं और हमारे पीछे कौन सी चीज पड़ी हुई है? हमें कहाँ भागना चाहिए? उसके लिए बताया जा रहा है कि तीन चीजें तुम्हारे पीछे पड़ी हुई हैं, जो तुमको यहाँ से पलायन करा रही हैं। कितनी चीजें? तीन चीजें। कौन सी तीन चीजें हैं? रोग, जरा और मृत्यु।

रोग, जरा और मृत्यु

ये तीन चीजें तुम्हारे पीछे लगी हुई हैं। क्या-क्या? रोग! वही जो आप जानते हो। शारीरिक बीमारियाँ, मानसिक बीमारियाँ, ये तुम्हारे पीछे लगे हुए हैं। तुम जैसे-जैसे बड़े होते चले जाओगे, जैसे-जैसे आगे बढ़ते चले जाओगे, तुम्हारे पीछे ये रोग लगने लग जायेंगे। जरा अर्थात् बुढ़ापा, यह तुम्हारे पीछे लगा हुआ है और मृत्यु, यह भी तुम्हारे पीछे पड़ी हुई है, ये तीनों राक्षस तुम्हारे पीछे पड़े हुए हैं। यह समझ कर चलो और तुम दौड़ रहे हो, सारा संसार दौड़ रहा है और तीनों की चपेट में इस संसार का हर प्राणी आने वाला है। तीन राक्षस आपके पीछे पड़े हैं। जैसे बोलते हैं न, जैसे किसी के पीछे कुत्ते लग गए तो अब वे कुत्ते उसका पीछा कब तक करते हैं? जब तक उन्हें लगता है कि हम इसका पीछा कर सकते हैं, वे उसका पीछा करते हैं और उस बीच में अगर आप दम तोड़ देते हो तो वह कुत्ते आपके ऊपर हावी भी हो जाते हैं। लेकिन यह उससे भी

भयानक कुत्ते हैं। जब से अपना जन्म मिला, तब से लेकर के ये तीन कुत्ते अपने पीछे लग जाते हैं। ये भयानक कुत्ते हैं और ये तीनों अपना पीछा करते हैं और कोई न कोई कुत्ता, कभी न कभी, किसी भी time पर झपट सकता है। कभी रोग वाला कुत्ता झपट लेता है, कभी बुढ़ापे वाला कुत्ता झपट लेता है, कभी मृत्यु वाला कुत्ता झपट लेता है और इन तीनों की झपट में से कोई भी कुत्ता आगे पीछे हो सकता है। अगर हम उन तीनों की झपट में हैं तो हमारे लिए यह भी जागृति होना चाहिए कि ये तीनों कुत्ते हमारे पीछे लगे हुए हैं। शायद हमें अभी यह भी जागृति नहीं है, ये हमारे पीछे लगे हुए हैं और हम इनसे बचना चाहते हैं, हम इनसे भाग रहे हैं; यह आपको महसूस होना चाहिए। अगर यह महसूस होने लगेगा तो आचार्य कहते हैं...आप अपने कार्य में जागने लग जाओगे। जब व्यक्ति के लिए थोड़ा उसके बालों में सफेदी आने लग जाती है, तो कहा जाता है...व्यक्ति को थोड़ा सा लगने लग जाता है, भाई! अब बुढ़ापा निकट आ रहा है। बाल में सफेदी आना और बुढ़ापे का आना, दोनों सहेली-सहेली हैं, ये दोनों एक साथ चलती हैं और ये धीरे-धीरे हमें कहाँ पहुँचा देती हैं? मृत्यु के निकट तक पहुँचा देती हैं, तीसरी सहेली के पास पहुँचा देती हैं। जैसे ही हमें कुछ भी एहसास होने लग जाता है कि हमें सुनना कम हो रहा है कि देखना कम हो रहा है, कि हमारे लिए अब उठने-बैठने में भी परेशानी होने लगी है, तो अब आपको समझ लेना चाहिए कि ये लगे हुए राक्षस आपके ऊपर अब आक्रमण करने जा रहे हैं। आप इनकी गिरफ्त में आने वाले हैं, आ रहे हैं। यह विचार आते रहना कि हम मृत्यु से दूर भागने की कोशिश कर रहे हैं, हम बुढ़ापे से दूर भागने की कोशिश कर रहे हैं, हम रोगों से दूर भागने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन हम भागते हुए भी इन तीनों चीजों से कभी भी बच नहीं पायेंगे। महसूस होना कि हमारे पीछे ये तीन राक्षस लगे हुए हैं, यह आज व्यक्ति के लिए सबसे बड़ी जानकारी की जरूरत है। क्यों है? क्योंकि इस जानकारी के बिना आप भीतर से कभी सचेत नहीं हो पाएँगे।

आत्म-बोध प्राप्ति का उपाय

आदमी के लिए अपने आत्महित की चिन्ता तब होती है, जब उसे यह महसूस होने लग जाता है कि बाहर से ये तीन राक्षस हमारे पीछे पड़े हैं तो आदमी सोचता है...हमें वह काम कर लेना चाहिए, जो काम हमने अभी तक नहीं किया। क्या ऐसा काम हो सकता है जो हमने अभी तक नहीं किया? बता पाओगे? शिक्षकगण यहाँ बैठे हैं, वह प्रश्न जो आपके सामने रखा है, वह प्रश्न अभी भी आपको याद तो आता ही होगा। कौन सा वह काम है, जो हमने अभी तक नहीं किया? बोलने की कोशिश करो, कौन सा काम है? आत्म-बोध! जिसके लिए अभी यहाँ पर आपको एक प्रश्न दिया गया था। वह प्रश्न क्या था? भूल गए? **कोऽहम्?** बस! इसी में सब कुछ है। **कोऽहम्, मैं कौन हूँ? Who am I?** अगर यही प्रश्न अपने अन्दर जागने लग जाता है, आने लग जाता है तो यही प्रश्न हमारे अन्दर एक आत्म-बोध की ओर ले जाने लगता है, हमें जागृति पैदा कराने लग जाता है। हम जीवन में दौड़ रहे हैं और इस आत्म-बोध से वंचित हैं। अगर यह आत्म-बोध भी हमारे साथ में हमारी दौड़ के साथ चल रहा हो तो हमारे मनुष्य जीवन की सार्थकता बनती है। आपको पता होना चाहिए कि पहले के महापुरुष, पहले के लोग बहुत अच्छे ज्ञानवान, विद्वान, पाण्डित्य को धारण करने वाले होते थे और उनका एक बहुत अच्छा प्रभाव भी होता था। क्यों होता था?

हमने अपने आप को नहीं जाना

अगर हम आपसे कहें...**रामकृष्ण परमहंस, भगवान महावीर स्वामी, स्वामी विवेकानन्द**, ये ऐसे महापुरुष, जिनके नाम हमारे मुँह पर रहते हैं। इनके पीछे क्या कारण हैं? आज लोग इनको, आज भी जानते हैं लेकिन हम लोग इतना पढ़ने के बावजूद भी हमारी कोई पहचान नहीं। हमको क्यों नहीं जानते लोग? क्योंकि हमने अपने आप को नहीं जाना। हमने अपनी पहचान खुद से नहीं की और इन लोगों ने अपनी पहचान की। जब इन लोगों ने अपनी पहचान की तो इनके लिए वह सब मिला जो इन्हें जरूरत की चीजें थी और उसके साथ-साथ इन्हें आध्यात्मिक जागृति भी थी, जिसके कारण से जाग कर के जीवन जिए। ऐस-ऐसे लोग जो जाग कर के जीवन जिए और जागने के लिए जरूरत है...कुछ ऐसी चीजों की, जिसके माध्यम से हमारे बेटे, हमारी बेटियाँ अपने पूरे life के अन्दर पढ़ने लिखने के बावजूद भी कहीं पर भी वे निराशता महसूस न करें, कहीं पर भी ऐसा महसूस न करें कि अब हमें जीवन का अन्त कर लेना चाहिए। ये चीजें हमें कहाँ से सीखने को मिलेंगी? ये चीजें हमें अध्यात्म के माध्यम से सीखने को मिलेंगी। आज अगर व्यक्ति पढ़ा-लिखा, हर तरह से अपने आप को सुशिक्षित पाने के बावजूद भी जीवन में संघर्ष की स्थिति में आने के बाद, अगर वह अपने आप में कहीं बीच में दम तोड़ देता है, suicide कर लेता है, इसका मतलब क्या है?

अध्यात्म ज्ञान की कमी

यानी व्यक्ति के अन्दर कहीं न कहीं उस अध्यात्म ज्ञान की कमी रही, जिसके कारण से उस व्यक्ति ने यह नहीं समझा कि जीवन किसलिए है और जीवन में अगर यह संघर्ष है, तो इस संघर्ष को हम क्या केवल अपनी self मृत्यु के माध्यम से संघर्ष से बच जाएँगे? संघर्ष तो जारी रहेगा। आत्मा तो आगे भी मिलेगी, आत्मा का जन्म तो आगे भी होगा और उसकी यह दौड़ बनी रहेगी और उसका यह कष्ट, यह संघर्ष अगले जन्म में फिर शुरू होगा। यह टूटेगा नहीं, मृत्यु से कोई अन्त नहीं हो जाता है, इस सिलसिले का कोई अन्त नहीं होता है। पहले suicide की दर क्या थी? आज यह suicide की दर students में क्यों बढ़ रही है सबसे ज्यादा? क्या कमी है जो हमें उन्हें सिखाना चाहिए? और वह चीज कौन सी है, जिसको सीखने के बाद में व्यक्ति कितने भी कष्ट में क्यों न हो, कष्टों से लड़ने के लिए अपने अन्दर ताकत लाए लेकिन कभी भी suicide करने की न सोचे। उस शिक्षा का नाम ही जागृति की शिक्षा है और वही शिक्षा अध्यात्म की शिक्षा कहलाती है और वह शिक्षा केवल और केवल अध्यात्म गुरुओं के पास मिल सकती है और कहीं नहीं मिल सकती।

शिक्षा जगत में महती आवश्यकता

आज शिक्षा जगत में इस चीज की महती आवश्यकता है, इसे शिक्षक भी महसूस करें और विद्यार्थी भी महसूस करें। हम आपसे कहते हैं...हमारे बेटा, हमारी बेटियाँ क्यों बीच में इस तरह से निराश होकर के, बहुत जल्दी depression के शिकार होते हैं, बहुत जल्दी थोड़े-थोड़े से बातों पर emotional होकर के अपने व्यक्तित्व को इतना बिगाड़ लेते हैं कि जो भी उम्मीद हम उनसे किया करते हैं, उन सब उम्मीदों पर खरा उतरने की बात तो दूर है, उनकी जिन्दगी के लाले पड़ने लग जाते हैं कि अपना जीवन ही शान्ति से जी ले

तो यही बहुत है। हमारे सामने एक चीज आती है, जिसे हम IQ power कहते हैं। आज व्यक्ति के लिए हम इस बात पर तो जोर दे रहे हैं कि हमारी IQ power बढ़नी चाहिए। लेकिन हम इस बात पर जोर नहीं दे रहे हैं कि हमारी EQ power भी बढ़नी चाहिए। Intelligence quotient की अपेक्षा से emotional quotient को बढ़ाने के लिए भी हमारे पास में कुछ ज्ञान होना चाहिए कि बच्चा छोटी-छोटी सी बातों पर इतना emotional न हो जाए कि अगर उसके नम्बर 50 में से 45 की जगह 30 आ गए या 35 आ गए तो वह बिल्कुल इतना emotional हो गया...न उसे खाना अच्छा लग रहा है, न कुछ सुनना अच्छा लग रहा है। वह बिल्कुल ऐसा निराश हो गया कि जैसे उसके जीवन से सब कुछ चला गया। ये चीजें कैसे उस बच्चे को उबार पाएँ? और कैसे उस बच्चे के अन्दर भीतर से strongness दे पाएँ? इस बात की समझ लाना बहुत जरूरी है।

हमारे बच्चों के अन्दर इस तरीके की चीजें आयेंगी तो वह बेटा-बेटी हमारे लिए बहुत समर्थ बनेंगे और समर्थ व्यक्ति ही देश के काम आता है, समाज के काम में आता है। कमजोर व्यक्ति किसी काम में नहीं आता है। बेटा के अन्दर ये चीजें होनी चाहिए और इन्हीं चीजों को बताने के लिए आगे आने वाले समय में एक बहुत अच्छी एक programming यहाँ पर रखी गई है, जो आने वाले समय में यहाँ school के, colleges के बच्चों के साथ में वह programming की जाएगी और उसका उद्देश्य कुछ नहीं होगा, केवल बेटा को बेटा बनाना होगा। यह meta-data, इन सबसे ऊपर उठकर के बेटा, बेटा बना रहे और वह बेटा हमारे समाज का बेटा बना रहे, हमारे जाति का बेटा बना रहे, हमारे कुल का बेटा बना रहे। उससे भी बढ़कर के वह हमारे देश का बेटा, बेटा बना रहे। इस बेटा को बेटा बनाने के लिए एक बहुत बड़ी यहाँ पर अच्छी workshop की जाने वाली है, आप लोग उसके लिए तैयार रहें कि हम उन बेटों को बेटा बनाने के लिए कैसे तत्पर रह सकते हैं? जरूरी है वह चीज। **बेटा का सबसे पहला अक्षर B...** उसके अन्दर braveness होनी चाहिए, bravo होना चाहिए, बहादुरी होनी चाहिए। जिस व्यक्ति ने अपनी जिन्दगी के संघर्षों से हार मान ली वह बहादुर कैसे हो सकता है? ऐसी बहादुरी उनके अन्दर डालना कि वह भूल करके भी कभी न सोचे कि हम suicide कर सकते हैं या हमें suicide करना है। यह बहादुरी कहाँ से आती है? केवल विचारों से आती है, अपने इतिहास को पढ़ने से आती है। Intelligence जिस चीज से बढ़ती है, उससे भी ज्यादा हमारे अन्दर एक emotional strength बढ़ाने की भी एक बात होनी चाहिए, उसी का नाम बहादुरी होता है।

असफलता मिलने पर भी strong बने रहें

क्या हम ऐसे बच्चों की कल्पना कर सकते हैं? जिनके जीवन में कितने ही उतार-चढ़ाव आएँ, कितने भी उनके सामने असफलता के वातावरण बनें? लेकिन वे अपने भीतर के moral को कभी down न करें और वे भीतर से भी strong बने रहें और बाहर से भी स्वस्थ और प्रसन्नचित्त बने रहें। क्या हम ऐसे बच्चों की कल्पना कर सकते हैं? अगर हम विचार भी करते हैं तो हम बच्चों के साथ में न्याय कर पाते हैं। जब हमारे अन्दर इस तरह का विचार ही नहीं होगा तो हम न्याय भी नहीं कर पाएँगे। यह जरूरी है कि उन बच्चों के अन्दर एक बहादुरी इस तरीके की पैदा की जाए, जिससे कि वे कभी भी अपना शरीर घात न करें, अपनी

आत्महत्या न करें और उनका mental level इतना strong रहे कि वह उन चीजों की कीमत को समझ सके, जिन चीजों के कारण से यह IQ बढ़ती है, memory power बढ़ती है और हम emotionally भी strong बनते हैं। आप समझ सकते हैं कि उन चीजों में वह चीज क्या है?

विवेकानन्द जी का प्रसंग

अगर मैं आपको एक विवेकानन्द जी का प्रसंग सुनाता हूँ तो आपको वह चीज समझ में आ सकती है। विवेकानन्द जी का नाम सबने सुना है और वह एक बार विदेश भी गए थे और विदेश में भी जाकर के वहाँ पर वे किताबों के कीड़े थे। पढ़ना, हर किताब को देखना, समझना, याद करना, यह उनका काम था। उन्हें एक बहुत बड़ी dictionary मिली। जिसे कह सकते हैं...encyclopedia of britain का और वह dictionary को अपने सामने रख लिए और उसके पन्ने पलट लिए और ऐसी कई dictionaries उन्होंने अपने सामने रख ली और उस समय पर वह बीमार थे, शारीरिक रूप से अस्वस्थ थे। वह सब पढ़ने के बाद वहाँ पर जो बैठे हुए लोग थे, उन्होंने कहा कि आपने इतनी सारी पुस्तकें अपने सामने क्यों फैला रखी हैं? क्या आपको पढ़ने का शौक है कि केवल पुस्तकें देखने का शौक है? उन्होंने कहा कि नहीं! मुझे पढ़ने का भी शौक है और learn करना भी मुझे आता है। आपने इतनी सारी पुस्तकें फैला रखी हैं? ये सब मैंने पढ़ ली हैं। आपने सब पुस्तकें पढ़ ली? उन्होंने कहा कि अगर तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा तो पूछ लो, देख लो कौन सी भी पुस्तक उठा कर के, किस पुस्तक में क्या, कौन सा subject है? कौन से पन्ने पर क्या लिखा है? मुझसे पूछ लो, मैं बता दूँगा। वहाँ खड़े व्यक्ति ने कोई सी भी पुस्तक उठा कर के, कोई से भी बीच में से पन्ने से पूछ लिया और विवेकानन्द ने बता दिया कि इस पन्ने पर यह subject लिखा हुआ है, यह matter लिखा हुआ है। जब उनसे पूछा गया कि इसकी वजह क्या है कि आप इतने intelligent हैं। जानते हो उन्होंने क्या उत्तर दिया? वह उत्तर महत्वपूर्ण है, बहुत ज्यादा intelligent होना महत्वपूर्ण नहीं है। किस कारण से वह intelligence बढ़ती है, यह कारण भी जानना महत्वपूर्ण है, जो आजकल की शिक्षाओं में यह subject ही नहीं है।

उन्होंने कहा, मैं ब्रह्मचर्य का पालन करता हूँ, ब्रह्मचर्य के कारण से यह स्मरण शक्ति, बौद्धिक शक्ति इतनी बढ़ती है, जिसके कारण से मैं जो भी पढ़ता हूँ, वह मुझे एक बार में याद हो जाता है, दो बार में याद हो जाता है, यह मेरे ब्रह्मचर्य का प्रभाव है। क्या हम यह अपेक्षा कर सकते हैं कि आज की schools में, colleges में बच्चों को ब्रह्मचर्य जैसे शब्द के बारे में भी कभी कुछ बताया जाता हो?

अगर हमारा बेटा बहादुर बनेगा तो किससे बनेगा?

अगर हमारा बेटा बहादुर बनेगा तो किससे बनेगा? मैं कहता हूँ...**B for bravo और braveness** जो आती है, वह ब्रह्मचर्य से आती है। अगर हम बच्चों को उस दिशा में knowledge नहीं देंगे तो वे कभी उस दिशा की ओर सोचने का विचार भी कहाँ से लायेंगे? वे उसको follow कर पाएँ न कर पाएँ, यह secondary matter है, first हमारा primary matter क्या होना चाहिए? हम उनको सही ज्ञान

दे, सही शिक्षा दे और उनके जीवन विकास की वे चीजें बताएँ, जिन चीजों की आज बच्चों के लिए महती आवश्यकता है। अगर ये चीजें हम बच्चों को थोड़ा भी एक बार भी उनके life में बता पाते हैं तो शायद हम उनके साथ में, उनकी जिन्दगी के साथ में न्याय कर पायेंगे और जिस कारण से हमें यह मनुष्य जीवन मिला है, उस कारण का अगर हमने एक percent भी अपने लिए apply कर लिया तो हमारा यह मनुष्य का जीवन मिलना सार्थक होगा। क्योंकि मनुष्य और पशु के जीवन में सिर्फ इतना ही अन्तर होता है कि पशु के अन्दर विवेक नहीं होता, विचारशीलता नहीं होती। मनुष्य के अन्दर विवेक होता है, विचारशीलता होती है और मनुष्य अगर उस विवेक और विचार को अपनाने लग जाता है, तो मनुष्य अपने मनुष्यपने को सार्थक कर लेता है; यह सिखाना जरूरी है। इसलिए कहा जाता है, जब भी कभी व्यक्ति कष्ट में होता है, तो वह उस कष्ट में किसकी शरण में जाता है? अपने गुरुओं की शरण में जाता है। व्यक्ति के लिए एक रास्ता हमेशा खुला होना चाहिए। जब भी वह किसी भी प्रकार की परेशानी में हो, कष्ट में हो, वह किसकी ओर झुके? अपना समाधान लेने के लिए कहाँ जाए? एक रास्ता उसका खुला होना चाहिए कि वह अपने आध्यात्मिक गुरु के पास में अपनी सारी दिक्कतों को बताने के लिए पहुँच सके। यह रास्ता अगर आज की पीढ़ी के लिए खुल जाएगा तो आज की पीढ़ी में जो हमें सर्वनाश दिखाई दे रहा है, यह कभी नहीं दिखाई देगा। एक रास्ता खोलना है। हर व्यक्ति के लिए अपने जीवन में एक आध्यात्मिक गुरु बनाना आवश्यक है और उस गुरु की कृपा से, उस गुरु के निर्देश से, वह अगर व्यक्ति अपना जीवन आगे बढ़ाएगा तो व्यक्ति के जीवन में कभी कोई उसे अपनी असफलताओं पर भी कभी निराशा उत्पन्न नहीं होगी। सफलता, असफलता यह तो जीवन का स्वरूप है।

असफलता में भी सफलता दिखने लग जाएगी

जैसे दिन और रात मिलकर के एक दिन बनता है। उसी तरीके से सफलता, असफलता ये सब चीजें मिलकर के जीवन बनता है। किसी एक का जीवन कभी भी निरन्तर सफलता से कभी सफल नहीं हुआ है और ऐसा व्यक्ति कभी सफल कहलाता भी नहीं है। चाहे आप दुनिया के किसी व्यक्ति को देख लेना। चाहे अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति को देख लेना, अब्राहम लिंकन की बात सुन लेना, चाहे अपने देश के राष्ट्रपतियों की बात सुन लेना...ये जितने भी लोग हुए हैं, ये सब असफल होते-होते ही सफल होते हैं। यह बात अगर हम बच्चों को सिखा पाए कि बेटा सफलता, सफलता से नहीं आती है; सफलता, असफलता से आती है। अगर यह सूत्र उनके दिमाग में बैठ गया तो हर बच्चे के लिए असफलता में भी सफलता दिखने लग जाएगी और अगर यह दिखने लग गया तो बच्चा कभी भी निराश नहीं होगा, अप्रसन्न नहीं होगा। कभी भी अपनी suicide करने की नहीं सोचेगा क्योंकि यह रास्ता ही सफल होने का है। इस तरह की चीजें हमें बच्चों की शिक्षा में अगर घुट्टी के साथ पिला दी जाएँ तो मैं कहता हूँ...उन बच्चों का जीवन उत्कर्ष के साथ में एक आदर्श जीवन बन सकता है। हमें इस तरीके के प्रयोग अपने बच्चों के साथ में करने चाहिए। शिक्षकों के अन्दर सबसे पहली भावना यह होनी चाहिए कि हम बच्चों के केवल उस नौवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं कक्षा की शिक्षा पर, पढ़ाई पर न ध्यान देते हुए उनके पूरे जीवन की ओर हम ध्यान देने की कोशिश करें कि इनका जीवन यहाँ से निकलने के बाद भी, इस college से निकलने के बावजूद भी बहादुरी के साथ चलता रहे, आत्मसम्मान के साथ इनका जीवन आगे बढ़े, अपने आत्मविश्वास के साथ ही यह जीवन की हर ऊँचाइयाँ प्राप्त करें। इस तरह से अगर शिक्षकों के अन्दर यह विचार होगा, यह भाव होगा तो हम उन बच्चों

के साथ में वह आत्मीयता बना सकते हैं कि जब भी वह बच्चा कष्ट में हो, अपने शिक्षक के पास आए और यह बात होनी चाहिए। यह बात हम भी महसूस करते हैं कि जब भी कभी हमने भी पढ़ाई की है, हम भी घर पर रहे हैं लेकिन जब भी कभी किसी भी तरह की दिक्कत आती है, तो हम कहाँ पहुँचते हैं?

पहले के समय के शिक्षकों में एक गुरु का आभास होता था, आज होता है या नहीं होता है, हमें पता नहीं है? पहले के समय पर जो विद्यार्थी रहते थे, उनके अन्दर इतनी आत्मीयता अपने शिक्षकों से बन जाती थी कि वह विद्यार्थी अपनी बात भले ही अपने माता-पिता को न बताए लेकिन गुरुजी को जाकर के बता देता था। यह क्यों होता था? एक विद्यार्थी के साथ में आत्मीयता बनाना, यह शिक्षक का सबसे पहला कर्तव्य होता है। अगर शिक्षक ने उन बच्चों के साथ में आत्मीयता बना ली तो पूरे जीवन के लिए वह बच्चा उस शिक्षक का बन गया। कभी भी वह बच्चा किसी भी तरह के कष्ट में होगा, अपराध-ग्रस्त हो जाएगा, वह सीधा-सीधा आपके पास दौड़ करके आएगा और आपसे अगर उसको समाधान मिल जाता है, तो उसके जीवन का एक सबसे बड़ा लक्ष्य पूर्ण हो जाता है कि वह अपने जीवन में कभी भी घबराए तो हम कहाँ जाएँ? भगवान तो सुनते नहीं, प्रभु मौन रहते हैं। सुनने वाला कौन है?

सुनने वाला कौन है?

जिनको हमने अपने से बड़ा माना, जिनके पास हमने शिक्षा ग्रहण की, उन शिक्षकों के पास में अगर वह बच्चा आता है, तो इस शिक्षक की भी यह सार्थकता हो जाती है कि बच्चा अगर हमारे पास आ रहा है मतलब हमारा जीवन भी बहुत अच्छा है। हमने बच्चे के साथ में आत्मीयता दिखाई है। हमने बच्चे को केवल pass नहीं कराया है, उसके व्यक्तित्व के विकास को भी हमने उसके सामने रखा है और उसी के कारण से बच्चा आपसे जुड़ा रहता है। यह शिक्षक और विद्यार्थी के बीच का एक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध की पवित्रता अगर कहीं विच्छिन्न हो रही हो तो उसके लिए भी बीच में गुरु आपके समक्ष आ जाते हैं, जो इन सम्बन्धों को बनाने के लिए फिर से चाहते हैं कि वह विद्यार्थी शिक्षकों के प्रति अनुराग को प्राप्त हो और शिक्षक भी विद्यार्थियों के प्रति अनुराग को धारण करें, जिसके कारण से एक दूसरे के जीवन की पूरक बनकर के यह पद्धति जो गुरु और शिष्य की पद्धति है, निरन्तर चलती रहे। इस चीज की आवश्यकता आप लोगों को महसूस होनी चाहिए, बड़े-बड़े राजाओं को भी इन चीजों की जरूरत पड़ती है।

राजा श्रेणिक के जीवन का संघर्ष

इतिहास प्रसिद्ध एक राजा हुए भगवान महावीर स्वामी के समय पर...राजा श्रेणिक! नाम सुना है आपने?



राजा श्रेणिक और वह राजा श्रेणिक जिनके लिए अपने ही घर में अपनी ही पत्नी से संघर्ष उत्पन्न होने लगा। लेकिन उस संघर्ष की कहानी में भी हम देखते हैं, व्यक्ति संघर्ष करते हुए भी अगर सही रास्ते पर चलता है, उद्देश्यों के साथ चलता है तो उन संघर्षों में भी वह सफल होता है। राजा श्रेणिक ने परीक्षा ले ली। मुनि महाराज के गले में मरा हुआ एक नाग डाल दिया और उसके बाद जब उन्होंने देखा कि मुनि महाराज आँखें

खोलने के बावजूद भी रानी की सेवा पर भी प्रसन्न नहीं हैं और हमारे अपराध पर भी हमसे क्रुद्ध नहीं हैं। उनकी दृष्टि किसी पर भी अनुराग की अधिक नहीं है और वह दोनों के लिए बराबर आशीर्वाद दे रहे हैं, इतना समत्व का भाव जिसके अन्दर होता है, तो आचार्य कहते हैं...परम ज्ञान, आत्मबोध, केवलज्ञान उसी के अन्दर प्रविष्ट कर जाता है। क्या चाहिए हमें? हमारे आदर्श हमेशा क्या सिखाते हैं? समत्व का भाव, गीता में जगह-जगह पर यह उपदेश मिलेगा...समत्व की शिक्षा। समत्व क्या बला है? अपने mind को इस तरीके से प्रशिक्षित करना कि वह हर परिस्थिति में अपने आप को balance रख सके। यह mind की balancing, यह किससे आएगी? यह समत्व से आती है और यह समत्व की सीख देने के लिए हमारे सामने इस तरह के महापुरुष होते हैं। राजा मुनि महाराज के समक्ष बैठा है। उनको प्रणाम करके, उनकी पूजा करके अब वह देख रहा है कि यह कितने शान्त चित्त स्वभाव के, परम बोध को प्राप्त यह मुनि महाराज सब तरह से समर्थ होते हुए भी हमारे ऊपर इन्होंने क्षण भर भी क्रोध नहीं किया। दोनों राजा और रानी दोनों के प्रति एक समान वृत्ति को देख कर के राजा के मन के अन्दर यह विचार आने लगा कि वास्तव में साधुता अगर होती है, तो ऐसे साधुओं में ही होती है। मुनिता अगर होती है तो ऐसे मुनिराजों में ही होती है और अगर साधना का कोई प्रतिफल होता है, तो वह यही होना चाहिए कि हमारे अन्दर बिल्कुल भी क्रोध का भाव विपरीत परिस्थितियों में उत्पन्न न हो।

श्रेणिक का पश्चाताप

यह बात राजा श्रेणिक ने अपने आप मुनि महाराज के पास में बैठ कर के सीख ली। जिसे आप कहते हो... चाहे कोई उनके लिए आरती उतारे और चाहे कोई पत्थर मारे। दोनों में तुल्य वृत्ति रखना, समान वृत्ति रखना और जब यह बात सामने आ गई तो राजा अपने आप पश्चाताप में डूबने लगा। राजा को अपने अपराध का बोध होने लगा कि मैंने गलत कर दिया। अपने आप उसकी आँखें नम होने लगी और वह विचार करने लगा कि इस अपराध से अब मुक्ति कैसे मिल सकती है? मैंने कितनी बड़ी गलती कर दी कि इतने बड़े महात्मा के लिए हमने उपद्रव कर दिया, उनको तीन दिन तक पीड़ित रखा और तीन दिन तक हमने उनको कष्ट में रखा। लेकिन महात्मा ने हमें फिर भी क्षमा कर दिया लेकिन हम कैसे इस अपराध से मुक्त हो पायेंगे? कैसे हम इस पाप से अपने आप को अब बचा पायेंगे? ऐसा विचार करते-करते उस श्रेणिक के अन्दर यहाँ तक विचार आ गया कि मैं अपना सर अपनी तलवार से काट लूँ, इतना उसे आत्मनिन्दा का भाव आ गया। महाराज परम ज्ञानी थे, उन्होंने उस श्रेणिक के भावों को देख कर के कहा...श्रेणिक! जो तुम सोच रहे हो, वह गलत सोच रहे हो, ऐसा कभी भी मत करना। आत्महत्या करने से कभी आत्मा का अन्त नहीं हो जाता। जो कष्ट तुम्हें आज है अगर तुम उनको जागृति के साथ में दूर करने की कोशिश करोगे, अपने अपराध को जागृति के साथ में उसका प्रायश्चित्त करने की कोशिश करोगे तो वह अपराध तुम्हारा इसी जन्म में साफ हो सकता है। अगर तुमने केवल मृत्यु कर ली अपनी, आत्महत्या कर ली अपनी और तुमने सोचा कि हम इस अपराध से मुक्त हो गए तो यह अपराध तुम्हें जन्म-जन्म तक तुम्हें पीड़ा देगा क्योंकि आत्महत्या सबसे बड़ा पाप है। दूसरों को मारने से भी ज्यादा बड़ा पाप अपनी मृत्यु करना है।

यह कौन ने समझाया? मुनि महाराज ने समझाया। सबको कौन समझाते हैं? मुनि महाराज समझाते हैं,

गुरु समझाते हैं। जब व्यक्ति के दिमाग खराब होते हैं, तब उसके लिए एक मात्र दवाई अगर कहीं मिलती है तो वह केवल साधुओं के पास मिलती है, गुरुओं के पास मिलती है। वह दवाई जो आपको कोई doctor नहीं दे सकता, कैसे भी आपके मन को कोई उठा नहीं सकता जो बिगड़ रहा है और उस समय पर महाराज ने उसके लिए कहा...राजा श्रेणिक! गलती नहीं करना, आत्महत्या से तुम बच नहीं जाओगे आगे के अपराधों के पाप से और यह आत्महत्या तुम्हारे लिए फिर जन्म-जन्म में न जाने कितनी कुगतियों में ले जाए, कुयोनियों में ले जाए, इसका कोई अता पता नहीं है। इसलिए अपने पाप जागृत रहते हुए ही दूर करने की कोशिश करो। जैसे तुमने पाप किया है, वैसे ही अब पुण्य करो। जिस अन्धकार के साथ मैं, जिस सोई हुई अवस्था में तुमने पाप किया है, आज अगर तुम्हें जागृति उत्पन्न हो गई है, तो अब उस जागृति में तुम गुरुओं की सेवा करना सीखो। उनकी आराधना करना सीखो, उनकी पूजा करना सीखो। यही पुण्य तुम्हारे उस पाप को मिटाने में कारण बनेगा। यह करना अगर सीख गए तो फिर तुम्हें आत्महत्या की कोई जरूरत नहीं है, मरने की कोई जरूरत नहीं है। यह काम कैसे होगा? यह तो जागृति के साथ ही होगा। ऐसे गुरुओं की स्तुतियों में आचार्यों ने भी अनेक-अनेक छन्द लिख रखे हैं। जब भी कभी साम्य भाव की उत्कृष्टता का उदाहरण दिया जाता है, तो इसी तरह के छन्द बड़े-बड़े ध्यान के शास्त्रों में, ज्ञानार्णव जैसे शास्त्रों में आचार्यों ने लिख रखे हैं।

ज्ञानार्णव जैसे शास्त्रों में आचार्यों ने लिख रखे हैं

‘एकः पूजां रचयति नरः पारिजातप्रसूनैः, क्रुद्धः कण्ठे क्षिपति भुजगं हन्तुकामस्ततोऽन्यः’ दोनों चीजें इन्हीं लाइनों में लिखी हुई हैं और दोनों स्थितियाँ हमारे सामने जो बन रही हैं, वे ऐसी ही हैं। कभी रानी चलना को देखो! एक पूजा कर रही है- **‘एकः पूजां रचयति नरः पारिजातप्रसूनैः’** पारिजात के फूलों से कोई व्यक्ति पूजा कर रहा है और एक व्यक्ति क्रुद्ध होकर के गले में साँप डाल देता है उनको मारने की इच्छा से **‘हन्तु कामस्ततोऽन्यः’** लेकिन **‘तुल्या वृत्तिर्भवति च तयोर्यस्य नित्यं स योगी’** जिसके अन्दर इन दोनों चीजों के प्रति तुल्य वृत्ति रहती है, समान वृत्ति रहती है...आचार्य कहते हैं- उसी का नाम योगी है, वही योगी है। यही योगी क्या करता है? **‘साम्यारामं विशति परमज्ञानिदतावकाशम्’**, साम्य के बगीचे में मतलब उद्यान में, जिसमें केवल साम्यभाव के फूल लगते हैं, उसमें वह व्यक्ति प्रवेश कर जाता है और उसमें जो व्यक्ति प्रवेश कर जाता है, उसे ही परम ज्ञान प्राप्त हो जाता है। परम ज्ञान का अवकाश उन्हीं के लिए है, जिनके अन्दर साम्यभाव उत्पन्न हो जाता है। यह अध्यात्म की शिक्षाएँ आप सभी के लिए जानना जरूरी हैं। साम्यभाव एक ऐसी आत्मा की स्थिति है, जिसमें कि हमारी mentality हमेशा एक equal mode में रहे, neutral mode में रहे और हम हर परिस्थिति का सामना करने के लिए अपने आप को समर्थ बना पाएँ। इस तरह की शिक्षाएँ आज के बेटा-बेटियों के लिए भी जरूरी हैं और अगर शिक्षकों को लगे कि हमारे लिए भी जरूरी हैं तो एक workshop आपके लिए भी अलग से कराई जा सकती है। अगर आपको लगे कि ऐसी workshop हमारे लिए भी जरूरी है और यह मैं समझता हूँ कि यह हर उस आदमी के लिए जरूरी है, जो आदमी, आदमी होकर के भी अभी उसे लग रहा है कि मैं अभी परिपूर्ण आदमी नहीं हूँ। यह जो आपको अभी लगता है कि मैं परिपूर्ण नहीं हूँ, बस! यही कमी आपके लिए पूर्ति तब होती है जब आप अपना झुकाव थोड़ा सा आध्यात्मिक जागृति की ओर करने लग जाते हैं और आपको अपने प्रश्न का समाधान मिलने लग जाए। **‘कोऽहम्’** ज्यादा कुछ नहीं याद करना। बस! दो अक्षर याद करके जाना यहाँ

से...**कोडहम्?** आज हमने महाराज के उपदेश में क्या सीखा? सीखा कुछ नहीं, एक प्रश्न दे दिया महाराज ने। अब मैं उस प्रश्न को ही बस गुनगुनाता रहूँ...**कोडहम्?** उत्तर कभी न कभी मिल जाएगा, अपने आप गुरु की कृपा से, प्रभु की कृपा से, आपके ही जहन में अपने आप उत्तर आ जाएगा। बस! आप प्रश्न के पीछे पड़े रहो। वह प्रश्न क्या है? **कोडहम्?** मैं यह मान के चलूँ कि सभी शिक्षकों को यह प्रश्न याद हो गया और इस प्रश्न को वे चलते फिरते दिन में दो-चार बार स्मरण कर लेंगे। अपने आप चलते-फिरते कभी भी, स्मरण में आ जाना चाहिए दिन में दो-चार बार बस! जब आपको स्मरण हो जाएगा तो जैसे यह भाई साहब सामने बैठे हैं, ये दोबारा आए हैं, तिबारा आए हैं; ऐसे सभी शिक्षक अब बुलाने नहीं पड़ेंगे, अपने आप आ जायेंगे और यह रास्ता सबके लिए खुला रहता है। गुरु के पास आने का रास्ता हमेशा खुला रहना चाहिए, उसके लिए किसी को रास्ता दिखाने की भी जरूरत नहीं है। बस! एक बार अगर हम आ गए तो बस हमें पता होना चाहिए कि हाँ! यह रास्ता हमारे लिए अब खुला हुआ है। always यहाँ पर entry चल रही है, किसी के लिए कोई रोक-टोक नहीं है। अगर यह रास्ते पर आप एक-दो बार अपने आप कदम बढ़ाने लग गए तो बस! यहीं से आपके अन्दर आध्यात्मिक जागृति शुरू हो जाएगी।

एक बार लाया जाता है और दूसरी बार खुद-ब-खुद आया जाता है। एक बार बच्चे से कहा जाता है कि बेटा दवाई खा ले, ठीक हो जाएगा और एक बार उसके साथ में अगर दवाई खिला दी और उसे स्वास्थ्य आने लगा तो बच्चा दूसरी बार अपने आप कहता है...मम्मी! हमें वही वाला tonic चाहिए, हमें वही वाला दवाई चाहिए। अब मम्मी कहती है...बेटा! ठीक हो गया, तुझे अब जरूरत नहीं। नहीं नहीं, मुझे फिर भी खाना है, अभी और healthy बनना है, तो बच्चा अपने आप आएगा। मैं चाहता हूँ...आप सभी लोग इसी तरह की आध्यात्मिक जागृति का भी एक कार्य अपने जीवन में प्रारम्भ करें, जीवन की सार्थकता इसी से होगी। इस तरीके के कार्य हम अक्सर कराते रहते हैं। अभी कल नहीं, कल से ही तो? आज तो 16 तारीख हो गई न, कल 17 तारीख से यहाँ पाँच दिन का एक बहुत अच्छा स्वात्म-साधना शिविर लग रहा है। जिसमें पाँच दिन तक लोग totally मौन रहेंगे। न उन्हें अपने family के किसी member से मिलने दिया जाएगा, न वह किसी तरह से mobile अपने पास में रखेंगे, उनके पास न कोई परिग्रह होगा, न कोई किताबें होंगीं, न कुछ होगा। सिर्फ वे होंगे और उनका अध्यात्म होगा, उनकी आत्मा होगी उनके साथ में। तीसरी चीज अगर कुछ होगी तो मैं बीच में interfere करूँगा। यह कार्य कल से शुरू होने वाला है। अभी भी जिन लोगों का अगर कोई मन बन रहा हो, तो team के लोगों से सम्पर्क कर सकते हैं। मैंने कह रखा है...थोड़ा सा सतना के लोगों को भी preference देना। ऐसा नहीं है कि सब बाहर-बाहर के ही लोग पहुँच जाएँ और सतना के लोगों को कुछ न मिले। अगर आपकी इच्छा हो तो उन लोगों से मिल लेना। दो-पाँच entries आप लोगों की और extra हो सकती हैं, हमारे कहने से। ये वे चीजें होती हैं जो जीवन में एक बहुत बड़ा change लाने वाली चीजें होती हैं। दुनिया की आपाधापी से हट कर के हम अपने आप को एक नए मोड़ पर अगर डालना चाहते हैं तो इस तरह की कार्यशालाएँ दुनिया में बहुत कम जगह होती हैं और यह हो रही हैं। अगर आपका interest आगे बनेगा तो इस तरह की हम programming अगले महीने में फिर एक बार और कर सकते हैं। आप लोग अपने interest को बस बनाए रखें और यह ध्यान रखें, आज राजा श्रेणिक के लिए मुनि महाराज के माध्यम से उन्हें आत्महत्या करने से रोक दिया गया और उनके जीवन में जागृति आ गई। मुनि महाराज ने कहा...देखो राजन! मरने-मारने से कभी कोई संसार का अन्त नहीं होता

है और यह बात तुम्हें पार्श्वनाथ भगवान के चरित्र को सुनकर के समझ में आनी चाहिए। किसको सुनकर के? आगे आने वाले दिनों में अब राजा श्रेणिक भगवान महावीर स्वामी से प्रश्न करेंगे कि भगवन्! पार्श्वनाथ भगवान के जीवन में ऐसा क्या था कि वे अपने ही बैरी के लिए हमेशा क्षमा करते रहे और उनका वह बैरी उनके लिए हमेशा कष्ट देता रहा। भगवान पार्श्वनाथ का चरित्र सुनने का कार्य कल से कथा के माध्यम से प्रारम्भ होगा।

कथा! उसमें आपको सिर्फ पाठ करना है। जैसे दुनिया में आप देखते हो, यह सावन का महीना है, सब लोग **रामचरित मानस** का पाठ करते हैं। जैन लोग कभी कोई पाठ नहीं करते हैं। जैसे कि इनके यहाँ कोई कथा ही न हो, कोई पाठ ही न हो। ठीक उसी तरीके से चौपाई छन्दों में, दोहा छन्दों में, संगीत के साथ में आपको पाठ करना है और वह कहानी कैसे आगे बढ़ रही है? वह बीच-बीच में हम थोड़ा सा पीछे से आवाज देते रहेंगे ताकि आपको समझ में आता रहे कि यह कहानी किधर जा रही है। आगे के पाँच-छह दिनों में हम उस कहानी को भी पूरा सुनेंगे और 23 तारीख तक कोशिश करेंगे, भगवान पार्श्वनाथ की जो मोक्ष सप्तमी आ रही है, तब तक यह भगवान पार्श्वनाथ का चरित्र भी बीच में हमें सुनने को मिल जाए। आने का time क्या होगा? कहानी बहुत बड़ी है। एक कहानी में बीच में दूसरी कहानी शुरू हो जाए तो इसी का नाम **पुराण** कहलाता है। क्या चल रहा है यह? हाँ! यह बहुत बड़ा पुराण चल रहा है। अब यह कौन सा पुराण चल रहा है। यह हम निष्कर्ष बाद में निकालेंगे लेकिन कल से पार्श्वनाथ भगवान की कथा शुरू होगी, जो आगामी 22, 23 तारीख तक पूर्ण करने की कोशिश करेंगे। अगर हो पाई तो ठीक, नहीं हो पाई तो भगवान के मोक्ष के बाद भी थोड़ी बहुत चलाते रहेंगे।

गाथा: 06

कालरूपी घटीयंत्र के द्वारा सभी प्राणी घुमाये जाते हैं

दिवस-णिसा-घडिमालं, आउ-सलिलं जीया(आ)ण घित्त्तूणं।

चंदाइच्च-बइल्ला, काल-रहट्टं भमाडंति ॥6॥

अन्वयार्थ- (चंद-आइच्च-बइल्ला) चंद्र 'और' आदित्य यानी सूर्य रूपी, बैल (जीयाण) जीवों के (आउ-सलिलं) आयुरूपी, जल को (घित्त्तूणं) ग्रहण करके (दिवस-णिसा-घडिमालं) दिन 'और' रातरूपी, घटिमाल अर्थात् छोटे-छोटे घटों/घड़ों से बनी हुई चूड़ी के आकार वाली गोल माला 'जैसे' स्वरूप वाले (काल-रहट्टं) कालरूपी, रहट/अरहट्ट यानी घटियंत्र को (भमाडंति) भ्रमाते अर्थात् 'ऊपर-नीचे' घुमाते रहते हैं ॥6॥

बहुत दिनों के बाद आज सभी कार्यक्रमों को बीच-बीच में सम्पादित करते हुए अपने उस पुराने भाव पर आते हैं, जहाँ एक ओर वैराग्य शतक प्रारम्भ हुआ था, एक ऐसी कृति आपके समक्ष रखी थी, जिसके कर्ता के विषय में भी कुछ ज्ञात नहीं है लेकिन फिर भी कुछ प्राचीन गाथाएँ जो अन्य ग्रन्थों में भी नहीं मिलती हैं, उनको जब यहाँ पर आपके समक्ष थोड़ा सा पढ़ा गया तो उस समय पर वे केवल चार-पाँच गाथाएँ हो पाई थी और कुछ दूसरा प्रसंग आ गया था। आज हम उसी वैराग्य शतक की एक छठवीं नम्बर की गाथा पढ़ते हुए आगे की बात पढ़ते हैं...



दिवस-णिसा-घडिमालं, आउ-सलिलं जीया(आ)ण घित्त्तूणं।

चंदाइच्च-बइल्ला, काल-रहट्टं भमाडंति ॥6॥

थोड़ा सा पूर्व आचार्यों की, ऋषियों, मुनियों की बात को ध्यान में रखते हुए हम वर्तमान के परिवेश को देखेंगे। कहा जाता है... 'दिवस-णिसा-घडिमालं' दिन और रात, ये घटी मालाओं की तरह हैं, घट मालाओं की तरह हैं। 'आउ-सलिलं' आयु सलिल मतलब जल की तरह है 'जीयाण घित्त्तूणं' जीवों को ग्रहण करके 'चंदाइच्च-बइल्ला' चन्द्र और आदित्य ये दो बैल हैं 'काल-रहट्टं भमाडंति' जो काल की रहट को घुमाते रहते हैं। यहाँ पर काल के विषय में कुछ आपसे कहा जा रहा है। शब्दावली प्राचीन काल की है, वर्तमान में भी समझी जा सकती है।

काल एक रहट के सामान है

एक रहट होती है...रहट! कई लोगों को पता भी होगा और उस रहट में कई घड़े लगे हुए रहते हैं, घड़ों की माला लगी रहती है। पानी कुएँ से निकलता है, अन्दर से आता है, उन घटों में भर कर के और बाहर आकर के वह पानी उलीच दिया जाता है। इस तरह की एक chain चला करती है, इसको घटीयंत्र भी कहते हैं, रहट भी कहते हैं। पुराने लोग पानी निकालने के लिए इस तरह के system का use किया करते थे। आप लोगों ने किसी ने देखा है? सुना है? यह C.A. association के लोग बैठे हैं, इन्होंने भी देखा है? उसी रहट की एक उपमा देते हुए, उसी को एक सामने example बनाते हुए यहाँ कुछ ऋषि-मुनि अपनी बात कह रहे हैं कि काल तो एक रहट हो गई। जो पूरा system है, यह एक काल हो गया और यह भ्रमण कराता रहता है। कौन? चन्द्र और आदित्य रूपी उसमें बैल जुते हुए हैं क्योंकि वह जो रहट घूमती है तो बैलों के माध्यम से घूमती है, वह जोती जाती है। यहाँ पर जो यह संसारी प्राणी संसार में जी रहा है, यह किन बैलों के द्वारा जोता जा रहा है? सूर्य और चन्द्रमा दो बैल हैं, जिनके द्वारा यह काल रहट को घुमाया जा रहा है और उसमें जो दिन और रात हो रहे हैं, ये घड़े की तरह हैं, जो घड़े उसमें लगे हुए हैं, वे घटमाल कहलाते हैं, घटों का समूह है। वे दिन और रात कई संख्या में होते रहते हैं। उन घड़ों के अन्दर भरा हुआ जो जल है, वह हमारी आयु रूपी जल है। हमारी जो आयु है, वह जल की तरह उन घड़ों में भरी हुई है और ग्रहण कर लिए गए ये जीव जो हैं, इन जीवों को उस काल ने ग्रहण कर लिया है। यानी काल किसको घुमा रहा है? काल ने किसको ग्रहण कर लिया है? उन जीवों को ग्रहण कर लिया है।

जीवन का काल चक्र

जो भी जीव यहाँ पर बैठे हैं या कहीं पर भी अपना जीवन जीते हैं, उन जीवों को भी यह पता नहीं होता कि हमने जीवन अपना कब से शुरू किया? कहाँ से शुरू किया? और हमारा जीवन कहाँ पर अन्त को प्राप्त होगा? अगर हमारे जीवन में कहीं से यह शुरुआत हमको समझ नहीं आती है, तो भी यह शुरुआत चलती ही रहती है। यह चक्र है, जिसे हम कालचक्र कहते हैं। यह कालचक्र केवल धर्मगुरुओं के समक्ष बैठ कर के ही समझाए जा सकते हैं। इन कालचक्रों के बारे में जानकारी आपको लौकिक शिक्षा में नहीं मिलेगी, अलौकिक शिक्षा की पाठशाला में ये कालचक्र सिखाए जाते हैं। अन्यथा physics, chemistry में तो हमने nitrogen चक्र, oxygen चक्र सब पढ़े हैं लेकिन यहाँ पर आकर के हमें यह कालचक्र पढ़ने को मिला और इस कालचक्र के माध्यम से बताया जाता है कि जीवों की जो आयु है, वह गल रही है।

आयु का निरन्तर व्यय हो रहा है

आयु प्रति समय बह रही है और उसको बहाने वाला कौन है? हमारे साथ यह system चल रहा है। दिन और रात होते हैं! दिन-रात बीतने पर ही हम सप्ताह तक पहुँचते हैं। सप्ताह से ही फिर हम एक पक्ष तक पहुँच जाते हैं, पखवाड़े तक पहुँच जाते हैं। पक्ष से ही हम फिर वही गिनती आगे बढ़ाते-बढ़ाते एक महीने तक पहुँच जाते हैं। एक महीने से फिर हम छः महीने तक पहुँच जाते हैं, छह महीने से हम एक वर्ष तक पहुँच जाते हैं और फिर ऐसे ही हर वर्ष एक गांठ और हम लगा लेते हैं और उसे वर्षगांठ के रूप में मना भी लेते हैं। जब

यह वर्षगांठ चलती रहती है और वर्ष की जो गांठ मनाई जाती है, वर्षगांठ जिसे हम कहते हैं तो सामान्य से लोगों के लिए बड़ा प्रफुल्लित करती है कि हमने एक वर्षगांठ मना ली...हमारी एक वर्ष और आगे की बढ़ गई और हम इतने बड़े हो गए। जब यह वर्षगांठ चलती है तो इसके पीछे जो system चल रहा होता है, उस system को दिखाने का प्रयास आचार्य करते हैं, ऋषि-मुनि करते हैं।

समय की अपनी अनवरत गति

हम तो वर्ष गिन रहे हैं लेकिन हमारा जीवन जिससे चल रहा है, वह जो आयु कर्म है, उस आयु कर्म को देखते हुए आचार्य कहते हैं कि आयु का पानी यह फैल रहा है, गल रहा है, बह रहा है। इस आयु के पानी को निकालने वाले जो दो बैल लगे हुए हैं, चन्द्रमा और सूर्य, जिनके कारण से हर दिन और हर रात हमारे सामने एक दिन-रात गुजर जाता है और ऐसे दिन-रात जब गुजरते जाते हैं तो महीने भी गुजर जाते हैं, ऋतुएँ भी गुजर जाती हैं, वर्ष भी गुजर जाते हैं और कई चातुर्मास भी गुजर जाते हैं, सब गुजर जाता है। यह किससे गुजर रहा है? जब चातुर्मास प्रारम्भ हुआ था तब लगता था, कितने महीने का चातुर्मास है? पाँच महीने का चातुर्मास है, महाराज यहाँ पाँच महीने विराजमान रहेंगे। आपको पता है पाँच महीने में से कितने महीने गुजर गए हैं? कितने गुजर गए हैं? दो महीने, पाँच दिन। देखो! सबके पास पूरी जानकारी है और रखनी भी चाहिए। जब ये दो महीने गुजर गए, आपको लग रहा है कैसे गुजर गए? बस! अपने आप गुजर जाते हैं। दिन होता है रात होती है, दिन होता है रात होती है, सप्ताह बीत जाते हैं। एक बीच में Sunday आता है बस, Sunday के बाद फिर Monday, फिर Saturday, फिर Sunday, फिर Monday और ऐसे करते-करते चार Sunday बीत गए, एक महीना बीत गया। फिर एक महीने के बाद में दूसरा महीना भी व्यतीत हो गया। कभी गर्मी-गर्मी-गर्मी करेंगे, फिर धीरे-धीरे वर्षा-वर्षा-वर्षा होगी, फिर धीरे-धीरे ठण्ड-ठण्ड-ठण्ड चिल्लाएंगे। सब कुछ होता रहेगा, ऋतुएँ परिवर्तित होती रहेंगी और यह समय गुजरता चला जाएगा। इसके पीछे हमें क्या सीखना? यह ध्यान इंगित कराने का काम ही ऋषियों, मुनियों का होता है। आयु गल रही है, उसको कोई रोक नहीं सकता। सूर्य-चन्द्रमा के उदय होते हैं उनको कोई रोक नहीं सकता। यह हमारे लिए दिन और रात हो रहे हैं इनको कोई रोक नहीं सकता। रुकेगी चीज कौन सी? यह सोचने की बात है।

समय के आगे सब बेबस हैं

आप यह सोचो कि हम किस चीज पर अपनी command कर सकते हैं? सूर्य-चन्द्रमा के भ्रमण पर अपनी command कर सकते हैं क्या? चन्द्रलोक में पहुँच गए, सूर्यलोक में जाने की तैयारी है, क्या कर लोगे? उनकी गति को control कर लोगे क्या? कुछ नहीं कर सकोगे। वह system जैसा चल रहा है, चलता रहेगा और उस system के अनुसार जो दिन-रात चल रहे हैं, वे चलते रहेंगे...ऋतुएँ बदल रही हैं, वे बदलती रहेंगी। हमारे हाथ में क्या है? हम किस चीज को control कर सकते हैं? आप कैसे ऋतुओं को आने से रोक सकते हैं? दिन-रात होने से रोक सकते हैं? चन्द्रमा-सूर्य की गति को रोक सकते हैं? आप कुछ नहीं कर सकते हैं। बस आप इतनी सी खुशी मना सकते हैं कि हम किसी land पर landing कर गए, तो बस यही हमारे लिए खुशी की बात है। अब उसको हमने assume कर लिया कि वह चन्द्रमा है

या सूर्य है। जो आपकी फिरकत में हो, वह आप उसको use कर लो। लेकिन सत्यता यह है कि न हम कभी चन्द्रमा पर पहुँच सकते हैं जो real चन्द्रमा है और न कभी हम सूरज पर पहुँच सकते हैं जो real sun है। assume कर लो आप! आप अपनी एक distance maintain कर लो कि इतनी distance पर ये चीजें हैं, इतनी distance पर ये चीजें हैं। आप अपनी एक theory बना लो और अपनी उस theory में बनाकर के उसमें खेलते रहो। जैसे छोटे बच्चों को हम खिलाते रहते हैं, ऐसे ही कुछ लोग हम लोगों को खिलाते रहते हैं और यह खेल जो चल रहा है, यह भी आपको बहुत देर बाद समझ में आएगा कि क्या खेल चल रहा है?

दुनिया एक खेल - इसे खेलो लेकिन इसमें रमना नहीं

दुनिया में सब लोग एक दूसरे को खिलाते रहते हैं, सब दुनिया में खेल चल रहे हैं। चाहे राजनीति के खेल हो, चाहे देश-विदेशों के खेल हो, चाहे G20 के सम्मेलन हो, चाहे India vs भारत हो, चाहे भारत vs India हो, सब कुछ खेल हैं। ये खेल सब आपके सामने आयेंगे, समय-समय पर आयेंगे, आपको देखने को मिलेंगे। आपकी जिन्दगी रहेगी तो आप देखोगे, नहीं रहेगी तो जिनकी जिन्दगी होगी वे देखेंगे। खेल तो चलते रहेंगे। दुनिया किसका नाम है? इस खेल का नाम ही दुनिया है बस! दुनिया में आए हो तो दुनिया के खेल तो देख कर के जाना ही पड़ेगा, नहीं तो आए किसलिए? अब इस दुनिया में आकर के हम दुनिया के खेल देख रहे हैं। खिलाड़ी भी बन रहे हैं या उन खेलों में हम पिस रहे हैं। क्या कहा? एक खेल देखने वाला होता है, एक खेल खेलने वाला होता है और एक खेल में पिसने वाला होता है। इन तीन चीजों में अगर हमें थोड़ा सा अन्तर समझ में आएगा तो हम समझ पायेंगे कि हम जिन्दगी समझदारी से जी रहे हैं या नासमझी से जी रहे हैं। खेल तो दुनिया के चल रहे हैं, कोई न कोई खेलेगा। खेल देखने वाला भी कोई न कोई होगा, खिलाड़ी भी कोई न कोई होगा, उस खिलाड़ी में कभी हमारा भी नाम आ सकता है। हम भी कोई न कोई खेल खेल रहे हो सकते हैं। सब अपना-अपना खेल रहे हैं लेकिन उस खेल में जो पिस जाते हैं, उन पर दया आती है। समझदार आदमी को दुनिया के खेल में कभी भी पिसना नहीं चाहिए।

खेलना आवश्यक

सब खेल खेल रहे हैं। अभी India vs भारत का खेल चल रहा है। कभी भारत और पाकिस्तान का खेल चला करता था, अभी India और भारत का खेल शुरू हो गया है। यह भी खेल है, सब खेल रहे हैं। खिला कौन रहा है? चाहे वह भारत सरकार खिला रही हो, चाहे वह PM मोदी खिला रहे हो, कोई भी खिला रहा हो, सब खेल रहे हैं। हम लोग क्या कर रहे हैं? खेल को देख रहे हैं। पिस तो नहीं रहे? पिसना है क्या? दुनिया के हर खेल को देखो। चन्द्रमा पर जा रहे हैं, हाँ! जाइए; सूरज पर जा रहे हैं और जल्दी जाइए; मंगल पर जा रहे हैं, बहुत जल्दी कीजिए। सब कुछ देखो, सब कुछ जानो, दुनिया के सब खेलों को देखो लेकिन किसी भी खेल में पिसो मत। दुनिया का हर आदमी एक न एक खेल खेल रहा है और वह खेल उसके अपने जीवन में कोई न कोई वह बना लेता है। कोई आदमी business करता है, तो business में जो उसके लिए सामान होते हैं, वह उन सामानों से खेलता रहता है। कोई ग्राहकों से खेलता रहता है, कोई पैसे से खेलता रहता है। यहाँ C.A. की association बैठी है, ये किससे खेल रहे हैं? ये पैसे से खेलते हैं, ये

दूसरे खिलाड़ी हैं। कमाएगा कोई, गंवाएगा कोई लेकिन बीच का सब कुछ manage करने का काम या maintain करने का काम इनका रहेगा कि भाई! कितना कमा लिया, कितना गंवा लिया? बस! आप तो केवल audit करके बताते रहेंगे, यह इनका खेल है। बताओ अच्छा? यह खेल अच्छा है कि बुरा है? कमा रहा है कोई, गंवा रहा है कोई, इन्हें क्या करना है? इन्हें केवल balance बनाना है बस, sheet देना है, balance sheet बनाना है इनको और कुछ नहीं करना है। इनके सिर कुछ नहीं है। तुम कितना ही कमा लो, करोड़ों का ये आवक दिखा देंगे, करोड़ों की जावक दिखा देंगे, सब दिखा देंगे लेकिन इनके सिर पर कुछ नहीं आता है। इसी को कहते हैं...खेल खेलते हुए खेल में पिसना नहीं।

खेलो लेकिन निस्पृह भाव से

जैसे bank का cashier होता है, C.A. का काम केवल chart, balance sheet बनाना होता है, उसी तरीके से केवल दुनिया को देखते हुए, दुनिया में क्या आ रहा है? क्या जा रहा है? यह बस देखते रहो और उसके बीच में पिसो नहीं तो आप एक समझदार इंसान कहलाओगे और आपकी जिन्दगी समझदारी से निकलती चली जाएगी। हम कह सकते हैं कि जितने भी ये C.A. होते हैं, ये सब समझदार इंसान होते हैं। C.A. बनना एक समझदारी का खेल है हालांकि यह खेल आजकल थोड़ा tough हो गया है। selection भी tough हो गया है, मेहनत भी होती है लेकिन एक बार C.A. बनने के बाद में फिर आप अच्छा खेल, खेल सकते हो। अपने पास में भी आता है पैसा, ऐसी बात नहीं है, आता है लेकिन जो हम दूसरे के पैसे का केवल हम जो balance करते हैं, उसकी जो sheet बनाते हैं, उससे हमारे लिए कभी यह नहीं लगता कि अगर इसको करोड़ों की आवक हो रही है, तो पूछ लो किसी C.A. को खुशी होती हो। किसी के करोड़ कहीं पर और दूसरी जगह निकल गए तो किसी C.A. को कोई गम हो जाता हो। पूछ लो इनसे? बताओ कभी ऐसा होता है? लेकिन करोड़ों के साथ आप खेलते रहते हो, balance करते रहते हो। दुनिया में जीने का यही तरीका होता है। पैसा आ रहा है, पैसा जा रहा है; सूरज आ रहा है, चन्द्रमा जा रहा है; चन्द्रमा आ रहा है, सूरज जा रहा है। यही तरीका होता है; दिन आ रहा है, रात जा रही है; रात जा रही है, दिन आ रहा है। यह आना और जाना जिस तरह से प्रकृति के अन्दर चला करता है, अगर इसी तरह का भाव हमारे अन्दर भी आ जाए कि बस! हर चीज आ रही है, जा रही है; हमें केवल उसे देखना है, जानना है। तब दुनिया का खेल आपको बहुत अच्छी तरह दिखाई देगा लेकिन अगर आप उस खेल में ऐसे चिपक गए कि उसी खेल में आप पिसते चले गए और वह खेल आपको ही जिन्दगी में, आपकी ही जिन्दगी को जो है, पीसता चला गया तो फिर आप जो है, इस जिन्दगी को पा कर के बहुत कुछ खो देंगे और इसी की awareness देने के लिए ये गाथाएँ, ये सूत्र हैं।

काल रुपी रहट अथवा चक्रव्यूह से सुरक्षित बाहर निकलने की कला का ज्ञान आवश्यक

चन्द्रमा-सूर्य, दिन-रात, ऋतुओं का बदलना, यह सब चलता रहेगा। काल तुमको घुमा रहा है, काल ने इस जीव को पकड़ रखा है लेकिन जीव को यह पता पड़ जाना चाहिए कि हमें घुमाने वाला कौन है? हमारे समय को निकालने वाला कौन है? अगर यह समय निकल रहा है तो यह समय कैसा निकल रहा है? क्या पा कर के निकल रहा है? क्या खो कर के निकल रहा है? कुछ चन्द पैसों के लिए समय निकल रहा है? कुछ पा

लिया, थोड़ा सा पैसा, कुछ amount कुछ अपने पास इकट्ठा हो गया, इसके लिए समय निकल रहा है? सोचना पड़ेगा। समय किसके लिए निकल रहा है? business बढ़ाने के लिए समय निकल रहा है, बड़े होने के लिए समय निकल रहा है, पैसा इकट्ठा करने के लिए समय निकल रहा है, रिश्ते बढ़ाने के लिए समय निकल रहा है। यह सब करने के बावजूद भी तुम्हें क्या मिलेगा? यह भी सोचना पड़ेगा और इन सब चीजों को बढ़ाते-बढ़ाते, हम उसको एक सहज भाव में बढ़ा रहे हैं या वह बढ़ रहा है या हम उसमें पिस कर के अपने आप को बढ़ा रहे हैं या पिसते हुए हम अपने आप को महसूस कर रहे हैं। यह रहट है, चक्की है, चक्की में पीसा तो जाता है। अब उस पीसने वाली चक्की के बीच में से भी कोई सुरक्षित निकल आए, वह कमाल का आदमी कहलाता है।

कमाल की कहानी

कमाल नाम सुना है आपने कभी? यह जो जुमला चलता है न, भाई! कमाल का काम कर दिया, कमाल का आदमी है। आपको पता है **कमाल** शब्द कहाँ से आया है? कबीर दास हुए हैं, सबने नाम सुना है? उनके बेटे का नाम था...कमाल। बेटे का नाम क्या था? कमाल नाम था। कभी-कभी बेटों के नाम, कोई भी ऐसे काम हो जाते हैं, जिसके कारण से वे नाम भी famous हो जाते हैं। अब यह कमाल कोई ऐसा शब्द नहीं है कि आपके लिए कोई जब विशेष art दिखाने का काम आए, तब आप कहो कि हाँ भाई! यह कमाल इसलिए आया था। वह कमाल उस बच्चे का नाम था। किसके? कबीर के बेटे का नाम। एक बार कबीर दास अपने बेटे के साथ घूमने निकले। घूमने निकले तो उन्होंने देखा, एक कहीं चक्की चल रही थी।

**चलती चक्की देख कर दिया कबीरा रोए,
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।**

यह कबीर ने तुरन्त अपने बेटे को एक दोहा सुना दिया बना करके

**चक्की चलती देखकर दिया कबीरा रोए,
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।**

अब वह बच्चा था। अब कबीर का बच्चा है, तो वह भी कुछ न कुछ हुनर तो रखेगा ही। C.A. का बेटा C.A. ही होगा, Doctor का बेटा Doctor ही होगा। होगा तो कुछ न कुछ तो हुनर आएगा न उसमें। ऐसे ही कवि का बच्चा है तो कवि, उसके अन्दर भी कुछ हुनर था तो वह कहने लगा...क्या हो गया पिताजी? आप रो क्यों दिए? अरे बेटा! देखो तो यह चक्की चल रही है और इसमें जो भी जाएगा, वह इसके अन्दर पिसेगा। वह उस समय पर जो उसका बेटा था कमाल तो वह कहता है...

चलती चक्की देखकर कमाल दिया मुस्काय, कबीरा तो रो गया, अब कमाल दिया मुस्काय,
जो कीली के पास है, वह साबुत बच जाय।

साबुत कौन बचेगा?

कीली के पास रहोगे तो बच जाओगे

चक्की चल रही है, उसमें दाने डाले जा रहे हैं, अनाज डाला जा रहा है, सबका पिसना हो रहा है। सब आटे पिस रहे हैं, सबका आटा बन रहा है; फिर भी कुछ बच जाते हैं। वे बच गए! कौन बच गए? जो कीली के पास रहेंगे, वे बच गए और जो कीली से खिसक गए, दूर चले गए, वे पिस गए। कमाल ने जब अपने पिताजी से यह बात कही और कमाल ने जब अपने पिताजी की बात सुनकर के उत्तर कबीर को दिया तो कबीर दास कहने लगे...भाई! तू तो बड़ा कमाल का आदमी है। कबीर की बात सुन कर के कमाल कहने लगा...मैं कमाल का आदमी नहीं हूँ, मैं कबीर का आदमी हूँ और तब से उसकी यह बात ऐसी famous हुई कि जब भी कोई बात अलग सोच कर के करता है, तो आदमी कहता है...यह कमाल की बात कर रहा है। कमाल की बात मतलब उस कमाल की तरह बात कर रहा है।

अपने काम का Burden न ले

यह कमाल की बात जब आपके सामने आती है, तब आपको लगता है कि हाँ! दुनिया में कुछ और भी सोचने का तरीका होता है, दुनिया में कुछ और भी जीने का तरीका होता है। सब जी रहे हैं। सोचना यह है कि हम उसमें पिस करके जी रहे हैं या उसमें साबुत रहकर के जिन्दा बच कर के जी रहे हैं। हमारा profession किस तरीके का है? हम किसी भी तरीके के profession को करते हुए भी उससे कितना attached हैं और हमारे सामने जब भी कोई नफा-नुकसान होता है, तो हमारे दिल और दिमाग पर क्या burden आता है? क्या उसके ऊपर हमारी hit होती है? यह विचार जब आपके अन्दर आएगा, तब आपको पता पड़ेगा कि हम कितनी चीजों से कितना attach होकर के जी रहे हैं, जीना सबको है।

जीवन जीने का सही तरीका

इसलिए मैं कह रहा था...कोई भी C.A. होगा, cashier होगा वह हमेशा bill बनाएगा, दूसरों के bill बनाएगा। बड़ी-बड़ी कम्पनियों में खूब सबका input होता है, output होता है; सब उसको वह mark करेगा लेकिन किसी भी company के मालिक को चाहे कितना ही नफा हो जाए? कितना ही नुकसान हो जाए? C.A. के दिमाग पर कोई नफा-नुकसान का stress नहीं आता है। क्योंकि उसका काम क्या है? उसका काम केवल balance sheet बनाना है। नफा-नुकसान करना तुम्हारा काम है, वह management हमारा नहीं है। उसे सिर्फ देखना है और दिखाना है। जीने का यही सही तरीका होता है। शायद C.A. भी अगर आज यह सीख ले कि हमें इसी तरीके से जीना है। दुनिया में आए हैं, दुनिया की चक्की में पिस न जाएँ। पैसे कमाने की होड़ में भी लोग पिस जाते हैं, relation बनाने की होड़ में भी लोग पिसते चले जाते हैं। बड़ा आदमी बनने के होड़ में भी लोग पिसते चले जाते हैं और जब इस तरह से लोग पिसते चले जाते हैं तो वे भूल जाते हैं कि हम यहाँ पर कोई खेल देखने आए थे, खिलाड़ी बनने आए थे या फिर हम जिस खेल को देखने आए थे, उसी खेल को देखते-देखते हम भी उस खेल के चक्कर में पिस गए।

जिन्दगी का खेल सावधानी से खेलो

‘अपनी सुरक्षा यात्री स्वयं करें’ लिखा रहता है न? warning मिलती रहती है न? ‘यात्री अपनी सुरक्षा स्वयं करें’ अपने सामान की सुरक्षा स्वयं करें। क्या मतलब है? इस दुनिया के खेल में अगर हमें जीवन मिला है, जिन्दगी मिली है तो यह खेल है, थोड़ी देर का है। जिसका एक point जन्म है और दूसरा point मरण है। यह जन्म और मरण के बीच की थोड़ी सी जिन्दगी है और इस जिन्दगी का थोड़ा सा खेल है और इस खेल को देखने के लिए अगर हमें यह पता रहे कि भाई देखो! मैं अगर कुछ नहीं भी खेलूंगा तो भी काल तो हमें खिला ही रहा है। हम बड़े अपने आप हो ही रहे हैं, आयु हमारी घटती चली जा रही है और जिन्दगी के खेल में हम आगे-आगे, आगे-आगे जन्म से लेकर के हम मृत्यु तक का जो एक पैमाना है, इसमें हम जन्म से हटकर के मृत्यु के निकट तक चलते चले जा रहे हैं। इस बीच में अगर कहीं हम पिस गए तो मृत्यु तक पहुँचने से पहले भी हमारी मृत्यु हो सकती है, जैसे accident हो जाता है। यह जो मृत्यु हो जाती है, यह बीच में हमारे लिए अकाल में accident हो जाता है या हम कभी-कभी इतने ज्यादा भीतर से परेशान हो जाते हैं कि suicide भी कर लेते हैं। इन सबके बीच में जो व्यक्ति आते हैं, वे वही लोग होते हैं जो उस खेल में पिस गए होते हैं। अगर आप सुरक्षित खेल रहे हो तो अच्छी बात है। हमारा आपसे सिर्फ इतना ही कहना है, जिन्दगी का खेल अच्छा खेलो लेकिन इस खेल में कभी पिसना नहीं। पिसने का मतलब? खेलते-खेलते आपको tension होने लग गए, खेलते-खेलते आपके लिए कहीं जो है, इस तरह से लगने लगेगा कि भाई! अब यह जिन्दगी हम अब आगे बढ़ा नहीं पायेंगे, चला नहीं पायेंगे, इस जिन्दगी को जीना बहुत मुश्किल हो गया है तो समझ लेना कि आप उस जिन्दगी के खेल में पिस गए।

Hero कौन?

दुनिया में समझदार आदमी जिन्दगी में सिर्फ खेलते हैं और खेल दिखाते हैं। फिल्में सब देखते हैं। फिल्मों के जो hero होते हैं, heroine होती हैं, जो part वे आपके सामने present करते हैं; वह अपने को लगता है ऐसे कि real life में चल रहा हो जैसे। लेकिन वह उनका Part उनकी real life में वैसा होता है क्या? एक hero अपनी जिन्दगी में कितनी हीरोइनों के साथ फिल्में बना चुका होता है। लेकिन आप जब भी उस हीरो की फिल्म देखने जाएँगे, तब आपको ऐसा लगेगा कि जैसे बिल्कुल यह इसी के साथ अपनी पूरी जिन्दगी जीता हो, यह इसी के साथ बिल्कुल जीने-मरने को तत्पर रहता हो। आपकी सोच में उस समय पर यह आएगा कि जैसे यह बिल्कुल real life हम बिल्कुल देख रहे हो। hero कौन कहलाता है? तुम या वह जो तुम्हें अपना खेल दिखा कर के तुम्हारी जेब से पैसा निकाल ले रहा है और फिर भी जो है, वह अपना खेल अलग खेल रहा है? बताओ hero कौन कहलाता है? एक hero दुनिया में रहकर के बहुत सारी फिल्में बनाता है, बहुत बार फिल्में बनाता है, बहुत लोगों के साथ काम करता है और बहुत करोड़ों-करोड़ों इकट्ठा कर लेता है। वे करोड़ आते कहाँ से हैं? किसकी जेब से निकलते हैं? थोड़ा-थोड़ा करके सबकी जेब से निकलते हैं और वह खेल जाता है और जो खेल गया, उसी का नाम खिलाड़ी है। अब उस खेल में अगर हम खेल रहे हैं, हम भी अपना मनोरंजन कर रहे हैं तो ठीक है, हम भी खिलाड़ी हैं।

खेल में फँसना नहीं

लेकिन अगर उस खेल की theme में से हमने कुछ सीख लिया और हम भी अगर कुछ वैसा ही करने लग गए तो फिर उस खेल में हम भी पिस गए और खेल का motive यही होता है कि आपके दिमाग में कुछ न कुछ ऐसा डाल देना, जिससे कि आप अपनी जिन्दगी के खेल को कहीं न कहीं उससे link कर सकें और जो link आपके अन्दर आ गई कि भाई! मुझे भी ऐसा ही करना चाहिए था। इसलिए आपने देखा होगा, बहुत बड़े-बड़े पढ़े-लिखे बच्चे, बड़े-बड़े बदमाश बन जाते हैं, बड़े-बड़े चोर बन जाते हैं, बड़े-बड़े don बन जाते हैं। क्यों? जो खेल उन hero ने दिखाए, वे उस खेल में फँस गए। उनके दिमाग में भी वह link आ गई कि देखो! कैसे चोरी की जाती है? कैसे डकैती डाली जाती है? कैसे लोगों को बेवकूफ बनाया जाता है? यह कहीं न कहीं से हमें सीखने को मिल जाता है और जब हम इस तरह के खेलों में फँस जाते हैं तो कई बार जिन्दगी पूरी होने से पहले ही पूरी हो जाती है।

धर्म गुरुओं की शरण

इस जन्म और मृत्यु के बीच का यह जो खेल है, इस खेल को समझने के लिए ही आपको कभी-कभी धर्मगुरुओं के पास, उनकी सन्निधि में बैठना चाहिए, सुनना चाहिए और अगर आपको यह लगने लगे कि यहाँ पर आने के बाद में हमें कुछ एक अलग तरह का environment feel हो रहा है, तो आपको ऐसे environment को बार-बार अपने mind में डालने के लिए इस तरह की संगति करने का मन बनाना चाहिए। जैसा आप देखोगे, जैसा आप सुनोगे, उसी तरह के विचार, उसी तरह के भाव आपके अन्दर आएँगे। यहाँ से जैसे ही आप सड़क पर निकल कर के जाओगे, आपको एक अलग तरह का environment मिलेगा और यहाँ आप बैठे हो, यह अध्यात्म की बात, यह वैराग्य की बात, यह attachment से हटने की बात दुनिया में कोई नहीं करेगा।

जितना अधिक राग-द्वेष होगा, उतना ही अधिक पिसना पड़ेगा

हमें दुनिया में पीसने वाली चीज क्या है? हमारा राग, हमारा जो attachment का भाव है, वह दुनिया में हमको पीसता है। जिसके अन्दर जितना लालच होगा, जिसके अन्दर जितना राग होगा, द्वेष होगा, वह उतना ही दुनिया में पिसता चला जाएगा। ऋषि-मुनि हमें क्या सिखाते हैं, भाई? राग मत करो, द्वेष मत करो। जितने कम से कम में काम चल जाए, उतना कम से कम में काम निकाल लो और इस दुनिया से चलते बनो। पिस कर के नहीं जाना, इस दुनिया को देखते हुए जाना। सब कुछ देखना, खिलाड़ी बनना, picture देखना लेकिन यह मत समझ लेना कि मैं ही वह hero हूँ, जो वह hero कर रहा है। यह गलती मत कर बैठना।

मनोरंजन या मनोबन्धन?

मनोरंजन अलग चीज है और मन का उसमें बन्धन हो जाना, मनोबन्धन यह अलग चीज है। मनोरंजन की चीजों में कभी मनोबन्धन नहीं होना चाहिए। लेकिन हर आदमी मनोरंजन करते-करते भी अपने मन को उस

फिल्म से बांध लेता है, उस hero से बांध लेता है, उसके songs से बांध लेता है, उसकी script से अपने को बांध लेता है। जहाँ बंध गए, वहाँ पर बन्धन बढ़ गया। बंध करके जीना नहीं है, मुक्त होकर के जीना है। यह ऋषि-मुनि हमें यही सिखा रहे हैं और यही वैराग्य कहलाता है कि राग से बन्धन होता है और वैराग्य से मुक्ति होती है। जब कोई आपके सामने वैराग्य की मूर्ति बैठी हो, आपको जरूर थोड़ा तो मन में आएगा कि यह इस वैराग्य के भाव में कैसे रह लेते हैं?

मुनिराज का समता भाव

आप लोग भूल गए। राजा श्रेणिक आज कोई बना नहीं? अब पुनः राजा श्रेणिक तो याद करना पड़ेगा। पार्श्वनाथ भगवान तो बीच में से चले गए। कहाँ पर बैठा है, राजा श्रेणिक? यशोधर मुनि महाराज के सामने। जिनके गले में उसने सर्प डाला, जिनके ऊपर उसने बहुत ही क्रूर कुत्तों को छोड़ा और सब कुछ करने के बाद में उसे लगा कि मुनि महाराज अपने ध्यान से विचलित नहीं हुए। अपनी रानी चेलना के साथ आया, तीन दिन बाद आया और देखा कि मुनि महाराज जस के तस वहीं बैठे हैं। हिले नहीं, डर के भागे नहीं, शरीर का कष्ट उन्होंने सब सह लिया और जब आँख खोली तो जैसी चेलना भक्ति कर रही थी, जैसे चेलना की भक्ति से प्रसन्न हुए, उतना ही राजा श्रेणिक को सामने देख कर के उसके लिए भी उतना ही प्रसन्न हो गए।



मुनिराज के प्रति श्रद्धा भाव

तब राजा श्रेणिक को लगा कि यह जो महात्मा हैं, यह कोई और चीज हैं। हमारी सोच में और इनकी सोच में बहुत अन्तर है। हमने बेवजह इनसे दुश्मनी निकाल ली, बेवजह इनको अपना दुश्मन समझ लिया लेकिन इतनी दुश्मनी सहने के बावजूद भी इनकी आँखों में मेरे लिए उतना ही प्रेम है, जितना इनकी भक्ति करने वाली रानी चेलना के लिए है। इस बात से उस राजा श्रेणिक के मन के अन्दर उन मुनि महाराज के प्रति एक श्रद्धा का भाव पैदा हुआ। जहाँ श्रद्धा पैदा होगी तो फिर अपने कृत्य के प्रति पश्चाताप भी होगा। अगर कभी आदमी किसी के साथ में गलत कर जाता है और उसे बाद में पता पड़ता है कि यह आदमी सही था, हमने गलत कर दिया तो उस आदमी से भी उसकी श्रद्धा जुड़ेगी और अपने कृत्य के प्रति उसको पश्चाताप भी होगा।

श्रेणिक का अपराध बोध

जब राजा श्रेणिक को पश्चाताप होने लगा तो वह इतना ज्यादा भीतर से दुःखी हो गया, सोचने लग गया कि इस पश्चाताप के माध्यम से अब मैं कैसे आगे अपना सिर उठा कर के जिऊँ? लोगों को पता पड़ेगा। अगर नहीं भी पता पड़े तो मेरी आत्मा तो कह ही रही है कि मैंने कितना बड़ा कुकृत्य किया। ऐसे पूज्य पुरुषों के लिए मैंने इतना बड़ा उपद्रव खड़ा कर दिया और कहीं इनके उस दरमियान प्राण निकल जाते तो मैं तो कैसे अपने आप को क्षमा कर पाता? कहीं वे कुत्ते इनको नोंच-नोंच डालते तो क्या होता? कहीं उस सर्प के कारण से और इनके लिए हमें तीन दिन बाद भी याद नहीं आता और इनका शरीर पूरा का पूरा घायल हो

चुका होता, लहलुहान हो चुका होता और शरीर से लहू बहने के कारण इनकी मृत्यु हो चुकी होती तो क्या होता? कुछ भी हो सकता था। हमने जो कृत्य किया, उस कृत्य की अब हम किस तरीके से इनसे माफी मांगे?

अवधिज्ञानी मुनिराज

राजा श्रेणिक का मन अपने उस दुष्कृत्य के प्रति इतना ज्यादा पश्चाताप से भर गया कि वह सोचने लगा कि मैं क्या करूँ? अब मेरा बस नहीं चल रहा है। उसका मन यहाँ तक हो गया कि अपनी तलवार निकाल कर अपना सिर काट लूँ। यह भाव उसके मन में आ गए। मुनि महाराज सामने बैठे थे और वे कुछ और भी ज्ञानी थे, जिसे दिव्यज्ञानी कहते हैं, अवधिज्ञानी कहते हैं। दूसरों के मन की बात को जानने वाला भी ज्ञान कभी-कभी सन्त-महात्माओं के पास में होता है और उन्होंने उसके मन की बात जान ली कि यह श्रेणिक पश्चाताप की ग्लानि से भरा हुआ है और यह आत्महत्या करने के भाव में आ रहा है, तो मुनि महाराज अपने आप कहने लगे...श्रेणिक! तुम जो सोच रहे हो, गलत सोच रहे हो। श्रेणिक फिर चौंका। मैं सोच रहा हूँ, गलत सोच रहा हूँ, आपने पता कैसे कर लिया कि मैं क्या सोच रहा हूँ?

मुनिराज का राजा श्रेणिक को सम्बोधन

श्रेणिक! तुम जो आत्महत्या का विचार कर रहे हो, यह बहुत गलत विचार है, यह बहुत बड़ा पाप है। इस विचार को छोड़ दो। तुमसे कुछ गलत हो गया, उस गलत हुए कार्य के कारण से तुम्हारे लिए जो कर्मबंध हुआ है, यह ठीक बात है कि तुम उससे बहुत आसानी से नहीं बच पाओगे लेकिन आत्महत्या से तो उससे भी ज्यादा पाप तुम्हारे गले पड़ जाएगा और फिर जन्म-जन्म तक उससे नहीं बच पाओगे। अगर तुमने पाप समझदारी से किया है, तो अब पुण्य भी समझदारी से करना सीखो। गलती जितनी समझदारी से की है, अच्छाई उतनी ही समझदारी से करना सीखो, श्रेणिक! पाप को मिटाने का केवल यही तरीका है। पाप कभी पाप से नहीं मिटता है, पाप हमेशा पुण्य से मिटता है। जो अपने जीवन में अधर्म किया है और उस अधर्म के प्रति अगर पश्चाताप हो रहा है, तो मरने की मत सोचो। मरने से कुछ नहीं होगा। तुम्हारे साथ में वह अधर्म, वह पाप, वह दुष्कृत्य, सब कुछ बंध गया है। अगले जन्म में भी तुम्हारे साथ जाएगा। आत्मा इस जन्म में जो भी करती है, अपने पाप कर्मों को अपने साथ बंध कर लेती है, बांध लेती है और वह फल भोगने के लिए वह कर्म उसके साथ में अगले जन्म-जन्मान्तरों तक साथ में बने रहते हैं। इसलिए किसी के साथ में मिलने पर, किसी के साथ सम्बन्ध बनने पर, अपने अन्दर ऐसे कर्म मत बांध लेना कि फिर हम जन्म-जन्मान्तर तक उसके दुश्मन बने रहे। यह एक जन्म के नहीं छूटेंगे, जन्म-जन्म तक बने रहेंगे।

जिन्दगी के अन्त तक न शत्रु हो, न मित्र हो

चाहे वह राजनीति हो, चाहे वह क्रिकेट आदि के खेल हो, चाहे वह film industry हो, चाहे वह business industry हो, चाहे वह किसी भी तरीके के profession हो, वह C.A. के हो या कोई भी और corporate के, कोई भी तरीके के काम हो, हर जगह पर लोग आपको मिलेंगे। आप किसी के शत्रु बनेंगे,

आप किसी के मित्र बनेंगे लेकिन अगर जिन्दगी में पिसना नहीं हैं तो सिर्फ इतना ध्यान रखना कि जिन्दगी में मैं जैसे चुपचाप अकेला आया था और जब मैं यहाँ इस दुनिया में आया था तो मेरा न कोई शत्रु था, न कोई मित्र था। मरने से पहले भी मुझे यही कोशिश करना है कि मरते दम तक भी मेरा न कोई शत्रु होगा, न कोई मित्र होगा। अगर दुनिया में एक बार तुम यहाँ से ऐसे silent होकर के निकल गए तो समझ लेना कि तुम दुनिया से मुक्त हो गए। सुन रहे हो? क्या समझना है?

ज्यादा attachment बुरा है

अगर यहाँ पर आने के बाद में तुमने अपने relations में किसी के साथ ज्यादा attachment, किसी के ज्यादा hate का भाव, अगर यह सब करना यहाँ पर शुरू कर दिया और इस दुनिया के खेल में तुम इससे बंध गए और पिसने लग गए तो फिर तुम्हारा खेल कोई दूसरा जब देखेगा तो सिर्फ हँसी के पात्र रह जाओगे। तुम दुनिया में खिलाड़ी बनकर के आए थे, सिर्फ खेल देखो और खेल खेलो और निकल जाओ। इतनी सफाई से कि तुम्हें देख कर के कोई दूसरा हँस न पाए। यह दुनिया का खेल, आप देखते रहो। इतना मत करो कि उसके कारण से तुम्हारे अन्दर द्वेष भाव इतना बढ़ जाए कि जब भी कभी वह आदमी तुम्हें कभी दूसरे जन्म में मिले तो फिर याद आ जाए कि यह India का है कि यह भारत का है।

न्याय और धर्म किसी को नहीं छोड़ते

अब देश के दो भाग हो गए- India भी देश है और भारत भी देश है। देश तो देश है लेकिन India कहते ही अब लोगों के दिमाग में क्या आता है? विपक्ष आता है। भारत कहते ही लोगों के दिमाग में क्या आता है? पक्ष आता है। यह भी एक खेल है। इस खेल को भी देखो लेकिन इस खेल में भी खेलने वाले खिलाड़ी अगर एक दूसरे के प्रति ऐसा कोई भी द्वेष का भाव या दुश्मनी का भाव रख लेंगे तो वे कितने ही बड़े आदमी क्यों न हो, चाहे वे PM क्यों न हो, चाहे वे भारत के राष्ट्रपति ही क्यों न हो...अगर किसी भी खेल में हमने किसी के प्रति द्वेष भाव रख कर के कोई खेल खेला तो वह आदमी समझदार नहीं कहलाएगा। चाहे वह प्रधानमंत्री हो, चाहे राष्ट्रपति हो, यह धर्म कहता है, धर्म किसी को नहीं छोड़ता है। न्याय जिस तरीके से किसी को नहीं छोड़ता है, न्यायालय जिस तरीके से किसी को नहीं बख्शते हैं, ऐसे ही धर्म किसी के लिए भी बख्शता नहीं है। धर्म वही कहता है जो सत्य होता है और उस सत्य को जो समझ लेता है, वही धर्म को समझ पाता है। इसलिए दुनिया के इस खेल में अपने आप को बचा कर निकलो।

नफे-नुकसान का pressure न ले

पैसा आए, जाए लेकिन वह सिर का दर्द न बन जाए। नुकसान होने पर भी नुकसान किसका? पैसे का नुकसान कि हमारी जिन्दगी का नुकसान? सोचो! जब पैसे का नुकसान होता है, तो क्या केवल पैसे का नुकसान ही आदमी के पास रह जाता है? मान लो किसी का 20 लाख, 50 लाख कहीं डूब गया। वह लाख डूब गया, नुकसान पैसे का आपके दिमाग में हो गया लेकिन दिमाग का तो नुकसान नहीं हो गया कहीं? दिमाग में नुकसान बैठ तो नहीं गया कहीं? अगर वह दिमाग में नुकसान बैठ गया तो फिर वह आपकी

जिन्दगी का जो flow था वह बिगड़ गया। नुकसान होगा, नफा भी होगी लेकिन वह नुकसान या नफा कहीं पर भी हमारे दिमाग में बैठना नहीं चाहिए। पैसे से खेलने वाले लोगों! यह ध्यान रखना है। वह दिमाग में नहीं बैठना चाहिए। ऐसा नहीं बैठ जाए कि वह इतना बैठ जाए कि हमारा दिमाग ही बैठ जाए। जब दिमाग बैठ जाएगा तो फिर दिमाग काम करना बन्द कर देगा। क्योंकि दिमाग के ऊपर कोई दूसरा pressure आ गया और जब उस4के ऊपर कोई दूसरा pressure आ गया तो फिर अब आपका जब mind active नहीं होगा तो आप कोई भी काम actively नहीं कर पाओगे।

आयु रुपी जल हर समय निकल रहा है

किसी भी तरीके के जो आपके विचार जब आपके ही control में नहीं रहेंगे तो फिर आपकी जीवन, आपकी life कोई भी आपके control में नहीं होगी। इसलिए यह बताया जाता है...

सूरज चांद छिपे निकले, ऋतु फिर फिर कर आवे।

प्यारी आयु ऐसी बीते, पता नहीं पावे।

यह ध्यान रखो! हमारी आयु, हमारे भीतर जो जल भरा हुआ है, वह हर समय निकल रहा है और उस आयु को ही हम अपना धन समझे। हमारा जीवन सुरक्षित रहे, हम पूरी आयु जी पाएँ। यह भाव, यह विचार अगर अपने अन्दर रहता है तो धन आएगा, धन जाएगा लेकिन हमारी आयु पर उसके कारण से defect नहीं आना चाहिए। इसका नाम है कमाल का खेल, समझदारी की बात।

पढ़ाई या पिसाई?

कीली के पास रहो, कीली कहाँ मिलेगी? अभी सतना में कीली है कि नहीं? कहाँ है? कीली के पास रहोगे तो सुरक्षित रह जाओगे। इसलिए बच्चों से कहो, जो भी पढ़े-लिखे बच्चे हैं उनसे कहो...यह तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई कोई काम में नहीं आने की है। दुनिया तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई से नहीं चल रही है। तुम दुनिया में पिस रहे हो, तुम दुनिया के हिसाब से चल रहे हो। आज देख लो कितने पढ़े-लिखे लोग हैं दुनिया में, जो नाम कमा रहे हैं। अभी चन्द्रयान की यात्रा पर लोग गए हैं, उस ISRO में काम करने वाले लोग...अभी एक survey हुआ है, बताया गया है कि उसमें सब जितने भी लोग काम करने वाले थे, पढ़ने वाले थे, सारे के सारे जो भी scientist हैं, वव सरकारी स्कूलों में पढ़े हुए लोग हैं। कोई IIT किए हुए लोग नहीं हैं वहाँ पर और चन्द्रयान की इतनी बड़ी बात हो गई। तुम कौन सी university में पढ़ रहे हो? क्या पढ़ रहे हो? तुम सिर्फ पिस रहे हो। पूछो नरेन्द्र मोदी से, कितना पढ़े हैं?

बच्चों में धर्म के बीज डाले

दुनिया चलाने वाले लोगों के लिए पढ़ाई-लिखाई की ज्यादा जरूरत नहीं होती है, वह दूसरे ज्ञान की जरूरत होती है, जो इस कीली के पास बैठ कर के मिलेगी। यहाँ बैठना सिखाओ बच्चों को। अगर यहाँ वह बैठेंगे तो कुछ ऐसा सीख पाएँगे। नहीं तो...हमारे exam चल रहे हैं, इसी time पर हमारे test आ गए हैं, अब

वे दशलक्षण के 10 दिनों में हम 10 दिन तो बिना mobile के रह ही नहीं सकते हैं, हमें home work भी करना होता है। ये 10 दिन अगर नहीं भी पढ़ोगे तो बुद्ध नहीं हो जाओगे लेकिन अगर 10 दिन इस दशलक्षण में धर्म की कीली के पास आकर के नहीं बैठे तो मैं कह सकता हूँ, तुम जिन्दगी भर बुद्ध ही बने रहोगे। यह किसको बताना है? बोलो-बोलो? कौन बोलेगा? मैं बोलने जाऊँगा उनसे? कौन बोलेगा? तुम्हें सिखाना पड़ेगा। यहाँ से सीख कर जाओ और फिर उनको सिखाओ। यह सोच कर के चलो कि जैसे 10 दिन मेरी जिन्दगी में थे ही नहीं। हमें वह काम सीखना है, वह भाव सीखना है, वह ज्ञान सीखना है, जिससे हमारी जिन्दगी चलती है और ऐसी चीजें सीखने के लिए ही ये अवसर आया करते हैं।

धर्म रुपी कीली की शरण ले

यह सब आपको बिल्कुल सहज मिल रहा है लेकिन चक्की खरीदना अपने आप में बहुत बड़ा काम होता है। चक्की चलाने वाला, घर-घर में चक्की नहीं लगी होती थी। मोहल्ले में एक चक्की हुआ करती थी। घर-घर में चक्की होती वह दूसरी होती, वह केवल अपने काम के लिए ही होती लेकिन जिनको वह चक्की भी खरीदने की हिम्मत न हो तो फिर क्या करे? आटा तो चाहिए ही न, रोटी तो बनानी ही है। कहाँ से पिसा करके लाएँ? अगर एक कोई चक्की लगा लेता था मोहल्ले में या पूरे गाँव में या नगर में तो कहलाता था चक्की वाला... बहुत बड़ा आदमी समझा जाता था वह उस समय, उस time पर। इसके यहाँ चक्की लगी, चक्की चलती है इसकी, बड़ा आदमी कहलाता था। बताओ होता था कि नहीं? चक्की चलाना, चक्की लगाना अपने आप में बहुत बड़ी बात है। बड़े पुण्य से आपको चक्की मिली है। उस चक्की के दो पाट भी आपको मिले हैं। उन दो पाटों के बीच में जो कीली लगी हुई है, उस कीली के अगर निकट रहोगे और निकट बैठे रहोगे तो दुनिया की तमाम आपदाओं से बचे रह जाओगे और अगर उस कीली को छोड़ दिया, तो पिस जाओगे। इसलिए धर्म की कीली के पास में बैठना जरूरी हो जाता है, सत्संगति करना जरूरी हो जाता है। दिमाग में भरी हुई गन्दगी को निकालने के लिए हमें स्वच्छ विचारों से दिमाग को भरना जरूरी हो जाता है और पवित्रता अगर आती है, तो हमेशा धर्म की शरण में रहने से ही आती है।

जीवन की balance sheet आवश्यक

इसलिए यहाँ कहा जा रहा है... यह दुनिया चलती रहेगी, सूरज-चाँद हमेशा घूमते रहेंगे, चाहे तुम रहो या न रहो। दिन-रात होते रहेंगे, चाहे तुम यहाँ हो या न हो लेकिन जो तुम्हारी आयु गल रही है, वह जो एक बार निकल गई है, वह दोबारा तुमको प्राप्त नहीं होगी। इसलिए जितनी आयु बची है, उसमें कुछ अच्छे काम कर लो। कुछ अच्छे विचार कर लो, कुछ अच्छा अपनी आत्मा का एक लक्ष्य बना लो कि हमें मरने के बाद भी एक जीवन जीना है। उस जीवन में हमारे अन्दर से ही चीजें बाहर निकलेंगी। हमने इस जीवन में अपने अन्दर क्या रखा है और क्या हमें रखना चाहिए? इसकी भी एक balance sheet बना लो। क्यों भाई लोगो! नहीं बनानी चाहिए balance sheet? एक खाता तैयार तो करना ही चाहिए न? जीवन में क्या हमने अच्छा किया है? क्या हम अच्छा कर सकते हैं? क्या हमें अच्छा करना चाहिए? ये तीन points का एक खाता, एक balance sheet, अपनी life time, life balance sheet अपनी जरूर बनानी चाहिए। समझदारी इसी में है। नहीं तो दुनिया की balance sheet बनाते-बनाते हम अपने ही balance

को खाली रखे रहे तो कोई मतलब नहीं। इसलिए आपके बड़े पुण्य हैं, बड़ा अच्छा संयोग है, जो आप ऐसे स्थान पर आ गए, जहाँ पर आपके लिए एक विचार मिला कि कम से कम हमें अपनी life को balance करने के लिए भी एक balance sheet बनानी चाहिए। अब आप बनाओ या न बनाओ, आपके हाथ में है। अगर बनानी हो, कोई दिक्कत आ रही हो तो help करने के लिए **I'm always ready**. हाँ! अगर कोई help चाहिए हो कि महाराज! हम समझ नहीं पा रहे, किस तरीके के वह हमें catalogue बनाने चाहिए? किस तरीके से हमें point लिखने चाहिए? अगर आप अलग से भी time लेकर के हमसे पूछोगे तो हम आपको बता देंगे। without fees! फीस का कोई काम नहीं है...निर्ग्रन्थ हैं, दिग्म्बर हैं, हम रखेंगे कहाँ? जेब है ही नहीं अपने पास में। fees की जरूरत तो जेब वालों को पड़ती है न? जेब तो अपने पास है ही नहीं तो फीस कहाँ रखेंगे?

Time is also money

यह तो दुनिया के लिए दिया जाने वाला एक सामान्य, सबके लिए हितकारी ज्ञान है जिसमें किसी को किसी fees की जरूरत नहीं है। अरे भाई! तुम्हारी सबसे बड़ी fees तो यही है कि तुमने इतना बड़ा कोई पुण्य किया होगा, जो तुम इस स्थान पर आकर के बैठे हो, सुन रहे हो। यही सबसे बड़ी fees है तुम्हारी। यह कम बड़ी fees है? feel तो करो इसको। कितनी बड़ी fees दे कर के हम यहाँ बैठे हैं। एक घण्टा आपने निकाला। इस एक घण्टे में आप कितनी हेराफेरी कर लेते, कितने आप अपने काम कर लेते लेकिन वह सब छोड़ कर के आप एक घण्टा यहाँ बैठे हो, सुन रहे हो। यह भी तो fees ही दे रहे हो, समझदारी की बात है। हम समझ रहे हैं कि हम आपसे fees ले रहे हैं। money ही money नहीं होती है, time is also money और time भी तो money होती है और जो यह समझता है कि time is money, वह समझता है life is much more important than money. जो यह जानता है कि time money है, तो उसे समझ में आता है कि धन से भी बढ़कर के life में कुछ और important चीज है और यही समझदारी जब हमारे अन्दर आ जाती है तब हमारा मन अपने आप धर्म में, प्रभु की भक्ति में, गुरुओं की बातों में जब लगने लग जाता है, तो फिर आनन्द भीतर से आने लग जाता है और जब आनन्द आता है, तो फिर मन क्या कहता है?

ओं अर्ह, ओं अर्ह, ओं अर्ह बोल,
ओं अर्ह, ओं अर्ह, ओं अर्ह बोल।
सभी कार्य की सिद्धि से तू पहले इसको बोल ॥
सभी कार्य की सिद्धि से तू पहले इसको बोल ॥



गाथा: 07

काल के सम्मुख सभी प्रकार की विवशता

सा णत्थि कला तं णत्थि, ओसहं तं णत्थि किंपि विण्णाणं ।

जेण धरिज्जइ काया, खज्जंती कालसप्पेणं ॥7 ॥

अन्वयार्थ- (कालसप्पेणं) कालरूपी, सर्प के द्वारा (खज्जंती) खायी जाती हुई (काया) काया (जेण) जिस कारण से (धरिज्जइ) धारण अर्थात् रक्षित की जाती है (णत्थि) न, है (सा कला) वह, कला 'रूप कारण ही हमारे पास और' (णत्थि) न, है (तं ओसहं) वह, औषध 'रूप कारण और' (णत्थि) न, है (किंपि) किंचित् यानी थोड़ा, भी (तं विण्णाणं) वह, विज्ञान अर्थात् विवेक 'रूप कारण ही' ॥7 ॥



वैराग्य शतक ग्रन्थ के माध्यम से प्रतिदिन की भाँति आज भी हम कुछ गाथा का पाठ करके राग से वैराग्य की ओर आने का एक मानस बनाते हैं, विचार करते हैं और भावना भी करते हैं क्योंकि बिना वैराग्य के इस संसार से, इस संसार के दुःखों से मुक्ति मिलना सम्भव नहीं है। इसलिए यह एक कृति आपके समक्ष जो आई है, वैराग्य के नाम पर इतनी बड़ी कृति शायद पहले कभी देखी नहीं गई। जो 100 से अधिक श्लोकों के माध्यम से, आर्या छन्दों के माध्यम से, प्राकृत भाषा में निबद्ध यह वैराग्य शतक नाम का ग्रन्थ अपने आप में एक पहला ग्रन्थ है और यह बहुत दिनों के बाद में प्रकाशित होने की स्थिति में आया है और अच्छी बात यह है कि प्रकाशित होने से पहले ही इसके बारे में आपको ज्ञान दिया जा रहा है। आप इसको पढ़ पा रहे हैं, आप इसको सुन पा रहे हैं। यह कार्य भगवान शान्तिनाथ के चरणों से शुरू हुआ। यह और अच्छी बात है कि भगवान शान्तिनाथ के चरणों से एक ऐसी अप्रकाशित कृति सबके प्रकाश में आ रही है, जिसका अभी तक कोई अता-पता नहीं था। ऐसी इस कृति के कुछ छन्दों को पढ़ते हुए आगे बढ़ते हैं। आज यह गाथा नम्बर सात पढ़ना है।

सा णत्थि कला तं णत्थि, ओसहं तं णत्थि किंपि विण्णाणं ।

जेण धरिज्जइ काया, खज्जंती कालसप्पेणं ॥7 ॥

कहते हैं- 'सा णत्थि कला' ऐसी कोई कला नहीं है, 'तं णत्थि ओसहं' ऐसी कोई औषधि भी नहीं है, 'तं णत्थि किंपि विण्णाणं' और ऐसा कोई विज्ञान भी नहीं है जिसके द्वारा 'जेण कालसप्पेणं खज्जंती काया' काल रूपी सर्प के द्वारा जो एक काया खाई जा रही है, इसको 'धरिज्जइ' अर्थात् धारण किया जाता रहे यानी इस काया को हम धारण किए रहें।

काल रूपी सर्प द्वारा काया का भक्षण

क्या कह रहे हैं? जो वैराग्य को बढ़ाने वाली बातें हैं, वे यहाँ बताई जा रही हैं। काल रूपी सर्प के द्वारा यह काया खाई जा रही है और इस काया को हम किसी भी तरह से रोक पाएँ, जब कोई कीड़ा किसी भी पदार्थ को खाने लग जाता है, जब गेहूँ में घुन लग जाती है या दीमक भी जब लकड़ी में लग जाती है, तो क्या होता है? वह लकड़ी को धीरे-धीरे खा जाती है। जब गेहूँ में घुन लग जाती है, तो वह घुन ही धीरे-धीरे उस गेहूँ को खा जाती है। कीड़ा जब किसी वृक्ष में लग जाता है, तो धीरे-धीरे उस वृक्ष को खा जाता है। वह कीड़ा छोटा भी क्यों न हो, बड़े से बड़े विशाल वृक्ष को गिराने में, उसको सुखाने में, उसको नष्ट करने में वह कारण बन जाता है। एक पौधा जिसे बड़ा किया गया, एक वृक्ष जो बहुत सम्पन्न है, उसको भी उसकी जड़ में लगा हुआ एक कीड़ा उसे समूल नष्ट कर सकता है, कर देता है। बाहर का वृक्ष दिखाई देता है, जड़ों में बैठा हुआ कीड़ा दिखाई नहीं देता। इसी तरह से यहाँ कहा जा रहा है कि यह काल रूपी सर्प आपको दिखाई नहीं दे रहा है लेकिन यह अपनी काया को खा रहा है। अब हम काया में हैं और काया को खाने वाला कौन है? इस बात का विचार करने के लिए यह गाथा आपके समक्ष आई है कि काया को कौन खा रहा है? हम तो काया को खिला रहे हैं और खाने वाला काया को भी खा रहा है और जो हम खिला रहे हैं, उसको भी खा रहा है। काया को हम प्रतिदिन खिलाते हैं इसलिए कि यह काया बनी रहे और उस काया को भी खाने वाला कोई दूसरा काल-सर्प है, जो दिखाई नहीं देता लेकिन इस काल-सर्प के माध्यम से काया प्रतिदिन खाई जा रही है। इसको ज्यों का त्यों बनाए रखने के लिए न तो कोई कला हमें प्राप्त है, न हमारे पास कोई औषधि है, न हमारे पास कोई विज्ञान है, जो हम इस काया को बचा के रख सकें।

सबसे ज्यादा बचाने का उपाय किसका होता है? काया का ही होता है। सबसे ज्यादा औषधियों का प्रयोग, सबसे ज्यादा ज्ञान का प्रयोग, सबसे ज्यादा योग आदि, प्राणायाम आदि क्रियाओं का प्रयोग किसके लिए होता है? इस काया को बचाने के लिए होता है। लेकिन जो दूरदृष्टा होते हैं, वे देखते हैं कि इस काया को कितने ही उपाय करो, इसको बचाया नहीं जा सकता। न कोई औषधि है ऐसी जो इस काया को ज्यों का त्यों बनाए रखे, न कोई ऐसा विज्ञान वर्तमान में उत्पन्न हुआ है, न अतीत में था कि इस काया को ज्यों का त्यों बनाए रखें। यह काया काल रूपी सर्प के द्वारा इस तरह से धीरे-धीरे, धीरे-धीरे घुन-घुन कर के खाई जा रही है कि खाने वाला तो अदृश्य होकर के खा रहा है लेकिन जिसका वह नाश कर रहा है, उसको समझ नहीं आ रहा है कि यह हमारी सम्पदा नष्ट हो रही है। गेहूँ में घुन लग जाए, गेहूँ ऊपर से गेहूँ दिखाई देगा आपको और अगर घुन लग गई है, तो वह गेहूँ धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अन्दर ही अन्दर, अन्दर ही अन्दर खोखला होता चला जाता है, सड़ जाता है। ऊपर से बस वह दिखाई देगा...हाँ! यह गेहूँ है और जैसे ही उसको हाथ में लिया, कुछ काम का नहीं।

तत्त्व दृष्टाओं का चिन्तन

इसी तरह से इस प्राणी की यह काया है, चलती रहती है, दिखती रहती है- हाँ! चल रही है, हाँ! चल रही है, चल रही है और यह काया चलती रहती है। लेकिन यह काल रूपी सर्प इतना आहिस्ते-आहिस्ते, धीरे-धीरे इस काया को खाता रहता है कि जो खाया जा रहा है, उसको ही पता नहीं पड़ता है कि मैं किसी के द्वारा

खाया जा रहा हूँ। ये बातें कहीं और सुनने को नहीं मिलेंगी। इन बातों को विचारने का कहीं और समय भी नहीं मिलेगा। ये बातें ऐसे ही ज्ञान के माध्यम से थोड़ी देर के लिए विचार में आती हैं कि हमारी काया काल रूपी सर्प खा रहा है, हमें पता नहीं पड़ रहा है और यह बात पहले भी बताई गई थी, पिछले दिनों में भी बताई जा रही थी कि यह काल के बारे में जो कहा जा रहा है कि इस काल को विचार में लाओ। इस काल के माध्यम से ही यह विचार आ सकता है कि हम क्या कर रहे हैं और हमें क्या करना चाहिए? काल कभी किसी को छोड़ नहीं रहा है। काल के ग्रास में सब पड़े हुए हैं और इस काल के माध्यम से हर किसी के शरीर की वृद्धि हो रही है, यह तो लगता है लेकिन तत्त्व दृष्टि से देखें तो विनाश हो रहा है। दो तरह की दृष्टियाँ होती हैं- एक देह-दृष्टि होती है और एक तत्त्व-दृष्टि होती है। देह में जिनको आनन्द आता है, देह में जिनको अच्छा लगता है, देह ही जिनके सामने प्रमुख रूप से होती है; ऐसे देह-दृष्टि वाले लोग कहलाते हैं। उनके लिए यह काया खिलती हुई, सुन्दर, बढ़ती हुई प्राप्त होती है और उन्हें समझ में आती है। लेकिन जो तत्त्वदृष्टा होते हैं, उन्हें यह काया कितने ही यौवन को प्राप्त क्यों न हो जाए लेकिन उन्हें यह काया क्षणभंगुर और हमेशा नष्ट होती हुई ही दिखाई देती है। यह दृष्टि की बात है इसलिए जो तत्त्व-दृष्टा लोग होते हैं, वह उस अदृश्य चीज पर भी विचार करते हैं। जिसके कारण से हमारे लिए घात हो रहा है, वह दिख नहीं रहा है। वृक्ष में लगा हुआ कीड़ा दिखाई नहीं देता, गेहूँ में लगी हुई घुन दिखाई नहीं देती लेकिन घुन उस गेहूँ को खा रही है, कीड़ा उस वृक्ष को नष्ट कर रहा है। हमारी स्थिति है कि हम ऊपर-ऊपर से उस वृक्ष को साफ-सुथरा बनाए हुए हैं, पानी भी देते हैं, भोजन भी देते हैं; ऊपर-ऊपर से हम उसको हरा-भरा बनाए रखने का प्रयास कर रहे हैं लेकिन जो भीतर कीड़ा लगा है, वह कीड़ा उस वृक्ष के लिए जो पोषक तत्व है, उनको नष्ट कर रहा है। वह कीड़ा हमें दिखाई नहीं देता और जब तक वह कीड़ा लगा रहेगा, तब तक आपका पोषण हो ही नहीं सकता।

काल सर्प का डर

इसी तरह से यह काल रूपी सर्प सबको खा रहा है मतलब अपने पीछे साँप पड़े हैं। कौन खा रहा है अपने को? साँप खा रहा है। साँप भी काला होता है और काल का नाम भी काला ही है। काला साँप देखो अब! वह काला साँप सबकी उम्र को कम कर रहा है, सबकी उम्र को खाए जा रहा है और उस काले साँप के माध्यम से कोई भी प्राणी संसार का बचा हुआ नहीं है। उसका विस्तार कितना है? उस साँप की नली बहुत गहरी है और वह बहुत दीर्घ अपने आयाम को लिए हुए है और उसी के माध्यम से यह सारा संसार उसकी चपेट में आया हुआ है, ऐसा एक काल-सर्प है। इसको कई लोग यमराज कहते हैं, काल कहते हैं, महाकाल कहते हैं लेकिन काल से डरने का, महाकाल से बचने का उपाय कोई नहीं जानते हैं। इस काल के बारे में इतनी जानकारी लेने के बाद में फिर और आगे कहा जा रहा है कि देखो! यह काल क्या-क्या खा रहा है? जब आपको, काल को सर्प की उपमा देकर के, समझ में नहीं आए तो फिर यहाँ पर एक और काले पदार्थ की उपमा देकर के समझाया जा रहा है। काले जीव की उपमा देकर के समझाया जा रहा है। काल के लिए काला ही जीव की उपमा दी जा रही है। सर्प भी काला होता है, एक और चीज होती है जिसे कहते हैं- भौरा। वह भी काला होता है। देखो! वह भौरा की उपमा देकर के अब यहाँ हमें आगे एक और गाथा में बताया जा रहा है। अभी हमें कुछ एक दो गाथा पढ़नी हैं ताकि हम ये समझे कि कहाँ से यह प्रकरण शुरू हो रहा है और इस प्रकरण का प्रयोजन क्या है? वह अभी हमें नहीं बताया जा रहा है। अभी हमें सिर्फ एक तरह से यह

गाथा: 08

काल के वशीभूत सभी प्राणी हैं

दीहर-फणिंद-नाले, महिअर-केसर दिसा-मह-दलिल्ले ।
ओ! पीअइ काल-भमरो, जण-मयरंदं पुहवि-पउमे ॥8॥

अन्वयार्थ- (ओ) अहो! 'बहुत ही खेदजनक बात है कि' (**काल-भमरो**) कालरूपी, भ्रमर (**दीहर-फणिंद-नाले महिअर-केसर दिसा-मह-दलिल्ले पुहवि-पउमे**) दीर्घ, शेषनागरूपी, नाल वाले, महीधर यानी पर्वतरूपी, केसर वाले 'तथा' दिशाओंरूपी, महान्, पत्तों वाले, पृथिवीरूपी, पद्म यानी कमल में (**जण-मयरंदं**) लोगोंरूपी, मकरंद यानी पुष्परस को (**पीअइ**) पीता है ॥8॥

कहते हैं - '**काल भमरो**' अब यहाँ पर काल को भ्रमर की उपमा देकर के बताया जा रहा है। '**ओ**' अर्थात्, ओ भव्य जीवों! ओ संसारी प्राणियों! जरा सुनो, बैठ कर के सुनो, आराम से सुनो; यह काल रूपी भ्रमर '**पीअइ**' अर्थात् पी रहा है। क्या पी रहा है? '**जण मयरंदं**' लोगों की मकरंद को पी रहा है और यह कैसा है? किसकी मकरंद को पी रहा है? पौम की मकरंद, '**पउमे**' अर्थात् पद्म, कमल की मकरंद होती है, उसको पी रहा है और वह कमल कैसा है? '**दीहर फणिंद नाले**' कमल होता है उसमें एक नाली होती है- नालिका! वह जो नाली है वह दीर्घ फणिन्द्र के समान है। अब यहाँ पर उस सर्प को क्या बना दिया? उस कमल की नाली के समान बना दिया। जिस कमल में केसर की आभा उत्पन्न होती है, छटा उत्पन्न होती है; यह सारी पृथ्वी उसकी केसर है और जितनी भी ये दिशाएँ हैं, ये दिशाएँ उसके पत्ते हैं। ऐसा एक पृथक रूप से खिला हुआ एक कमल है और उस कमल के अन्दर की मकरंद को यानी जो लोग हैं इस पृथ्वी पर, इस पूरे विश्व में, इन दसों दिशाओं में जितने भी जन हैं, लोग हैं, प्राणी हैं, जीव हैं, उनको यह मकरंद की तरह काल रूपी भ्रमर खा रहा है। उनका पान कर रहा है, उसको पी रहा है, मकरंद को पिया जाता है। मकरंद जानते हो? भौरा, पुष्प के पराग को, उसकी मकरंद को चूसा करता है और उसमें उसको बहुत आनन्द भी आता है और कभी भी मकरंद को चूसने पर उस पुष्प को ऐसा नहीं लगता कि हमारे लिए कोई घात पहुँचा रहा है। ऐसे आराम से उसका मकरंद वह निकाल लेता है, चूस लेता है। यह उस भौरा की कलाकारी होती है।

काल रूपी भ्रमर

इसी तरह से यहाँ कहा जा रहा है...यह काल रूपी भ्रमर इस पूरे लोक रूपी कमल को, जिसके अन्दर लोग रूपी ये मकरंद हैं, प्राणी रूपी मकरंद हैं, इन मकरंद को वह पी रहा है यानि हर प्राणी को वह पी रहा है, चूस रहा है। जैसे भौरा मकरंद को चूसता है, ऐसे ही काल हर जीव को चूस रहा है और यह लोक कैसा है? उसके लिए जिसकी दिशाएँ ही उसके पत्ते हैं। यह जो कमल खिला हुआ है, वह कमल कैसा है? तो दिशाएँ ही

उसके पते हैं। दीर्घ फणिन्द्र उसकी नालिका है और चारों ओर फैली हुई पृथ्वी ही उसकी केसर है, छटा है, उसकी आभा है। इस तरह का विचार करते हुए पूर्ण लोक में, सम्पूर्ण लोक में देखोगे तो काल ही एक ऐसी चीज है जो सबको पी रहा है।

बच्चन की मधुशाला

कवि, जो तत्त्ववेत्ता होते हैं, वे अनेक तरह की गाथाओं के माध्यम से इसका चित्रण करते हैं और वर्तमान में कई हिन्दी के भी कवि होते हैं जो इस तरह का चित्रण कई रूप में सामने रखते हैं। जब हमें सरल भाषा में हिन्दी की कविताओं के माध्यम से कभी सुनने को मिल जाता है, तो कभी हमें वह तो समझ में बहुत जल्दी आ जाता है। लेकिन जब हमें यह प्राकृत भाषा में कुछ बताया जाता है, तो थोड़ा समझने में समय लग जाता है लेकिन बात तो समझ में आ रही है। कौन पी रहा है? कौन पिलाने वाला है? कौन चूस रहा है? कौन खा रहा है? किसको खाया जा रहा है? ये सब बातें आपको इन गाथाओं के माध्यम से सुनाई जा रही हैं, समझाई जा रही हैं। इन्हीं को, इसी भाव को जब कोई कवि कहता है, तो उसकी लाइनें अपने को बहुत जल्दी समझ में आ जाती हैं और एक अलग तरह का क्योंकि हम हिन्दीभाषा भाषी हैं और कोई हिन्दी में बोले तो जल्दी हम उसको पकड़ते हैं और जल्दी उससे आकर्षित भी होते हैं। प्राकृत की गाथाएँ समझाने में time लग जाता है। एक कवि हुए, अमिताभ बच्चन के पिता। सब जानते हैं। अभी भगवान मल्लिनाथ के और नेमिनाथ के पिता पूछेंगे तो नहीं बता पाओगे लेकिन अमिताभ बच्चन के पिता का नाम सबको पता है। वह भी एक कवि थे, कवि हुए और उन्होंने एक कृति लिखी जो उनके time पर बहुत famous थी। उन्होंने एक जो कृति लिखी वह सबके लिए सुनने में आई, प्रसिद्धि को प्राप्त हुई और वह कृति उस समय पर वह खुद भी पढ़ा करते थे और उनके जाने के बाद में अमिताभ ने भी उस कृति को पढ़ा है, गाया है और वह भी जो है, उसको सुनाते रहते हैं।

संसार एक मधुशाला

जब कोई कवि किसी भी कृति को लिखता है, तो उसके चित्रण में वह किसी न किसी का रूपक बनाता है। एक अलंकार कहलाता है...रूपक अलंकार! मतलब उन्होंने मधुशाला को एक रूपक बनाया। एक अलंकारिक तरीके से उन्होंने इस संसार के बारे में सब कुछ लिखा। यँ नहीं समझना कि उन्होंने शराबखाने के बारे में लिखा। मधुशाला का मतलब? यह सारा संसार ही एक मधुशाला की तरह उसे दिखाई दे रहा है। जैसे यहाँ पर कवि ने लिखा...यह सारा संसार एक कमल की तरह है। कमल को भीरा चूस रहा है। उसी तरीके से वे लिखते हैं कि यह सारा संसार एक मधुशाला है और उसमें भी वह यही बात कहते हैं, जो यहाँ कही जा रही है। इस संसार की मधुशाला को पीने वाला कौन है? काल है और कोई नहीं है। कौन है? काल है। इतना सुनने के बाद आपके मन में आ तो रहा होगा...महाराज! वे lines भी सुना ही दो आप। आपको चार लाइनें उस मधुशाला की सुनाता हूँ...

**क्षीण क्षुद्र क्षणभंगुर दुर्बल, मानव मिट्टी का प्याला,
जिसमें कितनी भरी हुई है, कटु मधु जीवन की हाला।**

**मृत्यु बनी है निर्दय साकी, अपने शत शत कर फैला,
काल प्रवण है पीने वाला, संसृति है यह मधुशाला ॥
संसृति है यह मधुशाला ॥**

‘संसृति’ अर्थात् संसार, यह सारा संसार ही एक मधुशाला है। अभी जितना प्रकरण में है, प्रसंगवश जो याद आ रहा है, वह आपको बता रहा हूँ। पूरी मधुशाला सुनाने नहीं बैठा हूँ। आप सुनते रहिए, आगे और भी सुनाता रहूँगा, जब जो प्रकरण आएगा बता दूँगा। क्या कह रहा है कवि? **‘क्षीण क्षुद्र क्षणभंगुर दुर्बल’** यह एक-एक पाती कहलाती है और एक-एक पाती में सिर्फ चार ही लाइन होती हैं, यह एक कविता पूरी हो गई। चार लाइनों की ही यह पाती होती है। वह कहता है कि यह जो काया है, वह कैसी है? क्षीण है, क्षीण होने वाली है, क्षीण हो रही है जो यहाँ कहा जा रहा है... काल रूपी सर्प उसे क्षीण कर रहा है, खा रहा है। वह कवि कह रहा है... वह क्षीण हो रही है। क्षुद्र है, क्षुद्र इसलिए है क्योंकि जो किसी दूसरे के द्वारा खाई जाए तो खाने वाला बड़ा होता है और जो चीज खाई जा रही है वह क्षुद्र अपने आप हो जाती है। अगर बड़े मगरमच्छ के पास में कोई बड़ी मछली भी आ जाए तो बड़ी होकर के भी वह उससे क्षुद्र ही कहलाएगी क्योंकि मगरमच्छ उसकी भी खा जाएगा। इसी तरह से मनुष्य कितना ही बड़ा क्यों न हो लेकिन काल उसको खा रहा है। संसार के हर प्राणी के ऊपर काल हावी हुआ है। काल को यहाँ पर बड़ा समझ कर के जब हम देखते हैं तो सबके शरीर क्षुद्र नजर आयेंगे, आप इसको बचा नहीं पाओगे। क्षीण, क्षुद्र, क्षणभंगुर! यह शरीर कैसा है? क्षणभंगुर है, समझते ही हो। क्षण भर में कहाँ विलीन हो जाता है? कहाँ उसकी काया माटी में मिल जाती है? कहाँ उसकी सांसें क्षण भर में रुक जाती हैं? कहाँ प्राण निकल जाते हैं क्षण भर में? कोई पता नहीं पड़ता है। ऐसी क्षीण, क्षुद्र, क्षणभंगुर, दुर्बल और उसके साथ में यह काया कैसी है? दुर्बल है। चाहे कितने ही प्रयास कर लो, कितने ही तुम अच्छे-अच्छे पदार्थ खा लो, यह दुर्बल है तो दुर्बल ही रहेगी। ऐसी यह काया क्या है? यह मिट्टी का प्याला है, यह अपने को प्याला मिला है। **‘क्षीण, क्षुद्र, क्षणभंगुर, दुर्बल, मानव मिट्टी का प्याला’** एक पाती का रस तो लो। और आगे, और आगे, यह तो फिर वही बात हो गई कि भाई! एक पिला दिया, एक और पिला दो, एक और पिला दो, पीने के लिए उस पीने का थोड़ा सा रस तो लो। मानव की आदत होती है, एक साथ बहुत सारा जो उसे अच्छा लग जाए तो बस एक साथ बहुत सारा पिला दो, taste नहीं लेना चाहता है। taste तब आता है जब हम धीरे-धीरे उसको पीते हैं, चूसते हैं। भ्रमर क्या कर रहा है? चूस रहा है। इसलिए बच्चों को पहले जो चीजें दी जाती थी, वे चूसने वाली चीजें दी जाती थी, बच्चों को पहले। जब बड़े हो जाते हैं तो चूसना छोड़ देते हो, फिर खाना शुरू कर देते हो। बच्चों को हर चीज चूसने वाली अच्छी लगती है। छोटी-छोटी गोलियाँ बाजार में आती थी, बच्चों को सबसे अच्छी चीज क्या लगती है? जिन्हें मुँह में रख लो... लाल, नीली, पीली गोलियाँ और चूसते रहो, सबसे अच्छा लगता है। बच्चों को तो चूसना अच्छा लगता है लेकिन जैसे ही वह बच्चा बड़ा हो जाता है, उसकी तृष्णा बढ़ जाती है, तो फिर उसे चूसना अच्छा नहीं लगता, फिर उसे खाना अच्छा लगता है। अब मुझे दो... छोटी-छोटी गोलियाँ नहीं, एक साथ बहुत सारी दे दो। वह एक साथ 10 गोलियाँ चबा लेगा, एक साथ 10 गोलियाँ खाने का प्रयास करेगा और बच्चा होगा तो एक-एक गोली अपने मुँह में रखेगा, चूसेगा, फिर एक खत्म हो जाएगी, फिर दूसरी जेब से निकालेगा। सबने चूसी हैं कि नहीं? क्या बोलते हो उनको? लॉलीपॉप अलग होता है, कंपट अलग होते हैं। उसको कंपट बोला जाता था। हाँ! संतरे की गोलियाँ, गटागट। ये सब तरह-तरह की जो चीजें आती हैं, ये सब इसलिए आती हैं कि खाने वाले आदमियों! थोड़ा सा चूसने का भी

प्रयास करो। सबको खाने की पड़ती है। एक प्याला खत्म हो गया, दूसरा लाओ। अरे भाई! एक प्याले का पहले रस तो लो।

क्षीण क्षुद्र क्षणभंगुर दुर्बल, मानव मिट्टी का प्याला, जिसमें कितनी भरी हुई है, कटु मधु जीवन की हाला।

हाला जानते हो? हाँ! वही हाला, शराब को हाला बोलते हैं। उसमें कितनी भरी हुई है? कहीं कड़वी, कहीं मधुर, कभी अच्छे अनुभव, कभी बुरे अनुभव, कभी अपमान, कभी सम्मान, कभी निराशा, कभी उत्साह; यह सब उसके जीवन में भरा हुआ है। वह हाला दोनों तरह की होती है... कभी कड़वी, कभी मीठी। **‘मृत्यु बनी है निर्दय साकी, अपने शत शत कर फैला’** अपने सैकड़ों हाथ फैला कर के मृत्यु तो निर्दय साकी बनी हुई है। साकी मतलब होता है, यह भी हमें ही बताना पड़ेगा? जानते हो साकी क्या होती है? जो उस हाला को serve करती है, उसका नाम साकी होता है। वह मृत्यु है, जो हमारे सामने खड़ी है निर्दय होकर के और वह हमें यह प्याला दे रही है, पी ले बेटा। जब से जन्म मिला है तब से मृत्यु भी तुम्हें पिलाई जा रही है और पीने वाला कौन है? तुम्हें लग रहा है कि मैं पी रहा हूँ, तुम्हें लग रहा है कि मैं पी रहा हूँ। पीने वाला तो कोई और है जो दिखाई नहीं दे रहा है। वह अदृश्य काल है। **‘काल प्रवण है पीने वाला और संसृति है यह मधुशाला’** सारा संसार एक मधुशाला की तरह है। सारे संसार को पीने वाला अगर कोई है, तो काल है। चाहे वह किसी भी रूप में आप समझ लो, चाहे भौरे के रूप में काल को पीता हुआ देख लो और चाहे शराब के रूप में काल को पीता हुआ देख लो। जिस किसी भी कवि के हृदय में संसार की वास्तविकता अगर दिखाई देगी, उसे अगर नजर आई होगी तो उसे यही नजर आएगा कि संसार को पीने वाला काल ही है, काल ही इस संसार को खा रहा है। बाकी संसार में कोई चीज नहीं है जो स्थिर रहने वाली हो। यह पाती है, एक पाती एक दिन में पी जाती है। ज्यादा पियोगे तो नशा बढ़ जाएगा इसलिए यहाँ पर उस काल के लिए कहा जा रहा है। आज क्या है? आज जन्माष्टमी है, कृष्णाष्टमी है। कृष्ण का मतलब भी क्या होता है?



काला ही होता है। आज एक ऐसे महापुरुष का जन्म हुआ, जिसके नाम से आज भी यह दुनिया उनका नाम लेते ही प्रसन्न हो जाती है। उनकी चेष्टाएँ, उनका पराक्रम, उनका रूप-सौंदर्य ऐसा अद्भुत था कि वह कृष्ण तो उनका नाम रखा गया था, इसलिए यह मत समझना कि वह कृष्ण होने के कारण से तुम्हारी तरह सुन्दर नहीं लगते थे। नील वर्ण का उनका शरीर था जैसे नेमिनाथ भगवान का शरीर नील वर्ण का है, ऐसे ही कृष्ण का शरीर भी नील वर्ण का था। उनका नाम वह कृष्ण जो रखा गया, वह उनके शरीर के रंग को लेकर के ही रखा गया। लेकिन जब किसी प्रभाववान महापुरुष का जन्म होता है, तो उस जन्म के लिए भी आप देख सकते हो कि कितनी विपरीत परिस्थितियों में किसी का जन्म होता है। बाद में जो जीवन चलता है, वह एक अलग पुण्य के साथ चलता है। लेकिन जन्म के समय पर विपरीत परिस्थितियाँ कितनी हो सकती हैं, इससे अधिक आपको देखने को कहीं नहीं मिलेंगी, जितनी आपको कृष्ण के जीवन में देखने को मिलेंगी। सब जानते हैं कृष्ण का जन्म कहाँ हुआ?

जगत उपकारी महापुरुष

एक बड़ी कैद में हुआ जन्म और उस कैद के पीछे भी कितनी बड़ी एक विडम्बना है कि जिसका जन्म होना

है, उसे मारने के लिए पहले से शत्रु तैयार है। शत्रु को पता है, मेरा शत्रु कहाँ से उत्पन्न हो रहा है? और कहाँ उत्पन्न होगा? वह शत्रु को पहले से पता है। वह शत्रु कौन है? वह कंस है और वह यह भी जान रहा है कि यह जो देवकी है, इससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, ज्योतिषियों ने घोषणा कर रखी है, इसी पुत्र से तेरा वध होगा। अब जिसको यह पता हो कि इसके होने वाले पुत्र से ही मेरा वध होगा तो कोई भी व्यक्ति उस पुत्र को बढ़ने नहीं देगा। बस नहीं चलेगा, नहीं तो वह उसको गर्भ में ही मार डालेगा। उस कंस ने उस समय पर इस तरह की योजना बना ली। देवकी के जब भी गर्भ ठहरे, जब भी पुत्र हो, हमें पता पड़ना चाहिए और उसने वहाँ पर अपने गुप्तचर लगा रखे थे। गर्भ हो रहे हैं और गर्भ होने पर उत्पन्न हुए जो पुत्र हैं, उनकी रक्षा भी हो रही है और गुप्तचर भी लगे हैं और कंस जैसे बड़े-बड़े महान योद्धा भी उस पुत्र को मारने के लिए खड़े हैं।

पुण्य से मिला जीवन

देखो! आप कहते हो कि हम जिला रहे हैं दूसरों को, आप दूसरों को क्या जिलाओगे? जीव अपने पुण्य से ही जीता है। जो जीव गर्भ में आया है, वह अपनी रक्षा अपने पुण्य से करता है। आप उसे तत्काल मार सकते हो लेकिन अगर वह महा पुण्यवान जीव हो तो आप उसे मारने के प्रयासों के बाद भी नहीं मार पाओगे, ऐसे-ऐसे पुण्यवान जीव। देवकी के लिए गर्भ ठहरा, दो युगल पुत्रों का जन्म हुआ। जब वे दो युगल पुत्र जन्म लिए तो तुरन्त ही उन दोनों युगल पुत्रों को एक दूसरे सेठ के यहाँ पर पहुँचा दिया गया और संयोग की बात, उस सेठ के यहाँ पर उस समय पर मृतक पुत्रों का जन्म हुआ और वे लाकर के उस देवकी के पास में रख दिए गए और यह काम हो गया। कंस आया और उसने उन मृतक पुत्रों को देखकर के भी, कहीं इनमें सांस न हो, ये जीवित न रह जाएँ, उनको उसने शिला पर पछाड़ दिया। ऐसा एक बार नहीं तीन बार हुआ। दो-दो करके तीन बार युगल-युगल पुत्र उत्पन्न हुए और छह पुत्र उत्पन्न होने के बाद में उस पुत्र की बारी आती है, जिसकी चर्चा आपसे आज कर रहा हूँ। वह पुत्र अकेला उस गर्भ में आया और गर्भ में आने पर वह पुत्र अपने साथ में माता के लिए अनेक अच्छे शुभ स्वप्नों को लेकर के आया। महापुरुष होते हैं, पुण्यवान लोग होते हैं जिनके माध्यम से जगत का उपकार होना है। ऐसे पुत्रों के आने पर माता को शुभ स्वप्नों की प्राप्ति होती है। जब वह कृष्ण का जीव गर्भ में आया, माँ देवकी ने शुभ स्वप्न देखे। सूर्य देखा, चन्द्रमा देखा, गज के माध्यम से लक्ष्मी का स्नान किया जा रहा है, यह देखा, देवी का विमान देखा, अग्नि देखी, धुआँ देखा, सिंह देखा। कितने स्वप्न हो गए? सात स्वप्न देखे। तीर्थंकर की माँ होती है तो कितने स्वप्न देखती है? सोलह। ये नारायण हैं, अर्धचक्री हैं, इनके लिए भी जब इस धरा पर जन्म होता है, तो ये गिनती के महापुरुष होते हैं और पूरे चतुर्थ काल के अन्दर ऐसे केवल नौ महापुरुष उत्पन्न होते हैं। उनमें ये नौवें नारायण, ये नौवें महापुरुष थे।

देवकी के सपनों के फल

सात-सात महास्वप्नों के साथ में वह देवकी वसुदेव से पूछती है कि इन स्वप्नों का फल क्या होता है? वह फल बताते हैं...सूर्य के होने से तुम्हारा पुत्र प्रतापी होगा। चन्द्रमा को देखा है, उसके कारण से तुम्हारा पुत्र जगत को आनन्द देने वाला होगा। लक्ष्मी का स्नान देखा है इसलिए तुम्हारा पुत्र राज्य-लक्ष्मी का उपभोग करने वाला बनेगा। स्वर्ग के विमान को देखने से तुम्हारा पुत्र स्वर्ग से आने वाला होगा। अग्नि को देखा है इसलिए तुम्हारा पुत्र तेजस्वी होगा। ध्वजाओं को देखा है इसलिए तुम्हारा पुत्र धैर्यवान होगा और धर्म की

ध्वज को बढ़ाने वाला होगा और सिंह को देखा है इसलिए तुम्हारा पुत्र इस दुनिया में सबसे प्रतापी पुत्र होगा। ऐसे पुत्र के स्वपन देखने के बाद में वह देवकी उस पुत्र को जन्म देती है। आप सोचो! कि जब किसी महापुरुष का जन्म होना होता है, तो वह होता है और अगर उसके लिए कोई शत्रु भी पहरें लगा करके खड़ा हुआ हो, तो वह उसकी भी आँखों में चकमा दे जाता है और वह चकमा दिया। सबसे पहले श्री कृष्ण ने गर्भ में ही आकर के चकमा देना शुरू किया। कैसे चकमा दिया? जैन शास्त्रों में यह लिखा है कि हर किसी का जन्म नौ महीने में होता है लेकिन जैन शास्त्रों के अनुसार श्री कृष्ण का जन्म सात महीने में हो गया। समय से पहले हो गया और एक बड़ी विसंगति यह है कि जैन शास्त्रों में श्री कृष्ण के जन्म की तिथि अष्टमी न कह कर के द्वादशी बताई गई है, यह भी आपको जानना है। बारस को, भाद्रपद शुक्ला द्वादश को श्रीकृष्ण का जन्म बताया जाता है और दुनिया में जो श्री कृष्ण का जन्म मान्यता को प्राप्त है, वह अष्टमी को है और जैन दर्शन के अनुसार वह चार दिन बाद है, बारहवीं को है लेकिन है। कोई फर्क नहीं पड़ता, दो-चार दिन की तिथियाँ गड़बड़ हो सकती हैं लेकिन वह बारहवीं को जन्म होने के उपरान्त भी जन्म कैसे हुआ? यह जानना महत्वपूर्ण है।

कृष्ण की पुण्याई

वह जन्म हुआ, तो उस समय पर उनका सात महीने में जन्म हो गया। जन्म होने के उपरान्त ही बलदेव, वासुदेव, ये दोनों लोग उनको लेकर के रात्रि के अंधेरे में ही, जब घनघोर वर्षा हो रही थी, उस स्थान से बाहर निकल जाते हैं, जब सब लोग सो रहे होते हैं, जितने भी द्वार पर पहरें लगाने वाले लोग होते हैं, सब सो रहे होते हैं। उस बच्चे के पुण्य से उसके पैर का अंगूठा द्वार पर लगा दिया जाता है, तो द्वार अपने आप खुल जाता है और इतनी सन्ध बन जाती है, उसमें से वे तीनों लोग बाहर निकल जाते हैं। ऊपर और बन्दी बनाकर के बैठाए गए थे उग्रसेन को, जो कंस के ही अपने पिता थे। उन्होंने ऊपर से देखकर के, दरवाजे के ऊपर पहले बन्दी बनाने की व्यवस्था होती थी, उन्हें महल के अन्दर या राज्य के अन्दर नहीं रखा जाता था, उन्हें दरवाजे पर बिठा कर के उन्हें वहाँ बन्दी बना कर के रखा जाता था। वे उग्रसेन उस तरह से वहाँ बन्दी थे और उन्होंने यह देख लिया और उन्होंने आशीर्वाद दिया- यह पुत्र वृद्धि को प्राप्त हो, इसकी जय हो, वृद्धि को प्राप्त हो। नन्द! नन्द! इस तरीके से उन्होंने ऊपर से आशीर्वाद दिया और जो नीचे दोनों बलदेव, वासुदेव थे, उन्होंने कहा...यह रहस्य खुलना नहीं चाहिए। इसी के माध्यम से आपको बन्दी बनने से बचाया जाएगा, यह वह पुत्र है इसलिए इस रहस्य को खुलना नहीं चाहिए और वह आगे बढ़े। यमुना नदी को पार करना था, पूरे पूर पर थी यमुना नदी और उस यमुना नदी को पार करने के लिए, रास्ता बताने के लिए अचानक से एक बैल सामने आ गया और वह बैल आगे-आगे चलता चला जा रहा है, रास्ता बनता चला जा रहा है। यमुना नदी का पूर केवल उस बच्चे के, उस बालक के प्रताप से अपने आप वह पूर ठण्डा हो जाता है और वह सभी लोग उस बच्चे को गोद में लेकर के उस पार निकल जाते हैं। जहाँ पर यशोदा और नन्द एक उनके पुराने मित्रजन हैं, वहाँ ले जाकर के उस बच्चे को सौंप देते हैं। संयोग की बात है कि उसी समय पर उनके यहाँ एक पुत्री उत्पन्न हुई थी तो उसको लेकर के वह वापस लौट करके उसे देवकी के पास सुला देते हैं। इतना खेल हो गया और कंस को कुछ पता नहीं पड़ा। पहरेंदार लगे रहे, योद्धा सब सोते रहे और इतना खेल हो गया और वह पुत्री जब लाकर के वहाँ रख दी गई, कंस के लिए समाचार पहुँच गया कि हाँ! एक सन्तान का जन्म हुआ है। कंस ने आकर के देखा- अरे! यह तो पुत्री है। सोचता है, यह भी कहीं बड़े होकर के विवाह

कर ले और कहीं ऐसा न हो इसका पति ही मुझे मार डाले। उसके मन में आता है, इसको भी मार देना चाहिए। हाथ में उठा लेता है, फिर मारने के लिए तत्पर होता है। न जाने क्या उसको देख कर के उसके मन में विचार आता है- बेटी है, मारना अच्छी बात नहीं है। असहाय को मारना राजा के लिए उचित नहीं होता है। उसने उसकी नाक को इस तरीके से मरोड़ दिया, नाक ही चपटी कर दी उसने उसकी ताकि इसका विवाह न हो और कोई मेरा शत्रु न बने और उसको छोड़ दिया, मारा नहीं उसने और यह सब घटना घटित हो गई। कंस को लगा देवकी के सभी पुत्र मर गए। अन्त में यह पुत्री उत्पन्न हुई, यह भी चपटी हो गई, इसकी नाक भी हमने खराब कर दी। अब मैं बिल्कुल जो है, निश्चिन्त हो गया। वह कंस निश्चिन्त होकर के अपना जीवन जीने लग गया लेकिन उसका शत्रु कहाँ बढ़ रहा है? यह उसे पता नहीं है। शत्रु वृद्धि को प्राप्त होता है। जब बड़ा होता है, तो कंस के लिए अपने आप उपद्रव आने लग जाते हैं और जो दूसरे प्रजा के लोग हैं और जो दूसरे समुदाय में रहने वाले लोग हैं, दूसरे प्राणी लोग हैं, उन सब के लिए आनन्द उत्पन्न हो रहा है लेकिन कंस के लिए उपद्रव हो रहा है। कंस सोचता है...ये मेरे लिए नए-नए उपद्रव कहाँ से खड़े हो रहे हैं? तब एक ज्योतिषी बताता है- तुम्हारा शत्रु कहीं न कहीं बढ़ रहा है।

काल के ग्रास सभी जन

यह भी एक काल की समझने की बात है कि कैसे काल में कैसे-कैसे पुरुषों का जन्म होता है? लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो किसी भी काल में जन्म लिए हो, लोगों की रक्षा करने के काम में आते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो कितने भी अच्छे काल में जन्म लिए हो लेकिन लोगों को मारने के काम में आते हैं। कंस भी किसी न किसी मुहूर्त में ही जन्मा होगा। मुहूर्त महत्वपूर्ण नहीं होते हैं...व्यक्ति का पुण्य और पाप और उसकी वृत्तियाँ महत्वपूर्ण होती हैं कि वह किस वृत्ति का जीव है? जब इस तरह की चीजें हमारे सामने आती हैं, तब हमें यह समझ लेना चाहिए कि कोई भी हो, न तो कभी हमारे सामने तीर्थकर रहे हमेशा, न कभी कृष्ण जैसे नारायण भी सामने रहे, सबको यह काया तो छोड़ कर के जाना ही पड़ा। कोई भी यहाँ पर शाश्वत नहीं रह सकता है, यह इस संसार का एक बहुत बड़ा अटल सत्य है। काल सबके ऊपर हावी है, चाहे वह तीर्थकर हो, चाहे नारायण हो, काल ने किसी को नहीं छोड़ा। इसलिए काल ने तीर्थकरों के भी शरीर को नष्ट किया और काल ने नारायण के शरीर को भी नष्ट किया, उन्हें भी यह शरीर छोड़ कर जाना पड़ा।

महापुरुषों के मंगल कार्य

लेकिन अगर कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का धनी होता है, महान कार्य इस दुनिया में करके जाता है, तो लोग उसका नाम युगों-युगों तक बाद में भी लेते रहते हैं और उसके जन्म आदि अवसरों पर उसको याद भी करते रहते हैं और उनकी जयन्ती भी मनाते रहते हैं। ऐसे महापुरुष मंगल बन जाते हैं, मंगल! यह भी काल मंगल है। जिस काल में श्री कृष्ण जन्म लिए, वह समय मंगल है और जिस समय को आप याद करो और उनका स्मरण करते हो तो यह भी एक तरीके से पुण्यवान जीवों का स्मरण है, जो महापुरुषों की श्रेणियों में आते हैं। तिरिसठ शलाका पुरुष में नारायण की पदवी को धारण करने वाले श्री कृष्ण अन्तिम नारायण थे। इसलिए जब भी आप मंगलाष्टक पढ़ते हो, यह **‘विष्णु-प्रतिविष्णु-लांगलधराः’** सारे तिरिसठ शलाका पुरुषों को याद करते हो मंगलाष्टक में आज भी। उन्हीं महापुरुषों में अगर किसी का विशेष रूप से कभी

आपको स्मरण होता है, चरित्र सुनने को मिलता है, तो यह भी आप लोगों के लिए मंगल होता है। वैसे भी आज का दिन कहा गया है- सर्वार्थसिद्धि योग है आज, कृष्णाष्टमी के साथ-साथ। जो कई वर्षों के बाद इस अष्टमी पर इस तरह का योग पड़ता है। लेकिन सबसे अच्छा आपका योग क्या है? आकर यहाँ बैठे हो और यहाँ बैठ कर के इस तरह से आप सुन रहे हो, यही आपके लिए सबसे बड़ा सर्वार्थसिद्धि है।

अब कौन से अर्थ की सिद्धि करने जाओगे? दुकान पर तो जितनी अर्थ सिद्धि होनी है सो होनी ही है लेकिन सबसे बड़ी अर्थ सिद्धि है- पुण्य की सिद्धि होना, पुण्य कार्य में मन लगाना, अपने मन के अन्दर ऐसे महापुरुषों के बारे में विचार आना/सुनना। यह सब अपने आप में मंगल कार्य होता है लेकिन यह बात ध्यान रखी जाए **‘काल किसी को भी छोड़ता नहीं है’** इसलिए क्या करना चाहिए? यह नहीं बताया अभी तक। एक गाथा और पढो तो उसमें पता पड जाएगा कि क्या करना चाहिए?

गाथा: 09

धर्म कराने की प्रेरणा: काल किसी भी जीव को नहीं छोड़ता है

छाया-मिसेण कालो, सयल-जियाणं छलं गवेसंतो।
पासं कहवि ण मुंचइ, ता धम्मे उज्जमं कुणह ॥9॥

अन्वयार्थ- 'हे भव्य प्राणियो!' (कालो) काल (सयल-जियाणं) सकल यानी सभी, जीवों के 'निज-निज शरीर रूपी' (छाया-मिसेण) छाया के, बहाने से (छलं गवेसंतो) छल से 'जीवों के प्राणों की' गवेषणा/ खोज करता हुआ (सयल-जियाणं) सभी-जीवों का (पासं) सामीप्य (कहवि) किसी प्रकार, भी (ण) नहीं (मुंचइ) छोड़ता है (ता) उस कारण से 'तुम आत्म कल्याणरूप' (धम्मे) धर्म में (उज्जमं) उद्यम (कुणह) करो ॥9॥

यह तो अन्तिम पद में बताया गया है... 'छाया मिसेण कालो' यह काल कैसा है? अब एक दूसरी उपमा देकर बताते हैं कि यह यहाँ पर छाया की तरह छाया हुआ है। 'सयल जीयाणं' मतलब सभी जीवों के लिए, छल से प्रवेश कर गया है सब जीवों के अन्दर और यह सबके पास में है और किसी भी तरीके से इससे कोई छुड़ा नहीं सकता है। 'कहवि ण मुंचइ' किसी भी प्रकार से इसे छुड़ा नहीं सकता है, यह सभी के पास में बैठा हुआ है। छल से आपके अन्दर प्रवेश कर गया है और उसी की यह छाया है, जिसके माध्यम से यहाँ पर हर जीव इस तरह से दिख रहा है कि वह छोटे से बड़ा हो रहा है, बड़े से बूढ़ा हो रहा है, यह सब चल रहा है। यह सब उसी की छाया है, उसी की कृपा है। ऐसे इस काल के वशीभूत होने पर भी क्या करना चाहिए? 'ता धम्मे उज्जमं कुणह' हे संसारी प्राणियो! इसलिए धर्म में उद्यम करो। क्या करो? धर्म में उद्यम करो। उद्यम का मतलब? ऊधम करो? उद्यम में और ऊधम में अन्तर होता है कि नहीं होता? उद्यम करने का मतलब प्रयत्नशील होना, प्रयास करना, बार-बार उस तरह के कार्य को करने का साहस करना। इसलिए धर्म को करने का प्रयास करो, धर्म का आचरण अपने अन्दर अपनाने का साहस लाओ। इस प्रकार से अगर आप धर्म में उद्यम करेंगे तो यह काल के ऊधम से अपने-आप को बचा पायेंगे। सबसे बड़ा ऊधम सिंह, अगर डाकू का भी नाम दे तो यही डाकू है; सबको लूट कर ले जाता है। सबसे बड़ा एक काल ही ऊधम करने वाला है और इस तरह के काल से अगर कोई छुटकारा दिलाने वाला है, तो एक ही चीज है 'केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि' धर्म की शरण में आओ। केवली भगवान के द्वारा कहे हुए उस धर्म की शरण को अगर प्राप्त करोगे तब तो इस काल से बच पाओगे। नहीं तो काल हर जन्म में हर आयु को प्राप्त करा कर के आपके शरीर को खीखला बना कर के, मृत्यु को प्राप्त करा कर के आपकी दुःखी बनाता रहेगा और इस जीवात्मा को हमेशा पीड़ा देता रहेगा, कष्ट देता रहेगा क्योंकि जीवात्मा को सारी पीड़ाएँ इस शरीर के जन्म के और मरण के कारण से ही होती हैं।

धर्म हेतु हो उद्यम

इसलिए उद्यम करना है तो किसमें करना? धर्म के विषय में उद्यम करो। कौन सा धर्म? केवली के द्वारा कहा हुआ धर्म। कहाँ मिलेगा? कब मिलेगा? जिनको लेना है, उन्हें पता है। सुबह से लेकर शाम तक दिन में तीन बार वह धर्म बाँटा जा रहा है, दिन में तीन बार मिलता है। तीन बार तो विशेष रूप से दुकान खुलती है लेकिन सामान्य रूप से दुकान तो दिन भर खुली रहती है। कभी भी आओ, कभी भी बैठ जाओ, धर्म के पास में बैठ जाओगे धर्म ही मिलेगा। विशेष रूप से धर्म करना हो तो आगे 10 दिन आ रहे हैं, उस धर्म के लिए उद्यम करो, प्रयत्नशील बनो, effort करो। कैसे हम इस धर्म को अनुभव कर पाएँ? कैसे हम इस धर्म का पालन कर पाएँ? कैसे हमारे लिए यह धर्म मिले? इसका प्रयास करो। अच्छी चीजों के लिए प्रयास भी करना पड़ता है। अगर हमारे सामने किसी भी तरीके की विपरीत परिस्थितियाँ होती हैं, जब हम अच्छी चीजों के लिए एक जिद्द करने की स्थिति में आ जाते हैं तो वे विपरीतताएँ भी हमारे लिए अनुकूलताओं में बदल जाती हैं। आप प्रयास तो करो पहले लेकिन अगर आप मन ही नहीं करोगे तो फिर वह अनुकूलता कभी नहीं बनेगी और यही धर्म का एक बहुत बड़ा फल आपको देखने को मिल सकता है। मैंने ऐसे-ऐसे लोगों को देखा है, जो कहते हैं कि महाराज! हमें कभी दस दिन की छुट्टी हमें हमारे department में मिल ही नहीं सकती, कोई दे ही नहीं सकता है। लेकिन उन्होंने अर्जी लगाई तो, उनको दस दिन की छुट्टी मिल गई। पहले से ही अगर वह सोच कर बैठा है कि मिल ही नहीं सकता, हो ही नहीं सकता तो फिर कभी नहीं हो सकता। अर्जी लगाई, application गई, वह छुट्टी मान्य हो गई और उसको दस दिन की छुट्टी मिल गई। दस दिन उसने जम के अच्छे से धर्म का अनुभव किया, धर्म को जिया, करने से सब कुछ होता है। इसलिए कहा जा रहा है धर्म अपने आप नहीं आएगा। काल तो अपने आप आपको खाता रहेगा लेकिन धर्म आपके खाते में अपने आप नहीं आएगा। धर्म को तो प्रयास के साथ में, पुरुषार्थ के साथ में अर्जित करना पड़ता है। इसलिए कहा गया है **‘उज्जमं कुणह’** उद्यम करो, यह कहा जा रहा है। धीरे-धीरे यह जो धर्म के प्रति उद्यम हो रहा है, इसी से यहाँ पर ऊधम कम दिखाई दे रहा है। आने वाले दिनों में किसी भी तरह का ऊधम न हो, यह भी इसी धर्म के फल से ही सम्भव होगा, इसलिए धर्म करते रहना। आने वाले कुछ दिन ऊधम के दिन आ रहे हैं। किसी भी तारीख में यहाँ पर कभी भी ऊधम नहीं होना चाहिए क्योंकि धर्म के स्थानों पर कभी ऊधम सुशोभित नहीं होता है। कोई भी तारीख हो, कोई भी समय हो, यहाँ पर कभी भी ऊधम न हो, धर्म के लिए उद्यम हो। अगर आपको लग रहा है, इससे हमारे धर्म की वृद्धि होगी, अगर आपको लग रहा है इससे समाज के अन्दर उनके धर्म की वृद्धि होगी, इससे आपको लग रहा है हमें अगर गुरु के आज्ञा की हमारे अन्दर वृद्धि होगी तो वृद्धि करना, धर्म की वृद्धि करना, ऊधम मत मचाना। उद्यम कर पाओ तो कर लेना। उद्यम के लिए आशीर्वाद है; ऊधम करोगे तो फिर मैं बिल्कुल neutral हो जाऊँगा। इसलिए धर्म के प्रति उद्यम करने वालों को हमेशा गुरुओं का आशीर्वाद मिलता है, मिलता रहेगा लेकिन जो धर्म के स्थानों पर ऊधम करेंगे, उन्हें कोई आशीर्वाद नहीं मिलेगा। इतना जरूर है कि वीतरागी गुरु उनके लिए श्राप नहीं देंगे लेकिन उनके लिए कोई आशीर्वाद फिर फलित नहीं होगा। आशीर्वाद गुरुओं का अगर हमें मिल रहा है, तो हमें उसके लिए पुरुषार्थ और प्रयास करते रहना चाहिए।

[illegible]

गाथा: 10

अनादिकाल से जीवों की एकेन्द्रिय आदि पर्यायों में उत्पत्ति की निरन्तरता

कालंमि अणाईए, जीवाणं विविह-कम्म-वसगाणं।
तं णत्थि संविहाणं, संसारे जं ण संभवइ ॥10 ॥

अन्वयार्थ- (अणाईए कालंमि संसारे) अनादि, कालीन, संसार में 'परि-भ्रमण करते हुए' (विविह-कम्म-वसगाणं जीवाणं) नाना 'प्रकार के' कर्मों के, वशीभूत, जीवों की (जं) जो 'एकेन्द्रियादि चौरासी लाख योनि भेदों में उत्पन्न होने रूप' (संविहाणं) संविधान यानी व्यवस्था है 'उसमें ऐसी' (तं) वह 'कोई व्यवस्था ही' (णत्थि) नहीं, है 'जहाँ यह जीव' (संभवइ ण) उत्पन्न, नहीं होता हो अर्थात् यह जीव सामान्य से सभी भेद व्यवस्थाओं में उत्पन्न होता आ रहा है ॥10 ॥



वैराग्य शतक नाम के इस ग्रन्थराज में जो आपके सामने एक नया ग्रन्थ है, अभी तक अप्रकाशित था, अभी तक इस ग्रन्थ के विषय में कहीं कोई चर्चा न आपने विद्वानों के मुख से सुनी होगी, न मुनि संघ के मुख से सुनी होगी। ऐसा एक य ग्रन्थ संयोग से, अपने पुण्य योग से अपने हाथ में आया है। इसको पढ़ते हुए, इन गाथाओं का रसास्वादन करते हुए आगे बढ़ने का भाव रख कर के गाथा नम्बर 10 पढ़ते हैं...

कालंमि अणाईए, जीवाणं विविह-कम्म-वसगाणं।
तं णत्थि संविहाणं, संसारे जं ण संभवइ ॥10 ॥

एक और गाथा पढ़ते हैं आगे :-

बंधवा सुहिणो सव्वे, पिय(अ)-माया-पुत्त-भारिया।
पेय-वणाओ णियत्तंति, दाऊणं सलिलंजलिं ॥11 ॥

विहडंति सुआ विहडंति, बंधवा वल्लहा य विहडंति।
इक्को कहवि ण विहडइ, धम्मो रे जीव! जिणभणिओ ॥12 ॥

जीवात्मा एवं कर्म का बन्ध-विचार

इन तीन गाथाओं के विषय में आज थोड़ा सा विचार करेंगे। 'कालंमि अणाईए' पहले थोड़ा सा अर्थ

समझते हैं, अनादि काल में **‘जीवाणं’** यानी जीवों को **‘विविह कम्म वसगाणं’** जो अनेक प्रकार के कर्मों के वशीभूत हैं, ऐसे जीवों को **‘तं णत्थि संविहाणं’** ऐसा कोई संविधान नहीं है... **‘संसारे जं ण संभवइ’** जिससे कि यह जीव संसार में उत्पन्न न हो। कहा जा रहा है...अनादि काल में इस जीव के लिए ऐसा कोई संविधान नहीं मिला, जिसके कारण से यह जीव संसार में उत्पन्न न हो सके। अनादि काल की जब बात आती है, तो यह आपके लिए एक चेताने वाली बात होती है। हम जब भी अपने अन्दर झाँके तो यह विचार आना ही चाहिए कि हमारा अस्तित्व, हमारा जीवात्मा अनादि काल से इस संसार में है और वह संसार में रहने का कारण क्या है? **‘विविह कम्म वसगाणं’** अनेक प्रकार के कर्मों के वशीभूत यह आत्मा, यह जीव इस संसार में रहता है। आत्मा संसार में अकेला नहीं रहता, कर्म के साथ रहता है। जब हम कर्म की बात करते हैं तो आप उस कर्म की ओर न जाएँ जो कर्म हम किया करते हैं। जैन दर्शन में आत्मा जो कर्मों से बंधा है, उस कर्म की ओर इंगित किया जाता है जो कर्म आत्मा के साथ में बंध गया है...न कि वह कर्म जो कर्म हम कर रहे हैं। दुनिया में हम कहीं भी पढ़ेंगे तो हमें उसी कर्म के बारे में बताया जाता है जो हम कर रहे होते हैं। **‘कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन’** यहाँ पर भी वही कर्म कहा गया है कि आपका अपने कर्म में अधिकार है मतलब आप क्या मन से कर सकते हैं, वचन से कर सकते हैं, काय से कर सकते हैं? आप इन क्रियाओं में ही अपना अधिकार रख सकते हैं, फलों में आपका कोई अधिकार नहीं है। जैन दर्शन में इससे भी और भीतर की बात कही गई कि हमारा कर्म में अधिकार नहीं है, तो कौन से कर्म पर भी अधिकार नहीं है? कर्म के पीछे कौन सा कर्म और जुड़ा हुआ है? एक कर्म तो वह है जो हम कर रहे हैं, क्रिया के रूप में हमें दिखाई दे रहा है और एक कर्म वह है जो हमें दिखाई नहीं दे रहा लेकिन हमारी आत्मा से बंध रहा है। जब भी आप कोई भी क्रिया करते हैं तो क्रिया बाहर से दिखाई दे जाती है लेकिन भाव जो होता है, वह कर्म को आत्मा से बांध देता है। आप यहाँ बैठे हैं, सुन रहे हैं; आपके सुनने की क्रिया बता रही है कि आप सुन रहे हैं क्योंकि आप बैठे हैं, आप सोए नहीं हैं। जो आपके बैठने की यह क्रिया है, आँखें खुली रहने की क्रिया है, हमारी ओर देखने की क्रिया है; यह इंगित कर रही है कि आप सुन रहे हैं। जब आप मुँह नीचे कर लेते हैं, इधर-उधर देखने लग जाते हैं, आगे-पीछे आप होने लग जाते हैं तब फिर हम आपसे पूछ बैठते हैं, क्यों सुन रहे हो? तब आप सचेत हो जाते हो... हाँ! सुन रहे हैं। कभी-कभी यह पूछना भी आपको सचेत करना होता है कि हाँ! आप सुन रहे हो यानी सुन तो रहे हो लेकिन कुछ और सुनने लग गए थे, इसलिए सचेत हो जाइए। यह क्रिया जो आपकी बाहर से दिखाई देती है, इस क्रिया के पीछे भी एक और क्रिया चलती रहती है जो हमें दिखाई नहीं देती। आत्मा की क्रिया दिखाई नहीं देती, शरीर की क्रिया दिखाई देती है और क्रिया जब भी होगी तो बिना आत्मा के होगी नहीं।

जैन दर्शन की आवश्यकता

यहाँ पर आज अभियन्ता संघ बैठा हुआ है। एक तरह से engineer लोग बैठे हुए हैं और engineer लोग इस बात को जानते हैं कि बाहर हमें जो कुछ भी बना करके देना होता है, जो हमें बाहर से किसी भी तरीके का apparatus दिखाई देता है, उसके पीछे की जो machine होती है, वह सबको दिखाई नहीं देती लेकिन machine बनाने वाला ही engineer होता है। बाहर की चीजें बनाने वाला तो कोई simple carpenter भी हो सकता है लेकिन machine बनाने वाला engineer कहलाता है। TV होती है, घर में fridge होता है, तो उसका एक बाहर का structure होता है, उसके पीछे कहीं उसकी machine

लगी रहती है, हर चीज में लगी रहती है। मान लो अगर यह पंखा चल रहा है, तो इसकी पंखुड़ियाँ आपको दिखाई दे रही हैं, ऊपर की गोल shape दिखाई दे रही है लेकिन इसकी जो machine है वह उसके cap में ढकी हुई है, उसके पीछे वह भी है। वह machine बनाने वाला engineer कहलाता है। यह बाहर की पंखुड़ियाँ बनाने वाला तो कोई भी बना लेगा। यह rod बनाने का काम, cap बनाने का काम कोई भी कर लेगा। मुख्य चीज क्या है? पंखा किससे चल रहा है? ये पंखुड़ियाँ बनाने से कि उसका cap बना देने से कि उसकी rod बना देने से...पंखा किससे चल रहा है? machine बनाने से। engineer का काम machine बनाने का होता है इसलिए उसकी महत्ता होती है। कोई भी यंत्र चलता है, तो उस यंत्र को निर्धारित करना कि यह किस गति से चलेगा? कैसे चलेगा? इसका क्या function होगा? यह सब निर्धारण करने का काम engineer का होता है। इसलिए engineer को उस यंत्र का अभियन्ता कहा जाता है। अभियन्ता मतलब? उस यंत्र पर अधिकार रखने वाला, उस यंत्र के लिए जो अभीष्ट है, उसको देने वाला; वह engineer कहलाता है। वह engineer जानता है कि यह जो बाहर दिखाई दे रहा है, यह real function नहीं है, यह real machine नहीं है। जो real machine है, उसका जो real function है, वह अन्दर है। बाहर से खराबी दिखाई देगी...पंखा चलना बन्द हो गया, पंखुड़ियाँ बन्द हो गईं, किसको बुलाओगे? हथौड़ा मारने वाले को? किसको बुलाओगे? किसी carpenter को बुलाओगे या किसी लोहे का काम करने वाले लुहार को बुलाओगे? जब पंखुड़ियाँ चलना बन्द हो गई हैं, कुछ बाहर से function काम करते हुए दिखाई नहीं दे रहा है, तो इसका मतलब है कि भीतर का function कहीं disturb हो गया है। बस! इसी का नाम machine कहलाता है। ठीक इसी तरह से आचार्य कह रहे हैं...हमारे सामने भी हमारा शरीर होता है, उस शरीर की क्रिया होती है लेकिन उस शरीर की क्रिया के पीछे भी एक machine काम करती है जो आपको दिखाई नहीं देती है। अगर वह दिखेगी तो कैसे दिखेगी? या तो समझाया जाए, बताया जाए...उसको operate करके नहीं दिखाया जा सकता, यह एक बड़ी problem है। किसी भी doctor के पास पहुँच जाओ...भाई! हमारी body के अन्दर क्या है? वह तो operate करके दिखा देगा, body के अन्दर क्या है? लेकिन body जिसके base पर खड़ी है, वह जो भीतर की एक और machine है...उस machine को operate करने का कोई भी science नहीं है। है किसी के पास? वह engineering किसी के पास नहीं है। वह engineering automatically चल रही है और उसके ही माध्यम से यह शरीर चलता है। यह शरीर खड़ा है, बैठा है, क्रिया कर रहा है; यह सब उसी के base पर कर रहा है। जब भी किसी doctor के पास चले जाओगे, किसी भी surgeon के पास चले जाओगे तो वह body को तो सब कर देगा, बता देगा, body के part आपको दिखा देगा। लेकिन body जिस base पर खड़ी है; वहाँ तक उसकी कोई भी कैची नहीं पहुँच सकती, वहाँ तक उसका हाथ नहीं पहुँच सकता, कोई machine नहीं पहुँच सकती।

वह चीज कौन सी है? वह यहाँ बताई जा रही है। वह विज्ञान सुनने के लिए आपको इस सभा में आना पड़ेगा, वह विज्ञान सुनने के लिए आपको जैन दर्शन पढ़ना पड़ेगा, जो कर्म का सिद्धान्त बता रहा है। एक शरीर की क्रिया है, जो हमें दिखाई दे रही है लेकिन शरीर की क्रिया होने से पहले एक और क्रिया होती है- मन में और मन की भी क्रिया संचालित होती है- आत्मा में और आत्मा की वह क्रिया संचालित होती है- कर्म के कारण से। यह जो भीतर एक machinery चल रही है, उस machinery में अगर हम थोड़ा

बहुत देख पाते हैं तो physical इस machine को देख लेते हैं। थोड़ा सा अगर हमें ज्ञान भीतर और बढ़ता है, तो हम थोड़ी सी mental machine के पास भी पहुँच जाते हैं। थोड़ी सी मानसिकता का भी ज्ञान हम रखने लग जाते हैं। हम थोड़ा सा विचारों के function को समझने लग जाते हैं तो हम वहाँ तक भी पहुँच जाते हैं। लेकिन उसके भी भीतर आत्मा की क्रिया, उस क्रिया को जान पाना, उस क्रिया को समझ पाना यह हमारे बस की बात नहीं होती।

बद्ध कर्म का ज्ञान आवश्यक

वह जो आत्मा की क्रिया चल रही है, उस आत्मा की क्रिया के बिना मन में क्रिया नहीं आ सकती और मन की क्रिया के बिना शरीर क्रिया नहीं कर सकता। आत्मा में क्रिया क्यों चलेगी? आत्मा के साथ में कर्म का जो सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध के कारण से आत्मा में क्रिया चलती है और कर्म उस क्रिया को कराता है। अब यह कौन सा कर्म है? वह कर्म जो आत्मा से बंधा हुआ है और वह कर्म एक पौद्गलिक पदार्थ है; आत्मा की तरह चैतन्य पदार्थ नहीं है। आत्मा से बंधा हुआ एक पौद्गलिक पदार्थ है, जो आत्मा से सम्बन्ध रखे हुए है लेकिन वह दिखाई नहीं दे रहा है और सब कुछ उसी के बस में है। **‘जीवाणं विविह कम्म वसगाणं’** जितने भी जीव हैं इस संसार में, ये अनेक प्रकार के कर्मों के वशीभूत हैं और वे कर्म कौन से हैं? उसी सूक्ष्म कर्म की ओर यहाँ इंगित किया जा रहा है, कहा जा रहा है। सभी जीव अनेक प्रकार के कर्मों के वशीभूत हैं। अच्छे कर्मों के, बुरे कर्मों के; यह तो एक सामान्य सी परिभाषा है लेकिन अगर भीतरी दृष्टि से देखोगे तो ज्ञानावरणीय कर्मों के, दर्शनावरणीय कर्मों के, मोहनीय कर्मों के, वेदनीय कर्मों के, आयु कर्म के, नाम कर्म के, गोत्र कर्म के, अन्तराय कर्म के; इनके वशीभूत हैं। थोड़ी सी और इनकी detail जानना चाहोगे तो ज्ञानावरणीय में भी मति ज्ञानावरणीय कर्म के, श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म के, अवधि ज्ञानावरणीय कर्म के, मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म के, केवल ज्ञानावरणीय कर्म के। और detail जानना चाहोगे तो मतिज्ञान में भी अवग्रह मति ज्ञानावरणीय कर्म, ईहा मति ज्ञानावरणीय कर्म, अवाय मति ज्ञानावरणीय कर्म, धारणा मति ज्ञानावरणीय कर्म। महाराज! अब तो बस करो, इससे ज्यादा अब दिमाग नहीं चलेगा। यह तो एक कर्म के भेद बताये जा रहे हैं। ऐसे सभी कर्मों के भेद जो गिनने में आ जाते हैं...वे 148 प्रकार के हैं। कितने? इन कर्मों के साथ में जो आत्मा बन्ध को प्राप्त है, जो बंधा हुआ है, वह अनादि काल से आत्मा ऐसे ही इन कर्मों से बंधा हुआ है। आत्मा बन्ध को प्राप्त है, इसलिए उसके माध्यम से कर्म के द्वारा मन में, शरीर में क्रियाएँ दिखाई देती हैं। हम शरीर और मन की क्रिया को तो कर्म कहना जानते हैं लेकिन आत्मा में जो कर्म विविध प्रकार के बंधे हुए हैं, उन्हें कर्म कहना नहीं जान पा रहे हैं; यहाँ तक दृष्टि पहुँचाने का काम ये गाथाएँ करती हैं। समझना है कि हम जो क्रिया कर रहे हैं, वह क्रिया कहाँ से संचालित हो रही है? मन से नहीं, मन के भी परे; आत्मा और कर्म के सम्बन्ध से वह क्रिया संचालित हो रही है। अगर हम कहें कि आत्मा केवल क्रिया कर लेगी तो वह भी नहीं कर पाएगी क्योंकि शुद्ध आत्मा कोई क्रिया नहीं करती है। आत्मा में कर्म का बन्ध हो गया इसलिए वह अशुद्ध है इसलिए ही वह क्रिया कर पा रही है अन्यथा शुद्ध आत्मा कोई क्रिया नहीं करती है। शुद्ध पदार्थ में कोई क्रिया नहीं होती है। क्रिया जब भी होगी, पदार्थ की अशुद्धता के साथ होगी और अशुद्ध पदार्थ ही क्रिया करता है। जिस क्रिया का manifestation हम बाहर देख सकते हैं, वह क्रिया अशुद्ध पदार्थ में ही होती है। इसलिए यहाँ कहा जा रहा है...जीव विविध प्रकार के कर्मों के वशीभूत अनादि काल से इस संसार में है और संसार से निकलने के लिए इसके लिए कोई संविधान आज तक बना

नहीं है।

चक्रवर्ती भरत से भारत नाम

संविधान तो बने हैं; constitution of, क्या बोलूँ? बोलो! India कि भारत? यह भी पूछना पड़ेगा आप लोगों से..क्या बोलूँ? अभी final कुछ हुआ नहीं है। भारत का संविधान कि India का संविधान? भारत का संविधान, ये भारतवासी लोग हैं। अच्छी बात है, कम से कम भारत कहने से आपको भगवान ऋषभ देव के पुत्र भरत की याद तो आएगी, इतनी ही अच्छी बात है। भारत जिनके नाम से पड़ा, वह भगवान ऋषभ देव के पुत्र भरत हैं; उनके नाम से भारत चलता है। जिन्होंने भारत की उन दिगन्त सीमाओं को और उसके पार तक की सीमाओं को, जो आज विदित विश्व में ज्ञात भी नहीं हैं; उनको भी जीत लिया था। ऐसे भरत चक्रवर्ती के नाम से भारत चल रहा है लेकिन अभी भी कुछ लोग अज्ञानता में उन भरत को नहीं जान पाने के कारण से किसी दूसरे भरत का नाम सामने ले आते हैं। एक दुष्यंत राजा और शकुंतला रानी के पुत्र हुए हैं- भरत, लोग उनको सामने ले आते हैं; यह एक बहुत बड़ी भ्रान्ति है। यह वह भरत के नाम से भारत नहीं चल रहा है। उन भरत ने भी हो सकता है कि वह पूरा का पूरा भारत पर अपना राज्य जमाया हो, अपनी सीमाओं का विस्तार किया हो लेकिन यह बहुत बाद के हैं। ये दुष्यंत और शकुंतला के भरत बहुत बाद के हैं। सबसे प्राचीन नाम अगर आता है, तो वह भगवान ऋषभ देव के पुत्र भरत चक्रवर्ती का नाम आता है और लोगों को थोड़ा सा पढ़ना चाहिए। अगर उन्हें जैन शास्त्र पढ़ने को नहीं मिलते, कोई बात नहीं; भगवत् गीता पढ़ लेनी चाहिए, भागवत पुराण पढ़ लेना चाहिए। उस भागवत पुराण में भी यह लिखा हुआ है कि भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत के नाम से ही यह देश भारतवर्ष जाना जाता है। फिर भी लोग किसी भी तरह के statement देते हैं, article लिखते हैं; उनके पास तक यह बात पहुँचाना चाहिए जो लोग इस तरीके की statement देते हैं, article लिखते हैं कि भाई! ये चीजें आपके लिए अभी भी भ्रान्ति है जो आप शकुंतला और दुष्यंत के पुत्र भरत की बात कर रहे हो। इससे भी पहले चलो...भगवान ऋषभ देव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के माध्यम से जब यह भारत देश का नाम चला, आगे बढ़ा तो उसका मुख्य कारण था कि वह भारत जैसे और भी पाँच खण्ड समझ लेना चाहिए और भारत को मिलाकर के छह खण्ड...ऐसे बड़े-बड़े छह खण्डों के वह राजा थे। यूँ कहना चाहिए, जितना globe आज आपको दिखाई देता है विश्व, ऐसे पाँच और हैं; वे अभी मिले नहीं हैं। अब चाहे आप चन्द्रमा पर चले जाओ, चाहे सूर्य पर अपने विमान भेज दो, वे मिलने वाले नहीं हैं। आपकी पहुँच वहाँ तक नहीं होने की। ऐसे छह खण्डों के अधिपति राजा वह भरत चक्रवर्ती कहलाते थे। उनके नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष जाना जाता है। यह ज्ञान आज तक लोगों को क्यों नहीं आ रहा है? पढ़े-लिखे लोग इस ज्ञान को आगे क्यों नहीं बढ़ा रहे हैं? यह बात जैन शास्त्रों में भी लिखी है, वैदिक शास्त्रों में भी लिखी है। जैन-अजैन, सबके यहाँ पर यह reference अच्छे ढंग से लिखे गए हैं, उसके बावजूद भी अन्य-अन्य बातें सामने क्यों आ जाती हैं और अगर यह भरत का भारत सामने आता है तो आप समझ सकेंगे, 24 तीर्थकरों में से सबसे पहले तीर्थकर भगवान ऋषभ देव का नाम अपने आप सामने आ जाएगा और उन्हीं के पुत्र भरत के नाम से इस भारत की प्रतिष्ठा बनेगी। ऐसे यह भारत देश के अन्दर हम भले ही आज यहाँ रह रहे हो लेकिन इसका संविधान चाहे भारत का संविधान हो, चाहे हिंदुस्तान का संविधान हो, चाहे India का संविधान हो, चाहे और कोई नाम लिए जाते हैं, अजनाववर्ष एक नाम और आता है उसका संविधान हो, किसी भी संविधान की हम बात करें, किसी भी संविधान में यह संविधान नहीं

बनाया गया कि तुम्हें संसार से मुक्ति कैसे मिलेगी।

जैन दर्शन का संविधान

यह constitution कहीं पर भी नहीं है। यह law कहीं पर भी नहीं लिखे गए हैं कि तुम्हें संसार से मुक्ति कैसे मिलेगी? इन अधिनियमों की जानकारीयाँ केवल और केवल आपको जैन दर्शन के अन्तर्गत मिलेंगी, उन्हीं के धाराएँ पढ़ने से मिलेंगी, उन्हीं के ज्ञान पढ़ने से मिलेंगी। यह एक-एक गाथा एक-एक धारा है। धारा नम्बर 10, यह धारा आपको बता रही है कि आप यहाँ कब से हैं? यह संविधान आपको बता रहा है कि आपका अस्तित्व यहाँ कब से है? किसी भी law की पुस्तक में, किसी भी संविधान की पुस्तक में कभी आपको यह लिखा हुआ नहीं मिलेगा कि आपका अस्तित्व यहाँ कब से है? यह यहाँ लिखा हुआ है। वैराग्य शतक की धारा नम्बर 10 में लिखा हुआ है कि आप यहाँ अनादि काल से हैं। कब से हैं? अनादि काल का मतलब? आपके पास time का कोई भी origin point नहीं है, जहाँ से आप originate हुए हो। Past time का कोई भी time पर कोई boundation नहीं है, जहाँ से हमारी शुरुआत हो रही हो। न ऐसा कभी हुआ है, न होगा। Time हमेशा independent unit है, time को हम bound नहीं कर सकते हैं। न past time को bound कर सकते हैं, न future को bound कर सकते हैं। जब time bounded नहीं है, तो फिर उसमें रहने वाली चीजें कैसे bounded हो जायेंगी? इसलिए काल भी अनादि है और उस काल में रहने वाले जीव आदि, आत्मा आदि तत्त्वों का, पदार्थों का अस्तित्व भी अनादि है। Beginningless time इसको कहा जाता है।

लोक भावना- विचार

हम इस संसार में कब से हैं? Beginningless time से हैं। जहाँ आपने Beginning शुरू कर दी, वहीं आपके लिए भ्रान्ति खड़ी हो गई। जहाँ आप शुरुआत करेंगे, वहीं पर question mark खड़ा हो जाएगा। शुरुआत किससे? कहाँ से? किन साधनों के माध्यम से? शुरुआत करने वाला कौन? ये सारे के सारे प्रश्न चिन्ह जब आपके सामने आ जाएँ और इनका उत्तर आपको कहीं नहीं मिलेगा जो आपको satisfied कर पाएँ। अगर हम कहें...किसी भगवान ने शुरुआत कर दी तो भगवान कहाँ से आ गया? हम कहें...किसी ब्रह्मा ने शुरुआत कर दी तो ब्रह्मा को किसने बना दिया? वह ब्रह्मा किन तत्त्वों से बन गया? जब इस दुनिया में कुछ नहीं था तो ब्रह्मा अकेला बन कर कहाँ से आ गया? जब ब्रह्मा ने दुनिया को बनाया तो फिर दुनिया की इन चीजों को ब्रह्मा ने कहाँ से खींचा? कौन सी ब्रह्मा के पास machinery थी, जिससे उसने मनुष्य बना दिया, पशु बना दिए, पेड़-पौधे बना दिए। सब ब्रह्मा की machinery से बनते हैं क्या? कौन सी उनके पास special ऐसी machine है? जिससे उन्होंने सब, ब्रह्मा ने यह सारी पृथ्वी बना दी कि यह सारी सृष्टि बना दी। यह question सामने आएगा, question करना चाहिए और question करने में हमें नहीं लगता है कि प्रजातंत्र में, लोकतंत्र में question खड़ा करना कोई गलत बात होती है। यह question जब तक बुद्धिजीवी लोगों के सामने नहीं आएगा, तब तक आपकी भ्रान्ति मिटने वाली नहीं है। यह machinery जो हमारे अन्दर चल रही है, इस machinery को कोई बनाने वाला नहीं है। यह self made machinery है। न यह China made है, न यह India made है, न यह भारत made है, न

यह man made हैं, न ब्रह्मा made है। यह self made machinery है। इसको जब तक आप स्वीकार नहीं करेंगे, यह जब तक आपके जेहन में बात नहीं पहुँचेगी, आपके भीतर की भ्रान्ति कभी मिट नहीं सकती। हमारा existence यहाँ कब से है? अनादि काल से है। हम किसके वशीभूत हैं? किसी ब्रह्मा के वशीभूत नहीं हैं, अपने ही कर्मों के वशीभूत हैं, अपने ही कर्मों के साथ हम बंधे हुए हैं।

अब ऐसा कोई संविधान हमें आज तक पढ़ने को नहीं मिला, सुनने को नहीं मिला, देखने को नहीं मिला जो हमें इस संसार से पार उतार दे या इसके कारण से यह जीव संसार में उत्पन्न न हो। यह संविधान हमें कहाँ मिल रहा है? अभी तो आपके सामने केवल question किया जा रहा है। यह संविधान जब तक आप नहीं ढूँढोगे, तब तक आपकी खोज अधूरी कहलाएगी। खोजने की कोशिश करो कम से कम। कैसे इस जीव का जन्म संसार छूटे? इस तरह का संविधान हमें कहाँ लिखा मिलेगा? यह जीव जन्म-मरण के चक्र से कैसे मुक्त होगा? यह संविधान जहाँ लिखा मिले उसकी चर्चा की जाए तो कुछ बात बने। आज दुनिया में उसकी चर्चा तो होती ही नहीं है। जिन संविधानों की चर्चा हो रही है, उनके होने या न होने से क्या फर्क पड़ता है? आप चाहे भारत कह लो, चाहे India कह लो, चाहे अजनाभवर्ष कह लो, चाहे हिन्दुस्तान कह लो; क्या फर्क पड़ता है? नाम से क्या फर्क पड़ता है? फर्क पड़ेगा...आपके भीतर की दृष्टि क्या है, किसी चीज को कहने की या आपका प्रयोजन क्या है, किसी चीज को बदलने का? हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि आज सरकारें चेत गई हैं। हमें गुलामी से बाहर निकालने के लिए India से भारत बना रही हैं; हम यह भी नहीं कह सकते हैं। अगर गुलामी से बाहर निकालने की बात है, तो फिर पूरी अंग्रेजी ही भारत से बाहर निकाल दो तो हम समझे कि हाँ! पूरी गुलामी से बाहर निकालने की बात कर रहे हो।

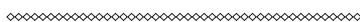
सौरमंडल विषयक भ्रम

गुलामी हमारे अन्दर बसी हुई है और इस गुलामी के कारण से ही हम ऊँचाइयाँ छू रहे हैं। आज जितने सम्बन्ध हो रहे हैं, जितने agreement हो रहे हैं, ये सब उन्हीं लोगों से हो रहे हैं जिन्होंने हमें गुलाम बनाया था। आज ये उन्हीं की चालें हैं जिनके कारण से आज हम चन्द्रयान पर पहुँच रहे हैं। सबसे ज्यादा funding हमको वही दे रहे हैं। सूर्य विमान पर पहुँचने की, चन्द्र विमान पर पहुँचने की funding भारत की नहीं है; यह NASA company जो अमेरिका की है, वहाँ से यह funding आ रही है। उनसे सम्बन्ध बन रहे हैं और इन सम्बन्धों के कारण से हम अपने आप को बड़ा मान रहे हैं। इसके पीछे की politics अभी आपको समझ में नहीं आएगी क्योंकि आपके दिमाग पर हमेशा चश्मा चढ़ा रहता है। आपको सिर्फ वही दिखाई दे देता है, जो दिखाया जाता है। क्यों दिखाया जा रहा है? उस reason तक आप कभी नहीं पहुँच पाते हो। इसलिए ये जो दुनिया की भ्रान्तियाँ, जो भ्रम हैं; ये हमारे दिमाग से धीरे-धीरे हटेंगे। हम अगर अभी बहुत जल्दी हटाने की कोशिश करेंगे तो आप हम पर बहुत जल्दी react कर देंगे; इसलिए अभी हम ज्यादा नहीं कुछ कह रहे हैं। बस! आपके सामने question marks लेकर के, छोड़ के चल रहे हैं आगे कि हमारे सामने ये भ्रम जो तरह-तरह के हैं, दुनिया के भी हैं, अपनी machinery को लेकर के भी हैं, अपने कर्मों को लेकर के भी हैं, अपने संसार को लेकर के भी हैं; ये तरह-तरह के भ्रम जब तक हम तोड़ने का प्रयास नहीं करेंगे तब तक हम एक अच्छे engineer, एक अच्छे पढ़े-लिखे व्यक्ति, एक intelligent व्यक्ति हम

नहीं कहला पाएँगे क्योंकि हमारा काम भ्रम तोड़ने का ही होना चाहिए और ये भ्रम बहुत सारे हैं। अगर एक भी भ्रम टूटना शुरू हो जाता है, तो अन्य आगे-आगे के भ्रम टूटने शुरू हो जाते हैं।

भ्रम को तोड़ने का उपाय

मैं कहता हूँ...केवल एक भ्रम तोड़ने की बात अगर की जाए, हम इस संसार में कब से हैं? बस! इस एक प्रश्न का सही उत्तर मिल जाए, आपके सारे भ्रम टूट जायेंगे। हम इस संसार में कब से हैं? हमें किसने बना दिया? हम किसी की बनाई हुई चीज हैं या हम self existence रखने वाली कोई चीज हैं? यह भ्रम जब तक नहीं टूटेगा तब तक आपका भगवान के प्रति, सृष्टि के प्रति और इस सृष्टि के जो कारनामे दिखाए जा रहे हैं...चन्द्रयान-सूर्ययान, इन सबके प्रति आपका भ्रम कभी टूटने वाला नहीं है। इस सब का मुख्य कारण एक है। पहली एक बात, एक प्रश्न हर पढ़े-लिखे व्यक्ति से...हम इस संसार में कब से हैं? हमारा अस्तित्व कब से है? पहले यह बिल्कुल clear कर लो, इसका decision ले लो और अगर यह भ्रम टूट गया तो आगे हर line clear है क्योंकि light की अगर एक किरण भी आपके लिए किसी भ्रम को तोड़ने वाली हो गई तो आगे-आगे वह आपको light अपने आप बढ़ाती हुई मिलती चली जाएगी और उसको आपके माध्यम से हर चीज आगे-आगे स्पष्ट होती चली जाएगी। एक भ्रम नहीं टूटता तो सब भ्रम पड़े रहते हैं और वे भ्रम कितने तरीके के होते हैं? देखिए आगे...एक और दूसरे भ्रम की बात कर रहे हैं...११वें नम्बर की गाथा में....



गाथा: 11

सम्बन्धों की सीमा श्मशान घाट तक ही होती है

बंधवा सुहिणो सव्वे, पिय(अ)-माया-पुत्त-भारिया।
पेय-वणाओ णियत्तंति, दाऊणं सलिलंजलिं॥11॥

अन्वयार्थ- 'बंधु' (बंधवा) बांधवगण (सुहिणो) सुहृत् यानी मित्र (पिय-माया-पुत्त-भारिया) पिता, माता, पुत्र 'और' भार्या यानी पत्नी 'ये' (सव्वे) सभी 'मृतक कों' (सलिल-अंजलिं) जलांजलि अथवा श्रद्धांजलि (दाऊणं) देकर (पेयवणाओ) प्रेतवन से अर्थात् श्मशान घाट से (णियत्तंति) निर्वृत्त यानी मुक्त हो जाते हैं अर्थात् अपने-अपने घरों को लौट आते हैं यानी यहीं तक साथ निभाते हैं इसके आगे नहीं, यही संसार की यथार्थता है॥11॥

अनेक तरह के भ्रम

कहा जा रहा है...हमारेबंधु होते हैं, सुहृद् होते हैं जो विशेष मित्र कहलाते हैं। इसके अलावा हमारे कुछ अपने माता-पिता, पुत्र-पत्नियाँ, ये सब भी हमारे रिश्तों में होते हैं, सम्बन्धों में होते हैं और ये सब हमारा साथ देने के लिए हमारे साथ रहते हैं। सबने कसमें खाई होती हैं, हम तुम्हारे साथ रहेंगे। जन्म-जन्म तक साथ निभाने की भी कसमें खा लेते हैं कई लोग और नहीं भी खाएँ तो भी हर किसी का विश्वास रहता है। हर घर में जो जिसके माता-पिता, बंधु-भाई, पुत्र-पुत्रियाँ होंगे, सबका विश्वास रहता है...ये हमारे लिए हमेशा साथ देने वाले हैं। अब यह जो हमेशा है, सदा है; इसकी range क्या है? 'हमेशा साथ देने वाले' इसका मतलब क्या है? हमारे दिमाग में तो चढ़ जाता है, यह हमेशा साथ देने वाले हैं। यह 'हमेशा' का मतलब क्या है? कभी हम इस चीज का भी कोई classification करते हैं कि नहीं? 'हमेशा' का मतलब? इसी जन्म में साथ देंगे या अगले जन्म में भी हमारे साथ रहेंगे? 'हमेशा' का मतलब क्या? इस जन्म में भी किसी एक age तक हमारे साथ में रहेंगे, उसके बाद में साथ छोड़ देंगे? हमने सबके बारे में क्या सोच रखा है? ये सब हमारा साथ देते हैं...कहाँ तक साथ देते हैं? जब तक हमारे शरीर की क्रिया चलती है तब तक साथ देते हैं या जब तक हमारी आत्मा की क्रिया चलती रहेगी तब तक साथ देंगे। बोलो! कुछ तो थोड़ा सा chemistry को समझा जाए। शरीर की क्रिया जब तक हमारी चल रही है तब तक ये साथ हैं या जब तक हमारी आत्मा क्रिया करती रहेगी तब तक ये हमारे साथ हैं। आत्मा तो अनादि काल से क्रिया करती आ रही है, अनादि काल से कर्म बन्ध से बंधी हुई है, अनादि काल से शरीर आदि ग्रहण करती आ रही है; यह हमेशा तो हमारे साथ में थे नहीं। अब ये आ भी गए हैं हमारे साथ में तो क्या यह हमारे साथ हमेशा रहेंगे तो कब तक रहेंगे?

कभी हम सोचते हैं...यह 'हमेशा' का मतलब क्या है? हमारे दिमाग में चढ़ रखा है...इनका हमारा साथ

हमेशा रहने वाला है, जन्म-जन्म का साथ है हमारा। बोलो! नहीं बोल रहे हो? अरे! कम से कम हमारा तुम्हारा तो बोल लो। हमसे डर रहे हो क्या? घर में तो बोल लेते हो, यहाँ बोलने पर डर आ रहा है। जबकि घर का जो साथ है वह आपका जन्म-जन्म का कभी नहीं हो सकता।

एकत्व भावना का चिन्तन

यह जरूर है कि अगर आपने हमसे कोई साथ निभा लिया तो ये जन्म-जन्म का साथ आपके लिए बहुत साथ देने वाला हो सकता है। जन्म-जन्म की भटकनों को दूर करने के लिए भी कई बार यह साथ की जरूरत पड़ जाती है और यह साथ, अगर साथ होता है, तो फिर अपने अन्दर अपने आप वह विश्वास आता चला जाता है कि हाँ! ऐसा संविधान और उस संविधान पर चलने वाले लोग हमारे साथ में हैं, जिनके माध्यम से हम एक न एक दिन इस संसार से पार हो जायेंगे। यह वही संविधान और उसी संविधान पर चलने वाले लोग हैं जो आपको इस तरह के भ्रमों को दूर करके, आपके अन्दर कुछ ज्ञान डाल सकते हैं, बता सकते हैं। आपने अपने दिमाग में उस भ्रम को कहाँ तक फैला रखा है कि ये सब लोग जो आपके निकट में हैं आपके मित्र हैं, सुहृद हैं, बंधु हैं, रिश्तेदार हैं, घर के लोग हैं; ये कब तक आपका साथ देंगे? बोलो! यह प्रेतवन तक आपका साथ देंगे। इसमें एक शब्द आया है...यह क्या लिखा है? प्रेतवन जानते हो? भूत-प्रेत नाम सुना है न? ये भूत-प्रेत कहाँ रहते हैं? इनका residence कहाँ है? इनके आलय कहाँ बने होते हैं? श्मशान में इन का स्थान होता है, इसलिए वहाँ जाने से हर कोई डरता है। एक बार अगर कभी जाना पड़ जाता है किसी के साथ में तो भी वह समूह में चला जाता है और समूह में ही लौट करके आ जाता है। अकेला अगर रह जाए तो उसे लगने लग जाता है, कहीं कोई आ न जाए। इसलिए वह group में चला जाता है। उसे पता है कि कोई भी भूत-प्रेत अगर अकेले होंगे तो पकड़ लेगा; सबके साथ होंगे, कुछ नहीं होगा। इसलिए आपने यह भी देखा होगा कि ऐसे स्थानों पर दिन में ही जाते हैं, रात में नहीं जाते। अगर रात में कोई चला भी गया हो तो भाई! अब रोके रखो, रात में श्मशान कौन ले जाएगा? सुबह तक का इन्तजार करते हैं। बहाना बना देते हैं...उसके रिश्तेदार आ रहे हैं, उसका बेटा आ रहा है, उसके चाचा आ रहे हैं, उसके फूफा आ रहे हैं, उसके मामा आ रहे हैं। ये तो सब बहाने हैं, मुख्य बात तो यह है कि रात में ले जाने में डर लगता है। इसलिए कि वहाँ पर उसी रात्रि में ही, उसी काल में उनका विचरण होता है। वे भूत-प्रेत वहाँ पर उस रात्रि में ही हमेशा वहाँ पर विचरण करते हुए मिलेंगे। उस स्थान तक ही इनका साथ है, किनका? जिनके हाथ में हमारा हाथ है। उनका साथ कहाँ तक है? उस प्रेतवन तक है, उस श्मशान तक है; उसके आगे कुछ नहीं है।

‘कमला चलत न पेंड जाय, मरघट तक परिवारा’

जानते हो इसका क्या अर्थ है? ‘अपने अपने सुख को रोवें, पिता पुत्र दारा’... ‘कमला चलत न पेंड जाय’ कमला पेंड के आगे न जाए, चलती हुई कमला, कमला कौन है? anybody else. वह कमला का मतलब यहाँ पर एक ऐसा नाम है जो आप किसी भी स्त्री के लिए कहना चाहो जो विवाहित हो, उसका

नाम कह कमला देना। वह कमला कहाँ तक जाएगी? वह प्रेतवन तक भी नहीं जाती। संविधान में नियम नहीं है कि कमला को प्रेतवन ले जाना। आपके भारतीय संविधान में नियम है कि स्त्रियों को केवल घर की चौखट तक ही रहना है। पेंड तक ही रहना है, देहरी तक ही रहना है और वहाँ तक ही चल कर के, चिल्ला कर के, रो कर के वापस लौट आना है। थोड़ी-बहुत कभी कुछ ज्यादा हो जाए तो दो-चार कदम आगे चली जाए, गली के बाहर तक चली जाए लेकिन घर के बंधु सब उसको खींच कर के वापिस ले आयेंगे, अब इससे आगे नहीं; इससे आगे अब हम जायेंगे। जो पुरुष लोग हैं, वे अब लेकर के उसके आगे जायेंगे। जो उसके और बंधु होंगे, पुत्र होंगे, भाई वगैरह होंगे, वे सब आगे जायेंगे और वे भी कहाँ तक जायेंगे? वह उस श्मशान तक जायेंगे। **‘कमला चलत न पेंड जाए, मरघट तक परिवारा’** परिवार जो और भी है, वह कहाँ तक जाएगा? वह मरघट तक जाएगा। फिर उसके आगे? अब कौन जाएगा किसके साथ? अब कोई किसी के साथ नहीं जा सकता। यह वहीं से वापस लौट कर के आ जाएँगे और क्या कर देंगे? **‘दाऊणं सलिलंजलि’** आपके लिए जैसे एक जलांजलि देते हैं न? किसी को भी जलांजलि दे देना मतलब? स्वाहा कर देना। बस! आपको स्वाहा करके, आपको कहना चाहिए, जलांजलि दे आए। कभी-कभी सम्मान में जलांजलि भी दे देते हैं। श्रद्धांजलि दे देंगे, जलांजलि दे देंगे, इसके अलावा ये आपके साथ और कुछ भी नहीं कर सकते हैं। ज्यादा होगी तो बाद में एक सभा और लग जाएगी। उसमें आपके नाम का गुणगान कर दिया जाएगा और जो भी आपके बारे में कुछ भी जानने वाला होगा, उन सबको बुला लिया जाएगा।

मृत्यु भोज - एक गलत परम्परा

एक प्रथा और चलती है। आज भी चल रही होगी, अभी भी चल रही होगी...मृत्यु-भोज की प्रथा। क्या करना पड़ता है? एक तो बेचारा चला गया, उसके घर के लोग दुःखी थे, वह वैसे ही परेशानी में पड़ा था। दुनिया के, गांव के लोगों को, नगर के लोगों को, रिश्तेदारों को और बुलाओ और उन्हें खिलाओ और वे खाकर के, मजा लेकर के और चले जाएँ, एक और परेशानी खड़ी कर जाए। आज के समय में किसी को खिलाना क्या सस्ता काम है? कितना सारा बन्दोबस्त करना पड़ता है! इस महंगाई के जमाने में हर चीज महंगी है। लकड़ी भी महंगी आती है, कफन का कपड़ा भी महंगा आता है और फिर उसके बाद सबके लिए मृत्यु-भोज कराओ और लाखों खर्च करो और किसी की हिम्मत न हो तो क्या करे? उसके जाने के कारण से समाज में और अपनी नाक नीची करो। उनका काम तो केवल खा कर के चले जाना है और जो परिवार के लोग हैं, घर के लोग हैं...इन्हें कर्ज में पड़ते जाना है, परेशान होते जाना है, पैसे को व्यर्थ में लगाना है और परम्परा को भी खराब करना है। परम्पराएँ एकदम चली तो नहीं जाती हैं, लोग अभी भी जाते ही होंगे मृत्यु-भोज करने, पहुँचते ही हैं; तेरहवीं नहीं होती है, तो तीजा तो हो ही जाता है। अब 13 दिन तक कौन इन्तजार करे? भाई! तीजा ही कर दो, फुर्सत करो। तीन दिन बाद तुम अपने घर के, हम अपने घर के और वह आदमी, तीसरे दिन जो है सब जलांजलि देकर के और भी कुछ हड्डियों का क्या किया जाता है? भगवान जाने। कुछ राख निकालते हैं, कुछ करते हैं; ये सब क्रिया करने के बाद में वह व्यक्ति के लिए कुछ भी साथ जाने वाली कोई क्रिया नहीं है। न मृत्यु-भोज में बनाए गए मिष्ठान उसके साथ गए, न तुम्हारे खाने से उसको कोई पूर्ति मिल जाएगी, सन्तुष्टि हो जाएगी; ये सब व्यर्थ की बातें हैं, ये सब व्यर्थ की क्रियाएँ हैं। उस जीवात्मा से इन क्रियाओं का कहीं से कहीं तक कोई सम्बन्ध नहीं है। अब चाहे उसकी शोक सभा में उसके



गाथा: 12

एक 'धर्म' ही है जो परलोक में जीव के साथ जाता है

विहडंति सुआ विहडंति बंधवा वल्लहा य विहडंति।

इक्को कहवि ण विहडइ, धम्मो रे जीव! जिणभणिओ ॥12 ॥

अन्वयार्थ- (रे जीव!) हे 'अज्ञानी' जीव! (सुआ) सुत यानी पुत्रगण (विहडंति) विघटित अर्थात् वियोग को प्राप्त होते हैं 'बंधु' (बंधवा) बांधवगण 'भी' (विहडंति) विघटित यानी वियोग को प्राप्त होते हैं (य) और (वल्लहा) वल्लभा यानी पत्नी 'भी' (विहडंति) विघटित यानी वियोग को प्राप्त होती है 'किन्तु' (जिणभणिओ) जिनेन्द्र देव द्वारा, भणित यानी कहा गया (इक्को) अकेला (धम्मो) धर्म 'ही' 'ऐसा है जो' (कहवि) कदापि यानी किसी प्रकार, भी (विहडइ) विघटित यानी वियोग को प्राप्त (ण) नहीं होता है 'वह हमेशा परलोक में जीव के साथ जाता है' ॥12 ॥

धर्म ही आत्मा का साथी

यहाँ कहना ही पड़ जाता है... 'विहडंति सुआ विहडंति बंधवा' 'सुहा' अर्थात् सुता, ये पुत्र, ये सब विघटित होंगे। ये सब वियोग को प्राप्त होंगे। ये बंधु, ये भी सब आपसे छूटेंगे। यह सभी जो भी आपके 'वल्लहा' अर्थात् जो प्रिय लोग हैं, 'वल्लभ' अर्थात् जो आपके अत्यधिक प्रिय लोग हैं, जिन्हें आप बहुत like करते हैं, जिन्हें आप love करते हैं; वे भी सब विघटित होंगे। 'इक्को कहवि ण विहडइ, धम्मो रे जीव! जिणभणिओ' जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ धर्म कभी विघटित नहीं होगा, बाकी तुम्हारे सारे सम्बन्ध विघटित हो जायेंगे; इसलिए इस धर्म की शरण में आओ। कौन सी चीज विघटित नहीं होगी, वियोग को प्राप्त नहीं होगी? अरे! धर्म भी तो छूट जाएगा! अभी हम धर्म कर रहे थे, मृत्यु हो जाएगी तो धर्म छूट गया। धर्म नहीं छूटेगा! तुम्हारी आत्मा में जो अभी कर्म बंध रहे हैं, वह धर्म के संस्कार के साथ बंध रहे हैं, वह धर्म बांध रहा है और यह जो धर्म तुम्हारी आत्मा में अभी बंध रहा है, यह मृत्यु के उपरान्त भी तुम्हारे साथ जाएगा। ऐसा fevicol वाला धर्म का बन्ध हम आपके लिए करा कर के, आपको परलोक की यात्रा तक पहुँचायेंगे। ऐसा जोड़ आपकी आत्मा में बंध जाएगा। इसलिए यहाँ बैठ कर के आप कर्म नहीं कर रहे हैं, कर्म से नहीं बंध रहे हैं। किससे बंध रहे हैं? धर्म से बंध रहे हैं। यह बन्धन अगर आत्मा में रहेगा तो कभी भी यह आत्मा जब इस शरीर को छोड़ कर जाएगी, तुम्हारे साथ कुछ नहीं जाएगा। बस! मैं होऊँगा और मैंने जो तुम्हारे अन्दर बांध दिया है, बस! वह तुम्हारे साथ जाएगा। मैं भी तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा। क्या जाएगा? जो मैं तुम्हें दे रहा हूँ और इसको जो तुम ले रहे हो, जो तुम अपने अन्दर interest के साथ उसको accept कर रहे हो... बस! वही चीज तुम्हारे साथ में जाएगी, उसी का नाम धर्म है, धर्म का संस्कार है और कोई चीज साथ में जाने की नहीं। सब यहाँ का यहीं पर धरा रह जाएगा। बस! आपके साथ में आपका केवल अच्छा

या बुरा संस्कार जाएगा।

सच्चे गुरु की संगति ही हितकारी

अगर आप यहाँ पर बैठते हो, धर्म गुरुओं की संगति करते हो तो अच्छे संस्कारों से बंधते हो और अगर आप संसार की विषय-वासना में डोल जाते हो तो बुरे संस्कारों से बंध जाते हो। आपको अपने संस्कार बांधने तक ही आपका हक है। इसके अलावा आपके पास में अपने हक में कोई चीज है नहीं। अब यह आपके ऊपर है कि आप अपने संस्कारों को किस रूप में बांधना चाहते हो? इन्हीं बन्धनों के संस्कारों में पड़े रहना चाहते हो? 10 दिन तक कैसे मम्मी को छोड़ूँगा? 10 दिन तक कैसे पापा से दूर रहूँगा? यह धर्म के संस्कार हमें इसी प्रकार के कर्म-बन्ध के संस्कार को ढीला करने के लिए सामने आते हैं। 10 दिन तक की क्या जरूरत है? एक ही दिन में सब हो जाएगा, एक ही दिन का धर्म नहीं हो सकता क्या? रोजाना भी तो कर रहे हैं, एक-एक घण्टे का भी तो हो सकता है धर्म। 10 दिन का धर्म करना पड़ेगा, 10 दिन घर से दूर रहना पड़ेगा। जब तुम पहली बार आओगे तब तुम्हें लगेगा कि धर्म से हम बंध रहे हैं, घर से हमें दूर रहना पड़ रहा है लेकिन जब 10 दिन के बाद तुम यहाँ से जाओगे तो तुम्हें लगेगा कि हमें यहाँ से क्यों जाना पड़ रहा है? इसका नाम है- संस्कार। जो संस्कार हमारे पड़े हुए हैं, उन संस्कारों को तोड़ने के लिए थोड़ी सी हिम्मत हमें शुरुआत में करनी पड़ती है। एक बार अगर इस तरह के संस्कार पड़ने का मौका मिल जाता है, कोई व्यक्ति 10 दिन तक अगर अपने अन्दर संस्कार डालता है, तो उसका संस्कार फिर लम्बे समय तक काम कर जाता है। इसलिए यह धर्म के 10 दिन हमारे सामने आते हैं। हम अच्छे संस्कारों के माध्यम से यह देखें कि अगर कोई चीज हमारे साथ आगे भी रहने वाली है, तो वह क्या है? धर्म है। वह हमारे साथ रहेगा और कोई चीज हमारे साथ रहने वाली नहीं है। यह भ्रम भी हमारा टूट जाए तो भी इस पर्याय की, इस संसार की, इस मनुष्य के जन्म लेने की सार्थकता हो जाए। यह भी एक भ्रम है कि नहीं? यह भ्रम जब टूट जाता है, तो अच्छा भी लगता है। कई लोगों के लिए अच्छा लगने लग जाता है। देखो! पांच दिन का भी एक शिविर लगा था, ऐसे भ्रम टूटे थे। कितने ही बच्चों ने कहा..महाराज! घर पर जाने की बिल्कुल इच्छा नहीं हो रही थी और ये घर वाले सामने आकर के खड़े थे तो इनसे आँख भी मिलाने की इच्छा नहीं हो रही थी क्योंकि ये अभी कहने लगेगे...बेटा! चलो। इसलिए किसी ने उनको देखा तक नहीं लेकिन बाद में सब घर चले गए, सब घर में ही रहने लग गए, सब फिर एक जैसे हो गए। हो तो गए? कुछ छुड़ा नहीं लिया हमने तुम्हारा। तुम्हारा बेटा-बेटी कोई हमारे पास रह नहीं गए और 10 दिन के बाद भी नहीं रहेंगे, यह भी पक्का है। डरना मत! लेकिन जो तुम उन्हें इस जन्म को दिला कर के भी संस्कार नहीं दे सकते, वे संस्कार गुरुजन उनकी आत्मा में डाल सकते हैं, यह काम तुम्हारे द्वारा हो सकता है। तुम्हारा बेटा तुम्हारा ही रहेगा, तुम्हारी बेटी तुम्हारी ही रहेगी; हमारे पास किसी को रखने की पास में कोई अभी व्यवस्था नहीं है। इसलिए बिल्कुल निश्चिन्त रहो, तुम्हारी वस्तु तुम्हारे घर तक पहुँचा दी जाएगी लेकिन उसे संस्कारित करने के लिए एक बार सामने तो लेकर के आओ।

सच्चे धर्म से मिलने वाला सुख

यह कहा जा रहा है...धर्म ही हमें सहयोग देता है, धर्म का संयोग ही हमारे साथ परभव में जाता है। अन्य

गाथा: 13

कर्मबद्ध आत्मा संसार में रहता है तथा कर्ममुक्त आत्मा मोक्षमहल में रहता है

अड-कम्म-पास-बद्धो, जीवो संसार-चारए ठाइ।
अड-कम्म-पास-मुक्को, आया सिव-मंदिरे ठाइ॥13॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्!' (अड-कम्म-पास-बद्धो जीवो) आठों, कर्मों के, पास यानी बंधन से, बंधा हुआ, जीव (संसार-चारए) संसाररूपी, चारक यानी बंदीगृह में (ठाइ) ठहरता है 'किन्तु' (अड-कम्म-पास-मुक्को आया) आठों, कर्मों के, बंधन से, मुक्त हुआ, आत्मा (सिव-मंदिरे) शिवमंदिर यानी मोक्षमहल में (ठाइ) ठहरता है॥13॥

वैराग्य शतक नाम के इस ग्रन्थ की कुछ चर्चा आप लोगों से पिछले दिनों से चल रही है। यह ग्रन्थ जहाँ पहली बार आप लोगों को सुनने, पढ़ने को मिल रहा है, उसकी दूसरी विशेषता यह भी है कि इस ग्रन्थ को अभी तक जिस तरह से आप लोगों ने न देखा, न पढ़ा; उसी तरह से इस ग्रन्थ को न हमने भी अभी तक इस ग्रन्थ को पढ़ा, न देखा। सीधा-सीधा आप लोगों के लिए यह ग्रन्थ जब वाचना के रूप में आ रहा है, पढ़ाने के रूप में आ रहा है, तभी हम इसको भी पढ़ रहे हैं। यानी पढ़ना और पढ़ाना साथ-साथ चल रहा है। ऐसे इस ग्रन्थ की कुछ एक कारिकाएँ पढ़ते हैं, फिर आगे की बात इसी के माध्यम से बढ़ाते हैं। गाथा नम्बर 13...



अड-कम्म-पास-बद्धो, जीवो संसार-चारए ठाइ।
अड-कम्म-पास-मुक्को, आया सिव-मंदिरे ठाइ॥13॥

विहवो सज्जणसंगो, विसय-सुहाइं विलास-ललियाइं।
णलिणी-दलग्ग घोलिर-जल-लव-परिचंचलं सव्वं॥14॥

तं कत्थ बलं तं कत्थ, जुव्वणं अंगचंगिमा कत्थ।
सव्वमणिच्चं पिच्छह, दिट्ठं नट्ठं कयंतेण॥15॥

कर्म सहित जीव संसार में रहता है एवं कर्म रहित मोक्ष में

यह गाथा 13, 14 और 15, इसके विषय में थोड़ी सी आज चर्चा करते हैं। स्वाध्याय के साथ ही जब हम तत्त्व

की कुछ बात पूर्वाचार्यों के अभिप्राय के अनुसार करते हैं, तभी हमारे लिए कुछ भीतरी दृष्टि खुलती है और यहाँ पर कहा जा रहा है... **‘अड-कम्म-पास-बन्दी’** पहले 13 वीं नम्बर की गाथा में कहते हैं कि आठ कर्मों के **‘पास’** अर्थात् जाल से बंधा हुआ यह जीव **‘संसार-चारण ठाड़’** इस संसार के चारक बोलते हैं- बन्दीगृह को, एक जाल को, उसमें यह स्थित रहता है। **‘अड-कम्म-पास-मुक्को’** और जब यही जीव आठ कर्मों के इस जाल से मुक्त हो जाता है, तो **‘आया’** अर्थात् वह आत्मा...आदा **‘सिव-मंदिरे ठाड़’** तो वह शिव मन्दिर में पहुँच जाता है यानी मोक्ष स्थान को प्राप्त कर लेता है, वहीं पर स्थित हो जाता है। दोनों चीजें इस गाथा में बताई जा रही हैं। एक तरफ संसार का वास है और एक तरफ मोक्ष का वास है। एक संसार का भी मन्दिर है और एक मोक्ष का भी मन्दिर है। मन्दिर का मतलब एक तरह का स्थान होता है, जहाँ पर हम रुकें, ठहरें। उस स्थान को हम दो रूपों में देख सकते हैं- एक संसार के रूप में और एक मोक्ष के रूप में। जीव यहाँ पर भी रहते हैं और जीव वहाँ पर भी रहते हैं। आप लोग कौन से जीव हैं? कहाँ रहते हैं? यह आपको जानकारी होनी चाहिए और इसके साथ-साथ यह भी जानकारी होनी चाहिए कि कुछ और भी जीव होते हैं, जो कहीं दूसरे स्थानों पर भी रहा करते हैं। जब तक यह जीव आठ कर्मों के जाल से बंधा हुआ है, तब तक इसके लिए संसार का स्थान ही मिलेगा। संसार के बन्दीगृह में ही यह स्थित होगा और जब यह जीव आठ कर्मों के **‘पास’** से मतलब जाल से जब मुक्त हो जाएगा, तब यह आत्मा मोक्ष के स्थान में स्थित हो जाएगा। कल आपको बताया था कि यह आत्मा अनादि काल से आठ कर्मों से बंधा हुआ है और उन्हीं आठ कर्मों के कारण से इस आत्मा का संसार चल रहा है। संसार में जो भी जीव यहाँ पर हमें दिखाई देते हैं, वे सब जीव आठ कर्मों से बंधे हुए हैं। यह आपके अन्दर एक ज्ञान, उन जीवों को देख करके आ जाना चाहिए। संसार का कोई भी जीव हो, चाहे वह छोटे से छोटा कीड़ा हो, जन्तु हो या बड़े से बड़ा पशु हो, प्राणी हो; हर जीव में यह आठों कर्मों का **‘पास’** है, बन्धन है।

आठों कर्मों से बंधा हुआ जीव संसार में चारों गतियों में ही घूमता रहता है

इन्हीं आठ कर्मों के कारण से यह जीव इस संसार में ही स्थित रहता है, जो संसार चार प्रकार के बड़े-बड़े zone में बंटा हुआ है। zone समझते हो न? जैसे दिल्ली भी है तो दिल्ली अलग-अलग zone में बंटी हुई है। पूर्वी दिल्ली, पश्चिमी दिल्ली, उत्तरी दिल्ली, दक्षिणी दिल्ली और एक center भी होता है। अब इन model town वालों से पूछो, ये कौन से zone में रहते हैं? ये north zone के लोग हैं। जो south zone पड़ता है, वह green park. जहाँ पर एक तरह से वह अहिंसा का एक मन्दिर बना हुआ है- अहिंसा स्थल! वह south Delhi है। अब जब ये सब अलग-अलग zone में रहते हैं लेकिन रहते तो एक दिल्ली में ही हैं। उसी तरह से आचार्य यहाँ कहते हैं- संसार एक ही है, zone तो हम बाँट लेते हैं अलग-अलग तरीके के; जैसी quality के लोग जहाँ पहुँच जाते हैं, वह उसके हिसाब से उसका divination हो जाता है। संसार एक है और उस संसार में चार उसके बड़े-बड़े zone हैं। कौन-कौन से? एक मनुष्य गति का, एक तिर्यच गति का, एक देव गति का और एक नरक गति का। इन चार zone में से किसी न किसी zone में व्यक्ति रहता ही है। प्राणी वहाँ पर पहुँचेगा ही और इन्हीं में से किसी भी स्थान पर रहेगा तो वह संसार में रहने वाला कहलाएगा। चार स्थानों में रहने का एक मात्र कारण क्या बताया जा रहा है? आठ कर्मों से बंधा होना। वे आठ कर्म सभी को याद होने चाहिए, स्मरण में रहने चाहिए। जिनके कारण से हमारा यह जीव, हमारी यह आत्मा संसार के बन्धन में बंधा है और शरीर के बन्धन में भी बंधा है। वे ज्ञानावरणीय कर्म हैं,

दर्शनावरणीय कर्म हैं, मोहनीय कर्म हैं, अन्तराय कर्म हैं, वेदनीय कर्म हैं, नाम कर्म हैं, गोत्र कर्म हैं, आयु कर्म हैं। इन आठ कर्मों में बंधा हुआ यह आत्मा हमेशा या तो कभी इस गति में या कभी उस गति में या फिर किस गति में लेकिन गतियाँ चार ही हैं। जैसे उड़ने वाला पक्षी कभी इस पेड़ पर बैठ जाता है, कभी उस पेड़ पर बैठ जाता है, कभी इस वन में चला जाता है, कभी उस जंगल में चला जाता है लेकिन वह कहीं न कहीं बैठ करके अपनी शाम गुजार लेता है। ऐसे ही इन चार गतियों में आठ कर्मों से बंधा हुआ यह जीव बंधा ही रहता है, मुक्त नहीं हो पाता।

मुक्त जीव का निवास- मोक्ष रूपी महल

जब यह मुक्त हो जाता है, तो वह मोक्ष के महल में पहुँच जाता है, शिव मन्दिर पहुँच जाता है। वह भी एक स्थान है जहाँ पर लोग रहते हैं लेकिन उसकी जानकारी आपको नहीं है। जानकारी हमें दोनों तरह की होनी चाहिए कि लोग कहाँ-कहाँ रहते हैं? केवल चार गतियों में ही लोग नहीं रहते हैं, चार गतियों में ही जीव नहीं रहते हैं; वहाँ पर भी जीव रहते हैं और वहाँ पर भी थोड़े-बहुत नहीं रहते हैं... पर्याप्त मात्रा में, बहुत मात्रा में रहते हैं। अनन्त जीव अगर संसार में हैं तो अनन्त जीव उस शिव मन्दिर में भी रह रहे हैं। शिव मन्दिर अर्थात् **‘शिवम् सुखम् निर्वाणम्’** शिव का मतलब क्या होता है? सुख, निर्वाण; ये शिव के पर्यायवाची नाम हैं। शिव कही, सुख कही, निर्वाण कही यानी सुख का मन्दिर। अगर सुख का कोई स्थान है तो वह स्थान है, जहाँ पर निर्वाण होने के बाद में जीव रहता है और उसी निर्वाण स्थान को सिद्ध स्थान कहते हैं, सुख का स्थान कहते हैं। वह सुख का स्थान भी हमारे ज्ञान में आना चाहिए।

एक निगोदिया जीव के शरीर में सिद्धों से अनन्त गुणे जीवों का वास

इस लोक में जब हम जीवों को देखें तो हमारे ज्ञान में वह स्थान भी दिखना चाहिए। भले ही आपके google के अन्दर जो map आता है- road map, उसमें भले ही वह स्थान दिखाई न दे लेकिन आपके ज्ञान में वह स्थान जरूर दिखाई देना चाहिए, तभी आप सम्यग्ज्ञानी माने जायेंगे। इस सम्यग्ज्ञानी की स्थिति में जब कोई जीव आ जाता है, तो उसे दिखाई देता है...यह संसार में भी जीव अनन्त हैं और सिद्ध भी अनन्त हैं। संसार से जो मुक्त हो गए हैं, वे भी अनन्त हैं लेकिन अगर उन अनन्त में भी हम compare करेंगे तो संसार में रहने वाले अनन्तों की जो संख्या है, वह ज्यादा है और मोक्ष में रहने वाले जो अनन्त जीव हैं, वे कम हैं। संसारी जीव ज्यादा हैं क्योंकि यहाँ से जीव निकल करके पुरुषार्थ करके वहाँ पहुँचता रहता है लेकिन कभी भी इस संसार में रहने वाले जीवों की अनन्त संख्या में कोई कमी नहीं आएगी और मोक्ष में रहने वाले जीवों की संख्या कितनी भी बढ़ जाए तो भी वह अनन्त ही रहेगी लेकिन संसार के जीवों की संख्या से वह हमेशा कम ही रहेगी।

‘सिद्ध जीव से गुणे अनंत, तन निगोद एक जीव वसंत’

नई छहढाला की पहली ढाल सतना के लोगों को अच्छे ढंग से याद हो चुकी है और यह उसी की पंक्ति है- **‘सिद्ध जीव से गुणे अनंत, तन निगोद एक जीव वसंत’** निगोद का एक जीव भी जितने अनन्त जीवों के साथ में रहता है, सिद्ध भगवान जितने हो चुके हैं; उनसे अनन्त गुणे जीव एक निगोद जीव के शरीर के साथ

रहते हैं। जितनी total शुद्ध आत्माएँ हैं, सिद्ध जीव हैं, मुक्त जीव हैं, आठ कर्मों से रहित जीव हैं; उनसे अनन्त गुणे जीव मात्र एक निगोद जीव के शरीर में रहते हैं। इतना जीव का संसार और इस संसार के अन्दर जीवों का इतनी संख्या में विस्तार भरा पड़ा है। यानी आज तक एक निगोद के शरीर में रहने वाले जीवों के बराबर भी सिद्ध नहीं बन पाए और न कभी बन पायेंगे क्योंकि सिद्धान्त अटल होता है। यह वह सिद्धान्त है, जो किसी के द्वारा बदला नहीं जा सकता है। चाहे राज्यसभा में बहुमत हो जाए, चाहे लोकसभा में बहुमत हो जाए। यह बहुमत से बदलने वाले सिद्धान्त नहीं हैं, इसी को बोलते हैं- eternal principle. ऐसे सिद्धान्त जो कभी किसी के द्वारा बदले नहीं जा सकते हैं...न कोई इसको PM बदल सकता है, न कोई इसका Government of India किसी भी तरीके से इसमें कोई बदलाव ला सकती है; ये वे अटल सिद्धान्त हैं। अनन्त काल के बाद भी आप पूछेंगे तो यही गणित रहेगा और अनन्त काल में अनन्त जीव सिद्ध जा चुके होंगे लेकिन फिर भी गणित यही रहेगा। **‘सिद्ध जीव से गुणे अनन्त, तन निगोद एक जीव वसन्त’** एक निगोद जीव के शरीर में सिद्धों से अनन्त गुणे जीव रहते हैं, यह सिद्धान्त अनादि काल से भी ऐसा ही था, आज भी ऐसा ही है और अनन्त काल तक भी इसी तरह से चलेगा।

वास्तविक शिव मन्दिर

ऐसे सिद्धान्तों के माध्यम से हमें ज्ञान में आता है कि लोग यहाँ पर भी हैं तो लोग वहाँ पर भी हैं। उन्हें हम लोग नहीं कहेंगे क्या? लोक में जो रहें, वे सब लोग ही होते हैं। क्या कहा? लोक में जो रहते हैं, वे लोग कहलाते हैं। प्राकृत में क और ग का परिवर्तन हो जाता है। लोक कही, लोग कही; एक ही बात है और जहाँ पर लोग रहते हैं, वही लोक कहलाने लग जाता है और जहाँ लोक होता है, वहीं पर लोग होते हैं। जैसे जहाँ पर सभा है, तो वहाँ मनुष्य होंगे और जहाँ मनुष्य हैं, वहाँ सभा हो ही जाती है। इसी तरह से एक लोक यह है और एक लोक वह है। कौन सा? शिव मन्दिर। आपको शिव मन्दिर कह करके क्या याद आता है? यहाँ धरती पर बने हुए शिव मन्दिर दिखाई देते हैं। हम आपको लोक के सबसे अग्र भाग पर बने हुए शिव मन्दिर में ले जाना चाहते हैं। Sanitary, tiles के काम करने वाले लोग यहाँ बैठे हैं। इन लोगों के लिए भी यह ध्यान में, ज्ञान में आ जाना चाहिए कि शिव मन्दिर एक तो यहाँ जो हमें दिखाई देते हैं, वे शिव मन्दिर अलग हैं और जो वास्तव में शिव मन्दिर होते हैं, जहाँ पर यह पहुँच कर के जीवात्मा किसी से प्रार्थना नहीं करता। उस प्रार्थना के फल से इस जीव को ऐसे सुख के स्थान में रहने को मिलता है कि उस सुख में फिर उसके अन्दर कभी कोई कमी नहीं आती...उसे कहते हैं- शिव मन्दिर। वे शिव मन्दिर किनको मिलेंगे? जो आठ कर्मों से मुक्त हो जाती हैं आत्माएँ, कर्म-मुक्ति जिनकी हो जाती है, वे शिव मन्दिर में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसे शिव मन्दिर में रहने वाली अनन्त आत्माएँ हैं, जो कर्म से मुक्त हो चुकी हैं। उनके बारे में अगर हमारे ज्ञान में भी थोड़ा सा आ जाता है, तो हमें संसार अपने आप एक बन्धन की तरह दिखाई देने लग जाएगा।

चारों गतियों में रहने वाले सभी जीव ही संसारी जीव

यह संसार का बन्धन एक ऐसा बन्धन है, जिसमें बहुत कम समय मिलता है; जब हम कुछ समझ पाते हैं, सुन पाते हैं। सुनने के बावजूद भी हमारे हृदय तक कोई बात पहुँच पाती है कि हाँ! यह बात सही है। सब लोगों ने पढ़ा होगा, जैन समाज का तो बच्चा-बच्चा जानता है...कर्म कितने होते हैं? आठ होते हैं। जीव दो

प्रकार के होते हैं- एक संसारी जीव होते हैं, मुक्त जीव होते हैं; सबने पढ़ रखा है। model town वाले भी सब पढ़े लिखे हैं। लेकिन पढ़ने-लिखने के बावजूद भी जब हम दोबारा सुनते हैं और हमारी दृष्टि उधर जाती है, तो कहीं न कहीं कोई ज्ञान हमारे भीतर हृदय में गहराई में प्रवेश करता है। ये ऐसे लोग हैं जब हम model town में थे तो ऐसा लग रहा था कि दो-चार व्रती उस समय पर बन ही जायेंगे लेकिन आज तक फिर बन नहीं पाए। उस समय पर तो ऐसे भाव बनते हैं कि महाराज! व्रत ले ले, संयम ले ले, प्रतिमा का पालन कर ले लेकिन बस! थोड़ा सा यह काम हो जाए, थोड़ी सी बच्चे की शादी हो जाए, थोड़ी पत्नी बीमार हो गई, थोड़ा घर बदल ले। यह हो जाए, वह हो जाए, सब हो गया। अब क्या कर रहे हो? अब निश्चिन्तता से बैठे हैं, महाराज! चलता रहता है। channel भी बदल जाते हैं लेकिन लोग नहीं बदलते। कभी हम कोई सा channel चला रहे होते हैं, कभी कोई से channel पर आ जाते हैं लेकिन channel बदलने के बावजूद भी film तो वही रहती है। film एक ही देखना है; चाहे वह कहीं भी देख लो, किसी भी channel पर देख लो और वह film क्या है? आठ कर्मों से बंधे हुए लोग ही इस संसार में हर film पर दिखाई देंगे, इसके अलावा कुछ है ही नहीं दुनिया में।

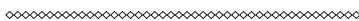
विश्व विषयक भ्रान्तियाँ

अब हम थोड़ी बहुत अगर सोच भी लेते हैं कि हम चन्द्रलोक पर जाने की तैयारी कर रहे हैं, हम सूर्यलोक पर जाने की तैयारी कर रहे हैं तो वह तैयारियाँ ही हैं। अभी तक दुनिया के अन्दर बताते हैं, जो आपका चन्द्रलोक है उसकी बात कर रहा हूँ, मेरा चन्द्रलोक तो बहुत दूर है। जो आपका चन्द्रलोक है उस चन्द्रलोक की बात करे तो उस पर अभी तक total केवल 12 आदमी पहुँचे हैं और वहाँ पर बसने की तैयारियाँ हो रही हैं। ये सब बातें केवल आपको बहकाने वाली बातें होती हैं, केवल आपको भ्रमित करने वाली बातें होती हैं ताकि आपका दिमाग यहाँ से उठकर के भी कहीं दूसरी ओर लगे और लगे कि दुनिया बहुत तरक्की कर रही है। दुनिया की तरक्की में हम भी बहुत आगे बढ़ रहे हैं क्योंकि तरक्की जब तक अमेरिका के पास थी तो उस अमेरिका की तरक्की को कोई मान नहीं रहा है। रूस मानने को तैयार नहीं, चीन मानने को तैयार नहीं तो अमेरिका ने सोचा, इस तरक्की को सबसे ज्यादा कहाँ भुनाना चाहिए? तो दुनिया में सबसे ज्यादा जनसंख्या अगर कहीं आ रही है, तो भारत में आ रही है; सबसे ज्यादा यहाँ भुनाना चाहिए। वह अपनी तरक्की को यहाँ भुनाने में लगा है, इसलिए उसका target यह भारत है। चीन में उसकी दाल नहीं गलती, रूस में दाल नहीं गलती जबकि दो बड़ी-बड़ी शक्तियाँ हैं। अब शक्ति को भी दूसरे का सहयोग तो चाहिए तो किसका सहयोग ले? बार-बार PM अमेरिका पहुँच जाते हैं। बार-बार 'Joe Biden' से मिलने पहुँच जाते हैं तो एक बार 'Biden' भी यहाँ पर आ गया तो भारत को लग गया कि अब भारत और अमेरिका के सम्बन्ध बहुत अच्छे बन गए। ऐसे ही आपको उड़ाएँगे आगे। इन सम्बन्धों के पीछे भी जो राजनीतियाँ चलती हैं, वे चलती रहेंगी लेकिन आपको यह देखना है कि वास्तव में हम जहाँ पहुँच रहे हैं, वहाँ पर कोई लोग न कभी रह सकते हैं, न वहाँ पर कभी कोई लोगों के रहने के कोई environment बन सकते हैं। ये सिर्फ एक बातें होती हैं लोगों को फुसलाने की, बहलाने की जैसे हम बच्चों को बहलाते रहते हैं जो बच्चे होते हैं, वे उसमें बहलते रहते हैं। भाई! वहाँ पर जल मिल गया, oxygen मिल गई। अरे! oxygen से रहित कोई स्थान होता है क्या? जल तो दुनिया में हर जगह मिल जाएगा। जहाँ पर पानी कीचड़ होगा, जहाँ पर गीली मिट्टी होगी, वहाँ जल भी होगा। यहाँ पर तो जल बर्बाद हो रहा है, यहाँ के जल की तो किसी को चिन्ता नहीं

है। यहाँ का जल कहाँ जा रहा है? इसकी कोई परवाह नहीं है और वहाँ पर एक कण भी मिल गया जल का तो वैसे कोई बहुत बड़ी खोज कर ली। वह बहुत बड़ा कोई discover हो गया...इतना हल्ला मचा देते हैं। ये सब बातें उन लोगों के लिए हैं जो लोग बिल्कुल ही भ्रान्तियों में जी रहे होते हैं, छोटी-छोटी सी बातों में खुश हो जाते हैं। यह उन बच्चों के लिए खिलौने हैं...यह 'Vikram Lander' ये खिलौने हैं। देख लेना आप, ये खिलौने ही जैसे लगते हैं। जैसे आप बचपन में अपने बच्चों के लिए एक कार ले आते थे, ऐसे ही तरीके के ये खिलौने हैं, खेल रहे हैं लोग।

संसारी प्राणी का अन्तिम उद्देश्य - लोक शिखर पर वास

आपको यह देखना है कि इस चन्द्रयान, सूर्ययान से भी ऊँची कोई जगह है, जहाँ पर लोग रहते हैं? उस स्थान पर जाने की कोशिश करो, जहाँ लोग रहते हैं। जहाँ लोग रहते ही नहीं हैं, वहाँ पर कौन पहला कदम रखने की कोशिश करेगा? वहाँ कौन सी आप colony बना लो, वहाँ पर कैसे आप अपने रहने के लिए जगह बना लो? रहने की जगह वहाँ बनाना है, जहाँ पर लोग पहले से ही स्थित हैं और वह कहाँ है? शिव मन्दिर में है। वह शिव मन्दिर कहाँ है? वह लोक का सबसे top most स्थान है, वहाँ पर लोग रहते हैं। वहाँ पर पहुँचने के लिए अगर हम अपना ज्ञान भी लगाते हैं तो वह ज्ञान भी हमें वहाँ पहुँचने में मदद करता है। कम से कम विचार तो आता है, हमें कहाँ पहुँचना है? हर संसारी प्राणी का यह विचार होना चाहिए कि हमें इस संसार के बन्धन से, कारावास से मुक्त होकर के लोक शिखर पर बसे हुए शिव मन्दिर में प्रवास करना है। यह भाव यहाँ दिया जा रहा है लेकिन यह प्रवास हो नहीं पाता। क्यों नहीं हो पाता? उसका कारण गाथा 14 में बताया जा रहा है।



गाथा: 14

स्वजनों का साथ भी जल की बूंद के समान नष्ट हो जाने वाला है

विहवो सज्जनसंगो, विसय-सुहाइं विलास-ललियाइं।
णलिणी-दलग्ग-घोलिर-जल-लव-परिचंचलं सव्वं ॥14 ॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्!' (**विहवो**) विभव यानी 'लक्ष्मी/धनादि' वैभव 'तथा' (**सज्जन-संगो**) सज्जनों का, साथ अर्थात् माता पिता भाई बहिन भार्या आदि का साथ 'और' (**विलास-ललियाइं विसय-सुहाइं**) विलास यानी आमोद-प्रमोद 'तथा' ललित यानी मनोज्ञ अर्थात् मन को अच्छे लगने वाले 'पंचेन्द्रिय संबंधी' विषयों के, सुख 'ये' (**सव्वं**) सभी (**णलिणी-दल-अग्ग-घोलिर-जल-लव-परि-चंचलं**) कमलिनी के पत्तों के अग्रभाग में, स्थित तथा दोलायमान अर्थात् हिलने-डुलने वाली, जल की छोटी 'बूंदों' के समान' अतिशय चंचल हैं ॥14 ॥

विलासिता के साथ विषय सुख में डूबना ही संसार वास का कारण

आदमी को वैभव मिल जाते हैं- '**विहव**' उसके लिए अच्छे पुरुषों की संगति मिल जाती है, विषयों के सुख मिल जाते हैं और उन्हीं विलासताओं में वह डूब जाता है। बस! इसी के कारण से इसका यह संसार वास बन जाता है। इस संसार में और क्या-क्या हमें चाहिए होता है, वह सब इसमें लिखा हुआ है। वैभव मिल गए, अच्छे लोगों की संगति मिल गई तो ऐसा लगता है यह संगति कभी छूटे नहीं और सभी लोग एक जैसे वैभव-सम्पन्न मिल गए तो बड़ी गहरी मित्रता बन जाती है। यह model town वाले जब भी आयेंगे, ये सब एक साथ ही आयेंगे। एक साथ क्यों आयेंगे? इन सबके वैभव-सम्पन्न, ये सब एक जैसे हैं और सब सज्जन पुरुष हैं। इसलिए कोई भी एक दूसरे की संगति छोड़ना नहीं चाहता है। इनकी जब यह संगति बन जाती है, तो बस इन्हें इसी में अच्छा लगता है। जैसे सतना में भी कुछ लोग हैं, इनकी भी अपनी संगति है। अब ये एक साथ ही बैठेंगे तीन चार लाइन में तो हर व्यक्ति अपनी सज्जनता की संगति बना लेता है और सज्जनों की संगति भी अच्छी चलती है। जैसे दुर्जनों की गोष्ठियाँ भी अच्छी चलती हैं, सज्जनों की संगति भी अच्छी चलती हैं लेकिन दुर्जनों को डर लगा रहता है। सज्जनों को डर नहीं लगता और वह अपनी संगति से जो सुख प्राप्त करते हैं, उन्हें ऐसा लगता रहता है, यह सुख हमारा ऐसा ही बना रहे। इस सुख की बढ़वारी होती रहे और उस सुख के साथ में उन्हें धर्म सुख भी मिलता है, अच्छी संगतियाँ भी मिलती हैं, अच्छे गुरुओं के सानिध्य भी मिलते हैं, जिनालयों के अच्छे दर्शन भी होते हैं, धर्म की प्राप्ति भी होती रहती है और अपनी विषय-सुख की विलासता में भी बने रहते हैं; दोनों चीजें एक साथ चलती रहती हैं। '**विसय-सुहाइं विलास-ललियाइं**' विषय के सुख तब और ज्यादा अच्छे लगते हैं, जब वे विलासता से '**ललित**' हो जाते

हैं। **‘ललित’** मतलब मनोहर हो जाते हैं। यानी विलासता भी साथ में हो और वह विलासता से ललित होने का मतलब है कि वह विलासता जो हमारे मन को चाहिए, वह हमारे पास में हो तो विषय-सुख भी अच्छे लगते हैं। सज्जनों की संगति भी मिल जाती है, वैभव-सम्पन्नता होती है, तो फिर संसार का यह बन्धन भी छोड़ने का मन नहीं करता है। उस समय पर आचार्यों को समझाना पड़ता है...इस संसार में इन सब चीजों को पाकर के भी इन्हें किस तरह से देखना? एक देखने की दृष्टि इनके प्रति कैसी बनाना?

एक दृष्टि क्षण भंगुरता की

‘णलिणी-दलग्ग घोलिर’ ‘णलिणी’ अर्थात् जैसे कमल होता है, उसके दल पत्ते के अग्र भाग पर जैसे कभी दिपता है, कभी छिपता है, कभी दिखाई दे जाता है, कभी नहीं दिखाई देता है; ऐसे जल के छोटे-छोटे कण की तरह, उस कण की चंचलता की तरह यह सारा का सारा आपका भोग-विलास है। यह सब विलासता कैसी समझनी चाहिए? कमल पत्र के ऊपर पड़ी हुई पानी की छोटी सी बूंद की चंचलता की तरह उसको देखना चाहिए कि जैसे बूंद थोड़ी देर अभी हमारे साथ है, हमको दिखाई देती है और कभी भी यह बूंद विलुप्त हो सकती है; ऐसे इस संसार के भोग-विलास को देखना चाहिए। अगर अपने पुरुषार्थ से, अपने पुण्य से भोग-विलास अपने को मिल भी जाते हैं तो भी उनको देखने की एक दृष्टि ऐसी बना लेना चाहिए। नित्यता का भान नहीं, अनित्यता का भान होना चाहिए। ये सारी भोग विलासता की चीजें कैसी हैं? क्षणभंगुर हैं, अनित्य हैं, ये कभी भी उस बूंद की तरह विलुप्त हो सकती हैं। **‘जीवन है पानी की बूंद’** पानी की बूंद की तरह इसलिए इसको उपमा दी गई कि वह पानी की बूंद जैसे चलते-चलते कभी भी, दिखते-दिखते कभी भी क्षण भर में नष्ट हो जाती है। ऐसे ही यह सारी की सारी भोग विलासताओं का कोई भी नित्य रूप में रहना कभी किसी के साथ सम्भव नहीं है। रहने को मना नहीं किया जा रहा है, रहो आप।

पुण्य मिला है, तो पुण्य छोड़ कर कहाँ जाओगे? पुण्य को भोगना तो पड़ता ही है। बड़े-बड़े चक्रवर्तियों ने भोगा है, राजाओं ने भोगा है लेकिन उस पुण्य के लिए भी कभी-कभी क्षणिकता का भाव आ जाना, यह सम्यग्ज्ञान की किरण अपने अन्दर आ जाना है। ये सब भी भोग-विलासताएँ दुःख दे सकती हैं और बड़े-बड़े महापुरुषों के लिए भी इस तरह के दुःख मिल जाते हैं। आप किसी भी महापुरुषों को देख लो, उनके लिए भी ये भोग विलासताएँ अन्त-अन्त में क्षण भंगुर दिखाई देती हैं। जब ये क्षणभंगुर दिखाई देंगी, तभी हम किसी शाश्वत तत्त्व की खोज में निकलेंगे। शाश्वत तत्त्व की खोज क्यों नहीं होती? क्योंकि हम इन्हीं विलासताओं को शाश्वत मान लेते हैं। जब हमने इन्हीं को शाश्वत मान लिया तो हम शाश्वत की खोज करने कहाँ जाएँगे? पहले हमें इन विलासताओं को क्षणभंगुर मानना पड़ेगा। Business आज है कल नहीं भी रहे, आज जो properties हमारे पास हैं कल नहीं भी रहे तो भी हम तो रहे। properties, business, मकान, व्यापार किसी भी तरीके की चीजें जो हमारे सामने हैं, ये सब क्षणभंगुर हैं। नोटबन्दी हुई, सबको समझ में आ गया...ये जो note हमारे पास हैं, ये कोई काम के नहीं। अब वही note आपको कोई काम के नहीं दिख रहे, जो note पहले काम के थे। एकदम से क्या हो गया? दृष्टि बदल गई और कुछ नहीं हुआ न? चीजें तो वहीं की वहीं रहीं तो दृष्टि में बदलाव जब प्रकृति कर देती है या किसी पुरुष के माध्यम से हो जाता है, तो हम उस चीज को स्वीकार करने की शक्ति भी तो अपने अन्दर रखें। इसी तरह से आचार्य कहते

गाथा: 15

बल, यौवन आदि सभी, काल के द्वारा नष्ट होने वाले हैं

तं कथं बलं तं कथं, जुव्वणं अंगचंगिमा कथं।

सव्वमणिच्चं पिच्छह, दिट्ठं नट्ठं कयंतेण ॥15॥

अन्वयार्थ- 'हे प्राणियो!' (तं बलं) वह, बल यानी शारीरिकादिक शक्ति (कथं) कहाँ गई (तं जुव्वणं) वह, यौवन (कथं) कहाँ गया 'वह' (अंग-चंगिमा) शरीर की, स्वस्थता/सुन्दरता (कथं) कहाँ गयी 'तथा जो पूर्व में' (दिट्ठं) देखे गये थे 'वे बाद में' (कयंतेण) क्रतान्त यानी काल के द्वारा (नट्ठं) नष्ट हुए 'इसलिए' (सव्वं अणिच्चं) सभी को, अनित्य (पिच्छह) देखो/अवलोकन करो ॥15॥

‘तं कथं बलं’ वह बल कहाँ गया? ‘तं कथं जुव्वणं’ वह जोवन कहाँ चला गया? यौवन कहाँ चला गया? ‘अंगचंगिमा कथं’ वह अंग का चंगा होना कहाँ चला गया? ‘सव्वं अणिच्चं पिच्छह, सव्वं अणिच्चं, सव्वं अणिच्चं’ सब कुछ क्या है? अनित्य है, सर्व कुछ अनित्य है।

जैन दर्शन और बौद्ध दर्शन में अन्तर

जो बौद्ध लोग होते हैं न? जैसे जैन लोग होते हैं न, ऐसे ही बौद्ध लोग भी होते हैं; बौद्ध दर्शन है, वे हर चीज को अनित्य ही मानते हैं। उनके यहाँ भी एक पाली नाम की प्राकृत होती है, वह पढ़ाई जाती है, तो उसमें इसी तरीके के सूत्र आते हैं। ‘सव्वं अणिच्चं-सव्वं अणिच्चं-सव्वं अणिच्चं’ यानी हर चीज में आपको अनित्यता का भास करना। जैन दर्शन में और बौद्ध दर्शन में क्या अन्तर है? कि जैन दर्शन भी अनित्य मानता है लेकिन वह हर चीज को अनित्य नहीं मानता है, उसके यहाँ पर कुछ चीजें नित्य भी हैं। आत्मा नित्य होती है, संसार में रहने वाले लोग अनित्य होंगे लेकिन संसार तो नित्य है, शिव मन्दिर नित्य है। संसार के रहने वाले लोगों में यह इधर से उधर होना, परिवर्तन होना बनता है; इसलिए संसार में तो परिवर्तन दिखाई देता है लेकिन मोक्ष में परिवर्तन नहीं होता है। वहाँ जो लोग पहुँच जाते हैं, वे अपने एक स्वरूप में रहते हैं, इसलिए वे नित्य हैं। बौद्धों के यहाँ नित्य कोई चीज नहीं है; न आत्मा उनके यहाँ नित्य है, न कोई मोक्ष का स्थान नित्य है; उनके यहाँ हर चीज अनित्य है। इसलिए वह एकान्त दर्शन कहलाता है और जैन दर्शन में हर चीज को अलग-अलग aspect में माना जाता है। किसी अपेक्षा से वह नित्य है और किसी तरह से वह अनित्य भी है, तो वह अनेकान्त दर्शन इसलिए कहलाता है।

संसार अनित्य है

जैन दर्शन में जब यह अनेकान्तता समझाई जाती है, तो इसमें जो चीजें हमारे सामने हैं, वे चीजें नष्ट होने वाली हैं और नष्ट होने वाली चीजों को ही अनित्य कहा जाता है। लेकिन जो चीज कभी नष्ट नहीं होती है, उसे नित्य कहा जाता है। भोगने वाला, जानने वाला, मानने वाला जो आत्मा है, वह नित्य है। शरीर के आश्रित यह जो बल है, यौवन है, **‘अंगचंगिमा’** चंगिमा! समझते हो न? मराठी में बोला जाता है- ‘चांगला छ’ चांगला है...चंगा है कि नहीं? चंगा होने का मतलब? अच्छा! अच्छा है कि नहीं? मतलब तेरा शरीर, अंग की चंगिमा अच्छी थी, अचानक से कहाँ चली गई? जैसे मान लो कोई बहुत बड़ा बलवान व्यक्ति हो और एकदम से अचानक से वह धड़ाम से गिर पड़ता है। कई बड़े-बड़े champion खेलते-खेलते ढेर हो जाते हैं, अब वह बल कहाँ गया? **‘तं कथ बलं’** यौवन को प्राप्त पुरुष किसी न किसी कारण से जब अचानक से उनकी death हो जाती है। आजकल तो silent attack एक ऐसी बीमारी चल पड़ी है, जो कभी किसी के लिए भी आ जाती है। कितने यौवन में लोग चले गए उस silent attack के कारण से, पूछो उनसे अब उनका यौवन कहाँ चला गया? अंग की चंगिमा जो दिखाई देती थी, वह सब कुछ मृत्यु के उपरान्त कहाँ चली जाती है? इसलिए कहना पड़ता है... **‘सव्वं अणिच्चं, सव्वं अणिच्चं’** जो तुम्हें दिखाई दे रहा है, वह सब अनित्य है। **‘दिट्ठं नट्ठं कयंतेण’** देखते-देखते कृतांत, **‘कयंत’** अर्थात् कृतांत जो काल है, वह देखते-देखते सब कुछ नष्ट कर देता है। देखते-देखते, सामने-सामने चीजें मिट जाती हैं। कितने ही लोग देखते-देखते अपने सामने-सामने कहाँ थे करोड़पति और कहाँ road पर आ जाते हैं। वह खुद नहीं समझ पाते, हमारे साथ क्या हो रहा है? कैसे हो रहा है? सम्भालते-सम्भालते भी चीजें बिगड़ती चली जाती हैं और काल इसी तरीके से देखते-देखते सबको नष्ट कर देता है। यह नाश भी देख कर के हमें दुःखी नहीं होना, सतर्क होना और सतर्क होने का मतलब इतना ही है...यह भावना करना **‘सव्वं अणिच्चं, सव्वमणिच्चं’** दिख रहा है न जो शब्द सामने लिखा हुआ है? प्राकृत का यह वाक्य...दुनिया की हर चीज को देख कर के और उस चीज को नष्ट देख कर के आप यह भाव अपने सामने ला सकते हो। इस दुनिया में सब कुछ अनित्य है भैया! वह बहुत अच्छा आदमी था, बहुत अच्छा परिवार था; सब बिगड़ गया। क्या करें? संसार में सब कुछ अनित्य ही है। इसके अलावा कोई और सहारा देने वाला न औषधि है और न कोई वस्तु है। यह ज्ञान ही है जो आपको सहारा देगा बस! और अगर यह अनित्यता का ज्ञान आपको नहीं है, तो आपको दुःख के अलावा, दुःख के सागर में डूबने के अलावा और कुछ नहीं मिलेगा। इसलिए जिन लोगों को यह ज्ञान हो जाता है, वे लोग घबराते नहीं हैं और जितने महापुरुष होते हैं, वे महापुरुष उतने ही ज्यादा इस ज्ञान को धारण करने वाले लोग हुआ करते हैं।

वसुदेव के कुमार काल का सुन्दर वर्णन



आपने एक वसुदेव का नाम सुना होगा। श्री कृष्ण का नाम सुना है, वसुदेव का नाम सुना है। श्री कृष्ण की चर्चा तो सब लोग कर लेते हैं। वसुदेव जो थे, वे बहुत सुन्दर थे, जो जैन पुराणों में बताया गया है। वह वसुदेव बहुत सुन्दर थे और इतने सुन्दर थे कि अपने नगर में जब वे घूमने के लिए निकलते थे तो नगर के सब लोग अपने काम छोड़-छोड़ कर के उन्हें देखने लग जाते थे। उस समय पर उनका सारा का सारा जो भी

राज्य का भोग है, वैभव है, उनकी सुन्दरता है, बल है; सब कुछ देखते बनती थी। सब लोग विशेष रूप से महिलाएँ तो और ज्यादा अपने काम छोड़-छोड़ कर के उन्हें देखने लग जाती। अब जब महिलाएँ काम छोड़-छोड़ कर के किसी दूसरे आदमी को देखने लग जाएँ और घर में आदमी खुद बैठा हो तो आदमी को दिक्कत तो होगी। अब कहें किससे? उस समय पर समुद्रविजय जो भगवान नेमिनाथ के पिताजी थे और इनके भाई थे, उस समय पर राज्य चला करते थे, उन्होंने वहाँ पर जा कर उनसे कहा। राजा हैं! राजा के पास पहुँचना है और उनसे कुछ बात कहना है, तो बड़ी विनम्रता से कहना पड़ता है। वहाँ पर पहुँचने के लिए कुछ वृद्धजन उनके पास में गए क्योंकि राजा हैं तो अनुभवी लोगों की बात सुनेंगे। कुछ वृद्धजन उनके पास में गए...महाराज! आपके राज्य में सब कुछ बढ़िया है, सब कुछ चांगला है, सब कुछ अच्छा चल रहा है। हम लोग पूर्णतया सुखी हैं, कहीं कोई कमी नहीं है और जितने भी तरह के अच्छे सुख के समय होते हैं, वे सब हमारे चल रहे हैं। यहाँ तक कि ज्योतिष शास्त्र में 60 संवत्सर होते हैं, उनमें किसी में सुख होता है, किसी में दुःख होता है और उसमें सबसे अच्छा जो काल आता है...वह एक दुंदुभि काल कहलाता है, ज्योतिष शास्त्र के अनुसार। वे वृद्धजन वहाँ पर जाकर के कहते हैं कि हम इसी दुंदुभि काल में जी रहे हैं। कौन सा काल? सबसे अच्छा काल कौन सा होता है? दुंदुभि काल। सबसे अच्छा समय जब आपको सब तरह की सुख-सुविधाएँ मिले तो उसका नाम है- दुंदुभि काल। लेकिन महाराज! एक निवेदन करने आए हैं। कहीं थोड़ा सा दर्द है, वह दर्द न के बराबर है लेकिन फिर भी हम आपसे कहना नहीं चाहते लेकिन बस और कोई बात नहीं है, बाकी सब अच्छा है। एक छोटी सी बात है जो सोच रहा हूँ, कहूँ कि न कहूँ? कहूँ कि न कहूँ? अब राजा कहता है- भाई! जब कहने आए ही हो और इसी के लिए आए हो तो अब कहने में क्या बात है? नहीं प्रभु! पहले अभयदान दिया जाए क्योंकि कोई भी बात कहने से पहले अगर वह बात आपके लिए कहीं विरुद्ध लग गई, कहीं आपको विपरीत लग गई तो आप तो राजा हैं; हमारा तो खड़े-खड़े सर कलम कर देंगे। पहले की प्रजा जब कभी राजा के पास पहुँचती थी तो ऐसे पहले अभयदान मांग लेती थी तब कोई अपनी बात कहती थी। वृद्धजनों ने अपनी बात रखी...राजन! नगर में वसुदेव कुमार जब बाहर निकलते हैं, घूमने के लिए, अपनी मस्ती में सैर करने के लिए तो उनका वह बालकपन सबको अच्छा लगता है। लेकिन सबसे बड़ी दुविधा यह हो पड़ी है कि सारे नगर की महिलाएँ, स्त्रियाँ अपना-अपना काम छोड़ कर के उन्हीं को देखने में लग जाती हैं और इससे हम लोग थोड़ा सा तंग आ चुके हैं, परेशान हो चुके हैं। कुछ भी कहो, वे मानती ही नहीं हैं। एक जाती है बाहर तो दूसरी को बुला लाती है; दूसरी जाती है, तीसरी को बुला लाती है और यही चल जाता है और सारे काम बिगड़ जाते हैं। यहाँ तक कि मैं भोजन करने के लिए बैठा हूँ और उसे पता पड़ जाए कि कुमार इस गली से निकल रहे हैं तो मुझे भोजन कराना छोड़ देगी और वहाँ चली जाती है। इसमें दोष आपका नहीं है राजन! न कुमार का है लेकिन एक बात इतनी है, कोई व्यवस्था थोड़ी सी बन जाये तो अच्छा लगेगा। कोई हम आपत्ति दर्ज नहीं कर रहे हैं लेकिन यह जो एक उपद्रव सा सामने आ जाता है, तो आप इसका समाधान निकाल सकते हैं। आप राजा हैं, आप सब कुछ कर सकते हैं। राजा ने कहा...कोई बात नहीं; ठीक है! आपकी समस्या दूर हो जाएगी। जब वसुदेव आए तो उन्हें बड़े प्रेम से अपने पास में बिठाया, उनके साथ में भोजन किया और कहने लगे...तुम आजकल बहुत थके-थके से दिखाई देते हो, आजकल तुम्हारे शरीर पर कुछ थोड़ा सा यह धूल-पसीना कुछ ज्यादा दिखाई देता है। कहाँ घूमने चले जाते हो? यह बाहर सड़कों पर घूमने से तो तुम्हारी सारी रंग-रौनक चली जाएगी। तुम्हारे लिए हमने बहुत अच्छा प्रबन्ध कर दिया है। चलो! मैं तुम्हें अपने अच्छे महल में ले चलता हूँ, अपने

garden में ले चलता हूँ। वह अच्छा उनका जो शिवा देवी का बढ़िया उद्यान था, बड़ा garden था, उसमें सब अच्छी व्यवस्थाएँ थी, बोले...तुम इसी के अन्दर रहो यहाँ पर। वह स्थान एक के बाद एक, एक के बाद एक, ऐसे 6 boundary के अन्दर था। उन्होंने बड़े प्रेम से कहा...यहाँ पर तुम्हें हर चीज मिलेगी, तुम्हें जिन लोगों के साथ खेलना है, वे सब यहीं पर आएँगे। तुम क्यों खेलने जाओ किसी के, गली के मोहल्लों में, किसी के साथ बाहर? अच्छे घर के बच्चे कैसे बाहर दूसरों के साथ खेलने नहीं जाते हैं, हम यहीं पर सबको बुला देंगे। सब मोहल्ले के बच्चे, जो भी तुम्हें जिसके साथ खेलना है, जो भी तुम्हें मनोरंजन करना है, जो भी सैर-सपाट करना है; सुरक्षित स्थान में करो। यहाँ तुम्हें कोई धूल-धक्कड़ नहीं मिलेगी, कोई धूप नहीं मिलेगी और तुम्हारा यह जो रंग-रूप है, यह सब अच्छा बना रहेगा। यह देखो! कैसी हालत बना रखी है? बिल्कुल थके-थके से लग रहे हो, बिल्कुल सारी सुन्दरता चली गई। वसुदेव की बात समझ में आ गई और क्या हो गया? वे 6 boundaries के अन्दर उनको मतलब एक तरीके से पूरा खूब बड़ी जगह है, अच्छा छुट्टा घूम रहे हैं लेकिन कैद तो हो ही गए।

संसार के बन्धन से मुक्ति हेतु बन्धन का ज्ञान और पुरुषार्थ आवश्यक

अब उनकी वह कैद लेकिन उन्हें पता नहीं है कि वह कैद है। जैसे आप लोगों को पता नहीं है कि हम संसार में कैद हैं। ऐसे ही किसी भी व्यक्ति को पता नहीं होता है कि मैं संसार में बन्दी हूँ, मैं संसार में कैद हूँ, मैं इस संसार के बन्धनों में बंधा हुआ हूँ, मेरी आत्मा इस शरीर में बंधी हुई है। यह किसी को पता नहीं होता है और जब पता नहीं होता है, तो जीवन वैसे ही चलता है जैसे वसुदेव का चल रहा है। उन्हें पता नहीं है। सब कुछ खाने-पीने, भोग-विलासताओं की सारी सुविधाएँ उनके पास में हैं। वैभव है, सज्जनों की संगति मिल रही है, विषय-सुख हैं, सब कुछ उनके पास में विलास है, ललित लावण्य है, सब कुछ है और वह उसमें भूले हुए हैं कि हमें यहाँ पर किसी ने कैदी बना दिया है। ‘अट्ट-कम्म-पास-बद्धो’ यह उन्हें पता नहीं है कि मैं आठ कर्मों के ‘पास’ में बंधा हुआ हूँ और 6 boundaries के भीतर मुझे यहाँ पर एक तरीके से बन्दी बना कर के रखा गया है। यह उन्हें पता नहीं है और उनके साथ कह दिया गया...तुम्हारा बल कहाँ गया? तुम्हारा यौवन कहाँ चला गया? इसलिए उसकी सुरक्षा करने के लिए यहाँ रुको। ये तीनों गाथाएँ वसुदेव के ऊपर fit बैठती हैं। अब क्या हुआ? अब कुमार थे। सब तरीके के मतलब कहना चाहिए राज पुत्र होते हैं तो सब तरीके की छूट होती है। एक कोई दासी आई और उस दासी को उन्होंने थोड़ा सा पकड़ लिया, उसके साथ कुछ खेल खेल लिया या उसको जो है, कुछ हाथ-पैर उसके ऊपर मार दिया तो वह दासी कहती है- तुम मुझे परेशान कर रहे हो। तुम्हारी यह जो हालत हुई है, यह इन्हीं चेष्टाओं के कारण से हुई है। मेरी क्या हालत हो गई? अरे! तुम यहाँ जो कैद होकर के रह रहे हो, यहाँ बन्दी बने पड़े हो; यह तुम्हारी इन्हीं चेष्टाओं के कारण हो गई। बाहर निकलते थे तो अलग चेष्टाएँ रहती थी; उन्हीं चेष्टाओं के कारण से तुम्हें यहाँ बन्दी बनाकर के रखा गया। तब वसुदेव को समझ में आया कि मुझे बन्दी बनाकर के रखा गया है। तब उन्हें लगा कि दासी कुछ सही तो कह रही है। जब उन्हें लगा कि मुझे बन्दी बनाकर के रखा गया तब उन्होंने युक्ति सोची कि नहीं! मुझे अब इस जेल से बाहर निकलना है। उन्होंने एक योजना बना ली और उस योजना के तहत, वे एक बहाना लेकर के कि मुझे एक विद्या सिद्ध करना और विद्या सिद्ध करने के लिए श्मशान पर जाना है। अपने एक दो निकटवर्ती व्यक्तियों को लेकर के वे श्मशान पर चले गए और श्मशान में उस व्यक्ति से कहा कि तुम यहीं रुको, हम दूर जा रहे हैं। जब आवाज लगाएँ तो आ जाना। सब चतुर होते हैं और उन्होंने क्या

किया? वहाँ पर श्मशान में एक मुर्दा पड़ा था, उसको जो है अपने सारे, जो कुछ भी आभूषण थे, वे उसको पहना दिए और उसमें लगा दी आग और दूर से चिल्ला दिया...मैं मर गया, मैं मर गया और वे भाग गए। जब तक दूसरे उनके साथी उनके पास तक पहुँचे, तब तक वह जल गया। कुमार जल गए, कुमार मर गए, घर के लोग आए...देखा...वसुदेव कहाँ गए? अरे भाई! अब इनका हमारे साथ में वियोग हो गया, सब लोग रोने लग गए। दुःखी हो गए और वे वहाँ से निकल गए मतलब पिण्ड छूटा। किससे पिण्ड छूटा? बन्धन से पिण्ड छूटा। जब आदमी को पता पड़ जाता है कि मैं बन्धन में हूँ तो किसी न किसी तरीके से उस बन्धन से बचने की कोशिश करता है। यही उस आदमी की सबसे बड़ी एक समझदारी होती है और वह समझदारी वसुदेव में थी तो वह अपने बन्धन से, जो उनके ही घर में उनका बन्धन हो रहा था, उससे बचने के लिए... भाई! अपना राज्य न सही, कम से कम अपनी निश्चिन्तता की जिन्दगी तो सही और वह निकल गए। इसे कहते हैं- जब व्यक्ति बन्धन में होता है, तो उसे महसूस हो जाना चाहिए कि मुझे इन बन्धनों से उठना है, इन बन्धनों को तोड़ना है, इन बन्धनों के पार जाना है। यह जब तक महसूस नहीं होगा, तब तक आपके भीतर आठ कर्मों से मुक्त होने का कोई पुरुषार्थ नहीं होगा।

समझते सब हैं, स्वाध्यायी सब हैं लेकिन बात वहीं की वहीं पड़ी रह जाती है और भाव यह आना चाहिए कि हमें इन बन्धनों से मुक्त होने का पुरुषार्थ भी करना है। कैसे? जैसे वसुदेव ने किया...वैसे। अगर पता पड जाए कि हमें कोई बन्धन में डाले हुए है, तो फिर उसी तरह से छटपटाना चाहिए जैसे वसुदेव छटपटा करके निकल गए। चाहे भले ही दुनिया हमें मरा हुआ समझ ले; हम जल गए, हम मर गए, कुछ भी समझ ले लेकिन हम बन्धन से मुक्त हो गए...यह अपनी खुशी होनी चाहिए और इसी खुशी के लिए हर व्यक्ति को कार्य करना चाहिए। इसके लिए कोई जैन, अजैन का कोई बन्धन नहीं है, सब बन्धन में हैं। चाहे कोई किसी भी group के हो, चाहे वे किसी भी cast के हो, हर व्यक्ति बन्धन में है और बन्धन से मुक्त होने का पुरुषार्थ इसी रूप में करना चाहिए कि हम संसार की इन सब चीजों को पहले अनित्य देखना शुरू करें और इन चीजों से होने वाले जो दुःख हैं, उनसे अपनी एक दूरी बनाएँ और अपने अन्दर महसूस करें कि यह संसार के दुःख हमें दुःखी नहीं करें। इसलिए हम अपने आप को बन्धन से मुक्त करने के लिए इस संसार के दुःखों से अपने अन्दर एक अलगाव पैदा कर ले और इसी अलगाव से हम धीरे-धीरे, धीरे-धीरे इस कर्म बन्धन से मुक्त हो जायेंगे। इसी बन्धन से मुक्त होने के लिए आपको अहं की शरण में आना पड़ता है।

गाथा: 16

असार संसार के दुःखों का चित्रण

घण-कम्म-पास-बद्धो, भव-णयर-चउ-प्पहेसु विविहाओ।
पावइ विडंबणाओ, जीवो को इत्थ सरणं से ॥16॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्!' (घण-कम्म-पास-बद्धो जीवो) प्रगाढ़ता से, कर्मों के, बंधन से, बंधा हुआ 'यह जीव' (भव-णयर-चउ-प्पहेसु) संसार रूपी, नगर की, चारों 'गतियों रूपी' पथों में यानी मार्गों में 'परिभ्रमण करता हुआ' (विविहाओ विडंबणाओ) अनेक प्रकार की, विडंबनाओं अर्थात् दुर्दशाओं को (पावइ) पाता है (इत्थ) यहाँ अर्थात् इस संसार में (से) उसके लिए अर्थात् उस जीव के लिए (को) कौन (सरणं) शरण देने वाला है अर्थात् कोई नहीं देने वाला है ॥16॥



धर्म प्रेमी भव्यात्माओ! वैराग्य शतक ग्रन्थ के माध्यम से कुछ आपको तत्त्व का उपदेश दिया जा रहा है। उसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए गाथा नम्बर 16, 17, 18 ये पढ़ते हैं और उनका भाव समझने की कोशिश करते हैं।

घण-कम्म-पास-बद्धो, भव-णयर-चउ-प्पहेसु विविहाओ।
पावइ विडंबणाओ, जीवो को इत्थ सरणं से ॥16॥

घोरंमि गब्भवासे, कल-मल-जंबाल-असुइ-बीभच्छे।
वसिओ अणंतखुत्तो, जीवो कम्माणुभावेण ॥17॥

चुलसीई किर लोए, जोणीणं पमुह-सय-सहस्साइं।
इक्किक्कम्मि अ जीवो, अणंतखुत्तो समुप्पण्णो ॥18॥

जीव और कर्म का घनीभूत सम्बन्ध

आचार्य कहते हैं... 'घण-कम्म-पास-बद्धो' यह जीव घनीभूत कर्मों के जाल में बंधा हुआ है। जीव का कर्मों के साथ में जो बन्धन है, वह यहाँ पर घनीभूत होकर के बताया गया है। घनीभूत का मतलब होता है- सघन बन्ध होना। जीव यहाँ जो भी कर्म करता है, उन कर्मों के साथ में वह अपनी आत्मा को सघनता

के साथ में बाँध लेता है और जब बन्ध सघन हो जाता है, बहुत ही गहरा हो जाता है, तो वह बन्ध और वह आत्मा और कर्म का जो सम्बन्ध है, वह एक साथ चलता है। जीव के अन्दर कर्म प्रविष्ट हो गए और कर्म के साथ भी जीव के प्रदेश प्रविष्ट हो गए। इस तरह का एक सघन बन्ध बन जाता है। जब बन्ध सघन हो जाता है तो फिर उसे सामान्यतया पहचानने में भी कठिनता आती है कि यह किस में क्या मिला हुआ है। जैसे दूध में पानी मिला दिया जाए तो फिर हम पानी को दूध के अन्दर पहचान नहीं पाते हैं। दूध और पानी का जिस तरह से बन्ध एकमेक होकर के हो जाता है, घनीभूत होकर के हो जाता है, वैसे ही जीव के प्रदेश, जीव के और कर्म के, इन दोनों के आपस में सम्बन्ध हो जाने पर एक बन्ध की सघनता बन जाती है और उसी के कारण से वह जीव कर्म के बन्ध में बँधा हुआ **‘भव-णयर-चउ-प्पहेसु विविहाओ’** इस संसार रूपी नगर के चतुष्पथ में मतलब चौराहे पर विविध प्रकार की विडम्बनाओं को प्राप्त करता है।

समग्र दृष्टि

आपको जीवन एक दिखाई देता है लेकिन जब आपकी दृष्टि विशाल होगी, आपका ज्ञान विशाल होगा तो आपको एक जीवन दिखाई नहीं देगा, अनेक जीवन दिखाई देंगे। आप समझते हो कि हमने इस जन्म में जो कुछ देखा है, जो कुछ प्राप्त किया है, जो कुछ हम देख रहे हैं बस उतना ही हमारा जीवन है और वही सच्चाई है किन्तु जो जीवन जीने वाला आत्मा है, वह ऐसे अनेक जीवन जी चुका होता है। उन जीवनो के बारे में बताने के लिए ही ऋषि-मुनि आपको थोड़ा सचेत करते हैं कि हमने इस संसार में अनेक गतियों को प्राप्त करके अनेक प्रकार की विडम्बनाओं को प्राप्त किया है और वे अनेक गतियाँ अनेक प्रकार के जन्मों के साथ में अनेक तरह की हमारी दुर्दशाएँ बना देती हैं। आप जब भी किसी का जीवन देखते हो तो आपको उनका जीवन तो दिखता है, जो शिखर पर बैठे हैं पर उनका जीवन नहीं दिखता है जो जमीन पर पड़े हैं, चल भी नहीं पा रहे हैं। हम **‘मुर्मू’** की तो बात करते हैं, उनकी बात नहीं करते हैं जो मुरमुरा बेच करके भी अपना जीवन नहीं चला पा रहे हैं। हमारे जीवन में यह सब कुछ देखने का ज्ञान आना चाहिए और यह ज्ञान जब आएगा तभी हमें समग्रता का ज्ञान कहलाएगा।

जीव की विडम्बना

G20 में भाग लेने वाले लोग, शिखर पर बैठे हुए लोग, दुनिया पर राज करने वाले लोग, वे भी जीव हैं और उन जीवों के साथ-साथ यह भी देखे कि इस संसार में और भी जीव किस-किस तरह से अपना जीवन जी रहे होते हैं? हर जीव, किसी भी स्थिति में हो, विडम्बनाओं के साथ ही जीता है। विडम्बना समझते हो? यहाँ लिखा है, विविध प्रकार की यह जीव विडम्बनाएँ प्राप्त करता है इस संसार रूपी नगर के चौराहे पर स्थित होकर के और वह चौराहा क्या है? चार गतियों का ही वह चौराहा है। उस चौराहे में, चार गतियों में स्थित होकर के यह अनेक प्रकार की विडम्बनाओं को जब प्राप्त कर लेता है, तो इसके लिए कोई शरण नहीं होती है, जहाँ यह जा सके। **‘जीवो को इत्थ सरणं से’** इस जीव के लिए इस तरह से क्या शरण मिले? कहाँ जाए? जीवन किसी भी तरह का हो चाहे वह मोदी का और Biden का जीवन हो और चाहे वह मुर्मू का जीवन हो, चाहे मुरमुरा बेचने वाले का जीवन हो, जीवन में हमें यह देखना है कि वे जीव जो जी रहे हैं, ये विडम्बनाओं के साथ जी रहे हैं कि विडम्बनाओं से रहित होकर के जी रहे हैं? यह समझने की बात है। अब

आप यह समझो कि विडम्बना क्या वस्तु है? विडम्बना एक ऐसी चीज है कि जब आपको लगे कि हम कहीं पर भी स्थित होकर के यह समझ पा रहे हो कि हम कहाँ पर हैं और हमें और क्या करना चाहिए था? और हम वह नहीं कर पा रहे हैं। जब हम कुछ करना चाहे और नहीं कर पाएँ तो उसी को समझ लेना यह हमारी विडम्बना है और जब जीव विडम्बना में आ जाता है, तो उसके सामने दो चीजें जरूर होती हैं... वह एक द्वन्द्व में पड़ जाता है और उस द्वन्द्व में ही उसे लगने लग जाता है कि हमारी दशा एक दुर्दशा के रूप में बदल रही है। उच्च पदों पर होना अलग बात है और विडम्बना से रहित जीवन जीना अलग बात है। जो लोग उच्च पदों पर होने के बावजूद भी कितनी विडम्बनाओं के साथ जीवन जी रहे हैं, ये विडम्बनाएँ आपको तब समझ में आती हैं जब उनके चुनाव होते हैं। जब चुनाव का समय आता है, वे कितने तरीके के साम, दाम, दण्ड, भेद इस्तेमाल करते हैं और वह चाहे भारत हो, चाहे अमेरिका हो, सभी लोग किया करते हैं। इस Biden से पहले भी कोई था न अमेरिका का president? कौन था? हाँ! Donald trump क्या है अभी उसके साथ? कितने घोटाले किए उसने उस समय पर और अपनी सत्ता को बचाने के लिए उसने क्या तक नहीं किया लेकिन जब सत्ता गई तो उसके बावजूद भी वह कितना चिल्लाता रहा और कितने तरीके के जुर्मों में वह फँस गया। उसके ऊपर case चल रहे हैं। इन लोगों को जब तक पद पर रहना होता है, तब तक यह यह समझते हैं कि हमसे बड़ा दुनिया में कोई बादशाह नहीं है। यह ठीक है, कुछ बादशाहत करने के लिए आपको दो-पाँच साल का समय मिल जाता है लेकिन दो-पाँच साल का जीवन ही जीवन नहीं होता है। हम यह समझे, जीवन क्या होता है? और ऐसा जीवन इस जीव ने कितने बार जिया है? अगर हमने दो-पाँच साल कोई बादशाहत कर ली तो हम कोई बहुत पुण्यवान नहीं हो गए। दो-पाँच साल की हम बादशाहत करने के बाद में अगर किसी जुर्मों में फँसे हुए हैं और उसके बाद में हम court कचहरी कर रहे हैं या जेलों में जा रहे हैं तो यह कोई बादशाहत का, कोई पुण्य का फल नहीं है। हम यह भी देखे कि लोग विडम्बनाओं में जी रहे हैं, दुर्दशाओं में जी रहे हैं कि अच्छी दशा के साथ जी रहे हैं।

पदस्थ जीव की मनोदशा महत्वपूर्ण

समझदार व्यक्ति पद को नहीं देखता, पदस्थ जीव की मनोदशा को देखता है। जो जीव जहाँ पर पदस्थ है उस स्थिति में वह कितना सन्तुष्ट है? कितना सुलझा हुआ है? कितनी उसकी मानसिकता अच्छी है? यह देखना चाहिए। अगर यह सब अच्छा हो तो समझना चाहिए वह पुण्यवान जीव है और अगर वहाँ पर पदस्थ होने के बाद में वह विडम्बनाओं में पड़ा हुआ है, अपनी सत्ता बचाने के चक्कर में पड़ा हुआ है, किसी भी तरह के fraud करने में उसे कोई डर नहीं लगता है, हर समय वह छल-कपट और वंचनाओं के बीच में पड़ा होकर के वह किसी न किसी तरह से अपना औहदा बचाना चाहता है, अपनी prestige को बचाना चाहता है। ऐसा जीव उन पदों पर पहुँचने के बाद भी क्या कर लेगा और वह पुण्य कितने देर के लिए कार्य करेगा? आगे तो बहुत बड़ा संसार का नगर है जिसमें चार गतियाँ हैं और उन गतियों में वह जीव जब भटकते हैं तो इन्हीं पदों पर पहुँचने के कारण से जितने उच्च पदों पर पहुँचते हैं, उतने ही वे नीचे धरातल में जाते हैं। क्यों जाते हैं? क्योंकि उच्च पदों पर वे अपने पुण्य से नहीं पहुँचे। जो व्यक्ति उच्च पदों पर पुण्य से पहुँचते हैं उन्हें कभी अपने पदों का डर नहीं रहता है। जब व्यक्ति अपने पुण्य से पहुँचता है तो वह कभी भी दूसरे से डरता नहीं है। उसकी सत्ता कायम रहती है और जब व्यक्ति किसी न किसी तरह से लोगों को बहलाकर-फुसलाकर किसी भी तरह की voting की अपनी बढ़त चढ़ाकर, किसी भी तरह से उपयोग करके अपने

पैसे का, अपनी सत्ता का, बहुत ज्यादा कशमकश करके जब जीव कहीं पहुँच जाता है, तो वहाँ पहुँचने के बावजूद भी उसे चैन नहीं मिलता और चैन मिले कैसे? क्योंकि उसे पता है कि हम कैसे आए हैं? अब आ तो गए हैं, अब इसे बचाए रखना बड़ी जरूरी चीज है। अगर हम इसे बचाने का प्रयास नहीं करेंगे तो अभी लोग मुझसे फिर खींच लेंगे और उस बचाव के लिए उसका जीवन फिर उसमें खपता चला जाता है। हम यह देखें कि उच्च पदों पर बैठे हुए लोग विडम्बनाओं में जी रहे हैं, मन की दुर्दशाओं के साथ जी रहे हैं या मन के सन्तोष के साथ में निश्चिन्त होकर के जी रहे हैं?

पुण्य की सच्ची परिभाषा

पुण्य किसको कहते हैं? हमने समझ लिया उच्च पदों पर बैठने का नाम पुण्य है। पुण्य वह नहीं होता है। पुण्य वह होता है जो उच्च पदों पर बैठा दे तो फिर उसे कोई गिराने वाला न हो, कोई उस उच्च पद से उसे हटाने वाला न हो, उसी का नाम पुण्य कहलाता है। दो-पाँच साल के लिए कोई राज्य मिल जाना कोई पुण्य नहीं कहलाता है। रक्षाबन्धन की कथा पढ़ी थी न आप लोगों ने? क्या पढ़ा था? मुनि महाराज पर



अत्याचार करने वाले बलि जैसे मंत्री भी हस्तिनापुर जाकर के वहाँ पर कुछ विश्वास में राजा को लेकर के, वहाँ पर उन्होंने सात दिन का राज्य ले लिया तो सात दिन के राजा बन गए। अब उस समय कोई आप जैसा राजा श्रेणिक होता और भगवान के समवशरण में जाकर के पूछता कि भगवन्! इन बलि आदि मंत्रियों का कौन-सा पुण्य उदय में आ गया कि देखो! इनको इतना बड़ा पद्म राजा का राज्य मिल गया और राजा की मति

कैसी बिगड़ गई कि उसने राजा होकर के भी इनको राज्य दे दिया और अपना राज्य छोड़कर एकान्त में चला गया। ऐसा कौन-सा पुण्य का उदय आ गया? अब इसे पुण्य का उदय कहोगे? क्या कहोगे बोलो? वह उस राज्य पद को प्राप्त कर के क्या कर रहा है? उसकी मंशा क्या है? उसने वह राज्य पद क्यों लिया? क्योंकि सात सौ मुनि महाराज को घेरना है। इन मुनि महाराजों से मुझे बदला लेना है। उसे जैन धर्म के लोगों के प्रति जो घृणा का भाव है, उस घृणा के भाव की पूर्ति करना है। हमें उस जैनत्व के प्रति जो एक द्वेष का भाव बना हुआ है, उस भाव को हमें निकालने का समय मिल गया और इस भाव से वह राजा बन गया। अब अगर राजा बन गया तो उसी समय पर कोई पूछ सकता है कि एकदम से इसके पुण्य का क्या उदय आ गया कि राजा बन गया। राजा बनना पुण्य के उदय से नहीं होता है। उस पद पर कायम रखना अपने आप को और निश्चिन्त रूप से उस पद का संचार, संवहन करना यह पुण्य का उदय है। यह कब सीखेंगे हम?

सत्ता बचाने के लिए हर सम्भव उपाय

यहाँ तो सत्ता पाँच साल के लिए मिलती है। एक साल भी आदमी चैन से जी नहीं पाता है क्योंकि पाँच की मिल गई है, तो उसे अगले पाँच दिखते हैं और अगले पाँच साल तक फिर अपने आप को आगे बढ़ाने के लिए हमें इन पाँच सालों में क्या उपाय करने हैं? इसमें उसके पाँच साल निकल जाते हैं। कहीं बीच में भी कोई अविश्वास प्रस्ताव पास हो गए तो? कहीं बीच में भी कोई और case आ गए तो? उसमें भी सत्ता गिरने का पूरा-पूरा डर रहता है, तो वह सब न हो इसलिए कुछ नए-नए मुद्दे सामने लाने पड़ते हैं। लोगों के सामने नई-नई ऐसी चीजें लानी पड़ती है जिससे कि लगे कि हमारे देश की progress हो रही है। हमारे देश के

बड़े-बड़े मंत्री बड़े-बड़े काम कर रहे हैं। इस तरीके की चीजें सामने लाकर के लोगों के अन्दर यह विश्वास जमाने का काम किया जाता है कि हम यहाँ पर आकर के आपके लिए, देश के लिए बहुत कुछ कर रहे हैं। लेकिन वह देश के लिए हो रहा होता है या अपने लिए हो रहा होता है या आगे की सत्ता बचाने के लिए हो रहा होता है, यह तो उनका ही मन जानेगा। मन विडम्बनाओं से सहित है या विडम्बनाओं से रहित है, यह बात देखने की और समझने की होती है।

सुख पदों से नहीं अपितु निरापद होने पर

मन की विडम्बनाएँ अगर उच्च पदों पर पहुँचने के बाद में और ज्यादा बढ़ रही हैं तो फिर आपको समझना पड़ेगा, यह पुण्य का लक्षण नहीं है। पुण्यवान जीव अपने आप में भीतर से सुखी होता है। पदों पर आने के बाद में आप सुखी हो सकते हो ऐसा आपको समझ में आता है, तो फिर आपकी यह भूल हो सकती है कि पदों पर रहने वाले सभी जीव सुखी होते हैं। सुख पदों से नहीं मिलता है, सुख निरापद होने पर मिलता है। अगर पदों से सुख मिलता तो फिर लोग पदों को छोड़कर के सन्यास क्यों लेते? तीर्थंकरों के द्वारा बताया हुए धर्म को समझो! जैन धर्म में हुए महापुरुषों के बारे में समझो! जितने भी तीर्थंकर थे, सब बड़े-बड़े राजा थे, सब बड़े-बड़े पदों पर थे और तीर्थंकर से बढ़कर के कोई पद नहीं होता है। इतने बड़े पदों पर उपस्थित होने के बावजूद भी, जिनके लिए आगे सत्ता गँवाने का कोई भय नहीं है, कोई जिनके सामने प्रतिपक्ष नहीं है, विपक्ष नहीं है, कोई जिनके सामने उँगली नहीं उठा सकता है; निष्कण्टक राज्य इसको बोला जाता था। क्या बोलते हैं? ऐसे शब्द कभी पुराण पढ़ोगे तब समझ में आयेंगे आपको। क्या बोलते हैं इसको? निष्कण्टक राज्य।

निष्कण्टक राज्य क्या होता है?

यह निष्कण्टक क्या होता है? जिस राज्य को सम्भालते हुए, राज्य में रहते हुए, जिस राज्य के राजा बनने के बाद में हमारे सामने कोई काँटा न आए। कौन सा काँटा? तराजू का काँटा नहीं, पैर में चुभने वाला काँटा नहीं, धर्मकाँटा नहीं, निष्कण्टक राज्य होना। जिस राज्य में कोई काँटे न बिछे हो, जिस राज्य सत्ता को प्राप्त करने के बाद में उसे कहीं डर न लगे कि अब हमने कहीं यह कदम उठा दिया तो क्या होगा? ऐसा कर लिया तो क्या होगा? उस राज्य के राजा को निष्कण्टक राज्य का राजा कहा जाता है। ऐसे राजाओं को पुण्यवान राजा कहा गया है। जिस राजा को अपने राज्य में रहते हुए कभी भी यह आशंका न हो कि मेरे राज्य पर कभी कोई आक्रमण कर देगा तो क्या होगा? अगर मैं थोड़ी देर के लिए निश्चिन्त हो गया तो दूसरा व्यक्ति हमारे कहीं राज्य के कोष को खाली न कर दे, कहीं हमारा पुण्य चला न जाए और मैं राजगद्दी से हट न जाऊँ, कहीं कोई दूसरा व्यक्ति मेरे लिए किसी भी तरह की आपत्तियाँ पैदा न कर दे। इस तरह की आशंकाओं में जो घिरे हुए होते हैं, वे कभी भी सुख पूर्वक जीवन नहीं जी पाते। निष्कण्टक राज्य उसी को कहते हैं जिसमें उसके सामने उसका कोई काँटा न हो। काँटा समझ रहे हो न? कोई उसका प्रतिद्वन्दी न हो। जब कोई प्रतिद्वन्दी नहीं हो तब उस राज्य को सुख का राज्य कहा जाता है और तभी उस राजा को पुण्यवान राजा कहा जाता है; यह जैन दर्शन पढ़कर के आप देखो।

पुण्यवान कौन?

हम पुण्यवान किसे कहें? जिन राजाओं द्वारा अपनी राजसत्ता जैसे-तैसे बना ली गई। मिलने पर भी बहुत सारे उपद्रव होते हैं, राजसत्ता प्राप्त करने से पहले बहुत सारी विडम्बनाएँ सामने आती हैं और जब राजसत्ता मिल जाती है तब विडम्बनाओं में जीना पड़ता है। राजसत्ता बचाने के लिए विडम्बनाएँ अनेक तरह की बनानी पड़ती हैं। इन सबके बीच में रहने वाला राजा, आप लोगों जैसे व्यक्तियों का तो वह राजा बन सकता है लेकिन हम जैसे लोगों का वह कभी राजा नहीं बन सकता है; मतलब आप लोग तो उसे राजा मान लीगे, बहुत सुख वाला और बहुत पुण्य वाला आदमी मान लीगे लेकिन हम कभी ऐसे जीवों को कोई पुण्यवान व्यक्ति नहीं कह सकते हैं क्योंकि ये सभी विडम्बनाओं में और दुर्दशाओं में पड़े हुए लोग हैं।

देशहित में कार्य करने वाला राजा ही पुण्यवान

केवल सूट-बूट पहनने से, flight में घूमने से और बड़े-बड़े पदों पर पहुँच कर के अच्छे-अच्छे खर्चे जिनके ऊपर किए जा रहे हों, ऐसे व्यक्ति बन जाने से हम कोई बड़े नहीं बन जाते हैं। बड़प्पन व्यक्ति के अन्दर उन बड़े कार्यों को करने से आता है जो कार्य पूरे देश के हित में हों। किसी एक समुदाय के हित में होने वाले कार्य भी बड़प्पन के कार्य नहीं कहलाते हैं। बड़प्पन के कार्य वे कहलाते हैं जो पूरे देश के हित के कार्य हों और ऐसे देशहित में जो कार्य करने वाला राजा हो तो उसी को राजा कहना चाहिए और उसी को पुण्यवान राजा समझना चाहिए। देशहित के कार्य कौन से होते हैं? यह आपको सोचना है। विडम्बनाएँ अगर हमें उनके जीवन में दिखाई देती हैं, दुर्दशाएँ उनके जीवन में दिखाई देती हैं, मन की विकलताएँ उनके जीवन में दिखाई देती हैं तो भी कहीं न कहीं शरण की जरूरत पड़ती है और वे शरण ढूँढते हैं।

आत्मा की शरण ही सबसे बड़ी शरण

अब वे किसकी शरण जाएँ? शरण कोई मिलती नहीं है। अब वे सुनक आए, अब यहाँ पर आ तो गए, अब किसकी शरण जाएँ? शरण में जाने के लिए कहीं न कहीं व्यक्ति को धर्म की शरण ही आना पड़ता है। देख लो! अब वहाँ पर धर्म मिलता नहीं है, तो भारत में आने के बाद में अब धर्म की शरण में जाना है तो कहाँ जाएँ? मन्दिरों में जाओ। मन्दिरों में जायेंगे तो वहाँ जाकर के उनको शरण मिलेगी लेकिन वह भी शरण उनके लिए सन्तोषदायक नहीं हो सकती क्योंकि उन्हें पता नहीं है कि शरण कहाँ लेना है? शरण व्यक्ति को कहाँ मिलेगी? कौन शरण दे सकता है? अन्ततः हमें किसकी शरण में आना है? यह उन्हें पता नहीं है इसलिए वे कभी मन्दिरों की शरण में चले जाते हैं, कभी और धर्मस्थलों की शरण में चले जाते हैं।

जैन आचार्य कहते हैं...अपनी आत्मा की शरण में रहने वाला व्यक्ति ही सबसे सन्तुष्ट व्यक्ति होता है और वही उसके लिए सबसे बड़ी शरण है। स्वयं अपनी शरण में जब तक व्यक्ति रहने का मन नहीं बनाता तब तक उसे भटकना पड़ता है। आत्मा ही मेरे लिए शरण है और कोई शरण नहीं है और आत्मा नाम की उन्हें कोई चीज पता नहीं है। इसलिए वे कहीं भी भटकते रहें, कुछ भी करते रहें, उन्हें शरण नहीं मिलनी। वह कोई भी बन जाएँ, कितने ही बड़े बन जाएँ, चाहे 'Sunak' बन जाएँ, चाहे 'Biden' बन जाएँ, चाहे

‘Putin’ बन जाएँ, चाहे ‘Modi’ बन जाएँ। जब तक आपको यह पता नहीं होगा कि हमारी आत्मा ही हमारे लिए शरण है तब तक हमें जगह-जगह पर भटकना पड़ेगा। यहाँ रहने वाला व्यक्ति बाहर जाकर के शरण माँगता है, बाहर रहने वाला व्यक्ति यहाँ आकर के शरण ढूँढता है और शरण किसी को कभी कहीं मिलती नहीं है क्योंकि शरण कहाँ है? शरण अपनी अन्तरात्मा में है और वह किसी को पता नहीं होता। इसलिए आप देखो कि इन लोगों के लिए भी कहीं न कहीं उस अज्ञानजनित दुःख से गुजरना पड़ता है और इसलिए ये ढूँढते रहते हैं, हमें कुछ शरण मिल जाए... हमें कुछ शरण मिल जाए लेकिन सच्ची शरण को प्राप्त करना भी सबसे बड़ा पुण्य कहलाता है।

ज्यादा पुण्यवान कौन?

मैं समझता हूँ कि वह ‘Biden’, वह ‘Putin’, वह **‘मुर्मू’** उनके लिए इतनी ज्यादा अभी मैं पुण्यवान नहीं समझता क्योंकि उन्हें वह शरण नहीं मिली, जो शरण तुम लोगों को मिल गई है। तुम लोग उनसे ज्यादा पुण्यवान हो; यह ध्यान रखना। समझने की बात है, आप कहाँ बैठे हो? कौन-सी जगह पर बैठ कर के आप क्या सुन रहे हो? उस चीज़ की अगर आपको गरिमा प्राप्त नहीं है, पता नहीं है तो आप कभी महसूस नहीं कर सकोगे कि हम पुण्यवान हैं कि वे पुण्यवान हैं। कौन पुण्यवान हैं? जिन्हें कभी पता ही नहीं कि आत्मा क्या, परमात्मा क्या? सिर्फ हवा में बातें करते रहते हैं, लोगों को सिर्फ vote bank बनाने के लिए। जो जैसे सामने लोग मिल जाएँ उनके सामने वैसी बातें कर ली। जिस द्वार पर चले गए, जिस द्वार पर खड़े हो गए उस द्वार पर उस जैसी बातें कर ली, सिर्फ अपनी vote bank बनाने के लिए। उन्हें कुछ मतलब नहीं होता है आत्मा से, परमात्मा से, भगवान का स्वरूप समझने से।

पदासीन व्यक्ति आकुलता रहित नहीं हो सकता

ऐसे लोगों के मन में आत्मा और परमात्मा के प्रति भी जब विडम्बनाएँ पड़ी रहती हैं, दुर्दशाएँ पड़ी रहती हैं, तो ये लोग कहाँ सत्यता के साथ जी पाते हैं? इन लोगों के मन की दशाएँ कभी भी निर्विकल्प, आकुलता रहित हो ही नहीं पाती। इसलिए समझने की कोशिश करो, पुण्यवान कौन है? आप यहाँ एक घण्टा बैठ कर के इत्मीनान से, निश्चिन्त होकर के, धर्म उपदेश सुन रहे हो। क्या कोई प्रधानमंत्री एक घण्टा बैठ कर के किसी धर्म का उपदेश सुन सकता है? वह बैठ नहीं सकता शान्ति से। वह कभी भी किसी भी धर्म सभा में पहुँचेगा तो तब पहुँचेगा जब वह धर्म सभा या तो शुरू होने वाली होगी या अन्त होने वाली होगी क्योंकि उसे पता है कि अगर मैं शुरू में पहुँच गया तो कहीं अन्त तक न बैठना पड़ जाए, तो पहले से ही अपना programme आगे का लेकर के आता है। मुझे 10 minute का time है, आगे मेरी वहाँ पर meeting है, मुझे वहाँ पर जाना है, पहले से मेरा protocol fix है, मुझे आगे जाना है क्योंकि उन्हें सुनना नहीं है, उन्हें बैठना नहीं है। उन्हें अपने पद का इतना गुरुर रहता है कि वह कभी किसी भी धर्मात्मा व्यक्ति के चरणों में बैठकर के कभी भी शान्ति लेना ही नहीं चाहते।

गाथा: 17

गर्भवास का चित्रण

घोरंमि गब्भवासे, कल-मल-जंबाल-असुइ-बीभच्छे।
वसिओ अणंतखुत्तो, जीवो कम्माणुभावेण ॥17॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्! यह' (जीवो) जीव (कल-मल-जंबाल-असुइ-बीभच्छे घोरंमि गब्भवासे) शरीर के 'अंगरूप उदर के' मल यानी गंदे पदार्थों वाले 'और' जरायु अर्थात् गर्भवेष्टन यानी पतली झिल्ली जिसमें बंधा हुआ बच्चा उत्पन्न होता है ऐसे 'तथा' अशुचि/अपवित्र, बीभत्स यानी घृणित 'और' भयानक ऐसे गर्भवास में (कम्म-अणुभावेण) कर्म के, अनुभाव यानी प्रभाव से (अणंतखुत्तो) अनंतबार (वसिओ) बसा है यानी रहा है ॥17॥

अपने अस्तित्व की जानकारी हेतु अपना past देखें

गाथा नम्बर १७ में कहा जा रहा है, हम कभी पीछे भी देखा करें। घोर गर्भवास में यह जीव रहता है जो गर्भवास, कैसा होता है? कलिल पदार्थों से युक्त होता है, मलिन पदार्थों से युक्त होता है, जहाँ पर अशुचि पदार्थ रहते हैं। ऐसे अपवित्र द्रव्य के साथ में, बीभत्स स्थान पर, घृणित स्थान पर, यह जीव वास करके जन्म लेता है और ऐसा वास अणंतखुत्तो, कितनी बार? अनन्त बार इस जीव का हो चुका होता है। हम अनन्त बार किसी न किसी गर्भ में नौ-नौ महीने तक ऐसे घृणित स्थान पर पड़े रहे, दुःखी रहे, आँखें मूँदे हुए उस दुर्गन्धित अशुचि स्थान में पड़े रहे और आज हमें जब आँखें खुल गई हैं तो हमें 'Biden', 'Putin', 'Modi' तो दिखाई देते हैं पर अपना गर्भवास नहीं दिखाई देता है कि हम अपना past देखें कि हम कहाँ से आए थे? उनको देखने से हमको सम्यग्ज्ञान होगा कि अपना यह गर्भवास देखने से हमको सम्यग्ज्ञान होगा? हमारी आँखें कहाँ खुलेंगी? हमें अपने अस्तित्व के बारे में जानकारी किसको देखने से मिलेगी? हम कहाँ से आए हैं, इसको जानने से जानकारी मिलेगी। आज हम थोड़ी देर के लिए बड़े हो गए, आज हमारी आँखें खुल गई, हमारी बुद्धि विकास को प्राप्त हो गई तो क्या हम यह समझ ले कि हमारी बुद्धि अब ऐसी ही बनी रहेगी, हमारी इन्द्रियाँ इसी तरह से काम करती रहेंगी, हमारा जीवन इसी तरह से चलता रहेगा? अब हमें आगे कुछ भी नहीं और ऐसा मिलेगा जो पहले हो चुका है? पहले जिस तरह से हम नौ महीने किसी गर्भ में रहकर आए हैं, आगे हमें फिर किसी गर्भ में रहना पड़ेगा कि नहीं रहना पड़ेगा? यह भी एक सोचने की चीज हो सकती है।

क्या इतनी ही future planning है?

यह भी एक future planning हो सकती है कि नहीं हो सकती है? कि future plan का मतलब इतना

ही होता है कि जब हम 28 साल के हो जायेंगे तो हमारा क्या job होगा? जब हम 35 साल के हो जायेंगे तो हमारे पास कितने बच्चे होंगे, कितने flat होंगे? जब हम 50 साल के हो जायेंगे तो हमारा bank balance कितना होगा, कितनी कारें होंगी, कितनी हमारे पास luxury होगी? इसी का नाम future plan है क्या? अपने को यह future नहीं दिखता है कि हमारी death होने के बाद में भी हमारा अगला जन्म होगा तो वह future क्या होगा और वह future कैसा होगा? कहीं वैसा ही तो नहीं होगा जैसे अभी हो कर के आया है? उसको तो हम भूल गए।

पूर्व कर्मों के अनुसार भावी जीवन बनता है

अनन्त बार ऐसे गर्भों में यह जीव रहा है, किसके कारण से? **‘जीवो कम्माणुभावेण’** कर्म के अनुभाग मतलब कर्म की शक्ति के कारण से। इस जीव को गर्भ में अनन्त बार पहुँचाने वाला कौन है? इस जीव के साथ बंधे हुए वे जो कर्म हैं, जो घनीभूत होकर के बंधे हुए हैं, उन कर्मों के कारण से यह जीव अनन्त बार इस तरह से गर्भों के दुःख प्राप्त करता है, अनन्त बार जन्म लेता है और हर जन्म लेने के बाद में फिर उसे इसी तरह से ‘Biden’, ‘Putin’ और ‘Sunak’ दिखाई देते हैं लेकिन उसके ऊपर कभी यह सनक नहीं चढ़ती है कि हम कहाँ से आए थे? उसके ऊपर वह ‘Sunak’ की सनक तो चढ़ जाती है। अब ‘Sunak’ की सनक तो सबको दिख रही है, उसकी दौड़ में दौड़ना है कि हमें यह भी समझना है कि हम कहाँ से आए थे और कहाँ हमें जाना है? अगर जाना है तो कहीं हम पुनः फिर इसी गर्भवास में न चले जाएँ तो वहाँ हमें फिर कौन जानेगा कि यह कौन से देश के राष्ट्रपति थे? वहाँ हमारी कब पहचान बनेगी? यह सिर्फ कुछ समय का खेल है, कुछ समय के लिए बस! ये सब बातें हैं। आँखें बन्द होने के बाद में फिर कुछ नहीं रहता है। किसी के भी जीवन के आनन्द कुछ भी क्षण के लिए अगर होते हैं तो सिर्फ वह उसकी मन की उसी धारणा के कारण से होते हैं। आँख मूँदने के बाद में फिर उसका जीवन दूसरा ही बन जाता है और जो उसने यहाँ कर्म किए हैं उसी के अनुसार आगे जीवन बनता है।

किसी से द्वेष का अनुबन्ध नहीं करना

अगर यहाँ पर हम केवल विडम्बनाओं में जीते हुए रहे हैं, हमने जीवन में अपने केवल शत्रु ही तैयार किए हैं और हमें अपने बड़े-बड़े शत्रु दिखाई दे रहे हैं और उन शत्रुओं से हम अपनी दुश्मनी बांधे हुए हैं; चाहे वह चीन हो, चाहे पाकिस्तान हो, चाहे ईरान हो, कोई भी हो। वह शत्रुता से बांधे हुए कर्म हमारे साथ जायेंगे या हम जिन राष्ट्रपतियों के पद पर प्रतिष्ठित हैं, वह कर्म हमारे साथ जायेंगे? हम उन पदों पर पहुँच करके अपने सामने दुश्मनों को देख रहे हैं, अपने सामने शत्रु राष्ट्रों को देख रहे हैं, अपने सामने होने वाले और दूसरे देश के प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति हैं; उनके प्रति भी हम शत्रुता का व्यवहार बनाए हुए हैं तो यह शत्रुता के बन्धन, यह द्वेष के बन्धन, ये हमको कहाँ ले जायेंगे? हम अच्छा किसके लिए कर रहे हैं? हम सिर्फ अपनी सत्ता सम्भालने के लिए अच्छा कर रहे हैं, दूसरी तरफ हम द्वेष का अनुबन्ध करते चले जा रहे हैं। हमारी ये कषायें कहाँ ले जायेंगी? अगले जन्म में मनुष्य बनना भी दुर्लभ हो जाएगा।

पुण्यवान को अपना future after death दिखाई देता है

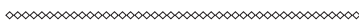
पुण्य किसे कहते हैं? जो मनुष्य बनने के बाद में मनुष्यता को भी दुर्लभ बना दे कि मनुष्य बनने के बाद में कम से कम इतनी line खुल जाए कि भाई! यह मनुष्य तो नियम से स्वर्ग जाएगा, यह तो नियम से अच्छी सद्गति को जाएगा। इसकी भी guarantee जिसके लिए नहीं है, उसको हम कैसे पुण्यवान कह सकते हैं? पुण्य का अर्थ समझ में आता है? पुण्यवान जीव सबके हित में जीते हैं, किसी से अपनी दुश्मनी नहीं बांधते हैं और उन्हें अपना future केवल इतना ही नहीं दिखाई देता है कि हम जिस कार्यकाल में हैं, हमें उस कार्यकाल को पूरा करना है। उन्हें अपना future दिखाई देता है, after death what will happen with me? मृत्यु के बाद मेरे साथ क्या घटित होगा? यह जिसको ज्ञान है, मैं समझता हूँ वही सबसे बड़ा पुण्यवान जीव है; बाकी तो सब दुनिया की बातें हैं। यह ज्ञान रखो और इस ज्ञान के साथ मैं बात करो। यह ज्ञान अगर किसी को नहीं है, तो कोई बात नहीं लेकिन अगर आपको यह ज्ञान सुनने को मिल रहा है तो अपनी आत्मा को चेताओ। मुझे किसी भी पदों पर रहने के बाद में किसी से कोई दुश्मनी नहीं बांधनी क्योंकि जब मैं गर्भ में पड़ा था तो किसी से दुश्मनी नहीं थी। अब मेरी आज आँखें खुल गई हैं, मैं बड़ा हो गया हूँ, मैं समाज में आ गया हूँ तो मुझे अब सब दुश्मन दिखाई दे रहे हैं।

कहाँ से आए थे, कहाँ जाना है?

जो पद पर मुझे पहले बैठने से रोक रहे थे वे भी दुश्मन हैं, जिन्होंने मुझे पद से हटा दिया वे भी मेरे दुश्मन हो गए और जो मेरे आगे पद के पीछे पड़े हैं वे भी मेरे दुश्मन हो गए तो तुम्हारे आगे-पीछे तो दुश्मन ही दुश्मन हैं। पद पर बैठने से पहले भी दुश्मनी चल रही थी क्योंकि तब भी voting हुई थी, तब भी तुमको दुश्मन दिख रहे थे; अब पद पर बैठने के बाद में तुम्हें और दुश्मनी दिखाई दे रही है कि इन्होंने मेरे साथ में दुश्मनी की थी, अब मैं इनसे बदला लूँगा। ED के छापे पड़वाओ, बदला लो तरह-तरह से case लगा-लगा कर के और फिर आगे दुश्मनी की बातें करो, उसको और बांध लो। अगर तुम्हें इन पदों पर आने के बाद में सब ओर दुश्मन ही दुश्मन दिखाई दे रहे हैं और तुम्हें दुश्मनों से ही डर लग रहा है तो सोचने की बात है कि तुम्हारे अन्दर क्या चल रहा है? कहाँ से आए थे? कहाँ जाना है? ये दो-पाँच-दस साल के खेलों से जिन्दगी नहीं बनती है। समझने की बात यह है कि हम कुछ ऐसा करें कि इन गर्भ के वास में हमें बार-बार न जाना पड़े। हर आत्मा को, बार-बार, अनन्त बार, कितनी बार? पढ़ रहे हो न! यह प्राकृत के शब्द एकादि ध्यान में रख लिया करो।

जीव ने अनन्त बार गर्भवास प्राप्त किया है

अणंतखुत्तो! अनन्त बार हम यह गर्भवास को प्राप्त कर चुके हैं...जो वीभत्स है, दुर्गन्धित है, अशुचि है, मलिन है, अनेक तरह के कलिल पदार्थों से युक्त रहा है। ऐसे गर्भवासों में हम एक बार, दो बार, अनन्त बार जाने के बाद क्या करते रहते हैं? हमारी विडम्बनाएँ रुकती नहीं हैं।



गाथा: 18

यह जीव; एक-एक योनि में अनन्त बार उत्पन्न हुआ
है

चुलसीई किर लोए, जोणीणं पमुह-सय-सहस्साइं।
इक्किक्कम्मि अ जीवो, अणंतखुत्तो समुप्पण्णो ॥18 ॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्!' (लोए) लोक में (जोणीणं) योनियों के अर्थात् जीवों की उत्पत्ति स्थानों के 'भेद' (चुलसीई पमुह-सय-सहस्साइं) चौरासी है, प्रमुख यानी आगे जिसके ऐसे, सौ, हजार यानी चौरासी लाख हैं (अ) और 'इन चौरासी लाख योनियों के भेदों में से' (किर) निश्चय से (इक्किक्कम्मि) एक-एक में अर्थात् प्रत्येक योनि भेद में 'यह' (जीवो) जीव (अणंतखुत्तो) अनंत बार (समुप्पण्णो) उत्पन्न हुआ है ॥18 ॥

आगे गाथा नम्बर 18 में कहा जा रहा है कि ऐसी 84 लाख योनियों में हम घूम चुके हैं। यह गर्भवास एक तरह के नहीं है। नरक गति के, तिर्यच गति के, मनुष्य गति के, देव गति के, चारों गतियों के गर्भवास, चारों गतियों में उत्पत्ति; जहाँ पर गर्भ नहीं होता है, ऐसे भी जन्म होते हैं। उन सब उत्पत्ति स्थानों को मिलाने पर 84 लाख योनिस्थान बनते हैं, उत्पत्ति स्थान बनते हैं और यह जीव उन्हीं 84 लाख स्थानों में बार-बार कभी इसमें, कभी उसमें, कभी इसमें, कभी उसमें, इन्हीं में जन्म अनन्त बार ले चुका है और इस तरह से इस जीव के लिए अनन्त बार इन्हीं स्थानों पर उत्पन्न होना होता है। 'इक्किक्कम्मि जीवो' अर्थात् एक-एक योनि में यह जीव 'अणंतखुत्तो समुप्पण्णो' अनन्त-अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है। दुनिया का ऐसा कोई भी स्थान नहीं बचा, ऐसा जीव की उत्पत्ति का योनिस्थान नहीं बचा जहाँ यह जीव उत्पन्न न हुआ हो; न आपका, न हमारा और न जो चले गए उनका।

जीव अनन्त योनियों में भटक चुका है

क्या समझ आ रहा है? यह ज्ञान सबके लिए है। जो भी इस संसार से मुक्त हुए हैं, वे भी पहले अनन्त बार इसी तरह से अनन्त योनियों में भटक चुके हैं और ये योनियाँ वे नहीं होती हैं जो हमें दिखाई देती हैं। चारों ओर अगर हम हरी वनस्पति देखते हैं तो वे भी सब वनस्पति की ही योनियाँ हैं, वे भी जीव हैं; वे वनस्पतिकायिक जीव कहलाते हैं। चारों तरफ हमें जल ही जल दिखाई देता है, उस जल में भी जलकायिक जीव हैं। उस जलकायिक जीव के भी योनिस्थान होते हैं। उसमें भी यह जीव, जीव के रूप में उत्पन्न होता है। हर जगह पर यह जीव उत्पन्न हो चुका है। अग्नि में, वायु में, वनस्पति में, निगोदों में, स्थावरों के हर पर्यायों में, नरकों में और इन स्थानों में उत्पन्न होते-होते यह जीव, दुःख भोगते-भोगते कभी मनुष्य बन जाता है और मनुष्य

बनकर के कभी कोई 'Sunak' भी बन जाता है, कोई 'Biden' भी बन जाता है, तो कोई राजा श्रेणिक भी बन जाता है और कोई महावीर भगवान जैसा तीर्थकर भी बन जाता है, कोई राम जैसा भगवान भी बन जाता है। मनुष्य क्या कर रहा है? हमें इस बात पर depend करना चाहिए कि उसके वर्तमान में होने वाले भाव कैसे हैं, वह कौन-सी दिशा में अपने भावों को ले जा रहा है? पुरुषार्थ कौन-सी दिशा में कर रहा है। इसलिए अगर किसी के लिए राज्य सत्ता मिल गई तो हम यह न समझे कि वह राज्य सत्ता उसको पुण्य से मिल गई।

अहंकार ही आदमी के लिए दुर्गति का कारण बन जाता है

बलि राजा और उसके साथ में चार और मंत्री थे। उन चारों मंत्रियों ने मिलकर के राज्य प्रारम्भ कर दिया। सात दिन के राज्य में उन्होंने 700 मुनियों को जलाने की योजना बना ली, उनको मारने की योजना बना ली। अब बताओ! यह राजा बनकर के क्या कमा रहा है? अगर हम कभी भी किसी भी धर्म को मिटाने की योजना बनाते हैं, धर्म तीर्थों को मिटाने की योजना बनाते हैं, धर्म गुरुओं पर आपत्तियाँ डालने की योजना बनाते हैं तो आप समझ लेना कि यह राजा होकर के भी क्या कमायेंगे? यह आपके ज्ञान में रहना चाहिए। इसलिए राजा होना महत्वपूर्ण नहीं है, उस राजत्व पद पर आसीन होने के बाद में शैतान नहीं बनना, यह सबसे महत्वपूर्ण चीज है। इंसान राजा बनने के बावजूद भी इंसान बना रहे, यह बड़ी महत्वपूर्ण चीज है। उसके अन्दर शैतानियत न आए। चार दिन का राज्य मिला तो वह अपने अन्दर इतनी शैतानियत न लाए कि वह अब सब दुनिया को मिटा डाले, सब कुछ बदल डाले लेकिन वह अगर राष्ट्रहित में हो तो अच्छी बात है। जिससे कोई राष्ट्र का हित नहीं होना है, केवल अपने नाम के लिए करना है, तो यह नाम का अहंकार भी आदमी के लिए बहुत दुर्गति का कारण बन जाता है। आप देखो! बड़े पदों पर आसीन लोग सिर्फ नाम के अहंकार में जीते हैं। यह name और fame की एक जो भीतर से ललक पड़ जाती है, वह ललक उनकी बढ़ती ही चली जाती है।

आचार्यश्री का जीवन प्रेरणास्पद है

बड़े पदों पर प्रतिष्ठित होने के बाद शान्ति का जीवन जीना, निस्पृह होकर के जीना, निरीह होकर के जीना, सब कुछ अपने पास में होते हुए भी अपना उससे कर्तृत्व भाव नहीं जोड़ना; यह अगर सीखना है तो आचार्य गुरुदेव की शरण में जाओ, वहाँ पर आपको ये सब चीजें सीखने को मिलेंगी। आचार्यश्री का जीवन देखो! कितने विशाल संघ के स्वामी होते हुए भी अकेले शान्ति से रह रहे हैं। बस कोई सन्देश पहुँच जाता है, आशीर्वाद मिल जाता है और कोई अगर कह देता है कि हाँ महाराज! आपकी बात हमने वहाँ पहुँचा दी थी और आचार्यश्री ने आपको आशीर्वाद दे दिया है, तो वह तो खिलता है सो खिलता ही है, हम भी खिल जाते हैं कि गुरुजी ने हमारा नाम सुनकर के आशीर्वाद दे दिया, बहुत बड़ी बात है। इतनी निरीहता का जीवन जीने वाले ये सन्त पुरुष हैं, जिनके लिए सब कुछ उनके ज्ञान में आता है।

देशहित की बातें

यह भारत, यह India की बात जो आचार्य महाराज करते रहे हैं...आज देखो! अगर उस भारत और India की भी बात कहीं हो रही है, तो सिर्फ राजनीति के तहत हो रही है, हित के कारण से नहीं हो रही है कि देश का हित किसमें है? हित की बात करने वाला कौन? देशहित में भारत का नाम भारत होना चाहिए, यह बात करने वाला कौन? यह बात करने वाला कोई नहीं है। वह तो India बन गई दूसरी, इसलिए उस India में मुझे नहीं रहना इसलिए मुझे अपना अलग भारत बनाना है। यह देशहित की बातें नहीं हैं। देशहित के भाव जो होते हैं वे अलग होते हैं और वे भाव हमें आचार्य गुरुदेव ने दिए, वह देशहित में दिए। वे जब भी लागू होंगे, हो या न हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता लेकिन जो आत्मा देशहित के भाव कर लेता है, वह समस्त समूची मानव जाति के प्रति हित का भाव करके अपने अन्दर पुण्य भाव अर्जित कर लेता है और इसी प्रकार के हित करने वाले लोगों को, इन महापुरुषों को हमें उन 'Biden', 'Sunak', 'Putin' और 'Modi' से भी ज्यादा पुण्यवान जीव समझना चाहिए, हमें इनके पुण्य की बात करना चाहिए। बताओ! कौन पुण्यवान है? गुरु महाराज पुण्यवान हैं या G20 में शामिल होने वाले लोग पुण्यवान हैं?

धर्म पुरुषार्थ से ही जीव पुण्यवान बनता है

अपने अन्दर अगर यह ज्ञान नहीं आएगा तो हमारे ऊपर वे अन्धकार के पदें चढ़ते ही चले जायेंगे, चढ़ते ही चले जायेंगे, चढ़ते ही चले जायेंगे। हम देखें कि कौन-सा पुरुषार्थ कौन-सा जीव कर रहा है? इन गर्भवासों में न जाना पड़े, ऐसे जन्म-मरण हमें न करना पड़े। ऐसे जीव जो पुरुषार्थ कर रहा है, वह जीव पुण्यवान जीव शास्त्रों में कहा गया है; पदों पर आसीन होना पुण्यवान नहीं है। अपने धर्म के पुरुषार्थ भावों को अच्छा बनाने का पुरुषार्थ करने वाला जीव इस संसार में पुण्यवान जीव होता है। ऐसा अपने मन में धारण कर लोगे तो तुमको समझ में आएगा कि हमें किस रास्ते पर चलना है। पुण्य के रास्ते पर चलना है कि पुण्य की खपत करके धरातल में घुसने वाले रास्ते पर चलना है? इसलिए समझने की चीज है, राजा राज्य करता है लेकिन राजा के राज्य में हर तरह से सुभिक्ष, हर तरह के जीवों के लिए निश्चिन्ता, हर तरह के धर्म करने वाले जीवों के लिए निराकुलता का वातावरण होना चाहिए।

धर्मतीर्थों पर आपत्तियाँ आना सुशासन में नहीं हो सकता

धर्मतीर्थों पर आपत्तियाँ आ रही हैं, धर्म गुरुओं पर आपत्तियाँ आ रही हैं। यह एक अच्छे राज्य में हम कैसे कह सकते हैं कि राजा के सुशासन में हम जी रहे हैं? जो तीर्थ पहले से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं, जो तीर्थ पहले से तीर्थकरों की पुण्य भूमि के रूप में, निर्वाण भूमि के रूप में प्रसिद्ध हैं, उन तीर्थों पर भी आपत्तियाँ आ रही हैं और उन तीर्थों के नाम बदले जा रहे हैं, उन तीर्थों के स्थान बदले जा रहे हैं। हम कैसे कहें कि हम एक अच्छे राजा के शासन में जी रहे हैं? सोचने की बात है! कोई कह रहा है कि गिरनार का नाम तो बदल ही गया, वहाँ पर जो चरण चिन्ह थे, वे भी शायद बदल दिए गए हैं या बदलने वाले हैं, जो भी हो। आपकी आँखें हो तो देख लेना, google में झॉक कर के देख लेना। कुछ मिल जाए तो समझ लेना, क्या हो रहा है।

जो तीर्थ हमारे तीर्थकरों के नाम पर प्रसिद्ध हैं, हर ग्रन्थों में जिनका नाम लिखा हुआ है और उन तीर्थकरों के उन सब निर्वाण भूमियों को भी अगर कोई दूसरा अपने नाम पर ले रहा है, तो वह अपने शासन में दुःशासन तो बन सकता है, हम उसे सुशासन नहीं कह सकते हैं। आपको लगे तो आप vote देना, मुझे तो कोई vote नहीं देना किसी को। मैं सिर्फ वही बात करूँगा जो धर्म की होगी, जो न्याय की होगी। मुझे किसी से डर नहीं है। आपको डर लगता है तो आप ताली मत बजाना, मुझे कोई दिक्कत नहीं है लेकिन अगर किसी शासन के अन्दर धर्मतीर्थों पर आपत्तियाँ आ रही हैं और उस शासन के कारण से अगर धर्म तीर्थ नाम बदल कर के दूसरे तीर्थों के रूप में हो रहे हैं, तो यह एक अच्छी बात नहीं है। वे कितने ही बड़े अच्छे राजा हो, हम उन्हें कभी अच्छा राजा नहीं कह सकते।

धर्मायतनों की सुरक्षा हमारा अधिकार है

मुझे किसी party से मतलब नहीं है, मुझे व्यक्ति के गुणों से मतलब होता है और व्यक्ति अगर गुणवान होगा, उसके व्यक्तित्व में अगर गुणों की भरमार होगी तो वह कभी किसी भी धर्म के प्रति अपना द्वेष का भाव नहीं रखेगा। ये चीजें कब सीखोगे? केवल vote देना ही सबसे बड़ी चीज नहीं होती है। हमें यह समझना पड़ता है कि हम vote देने के बाद में उस vote से सुरक्षित हैं या असुरक्षित हैं और ऐसे असुरक्षा के काम आज क्यों हो रहे हैं? अच्छी-अच्छी सरकारें, अच्छे-अच्छे लोग आने के बावजूद भी वे काम क्यों हो रहे हैं? उसी MP में, उसी शिवराज के राज्य में, ऐसे-ऐसे काम इंदौर आदि की जगह पर क्यों हो रहे हैं? गोमटगिरि में ऐसे-ऐसे काम क्यों हो रहे हैं? जो शिवराज हमेशा आचार्य महाराज के चरणों में बैठा रहता है। जबरदस्ती किसी भी चीज को करना, जबरदस्ती किसी के धर्म आयतनों को हड़पना, अपने अधिकार में लेना या उन्हें अपने अधिकार में लेने के लिए रणनीति बनाना, यह अच्छी मानसिकता के परिचायक नहीं होते हैं। हर व्यक्ति को इस लोकतंत्र के अन्दर अपनी आवाज उठानी चाहिए और हर व्यक्ति को लोकतंत्र के अन्दर अपना अधिकार माँगने का पूरा हक होना चाहिए और इस हक के साथ जो जीने वाला जीव होगा, वह पुण्यात्मा जीव कहलाएगा। गलत का समर्थन हमें कभी भी डर कर के नहीं करना चाहिए। यह चीज जब आपकी समझ में आएगी तब समझोगे कि पुण्य क्या होता है? पुण्य आपका भी कम नहीं है, आप अपने पुण्य का उपयोग करना सीखो। आप अपने पुण्य की और आगे बढ़ोत्तरी कैसे हो? इस तरह के कार्य करना सीखो और जब हम इस तरह के पुण्य कार्यों में अपने आप को लगाते हैं, तब हमारे लिए ये जन्म-मरण के चक्कर मिटते हैं।

अन्याय को सहना धार्मिकता नहीं

किसी से द्वेष नहीं करना, लड़ करके जन्म-जन्म का किसी से बन्ध बाँधना नहीं है लेकिन समत्व भाव के साथ भी, धर्म भाव के साथ भी न्यायपूर्वक हमारे साथ में व्यवहार हो, इसके लिए विरोध में खड़ा होना भी धार्मिकता कहलाता है। यह भी धार्मिकता है। मुँह बन्द करके बैठ जाना, अन्याय को सहना इसका नाम धार्मिकता नहीं कहा गया है। यह तो हमारे लिए है और आज उल्टा हो रहा है। हम मुखर हो रहे हैं, तुम मौन हो रहे हो। बोलना किसको चाहिए था? आवाज किसको उठानी चाहिए थी? तुम्हारे कान में कभी जूँ नहीं रेंगती। तुम्हें क्या मतलब है? हमारा अपना घर-परिवार अच्छा चल रहा है। तीर्थ लुट रहे हैं लुटने दो, धर्म

लुट रहा है लुटने दो। news आ गई, आगे forward कर दी, बस! अपने mobile का इतना ही काम है, अपनी उँगलियों का बस! इतना ही काम है और कुछ काम नहीं। उँगली उठाना किसी का काम नहीं, बस उँगली से forward करने का काम उँगलियों का रह गया है और कोई काम नहीं रह गया है।

अपने कर्तव्यों को याद रखें

जिसके जो कर्तव्य हैं वे कर्तव्य अगर उसे याद रहेंगे तो वे पुण्यवान जीव हैं और जो कर्तव्यों से विमुख हो गया, उसे हम पुण्यवान नहीं कह सकते। आपको अपने कर्तव्यों की याद आनी चाहिए, आपको यह ध्यान रखना चाहिए कि हम कहाँ से आए थे और हमें कहाँ जाना है? **‘कहाँ से आया, कहाँ है जाना? ढूँढ ले ठिकाना, बन्दे ढूँढ ले ठिकाना’** वह ठिकाना ढूँढने की जगह आप यहाँ बैठे हो। ठिकाना ढूँढो, कहाँ से आए थे? यह बताया जा रहा है गर्भवास से आए थे, गर्भवास से आए थे। कभी याद आता है आपको? किसी को याद आता है? क्यों? यहाँ पर आज जो दूसरे अतिथि लोग आए हैं, कौन-सी green city से आए हैं। क्यों? यह कभी याद आता है कि हम कहाँ से आए थे? कभी स्मरण नहीं किया न? आज ही स्मरण तो हो रहा होगा थोड़ा-सा! आज यह स्मरण हो रहा है, यही हमारे लिए पुण्य का सबसे बड़ा क्षण है जब हम इस तरह के ज्ञान के साथ में इस क्षण में जी पा रहे हैं। यह हमारा पुण्य का क्षण है।

शत्रुता बांधने से कोई लाभ नहीं

यह स्मरण अगर बना रहेगा तो व्यक्ति कभी भी किसी भी पदों पर बैठ कर के गलत कार्य नहीं कर पाएगा क्योंकि उसे क्या दिख रहा है? अरे भाई! कहाँ जाना है? क्या करना है? किसके लिए? इतनी दुश्मनी किसके लिए? इतनी शत्रुता को बांध कर के हम कहाँ जायेंगे? कितने जन्म हमें और जीने हैं और कितने जन्म हम जी कर के आए हैं और इस जन्म में जब तक हम 20-25-30 साल के थे, कोई दुश्मनी नहीं थी। आज जब हम 40 साल के हो गए हैं, 50 साल के हो गए हैं तो हमारे आगे भी दुश्मन दिखाई दे रहे हैं, पीछे भी दुश्मन दिखाई दे रहे हैं; ये कहाँ से पैदा हो गए? वे दुश्मन पैदा हो गए या हमने दुश्मनी पैदा कर ली? यह सोचना, यह विचार करना ही सबसे बड़ा विचार है और इस तरह के विचारों के साथ में जो अपने परिणामों को निर्मल बनाता है, कषायों को मन्द करता है, वही जीव इस तरह से गर्भवासों के दुःखों से अपने आप को बचा पाता है। इसलिए यह दुःखों की याद दिलाई जा रही है।

अपने दुःखों को सहन करने की क्षमता बढ़ाओ

आगे चलकर के आपको फिर से ऐसे दुःखों की प्राप्ति न हो जाए और थोड़े से सुख में इतना नहीं फूल जाओ कि आगे चलकर के तुम ऐसे कर्म बन्ध बांध लो कि तुम्हारे लिए दुःख ही दुःख की परम्परा खड़ी हो जाए... यह विचार, करुणा करके आचार्य इसलिए कहते हैं- अपना अतीत देखोगे, गर्भवास के दुःख देखोगे तो तुम्हें समझ में आएगा कि वर्तमान की इस पर्याय में उससे बढ़कर के दुःख अभी हमें नहीं मिल रहे हैं, जितने दुःख हम जब समर्थ नहीं थे तब भोग करके आए हैं। गर्भवास में कौन-से समर्थ थे हम? वहाँ कुछ नहीं कर सकते थे, तब हमने इतने दुःख भोग लिए और आज हम समर्थ हैं तो हम थोड़ा-सा भी दुःख नहीं भोग पा रहे हैं।

राग से वैराग्य का उपदेश

अच्छे श्रोता का कर्त्तव्य

मेजबानी करना सीखें

सुन रहे हो! सोता का मतलब श्रोता होता है कि श्रोता का मतलब सोता होता है? श्रोता का सबसे पहले कर्तव्य क्या होना चाहिए? प्रारम्भिक मंगलाचरण भी हो और अन्तिम मंगलाचरण भी हमारे साथ हो। आपको समझना चाहिए कि जो बाहर से अतिथि आते हैं, वे पूरा प्रारम्भिक मंगलाचरण से अन्तिम मंगलाचरण तक बैठते हैं और आप मेजबान जो लोग हैं, जिनको मेजबानी करनी है, देर से आते हो और अतिथि लोग पहले आकर के बैठ जाते हैं; यह स्वागत की अच्छी परम्परा नहीं है। अगर अतिथि को बुलाना चाहते हो तो उनके स्वागत में पहले खड़े रहना भी सीख लो, नहीं तो बुलाना बन्द कर दो। इसके लिए ज्यादा कुछ नहीं करना है, थोड़ा अपने time को manage करना है ताकि सब काम time पर हो सके

गाथा: 19

तीनों लोकों में जीव का रक्षक या शरण कोई नहीं है

माया-पिय-बंधूहिं, संसारत्थेहिं पूरिओ लोओ।
बहुज्जोणि-णिवासीहिं, ण य ते ताणं च सरणं च ॥19 ॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्!' (संसारत्थेहिं बहु-ज्जोणि-णिवासीहिं माया-पिय-बंधूहिं) संसार में स्थित, बहु यानी अनेकों, योनियों में अर्थात् चौरासी लाख योनियों में, निवास करने वाले, माता, पिता 'और' बंधुजनों ने 'तुम्हारे लिए मोहवश जन्म ले-ले कर सम्पूर्ण' (लोओ पूरिओ) लोक को, पूरित किया है 'किन्तु' (ते) वे 'तुम्हारे' (ताणं) रक्षक (य) और (सरणं) शरण (ण) 'न थे' (च) और 'न हैं' (च) और 'न आगे होंगे' ॥19 ॥

प्रस्तावना

वैराग्य शतक के माध्यम से एक नया ज्ञान हम लोगों को भावनात्मक रूप से प्राप्त हो रहा है और यह ज्ञान इतना सरल है कि ऐसी कोई बात नहीं होती है, जो हमारे प्रत्यक्ष में हमें दृष्टिगोचर न हो या जिससे हम परिचित न हो। ऐसी सभी बातें जिन्हें हम सुनते रहते हैं, देखते रहते हैं; उन्हीं का इस ग्रन्थ में चित्रण किया गया है। प्राकृत भाषा में निबद्ध यह वैराग्य शतक नाम का जो छोटा-सा ग्रन्थ है, यह अपने आप में हमारी भावनाओं को दृढ़ बनाने के लिए, राग से वैराग्य की ओर आने के लिए एक अनूठा ग्रन्थ है और अभी ढंग से यह ग्रन्थ प्रकाशित भी नहीं हुआ है और इस ग्रन्थ की वाचना चल रही है और अगर यह वाचना पूर्ण हो जाएगी तो शायद यह ग्रन्थ अच्छे से प्रकाशित भी हो जाएगा। आप लोगों के सौभाग्य से ये गाथाएँ हम पढ़ रहे हैं, आप सुन रहे हैं। इन्हीं गाथाओं को आगे पढ़ते हुए, गाथा नम्बर 19, 20, 21 पढ़ते हैं-



माया-पिय-बंधूहिं, संसारत्थेहिं पूरिओ लोओ।
बहुज्जोणि-णिवासीहिं, ण य ते ताणं च सरणं च ॥19 ॥

जीवो वाहि-विलुत्तो, सफरो इव णिज्जले तडप्फडई।
सयलो वि जणो पिच्छइ, को सक्को वेअणाविगमे ॥20 ॥

मा जाणसि जीव! तुमं, पुत्तकलत्ताई मज्झ सुहेऊ।
णिउणं बंधणमेयं, संसारे संसरंताण ॥21 ॥

अशरण रूप संसार का दर्शन

कहते हैं... 'माया-पिय-बंधूहिं' 'माया' अर्थात् माता को प्राकृत में माया कहा जाता है, 'पिय' अर्थात् पिता

को पिय कहा जाता है और बन्धु तो बन्धु होता ही है, यह आप जानते हो। यह सभी संसार में स्थित होकर के **‘बहुज्जोणि-णिवासीहि’** बहुत प्रकार की योनियों में निवास करने वाले ये सभी हमें हमेशा मिले हैं और इतने मिले हैं कि इन्होंने पूरा लोक पूरित कर दिया है, भर दिया है। किन्हींने? माता ने, पिता ने, बन्धुओं ने। अपने पिछले जन्मों में, अनेक योनियों में, हमें अनेक तरह के जो जन्म हुए हैं, उन जन्मों में इतने माता-पिता और बन्धु हो चुके हैं कि उनसे पूरा लोक भर चुका है यानी एक जन्म की यह बात नहीं है। जो विशिष्ट ज्ञानी होता है, वह आगे-पीछे सब कुछ देखा करता है और जब ज्ञान आपका आगे-पीछे सब देखेगा तो आपके अन्दर यह भाव आएगा कि हम आज जिस जीवन को जी रहे हैं, वही जीवन हमारे लिए भले ही सत्य-सा लगता है लेकिन उतना ही सत्य नहीं है। इस जीवन में हम जो अपने माता-पिता, बन्धुओं के साथ रहकर के उनकी शरण में रहते हैं और यह समझते हैं कि ये हमारे लिए शरण हैं, इस भ्रम को तोड़ने के लिए यहाँ पर कहा जा रहा है कि हम ऐसे अनेक बन्धुओं को पिछले जन्मों में अपना चुके हैं। इतनी माताएँ हमारी हो चुकी हैं, इतने पिता इस जीवात्मा के हो चुके हैं कि अगर उन सबकी गणना की जाए, उनकी संख्या का अन्दाजा लगाया जाए तो यह लोक पूरा का पूरा भर जाए। इस लोक में कोई ऐसा जीव न दिखे, जिसके साथ हमारा कोई पहले ऐसा सम्बन्ध न हुआ हो। हर जीव के साथ में हमारा माता, पिता, बन्धु का सम्बन्ध भी हो चुका है। सम्बन्धों में ही हम सन्तुष्ट होकर के शरण ढूँढने लगते हैं और यहाँ अन्त में कहते हैं **‘ण य ते ताणं च सरणं च’** वे सब तुम्हारे लिए कभी भी शरण नहीं हुए, न हो पायेंगे।

संसार का अनवरत चक्र

हमें लगता है कि ये सब हमारे लिए शरणभूत हैं किन्तु आप देखते हो, आपके लिए शरणभूत कौन दिखाई देता है? जब आप बड़े हो जाते हो, आपके बच्चे छोटे होते हैं तो बच्चों को लगता है कि माता-पिता मेरे लिए शरण हैं लेकिन जिन बच्चों के पिता के भी पिता होते हैं तो वह पिता जो बीच में हैं, वह पिता देखें अपने पिताओं के लिए कि हम अपने पिता की शरण में हैं कि वह पिता हमारी शरण में हैं? नहीं समझे? जब वे पिता थे, आपका बच्चे की तरह पालन करते थे तब लगता था उनको भी, यह मेरी शरण में है और आपको भी लगता था कि हम उनकी शरण में हैं। अब जब वह वृद्ध हो गए और आपके भी बच्चे हो गए तो अब आपको लगता है कि यह मेरा बच्चा तो मेरी शरण में है लेकिन अब हम अपने पिता की शरण में नहीं रहे। पिता हमारी शरण में आ गए क्योंकि अब हमें पिता की देखभाल करनी पड़ती है। पिता अस्वस्थ हो गए, वृद्ध हो गए, घर में उठने-बैठने के लायक नहीं रहे तो अब पिता के लिए यह नहीं लगता कि बेटा मेरी शरण में है। अब क्या हो जाता है? अब बेटे को लगता है, पिता की शरण अगर हमें मिलेगी तो इसी रूप में मिलेगी और शरण का मतलब होता है- रक्षा करने वाला। अब पिता पुत्र की रक्षा नहीं करेगा, अब पुत्र पिता की रक्षा करेगा।

शरण का व्यावहारिक दृष्टिकोण

अब उस शरण में भी हमें लगता है कि यह शरण है क्योंकि एक घर बन जाना भी शरण होता है। घर में रहकर के भी हम अपने आप को सुरक्षित महसूस कर लेते हैं और जैसे घर में रहकर के हमें सुरक्षा महसूस होती है, वैसे ही घर के अपने जो बन्धुजन होते हैं, अपने पुत्र आदि होते हैं उनसे हमें अपनी सुरक्षा महसूस

होती है। यह सुरक्षा महसूस होना, सुरक्षित वातावरण में रहना; इसे हमें दो दृष्टियों से देखना चाहिए। एक दृष्टि होती है- व्यवहार की दृष्टि और एक दृष्टि होती है- परमार्थ की दृष्टि। यह बात ठीक है कि जब कोई व्यक्ति खुले आकाश में पड़ा होगा तो उसके लिए कुछ भी शरण नहीं है। लेकिन जब आप चारदीवारी में बन्द होकर के किसी स्थान पर रहते हो, रुकते हो, शयन करते हो तो आपके लिए लगता है कि हम सुरक्षित स्थान पर हैं। आप खुले में नहीं सो सकते हो, कभी भी बरसात आ सकती है, कभी भी आपके लिए किसी भी तरह की बिजली आदि गरजने की आवाजें आ सकती हैं। खुले में आप सोओगे तो आपको लगेगा कि हमारे लिए कोई भी सुरक्षित स्थान नहीं है और सतना में तो कभी भूल के भी मत सोच लेना कि हमें खुले में सोना है। इतने मच्छर, इतने मच्छर कि इस छत पर सोओगे, दूसरी छत पर पड़े मिलोगे।

अगुप्ति भय

यह सोने का भी एक भय होता है कि हमें कहाँ सोना है? आचार्यों ने जो सात प्रकार के भय कहे हैं, उनमें दो भय इसी तरह के हैं। एक भय होता है- **अगुप्ति भय**। अगुप्ति भय का मतलब होता है कि हमारे लिए कोई रक्षक स्थान नहीं है। चारदीवारियाँ हो, कमरा बन्द हो तो आप चैन से सो पाते हो। चारदीवारी के बिना आप जब सोओगे तो आपके लिए डर लगेगा और अगर आपके पास में दीवारें ही नहीं हैं, आपका कोई घर ही नहीं है, तो आपको हमेशा भय लगा रहेगा। कोई भी व्यक्ति मेरे ऊपर आकर के कभी भी आक्रमण कर सकता है, कोई भी मेरा सामान उठा कर ले जा सकता है, कोई भी मेरे लिए वध कर सकता है, कुछ भी कर सकता है। यह बात अलग है कि जो platform पर लोग सोते हैं, उनके पास कुछ ऐसा नहीं होता है कि कोई उठा कर ले जाए लेकिन आप platform पर नहीं सो सकते हो। आप खुले स्थान पर सुरक्षित होकर के नहीं शयन कर सकते हो तो आपके लिए जो यह भय लगता है कि हमें ऐसा स्थान चाहिए जो थोड़ा-सा covered हो, जिसमें अन्दर से lock लग जाए, ये भाव किसलिए आते हैं? यह अगुप्ति भय के कारण से आता है। गुप्ति का मतलब होता है- कोई भी प्रकार, दीवारें, किला; ऐसा गुप्त स्थान जहाँ पर हम बैठने के बाद में शयन करने की स्थिति में आ सके। अगर मान लो आपके लिए दीवारें ही चाहिए और अगर आपको कभी ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया जाए, जहाँ दीवारें तो हैं, तीन तरफ से ढका हुआ है और एक तरफ से केवल खुला हुआ है और उस पर भी चलो कुछ न कुछ लगा दिया जाए, बन्द कर दिया जाए तो भी कुछ स्थान ऐसे होते हैं, जहाँ आपको नींद नहीं आ सकती।

अगुप्ति भय मनोनिर्मित है

तारंगा गए हो कभी? कभी जाना। तारंगा की गुफाओं में जाना। वहाँ की धर्मशालाओं में नहीं जाना, कहाँ जाना? वहाँ गुफाएँ हैं। उन गुफाओं में शेर रहते हैं और हर गुफा में शेर नहीं रहते लेकिन वह किसी भी गुफा में शेर कहीं बैठा हुआ मिल सकता है और गुफाएँ बहुत सारी हैं। आप कभी घूमने निकल गए, आपको वह गुफा खाली दिख गई। अब मैंने अगर आपको बता दिया है कि उस गुफा में कभी भी शेर आ सकता है, तो आपके अब वहाँ पहुँचने के बाद में, उस गुफा में देखने के बाद में अपने आप याद आ जाएगा कि महाराज ने कहा था। दिन में तो दस लोगों के साथ चले जाओगे। कोई कह देगा, अभी यहाँ पर कोई शेर नहीं है, चले जाओगे, रुक जाओगे, देख लो। अगर कोई यह भी कह दे कि अभी यहाँ पर शेर नहीं है, आप निश्चिन्त रहो

और फिर भी आपसे कह दे कि आप यहाँ रात में रुक जाओ, आप उन गुफाओं में सो नहीं सकते हो। कोई नहीं है वहाँ पर, कोई नहीं आ रहा है लेकिन फिर भी आपके मन में एक भय रहेगा, अगर कोई आ गया तो और रात कोई दो-पाँच-दस minute की तो होती नहीं है। अगर आप रात्रि में वहाँ पर रुक गए, सो गए तो सोने के उपरान्त भी आपको वहाँ नींद नहीं आ सकती है क्योंकि आपको खटका लगा रहेगा कि अगर कहीं घूमते-घामते कोई बाघ, कोई शेर आ गया तो सुबह हम यहाँ नहीं मिलेंगे, उसके पेट में ही मिलेंगे। यह भय आपके लिए सोने नहीं देता और इसी भय को आचार्यों ने कहा...अगुप्ति भय।

अगुप्ति भय से सुरक्षा के उपक्रम

यह अगुप्ति भय के कारण से हमें लगता है कि हमें एक ऐसी जगह मिलना चाहिए, जहाँ पर हमें कुछ शरण मिल जाए, सुरक्षित स्थान मिल जाए तो हम उस अगुप्ति भय को दूर करने के लिए ही एक अपना अच्छा-सा मकान बनाते हैं। उस मकान में एक बाहर का दरवाजा अलग होता है, अन्दर के कमरे अलग होते हैं, कमरे के अन्दर का bedroom अलग होता है, उसके अन्दर का lock अलग होता है और वह सब कुछ खिड़कियाँ, सब कुछ उसके दरवाजे, जब सुरक्षित महसूस करते हैं तब हम वहाँ पर शयन कर पाते हैं। इसका नाम है...अगुप्ति भय से भयभीत रहना।

एकान्त अगुप्ति भय

संसार जीव कभी भी अगुप्ति भय को जीत नहीं सकता है। अगुप्ति भय को जीतने वाले वही लोग हो सकते हैं जो गुफाओं में लेटने की हिम्मत रखते हो, गुफाओं में सोने की ताकत रखते हो। अगुप्ति भय का मतलब जब हमारे लिए इस तरह से आ जाता है, तो यह व्यावहारिक दृष्टि से यह भय हमें पीड़ित करने लग जाता है। अब जिस तरह से यह भय हमारे लिए भय है, उसी तरह से अगर मान लो एक बड़ा घर है और उस घर में दस कमरे हैं और उन दस कमरों में कोई रहने वाला नहीं है, आप एक अकेले व्यक्ति हो, सो जाओगे? तब भी आपको नींद आना मुश्किल हो जाएगी। पहले घर में ऐसा होता था कि घर के लोग कहीं रिश्तेदारी में चले गए, कभी अचानक कभी ब्याह, बरातों में जाना पड़ गया या किसी की गमी हो गई, वहाँ जाना पड़ गया। अब सब बच्चों को एक साथ लेकर के नहीं जा सकते। मान लो बच्चा एक है और बच्चे के लिए school है, कुछ है, तो माता-पिता चले गए; अब बच्चे को अकेले घर में रहना जरूरी भी है, तो माता-पिता व्यवस्था करके जाते हैं। बेटा अकेला नहीं रह पाएगा तो क्या करेगा? तब किसी पड़ोसी के बच्चे से कह जाते हैं या पड़ोसी में किसी व्यक्ति से कह जाते हैं या कोई चाचा, ताई, ताऊ से कह जाते हैं कि वहाँ सो जाना, घर बड़ा है, अकेला बच्चा सो नहीं पाता है। अकेले में सो पाना भी मुश्किल है और खुले में सो पाना भी मुश्किल है।

विभिन्न प्रकार के व्यावहारिक भयों से संसार ग्रसित है

ये दोनों चीजें हमें अलग-अलग रूप से बता रही हैं कि हमारे अन्दर भय बहुत सारे रहते हैं। भयों की कोई कमी नहीं है और ये सभी भय व्यावहारिक भय हैं। कमरा होना चाहिए, हमारे साथ में भी कोई सोने वाला

होना चाहिए और उस सोते समय पर भी अगर कहीं उस कमरे में कोई छिपकली दिख गई तो बेटियाँ तो सो ही नहीं सकती हैं। सबसे ज्यादा डर बेटियों को लगता है तो किससे लगता है? छिपकली से। पूछ लो इनसे? साँप निकल जाए तो बहुत बड़ी बात होती है, ये तो छिपकली से डरती हैं। अगर वहाँ से कहीं साँप भी निकल कर चला गया हो तो उस स्थान पर सोने में भी आफत हो जाती है। एक बार हम राजस्थान में विहार में थे और एक school में हमें वहाँ रोक दिया गया और जहाँ रोका वहाँ पर शाम को जब लोग थोड़ी देर के लिए रुके। उन्होंने वहाँ पर जब तक वह तख्त-पाटा लगाया तो वहाँ पर एक साँप जो है उस कमरे के अन्दर मतलब उस दीवार और दरवाजे के बीच में छिपा हुआ था। वहाँ से किसी ने देख लिया कि वहाँ पर साँप है और वह साँप भागा। फिर लोगों ने उसको बाहर निकाल लिया और बाहर निकाल कर के उसे पकड़ भी लिया, दूर तक ले भी गए। अब वहीं पर अपने को रुकना है और कोई जगह तो है नहीं है। स्थान एक ही है, कमरा एक ही है। बाहर भी खुला हुआ पड़ा हुआ है, घास-फूस पड़ी हुई है, गाँव का स्थान है भैया! एक तो निकल गया, कहीं दूसरा हो तो? कहीं छुपा हो तो किसको पता है? रात में अंधेरा है, light है नहीं और रात्रि निकालनी है; ये जब स्थितियाँ बनती हैं तब समझ में आता है कि हमारे अन्दर भय है कि नहीं है। अब भाई! सो जाओ, जो होगा सो देखा जाएगा। कई बार ऐसा हो जाता है।

सतना विहार का प्रसंग

अभी तुम्हारे विहार में भी, सतना में आते-आते भी रास्ते में एक School मिला था। उस school में भी बाहर बैठे तब तक ठीक था, अचानक से बारिश होने लग गई। पानी आया, लोगों ने पाटा समेत अन्दर कर दिया। अब वहाँ पर एक गिरगिट था, थोड़ी देर बाद दिखाई दिया। किसी ने बताया कि बगल वाले कमरे में साँप है और वह था, वास्तव में था। एक बच्चा था वह पनागर का चन्दू तो वह देख कर के ऐसा डरा कि उसका bag इसी कमरे में पड़ा हुआ था, वह bag तक लेने नहीं जा रहा था। उसने लोगों को बुलाया जो और साथ में चल रहे थे। भाई! bag तो उठा ले। अब bag उठाने कौन जाए? बहुत बड़ा साँप है, बहुत मोटा साँप है, मैंने देखा है। अब जहाँ साँप है, वहाँ पर जाना और उस स्थान से किसी भी स्थान पर वह साँप पहुँच गया है, उस दरवाजे तक पहुँचना भी अपने आप में भय का कारण है। अब बगल में ही वह कमरा है, मान लो उस बगल में वह साँप नहीं मिला तो वह कहाँ आ जाएगा बगल से? चारों तरफ अंधेरा पड़ा है, Light है नहीं। school के वे कमरे न जाने कब से खुले नहीं होंगे? अनेक तरह की उसमें अलमारियाँ पड़ी हैं, कचड़ा पड़ा हुआ है और उसी में जहाँ पर पाटा लगा तो थोड़ा-सा वह गिरगिट देखने में आ गया और वह गिरगिट तो चली लोगों ने निकाल दिया। अब बाद में जब रात हो गई और उसमें सो गए तो सोते समय उसमें अनेक तरह की किट-किट-किट की आवाजें आ रही थी, खर-खर की आवाजें आ रही थी। अब क्या करें? अब आवाजें तो आ रही हैं, सामान उसके अन्दर पड़ा हुआ है, कुछ और भी हो सकता है और भी उसके अन्दर अनेक साँप, छिपकली सब कुछ हो सकते हैं लेकिन अब क्या है? चुपचाप पड़े रहो, छेड़ी नहीं। छेड़ने की कोशिश करोगे तो अभी पता नहीं क्या-क्या निकलेगा और रात खराब हो जाएगी। क्या करना है? णमोकार मंत्र पढ़ो, चुपचाप सो जाओ। आँख में नींद लग गई। थके हुए हो तो नींद लग जाएगी और लग गई नींद तो बस ठीक है। अब वह कट-कट, कट-कट, खर-खर, खर-खर होती रही और वह कुछ भी बाहर निकलते हुए सुबह तक दिखाई नहीं दिया लेकिन था जरूर वहाँ पर कुछ न कुछ।

मुनिराज के विश्राम-स्थल चयन में सावधानी रखें

आपको ऐसे में कभी नोंद आ सकती है? मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ! आप तो महाराज के लिए बस एक school खोल के चले गए, कमरा खुलवा दिया। महाराज के लिए व्यवस्था हो गई, आपने उसमें पाटा डलवा दिया, छोड़ कर चले गए। अब महाराज रात भर कुलबुलाते रहे। अब सुबह आओगे। महाराज! विहार के लिए कितने बजे आना है सुबह? सुबह पहुँचेंगे 6:30 बजे। ऐसी स्थितियाँ कई बार बनती हैं और इन स्थितियों में ही भय देखा जाता है, भय को जीता भी जाता है। चीजें देखते हुए भी, जानते हुए भी उन्हें ignore करना पड़ता है। नहीं तो आपके लिए कभी भी भीतर से चैन नहीं उत्पन्न हो सकता और इन्हीं प्रकार के भयों को जीतने का नाम अगुप्ति भय होता है।

अत्राण भय

हमारी रक्षा करने वाला कौन है? स्थान सुरक्षित नहीं है, इसका नाम है- अगुप्ति भय और जब यह अगुप्ति भय सामने आ जाता है, तो एक दूसरा भय जो होता है उसको कहा जाता है- **अत्राण भय**। वह होता है- मनुष्यों सम्बन्धी मतलब आपस के लोगों सम्बन्धी। अगुप्ति भय हो गया कि हम ऐसे स्थान पर नहीं सो सकते हैं, जो स्थान बिल्कुल खुला हुआ हो। हम वहाँ नहीं रह सकते हैं तो हमने कमरे बना लिए, कमरे के अन्दर कमरे बना लिए। अब कमरे बनने के बावजूद भी एक भय लगता है- अत्राण भय उसका नाम है। मतलब अब हमारे लिए यहाँ पर कोई अगर आपत्ति आ गई तो रक्षा करने वाला कोई व्यक्ति तो है नहीं है, हम अकेले हैं। उस बच्चे के लिए जो भय लगता है या बड़े के लिए उस बड़े घर में रह कर के अकेले भी जो भय लगता है, उसका नाम है- अत्राण भय।

यह सब व्यावहारिक शरण है

इन भयों को जीतना होता है और जो इन भयों को जीतता है, वही भीतर से वीर बनता चला जाता है। अत्राण भय और अगुप्ति भय, अब यह भय भी आपके सामने आए हैं तो यह भय भी व्यवहार से हैं। हम अपने लिए किसी भी तरह की रक्षा चाहते हैं, शरण चाहते हैं तो हमें ऐसा लगता है...जब हमारा अपना घर होगा, हमारे अपने लोग होंगे तो हमारी रक्षा हो जाएगी, होती भी है। लेकिन इतना सोचना मात्र ही हमारे लिए पर्याप्त नहीं होता है, उसके लिए यहाँ बताया जा रहा है। क्या यह वास्तव में आपके लिए शरण है? इन शरणों के साथ में भी रहते हुए आपके लिए कभी-कभी लगता है कि नहीं! मैं अभी भी सुरक्षित नहीं हूँ।

व्यावहारिक शरण वास्तविक शरण नहीं है

यह भी मेरे लिए शरण नहीं है, यह भीतर से स्वीकार करने का नाम है कि परमार्थ से हमारे लिए कोई भी शरण नहीं है। जो भी भाई, बन्धु, दीवारें, मकान, ये सब हमारे लिए शरण तो हैं लेकिन ये सब कैसे हैं? व्यवहार से हैं। व्यवहार का मतलब काम चलाने के लिए हैं, सामान्य से हैं लेकिन आत्मिक दृष्टि से देखा जाए तो ये हमारी आत्मा के लिए कोई शरण नहीं हैं। इन सबके रहते हुए भी, इन सबके बीच में स्थित होकर के भी हमारे लिए आपत्तियाँ आ जाती हैं और कोई भी हमें बचा नहीं पाता है। तब आपके लिए याद आता

है कि हमें अब कोई बचाने वाला नहीं है। इसलिए आचार्य कहते हैं- पहले से ही यह मान लो कि हमें वास्तव में कोई बचाने वाला नहीं है, हमारे लिए ये चीजें वास्तविक शरण नहीं हैं। घर है, मकान है, चारदीवारियाँ हैं, ताले हैं, दरवाजे हैं, सब कुछ है, बाहर guard भी खड़े हुए हो, सुरक्षा के सारे कवच आपके पास में हो तब भी आचार्य कहते हैं...ये सब कोई भी परमार्थ से हमारे लिए शरण नहीं हैं।

आत्मा को निर्भयता पारमार्थिक शरण से मिलती है

कितने ही नेता लोग इस तरह की सुरक्षाओं के बीच में घिरे हुए रहते हैं, हजारों-हजारों commando भी बने रहते हैं उनके साथ में लेकिन जब किसी व्यक्ति को कुछ करना होता है और उसे अपना निशाना साधना होता है, तो उन सबके बीच में भी वह अपना निशाना साध लेता है। इंदिरा गांधी का मरण ऐसे ही हुआ, राजीव गांधी का मरण ऐसे ही हुआ। आप देखते हो कि व्यक्ति किसी भी तरह की स्थिति में हो लेकिन उसके लिए ये सब सुरक्षाएँ शरण नहीं हैं। यह बताने का नाम ही है कि आपकी दृष्टि में यह सब शरण व्यवहार से होनी चाहिए। अरे भाई! ये सब कामचलाऊ बातें हैं। सुरक्षित स्थान नौद लेने के लिए जरूरी है लेकिन वास्तव में ये सब शरण, मेरी आत्मा के लिए शरण नहीं हैं। हो सकता है कि इनसे मेरी कुछ शरीर की रक्षा हो जाए लेकिन मेरी आत्मा के लिए ये कोई वास्तव में निर्भयता प्रदान करने वाली चीजें नहीं हैं, शरणभूत नहीं हैं।

व्यावहारिक दृष्टि से शरणभूत का अभाव

इस विचार में आपके लिए क्या दिक्कत आती है? जब हम कहें कि हमारे पास में हमारे घर के लोग हैं, हम सुरक्षित हैं। चलो ठीक है! कह लेना! किससे हैं? व्यवहार से हैं। एक दूसरी दृष्टि कौन सी है? परमार्थ की दृष्टि; वास्तविकता की दृष्टि जिसे बोलते हैं। उस वास्तविक दृष्टि से जब आप समझो तो आपके अन्दर एक समझ और पैदा हो जानी चाहिए कि वास्तव में कोई किसी की रक्षा करने वाला नहीं होता है। अगर रक्षा ही करने वाला होता तो हम उसी घर के फर्श पर क्यों फिसल कर के गिर जाते और हड्डी टूट जाती और हमें कोई बचाते हुए भी नहीं बचा पाता? सामने-सामने हम गिर पड़ते हैं, सामने-सामने लोग देखते रह जाते हैं और गिरने के बाद में हमारी हड्डी टूट जाती है, हम अपाहिज से bed पर पड़े रह जाते हैं; कौन बचा पाता है हमें? जब हमारे ही घर में किसी भी तरह का कोई उपद्रव हो जाए, कोई चोर आ जाए, डकैत आ जाए, अचानक से कोई भी हमारे सिर पर आकर के बन्दूक रख दे, तलवार लगा दे...आपको कौन बचाने आएगा? सामने कमरे में लोग देख भी रहे हो या लोगों को पता भी हो और सबकी जान पर जान लगी हुई हो तो आपको बचाने कौन आएगा? पहले कौन बचाएगा किसको? सोचो! अगर घर में इस तरह के कोई उपद्रवी लोग आ जाएँ और सबके लिए उसमें लग रहा हो कि जैसे ही हमने दरवाजा खोला, गोली हमारे ऊपर चल जाएगी और आपको लग रहा है कि कोई बच्चा है, जो आँगन के किसी कोने में है, उसे हमें बचाना है। उसको कौन बचाने निकलेगा? बताओ! इशारा भी करना आपके लिए मुश्किल हो जाएगा।

धर्म ही हमारा रक्षक है

संसार में किसकी कौन शरण होता है? ये आँखें खोलने के लिए ही ऋषियों-मुनियों के वचन हमारे सामने

आते हैं। उस समय पर कौन हमारी शरण होता है? आपका किया हुआ धर्म ही आपके लिए शरण होगा और कोई शरण नहीं होगी। धर्म है और उसके कारण से आप बच गए। किसी भी कारण से उपद्रवी लोग आए थे, देख करके चले गए, उन्हें कुछ मिला नहीं, आप दिखाई नहीं दिए। तब आपको समझ में आया;.. भगवान! बाल-बाल बच गए। किससे बच गए? हमारे लिए वास्तव में शरण कौन है? यह हमारे दिमाग में बैठता नहीं है। जब उपद्रव आते हैं, उन उपद्रवों से अगर हम बच गए तो हम थोड़ी देर के लिए कह लेते हैं... हाँ! भगवान्! हम बाल-बाल बच गए लेकिन हम कभी भीतर से महसूस नहीं करते कि वास्तव में धर्म ही हमारा रक्षक है, धर्म ही हमारे लिए शरण है। ये जितनी भी शरण हैं, ये सब परमार्थ से नहीं हैं; ये सब आपसी व्यवहार के कारण से एक दूसरे के लिए शरण लगती हैं। बच्चे के लिए बड़ा शरण है, तो बड़े के लिए भी बच्चा शरण है। बड़ा भी जब घर से बाहर निकलता है, तो बच्चे को साथ में लेकर के चलता है। इसलिए नहीं कि बच्चा अकेला है, उसके लिए भी बच्चे से शरण प्राप्त होती है क्योंकि एक से दो होंगे, चाहे वह बच्चा ही क्यों न हो तो भी उसके लिए वह सुरक्षा ही होती है। याद आता है मुझे, जब घर के बड़े लोग घर से बाहर bank से कोई पैसा निकालने जाते थे तो उस समय मैं छोटा था लेकिन मुझे लेकर के जाते थे...चल साथ में। वे तो बड़े हैं लेकिन मुझे क्यों लेकर के जा रहे हैं? जरूरी है, कुछ उपद्रव हो गया तो एक से दो होना जरूरी होता है। इसलिए कभी यह नहीं समझना चाहिए कि छोटा बड़े के लिए अपने आप को शरण समझता है, बड़े के लिए भी छोटा शरण होता है। यह महसूस करो आप और वे सारी शरण हमारे लिए कैसी हैं? व्यावहारिक हैं।

परमार्थ से, realistic point of view से अगर हम देखें तो धर्म ही हमारे लिए शरण है, आत्मा ही हमारे लिए शरण है। बाकी कोई भी ये भाई-बन्धु, माता-पिता हमारे शरण बनते नहीं हैं क्योंकि अगर यह शरण होते तो अनेक जन्मों में हम इस तरह से घूमते-घूमते, कभी भी इस तरह से बिना किसी रक्षा के मरण को प्राप्त नहीं होते लेकिन हमारा मरण हुआ और सारे बन्धु अपनी-अपनी जगह पर रह गए और वे बन्धु हमने इतने बना लिए कि अगर उनकी केवलज्ञान में संख्या देखी जाए तो केवलज्ञानी ही बता पायेंगे कि सारा लोक भर जाएगा। इतने जीव हमने माता-पिता और बन्धु बना लिए हैं, जो केवलज्ञान में दिखाई दे रहे हैं। हर एक जीव के माता-पिता और बन्धुओं की संख्या भी अनन्त हो चुकी है। पूरे लोक भर जायें इतनी संख्या हो चुकी है लेकिन हमें अपने एक माता-पिता और एक बन्धु से ही इतना लगाव हो जाता है कि उसके बिना हमें कोई दूसरी बात अच्छी लगती नहीं है। कहीं बच्चों को ऐसा तो नहीं लग रहा है कि ऐसे विचारों से कहीं माता-पिता से मेरा अलगाव हो जाएगा? अलगाव तो कुछ नहीं हो जाएगा लेकिन जो लगाव है, उस लगाव के रहते हुए आपके अन्दर यह विचार भी आ जाना चाहिए कि यह लगाव भी हमारा कामचलाऊ है, ऊपर-ऊपर का है। भीतर से तो हमारे लिए यह कोई भी लगाव हमारी आत्मा का शरण नहीं है। यह जब आपको ज्ञान आएगा तब आपके लिए यह महसूस होगा जो आगे वाली गाथा में बताया जा रहा है।

गाथा: 20

जीव की वेदना को दूर करने में कोई समर्थ नहीं है

जीवो वाहि-विलुत्तो, सफरो इव णिज्जले तडप्फडई।
सयलो वि जणो पिच्छइ, को सक्को वेअणाविगमे ॥20 ॥

अन्वयार्थ- (वाहि-विलुत्तो जीवो) व्याधि यानी शारीरिक रोग से, विलुप्त यानी विनष्ट, जीव (णिज्जले सफरो इव) निर्जल यानी जल से रहित, मछली, के समान (तडप्फडई) तड़फता रहता है 'और' (सयलो जणो) सकल, जन (वि) भी (पिच्छइ) देखते रहते हैं 'किन्तु उसको' (वेअणा-विगमे) वेदना से, बाहर निकालने में (को) कौन (सक्को) समर्थ है अर्थात् कोई नहीं है ॥20 ॥

व्याधि से पीड़ित जीव जल बिन मछली के समान

देखो! एक practical चीज बताई जा रही है, आगे की गाथा में, जो गाथा नम्बर 20 में लिखा है... 'जीवो वाहि विलुत्तो' जीव जब व्याधि से पीड़ित हो जाता है, विलुप्त हो जाता है तो सफरी बोलते हैं- मछली को, वह जैसे जल में रहती है, तो सुरक्षित रहती है लेकिन अगर निर्जल स्थान में हो तो वह क्या करती है? 'तडप्फडई' यह प्राकृत है। प्राकृत में हर वह क्रिया बन जाती है जो आप बोलते हो। आप क्या बोलते हो? मछली जल से बाहर जब आती है तो क्या करती है? तड़फती है... 'तडप्फडई' यह क्रिया संस्कृत में नहीं बनेगी। 'तडप्फडई' यह प्राकृत में बन जाती है। इसलिए प्राकृत की भाषा अपने आप में जो भी हम बोलते हैं, उन सब बोलने वाली क्रियाओं का उपयोग हमारी प्राकृत भाषा में होता था। इसलिए यह प्राकृत भाषा जैनों की अनादिकालीन मूल भाषा रही है और इन्हीं भाषाओं के माध्यम से पहले बोलचाल की सब क्रियाएँ होती थीं। 'तडप्फडई' तड़फ जाती है मछली।

रिश्तेदारों के द्वारा व्याधिग्रस्त को देखने आने का वास्तविक कारण

ठीक इसी तरह से अगर आपको कोई ऐसी व्याधि हो गई हो जो आप तड़फ रहे हो तो क्या होगा? वही होगा जो यहाँ लिखा हुआ है... 'सयलो वि जणो पिच्छइ' सब लोग आयेंगे और 'पिच्छइ' अर्थात् आपको देखेंगे। आपको क्या लगेगा? लोग हमें देखने आए हैं और लोग किसलिए आए हैं? वे यह देखने आए हैं कि आप कितना तड़फ रहे हैं। सभी लोग आयेंगे, एक भी नहीं बचेगा, दूर-दूर का भी रिश्तेदार होगा। बस! आप तड़फते रहो और जितना ज्यादा तड़फोगे और जितनी देर तक तड़फोगे, उतने ही वे लोग भी आ जायेंगे जो आपके नाना के, फूफा के, पापा के, ताऊ के, बच्चों के बच्चों के जितने भी रिश्तेदार थे, सब आ जायेंगे धीरे-धीरे करके क्योंकि उन्हें पता पड़ेगा, वे इतने दिन से तड़फ रहे हैं। उनके पास वह message बहुत देर

से पहुँचेगा, जो जितने दूर के रिश्तेदार होंगे तो वे सब भी धीरे-धीरे आपके पास आ जायेंगे, एक भी नहीं बचेगा। आपको देखने आए हैं, वे आपकी sympathy के कारण से, ऐसा? आपको लगता है...देखो! हमारे कितने लोगों की sympathy है कि लोग हमें देखने आते हैं लेकिन आपको पता है कि वे लोग क्या देखने आते हैं? आपकी स्थिति क्या है? आप कैसे पड़े हो? आप कैसे तड़फ रहे हो? आपको कैसे पीड़ा हो रही है? वह देखने आते हैं। उस देखने से उन्हें दुःख होता है या सुख होता है, वह तो उनकी मानसिकता के ऊपर है।

Cancer की असहनीय वेदना

लेकिन यहाँ आपको सिर्फ इतना समझना है... **‘को सक्को वेअणाविगमे’** उस वेदना के **‘विगम’** अर्थात् दूर करने के लिए कौन समर्थ है? **‘को सक्को’** कौन समर्थ हो पाता है? अभी कल ही किसी ने एक photo, mobile से दिखाया, आशीर्वाद दिलवाया। कहने लगा, महाराज! यह एक 18 साल की बच्ची है और इसको ऐसी जगह पर cancer हो गया है कि जहाँ पर doctor उसको operate भी नहीं कर सकते हैं और इसका cancer चार महीने पहले detect हुआ है। न वहाँ पर operation हो सकता है, न surgery हो सकती है। कुछ chemo आदि की प्रक्रिया चल रही है लेकिन अब doctor कह रहे हैं कि इसे अब बचाना मुश्किल है और यह fourth stage पर पहुँच चुका है। 18 साल की बच्ची है। अब क्या होगा? यही होगा जो यहाँ लिखा हुआ है। अब जब उसके अन्दर cancer की पीड़ा होगी, उसके शरीर में जब पानी बनेगा, उसे कुछ खाते हुए नहीं बनेगा, उसके शरीर में वह cancer का दर्द जब फूटेगा, वह जब तड़फेगी तो सब लोग देखेंगे। आप देखना! cancer पीड़ित जो patient होता है, वह अन्त समय में कितनी उसके लिए वेदना होती है और उस वेदना में कोई doctor किसी भी तरह की दवाइयाँ देकर के उसकी वेदना शान्त नहीं कर सकता है। बस! एक ही तरीका होता है कि उसे बेहोशी की गोलियाँ दे दी जाएँ, इसके अलावा और कोई तरीका नहीं होता है और बेहोशी होना, मार देना, वह एक ही बात है।

वेदना दूर करने में कौन समर्थ?

जब अपनी पीड़ाओं से जीव खुद गुजरता है, तो उसके लिए सामने घर के लोग उसे, हाथ-पैर वह पटकेगा, आप उसके हाथ-पैर को रोकेंगे। सिर वह पटकेगा, आप उसके सिर को रोकेंगे लेकिन उसके सिर को रोक कर के भी, उसके हाथ-पैर को रोक कर के भी आप उसके भीतर की वेदना को एक percent भी कम नहीं कर पायेंगे और उसकी वेदना उसे ही सहन करनी पड़ेगी और सारे लोग सामने खड़े होंगे लेकिन कोई भी उसकी वेदना को दूर करने में कुछ भी समर्थ दिखाई नहीं देगा। जब doctor भी समर्थ नहीं होता, कोई दवाइयाँ उस समय पर काम नहीं करती, कोई injection काम नहीं करते। उस जीव के लिए जो पीड़ा होती है वह असहनीय होती है। ऐसे एक नहीं, कई case देखे गए हैं। असहनीय पीड़ा से उसे गुजरना पड़ता है और उस समय पर यही गाथा याद आती है- **‘को सक्को वेअणाविगमे’** अब इस वेदना को दूर करने में कौन शक्य है? कौन समर्थ है? कौन हमारे सामने capable है जो इस वेदना को दूर कर सके? कोई नहीं दिखाई देता।

णमोकार मंत्र और ओं अर्ह नमः ही शरण

उस समय पर आपको यह आभास हो जाए कि वास्तव में न यह बड़ा महल हमारे लिए शरण है, न घर के दरवाजे हमारे लिए शरण हैं, न घर के बन्धु हमारे लिए शरण हैं, न माता-पिता हमारे लिए शरण हैं। अब हमारे लिए शरण कौन है? एक **णमोकार मंत्र** ही हमारे लिए शरण है। एक **ओं अर्ह नमः** का मुँह से निकलना ही हमारे लिए शरण है और कोई शरण नहीं है लेकिन यह भी निकल पाए, बहुत कठिन बात है। तड़फन हो रही हो, व्यक्ति पीड़ा को सहन नहीं कर पा रहा हो और आप उससे कहो, णमोकार बोल ले! ओं अर्ह बोल ले! उसकी मानसिकता नहीं बनेगी और वह कभी बोल भी नहीं पाएगा। अगर बोल ले तो थोड़ा-सी उसकी पीड़ा कम भी हो जाए लेकिन उसने अपने जीवन में कभी इस तरह का अभ्यास किया ही नहीं। उसके जीवन में कभी उसका यह attitude बना ही नहीं कि इनके अलावा भी कोई हमारे लिए शरण होता है, तो उसी attitude की कमी के कारण से, उसी interest की कमी के कारण से अन्त समय में उसे ओं अर्ह नमः बोलना अच्छा भी नहीं लगेगा और लाख कोशिश करने पर भी आप उससे बुलवा नहीं पाओगे।

व्याधिग्रस्त होने के पूर्व ही प्रभुनाम स्मरण के अभ्यासी बने

इसलिए जब आप समझदार होते हो, जब आपकी बुद्धि सही चलती है, उस समय पर यह हमें सोच लेना चाहिए, उसी समय पर हमें ज्ञान कर लेना चाहिए कि ये सब चीजें व्यवहार की हैं। वास्तव में तो मेरे लिए शरण क्या है? **‘णमो अरिहंताणं’ ‘ओं अर्ह नमः’** यही हमारे लिए अन्त में शरण रहेंगे और कोई शरण रहने वाला नहीं है। अब आप चाहो कि हम अन्त में सोच लेंगे, अन्त में सोचने से नहीं होगा। अन्त में आपको सोचने की फुर्सत नहीं मिलेगी। यह बुद्धि आपको अभी विकसित करनी पड़ेगी, इसी समय पर, इसी उम्र में, जिस उम्र में जहाँ पर जो बैठा है उसी उम्र में और जब यह होगा तभी आपके लिए अन्त समय में अगर कोई कहेगा कि **ओं अर्ह** बोल लो तो आप पहले बीसों बार अगर बोल चुके होंगे, आपके मन में पहले बीसों बार **ओं अर्ह नमः** गुनगुना करके आपने कभी बोला होगा तो आपको याद आ सकता है; हाँ! कभी हम सभा में बैठते थे महाराज के सामने और जब **ओं अर्ह नमः** बोलते थे, तो एकदम से कितना अच्छा लगने लग जाता था। अगर हम आज भी बोलने की कोशिश करें तो हो सकता है, आज भी अच्छा लगने लग जाए और एकदम से उसके दिमाग में अगर यह बिजली कौंध जाए, तो हो सकता है कि वह वहीं पर **‘ओं अर्ह, ओं अर्ह, ओं अर्ह बोल’** करने लग जाए।

ओं अर्ह के संस्कार अन्त समय में शान्ति प्रदान करते हैं

यह संस्कार है, एक जो आपको दिया जा रहा है। जीवन के अन्त में अब उस 18 साल की बच्ची के लिए जब doctors ने कह दिया है कि कोई अब इसके लिए chance नहीं है, कोई इसके लिए दवाइयाँ नहीं हैं, कुछ भी अब इसके लिए कुछ भी साधन नहीं हैं। बस! अब यह जितना जी जाए उतना इसकी उम्र के हिसाब से जियेगी, अब कुछ नहीं है। अब बताओ! उसके लिए क्या शरण रह गई है? क्या सिखाना है अब उसको? अब उसके लिए रोते बैठना है, उसको रुलाना है? घर के लोग रोयेंगे तो वह भी रोयेगी। 18 साल की बच्ची कितनी-सी होती है? घर के लोग रोयेंगे, वह भी रोयेगी और वह भी रोयेगी तो दुःखी होगी और

घर के लोग भी दुःखी होंगे। अब घर के लोगों में इतनी हिम्मत होनी चाहिए कि वे रोएँ न और उस बच्ची को कहें;...बेटा! वास्तव में अपने लिए इस संसार में ऐसे अनेक जन्म, अनेक दुःख मिले हैं, अपने लिए वास्तव में कोई शरण नहीं है। अपने को धर्म की शरण में जाना है। आँख बन्द करके अपने को **‘ओं अर्हं नमः, ओं अर्हं नमः, णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं’** करना है; इसी से शान्ति मिलेगी बेटा! और अब तुम्हारे लिए कोई काम नहीं बचा है। दुःखी मत हो! आगे का जीवन बहुत अच्छा होगा। ऐसे हमने कई जन्म जिये हैं बेटा! परेशान नहीं हो! सब दुःखों से मुक्ति मिलेगी। भगवान् अरिहन्त की शरण में चलो, भगवान् सिद्धों की शरण में चलो।

मोह, स्व-पर के लिए दुःख का कारण

इतनी हिम्मत किसी माता-पिता की हो सकती है? अगर नहीं होगी तो आप भी मोहित थे, उसको भी मोहित करेंगे। आप भी दुःखी थे, उसको भी दुःखी करेंगे। अन्ततः कुछ भी न आपका भला होगा, न उसका भला होगा। इसलिए ये गाथाएँ, अभी आपको लग रहा हो, हमारे कोई काम की नहीं हैं। मैं कहता हूँ...आज से तैयारी करेंगे तभी यह अपने काम की आगे बनेंगी और दूसरे के काम की भी आगे बनेंगी; आज से ही इन गाथाओं को समझना शुरू करेंगे तो हम दूसरे को भी तभी समझा सकते हैं जब हमारे अन्दर भी कोई इस तरह की समझ हो तो नहीं तो क्या समझाओगे? आगे की गाथा से समझते हैं...



गाथा: 21

पुत्र, स्त्री आदि सुख के हेतु नहीं, अपितु संसार बढ़ाने में हेतु हैं

मा जाणसि जीव! तुमं, पुत्तकलत्ताइं मज्झ सुहहेऊ।
णिउणं बंधणमेयं, संसारे संसरंताण ॥21॥

अन्वयार्थ- (जीव!) हे जीव! (तुमं) तुम (पुत्त-कलत्ताइं) पुत्र, स्त्री 'आदि' (मज्झ) मुझे (सुह-हेऊ) सुख के, हेतु हैं 'इस प्रकार' (मा) मत (जाणसि) जानो 'क्योंकि' (संसारे) संसार में (संसरंताण) संसरण यानी परिश्रमण करने वाले के लिए (एयं) यह 'पुत्र स्त्री आदि का समूह ही' (णिउणं) निपुण यानी मजबूत (बंधणं) बंधन 'रूप हेतु' है ॥21॥

संसारी जीवों के गाढ़े बन्धन की यथार्थता

यहाँ आचार्यों को कहना पड़ता है... 'मा जाणसि जीव! तुमं, पुत्तकलत्ताइं मज्झ सुहहेऊ' हे जीव! तुम यह मत जानो कि ये सब पुत्र हैं, 'कलत्र' हैं मतलब स्त्रियाँ हैं, ये हमारे लिए सुख के हेतु हैं। ये सब तुम्हारे लिए सुख के कारण नहीं हैं। 'णिउणं बंधणमेयं' ये सब तुम्हारे लिए निपुण बन्धन हैं यानी बहुत गाढ़े बन्धन हैं। 'संसारे संसरंताण' संसार में संसरण करने वाले जीवों के लिए ये सब बन्धन होते हैं। आप जब तक इन बन्धनों में बंधे रहेंगे, आप मोह बढ़ावेंगे। मोह बढ़ावेंगे तो संसार बढ़ावेंगे। हम अपने घरों में अपने परिवार के लोगों के साथ क्या करते हैं? सिर्फ मोह बढ़ाते हैं और मोह की वृद्धि होने के साथ ही हमारे भीतर से संसार की वृद्धि होती है और हम जीवन भर संसार की वृद्धि के काम करते हैं और अन्त में जब हम बिल्कुल असहाय हो जाते हैं, तब हमें कोई शरण नहीं, कोई सहायता देने वाला नहीं होता। लेकिन अगर उस समय पर भी हमें किसी ने ज्ञान नहीं दिया है, तो हम उसी मोह में मर जाते हैं और उसी मोह में मर कर के हम दूसरी गतियों में चले जाते हैं।

गति से गत्यान्तर होने की परम्परा से कैसे बचें?

एक बार भी अगर इस मोह को जीतने की उस मरण के समय पर स्थिति बन जाती है, तो वह मोह जीतने के कारण से ही हम गति से गत्यान्तर होने की उस परम्परा से अपने आप को बचा सकते हैं। आपसे अभी कहा जाए कि यह आपके लिए शरण नहीं है, यह आपके लिए सुख के हेतु नहीं हैं तो हो सकता है कि आपको बुरा लग जाए लेकिन आपको यहाँ पर आपका past भी दिखाया जा रहा है, आपको आपका future भी दिखाया जा रहा है। अब वर्तमान में अगर आप गाफिल हो तो आपका future भी फिर इसी तरह से गाफिल होकर के निकलेगा। भविष्य में यह सुख के हेतु आपके लिए नहीं बनेंगे, यह पहले से

आपको पता होना चाहिए और अगर सुख के हेतु हैं तो फिर वह कौन-सी दृष्टि से? उसी दृष्टि से, व्यवहार दृष्टि से। कौन-सी दृष्टि से सुख के हेतु हैं? सब बोलो! बोलते नहीं बन रहा, अन्दर से आवाज नहीं आ रही, मन नहीं कह रहा कि हम कुछ कहें ऐसा। कौन सी दृष्टि से? एक दूसरे से मिल गए, दाँत खिल गए, मुँह खिल गया, गले मिल गए। कौन-सी दृष्टि से ये सब हमारे लिए सुख के हेतु हैं? व्यवहार दृष्टि से।

व्यावहारिक और पारमार्थिक दृष्टिकोण को समझे

परमार्थ से तो अगर हम सुखी हैं, हमारे भीतर साता वेदनीय का उदय होगा तो हम सुखी होंगे तो ही हमें सुख मिलेगा अन्यथा दूसरों से गले मिलने से कोई सुख मिलने वाला नहीं है। यह विचार नहीं आ सकता? एक जो काम अनादिकाल से करते ही आए हैं, इसके साथ अगर हम दूसरी दृष्टि के साथ में चलना शुरू करें तो हमें क्या हानि पड़ रही है? सिर्फ आपको ज्ञान ही तो दिया जा रहा है। बस! आपके अन्दर एक विचार डालना है कि परमार्थ की दृष्टि से यह कोई हमारे सुख के कारण नहीं है। परमार्थ अर्थात् वास्तविक दृष्टि से और हमने इस व्यवहार को ही वास्तविक मान लिया है। बस! यही हमारा सबसे बड़ा मोह कहलाता है। विपरीत बुद्धि इसी का नाम है।

धारणा बदलने से सम्यग्दर्शन का उदय होगा

व्यवहार को व्यवहार की तरह मानो और परमार्थ को परमार्थ की तरह मानो तो आपके अन्दर सम्यग्दर्शन का उदय हो जाएगा और जब तक आप व्यवहार को ही परमार्थ मानते रहोगे, आप कभी भी सम्यग्दृष्टि नहीं बन पाओगे और सम्यग्दृष्टि नहीं बन पाए इसी कारण से राजा श्रेणिक। सुन लो! अनेक जन्म-जन्मान्तरों में हमने भगवान की देशना सुनी, मुनियों की देशना सुनी लेकिन अपनी धारणा नहीं बदली। क्या नहीं बदला? धारणा नहीं बदली। अपने अन्दर, अपने भीतर, अपने विचारों में कोई भी अपने ज्ञान में हम परिवर्तन नहीं लाए। व्यवहार को व्यवहार की तरह देखो। तुम्हारी त्रिशला, तुम्हारे घर के लोग, जितने भी हैं ये सब क्या हैं? पत्नी भी है, तो व्यवहार से है, परमार्थ से तो कोई हमारी पत्नी हो सकती है क्या? आपको डर लग रहा होगा महाराज! आप क्या बोल रहे हो? परमार्थ से यानी अब आप कहो वास्तव में। वास्तव में वह क्या कोई हमारी पत्नी हो सकती है? नहीं समझ में आया? अब यह वास्तव शब्द भी छोटा पड़ जाएगा। अब जो वास्तव का मतलब वही वास्तव जानता है, जो आपस में व्यवहार में चलता है। यह वास्तव वह वास्तव नहीं है, उससे इसका वास्ता नहीं है। यह वास्तव शब्द अलग है और इस वास्तव शब्द का ज्ञान आपको तभी होगा जब आप आत्मा की ओर दृष्टि रखने वाले होंगे, आत्मा के बारे में विश्वास करने वाले होंगे।

पारमार्थिक दृष्टि को कैसे प्राप्त करें?

परमार्थ की दृष्टि से यानी वास्तविक दृष्टि से देखा जाए तो कोई हमारी पत्नी नहीं, कोई हमारा बेटा नहीं, कोई हमारी बेटा नहीं और ये जितने भी बेटा-बेटा हैं, सब किससे हैं? बोलो तो! डर लग रहा है सबको बोलने में। बेटों को भी लग रहा है, बेटों के पिता भी बैठे हैं उनको भी लग रहा है। हमारी पत्नी व्यवहार से है, पत्नी परमार्थ से कभी पत्नी नहीं हो सकती। हमारे पति व्यवहार से पति हैं, परमार्थ से मेरा कोई पति नहीं है। मेरी

आत्मा ही मेरा पति है, मैं अपनी आत्मा का खुद स्वामी हूँ।

अज्ञान ही संसार में संसरण का कारण

तुम्हारे जेहन में यह ज्ञान कब घुसेगा? क्यों हम अपने अन्दर इतने blockage डाले हुए हैं कि हम इतना ज्ञान देने के बावजूद भी आप उसको प्रवेश नहीं करने देते हैं? जब तक यह ज्ञान प्रवेश नहीं करेगा तब तक आप संसार में **‘संसरंताण’** संसरण करते रहेंगे। आप जीवों की कोई भी रक्षा करने वाला नहीं होगा। इसलिए यह जान लो, व्यवहार से हमारे लिए ये सब भाई-बन्धु शरण हैं लेकिन परमार्थ से तो मेरे लिए केवल धर्म ही शरण है, गुरु ही शरण हैं और णमोकार जैसे महामंत्र ही हमारे लिए शरण हैं। **‘ओं अहं’** जैसे मंत्र ही हमारे लिए शरण हैं और कोई भी शरण नहीं है।

राजा श्रेणिक को पाप कृत्य का बोध

यह जब आपके जेहन में बैठेगा तब आपको लगेगा कि वास्तव में राजा श्रेणिक बनने के बाद भी वह राजा श्रेणिक मुनि महाराज के समक्ष बैठा-बैठा रो रहा है आज तक। बहुत दिन हो गए न? आपको याद नहीं आई राजा श्रेणिक की? देखो! इतना रो रहा है कि ऊपर से आकाश भी रोने लग गया है, आसमान भी रोने लग गया। आवाज आने लगी। इतना उसने पश्चाताप किया, यशोधर मुनि महाराज के समक्ष बैठ कर के इतना रोया, भगवन्! मैंने इतना बड़ा अनर्थ कर लिया। अब यह पाप का बन्ध हो गया, अब यह कैसे मैं इस पाप के बन्ध से अपनी आत्मा को बचा पाऊँगा? इसका फल भोगने के लिए मैं नरक में जाऊँगा, उस नरक से मैं अपने आप को कैसे बचा पाऊँगा? वास्तव में उसके लिए उस समय पर नरक आयु का बन्ध हो गया। उसे महसूस होने लगा कि मैंने बहुत बड़ा दुष्कृत्य कर लिया जो इतने बड़े तपस्वी मुनि महाराज के ऊपर हमने इतना बड़ा उपद्रव किया, उपसर्ग किया लेकिन मुनि महाराज उसके प्रति बिल्कुल positive हैं।



रानी चेलना द्वारा श्रेणिक को समझाना

अब उसको समझा रहे हैं कि बेटा! कोई बात नहीं, जो हो गया वह तो हो गया। तुम्हारी आत्महत्या करने से तुम्हारा पाप तुमसे नहीं छूट जाएगा, एक बड़ा पाप और तुम्हारे सिर चढ़ जाएगा तो यह तो कभी सोचना ही नहीं। अब क्या करें? उस पाप को काटने के लिए अपनी बुद्धि को ठीक रखो और जब यह भाव उसके सामने आ गया तो वह रानी चेलना उसके समक्ष बैठी है और वह श्रेणिक भी बैठा है और वह कह रहा है रानी चेलना से कि इन मुनि महाराज के लिए कितना ज्ञान है कि इन्होंने मेरे मन के भावों को जान लिया। रानी चेलना कहती है कि यह तो तुम्हारे अभी के भाव जान रहे हैं। इन्हें तो इतना ज्ञान है, ये अवधिज्ञान के धारी मुनि महाराज हैं। अगर तुम इनसे अपने पूर्व भव भी पूछ लोगे तो यह वह भी बता देंगे। यह रानी चेलना को पता है कि मुनि महाराज के लिए अवधिज्ञान है और वह जानती है क्योंकि वह पढ़ी-लिखी है, उसने पहले शिविर attend किए हैं तो उसे पता है। ज्ञान कौन-कौन से होते हैं? मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान; तो उसे पता है, राजा श्रेणिक को कुछ पता नहीं है, तो वह कहती है कि अगर तुम्हें

और अपने अन्दर विश्वास बढ़ाना हो, श्रद्धा बढ़ाना हो तो महाराज से निवेदन कर लो कि मेरे पूर्व भव बता दें। अभी बता देंगे सब, उन्हें सब दिखाई दे रहा है उनके दिव्यज्ञान में कि तुम कहाँ से आए थे? क्या करके आए थे?

श्रेणिक की अपने पूर्व भव के बारे में जिज्ञासा

राजा श्रेणिक ने पूछ लिया...महाराज! पूर्वभव में मैं क्या था? मैं यहाँ पर आकर के राजा कैसे बन गया? मेरे परिणाम ऐसे दुष्ट परिणाम क्यों हो गए? मेरे अन्दर मुनि महाराज के प्रति द्वेष का भाव क्यों उत्पन्न हो गया? उन अवधिज्ञानी यशोधर मुनि महाराज ने उस राजा श्रेणिक के प्रश्न पूछने पर उसे उसके पूर्वभव के बारे में बताना शुरू कर दिया। अब शुरू तो अभी नहीं कर सकते न! लेकिन शुरू हो गई है यह बात। अगर बात आज शुरू हो गई है तो कभी न कभी शुरू हो ही जाएगी, शुरूआत तो करो एक बार। किसकी? राजा श्रेणिक के पूर्व भव की कहानी सुनने की?

हमारे सम्बन्ध व्यावहारिक हैं, वे वास्तविक शरण नहीं

व्यवहार से यह मेरा बेटा है, इसकी शुरुआत करो; कहानियाँ तो चलती रहेंगी। एक शुरुआत अगर आपके अन्दर होगी तो बात आगे अपने आप बढ़ती चली जाएगी। जो भी अपने बन्धु हैं, माता-पिता हैं, रिश्तेदार हैं, उन सबको देख कर के क्या सुनना? क्या समझना? ये सब हमारे व्यवहार से हैं, आत्मा का वास्तव में कोई रिश्तेदार नहीं होता। पत्नी आत्मा की होती है कि शरीर की होती है? शरीर की होती है। शरीर है, सो व्यवहार है। सब रिश्ते व्यवहार से चलते हैं। वास्तव में परमार्थ से हमारी आत्मा का न कोई मित्र है, न कोई बन्धु है, न कोई माता है, न पुत्र है, न स्त्री है। इस बात की शुरुआत अगर हो जाएगी तो आगे राजा श्रेणिक की कहानी भी आपको बहुत अच्छे ढंग से समझ में आ जाएगी। शुरुआत तो हो ही गई कहानी की। पूर्व भव में राजा श्रेणिक की क्या दशा थी? वे क्या थे? इस बात की भी जानकारी आपको मिल जाएगी क्योंकि बात शुरु होनी चाहिए सिर्फ और राजा श्रेणिक ने यशोधर मुनि महाराज के पास अपनी बात शुरु कर दी है। अब अन्त समय में यह बात शुरु नहीं की जा सकती है इसलिए आपको आज यह शुरुआत कर लेनी है कि जितने भी हमारे सम्बन्ध हैं, ये सब हमारे लिए वास्तविक शरण नहीं हैं। दिमाग में पहुँच रहा है कि नहीं? बीस गाथाएँ हो गई हैं। थोड़ा-थोड़ा दिमाग में पहुँच जाना चाहिए और इस तरह से जब हम इस वैराग्य की बातों को थोड़ा-थोड़ा समझेंगे तो कुछ न कुछ तो इस आत्मा के अन्दर दीपावली तक घुस ही जाएगा। ऐसी भावना करते हैं, भगवान से प्रार्थना करते हैं।



गाथा: 22

संसार में संबंधों की अनित्यता का दर्शन

जणणी जायइ जाया, जाया माया पिया य पुत्तो य।

अणवत्था संसारे, कम्मवसा सव्वजीवाणं ॥22॥

अन्वयार्थ- (संसारे) संसार में (कम्म-वसा) कर्मों के, वश से (सव्व-जीवाणं) सभी, जीवों की 'ऐसी' (अणवत्था) अनवस्था अर्थात् अव्यवस्था (जायइ) होती है 'कि भवान्तर में' (जणणी) माता (जाया) पत्नी (जायइ) हो जाती है (य) और (जाया) पत्नी (माया) माता 'हो जाती है' (य) तथा (पिया) पिता (पुत्तो) पुत्र (जायइ) हो जाता है (य) और 'पुत्र पिता हो जाता है' ॥22॥

जिस वैराग्य शतक की गाथाओं का हम प्रतिदिन यहाँ पर वाचन सुन रहे हैं, उन्हीं में से एक गाथा आगे बढ़ते हैं...गाथा number 22

जणणी जायइ जाया, जाया माया पिया य पुत्तो य।

अणवत्था संसारे, कम्मवसा सव्वजीवाणं ॥22॥

कर्माधीन जीव की दशाएँ

आचार्य कहते हैं... 'जणणी जायइ जाया' इस संसार को थोड़ा सा देखने की कोशिश करें। जिस संसार में हम रहते हैं और इस संसार के अन्दर सभी जीवों के लिए जो दशा बन रही है, वह दशा 'कम्मवसा' कर्म के वशीभूत होकर के बन रही है। संसार के सभी जीव अगर किसी के वशीभूत हैं और किसी के पराधीन हैं तो वह सबसे बड़ी चीज है- कर्म। उन कर्मों के वशीभूत होकर के ही यह संसार में अनेक तरह की दशाएँ आपको दिखाई देती हैं, जो यहाँ बताई जा रही हैं और यह दशाएँ सब शुरू होती हैं, इस गाथा के प्रारम्भिक अक्षर को अगर हम देखें तो लिखा है... 'जणणी जायइ जाया'



संसार की अनित्यता

'जननी' अर्थात् होता है- माँ और 'जाया' अर्थात् होता है- स्त्री। इस संसार की दशा को देखो, जहाँ पर कोई भी दशाएँ कभी भी स्थित नहीं रहती हैं, सभी दशाएँ अनवस्थित रहती हैं। 'अणवत्था संसारे' इस संसार में कोई भी अवस्था एक जैसी बनी नहीं रहती है, हर अवस्था बदलती रहती है...इसी का नाम

अनवस्था कहलाता है। संसार की यह एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें किसी भी प्रकार की अवस्था में, कोई भी व्यक्ति बहुत लंबे समय तक टिक नहीं सकता। आयु के अनुसार यह अवस्थाएँ बनती हैं और इन अवस्थाओं में जो बालपन है, यौवन है और वृद्धावस्था है...यह अवस्थाएँ, तीन अवस्थाएँ जरूर आती ही आती हैं और इन तीनों अवस्थाओं का भी अगर थोड़ा सा टिकाव दिखाई देता है, तो वहाँ दिखाई देता है जहाँ पर आयु अधिक दिखाई देती हो। आप सोचे भगवान ऋषभदेव की आयु 84 लाख पूर्व की थी। इतनी दीर्घ आयु में ही अगर हम इन अवस्थाओं को देखेंगे तो यह अवस्थाएँ हमें कुछ एक जैसी दिखाई दे सकती हैं। यद्यपि तीर्थकरों के लिए यह नियम है कि उन्हें कभी भी बुढ़ापा नहीं आता। उनकी अवस्थाओं में परिवर्तन यौवन होने के बाद में, युवावस्था होने के बाद में, ज्यादा नहीं होता। लेकिन सामान्य संसारी जीव की बात कहें तो वह अवस्था कभी भी एक जैसी उसकी टिकती नहीं है और हमेशा उसकी अनवस्था बनी रहती है। दशा एक जैसी कभी बनती नहीं है और यह जो दशाएँ बदलती रहती हैं, हम इन दशाओं को भी देख कर के, इस बारे में नहीं सोचते हैं कि यह दशाएँ बदल रही हैं, यह दशाएँ बदलते बदलते क्या सन्देश दे रही हैं इस बारे में हमारा विचार नहीं होता है।

जीवन एक रंगमंच

हम तो इन बदलती हुई दशाओं को भी एक बहुत अच्छे मनोरंजन के रूप में ले लेते हैं और इन बदलती हुई दशाओं को भी, हम एक आनन्द के रूप में लेकर के इनका भी हम एक नाटकीय ढंग से आयोजन करके, हम इस नाटक में भी आनन्दित होने लग जाते हैं। वस्तुतः देखा जाए तो ये नाटक क्या होते हैं? यह दशाओं के परिवर्तन का एक show होता है। जिसमें दशाएँ परिवर्तित होते हुए इतनी जल्दी दिखाई जाएँ कि वह एक नाटक भी बन सकता है, वह एक serial भी बन सकता है, वह एक film भी बन सकती है। आपने देखा होगा film में कई बार दिखाया जाता है...एक बच्चा दौड़ते, दौड़ते, दौड़ते, दौड़ते बहुत बड़ा बन गया। यह film में भी इसी तरीके के दशाएँ दिखाई जाती हैं कि कोई भी अवस्था स्थित नहीं है लेकिन अगर कोई बच्चा दौड़ने लग जाए उस film को देख कर के तो कभी भी वह बच्चा दौड़ते, दौड़ते, दौड़ते, दौड़ते ऐसे बड़ा नहीं हो सकता जैसे film में दौड़ते, दौड़ते, दौड़ते, दौड़ते एक minute के अन्दर बड़ा दिखा दिया जाता है। यह film का भी एक रूप जो हमारे सामने आता है वह तभी आता है जब हम दशाओं के परिवर्तन को एक साथ compose करने की कोशिश करते हैं। दशाएँ बिगड़ रही हैं, दशाएँ बदल रही हैं और उन दशाओं में हम अगर, फिर भी मनोरंजन अपने सामने ले आते हैं और यह ज्ञान भूल जाते हैं तो आचार्य कहते हैं... तुम इस संसार के नाटक में हमेशा पड़े रह जाओगे। वैसे तो देखा जाए संसार ही एक नाटक है।

संसार के नाटक में रिश्तों की बदलती परिभाषा

अब उस संसार के नाटक में भी लोग और ज्यादा नाटक देखते रहते हैं और वह नाटक जो संसार का नाटक है, वह हमें आचार्य परमेष्ठी दिखा रहे हैं, हम उसको देखना नहीं चाहते हैं। हर कोई अपना-अपना नाटक दिखाना चाहता है। यहाँ भी एक नाटक ही दिखाया जा रहा है। देखो! एक line के अन्दर यह कितना बड़ा game है? जननी-जाया हो जाती है और जाया-माया हो जाती है, शब्दों में भी नाटक है, अर्थ में भी नाटक है और भाव में भी नाटक है। जननी, स्त्री बन जाती है और स्त्री, जननी बन जाती है। जननी, जाया बन जाती

है और जाया, माया बन जाती है। जाया और माया का खेल है दुनिया में और कुछ नहीं है। जाया अर्थात् वह स्त्री जिसके साथ में हम रहने लग जाते हैं, वह जाया हो जाती है और जो हमें जन्म देती है, वह माया हो जाती है। यह प्राकृत की भाषा के अनुसार कहा जा रहा है। वह जाया और माया का ही बस! यह खेल है और जहाँ पर जाया होगी, माया होगी, वहाँ पर माया के साथ में पिया भी होगा। पिया किसको बोलते हैं? आप लोगों के sense में पिया कुछ और कहलाते हैं। मोरे पिया? यहाँ प्राकृत में पिया जो कहा जा रहा है, वह पिता को पिउ कहा जाता है। प्राकृत में पिउ किसको बोलते हैं? पिता को। पिया! **पितृ** शब्द से **ता** का **या** होकर के **पिय** बनता है और उसी का पिया बन जाता है। अतः माया और पिया इन दोनों का एक खेल चलता है और उस खेल में एक सुत का जन्म हो जाता है और फिर उस सुत के साथ में फिर वह जाया आ जाती है और फिर जाया के साथ में फिर वह एक सुत का जन्म हो जाता है और फिर वह जो सुत था, वह पिया बन जाता है और वह जाया थी, वह माया बन जाती है और फिर वह सुत का भी एक सुत हो जाता है। इस तरह का यह खेल निरन्तर चलता रहता है।

पराधीनता के परवश— नाटक का असली सूत्रधार कौन?

ऐसा लगता है आप लोगों को हमारा नाटक अच्छा नहीं लगता। हम जो आपको नाटक यहाँ दिखाते हैं, वह नाटक आपको अच्छा नहीं लगता। यह देखो कितने अच्छे नाटक हैं? यह क्या नाटक नहीं है? नाटक का मतलब क्या होता है? जहाँ एक पात्र अपना रूप बहुत जल्दी-जल्दी बदल लेता है। कभी किसी रूप में आ जाता है, कभी किसी रूप में आ जाता है और ऐसे ही संसार को एक नाटक का रूप कहा गया है। आचार्यों ने कहा है...इस संसार में हर व्यक्ति इस कर्म के पराधीन होकर के नाटक कर रहा है। हर व्यक्ति के अन्दर एक पराधीनता का भाव छुपा हुआ है और उसी पराधीनता के कारण से वह कुछ न कुछ एक नई शक्ल ले लेता है। कभी उस शक्ल के साथ में थोड़ी सी उसको अक्ल भी आ जाती है लेकिन सबसे बड़ी अक्ल वह मानी जाती है...जो इस नाटक के भीतर की बात को समझ ले कि नाटक कौन रहा है और यह नाटक कहाँ से चल रहा है? ज्यादातर लोग क्या करते हैं? नाटक का बाहरी रूप देखते हैं। लेकिन भीतर उसका सूत्रधार कौन है? भीतर उसे कौन कर रहा है, कौन करवा रहा है? यह असली बात अगर पता पड़ जाए तो आपके लिए यह नाटक बिल्कुल नीरस लगने लग जाए। कौन सा नाटक? जो संसार का नाटक है, यह हमें बिल्कुल नीरस लगने लग जाए। लेकिन हमें संसार के नाटक में रस आता है। वह रस इसलिए आता है कि हम उसके पीछे जो कारण हैं, उस कारण को नहीं पकड़ते हैं और कारण हमें यहाँ बताया जा रहा है, हम सब एक नाटक कर रहे हैं। आज हम किसी रूप में हैं, कल हम किसी रूप में थे, आगे हम किसी रूप में होंगे, यह सब हमारे लोगों के क्या हैं? नाटक हैं।

संसार— एक निरन्तर नाटक

हर व्यक्ति दिन भर में दस बार, तीन बार तो कम से कम dress बदलता ही है। अगर हर व्यक्ति देखें अपने आप को तो दिन में तीन बार तो हर आदमी नाटक कर ही लेता है। जो लोग मन्दिर में आ जाते हैं, पूजा के वस्त्र पहन लेते हैं तो उनके लिए एक आध नाटक और बढ़ जाते हैं। सुबह के dress अलग थी, बाद में जब आप नहा-धो कर के तैयार हुए तब dress अलग थी। फिर जब मन्दिर में आ गए dress अलग हो गई,

फिर एक dress अब जब महाराज का पड़गाहन करोगे तब एक dress फिर बदल जाएगी और फिर उसके बाद में जब दुकान पर बैठोगे तब की dress अलग होगी और कहीं night में कोई party हो गई तो फिर उसकी dress अलग होगी। जितनी dresses बदलोगे, उतने ही नाटक होंगे। जो dress बदलते हैं उनके तो नाटक अच्छे लगते हैं और जिन्होंने एक बार अपनी dress को हमेशा के लिए उतार दिया, अब उनके लिए क्या नाटक?

दिगम्बर मुनि की दृष्टि-विशेषता

अब कोई भी जिनके ऊपर न dress है, न जिनका कोई address है, फिर भी लोग उस address को भी ध्यान दिलाते रहते हैं, बोलते रहते हैं और वही उनकी भक्ति बन जाती है, वही उनकी पूजा बन जाती है। अब आपकी यह पूजा, आपकी यह भक्ति, आपके लिए तो हो सकता है कि कुछ पुण्य फल देने वाली हो लेकिन इस नाटक में अगर जिन्होंने अपनी dress उतार दी है, अब जिनका कोई dress नहीं, जिनका कोई address नहीं, अब उनको उस नाटक में शामिल करो तो मुझे समझ नहीं आता है कि नाटक में छोड़ने के बाद में, फिर नाटक देखना और किसका नाटक देखना? किसका नाटक देखूँ? तुम्हारा नाटक देखूँ कि अपना नाटक देखूँ? कि हमें गुरु जी ने एक नाटक और दिखा दिया है कि वह नाटक देखूँ? जो हमें गुरु जी यहाँ दिखा रहे हैं।

जैन धर्म के महान ग्रन्थ नाटक समयसार कलश

इसी नाटक को देखते, देखते, देखते, देखते जब अपनी आत्मा की याद आने लग जाती है, तो उसी को आचार्य कहते हैं...**नाटक समयसार कलश**। क्या बोलते हैं? अपनी आत्मा के अन्दर भी अनेक तरह के विकारी भावों को दूर करते हुए, अपनी आत्मा में लीन होने के लिए भी, जो पुरुषार्थ किया जाता है, उसमें भी एक नाटक होने लग जाता है और उस नाटक को नाटक समयसार कहा जाता है। **समयसार** अर्थात् अपनी शुद्ध आत्मा का अगर हम अनुभव करना चाहते हैं तो हमें इस दुनिया को एक नाटक की तरह देख कर के और अपने भीतर उत्पन्न होने वाले भावों पर भी विश्वास नहीं करके, उन भावों को भी छोड़ते हुए, केवल अपने चैतन्य के भाव पर ध्यान देते हुए जब हम टिकेंगे तो हम एक **समयसार** में आएँगे, उसका नाम होता है- **नाटक समयसार**। उस नाटक को अगर हम उपलब्ध हो गए तो यह संसार का नाटक छूट जाएगा।

जाया, माया, पिया- रिश्तों में भटकती आत्मा की दशा

यह जाया-माया का जो नाटक है, यह चलता ही रहता है। एक सौभाग्य मिला इस जीव को, वह अपने आप मिला या बहुत बड़े पुण्य के फल से मिला, यह तो अब हम केवली भगवान से जाकर के पूछेंगे। लेकिन एक सौभाग्य मिला है कि इस नाटक को हम थोड़ा सा तोड़ पाएँ, जो यह नाटक चल रहा था और इस नाटक से बच पाएँ। कि जो जाया है, वह माया बन जाती है, वही माया फिर जाया बन जाती है, फिर वही जाया, फिर माया बन जाती है। कोई यहाँ पर न जाया, जाया के रूप में स्थित रहती है, न माया, माया के रूप में स्थित रहती है। समझ रहे हो जाया और माया? यह कितना अच्छा नाटक दिखाया जा रहा है और उस जाया-माया

के बीच में पिया और आ जाता है, तो फिर एक सुया और एक सुई, सुया जानते हो? सुता को ही सुया बोलते हैं तो वह एक सुया और उत्पन्न हो जाता है, जैसे आप कभी किसी बच्चों के लिए कहते हैं न सुया। हाँ! सुया जैसा तो वह सुवा भी जो है प्राकृत का ही नाम है, सुवा यानी वह बेटा, बेटा जो उत्पन्न हो जाते हैं, वह सुवा कहलाते हैं। बस! यह नाटक चलता रहता है। जाया, माया, पिया और सुवा का, कभी भी संयोग किसी भी रूप में, किसी के साथ बन जाता है और हर जन्म में नई-नई dress पहन ली जाती हैं, नया-नया भेष धारण हो जाता है और एक नया-नया रूप हमारे सामने आ जाता है। हम इसको समझने की कोशिश करें। आचार्य कहते हैं...हमारे जितने भी रूप यह बदल रहे हैं, यह सब बदलेंगे। हम कर्म के पराधीन हैं, हम अपनी जिन्दगी में अगर इस तरीके के रूप बदलते हुए भी अपने स्वरूप को कभी नहीं ध्यान में लाएँगे, अपने स्वरूप की कभी पहचान नहीं करेंगे तो हम इस जिन्दगी के नाटक में फिर खो जाएँगे। इस संसार के नाटक में हम फिर खो जाएँगे।

बाहरी रूप सजावट संसार का ही कारण

आप लोगों को यह सब देख कर के यह समझना चाहिए कि जिन्दगी में हमारे सामने अनेक चीजें ऐसी आती हैं, जब हम अपने जीवन में कुछ ऐसा भी विचार ला सकते हैं कि हम इस संसार को एक नाटक की तरह देखें और हम यह मन में भाव लाएँ कि संसार में हर जीव कोई न कोई नाटक कर ही रहा है। हमें किसी भी नाटक में कोई रस नहीं लेना है। हमें तो केवल अपने भावों का जो नाटक चल रहा है, उसमें रस लेना है। कि हम क्या कर रहे हैं? अगर आपको ऐसा करने आ जाएगा तो आपको जिन्दगी बहुत अच्छे ढंग से, सजा करके जीना आ जाएगा। जिन्दगी को सजाना जानते हो? चेहरे को सजाना तो सब जानते हैं। कोई भी party हो, फिर देखो कैसा makeup करके आते हैं? अलग से, लोगों को बुला करके या उनको उसी स्थान पर पहुँच कर के रूप बदल दिए जाते हैं। Makeup करने के लिए, जब व्यक्ति को लगता है कि अगर makeup से भी काम नहीं हो रहा है, तो आजकल लोग plastic surgery भी करवाने लगे हैं। भाई! चेहरा बिल्कुल बदल दो। जो हमारे लिए कोई ideal है, बस उस जैसा हमारा चेहरा चाहिए। आपके ideal कौन है? दुनिया के जितने filmy hero और heroine हैं वही आपके ideal है। कोई ने plastic surgery अगर कभी करवाई तो आचार्य गुरुदेव के चेहरे जैसी करवाई कभी plastic surgery? कोई नहीं करवाएगा।

एक आत्मा का सजना हो सकता है, दूसरी आत्मा की सजा

हर आदमी के लिए कोई न कोई रूप बदलने का भाव बना रहता है, अपने चेहरे को सजाने का भाव बना रहता है, शरीर को सजाने का भाव बना रहता है लेकिन आचार्य कहते हैं...अपनी आत्मा को सजाओ, अपनी जिन्दगी को सजाओ। जिन्दगी को अगर सजाओगे तो सजाना शब्द का एक और अर्थ होता है-सजा! आपको किसी न किसी को देनी पड़ेगी। क्या सुन रहे हो? सजा! एक और सजा होती है। एक सजा decorate होना कहलाती है और एक सजा जिसमें punishment मिलता है, उसको सजा कहते हैं। एक जिन्दगी को सजाने के लिए अगर आपको अपनी जिन्दगी सजानी है तो किसी न किसी को सजा देनी पड़ेगी। आपको अगर अपना जीवन सजाना है तो उसकी सजा किसी न किसी को भोगनी पड़ेगी। मान लो

कोई बेटा है...हमभगवान महावीर स्वामी की बात करें, जब उन्होंने अपना जीवन सजाने की सोची तो उन्होंने अपने माँ को छोड़ा, पिता को छोड़ा और पिता को उससे दुःख हुआ, माँ को दुःख हुआ। हम कह सकते हैं आखिर उन्होंने माता-पिता को एक तरीके की सजा दे दी। सजा में व्यक्ति को क्या होता है? दुःख होता है न? माता-पिता को एक सजा मिल गई लेकिन वह माता-पिता की सजा के बिना कभी भी भगवान महावीर स्वामी का जीवन सज नहीं सकता था। उन्होंने अपना जीवन सजाने के लिए किसी को सजा देनी भी पड़ी तो दे दी। अब आप समझो! जब आप भी किसी जीवन को सजाओगे, अपने आप को सजाओगे तो आपको किसी दूसरे को सजा देनी ही पड़ेगी। एक सजेगा तो दूसरा भी सजेगा लेकिन एक सजा में एक जो है सम्भलता चला जाएगा, सुन्दर होता चला जाएगा और एक सजा में दूसरा दुःखी होता चला जाएगा।

भगवान महावीर द्वारा प्रशस्त मार्ग

आपको लगता है? भगवान महावीर स्वामी ने अच्छा किया। बोलो? अच्छा किया कि नहीं किया? अच्छा किया! उन्होंने अपने माता को छोड़ा, पिता को छोड़ा, अपना राज-पाट छोड़ा, घर-द्वार छोड़ा...अच्छा किया? जब माँ रो रही थी, तब आपको कैसा लग रहा था? महावीर भगवान अच्छे कर रहे हैं। बोलो! कभी-कभी आप भी द्वंद में पड़ जाते होंगे कि हम क्या समझ कर के, क्या सोचे, क्या अच्छा हो रहा है? माँ की तरफ देखोगे तो माँ की आँखों में आँसू दिखाई देंगे, माँ की तरफ देखोगे तो आपको करुणा आने लग जाएगी और महावीर भगवान की तरफ देखोगे तो यह भी नहीं कह सकते कि गलत कर रहे हैं। क्योंकि यह जो कर रहे हैं वह क्या करने के लिए कर रहे हैं? जब उनकी माँ ने उनसे कहा...बेटा! तुम्हें यहाँ क्या कमी है, जो तुम यहाँ से छोड़ कर के जा रहे हो? तुम्हें कौन सा सुख चाहिए जो यहाँ पर नहीं मिल रहा है? वह बालक वर्धमान कहते हैं, वह युवा बालक, वर्धमान महावीर स्वामी का उस समय पर वह कहना होता है...कमी कुछ नहीं है, दुःख कहीं से कहीं तक कुछ नहीं है। लेकिन **जो दुःखों की परम्परा चल रही है, उस परम्परा को तोड़ना है।** जब हम किसी माँ के गर्भ में आते हैं तो उस माँ को भी दुःख होता है और हमको भी दुःख होता है। अब कुछ ऐसा करना है कि आगे किसी माँ के गर्भ में न जाना पड़े, न उस माँ को आगे कभी दुःख हो और न हमारी जीवात्मा को कभी दुःख हो, ऐसा कुछ करना है। बस! इस नेक काम के लिए एक सजा माता-पिता को लगने लग जाती है कि हमने अपने यहाँ पर ऐसे बालक को जन्म दिया लेकिन उसके बावजूद भी यह बालक घर छोड़ कर के क्यों चला गया? मुझे क्यों ऐसा दुःख दे गया? क्यों मुझे सजा दी गई? एक को सजा मिलेगी तभी दूसरा सजेगा। यह आप ध्यान रखना।

आत्मा को सजाना ही है- मोक्ष मार्ग

उसके बाद भी भगवान महावीर स्वामी को अगर अपनी आत्मा को सजाना है। अब फिर दो आ गए, नहीं समझे? जब घर में थे तब भी दो थे। बेटा माँ के सामने आ जाए तो दो हैं। बेटा पिता के सामने आ जाए तो दो हैं। बेटा घर में रहे, घर अगर उसे दिखाई दे तो भी घर और बेटा तो दो हैं। भाई के सामने आ जाए तो दो हैं, बहन के सामने आ जाए तो दो हैं। और जहाँ दो हैं, उन दो में से जब भी कोई एक अपने आप को सजाने के लिए तैयार होगा तो दूसरे को दुःख उससे होगा ही होगा। लेकिन वह दुःख भी कभी-कभार इस संसार

के नाटक को देखते हुए, उस दुःख को भी सहन करना जरूरी हो जाता है। उस दुःख को सहन किए बिना कभी भी आप आगामी दुःख से बच नहीं पाओगे और वही परिणाम निकलता है कि जब वह उस द्वित्व से दूर हो गया जो घर में था। अब उन भगवान महावीर स्वामी के पास में अभी भी दो चीजें हैं। अब क्या है? एक अपनी आत्मा, एक अपना शरीर। अभी भी दो चीजें हैं कि नहीं? अब इसमें से choose करो क्या करना है, किसको सजाना है? जिन्दगी सजाने के लिए हमने अपनी एक राह अलग बदल ली। चलो ठीक है! दूसरों को सजा दे दी। अब फिर जब हम इस राह पर चलने लग गए तो अब फिर सोचो, अब हमें किसको सजाना है? आत्मा को सजाना है कि शरीर को सजाना है।

आत्मा को सजाना है तो शरीर को सजा मिलेगी ही मिलेगी

जब आत्मा को सजाना है तो शरीर को भी सजा मिलेगी ही मिलेगी। शरीर की सजा क्या है? उन भगवान महावीर स्वामी ने नग्न रूप धारण करके, दिगम्बरत्व धारण करके, गर्मी, सर्दी, बरसात, सब कुछ इस शरीर के लिए देकर के, अपने शरीर को ऐसी सजा दी कि उन भगवान महावीर स्वामी की आत्मा बारह वर्ष के बाद में केवलज्ञान से सज गई। सज गई कि नहीं सज गई? आत्मा का अनन्त चतुष्टय के रूप में परिणमन हो जाना, यह आत्मा की सजा...सजा अर्थात् सजावट; लेकिन इसके लिए शरीर को भी सजा देनी पड़ती है। बताओ! आपको कौन सी सजा अच्छी लगती है? जब तक दो चीजें रहेंगी, एक सजा दूसरे के साथ चलेगी और दूसरी सजा दूसरे के साथ चलेगी। इसलिए आप सोचो, हमें अपनी जिन्दगी को पहले सजाना है और जिन्दगी को सजाते-सजाते अपनी आत्मा को सजाना है और अगर हमें अपनी जिन्दगी को सजाना है तो पहले हमें यह समझना पड़ेगा कि जिन्दगी कैसे संवरेगी, कैसे सजेगी? कर्म के द्वारा किए जाने वाले जो फल हैं, उन कर्म फलों से हमें जो कुछ भी मिलता है, उस चक्कर से पहले निकलना पड़ेगा।

कर्म फल में पराधीनता

हमें जो कुछ भी मिला है यह सब किससे मिला? यह किससे मिल रहा है? कर्म फलों से मिल रहा है। लेकिन इन कर्म फलों में हम पराधीनता नहीं देख रहे हैं, हमें स्वाधीनता ही नजर आ रही है। देखो! हमारे कर्म कितने अच्छे फल रहे हैं। हमें चातुर्मास मिला महाराज का, हमें चातुर्मास की प्राप्ति हुई। कितने अच्छे कर्म फल रहे हैं? इन कर्म फलों को हम इस रूप में नहीं देख रहे कि यह कर्म फलों के कारण से हमें कुछ अच्छा लग रहा है। हमें इसमें पराधीनता नहीं दिख रही है। चातुर्मास चल रहा है, चातुर्मास के अन्दर हमें खूब हर तरह से पुण्य लाभ मिल रहा है और उस पुण्य लाभ में भी हमें जो कर्म के फल से हमारे सामने यह पुण्य लाभ ग्रहण करने की बारियाँ आ रही है, यह अवसर आ रहे हैं, हमें इसमें भी कहीं से कहीं तक कोई नहीं दिखाई देता कि हम अपने कर्म का फल भोग रहे हैं। सब चल रहा है, महाराज! बिल्कुल सहज चल रहा है। सोचना ही क्यों कि कर्म का फल है या हम पराधीन है, दूसरी बाधा अपने दिमाग में उत्पन्न ही क्यों करना?

मुनि श्री का उपदेश- आत्मा को सजाओ

सब अच्छा चल रहा है, महाराज! चलने दो, आप नई-नई बातें हमारे दिमाग में मत पहुँचाओ। इसलिए कुछ लोग सुनने ही नहीं आते हैं। कुछ लोग इसीलिए उन अवसरों पर आते हैं, जब हमें कुछ ऐसी बातें सुनने की न मिले और हमारे दिमाग में कोई ऐसा ज्ञान न पहुँच जाए कि हमें कहीं संसार की वास्तविकता समझ में आ जाए। लोग इस डर के कारण से भी कई बार उपदेश नहीं सुनते हैं। लेकिन जब उन्हें पता हो कि आज कोई party होने वाली है, आज कोई विशेष ceremony होने वाली है, तो लोग आ जाते हैं। जब आ गए तो लोग चाह रहे थे कि हम महाराज को फंसा ले लेकिन महाराज और ज्यादा उस्ताद हैं। उन्होंने कहा... आज बेटा हम तुम्हें फंसाएँगे। अब सुनो, सुनना तो पड़ेगा। आपके दिमाग में यह बात तभी पहुँचेगी, जब आप किसी न किसी निमित्त से महाराज के सामने आओगे, बैठोगे, सुनोगे। निमित्त कुछ भी हो सकते हैं। लेकिन **महाराज हमेशा आपको संसार से ऊपर उठने का ही ज्ञान देंगे। संसार के चक्र से निकलने की ही बात बताएँगे और आपको बताएँगे कि आप भी अपनी आत्मा को वैसे ही सजाओ...जैसे भगवान महावीर स्वामी ने सजाई, आचार्य गुरुदेव ने सजाई, ऐसे ही आप भी अपनी आत्मा को सजा दो। सजा दो! समझ रहे हो? एक दो lines कभी मैंने लिखी थी, सुना दूँ?**

जिन्दगी और तुझे कितनी सजा दे आखिर?

जिन्दगी और तुझे कितनी सजा दे आखिर?

यह क्या बोल रहा हूँ मैं? जिन्दगी और तुझे कितनी सजा दे? अब यह कौन सा भाव है, सजाने वाला? जिन्दगी को सजा देने का मतलब कष्ट देना है या जिन्दगी को कितनी सजा दे हम? इतनी उसे सजा दे, इतनी उसे सजा दे कि दुनिया की नजर में वह सजते-सजते, सजते-सजते इतनी सज जाए कि वह पंच-परमेष्ठी की कोटि में आकर के सम्मानित हो जाए। यह भी एक सजा है, सजाना है। जिन्दगी और तुझे कितनी सजा दे आखिर? अभी समझ लो यह कौन सी सजा की बात कर रहा हूँ? यह सजाने वाली सजा की बात है या एक punish करने वाली सजा की बात है? शायद यह बात आपको दूसरी line सुनने पर ही ज्ञात होगी।

जिन्दगी और तुझे कितनी सजा दे आखिर?

तुझको जिन रूप दे के हम यूँ सजा बैठे हैं।

तुझको जिन रूप दे के हम यूँ सजा बैठे हैं।

दिगंबरत्व- जिंदगी की बेहतरीन सजा

अब समझ में आ रहा है? यह कौन सी सजा है? यह जिंदगी को एक तरह से punish करने वाली सजा है। तब जिन्दगी में, यह जिन रूप आता है और जब यह जिन रूप आता है, तो जिन्दगी एक तरह से सज भी रही है और एक तरह से उसे सजा भी मिल रही है और सजा किसकी मिल रही है? जो अनन्त काल में अनन्त कर्म किए हैं, उन कर्मों को काटने के लिए, हमें इस तरह से इस जिन्दगी को सजा देनी ही पड़ेगी। इस जिन रूप को धारण करना ही पड़ेगा, तभी जाकर के यह जिन्दगी सजेगी। जिन्दगी की सजा मिलेगी, तभी आत्मा वास्तव में सज करके प्राप्त होगी। यह जिन्दगी को सजाना है। कर्मों को तोड़ने के लिए, कर्म के चक्कर से निकलने के लिए, कर्म के फलों से पहले मुक्त होना पड़ता है। हमें अपने अच्छे-अच्छे जो कर्मों

के फल मिल रहे हैं, हम उनको भी छोड़ने की, तोड़ने की हिम्मत कर पाएँ, यह सबसे बड़ी सजा देने की एक भावना जब आ जाती है, तब जाकर के हम जिन्दगी को एक नए मोड़ पर ला पाते हैं और ऐसे मोड़ पर जब जिन्दगी आ जाती है, तो फिर अपने आप इसलिए सजती चली जाती है। कई बार ऐसा हो जाता है, अच्छे हाथों में सजने के लिए जिन्दगी नहीं पहुँच पाती। जैसे आपको makeup कराना हो तो कोई अच्छा आपके सामने व्यक्ति हो, जो अच्छा makeup करना जानता हो, अच्छा decorate करना जानता हो, उसको आप बुलाते हो। कितना ही महँगा क्यों न हो? लेकिन अगर आपको सजना है तो उसे आप बुलाओगे। अपना धन दोगे उसको, अपनी द्रव्य दोगे उसको ले भाई! कौन सी facial cream चाहिए? यह ले, कौन सा powder चाहिए? यह ले। जो चाहिए वह जितना महँगा हो, लाकर के दोगे उसको। वह घर से लेकर नहीं आयेगा। उसका भी पैसा आपकी जेब से जाएगा। वह आपको केवल सजा रहा है, उसका भी पैसा वह ही लेगा और बस आप सज करके बैठ गए। आपने इतना पैसा उसमें लगाया तब जाकर के आपकी सजावट हो पाई।

ऐसे ही वर्तमान में अपनी आत्मा को सजाने के लिए आचार्य गुरुदेव जैसे maker को अगर हमें प्राप्त कर लेना पड़ेगा तो बहुत अपनी जेब का लगाना पड़ेगा। makeup maker समझ आ रहा है? ऐसे आचार्य गुरुदेव को प्राप्त करने के लिए भी जेब में कुछ होना चाहिए। पुण्य! इतना होना चाहिए, कमाई इतनी पिछले जन्म की होनी चाहिए कि वह उनको जब मिले, उनको जब दे दे, तब जाकर के वह किसी की जिन्दगी सजाने को तैयार होते हैं, अन्यथा वह धक्का देते रहते हैं, बोले अभी नहीं। अभी मेरे पास time नहीं है। अभी सोचेंगे, अभी जाओ, फिर देखेंगे, देखेंगे, यह हाथ उनके ऐसे चलते रहते हैं...बाद में, बाद में, देखेंगे, देखेंगे और कई लोग देखते ही रह गए। आज तक नहीं देख पाए आचार्य महाराज उनको और वह कहते रहते जब भी निवेदन करते हैं तो देखेंगे, देखेंगे! क्या रह जाता है? कहीं न कहीं जेब में कुछ कमी रह जाती है। कहीं न कहीं उनके भावों को बनाने के लिए, अपने पास में जो पुण्य की कमाई होनी चाहिए, वह कम पड़ जाती है। बस! इस जिन्दगी का मैं इतना ही सौभाग्य समझता हूँ कि हमें इतने अच्छे से आत्मा का makeup करने वाले, बहुत अच्छे हमें maker मिल गए, जिन्होंने हमें एक बार में ही स्वीकार लिया, मेरे लिए सबसे अच्छी बात यही थी और कुछ नहीं था।

मेरी जिन्दगी का नाटक तो बदल गया और मेरी जिन्दगी की एक नई शुरुआत हो गई। अब उस नाटक को आप क्या देखना चाहोगे? और देखना है तो आप देखो, हम तो कोई मना नहीं कर रहे हैं और देखना आपको चाहिए। शायद उस नाटक में से भी कुछ अच्छी बातें निकल आएँ। लेकिन उस नाटक को, जिसका नाटक उसी को दिखाना चाहो, यह बात समझ नहीं आती। इसलिए हम आपके लिए आज time देते हैं, आप अच्छे से नाटक देखिए, आप करने आएँ हैं, वह करिए। हम अपने time में कमी कर देते हैं और आपके लिए पर्याप्त वह समय देते हैं ताकि आप अपने मन की भावना भी पूरी कर ले।

गाथा: 23

संसारी जीवों ने उन्हीं जाति, कुल, योनि आदि में
अनन्त बार जन्म-मरण किया है

ण सा जाई ण सा जोणी, ण तं ठाणं ण तं कुलं।
ण जाया ण मुया जत्थ, सव्वे जीवा अणंतसो ॥23॥

अन्वयार्थ- (सव्वे जीवा) सभी, जीवों ने 'इस संसार में' (जत्थ) जहाँ (अणंतसो) अनन्तबार (ण) न (जाया) जन्म 'लिया हो और' (ण) न (मुया) मरे हों 'ऐसी' (ण) न (सा जाई) वह, जाति है 'और' (ण) न 'ही' (तं कुलं) वह, कुल है 'तथा' (ण) न (सा जोणी) वह, योनी है 'अथवा' (ण) न (तं ठाणं) वह, स्थान 'ही' है ॥23॥

वैराग्य शतक नाम के ग्रन्थराज से कुछ गाथाओं को पढ़ते हुए उन गाथाओं के अर्थों के साथ ही अपने भावों को जोड़ने की कोशिश करेंगे। गाथा नम्बर 23, 24, 25 पढ़ते हैं...

ण सा जाई ण सा जोणी, ण तं ठाणं ण तं कुलं।
ण जाया ण मुया जत्थ, सव्वे जीवा अणंतसो ॥23॥

तं किंपि णत्थि ठाणं, लोए बालग्गकोडिमित्तंपि।
जत्थ ण जीवा बहुसो, सुह-दुक्ख-परंपरं पत्ता ॥24॥

सव्वाओ रिद्धीओ, पत्ता सव्वे वि सवण-संबंधा।
संसारे ता विरमसु, तत्तो जइ मुणसि अप्पाणं ॥25॥

प्राकृत में गाथा छन्दों का प्रयोग



यहाँ गाथा नम्बर 23 में कहा जा रहा है... 'ण सा जाई ण सा जोणी' एक तरह से देखा जाए प्राकृत में दो तरह के छन्दों का प्रयोग किया जाता है। एक गाथा छन्द होते हैं, जिन्हें आर्या छन्द के नाम से कहा जाता है, जो गाथाओं के रूप में बोली जाती हैं। कुछ श्लोक जैसे भी छन्द बनते हैं, जिन्हें अनुष्टुप छन्द कहा जाता है। संस्कृत में जिस तरह से ३२

अक्षरों का एक श्लोक होता है, जिसमें प्रत्येक पद में आठ-आठ अक्षर होते हैं तो यह जो सामने गाथा नम्बर २३ है, यह गाथा की तरह नहीं है, यह श्लोक की तरह है। इसलिए इसको पढ़ने में थोड़ा अलग सा लग रहा था। श्लोक पढ़ते हैं न... 'दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पाप नाशनम्' यह क्या है? यह श्लोक की लय है। ज्यादातर प्राकृत के ग्रन्थों में गाथाएँ होती हैं लेकिन कहीं-कहीं श्लोक रूप छन्द भी हो जाते हैं, जब उनमें हर एक पद में आठ-आठ अक्षर दिखाई दे रहे हो। देखिए इस 23 वें छन्द के पहले पद में भी आठ अक्षर हैं।

ण सा जाई ण सा जोणी, ण तं ठाणं ण तं कुलं।

ण जाया ण मुया जत्थ, सव्वे जीवा अणंतसो ॥23 ॥

यह क्या हो गया? यह श्लोक की लय हो गई। 'वीतरागं मुखं दृष्ट्वा' इस तरह के श्लोक पढ़ते हो न? 'दर्शनं देव देवस्य, नमः श्री वर्धमानाय' इसी तरह के यह श्लोक की लय में यह प्राकृत का छन्द है तो इसमें कहते हैं... 'ण' अर्थात् नहीं, 'सा' अर्थात् वह, 'जाई' अर्थात् जाति, वह जाति नहीं है। 'ण सा जोणी' और वह योनि भी नहीं है। 'ण तं ठाणं' न वह स्थान है। 'ण तं कुलं' और न वह कुल है। क्या नहीं है? वह योनि, वह जाति, वह स्थान, वह कुल नहीं है, नहीं है, नहीं है। क्या कहना चाह रहे हैं, क्या नहीं है? वह अगली लाइन से स्पष्ट होगा। 'ण जाया, ण मुया जत्थ' जत्थ अर्थात् जहाँ, 'ण जाया' न तो वह उत्पन्न हुआ हो, 'ण मुया' और न मरा हो यानी ऊपर वाली line का सम्बन्ध इस line से है और यह कहा जा रहा है कि इस संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पर यह जीव जन्म न लिया हो, जहाँ पर यह जीव मरण को प्राप्त न हुआ हो। जहाँ पर इसकी जाति मतलब उत्पत्ति न हुई हो, जहाँ पर यह 'जत्थ' शब्द सबके साथ जोड़ लेना, जहाँ पर इसके लिए योनि स्थान न मिला हो या उत्पत्ति इसकी न हुई हो। ऐसी कोई योनि नहीं, ऐसी कोई जाति नहीं, जहाँ पर यह उत्पन्न न हुआ हो, जहाँ पर यह मरण न किया हो। ऐसा कोई स्थान नहीं लोक का, जहाँ पर इस जीव ने जन्म न लिया हो, जहाँ पर यह मरण न किया हो। ऐसा कोई कुल भी नहीं बचा जहाँ पर यह जीव न जन्म लिया हो, न मरण हुआ हो। ऐसा कोई कुल भी नहीं है तो यह यहाँ पर बताया जा रहा है। नीचे वाली line का जो तीसरा पद है, उसे ऊपर के साथ में जोड़कर के आपको अर्थ निकलेगा यानी ऐसी कोई भी जाति भी नहीं है, जहाँ पर यह जीव जन्म न लिया हो, मरण न किया हो।

जाति और कुल में अन्तर

जाति होती है, कुल होते हैं। जाति और कुल में अन्तर बताया जाता है; जानते हैं आप लोग? जाति में और कुल में क्या अन्तर होता है? माँ के पक्ष की जो चीज होती है, 'मातृ पक्षः जाति' माता के पक्ष की जो परम्परा होती है, माँ की जिससे एक परम्परा चलती है, सन्तति चलती है... वह कहलाती है- जाति और पितृ का जहाँ से पक्ष चलता है, पिता पक्ष से जो चला आता है, वह कहलाता है- कुल। जब किसी भी जीव का जन्म होगा तो उस जीव के लिए एक मातृ पक्ष होगा, एक पितृ पक्ष होगा। उसके सामने जो माँ की परम्परा होगी यानी माँ जिस घर की बेटी होगी, उनके जो पिता होंगे, उन पिता के जो पिता होंगे, एक उनकी परम्परा होगी तो वह कहलाएगी... उनकी जाति उस बच्चे की, जिसके लिए वह माँ की जाति मिलेगी और एक वह होगा जो पिता की तरह देखा जाएगा, पिता की ओर से देखा जाएगा। पिता के पिता कौन थे? उनके पिता कौन थे? उनकी एक वंश परम्परा चल रही है, तो उसको कहा जाता है- कुल परम्परा। यह जाति में और

कुल में अन्तर होता है।

कुल दीपक कौन?

जब कोई बच्चा उत्पन्न होता है किसी घर में तो उसे अगर वह पुत्र होता है, तो कहा जाता है कि भाई यह कुल दीपक हो गया। उसका एक कारण है...वह यूँ ही नहीं कहा जाता। उसके पीछे का जो सिद्धान्त है वह आपको समझना चाहिए। वह कुल दीपक इसलिए है क्योंकि इस कुल को आगे बढ़ाने के लिए, कुल की परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए वह पुत्र ही काम आएगा। पुत्री का तो विवाह हो जाएगा, वह तो दूसरे घर में चली जाएगी। उस पिता के यहाँ पर अगर पुत्री उत्पन्न हुई है, तो उससे पिता की सन्तति आगे नहीं बढ़ेगी, उसका वंश आगे नहीं बढ़ेगा। उस आगे वंश को बढ़ाने वाला कौन होगा? पुत्र होगा। इसलिए कहा जाता है कि पुत्र जो है वंश की वृद्धि करने वाला होता है, वंश बढ़ाने वाला होता है या कुल दीपक होता है। कुल को आगे बढ़ाने वाला होता है क्योंकि जो पिता के पिता की जो परम्परा चली, उसको बढ़ाने वाला पुत्र होगा। पुत्री जो होती है, वह जिस घर में जाएगी, उस घर में जाकर के उसका गोत्र बदल जाता है। फिर वह उसी घर की कहलाएगी...उसी गोत्र की कहलाएगी, जिस घर में वह चली गई। जैनों में भी अनेक तरह के गोत्र होते हैं या जैनों के बाहर भी कहीं अगर वह चली गई तो उसका वह जो गोत्र है, जो उसकी अपनी जाति है वह बदल जाएगी।

विभिन्न प्रकार की जातियाँ

अगर वह जैनों से अजैन में चली गई तो उसकी जाति बदल जाएगी। फिर वह अपने भीतर भले ही जैन धर्म रखे रहे लेकिन उसकी जाति बदल गई क्योंकि उसके नाम के आगे क्या लगेगा? जैन नहीं लगेगा। विवाह से पहले तो उस लड़की के नाम के आगे जैन लगेगा लेकिन उस लड़की का विवाह अगर कहीं दूसरी जाति में हो गया, जैनेतर में हो गया तो फिर उसके नाम के आगे जैन नहीं लगेगा क्योंकि उसे अपने नाम के आगे वह लगाना पड़ेगा जिसके साथ उसका सम्बन्ध हुआ है। पति अगर गुप्ता मिला तो उसे भी गुप्ता लिखना पड़ेगा। पति अगर राजपूत मिला तो उसे भी राजपूत लिखना पड़ेगा। पति अगर सैनी मिला तो उसे भी सैनी लिखना पड़ेगा। अगर उसने नेमा से विवाह कर लिया तो उसे अपने नाम के आगे नेमा लिखना पड़ेगा या वह नेमा के नाम से पहचानी जाएगी कि भाई! यह नेमा के घर में गई है। सोनी, नेमा अनेक-अनेक तरह की जातियाँ हैं तो उसकी जाति बदल गई। वह लड़की जो होती है, बेटी जो होती है वह कभी कुल परम्परा को बढ़ाने वाली नहीं बन पाती क्योंकि कुल परम्परा को वह बढ़ाता है, जो पुत्र होता है। पुत्र के लिए किसी भी जाति की अगर पत्नी मिल जाती है, मान लो उसका किसी जैनेतर में भी विवाह हो जाता है और बहू कोई दूसरी जाति की भी आ जाती है, तो पुत्र के लिए जैनत्व नहीं छूटेगा। पुत्र की वह परम्परा वही चलेगी जो पिता की परम्परा है, वह उसकी कुल परम्परा कहलाएगी...इसलिए उसको कुल दीपक कहा जाता है।

कुल को प्रकाशित करने वाला पुत्र- एक सामाजिक सिद्धान्त

कुल को प्रकाशित करने वाला यह पुत्र है। यह जो सामाजिक सिद्धान्त हैं, इन्हीं को ध्यान में रखते हुए यह

बेटा और बेटी के बीच में एक विभाजन बनता है और यह विभाजन समझना भी चाहिए। हमें यूँ ही ऊल-फिजूल बातों में आकर के हर तरह से बेटा-बेटी एक होते हैं, एक होते हैं- प्यार की अपेक्षा से। चाहे बेटा को प्यार करो, चाहे बेटी को प्यार करो एक ही बात है लेकिन जब हम आगे बढ़ेंगे, बेटा-बेटी बड़े होंगे तो उनके जो अपने-अपने विवाह आदि के उपरान्त जो उनकी स्थितियाँ बनती हैं, उनमें निश्चित रूप से परिवर्तन आता है। बेटा-बेटी एक, कथंचित इस बात से होते हैं कि भाई! यह बेटा भी अपने से उत्पन्न हुआ है, बेटी भी अपने से उत्पन्न हुई है, तो बेटा-बेटी एक हैं। लेकिन बेटी हमेशा अगर वह जिस जाति में विवाह करेगी वह उसी जाति की बन जाएगी। भले ही वह अपने मन में सोचती रहे कि मैं जैन धर्म का पालन करूँ, मैं जैन धर्म को मानूँ, मैं तीर्थकरों की आराधना करूँ; अब वह अपने मन ही मन में कर पाए तो कर पाए लेकिन वह खुल कर के, दिखा कर के तब कर जाएगी जब उसके घर के लोग उसे अनुमति देंगे और यह पराश्रिता आज भी देखने को मिलती है।

अन्य धर्म में बेटी की पराधीनता

चाहे हम कितनी भी पढ़ी लिखी समाज होने का दावा करें, यह सब पराश्रिताएँ आज भी हैं और यह बनी रहेंगी। इसलिए कोई भी बेटी जब अपना धर्म छोड़कर के दूसरे धर्म में चली जाती है, तो वह अपना धर्म स्वतन्त्रता से पालन नहीं कर पाती। वह और ज्यादा पराधीन हो गई, न केवल पति के ऊपर पराधीन होती है लेकिन पति के जो भी माता-पिता हैं, भाई-बहन हैं, उनके प्रति भी वह पराधीन हो जाती है। मान लो पति ने तो कह दिया...ठीक है! तुम अपना धर्म यहाँ पर भी आकर के कर लेना। अब जब वह वहाँ पर धर्म करने के लिए तैयार हुई तो उस पति की जो बहन है, उसकी क्या कहलाएगी? ननद। अब वह नहीं चाहती है... “तू वहाँ महाराज के पास क्यों जाती है? तू जैन मुनियों के पास क्यों जाती है? तू जैन मन्दिर में क्यों जाती है? तू ये वाले शास्त्र क्यों पढ़ती है? यह क्यों नहीं पढ़ती है?” अगर मान लो उसके दिमाग में चढ़ गया तो वह टोकती रहेगी तो वह धर्म स्वतन्त्रता से नहीं कर पाएगी। कहीं माता-पिता को अच्छा नहीं लगे कि भाई! तेरे कारण से हमारी नाक कटती है कि देखो! इनकी बहू है और वहाँ जाती है, यहाँ नहीं आती है। कहीं वह



सम्यग्दृष्टि मिल गई चलना जैसी तो आफत हो जाती है। अब वह चलना तो चलना ही है। हर स्त्री चलना नहीं हो सकती है और न हर स्त्री अपनी इतनी परिस्थितियों को face कर सकती है कि पति बिल्कुल विपरीत जा रहा हो, बौद्ध बन रहा हो और उस पति को बिल्कुल जो है वह समझाते-समझाते, बौद्ध साधुओं से भी भिड़ते-भिड़ते, उनकी भी परीक्षा लेते-लेते, पति को नाराज करते-करते भी इस स्थिति तक पहुँच जाए कि पति

भी एक दिन नाराज होकर के मुनि महाराज के ऊपर उपसर्ग कर दे और उसके बावजूद फिर उसके लिए यह समझ में आ जाए कि नहीं! धर्म यही है, सच्चाई यही है तो इतना होने में बहुत देर लग जाती है। ऐसा हर किसी के साथ नहीं हो सकता।

पौराणिक उदाहरण कुछ प्रेरणा के लिए होते हैं

हर व्यक्ति वह नहीं बन सकता है जो हम सुनते हैं। आदर्श हमारे सामने हो सकते हैं...न हर स्त्री चलना बन सकती है और न हर व्यक्ति जो है कोई भरत और बाहुबली बन सकता है। हमारे सामने जो ये पौराणिक

उदाहरण होते हैं, ये हमें कुछ प्रेरणा देने के लिए होते हैं, ये हमें कुछ हमारे धर्म को सुरक्षित करने के लिए काम में आ सकते हैं। लेकिन हम कभी-कभी इन भावों में बह जाते हैं कि हम भी बिल्कुल ऐसे ही हो जाएँ तो ऐसा हो नहीं पाता है। कई बेटियाँ परेशान हो जाती हैं जब वह ऐसा होने की सोचती हैं तो। रानी चेलना की कहानी बहुत दिनों से सुन रहे हैं...मान लो कोई बेटियाँ कहने लग जाएँ...महाराज! मुझे तो उस बौद्ध से शादी करनी है, मुझे तो उस राजपूत से शादी करनी है। अब आप क्यों रोक रहे हो? आप ही ने तो कहा था, राजा श्रेणिक बौद्ध था फिर भी रानी चेलना ने शादी कर ली थी न? फिर उसने उसको धर्मात्मा बना दिया था। ऐसे ही हम भी उसको जैन धर्म का धर्मात्मा बना देंगे। अब इसी कहानी को सुनकर बेटियाँ यही तर्क देने लग जाएँ तो उनके मन में यह भाव तो आ जाएगा, यह उनके बचाव के लिए उदाहरण तो बन जाएगा लेकिन क्या तुम में रानी चेलना जैसी दृढ़ता है? अगर नहीं है, तो फिर आपके लिए आगे बहुत बड़ी परेशानी खड़ी हो जाएगी क्योंकि यह एक बहुत बड़ा युद्ध बन जाता है...यह धर्म युद्ध कहलाता है।

धर्म युद्ध का मतलब

युद्ध का मतलब? लड़ते रहना, बार-बार हवाई फायर करके जैसे युद्ध के लिए उकसाया जाता है, वैसे ही हवाई फायर करते रहना। बार-बार जब कोई भी मुँह से वचन निकलेंगे, बार-बार कहा-सुनी होगी, बार-बार कलह होगा, बार-बार वह युद्ध की स्थिति बनेगी तो एक घर में धर्मयुद्ध शुरू हो जाता है। कौन सही? कौन गलत? तुम इसको क्यों नहीं मानते? तुम इसको क्यों मानते हो? इस तरह का जब वातावरण बनने लग जाता है, तो यह भी एक धर्मयुद्ध कहलाता है। अब इस धर्म युद्ध का अन्ततः परिणाम जो निकले, वह निकले लेकिन जब अन्त नहीं होता है, तो कई बार अपने जीवन का अन्त हो सकता है और परिणाम जो अन्त में निकलना है, वह न निकले; यह अपने हाथ की बात तो है नहीं है। राजा श्रेणिक ने तो चलो जो कर लिया, कर लिया। रानी चेलना के कारण से राजा श्रेणिक के लिए समझ में आ गया और उसने जो है अपनी श्रद्धा दिगम्बर मुनि महाराजों के प्रति बना ली, बहुत बड़ा उपसर्ग करने के बाद यह सम्भव हो पाया।

दूसरों को देखकर निर्णय न ले

अब ऐसा हर किसी के साथ तो हो नहीं सकता तो जीवन में जब कोई भी निर्णय लिए जाते हैं तो उनमें केवल हम किसी उदाहरणों में अपने को न देखें कि मैं ऐसा बन गई हूँ या मैं ऐसा बन जाऊँगा। उदाहरण में अपने को प्रविष्ट न करा लें बल्कि उन उदाहरणों से जो अपने लिए अच्छी फायदे की चीज हो उतना सीखे और फायदे की जगह अगर आपने नुकसान की चीज ग्रहण कर ली कि मैं भी रानी चेलना की तरह उसको धर्मात्मा बना लूँगी और जब विवाह होने से पहले की बात होती है, तो हर कोई धर्मात्मा बनने के लिए तैयार भी रहता है लेकिन बनने के बाद जरूरी नहीं है कि वह अपनी बात पर 100 प्रतिशत कायम रहे। सत्य महाव्रती तो कोई होता नहीं है कि हमने जैसा कह दिया वैसा ही किया जाएगा लेकिन बेटियाँ होती हैं, बातों में आ जाती हैं और जिस समय पर उनके अन्दर किसी से कोई भी तरह का अगर मोह हो जाता है, तो वह उसकी हर बात पर विश्वास करती हैं। यह उनका भोलापन होता है और इसी कारण से वह अपने निर्णय बदल नहीं पाती या यह सोच नहीं पाती कि हम कभी यह सोच करके देखें कि हमारे वहाँ जाने पर हमें कितनी परेशानी उठानी पड़ेगी। उन्हें वह नहीं दिखता, उन्हें उसके साथ रहने का एक मोह दिखाई देता है।

जाति और कुल के बीच में पुत्र-पुत्री का एक विभाजन

इसी कारण से कई बार सम्बन्ध अन्य जाति में जब हो जाते हैं तो वह अनेक तरह की दिक्कतों के कारण बन जाते हैं। इसलिए जाति-कुल के बीच में पुत्र और पुत्री का, बेटा या बेटी का जो एक विभाजन है वह सबके दिमाग में होना चाहिए। बेटा-बेटी एक हैं इसलिए आप एक जैसी पढ़ाई कर लो। एक जैसा घर में खाओ-पियो। एक जैसी आपके लिए सुख-सुविधाएँ हैं। एक जैसा आपके लिए स्कूल-कॉलेजों की व्यवस्थाएँ हैं लेकिन आगे चलकर के बड़े होने के बाद में आप एक जैसे नहीं रह पाओगे। कुलदीपक बेटा ही बनेगा, बेटी नहीं बन पाएगी। वह तब बन पाएगी जब वह विवाह ही न करे। अगर एक दूसरा option है तो फिर यह है ब्राह्मी बन जाए, सुन्दरी बन जाए भगवान आदिनाथ की पुत्रियों की तरह, तब चल पाएगा। पिता की विरासत को आगे बढ़ाना, पिता की विरासत को आगे बनाए रखना, यह बेटियों के लिए सम्भव नहीं होता। पिता अपने हिस्से का बेटियों के लिए दे जरूर देगा लेकिन बेटियाँ कभी पिता की विरासत को आगे नहीं बढ़ा पाती हैं; उसको बढ़ाने के लिए तो पुत्र ही होना पड़ेगा। अब आप कहो कि बेटा और बेटी में अन्तर क्यों? यह आपके दिमाग में जो मोह चढ़ा दिया जाता है कि बेटा-बेटी में कोई अन्तर नहीं होता है, इसे भी एकान्त रूप से नहीं समझना चाहिए।

बेटा-बेटी में अन्तर

बेटा-बेटी में भी एक बहुत बड़ा अन्तर होता है और यह अन्तर आपको तब महसूस होगा जब आप जिन्दगी के 30 साल, 25 साल जी लोगे। 25 साल, 30 साल तक बेटा-बेटी सब बराबर हैं। माता-पिता, सब उनका एक जैसा पालन कर लेते हैं लेकिन बाद में पिता को पता पड़ता है, महसूस होता है कि हमारी कुल परम्परा के लिए पुत्र का ही होना आवश्यक है। इसलिए जाति में और कुल में अन्तर होता है। दुनिया में हर जीव के लिए ऐसा कोई स्थान नहीं बचा, ऐसी कोई योनि नहीं बची, ऐसी कोई जाति नहीं बची, ऐसा कोई कुल नहीं बचा, जहाँ पर **‘सव्ये जीवा’** सभी जीव **‘अणंतसो’** अर्थात् अनन्त बार न जन्मे हो या न मरे हो। न जन्मे, न मरे का मतलब ऐसा नहीं है कि जन्म ही नहीं लिए या मरे ही नहीं। ज्यादा ज्ञानी हो जाते हैं न तो फिर लोग हर एक बात का अलग से अर्थ निकालने लग जाते हैं। मतलब वे जन्म ही नहीं लिए, मरे भी नहीं और आप कह रहे हो कि वहाँ पर न जन्म लिए हो, न मरे हो...ऐसा कोई स्थान नहीं। इन दोनों में अन्तर है कि नहीं?

जीव का जन्म हुआ है तो मरण भी अवश्य होता है

अगर वह जन्म नहीं लिया, मरा ही नहीं तो कहाँ रहा फिर? आकाश में रहा, कहीं लटका रहा, कहीं भूत-प्रेत बना रहा। क्या बना रहा? जन्म हमेशा जीव का होता है, मरण हमेशा जीव का होता है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ पर यह जीव जन्म न लिया हो यानी कोई भी ऐसा स्थान नहीं बचा, जहाँ पर इसका जन्म न हुआ हो और कोई भी ऐसा स्थान लोक में बाकी नहीं जहाँ इसका मरण न हुआ हो। इस तरह से यह जन्म और मरण के बीच की जो सन्तति है, यह निरन्तर चलती रहती है। हर जीव के लिए यह कहा गया है... **‘सव्ये जीवा’** अर्थात् इसमें सब जीव आ गए, कोई बचने वाला नहीं है। पढ़ने वाला भी, पढ़ाने वाला भी; यहाँ तक कि तीर्थंकर भी जो हमें यह ज्ञान देकर के जाते हैं, वे भी इससे पहले इसी तरह के इन्हीं अनन्त जीवों में



गाथा: 24

लोक में वह थोड़ा सा स्थान भी शेष नहीं है, जहाँ
जीवों ने सुख-दुःख न पाया हो

तं किंपि णत्थि ठाणं, लोए बालग्गकोडिमित्तं पि।
जत्थ ण जीवा बहुसो, सुह-दुक्ख-परंपरं पत्ता ॥24 ॥

अन्वयार्थ- (लोए) लोक में (किंपि) किंचित्, भी (तं ठाणं) वह, स्थान (णत्थि) नहीं, है 'यहाँ तक कि' (बाल-अग्ग-कोडि-मित्तं-पि) बाल के, अग्रभाग की, कोटि यानी नोक, मात्र, भी (जत्थ) जहाँ (जीवा) जीवों ने (बहुसो) बहुत बार (सुह-दुक्ख-परंपरं) सुख-दुःख की, परंपरा को (पत्ता ण) प्राप्त, न 'किया हो' ॥24 ॥

कहते हैं... 'तं किंपि णत्थि ठाणं, लोए बालग्गकोडिमित्तं पि' 'बालग्गकोडिमित्तं पि' अर्थात् बाल का अग्र भाग बाल के आगे का हिस्सा कितना पतला होता है जो उसकी नोक जिसको बोलते हैं, इतने बराबर स्थान भी लोक में नहीं है। 'जत्थ ण जीवा बहुसो' जहाँ पर यह जीव बहुत बार उत्पन्न मरण न किया हो और सुख दुःख की परम्परा को प्राप्त न किया हो। लोक में कोई स्थान बाकी नहीं बचा है, इतने जन्म, इतने मरण हो चुके हैं। अब आप सोचोगे कि ऐसा कहने का प्रयोजन क्या है?

हमारे भावों की परिणति

इससे हमें क्या सीखने को मिल रहा है? इससे हमारे भावों में क्या परिणति आ रही है? अगर आप इस तरह से अपने मन में विचार करोगे तो आपको महसूस होने लगेगा। क्या? इतने जन्म, इतने मरण हो गए हैं अगर यह आपके दिमाग में बैठ जाए, बार-बार बैठाने की कोशिश की जा रही है। रोजाना वही-वही भाव एक जैसा आ भी रहा है, तो भी आपको रोजाना नया-नया लग ही रहा है। ऐसा तो नहीं लग रहा, यही बात हमने परसों सुनी थी महाराज! यही बात आप कल कह रहे थे, यही बात आप तीन दिन पहले कह रहे थे। लग रहा है क्या आपको ऐसा? नया-नया लग रहा है न? लगेगा ही। रोटी वही होती है, वही से मतलब? आटे की ही तो होती है, दाल वही होती है मूँग की और अरहर की और सब्जी भी वही होती है- लौकी की और परवल की। लेकिन हर रोज जब खाते हैं तो नई-नई सी तो लगती है। लगती है कि नहीं लगती? इसी तरीके से जो ज्ञान हमें दिया जा रहा है, वह भले ही एक जैसा हमें लग रहा हो... यह वही दाल है, यह वही रोटी है; पिछले पत्रों में पढ़ोगे तब भी वही बात थी, आज भी पढ़ रहे हैं तब भी वही बात है। लेकिन नया-नया interest आपको create हो रहा है कि नहीं हो रहा है?

जीवन में सम्भावनाएँ कुछ भी बन सकती हैं

यही हमारे लिए नयापन होता है और ऐसा सोचते-सोचते जब हमारे दिमाग में यह आने लग जाता है...इतने जन्म हो गए, इतने मरण हो गए, अब इस एक जन्म में, एक मरण में हम क्या कर सकते हैं? अब अगर कभी हमारे सामने कोई ऐसी स्थिति बन जाती है, जब हमें लगे, यहाँ से तो मरना ही अच्छा है, ऐसे जीवन से तो मरना ही अच्छा है; ऐसा भी कभी-कभी समय आता है किसी-किसी के जीवन में। कैसे आ जाता है? किसी भी कारण से आ सकता है। मान लो आपने अपने जीवन के 40 वर्ष अच्छे से बिता लिए तब तक आपको नहीं लगा कि इससे तो मरना ही अच्छा है लेकिन 40 वर्ष के बाद में कोई ऐसी घर में बहू आ गई जो आपकी नाक में दम कर दी उसने। अब नाक में जब दम हो गई तो फिर क्या हो गया? फिर लगने लगेगा...क्या? इससे तो आती नहीं सो अच्छा था। अब आ गई, अब वह जाने को तैयार नहीं है। सम्भावनाएँ कुछ भी बन सकती हैं। कई-कई बहूएँ ऐसी होती हैं जो खुद कह देती हैं...नहीं चलो ठीक है! हमसे बन नहीं रही है, हम अलग रहना चाहते हैं। कई-कई बहूएँ ऐसी होती हैं...नहीं! रहेंगे तो हम सासू के साथ ही। सासू कहती...नहीं! तू अलग हो जा। नहीं! अलग नहीं होऊँगी...तू मेरी माँ है; तू मेरी सासू माँ है, तुझे छोड़ के नहीं जाऊँगी तो ऐसा लगता है सासू को कि यह मेरे प्राण ही ले लेगी। अब ले लेगी तो ले लेगी। अब क्या करेगी सासू? भंग कुछ भी बन सकते हैं।

संसार में ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ अनन्त बार जन्म-मरण न किया हो

कोई एक तरीका नहीं है दुनिया में जीवन जीने का या एक तरीके से कभी कोई जिन्दगी नहीं चलती। कोई जरूरी नहीं है कि सास और बहू अलग हो जाएँ तो समस्या का समाधान हो जाए। कभी-कभी बहू चाहती है और कभी-कभी बहू नहीं। मैं सास को छोड़ कर नहीं जाऊँगी, मैं यह घर छोड़ कर नहीं जाऊँगी, मैं रहूँगी तो सास के साथ ही रहूँगी और उसकी नाक में दम किए रहेगी; उसकी बात नहीं मानेगी, उसके काम नहीं करेगी और फिर भी... मैं सासू को छोड़ूँगी नहीं। अब क्या करोगे? अब सासू की जब इस तरह से नाक में दम होगी तो सासू को कभी न कभी लगने लग जाता है; इससे तो मरना ही अच्छा है। अब मर भी नहीं सकते तो क्या करें? तो उस समय पर ये गाथाएँ याद करें। मर के कहाँ जाओगे? संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पर हम अनन्त बार पहले मर न चुके हो। अब नया मर के कहाँ चले जाओगे? कहाँ नया जन्म ले लोगे? ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पर हम पहले अनन्त बार जन्म न लिए हो। ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पर हम पहले अनन्त बार मर न चुके हो। जब यह याद आ जाएगा तो आपके अन्दर फिर एक ज्ञान का भाव उत्पन्न होगा। सासू का तो एक उदाहरण दे रहा हूँ। किसी भी परिस्थिति में जब आपको लगने लग जाए, चाहे वह पुरुषों के लिए हो; कोई बहुत लम्बा घाटा हो जाए, जब आदमी को लगने लग जाता है, अब मैं अपने परिवार का पालन कैसे करूँ? कैसे कर पाऊँगा? क्या सोचे? उस समय पर यही ज्ञान काम आता है। मरना किसी समस्या का समाधान नहीं है। जन्म-मरण तो हमारे इस दुनिया में अनन्त बार हो चुके हैं लेकिन इस बात को याद करके अपने मन में एक ज्ञान का भाव लाकर के एक प्रशम भाव लाना, यह ज्ञान की बात होगी। कौन सा भाव कहलाता है? **प्रशम भाव।**

प्रशम भाव

कभी यह नाम आपने सुना है? यह ज्ञान हमें **प्रशम भाव** की ओर ले जाता है। **प्रशम** अर्थात् अरे भाई! यह क्लेश तो ऐसे अनन्त जन्मों में अनन्त बार हो चुके हैं। इन क्लेशों में अपने को जिन्दगी नरक नहीं बनाना है। जिसको जो करना है, करने दो; अपने को तो यह अच्छा लगता है सुनना। क्या? ऐसा कोई स्थान नहीं, ऐसी कोई जाति नहीं, ऐसा कोई कुल नहीं जहाँ पर इस जीव ने अनन्त बार जन्म-मरण न किया हो। दुनिया में रहना है, तो कहीं भी दूसरा जन्म भी ले लेंगे तो यही दुख फिर मिलेंगे। सुख-दुख की यह परम्परा कभी भी जीव से छूटी नहीं। कभी सुख मिला, कभी दुख मिला; यह चलता ही रहता है इसलिए सबसे अच्छी बात क्या है? जो मिला है उसमें शान्ति रखना।

मनुष्य और तिर्यच पर्याय में सुख-दुख की परम्परा चलती रहती है

अब सासू अगर बहू से क्लेश करके और यह अपने आप में क्लेश करती रहे कि नहीं! यह बहू यहाँ से चली जाए। यह मायके चली जाए, यह मर जाए तो फिर यह सासू की अज्ञानता कहलाएगी। कब तक तुम दूसरों के लिए बुरा सोचोगे? तुम्हारा अपना सोच ही तुम्हारे जीवन में सुख-दुख देगा और ऐसे सुख-दुख की परम्परा तो अनन्त काल में जहाँ पर भी हमारे जन्म हुए हैं तो ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ पर यह सुख-दुख हमारे साथ न रहे हो। हमेशा सुखी, हमेशा दुःखी कोई नहीं रहता; सुख-दुःख हमेशा चलते रहते हैं। मनुष्य पर्याय में, तिर्यच पर्याय में यह विशेष रूप से सुख-दुःख की परम्परा चलती रहती है, तो आप बचकर जाओगे कहाँ? लोक में ऐसा कोई स्थान नहीं, कोई ऐसा कुल नहीं, ऐसी कोई जाति नहीं जहाँ एकान्त रूप से सुख ही सुख हो। ऐसा कहीं नहीं होता इसलिए सबसे अच्छे ज्ञान की बात इस ज्ञान से ये निकल कर के आती है कि इस तरह के वैराग्य भावना का चिन्तन करते हुए हमारे अन्दर जब राग की कमी होती है, तो एक शमभाव उत्पन्न होता है। क्या बोलते हैं इसको? शम! उसी में जब प्र और लग जाता है तो वह अच्छा और उत्कृष्ट शमभाव हो जाए तो **प्रशम भाव** कहलाता है। शम का मतलब शान्ति, शान्ति कहाँ से आएगी? शान्ति बहू से नहीं आएगी। न बहू से शान्ति आएगी, न बहू से क्रान्ति आएगी। शान्ति अपने मन से ही आएगी, अपने ज्ञान से आएगी, अपने अन्दर के परिणामों से आएगी। यह परिणाम कहाँ से आएगा? यह परिणाम ऐसे ग्रन्थों का स्मरण करने से आएगा, ऐसे ज्ञान का स्मरण करने से आएगा। अरे भाई! यह सब तो अनन्त बार हो चुका। मानो कि आप अगर यह बात सीख जाओ और जब भी कोई आपके सामने कुछ भी नया घटित हो तो आप कह दो...भाई! यह तो सब अनन्त बार हो चुका। ऐसा बोल सकते हो? मतलब कभी आपके भाई ने आपको धोखा दे दिया, आपके लिए यही ज्ञान काम आएगा। नहीं तो आप पागल हो जाओगे, पूरी जिन्दगी जी नहीं पाओगे। अगर आपके भाई ने आपको धोखा दे दिया, आपकी सम्पत्ति किसी भी तरीके से छल-कपट करके उसने हड़प ली और आप खाली हाथ रह गए...अब आप क्या करोगे? या तो मरोगे या मारोगे, एक ही समाधान रह जाता है और फिर कुछ नहीं बचता। कोर्ट-कचहरी से कुछ होने वाला है नहीं तो फिर एक ही बात आदमी के दिमाग में आती है...मर जाऊँ या सामने वाले को मार दूँ। अब उस समय पर आपके जीवन में कोई शिक्षा देने वाला, कोई ज्ञान देने वाला, कौन मिलेगा? ज्ञान की बात अगर आपके दिमाग में आएगी तो कहाँ से आएगी? अगर आप कभी ऐसे प्रवचनों को सुन रहे होंगे तो आपको ज्ञान मिल सकता है या आपने पहले ऐसे कभी उपदेश सुन रखे हो तो कभी आपको स्मरण में आ

सकता है कि भाई! मरने-मारने से भी क्या होने वाला है?!

शान्ति का भाव चिन्तन से आएगा

यह मारामारी तो अनन्त काल से होती आई है। सबने सबको मारा है, सब सबके मित्र बन चुके हैं, सब सबके शत्रु बन चुके हैं तो क्या करना? जो है, उसको शान्तभाव से सहन करना। वह शान्ति का भाव कहाँ से आएगा? वह भाव आपको इसी चिन्तन से आएगा। मेरे भाई ने मुझे धोखा दे दिया...भाई! मेरे भाई ने मुझे धोखा नहीं दिया। अनन्तों काल में अनन्त बार ऐसे भाई मुझे मिले हैं जो मुझे अनन्त बार धोखा दे चुके हैं; यह कहना सीख लो। तुम लोगों से दिक्कत तो यही है, डॉक्टरों के पास पहुँच जाओगे, लाख-लाख रुपए देकर के operation करवा के, उन्हें लाख-लाख रुपए देकर के आ जाओगे और अपाहिजों की तरह घर में bed पर पड़े रहोगे लेकिन जो औषधियाँ यहाँ आपको बताई जाती हैं दिमाग में रखने की, उन्हें आप रखते नहीं हो। ये वे औषधियाँ हैं जो आपको कभी भी गलती नहीं करने देंगी, आपको कभी भी परेशान नहीं होने देंगी। ये वे औषधियाँ हैं। अगर यह आपके दिमाग में रहेंगी तो आपका दिमाग कभी भी फटेगा नहीं। दिमाग भी कभी फटता है न? सिर दर्द हो रहा है, दिमाग फटा जा रहा है और फिर वही फट नहीं पाता है तो फिर वह tumor बन जाता है, तो फिर वह tumor से फटता है। यह जो दिमाग फटता है, यह दिमाग तब फटता है जब हमारे विचार हमारे control में नहीं रहते हैं और उनको शान्त करने का अगर कोई उपाय होता है, तो ऐसे ही सदुपदेश होते हैं। यही वैराग्य के, ज्ञान के उपदेश आपके काम में आयेंगे और अगर यही उपदेश उस समय पर आपको सुना दिए जाएँ तो निश्चित रूप से आप लम्बी बीमारी से अपने आप को बचा लीगे, इसलिए कह रहा हूँ।

एक बात कहना सीख लो...जब भी कोई आपके साथ में कुछ अनहोनी घटे तो भाई! यह तो अनन्त बार हो गई; एक जुमला सीख लो नया। जुमला बोलते हैं न? क्या हो गया? यह तो... यह तो अनन्तों बार हो चुका; ऐसा कहना सीख लो। कुछ भी घर में बिगड़ गया, कुछ भी घर में मिट गया...अरे भाई! यह बात तो अनन्तों बार हो चुकी। पता पड़ा कि भाई! कहीं पर किसी का murder हो गया और एकदम से अचानक से खबर सुनी...अरे! यह तो सब अनन्तों बार हो गया। दुनिया की कोई भी ऐसी घटना नहीं है, जो पहली बार हो रही हो और केवल तुम्हारे साथ हो रही हो, सब अनन्तों बार हो चुका, हर जीव के साथ होगा इसलिए यहाँ लिखा है... **‘सव्ये जीवा अणंतसो’** अनन्त बार सब जीवों के साथ में यह हो चुका है, अब कुछ नया नहीं है, इसलिए यह कहना सीख लो। बहू क्लेश का कारण बन गई...अरे भाई! यह तो अनन्तों बार हो चुका। बेटा बात नहीं मान रहा है, हमेशा गालियाँ देता रहता है, हमेशा लड़ता झगड़ता रहता है, नाक में दम कर रखी है..अरे भाई! यह तो... बोल नहीं रहे हो? हँस के बोल रहे हो।

कल्याण के लिए practice कर लो जिससे result अच्छा हो

जिस समय तुम्हारे ऊपर गुजरेगी तब हँस कर बोलोगे क्या? तुम उसी style में बोलना तो बताओ! यह acting यहाँ सीख लो तब घर में काम आएगी, तभी कुछ कल्याण होगा तुम्हारा। याद तो तब कर लीगे जब यहाँ पर practice कर लीगे, इसलिए मैं चाह रहा हूँ, घर पर जाकर के याद करो उससे अच्छा सब

कुछ यहीं पर कर लो, theory practical सब यहीं पर हो जाए। घर पर जाकर तो सिर्फ आपको उसका result दिखना चाहिए, यह बहुत जरूरी चीज है। अगर आपके साथ कुछ भी घटित हो जाए और आप दुनिया में रह कर के अगर सिर्फ एक इस, जुमला नहीं समझ में आता है आज के बच्चों को, proverbs तो समझ में आता है? quotation तो समझ में आता है? जो चीज हमेशा याद रखने की हो आपके लिए ऐसी headline तो समझ में आती है? बस! इसको अपने दिमाग में headline के रूप में रख लो। क्या है? **यह तो अनन्तों बार हो गया।**

दुनिया की परेशानी का एक ही समाधान है कि यह तो अनन्तों बार हो गया

अब यह अनन्त-अनन्त बार इतना सीखने के बाद, पढ़ने के बाद, सुनने के बाद कुछ तो इनसे सीख करके अपने दिमाग में रख लेना चाहिए...भाई! यह तो अनन्तों बार हो गया। कहीं यह मत कहने लग जाना कि उपदेश सुनने के लिए भी कल से आओ तो कहना यह भी..तो जहाँ पर अपने को परेशानी दिखाई दे, formula का उपयोग कहाँ करना है? उपदेश सुनने में परेशानी तो नहीं होती न? जहाँ पर अपने को परेशानी दिखाई दे, उस परेशानी का कोई समाधान न मिले दुनिया के अन्दर तो उसका एक ही समाधान है- यह तो अनन्तों बार हो गया। बस! यह ध्यान में रख लो। ये आचार्यों की गाथाएँ अगर कुछ काम आयेंगी तो इसी रूप में काम आयेंगी अन्यथा पढ़ने-लिखने वाले आपको खूब मिल जायेंगे लेकिन उपयोग में लाने वाले आपको 10-20 भी नहीं मिलेंगे। यह अगर आपने अपने दिमाग में रख लिया, आपके दिमाग में कोई भी व्यक्ति कभी भी tension नहीं दे सकता। कुछ नहीं होता दुनिया में ऐसा जो पहले न हुआ हो, यह सब तो अनन्तों बार हो गया। भाई! बड़े हो गए, बूढ़े हो गए, बेटा हमारी सुन नहीं रहा है, हमारी care नहीं कर रहा है; यह सब तो अनन्तों बार हो गया। सब कुछ अनन्तों बार हो चुका होता है, किसी भी चीज से अपने को परेशान करने की जरूरत नहीं, यह ज्ञान हमें इसलिए दिया जा रहा है। इसलिए यहाँ आचार्य और आगे कह रहे हैं...आगे की जो गाथा है, उसमें कि जितनी भी ऋद्धियाँ हैं, रिद्धि का मतलब? वैभव होता है, धन-सम्पत्तियाँ हैं, ये सब भी जीव को अनन्त बार प्राप्त हो चुके हैं और सभी प्रकार के स्वजन से सम्बन्ध भी अपने सब अनन्त बार हो चुके हैं।



गाथा: 25

सम्पन्नतादि, संबंधादि आत्मा से पृथक् हैं

सव्वाओ रिद्धीओ, पत्ता सव्वे वि सवण-संबंधा।
संसारे ता विरमसु, तत्तो जइ मुणसि अप्पाणं ॥25॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्! तूने इस असार' (संसारे) संसार में (सव्वाओ रिद्धीओ) सभी, ऋद्धियों अर्थात् धन स्त्री आदिरूप संपत्तियों को 'तथा' (सव्वे सयण-संबंधा) सभी, स्वजनों के, संबंधों को (वि) भी (पत्ता) प्राप्त 'किया है अब' (जइ) यदि (अप्पाणं) अपने को अर्थात् अपनी आत्मा को (तत्तो) उनसे अर्थात् ऋद्धियों और संबंधों से 'पृथक्' (मुणसि) मानते हो (ता) तो 'उनसे' (विरमसु) विराम लो 'तथा आत्मकल्याण करो' ॥25॥

स्वजन से सम्बन्ध

‘पत्ता सव्वे वि सवण-संबंधा’ यह जो गाथा नम्बर 25 में लिखा है न? ‘सयण’ का मतलब स्वजन से सम्बन्ध भी अपने भी, यह हमारे हैं, यह हमारे हैं, ये तो हमारे ही हैं। यह जो आप कहते हो, ऐसा मन में लाते हो, यह भी पहले अनन्त बार हो चुका है और जो हमारे नहीं हैं वे भी हमारे थे, यह भी अनन्त बार हो चुका है। इसलिए जब आपको हर चीज अनन्त अनन्त बार दिखाई देगी तो फिर आपके अन्दर क्या आएगा? ‘संसारे ता विरमसु’ इसलिए इस संसार से अब जो है विराम ले लेना चाहिए, इससे थोड़ा-सा दूर हो जाना चाहिए, अपने आप संसार से दूर हो जाओगे। ‘तत्तो जइ मुणसि अप्पाणं’ अगर तुम्हें थोड़ा सा भी अपनी आत्मा को जान लिया है, अपनी आत्मा का तुम्हें ज्ञान हो गया है, तो क्या करोगे फिर? अरे भाई! आत्मा तो संसार में अनन्त बार इस तरह से जन्म ले चुका है, अनन्त बार ऐसे दुःख भोग चुका है, अनन्त बार ऐसे सम्बन्ध बन चुके हैं। इसलिए क्या करना? अगर तुम्हें आत्मा का थोड़ा-सा ज्ञान होगा तो तुम्हें संसार से विरक्ति होने लगेगी, संसार को देखकर के भी संसार में आपका मन उलझेगा नहीं, आप संसार से दूर हटने लगोगे और संसार से दूर हटने पर ही आपके परिणामों में शान्ति आएगी, प्रशम भाव आएगा

संसार से विरक्ति उत्पन्न होना



जब राजा श्रेणिक मुनि महाराज के पास बैठे हुए अपने पूर्वभव पूछ रहे थे...याद है? लेकिन मुनि महाराज ने उस दिन बताया नहीं थे पूर्वभव। जब वह राजा श्रेणिक अपने पूर्वभव पूछ रहे थे तो मुनि महाराज ने फिर बाद में उनको अपने पूर्वभव भी बताया और पूर्वभव सुनकर के भी क्या आएगा? जो यहाँ बताया जा रहा है। हमारे पूर्वभव ऐसे हो चुके, ऐसे हो चुके, वैसे हो चुके लेकिन कई बार जब हम प्रत्यक्ष उस फिल्म को देख लेते

हैं और हमारे दिमाग में ऐसा चढ़ जाता है कि हाँ! यह हुआ है, तो भी अपने आप शमभाव उत्पन्न होने लग जाता है। पहले अवधिज्ञानी मुनि महाराज इस तरह से जब किसी को बता देते थे तब व्यक्ति के अन्दर शमभाव उत्पन्न हो जाता था लेकिन आज भी अगर अवधिज्ञानी मुनि महाराज नहीं हैं, उनके उपदेशों को अगर आज भी आप उन्हीं कथानकों के माध्यम से, उन्हीं चरित्रों के माध्यम से सुनते हैं तो आज भी आपके अन्दर शमभाव उत्पन्न हो सकता है क्योंकि भाव तो विश्वास और ज्ञान से ही आएगा।

मुनि महाराज द्वारा राजा श्रेणिक के पूर्व भवों का वर्णन

श्रेणिक राजा से मुनि महाराज ने कहा- देखो! पूर्वभव की मैं बात बता रहा हूँ, तुम्हारा विश्वास बन रहा है इसलिए तुम्हारे अन्दर यह पूर्वभव का विश्वास आने पर तुम्हें भी भीतर से आभास होने लगेगा कि हाँ! यह मैं ही पूर्व भव में ऐसा था। इस जन्म से एक जन्म पहले और उस एक जन्म से भी एक जन्म पहले मतलब इससे तीसरे भव में; एक अभी का, एक बीच में और उससे एक भव पहले और तुम एक राजा थे। उस राजा की पर्याय में तुम राजा के पुत्र थे। बाद में तुम्हारे पिताजी चले गए उन्होंने सन्यास धारण कर लिया, तुमको राजा बना गए और तुम्हारा नाम उस पर्याय में सुमित्र था, राजा सुमित्र। क्या था? सुमित्र नाम था। इधर तुम्हारा एक मंत्री भी था और उस मंत्री का भी बेटा था और वह मंत्री के बेटे के साथ में तुम खेला करते थे। वह तुम्हारा दोस्त था और उसका नाम सुषेण था। क्या था? उस पर्याय में वह जो सुमित्र था, वह थोड़ा सा अपने स्वभाव से उग्र था। जब स्वभाव से उग्र था तो वह अपने मित्र के साथ खेला भी करता था और अपने मित्र को परेशान भी किया करता था। यह तब तक चला जब तक कि वह राजपाट करने के लिए तत्पर नहीं हुआ। यानी उसके पिताजी उसके समक्ष थे, तब तक मंत्री का बेटा और राजा का बेटा, ये दोनों मित्र भी रहे और मित्र होते हुए भी कई बार ऐसा हो जाता है कि एक मित्र दूसरे को मारता रहता है और दूसरा मित्र उसकी मार खाता भी रहता है। नहीं होता? दो सहेलियाँ भी ऐसी मिल जाती हैं... एक कूटती रहती है, मुक्का मारती रहती है और एक सहती रहती है और कुछ कह भी नहीं पाती है और साथ में भी रहना है, छोड़ कर भी नहीं जा सकती। होता है कि नहीं होता है? बोलते नहीं हो! कभी मित्रता की नहीं क्या? कभी किसी के चाँटे अपने पर पड़े नहीं क्या? ऐसा ही कुछ उस सुमित्र और सुषेण के बीच में चला करता था लेकिन कुछ ज्यादा हो गया था, वह सुमित्र कुछ ज्यादा ही उसे परेशान करने लग गया था।

सुषेण की परेशानी का कारण उसका मित्र

अब सुषेण परेशान हो जाता था लेकिन कुछ कह नहीं पाता था। क्या करें? पिताजी मंत्री हैं और इसके पिताजी राजा हैं, दोनों के पिताओं के बीच में अच्छे सम्बन्ध हैं। अब बेटे पिस रहे हैं तो कुछ कह भी नहीं सकते। कहो तो कोई सुनने वाला नहीं और ऐसे ही बड़े होते-होते, परेशान होते-होते वह जब बड़ा हो गया तो सुषेण के दिमाग में तो यह चढ़ ही गया था कि यह मुझे परेशान करता ही रहता है। आए दिन कुछ न कुछ बात से मुझे बुलाएगा, खेल-खेल में भी बुलाएगा तो खेल-खेल में भी कुछ न कुछ मारेगा और खेलना भी उसी के साथ है और मारना भी उसको है। ऐसा भी होता है! देख लेना आप! अगर आपके साथ नहीं हुआ हो तो ऐसा भी होता है, दोस्तों के साथ ऐसा होता है। वही दोस्त उसको पीटेगा भी, मारेगा भी और फिर अगर ज्यादा रोने लगेगा तो कुछ खिलाने के लिए भी किसी हलवाई की दुकान पर चला जाएगा तो

उसको कुछ खिला भी देगा फिर ठीक हो गया। दो चार दिन ठीक रहेगा फिर उसकी गर्दन पकड़ लेगा किसी दिन और यह चलता रहता है। ऐसा ही कुछ खेल सुषेण और सुमित्र के बीच में चल रहा था। अब जब चलते-चलते वह बड़ा हो गया; एक बार तो उसने नदी पर नहाने के लिए उसकी गर्दन पकड़ करके उसको नदी में डुबो दिया और वह तड़पने लगा। जब ज्यादा तड़प गया तो ऊपर बाहर निकाल लिया और फिर भी यारी-दोस्ती छूटती नहीं है...सुमित्र और सुषेण ऐसे ये दोनों दोस्त थे। अब ऐसी दोस्ती भी अगर कभी हो और उस दोस्ती में भी अगर कभी कोई बीच में अन्तराल पड़े तो कैसे पड़ेगा? अगर दोनों दोस्त एक साथ कहीं जायेंगे, घूमने जायेंगे तो वही हरकत करेंगे, picture देखने जायेंगे तो वही हरकत करेंगे, साथ में पढ़ेंगे तो वही हरकत करेंगे, कहीं खेलने जायेंगे तो वही हरकत करेंगे।

शिविर में सभी को भाग लेना चाहिए

ऐसी कोई जगह है? जहाँ पहुँचने के बाद दोनों एक साथ तो रहें लेकिन वह हरकत न करें। वह जगह कौन सी है? उस जगह का नाम है- **दशलक्षण शिविर**। जब कोई व्यक्ति इस तरह के शिविरों में भाग लेगा और आएगा, भले ही उनकी आपस में कैसी भी चलती हो? लेकिन यहाँ तो उन्हें अनुशासन से रहना पड़ेगा। साथ में बैठेंगे, साथ में रहेंगे लेकिन दुश्मन बन कर नहीं। एक दूसरे के लिए जो पहले से आदतें पड़ी हैं, उन आदतों के साथ नहीं। यह control अपने आप उनके अन्दर आने लगेगा जब वह यहाँ इस माहौल में बैठेंगे और फिर भी ऊधम मचायेंगे तो फिर उनकी व्यवस्था बना दी जाएगी लेकिन अगर किसी को भी ऐसा लगता हो तो ऐसी परिस्थितियों में आकर के भी, ऐसे स्थानों पर भी एक बहुत बड़े सुधार की गुँजाइश रहती है। बेटा बहुत गुस्सा करता है, उसकी उससे हमेशा ठनी रहती है, उससे उसकी पटती नहीं है; उन्हीं को लाकर के बैठा दो, अपने आप पटने लग जाएगी। यहाँ सामने बैठेंगे, उपदेश सुनेंगे सुबह से शाम तक... इतना ठण्डा कर दूँगा, इतना ठण्डा कर दूँगा कि घर पर जाकर के भी आप गर्म करने की कोशिश करोगे तो वे ठण्डे ही बने रहेंगे। सामने तो ही व्यक्ति! तब ठण्डा किया जाए। इसलिए आपसे कह रहा हूँ, जितने भी बच्चे यहाँ पर हैं; जो बच्चे हैं, बड़े हैं, बड़े होकर के विवाह भी हो गए हो, होने वाले हो, उन सब युवाओं पर focus करो। कमेटियों के लोग विशेष रूप से सुने। ऐसे घर बैठ कर के और केवल यहाँ mike से बोलने से काम नहीं चलेगा, इतने से आपकी responsibility पूरी नहीं हो जाएगी। अगर समाज के अन्दर 200 घर हैं, 300-350 बता रहे हो, कम से कम यहाँ पर हमें 200 आदमी तो दिखाई देने चाहिए; तब हम समझें कि यहाँ पर 300 घर हैं।

धर्म से जोड़ने के लिए उत्साहित करना चाहिए

अब ताली नहीं बजाओगे? यह काम किसका? कमेटी वालों का यह काम है। हर घर में जाकर के ढूँढ़ें, कहाँ पर बच्चे हैं? कहाँ पर आदमी हैं? उनको पकड़े, team बनायें, काम करें; यूँ बैठ कर के office में पान की पीक थूकने से कुछ नहीं होगा। जब यह मेहनत की जाएगी, लोगों के भाव बनाए जायेंगे तब आपको कुछ लाभ मिलेगा। हर व्यक्ति के अन्दर एक भाव बनाना, हर व्यक्ति को धर्म से जोड़ने के लिए उत्साहित करना; यह भी एक बहुत बड़ा धर्म होता है और यह धर्म अगर आप सीख गए तो फिर आपको धर्म में आनन्द आएगा। हम तो बैठ गए, हम तो बैठ रहे हैं...अरे भाई! हम नहीं बैठ रहे, हम बैठ रहे हैं तो हम दो को और

बैठा लेंगे, चार को और बैठा लेंगे। यह भाव जब आपके अन्दर आएगा, तब वह धर्म की वृद्धि का भाव कहलाएगा।

धर्म करने में आनन्द आएगा

इस तरह के भाव जब सब में आयेंगे तो फिर धर्म करने में भी आनन्द आएगा। इसलिए चाहे कोई सुमित्र हो, चाहे सुषेण हो, सबके लिए यहाँ entry है और सबके लिए यहाँ पर धर्म करने का भाव है। यहाँ पर किसी के लिए कोई आपत्ति नहीं आएगी। लड़ते-लड़ते भी यहाँ पर किसी भी तरीके से अगर आ गए तो भी आपको यहाँ पर प्रेम से रहने को मिलेगा, प्रेम से खाने को मिलेगा, आपके कषाय भावों में शान्ति अवश्य आएगी। चाहे सहेली हो, चाहे सहेला हो; उन दोनों के जीवन में चलता रहा और चलते-चलते एक क्षण वह आया, जब अभी तक तो वे सुमित्र राजा नहीं था, एक समय वह आया कि उसके पिताजी सन्यास लेकर के चले गए और उसको राजा बना दिया। अब बनेगा ही, राजा का बेटा तो राजा बनना ही है; अब वह राजा बन गया। जब वह राजा बन गया तो सुषेण को अब लगने लगा, अब यह अपनी नाक में दम और बढ़ गई। अब उसको उस समय पर कोई समझाने वाला था नहीं, नहीं तो वह भी सोच लेता कि यह भी अनन्तों बार हो चुका है। उसके लिए जब लगा कि यह हमारे लिए अब ज्यादा कष्टकारी हो गया। यह अब हमारे लिए और ज्यादा उपद्रव करेगा क्योंकि पहले तो राजा नहीं था, राज पुत्र ही था। अब तो यह खुद ही राजा बन गया है।

मोक्षमार्ग पर सुलझे हुए लोग लग सकते हैं

इसको परेशान करने की आदत है और यह परेशान करेगा तो उस परेशानी से बचने के लिए वे कहीं मुनि महाराज के पास जाकर के महाव्रतों को धारण कर लिया और वह मुनि महाराज बन गया। यह भी एक परेशानी का समाधान है। अब वह समाधान तत्काल भी हो सकता है और अगर भीतर ज्ञान नहीं है, तो वह समाधान कहीं न कहीं आगे चलकर के दिक्कत भी देने वाला बन सकता है। इसलिए कहा जाता है- भाई! मोक्षमार्ग पर सुलझे हुए लोग आया करें। परेशानियों को लेकर के आयेंगे, उलझे हुए लोग आयेंगे तो यहाँ पर भी आकर के वे सुलझ नहीं पाते हैं। इसलिए मोक्षमार्ग पर fresh लोग लिए जाते हैं, cream लोग लिए जाते हैं जिन्हें कोई ऐसी दिक्कतें न हो। कहीं से भाग करके न आए हो, किन्हीं दिक्कतों के कारण से लड़-झगड़ कर के न आए हो। कोई case न चल रहे हो, किसी के दबाव में न आए हो...वही मोक्षमार्ग पर सही से चल पाते हैं।

मोक्षमार्ग में कैसे व्यक्ति लग सकते हैं?

इसीलिए आचार्य महाराज जब भी किसी को मोक्षमार्ग पर लगाते हैं तो ऐसे ही लोगों को लगाते हैं, जिनके अभी विवाह नहीं हुए हो, जो किन्हीं केसों में न पड़े हो। लेकिन यह उस समय की बात है जब कोई भी दीक्षा ले सकता है, कोई भी व्यक्ति आकर के निवेदन भर कर ले बस! महाराज! दीक्षा चाहिए और दीक्षा तैयार है। पहले ऐसे ही होता था और कुछ साल तक अन्य साधु भी हर जगह ऐसे ही किया करते थे, होता भी

रहता था, अन्य जगह होता भी रहता है। केवल बस! आचार्य श्री को छोड़कर के सब संघों में चलता भी रहता है। कोई भी जाकर के निवेदन कर ले...महाराज! हमें दीक्षा चाहिए। चलो कब चाहिए? महाराज! एक महीना!...अरे! एक महीने की बात कर रहा, तू कल ही ले ले। बस! आज संकल्प कर ले, कल का उपवास और कल ही ले ले। एक महीना किसने देखा? ऐसी ही पहले एक परम्परा भी चलती थी। उसके पीछे कारण हुआ करता था...भाई! आदमी के अन्दर कुछ न कुछ तो सुधार आएगा, कुछ तो उसका पुण्य बढ़ेगा। कहीं न कहीं तो उसके लिए कल्याण की भावना आएगी, धर्म सीखेगा, कुछ तो करेगा, संस्कार पड़ेगा। इस जन्म में नहीं, दो चार जन्म के बाद सुधर जाएगा। कुछ तो सुधरेगा, यह सोचकर के भी लोग दीक्षा दे दिया करते थे और ऐसे लोग भी मिल जाते थे, जो परेशानियों में आकर के दीक्षा ले भी लिया करते थे। अब सुषेण ने जाकर के दीक्षा ले ली, मुनि महाराज बन गया।

अब सुषेण कौन हो गए? मुनि महाराज हो गए। अब बहुत दिनों के बाद में राजा सुमित्र को याद आया कि सुषेण बहुत दिनों से आया नहीं है, कोई खबर नहीं है, यह कहाँ चला गया? उसने बताया नहीं राजा को और उसने जाकर के दीक्षा ले ली। राजा को पता पड़ा, उसने दीक्षा ले ली! अरे! मेरा मित्र था और इतनी बड़ी दीक्षा और इतना संसार से विरक्ति का भाव उसके अन्दर कहाँ से आ गया? अब उसे क्या पता कि तेरी परेशानी उसके लिए विरक्ति का कारण बन गई। कभी-कभी दोस्त ऐसे ही होते हैं, परेशान करते जाते हैं और परेशानी में आदमी पड़ता जाता है। जब तक परेशान होता रहता है, वह खुश होते रहते हैं और कोई ज्यादा परेशानी में पड़ जाए, ज्यादा कुछ हो जाए, बीमार हो जाए, depressed हो जाए। अरे भाई! depressed क्यों हो गया? उसे नहीं पता कि तू ही depression का कारण है। अब जब ऐसा हो गया तो फिर वह राजा सुमित्र ढूँढ़ने लग गया। भाई! मेरा मित्र कहाँ गया? कुछ संयोग की बात! कई दिनों के बाद में उसका अपने ही नगर के आसपास जब मुनि महाराजों का आना हुआ तो उस समय पर सुमित्र को सुषेण के आगमन का समाचार मिला और वह सुषेण मुनि महाराज को देखने के लिए, दर्शन करने के लिए गया और जाने के बाद में वहाँ पर उसके साथ में कुछ वार्ता हुई। वह वार्ता आपको बाद में सुनाई जाएगी। अभी तो आप इतना ही ध्यान रखो कि जब भी आपके साथ में कुछ कष्टकारी घटना हो तो क्या कहना? यह तो अनन्तों बार हो चुका है। बस! ऐसा कहना।

गाथा: 26

सुख-दुःख भोगता हुआ पर्यटन करता है

एगो बंधइ कम्मं, एगो वह-बंध-मरण-वसणाइं।
विसहइ भवंमि भमडइ, एगुच्चिय कम्म-वेलविओ ॥26॥

अन्वयार्थ- 'यह जीव' (एगो) एक यानी अकेला 'ही' (कम्मं) कर्म को (बंधइ) बाँधता है 'तथा' (एगो) अकेला 'ही' (वह-बंध-मरण-वसणाइं) वध, बंधन, मरण 'आदि' के, व्यसन यानी दुःखों को (वि-सहइ) विशेषरूप से, सहता है 'तथा' (भवंमि) संसार में (एगुच्चिय) अकेला 'ही' (कम्म-वेलविओ) कर्म से, ठगा गया (भमडइ) भ्रमण करता है ॥26॥

अपने-अपने कर्म का फल भोगे संसार



वैराग्य शतक ग्रन्थ की प्राकृत गाथाओं के माध्यम से जो संसार में हमें दिखाई देता है, उन्हीं भावों को पिरोते हुए उन भावों में किस तरह से हम जीयें और संसार की इस दशा को देखकर के हमारे सोचने की परिणति किस ओर जाए? इन विचारों के साथ ही इस ग्रन्थ की रचना हुई है और इन गाथाओं के माध्यम से जो हमें कुछ ज्ञान मिल रहा है, वह ज्ञान आगे बढ़ाते हुए गाथा नम्बर 26, 27, 28 पढ़ते हैं...

एगो बंधइ कम्मं, एगो वह-बंध-मरण-वसणाइं।
विसहइ भवंमि भमडइ, एगुच्चिय कम्म-वेलविओ ॥26॥

अण्णो ण कुणइ अहियं, हियं पि अप्पा करेइ ण हु अण्णो।
अप्प-कयं सुह-दुक्खं, भुंजसि ता कीस दीण-मुहो ॥27॥

बहु-आरंभ-विट्ठं, वित्तं विलसंति जीव! सयण-गणा।
तज्जणिय-पाव-कम्मं, अणुभवसि पुणो तुमं चेव ॥28॥

प्रस्तावना

यह भाव यहाँ पर गाथा नम्बर 26 के माध्यम से आता है... 'एगो बंधइ कम्मं' जीव अकेला ही कर्म का बन्ध

करता है। ‘एगो वह-बंध-मरण-वसणाइं’ और जीव एका ही, अकेला ही वध है, बन्ध है, मरण है। इनके ‘वसण’ अर्थात् कष्ट को ‘विसहइ’ अर्थात् सहन करता है। ‘भवमि भमडइ’ इस संसार में भ्रमण करता है... ‘एगुच्चिय कम्म-वेलविओ’ अकेला ही कर्मों से विलिप्त होकर के, अकेला ही इस संसार में भ्रमण करता है। यह यहाँ पर एक तरह से देखा जाए, भावना शतक में आपको जो 12 भावनायें हैं, उनके बारे में भी एक चित्रण मिल रहा है और इन 12 भावनाओं में एक भावना आती है- एकत्व भावना। पहली होती है- अनित्य भावना, दूसरी होती है- अशरण भावना, तीसरी होती है- संसार भावना। इन तीन भावनाओं का चित्रण पीछे हो चुका है। अनित्य के बारे में भी बताया गया, अशरण के बारे में भी बताया गया, संसार के बारे में भी पहले बताया गया। यह अब आपके सामने एकत्व भावना आ रही है और एकत्व भावना के माध्यम से भी हमें एक बोध मिलता है, तत्त्व का ज्ञान मिलता है।

एकत्व भावना का ज्ञान

एकत्व भावना में हम देखेंगे, संसार भावना में भी हम देखेंगे, चीजें वही हैं जो घटित हो रही है लेकिन हमें जब तक पता नहीं होता, हमारा ज्ञान जब तक उस दिशा में काम नहीं करता तब तक हमें घटित होने वाली चीजों में किस तरह से सोचना? किस तरह से विचार करना यह हमारे अन्दर नहीं आ पाता। हर व्यक्ति जानता है, इस संसार में जो कुछ भी वह सुख-दुःख भोगता है, किसी भी तरह के कष्टों को वह अकेला ही सहन करता है। लेकिन इसको जब हम एकत्व भावना के माध्यम से अपने मन में विचार में लाते हैं तो हमारे अन्दर एक बल उत्पन्न होता है, एक शक्ति आती है। इस विश्वास के साथ ही शक्ति आती है कि एक आत्मा अकेला ही वह कर्म का बन्ध करता है। कर्म का बन्ध करने वाला कौन है? हमारा स्वयं का आत्मा, हमारा स्वयं का जीव। इस संसार में आकर के वह अकेला ही कर्म बांधता है। कर्म बांधने के लिए किसी दो की आवश्यकता नहीं है कि भाई! बहुत कठिन प्रक्रिया थोड़ा सहारा दे देना। जैसे किसी पाटे को हटाने के लिए, bench को हटाने के लिए, किसी को बुलाना पड़ता है कि भाई! एक तरफ तुम पकड़ लो, एक तरफ हम पकड़ लेते हैं। ऐसे कभी कर्म को बांधने के लिए किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती। कर्म जीव अकेला ही बांधता है यानी जीव का यह स्वयं का कार्य है कि वह कर्म का बन्ध करता है और इस कार्य में कोई दूसरा भी सहयोगी बाहर से बने तो बने लेकिन वह कर्म का बन्ध तो अकेला करने में समर्थ होता है। जैसा वह कर्म करता है उसी के अनुसार वध, बन्धन, मरण आदि के दुःख उसे प्राप्त होते हैं। जीव ने कर्म किए हैं और जीव के उन कर्मों के बन्ध के कारण से ही उसे कभी कष्ट मिलते हैं तो वह कष्ट भी कई तरीके के हो सकते हैं। किसी का वध हो गया; मार देना, मर जाना, इसमें कितना कष्ट होता है! किसी को बांध लिया गया, बन्धन में डाल दिया गया, इसमें भी बहुत दुःख होता है। किसी के लिए जबरदस्ती मरण करा दिया गया, किसी को मार दिया गया, उसकी मृत्यु हो गई; मरते समय उसके लिए कितना कष्ट होता है! जब कोई unexpected उसके सामने कोई स्थिति बन जाती हो और वह उस समय पर उसे मरना पड़ता हो। इन सब कष्टों को जीव सहन करता है। कष्ट के समय पर उसके साथ में उन कष्टों से उसे बचाने वाला कोई होकर के भी उस कष्ट में कोई कमी नहीं ला पाता और वह जीव अकेला ही इनको सहन करता है, अकेला ही संसार में भ्रमण करता है और अकेला ही इन कर्मों से लिप्त होता हुआ, हमेशा इन संसार के कर्मों के फलों को भोगता रहता है।

कर्म बन्ध, कर्म फल का चिन्तन- एक विज्ञान

हो सब वही रहा है लेकिन इसको समझना कि यह क्या हो रहा है? इसी का नाम विज्ञान कहलाता है। इसी का नाम किसी भी तरह की science अगर आप समझेंगे तो science कोई और चीज नहीं होती। जो रहा है उसी को ढंग से समझने का नाम ही विज्ञान होता है। मानो आपका शरीर है और उस शरीर के अन्दर सब कुछ चल रहा है कि आप भोजन करते हैं तो भोजन अपने आप सब तरह से वितरित हो जाता है, शरीर में शक्ति प्रदान कर देता है लेकिन उसके बारे में जानकारी प्राप्त कर लेना कि भोजन कहाँ जाता है? कैसे जाता है? फिर वह कैसे वितरित होने के लिए किस तरह की process में ढलता है? कैसे हमारे blood के अन्दर, कैसे हमारी body के अन्दर उससे शक्ति मिलती है? यह अगर हम जानकारी बारीकी से देते हैं तो उसी का नाम विज्ञान हो जाता है। ठीक इसी तरह से हम अकेले ही संसार में कर्म का बन्ध करते हैं। हम अकेले ही होते हैं, जब हम किसी भी तरह के चाहे किसी का वध कर दे या कोई हमारा वध कर दे या हम किसी बन्धनों में पड़ जाएँ या कोई हमारा मरण कर दे, बांध दे, किसी भी तरह के हमें कोई कष्ट देता है तो हम उन कष्टों को सहन करते हैं, अकेले ही करते हैं। यह सबको पता है लेकिन हम इसे समझते नहीं हैं।

जीव स्वयं ही कर्म का कर्ता व भोक्ता

यह सब प्रक्रिया हमारे साथ में चलती है और इस प्रक्रिया में हम अकेले ही हैं। हम हाथ तौबा कितनी भी कर ले लेकिन जो कष्ट हमें भोगना है, वह कष्ट हम ही भोगेंगे...कोई दूसरा नहीं भोग सकता। यह कर्म बन्ध की प्रक्रिया पर अगर हमें विश्वास आ जाता है, तो हमारे लिए बहुत कुछ संसार में दुःख कम हो सकता है और यही प्रक्रिया हमें एकत्व भावना की ओर लाती है। एकत्व भावना का मतलब ही है कि हम अकेले ही संसार में कर्म बांधते हैं और उसी कर्म के अनुरूप हम अकेले ही फल को भोगते हैं। आपके लिए किसी भी तरह के कोई भी साधन मिल जायें, निमित्त मिल जायें, सहयोगी मिल जायें लेकिन वह कर्म का बन्ध जो आपने कर रखा है, उसी के अनुरूप आपको साधन मिलेंगे, निमित्त मिलेंगे, कारण मिलेंगे और उसी के अनुरूप आपके लिए फल की प्राप्ति होगी। यह अकेला ही आत्मा के द्वारा किया जाने वाला कर्म बन्ध है और अकेला ही आत्मा के द्वारा भोगा जाने वाला कर्म फल है। जब हम इस भाव में आ जायें कि मैं अकेला ही कर्म बन्ध के लिए जिम्मेदार रहा हूँ, मैं अकेला ही कर्म का फल भोगने के लिए जिम्मेदार हूँ तो इस भाव का, इस विचार का नाम है- एकत्व भावना। हो तो अकेला ही रहा है आप माने या न माने, विचार करे या न करे। हो वही रहा है लेकिन अगर आप विचार कर लेते हैं तो आपके लिए एक नया ज्ञान, एक नया भाव आपके अन्दर आ सकता है और वही ज्ञान आपके अन्दर एक सुख भी पैदा कर सकता है।

सुख-दुःख - स्वकर्म फल

आप देखो! किस-किस तरह से जीवों के लिए वध-बन्धन होते रहते हैं? चाहे पशुओं के लिए देख लो, चाहे मनुष्यों के लिए देख लो। कितने मनुष्य अनाप-शनाप संख्या में मनुष्यों का वध-बन्धन होता है? कितने तरीके की kidnapping होती है? कितने तरीके के murder होते हैं? और कितने बुरे तरीकों से व्यक्ति मरण को प्राप्त होते हैं? उन कष्टों को अगर आप कभी news के माध्यम से देखते हैं, सुनते हैं तो आप समझ सकते हैं कि मरते समय पर उन वध-बन्धनों में पड़े हुए जीवों को कितना कष्ट हो सकता है, अगर आप

विचार करें तो। वह कष्ट उन जीवों के लिए मिल रहे हैं इसके लिए दूसरों को हम जिम्मेदार तो ठहराते हैं। लेकिन धर्म कहता है...हर कष्ट के लिए हम खुद जिम्मेदार हैं। अध्यात्म कहता है...आपके कर्म ही आपके लिए उस कष्ट की ओर प्रेरित करते हैं। ये कर्म आपने आज किए हो, यह जरूरी नहीं है, आज के कर्म तो आज भोगे ही नहीं जाते हैं। हम आज जो भोगते हैं, वे पिछले किए हुए कर्म होते हैं। जन्म-जन्मान्तर के किए हुए कर्म के फल से हमें आज कुछ भोगने को मिल रहा है और हम जो भोग रहे हैं उसमें चाहे अनुकूल आ जाए, चाहे प्रतिकूल आ जाए, आता हमारे कर्म के फल से ही है। हो वही रहा है लेकिन हम विश्वास नहीं करते और विश्वास कर ले तो हम विज्ञानी बन जायें, विशेष ज्ञानी बन जायें। इसी का नाम विशेष ज्ञानी कहा जाता है। विज्ञान का मतलब? विशेष ज्ञान! यही एक बहुत बड़ी science होती है, जो हम अपने भीतर की science को खुद समझने लग जायें। ऐसा ज्ञान पर विश्वास आ जाए कि भाई! जो कुछ भी हमारे जीवन में हो रहा है वह हम खुद ही कर रहे हैं, खुद ही हमारे किए हुए का फल है, कोई दूसरा उसके लिए कुछ भी जिम्मेदार नहीं है। यह भाव अगर आता है तो आप कभी दूसरों के द्वारा दुःख दिए जाने पर भी दूसरों से अपना बैर नहीं बांधोगे। दूसरों के द्वारा पीड़ित किए जाने पर भी आप कभी दूसरों को जिम्मेदार नहीं ठहराओगे। दूसरों के द्वारा अगर आपके लिए किसी भी तरह का कोई दुःख मिल रहा है, तो आप उससे यह नहीं सोचोगे कि यह केवल यही कर रहा है। आप एक क्षण के लिए यह सोच पाओगे कि नहीं! यह मेरे ही कर्म का कार्य है और यह सोचना ही सबसे बड़ा विज्ञान है।

सुख-दुःख पूर्व कर्म का ही कारण- व्यवहार सत्य

हर मनुष्य की अन्दर बैठी हुई आत्मा पिछले जन्म के कर्मों के साथ बन्ध को प्राप्त होने के कारण से जब उन फलों को प्राप्त करता है, तो उसके सामने इस तरह के कष्ट आ जाते हैं। वध, बन्धन, मरण आदि अनेक तरह के दुःख सहन करने पड़ जाते हैं। हम हमेशा दोष दूसरों को देते हैं और व्यवहार में संसार में दोषी दूसरा ही होता है। जैसे किसी ने आपका murder कर दिया। हम किसको पकड़ेंगे?? अब जो मर गया उसको क्या पकड़ेंगे? वह तो चला गया। पकड़ा उसको जाएगा जिसने murder कर दिया। दोष उसका है लेकिन यह संसार की व्यवस्था है। उसको पकड़ना, उसके लिए आंदोलन होना, उसके लिए तरह-तरह की सजाएँ प्राप्त कराने के लिए उद्बलित होना, ये सब संसार की व्यवस्थाएँ हैं और संसार इनसे चलता है। लेकिन अध्यात्म की व्यवस्था अपनी जगह पर अलग है। अध्यात्म कहता है...उसने अगर आपके ऊपर गोली मार दी, उसने आपका murder कर दिया तो कहीं न कहीं आपके भी कर्म का उसमें कारण है और आप स्वयं भी उस तरह के कर्म के लिए जिम्मेदार हैं। लेकिन ऐसा कहना व्यवहार में अच्छा नहीं लगता। कोई मर गया हो; अब मरा है कोई व्यक्ति तो उसके रिश्तेदार भी होंगे, घर के लोग भी होंगे तो उस समय पर उन सबके साथ में एक sympathy दिखाते हुए उन सबके लिए यह कहना कि यह गलत हुआ है, यह गलत हुआ है, उसने गलत किया है, यह व्यवहार है...यह व्यवहार सत्य है।

कर्म फल, कर्म बन्ध का ही परिपाक

लेकिन एक दूसरा दृष्टिकोण भी हमारे अन्दर होना चाहिए कि इसमें भी कहीं न कहीं उस व्यक्ति के भी पूर्व कर्म का कार्य है जिसके कारण से उसे इस तरह का अचानक से अकाल में मरना पड़ गया। उसके लिए

गोली लग गई, उसके लिए दुःख हो गया, उसकी मृत्यु हो गई। यह जो दूसरा पहलू अध्यात्म का है, यह कोई सोच नहीं पाता है। इस ओर किसी की दृष्टि नहीं जाती है और इस ओर दृष्टि न जाने के कारण से ही हम हमेशा दूसरों पर ही क्रोधित होते हैं, दूसरों पर ही हम दोषारोपण करते हैं और दूसरे को ही दोषी समझते हैं और यह होता रहता है। आप देखोगे! आपके समक्ष इस तरह की घटनाएँ होती रहती हैं, शहरों में भी होती हैं, दूसरे शहरों में भी होती रहती हैं। इन घटनाओं के माध्यम से कभी हमारी दृष्टि इस ओर आ पाती है क्या? भाई! क्या ऐसा भी हम कभी विचार कर पाते हैं कि इसमें उस व्यक्ति के भी इस तरह के कर्म का उदय हो सकता है या मेरे खुद का अगर मेरे साथ भी खुद हो रहा है, तो वह मेरे ही कर्म के कारण से हो रहा है। मैंने जैसा कर्म बन्ध किया था, उसी के कारण से हो रहा है। इस तरह का विचार आ जाए तो हमारे अन्दर एक बहुत बड़ा शान्ति का परिणाम, शान्ति का भाव उत्पन्न हो सकता है लेकिन वह हो नहीं पाता।

कर्म बन्ध-कर्म फल प्रक्रिया को जानना

हमारी आदत में, हमारी बुद्धि में हमेशा यही बात बनी रहती है कि उसने मेरे लिए गलत कर दिया। हमारे कर्म हमारे साथ में कभी इस तरह की व्यवस्था बना सकते हैं; यह हमें कभी भी महसूस नहीं होता, मरते दम तक नहीं होता। आदमी के लिए किसी भी तरह का मरण उपस्थित हुआ हो, कभी-कभी दूसरों की रक्षा करते हुए भी जीव का मरण हो जाता है। अभी हाल ही में कुछ सैनिक शहीद हुए, होते ही रहते हैं। समाज की रक्षा करने के लिए, देशवासियों की रक्षा करने के लिए, कितने ही लोगों को border पर शहीद होना पड़ता है और आप देखो! आतंकियों के माध्यम से जब आतंक मचाया जाता है, तो उससे रक्षा करने के लिए कितने लोग अपनी जान गवाँ देते हैं? हम उन सब शहीदों के लिए एक सम्मान देते हैं, हम उन सब शहीदों के लिए एक भीतर से करुणा की भावना भी लाते हैं कि देखो! इनके परिवार में कितना दुःख हो गया और यह दुःख हो जाता है। अब यह दुःख है और यह हमेशा से होता आ रहा है। कितने ही ऐसे जवान होते हैं जिनकी एक साल पहले शादी हुई हो, चार महीने पहले शादी हुई हो, अचानक से उनको गोली लग जाती है, उनकी मृत्यु हो जाती है; हम कितने ही तरह के ऐसे भी लोगों को देखते हैं। यह तो चलो अच्छे लोग हुए जिन्होंने किसी की रक्षा में अपने प्राण निकाले, देश की रक्षा में इनके प्राण गये। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो किसी की रक्षा नहीं करते, केवल मारते ही हैं। अब मान लो कि हम दूसरी तरफ से देखे कि जिन आतंकियों ने इस तरह का कोई कृत्य किया और इनका मरण हो गया। अगर कभी वह आतंकी भी किसी न किसी की गोली खाएँगे, वे भी तो मरेंगे। जब वे मरेंगे तो उनके भी कोई न कोई परिवार तो होंगे ही। वहाँ पर भी कहीं न कहीं उनके परिवारों में दुःख होगा लेकिन उस दुःख से हमें कोई प्रयोजन नहीं होगा क्योंकि हमने अपने आप को विभाजित किया है कि नहीं! यह हमारे देश की बात है, यह उनके आतंक की बात है।

आध्यात्मिक सोच व्यावहारिक मानसिकता से ऊपर होती है

यह हमारे अन्दर का एक व्यवहार है और इस व्यवहार में हम जिस तरह की मानसिकता बना लेते हैं, वह मानसिकता अपने लिए ठीक है लेकिन जब आप इस व्यवहार से ऊपर उठेंगे तो आपको एक मानसिकता यह भी देखनी पड़ेगी कि जीव कहीं भी मरे? कैसे भी मरे? कोई भी मरे? जीव अगर मरता है, तो वह अपने कर्म के कारण से ही मरता है। अब मान लो वही आतंकी है जिसने किसी को मार दिया, उसने भी पाप कर्म

का बन्ध किया। अब वही आतंकी कभी मरण को प्राप्त होगा और वह पुनः फिर कभी कोई जन्म लेगा। मान लो मनुष्य का जन्म ले लिया और वह फिर कभी मनुष्य के जन्म में आगे बढ़ा, थोड़ा-सा बढ़ा हुआ; उसको मान लो 18 साल का, 15 साल का हो गया और फिर उसके लिए कोई ऐसा निमित्त लग गया कि उसी व्यक्ति ने जिसने उसको गोली मारी है, उसी व्यक्ति ने उसको गोली मार दी। अब इसमें कितनी देर लगेगी? 15-18 साल बीतेंगे और वे निकल जायेंगे और वह व्यक्ति फिर उसको गोली मार देगा। तब हम फिर कहेंगे कि देखो! वह 15 साल का व्यक्ति था, 18 साल का व्यक्ति था, उसने उसको गोली मार दी, अच्छा नहीं किया। अगर वही व्यक्ति अपने देश में उत्पन्न हो गया, अपने यहाँ पर उत्पन्न हो गया, अपने परिचय का हो गया तो अपने को दुःख होगा और नहीं हुआ तो ऐसे तो कितने ही मरते रहते हैं, हम कभी किसी के बारे में सोच नहीं पाते हैं।

अध्यात्म - दुःख को दूर करने की दवा

जो व्यक्ति किसी न किसी रूप में वध-बन्धन को प्राप्त होता है, मरण को प्राप्त होता है वह भी कहीं न कहीं पिछले अपने कर्मों के कारण से इस तरह की स्थिति को प्राप्त होता है; यह कहना ही अध्यात्म है, यह कहना ही धर्म है और यह विचार करना ही शान्ति को लाने वाला है। अन्यथा दुःख को दूर करने की और कोई दवाई है नहीं लेकिन व्यवहार में जो व्यक्ति दुःखी होता है, हम उसके साथ दुःखी होना शुरू कर देते हैं। यह व्यवहार होता है भाई! अगर किसी के घर में कोई गमी हो गई है, कोई व्यक्ति मरण को प्राप्त हो गया है, तो उसके समक्ष पहुँच कर के थोड़ा-सा दुःखी तुम भी हो जाओ ताकि उसे लगे कि हमारे दुःख में ये भी दुःखी हैं। यह व्यवहार है लेकिन व्यवहार होते हुए भी एक सत्य, भीतरी सत्य जो होता है, वह कुछ अलग होता है। वह व्यक्ति समझ भी सकता है जो व्यक्ति वहाँ पर गया है, उसकी गमी में गया है, वह व्यक्ति समझ सकता है और जो स्वयं रो रहा है वह भी समझ सकता है। लेकिन उस समय वह सत्य उजागर नहीं किया जाएगा क्योंकि यह अच्छी बात नहीं होगी कि अगर किसी व्यक्ति के लिए कोई गमी हो गई है और उस समय पर आप कहो भाई! वह तो अपने कर्म के कारण से मरण को प्राप्त हो गया तो अच्छा नहीं माना जाएगा। लेकिन कहीं न कहीं आपको एहसास तो होगा ही और यह एहसास होना चाहिए कि नहीं? बताओ?

कर्म फल, कर्म बन्ध की विवशता

अतिथि महोदय आज यहाँ बहुत सारे बैठे हैं, पटवारी संघ बैठा है। ये वही पटवारी हैं जो जमीन के लेन-देन के काम करते हैं। अब आप देखो! इनसे भी पूछ लो, कितने ही लोगों की जमीनें, यह जहाँ निशान लगा दे, वहीं पर right हो जाती हैं। ये लोग इतने विश्वस्त माने जाते हैं कि अगर किसी व्यक्ति को अपनी जमीन का सीमांकन कराना है, नाप-तौल कराना है और अगर खसरे में कहीं पर किसी को पता नहीं हो कि भाई! जमीन कहाँ से कहाँ तक है, तो उसके लिए यही प्रामाणिक हैं। जहाँ यह कह देंगे... भाई! यह line यहाँ तक है, बस! वह पक्की लकीर हो गई, अब उस लकीर को कोई हटा नहीं सकता है। आपके हाथ में भी बहुत कुछ होता है। कितने ही लोगों की जमीन आप गबन भी करा सकते हो, कितने ही लोगों की जमीनों में आप उन्हें उनका हक भी दिला सकते हो, कितने ही लोगों की जमीनें जो उलझी हुई रहती हैं, आप उन्हें सुलझा भी सकते हो। आप लोगों के यह हक में होता है लेकिन कभी-कभी आप लोगों के सामने भी यह परिस्थिति

गाथा: 27

आत्मा अपना हित या अहित स्वयं करता है, कोई
अन्य नहीं करता है

अण्णो ण कुणइ अहियं, हियं पि अप्पा करेइ ण हु अण्णो।

अप्प-कयं सुह-दुक्खं, भुंजसि ता कीस दीण-मुहो ॥27॥

अन्यार्थ- 'इस जीव का कोई' (अण्णो) अन्य (अहियं) अहित (ण) नहीं (कुणइ) करता है 'किन्तु' (अप्पा) आत्मा 'स्वयं' (हु) ही (करेइ) करता है 'तथा' (हियं) हित (पि) भी 'कोई' (अण्णो) अन्य (ण) 'नहीं करता है' (अप्पा) आत्मा 'स्वयं' (करेइ) करता है 'इस प्रकार जब तुम ही' (अप्प-कयं सुह-दुक्खं) अपने, किये, सुख-दुःख को (भुंजसि) भोगते हो (ता) तो (दीण-मुहो) दीनमुख (कीस) किस कारण से हो? ॥27॥

देखो! गाथा 27 नम्बर में लिखा है 'अण्णो ण कुणइ अहियं' अन्य कोई आपका 'अहियं' अर्थात् अहित नहीं कर सकता है। 'हियं पि अप्पा करेइ ण हु अण्णो' और आत्मा का हित भी, आपका हित भी आप स्वयं ही करते हैं, अन्य नहीं करता है। हित और अहित तो समझते हैं? इसने मेरे लिए हित कर दिया, यह मेरा हितैषी हो गया। इसने मेरा अहित कर दिया, यह मेरा शत्रु हो गया। हम यह तो कह देते हैं, तुम मेरे लिए बहुत हितैषी हो। तुम ही मेरे बारे में अच्छा सोचते हो, बाकी वह तो मेरे बारे में हमेशा गलत ही सोचता है। हम यूँ तो कह देते हैं कि आप मेरे हितैषी हो, आप हितैच्छुक हो लेकिन हम कभी यह नहीं सोच पाते हैं कि हमारा हित हमारा ही आत्मा करता है और कोई दूसरा नहीं कर सकता। दूसरा क्या हमारा हित कर पाएगा? दूसरा अगर हमारे हित के लिए कभी सोच भी लेगा तो हमारा हित तभी होगा जब हमारी आत्मा में कुछ उसकी शक्ति करने के लिए होगी, उस तरह के हमने कर्म पहले किए होंगे। आप अपने बच्चे के बारे में लाख सोच लो...बेटा IAS बन जाए, Collector बन जाए। तुम्हारे सोचने से क्या वह Collector बन जाएगा? उसकी आत्मा का हित वह खुद करेगा। अगर उसे Collector बनना है, तो उसकी योग्यता उसको Collector बनाएगी। तुम्हारे सोचने से वह Collector नहीं बन जाएगा। तुम भले ही चाहे उसको कितनी बड़ी-बड़ी coaching करा दो, चाहे कितने ही अच्छे notes दिला दो, चाहे कितने बड़े-बड़े उसको coacher, tutor सब उसके लिए उपलब्ध करा दो लेकिन उसका हित जब होगा तो उसके ही योग्यता से होगा और वह योग्यता कहाँ से आती है? उसके ही अपने कर्म के कारण से वह आत्मा वह योग्यता को प्राप्त करेगा। आत्मा का हित करने वाला कौन होता है? अन्य नहीं होता कोई, अपनी आत्मा ही करेगी। जब हित अपनी आत्मा करेगी तो अहित भी अपनी आत्मा ही करेगी।

कर्म बंध-कर्म फल की प्रक्रिया का ज्ञान बचाएगा नये कर्म के बंध से

अब भाई! तुमने मेरे लिए अहित कर दिया, तुमने मेरे लिए बुरा कर दिया, तुमने मेरे लिए बहुत बड़ी बुराई कर दी तो बुराई उसने नहीं कर दी। बुराई भी हमारे ही आत्मा में बंधे हुए कर्म के कारण से हमारी आत्मा को प्राप्त हो गई, करने वाला सामने कोई दूसरा निमित्त बन सकता है। अहित भी हमारी आत्मा का आत्मा ही करती है और हित भी आत्मा का आत्मा ही करती है। ये बातें अगर हमारे कहीं जहन में उतर जाए और कहीं हमारे विश्वास में आ जाए तो कितना अच्छा हो। इन विचारों के माध्यम से ही आप अपने लिए कुछ अच्छा या बुरा जब करने को चलते हैं और आपके साथ में अच्छा नहीं हो पाता या बुरा हो जाता है, तो आप किस पर टूटते हैं? दूसरे पर! लेकिन अध्यात्म क्या कहता है? धर्म क्या कहता है? हमारी अपनी नैतिकता क्या कहती है? हम किसी के लिए कभी भी अगर बुरा सोचते हैं तो बुरा सोचने में हमारे अन्दर तो वे बुरे कर्म बंध ही गए। अब जब वह बुरे कर्म हमारे अन्दर बंध गए तो वह हमको कभी न कभी बुरा फल देंगे। इसलिए किसी के लिए न बुरा करो, न बुरा सोचो क्योंकि दूसरों के कारण से कर्म आपके अन्दर बंध रहे हैं और दूसरे को कभी पता न हो और कुछ उसे पता भी न हो कि आप उसके लिए क्या योजना बना रहे हैं? ऐसा होता है कि नहीं होता है? हम दूसरों के लिए अच्छी-अच्छी भी योजनाएँ बनाते हैं, बुरी-बुरी योजनाएँ भी बनाते हैं और उन योजनाओं का दूसरे के लिए कोई पता भी नहीं है लेकिन उन योजनाओं को बनाते हुए आपके लिए अच्छे या बुरे कर्म का बन्ध तो होगा ही।

कर्म फल, जन्म-जन्मान्तर के कर्म बन्ध का कारण

इसलिए आपकी आत्मा का जब कभी कोई अहित होगा तो फिर आप कहोगे हमने तो कभी किसी की बुराई की नहीं थी, अब हमारी बुराई क्यों हो रही है? तुमने बुराई नहीं की थी? कब नहीं की थी? कल नहीं की थी, दो-चार दिन पहले नहीं की थी। जन्म से लेकर के अभी तक तुम्हें पता है, तुमने कभी किसी की बुराई नहीं की? चलो वह भी याद कर लिया..हाँ! जन्म से लेकर अभी तक भी हमने किसी की बुराई नहीं की। अब इससे पहले भी कुछ था कि नहीं कि इसी जन्म में ही तुम्हारे लिए सब कर्म बने थे। इसी जन्म में ही तुम एक नए पैदा हुए थे, इसी जन्म में ही तुम्हारी शुरुआत हुई थी। इससे पहले कुछ था कि नहीं? हम जो पहले से लेकर के आते हैं ज्यादातर हम उन्हीं कर्मों के फल को भोगते हैं। जो पिछले जन्म में हमने अगर बुराइयाँ की हैं तो हमारे लिए वे बुराई मिलेंगी।

निराकुल भाव से कर्मानुभव करे

इस जन्म में बुराई कर रहे हैं, वह हमारे लिए इस जन्म में भी मिल सकती है, अगले जन्म में भी मिल सकती है। कर्मों का कोई अता-पता नहीं है लेकिन कर्म fix हो रहा है और इसलिए जब भी आपके लिए यह समझदारी आएगी कि हम यह मानने को तैयार हो जाएँ ‘अप्य-कयं सुह-दुक्खं’ मैं अपने ही किए हुए सुख-दुःख को ‘भुंजसि’ अर्थात् भोजता हूँ, तो आपके लिए फिर इस विचार के आने के बाद में फिर आपका भाव, आपका मुख दीन नहीं होना चाहिए। यहाँ लिखा है न? ‘ता कीस दीण-मुहो’ तो फिर तुम दीन मुख वाले किसलिए हो रहे हो? जब किसी के लिए कोई दुःख मिल रहा है या किसी के लिए कोई बुराई करने वाला मिल रहा है; अगर इसके लिए उसके मुख पर म्लानता आ रही है यह सुनकर के कि देखो!

लोग हमारी बुराई करते हैं, लोग हमारी निन्दा करते हैं। हम बहुत अच्छा करते हैं सबके लिए लेकिन फिर भी हमें घर में कोई भी अच्छा नहीं कहता है, तो आपके अन्दर यह विचार आना चाहिए कि हम उस समय पर अपने आप को दीन-हीन, म्लान मुख वाला करके अपने अन्दर निराशा उत्पन्न न करें। क्या करें? यह मेरे ही कर्म के फल से प्राप्त होने वाला सुख-दुःख है। जब मेरा ही है, तो मैं भोग रहा हूँ। दूसरे के बारे में हमें सोचना नहीं है।

मेरा आत्मा ही मेरे सुख-दुःख का कारण

ये सबकी बातें हैं कि केवल एक व्यक्ति की बातें हैं? सबकी बातें हैं न? दुनिया के हर इंसान की बातें हैं। सबके साथ अच्छा करने वाले भी लोग मिल जाते हैं, बुरा करने वाले भी लोग मिल जाते हैं और कभी-कभी अच्छा करने वाले भी लोग बुरा कर जाते हैं। जो लोग कभी अच्छा कर रहे होते हैं वह भी कभी-कभी बुरा कर जाते हैं और कभी-कभी बुरा करने वाले लोग भी अच्छे बनकर के सामने आ जाते हैं। क्या करोगे? अगर आपका focus अपनी आत्मा पर होगा, मेरा किया हुआ कर्म ही मुझे सुख और दुःख दे रहा है, वह कुछ नहीं कर रहा है। मेरा अहित करने वाला कौन? मैंने इस तरह के पहले कर्म किए, मेरी बुद्धि ऐसी बन गई कि मैंने उनसे अपने सम्बन्ध बना लिए इसलिए मेरी आत्मा का अहित मेरा ही कर्म कर रहा है। अगर आपके लिए कोई अच्छा हो रहा है, तो भी मेरी आत्मा का हित कौन कर रहा है? मेरी आत्मा ही कर रही है। यह हित और अहित कोई दूसरा नहीं करता। यह विचार अगर हर बच्चे के अन्दर आ जाए, हर बड़े के अन्दर आ जाए तो एक दृष्टि पैदा हो जाए; हम दूसरे के लिए कितना कर सकते हैं? क्या कर सकते हैं? अपना अहित हमारा ही आत्मा सोच लेता है और जो पहले किए हुए कर्म हैं उसी के कारण से वह आत्मा अहित की दशा को प्राप्त हुआ है, तो आप अपने आप में सन्तुष्ट भी रह सकते हैं, यह विचार करके कि यह मेरा ही किया हुआ कर्म का कार्य है, कोई दूसरा इसमें नहीं लगता है लेकिन यह विश्वास आता नहीं है। इस विश्वास को आने में बहुत समय लगता है।

राजा श्रेणिक के पूर्व भव की कहानी

राजा श्रेणिक जब मुनि महाराज के समक्ष बैठा-बैठा अपने पूर्वभव सुन रहा था तो अपने पूर्वभव में सुनते-सुनते उसने यह भी सुन लिया कि मैं पूर्वभव में राजा था, मेरा एक मित्र था और जब मैं खुद राजा बन गया तो क्या हुआ? मेरा मित्र दीक्षा ले लिया, सन्यास धारण कर लिया। अब देखिए! इसमें कौन किसके लिए कारण बन रहा है? इधर वह सन्यास भी धारण कर लिया और इसके लिए कारण कौन बन गया? उस सुषेण मित्र के लिए राजा सुमित्र कारण बन गया क्योंकि उसे यह भय हो गया कि अब यह और ज्यादा हमारे लिए आततायी हो जाएगा। उसके चंगुल से बचने के लिए वह वहाँ से निकल गया।



भीतर पड़ी धारणा बनती है गलत सोच का कारण

अब उसके अन्दर एक धारणा तो बनी हुई है कि यह हमारे लिए अच्छा नहीं है। देखना धारणाएँ कैसे काम

करती हैं? यह धारणा तो हमारे लिए अच्छा नहीं है, अब मुनि तो बन गया, साधु तो बन गया लेकिन यह धारणा, यह जो भीतर पड़ी है यह कहाँ निकली और कैसे निकलेगी? जो हम दूसरों के लिए सोचते हैं, हम समझते हैं कि हम बिल्कुल सही सोच रहे हैं। लेकिन दूसरा आपके लिए जब सोचने बैठता है, तो आप वैसा नहीं सोच पाते हैं जैसा दूसरा आपके लिए सोच रहा होता है। लेकिन आप उसके बारे में वैसा ही सोचेंगे जैसा हम ने पहले सोच रखा है। इसलिए कहा जाता है, दूसरों के बारे में कभी अपनी कोई सोच बनाना ही नहीं चाहिए। अरे! पहले अपने बारे में तो अपनी सोच बना ली। दूसरा क्या गलत होगा? क्या अच्छा होगा? उससे पहले यह सोचो कि हमारे साथ क्या गलत हो रहा है? क्या अच्छा हो रहा है? उसके जिम्मेदार हम हैं, यह नहीं सोच पाते हैं और हम दूसरे के लिए सोचने लग जाते हैं और सोचते-सोचते सब कुछ हो जाता है।

राजा श्रेणिक के पूर्व भव के राजा सुमित्र और सुषेण की मित्रता

अब वह जो सुषेण था साधु बन गए, तपस्या करने लगे। इधर राजा सुमित्र को जब पता पड़ा कि मेरा मित्र साधु बन गया तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह उनके पास में गया और उनके पास पहुँच कर के उनका अभिवादन किया और कहने लगा... मित्र! आपने क्या काम कर लिया? इतना बड़ा काम? हमारे साथ खेलते रहे और कभी बताया नहीं? अब वे उस समय पर क्या बोले कि यह काम का कारण कौन है? किसकी वजह से कर लिया? कोई बात नहीं... अब जो हो गया, वह तो अच्छा हो गया। आपने अब इतना बड़ा काम कैसे कर लिया और इतनी बड़ी तपस्या करने का मन क्यों बना लिया? अरे भाई! अब इसके बिना और कोई संसार में सुख का रास्ता है नहीं है। इसलिए मुझे लगा कि मैं अपनी आत्मा को सुख देने के लिए, अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए इससे अच्छा कोई हमारे लिए विचार नहीं लगा तो मैंने यही कार्य करना स्वीकार कर लिया।

सन्यासी मित्र सुषेण को राजा सुमित्र का आहार हेतु निवेदन

राजा प्रसन्न हुआ। भाई! आपने बड़ी हिम्मत का काम किया, बहुत अच्छा काम किया। मैं चाहूँगा, मेरी भावना है कि एक दिन आप हमारे राजमहल में आयें और आपका भोजन वहीं पर हो। अब मित्र का और क्या काम होता है? स मित्र ने, राजा मित्र ने अपने मित्र को invite किया कि अब एक दिन ऐसा हो जाए कि आपका भोजन हमारे राजमहल में हो जाए, बड़ी प्रसन्नता होगी, हमें अच्छा लगेगा। अब जो आप अपनी आत्मा के कल्याण के लिए कर रहे हैं, वह तो अच्छा है ही है। हम उसमें कोई व्यवधान नहीं बनना चाहते लेकिन हमारी एक भावना है। वह जो सुषेण मुनिराज थे, अब वे कहते हैं- राजन! यह काम अब तुम्हारे कहने से तो होने का नहीं। कहने का मतलब तुम कहोगे तो हम तुम्हारे घर कभी नहीं पहुँचेंगे क्योंकि मुनि महाराज निमंत्रण को स्वीकार करते नहीं हैं। चलते अपनी इच्छा से हैं। यह बात अलग है कि हम चलते-चलते तुम्हारे घर तक पहुँच जायें और आहार हो जाए तो बात अलग है लेकिन तुम कहोगे तो नहीं होगा। समझ में आ रहा है कि नहीं? कई लोग कह कर के भी गलती कर जाते हैं और कहे बिना उनका मन मानता नहीं है। जब आप कह देते हो तो समझना कि आपके लिए वह time और बढ़ गया क्योंकि वे कदम अगर रुकने भी होंगे तो अब नहीं रुकेंगे। अब वह राजा सुषेण, राजा सुमित्र के लिए इतना भाव तो आ गया कहने में और वह कह कर के चला गया।

मुनि महाराज के आहार में निरन्तर अन्तराय

उसके मन में एक भावना प्रबल आ गई कि इनका आहार तो हमारे यहाँ ही होना चाहिए और उसे पता है कि यह इस शहर के आसपास हैं तो इस शहर में आएँगे ही। आएँगे तो हमारे यहाँ आएँगे ही। अब वह राजा है, तो उसने इस बात के लिए एक शहर में घोषणा करवा दी...देखो! जब भी कभी वह मुनि महाराज आहार लेने के लिए आयें, उन्हें कोई भी आहार मत देना, कोई भी उनका पड़गाहन मत करना, अपने आप वे राजमहल के पास आएँगे तो उनका पड़गाहन हमारे यहाँ हो जाएगा, अब हम ही उनको आहार कराएँगे। अब प्रजा तो प्रजा है, राजा की बात को मानना प्रजा का कर्तव्य है। अब मुनि महाराज का आगमन हुआ एक महीने के उपवास के बाद। जो है सो है, जो हो सो हो, हमको क्या? तुम्हें क्या होना है? कुछ नहीं होना है। जो एक महीने का उपवास कर रहा है, करे। जो आहार दे रहा है, सो दे। जो होना है, सो हो...हम को तो क्या करना है? आप सुनाओ, हमें सुनना है। जो जानने में आए, सो जानना है। अब वह मुनि महाराज का एक महीने के बाद में आहार के बाद, आहार के लिए जो है नगर में जाना हुआ। राजा ने कह रखा था, कोई भी आहार देगा नहीं। मुनि महाराज घूमते-घूमते राजमहल के पास तक पहुँचे और राजमहल के पास पहुँचे तो वहाँ पर राजा जो है अपने आवश्यक कार्य में कुछ व्यस्त था, उसे पता ही नहीं पड़ा। कोई शत्रु पक्ष की बात थी, कोई विशेष मंत्रणा चल रही थी और उस समय पर राजा उस कार्य में व्यस्त रहा। मुनि महाराज घर के आंगन तक आए और लौट करके चले गए और कोई शहर के अन्दर मिला नहीं। अब उन्होंने अपना नियम बना रखा था कि अगर पारणा नहीं होगी तो मैं तो एक महीने का उपवास फिर करूँगा। वह एक महीने के लिए फिर से उपवास कर लिए। तपस्या में फिर खड़े हो गए। एक महीने बाद फिर आना हुआ शहर के लिए। शर्तें तो पुरानी थी...आहार होगा तो राजा के यहाँ ही होगा और राजा के लिए जब वह आहार देने का समय आया, उस समय पर वह मुनि महाराज घूमते-घूमते, घूमते-घूमते राजा के महल के पास तक पहुँचने को हुए। तभी कोई एक जंगली हाथी जो है दौड़ता हुआ आया और उसने उपद्रव मचा दिया पूरे के पूरे नगर के अन्दर और उसको पकड़ने के लिए, उसकी व्यवस्था बनाने के लिए राजा ने अपने मंत्रियों को नियुक्त कर दिया। प्रजा की रक्षा करने के लिए उसने अपनी नियोजना बनाने शुरू कर दिया और मुनि महाराज जो है अन्तराय करके वहाँ से फिर आकर लौट के आ गए। कितनी बार हो गया? दो बार हो गया और फिर मुनि महाराज ने एक महीने का उपवास कर लिया। अब फिर जो है एक महीने के बाद में फिर निकले और फिर एक महीने के बाद उसी शहर में पहुँच कर फिर देखा, यहाँ कोई श्रावक आहार ही नहीं देता। चलते-चलते फिर राजमहल के पास पहुँचे और संयोग की बात, उसी समय पर नगर में एक बड़ी आग लग गई और उस आग के कारण से पूरा शहर में जो है अफरी-तफरी मच गई। राजा फिर उसमें व्यस्त हो गया और मुनि महाराज फिर जो है लौट कर के आ गए।

निरन्तर अन्तराय तथा अज्ञान ने पुष्ट की गलत धारणा

मुनि महाराज के आहार नहीं हो पा रहे, तीन बार हो गया, तीन महीने हो गए। एक दादी अम्मा मुनि महाराज को देख कर के कहती है...यह राजा तो बड़ा दुष्ट है। न आहार देता है और न देने देता है और यह बात सुनने में आ गई...किसके? मुनि महाराज के। दादी अम्मा तो सुनाने के लिए ही बोली थी। सब कह जाती हैं कान में...‘अर्घं निर्वपामिति स्वाहा’ करते-करते ही वह सब कान में स्वाहा कर जाती है। अब वह दादी अम्मा ने

जब कान में बात डाल दी तो मुनि महाराज के लिए तो फिर क्या हो गया? यह ज्ञान नहीं आया उनके सामने जो यहाँ लिखा हुआ है... **‘अप्य-कयं सुह-दुक्खं भुंजसी’** हे जीव! तू अपने किए ही सुख-दुःख को भोगता है, यह बात उनके भी ज्ञान में नहीं आई। क्योंकि उन्हें ज्ञान देने के लिए न उनको गुरु मिले, न उन्हें शास्त्र मिले। वह सीधे गए, दीक्षा ले ली और दीक्षा लेने के बाद में सीधे खड़े हो गए तपस्या करने लग गए। ऐसा होता था पहले। जिसका जो उद्देश्य है, जिसका जो प्रयोजन है वह अपने लिए स्वतंत्र रहता था। भाई! हम केवल आपसे दीक्षा लेने आए हैं, आप दीक्षा दे दो। उन्होंने दीक्षा दे दी; हम जा रहे हैं, तपस्या करेंगे। हमारा मन है तपस्या करने का, हमें और कुछ नहीं करना है। ठीक है! जाओ तपस्या करो। चले गए। वे अपनी तपस्या करने लगे...कुछ ज्ञान उनके पास था नहीं। बस! यही तपस्या का बल था। एक महीने के बाद पारणा करने जाऊँगा, फिर एक महीने बाद जाऊँगा, फिर एक महीने; तीन महीने हो गए और तीन महीने बाद दादी अम्मा ने कान में एक अमृत घोल दिया। क्या कहेंगे इसको? अमृत कहे? क्या बोले? अब जैसे ही उन्होंने सुना कि यह राजा की करामात है कि यह राजा देने नहीं देता कि खुद भी नहीं देता तो दिमाग में पूरी reel घूम गई और reel तो घूम ही जाएगी। जिसके बारे में हमने जो सोच रखा है, जिसके बारे में जो धारणा अगर हमने बना ली है, तो हम उस धारणा को कभी भी अपने सामने ले आएँगे। जब भी हमारे लिए दिमाग में लगेगा कि भाई! यह हमारे लिए प्रतिकूल हो रहा है। घूम गई दिमाग में reel और जब reel घूमेगी दिमाग में तो क्या होगा?

मन के विपरीत कार्य से बिगड़ते परिणाम- अज्ञानता कारण

आप सोचो! वह तो एक महीने की बात है, एक दिन का ही उपवास करके देख लेना आप और दूसरे दिन कोई आपको समय पर भोजन न दे तो देख लेना आपकी क्या हालत होगी? देखना आपको कितना क्रोध आएगा, आपके तेवर क्या होंगे? अगर कोई भोजन देने बैठ जाए और उस समय पर आपको इच्छा हो कि हमें कोई गरम-गरम उकाली पिला दे, आज तो हमें खूब अच्छी बढ़िया-बढ़िया उकाली मिलेगी, रस मिलेंगे और आपके लिए कोई ठण्डा-ठण्डा पानी दे दे और पानी भी ठण्डा न हो बिल्कुल normal हो। आपकी इच्छा थी, कोई अच्छे ढंग से पारणा हो जाए और सामने वाले ने कुछ अच्छा दिया ही नहीं। दश धर्म के दिन आ रहे हैं। भूमिका बना ली अच्छे से, किस पर उबलना है? किसको उबालना है? क्या खाना है? किसको खाना है? नहीं समझ आया? किसको खाना है? आदमी दाल, रोटी, सब्जी खाता है कि किसी दूसरे को भी कभी-कभी खा जाता है। जब आप दूसरे पर उबलते हो तो आप उबला हुआ सामने जो पानी है, उसको पी रहे होते हो कि दूसरे पर उबल रहे होते हो। जब आप सोच रहे होते हो कि यह मुझे क्या खिला रहा है और उस समय पर आप खाने वाली चीज खा रहे होते हो, सामने वाले को खा रहे होते हो और आप तो आप ही हैं। अगर आपकी मनचाही पत्नी ने मनचाहा आपको न परोसा हो तो आपकी स्थिति क्या होगी? आप कुछ भी उस समय पर कर सकते हो। उसके ऊपर उबल भी सकते हो, उसको बिल्कुल जला भी सकते हो, उसको खा भी सकते हो। कभी-कभी कहा जाता है न कि यह तो मुझे खाने को दौड़ रहा है। कभी दौड़ते तो होंगे खाने के लिए? तभी तो कहा जाता है न खाने के लिए? यह कहावत गलत तो नहीं होगी? यह मुझे खाने को दौड़ रहा है। खाने को दौड़ रहा है मतलब? बोलो तो! इतने भोले बन कर बैठ जाते हो यहाँ जैसे कुछ जानते ही नहीं हो। ऐसा अपने साथ भी होता है कि नहीं? कोई अपने को खाने को दौड़ रहा है, कोई अपने को मारने को दौड़ रहा है, कोई अपने ऊपर उबल रहा है; यह सब होता रहता है और उस समय पर

हमारे अन्दर क्या परिणाम आता है? यह मेरा अहित करने वाला है, इसने मेरे लिए पहले भी अहित किया था और आज भी करने को तैयार है।

बड़ी से बड़ी तपस्या करना सरल लेकिन क्रोध के आवेग में संभलना मुश्किल

उन सुषेण मुनिराज के अन्दर यह विचार आ गया, इस राजा के कारण से मुझे तीन महीने से आहार नहीं मिला। यह जैसे पहले मुझे परेशान करता था, पहले मेरे साथ दुर्व्यवहार करता था, आज भी यह वही कर रहा है। जब आया था तो देखो! कैसा मीठा-मीठा बोल रहा था? मेरे राजमहल में आना, मैं अपने आप को धन्य मानूँगा, आपका आहार मेरे यहाँ हो जाएगा और यह देखो! दुष्ट कैसा कर रहा है? यह एक सुषेण की कहानी नहीं है, सभी की कहानी है और इस तरह की तपस्या करना सरल हो जाता है लेकिन अपने अन्दर के उबाल को control करना, यह कठिन हो जाता है। आप में ताकत है कि आप एक नहीं, एक महीने के उपवास कर सकते हो लेकिन अगर आपकी पारणा के दिन आपके लिए अनुकूलता कोई न दे और आपको अपनी इच्छित वस्तु की आपके सामने सामग्री न मिले तो आप कितने आगबबूला होंगे? कितना आपके अन्दर क्रोध आएगा? इसका अन्दाजा सिर्फ आप ही लगा पाओगे और कोई नहीं लगा पाएगा और यही उनके साथ हुआ। दिमाग में घूम गई उनके कि यह मेरा मित्र अभी भी मुझसे दुश्मनी निकाल रहा है और गुस्से में आकर के उन्होंने उस समय पर, जब आदमी गुस्से में आता है कुछ होश नहीं रहता। एक लात मार दी पत्थर पर और गिर पड़ा क्योंकि तीन महीने का उपासा तो था ही, सिर फूट गया और मरण को प्राप्त हो गया और मरने के बाद में वह व्यंतर जाति में देव बन गया।

स्थितप्रज्ञता घटित हो खुद पर

जो हो सो हो, जो है सो है, हमको क्या... समझो तो क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है? हमको कुछ नहीं ये तो ठीक है लेकिन अगर हमारे साथ भी कुछ हो तो भी यही बोलना है कि हमको क्या? अभी तो हम दूसरे के लिए बोल रहे हैं, हमको क्या? हमको क्या? और जब हमारे साथ हो तो याद रहेगा? तब भी यही बोलना है।

सन्यासी मित्र का मरण बना दुःख का कारण

उस समय पर उसकी मृत्यु हो गई, वह तो देव बन गया, व्यंतर जाति के देव बन गया। कोई बात नहीं चलो हो गई कहानी। अब इधर जो राजा थे इन्हें कुछ पता नहीं और कई दिनों के बाद में उन्हें पता पड़ा कि मेरे मित्र का वियोग हो गया, मेरे मित्र का मरण हो गया। अब राजा के परिणाम वह नहीं थे, जो उन मुनिराज के परिणाम थे। राजा के परिणाम क्या हैं? सही हैं। उसे पता ही नहीं पड़ा कि कब उसके सामने क्या हो गया? कब एक महीना गुजर गया? उसने कोई भी चीज intention पूर्वक नहीं की और उसको अपने मित्र के प्रति लगाव भी था। जब उसके मरण का समाचार सुना तो उसे दुःख हुआ, बहुत दुःख हुआ। भीतर से वह इतना व्यथित हुआ कि उसे दुनिया में कुछ भी अच्छा नहीं लगा। मेरा एक ही मित्र था और मैं उसके लिए भी कुछ नहीं कर पाया।

यह जीव स्वयं किये शुभाशुभ कर्मों के फल को स्वयं भोगता है

तज्जणिय-पाव-कम्मं, अणुभवसि पुणो तुमं चेव ॥28॥

अन्वयार्थ- (जीव!) हे जीव! (सयण-गणा) स्वजन-गण (बहु-आरंभ-विहतं वित्तं) बहुत, आरंभ से, उपार्जित, धन को (विलसन्ति) विलास यानी विषय-भोगों में उड़ाते हैं (पुणो) किन्तु (तज्जणिय-पाव-कम्मं) तज्जनित यानी उससे-उत्पन्न अर्थात् उस आरंभ से, उपार्जित, पाप-कर्म को (तुमं) तुम 'अकेले' (चेव) ही (अणुभवसि) अनुभव करते हो ॥28॥

बहुत प्रकार के आरम्भ करके हमने जो वित्त अर्जित किया, सारे लोग उस वित्त का उपयोग करके **‘विलसन्ति’** अर्थात् विलासता को प्राप्त हो रहे हैं। घर में सब लोग मजे ले रहे हैं, यूँ कहना चाहिए। कमा कौन रहा है? एक राजा अपने पुण्य से राज्य कर रहा है, एक राजा का पुण्य है और उस अपने पुण्य से कई लोगों के लिए वह दे भी रहा है लेकिन उस पुण्य में जिस तरह का पाप उसे करना पड़ता है, दूसरे राजाओं की हत्या करनी पड़ती है, अनेक निरपराध प्रजा की हत्या होती है युद्ध करने में, उन सबका भागी कौन बनेगा? राजा ही बनेगा। जो खा रहे हैं, वे नहीं बनेंगे। आप अगर किसी भी तरह का व्यापार कर रहे हो और उसमें जो हिंसा हो रही है, आप उसके जिम्मेदार होंगे, दूसरे खाने वाले नहीं होंगे। उन्हें क्या मतलब है? भाई! तुम तो लाओ, खिलाओ। तुम्हारा काम है कमाने का और हमारा काम है खाने का। कमाने वाला कमाता है और उस कमाई का फल जो दूसरा भोगता है, वह उसका जिम्मेदार नहीं होता है। अब पाप कर रहा है तो कमाने वाला कर रहा है लेकिन उसे अच्छा लग रहा है कि हमारे लिए इतने हितैषी हैं। इतने लोगों के लिए मैं हित कर रहा हूँ। आचार्य कहते हैं... **‘तज्जणिय-पाव-कम्मं’** उससे उत्पन्न हुए पाप कर्म का...हे जीव! तुम ही अनुभव करोगे जो पाप यहाँ कर रहे हो। दूसरों के लिए जो पाप कर रहे हो, उस पाप का फल कौन भोगेगा? अकेले ही भोगोगे, कोई दूसरा नहीं मिलेगा फिर वहाँ भोगने के लिए। अब वह राजा अपने चारों ओर देखता है, तो उसे दिखाई देता है कि हमारा इतना बड़ा राजपाट है। लेकिन आज हमारे लिए जो पश्चाताप हो रहा है, आज हमारे लिए जो धर्म की शरण मिल रही है, यह भी मुझे अकेले ही प्राप्त हो रही है और किसी को नहीं हो रही है और राजा श्रेणिक का मुनि महाराज के ऊपर अब जो श्रद्धा बना, जो विश्वास बना, बस! इसी श्रद्धा के कारण से उसके अन्दर एक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का भाव उसकी आत्मा में आ गया यानी वह अब भीतर से धर्मात्मा बनने को तत्पर हुआ, जब उसने मुनि महाराज की बात पर विश्वास कर लिया। अब उसके अन्दर विश्वास हो गया।

गाथा: 29

कर्म के वश से, जीव व शरीर का सम्बन्ध हुआ है

अह दुक्खिआइं तह भुक्खियाइं जह चित्तिआइं भिंडाइं।
तह थोवं पि ण अप्पा, विचित्तिओ जीव! किं भणिमो ॥29॥

अन्वयार्थ- (जीव!) हे जीव! (जह) जिस तरह (भिंडाइं) बालकगण (दुक्खिआइं) दुःखी हैं (तह) तथा (भुक्खियाइं) भूखे हैं (अह) इस भाँति 'तो तुमने' (चित्तिआइं) चिंतन किया है (तह) उसी तरह (अप्पा) अपना (थोवं) थोड़ा (पि) भी (वि-चित्तिओ) विशेष, चिंतन (ण) नहीं किया है (अह) अब 'इससे ज्यादा तुम्हें' (किं) क्या (भणिमो) कहें? ॥29॥



प्राकृत भाषा में वैराग्य शतक कृति के माध्यम से, कुछ यहाँ पर हम पढ़ते भी हैं, सीखते भी हैं, सुनते भी हैं और थोड़ा समझने की कोशिश भी करते ही हैं, इसी क्रम को...आगे बढ़ाते हुए गाथा नंबर 29, 30 और 31 पढ़ते हैं....

अह दुक्खिआइं तहभुक्खियाइं जह चित्तिआइं भिंडाइं।
तह थोवं पि ण अप्पा, विचित्तिओ जीव! किं भणिमो ॥29॥

खणभंगुरं सरीरं, जीवो अण्णो अ सासय-रुवो।
कम्मवसा संबंधो, णिब्बंधो इत्थ को तुज्झ ॥30॥

कह आयं कह चलियं, तुमं पि कह आगओ कहं गमिही।
अण्णुण्णंपि ण याणह, जीव! कुडुंबं कओ तुज्झ ॥31॥

प्राकृत भाषा की सरलता

यह प्राकृत भाषा है, यह अच्छी लगती है कि नहीं आप लोगों को? आचार्यों ने कहा है...यह प्राकृत भाषा महिलाओं की तरह कोमल होती है...नीतिकारों द्वारा भी यह कहा गया है। अपनी प्रशंसा सुनकर के खुश तो हो लेते हो, विशेष रूप से यह प्राकृत भाषा महिलाओं के लिए प्रिय होती है। यह प्राकृत भाषा सभी के लिए पढ़ने योग्य, बोलने योग्य, पहले हुआ करती थी और इस भाषा के माध्यम से ही पहले नाटकों में वाक्य

बोले जाते थे। अगर आप कभी पुराने नाटक जो आपके MA के कोर्स में चलते हैं, उनको अगर आप कभी देखोगे तो हर नाटक में आपको प्राकृत भाषा के भी वाक्य मिलेंगे, इसलिए यह भाषा सभी को बोलना चाहिए। कभी-कभी आपको लगेगा कि इस भाषा में बोलने में तो, थोड़ा-सा कुछ अटपटा सा लगता है। लेकिन वह शब्द बिल्कुल आपकी वही होंगे जो आप बोली भाषा में बोलते हैं और इसमें कोई ज्यादा व्याकरण नहीं होती। समझने के लिए बस! आपको एक बार यह जान लेना पड़ता है कि यहाँ पर किन शब्दों में क्या भाव निकल रहा है? इसी को आगे पढ़ते हुए **गाथा नंबर 29....**

अह दुक्खिआइं तहभुक्खियाइं जह चित्तिआइं भिंडाइं। तह थोवं पि ण अप्पा, विचित्तिओ जीव! किं भणिमो ॥29 ॥

क्या कहा जा रहा है? **‘भिंडाइं’** का मतलब भिंड यानी होता है...जैसे बालक होता है **‘बच्चा’** तो वह कभी दुःखी होता है कभी भूखा होता है, कभी कुछ सोच लेता है, ऐसा करता है, ऐसे ही आप भी हमेशा बड़े होने के बाद भी करते रहते हैं। जब बच्चा छोटा होता है तो उसके पास में यही दो-तीन काम होते हैं। क्या काम होते हैं? मम्मी-मम्मी, मम्मी भूख लगी है, फिर भूख की पूर्ति हो गई तो कुछ इस तरीके का उसके लिए काम हो जाएगा। या वह कुछ कर लेगा या अपने आप कहीं रो पड़ेगा, दुःखी हो जाएगा, फिर उसको मनाना पड़ेगा...दूसरा काम उसका यह रहता है। तीसरा काम और क्या हो सकता है? थोड़ा सा जब और बड़ा हो जाता है तो वह सोचता रहता है...यह लोग कैसे हैं? कौन हैं? हमारे बारे में क्या सोच रहे हैं? यह भी वह पड़ा-पड़ा सोचता रहता है। कौन हमारी मम्मी है? कौन पापा हैं? कौन दादू हैं? कौन चाचा हैं? यह भी वह पड़ा-पड़ा अपने दिमाग में सोचता रहता है, तो यह बच्चों के यही तीन काम होते हैं। कौन-कौन से? कभी रो लेना, दुःखी हो जाना, भूख प्यास के लिए चिल्लाने लग जाना या पड़े-पड़े कुछ भी सोचते रहना कि यह कौन है? और कौन हमें ज्यादा चाहता है? कौन बार-बार हमें गोदी में ले लेता है? किसकी गोदी में हमें जाना है? किसकी गोदी से भागना है? बच्चों के पास चिन्तन करने के लिए सिर्फ इतना ही विषय होता है। जब आप भी बच्चे थे, हम भी बच्चे थे तो इतना ही सोचते थे, इससे ज्यादा नहीं सोच पाते थे।

बचपन की आदतें बड़े होने पर भी वैसे ही बनी रहती हैं

लेकिन जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तब उनके लिए कुछ कहा जाता है कि यह बच्चों वाली बातें तो बहुत हो गईं, कुछ इससे भी ऊपर उठोगे कि नहीं उठोगे। लेकिन बच्चों की आदतें ऐसी पड़ी रहती हैं कि बड़े होने के बाद भी उनकी आदतों में कोई ज्यादा सुधार नहीं आता है, बस! इन्हीं चीजों का विस्तार हो जाता है। बड़े होने के बाद भी आदमी क्या करता है? यही तीन काम करता है। मन है तो विचार करता रहेगा, चिन्तन करता रहेगा **‘चित्तिआइं’**...जैसे बने तैसे। **‘अह’** का मतलब है- यहाँ से शुरुआत होती है, दुःखों से। **तह** का मतलब है- उसके बाद फिर क्या होता है? भूख-प्यास की बाधाओं में पड़ने लग जाता है, और फिर **जह** का मतलब जैसे-तैसे कुछ होता है, तो फिर वह सोच विचार में पड़ जाता है। बस! यह तीन काम आदमी बड़ा होकर के भी यही करता रहता है।

बड़ा होकर के यह तीन काम करने की प्रवृत्ति

पहले कुछ न कुछ उसके सामने दुःख आएँगे। दुःख की पूर्ति करने के लिए वह कहीं न कहीं, कुछ न कुछ दौड़ लगाएगा। किसी भी तरह के आयोजन करेगा, योजनाएँ बनाएगा उस दुःख की पूर्ति को दूर करने के लिए। फिर उसके लिए दूसरा काम होगा कि किसी न किसी तरह से भूख-प्यास की जो यह बाधाएँ हैं, इनको दूर करने के लिए अच्छा खाया-पिया जाए, यह उसका दूसरा भाव रहता है और तीसरा भाव मन में लड्डू फोड़ते रहना, मन के लड्डू खाते रहना। मन के लड्डू जानते हो?

बच्चे बना रहना—सुखद भावात्मक परिणति

यह बड़ों के लिए कहा जा रहा है...बड़े होने के बाद में हर बच्चा देखा जाए तो कहीं न कहीं बच्चा ही होता है, चाहे उम्र कितनी भी हो जाए। किसी न किसी के समक्ष आप बच्चे ही रहोगे और बच्चा रहोगे तभी कुछ सीख पाओगे। अगर यहाँ पर आप बैठे हो तो भी हम समझते हैं— बच्चे का भाव लेकर के बैठोगे तो कुछ सीख पाओगे और अगर बच्चे का भाव आप में नहीं है, तो आप यहाँ बैठ कर के कुछ सीख नहीं पाओगे। इसलिए जिन्दगी में हमेशा बच्चे बना रहना, अपने आप में एक बहुत ही सुखद भावात्मक परिणति है। क्या सुना? जिन्दगी भर बच्चे बने रहने की कोशिश करो क्योंकि बच्चा सीख लेगा, बड़ा नहीं सीख पाएगा। अगर आपके अन्दर यह भावना आ गई कि मैं बड़ा हूँ तो फिर आप कुछ भी नया नहीं सीख पाओगे। अगर आप बच्चे बनकर के रहोगे तो आप सीखने की चेष्टा करते रहोगे। वैसे भी देखा जाए तो यहाँ पर जो भी लोग बैठते हैं, शायद सीखने के लिए बैठते होंगे कि केवल सुनने के लिए बैठते हैं या देखने के लिए बैठते हैं। चलो! महाराज को बैठे-बैठे देखते ही रहेंगे, कुछ नहीं है, तीनों काम हो जाते हैं। चलो यह बहुत अच्छी बात है, देख भी लेते हैं, सुन भी लेते हैं और सीख भी लेते हैं।

आचार्यों की और गुरु की दृष्टि में हम आज भी बच्चे हैं

मतलब होशियार हो रहे हैं लोग तो जब तीनों काम हो रहे हैं तो इन तीनों कामों में भी आपको बच्चा बनकर यह तीनों काम करने पड़ेंगे। अगर आप बच्चे हैं तो फिर हम बहुत अच्छे ढंग से आपको समझा भी सकते हैं और आपको प्यार भी कर सकते हैं। अगर आपके अन्दर बच्चापन नहीं होगा तो फिर भैया, बड़ों से तो प्यार किया नहीं जाता है, प्यार तो बच्चों से ही किया जाता है, समझाना बच्चों को ही होता है। इसीलिए आचार्य यहाँ पर हमें बच्चों का उदाहरण देकर के समझा रहे हैं। हम भले ही आज बड़े हो गए लेकिन आचार्यों की दृष्टि में, गुरुओं की दृष्टि में, हम हमेशा बच्चों की तरह ही दिखाई देते हैं। वह हमें प्यार से समझा रहे हैं कि देखो बेटा! जैसे पहले तुम जब छोटे थे तब यही काम करते रहते थे, किसी भी बात को लेकर के दुःखी हो जाते थे, छोटी-छोटी बातों को लेकर के रो पड़ते थे, छोटी-छोटी बातों को लेकर के चिल्लाना शुरू कर देते थे, फिर घर के लोग तुम्हें थोड़ा सा मना लेते थे, थोड़ी देर बाद तुमको पुचकार करके, कुछ लाड प्यार करके, कुछ थोड़ी सी toffee खिलाकर, दे-दे कर के, तुमको चुप कर लेते थे। आज भी तुम कुछ ऐसा ही कर रहे हो, बड़े तो हो गए हो लेकिन यह आदत गई नहीं है। कौन सी आदत? छोटी-छोटी बातों पर दुःखी होने की, छोटी-छोटी बातों पर रुठ जाने की, छोटी-छोटी बातों पर चिल्ला देने की, छोटी-छोटी बातों पर मुँह बना के बैठ जाने की, यह आदतें अभी भी तुम में गई नहीं हैं।

अब काम toffee से नहीं, Trophy से चलेगा

बच्चा छोटा था तो माँ खिला लेती थी, घर के लोग उसको हाथ में ले लेते थे, toffee दे देते थे। अब बड़े हो गए हो, कौन किसकी toffee दे? अब न तुम्हारे लिए कोई toffee अच्छी लगेगी, न तुम्हारे लिए कोई पुचकारना अच्छा लगेगा, अब तुम इतने बड़े हो गए हो, इतने बड़े हो गए कि अब तुम्हारा काम toffee से नहीं चलेगा, Trophy से चलेगा। क्या समझ आया? Trophy समझते हो न? कब दी जाती है? जब India का Match जीत कर आओगे तब मिलेगी? अब इतने बड़े हो गए हो, बात उतनी सी है और कुछ ज्यादा नहीं है। बस! तुमने लड़ना ज्यादा सीख लिया, दुःख के कारण ज्यादा बढ़ा लिए, विचार अपने दुःखों के साथ जोड़ने के लिए ज्यादा बढ़े बना लिए। लेकिन दुःख की बातें तो वही हैं जो पहले किया करते। आज भी तुम नाराज होते हो, आज भी तुम अपने अन्दर, किसी भी तरह की थोड़ी सी प्रतिकूल परिस्थिति आती है तो घर वालों पर परेशान हो पड़ करके, उनके लिए डाँटने लग जाते हो। आज भी सब कुछ वही हो रहा है...रोना, चिल्लाना, दुःखी होना, वह सब चल रहा है, तो दुःखी होने में सब कुछ समाया हुआ है। अब अगर वह बच्चा बड़ा होने के बाद में दुःखी न हो, कहा जाएगा...हाँ! यह समझदार बच्चा हो गया।

बच्चेपन का स्वभाव गया नहीं (बस 3 काम होते हैं)

अब आप सोचो कि आपके अन्दर दुःख आता है कि नहीं? आप रोते हो कि नहीं? आप झल्लाते हो कि नहीं? आप चिल्लाते हो कि नहीं? छोटी-छोटी बातों पर बिगड़ते हो कि नहीं? अगर बिगड़ रहे हो तो वह बच्चा भी पहले यही करता था, बड़े भी वही कर रहे हैं। आपके बच्चेपन का जो स्वभाव था वह गया नहीं है, तो आप बच्चेपन में एक काम तो यह करते थे।

दूसरा काम क्या होता था? 'भुखियाई' हर समय भूखे बने रहते। आपको थोड़ी-थोड़ी देर बाद खिलाना-पिलाना पड़ता था, हर समय थोड़ी-थोड़ी देर में कहीं कोई दूध पिला रहा है या पानी पिला रहा है या कोई कुछ खिला रहा है-कोई कुछ खिला रहा है, यह करना पड़ता था। आज भी बड़े होने के बाद में कोई ज्यादा तुम में change तो आया नहीं है। क्या हो गया? आज भी भूखे ही बने रहते हो। जब देखो तब तैयार रहते हो खाने को। जहाँ देखो वहाँ तैयार रहते हो खाने को। कोई आपके लिए न time का system है कि हमें कब खाना है? कोई न आपके लिए कितनी बार खाना, उस बारियों का कोई न आपके लिए नियोजन है। कुछ नहीं है, जब मिल जाए, जितना मिल जाए, जैसा मिल जाए, जब जो कह दे। हाँ सर आइए! चाय पी लीजिए, तैयार हैं सर। कभी भी आपके लिए यह भूख की बाधा जैसे बचपन में थी, बड़े होने के बाद भी कुछ बदली नहीं है, शायद बढ़ और गई है। पहले तो बच्चे के लिए थोड़ी पराश्रितता रहती थी, माँ देगी तभी खाएगा। बेटा! अब तो तुम बड़े हो गए हो, जब मन आए तब अपने हाथ से खुद बना भी सकते हो, खुद खा भी सकते हो और जो बना बनाया है, वहाँ जाकर के, खड़े होकर के चाट के ठेलों पर भी सब कुछ कर सकते हो, हलवाई की दुकानों पर भी पहुँच सकते हो। अब तुम बड़े हो गए हो लेकिन बड़े होने के बावजूद भी यह काम जो बचपन से चल रहा था, इसमें कोई ज्यादा अन्तर नहीं आया। तब भी भूखे थे, अब भी भूखे हो, नया क्या किया?

तीसरा काम जो बच्चा करता है, थोड़ी देर के लिए मम्मी कह देती थी... बेटा! शान्ति से बैठ जा या कहीं पालने में भी पड़ा होगा या कहीं अकेले बैठा हुआ कुछ शान्ति से बैठा होगा तो क्या कर रहा होगा? सोच रहा होगा, घर के लोगों के बारे में, कौन क्या कर रहा है? कौन कैसे हमसे बात करता है? कौन कैसे हमको खिलाता है? वह पड़ा-पड़ा पट्टा सोचता रहता है। सुन रहे हो? पट्टा कहलाता है वह। आपको पता नहीं होता है, वह पड़ा-पड़ा सोचता रहता है, इसलिए उसको पता होता है किसकी गोदी में जाना। कोई दूसरा अनजान व्यक्ति अगर उसे गोदी में ले लेता तो तुरन्त उससे निकल कर भागता है क्योंकि उसने उसका चेहरा पहले देखा नहीं होता है। नए अंकल जी कहाँ से आ गए? अब वह भले ही कितने ही खास हो, भले ही पापा के भाई क्यों न हो...लेकिन अगर वह विदेश में रहे हैं और कहीं 5 साल बाद आए और उसने पहली बार चेहरा देखा है तो वह कुछ नहीं समझेगा कि हमारे पापा के भाई हैं या हमारा ही कोई बड़ा भाई है। उसे तो जो बचपन से देखते हुए मिला, जो बचपन से उसे खिलाते हुए मिला, वह उसी की गोद में अपने आप को आश्रित समझता है। बिल्कुल! उसी में आश्रित पाता है तो यह जो बच्चों के अन्दर एक चिन्तन चलता रहता है। इस चिन्तन को ही हमने जब बड़े होने के बाद में देखते हैं, तब भी हम सोचते रहते हैं, घर में कितने लोग हैं, वह हमारे बारे में क्या सोच रहे होंगे, वह हमारे लिए क्या-क्या अच्छा सोचते हैं, कौन हमारे लिए बुरा सोचता है?

दुर्ध्यान-बेवजह की चिन्ता

इस तरीके का विचार बड़े होने के बाद भी चलता रहता है और यह चिन्तन एक तरह से दुर्ध्यान कहलाता है। इसको क्या बोलते हैं? बच्चों के पास चिन्तन में पड़े रहना। अब देखो अगर कभी अकेले घर में पड़े हो तो आपके अन्दर कितना अच्छा ध्यान बनता है। कभी घर में अकेले रहे हो? जब पत्नी भी न हो, बच्चे भी न हो, घर में अकेले हो। बस! आप और आप जो हैं बिल्कुल खा पी करके bed पर लेट जाना, फिर देखना आपका दुर्ध्यान कितना अच्छा चलेगा। क्या-क्या अच्छा-अच्छा सोच सकते हो? आप सोच सकते हो कि हम कितना अच्छा सोच सकते हैं। क्या हो जाए? क्या नहीं हो जाए? कहीं ऐसा हो जाए, कहीं ऐसा हो जाता तो। यह इतने तरीके के चिन्तन चलते हैं...इसको बोलते हैं- मन के लड्डू खाना। आदमी खुद ही ऐसे मन में लड्डू फोड़ता रहता है, ऐसे मन के लड्डू खाता रहता है चाहे उसे वास्तविक लड्डू मिले न मिले। लेकिन मन में, मन के लड्डू समझ रहे हो न! क्या? लड्डू तो मीठा ही होता है। अब है नहीं है सामने, बस! उसको मन में विचार करके...मैं ऐसा कर लेता, ऐसा हो जाता, वह होता तो ऐसा हो जाता, वह नहीं है तो ऐसा होना चाहिए था। यह सब जो मन के अन्दर अपने आप चलता रहता है, ये मन के लड्डू कहलाते हैं और यह सब के सब, कोई भी आपके लिए ध्यान होंगे तो यह सब दुर्ध्यान की श्रेणी में आएँगे।

आहार, परिग्रह व काम भाव-दुर्ध्यान

आप किसके बारे में सोचोगे? या तो आहार के बारे में सोचोगे या अपने घर की वस्तुओं के बारे में सोचोगे या फिर आपके अन्दर तीसरा एक काम भाव का विचार आएगा, उसके बारे में सोचोगे। बस तीन चीजें आपके पास सोचने के लिए होंगी। क्या-क्या? जब आपको नींद नहीं आती, आप bed पर पड़े होते हो, उस समय पर आपके अन्दर सिर्फ तीन तरह के विचार आएँगे, आपके अन्दर या तो खाने पीने के या फिर

आपके पास में जो वस्तुएँ हैं या लोग हैं उनके विषय में वह कैसा कर रहा है? क्या कर रहा है? या यह चीज हमारे पास नहीं है, यह चीजें आ जाएँ, इस तरीके की बातें या तीसरा एक काम वासना का विचार आता है, एक वह विचार चलेगा। बस! तीन विचार चलेंगे आपके अन्दर और ये तीनों ही तरह के विचार दुर्ध्यान की श्रेणी में आते हैं। आचार्य इसलिए यहाँ बालक का उदाहरण देकर के समझा रहे हैं कि अगर हमें समझ में आ जाए तो हम शायद समझ पाएँ कि हम भी कुछ बालक अवस्था से बड़े होने के बाद भी, कुछ नया नहीं कर रहे हैं। यही तीन काम हमारे जिन्दगी के एक तरह से शौक बन गए हैं और इन्हीं तीन कामों में हम अपनी जिन्दगी को उलझाए रखते हैं, खाने-पीने का, ध्यान के माध्यम से बुरा-बुरा सोचने का और किसी न किसी तरीके से दुःखी होना, रोना-चिल्लाना, यह तीन काम जिस तरह से बच्चा करता था, आज भी बड़ा व्यक्ति वही कर रहा है, तो उस बच्चे की समझाते हुए आचार्य कहते हैं... **‘तह थोवं पि ण अप्पा, विचित्तिओ जीव!’** यह संबोधन दिया जा रहा है...हे जीव! हे प्राणी! तूने कभी भी थोड़ा भी अपना चिन्तन नहीं किया, आत्मा का चिन्तन नहीं किया। अप्पा अर्थात् आत्मा। अप्पा अर्थात्? कुछ तो याद कर ही लो, इतना तो याद करके जा ही सकते हो, अगर आपसे कोई पूछे प्राकृत भाषा में महाराज ने क्या सुनाया? प्राकृत भाषा में अप्पा सिखाया। पप्पा तो हम बोलते ही रहते हैं, अप्पा और सीख लो। अप्पा अर्थात् आप। आप बोलते हैं न हम! आप शब्द जो बना है, वह आत्मा से ही बना है। हम आपके लिए आप कहते हैं, आप हमारे लिए आप कहते हैं। लेकिन आप अर्थात् **‘जो अपना आप है, अपना आत्मा है, उसे आप कोई नहीं कहता है’** क्या सुना? एक दूसरे के लिए तो आप कहते हैं लेकिन ‘आप’ अर्थात् क्या होता है? ‘आप’ अपना ही होता है, अपने को ही ‘आप’ कहा जाता है, उस आपको ही अप्पा कहा जाता है, वह अप्पा से ही ‘आप’ शब्द बना है। आपा-पर का भेद नहीं जानता। बोलते हो न। क्या अपना है, क्या पराया है? अपने को ही आप कहा जाता है, अपने को ही आत्मा कहा जाता है, अपने को ही प्राकृत में अप्पा कहा जाता है, तो यह यहाँ पर आचार्य कह रहे हैं...हे जीव! हे प्राणी! तूने कभी भी अपना कभी चिन्तन नहीं किया।

‘थोवं’ अर्थात् आत्मा के बारे में नहीं सोचा

‘थोवं’ अर्थात् थोड़ा भी तूने कभी अपनी आत्मा के बारे में नहीं सोचा। दुनिया में रहकर के बस, यह कुटुंब-कबीला और अपनी आस-पास की चीजों के बारे में ही सोचता रहता है। तू कभी भी अपना विचार नहीं करता...मैं कौन हूँ? यह विचार नहीं आता, अपनी आत्मा के बारे में तूने जब कभी सोचा ही नहीं? **‘किं भणिमो’ अब मैं तेरे से क्या कहूँ? ‘किं भणिमो’** तो अब मैं तेरे से क्या कहूँ? तुझे क्या समझाऊँ? तुझसे तब कुछ कहा जाए जब तू कुछ अपने बारे में विचार करने को तत्पर हो। पर तू अपने बारे में कुछ सोचने को तैयार है ही नहीं है। तुझे दुनिया की चिन्ता पड़ी है, बच्चों की चिन्ता पड़ी, बच्चों के बच्चों की चिन्ता पड़ी, परिवार में जितने भी लोग हैं, भाई, बहन, बेटा, बेटी, सबके विवाह की चिन्ता तेरे सिर पर है, सबकी पढ़ाई की चिन्ता तुझे करनी है, जैसे तेरे बिना कुछ दुनिया में चलने वाला है नहीं? आप देखना कभी पूछना कोई दादी जी कैसे चल रहा है, क्या चाहिए ? कुछ दिक्कत तो नहीं है? हाँ भैया! सब अच्छा है। बस! वह बेटी की जो अपनी नातिन है उसकी शादी के रिश्ते नहीं आ रहे हैं, बाकी सब घर में सब अच्छा है और कोई कमी नहीं है, सब अच्छा है। अब दादी की शकल देखना, 88 साल की हो रही होगी। जिनका ठिकाना नहीं है... कुछ भी, दो-चार साल में निपट जाएँगे। अरे भैया! चल भी जाए तो 14 साल भी चला लेना, हमें कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन उन्हें चिन्ता किसकी पड़ी है? नाती की, नातिन की, जैसे कि उनकी चिन्ता से ही

सबकी चिन्ता पड़ी है, अपनी चिन्ता किसी को नहीं है

सबकी चिन्ता पड़ी है, अपनी चिन्ता किसी को नहीं है। सफेद बाल सारे हो गए हैं, शरीर में कोई जान बची नहीं है, आज मरे कि कल मरे, कोई भी भरोसा है नहीं है और हम चिन्ता पाले हुए हैं...नाती की, नातिन की, पोते की, पोती की। जैसे कि इन्हीं की चिन्ता से ही हमें स्वर्ग मिलेगा और हमारी चिन्ता करने से जैसे कि इनको सब कुछ मिल जाएगा, यह हमारे अन्दर एक भाव बना रहता है...यह दुर्ध्यान कहलाता है। धर्म की दृष्टि से इसे क्या बोलते हैं? दुर्ध्यान। बेवजह की चिन्ताओं में पड़े हो। अरे भाई! तुम्हारे सामने कितने लोग आते हैं? कितने लोग चले गए? तुमने किसको बचा पाया? corona ने क्या सिखाया? इतना तो सिखा ही दिया दादाजी, घर में 80-80 साल के, 70-70 साल के बैठे हैं और 27 साल का बच्चा चला गया। ऐसा कई जगह हुआ कि नहीं हुआ। आप किसके लिए क्या कर सकते हो? किसके बारे में सोचने के कारण से अपने अन्दर आर्त ध्यान करते रहते हो। यह उम्र दूसरों के सोचने की होती है या अपने लिए सोचने की होती है। एक उम्र का भी कोई तकाजा होता है न? हम किस उम्र में किसकी चर्चा कर रहे हैं, किसकी चिन्ता कर रहे हैं? अगर हम अपने अन्तिम उम्र के पड़ाव में, अपने बेटे, नाती, पोते, इनके साथ खेलो, रमो, कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन इनकी चिन्ता में पड़कर दुर्ध्यान कर रहे हैं, तो आचार्य कह रहे हैं... आपका परलोक बिगड़ जाएगा। आपके लिए यह चिन्ता करने का समय किस का है? आत्मा के बारे में सोचो, अपनी चिन्ता करो और चिन्ता अगर करना नहीं आता है तो यह जो बताया जा रहा है उस को समझने की कोशिश करो। क्या कहा जा रहा? गाथा नम्बर 29 के बाद 30 आती है।



गाथा: 30

क्षणभंगुर शरीर में मूर्छा कैसी?

खणभंगुरं सरीरं, जीवो अण्णो अ सासय-रुवो ।

कम्मवसा संबंधो, णिब्बंधो इत्थ को तुज्झ ॥30 ॥

अन्वयार्थ- 'यह' (सरीरं खणभंगुरं) शरीर, क्षणभंगुर है 'तथा' (जीवो) जीव (सासय-रुवो) शाश्वत, स्वरूपी है (अ) और 'शरीर से' (अण्णो) अन्य अर्थात् भिन्न है 'तथा' (कर्म-वसा) कर्म के, वश से (संबंधो) सम्बन्ध यानी संयोग 'को प्राप्त' हुआ है 'फिर' (इत्थ) यहाँ अर्थात् इस शरीर के विषय में (तुज्झ) तुझे (को) क्या (णिब्बंधो) मूर्छा/हठाग्रह है? ॥30 ॥

अप्पा(रुवो) सासय, सरीरं खणभंगुरं—आत्मा शाश्वत है शरीर क्षण भंगुर है

शरीर कैसा है? क्षण भंगुर है। 'जीवो अण्णो अ' व उस शरीर से अन्य है। जीव उस शरीर से पृथक् है, जीव उस शरीर से भिन्न है। कैसा है? 'सासय रुवो' वह शाश्वत रूप वाला है। जीव अर्थात् आत्मा, जिसके कारण से यह शरीर जिंदा है वह जीव, वह आत्मा तो शाश्वत है और शरीर नाशवान है, क्षण भंगुर है। तुम इस शरीर की चिन्ता में पड़ रहे हो और यह शरीर भी तुम्हें जो मिला वह कहाँ से मिला?

'कम्मवसा संबंधो' - कर्म के कारण शरीर का सम्बन्ध हुआ

'कम्मवसा संबंधो' कर्म के कारण से तुम्हारे लिए इस शरीर का सम्बन्ध हुआ। अब तुम्हारे लिए इसमें कौन सा आग्रह होना चाहिए? इसी में अपना निर्बंध क्यों बनाए रखे हुए हो कि तुम हमेशा शरीर की चिन्ता में पड़े रहो। भाई! शरीर काम नहीं कर रहा या बिल्कुल सूख गया या बिल्कुल यह मरने को है। शरीर तो मरेगा, तुम्हें चिन्ता शरीर की नहीं करनी...तुम्हें चिन्ता किसकी करनी? अब जब करने लायक थे तो कर लिया। अब बुढ़ापे में, अब 90 वर्ष की अगर उम्र हो रही है और उस समय पर अगर आपका शरीर ढीला पड़ रहा है तो वह तो ढीला पड़ेगा ही। अब तुम gym में जाने लायक तो हो नहीं और न कोई protein के डिब्बे खाने से तुम्हारे अन्दर कोई protein आ जाएगी अब। protein के डिब्बे खाने का मतलब, डिब्बों की protein को, protein के डिब्बे खाना कहता है। जब आदमी पूरा डिब्बा खा लेता है तो कहा जाता है- डिब्बा ही खा लिया। जब आपके अन्दर अब वह न protein पचाने की क्षमता है, न आपके लिए अब किसी भी तरीके से body को पुनः build करने की क्षमता है, तो अब आप करोगे क्या, किसके बारे में सोचना अब आपको?

सम्बन्ध कर्म के वशीभूत हैं

अगर आप अपने शरीर को क्षणभंगुर नहीं समझोगे, अपने शरीर से भिन्न, अपनी आत्मा को, अपने जीव को शाश्वत रूप में अगर चिन्तन नहीं करोगे तो तुम्हें इस संसार में आकर के कुछ भी नहीं प्राप्त हुआ, ऐसा समझना। यह शरीर आदि भी जो मिलते हैं वह किससे मिले? **‘कम्मवसा संबंधो’**, जितने भी संबंध है, सब कर्म के वशीभूत है। क्या सुना? बहुत अच्छे वाक्य हैं, यह एक छोटी सी quotation है... **‘कम्मवसा संबंधो’** सम्बन्ध किससे होते हैं? जैसे हमारे कर्म होते हैं, वैसे ही सम्बन्ध बन जाते हैं। जितना हमारा कर्म फल देता है, सम्बन्ध उतना ही चलता है। बच्चा गर्भ में आता है, अगर उससे हमारा सम्बन्ध गर्भ में छः महीने के लिए है तो छह महीने का ही सम्बन्ध रहेगा। छह महीने बाद गर्भ में ही उसकी मृत्यु हो जाती है, operate करके उसको निकालना पड़ता है, इतना ही सम्बन्ध उस बच्चे का गर्भ में छः महीने का था। इतने ही सम्बन्ध के साथ में आपके लिए वह कर्म फला था। थोड़ा सा सम्बन्ध और बढ़ जाता है... सब कर्म से सम्बन्ध बनते हैं, कोई बच्चा जन्म लेने के बाद चार दिन जीता है, कोई बच्चा जन्म लेने के बाद चार महीने जी पाता है, कोई बच्चा जन्म लेने के बाद चार साल जी पाता है, कोई 24 साल जी लेता है, कोई 40 साल जी लेता है। ये सभी सम्बन्ध किससे बनते हैं? अपने ही कर्म से बनते हैं... **‘कम्मवसा संबंधो’** सम्बन्ध जितने भी बनेंगे अच्छे पुत्र-पुत्रियाँ मिल गए, अच्छे बहू-बेटियाँ मिल गए, यह भी कर्म के बस से और अपने ही बुरे ऐसे मिल गए कि अपनी नाक उन्होंने कटा दी तो यह भी कर्म के फल से।

कर्म बंध से सम्बन्ध, सम्बन्ध से कर्म बंध

हर चीज हमें यहाँ कर्म के फल से मिलती है, इसलिए तुझे उनमें इतना आग्रह नहीं होना चाहिए जितना इस विचार में कि यह सब हमारे अपने कर्म के कारण से है और इन कर्मों के कारण से ही हमारा यह सब सम्बन्ध है। हमें सम्बन्ध और बंध की ओर देखना चाहिए। सम्बन्ध किसके कारण से है? कर्म बंध के कारण से ही सारे सम्बन्ध बनते हैं और फिर उन सम्बन्धों में हम बंधते हैं तो फिर हमारे लिए कर्म बंध होते हैं, बंध होते हैं। उन बंधों से वह सम्बन्ध फिर आगे-आगे और बनते चले जाते हैं। इसलिए जब हम पूर्व भव की बातें सुनते हैं, तब हमें समझ में आता है कि कौन जीव, किस तरह के सम्बन्धों के कारण से, कैसे-कैसे गर्भ में आ जाता है और कैसे-कैसे अपना फल देता है?

राजा श्रेणिक की कथा

कल राजा श्रेणिक के बारे में आप लोगों ने सुना था। पूर्व भव में व्यंतर देव बन गया, उससे भी पहले भव में वह राजा था और राजा का मित्र था। राजा तो पुनः राजा बन गया... श्रेणिक राजा। लोगों को चिन्ता तो पड़ गई, श्रेणिक राजा तो आपने बता दिया महाराज। उसका क्या हुआ? जो वह सुषेण था। जो मुनि महाराज बनने के बावजूद भी अज्ञान के कारण से, अपनी धारणा को उस राजा के प्रति जो बनाए रखे थे, वह बनाए रखे। अपनी कषाय को छोड़ नहीं पाए और वह भी मरण करके व्यंतर बने। फिर आगे वह क्या बने? सुनना चाहते हो? दूसरों की story सुनने में ही तो अच्छा लगता है, महाराज! अपनी story तो कोई दूसरा सुनाएगा तभी अच्छी लगेगी।



सुषेण का सुमित्र के साथ वैर का अनुबंध

अब आप यह विचार करो कि अगर उसके लिए भी पहले वैर का अनुबंध हुआ है, तो वह भी अगले जन्म में उस वैर को किसी न किसी तरह के सम्बन्धों से प्राप्त करेगा। उन सुषेण ने भी सुमित्र के साथ में वैर का अनुबंध कर लिया था। इसी के कारण से, मेरा यह तीन महीना निकल गया... एक कण मुँह में नहीं पहुँचा, यह आज भी मुझसे शत्रुता का व्यवहार कर रहा है, इसकी आदत पुरानी गई नहीं, यह विचार आ गया। यह विचार आते ही से कषाय उत्पन्न हो गई। उस कषाय में आपा खो दिया, पैर पत्थर में मार दिया, प्राण निकल गए, व्यंतर बन गए। कुछ समय के लिए, हजारों वर्षों के लिए एक दूसरी पर्याय में जाने के बाद भी, वह जो बंध हो गया है वह कितने ही असंख्यात वर्ष क्यों न निकल जाएँ, वह बंध नहीं छूटता है।

द्वेष का, घृणा का अनुबंध कई भवों में भी छूटता नहीं

यह सीखो आप, यह जानो इन कहानियों से। अगर किसी व्यक्ति ने आज आपके साथ में कोई द्वेष का, घृणा का अनुबंध कर लिया है तो वह बंध आपके लिए अगले कई भवों में भी आपके साथ चलता रहेगा, बना रहेगा और वह भव में कितने ही तरह का, वह आयु क्यों न हो, कितने ही वर्ष की आयु क्यों न हो मतलब बस! नरक में चला जाए, स्वर्ग में चला जाए, असंख्यात वर्षों की भी आयु क्यों न हो तो भी उसका वह बंध छूटता नहीं है। कितना बड़ा संस्कार आत्मा पर पड़ जाता है, आप इससे विचार कर सकते हो। आज हमारा जो दुश्मन है, वह किसी न किसी कारण से मर गया या हम ही मर गए, कोई न कोई एक पहले भी निपट गया तो भी यह मत समझ लेना कि निपटारा हो गया। वह मिलेगा फिर कभी न कभी... अगर दोनों विपरीत direction में भी चले जाएँगे, एक स्वर्ग चला गया, एक नरक में भी चला गया तो भी वह फिर मिलेगा कभी न कभी। जब तक वह बंध का ऋण चुक नहीं जाएगा, तब तक वह व्यक्ति किसी न किसी रूप में सामने आ जाएगा। अपना वह शत्रुता का भाव, अगर ढंग से पूरा करना है तो आदमी को उसके ही घर का व्यक्ति बनना पड़ेगा, उसके ही कुटुम्ब का व्यक्ति बनना पड़ेगा। अगर ढंग से दुश्मनी पूरी करना है, किसी के साथ में बैर बंध गया है और वह पूरा निकालना है तो बाहर से रहकर के तो बहुत time निकल जाएगा। आदमी को कष्ट कब मिलता है? जब अपना ही भाई अपने को धोखा देता है, जब अपना ही बेटा अपने से गद्दारी करता है। तब आदमी को जो कष्ट होता है, वह कष्ट किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा धोखा देने से इतना नहीं होता है। वह मर चुका होता है आदमी, जिसके लिए उसका बेटा ही धोखा दे दे, उसका भाई ही धोखा दे दे, वह भीतर से बिल्कुल टूट चुका होता है। यह धोखा देने वाले परिणाम जिन जीवों में आते हैं, वह जीव भी किसी न किसी जन्म का बदला लेने के लिए अपने घर में जन्म लेते हैं, अपने घर में उन जीवों का जन्म हो जाएगा। किसके कारण से? यह आज की कहानी नहीं है, यह बहुत पहले की कहानियाँ हैं, पुरानी कहानियाँ हैं और यह पुरानी कहानियाँ चलती रहेंगी, चल रही हैं। अब उसी कहानी के तहत राजा श्रेणिक के ही पुत्र के रूप में, वह सुषेण का जीव, रानी चेलना के गर्भ में उत्पन्न होता है और वह आगे चलकर के कुणिक राजा बनता है। कुणिक का नाम सुना होगा, यह भी इतिहास प्रसिद्ध नाम है। वह श्रेणिक की जो दुर्दशा करता है, वह इतिहास के पन्नों में है, पढ़ने लायक है। अपने ही घर का बेटा, अपने ही पिता को दंड देता है। कंस के बारे में सुना होगा आपने, अपने पिता को उसने जेल में रखा, कैद में रखा। इसी तरीके से यह कुणिक के

साथ हुआ। यह सब बेटा भी हो रहा है तो समझ कर चलना, पूर्व भव का बैरी भी हो सकता है, पूर्व भव का मित्र भी हो सकता है। यह बात अलग है कि थोड़े से बैरी वाले case कम होते हैं। फिर भी होते तो हैं, दो चार percent तो कह सकते हैं। बेटा भी पिता के लिए मृत्यु का कारण बन जाता है और बेटा भी पिता से अपना ऐसा बैर बांध लेता है कि वह भी पिता को कितने ही कष्टों में डाल देता है। लेकिन उसे ऐसा नहीं लगता कि मैं पिता को कष्ट दे रहा हूँ या उसके लिए कुछ बुरा कर रहा हूँ। ऐसे भी बहुत सारे case आप अपनी आँख उठा करके देखेंगे तो आस-पड़ोस में आपको दिखाई दे जाएँगे। यह सब जो पुराने अनुबंध है, पुराने जो हमारे भाव बंधे हुए हैं, उन्हीं कर्मों के कारण से सम्बन्ध बनते हैं... **‘कम्मवसा संबंधो’**

दुःख को कर्म का फल समझ कर भोगना ही ऋण मुक्ति का उपाय है

हर सम्बन्ध चाहे वह किसी भी रूप में आपके सामने हो, यह एक बार जरूर महसूस करना, यह सब सम्बन्ध हमारे पूर्व कर्मों के कारण से हैं। आप सोचो कैसे-कैसे सम्बन्ध बन जाते हैं? किन्हीं-किन्हीं घरों में ऐसी-ऐसी भी संतानें हो जाती हैं, जो जन्म से ही बिल्कुल paralysis उनके लिए रहता है या अपाहिज रूप में रहते हैं और जीवन पर्यंत तक उनका निर्वाह करना पड़ता है। उनके शारीरिक, मानसिक विकास कई बार नहीं भी हो पाते हैं तो भी वह जीवित हैं। कोई क्रिया अपनी भी नहीं कर पा रहे हैं तो भी घर के लोगों को वह सारा करना पड़ता है। खिलाना भी पड़ेगा, उनको नहलाना भी पड़ेगा, सारा काम, उनकी सब क्रियाएँ उनको करानी पड़ेगी और काम उनसे कुछ भी नहीं है। ऐसा होता है कि नहीं होता? आप सोचो! वह जीव अगर घर में एक है और घर में चार सदस्य हैं तो चारों का दिमाग उसके ऊपर लगा रहेगा और वह कितना भारी हो जाता है, उसका पालन करना। कहीं दूसरी जगह रख भी नहीं सकते, कुछ और कर भी नहीं सकते हैं। वह जीव अगर है, काम का कुछ भी नहीं है लेकिन कुछ भी काम नहीं करवाने के बावजूद भी, अपने घर में उत्पन्न हुआ है तो उसका पालन करना और पूरी जिन्दगी का अधिकांश समय उसमें लगा देना, आदमी की एक मजबूरी बन जाती है। अब आप सोचो, यह कैसे हुआ? **‘कम्मवसा संबंधो’** सभी सम्बन्ध किससे बनते हैं? कर्म के कारण से। पुराने जन्म का कुछ ऐसा लेन-देन होगा कि उसकी ही पूरी खातिरदारी में या उसी की सेवा-सुश्रा करने में ही आपको अपना जन्म पूरा-पूरा लगा देना पड़ जाए। सारा समय उसी में लग जाए और काम में कुछ भी नहीं आने का है। आप सोचो, ऐसा क्यों हो गया? इससे हमें क्या मिल रहा है? दुःख मिल रहा है, तो दुःख भी अब आपको भोगना ही है। अब आप सोचो कितना बड़ा यह दुःख है? और उस दुःख को भी आदमी को भोगना ही पड़ता है, सहज भाव से भोगना पड़ता है और वह कितना बड़ा दुःख है कि उसकी एक बड़ी उम्र के बावजूद भी उसके शरीर की सारी परिचर्या उसे खुद करनी पड़ती है। इस दुःख को अगर हम अपने कर्म का फल समझ कर के नहीं भोगेंगे तो इसके अलावा और कोई दूसरा उपाय, दूसरा रास्ता है ही नहीं... ऋण मुक्ति का और कोई उपाय है ही नहीं। हो सकता है पिछले जन्म में हमने उसके लिए इसी तरह से कष्ट दिया हो, उसकी सम्पदा को हमने छीना हो, उसके ऊपर अधिकार जमाया हो, आज वह इस रूप में आकर के हमारे ऊपर अपना अधिकार जमाए बैठा है और अपनी सम्पदा का इस रूप में हमारे लिए पूरा का पूरा उपयोग हो रहा है। दुनिया की दवाइयाँ, दुनिया के तरीके अपनाने पड़ते हैं, तब जाकर के उस एक जीव का पालन हो पाता है और यह सब हो रहा है। दूसरी तरफ हम देखते हैं... अच्छे बच्चे भी हैं, समय के साथ विकसित हो रहे हैं, खेल रहे हैं, खा रहे हैं, पी रहे हैं, वह सब भी हो रहा

गाथा: 31

इस संसार में आने-जाने वाले अंजानों के बीच कुटुंब, परिवार का रिश्ता कैसा?

कह आयं कह चलियं, तुमं पि कह आगओ कहं गमिही।

अण्णुण्णं पि ण याणह, जीव! कुडुंबं कओ तुज्झ ॥31॥

अन्वयार्थ- (जीव!) हे आत्मन्! 'यह' (कुडुंबं) कुटुम्ब यानी माता पिता भाई बहिन स्त्री आदिरूप कुटुंब (कह) कहाँ से (आयं) आया है 'और' (कह) कहाँ (चलियं) चला जायेगा 'और' (तुमं) तुम (पि) भी (कह) कहाँ से (आगओ) आये हो 'और' (कहं) कहाँ (गमिही) गमन कर जाओगे 'तथा' (अण्णुण्णं) अन्योन्य को अर्थात् परस्पर में एक-दूसरे को (पि) भी (ण) नहीं (याणह) जानते हो 'तो यह' (कुडुंबं) कुटुंब (तुज्झ) तुम्हारा (कओ) कहाँ से हुआ? ॥31॥

कर्म और आत्मा का चिन्तन करना चाहिए

इसलिए कहना पड़ता है... 'कह आयं कह चलियं' कहाँ से आए हो, कहाँ चले जाओगे? 'तुमं पि कह आगओ कहं गमिही' और तुम भी कहाँ से आ गए हो और कहाँ चले जाओगे? एक शरीर के लिए कहा जा रहा है, एक तुम्हारे लिए कहा जा रहा है यानी जीव के लिए कहा जा रहा है। विचार करो शरीर कहाँ से आया? कहाँ चला जाएगा? तुम कहाँ से आए? कहाँ चले जाओगे? जब तुम अपने और शरीर के बारे में भी अच्छे ढंग से नहीं जानते, 'अण्णुण्णं पि ण याणह' अर्थात् नहीं जानते तो फिर यह तुम्हारा कुटुम्ब, हे जीव! कैसे तुम्हारा हो गया? इस कुटुम्ब के बारे में भी फिर तुम क्या जानते हो? 'जीव कुडुंबं कओ तुज्झ' फिर यह कुटुम्ब तुम्हारा कैसे हो गया? यानी तुम यह सोचने की कोशिश करो कि हमें जो कुछ भी यह कुटुंब मिला है, यह परिवार मिला है, इसमें सब जीव अपने-अपने कर्म के सम्बन्धों से, शरीर आदि को प्राप्त करके एक बड़ा परिवार बन गया, एक बड़ा कुटुंब बन गया। लेकिन तुम यह विचार करो यह कहाँ से आए और यह कहाँ जाएँगे? इनके बारे में भी विचार करो और अपने बारे में भी विचार करो कि हम कहाँ से आए, कहाँ जाएँगे?

mind को rest नहीं, यही दुर्ध्यान है

ऐसा विचार तो कोई होता नहीं... चाहे कितने ही वृद्ध हो जाएँ, चाहे कितने ही मृत्यु के निकट बैठ जाएँ तो भी यह विचार नहीं आता। चिन्ता यह पड़ी रहती है... मेरे जाने के बाद मेरे बेटे का क्या होगा? बेटे के बेटे का क्या होगा? उसको कौन संभालेगा? अभी तक तो हम घर चलाते थे, अब घर कौन चलाएगा? अभी तक तो हम दोनों बेटों के बीच में मेल-मिलाप के लिए तैयार रहते थे, उनके लिए कभी भी आपस में लड़ाई-झगड़े

हो जाते थे, हम संभाल लेते थे, हमारे जाने के बाद कौन संभालेगा? यह भी चिन्ता है। हमने इतना बड़ा व्यापार खड़ा कर दिया है और आज भी हम उस व्यापार के जो गुर हैं, वह हम जानते हैं, हमने अपने बच्चों को सिखा तो दिए लेकिन कभी ये दिक्कत में आगे फिर पड़ेंगे तो कौन संभालेगा? यह चिन्ता होती है! किसको? जिनको अब कुछ भी करते नहीं बन रहा है। जो bedrest पर रहने के लिए डॉक्टरों ने कह दिया है तो bedrest पर किसका rest होता है? body का rest होता है, mind का rest नहीं होता है, mind तो उसी-उसी में घूमता रहता है। इस तरह का जब दुर्ध्यान चलता है तो आचार्य कहते हैं...तुम क्या सोच रहे हो?

दुनिया में किसी को भी अपनी चिन्ता नहीं है

अभी भी तुम बालक की तरह ही अपना दुर्ध्यान कर रहे हो। अब तुम्हें थोड़ा सा यह सोचना चाहिए कि मैं क्या हूँ? मेरे सम्बन्ध किससे बने हैं? और यह सम्बन्ध किस कारण से हैं? अगर यह विचार कर लोगे तो अपने आप आपके मन में परिणाम आ जाएगा...भैया!, संसार में एक हमारा ही परिवार नहीं है, संसार पूरा का पूरा परिवारों के समूह का ही नाम है और सबकी चिन्ता हमें नहीं है, अपने-अपने परिवार की चिन्ता सबको है। लेकिन दुनिया में किसी को भी अपनी चिन्ता नहीं होती है, जब जीव अपनी चिन्ता करने लगे तो वह परिवार से मुक्त कहलाए। हम जीवन भर परिवार की, कुटुम्ब की चिन्ता में तो रहते हैं लेकिन एक क्षण भी हमें नहीं मिलता, जब हम आत्मा के बारे में सोच सकें, आत्मा का चिन्तन कर सकें। राजा श्रेणिक का खुद का ही बेटा कुणिक बन गया, कुछ नहीं कोई बिगाड़ सकता और वह बड़ा होने के बाद में उस राजा श्रेणिक को ही प्रताड़ित करेगा।

आत्मज्ञान के साथ सहन करने से कर्मों से मुक्ति

यह सम्बन्ध जो बन जाते हैं, इन सम्बन्धों का अब कोई solution नहीं है, सिवाय इसके कि आप इनको सहन करें। लेकिन उस सहन करते हुए अगर आपके अन्दर थोड़ा सा आत्मज्ञान आ जाए तो उस सहनशीलता में भी थोड़ी सी शक्ति आ जाएगी और उस आत्म चिन्तन के कारण से यह जो सम्बन्ध हमारे अन्दर दुःख देने वाले होते हैं, इन दुःखों से हमें मुक्ति भी मिल जाती है। इसलिए आचार्य कहते हैं...हम थोड़ा सा अपने बारे में भी विचार करें, अपने बारे में भी सोचें। **‘समय मिला न आत्म ध्यान का, अब मृत्यु आई’** यह वही वाली बात बनती है।

साँसों की चाबी से चलता तेरा देह खिलौना

साँसों की चाबी से चलता तेरा देह खिलौना

यह देह भी एक खिलौना है! किससे चल रहा है? साँसों की चाबी से चल रहा है, साँसों ही चाबी हैं इस खिलौने की। साँसें रुक गईं, खिलौना रुक गया। फिर चलाओ, अब चलेगा नहीं। अब क्या करोगे उसको? अब चला-चली की बारी आ जाएगी। अब फिर क्या करो? अब इसको घसीटो या उठाओ? फिर लोग क्या बोलते हैं? उठाओ, उठाओ, पहले तो खिलौना क्या करते थे? चलाते थे, चलते थे, चलो-चलो। पहले घर में आवाज आती थी क्या? चलो चलो, कहाँ चलना है? तीर्थ यात्रा पर चलना है, कहीं चलना है, चलो चलो।

अब वह खिलौने की चाबी पूरी हो गई तो अब घर में आवाज आएगी...क्या कर रहे हो? उठाओ, उठाओ, अब वह क्या बचा? उठाना किसको बोलते हैं? जैसे मिट्टी हो जाती है, मिट्टी को उठाना होता है, ऐसे ही उसको बस अब क्या करना होता है? जल्दी उठाओ, जल्दी ले जाओ, जल्दी भी निकलता है, जल्दी ले जाओ, जल्दी उठाओ, जल्दी निकालो। इसलिए यह सच्चाइयाँ जब सामने आती हैं तब आदमी के दिमाग में एक क्षण के लिए आना चाहिए कि हमारे अन्दर जो बैठा है, हम उसके बारे में भी सोचें। अब यह सोचने का काम आपको लगता होगा, यह महाराजों का ही काम है। लेकिन कभी आपको लगता है कि यह सोचते-सोचते भी कोई महाराज बन सकता है। जब भी कभी किसी की मृत्यु होती थी, आस पड़ोस में या कहीं देश के अन्दर भी, किसी famous personality की तो उस समय पर यह विचार जरूर आता था कि अब यह जीव कहाँ गया होगा? इसका क्या हुआ होगा? यह विचार जब आता था...चाहे वह आसपास कोई पड़ोस में किसी की गमी हो जाए, कोई मर जाए, लोग तो उसमें लग जाते थे...उठाओ, उठाओ, उठाओ। चलो, चलो, ले चलो और हम खड़े-खड़े सोचते रहते थे...यह देखो! कल कैसा चल फिर रहा था? आज इसमें कोई activity नहीं है। यह जीव कहाँ चला गया? इसका यह शरीर कहाँ चला जाएगा?

वैराग्य शतक—संसार बढ़ाना नहीं है

इस संसार में क्या होता रहता है? यह सोचते-सोचते ही वैराग्य के पथ पर, एक राग से सहित आत्मा भी आ जाता है, केवल इतनी सोच के साथ में। इसलिए इसका नाम है- वैराग्य शतक। आपको नहीं होगा, आप चिन्ता मत करो। हम आपको सोचने के लिए, सुचाने के लिए कितना ही मजबूर भी करें तो भी आप भीतर से बहुत पक्के हो, हमें पता है। यह सोच जब पैदा हो जाए, अगर बचपन से ही हो जाए तब ही पाता है कि भाई! संसार बढ़ाना नहीं है। जो संसार में हो रहा है, उसको सही ढंग से जानना है, समझना है। इस विचार के कारण से ही आपको लगेगा... **‘साँसों की चाबी से चलता तेरा देह खिलौना, बच्चों सा यह खेल सदा ही तुझको लगा सलोना’** यह कैसा खेल है? बच्चों सा खेल है।

आत्म ज्ञान, आत्म ध्यान महत्वपूर्ण लगे— तब जाकर मनुष्य पर्याय सार्थक बने

अभी भी आचार्य भी बच्चों का ही उदाहरण देकर के अपने को समझा रहे थे, सारा खेल बच्चों की तरह ही चलता है। हम अपने आप को बच्चों के सामने बड़ा समझ लेते हैं लेकिन जो वीतराग आत्माएँ होती हैं, जो ज्ञानवान आत्माएँ होती हैं, उनके सामने संसार के सब प्राणी बच्चों की तरह ही दिखाई देते हैं। यह खेल हमें बड़ा अच्छा लगता है। इस खेल-खेल में ही अगर हमें यह समझ में आ जाए कि हमारे लिए आत्म ज्ञान, आत्म ध्यान ये बहुत महत्वपूर्ण चीजें हैं, तब कहीं जाकर के हमारे लिए यह मनुष्य पर्याय में जन्म लेना सार्थक बने। भजन में भी यह संदेश छिपे रहते हैं। लेकिन शायद आप लोग, केवल भजन... बिलौवा के काम में लाते हो भजन। भजन केवल बिलौवा के काम के रह गए क्या? ये सब भजन ध्यान के काम के हैं...ध्यान के लिए बने थे, अपने आत्म ज्ञान को प्राप्त करने के लिए भजन बने थे। इन भजनों का उपयोग आप सामायिक में कर सकते हैं, ध्यान में कर सकते हैं, आत्म-चिन्तन करने के लिए कर सकते हैं। ये भजन केवल बिलहुआ में नारियल बाँटने के लिए नहीं है। क्या कह रहा था?

**साँसों की चाबी से चलता तेरा देह खिलौना,
बच्चों सा यह खेल सदा ही तुझको लगा सलोना।**



गाथा: 32

अल्पस्थायी मनुष्यभव में, क्षणस्थायी शरीर से, धर्म
करना ही श्रेष्ठ है

खणभंगुरे सरीरे, मणुयभवे अब्भ-पडल-सारिच्छे ।
सारं इत्तिय-मेत्तं, जं कीरइ सोहणो धम्मो ॥32॥

अन्वयार्थ- (खणभंगुरे सरीरे) क्षणभंगुर, शरीर 'प्राप्त करने' में 'और' (अब्भ-पडल-सारिच्छे मणुयभवे) अभ्र यानी बादल के, पटल यानी समूह के, समान, 'क्षणस्थायी' मनुष्यभव 'प्राप्त करने' में (इत्तिय-मेत्तं सारं) इतना, मात्र, सार है 'कि' (जं) जो 'इससे अर्थात् इस क्षणभंगुर शरीर से और मनुष्य पर्याय के माध्यम से मोक्ष की प्राप्तिरूप' (सोहणो धम्मो) शोभन अर्थात् अच्छा, धर्म 'कार्य' (कीरइ) कर सकते हैं ॥32॥



वैराग्य शतक नाम के इस ग्रन्थ के माध्यम से बहुत कुछ आगे बढ़ते हुए, तरह-तरह की वैराग्य भावनाओं का रसपान करते हुए, आगे की कुछ गाथाओं के माध्यम से भावों को समझने की कोशिश करते हैं। गाथा 32, 33, 34 पढ़ते हैं....

खणभंगुरे सरीरे, मणुयभवे अब्भ-पडल-सारिच्छे ।
सारं इत्तिय-मेत्तं, जं कीरइ सोहणो धम्मो ॥32॥

जम्मदुक्खं जरादुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।
अहो! दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो ॥33॥

जाव ण इंदि य-हाणी, जाव ण जर-रक्खसी परिप्फुरई ।
जाव ण रोगवियारा, जाव ण मच्चू समुल्लियइ ॥34॥

यह प्राचीन आचार्यों की कुछ गाथाएँ हैं, जिनके माध्यम से हम जीवन के शाश्वत सत्य को समझ सकते हैं।

जीवन की क्षणभंगुरता

‘क्षणभंगुरे सरीरे’ यह शरीर क्षणभंगुर है। **‘मणुयभवे अब्भ-पडल-सारिच्छे’** और इस मनुष्य भव में हमने जो यह शरीर प्राप्त किया है...यह अभ्र के पटल के सरीखा है। अभ्र कहते हैं- मेघों को, बादलों को...बादलों के जिस तरह से layers, उनके जो पटल, उनकी जो आकृतियाँ हमारे सामने, किसी भी तरह से बनकर के आ जाते हैं, उन्हीं अभ्र के पटल के सदृश्य ही यह मनुष्य भव और यह मनुष्य भव का शरीर क्षणभंगुर है। आपने देखा होगा कि बादल हमें कभी-कभी बहुत दिखाई देते हैं और जब हम देखते हैं तो देखते-देखते ही वह हमारे सामने से विलीन भी हो जाते हैं। इसी तरह की उपमा इस मनुष्य भव को प्राप्त करने के बाद में जो आचार्य इस मनुष्य भव का सार हमें बताना चाहते हैं, वह अपने शरीर को इसी रूप में देखते हैं।

शरीर मेघों के पटल समान है

यह शरीर जो हमें प्राप्त हुआ है, इसका भरोसा ज्यादा करना नहीं चाहिए और इसके प्रति हमेशा यह विचार रखना चाहिए कि यह जैसे मेघों के पटल...जब बहुत सारे इकट्ठे हो जाते हैं, तो वह बड़ी अच्छी सी आकृति बन जाती है, वह इकट्ठे होकर के हमें दिखाई देने लगते हैं। लेकिन वह देखा जाए तो क्या है? एक धुआँ सरीखा होता है, वह सिर्फ एक वाष्प होती है और वह इकट्ठी होकर के हमें बादलों के रूप में, मोटे-मोटे बादलों के रूप में भी दिखाई देती हैं और कभी-कभी काले-काले बादलों के रूप में भी दिखाई देती है। कभी-कभी सफेद-सफेद बादलों के रूप में भी दिखाई देती है। ऐसे जब यह बादल दिखाई देने लग जाते हैं तो यह बादल देखते-देखते-देखते-देखते ही इधर-उधर तितर-बितर हो जाते हैं। किसके कारण से? हवा के कारण से ही यह बादल बने थे और हवा से ही यह बादल तितर-बितर हो जाते हैं। ऐसे ही यह शरीर बनता है, आयु कर्म के कारण से और आयु कर्म के नष्ट होने से ही यह शरीर भी नष्ट हो जाता है।

जो धर्म कर लिया बस वही मनुष्य शरीर का सार है

इस बात को हमेशा ध्यान में रखते हुए जो चलता है, उसी के अन्दर थोड़ा सा धर्म करने का भाव आता है। उसी के लिए यह विचार आता है कि इस क्षणभंगुर शरीर का कुछ भी स्थायित्व का भाव नहीं है। इससे जो कुछ अच्छा कर लिया जाए, जितनी जल्दी कर लिया जाए, उसी में अपनी समझदारी है। यह विचार आने का नाम ही सारभूत तत्त्व को ग्रहण कर लेना है और आचार्य कहते हैं- अगर इस शरीर में कुछ सार है, तो क्या है? **‘सारं इत्तिय मेत्तं’** सार तो इतना मात्र ही है। कितना? **‘जं कीरइ सोहणो धम्मो’** जो तुमने अच्छा धर्म कर लिया बस यही इस मनुष्य शरीर का और मनुष्य जन्म का सार है। जो धर्म कर लिया बस वही सार है। बाकी तुम जो कर रहे हो, वह तुम्हें सारभूत लग तो रहा है लेकिन उसमें कुछ सार है नहीं और यह बात अगर समझ में आती है, तो हम कुछ सारभूत तत्त्व को, पदार्थ को, ग्रहण करने के लिए अपना मन बना पाते हैं।

शरीर का सारभूत तत्त्व-धर्म

प्राकृत भाषा में यह संदेश हमें दिए जा रहे हैं, यह सारभूत बातें हमें बताई जा रही हैं, इस शरीर में सार इतना

ही है। **‘इत्तिय मेत्तं’** जो हम बोलते हैं- इत्तो सो है, बोलते हैं न? इतना सा है, यह **इत्तो** शब्द भी प्राकृत भाषा का ही शब्द है, प्राकृत से ही यह इत्तिय बनता है। इत्तिय! इतना ही, इत्तो, कित्तोसो? इत्तोसो। बुन्देलखण्ड में बोलते हैं न? इत्तो सो ले लो महाराज! इत्तो सो ले लो। वह इतना ही ले लो मतलब इतना ही है वह। यह इतना जो शब्द है, यह प्राकृत के इत्तिय शब्द से इत्तो बन गया बुन्देलखण्ड का। यह इत्ता सा ही सार बताया जा रहा है। यहाँ अगर आचार्यों की भाषा में बोलें... अगर कोई बुन्देलखण्ड में आचार्य हो और बुन्देलखण्ड की भाषा में बोलें तो वे कहेंगे... **‘जा शरीर को सार इत्तो ही है, थोड़ा सो धर्म कर लो, इत्तो ही है’** इसके अलावा कुछ नहीं है। बाकी यह शरीर क्या है? बस! मेघ पटलों के सदृश, देखते-देखते विलीन होने वाला है, क्षण भंगुर है और देखते-देखते आपके सामने से सब कुछ चले जाने वाला है।

बीत रहे समय को बनायें विशुद्धी का निमित्त

आप भी देख रहे हो, हम भी देख रहे हैं और देखते-देखते जब इस नगरी में प्रवेश हुआ था तब लग रहा था चतुर्मास होगा। चातुर्मास कितना बड़ा है? चातुर्मास के अभी बहुत महीने बाकी हैं। देखते-देखते कितने महीने चले गए? ढाई महीने हो गए और देखते-देखते... जब तक यह दशलक्षण पूरा होगा तो तीन महीने भी पूरे हो जाएँगे। देखते-देखते ही आपके सामने से सब कुछ निकल जाएगा, चला जाएगा। आपके अपने कोई भी राग-द्वेष होंगे तो आपके पास रहेंगे और अगर आप उन राग-द्वेषों को धर्म के पानी से धोने की कोशिश करेंगे तो आपकी आत्मा में उजलापन आ जाएगा। हम जहाँ रह रहे हैं, आप वहीं रहोगे लेकिन हम जहाँ रह रहे हैं, हम वहाँ नहीं रहेंगे।

शरीर के लिये धर्म ही शोभायमान है

आपके मन के किसी भी तरह के जो भाव होंगे, उन भावों के अनुसार ही आपका धर्म होगा और वह धर्म करने के लिए हमें एक अच्छा जीवन मिला है, इसमें किसी भी तरह की कोई भी हम नू-नच नहीं कर सकते हैं कि हमारे जीवन में किसी तरह की कमी है। आप यहाँ बैठ पाते हो तो इससे भी इस बात की पहचान होती है कि आप स्वस्थ हैं तभी बैठ पा रहे हैं। नहीं तो अभी कहीं कमर में दर्द होता, number problem होती, किसी भी तरीके की gastric हो रही होती, किसी भी तरह का migraine जैसा pain हो रहा होता तो आप यहाँ बैठ नहीं सकते। आप यहाँ बैठे हैं, स्वस्थ हैं, सुन रहे हैं... बात समझ में आती है, थोड़ा react करते हैं, it means आप intelligent भी हैं। अगर आपके अन्दर इस तरीके से सब कुछ अच्छा मिला है, आपका जीवन अच्छा है, आपके पास में धन है, बुद्धि है, तो आचार्य कहते हैं... इन सब में भी सारभूत अगर कुछ है, तो क्या है? जो हमने **‘सोहणो धम्मो’** कौन सा धर्म? **‘सोहण’ सोहण** अर्थात् शोभन, प्राकृत में **भा** का **हा** हो जाता है। जो आप लोग नाम सुनते हो न सोहनलाल तो यह सोहनलाल एक तरह से प्राकृत का नाम है- सोहनलाल। अगर आप अपने बच्चे का नाम और अच्छे से रखना चाहो प्राकृत में तो सोहण रख सकते हो। यह बहुत अच्छा नाम है- सोहण। सोहण यानी शोभन... शोभा देने वाला शोभित होने वाला, जो सुशोभित होने के स्वभाव वाला होता है, उसको शोभन कहते हैं। शोभन तो नाम रखते नहीं हो आप तो प्राकृत में सोहण यह बहुत अच्छा शब्द बन जाता है।

धर्म और धर्मी दोनों सुशोभित होते हैं

धर्म भी इसी तरह का सुशोभित होने वाला पदार्थ है और जो धर्म करता है, वह भी सुशोभित होने लग जाता है। धर्म हमें शोभा देता है और हमसे भी धर्म की शोभा बन जाती है। दोनों बातें होती हैं कि नहीं होती? जो धर्म धारण करेगा, जो धर्म करेगा, वह अच्छा व्यक्ति कहलाएगा कि बुरा कहलाएगा? अभी पंचम काल का इतना बुरा समय नहीं आया है कि धर्म करने वाले लोगों को व्यक्ति बुरा कहे। बुरा कहना शुरू कर दिया है लोगों ने, हो सकता है कई जगह पर धर्म करने वाले लोगों को भी दकियानूसी, रुढ़िवादी इस तरह के title से नवाजा जाता है। लेकिन अभी ऐसी बातें बहुत शुरूआती बातें हैं और ये बातें उन लोगों को भी समझ में आने लगती हैं, जब वह किसी तरह की problem में आते हैं तो उन्हें भी समझ में आने लग जाती है कि वास्तव में अगर अन्त तक हमें कुछ भी अच्छे लगने वाली कोई भावना है या अपने लिए कोई हितकारी चीज है, तो वह मात्र धर्म ही है, यह उनकी समझ में आ जाता है। इसलिए अभी इस पंचम काल में इतनी ज्यादा बात बिगड़ी नहीं है कि आप धर्म करो तो आपको धर्म करने के लिए किसी से छिपना पड़े...भाई! धर्म करने जा रहे हैं, बच के जाना, कोई देख न ले, ऐसा कोई भाव तो नहीं आता। धर्म को अभी खुलेआम करने के लिए आपके पास में माहौल है।

पंचम काल में भी धर्म का शोभायमान स्वरूप

अभी लोग इतने बिगड़े हुए नहीं हैं, उनकी मानसिकता भी इतनी खराब नहीं है कि वह धार्मिक लोगों को बुरी दृष्टि से देखें। आपके मन के अन्दर भाव होना चाहिए, अगर अच्छाइयाँ जीवन में आ सकती हैं तो वह मात्र धर्म के माध्यम से ही आ सकती हैं और धर्म ही हमारे जीवन को अच्छा बना पाएगा क्योंकि अच्छाइयों से ही जीवन अच्छा बनता है। इस तरह का विचार जब व्यक्ति के अन्दर आने लग जाता है, तो उसे एक अच्छे धर्म की आवश्यकता पड़ती है। **‘सोहणो धम्मो’** धर्म कैसा होना चाहिए? शोभन! अच्छा होना चाहिए, करने में भी अच्छा लगना चाहिए, देखने में भी अच्छा लगना चाहिए। बताओ आपके लिए धर्म करने में अच्छा लगता है कि नहीं लगता, देखने में अच्छा लगता है कि नहीं लगता? धर्म करने वाले लोगों को देख कर के भी कोई घृणा आती है क्या? कोई allergy होती हो, उनसे देख कर के या कोई एकदम से hate का भाव आ जाता हो, ऐसा तो कुछ नहीं है न? अभी ऐसा नहीं हो रहा, अभी इतना समय बिगाड़ को प्राप्त नहीं हुआ है, अभी समय अच्छा ही चल रहा है।

अच्छा धर्म- जीवन का सार

धर्म अच्छा है और उस अच्छे धर्म को जो व्यक्ति कर लेता है, तो आचार्य कहते हैं- इस जीवन का सार यही है। अब जीवन का सार तो पता नहीं कब अच्छा होगा? कब अच्छा करने को मिलेगा? कौन सा धर्म हमारे लिए अच्छा है? यह तो हमें कुछ पता नहीं और अपने दीर्घ जीवन में हमने कभी कुछ अच्छा किया है कि नहीं किया, यह भी हमें पता नहीं लेकिन अगर हम जागृत हैं तो हमारे सामने जो आ रहा है, अगर हम उसमें अपने आप को involve कर लेंगे तो यही हमारे जीवन की सबसे बड़ी अच्छाई होगी।

चातुर्मास- महान धर्म प्रभावना का काल

क्या आ रहा है जीवन में? सामने-सामने आ रहा है। देखते-देखते चातुर्मास का जो सबसे बड़ा उत्सव होता है, चातुर्मास का सबसे बड़ा जो प्रभावना का कार्य होता है, वह 10 दिन का कार्य, आपके समक्ष आने वाला है। आप जब यहाँ पर चातुर्मास की स्थापना कर रहे होंगे, तब आपको लग रहा होगा दशलक्षण पर्व आएँगे, 10 धर्म होंगे, तब से लोग सोच लेते हैं। तब से लोगों को लग रहा होगा, अभी तो बहुत time है, एक महीना सावन का हमें और ज्यादा plus मिला है। वह एक महीना भी निकल गया, दो महीने भी निकल गए और सावन के दोनों महीने निकलने के बाद में भादों का भी पूरा एक पक्ष निकल गया, उसके साथ में तीन दिन और निकल गए। 15 और तीन 18 दिन निकल गए, बचे कितने? 12! 12 में 10 दिन ये निकल जाएँगे और last-last के रत्नत्रय कर लीगे तो पूरे 12 दिन निकल जाएँगे।

स्वयं प्रेरणा हेतु पढ़ें किताब - 'बेटा'

यह सब आपके सामने आ रहा है, जा रहा है, निकल रहा है। आपका जीवन अपना है और अपने जीवन को संवारना भी अपना ही काम होना चाहिए। बताओ आपने जीवन कहाँ से लिया है? आपका जीवन अपना है कि कहीं और से आया हुआ है? इसलिए मैं कभी-कभी कहा करता हूँ... एक 'बेटा' नाम की एक किताब है, कभी देखी आपने? छोटी सी किताब है, अभी-अभी यहाँ पर और अच्छे ढंग से publish हुई है। हर बच्चे को और हर अच्छे businessman को, अच्छे घर में काम करने वाले जो भी लोग हैं, उन सबको एक बार इस 'बेटा' पुस्तक को जरूर पढ़ना चाहिए। वह सारभूत quotations, वह सारभूत बातें जो आपके लिए एक motivation देंगे और जिसको केवल आप पढ़ कर ही अपने मन में एक भाव ला सके कि हमें कैसे अच्छा सोचना है? हमें कैसे अच्छा करना है? हमारे भाव अगर गिर रहे हैं उस काम में नहीं लग रहे हैं तो कैसे लगे? एक छोटे से quotation के माध्यम से आपको यह ज्ञान दिया गया है... हिंदी में भी है और इंग्लिश में भी है। बेटा कहने का मतलब केवल लड़कों के लिए नहीं है, हम प्यार से लड़कियों को भी बेटा ही कहते हैं और जब बेटियों को प्यार किया जाता है, तो बेटियों को भी प्यार से बेटा ही कहा जाता है। so all are my son सभी लोग मेरे क्या है? बेटे हैं, चाहे बड़े हो, चाहे बूढ़े हो, सब बेटे हैं और उन सब बेटों के लिए कह रहा हूँ, यह किताब अपने घर में जरूर रखना। जब मन आ जाए तब कोई सा भी पन्ना पलट लेना और किसी भी पन्ने की कोई सी भी quotation पढ़ लेना... आपको एक नई ऊर्जा, एक नया विचार, एक नया ज्ञान मिलेगा। एक पन्ना पढ़ लीगे तो आपका एक quotation पढ़ने के बाद दूसरी quotation पढ़ने का मन अपने आप हो जाएगा क्योंकि एक line बहुत छोटी सी होती है।

जीवन उत्साह, उमंग और प्रसन्नता के साथ जियो

इसी में एक quotation लिखी हुई है... बेटा! 'जीवन अपना है, किसी से उधार नहीं लिया है, इसलिए अपना जीवन उत्साह और प्रसन्नता के साथ जियो'। Oh son! 'Life is your own, not a loan from someone. Live it with hope and happiness'. आपका जीवन अपना है, किसी का उधार लिया हुआ नहीं है इसलिए अपने जीवन को पूरी उमंग के साथ, उत्साह के साथ, प्रसन्नता के साथ जियो, यही जीवन जीने का सार है। अब यह एक line कौन से बेटों के काम में नहीं आएगी?

बताओ? जो बूढ़े भी हो रहे होंगे, उनके जीवन में भी एक उमंग आने लगेगी। भैया! जीवन जितना बचा है, उधार का तो नहीं है, जितना बचा है, उतना तो हम अच्छे से जी ले और कैसे जी ले? 'Live it with hope and happiness' पूरी आशा, पूरी उम्मीद के साथ जियो, पूरी प्रसन्नता के साथ जियो और जो जीवन आपको मिला है, अगर उसमें आप अपने जीवन को अच्छे ढंग से जीने का मन बना लो तो यही जीने का सरल तरीका आपको जो सिखाता है, उसी का नाम धर्म कहलाता है।

धर्म जीवन को सरल बनाता है

यह 10 दिनों में आपको क्या सिखाया जाएगा? यही जीने का तरीका! धर्म कोई ऐसी बला नहीं है कि भाई अब अलग से अब हमें इस बला को करना पड़ेगा। अलग से हमें इस बला के लिए अपना समय निकालना पड़ेगा, अब हमें अलग से इसमें अपना पूरा का पूरा time देकर के अपने कीमती समय को बर्बाद करना पड़ेगा। आपको धर्म ऐसी बला तो नहीं लगती। बलायें समझते हो न? बलायें! कभी-कभी घर में कोई लोग आ जाते हैं और कभी-कभी घर में कुछ ऐसे अपने ही family member होते हैं और वह कहीं अगर इधर-उधर चले जाते हैं तो लोग कहते हैं- बला टली। बलायें समझते हो न? कुछ भी जो अलग से आकर के, अपने ऊपर लग जाए और जो अपने को पसंद न आए और फिर जब वह अपने सामने से चला जाए तो भैया! बलायें टली। ऐसे कहीं आपको 10 धर्म, 10 दिन, यह कहीं बलायें तो नहीं लग रहे हैं? अब इन 10 दिनों में हमें अपना पूरा time देना पड़ेगा, हमें अपनी पूरे life का जो अपना schedule चल रहा था, उसे सब change करना पड़ेगा। अगर ऐसा कहीं आपके लिए आ रहा है और ऐसा आने के बावजूद भी आपके मन में अच्छा लग रहा है, तो यह बलायें नहीं कहलाएंगी और अगर आपको इसे किसी pressure में करना पड़ रहा है, तो फिर यह बलायें हो जाएंगी। फिर आप सोचोगे...भाई! बलायें आई हैं तो बलायें टल भी जाएंगी। फिर आप सोचोगे 10 दिन तक तो हम महाराज को अपना मुँह ही नहीं दिखाएँगे, 10 दिन तक तो हम किसी सभा में जाएँगे ही नहीं और इंतजार करेंगे। 10 दिन एक-एक करके निकल जाएँ, बलायें टल जाएँ तो बलाएँ टल भी जाएँगी।

धर्म बला नहीं, जीवन की कला है

धर्म क्या है? बला है? धर्म को अगर हम इस तरह से बलायें समझ कर के टालेंगे तो कभी भी आपके अन्दर न तो अच्छे जीवन जीने का कोई तरीका आ सकता है और न कभी आप भीतर से कभी अच्छे बन सकते हैं। यह धर्म ही है, जो आदमी के लिए काम में आने वाली चीज है और जिस तरफ हमारा दिमाग नहीं जाता है, उस तरफ दिमाग को ले जाने का काम, यह सूत्र करते हैं, ये गाथाएँ करती हैं। हम कभी सोच सकते हैं कि हमारा मनुष्य जीवन क्षणभंगुर है। लेकिन जीवन में किसी भी क्षण कुछ भी होता है और अचानक से आपके पास में जब खबरें आती हैं कि भाई! वह व्यक्ति वहाँ पर गिर पड़ा, किसी का accident हो गया, किसी की अचानक से कोई death हो गई। यह जब आपके पास में खबरें आती हैं, तब आपको कभी लगता है कि ऐसा क्यों हो गया? उसको भी अपना जीवन जीना था, वह भी अपनी उम्र के साथ जी रहा था लेकिन अचानक से कुछ भी हो गया। कभी-कभी तो व्यक्ति के लिए ऐसा भी हो जाता है, attack आया, doctor के पास तक नहीं पहुँच पाता है, बीच में ही चला जाता है।

गाथा: 33

इस असार एवं दुःखरूप संसार से ममत्व क्यों?

अनुष्टुप्वृत्तम्

जम्मदुक्खं जरादुक्खं, रोगा य मरणाणि य।

अहो! दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो ॥33॥

अन्वयार्थ- (जत्थ) जहाँ अर्थात् जिस संसार में **(जम्मदुक्खं)** जन्म संबंधी दुःख 'हो' **(जरादुक्खं)** वृद्धावस्था संबंधी दुःख 'हो' **(य)** तथा **(रोगा)** रोग **(य)** और **(मरणाणि)** मरण 'हो' तथा **(जंतुणो)** प्राणिगण **(कीसंति)** क्लेशित होते हैं अर्थात् दुःखी होते हैं 'तो यह निर्णीत होता है कि' **(हु)** निश्चित रूप से **(संसारो)** संसार **(दुक्खो)** दुःखरूप 'ही' है 'परन्तु' **(अहो!)** अहो! 'बड़ा आश्चर्य है कि लोग ऐसे संसार को चाहते क्यों हैं?' ॥33॥

‘जम्मदुक्खं जरादुक्खं, रोगा य मरणाणि य। अहो! दुक्खो हु संसारो’ क्या कहते हैं? इस संसार को दुःख कह दिया, यह संसार दुःख क्यों है? अब कई पढ़े-लिखे बच्चे कहते हैं... यह धार्मिक लोग, यह धर्मात्मा लोग, हमेशा संसार में दुःख ही दुःख देखते रहते हैं। इनकी इतनी negative thinking रहती है कि इन्हें संसार में दुःख के अलावा कुछ सुख ही नहीं दिखाई देता है। अरे भाई! जैसा देखो वैसा ही तो होगा। जब बच्चे अपनी एक युवा उम्र में होते हैं तो उन्हें इस तरह की बातें आ जाती हैं। उसी उम्र में जब वह परेशान होते हैं, जब वह जिस competition के लिए तैयारी कर रहे होते हैं और उसमें success नहीं मिलती है, जब दुःखी होते हैं, जब उनके शरीर में कोई रोग हो जाते हैं, जब विपरीतताएँ उनके साथ होती हैं और वह किसी तरह से आगे नहीं बढ़ पाते हैं, तब उन्हें समझ में आता है। जब थोड़ा सा माता-पिता के माध्यम से स्वतंत्रता मिल गई थी, घर से बाहर चले गए थे। माता-पिता सब खाने, पीने, रहने, फीस का, सबका इंतजाम कर रहे थे, तब हम अच्छी बातें कर रहे थे। क्या है जीवन में? सुख ही सुख है।

सोच में भटकाव क्षणिक सुख का आभास लाता है

यह धर्मात्मा लोगों के पास जाओ तो कहते हैं...संसार में दुःख ही दुःख है, शायद बच्चे इसलिए भी नहीं आते हैं क्योंकि वे चीजें उनकी thinking के opposite होती हैं। जब बच्चों को यह लगता है कि हमें तो सुख दिखाई दे रहा है और यह कहते हैं- संसार में दुःख है तो उन्हें लगता है कि भाई! बातें यहाँ पर अपने मतलब की नहीं हो रही हैं। इसलिए बच्चों के लिए धर्म करने से या धर्म सभा में बैठने से, डर लगने लग जाता है। लेकिन जब उन्हीं बच्चों के साथ में, जब यह विपरीतताएँ आती हैं और जब वह दुःखी होने लग जाते हैं, तब उन्हें यही बात अच्छी लगने लग जाती है। इसलिए हर किसी को यह बातें सुनते रहना चाहिए। थोड़ी देर हवा में उड़ तो लोगे लेकिन आना तो जमीन पर ही पड़ेगा। plane में कितनी देर उड़ोगे? घंटे, 2

घंटे, 4 घंटे, 6 घंटे, 12 घंटे, कितनी देर उड़ोगे plane में, बताओ? Belgium से आए हो, कितनी देर उड़ के आए हो? US और UK से भी लोग आते हैं, कितनी देर उड़ कर के आएंगे? कितनी देर आप उस plane में निकाल पाओगे? 1 दिन, 2 दिन, जिन्दगी तो नहीं निकाल पाओगे न?

संसार का दुःख, समय आने पर समझ आ ही जाएगा

जिन्दगी कहाँ निकलेगी? जिन्दगी जमीन पर खड़े होकर के निकलेगी और जिस जमीन पर आप उत्पन्न हुए हो, उस जमीन पर ही आपको गिरना पड़ेगा। अगर plane में भी गिर गए तो जमीन पर ही गिरा दिया जाएगा। plane में वहाँ पर कोई दफनाने की व्यवस्था नहीं है। जो उसका अन्तिम संस्कार किया जाएगा, वह जमीन में ही किया जाएगा। इसलिए जमीन से जुड़े रहो, जमीन की बात करो। जिस जमीन पर खड़े थे, उस जमीन पर देखो कि हम कहाँ खड़े हैं? थोड़ी देर के लिए हवा में उड़ तो गए लेकिन उसका नाम जिन्दगी नहीं है। इसलिए जो बच्चे थोड़ी देर के लिए अपने विचारों से उड़ते हैं तो उन्हें लगता है...ये बातें हमें समझ नहीं आ रही। हो सकता है कि अभी आपकी उम्र इस तरीके की है कि आपको समझ नहीं आ रही। लेकिन आप उन बातों को भी तो समझ सकते हैं, जो समझ नहीं आ रही हैं। लेकिन सुन तो ले, दिमाग के किसी एक कोने में पड़ी रहे, कभी समझ में आ जाएँगी, जब time आएगा तो। क्या है वे बातें?

जनम मरण का दुःख , यही है जीवन

‘जम्मदुक्खं जरादुक्खं’ दुःख कहाँ है? जन्म के समय पर दुःख है। बुढ़ापा आया तो दुःख है, रोग आए तो दुःख है, किसी भी तरह से मरण आ गया तो दुःख है। अब यह दुःख जब, सब जगह दिखाई देता है, तो फिर अब संसार में सुख कितना बचा? उतना ही बचा, बस इन दोनों के बीच में, अगर कुछ थोड़ा सा time निकल जाएगा। जन्म और बुढ़ापे के बीच में जो थोड़ा सा time, अगर कभी सही से निकल जाए तो उसी का नाम बस सुख समझ लेना। बाकी दुःखसे ही शुरुआत हुई है और दुःखसे ही अन्त होगा। इसलिए आचार्य कहते हैं कि संसार में दुःख से ही शुरुआत है, दुःख से ही अन्त है और बीच में भी अनेक रोग हैं, मरण है, इनके भी दुःख हैं और इन दुःखों में लोग दुःखी ही रहते हैं। ऐसे संसार में जंतु क्या करते रहते हैं? **‘जत्थ कीसंति जंतुणो’** ऐसे संसार में यह जंतु कहा गया है, जंतु! आप लोग जंतु किन को बोलते हो? जो छोटे-मोटे कीड़े मकोड़े होते हैं, उनको जंतु कहते हो। जो यह बड़े-बड़े आचार्य हैं, ज्ञानी, वह सब अपने को जंतु ही देख रहे हैं। जैसे वह जंतु कर रहे हैं, वैसे ही हम जंतु कर रहे हैं। जीव जंतुओं से भरा हुआ यह संसार, एक तरह से ही जी रहा है और सब क्या कर रहे हैं?

क्लेश परिणाम दुःख का कारण ‘कीसंति’

‘कीसंति’ अर्थात् क्लेश कर रहे हैं? क्लेश होने का मतलब? क्लेश कर रहे हैं, भीतर ही भीतर किलसते रहते हैं, किलसते रहते हैं। किलासना समझते हो न! कहीं-कहीं यह शब्द भी बोला जाता है...‘यह तो भाई किलसता ही रहता है’। किलसते का मतलब जब देखो तब घर में क्लेश ही करता रहता है या कुछ न कुछ मन में, दूसरों के लिए बुरा सोचता ही रहता है या भीतर ही भीतर, मन ही मन रोता ही रहता है या मन ही

मन गुस्सा ही करता रहता है, किलसता ही रहता है यह। यह क्या कहलाता है? किलसना! किलसना का मतलब ही हो गया भीतर ही भीतर दुःखी बने रहना। जब बच्चा भीतर ही भीतर किलसता रहेगा तो वह आपकी कोई भी बात सुनेगा ही नहीं। अपना क्लेश-क्लेश-क्लेश के भाव में ही रहता हुआ अपना समय निकालता रहेगा। किलसने वाले बच्चे की पहचान यही है, उससे कहो...बेटा! मन्दिर चल, हमें नहीं जाना, जब देखो तब मन्दिर चल। कभी hotel तो ले नहीं जाती, pizza खिलाने को, burger खिलाने को। मन्दिर चल! क्या मिलेगा मन्दिर में? वह क्या कर रहा है बच्चा? भीतर से किलस रहा है। यानी तुम्हारे मन्दिर जाने से उसको क्लेश हो रहा है और तुम उससे भी कह दो कि तू भी मन्दिर चल तो उसका क्लेश double हो जाता है। ऐसे क्लेश, शुरू से ही शुरू हो जाते हैं और इन्हीं क्लेशों से जब बच्चा किलसता रहता है तो बड़े होकर के भी वह किलसता ही रहता है।

संक्लेश-हमारी कषाएँ हमको पीड़ा देती हैं

इस क्लेश का नाम ही संक्लेश कहा जाता है, अच्छे शब्दों में इसको क्या बोलते हैं? संक्लेश! सैद्धांतिक शब्दों में मिलेगा...भाई! हर जीव यहाँ पर संक्लेश में जी रहा है। यह क्लेशने का नाम ही संक्लेश है। कोई भी तरीके का क्लेश हो, वह संक्लेश बन जाता है। यानी जिसमें हमारी कषाएँ हमको पीड़ा देने लग जाती हैं, हमें भीतर से दुःख मिलने लग जाता है, वह सब हमारे लिए क्लेश बन जाता है और हम मन ही मन क्लेशते रहते हैं।

हर संसारी है क्लेशमय, फिर संसार में सुख कहाँ

संसार के सब जीवों को देखो, सब किलस रहे हैं। हमें लगता है- छोटे-छोटे जंतुओं में क्लेश है, वह दुःखी हैं और जब बड़े-बड़े जो ज्ञानी आचार्य होते हैं, उन्हें लगता है संसार का हर जीव-जंतु क्लेश में है। अब जब संसार में क्लेश ही है, तो फिर संसार में सुख कहाँ है? अब उन पढ़ने वाले बच्चों से पूछो कि तुम्हारे लिए यह जो मौज-मस्ती का time है, कितना रहता है? आए थे किसी दूसरे शहर में coaching करने के लिए, माता-पिता ने भेजा था तुमको पढ़ने के लिए। तुम यहाँ पर आकर के अब मस्ती करने लग गए और तुम्हें लग रहा है कि संसार में सुख ही सुख है। जब तुम्हारे result अच्छे नहीं आएँगे या जब तुम्हारे लिए स्थितियाँ अनुकूल नहीं रहेंगी तब तुम्हें लगेगा कि हमने यह जो time खराब किया है, यह हमारा time अब हमारे लिए क्लेश का बन गया। अब जब result अच्छे नहीं आएँगे तब तुम्हें जो क्लेश होगा, तब तुम्हें समझ में आएगा कि संसार में दुःख है कि सुख है। अगर तुमने अच्छे ढंग से पढ़ाई की है मेहनत की है, तो वह भी आपके लिए एक तरीके का क्या होगा? क्लेश ही होगा। अगर आपको क्लेश अच्छा नहीं लग रहा है, दुःख अच्छा नहीं लग रहा है, तो सुख थोड़ी देर का तो होगा लंबे समय का नहीं होगा।

माता-पिता के क्लेश

माता-पिता आपको, आपके लिए बहुत लंबे समय तक बाहर भेज करके, इस वंचना के साथ में नहीं रह सकते हैं कि भाई! बच्चा पढ़ रहा है, पढ़ रहा है, पढ़ रहा है, बच्चा कुछ पढ़ ही नहीं रहा। माता-पिता देखते

रहते हैं, बच्चा पढ़ रहा है, तो ठीक है नहीं पढ़ रहा है, तो भाई घर पर ही रह। आपके लिए जो उड़ने का time मिलता है, वह कितना सा मिलता है? वह बच्चे कितनी देर उड़ते हैं अपने दोस्तों के साथ में? कितनी देर उनके अन्दर यह भाव आएगा कि भाई! मैं सुखी हूँ, सुखी हूँ, सुखी हूँ? अरे! थोड़ी देर के लिए घंटा-आध घंटे की मस्ती हो गई तो इसका नाम सुख नहीं हो गया, यह थोड़ा relax होने का time होता है।

उद्देश्य की पूर्ति के आगे जिम्मेदारियाँ—फिर क्लेश

वास्तव में तो जो बच्चा दिन रात मेहनत करता है, अपने सब तरह के सुखों को छोड़कर के केवल अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए मेहनत करता है, उसी के लिए आगे जीवन में कोई सफलता मिलती है और सफलता मिलती भी है, तो भी उसके सामने फिर और आगे जिम्मेदारियाँ आ जाती हैं तो उसके जीवन में क्लेश-क्लेश-क्लेश-क्लेश भीतर से देखा जाए तो बना ही रहता है।

इस संसार में हर जीव-जंतु क्लेश रहा है

इसलिए इस संसार में हर जीव-जंतु किलस रहा है। धन है, तो किलस रहा है। नहीं है, तो किलस रहा है। मकान-जायदाद है तो किलस रहा है, नहीं है तो किलस रहा है। भाई है तो क्यों किलस रहा है, जिनके पास है उनसे पूछ लो वे कैसे किलसते हैं। अलग-अलग तरीके के क्लेश होते हैं और इन क्लेशों में रहने वाले जीवों की जब हम उनके अन्तरंग दृष्टि से देखते हैं तो आचार्य अध्यात्म दृष्टि से देखने पर कहते हैं सारे जीव किलस रहे हैं। इसलिए किसी भी संसारी जीवों को संसार में, हमेशा सुख नहीं मिलता है।

समझो- अनेक तात्कालिक दुःख को

इस संसार में जन्म का दुःख , मृत्यु का दुःख , रोग के दुःख , बुढ़ापे का दुःख , यह तो मोटे-मोटे हैं जो नियम से होने हैं। यह तो वह course है जो mandatory है। बाकी कुछ भी extra जो course है, वह तो आपके अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार, कुछ भी नए-नए तैयार हो जाते हैं। घर में बैठे थे...मम्मी गिर गई, पापा का पैर फिसल गया fracture हो गया लेकर के जाओ। यहाँ operation नहीं हो रहा है, जबलपुर लेकर के जाओ। वहाँ नहीं हो रहा है, बेंगलुरु लेकर के जाओ...दिन है, रात है, चलना है, भूखे हैं, प्यासे हैं, नींद भी नहीं ले रहे हैं और सब कुछ करके बस! यह करना है, यह करना है, यह ठीक हो जाए। यह क्या है ? कितने क्लेश उठाने पड़ते हैं। क्षण भर में कुछ भी, जीवन में सुख चलते हुए भी, कभी भी-कुछ भी क्लेश आ जाता है और यह सब extra क्लेश है, इसलिए इनकी बात नहीं है। यहाँ तो यह मोटे-मोटे क्लेश बताए जा रहे हैं, जो सबके जीवन में आने जरूरी है।

जन्म, जरा, रोग व मृत्यु के दुःख की अनिवार्यता

कौन-कौन से? जन्म का दुःख , वह तो निकल गया महाराज! चलो एक से तो मुक्ति मिल गई, है न? अब क्या आने वाला है? तीन तो सामने दिख रहे हैं न? रोग का दुःख , यह कभी भी खड़ा हो जाता है। नहीं होता है तो अचानक से कुछ भी शुरू हो जाता है। कोरोना हो गया, कोई भी फ्लू आ जाता है, कुछ भी और यह नए-नए रोग आकर के सामने खड़े हो जाते हैं। यह दुःख सामने है। यह भी हम पार कर जाएंगे तो क्या होगा? बुढ़ापा आ जाता है। बुढ़ापे का दुःख एक अलग होता है। बुढ़ापा भी धीरे-धीरे पार कर लेंगे। जब मृत्यु के बिल्कुल निकट आते हैं तो मृत्यु का दुःख भी एक अलग होता है। अभी तो आपको उसकी कल्पना ही नहीं है। किसी को भी नहीं है, हमको भी नहीं है। अभी तो किसी को भी नहीं है, जब सामने आएगा जब देखेंगे। यह जो कल्पनाओं में नहीं है, इसको भी तो हम पहले से सोच सकते हैं न कि यह होने वाला है, यह होगा। आगे की चीजों को ध्यान में रख कर के चलना, कोई बुराई की बात है क्या? आप कहीं अपनी car drive करते हैं, कहीं पर से कहीं पहुँचते हैं तो क्या आगे का आप अपना नक्शा सामने नहीं रखते, आगे की road map आपके सामने नहीं होता है क्या? हमें कहाँ जाना है, जहाँ जा रहे हैं, वहाँ किन रास्तों से गुजरना है, वहाँ क्या-क्या हमारे सामने दिक्कतें आ सकती हैं? यह सब चीजों को ध्यान में रख कर के चलना ज्ञान है कि अज्ञान है, बताओ?

बच्चों को समझाओ, जो संसार में सुख मानते हैं

उन बच्चों को समझाओ, जो थोड़े से गुलछरें उड़ाने के नाम पर कहते हैं- जीवन में दुःख है कहाँ? जीवन में तो सुख ही सुख है। बाप का पैसा उड़ाने में सुख लगता है। जब आप कमाई करोगे तब पता पड़ेगा कि सुख है कि दुःख है? ऐसी बातें वही बच्चे कर रहे होते हैं, जो बाप का पैसा खा रहे होते हैं। आप कमाई खाने वाले को समझ में आ जाता है- बेटा! कितनी कमाई हो रही है? कितनी saving हो रही है? और कितनी हम मौज उड़ा सकते हैं? उन्हें सब समझ में आने लग जाता है, कितनी पढ़ाई करने के बाद में कितनी सी नौकरी लगी? और कितना सा पैसा आ रहा है? अब इस पैसे में कितनी saving कर पा रहे हैं? कितना किरायों में, loan में जा रहा है। यह जब व्यक्ति को समझ में आता है, तो यह उसके सारे के सारे दुःख extra दुःख होते हैं। लेकिन यह दुःख, मोटे-मोटे दुःख तो नियम से सबके जीवन में आने हैं, जिन्होंने इस संसार में जन्म लिया है।

धर्म आराधना- सबसे बड़ा सुख

इसलिए आचार्य कह रहे हैं...सुख बहुत कम हैं और दुःख बहुत ज्यादा हैं और ऐसे दुःख के समय पर भी, अगर सुख पूर्वक 10 दिन भी धर्म की आराधना हो जाए तो इससे बड़ा सुख दुनिया में फिर आपको कहीं मिलने वाला नहीं है। कितना अच्छा बहाना है, कोई कुछ नहीं कहेगा। भाई क्या है? बढ़िया कपड़े, सफेद कपड़े पहन कर के बिल्कुल free mood में, free कपड़ों में बैठे हैं कुछ करना ही नहीं है। जो सुनाएंगे सो

महाराज सुनाएँगे, जो कुछ भी करा जाएगा महाराज की तरफ से होगा। अपने को तो क्या है? बस! बैठे-बैठे सुनना है, बैठे-बैठे देखना है, आनन्द लेना है, इससे बढ़कर के सुख और क्या होगा बताओ? करना कुछ नहीं है और मजा पूरा लेना है। अगर आदमी गणित लगाएँ तो उसे समझ में आ सकता है कि इससे बड़ी सुख की परिभाषा कौन सी? दुकान पर नहीं जाना, चैन से बैठना है। कोई ग्राहकी नहीं करना, mobile-mobile, अरे बच्चे अच्छे देखते रहेंगे या कोई घर में एक दूसरे, बूढ़े दादा जी बैठे होंगे न, थमा आना, बता आना कि दो चार, अगर ये कोई व्यक्ति आएँ तो उनसे हाँ-हुँ करके निपटा देना। बाकी 10 दिन बाद में समझ लूँगा, ज्यादा हो तो अपने group में message करके डाल दिया, भाई 10 दिन बाद मिलेंगे, bye bye। नहीं समझ में आया?

दशलक्षण पर्व में आपकी चर्या बने धर्म प्रभावना का कारण

आदमी के लिए यह तो लगेगा कि हाँ! भाई कोई आदमी, कोई व्यक्ति, ऐसा भी हो सकता है जो 10 दिन के लिए अपना सब कुछ बंद करके भी जी सकता है। यह जो उसके लिए एक message पहुँचेगा, इस message से ही उसे समझ में आएगा कि यह कहाँ गया है? क्या करने गया है? अगर आपने कह दिया कि मैं 10 दिन के लिए धर्म कर रहा हूँ तो उसे समझ में आएगा कि भाई धर्म कितनी कीमती चीज है कि आदमी ने अपने व्यापार को 10 दिन के लिए बंद करके धर्म को importance दी है। उस आदमी के अन्दर भी धर्म की भावना पैदा हो जाएगी और यह सबसे बड़ी प्रभावना हो जाएगी। धर्म करने वाला व्यक्ति धर्म को अगर महत्व देगा तो उसके लिए सब बाहर की चीजें निस्सार हैं। ऐसे व्यक्तियों के द्वारा ही जब धर्म आगे किया जाता है, तब उनके मन को संतोष मिलता है, दूसरे मन के अन्दर भी अपने आप एक message पहुँचता है...हाँ भाई! यह message 10 दिन के लिए मिलने का नहीं है। कहीं छुट्टियों पर, कहीं और जगह मस्ती करने नहीं गया। कहाँ गया? धर्म करने गया, एक time खाएगा, दो time भी मिल जाएगा, चिन्ता नहीं करना।

धर्म के माहौल में भूख प्यास याद नहीं आती

बीच में पानी-वानी महाराज, कितने time? चलो पहले दिन से तुम्हारे लिए सब छूट है। तुम्हें जितनी बार पीना हो पी लेना। दो-तीन दिन बाद तुम्हें खुद लगने लग जाएगा कि हम कहीं न कहीं गलती कर रहे हैं। वह एक ऐसा माहौल होगा, आपको उस बीच में से उठ कर के पानी पीने की याद ही नहीं आएगी और यह भूख-प्यास कुछ चीज नहीं होती, सिर्फ याद की चीज होती है। अगर दिमाग में याद आ गई तो भूख लगी है और नहीं याद आई तो कुछ नहीं है। देख लो आप! यहाँ हम बैठे-बैठे बोलते रहे और दो घंटे भी आपको बिठा रहे हैं तो भूख नहीं लगेगी और यहाँ से जैसे ही उठ कर जाओगे और घर पर पहुँचे तो आपको भूख के अलावा कुछ लगता नहीं है।

गाथा: 34

समय रहते धर्मसाधन करना चाहिए

आर्यावृत्तम्

जाव ण इंद्रिय-हाणी, जाव ण जर-रक्खसी परिप्फुरइ।

जाव ण रोगवियारा, जाव ण मच्चू समुल्लियइ॥34॥

अन्वयार्थ- (जाव) जब तक (इंद्रिय-हाणी) इंद्रियों की, हानि (ण) नहीं हुई है 'अथवा' (जाव) जब तक (जर-रक्खसी) बुढ़ापारूपी, राक्षसी (परि-प्फुरइ ण) परि-स्फुरित यानी सब ओर से, प्रकट, नहीं होती है 'अथवा' (जाव) जब तक (रोग-वियारा) रोग के, विकार (ण) नहीं हुए हैं 'अथवा' (जाव) जब तक (मच्चू) मृत्यु (समुल्लियइ ण) आलिंगन, नहीं करती है 'तब तक धर्मसाधन कर लेना चाहिए' ॥34॥

यहाँ कहा जा रहा है... 'जाव ण इंद्रिय-हाणी' जो मौज मस्ती करने वाले लोग हैं उनके लिए विशेष रूप से बताया जा रहा है। जब तक तुम्हारी इंद्रियाएँ नष्ट न हो जाए, यानी उनकी कमी न हो जाए, उनमें हानि न आ जाए। देखने में, सुनने में, बोलने में, चखने में, जब तक यह न हो जाए और जब तक यह बुढ़ापा रूपी राक्षसी सामने न आ जाए...कौन सी राक्षसी? यह जरा, बुढ़ापा रूपी राक्षसी जब तक सामने नाचने न लग जाए और जब तक तुम्हारे लिए रोगों का कोई विकार उत्पन्न न हो जाए तब तक आचार्य कहते हैं- क्या कर लो? और जब तक तुम्हें मृत्यु से समागम न हो जाए, उससे पहले ही कुछ कर लो। तुम सोच रहे हो बाद में करेंगे, अभी तो अपनी इंद्रियाँ मस्त है। अभी तो mobile देखने का time है, mobile तो मिलेगा ही नहीं 10 दिन, उसके लिए कहा जा रहा है। जब तक तुम्हारी इंद्रियाँ काम कर रही है, बुद्धि काम कर रही है, जब तक तुम्हें रोग नहीं आ रहे हैं, जब तक मृत्यु सामने दस्तक नहीं दे रही है, जब तक बुढ़ापे की राक्षसी तुम्हारे सिर पर नहीं नाच रही है, धर्म कर लो। राक्षसी कहाँ नाचती है बुढ़ापे की? सिर पर नाचना शुरू करती है।

बुढ़ापा रूपी राक्षसी के नर्तन पूर्व जियें सारभूत जीवन

जानते हो कैसे? सबसे पहले वह नाचना शुरू करती है। जब आपके काले-काले बाल सफेद-सफेद होने लग जाएँ तो समझ लेना अब यह राक्षसी सिर के ऊपर नाचने लग गई है। यह सब काले बाल वाले बैठे हैं, सब real है इनके सबके बाल! यहाँ तो कोई दिखता ही नहीं सफेद बाल वाला! क्यों? सब dye लगाएँ हैं कि original है सबके बाल? समझ लेना छुपा रहे हो, वह राक्षसी छुपेगी नहीं, उस राक्षसी से आप अपने आप को बचाने की कोशिश तो कर लोगे लेकिन राक्षसी किसी न किसी रूप में आपके ऊपर हावी होती चली जाएगी। वह सबसे पहला धमाका यहीं से करती है। दूसरा धमाका कहाँ होगा? कान में होगा, तीसरा



गाथा: 35

धर्म साधन का वास्तविक समय युवावस्था ही है

जह गेहंमि पलित्ते, कूवं खणिउं ण सक्कए कोई।
तह संपत्ते मरणे, धम्मो कह कीरए जीव! ॥35॥

अन्वयार्थ- (जीव!) हे आत्मन्! (जह) जिस प्रकार (गेहंमि पलित्ते) गृह के यानी घर के, प्रदीप्त यानी जलने पर (कूवं) कुँए को (खणिउं) खोदने के लिए (कोई) कोई (सक्कए ण) समर्थ, नहीं हो सकता है 'ठीक' (तह) उसी प्रकार (मरणे सं-पत्ते) मरण के, अत्यन्त निकट, प्राप्त होने पर (धम्मो) धर्म (कह) किस प्रकार (कीरए) किया जा सकता है? अर्थात् नहीं किया जा सकता है ॥35॥

वैराग्य शतक नाम का यह ग्रन्थ, पहले से ही आप लोग सुनते आ रहे हैं। लगभग 34 गाथाएँ आपने सुनी थी, आज दो गाथाएँ 35 और 36 नम्बर की पढ़ते हैं...

जह गेहंमि पलित्ते, कूवं खणिउं ण सक्कए कोई।
तह संपत्ते मरणे, धम्मो कह कीरए जीव! ॥35॥

रुव-मसासय-मेयं, विज्जु-लया-चंचलं जए जीयं।
संझाणुराग-सरिसं, खण-रमणीयं च तारुण्णं ॥36॥

सल्लेखना मरण हेतु पूर्व तैयारी आवश्यक

कहते हैं... 'जह गेहंमि पलित्ते' जैसे गेह अर्थात् गृह होता है, घर के प्रज्वलित होने पर 'कूवं खणिउं' कूप को खोदने का, खनन करने का 'ण सक्कए कोई' कोई समर्थ नहीं होता है। 'तह संपत्ते मरणे' उसी तरह से मरण प्राप्त हो जाने पर 'धम्मो कह कीरए जीव!' हे जीव! तुम धर्म फिर कैसे कर पाओगे? जीव को सम्बोधन करते हुए आचार्य कह रहे हैं कि जिस तरह से अगर घर में आग लग गई हो और उसी समय पर आप सोचो कि भाई! पानी चाहिए और पानी चाहने के लिए आप उसी समय पर कुआँ खोदने के लिए तैयारी करो, तो ऐसा करना जिस तरह से हास्यास्पद है, कोई काम का नहीं है, उसी तरह से मरण के समय पर हम धर्म करेंगे, ऐसे सोचने वालों के लिए भी, यह जीव के लिए भी यह सम्भव नहीं होगा। धर्म तो आप पिछले दिनों से करते आ ही रहे हैं और वह धर्म करते हुए निरन्तर आपको बहुत महीने भी हो गए हैं। 10 दिनों में आपने धर्म की बहुत अच्छे से व्याख्याएँ भी सुनी हैं किन्तु यहाँ पर जिस धर्म की बात कर रहे हैं, वह धर्म है-



आत्महित करने के परिणाम। अपनी आत्मा के लिए यह सोच पाना कि अब हमारे लिए यह उचित समय आ गया है, हमें अपने आत्महित के कार्य में लगना चाहिए। ऐसा विचार करना और उसके अनुरूप व्रत, संयम आदि को धारण करना, सम्यग्दर्शन की भावनाओं को प्रबल बनाना, यह कार्य जो किया जाता है, इसी का नाम धर्म कहा जाता है और इस तरह का धर्म, ज्यादातर लोग जैसा सोचते हैं...हम जब अन्त समय आएगा तब धर्म कर लेंगे। तब आचार्य यहाँ कहते हैं...अन्त समय में आप क्या कर लोगे? आप अन्त समय में कुछ नहीं कर पाओगे। मरण के प्राप्त होने पर, मरण सामने उपस्थित होने पर धर्म कैसे कर पाओगे? क्योंकि धर्म केवल ऐसी कोई चीज नहीं है जो हम केवल कानों से सुन ले और हो जाए। उसको हमें करना भी पड़ेगा और करने के लिए हमारे पास में बुद्धि होनी चाहिए, सामर्थ्य होनी चाहिए। हमारी इन्द्रियाँ भी काम करने में समर्थ होनी चाहिए। जब इन्द्रियाँ बिल्कुल शिथिल पड़ जाती हैं तो उनमें आवाज तो आती है लेकिन उस आवाज से जो मन के अन्दर उत्साह उत्पन्न होता है, वह नहीं हो पाता। इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाती हैं तो आँखों से दिखाई तो देता है लेकिन देख कर के जो भीतर से हमारे अन्दर पुरुषार्थ की भावना उत्पन्न होती है, वह नहीं हो पाती है। इसलिए आचार्य कहते हैं...जब तक आपकी देह काम कर रही है, जब तक आपको रोग नहीं हो रहे हैं, जब तक आपकी इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हुई हैं, तब तक धर्म कर लेना चाहिए।

किसी भी कार्य हेतु उत्साह आवश्यक है

धर्म की बातें जीवन में तभी अच्छी लगती हैं, जब हमारे अन्दर एक उमंग का भाव हो, एक उत्साह का भाव हो। अगर उत्साह चला गया तो धर्म का भाव भी धीरे-धीरे चला जाता है। जब उत्साह रहता है, तभी हम कर्म के कार्यों में लगते हैं और जब उत्साह रहता है तभी हम धर्म के कार्य में लग पाते हैं। आप देखो! जब व्यक्ति के जीवन में से उत्साह निकल जाए, निराशा आ जाए और उसके जीवन में ऐसा लगे कि हमारा सब कुछ छूट गया है, तो उसे धर्म करने का भी उत्साह उस समय पर बचता नहीं है। धर्म करने का उत्साह कब बनता है? जब सब अच्छा चल रहा हो। कुछ भी थोड़ा सा खराब हो जाए, कुछ भी थोड़ा सा बिगड़ जाए तो एकदम से धर्म करने का भाव भी नहीं बनता। सब अच्छा-अच्छा चले। हम अगर भीतर से उमंग के साथ में होते हैं तो हमारे अन्दर से जय-जयकार भी अच्छी निकलती है और जब उमंग नहीं होती है, तो हम जय-जयकार भी अच्छे से नहीं कर पाते हैं।

जय जयकार की महिमा

इसलिए जब प्रवचन शुरू होते हैं तो उससे पहले एक जय जयकार होती है। किसलिए होती है? इसीलिए होती है कि बैठे हुए जो श्रोता हैं, उनके अन्दर एक उमंग आ जाए, एक उत्साह आ जाए। अगर उस समय पर वह जय जयकार करते हुए आपके मुँह से आवाज न निकले तो वक्ता को समझ में आने लग जाता है, लोगों में उत्साह है ही नहीं! अब नहीं है तो क्या करें? वक्ता को प्रवचन तो करना ही है और प्रवचन करते हुए फिर वक्ता के लिए वही एक चीज हो जाती है कि अब इनमें उत्साह नहीं है तो उत्साह भरना है, तो वह उत्साह को अभिव्यक्त करने की एक प्रक्रिया है। जब आप बोलते हैं...तीर्थकरों की जय बोलते हैं तो यह जय बोलना भी एक अन्तरंग के उत्साह को बताता है। आप में उत्साह होता है, तो वह जयकार की आवाज अच्छी आती है। जब किसी व्यक्ति के लिए वह आवाज कम दिखाई देती है, तो वह आपसे कहता है...अभी आवाज पहुँची

नहीं है डोंगरगढ़ तक तो फिर आपके अन्दर एक और उत्साह आता है। फिर आप उस आवाज को और ज्यादा से निकालते हो। वह निकलती है यानी आपने भीतर से भाव किया उत्साह के साथ में तो आवाज बाहर अपने आप आती है। वैसे देखते रहो, बैठे रहो तो ऐसा लगता है जैसे बिल्कुल मुँह में से आवाज निकल ही नहीं रही है, बिल्कुल मरियल से बैठे हैं। लेकिन जब आप में उत्साह भरा जाता है, तब आपके लिए भी आवाज निकलने लग जाती है। आपका फिर सुनने का एक मन बन जाता है। जितने भी मन में अवरोध पैदा होते हैं, वह सब छूट जाते हैं, हट जाते हैं और यह मन के अवरोध हट जाना, मन के उन विषाद के क्षणों को भूल जाना ही धर्म को सुनने का फल होता है।

धर्म के संस्कार बचपन से ही देने चाहिए

अब आप यह सोचो कि यह फल हमें जितना युवावस्था में प्राप्त होता है, क्या हमें वृद्धावस्था में प्राप्त हो सकता है? अभी जब हम आपसे कहते हैं...सुनिए! देखिए! तो आप सुनते हैं, देखते हैं और जब वृद्धावस्था होगी तो उस समय पर आपसे कहा जाएगा...दादाजी! सुन रहे हो कि नहीं? दादाजी! देख रहे हो कि नहीं? फिर क्या निकलेगा? आवाज भी मुश्किल से निकलती है। हूँ! हाँ! भी मुश्किल से होती है। गर्दन हिलाने की भी ताकत नहीं रह जाती है, तो उस समय पर केवल इशारों से ही काम होता है। आँखें खोल दो तो समझ लेंगे, आप सुन रहे हो? यह अन्तिम स्थिति बनती है। अब उस समय पर आपके अन्दर अगर धर्म होगा, जो पहले से आपने किया होगा तो उत्साह रहता है और अगर वह धर्म का भाव आपके अन्दर पहले से नहीं था तो अन्त समय में भी आपके अन्दर उत्साह नहीं बनेगा। इसलिए आचार्य कहते हैं...जब अच्छी इन्द्रियाँ काम कर रही हो तभी धर्म कर लेना चाहिए। जब आपकी बुद्धि में कोई बात समझ में आती हो, तभी समझ लेना चाहिए। आँखों से अच्छा दिखाई देता हो तो जिनवाणी के अक्षर पढ़ लेना चाहिए और अगर आपके लिए यह स्थितियाँ धीरे-धीरे बिगड़ती गईं तो फिर आँख, कान तो रहेंगे अपनी जगह लेकिन उनसे होने वाला जो उत्साह अपने जीवन में आना चाहिए, वह नहीं आ पाता। इसलिए अन्त समय में जो समाधि करते हैं, अन्त समय में जो मरण को साधते हैं, अधिकतर लोग वही साध पाते हैं जिन्होंने युवावस्था में या उससे पहले अपने जीवन में धर्म की साधना की हो। धर्म करते रहने से, सुनते रहने से सुनने की इच्छा बनी रहती है और अगर वह सुनना बन्द हो जाए या सुनने की इच्छा नहीं रहे तो अन्त समय में भी सुनने की इच्छा नहीं होती है।

बचपन के संस्कार अन्तिम समय तक साथ रहते हैं

समझो! कितनी बड़ी चीज होगी कि अन्त समय में जब आपके कान सुनने के लिए भी तैयार न हो और आपका मन कहे कि हमें सुनना है। कान तो धीरे-धीरे शिथिल पड़ेंगे, आँखें धीरे-धीरे शिथिल पड़ेंगी लेकिन आपका मन कहे, नहीं... जिनवाणी सुनाओ! आपका मन कहे, नहीं... मुझे जिनवाणी पढ़ना है। जितना पढ़ पाऊँगा, उतना पढ़ूँगा लेकिन पढ़ना है। तब यह भीतर का मन का जो उत्साह है, यह उस समय पर उस समाधि में काम आता है और यह मन का उत्साह बनाए रखने के लिए ही पहले से अभ्यास किया जाता है। अब आप सोचो! आप कितनी बार जय जयकार बोलते रहते हो, कितनी बार जय जय बोल चुके होते हो? इसका भी एक संस्कार आत्मा पर पड़ जाता है। जैसे बच्चा होता है छोटा सा तो उसे माँ सिखाती है...बेटा!

जय जय बोल, जय जय जय, यहीं से शुरुआत होती है न? वह बच्चा धीरे-धीरे बोलने लग जाता है..जय। किसकी जय? तुम बोलो नाम, किसकी बुलवाना है? जय मैं बोलूंगा। माँ जो है, उन आचार्य का नाम बोलती है या अरिहन्त भगवान का नाम बोलती है, तीर्थंकर का नाम बोलती है, तो माँ तो नाम बोलती है और वह बच्चा अगर, कितना सा? छोटा सा भी हो और बस जय जय जय बोल दे तो माँ के हर्ष का ठिकाना नहीं रहता। क्यों नहीं रहता? कम से कम बच्चा बोल रहा है, हम जैसा इशारा कर रहे हैं वैसा कर रहा है मतलब उसका दिमाग ठीक चल रहा है, उसकी growth सही हो रही है। इसी कारण से उस बच्चे को सबसे पहले यही सिखाया जाता है। मन्दिर में लाएंगी माँ तो जय! जय! जय! सिखाएंगी। जब वह किसी भी तरह से भगवान की, तीर्थंकर का नाम लेगी तो जय! जय बोलना सिखाएंगी। यह जय! जय बोलते-बोलते, बोलते-बोलते जब वह बड़ा हो जाता है, तब फिर जब मन्दिर आता है, तो अपने आप जय जय जय, निस्सहि निस्सहि निस्सहि, यहीं से शुरु होता है न? तब भी जय जय जय बोलते हैं, मतलब कि आपको बचपन से जय जय सिखाया जाता है। बड़े हो गए तब भी आपको जय जय करना सिखाया जा रहा है और फिर जब आप और बड़े हो जाते हैं तब भी आपके लिए सिखाया जाता है। अभी भी जय जय बोलो, जय जयकार करो। महाराज की सभा में हो, महाराज के आगे पीछे हो तो क्या करो? तब भी जय जयकार करो। ऐसे करते-करते, जब अन्त समय आ जाए तब भी मुँह से जय जयकार करते हुए ही इस शरीर से प्राण निकले, इस शरीर से प्राण छूटे तो समझ लेना, वह जय जयकार हो गई। जीवन के इन चारों पड़ाव में हमें जय जय जय ही सिखाया जाता है। बचपन में जय की, बड़े हुए तब हमने मन्दिर में आकर के जय जय की, फिर जब हम और समझदार हुए, प्रवचन सुनने लगे, तब भी हमने जय जय की और जय जय करते-करते जब हमारे अन्त समय का समय आया, तब भी हमने जय जय की। अब यह जीवन भर की जय अन्त समय में मुँह से निकल जाए, यह सबसे महत्वपूर्ण बात है। अभी तो आपसे बोल देते हैं...भाई! बोलो तो आप बोलने लग जाते हो और कह देते हैं और तेजी से बोलो तो आप और तेजी से बोल लेते हो। लेकिन जब जीवन की अन्तिम स्थिति में हम हो, उस समय पर हम जब पड़े हुए हो और उस समय पर कोई कहे, आचार्य विद्या सागर जी महाराज की जय तो ऐसी आवाज आ जाए उस समय पर **‘जय’** तो फिर कुछ बात बने।

जयकार का नाद सकारात्मकता को बढ़ाता है

यह जो जय का संस्कार है, यह भी आपके लिए उस समय पर काम आने वाला संस्कार है और यह ‘जय’ उस समय पर भी आपके अन्दर क्या पैदा करेगा? उत्साह पैदा करेगा यानी जय बोलने से गला खुल जाता है। हृदय बिल्कुल जो है निराशा में डला हुआ हो, वह ऊपर आ जाता है और जय बोलने से हमारे अन्दर के जब उत्साह बनते हैं तो दिमाग भी जो है, नकारात्मक होता है तो सकारात्मक हो जाता है। यह जय शब्द में क्षमता है, इसलिए हर समय पर आपके लिए कोई भी धार्मिक क्रिया होती है, कर्म होता है तो उसमें आपको जयकार बुलवाना सिखाया जाता है। कोई भी जुलूस होता है, मन्दिर में आगमन होता है, मन्दिर में भगवान की पूजन आदि कार्य होते हैं, हम हर कार्य को जय से शुरु करते हैं। जय! जय! जय! यानी जय हो। किसकी जय हो? बताओ किसकी जय हो? बोलते तो हो आप, भगवान की जय हो लेकिन भगवान की तो जय हो चुकी। जय मतलब विजय, जय मतलब जीत लेना तो भगवान तो जीत चुके जो उन्हें जीतना था। भगवान ने तो इस संसार के सभी पदार्थों को जीत लिया, संसार को जीत लिया, अपनी कषायों को जीत लिया, कर्मों को जीत लिया तो उनकी तो जय जय हो ही गई। अब आप क्यों कहते हो? भगवान जय हो, जय हो,

जय हो। अब क्या हो जय? जय तो हो चुकी। जब हमने भगवान से कहा...जय हो तो भगवान की तो जय हो चुकी है लेकिन ऐसा कहने से भी..क्या होता है? हमारे भी कर्मों की जय होती है और हमें भी उसी तरह से विजय प्राप्त करना है, यह reflect होकर के हमारे दिमाग में आ जाता है। आप समझो! यह कितनी अच्छी प्रक्रिया है। इस तरह की जो यह जय! जय! जय! की शब्दावली है, यह अनेक समयों पर की जाती है। मन्दिर में प्रवेश करते से ही क्या बोलते हैं? मन्दिर की देहरी पर खड़े होकर के...जय जय जय। घण्टानाद हो तो जय जय जय, मन्दिर में जब तक भगवान की वेदी तक न पहुँच जायें तब तक...जय जय जय। आप सोचो! ये केवल दो अक्षर हैं- जय जय जय और ये दो अक्षर जय बोलने से आपके अन्दर क्या आ जाता है? एक उत्साह आ जाता है। आपको पता नहीं होता, यह उत्साह आपके संस्कारों में बनता चला जाता है और यही उत्साह इसलिए होता है, हम धर्म की कोई भी क्रिया करते हैं तो वह अपने संस्कार बनाने के लिए करते हैं। यह संस्कार बन जाए कि जय जयकार करते रहने से, अन्त समय तक हमें क्या करना है? जीतना है, जय करना है..किसको? अपने दुर्विचारों को, अपने दुर्भावों को, अपना मन जो खराब हो जाए उसको। कौन जिताएगा? कौन संभालेगा? इस तरह के भगवान के निमित्त से हम अपने परिणामों को सुधारते रहते हैं। भगवान के समक्ष आपका मन अगर कभी-कभी खराब भी हो जाए, नहीं लगे भगवान की पूजा में तो भी आपके लिए कुछ ऐसे शब्द होते हैं, जिनका उपयोग करने से आपके मन में वापस वह उत्साह आ जाता है। आप पूरी पूजा पढ़ लो, आपके अन्दर मान लो उत्साह न आए लेकिन मैं आपसे कह रहा हूँ, एक बार जयकारा लगा लो ढंग से और अगर आपके आसपास कोई हो तो उससे भी कह दो...भैया! तू भी लगा ले मेरे साथ तो सबका दिमाग सही हो जाए।

चिल्लाने और जयकार में अन्तर

चिल्लाना तो दोनों में ही होता है। कषाय में भी चिल्लाया जाता है और भगवान के समक्ष भी। अब इसे चिल्लाना नहीं कहेंगे...इसे क्या कहेंगे? इसे जय जयकार कहेंगे और घर में करते हैं वह? अरे भाई! इसमें भी तो हमें ताकत लगानी पड़ती है, इसमें भी तो हम बोल ही रहे हैं, इसमें भी तो हमारे शब्द ही निकल रहे हैं। लेकिन यह जो हमारे मन के अन्दर का जो भाव है, जो हम कह रहे हैं, तेजी से बोल रहे हैं; इस चिल्लाने में और जो हम घर में चिल्लाते हैं, उस चिल्लाने में कितना अन्तर आ जाता है? घर में जब चिल्लाते हैं तो कषाय पैदा होती है, घर में जब चिल्लाते हैं तो ऐसा लगता है कि हमारे भीतर के परिणाम बहुत क्रोधित हो गए हैं, हम बहुत ज्यादा आवेश में आ गए हैं, हमारा हमने अपना आपा खो दिया है, मन खराब हो जाता है। वही चिल्लाना जब हम मन्दिर में करते हैं तो, जय जय जय जय करते हैं तो उससे परिणाम अच्छे बन जाते हैं। ऐसा लगता है जैसे हम अपने में आ रहे हैं, ऐसा लगता है जैसे भीतर से कोई अच्छी energy हमें मिल रही है, हमारे अन्दर कोई भी मन खराब भी होगा तो मन अच्छा होने लग जाता है। आप कभी इन चीजों को महसूस क्यों नहीं कर पाते कि ऐसी कौन सी चीजें होती हैं जो हमारे दिन भर के क्रिया-कलाप में होती हैं और उनमें से कौन सी चीजें हमारे दिमाग में एक अच्छे vibration पैदा करती हैं? यह जय जयकार भी अपने आप में एक बहुत अच्छे शब्द हैं, पवित्र शब्द हैं और यह शब्द कहाँ से निकले? यह शब्द भगवान के नाम स्मरण करने से निकले। भगवान ने जय प्राप्त कर ली और उन्हीं भगवान का नाम स्मरण जब हम करते हैं, उनके लिए याद करते हैं तो वह जय जो है, वह हमारे अन्दर भगवान की जय करने से हमारे कर्मों की जय होने लग जाती है। उत्साह हमारे अन्दर पैदा होने लग जाता है और फिर यही उत्साह हमें आगे जो हम

क्रिया करने वाले हैं, उस क्रिया में हमारे भावों को बना देता है। आपको यह बताना चाह रहा हूँ, जब भी कभी आप यह चाहते हैं कि हमें उस क्रिया से विशुद्धि प्राप्त हो तो क्रिया से आपको विशुद्धि बाद में प्राप्त होगी, पहले उस क्रिया के करने से पहले आपके पास में जो कोई भी और दूसरे कार्य होते हैं, उन कार्यों में पहले विशुद्धि प्राप्त करो। क्रिया को करने से पहले आप जो कुछ भी पढ़ते हैं, बोलते हैं, चलते हैं, उसमें पहले आपका मन एकाग्र होना चाहिए, तब जाकर के उस अन्त में की जाने वाली क्रिया में आपका विशुद्धि का परिणाम आएगा।

द्रव्य शुद्धि क्या है और क्यों करें?

मान लो कि अगर आप मन्दिर आ रहे हैं तो मन्दिर आने के लिए आपके कपड़े अच्छे होने चाहिए। अच्छे होने का मतलब? साफ-सुथरे भी होने चाहिए, फटे-फटाए नहीं होने चाहिए और वह पवित्र भी होने चाहिए, जिसे हम सोला शुद्धि कहते हैं, उस तरह के भी होने चाहिए। वह कपड़े नहीं होने चाहिए कि हम जिन कपड़ों से बिस्तरों पर पड़े-पड़े सोते रहते हैं, वही कपड़े पहन कर के हम मन्दिर में आ गए। रात में जो हमने night suit पहना था, वही suit पहन कर के हम मन्दिर आ गए। क्या होगा? आपके रात भर की जो शरीर में सोते समय पर बहुत विषाक्त द्रव्य बाहर निकलते हैं, सोने पर शरीर के अन्दर जो बने हुए कीटाणु होते हैं, शरीर के अन्दर का जो मैल होता है, शरीर के अन्दर का जितना भी negative toxic matter होता है, वह बाहर निकलता है सोने पर। अब वह सब निकला, वह कहाँ छिप गया? कपड़ों में। वह सब कहाँ लग गया? कपड़ों में। मतलब जैसे हम कहें, वृक्ष रात्रि में oxygen छोड़ते हैं, ऐसे ही अपना शरीर रात्रि में क्या छोड़ता है, oxygen? वह carbon dioxide छोड़ता है यानी जो विषाक्त gases हैं, वह निकलती हैं। इसलिए हमें रात्रि में सोते समय oxygen की आवश्यकता पड़ती है, तो ऐसी जगह पर सोना जहाँ पर oxygen मिलती रहती हो। oxygen की कमी न पड़े तो oxygen लेने के लिए तो हमने अपनी तैयारी कर ली लेकिन जो हमारे शरीर से विषाक्त द्रव्य निकले, गैसें निकली, carbon dioxide जैसे toxic matter निकले तो अब उसको हमने कैसे साफ किया? वह सब हमारे कपड़ों में लग गए और उन्हीं कपड़ों को पहन कर के हम मन्दिर में आ गए। अब आप मन्दिर में आए, एक गलती तो आपने यह की कि आप अपने साथ में अच्छा द्रव्य लेकर के नहीं आए। द्रव्य मतलब? यह कपड़े भी द्रव्य हैं, चावल का ही नाम द्रव्य नहीं होता। यह जो कपड़े पहनकर के आ रहे हैं, यह कपड़े आपके पूर्णतः अशुद्ध हैं। मन्दिर का वातावरण पवित्र है, मन्दिर में बिल्कुल positive energy है लेकिन आप गन्दे कपड़े पहन कर के आए यानी आपने मन्दिर में प्रवेश किया तो आपने मन्दिर में भी उस समय पर उन कपड़ों की नकारात्मक ऊर्जा को वहाँ पर फैला दिया। एक गलती यह हुई।

क्षेत्र शुद्धि

दूसरी गलती क्या की? जब हम रास्ते में चलते हुए आए तो चलते हुए हमने ध्यान नहीं दिया कि हम कहाँ पैर रख रहे हैं? कहाँ पर हमें पैर नहीं रखना चाहिए, कहाँ रखना चाहिए? हम कुछ भी नहीं देख रहे हैं। हमने क्या किया? हम चाहे चप्पल पहनकर आए हो, चाहे जूते पहनकर आए हो, चाहे मौजा पहनकर आए हो या खाली पैर भी आए हो; अगर आप जूते चप्पल पहन कर के आए तो आपको यह ख्याल रखना है कि जूते,

चप्पल तो उतारना ही है, यहाँ तक कि जो हम मौजे पहनते हैं, उनको भी उतारना ही है। लेकिन उतने उतारने मात्र से पैर आपके शुद्ध हो गए? यह भी नहीं हुआ और आप मन्दिर में प्रवेश कर गए यानी आपने क्षेत्र की भी अशुद्धि कर दी। द्रव्य भी अशुद्ध कर दिया आपने, क्षेत्र भी आपने अशुद्ध कर दिया।

काल शुद्धि

अब आपके लिए कोई ऐसा समय चल रहा है, जिस समय पर आपके लिए मन्दिर आना वर्जित है या आप ऐसे समय पर मन्दिर आते हैं जिस समय पर मन्दिर में आना मना होता है। आपके घर-परिवार में कोई सूतक-पातक का काल चल रहा हो उस समय पर आप मन्दिर आते हैं। आप कहीं पर किसी की अर्थी में गए, किसी के मरण के पास से लौट करके आ रहे हैं, आपके लिए वह समय अच्छा नहीं है और ऐसे समय पर आप मन्दिर आए। यह क्या हो गया? यह आपके काल की भी अशुद्धि चल रही है, समय भी आपका, क्या कर रहा है? अशुद्ध है।

भाव शुद्धि हेतु द्रव्य, क्षेत्र और काल की शुद्धि आवश्यक

अब जब यह तीनों चीजें अशुद्ध हैं तो अब आप सोचो कि हम भावों को शुद्ध कर ले तो भाव शुद्ध नहीं हो सकते अब। इसलिए भावों की शुद्धि करने के लिए आपको ध्यान देना पड़ेगा कि द्रव्य शुद्धि भी हो, क्षेत्र शुद्धि भी हो और काल शुद्धि भी हो। द्रव्य शुद्धि के लिए जो वस्त्र आप पहन कर के आ रहे हैं, उन वस्त्रों में हम बार-बार toilet नहीं गए हो, वह वस्त्र हमारे अशुद्ध न हो, रात्रि के न हो। इन वस्त्रों को पहन कर के जब आप मन्दिर आएँगे तो उन वस्त्रों के माध्यम से भी वहाँ का द्रव्य अशुद्ध हो जाएगा। आप जिस चीज में हाथ लगाएँगे वह द्रव्य अशुद्ध हो जाएगा। अगर मान लो आपने वहाँ चावल भी चढ़ा दिए तो वह चावल भी वहाँ पर नकारात्मकता पैदा करेंगे। आपने अगर मन्दिर में प्रवेश करते हुए अपने पैरों को नहीं धोया, अपने हाथों को नहीं धोया तो यह भी आप एक क्षेत्र की अशुद्धि में कारण बन जाएँगे। आपके पैर कहाँ पड़े रहे? आपको ध्यान नहीं। मन्दिर आते समय आप कैसे आए? कितने रास्ते में थूक-थाक न जाने क्या-क्या पड़ा रहता है? आपको कभी दिखाई देता है कुछ? कुछ नहीं दिखाई देता। सब पर पैर रखते हुए, कूदते हुए चले आते हैं। कभी-कभी तो ऐसा भी देखने में आता है, लोग पड़गाहन करने के लिए खड़े रहते हैं, स्थान तक नहीं देखते हैं कि हम कहाँ खड़े हैं? भाई! तुम्हें वहाँ खड़े होने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है क्या? थोड़ी दूर शुद्धि की जगह पर भी तो खड़े हो सकते हो? अगर मुनि महाराज वहाँ आकर के खड़े हो गए और वह देख रहे हैं कि आपके सामने कहीं कुछ पड़ा हुआ है, तो क्या होगा? आप उसी पर खूँद जाओगे, उसी पर जो है आपके कपड़े छुल जाएँगे; आपकी शुद्धि रहेगी? ऐसी स्थिति में क्या करना पड़ेगा? महाराज को लौट जाना पड़ेगा, फिर आप कहोगे महाराज! क्या हो गया? आप आए और लौट गए! अब तुम्हें क्या समझाएँ, क्यों लौट गए? आपको यह ध्यान रखना चाहिए कि हम जिस क्षेत्र पर खड़े हैं, वह स्थान भी शुद्ध होना चाहिए। हमारे पैरों में भी वह गन्दगी नहीं लगनी चाहिए और कई बार तो लोग जो धोतियाँ, साड़ियाँ पहने रहते हैं, वह नीचे तक खचरती रहती हैं। अब अगर नीचे पड़ी हुई कोई भी गन्दगी उसमें लग गई तो वह आपकी वस्त्र शुद्धि कहाँ रही? काया शुद्धि कहाँ रही? अब आप क्या बोल कर के केवल काम चला लीगे? काय शुद्धि। जब किसी को पहली-पहली बार नए-नए वस्त्र पहना देने पड़ते तो उसे पता ही नहीं होता है, उसकी धोती

नीचे खचर रही होती है। माताओं, बहनों की तो बात ही मत करो। हमें ध्यान रखना पड़ता है कि हम जिस पवित्र क्रिया को करने जा रहे हैं, वे क्रियाएँ भाव शुद्धि के लिए हैं और कोई भी वह क्रियाएँ जो भाव शुद्धि के लिए हैं, उससे पहले आपको द्रव्य, क्षेत्र और काल इन तीनों शुद्धियों को भी करना पड़ेगा। तब आपकी भाव शुद्धि बनेगी। द्रव्य आपका अशुद्ध हो गया, क्षेत्र अशुद्ध हो गया, समय आपके लिए सही नहीं था, वह भी अशुद्ध हो गया। तब आपके भावों में, परिणामों में अब शुद्धि नहीं आ पाएगी। फिर आप कहते हो, हमने काम तो किया महाराज! भाव शुद्ध नहीं रहे तो आप केवल भाव शुद्धि पर ध्यान दे रहे हो। बाकी द्रव्य, क्षेत्र और काल पर आपका कोई ध्यान नहीं है, तो वह कभी नहीं होगा।

भाव शुद्धि के लिए क्या करना चाहिए?

इसलिए बहुत अच्छी बात बताई जा रही है आपको और यह एक प्रश्न किया था एक बच्चे ने अभी शिविर के समय पर कि हम भाव शुद्धि के लिए क्या करें? द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि तो कर लेते हैं, भाव शुद्धि के लिए क्या करें? तब भी उससे यही कहा था लेकिन उस प्रश्न की तो दो मिनट में, पाँच मिनट में पूरा करना होता है। लेकिन जब कोई अच्छा प्रश्न होता है, तो उसकी detail करने के लिए फिर अपने आप समय मिलता है तो यही समय मिलता है। हम हमेशा भाव शुद्धि की ओर जाते हैं। भाव शुद्धि के लिए कारण क्या है? यह पहले तो समझो। अगर आप गन्दे कपड़े पहनकर मन्दिर में आए हैं, जो कपड़े मन्दिर में पहनने योग्य नहीं हैं आप उन्हें पहन कर के आए हैं। आपकी भाव शुद्धि बनेगी? मानो कि आप घर में कुछ भी पहने रहते हो... घर में कुछ भी आधा pent पहने रहोगे, आधे उघड़े हुए वस्त्र पहने रहोगे, मन्दिर में आओगे तो? वह वस्त्र ही आपके परिणाम शुद्ध नहीं होने देंगे, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो। द्रव्य शुद्धि भी आवश्यक है, क्षेत्र शुद्धि भी आवश्यक है और वह क्षेत्र शुद्धि को बनाए रखने के लिए यह नियम होता है। आप अगर बाहर से भीतर प्रवेश कर रहे हैं मन्दिर में तो आप मन्दिर की पवित्रता को बनाए रखें और उसके लिए पैर धोकर के ही मन्दिर में प्रवेश करें। हाथ धोकर के ही मन्दिर में प्रवेश करें क्योंकि सड़क की सब गन्दगी पैरों में लगती है। अगर आप जूते चप्पल भी पहने हुए हैं तो उसमें भी पसीना आता है। अब आप कहोगे कि हम जूते चप्पल पहन कर के आए थे, इसमें क्या गन्दा हो गया? इसके पीछे भी आपको जानना पड़ेगा कि उसमें भी गन्दापन आपके उस पसीने के कारण से आ जाता है। उसमें भी तरह-तरह के धूली आदि सड़क पर चलने वाले अनेक तरीके के virus होते हैं, वे सब आपके पैरों में चिपकते हैं और अगर आप बहुत देर तक shoes, socks पहने हुए हैं तो उसमें भी वह पसीना मरता रहता है। उन सब तरह के पैरों में पहनने वाले, उन सब चीजों को उतारकर पैर धोकर, हाथ धोकर जब आप मन्दिर में प्रवेश करेंगे तो क्षेत्र की शुद्धि आपके लिए काम में आएगी। नहीं तो आप क्या करेंगे? जो शुद्ध है उसको भी अशुद्ध बना देंगे।

काल विज्ञान

जब क्षेत्र शुद्धि भी हो, काल शुद्धि भी हो, अच्छे समय पर हम मन्दिर आयें। मन्दिर में आने का भी एक अच्छा समय होता है। सबसे अच्छा समय कौन सा, बताओ? जब कोई पूजा करने नहीं आया हो, वह अच्छा समय है या जब सब पूजा करके चले गए हो, वह अच्छा समय है, बताओ? जब मन्दिर में कोई न आया हो वह अच्छा समय है कि जब सब आकर के चले गए हों, जब कोई न हो, वह अच्छा समय है? कोई न आया हो

तो वह समय कौन सा होगा? वह समय सुबह का होगा, मन्दिर खुलने का समय होगा। माने मन्दिर खुले और मन्दिर में सबसे पहले प्रवेश किसका हो? हमारा हो तो वह मन्दिर की आपके लिए एक शुद्धि जो काल की शुद्धि होगी, वह शुद्धि भी आपके लिए सहयोगी बनेगी और जब सब आकर के चले गए होंगे, सब मन्दिर के फर्शों पर सबके पैर पड़े होंगे, सबके चावल पड़े होंगे और बाद में जब आप मन्दिर आओगे 12 बजे तो भगवान तो आपको अकेले में मिल जाएँगे लेकिन उस समय पर आपके परिणामों में वह शुद्धि नहीं आएगी जो शुद्धि सुबह 6 बजे आती। यह भी एक विज्ञान है। काल का विज्ञान, समय का विज्ञान कहलाता है यह। हर चीज का हमारे परिणामों पर प्रभाव पड़ता है और वही चीजें जब अच्छे ढंग से सब समायोजित हो जाती हैं, तो हमारे परिणाम अपने आप शुद्ध हो जाते हैं। आपके लिए द्रव्य सही हो, क्षेत्र शुद्ध हो, काल शुद्ध हो, फिर उसके बाद में आप कोई भी क्रिया करेंगे, यहाँ तक कि आप जय जयकार बोलेंगे तो उसमें भी आपको महसूस होगा कि इससे भी हमारे परिणाम शुद्ध हो रहे हैं। णमोकार मंत्र जो simple पढ़ा जाता है, वह भी आपके परिणामों में शुद्धि का कारण बनेगा। जो एक सामान्य सी विनती आप पढ़ते हैं, वह विनती भी आपके परिणामों में शुद्धि का कारण बनेगी। कब? जब द्रव्य, क्षेत्र, काल तीनों शुद्ध हों। भाव शुद्धि तभी बनती है जब हम पिछली तीनों शुद्धियों को भी ध्यान में रखें।

मुनि महाराज का प्रतिग्रहण

इसीलिए चाहे मन्दिर का समय हो और चाहे मुनि महाराज को ग्रहण करने का, प्रतिग्रहण करने का समय हो। प्रतिग्रहण का मतलब? प्रतिग्रहण जानते हो कि नहीं? पाणिग्रहण तो सब जानते हैं, प्रतिग्रहण नहीं जानते हो। पाणिग्रहण क्या होता है? वह भी भूल गए क्या? पाणिग्रहण अर्थात् विवाह। पानी ग्रहण नहीं बोल रहा हूँ, पाणिग्रहण। पाणि अर्थात् होते हैं- हाथ। विवाह का मतलब क्या है? तुम्हारा हाथ हमारे हाथ में और हमारा हाथ.... वह चित्र भी तो वैसे ही बना रहता है न? विवाह का चित्र, पाणिग्रहण का चित्र! यही तो होता है। पाणिग्रहण तो आपको ध्यान में रहता है लेकिन आपको पता है जब मुनि महाराज आपके सामने आ जाते हैं तो आपने क्या कर लिया? पड़गाहन। पड़गाहन! तो यह जो शब्द है, यह एक तरह से बिगड़ा हुआ संस्कृत का शब्द है या यूँ कहो कि प्राकृत का भी बिगड़ा हुआ शब्द है। सही शब्द क्या है? प्रतिग्रहण। प्रतिग्रहण का मतलब? जब महाराज ने हमको ग्रहण कर लिया तो हमने भी महाराज को ग्रहण कर लिया, इसका नाम हो गया...प्रतिग्रहण। प्रतिग्रहण कब होता है? 'प्रति' जो यह अव्यय लगता है, वह तब होता है जब पहले कोई एक क्रिया हो गई, उसके बाद में जो दूसरी क्रिया होती है, उसके लिए प्रति लगता है। प्रतिकार, बोलते हो न आप? प्रतिकार का मतलब? पहले हमने कुछ किया, कुछ कार्य होगा, कुछ किया होगा, तब उसका प्रतिकार होगा। क्रिया-प्रतिक्रिया, समझ आ रहा है? जब हमने कोई क्रिया की और उसके बाद में उधर से जो होगी, उसका नाम प्रतिक्रिया। आपने कभी सोचा कि मुनि महाराज जब आपके सामने खड़े हो जाते हैं तो वह क्या करते हैं? उन्होंने पहले आपको ग्रहण कर लिया। नहीं समझ में आया? उन्होंने पहले आपको पकड़ लिया, आपने बाद में पकड़ा उनको। आपने जब पकड़ा, आपने जब ग्रहण किया तो वह हो गया प्रतिग्रहण। आप ग्रहण नहीं करेंगे? आपको क्या करना है? प्रतिग्रहण। ग्रहण कौन करेगा? ग्रहण पात्र करेगा। तो जब पात्र ने ग्रहण कर लिया, उसके बाद में जब आपके मन में भाव बनेगा प्रतिग्रहण का तो उसी प्रतिग्रहण के बाद में आपकी वह भाव शुद्धि काम में आएगी...जो द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि के साथ चल रही होगी।

परिणामों की विशुद्धि होने पर ही क्रिया विशुद्ध होगी

अगर आपका द्रव्य शुद्ध है पहनने वाला, हाथ में रखने वाला, चौके में ले गया करके खिलाने वाला द्रव्य कैसा होना चाहिए? शुद्ध। क्षेत्र!...जो भी आप क्षेत्र नापो यहाँ से लेकर घर तक का, कैसा होना चाहिए? शुद्ध होना चाहिए। यह भी ध्यान में रखना पड़ता है कि हम अगर महाराज को दूर-दूर तक ले जा रहे हैं तो वह दूर-दूर तक का रास्ता सही शुद्ध है कि नहीं है। ऐसा तो नहीं है कि हम तो कहीं वाहनों से चले आए और हम एक घण्टे पहले आ गए, प्रवचन सुन लिए, यहीं पर अपने कपड़े बदल लिए और यहाँ से फिर चल दिए साथ में और रास्ते में जब तक न जाने क्या-क्या किसी ने डाल दिया। यह जिम्मेदारी किसकी? क्षेत्र शुद्धि करने वाले की। क्षेत्र शुद्धि, जितना दूर घर होगा, उतना ही वह क्षेत्र शुद्धि भी भले ही दूर तक हो, कोई बात नहीं लेकिन शुद्धि के साथ में होना चाहिए, तो आपके वहाँ जाने के बाद में भाव शुद्धि बनेगी। इस तरह की यह क्षेत्र शुद्धि के साथ में वह काल शुद्धि भी होनी चाहिए मतलब समय पर आपके लिए वह सब क्रिया होनी चाहिए तो वह काल शुद्धि के माध्यम से, तब आपकी भाव शुद्धि बनेगी। आचार्य कहते हैं...भाव शुद्धि के पीछे आप पड़ जाते हो लेकिन अगर आपको ये तीनों शुद्धियाँ ख्याल में नहीं हैं तो भाव शुद्धि आपकी कभी बनेगी नहीं। चाहे मन्दिर में आने के लिए भाव शुद्ध करना हो तो या मुनि महाराज के लिए आहार दान आदि की क्रिया करनी हो तब...आपको अपने भावों की शुद्धि के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल की शुद्धि जानना आवश्यक है। यही शुद्धि आपके लिए जब काम में आएगी तो आपके परिणाम शुद्धि जो आपने पढ़ रखा था अभी सामायिक पाठ में, क्या पढ़ा था? परिणाम शुद्धि एक शब्द आया था कहीं? **‘बोधि समाधि परिणाम शुद्धि’** वह स्वात्मोपलब्धि तो फिर बहुत बाद की बात है। पहले परिणाम तो शुद्ध हो जायें तब आत्मोपलब्धि होगी। मन्दिर में आने से पहले परिणाम शुद्ध होना, क्षेत्र शुद्ध होना, द्रव्य शुद्ध होना, काल शुद्ध होना, तब जाकर के भाव शुद्ध होगा। अगर आप मन्दिर के दरवाजे पर इन तीनों शुद्धियों के साथ प्रवेश नहीं कर रहे हैं तो आप एक तरह से मन्दिर की पवित्रता को भी खण्डित कर देंगे। इसलिए आचार्य कहते हैं...भावों को बनाए रखने के लिए हमें इन तीनों चीजों पर ध्यान देना है। जो कार्य हम जिस समय पर कर रहे होते हैं, उससे भी महत्वपूर्ण कार्य क्या है? उससे पहले चलने वाली प्रक्रिया। कार्य तो कब होगा? जब हम मन्दिर में पूजा कर रहे हों, दर्शन कर रहे हों, मुख्य कार्य तो तब हो रहा है लेकिन उससे पहले की प्रक्रिया, यह तीन शुद्धियों के रूप में हैं। अगर वह पहले की प्रक्रिया सही है, तो उस समय की जाने वाली क्रिया भी सही परिणाम देगी। पहले की प्रक्रिया सही है, तो आहार दान की जाने वाली वह प्रक्रिया भी सही परिणाम देगी।

जयकार की प्रक्रिया भी उत्कृष्ट परिणाम देती है

इसी तरह से अगर आपने अपने जीवन में पहले से धर्म किया है, तो अन्त समय में, मरण समय में आपके मुख से निकलने वाली यह जय-जयकार की क्रिया भी आपके लिए बहुत उत्कृष्ट परिणाम देगी। सब कुछ पहले का किया हुआ होता है, उस समय पर तो हमें केवल उस क्रिया को करना होता है लेकिन उसकी तैयारी तो पहले से करनी होती है। जो पहले से किया जाएगा, वह बाद में काम आएगा। कब? जब उसकी काल-लब्धि आ रही होगी तब। इसलिए काल-लब्धि कोई बला नहीं है, कोई अलग से चीज नहीं है। काल-लब्धि का मतलब? कार्य करते-करते जिस समय पर वह कार्य पूर्ण हो जाए, वह समय ही उसकी काल-लब्धि है। आप अपना कोई भी कार्य सम्पादित कर रहे हैं...करते-करते जिस समय पर वह हो गया,

वही उसके लिए उचित समय कहलाएगा। इसलिए काल-लब्धि पर कार्य नहीं होते हैं, कार्य तो पहले से करते हुए आते हैं। जब वह कार्य समय पर हो गया तो समझ लेना काल-लब्धि अच्छी हो गई। यानी आपने धर्म किया पहले से, आपने सब तरह की परिणाम शुद्धि पहले से बनाए रखी और जीवन का जब अन्त समय आया, तब उस समय पर भी आपके परिणामों में वह शुद्धि बनी रही। कैसे बनी रही? अब आपका मन कर रहा है, मुझे कोई णमोकार मन्त्र सुना दे, मुझे कोई महाराज के प्रवचन सुना दे, मुझे कोई भगवान का दर्शन करा दे, मुझे कोई मुनि महाराज के दर्शन करा दे, यह आपके परिणाम उस समय पर बन रहे हैं और आप करने में समर्थ नहीं हैं। यह परिणाम कैसे बनेंगे? उनके बन जाएंगे जिन्होंने कभी मुनि महाराज के प्रवचन नहीं सुने या जब कभी एक आध बार जिन्दगी में सुन लिए, उनके बनेंगे या जो प्रतिदिन लगातार सुनते रहते हैं उनके बनेंगे? बोलो! यह प्रतिदिन की प्रक्रिया का महत्व है या जब कभी की जाने वाली क्रिया का महत्व है।

धर्म-संस्कार मरण के समय कार्यकारी

आप देख लो! आज अगर आपकी उम्र 40 वर्ष की हो रही है और अगर आपने जब कभी दो-चार दिन, दो-चार बार कभी किसी के, मुनि महाराज के प्रवचन सुन लिए हो, जब कभी आप कहीं आचार्य महाराज के पास गए हो, एक आध बार प्रवचन सुनकर आ गए हो तो आपके लिए वह प्रवचन कितना सा याद रहते हैं और कितने आपके लिए यह भाव जगाते हैं कि हमें प्रवचन सुनना चाहिए। लेकिन अगर आप लगातार, प्रतिदिन, हर दिन, चार महीने, पाँच महीने, लगातार जब आप प्रवचन सुनते रहते हैं, तो आपके अन्दर का यह संस्कार इतना अधिक भी पड़ सकता है कि आने वाले समय में बिना प्रवचन सुने आपको चैन न पड़े। यह कैसे सम्भव होगा? यह प्रतिदिन की क्रिया से सम्भव होगा और अन्त समय जब आए...कोई आपको कुछ सुना रहा हो, कोई कुछ सुना रहा हो और आपका मन करे, नहीं... मुझे तो महाराज की वाणी सुननी है। अगर आपको वह सुनने को मिल गई और आपके लिए वह सब याद आ गया कि देखो! हम कैसे-कैसे पहले महाराज के प्रवचन सुना करते थे? कैसे-कैसे मुझे आनन्द आता था, उत्साह आता था? जय जयकार बोलते थे। वह सब आपके अन्दर जो स्मृति आएगी, वह स्मृति आपके उन संस्कारों के कारण से आप में एक उत्साह भर देगी। भले ही आप पड़े रहोगे लेकिन आपके भीतर एक उत्साह पैदा हो गया, संस्कार प्रकट हो गया और वह संस्कार फिर क्या करेगा? जब भी कोई बाहर से बोलेगा...भगवान महावीर स्वामी की जय... तो अपने मुँह से ताकत नहीं भी होगी तो निकल आएगी...‘जय’ और हमने जय बोली और जय बोलते-बोलते ही इस देह से प्राण निकल गए, तब वास्तव में समझ लो जय हो ही गई। फिर कुछ नहीं बचा, जय हो गई उस जीव की। जय बोलते-बोलते अगर हमारे प्राण निकल गए, यह दो अक्षर मुँह से निकल गए तो समझ लेना हमारे जीवन का किया हुआ धर्म का जो परिणाम था, वह हमारे लिए मिल गया।

परिणाम शुद्धि से ही जीवन की सार्थकता बनती है

इसलिए प्रतिदिन की जाने वाली क्रिया की महत्ता होती है और वह महत्ता इसी बात से बनती है कि हम हर दिन जो कर रहे हैं, वह किसके लिए? परिणामों की शुद्धि के लिए...‘**बोधि समाधि परिणाम शुद्धि**’ बोधि समाधि वही काम की है जिसमें परिणामों की शुद्धि बने। कोई भी क्रिया अगर हम प्रवचन सुन रहे हैं, क्या

गाथा: 36

शारीरिक रूप, सौंदर्यादि सब क्षणभंगुर हैं इनसे राग कैसा?

रुव-मसासय-मेयं, विज्जु-लया-चंचलं जए जीयं ।

संझाणुराग-सरिसं, खण-रमणीयं च तारुण्यं ॥36 ॥

अन्वयार्थ- हे जीव! 'इस' (जए) जगत में (एयं रुवं असासयं) यह 'देखने में आने वाला' रूप, अशाश्वत यानी क्षणभंगुर है (जीयं) जीवन (विज्जु-लया-चंचलं) विद्युतरूपी, लता के, समान, चंचल है (च) तथा (तारुण्यं) तारुण्य यानी यौवन (संझा-अणुराग-सरिसं) सांझ-अनुराग-सदृश यानी संध्याकालीन-लालिमा के, समान (खण-रमणीयं) क्षण-रमणीय है 'इसलिए आत्मकल्याण के लिए ही उद्यम करो' ॥36 ॥

यौवन क्षणभंगुर

आचार्य कहते हैं...मरते समय कोई धर्म नहीं किया जाता, पहले ही कर लो और पहले करने के लिए बुद्धि बनती नहीं है। फिर कहना पड़ता है...तुम जिस रूप में लगे हुए हो, जिस अपने रूप सौन्दर्य के कारण से धर्म के लिए समय नहीं निकाल पा रहे हो तो आचार्य कहते हैं... 'रुवं असासयं' कैसा है? यह अशाश्वत है, शाश्वत नहीं है। धर्म क्यों नहीं कर पाते? इसलिए नहीं कर पाते, सुबह से 10 बजे तक सजते-सजते भी सज नहीं पाते। कई लोगों को बहुत time लगता है सजने में। bathroom जाएँगे तो एक-एक घण्टा tub में पड़े रहेंगे, तरह-तरह के साबुन लगा कर के फुव्वारों के नीचे पड़े रहेंगे, सजते रहेंगे। बाहर निकलेंगे तो फिर जो है शीशे के सामने खड़े हो जाएँगे, फिर सजते रहेंगे। सजने में समय खराब करते हैं। आचार्य कहते हैं...यह सजना सब कैसा है? सब क्षणभंगुर है, अस्थायी है, रूप शाश्वत नहीं है और 'विज्जु-लया-चंचलं' क्या? यह जो तुम्हारा तारुण्य है, तरुणता है, यौवन है, यह कैसी है? यह विद्युत-लता के समान मतलब कि जैसे बिजली चमकती है, उसके समान चञ्चल है और कैसी है? सन्ध्या के राग के समान क्षण भर टिकने वाली या क्षण भर रमणीक लगने वाली है। ऐसी यह लावण्यता, यह यौवनता, यह तरुणता, यह बहुत दिनों तक रहने वाली शाश्वत नहीं है। जब यह विचार आएगा तो धर्म करने का मन बनेगा, इसलिए यह भावना करनी पड़ती है। आप सोचते होंगे, यह महाराज बार-बार यह क्षणभंगुर, क्षणभंगुर क्यों ले आते हैं बीच में। जब वैराग्य का भाव आएगा, तभी शरीर से राग हटेगा या यूँ कह ले कि जब शरीर से राग हटेगा, तब वैराग्य का भाव आएगा। दोनों चीजें एक साथ चलती हैं, चाहे किधर से भी चल लो। कान सीधा-सीधा पकड़ लो या घुमा कर पकड़ लो इस हाथ से। पकड़ना तो कान ही है। इसी तरीके से आपके लिए कहा जा रहा है...यह रूप विद्युतलता के समान चञ्चल है, अशाश्वत है। यह तरुणता सन्ध्या के राग के समान क्षण

भर रमणीक लगने वाली है। कभी-कभी आप देखना सन्ध्या के समय, सन्ध्या माने? हाँ, वह जो शाम का समय होता है, एक लालिमा छा जाती है आकाश में, जब सूर्य अस्त होने को होता है बड़ा अच्छा लगता है। चारों ओर बहुत अच्छी light लाल-लाल दिखाई देती है, देखते ही रहो ऐसा मन बनता है और देखते-देखते, देखते-देखते वह 10 मिनट में ही चली जाती है। इसको बोलते हैं- सन्ध्या की लालिमा के समान क्षण भर रमणीक लगने वाली यह यौवन आदि की क्रियाएँ होती हैं। यह रूप आदि के मद होते हैं जो देखते-देखते क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं। कितने ही लोग ऐसे होते हैं जिन्होंने अपने यौवन में कितने ही तरह से अपने बालों के शौक किए हैं। बाल! बाल जानते हो? hair style। कई लोगों को आपने कभी देखा ही नहीं होगा कि कभी उनके बाल इधर-उधर बिखर रहे हो। बहुत time जब देखो तब एक तो कंधी भी जेब में ही घुसी रखी रहती है, पैन्ट की जेब में ही। कहीं अगर चलते हुए हवा भी लग जाए और इधर-उधर हो जाएँ तो गाड़ी में से भी उतरने से पहले setting हो जाती है तब घर में घुसना है। मतलब इतना शौक होता है। लच्छेदार बाल हो, घुंघराले बाल हो, बड़े-बड़े बाल हो, किसी भी तरह के हो। चाहे अमिताभ बच्चन जैसे हो, चाहे शम्मी कपूर जैसे हो, किसी भी जैसे हो लेकिन अगर किसी के लिए यह यौवन में मद आता है, तो वह उन बालों के उकेलने में ही, उचेलने में ही समय खूब लगा देता है। घण्टा भर तक तो घर में करेगा शीशे के सामने और फिर बाहर निकल के जाएगा, थोड़ा भी disturb हुआ तो फिर खड़ा हो गया कहीं भी गाड़ी रोक करके। आदमी के लिए यह जो यौवन का समय रहता है, यह उसे उस समय पर कभी समझ नहीं आता कि ये सब चीजें क्या हैं? इनकी क्या उम्र है इन चीजों की, यह बताओ? कब तक वह काम करेंगे और कब तक आपको इस तरीके के भावों में आनन्द आएगा? फिर एक समय ऐसा आता है, आदमी को ध्यान ही नहीं रहता है, हमारे बाल भी हैं कि नहीं हैं। आपके लिए यह सब चीजें जब क्षण रमणीक लगे, माने? थोड़ी देर के लिए रमणीक हैं, इसलिए इनमें ज्यादा time खराब करने से कोई मतलब नहीं है, तब आपको धर्म करने की भावना आएगी।

द्रव्य क्षेत्र काल शुद्धि होने पर ही भाव शुद्धि आएगी

इसलिए आचार्य कह रहे हैं...जिसको अनित्य भावना आएगी, क्षण-क्षण में जिसके लिए यह लगे कि भाई! यह चीजें शाश्वत नहीं हैं, क्षण भर रमणीक रह करके फिर यह असुन्दर हो जाती हैं, इनका रूप बिगड़ जाता है, कुरूप हो जाती हैं। हम कितनी बार इन्हें सम्भालें? कितनी बार हम इसी पर ध्यान दें? ऐसा विचार जब आपके अन्दर आएगा, तब वहाँ से भाव हटेगा, तब धर्म का कार्य करोगे तो भाव शुद्धि आएगी। अब ऐसा व्यक्ति मानो मन्दिर आया। उसने देखा मन्दिर में आकर के भगवान के चरणों में सब लोग धोक लगाते हैं, अब हमें भी लगानी पड़ेगी। नहीं समझ आया? अब जब वह धोक लगाएगा तो क्या होगा? अब जो बाल अच्छे बना करके आया था, वह क्या होंगे? सब बिगड़ जाएँगे तो अब उसे सोचना पड़ेगा, भगवान के चरणों में धोक लगाएँ कि नहीं लगाएँ और लगा दी तो फिर अब यहाँ पर तो बाल बिगड़ गए तो अब कहाँ बनाएँगे? तो कम से कम मन्दिर में सब वेदियों के सामने जाना है, तो वहाँ तो अब बना नहीं सकते। मन्दिर में कहाँ कंधी लगाओगे? फिर भी लोग एक स्थान बना कर के रखते हैं, कहीं शीशा लगा कर के रखते हैं, जहाँ कपड़े बदलते हैं वहाँ, चन्दन लगाते हैं वहाँ। सोचो! अगर वहाँ पर भी हमारे मन में अपने ही बालों को सम्भालने का भाव आ रहा है, तो आपकी भाव शुद्धि कभी बनेगी क्या? मन्दिर की किसी भी प्रकार की क्रिया में आपके परिणामों में कोई अन्तर आएगा क्या? आप कहोगे मन्दिर जाते हैं, रोजाना मन्दिर जाकर के आ रहे

इसलिए आपको यह ध्यान रखना है, भाव शुद्धि बाद में आएगी, पहले आपकी उससे पहले होने वाली क्रियाएँ शुद्ध होनी चाहिए। द्रव्य शुद्धि होना चाहिए, क्षेत्र शुद्धि होना चाहिए, काल शुद्धि होना चाहिए। तब जाकर के आप भगवान के दर्शन करोगे तो बोधि, समाधि, परिणाम शुद्धि, ये तीनों चीजें आपको मिलेंगी। बोधि का मतलब सही ज्ञान से आप काम कर रहे हो। समाधि का मतलब आपका चित्त एकाग्र है और परिणाम शुद्धि, जब यह दोनों चीजें होंगी तो परिणाम शुद्धि तो होगी ही होगी। कहाँ जाएगी परिणाम शुद्धि? इसलिए भावों की शुद्धि बनाए रखने के लिए आप इन बोधि, समाधि, इन भावों को भी ध्यान में रखते हुए अपनी शुद्धियों को ध्यान में रखेंगे तो आपके लिए परिणाम शुद्धि वाला जो भाव आएगा, यही विशुद्धि का भाव कहलाता है। एक घण्टा अगर आपने सुन लिया तो आप कैसे ही परिणाम लेकर के यहाँ बैठे हो, कुछ भी सोच लेकर के बैठे हो, आपके मन की सफाई हो चुकी है। बस गन्दे हो करके घर में आप आते रहो और साफ करने के लिए माँ बार-बार आपको नहलाती रहे, आपका काम आप करते रहो, माँ का काम माँ करती रहेगी, ऐसे ही जिन्दगी निकलती रहेगी।

254

गाथा: 37

चंचला लक्ष्मी और इंद्रिय सुखों में मोहित नहीं होना चाहिए

गय-कण्ण-चंचलाओ, लच्छीओ तियस-चाव-सारिच्छं।

विसय-सुहं जीवाणं, बुज्झसु रे जीव! मा मुज्झ ॥37॥

अन्वयार्थ- (रे जीव!) हे आत्मन्! (लच्छीओ) लक्ष्मी (गय-कण्ण-चंचलाओ) हाथी के, कान के, समान चंचला 'स्वभाव वाली' है 'तथा' (जीवाणं) जीवों के 'पंचेन्द्रिय संबंधी' (विसयसुहं) विषयसुख (तियस-चाव-सारिच्छं) त्रिदश-चाप-सदृक्ष यानी इन्द्र-धनुष के, समान 'चंचल/क्षणभंगुर स्वभाव वाले हैं इसलिए तुम' (बुज्झसु) बोध को प्राप्त हो (मुज्झ मा) मोहित, मत हो ॥37॥

वैराग्य शतक ग्रंथराज के माध्यम से पिछले दिनों में अनित्य, अशरण आदि भावनाओं के बारे में ज्ञान दिया गया है। वैराग्य की चर्चा करने के लिए इन भावनाओं का प्रमुख होना जरूरी है। जब भी कभी राग की कमी होती है, तो उसके लिए अनित्य भावना भाना, अशरण भावना भाना, यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। इस तरह की भावनाओं का वर्णन आप सोच सकते हैं कि अगर हम कभी अनित्य भावना भाने बैठे तो कभी 10 मिनट भी नहीं भा सकते। कोई भी चीज की उपमा दी जाए, कोई भी चीज का आपको ज्ञान दिया जाए तो आप उसको दो मिनट में सोच करके बैठ जाओगे, कहोगे...हो गया अनित्य भावना-



‘राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार, मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।’

अब क्या करें? सब मरेंगे अपनी-अपनी बार, हम भी मर जायेंगे। अब इसमें क्या सोचे इससे ज्यादा? आप यह सोच सकते हो कि अगर इतना ही सोचना अनित्य भावना का नाम होता तो शायद इन भावनाओं पर इतना जोर नहीं दिया जाता। कितने दिनों से हम पढ़ रहे हैं और आज भी हमारे सामने इन्हीं भावनाओं के विषय में फिर से बात आ रही है। फिर से हमें इन्हीं भावनाओं का एक चिन्तन, ज्ञान दिया जा रहा है ताकि हमारे मन में वह चीजें समाहित हो और उसी के लिए यहाँ यह गाथा नम्बर 37, 38, 39 ये तीन गाथाएँ पढ़ते हैं और इन भावों को समझने की कोशिश करते हैं...

गय-कण्ण-चंचलाओ, लच्छीओ तियस-चाव-सारिच्छं।
विसय-सुहं जीवाणं, बुज्झसु रे जीव! मा मुज्झ ॥37॥

जह संझाए सउणाण संगमो जह पहे अ पहियाणं।
सयणाणं संजोगो, तहेव खणभंगुरो जीव! ॥38॥

णिसाविरामे परिभावयामि, गेहे पलित्ते किमहं सुयामि।
डज्झंत-मप्पाण-मुविकखयामि, जं धम्मरहिओ दिअहा गमामि ॥39॥

लक्ष्मी का चंचल स्वभाव

गाथा नम्बर 37 में कहते हैं... 'गय-कण्ण-चंचलाओ, लच्छीओ' 'लच्छी' कहते हैं- लक्ष्मी को! 'लच्छी' अर्थात् लक्ष्मी। जब लक्ष्मी मेहरबान होती है, तभी नोटों की लच्छी की लच्छी घर में आती है। यह लच्छी का नाम क्या है? लक्ष्मी! यह लक्ष्मी कैसी है? आचार्य कहते हैं... गज कर्ण के समान चंचल है। 'गय-कण्ण-चंचलाओ' गज अर्थात् हाथी, उसका कान अगर कभी आपने देखा हो तो वह हमेशा हिलता ही रहता है। हाथी का कान चंचल बना रहता है। मतलब आचार्य भी कितनी उपमाएँ दे-दे कर हमें समझा रहे हैं, कभी प्राकृतिक उपमाओं में मेघ पटलों की उपमा देते हैं, कभी इन्द्रधनुष की उपमा देते हैं, कभी जल के बुलबुले की उपमा देते हैं तो कभी गज कर्ण के समान लक्ष्मी चंचल है।

आचार्यों ने लक्ष्मी की उपमा हाथी के कान के समान की है

यानी जो हमारे पास में धन सम्पदाएँ हैं, यह धन सम्पदाएँ कैसी हैं? जैसे हाथी का कान हमेशा चंचल रहता है, हिलता रहता है, वह स्थिर नहीं रहता है उसी तरह से कोई भी लक्ष्मियाँ स्थिर नहीं रहती। अगर विचार किया जाए कि लक्ष्मी जैसी कोई देवी है या कोई चीज है तो उसको चाहने वाले तो बहुत हैं और वह एक है, तो वह कितनों के पास जाएगी और कितनों के लिए वह सन्तोष प्रदान करेगी? इसलिए उसने भी अपना एक system बना रखा होता है।

बैंकों में money system

जैसे कि बैंकों का system होता है अर्थात् money transfer एक process होता है तो कोई भी पैसा कहीं पर भी इकट्ठा नहीं रहता है, बस घुमाते रहो। यह एक system सिखाया जाता है economy में कि पैसे का आप use करते रहो। भले ही आपने बैंक में जमा कर दिया है लेकिन बैंक वाले भी अपने पास कहीं इकट्ठा करके नहीं रखते। वह उसको दूसरे काम में लगा देंगे, दूसरे धन्यों में लगा देंगे। बैंकों के पास में बहुत बड़ी-बड़ी जो कम्पनियाँ होती हैं वह loan लेती हैं, उनसे साथ agreement करती हैं कि भाई हमें इतने percent पर इतना धन दिया जाए। हम आपको इतने में return करेंगे तो यह एक system

चलता रहता है। उसी तरह से अगर हम देखे कि यह धन का system ऐसे चलता रहता है मानो लक्ष्मी का ही system चल रहा है। यह system किसका चल रहा है? जो लक्ष्मी है उसने सोच रखा है कि मैं किसी के पास रहूँगी नहीं, घूमती रहूँगी तो यह उसकी एक मानसिकता है।

लक्ष्मी एक जगह स्थिर रहने वाली नहीं है

वह लक्ष्मी का ऐसा विचार है, भाव है कि वह एक जगह पर कहीं पर भी स्थाई निवास उसका नहीं होगा, भले ही आप अपने निवास का नाम लक्ष्मी निवास रख लो या अपना नाम रख लो लक्ष्मीनिवास। बिडला का नाम है क्या? कहीं सुना था मैंने...लक्ष्मी चन्द्र तो होते ही हैं, लक्ष्मी निवास भी होते हैं। हाँ, लक्ष्मी विलास! लक्ष्मी निवास! तो अगर आपका नाम लक्ष्मी भी रख दिया जाएगा तो भी लक्ष्मी एक जगह पर स्थिर रहने वाली नहीं होती है। उसका स्वभाव चंचल है, घूमने का स्वभाव है। जैसे आप लोगों का स्वभाव चंचल है ऐसे ही उसका स्वभाव भी चंचल है। अपना मन जिस तरह से एक जगह नहीं टिकता है, ऐसे ही लक्ष्मी भी कभी एक जगह टिकती नहीं है।

धन सम्पत्ति में मोहित होना बहुत बड़ी मूर्खता

अगर थोड़ी देर टिक भी जाए तो आचार्य कहते हैं...भ्रम में मत रहना। भावना यही भाना जो हम बता रहे है। क्या? गज कर्ण के सामान लक्ष्मी चंचल होती है, भावना यही भाना। यानी लक्ष्मी कभी भी स्थिर नहीं रहेगी भले ही आपको लग रहा है...दस साल से हमारा व्यापार बहुत अच्छा चल रहा है, balance बहुत अच्छा बनता चला जा रहा है, हम बहुत करोड़पति से भी अरबपति की ओर जा रहे हैं। यह आपको लग तो रहा होगा लेकिन ऐसा लगते-लगते भी यही भावना भाना ताकि भ्रम में न पड़ जाओ। आचार्य कहते हैं...यह लक्ष्मी गज के कर्ण के समान चंचल है, इस तरह का विचार नियम से बनाए रखो। यह विचार हमेशा करते रहो और इस तरह का विचार बना रहेगा तभी आपका धन-सम्पत्ति को अपना समझने का भाव नहीं आएगा, धन सम्पत्ति में मोहित होने का भाव नहीं आएगा। धन सम्पत्ति में मोहित होना अर्थात् बहुत बड़ी मूर्खता हासिल करना है। क्योंकि उस धन सम्पत्ति में अर्जित समय को आप जब तक मोह के साथ में लगाते रहोगे और उससे यह मानते रहोगे कि यह सम्पत्ति हमारे लिए है, हमारी है तो आपका धर्म में मन नहीं लगेगा, आत्महित में मन नहीं लगेगा। इसलिए धन सम्पत्ति में जब मोहित पना आ जाता है, हम उसमें मूढ़ हो जाते हैं। फिर हमारा धर्म कार्य में मन नहीं लगता है। इसलिए इस धन को अगर हमने प्राप्त भी कर लिया, चाहे अपने पुण्य से किया हो, चाहे अपने पुरुषार्थ से किया हो तो भी आचार्य कहते हैं...इसके लिए हमेशा यह भावना करना कि यह गज के कान के समान चंचल है। इसका कोई स्थाई पता ठिकाना नहीं है। अपना पता स्थाई हो सकता है लेकिन इसका पता कोई स्थाई नहीं है।

विषय सुख इन्द्र धनुष के समान क्षणभंगुर

यह हुई लक्ष्मी की बात। अब आचार्य कहते हैं... ‘तियस-चाव-सारिच्छं। विसय-सुहं जीवाणं’ जीवों के लिए जो विषय सुख होते हैं, वे कैसे हैं? त्रिदश के चाप अर्थात् धनुष होता है, जिसे हम कहते हैं- इन्द्रधनुष।

यह जो विषयों के सुख हैं, इन्द्रियों के विषयों के जो सुख हैं, यह इन्द्रधनुष के समान हैं। इन्द्रधनुष बनते हैं कभी-कभी, कब बनते हैं? जब थोड़ी सी वर्षा भी हो रही हो और हल्की सी धूप भी आ रही हो और उसी के साथ-साथ थोड़ी सी ओस की बूंदें भी गिर रही हो। उस समय पर यह एक स्थिति बनती है, जब हमें सतरंगी एक spectrum दिखाई देता है, जिसे इन्द्रधनुष कहा जाता है। उस इन्द्रधनुष की भी मर्यादा कितनी होती है? जब तक हम खुद देख कर दूसरों को बुलाने की कोशिश करते हैं...भैया देखो! देखो! इन्द्र धनुष दिख रहा है, तब तक तो वह चला ही जाता है। इसी तरह से आचार्य कहते हैं...विषय सुख भी इन्द्र धनुष के सदृश्य हैं और यह भाव जब आ जाता है कि हम जो विषय सुख का आनन्द ले रहे हैं, यह विषय सुख हमारे लिए बने रहें तो इसमें भी यह विचार करते रहना चाहिए कि यह विषय सुख भी हमेशा स्थिर रहने वाले नहीं। क्योंकि जो सुख की भावना है, वह सुख की भावना भी आपके अन्दर हमेशा बनी नहीं रहेगी और जो सुख प्राप्त करने के लिए आप जिन वस्तुओं को इकट्ठा कर रहे हैं, वह वस्तुएँ भी आपके लिए हमेशा सुख देने वाली नहीं होंगी।

चाय भी एक विषय सुख

कोई भी चीज हो, हमेशा कोई वस्तु आपको सुख नहीं दे सकती है। आपको लगता है, चाय पीने से सुख मिलता है। किससे? लगता है न? यह भी एक बहुत बड़ा विषय सुख है। चाय! one cup tea! only one cup tea at a time in morning and evening. इतनी आदत पड़ जाती है कि अगर एक कप चाय सुबह न मिले, शाम न मिले तो सुबह न मिले तो दिन भर चक्कर आते हैं और शाम न मिले तो रात में नींद नहीं आती है। कई लोगों की तो ऐसी आदत पड़ चुकी होती है कि वे उपवास कर लेंगे लेकिन चाय नहीं छोड़ पायेंगे। पानी मत पिलाओ यह चलेगा, कोई भी उकाली मत दो, दूध मत दो, कुछ मत दो। बस! क्या दे दो? चाय दे दो एक cup.

दशलक्षण पर्व में भी विषय सुख की इच्छा

हमें तब पता पड़ा जब दशलक्षण के पर्व चल रहे थे। उन दिनों में भी लोगों ने आकर वहाँ पर demand की, भाई! सुबह चाय नहीं मिल सकती क्या? जब लोगों को पता पड़ा कि यहाँ पर अपनी इच्छा अनुसार कुछ भी मिल रहा है तो वह time बे time भी पहुँच कर उन्होंने वहाँ पर चाय की demand की। यह बात अलग है कि कमेटी वाले लोगों ने दी नहीं होगी लेकिन demand आई थी। मतलब यह है कि आदमी के लिए जो आदत पड़ी होती है, उस आदत में उसे सुख भासता है। अगर वह आदत में थोड़ी सी भी वह विषय वस्तु न मिले तो फिर उसे लगता है...यार दुःख हो रहा है। जबकि सोचना क्या चाहिए था? हम उपवास कर रहे हैं, एकासन कर रहे हैं, हमें धर्म करने का एक वातावरण मिल रहा है।

उपवास में सुख या दुःख का अनुभव

हम धर्म कर रहे हैं तो हमें सुख किसमें लेना चाहिए? धर्म से! लेकिन धर्म करते हुए भी, उपवास करते हुए भी, उपवास का दुःख है कि चाय का सुख है। या यूँ कहें कि उपवास के सुख से भी ज्यादा चाय का सुख

है। कभी आपको लगता है कि उपवास में भी सुख होता है? आप लोगों ने दस-दस उपवास किए हैं। यहाँ लोग करते रहे हैं, बहुत सारे लोगों ने यहाँ दस उपवास किए। वह उपवास आपने सुख से किए कि दुःख से किए? यह उन दिनों नहीं पूछा हमने क्योंकि उन दिनों पूछ लेते तो फिर आप उपवास नहीं कर पाते। अब हो गए हैं तो अब पूछ रहा हूँ। जब भी आप उपवास करते हैं तो आपको क्या लगता है? उपवास में सुख है या हम यह सोच कर कि भाई दुःख तो है लेकिन निकाल लेंगे? मानसिकता क्या रहती है? यह बताना है हमें। बोलो? सही बात बोलो, उपवास करने वाले कोई हैं कि नहीं? बताओ? आरम्भ- परिग्रह का त्याग रहता है तो बड़ा आनन्द आता है, ऐसा इनका कहना है। और क्या कहना है बताओ दूसरा किसी का? यही बात है। उपवास में सुख मिलता है तब तो उपवास आपके लिए लाभदायक है क्योंकि आपकी मानसिकता उस उपवास से जुड़ी है।

भोजन नहीं करने का भी सुख

आप उस उपवास को अगर अच्छे में ले रहे हो, आरम्भ- परिग्रह का त्याग है, आज मुझे भोजन नहीं करने का भी सुख मिलेगा क्योंकि भोजन करने से भी कष्ट होता है। होता है कि नहीं होता? कभी महसूस नहीं होता! तुम्हें क्या भोजन करने में कष्ट महसूस होगा। वह तो हम लोगों से पूछो... भोजन करने में भी कष्ट महसूस होना और फिर यह महसूस करना कि आज हमें भोजन नहीं करना पड़ रहा है, इसलिए क्या है? भोजन की निवृत्ति हो गई, हर काम से निवृत्ति हो गई, आज हम बिल्कुल निश्चिन्त होकर उपवास के ही सुख का आनन्द लेंगे।

उपवास को सुख रूप में समझने से ही उपवास का सुख मिलेगा

उपवास का ही सुख समझेंगे तो वह उपवास, उपवास होता है। उपवास को सुख के रूप में देखेंगे तो उसमें सुख मिलेगा और अगर हम उपवास में भी दुःख ढूँढ़ेंगे... अरे भाई! अब 10 तो बजा लेंगे, सुबह पूजा होगी तब तक, फिर जब 10 से 12 का time आएगा तो दो घण्टे थोड़ा सा सो लेंगे तो खाने-पीने का time निकल जाएगा। फिर बाद में थोड़ा सा एक घण्टे इधर-उधर घूम लेंगे, गाने-वाने सुन लेंगे तो ऐसे करके फिर हम एक बजा लेंगे और फिर एक-डेढ़ बजे से थोड़ा सा फिर पांडाल में चले जायेंगे तो दो-तीन बज जायेंगे। फिर उसके बाद में फिर महाराज आ जायेंगे, फिर कुछ सुनाएँगे, ऐसे करके अपना समय धीरे-धीरे करके शाम की पाँच बजा ली। थोड़े सांस्कृतिक कार्यक्रम देख लिए, रात के आठ बज गए। अब क्या करें? आठ बजने के बाद सुबह के पाँच कैसे बजेंगे? अगर यह दिमाग में चल रहा है, तो फिर हम क्या समझें? उपवास में सुख है कि उपवास में दुःख है बताओ?

विषय सुख की आदत उपवास में भी विघ्न डालती है

उपवास में सुख मिलेगा तो फिर आपके लिए घण्टे नहीं गिनने पड़ेंगे। अगर आप घण्टे गिन रहे हैं, time किसी भी तरीके से निकालने की सोच रहे हैं और time अगर आपको ज्यादा लग रहा है, भारी लग रहा है तो इसका मतलब है- उपवास में सुख नहीं मिल रहा है। किसमें सुख मिलेगा? फिर आपको कोई न कोई

इन्द्रिय के विषय में सुख मिलेगा। ऐसी जो आपकी आदत पड़ी है आप उस इन्द्रिय के विषय को ही ढूँढोगे। यह विषय सुख की आदत हमें धर्म नहीं करने देती। विषय सुख की आदत हमें उपवास-तप आदि करने में भी विघ्न डालती है और इसी विषय सुख की आदत के कारण से हम कोई भी मानसिकता अच्छी बनायें तो हमारी आदत सामने आ जाती है। हम पहले सोचते हैं...उपवास कर लेंगे, एकासन कर लेंगे, चाय मिलेगी कि नहीं मिलेगी? यह विषय सुख है।

चाय से इन्द्रिय सुख

चाय से किसको सुख मिलता है? पाँच इन्द्रियाँ हैं। अब सोचो आपको चाय पीने से कौन सी इन्द्रिय को सुख मिल रहा है? यह बताओ हमें अब? पी जाते हो, गट-गट, गट-गट कितनी ही पिला दो? सोचते कुछ नहीं हो। चाय पीने से कौन सी इन्द्रिय को सुख मिलता है? रसना इन्द्रिय को! रसना को भी मिलता है। कितना मिलेगा रसना इन्द्रिय को सुख? जब तक वह घूँट गले के नीचे नहीं उतरता, तब तक रसना का taste आता है, चाय का taste आता है, वह भी एक सुख देने वाला taste होता है। फिर उसके बाद में पेट में पहुँच गई वह चाय, उसके बाद भी चाय सुख देती है कि नहीं देती है? नहीं देती! पेट में पहुँचने के बाद चाय का सुख नहीं मिलता। कैसी बातें कर रहे हो? पेट में पहुँचेगी तभी तो आपको महसूस होगा कि हाँ! हमने चाय पी ली है। पेट में पहुँचने के बाद में जब आपको पूरे शरीर में थोड़ी सी गर्मी महसूस होगी, energy महसूस होगी तभी तो आपको लगेगा कि हाँ! चाय पीने से energy आई है, थकान दूर हो गई है। तभी तो वह brain में जाकर संकेत देगी...हाँ! मिल गई है, निश्चिन्त रहो, अब चक्कर नहीं आएगा। brain अच्छा काम करेगा, यह brain जो हमें संकेत देगा कब देगा? गले में जब चाय होगी तब या पेट में होगी तब? कुछ सीखते तो हो नहीं! बस खाना-पीना ठूसने का काम है बस।

विषय सुख से इन्द्रिय सुख का विज्ञान

science को समझने का तो कोई काम है नहीं। कौन सी चीज किस तरह की process से चल रही है? कैसे वह हमें संकेत दे रही है? कैसे हमें वह सुख दे रही है? महाराज! खाते-पीते समय, समय नहीं मिलता इतना सोचने का और खाने-पीने के बाद में सोचने का कोई मतलब नहीं होता। अब खाते-पीते समय कौन समझ रहा है कि हमें स्पर्शन इन्द्रिय का सुख मिल रहा है कि रसना इन्द्रिय का सुख मिल रहा है। हम देखेंगे इसमें हमें दोनों इन्द्रियों का सुख मिल रहा है। चाय पीने से दोनों इन्द्रियाँ सुखी हो रही हैं। अगर हम देखें तो उसमें तीसरी इन्द्रिय भी सुखी होती है। कौन सी? घ्राण इन्द्रिय भी सुखी होती है। उसका जो flavour होता है, उसकी जो smell आती है, अगर वह मन माफिक आ जाए, बस! गहरी लम्बी श्वास लेंगे तो श्वास नहीं आएगी। लेकिन चाय पीते हुए अगर हम कहे गहरी लम्बी श्वास लीजिए तो बढ़िया श्वास लेने का मन होगा। वह भी इन्द्रिय का सुख है। आप उसको यूँ न समझे कि वह हल्की चीज है। आपके लिए उस चाय की cost कितनी है, वह इसी सुख से पता पड़ेगी...उसकी smell कैसी आ रही है? उसका flavour कैसा है? इसके लिए भी बड़ी-बड़ी चीजें उसमें सुगन्धित डाली जाती हैं ताकि उसकी कीमत बढ़े ताकि आपके लिए इन्द्रिय का सुख मिले। यह तीसरी इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय भी उससे सुख को प्राप्त होती है। फिर चक्षु इन्द्रिय को भी थोड़ा बहुत सुख मिलता तो होगा, नहीं मिलता? अब आ रही बात समझ में! मिलता तो

है जब तक दिखेगी नहीं चाय तो पियेंगे कैसे? दिख गई और दिखने के बाद ही सुख मिलने लग जाता है... चाय सामने है, तैयार हो रही है तो भी सुख मिलता है कि हाँ! तैयार हो रही है क्योंकि सामने वाला उसमें पत्ती डाल चुका है यानी देखने का भी सुख है। जब वह सामने बन कर आ जाती है, उसका colour देखो, coca-cola colour होना चाहिए। उसको देखकर भी आपके लिए मन करेगा कि हाँ! यह पीने लायक है।

भोजन देखने से होती है आहार संज्ञा की उदीरणा

वास्तव में खाने-पीने की चीजें पहले देखने से इच्छा बढ़ा देती हैं और देख करके ही पहले मन बन जाता है। देख करके भूख लग जाती है। इसलिए आचार्यों ने कहा...आहार संज्ञा की उदीरणा भोजन के देखने से होती है। यह सत्य बात है। चक्षु इन्द्रिय का विषय बने बिना वह चाय हमारे लिए सुख नहीं दे पाएगी। इसलिए चाय से चक्षु इन्द्रिय को भी सुख मिलता है। अब कौन सी इन्द्रिय बची रह गई? अब एक कर्ण इन्द्रिय बची रह गई। अब कोई आवाज लगा दे सुबह-सुबह उठते ही... चाय, चाय, चाय, चाय, चाय पीजिए, चाय लीजिए। कितनी नींद में हो, सो भी रहा होगा तो उठ जाएगा। वैसे कहेंगे भैया! उठ जा, उठ जा, उठ जा... मन्दिर चल, अभिषेक करने का time हो गया है, स्वाध्याय करने का time हो गया है तो नहीं उठेगा और चाय, चाय, चाय उसके कान में पड़ जाएगी तो उठ जाएगा। अब आप समझो चाय कितनी बड़ी चीज है? पाँचों इन्द्रियों का सुख उससे मिल रहा है और मन भी उससे सुख ले रहा है क्योंकि इन्द्रियाँ क्या भला सुख लेंगी अगर मन उसका साथ न दे तो। मन तो उसमें लगा हुआ है। अतः पाँचों इन्द्रियाँ, मन, उस एक कप प्याले से तृप्त होती हैं। ऐसी जब हमारे भीतर एक मानसिकता बन जाती है, हमारी धारणा बन जाती है तो फिर उपवास में भी वह सुख याद आता है।

चाय से मिलता क्षणिक सुख

इसलिए कई लोग उपवास करना सरल समझते हैं लेकिन चाय का त्याग करना कठिन समझते हैं। गरम पानी नहीं पी पायेंगे लेकिन अगर उस गर्म पानी में थोड़ी सी पत्ती डाल दी जाए, flavour आ जाए, थोड़ा सा दूध डाल दिया जाए तो फिर चल जाएगा। आपकी सुविधा के अनुसार बहुत सारी tea आती हैं , green tea भी होती है, black tea भी होती है, lemon tea भी...हाँ! कोई भी तरह की tea हो वह सब आपके इन्हीं पाँचों इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने के लिए है।

चाय का सुख इन्द्रधनुष सदृश है

आपकी अगर आदत पड़ी है, तो वह आदत अगर आपके लिए सुख देने वाली हो गई है कि इससे हमें सुख मिलता है तो आप यह जान करके रखना यह सुख कैसा है? इन्द्रधनुष के सदृश्य है। अब इसको इन्द्रधनुष के सदृश्य घटित करो। कैसे करोगे? चाय पी, चाय को देखा, चाय का नाम सुना, चाय का स्वाद लिया, चाय का पेट में स्पर्श हुआ, चाय की smell ली। इतने सारे काम किए गए चाय के साथ में लेकिन यह पाँचों ही इन्द्रियों के विषय उस एक घूंट को पीने के बाद में कितनी देर तक रुके? कितनी देर रहे? उतनी देर

रहे जितनी देर तक इन्द्रधनुष हमें दिखाई देता है, बस! यह सुख उतनी देर का है। लेकिन अगर इस सुख के पीछे हमारी यह धारणा बन जाती है कि हाँ! यह सुख है तो वह छोड़ना मुश्किल हो जाता है। वह धारणा जीवन पर्यन्त भी बनी रह सकती है, बड़ी उम्र तक भी बनी रह सकती है।

एक ही चातुर्मास में छोटे से नियम से दो प्रतिमा के व्रत की यात्रा

प्रशान्त सागर जी महाराज के भाई बैठे हुए हैं। इनके पिताजी थे जब गोंटे गाँव में अपना चातुर्मास हुआ। उनको आदत थी चाय पीने की, पूछो उनसे। थी न! आदत थी चाय पीने की। अब आदत ऐसी थी कि 80 वर्ष की उम्र में भी वह नहीं छूट रही थी। कई साधु आये, कई माताजी के चातुर्मास हो गये लेकिन वह चाय का त्याग नहीं कर पाए, चाय का त्याग नहीं हुआ। एक दिन दर्शन करने के लिए आए चातुर्मास के time पर, दर्शन कर लिए और दर्शन करके जब जाने लगे तो इन्हीं ने आकर कहा महाराज! कुछ नियम तो दिला दो। फिर एक ने कहा...महाराज! नियम तो वह लेते ही नहीं है, कितने ही लोग आ गए, चले गए, नियम के पीछे तो पड़ना ही नहीं महाराज। मैंने कहा...ठीक है भाई!, जब वह नियम लेते ही नहीं तो हम क्यों नियम दिलाएँ? लेकिन फिर भी आप एक बार उनसे पूछ तो लो, एक बार बात तो कर लो। बुला लाओ! जाते-जाते उन्हें फिर बुला लाए और पूछ लिया...रात में कुछ खाते-पीते हो? हाँ! थोड़ा बहुत ले लेते हैं। चाय पीते हो? हाँ! वह भी पी लेते हैं। तब उनको बताया कि अब इस उम्र में अगर तुम चाय पीते रहोगे तो तुम्हारा कभी भी अच्छे से समाधि मरण नहीं हो सकेगा। क्योंकि चाय की आदत तुम्हें कभी भी अच्छे परिणाम उत्पन्न नहीं करने देगी, तुम्हारे समाधि मरण में बाधा डालेगी। अगर तुम चाहते हो कि हमारा जीवन अच्छे से निकला है और हमारा मरण भी अच्छा हो तो तुम पहले इस छोटी सी आदत का त्याग करो कि हम चाय नहीं पिएँगे। अगर तुमसे वह नहीं बनता है तो एक काम करो। अभी इतना मन में विचार करो कि हम रात में चाय नहीं पिएँगे। वह उस बात पर राजी हो गए कि मैं रात में चाय नहीं पियूँगा। यहाँ से उनकी शुरुआत हुई। इतना उन्होंने मन बना लिया और वे घर पर चले गए। बाद में फिर दो दिन बाद आये तो मैंने फिर पूछा तो बोले...हाँ! रात में चाय नहीं पीयूँगा, उन्होंने छोड़ दी। उसके बाद फिर उनके त्याग का सिलसिला ऐसा शुरू हुआ कि उनसे फिर जो भी त्याग के लिए कहा गया, वह हामी भरते गए और हर त्याग करते गए। उसके बाद त्याग करते-करते दो प्रतिमा के व्रत ले लिए उन्होंने, उसी चातुर्मास में, ऐसा उनका त्याग का सिलसिला चला।

अपनी कमजोरी को समझने का मनोवैज्ञानिक उपाय

मैं कहना चाहता हूँ कि कुछ चीजें ऐसी होती हैं, जो हमारे त्याग पर रोक लगाने वाली होती हैं। जैसे कि अगर कहा जाए...जैसे आपने बन्ध के प्रत्यय सुने हैं न! बन्ध- अभी बताया था न आठवें अध्याय में, मिथ्यात्व है, अनन्तानुबन्धी कषाय हैं, प्रमाद है, योग है, अविरतियाँ हैं, यह सब क्या हैं? बन्ध के कारण हैं। लेकिन इन बन्धों में सबसे बड़ा बन्ध का कारण क्या है? जो पहला कारण है, वह है- मिथ्यात्व। अगर यह छूटता है तो फिर दुनिया की हर चीज छूट जाती है। इसी तरह से कुछ आदतें हमारे जीवन में ऐसी होती हैं

कि वह छूट जाएँ तो फिर हमें दुनिया की किसी चीज में कोई interest नहीं रहेगा और वे चीजें वही होती हैं जो सिर चढ़ कर बोलती हैं। उपवास के दिन आपके सिर चढ़ कर जो चीज बोले...देखो! मैं आपको बता रहा हूँ मनोवैज्ञानिक तरीका, अपने दिमाग को समझने का, अपनी आदतों को समझने का। उपवास के दिन जो चीज आपके सिर चढ़ कर बोले क्योंकि इन्द्रियों को तो आपने कुछ नहीं दिया, मन भूखा है। अब उस स्थिति में वह क्या चाह रहा है? कौन सी चीज आपके सिर चढ़ कर आपके दिमाग में आ रही है। समझ लेना वही हमारी कमजोरी है और उसको ही हमें जीतना है।

अपनी कमजोरियों पर विजय कैसे प्राप्त करें?

मैं यूँ नहीं कह रहा कि सबकी कमजोरी चाय की ही होगी। आपको कोई मिष्ठान याद आ जाये, आपको किसी भी तरह की कोई dish उस दिन याद आ रही हो, समझ लेना मेरे परिणाम इससे सबसे ज्यादा जुड़े हुए हैं और यह मेरे लिए एक आदत बन चुकी है। अगर यह आदत मैंने नहीं छोड़ी तो यह आदत मेरे लिए नुकसानदेह हो जायेगी। उपवास के दिन जो आपको याद आये...कैसे हम अपने समय को निकालें? कैसे मनोरंजन करें? कैसे हम फिल्में देखें कि गाने सुनें? आपके दिमाग में कुछ भी जो आए उपवास के दिन, आप समझ लेना वही आपका सबसे बड़ा addiction है। यह अपने परिणामों को आपको याद दिलाने के लिए और अपने परिणामों को समझने के लिए आपको एक फार्मूला बता रहा हूँ। उपवास हो जाये कोई बात नहीं लेकिन उसके बाद में याद रखना कि हमें इस चीज पर विजय प्राप्त करनी है, जो उपवास के दिन हमको परेशान करती है। उसका नाम ही है- विषय सुख। वह विषय का सुख आपको उपवास के दिन विशेष रूप से याद आएगा क्योंकि उस दिन इन्द्रियाँ उपासी हैं, शरीर उपासा है, मन उपासा है और इस उपवास के कारण से जो भीतर के हमारे भाव हैं, वह बाहर निकल कर आएँगे तो आपके दिमाग में आएगा कि मैं अपने इस उपवास को कैसे निकालूँ? तब समझ लेना अगर आपको उपवास के दिन चाय याद आए, cold drink याद आए, किसी तरह के कोई गाने सुनने की इच्छा पड़ जाए, आप समझ लेना यही आपका addiction है और इससे ही आपको बचना है।

उपवास का विज्ञान

यह बहुत बड़ा विज्ञान है, भले ही आपने यह विज्ञान कभी न सुना हो। यह पहली बार आपको विज्ञान बताया जा रहा है। मैं यह विज्ञान कभी किताबों से पढ़ कर नहीं बताता। यह विज्ञान अपने चिन्तन से, अपने अनुभव से मैं आपको बता रहा हूँ और यह विज्ञान आप अपने अन्दर महसूस कर लेना। यह कोई किताबों में लिखे हुए विज्ञान नहीं मिलेंगे। अगर विज्ञानों में यह विज्ञान जोड़ना हो तो मनोविज्ञान की किताब में एक विज्ञान और जोड़ देना। **‘उपवास का विज्ञान’** उपवास के ऊपर भी बड़ी-बड़ी किताबें लिखी गई हैं, उनमें भी नहीं मिलेगा, यह उपवास का मनोविज्ञान। उपवास के दिन आपको जिस तरह से अपना time गुजारने का अर्थात् वह धर्म ध्यान के साथ न हो, उसके अलावा अन्य चीजें, पाँच इन्द्रिय के विषयों में से जिस इन्द्रिय का विषय आपके ऊपर हावी हो रहा हो, आप सोचना मेरी उस इन्द्रिय में ही ज्यादा आसक्ति है। वह इन्द्रिय मेरे लिए एक आदत बन चुकी है विषय सुख के कारण की।

विषय सुख की आदतों का त्याग करने पर ही साधना का पूर्ण लाभ

उस इन्द्रिय पर अगर हम नियन्त्रण नहीं करेंगे तो यह इन्द्रिय हमको आगे भी तपस्या करने में, उपवास करने में, साधना करने में बाधक बनेगी और यह सब बाधाएँ समाधि के समय पर इकट्ठी हो जाती हैं। अगर आपने एक बाधा को जीत लिया जो आपकी मूलभूत बाधा है तो सब बाधाएँ अपने आप अलग हो जाती हैं। एक कारण अपने मिथ्यात्व को हटा दिया तो आगे अविरति को हटाने में ज्यादा time नहीं लगता है, सब हट जाएगा धीरे-धीरे। कोई भी चीज जो पहले से बहुत गाँठ बाँध कर किसी चीज को रखा हुआ हो और उसको आपने कभी खोला नहीं हो, बस आप उसके ऊपर की पहली एक गाँठ, उसको तोड़ दो। आपको रास्ता मिल जाएगा उसको तोड़ने का, फिर वह टूटती चली जाएगी। इसी तरह से अपनी आदतें खुद देखो। मैं केवल चाय के लिए नहीं कह रहा हूँ, चाय के अलावा तम्बाकू भी एक बहुत बड़ी आदत होती है, सिगरेट पीना भी कई लोगों की आदत होती है। कई तरह के नशा करना कई लोगों की आदत होती है और उन नशों में इतने भी नशा करते हैं लोग कि मंजन के नाम पर भी लोग नशा करते हैं। तम्बाकू का नशा करने की आदत होती है और कोई नशा नहीं कर रहा हूँ महाराज! दन्त मंजन कर रहे हैं और उसी में नशा हो रहा है और यह आदत अगर पड़ गई तो समझ लेना यह आपकी जिन्दगी की सबसे बड़ी कमजोरी है। अगर आपने यह कमजोरी नहीं छोड़ी तो आपको उपवास के लाभ वह नहीं मिलेंगे जो मिलना चाहिए।

हे जीव! मोह मत कर, बोध को प्राप्त हो

इसलिए उपवास करना सरल है लेकिन विषय सुख में अपनी आदत जो लगी हुई है, उसे छोड़ना कठिन हो जाता है। इसलिए यहाँ कहा जा रहा है... **‘बुझसु रे जीव! मा मुझ’** क्या कहते हैं? हे आत्मा! हे जीव! हे प्राणी! मोह मत कर। **‘मुझ’** अर्थात् मोह मत कर, **‘बुझ’** अर्थात् बोध को प्राप्त हो। बोध बताया था न, जागृत हो, बोध को प्राप्त कर। तू विषय सुख में सुख ढूँढ़ रहा है यह सुख तेरी एक आदत है, तेरे सामने आया हुआ, इन्द्रधनुष की तरह क्षणिक सुख है। इस क्षणिक सुख को तू स्थायी मान रहा है, यह तेरा मोह है। मोह के कारण से तुझे लगता है...चाय हमेशा हमारे लिए सुख का कारण है लेकिन वह हमेशा सुख का कारण नहीं है, वह तेरे लिए दुःख का कारण है। तेरे दिमाग में जो मोह चढ़ा हुआ है, उसी के कारण से तुझे विषय सुख अहितकारी नहीं लग रहे हैं, इसलिए तू बोध को प्राप्त हो और यह बोध हर आत्मा को स्वयं को देना पड़ेगा। उपदेशों से भी मिल जाता है लेकिन यह बोध स्वयं को भी स्वयं में देना पड़ता है।

अपनी कमियों पर विजय प्राप्त करना ही बोध को प्राप्त होना

अपनी-अपनी कमियाँ हर व्यक्ति को ढूँढ़नी चाहिए और हर व्यक्ति को उन कमियों पर विजय प्राप्त करने के लिए इस तरह से अपने आप को examine करना चाहिए...उपवास के दिनों में हमारी कौन सी इन्द्रिय हमारे ऊपर हावी होती है? किस इन्द्रिय के विषय में हमें आसक्ति होती है? आपको जो भी समझ में आए, आप समझ लेना यह हमारी एक mental weakness है। अगर हमने इस पर विजय प्राप्त नहीं की तो



गाथा: 38

इस संसार में स्वजनों का संयोग भी क्षणस्थायी है

जह संझाए सउणाण संगमो जह पहे अ पहियाणं।

सयणाणं संजोगो, तहेव खणभंगुरो जीव! ॥38 ॥

अन्वयार्थ- (जीव!) हे आत्मन्! (जह) जिस प्रकार (संझाए) सांझ यानी संध्या के समय में (सउणाण) पक्षियों का (संगमो) समागम (अ) और (जह) जिस तरह (पहे) पथ यानी मार्ग में (पहियाणं) पथिकों का (संगमो) समागम (खणभंगुरो) क्षणभंगुर यानी क्षणिक है (तहेव) उसी प्रकार, ही (सयणाणं) स्वजनों का (संजोगो) संयोग 'भी' (खणभंगुरो) क्षणभंगुर यानी क्षणिक है ॥38 ॥

फिर अगली गाथा में कहते हैं... 'जह संझाए सउणाण संगमो' जैसे संध्या के समय 'सउणाण' सउण बोलते हैं- शकुन को! किसको? शकुन समझते हो? आपने क्या सुन रखा है? शकुन। शकुन मतलब एक तो वह शकुन होते हैं- अच्छे शकुन हो रहे हैं कि बुरे शकुन हो रहे हैं वस्तुतः वह शकुन नहीं कहलाता। वह शब्द जो है शकुन के अर्थ में नहीं है। शकुन मतलब होता है- पक्षी। शकुन अर्थात् जैसे पक्षियों का संगम संध्या के समय पर हो जाता है और पथ में, हमें रास्ते में अनेक पथिक अपने आप मिल जाते हैं...ऐसे ही 'सयणाणं संजोगो' अपने सजनों का संयोग हो जाता है। सजन यानी स्वजन, उसको सजन कहते हैं। 'ज' का 'य' हो गया, प्राकृत में, सजन का मतलब क्या हुआ? स्वजन, अपना व्यक्ति, अपना आदमी...शायद यहीं से सजन शब्द प्रचलित हो गया है। एक सजन अर्थात् क्या होता है? यह तो स्वजन अपनी भाषा में हो गया, आप अपनी भाषा में सजन अर्थात् क्या बोलते हो? सजन, सजना, यह भी चलता है न, सजनी-सजना भी चलता है। शायद यह सजनी, सजना, यह इसी भाषा से निकले हुए शब्द हैं। स्वजन मतलब मेरा आदमी, स्वजन हो गया न मेरा आदमी। जिस स्त्री के लिए उस व्यक्ति को सजन कहना आ रहा है वह उसका सजना हो गया और जिस पुरुष के लिए उस स्त्री को अपना स्वजन कहना आ रहा है वह भी अब वह सजना न हो कर सजनी हो गई। अगर सामान्य से देखे तो सजन क्या कहलाता है? कोई भी व्यक्ति हो जिससे अपनापन हो, वह भी सजन कहलाता है।

धन संपत्ति का संयोग भी क्षणभंगुर

इसलिए शायद आपने कभी कोई लाइन सुनी हो, सुनते तो रहते ही हो...सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है, वहाँ हाथी न घोड़ा है वहाँ पैदल ही जाना है। यूँ बोला वहाँ पर पैदल जाना है। पैदल कैसे जाओगे वहाँ? अर्थात् इन गीतों में भी कोई ज्ञान नहीं है। मरने के बाद भी अगर जाओगे तो पैदल कैसे जाओगे? आत्मा कभी पैदल चल सकती है? वहाँ जल्दी जाना है? नहीं! कहीं-कहीं पैदल भी लिखा है? वहाँ

पैदल ही जाना है? ऐसे भी आता है तो पैदल कैसे जाओगे वहाँ तक खुदा के पास तक? **‘विग्रहगतो कर्मयोगः’** विग्रह गति में न हाथ होते हैं, न पैर होते हैं वहाँ तो केवल कार्मण शरीर रहता है। लेकिन ये सब सामान्य बातें हैं, गीत-गान की बातें हैं। आदमी को एक थोड़ा सा ध्यान दिलाने की बातें हैं कि यहाँ पर कितने ही तुम four wheelers में घूम लो, हाथी-घोड़ों में घूम लो लेकिन वहाँ तो आपको सब यहीं पर छोड़ कर जाना है। इसका मतलब यह है- पैदल जाओ चाहे कैसे भी जाओ?

स्वजनों का संयोग भी क्षणभंगुर

अब यह अगर हमारे समझ में आता है कि इसका नाम सजन है, तो सजन का मतलब क्या हो गया? फिर वह सजना-सजनी से अलग हो गया। सजन अर्थात् जो कोई भी लोग अपने को दिखाई दे रहे हैं वह सब क्या हैं? सजन हैं, अपने लोग हैं। इसलिए यहाँ सम्बोधित करते हुए कहा जा रहा है...जो भी सजनों का संयोग हो जाता है। यह सब भी कैसा है? **‘तहेव खणभंगुरो जीव’** हे जीव! यह संयोग भी क्षणभंगुर है। कैसे क्षण भंगुर है? जैसे कि संध्या के समय पर शाम को जैसे पक्षी इकट्ठे हो जाते हैं...पक्षी इकट्ठे हो गए शाम को और सुबह अपने आप अपनी-अपनी दिशा में उड़ गए। उनका संयोग जिस तरह से एक रात का है, थोड़े समय का है, वैसे ही यहाँ पर कोई भी अपने घर-परिवार के लोग होते हैं, इन सब स्वजनों का संयोग भी थोड़े समय का है, क्षणभंगुर है। यह बात अलग है अगर हमारी उम्र सत्तर साल, पचास साल की भी हो रही है और हमें पचास साल से संयोग मिला है तो भी यही विचार करना। यह सब संयोग कैसा है? क्षण भंगुर।

वैराग्य शतक में क्षणभंगुरपने का भाव किसके लिए?

आखिर कब विचार करोगे? जिनके लिए क्षणभंगुर था वह विचार करते नहीं क्योंकि वह दुःखी हो गए और दुःख के समय कोई अच्छे विचार हो नहीं सकते। जिनके लिए लम्बा समय मिल रहा है, उन्हें क्षणभंगुर दिखाई नहीं दे रहा है। फिर यह वैराग्य शतक है किसके लिए, हमें यही समझ में नहीं आ रहा। जिनके लिए थोड़ा सा संयोग मिला, वे चले गए, वे दुःखी हैं और दुःखी अवस्था में कोई भी अच्छी बात कहो तो उनका दुःख और बढ़ जाता है। उनके लिए तो यह विचार समझ में आ नहीं रहा और जो सुखी हैं, उन्हें लग रहा है...भैया! उससे मेरा पचास साल से संयोग चल रहा है। पचास साल से मैं उसके घर में हूँ, वह हमारे घर में है तो अब यह संयोग भी आपको permanent लग रहा है। फिर यह गाथा है किसके लिए? यह क्षणभंगुरपना लगेगा किसको, कब आएगा समझ में? क्षणभंगुरपना कब हमें सोचना है, सुख में कि दुख में? जब चीजों का सद्भाव है तब या जब चीजें मिट जायेंगी तब? बताओ-बताओ? चीजों का सद्भाव है उस समय पर सब क्षणभंगुर सोचना यह अपने बस की बात है कि नहीं? बैठती नहीं दिमाग में महाराज! आप कहलवा लेते हो...हाँ बोलो तो मैं हाँ कह देता हूँ लेकिन दिमाग में बैठता नहीं है। क्षणभंगुर कैसे कह ले महाराज! साठ साल हो गए, सत्तर साल हो गए, घर भी permanent बना हुआ है, पत्नी भी है, बच्चे भी हैं, सब हैं। वैसा का वैसा ही सब बढ़िया चल रहा है, अब क्षणभंगुर कैसे कह दे?

लम्बे समय से रहते हुई भी जीवन क्षणभंगुर कैसे?

आपको लग रहा है अगर आप आज साठ साल के हो गए हो, आपको लगता है कि साठ साल में हमें कभी ऐसा लगा हो कि हम साठ साल जैसा जीवन जी लिए हो। अगर किसी भी क्षण सोचने बैठोगे तो आपको यही लगेगा जैसे अभी कुछ जिया ही नहीं है, यह सब क्षण की तरह हमारे सामने से निकल गया। कोई भी time आपका जो past time निकल गया, अगर आप उसे सोचने बैठोगे तो क्या समझ में आएगा? यह एक क्षण की तरह हमारे सामने निकल गया और आगे भी कितना भी दीर्घ काल हो, वह भी क्षण की तरह आपके सामने निकल जाएगा। अगर आपने विचार नहीं किया तो अपनी बुद्धि में मोह पड़ा रहेगा और अगर ऐसा विचार करते हुए आप अपनी उम्र को गुजारेंगे तो आपकी बुद्धि में बोध आएगा, ज्ञान आएगा और आपके भीतर से जागृति आएगी अन्यथा मोह के कारण से आपको संसार ही अच्छा लगेगा, धर्म अच्छा नहीं लगेगा। जैसे रास्ते में लोग मिल जाते हैं, कितनी देर के लिए मिलते हैं? बस! रास्ते में मिले, टाटा, bye bye, जय जिनेन्द्र बस किए, आगे बढ़े...उसी तरह से आपको देखना चाहिए हमें जो कुछ भी संयोग मिले हैं, सब क्षण भंगुर है। कोई भी संयोग!

मोह पर विजय प्राप्त करने के लिए चिन्तन

सबको लग रहा था पर्यूषण पर्व! दस दिन! कैसे निकल गए दस दिन? क्षण की तरह निकल गए, बस क्षण आया और एक system बना और उस system में दस दिन एक क्षण की तरह निकल गए। समझ भी नहीं पाए कि पर्यूषण कब आया और कब गया? लम्बा समय भी हमारे सामने क्षण की तरह निकल जाता है। हम हर चीज में यह देखे कि हमारा जीवन का कितना समय एक क्षण की तरह निकल गया, यह सब कुछ हमारे सामने होते हुए भी हम क्षणभंगुर ही उन सब चीजों को देखे। यह विचार बना रहेगा तो हमारे अन्दर मोह उत्पन्न नहीं होगा। आप चाहते हो कि हम मोह से बचे। मोह को छोड़ने की बात नहीं कही जा रही है, मोह को भीतर से समझने की बात कही जा रही है।

लम्बे समय तक स्थायी बने रहने पर भी सब क्षणभंगुर होने का विचार होना चाहिये

मोह पर विजय प्राप्त करने के लिए यह चिन्तन जरूरी है अन्यथा इन गाथा में कुछ भी नहीं दिख रहा है। लगता ही नहीं है कि इन गाथाओं में क्या एक घण्टा प्रवचन बोला जाएगा? क्या इसमें विषय है, क्या कहेंगे और क्या अपने काम की चीजें हैं? पढ़ने वाला भी पढ़ लेगा। ये सभी चीजें तो बीसों बार हर ग्रन्थ में लिखी रहती हैं। वही-वही चीजें, सब सामान्य बातें हैं। राहगीरों का संयोग सबको मिलता है...सुबह-सुबह सब इष्टोपदेश पढ़ते ही हैं, सब जगह यही मिलता है। वही भाव यहाँ पर लिखा जा रहा है...पक्षी हैं, शाम को हैं सुबह उड़ जायेंगे, यह सब क्षणभंगुर संयोग है। इसलिये आपको इन संयोगों में स्थायित्व का भाव नहीं करना है। इनमें क्या सोचना है? भले ही वह पचास साल से स्थायी हो और पचास साल तक स्थायी बने रहे लेकिन आपके मन का विचार क्या होना चाहिये? यह सब क्षणभंगुर है, सब क्षणभंगुर है, सब क्षणभंगुर है। लगभग चालीस गाथाएँ होने जा रही हैं, 39वीं गाथा भी आ रही है सामने और इन सब गाथाओं में यही बताया जा रहा है...**अनित्य, क्षणभंगुर**, पहले भी आ चुका **‘सव्यमणिच्यं पिच्छह’** सब कुछ अनन्तों बार हो गया, एक बार यह भी सूत्र दिया था, भूल गए? बस महाराज, आप तो रोजाना नई बातें बताया करो,

गाथा: 39

ब्रह्ममुहूर्त में आत्मा का चिंतन, श्रेष्ठ परिणामदायक है

उपजातिवृत्तम्

णिसाविरामे परिभावयामि, गेहे पलित्ते किमहं सुयामि ।

डज्झंत-मप्पाण-मुविक्खयामि, जं धम्मरहिओ दिअहा गमामि ॥39॥

अन्वयार्थ- (णिसा-विरामे) रात्रि के, विराम यानी अंतिम प्रहर के शेष रहने पर 'मैं' (परि-भावयामि) सब ओर से, विचार करता हूँ कि (पलित्ते गेहे) जलते हुए, घर में (अहं) मैं (किं) क्यों/कैसे (सुयामि) सो रहा हूँ 'तथा' (डज्झंतं) जलती हुई 'अपनी' (अप्पाणं) आत्मा की (किं) क्यों (उविक्खयामि) उपेक्षा कर रहा हूँ (जं) जो (धम्मरहिओ) धर्मरहित (दिअहा) दिवसों को यानी दिनों को 'व्यर्थ' (गमामि) गमा रहा हूँ अर्थात् खो रहा हूँ ॥39॥

‘णिसाविरामे परिभावयामी’ अब वह आचार्य स्वयं कह रहे हैं...मैं इसकी भावना कर रहा हूँ। यह भावना कब करना चाहिए? देखो! बहुत अच्छी बात यहाँ पर बताई जा रही है। यह भावना कब करना? ‘णिसाविरामे परिभावयामि, गेहे पलित्ते किमहं सुयामि’ क्या कहते हैं? जब निशा का विराम होता है, निशा का अवसान हो रहा हो...मूक माटी पड़ी है न, यहीं से शुरू होती है। निशा का अवसान हो रहा है और उषा की शान हो रही है। इस तरह से जब निशा जा रही हो, उषा आ रही हो। कौन उषा? कोई बैठी तो नहीं है उषा, निशा? यह सब नाम जितने भी स्त्रियों के हैं, सब रात्रि के नाम हैं। इसलिए जिनके पास में स्त्रियाँ हैं, वह रात्रि में सो ही रहे हैं। अब ताली नहीं बजाओगे! उनके जीवन में सवेरा होने का नहीं। जितने भी नाम हैं, सब देख लो आप, स्त्रियों के ही नाम रात्रि के नाम रखे जाते हैं- निशा कह लो, शशि कह लो, उषा कह लो। उषा तो सुबह का नाम हो गया। रजनी कह लो, संध्या कह लो और बताओ? आप ही बता पाओगे, मुझे तो पता नहीं। मतलब यह भावना कब करना? जब निशा का अवसान हो जाए यानी जब सुबह होने को हो। सबसे पहले उठते ही जैसे ही आँख खुले, उस समय पर क्या भावना करना? बहुत अच्छी बात कही जा रही है, गाँठ बांध कर रखना हो तो रख लेना, काम आएगी। ‘गेहे पलित्ते किमहं सुयामि’ यह जो हमारा घर है वह प्रज्वलित हो रहा है। ‘पलित्ते’ अर्थात् जल रहा है, प्रज्वलित हो रहा है। कौन सा घर? सुबह उठ कर देखना हमारा घर जल रहा है। आप महाराज शुभ-शुभ बातें बोलो, सुबह-सुबह तो अच्छी-अच्छी बातें बोली जाती हैं, अच्छा-अच्छा विचार किया जाएगा। सुबह उठकर घर जलता हुआ देखना...क्या कहना चाह रहे हैं यहाँ पर? इसका अभिप्राय दूसरा है।

जीवन की क्षणभंगुरता - सूत्रात्मक बातें

यह एक तरह से सूत्रात्मक बातें हैं। मेरा घर जल रहा है, कौन सा घर जल रहा है? यह जो शरीर है, यह जो

हमारी आत्मा जिस कुटिया में बैठी है, यह कुटी जल रही है, यह शरीर जल रहा है क्योंकि इसके जितने दिन निकल गए उतना यह जल चुका। एक रात और निकल गई और एक रात में यह और जल गया। सुबह उठते ही सबसे पहले विचार क्या लाना?

**हाय कुछ न कर सके, न पीर पर की हर सके,
आज मेरी जिंदगी से एक दिन निकल गया, हाय मेरी जिंदगी से....,**

यह विचार करने का होता है। सुबह उठते ही आज के दिन क्या करना है? आज के दिन क्या करना है? आज के दिन क्या करना? इसमें लगता है आदमी, programming बनाता है सुबह उठकर शाम तक की और यह ऋषि-मुनि क्या विचार दे रहे हैं? यह सोचना सुबह उठकर कि हमारी यह कुटिया कितनी जल गई? इसमें क्या-क्या जल रहा है? लीवर सही बचा है कि नहीं? कितनों के फेफड़े जल चुके हैं? कितनों के निकल चुके हैं, कितनों के गल चुके हैं? कितनों के भीतर स्टंट डल चुके हैं? कितनों की heart की चीड़ाफाड़ी हो चुकी है? कितने blockage पड़ चुके हैं, कितने खुल चुके हैं? यह सब कुटिया जल रही है, घर जल रहा है... ऐसे जलते हुए घर में मैं बैठा हूँ। अब इसमें सोने की बात नहीं होनी चाहिए। **‘किमहं सुयामि’** अब मैं इसमें कहाँ जाऊँ? अब इसमें सो जाऊँ क्या? तब आचार्य कहते हैं... **‘इज्जंत मप्पाण मुविक्खयामि’** कहते हैं... यह आत्मा जिसमें बैठी-बैठी, इस जलती हुई आत्मा की उस समय पर भावना करना क्योंकि कुटिया में कौन बैठा है? आत्मा बैठी है। जलने वाला कौन हुआ? सुलगने वाली कौन हुई? आत्मा सुलग रही है, आत्मा जल रही है और कुटिया भी जल रही है। कुटिया के साथ में इसलिए अब उसको बचाने की भावना करना।

सुबह का चिन्तन

मैं इस जलती हुई कुटिया में अगर कोई महत्वपूर्ण चीज है तो वह क्या है? मेरी आत्मा! यह बच जाए, यह इस जलती हुई कुटिया से बाहर निकल जाए। **‘जं धम्मरहियओ दिअहा गमामि’** अगर मैंने धर्म से रहित होकर दिन निकाल दिए तो मैं सबसे बड़ा अपराध कर बैठूंगा। मेरी बहुमूल्य चीज भी इसी कुटिया के साथ जल जाएगी। सुबह-सुबह यह विचार करने का होता है। सुबह-सुबह भावना भाना, अनित्य विचार लाना सुबह-सुबह, धर्म की बात सोचना सुबह-सुबह, कितना जल चुके हैं यह सोचना? सुबह-सुबह। कितना हमारे लिए अब रक्षा करने के उपाय बचे हैं? यह सोचना सुबह-सुबह और आप क्या सोचते हो सुबह-सुबह? चाय! चाय! सुबह की चाय को क्या बोलते हो? Morning tea, morning tea. bed tea भूल ही गया मैं। बताओ tea भी bed पर ही चाहिए उसके बाद उठेंगे। ऐसी आदत जिनके अन्दर पड़ी हुई है, ऐसी bed tea की आदत जिनके अन्दर पड़ी हुई हैं, उनकी जिन्दगी भी bed tea की तरह बेकार हो रही है और उनके विचार भी बेकार हो रहे हैं। यह आपके लिए सोचना है कि हमें उस समय पर क्या विचार करना है और हम क्या कर रहे हैं?

शरीर रूपी कुटिया कितनी जल गई है?

यह चीजें विचार करने की हैं... कितने लोग अपना मन बना सकते हैं कि आज के बाद सुबह उठकर हम पहले इतना विचार जरूर लायेंगे कि मेरी कुटिया कितनी जल गई है? जितनी उम्र निकल गई समझना उतनी

कुटिया जल रही है। भीतर अगर कुछ बिगड़ गया हो तो वह समझ लेना यह सब जल रहा है और जो बचा है तो उसमें हम अपनी आत्मा की, अपने परिणामों की कुछ रक्षा कर ले, यही हमारे लिए बचाव है। अगर धर्म के बिना यह दिन भी निकल गया तो फिर एक दिन और कुटिया जल गई। हम क्या कर रहे हैं? धर्म से रहित जो दिन गुजार रहे हैं...अपने आप को जला ही रहे हैं। शरीर को भी जला रहे हैं और उसमें बहुमूल्य जो तत्त्व बैठा है...आत्म तत्त्व, उसका भी हम नाश कर रहे हैं क्योंकि उसका उसमें कोई उपयोग ही नहीं हो रहा है। अगर आपका घर जल रहा हो तो आप सबसे पहले कौन सी चीज निकाल कर घर से भागेंगे, यह बताओ? बोलो? कौन सी चीज? जो कुछ भी आपकी दृष्टि में मूल्यवान होगा, उसे आप लेकर भागने की कोशिश करेंगे। करेंगे न! मूल्यवान क्या है?

सबसे मूल्यवान चीज क्या?

अब आपके लिए अपने-अपने मूल्य अलग-अलग हो सकते हैं। आपकी पत्नी मूल्यवान हो सकती है, आपका बच्चा मूल्यवान हो सकता है, आपकी treasury में रखे हुए नोट मूल्यवान हो सकते हैं, आपकी treasury में रखे हुए gold मूल्यवान हो सकते हैं, कुछ भी मूल्यवान हो सकता है। अगर कुछ नहीं है तो आपके लिए अपनी जान पहले मूल्यवान होगी तो जान कहाँ है? जान किसका नाम है? बोलो! मेरी जान! कहाँ है मेरी जान? भाई! मेरी जान भी कहीं बाहर होगी क्या? मेरी जान कहाँ है? बोल ही नहीं रहे, हँस रहे हो सब लोग? जान कहाँ होती है? जान भीतर ही होती है न? फिर मेरी जान बाहर ढूँढने की क्या जरूरत है? हर आदमी को अपनी जान बचानी है तो मेरी जान कहाँ है? जो मेरा जीव है, वही मेरी जान है और उस जान के बारे में अगर आपको ज्ञान नहीं है तो फिर उस जान को बचाओगे कैसे? बस! यही कहा जा रहा है...धर्म के बिना वह जान कभी भी बच नहीं सकती है, आत्मा के लिए उसकी जान उसका धर्म है। इसलिए आत्मा को धर्म से रक्षित करो और इस शरीर को जलने से पहले उस आत्मा को उससे अच्छे ढंग से भीतर से सुरक्षित निकालने की कोशिश करोगे तो वह ज्ञान कहलाएगा...नहीं तो सारा का सारा जीवन मोह में और अज्ञान में चला जाएगा।

ओं अर्ह, ओं अर्ह, ओं अर्ह बोल,

ओं अर्ह ओं अर्ह ओं अर्ह बोल।

सभी कार्य की सिद्धि से तू पहले इसको बोल,

सभी कार्य की सिद्धि से तू पहले इसको बोल।

ओं अर्ह ओं अर्ह ओं अर्ह बोल

ओं अर्ह ओं अर्ह ओं अर्ह बोल

सभी कार्य की सिद्धि से तू पहले इसको बोल

सभी कार्य की सिद्धि से तू पहले इसको बोल

अरिहंतों की प्रतिमाओं का ध्यान धरो भाई

अरिहंतों की प्रतिमाओं का ध्यान धरो भाई,

गाथा: 40

जीवन अधर्म में नहीं अपितु धर्म में व्यतीत करना चाहिए

अनुष्टुप्वृत्तम्

जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तइ।

अहम्मं कुणमाणस्स, अहला जंति राइओ ॥40॥

अन्वयार्थ- (जा जा) जो-जो (रयणी) रात्री (वच्चइ) गुजरती जाती है अर्थात् बीतती जाती है 'फिर' (सा) वह (पडिणियत्तण) प्रतिनिवर्त यानी लौटती, नहीं है 'यहाँ विचारणीय बात यह है कि' (अहम्म) अधर्म को (कुणमाणस्स) करने वाले प्राणियों की 'सभी' (राइओ) रात्रियाँ (अहला) अफला अर्थात् निष्फल 'ही' (जंति) जाती हैं ॥40॥

वैराग्य शतक, इस कृति की कुछ गाथाएँ पढ़ते हुए आगे के भावों को देखते हैं कि इसमें क्या लिखा है? गाथा नंबर 40, 41, 42...

जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तइ।

अहम्मं कुणमाणस्स, अहला जंति राइओ ॥40॥

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायणं।

जो जाणइ ण मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥41॥

दंडकलियं करित्ता, वच्चंति हु राइओ य दिवसा य।

आउसं संविल्लंता, गयावि ण पुणो णियत्तंति ॥42॥



इन गाथाओं में कुछ एक जैसे ही भाव हैं और पिछले दिनों से जो भी सुन रहे हैं, सब में एक जैसे ही भाव हैं। फिर भी वैराग्य और अध्यात्म, बार-बार सुनने से ही धारणा का विषय बनता है। वैराग्य और अध्यात्म को जितना-जितना अधिक पढ़ा जाता है, सुना जाता है, उसकी भावना की जाती है, उतना ही वह आत्मा के लिए हितकारी बनता है। शब्द तो अलग हो जाते हैं, कभी-कभी छंद भी बदल जाते हैं लेकिन अगर हम सारांश

देखें, भावार्थ देखे तो लगभग- लगभग वही चल रहा है, जो पिछले दिनों से इन गाथाओं में हम पढ़ते आ रहे हैं। कहते हैं... **‘जा जा वच्चइ रयणी’** यह एक तरह का दोहा है, अनुष्टुप छंद कहलाता है। प्राकृत में मुख्य रूप से गाथाएँ मिलती हैं लेकिन कुछ-कुछ नए-नए छंदों की रचनाएँ भी होती आई हैं और इस ग्रन्थ में भी...जैसे कल भी एक उपजाति छंद आया था, इसी तरह से और भी इसमें अन्य-अन्य छंदों को ग्रहण किया गया है और उनकी रचना भी की गई है। यह अनुष्टुप जैसे संस्कृत में चलता है, उसी तरह से यह अनुष्टुप छंद में यह प्राकृत की कारिका है। कहते हैं... **‘जा जा वच्चइ रयणी, ण सा पडिणियत्तइ’** जो-जो यह रजनी है, रात्रि है, जो चली गई है, वह अब वापस नहीं आती है **‘ण सा पडिणियत्तइ’ ...‘अहम्मं कुणमाणस्स’** यानी अधर्म को करने वाले के लिए... **‘अहला जंति राइओ’** ये रातें अफल हो जाती हैं यानी फल के बिना निकल जाती है। यहाँ कल भी कहा गया था कि जो रात्रि निकल गई, वह पुनः वापस नहीं आती और उस रात्रि की विशेषता बताते हुए यहाँ कहते हैं कि जो अधर्म करने वालों की रात्रियाँ हैं, वे सब निष्फल हो जाती हैं। जैसा कि पहले कहा था...सुबह उठकर के हमें विचार करना चाहिए। क्या विचार करना चाहिए? बोलो! सब जल रहा है या अपनी देह-कुटी जल रही है। जो अपना घर है वह जल रहा है। उसको ध्यान में रखते हुए यही विचार आगे बढ़ाना चाहिए...प्रतिदिन सुबह उठने के बाद में यह देह की कुटिया जल रही है, रात्रियाँ बीत रही हैं। आज एक रात्रि और बीत गई और जो रात्रि बीत गई है अब यह वापस नहीं आएगी। यह विचार आना भी, अपने आप में बहुत बड़ा ज्ञान है और बहुत बड़ा, धर्म के साथ में अपने को जोड़ने का, एक आयाम है। अगर हम प्रतिदिन यह विचार करें, जो रात्रि बीत गई है वह वापस नहीं आएगी। जो निशा चली गई, वह वापस नहीं आएगी। उस रात्रि के मध्य जो हमने अधर्म किया, इस कारण से वह रात्रि भी हमारी व्यर्थ हुई। न केवल व्यर्थ हुई, किन्तु वह अनर्थ का भी कारण बनी क्योंकि प्राणी रात्रि में ही पाप कर्म किया करता है। अगर प्रत्येक व्यक्ति को सुबह उठने के बाद में यह थोड़ा सा आभास हो कि हमने पाप कर्म करके रात्रि को व्यतीत किया है, मेरी यह रात्रि निष्फल गई है तो उसके मन के अन्दर सुबह होने के बाद में उस पाप का प्रक्षालन करने के लिए कुछ धर्म भाव करने का विचार आ सकता है। दिक्कत वहाँ होती है, जब व्यक्ति पाप करने के बावजूद भी खुश होता है। अपना आत्मा का अहित करने के बाद भी उसे उसका विचार नहीं आता है और इस तरह के अधर्म के साथ में चलते हुए भी वह उसे अधर्म नहीं मानता है। यह उसकी सबसे बड़ी मूढ़ता बन जाती है, मूर्खता बन जाती है। इस वैराग्य शतक में यही बताया जा रहा है कि अगर हमने किसी भी तरह का कोई भी पाप किया है अपराध किया है तो हमें यह पता पड़े। हम इसका आभास करें कि यह हमारे लिए दुष्कृत्य हुआ और अगर हमारा यह समय व्यर्थ गया है तो इस समय से हम अपने आप को कैसे अच्छे समय में ढाल सके? यह विचार आना ही ज्ञानी का काम होता है।

अर्थ, व्यर्थ और अनर्थ

तीन चीजें होती हैं...एक अर्थ होता है, एक व्यर्थ होता है और एक अनर्थ होता है। एक अर्थ होता है, एक व्यर्थ होता है और एक अनर्थ होता है। अर्थ का मतलब, अर्थ के कई मायने होते हैं। अर्थ यानी धन भी होता है, अर्थ यानी किसी भी शब्द का meaning भी होता है, अर्थ यानी प्रयोजन भी होता है। जब हम इन तीन शब्दों को देखते हैं...अर्थ, व्यर्थ, और अनर्थ तो हमें इससे भी बहुत कुछ ज्ञान मिल सकता है। **अर्थ का मतलब प्रयोजन सध जाना। व्यर्थ का मतलब प्रयोजन नहीं सधा, व्यर्थ चला गया और अनर्थ का मतलब प्रयोजन भी नहीं सधा, व्यर्थ भी गया और उसके साथ-साथ कुछ और अनर्थ भी हो गया, पाप**

भी हो गया। अब इन तीनों चीजों को अगर हम समझें तो इसी में हमारा सारा का सारा मानसिक विज्ञान समाहित हो सकता है। हम समझ सकते हैं जो हमारे दिन गुजर रहे हैं, रात्रियाँ गुजर रही हैं, इन दिन और रात्रियों में हम क्या कर रहे हैं? अर्थ, व्यर्थ और अनर्थ! इन तीनों में से हम कहाँ involve हैं? यह समझा जा सकता है। अर्थ का मतलब होता है कि हमारे लिए कोई चीज हो रही है, वह प्रयोजनभूत है। अगर कुछ meaningful है तो वह अर्थ है। व्यर्थ का मतलब है कि वह meaningless हो गया, उसका कोई मतलब नहीं है। अनर्थ का मतलब वह meaningless तो हो ही गया लेकिन उसके साथ-साथ वह और अधिक हमारे लिए अहित का भी कारण बन गया और अधिक हमारे लिए पाप बंध का भी कारण बन गया। अगर आप इन तीनों चीजों को समझ लेंगे तो आपको समझ में आ जाएगा कि हमें क्या करने योग्य है और क्या करने योग्य नहीं है?

अर्थ पुरुषार्थ

अगर दिन भर की क्रियाओं से, रात्रि के व्यतीत हो जाने से, कुछ अर्थ सधता हो तो फिर भी कहा जाएगा कि हाँ भाई! कुछ अर्थ है। इस अर्थ को भी एक तरह से पुरुषार्थ के रूप में भी माना गया है। आपने दिन भर धन कमाया, क्या किया? अर्थ पुरुषार्थ किया। उस धन का अगर प्रयोजन सध रहा है, तो वह अर्थ का भी अर्थ कुछ निकलेगा। अगर उसका कोई प्रयोजन नहीं सध रहा है तो उस अर्थ का भी कोई अर्थ नहीं है क्योंकि बहुत से लोग ऐसे भी देखने को आपको मिलेंगे, जो पैसा उनके पास में है लेकिन उस पैसे का कोई प्रयोजन उनके पास में नहीं है। मतलब उनके पास में धन है, मकान है, जायदाद है लेकिन उसका वह कुछ प्रयोग नहीं कर रहे हैं, कुछ उपयोग नहीं कर रहे हैं। ऐसे-ऐसे लोग भी मिलेंगे आपको कि जिन्होंने अपने धन का, अपने लिए भी कुछ उपभोग में, काम में आने के लिए, कुछ नहीं किया। दुनिया में ऐसे-ऐसे भी लोग होते हैं। अगर वह कभी 50 साल पुराने किसी टूटे-फूटे मकान में रह रहे हैं तो उसी में रह रहे हैं। धन बहुत है, जायदाद बहुत है लेकिन उसका कुछ उपयोग नहीं है। न तो वह अपने काम में ले रहे हैं, न उसका किसी भी तरह से परोपकार में उपयोग कर रहे हैं। कुछ नहीं कर रहे हैं। पड़ा है जैसा पड़ा है और उसमें हम भी जैसे पड़े हैं, वैसे पड़े हैं और वह पड़े की तरह ही, पड़ा की तरह ही, पड़े रहते हैं। पड़ा नहीं जानते? एक पड़ा होता है एक पड़ा होता है। पड़ा लिखा होता है वह अलग होता है- पड़ा। एक पड़ा होता है, पड़ा बोलते हो। उसी का ही तो बोल रहा हूँ! भैंस का ही तो पर्यायवाची। एक पाड़ा होता है-एक पाड़ी होती है। वह पाड़ा हो, पाड़ी हो, पड़ा हो, पड़ी हो, कोई भी हो तो एक जैसे वह पड़ा है तो पड़ा है। उसी तरीके से कुछ लोगों का जीवन चलता है। धन आदि का कोई भी अर्थ उन्हें समझ नहीं आता। यहाँ तक कि अपने जीवन का भी कोई अर्थ समझ में नहीं आता, बस पड़े रहते हैं और उनका समय बीतता चला जाता है। ऐसे बहुत से लोग हैं। आप यूँ कहो कि घर में कोई काम है, कुछ काम नहीं है। ऐसे बहुत से लोग मिलेंगे जिन्हें घर में कोई काम नहीं है। बस! सुबह-सुबह उठकर के यूँ ही अपना बस, time निकालते रहते हैं। जैसे घर में कुछ आपने वृद्ध लोग देखे होंगे। मंदिर तक भी आने का भाव नहीं करेंगे, उपदेश सुनने के लिए समय नहीं है और कुछ काम भी नहीं है। क्यों नहीं है, उपदेश सुनने का समय? क्योंकि उनका मन ही नहीं है, भाव नहीं है। ऐसी जिंदगी भी बहुत से लोग निकालते हैं, जो पड़े-पड़े गुजार देते हैं। बस एक bed पर, एक कोने में या किसी room में पड़े रहेंगे। सुबह-सुबह उठेंगे अपनी नित्य क्रियाएँ करेंगे, फिर चाय-पानी करेंगे, फिर खाएँगे, पिएँगे और फिर पड़े रहेंगे। कोई काम नहीं है, दुकान पर भी कहीं दोपहर में अगर चले गए तो चले गए, नहीं

गए तो उसकी भी कोई जरूरत नहीं है। पड़े हैं तो पड़े हैं, शाम तक पड़े हैं और शाम से रात तक पड़े हैं। किन्हीं लोगों के घरों में होंगे तो बुरा नहीं मानना, यह वस्तु स्थिति है। इस तरह से लोग जो अपना समय गुजारते रहते हैं, न उन्हें भगवान का अभिषेक देखना, न उन्हें स्वाध्याय करना, न उन्हें धर्म की दो बातें सुनना, उल्टा उनके कमरे में TV और लगी होगी। बच्चों ने TV लगवा दी होगी, वह और देखते रहो, पड़े-पड़े वहीं पर remote control से सब control करते रहो और ऐसे करते हुए वह अपनी रात्रि भी गुजारते हैं, दिन भी गुजारते हैं। धन भी अगर हमें मिला है और उसका हमने उपयोग नहीं किया, जीवन हमें मिला है हमने उसका उपयोग नहीं किया तो वह क्या हो रहा है? अर्थ तो उसका कुछ नहीं निकल रहा।

व्यर्थ और अनर्थ की पहचान कैसे करें?

जब अर्थ नहीं निकलता है तो फिर दो चीजें आती हैं...या तो व्यर्थ हो रहा है या अनर्थ हो रहा है। अब यहाँ पर हमें समझना है कि हम व्यर्थ कर रहे हैं कि अनर्थ कर रहे हैं। अब यह अनर्थ भी समझ में आएगा, जब हमें कुछ अर्थ के मायने मालूम होंगे कि अर्थ क्या होता है? अगर हमें धन का कैसे उपयोग करना है यह पता हो। दिन और रात्रि का कैसे उपयोग करना है यह पता हो। जीवन का कैसे उपयोग करना है यह पता हो तो हम समझ पाएँगे कि हमारे जीवन में अनर्थ जा रहा है कि व्यर्थ जा रहा है। व्यर्थ तो एक ऐसा भी हो जाता है...मान लो किसी के लिए अचानक से ऐसी कोई बीमारी हो गई कि उसका दिमाग शून्य हो गया। ऐसा बहुत होता है न! अचानक से कोई भी घबराहट हुई, कुछ दिल का दौरा पड़ा, कोई भी तरीके से brain की कोई नस दब गई, ऐसे बहुत से केस देखे गए, डॉक्टरों के पास गए और वहाँ से भी जब लौट करके आए तो व्यक्ति होश में नहीं है। डॉक्टरों ने कह दिया कि अब यह होश में आ सकता है, इसकी नसें brain धीरे-धीरे काम कर सकती हैं और ऐसा करते-करते भी दो साल, चार साल निकल जाते हैं लेकिन उसको dead घोषित नहीं करते हैं, चलता रहता है। बहुत से ऐसे घरों में ऐसे लोग होंगे जो सिर्फ जो है अपनी उम्र जो है, उसको केवल निकाल रहे हैं। उल्टा उनके बच्चों की, उनके परिवार के लोगों की उनकी सेवा करनी पड़ती है, वह उनका कर्तव्य है। लेकिन उनके जीवन में अब देखा जाए तो जीवन का कोई भी अर्थ नहीं रहा। मानो अगर किसी के लिए स्मृति चली गई लेकिन आयु है...देख रहा है बोल रहा है चल फिर रहा है। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि bed पर ही पड़ा रह जाता है, चलने फिरने योग्य नहीं रह जाता है और स्मृति चली जाती है। बहुत कुछ कहो...देखो! देखो! देखो! तो आँखें खोल लेता है। बहुत कुछ कहो, पहचान कराओ तो कुछ अपने सामने बैठे हुए, अपने ही परिवार के लोगों की पहचान कर लेता है और इस स्थिति में भी दो-दो वर्ष, चार-चार वर्ष तक गुजर जाते हैं, ज्यादा भी गुजर जाते हैं।

अब सोचो यह जीवन क्या है? अर्थपूर्ण है कि व्यर्थ है कि अनर्थ है? यह गया व्यर्थ में। इसको कह सकते हैं useless. अब इसका कोई जीवन का use नहीं हो रहा है। बस! वह जीवन उम्र है तो निकालना पड़ रहा है और निकल रही है और कभी भी किसी के साथ यह घटना घट जाती है। आज के समय में यह घटनाएँ बहुत हो रही हैं तो ऐसी स्थिति में अब वह जीवन कैसा निकल रहा है? केवल बस निकल रहा है, जा रहा है। उसे खुद भी नहीं पता होता कई बार कि दिन हो रहा है, याद रात हो रही है, हम रात में जाग रहे हैं कि दिन में जाग रहे हैं। अगर वह ऐसे किसी ऐसे room में बैठा है, जहाँ light आती ही नहीं है और उसके

दिमाग में भी इतनी शून्यता आ जाती है कि उसे पता ही नहीं पड़ता है कि यह रात है कि दिन है। लेकिन जीवन है, सांसें चल रही हैं, थोड़ी-थोड़ी सी आंखें खोली जाती हैं, कभी-कभी तो मुँह में कुछ वह भोजन-पानी liquid रूप में कुछ डाल दिया जाता है। body की जो process है, वह चलती रहती है और इस तरह से एक जीवन चलता चला जाता है। उम्र जब पूरी हो जाती है तो वह व्यक्ति अपनी उस शरीर को छोड़ जाता है। इस जीवन को हम क्या कहें? यह कहलाया व्यर्थ का जीवन। अर्थ तो कुछ सधा नहीं, न स्वयं उपकार के लिए सधा, न कुछ पर-उपकार के लिए सधा और यह व्यर्थ हो गया। अब व्यर्थ तो हो जाना ठीक है लेकिन कभी-कभी अनर्थ हो जाना। अनर्थ का मतलब misuse हो जाना, यह अनर्थ कहलाता है। useful हो गया, यह अर्थ हो गया। useless हो गया, यह व्यर्थ हो गया और misuse हो गया यह अनर्थ हो गया।

meaning of misuse and useless

जीवन को हमें किस तरह से ढालना है? यह हमें खुद सोचना पड़ेगा। अगर वह जीवन हमारा चलते-चलते अपने आप ढल रहा है तो उसका misuse हो रहा है। अभी हमें पता होना चाहिए कि misuse का meaning क्या है और useless का meaning क्या है? अगर हमने अपने जीवन में व्यर्थता भी गुजार दी तो व्यर्थता को भी हम बुरा मानते हैं। व्यर्थता भी हमारे लिए अभिशाप होती है, व्यर्थता भी हमारे लिए भार स्वरूप हो जाती है। लेकिन उससे भी बड़ा भार क्या हो जाता है? जब किसी के जीवन में अनर्थ घटित होते हैं? अनर्थ में व्यर्थता से ज्यादा पाप का बंध होगा। एक अनर्थदंड कहा जाता है, जहाँ आपके लिए अनर्थ होगा। वहाँ आपको दंड मिलेगा, इसका मतलब यह है। अनर्थदंड नाम का एक व्रत होता है, मतलब इससे विरति करना है, अनर्थदंड से दूर रहना है। इसका मतलब क्या है? यही है कि जो आप ऐसे काम करें, जिन कामों का कोई प्रयोजन नहीं है और वह काम उल्टे आपके लिए पाप का बंध करा रहे हैं तो वह अनर्थदंड कहलाता है। अब आप सोचो कितने time में हमारे जीवन में अनर्थदंड होता है? कितना time हमारा बिल्कुल meaningful, useful निकलता है? और कितना time हमारा useless होता है? यह अगर आप अपने जीवन में 24 घंटे को categorized करेंगे तो आपके लिए कहलाएगा कि हाँ! आप विवेक के साथ, बुद्धि के साथ, ज्ञान के साथ जी रहे हैं। हमारे जीवन में अर्थ होना चाहिए, व्यर्थ अगर थोड़ा सा चला जाता है तो कोई बात नहीं लेकिन अनर्थ तो कभी भी नहीं होना चाहिए।

समय से सोना और जागना अच्छे स्वास्थ्य की निशानी है

एक व्यक्ति वह रात्रि में सो गया, सो गया तो इसमें दोनों ही बातें हैं। सोने में अर्थ भी है और व्यर्थ भी है लेकिन कम से कम अनर्थ नहीं है। सो गया तो अर्थ क्या है? अर्थ यह है...कम से कम समय पर सोएगा, समय पर उठेगा तो सोना भी उसके लिए जरूरी है क्योंकि उससे उसके लिए स्वास्थ्य मिलेगा। उसका अगला दिन बिना सुस्ती के निकलेगा और वह अपने उस स्वास्थ्य के साथ आगे की प्रक्रिया में जुड़ेगा। इसलिए सोने में अर्थ भी है और अगर ज्यादा सो लिया, कुछ ज्यादा ही सोने की आदत पड़ गई तो फिर वह व्यर्थ भी है। सोने में अर्थ भी देखा जा सकता है! अगर वह अर्थ है तो वह इसी रूप में है कि भाई अच्छी नींद आना भी स्वास्थ्य के लिए उत्तम होता है। अच्छे स्वास्थ्य की दो ही निशानी हैं- समय पर भूख लगना और

समय पर नींद आ जाना। अगर आपको अपने स्वास्थ्य के बारे में थोड़ी awareness हो तो बस! यह देखते रहना...time पर भूख लगना और time पर नींद आ जाना। भूख लगने के time पर भी यह नहीं होना चाहिए, भाई! अभी भूख नहीं लग रही है। अब एक घंटा बाद, दो घंटे बाद देखेंगे तो समझ लेना, आपके पेट में disturbance चल रही है। नींद आने पर भी, नींद का जब समय आए तो उस समय पर भी, आप अपने आप को observe कर सकते हैं। अगर आपके लिए सोने का time हो गया है, आप लेट गए और सोने के बाद में आधा घंटे, एक घंटे अगर आप यूँ ही करवट बदल रहे हैं और नींद नहीं आ रही है, तो सोचना कुछ न कुछ हम disturb हो रहे हैं। दिन भर में हमने कुछ न कुछ या तो अपने mind में disturb किया है, अपने आपको या फिर हमारे भोजन-पान में कुछ disturb हुए हैं, जिसके कारण से समय पर नींद नहीं आ रही है। यह सब research हो चुकी है और यह सब article आपको कहीं न कहीं पढ़ने की मिल जाएँगे।

अच्छी नींद आने का लक्षण

नींद आने का अच्छा जो समय होता है, वह समय आपके लिए जो आपकी दिनचर्या में बना हुआ है, उस समय पर जब आप लेट गए, लेटने के बाद में 10 से 20 मिनट के अन्दर नींद आ जानी चाहिए, यह अच्छी नींद के लक्षण होते हैं। लेटने के बाद 10 से 20 मिनट के बीच में नींद आ जानी चाहिए और अगर उससे ज्यादा time निकल रहा है, कुछ भी चल रहा है दिमाग में, सो तो गए थे 10 बजे और नींद नहीं आ रही है, 11 बज गए। mobile चल रहा है तो नींद का time नहीं कहलाएगा, mobile छोड़ने के बाद में जब आप बिल्कुल sleeping position में होते हैं, उस समय की बात कर रहे हैं। आप समझो हम क्या कहना चाह रहे हैं? किसी भी व्यक्ति के लिए, चाहे वह बच्चा हो, बड़ा हो, उसे अपनी नींद को observe करना चाहिए। उसे यह देखना चाहिए कि अगर लेटने के बाद में 10 से 20 मिनट के अन्दर हमें नींद आ रही है तो समझना चाहिए हमारा दिमाग सही चल रहा है, हमारा शरीर सही चल रहा है, हम स्वस्थ हैं। अगर वह आधा घंटे बाद, एक घंटे बाद नींद आती है तो आपको अपने आप को संभालना चाहिए। कहीं न कहीं हम गलती कर रहे हैं। या तो वह गलती हमारे भोजन-पान में हो रही है या वह गलती हमारे मानसिक या भावनात्मक विचारों में हो रही है। अगर आपके विचार उस समय पर किसी दूसरी चीज में उलझे होंगे तो आपको नींद नहीं आएगी। या आपके शरीर में कुछ आपने ऐसा दिन में भोजन कर लिया होगा, जो रात में आपके लिए नींद नहीं दे रहा है। आपको आलस्य दे रहा है या परेशानी पैदा कर रहा है तो आपको नींद नहीं आएगी। यह दो ही कारण होते हैं- कोई तीसरा कारण नहीं होता। यह एक बहुत अच्छा तरीका है। जब हम अपने bed पर गए, bed पर पहुँचने के बाद में 10 से 20 मिनट के बीच में नींद आ जाना, मतलब हम स्वस्थ हैं। समय पर सोना और समय पर भोजन करना, यह जिसकी जीवनचर्या में समाहित हो जाएगा, दिनचर्या में समाहित हो जाएगा, वह कम से कम अनर्थ से बच जाएगा। इस अनर्थ की बचने की पहचान बता रहा हूँ आपको। अब आप देख लो यह formula बता रहा हूँ आपको। lifestyle को ठीक ढंग से manage करने का यह formula है। time पर sleeping और time पर eating, ये दोनों चीजें time पर होनी चाहिए। अगर यह time पर है तो आपके जीवन में सही चल रहा है। अर्थ भी होगा आपके जीवन में, व्यर्थ भी कुछ होगा चल जाएगा, अनर्थ नहीं होगा, यह बात मान कर चलना।

दिनचर्या अस्त व्यस्त मतलब - जीवन में कुछ अनर्थ हो रहा है

आप अनर्थ करने वाले लोगों को देख लेना। जब आपको लगे समय पर हम नहीं उठ रहे हैं या समय पर हम नहीं सो रहे हैं या समय पर हमारे लिए भूख नहीं लग रही है। समझ लेना हम कुछ अनर्थ करके आए हैं या अनर्थ के विचारों में हम पड़े हैं। यह आपको बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक formula बताया जा रहा है। अपने बच्चों पर apply करना, खुद पर apply करना। जो बच्चे समय पर नहीं सोते, सोने के बावजूद भी घंटों-घंटों करवटें बदलते रहते हैं...समझना उन्होंने कुछ अनर्थ कर लिया। क्या अनर्थ कर लिया? अगर आपने सोने से पहले mobile देखा है एक घंटे तक, आप उस दो घंटे तक mobile में लगे रहे हो तो उसके बाद में आपको तुरंत नींद नहीं आ सकती है। सोने के बाद तुरन्त नींद नहीं आने का एक बहुत बड़ा कारण है, mobile देखकर के सोना। आपके दिमाग में, आपके brain के अन्दर उस lights का इतना प्रभाव पहुँच जाता है कि वह आपके लिए जो नींद आने के hormones होते हैं वह उस समय पर नहीं बन पाते हैं। जो नींद आने के brain में hormones बनते हैं वह तभी बनते हैं जब आप अंधेरे कमरे में सोने से एक घंटे पहले इस तरह की screens में आपका दिमाग, आपकी आँखें न लगी हो। तब आपको सही से नींद आएगी। अगर आपने उस समय पर यह कृत्य किए हैं, आपने उस समय पर mobile चलाए हैं तो यह mobile भी फिर अनर्थ का कारण कहलाएगा। अब आप समझ लो कि आपको अनर्थ से बचना है तो क्या करना है? mobile सोने से एक घंटे पहले नहीं, उससे पहले चलाओ।

अच्छी नींद कैसे आ सकती है?

सोने से एक घंटे पहले तो आपको कुछ ऐसे कामों में लगना, ऐसे विचारों में आना कि हमें सोने के बाद तुरन्त नींद आ जाए। यानी bed पर लेटने के बाद हमें तुरन्त नींद आ जाए और उसके लिए अच्छा तरीका क्या है? सोने से पहले अगर आप थोड़ा सा वैराग्य की भावना भाओगे। वैराग्य की भावना भाओगे तो नींद आती है। वैराग्य की भावना में नींद आती है आपको! राग की भावना में नींद नहीं आएगी, mobile में राग होता है और शास्त्रों में वैराग्य होता है। सोने से पहले कोई भी शास्त्र खोल कर के बैठ जाओ। सोने से पहले कोई भी तरह का मंत्र जाप करने के लिए बैठ जाओ। सोने से पहले कोई भी तरह का आत्मचिन्तन करने के लिए बैठ जाओ और बस आधा पौन घंटा, जब आप बैठ जाओगे तो आपके अन्दर अपने आप इस तरीके के brain में hormones बनने लग जाएँगे कि वह आपको धीरे-धीरे एक sleeping position में ले जाएँगे। लेकिन जहाँ आपने mobile का use किया, वह brain को इतना active बना देते हैं कि अगर आपको नींद भी आ रही होगी तो नींद चली जाएगी। एक बार अगर वह नींद उड़ी तो फिर ध्यान रखना, दो घंटे तक नहीं आएगी, वह चली गई। जैसे लक्ष्मी एक बार घर से निकली तो जल्दी नहीं आती। ऐसे ही नींद का जो proper time है, उस time पर आपने उस नींद को disturb किया तो फिर वह दो घंटे बाद, ढाई घंटे बाद आएगी, आप उसको बुलाते रह जाओगे, परेशान हो जाओगे! नींद कहाँ गई? नींद क्यों नहीं आ रही, आज क्यों नींद नहीं आ रही, आज क्यों बार-बार इधर-उधर करना पड़ रहा है? आप परेशान होते रहोगे और नींद आपसे दूर होती रहेगी।

इसलिए अर्थ, व्यर्थ और अनर्थ को जानने के लिए यह formula apply करना है कि अगर हमारे लिए

time पर भूख लग रही है और time पर नींद आ रही है, it means we are healthy. यह formula आपको apply करते रहना है। बच्चों पर भी apply करना है। अपने पर भी apply करना है। बच्चों को भी देखते रहना है, अगर बच्चा mobile देख रहा है और mobile के कारण से वह समय पर भोजन नहीं कर रहा है। वह कह रहा है...नहीं! मुझे भूख नहीं लग रही। जबकि भूख है उसको लेकिन mobile की भूख इतनी है कि वह कह रहा है कि नहीं! मुझे अभी नहीं खाना। क्यों नहीं खाना? क्योंकि अभी मुझे mobile देखना है। यानी वह mobile के कारण से भूख के time को disturb कर रहा है और यही उसके लिए अनर्थ का कारण बन जाएगा। अनर्थ का मतलब क्या हो गया? जिसके कारण से आपकी भूख disturb हो, आपकी नींद disturb हो और यह दोनों चीजें अगर आप देखते रहोगे तो आपको लगता रहेगा कि हम समय का सही उपयोग कर रहे हैं।

मैं कह रहा हूँ... अर्थ हो या न हो, व्यर्थ भी हो जाए तो कोई बात नहीं लेकिन अनर्थ नहीं होना चाहिए। बचना किससे है? अनर्थ से बचना है। प्रतिदिन सुबह उठने के बाद में अपने अन्दर यह विचार आना चाहिए कि यह रात्रि हमने व्यर्थ की, कुछ अर्थ निकला या अनर्थ किया और हर रात में सोने से पहले भी यह विचार कर लेना चाहिए, आज दिन भर में हमने कितना अर्थ किया? दिन का कितना अर्थ निकला? दिन में कितना समय व्यर्थ गया और दिन में कितना हमने अनर्थ का समय निकाला?

अर्थ, व्यर्थ और अनर्थ, सोने से पहले और जगने के बाद! यह अगर थोड़ा सा सोचा जाएगा तो यह वैराग्य भावनाएँ कुछ काम में आएँगी। आपके अन्दर राग से वैराग्य की ओर, अधर्म से धर्म की ओर प्रवृत्ति होगी। अन्यथा आचार्य कह रहे हैं...यह सब दिन रात ऐसे ही गुजरते चले जाएँगे। दिन-रात गुजरते चले जाएँगे और आप यूँ ही जीते और मरते चले जाएँगे और कुछ नहीं करेंगे। जीवन में इस तरह के अनर्थों से बचने के लिए, इन गाथाओं का प्रयोजन तभी सिद्ध होता है जब हम इनके भावों को इस तरह से देखते हैं।

गाथा: 41

जो सोचता है मैं धर्म कल कर लूँगा, उसका ऐसा
सोचना ही नादानी है

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायणं।
जो जाणइ ण मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥41॥

अन्वयार्थ- (जस्स) जिसकी (मच्चुणा) मृत्यु से (सक्खं) मित्रता (अत्थि) है (वा) अथवा (जस्स) जिसका (मच्चुणा) मृत्यु से (पलायणं) पलायन 'हो सकता' (अत्थि) है (वा) अथवा (जो) जो (जाणइ) जानता है 'कि मैं' (ण) नहीं (मरिस्सामि) मरूँगा (सो) वह (हु) ही 'कदाचित् ऐसी' (कंखे) आकांक्षा (सिया) कर सकता है 'कि' (सुए) कल 'धर्म कर लूँगा' ॥41॥

आज का काम कल पर नहीं ढालना चाहिए

आगे कहा जा रहा है...जिसका मृत्यु के साथ साक्ष्य होता है, सखीपना होता है, जिसके लिए मृत्यु से पलायन होता है और जो यह जानता है कि मैं नहीं मरूँगा, वही व्यक्ति यह सोचता है मैं कुछ कल कर लूँगा। हर आदमी के अन्दर एक और आदत होती है, वह क्या होती है? अच्छे कामों को कल पर ढालने की, कल कर लूँगा, कल कर लूँगा। अनर्थ के काम आज ही होंगे लेकिन अर्थ के काम कल कर लूँगा। यह मानसिकता होती है और यह मानसिकता बचपन से लेकर के बड़े तक, बढ़ती चली जाती है। अगर आपने बचपन में ही इस मानसिकता को नहीं समझा और इस पर control नहीं किया तो बढ़ती चली जाती है। इसलिए जो बच्चे बचपन में ही ढालते रहते हैं...कल कर लूँगा। रोजाना घर में कहा जाता है... चलो बेटा! प्रवचन सुनने चलो। आज नहीं, आज थोड़ा homework ज्यादा है, आज madam ने homework ज्यादा दे दिया है आज school का काम ज्यादा है। आज test है, आज परीक्षा है, यह है, वह है, कल देखूँगा, कल देखूँगा। कल फिर आया, कल फिर उसने एक बहाना मारा और इस तरह से जो अर्थपूर्ण कार्य था, उसको कल पर ढालता गया। अनर्थ के कोई काम होंगे तो तुरन्त होते हैं। ऐसे लोगों के लिए आचार्य कह रहे हैं... जो यह जान रहे हैं कि मैं नहीं मरूँगा, वही इस तरीके से करते हैं कि मैं कल कर लूँगा। ऐसा लगता है कि जैसे मृत्यु उनकी सखी बन गई है या मृत्यु उनसे पलायन कर गई है? जो ऐसा सोच रहे हैं कि मैं अभी नहीं मरूँगा, कल कर लूँगा, अब कल कर लूँगा मतलब कल तक मैं जिऊँगा, कल नहीं मरूँगा। उनके दिमाग में यह बात पक्की हो गई।

महाभारत की घटना

महाभारत में बताया जाता है कि ऐसी एक घटना कभी पांडवों के साथ में हुई थी। ब युधिष्ठिर के सामने कोई

ऐसी बात आई और वह बात में जैसे उनके सामने कोई भी किसी व्यक्ति ने कहा कि भाई हम चाहते हैं कि आप हमारे लिए कुछ सहायता कर दो, कुछ यह थोड़ा सा दान दे दो। तब युधिष्ठिर ने उस समय पर कहा... आज नहीं कल दे दूंगा। क्या बोला? आज नहीं कल दे दूंगा। वहाँ पर सब बैठे थे, पाँचों भाई साथ तो रहते ही थे तो वहाँ पर भीम भी बैठे थे, अर्जुन भी बैठे थे। भीम तो थोड़ा सा होते ही हैं, भीम मतलब भीम ही है, तो वह तुरन्त ही उठ कर खड़े हो गए और एक ढिंडोरा पीटने लग गए। क्या ढिंडोरा पीटने लग गए? सुनो, सुनो, सुनो, हमारे भाई ने मृत्यु को जीत लिया है, हमारे भाई ने मृत्यु को जीत लिया है, हमारे भाई ने मृत्यु को जीत लिया है, वह चिल्लाने लग गए। अब लोग समझ नहीं पाए, यह क्या कर रहे हैं? यह ढिंडोरा क्यों पीट रहे हैं? जब आवाजें आने लग गईं, वह हर जगह घूम-घूम करके ढिंडोरा पीटने लग गए। फिर युधिष्ठिर ने बुलाया...यह क्या हो गया तुम्हें? क्यों चिल्ला रहे हो? क्या हो गया, किसलिए ऐसा कह रहे हो? तब वह कहते हैं...आपसे कोई व्यक्ति दान माँगने आया था और आपने क्या कह दिया? कल देंगे। यानी कल तक तो आपने मृत्यु को जीत लिया न, कल तक हमारी मृत्यु नहीं आएगी। इसीलिए तो मैं ढिंडोरा पीट रहा हूँ कि आपने मृत्यु को जीत लिया! आपने मृत्यु को जीत लिया! आपने मृत्यु को जीत लिया! तब युधिष्ठिर को समझ में आया कि केवल ज्ञान हमारे पास में ही नहीं है, भीम के पास में भी कुछ ज्ञान है। ऐसा नहीं है कि वह केवल बलशाली है तो उसके पास ज्ञान नहीं है। ज्यादातर देखा जाता है हट्टे-कट्टे, मोटे-ताजे लोगों के पास में बुद्धि थोड़ी सी...? ज्यादातर देखा जाता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि लोग भी यही समझ रहे हो कि भीम कहीं पागल हो गया हो तो युधिष्ठिर ने पूछा। तब युधिष्ठिर को समझ में आया कि हमारा भाई भीम भी ज्ञानवान है और उसने मुझे चेतावनी दी है कि आपने काम ठीक नहीं किया, आपको यह बात कल पर नहीं टालनी चाहिए थी। धर्म का काम तो जिस समय कर लिया जाए, वही धर्म का कार्य कहलाता है। जो उसके लिए समय आ जाए और जिस समय कर लिया जाए, बस! वही धर्म का कार्य अर्थपूर्ण होता है, बाकी तो सब कल पर डाल दोगे। कल का कोई पता-ठिकाना नहीं, कल तक हमारे विचार क्या होंगे? इसकी कोई हमारे लिए guarantee नहीं।

शुभस्य शीघ्रम्

इसलिए जो भी अर्थपूर्ण कार्य है, उन्हें समय पर तुरन्त आज ही कर लेना चाहिए। अर्थ को बहुत देर तक अगर हम टालते रहेंगे तो भी वह कभी-कभी अनर्थ सा बन जाता है। मानो कोई अच्छा काम है, आप उसको टाल रहे हो। आपके लिए लग रहा है, मुनि महाराज को आहार दान देना है। मन तो आता है। अब इस बार छुट्टी नहीं मिल रही है। एक sunday मिला, सात दिन बाद और उसमें भी कुछ न कुछ काम फँस गया, कहीं न कहीं meeting फँस गई, वह sunday भी चला गया। अब कुछ लोग job वाले रहते हैं, उन्हें saturday-sunday के अलावा बीच में कुछ दिखाई नहीं देता। जब भी उन्हें कोई काम फँसेंगे तो saturday-sunday को ही फँसेंगे क्योंकि उनकी भी अपनी life है। दूसरों को भी पता होता है कि यह कब फुर्सत में मिलेंगे? saturday-sunday को ही मिलेंगे। ऐसे कई saturday-sunday निकल जाते हैं और वह सोचते रह जाते हैं। अर्थ के कार्य करने में अगर हम ज्यादा विचार करते हैं तो वह कार्य होते नहीं है। इसलिए कामों को करने के लिए, कार्यों की पूर्णता के लिए यह एक नियम बताया गया है...अच्छे कार्यों को शीघ्र करो... **‘शुभस्य शीघ्रम्’** इसी को कहते हैं। उल्टा होना चाहिए, हमें शुभ को तो शीघ्र करना चाहिए, अशुभ को टालना चाहिए। लेकिन हम क्या करने लग जाते हैं? अशुभ को शीघ्र करते हैं और शुभ

को, बस यही पर गड़बड़ी हो जाती है। अर्थ का अनर्थ यही से शुरू हो जाता है। बच्चों को यह सिखा दिया जाए, बेटा! अच्छा काम जल्दी करो और बुरा काम ढालो। तब देखो! बच्चा कैसे बाप की बात मान पाता है कि नहीं मान पाता है? अगर उसकी मानसिकता इस बात को मानने को तैयार नहीं हो तो समझ लेना उसके जीवन में भी अनर्थ चल रहा है। भले ही उस अनर्थ का result आपको आज नहीं दिखाई दे रहा है लेकिन आज नहीं तो कल से ही दिखाई देगा और वह अनर्थ कई मायनों में हो सकता है। मानो उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया, यह भी एक अनर्थ है। उसकी बुद्धि धीरे-धीरे कमजोर हो गई, यह भी एक अनर्थ है। उसका पढ़ाई से मन धीरे-धीरे छूट गया, यह भी एक अनर्थ है। उसकी आँखें खराब हो गई, यह भी एक अनर्थ है। उसकी संगति गलत हो गई, यह भी एक अनर्थ है और उसे mobile का चस्का इतना पड़ गया कि वह घर में किसी की नहीं सुन रहा है, यह भी एक सबसे बड़ा अनर्थ है। क्या यह अनर्थ की परिभाषाएँ नहीं हैं? सोचो! इन सब अनर्थों के साथ में भी हम उस बेटे को अपने मोह के कारण से बेटा ही कहेंगे लेकिन उसको अनर्थ से बचाने में असफल रहते हैं। वह बेटा भी अपने आप को किसी भी तरह से अर्थपूर्ण जीवन जी रहा है, यह कभी महसूस नहीं कर सकता है। इसलिए समझना जरूरी है...अर्थ के साथ में व्यर्थ हो जाना ठीक है लेकिन अर्थ का कभी भी अनर्थ होना ठीक नहीं है और यह भावना हमेशा बनी रहनी चाहिए। कभी एक भजन में भी कहीं लिखा हुआ है, बताओ किसी को याद है? बहुत भजन की अंताक्षरी हो चुकी है, बहुत सारे game हो चुके हैं भजन के ऊपर, मनोरंजन, आत्म मनोरंजन हो चुके हैं। किसी को याद है? **‘मेरी उम्र में नहीं किसी भी क्षण अनर्थ हो, मेरा मन समर्थ हो।’** याद आया?

समय पर चीजें याद आना, एक बहुत बड़ा अर्थपूर्ण कार्य है

समय पर याद आना भी बहुत बड़ा अर्थ की बात होती है। चीजें समय पर याद आना, घर में कितने काम हो लेकिन समय पर सब चीजें याद आ जाना और समय पर सब काम होते चले जाना। यह सब भी उसी व्यक्ति के साथ सम्भव है जो अनर्थ में नहीं जुड़ा है। नहीं तो आप देख लो, ऐसे व्यक्तियों के लिए कोई काम बता देते हो और वह काम पर ध्यान नहीं देते हैं और वह समय निकल जाता है। अर्थ, अनर्थ हो जाता है और उस समय का उपयोग नहीं करने के कारण से उनके लिए फिर वह काम हो ही नहीं पाता है। अतः समय पर चीजें याद आना, यह भी एक बहुत बड़ा अर्थपूर्ण कार्य है। यह तभी सम्भव है जब आपके जीवन में अनर्थ न हो। पढ़िए वे लाइनें...

देश के उत्थान में, धर्म के प्रचार में,
सत्य शांति मित्रता, अहिंसा के प्रसार में।
परोपकार में रहे सदा हमारी भावना,
मेरी उम्र में नहीं किसी भी क्षण अनर्थ हो,
मेरा मन समर्थ हो, मेरा मन समर्थ हो,
मेरी प्रभु से प्रार्थना, आत्म शक्ति अर्थ हो,
मेरा मन समर्थ हो, मेरा मन समर्थ हो॥

मन का समर्थ होना बहुत जरूरी है

अब इस अर्थ, व्यर्थ और अनर्थ के साथ में एक चीज और जोड़ लो...समर्थ। अगर अपना मन समर्थ है, शक्तिशाली है तो अर्थ कभी भी अनर्थ में convert नहीं होगा। अर्थ को अर्थ बनाए रखने के लिए, मन का समर्थ होना बहुत जरूरी है। जब बच्चों की मन की समर्थता कम हो जाती है या बड़ों के भी मन का सामर्थ्य जब कम हो जाता है, तभी वह अनर्थ के काम में जुड़ जाते हैं। बच्चे ही नहीं, बड़े भी अनर्थ कर जाते हैं। बड़े-बड़े तो बड़े-बड़े अनर्थ कर जाते हैं क्योंकि आपके लिए अनर्थ करने की सामर्थ्य अलग है, बच्चों के पास में अनर्थ करने की सामर्थ्य अलग है। उनके लिए अनर्थ करने की सामर्थ्य उनकी अज्ञानता से होगी लेकिन आपके लिए अनर्थ करने की सामर्थ्य आपके ज्ञान से आएगी। बड़ा व्यक्ति अनर्थ करेगा, ज्ञान के साथ करेगा। उसे पता है कि यह अनर्थ है, यह गलत है लेकिन फिर भी करता है। बताओ कि आपको जब गुस्सा आता है तो क्या आपको पता नहीं होता है कि गुस्सा आ रहा है? आपको पता होता है कि गुस्सा आ रहा है, मैं गुस्सा कर रहा हूँ। हमने हाथ में कुछ हथियार उठा लिया है, हम किसी को मारने जा रहे हैं। आपको पता होता है और आपको यह भी पता होता है कि इसको मार देने के बाद में हमारे साथ कुछ भी हो सकता है। हमको जेल भी हो सकती है कोई हमको भी मार सकता है। यह सब आपको पता होता है लेकिन उसके बावजूद भी आप वह अनर्थ कर देते हैं।

हिंसा, चोरी और कुशील का अनर्थ बुद्धिपूर्वक होता है!

हिंसा का अनर्थ ज्ञान पूर्वक होता है, बुद्धि पूर्वक होता है। यह बात अलग है कि उस समय पर विवेक काम नहीं करता। लेकिन व्यक्ति समझ करके करता है और कई बार तो पूरी योजनाबद्ध तरीके से, समझदारी के साथ करता है। जब लोग planning बनाते हैं...आज उसे मारना है तो आप क्या कहोगे? यह बच्चे की तरह अज्ञानता के साथ होने वाले अनर्थ है या यह बड़ों की समझदारी के साथ होने वाले अनर्थ है? जब आप planning कर रहे हो, वह व्यक्ति हमें कहाँ मिलेगा? किस position में मिलेगा? किस location पर मिलेगा? यह सब आप उसके लिए जब ढूँढते हो और वहाँ पर उसके लिए, उसे मारने के लिए, अपने लोगों को खड़ा करते हो या किसी भी तरह से स्वयं आप हथियार लेकर के वहाँ पहुँचते हो तो यह सब क्या है? यह सब सोची समझी planning कहलाती है लेकिन यह सब काम अनर्थ के हो जाते हैं। एक चोर भी चोरी करता है...बच्चे की तरह नासमझी में नहीं करता है, समझदारी के साथ करता है। इतनी समझदारी के साथ करता है कि चोर को पता होता है चोरी कहाँ करनी है? कब करनी है? उसे सब पता होता है। अगर किसी व्यक्ति के पैसे छीनना है, बैंक से वह निकाल कर के आता है, पैसे लेकर के लाता है तो उसे पता होता है यह कहाँ से कहाँ जाएगा? कहाँ रखेगा? कैसे इसको घुमाना है? कैसे उसको थोड़ी देर के लिए भ्रम में डालना है? और कैसे इसकी गाड़ी के सामने आकर के खड़ा होना है? कैसे इसको उस गाड़ी से हटा करके दूसरी जगह पर पहुँचाना है? उतनी ही देर में वह सब पैसा साफ कर देना है। चोर भी चोरी पूरी समझदारी के साथ करता है। अनर्थ भी पूरी समझदारी के साथ किए जाते हैं। फिर तीसरे तरह का पाप, हिंसा का, चोरी का और तीसरे तरह का पाप होता है- कुशील पाप। यह भी पूरी समझदारी के साथ किया जाता है। पर-स्त्री के साथ, दूसरी बेटी-बहनों के साथ, यह जब पाप किया जाता है तो यह भी उस समय पर उसे पूरे संज्ञान में होता है...मैं क्या कर रहा हूँ? क्या करने जा रहा हूँ? यह गलत है। जबकि करते हुए भी उसे पता

होता है यह गलत है लेकिन फिर भी वह करता है। यह तीनों तरह के पाप बड़े लोगों के माध्यम से होते हैं, समझदारी के साथ होते हैं और इन तीनों तरह के पाप में एक ही कारण पीछे छिपा हुआ होता है, मन समर्थ नहीं रहा।

समर्थ मन कभी भी अनर्थ के कार्य नहीं कर सकता है!

समर्थ मन कभी भी अनर्थ के कार्य नहीं कर सकता है। मन में अगर सामर्थ्य है तो उसका मतलब है वह व्यक्ति कभी भी अपने mind का misuse नहीं करेगा, अपनी किसी भी तरह की money का, अपने बल का, अपने किसी भी तरीके की वैभव का, उसका misuse नहीं करेगा। जहाँ व्यक्ति अपनी पद का, गरिमा का, अपने शक्ति का, अपनी साहस का, misuse कुछ करने लग जाए, समझ लेना वह समर्थ नहीं रहा, अनर्थ में पड़ गया। ऐसे व्यक्ति आपके सामने होते हैं, आप सबको देखते रहते हो कि व्यक्ति अपने किस तरह से जीवन में अनर्थ कर लेता है और यही अनर्थ बड़े-बड़े पाप बंध के कारण बन जाते हैं। इसलिए मन को समर्थ बनाए रखने के लिए इन पंक्तियों को दोहराते रहो। मन समर्थ कब बनता है? जब हम स्व और पर के उपकार के कार्य करते हैं तो मन समर्थ है और जिसमें न स्व का कोई भला है और न पर का कोई भला है तो समझ लेना मन असमर्थ हो रहा है। समय निकल रहा है और मन असमर्थ होता चला जा रहा है। क्या भला होता है? जब कोई बच्चा दो-दो तीन-तीन घंटे mobiles पर टंगा रहता है, क्या भला होता है उसका? किसी बच्चे से पूछो तीन घंटे के बाद में तूने इसमें क्या सारभूत चीजें इससे प्राप्त की, क्या तुझे मिला, इसका क्या सार मिला? अगर उसे सोचने में नहीं आता है कि हमने कुछ इसमें सार भूत निकाला? इसका मतलब है उसने तीन घंटे बर्बाद कर दिए। एक समझदार इंसान भी फिल्में देखता है और एक नासमझ भी फिल्में देखता है। हर समझदार इंसान फिल्में देखने के बाद में सोचता है, इसमें क्या मिला? देखते हो न फिल्में? तुमने भी देखी होंगी। मैं कह सकता हूँ...तुमसे बहुत ज्यादा मैंने देखी होंगी। तुम्हें शायद फुर्सत भी न मिलती होगी लेकिन कम उम्र में भी बहुत सारी, एक साथ कई बार लेकिन हर फिल्म को देखने के बाद में एक भाव आता था दिमाग के अन्दर और वह भाव कैसा भी हो? हिंसा की देखी तो हिंसा का भाव आएगा। प्रेम की देखी तो प्रेम का भाव आएगा। लेकिन वह जो भाव आता था, उससे सीखने को मिलता था कि इसमें हमें क्या मिला? अनर्थ के भाव दिमाग में आ रहे हैं कि अर्थ के भाव दिमाग में आ रहे हैं। फिल्म वही अच्छी मानी जाएगी जिससे हमारे दिमाग में कुछ अर्थ पूर्ण भाव आए। बिना वजह हम कोई भी fighting वाली फिल्म देखकर आ गए, हाथ पैर फड़फड़ाने लग गए और कोई ने थोड़ी सी भी बात की सामने और हमने दो-चार जड़ दिए। फिल्म देखकर आए थे और भूत सवार था। ऐसा भी हो जाता है। वह फिल्म कितनी भी अच्छी हो लेकिन आपके लिए तो वह अनर्थ का कारण बन गई। फिल्मों में भी हर चीज जो हम देखते हैं, उसका सार निकालना चाहिए। उससे हमारे लिए कुछ अर्थ हो रहा है या अनर्थ हो रहा है।

व्यर्थ होना फिर भी ठीक है लेकिन अनर्थ नहीं होना चाहिए!

व्यर्थ फिर भी ठीक है लेकिन अनर्थ ठीक नहीं है। बच्चे से आपने कोई चीज, उसका खिलौना छुड़ा लिया, रोने लगा, रो ले, रो रो के सो गया। सो ही तो गया। ठीक है! व्यर्थ हो गया, time व्यर्थ हो गया, कोई बात नहीं, अनर्थ से तो बच गया। यह आपको समझना पड़ेगा, व्यर्थ से ज्यादा नुकसानदेह अनर्थ है। time व्यर्थ



गाथा: 42

बीतती हुई आयु को पुनः लाने में कोई भी समर्थ नहीं है

आर्यावृत्तम्

दंडकलियं कस्तिता, वच्चंति हु राइओ य दिवसा य।

आउसं संविल्लंता, गयावि ण पुणो णियत्तंति ॥42॥

अन्वयार्थ- (दंडकलियं) दंडकलियविधि को यानी सुई से कपड़े की सिलाई के एक-एक टाँके को उखाड़नेरूप विधि को **(कस्तिता)** करते हुए 'जिस तरह उखड़े हुए टाँके पुनः सिलाई को नहीं ला सकते हैं उसी तरह' **(राइओ)** रात **(य)** और **(दिवसा)** दिन **(आउसं)** आयु को **(संविल्लंता)** संविलन यानी विलीन करते हुए **(वच्चंति)** गुजरते जाते हैं **(य)** और **(गया)** गये हुए 'वे रात और दिन' **(वि)** भी **(हु)** नियम से 'उखड़ी हुई सिलाई की तरह बीती हुयी' **(आउसं)** आयु को **(पुणो)** पुनः वापस **(ण)** नहीं **(णियत्तंति)** लौटा सकते हैं ॥42॥

इसी बात को अगर हम देखें आगे की गाथा 42 में आचार्य कहते हैं...क्या कह रहे हैं? एक यहाँ पर चीज दी है- **‘दंडकलियं कस्तिता’** यह सब वही रात दिन की बात चल रही है। हमारे रात दिन **‘वच्चंति’** अर्थात् निकल जाते हैं। **‘आउसं संविल्लंता’** और हमारी आयु भी विलय हो रही है, गल रही है। **‘गयावि ण पुणो णियत्तंति’** जो निकल गया वह पुनः लौटकर के नहीं आएगा। लेकिन इसमें एक नई चीज फिर दे दी है। क्या दी है? कितने-कितने उदाहरण ढूँढने पड़ते हैं आचार्यों को अपने को समझाने के लिए? **‘दंडकलियं कस्तिता’** यह नया उदाहरण है। आज तक कभी जो है मैंने यह उदाहरण अपने शास्त्रों में नहीं पढ़ा। यह ग्रन्थ भी नया है और इस ग्रन्थ में यह उदाहरण बिल्कुल नया है। बाकी उदाहरण मिलते हैं...इन्द्रधनुष के समान, जल के बुदबुदे के समान, यह उदाहरण अभी तक के साहित्य में कहीं भी पढ़ने को नहीं मिला, जो इस उदाहरण का अर्थ बताया जा रहा है...जैसे किसी ने अपने जो वस्त्र है, उसमें जैसे बटन लगे रहते हैं, shirt वगैरह में या वह जिसकी सिलाई की गई है, उस सिलाई को जैसे उधेड़ दिया जाए। सिलाई जो हुई थी, उस सिलाई को आप उधेड़ गए। अब वह उधेड़ने के बाद में अब वह सिलाई वहीं पर फिर नहीं होती। अब वह उधड़ती चली जाती, उधड़ती चली जाती, उधड़ती चली जाती है। ऐसे ही जो उधड़ गई, अब वह पुनः नहीं आएगी। जो समय निकल गया वह वापस नहीं आएगा, जो रात्रि गई वह वापस नहीं आएगी। यह विचार करते रहने से आपके दिमाग में धर्म करने का भाव आएगा, अर्थपूर्ण कार्य करने का भाव आएगा, हितकारी कार्य करने का भाव आएगा। रात्रि व्यतीत हो रही है, हमें इस व्यतीत हुई रात्रि से कुछ अगर फायदा मिला है तो क्या मिला? हमने क्या अर्थपूर्ण कार्य किया? आपकी आत्मा में संतोष तभी मिलेगा, अगर आपने रात्रि में सोने से पहले स्वाध्याय कर लिया होगा तो आपको याद आएगा...चलो! कम से कम हमने दो पन्ने पढ़

तो लिए थे। अगर आपने कहीं णमोकार की दो जाप कर ली तो चलो कम से कम हमने दो माला तो फेर ली थी। अगर आपने कोई अच्छा विचार मन में लाकर के किसी के उपकार की बात सोची, चलो रात्रि में हमारे लिए कोई अच्छा idea तो आया था।

स्वहित और परहित का ध्यान रखने से संतोष मिलता है!

जब भी आपको संतोष मिलेगा, परहित के माध्यम से मिलेगा या स्वहित के माध्यम से मिलेगा। इसलिए हित पर ध्यान दो। जिसमें हमारा हित हो या दूसरे का हित हो। वह कार्य ही हमारे लिए useful है, meaningful है, बाकी सब या तो useless है या सब उन कार्यों से misuse कर रहे हैं। यह पहचान है अपने मन को समर्थ बनाने की और मन को समर्थ बनाने के लिए सोचते रहना है... 'देश के उत्थान में, धर्म के प्रचार में' हम क्या कर रहे हैं? कुछ देश के उत्थान के लिए, हम कुछ सोच पा रहे हैं, कर पा रहे हैं क्या? धर्म के प्रचार के लिए हम क्या कर पा रहे हैं? धर्म फैले, धर्म दूसरे लोगों तक पहुँचे, धर्म की बातें, धर्म के शास्त्र, धर्म की किताबें, धर्म के उपदेश जो हम सुन रहे हैं, वे दूसरों तक भी पहुँचें। वह भी एक अच्छा काम होगा कि अगर रात्रि में सोने से पहले अगर आपने कोई अच्छा संदेश, कोई अच्छा प्रवचन अपने group में forward कर दिया तो वह भी आपके लिए अच्छा काम होगा। लेकिन आप वह forward नहीं करते हो। forward वह होगा, जिससे अगर महाराज ने कुछ बोल दिया किसी के बारे में, आपको लगा है कि अगर महाराज ने कुछ ऐसा बोल दिया है, जिससे कुछ controversy हो सकती है, तो वह forward हो जाएगा, बिना कहे forward हो जाएगा। अपने आप लोग हमें बताने आएँगे कि महाराज कि आपका यह प्रवचन viral हो गया है। भाई! इतना अच्छा बोलता रहता हूँ वह कभी viral नहीं होता है। आज थोड़ी सी दो बातें negative बोल दी तो वह viral हो गई। आदमी इस ढूँढ़ में रहता है, फिराक में रहता है कि क्या viral करना है? जैसी आपकी mentality होगी वही viral करोगे। viral क्या करना है? Positive चीजों को viral करना है कि negative चीजों को viral करना है, यह भी आपके दिमाग के attitude पर ही निर्भर करेगा। आप कैसा अभिप्राय रखते हैं, कैसा सोचते हैं? यह भी एक अच्छा काम है जो सोने से पहले किया जा सकता है। जो समय निकल गया वह फिर वापस नहीं आता इसलिए **‘देश के उत्थान में, धर्म के प्रचार में, सत्य, शांति, मित्रता, अहिंसा के प्रसार में’** कुछ करो, थोड़ा सत्य के साथ जियो, थोड़ा शान्ति से जियो। जो समय आपका सत्य के साथ निकलेगा, शान्ति के साथ निकलेगा, अहिंसा के साथ निकलेगा, आप उस अहिंसा के प्रसार किसी भी तरह से कर पाओगे, वह सब आपका एक सार्थक समय कहलाएगा। यह जो लाइनें बताई जा रही हैं, लाइनों में जो भावना है, इन भावना में जो जुड़ेगा, उसका समय सार्थक है। अर्थ से सहित होता है, उसको सार्थक कहते हैं... कुछ सार्थक कार्य करो। **‘परोपकार में रहे सदा हमारी भावना, मेरी उम्र में नहीं किसी भी क्षण अनर्थ हो’**, यह भावना हर बच्चे के अन्दर डाल देनी चाहिए। मेरी उम्र में कभी भी भगवान अनर्थ न होने पाए। दुनिया की कोई भी प्रार्थना पढ़ाओ या न पढ़ाओ लेकिन उन सब प्रार्थनाओं को पढ़ा देने के बावजूद भी यह चार लाइनें हर बच्चे को पढ़ा जरूर देना चाहिए। अनर्थ के समय पर शायद उसे याद आ जाए कि मेरी जिन्दगी का यह क्षण क्यों मेरे लिए अनर्थ के लिए काम आ रहा है? मैंने संकल्प किया था कि मेरी जिन्दगी में कभी कोई अनर्थ नहीं होना चाहिए। यह अगर संस्कार बच्चे के अन्दर बैठ गया तो कोई भी बच्चा, कभी भी व्यसनों में लिप्त नहीं हो सकता। कोई भी बच्चा कभी भी सन्मार्ग से उन्मार्ग की ओर नहीं जा सकता। हर बच्चा न्याय और नीति के



गाथा: 43

आयु की समाप्ति के बाद, इस जीव को कोई नहीं रोक सकता है

उपजातिवृत्तम्

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू णरं णेइ हु अंतकाले।
ण तस्स माया व पिया व भाया, कालंमि तंमिंसहरा भवंति ॥43 ॥

अन्वयार्थ- (इह) इसलोक में (जह) जिस तरह (सीहो) सिंह (मियं) मृग को (गहाय) ग्रहणकर अर्थात् पकड़कर (णेइ) ले जाता है (व) उसी तरह (अंत-काले) अन्त-समय में (मच्चू) मृत्यु (णरं) मनुष्य को (गहाय) ग्रहणकर यानी पकड़कर (णेइ) ले जाती है (हु) नियम से (तंमि कालंमि) उस, काल में (तस्स) उसके अर्थात् उस मनुष्य के (माया) माता (व) अथवा (पिया) पिता (व) अथवा (भाया) भ्राता/भाई 'कोई भी' (अंस-हरा) अंश-धरा अर्थात् क्षणमात्र के लिए, धारण करने वाले यानी रक्षा करने वाले (ण) नहीं (भवंति) होते हैं ॥43 ॥



सभी लोग वैराग्य शतक के माध्यम से कुछ संसार की और अपने मनोभावों की दशाओं का चिन्तन पिछले कई दिनों से कर रहे हैं। उसी क्रम में इस ग्रन्थ की गाथा 43, 44 और 45 भी पढ़ते हैं। यह उपजाति वृत्त है।

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू णरं णेइ हु अंतकाले।
ण तस्स माया व पिया व भाया, कालंमि तंमिंसहरा भवंति ॥43 ॥

जीअं जलबिंदु-समं, संपत्तीओ तरंग-लोलाओ।
सुमिणय-समं च पिम्मं, जं जाणसु तं करिज्जासु ॥44 ॥

संझ-राग-जल-बुब्बु-ओवमे, जीविए य जलबिंदु-चंचले।
जुव्वणे य णइ-वेग-संणिभे, पावजीव! किमियं ण बुज्झसि ॥45 ॥

गाथा 43 में देखा जाए तो वही अशरण भावना का भाव है। 'जहेह सीहो व मियं गहाय' जिस प्रकार से सिंह होता है, वह मृग को ग्रहण कर लेता है और उसको ग्रहण करके उसका अन्त कर देता है। उसी तरह

से यह मृत्यु मनुष्य को अन्त काल में ले जाएगी। उस मृत्यु के ले जाने पर ‘ण तस्स माया व पिया व भाया’ उसके लिए उस समय पर न कोई माँ होगी, न पिता होंगे, न उसके लिए कोई स्त्री होगी। जब समय आता है, मृत्यु आती है तो उस समय पर ‘तमिंसहरा भवन्ति’ उसके लिए कोई भी समय आने पर रक्षक नहीं होते हैं, क्षण मात्र भी उसकी रक्षा करने वाले नहीं मिलते हैं। यह विचार यहाँ पर देकर के अशरण भावना की ओर, ग्रन्थकार ने प्रेरित किया है। इस संसार में, अपने जीवन में यह समझना चाहिए कि मृत्यु ही हमें अन्तकाल की ओर ले जा रही है और इस मृत्यु के ग्रहण किए जाने पर हमें कोई इस मृत्यु से बचाने वाला नहीं है, यह क्षण-क्षण याद करते रहना चाहिए।

धर्म का आचरण मृत्यु के भय से ही सम्भव है

आप सोचते होंगे, मृत्यु को याद करके अपने मन के अन्दर भय क्यों पैदा किया जाए? मृत्यु को याद करके अपने अन्दर चिन्ता क्यों उत्पन्न की जाए? किन्तु यह भी आपको याद रखना है कि अगर धर्म की भावना उत्पन्न होती है, तो मृत्यु को याद करने से ही होती है। कहीं नीतिकारों ने लिखा है कि धर्म वही व्यक्ति कर सकता है, जिसे यह पता हो कि उस के केश यमराज ने पकड़ रखे हैं। मृत्यु ने उसके बालों को ग्रहण कर रखा है पकड़ रखा है। “मृत्युना गृहीत केशेषु, धर्माचरेत् जनः” जिसके लिए यह भान हो जाता है कि मृत्यु ने मेरा सिर पकड़ रखा है, मृत्यु मेरे ऊपर खड़ी है, वही व्यक्ति धर्म का आचरण कर पाता है।

धन और विद्या ग्रहण करना हो मृत्यु का विचार मत करो

अगर आपको धन का आचरण करना है, धन का संचय करना है तो कहते हैं कि मृत्यु की तरफ देखना भी नहीं। विद्या का संचय करना है तो भी कहते हैं- मृत्यु की तरफ देखना नहीं। अर्थ और विद्या का ग्रहण करना हो तो मृत्यु की तरफ बिल्कुल मत देखना और अगर धर्म का संचय करना हो, धर्म को ग्रहण करना हो तो मृत्यु की ओर ही देखना, यह निति बताई गयी है।

धर्म यौवन अवस्था में ही समझने की चीज है

धर्म का ग्रहण करना तभी सम्भव है जब व्यक्ति को यह लगने लग जाता है, अब जीवन में हमने जो इतना अच्छा मनुष्य जीवन प्राप्त किया, यह जीवन जब व्यतीत हो रहा है, जाने वाला है, यह नष्ट हो रहा है, तो अब यह जीवन जाते-जाते न जाने फिर अगले जन्म में कहाँ जाएगा? किस घर में, किस परिवार में, किस गति में, कहाँ जन्म होगा। न जाने किस तरह से कर्मों का फल मिलेगा? ऐसा विचार करते हुए उस जीवन में उसके अन्दर वह धर्म का भाव आने लग जाता है। इसलिए बहुत अच्छी तरह से सोच-विचार करके नीतिकारों ने कहा... धर्म के प्रति भाव उसी का उत्पन्न होता है, जिसको लगे कि मृत्यु सिर पर नाच रही है। यह बात जब तक यौवन अवस्था रहती है, निरोग अवस्था रहती है तब तक बिल्कुल समझ में आती ही नहीं है। इसी अवस्था में समझने की यह बात होती है। यौवन अवस्था में ही धर्म होता है, निरोग अवस्था में ही धर्म होता है और जब निरोग और यौवन अवस्था होती है, तो उस समय पर धर्म की बात इसलिए समझ में नहीं आती क्योंकि अभी तो हम... जवान हैं। अभी तो हम स्वस्थ हैं, अभी तो हम बढ़ रहे हैं, अभी तो हमारा

शरीर बन रहा है, अभी तो बहुत हमारे लिए अच्छा-अच्छा करना है। यह विचार हमारा इस यौवन अवस्था में और ज्यादा और ज्यादा बढ़ता चला जाता है। उसी समय पर आचार्य यह समझाने के लिए खड़े हो जाते हैं।

आचार्य कहते हैं.....

बेटा...जैसे सिंह कभी भी मृग को दबोच सकता है और मृग को दबोच करके ले जाता है, उसका अन्त करा देता है, उसी तरह से मृत्यु, इस मनुष्य के लिए अन्तकाल में जब आ जाती है तो इसको बचाने वाला कोई भी नहीं होता है। अब वह जो बच्चा है या यौवन की दहलीज पर जो खड़ा है वह सोचता है- किधर जाऊँ? मृग की तरह उछाले लूँ या यह देखूँ कि मैं सिंह के मुँह में जा रहा हूँ। किधर सोचे? अगर वह सोचता है कि मैं सिंह के मुँह में जा रहा हूँ तो थोड़ा धर्म तो हो जाएगा। लेकिन जो हमें जीवन मिला है और हमारे घर में माता-पिता हैं, उनकी तमाम उम्मीदें हैं, हमें भी अभी जीवन में बहुत कुछ सांसारिक सुख का लाभ लेना था, भोग करना था, वह भी हमें नहीं मिल पाएगा। तब उसके दिमाग में एक द्वंद्व पैदा हो जाता है। महाराज कहते हैं...मृत्यु के मुख में पड़े हैं हम और घर वाले कहते हैं- अच्छी job कर लो, अच्छा बंगला बना लो, अच्छे से शादी कर लो। हमारे लिए अच्छी तीर्थ यात्रा करा दो, अच्छे-अच्छे जितने भी काम हो सकते हैं, सब घर वाले कहते हैं। जब महाराज के प्रवचन सुनते हैं, उपदेश सुनते हैं तो वह धर्म की तरफ खींचते हैं। बेचारे बच्चे जो होते हैं...वह गफलत में पड़ जाते हैं। क्या करें? ऐसा होता है! अब कितने दिनों से सुन रहे हैं कि महाराज संसार में समय आने पर कोई भी हमारी रक्षा करने वाला नहीं है। सब कुछ इस संसार में हमारे लिए अशरण रूप में है और किसी भी तरह से संसार में जब हमें कोई रक्षा करने वाला दिखाई नहीं देता तो अब हम क्या करें? अगर यह समस्या आपके सामने आती है, तो हम आपसे कहते हैं...**हर समस्या का समाधान होता है।**

हर समस्या का समाधान होता है.....

धर्म करते हुए भी और धन की लालसा के साथ जीते हुए भी, आपके लिए जीवन जीना हो सकता है। ज्ञान हमें दोनों रूप में रखना चाहिए कि वास्तव में मृत्यु के क्षण पर कोई भी बचाने वाला नहीं होता, यह बात तो निश्चित है। मृत्यु सहसा कभी भी आ जाती है, यह बात भी निश्चित है। निरोगता, यौवन, यह क्षणभर में भी कभी भी विलीन हो सकते हैं, यह बात भी निश्चित है। लेकिन जितनी देर हम सिंह के मुख से बचे हुए हैं, उतनी देर थोड़ा सा जीने का आनन्द ले ले। जब तक मुँह में पूरे नहीं गए, तब तक बाहर की हवा खा ले, यह भी भाव आता है। इन दोनों भावों के बीच में आप कुछ करो या न करो लेकिन यह बात तो निश्चित है कि अगर मृत्यु के मुँह में हम पड़े हुए हैं तो मृत्यु हमें धीरे-धीरे निगल तो रही है। अगर, हमने बाहर की थोड़ी सी हवा भी खा ली तो कोई बात नहीं लेकिन उस हवा में हमारे लिए कहीं ऐसा न हो जाए कि वह हवा ही हमारे जीवन का आनन्द है, हवा ही हमारे लिए बहुत ही उपयोगी है। बाहर की हवा का मतलब समझ रहे हो न? साँस लेने वाली हवा नहीं, वह तो आपको कहीं भी मिलती रहेगी। जब तक आपको सिंह पूरा आपकी गर्दन तक नहीं पहुँच जाएगा, तब तक आपके लिए हवा में कहीं कोई कमी आने वाली नहीं है, आप हवा लेते रहो। वह सिंह भी एकदम से आपको पूरा नहीं दबोच रहा है...धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे,

सिंह भी धीरे-धीरे आपके लिए वह काल के रूप में सवार हो करके धीरे-धीरे आपको भीतर की ओर ले रहा है, निगल रहा है। जीने के लिए तो हवा मिल रही है लेकिन जो दूसरी हवा खाने की आदत पड़ी है, बाहर की हवा! बाहर की हवा...यह हवा के विषय में थोड़ा सोचना चाहिए। बाहर की हवा हमें क्या देती है?

बाहर की हवा का मतलब

बाहर की हवा से मतलब समझ रहे हो न? घर के कमरे से निकल कर के बाहर गैलरी में खड़े हो जाने के लिए नहीं कह रहा हूँ कि बाहर की हवा। बाहर की हवा मतलब एक मन में भाव आता है...जैसे ही बच्चा 11वीं, 12वीं में आया आजकल तो 9th, 10th में आया उसे लगने लग जाता है...थोड़ी-सी बाहर की हवा खा कर आँ। बाहर का मतलब क्या है? घर से बाहर निकलना नहीं, अपने शहर से बाहर निकलना। घर से बाहर तो हम रोजाना निकलते हैं लेकिन वह बाहर की हवा नहीं कहलाती है क्योंकि हमें फिर थोड़ी देर बाद घर में आना पड़ता है। बाहर की हवा का मतलब है...थोड़ा सा हम बाहर रहकर के आँ। बाहर की हवा के लिए वह कहाँ जाएगा? दिल्ली जाएगा, कोटा जाएगा, बेंगलूर जाएगा, कुछ बच्चों को ज्यादा हवा खाना होगी ठंडी-ठंडी तो US, UK भी चले जाएँगे। यह जब बाहर की हवा खाने की एक शौक चढ़ता है और वह वही उम्र होती है जिस उम्र में हमें धर्म का भी ज्ञान करना होता है और उसी उम्र में हमें बाहर की हवा खाने की भी इच्छा उत्पन्न होती है कि बाहर थोड़ा सा घूम करके आते हैं, बाहर थोड़ा सा रह करके आते हैं।

बाहर की सब चीजें अच्छी लगने लग जाती हैं

जब यह बाहर की हवा लगती है तो फिर बाहर की हवा के साथ में उसको बाहर की सब चीजें अच्छी लगने लग जाती हैं। क्योंकि हवा अकेली नहीं लगती, हवा के साथ में बहुत सारी चीजें और लगने लग जाती हैं। बाहर के दोस्त जो बाहर ही जाते हैं, बाहर ही रहते हैं। बाहर का खाना जो बाहर ही खाते हैं। बाहर ही हर तरह से enjoy करना, जो बाहर ही हर तरह से अपनी मौज मस्ती करते हैं, यह सब हवाओं में रहने का नाम है- बाहर की हवा। अब इस हवा को कैसे पाएँ? तब बच्चों के लिए एक ही बहाना होता है...यहाँ अच्छा college नहीं है, यहाँ अच्छी पढ़ाई नहीं होती, सरकारी school है, private school भी चल ही रहे हैं, महाराज! कोई अच्छा level नहीं है। अच्छी जगह पर कहीं हमारा admission हो जाए तो हम वहाँ पर बहुत अच्छे ढंग से पढ़ पाएँगे। यद्यपि इस बात में कुछ सत्यता हो सकती है मैं पूरी तरह से नहीं नकार रहा लेकिन कुछ बच्चों के लिए यह एक बहाना भी होता है। जब यह बहाना बन जाता है, तो फिर क्या होता है? बच्चे के मन में केवल बाहर की हवा खाने का ही, बाहर का ही लुत्फ उठाने का ही एक भाव रहता है। अब उससे क्या अच्छा लगेगा, जो बाहर का है वह सब अच्छा लगेगा। बाहर के दोस्त अच्छे लगेंगे, बाहर के सड़कों पर घूमना अच्छा लगेगा, बाहर ही गाड़ियों में घूमना अच्छा लगेगा, बाहर का खाना अच्छा लगेगा, बाहर का पीना अच्छा लगेगा। यहाँ तक कि कोई भी तरह का मनोरंजन करना, सब बाहर अच्छा लगेगा, घर के अन्दर अच्छा नहीं लगेगा। एक ऐसी हवा लगती है, अब यह हवा क्यों लग जाती है, किसको लग जाती है, कैसे लग जाती है? कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन हवा लग जाती है और यह हवा लगने के बाद में फिर हम भूल जाते हैं।

बाहर की हवा कितनी खाई जाए?

हम किसके गले में पड़े हुए हैं, भूल गए। सिंह के मुख में पड़े हुए हैं, यह भूल गए और जब वह हवा लग गई तो उस हवा में ही सारा का सारा समय निकल गया। फिर हमारे लिए यह सोचने का, समझने का कभी मौका ही नहीं मिल पाता कि इस हवा से हम कैसे बच पाएँ और इससे कैसे निकल पाएँ? अब जब कोई भी बच्चा इस तरीके से आगे बढ़ता है तो उसके लिए एक समझदारी का काम हो सकता है। हवा खाना भी जरूरी है लेकिन बाहर की हवा कितनी खाई जाए और बाहर की हवा खाने में एक ही भाव रहता है कि हमें बहुत ज्यादा पैसा कमाना है क्योंकि बाहर आप तभी रह पाओगे जब आप पैसा कमा पाओगे, माता-पिता के भरोसे बाहर की हवा कितने दिन खा पाओगे? साल, दो साल, चार साल, इससे ज्यादा नहीं खा पाओगे? उसके बाद में आपको खुद अपना धन कमाना है।

तृष्णा—धर्म से वंचित कर देती है

उस धन को कमाने की जो लालसा उत्पन्न होती है, उसका नाम कहलाता है—तृष्णा। क्या बोलते हैं? तृष्णा! जिसे कहते हैं...greediness। जो एक लालच पैदा होता है धन को और अधिक कमाने का, यह लालच फिर उसे धर्म से वंचित कर देता है। अब इसके बीच में एक balance क्या हो सकता है? धर्म भी होता रहे और धन भी कमाते रहे। उस बच्चे के मन में एक ज्ञान होना चाहिए कि धन हम केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए कमाएँ और आवश्यकताओं की जब पूर्ति का भाव आएगा तो उतना धन उसके पास में पर्याप्त रूप से आ जाएगा। अगर आवश्यकता के लिए धन चल रहा है, कमाया जा रहा है तब उसे धन की भी प्राप्ति हो जाएगी और वह साथ-साथ में धर्म भी करता चला जाएगा। लेकिन अगर उसने आवश्यकता से ज्यादा, जिसे एक परिग्रह कहा जाता है, उसकी तरफ अगर उसकी दृष्टि गई तो फिर उसे धर्म का भाव छूटने लग जाएगा।

धर्म और धन, दोनों कमाना है

यह बात सच है कि सभी सिंह के मुख के ग्रास बने हुए हैं लेकिन जब तक उसने अपनी गर्दन पर अपना प्रहार नहीं कर रखा है, तब तक के लिए क्या कर लेना है? दोनों काम करने पड़ेंगे, एक काम कहेंगे तो आप मानोगे नहीं। धर्म भी करना है और कुछ कमाना भी है। धर्म धन भी कमाना है तो दोनों काम कीजिए। लेकिन धन कमाते हुए क्या याद रखिए? हमें लालच में नहीं पड़ना। Greed...यह जो एक भाव है—greediness का, इसको समझना है। हमें greedy नहीं बनना, needy बनना है। एक greed होती है और एक need होती है, need यानी जो जरूरत है। जो आवश्यक है, वह हमारे पास होना चाहिए...हाँ! रहने के लिए घर-मकान जरूरी है। एक गाड़ी भी जरूरी है और क्या जरूरी है बोलो? mobile तो आपकी जेब में पहले से ही होता ही है। थोड़ा bank balance भी जरूरी है।

कितनी अपनी need है?

अब वह जरूरी कितना है, बस! इतना अपने को समझ में आना चाहिए...कितनी अपनी need है? अगर हम उस need को समझ लेंगे तो हमारा धर्म करने का भाव बना रहेगा। यह जो बात यहाँ समझाई जा रही है, हमारी समझ में आती रहेगी कि भाई! लालच की जिन्दगी इतनी नहीं बनाना, लालच में इतना नहीं पड़ना कि हम लालच में पड़कर के सारी की सारी अपने मन की पवित्रता को भी छोड़ दे और यह सारा का सारा जो हमारा धर्म का भाव है यह भी सब हमारे अन्दर से छूट जाए। क्योंकि लालच एक ऐसी बुरी बला है, जिसके आने पर मन में पवित्रता नहीं रहती, शुचिता नहीं रहती। यह लालच धन को देख कर के आता ही है। इसलिए कोई भी बच्चा जो बड़ा हो रहा है या जो बच्चे बड़े हो गए हैं, वह इस बात पर ध्यान दे कि हम धन भी कमा रहे हैं, धर्म भी हम एकत्रित करना चाहते हैं और इन धर्म और धन के संचय के बीच में अगर कुछ हमारे लिए balance करने वाली चीज है तो वह क्या है? हमारा लालच नहीं बढ़ना चाहिए, need देखनी चाहिए। greed के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए तब आपका मन धर्म करने का बनेगा। यह अगर लालच बढ़ता जाता है, यह तृष्णा बढ़ती जाती है तब आचार्य कहते हैं...**इस तृष्णा का कोई अन्त कभी भी होता नहीं है।** लगता है- अन्त इसका हो जाएगा लेकिन होता नहीं है। यह सबने करके देख लिया है अब आपको भी करके देखना है तो आप भी अपनी जिन्दगी उसमें पूरी गुजार लो, तब आपको जीवन के अन्त में फिर अनुभव आएगा, तब तक जिन्दगी निकल चुकी होगी।

दूसरों के अनुभव से सीखे

कई बार आचार्य कहते हैं...हम दूसरों के अनुभव को सुने, ऋषियों, मुनियों की बातों को सुने। यह सम्यग्ज्ञान इसलिए है कि हम अपने जीवन के अन्त में जाकर के पछताए नहीं, उससे पहले ही हम ज्ञान पूर्वक, इस तरह का आचरण करें कि हमारे लिए जीवन के अन्त में पछताना न पड़े। नहीं तो जीवन की सच्चाइयाँ कुछ अलग ही हैं।

हमने भोग नहीं भोगे, भोगों ने हमें भोग लिया

वह सच्चाइयों में आप देखेंगे, जीवन के अन्त में हमने भोग नहीं भोगे, भोगों ने हमें भोग लिया। क्या सुना? कहीं आचार्य श्री की पूजा में भी आप लोग पढ़ते रहते हो कुछ....

**भोगों को इतना भोगा कि खुद को ही भोग बना डाला,
फिर साध्य और साधक का अन्तर मैंने आज मिटा डाला ॥**

समझ आ रहा है? यह बहुत बड़ी जीवन की सच्चाई है... 'भोगों को इतना भोगा कि खुद को ही भोग बना डाला' यह एक कवि ने कहा है...

**भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तपो न तप्तं वयमेव तप्ता ।
कालो न यातो वयमेव यातां, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा ॥**

यह इसी परिपेक्ष में कहा गया है, यह एक नीति वाक्य है। भोग नहीं भोगे गए, हम नहीं भोगे गए, हमने भोग

नहीं भोगे, भोगों ने हमें भोग लिया। यह कितना बड़ा ज्ञान है और यह ज्ञान जीवन के अन्त में आपको महसूस होगा। जो व्यक्ति भोग-भोगते हैं, किसी भी तरह के भोग...चाहे वह अपनी मन की इच्छाओं के भोग हो, स्त्रियों के भोग हो या फिर वह खाने पीने के भोग हो, वह भोग भोगते-भोगते ही उनको समय से पहले बुढ़ापा आ जाएगा। अगर आप खाने पीने पर भी अपना control नहीं रखते हैं तो वह भी आपके लिए रोग का कारण बन जाएगा। समय से पहले वह आपको बीमार कर डालेगा। तब आपको समझ में आएगा... **‘भोग न भुक्ता वयमेव भुक्ता’** हम ही भुक्त गए मतलब कि हमने दूसरों को नहीं भोगा, दूसरों ने ही हमें भोग लिया। हमने पदार्थों का रस नहीं लिया, पदार्थों ने ही हमारा रस समाप्त कर दिया।

भोग-भाव ज्यादा हो तो हमारी शक्ति नष्ट हो जाती है

यह जीवन की जो सच्चाई है, यह सच्चाई अगर हमें थोड़ी सी पहले समझ में आ जाए तो व्यक्ति अपने जीवन को संतुलित ढंग से आगे ले जाएगा। **‘भोगों को कितना भोगा कि खुद को ही भोग बना डाला’**...आप देखोगे ऐसे अनेक लोग हैं, जो समय से पहले रोगी हो गए, समय से पहले अस्वस्थ हो गए, समय से पहले बुढ़ापे में आ गए, समय से पहले अनेक तरह से अपने शरीर से असमर्थ हो गए और उसका एक ही कारण है- भोगों की अधिकता। यह भोग ऐसे ही हैं, आप सोचते हो कि हम भोग को भोग रहे हैं लेकिन आपके भीतर की शक्ति इतनी नष्ट होती है उन भोगों को भोगने में कि आप... धीरे-धीरे यह महसूस करने लग जाएंगे कि हमने भोग नहीं भोगे, भोगों ने हमको भोग लिया। कोई भी तरह का भोग हो, अगर आप सम्यग्ज्ञान से सोचोगे तो आपको समझ में आएगा कि इसमें अगर हमारा यह भोग भाव ज्यादा हो जाता है तो हमारे शरीर की, मन की, शक्ति बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। किसी भी तरह का भोग हो...चाहे वह पेट का भोग हो, चाहे मन का भोग हो, हर तरीके के भोग-भाव में इतनी शक्ति नष्ट होती है कि वही शक्ति उसे समय से पहले बूढ़ा बना देती है। मृत्यु के पास समय से पहले पहुँचा देती है। इसलिए कहा गया...आप भोगों को कितना भोगोगे?

दुनिया में भोगों की कमी नहीं है

भोग तो बहुत हैं! दुनिया में भोगों की नहीं कमी है और एक जन्म में कभी भी हम दुनिया के सारे भोग, भोग नहीं सकते। फिर अलग जन्म ले लेंगे और जन्म ले लेंगे, फिर एक नया जन्म ले लेंगे लेकिन इसके साथ दिक्कत यह है कि इसमें ऐसी कोई line नहीं है, ऐसा कोई इसकी scale नहीं है कि आप यहाँ तक पहुँच गए, अगले जन्म में अब वहीं से, फिर से, शुरू हो गए। नहीं समझ आया? यह ऐसा खेल नहीं है...साँप सीढ़ी का कि जैसे आप चढ़ते जा रहे हो तो चढ़ते ही जाओगे। भाई! एक दिन हम तृष्णा का अन्त कर लेंगे। एक दिन हम सारे भोगों का supreme level जो होगा, उसको हम प्राप्त कर लेंगे। आचार्य कहते हैं... ऐसा होता ही नहीं है।

इच्छा की पूर्ति-साँप सीढ़ी का खेल

एक जन्म में हम चलते हैं...0 से लेकर के 100 तक पहुँचने के लिए और हम पहुँच पाते हैं केवल 10 तक,

20 तक और जीवन पूरा हो जाता है। अब 20 से 80 तक पहुँचने के लिए जो भीतर इच्छा रह गई, यह एक जन्म में पूरी होती नहीं। अब मन में क्या रह जाता है? यह 20 से 80 तक की उड़ान हम कब करेंगे? वहाँ कैसे पहुँचेंगे? थोड़ा सा वह कौन-सा साँप सीढ़ी का खेल होता है न? उसके through बता रहा हूँ आपको। मान लो, हमने जीवन में जो भी इच्छा की पूर्ति की वह इतनी हो पाती है...10 to 20% कर पाओगे आप जीवन में किसी भी इच्छा की पूर्ति। उतने में जीवन आपका चुक जाएगा। अब यह philosophy है हमारे जीवन की कि अगर हमने 20% अपनी कोई भी इच्छा पूरी कर ली तो हमारे मन के अन्दर एक desire रह जाती है, 80% अभी बाकी है। क्या करेंगे? अगले जन्म में कर लेंगे। अगला जन्म मिला लेकिन इस जन्म का खेल ऐसा है कि वह अगले जन्म में 20 से शुरू नहीं होगी बात...फिर 0 से शुरू होगी और फिर उस 0 से शुरू करके हम दौड़ेंगे तो हम कितना भी दौड़ें तो भी 20 तक ही दौड़ पाएँगे, 25 तक दौड़ पाएँगे। 100 तक आज तक इस दुनिया में कोई भी पहुँचा ही नहीं।

संसार के भोगों से किसी की कभी पूर्णतया तृप्ति हुई ही नहीं

किसी को इस संसार के भोगों को भोगने से कभी पूर्णतया तृप्ति नहीं हुई। समझ लेना पड़ता है...भाई! तृप्ति होने की नहीं। इसलिए पहले से ही boycott कर दो तो आदमी उससे बच लेता है। नहीं तो आज तक कोई भी उस शिखर पर पहुँचा ही नहीं, जहाँ पर उसे बैठ कर के लग जाए, अब मुझे सब कुछ मिल गया। मैं दुनिया का बादशाह बन गया। मुझे 100% इस संसार के भोगों की प्राप्ति हो गई। मैं 100% सुखी हो गया। ऐसा दुनिया का कोई भी बंदा नहीं मिलेगा।

तृष्णा के कारण जीवन में अभाव बना ही रहता है

आप देख लेना, आज जितने भी बड़े-बड़े लोग हैं, चाहे वह अरबपतियों की list में आने वाले हो, चाहे वह बड़ी-बड़ी कंपनियों के director हो या chairman हो, कोई भी बड़े-बड़े व्यक्तियों को आप देख लेना, उनके भीतर एक तृष्णा बनी ही रहती है और वह तृष्णा उन्हें दूसरों को देख कर के उत्पन्न होती है। उसी के कारण से उनके जीवन में अभाव बना रहता है। वह अभाव छोटा मोटा नहीं होता, बहुत बड़ा अभाव होता है। दुनिया के जितने बड़े लोग हैं, उतना ही बड़ा tension के साथ में रहते हैं और उन्हें अपने tension से बचने के लिए बहुत तरीके की technique अपनानी पड़ती है। उनके पास में बहुत तरीके के motivation हैं। उनको motivate करने वाले लोग उनके पास होते हैं, उन्हें तरह-तरह से motivate करते हैं, counselling करते हैं। तरह-तरह की वह चीजें अपनाते हैं, तब कहीं जाकर के जीवन की गाड़ी थोड़ी-थोड़ी आगे बढ़ती है। यह भीतर की सच्चाई है और इसका एक मात्र कारण क्या है? तृष्णा का कभी भी अन्त नहीं होता। **‘तृष्णा न जीर्णा, वयमेव जीर्णा’ नीतिकार ने क्या कहा?** तृष्णा कभी बूढ़ी नहीं हुई, जीर्ण नहीं हुई, मैं ही बूढ़ा हो चला और फिर बात वहीं से फिर शुरू हो जाती है। अगले जन्म से फिर हमारी यात्रा वहाँ से शुरू नहीं होगी जहाँ से हम पिछले जन्म में छोड़ आए थे। अगले जन्म में फिर हमारी यात्रा zero से फिर शुरू होती है। फिर नया जीवन, फिर शिशु अवस्था, फिर वही पढ़ना लिखना, फिर वही मेहनत, फिर वही दौड़ और फिर उसी दौड़ में दौड़ते-दौड़ते फिर हम...। हो सकता है कुछ पिछले जन्म का ज्ञान काम आ जाए, कुछ पिछले जन्म के कोई संस्कार काम आ जाए तो हम 20 से 30 तक पहुँच जाएँ, 40 तक पहुँच जाएँ।

इससे ज्यादा तो फिर भी नहीं होगा और यह जो भीतर एक रह जाता है, इसकी पूर्ति नहीं हुई। एक अभाव जो व्यक्ति के अन्दर रह जाता है, यह अभाव का नाम ही तृष्णा कहलाती है। यह अभाव एक ऐसा शब्द है, जिसके लिए english में कोई शब्द नहीं है। तृष्णा, greediness कहे तो वह भी एक लालच जैसा भाव आ जाता है, वह लालच में भी तृष्णा का भाव नहीं आता, तृष्णा एक अलग चीज है। तृष्णा मतलब जिसे कह सकते हैं...जन्म-जन्म की वह प्यास जो कभी पूरी नहीं हुई। यह बात भी निश्चित है कि जन्म अनन्त हो चुके हैं और उससे उत्पन्न हुई तृष्णा भी। अब यह सोचो आप हर जन्म में हम कहाँ रह गए 30 तक पहुँचे 40 तक पहुँच गए 100 तक तो किसी भी जन्म में पहुँचे नहीं। यह बात perfect है। अब क्या हुआ? 60% जो तृष्णा रह गई एक जन्म की, फिर उसके बाद भी दूसरे जन्म की फिर तृष्णा रह गई 60%, किसी जन्म की 50%, किसी जन्म की 70% यह सब multiply करते चले जाओ। यह भीतर का गणित है, आपको लगाने की फुर्सत नहीं है। यह गणित लगाया करो, इस तरह से...यह तृष्णा का गणित कभी भी छूटेगा नहीं और यह बढ़ता ही रहता है, बढ़ता ही रहता है। अब हमारे भीतर यह जन्म-जन्म की तृष्णा का जो गणित पड़ा हुआ है, इसको हम कभी भी भरपाई करना चाहे तो इसकी भरपाई हो नहीं सकती।

तृष्णा — एक अन्तहीन प्यास

इसलिए जो बुद्धिमान लोग होते हैं, उन्हें समझ लेना पड़ता है... ‘तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा। भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता’ भोग कभी नहीं भोग पाते हम, हम ही भुगत जाते हैं। जिसे बोलते हैं कि आदमी दूसरों को चुकता करने चलता है, खुद ही चुक जाता है। जैसे कभी आप किसी से कोई उधार लेने जाओ, किसी से चुक्ता करने जाओ और रास्ते में कुछ ही आपके साथ accident हो जाए, चुक गए। आप किसी से अपना कुछ लेन-देन करने के लिए उसके पास में गए, उसे पता पड़ा कि भाई रोजाना आता है, नाक में दम कर रखी इसने, आए दिन दहली पर खड़ा हो जाता है। पैसा दो, जो लिया था वापस दो...चुकाओ, कर्ज वापस दो और जब आदमी तंग आ जाता है तो आप देखते होंगे दुनिया में अनेक case हो जाते हैं। क्या कर देता है आदमी? बोले यार इससे एक बार छुटकारा दिलाओ...जिन्दगी भर का छुटकारा मिलेगा। वह क्या करता है? उसको चुका देता है। वह आदमी पैसा चुकाने के लिए जा रहा था, उसने उसको ही चुका दिया। बोले...झंझट ही खत्म। अब भले ही वह पकड़ा जाए, जेल में पड़ा रहे लेकिन उसका एक सिर दर्द खत्म। इसको चुकाना है, इसको चुकाना है। यह बड़ा सिर दर्द है, अगर आपने किसी से उधार लिया है, आपको किसी से उधारी लेनी है तो आप उसके चुकाते, चुकाते, चुकाते, चुकाते भी बूढ़े पड़ जाते हैं और वह कुछ भी चुकता नहीं है। भोगों के साथ भी यही होता है कि हमें लगता है कि बस! इतना और, इतना और, इतना और लेकिन वह और-और में कभी उसका अन्त नहीं आता और वह कभी भी भोग के माध्यम से हमें तृप्ति नहीं होती किन्तु तृष्णा ही बढ़ती है। इसलिए कह रहा था...तृष्णा के लिए कोई भी अच्छा शब्द english की dictionary में नहीं मिलता है। बताओ कुछ है? cupidity वह एक भूख के रूप में आता है। मतलब कि जैसे कि हमारे अन्दर कोई इच्छा पड़ी हुई है, उस इच्छा की पूर्ति करना चाह रहे हैं, वह एक भूख के अर्थ में आता है। उस भूख को और हम बढ़ाते चले जाते हैं मतलब एक खालीपन है, उसको हम पूर्ण करना चाहते हैं, वह उस sense में आता है।

हमें तृष्णा के वशीभूत नहीं होना है

लेकिन तृष्णा, यह जो शब्द कहते हैं, जो हिंदी पढ़ते हैं, उन्हें समझ में आ जाता है। भले ही उन्होंने उस तृष्णा का कभी भी व्याख्यान नहीं सुना हो लेकिन उन्हें तृष्णा समझ में आती है। तृष्णा का अर्थ क्या? एक ऐसी भूख मन की, एक ऐसी अन्तहीन प्यास जिसको कहते हैं, जो कभी भी पूरी नहीं होती। 100 तक कभी भी आदमी अपने जीवन में पहुँच ही नहीं पाता और उसकी वह भूख अधूरी रह जाती है, वह चुक जाता है। वह भोग, भोग किया जाता है। लेकिन उसे कभी भी भोगों से सन्तुष्टि नहीं होती है। यह बात अगर ध्यान में रखी जाए तो आचार्य कहते हैं...आप धर्म के साथ में धन भी अगर कमा लो तो धन भी आपका धर्म के लिए ही हो जाएगा। धर्म के साथ में आप अपना जीवन बाहर भी निकाल लो तो बाहर भी जाकर के आप फिर से, धर्म के साथ में जुड़ जाओगे। एक ही चीज ध्यान रखना है, हमें तृष्णा के वशीभूत नहीं होना है। यह अगर विचार बना रहेगा, बच्चा बाहर की हवा खाने भी चला जाएगा तो अपने आप कहने लग जाएगा...अब हमें बाहर नहीं रहना है, हमें तो अपने घर में ही रहना है। ऐसे भी बच्चे होते हैं...जो बाहर job करने जाते हैं, दो वर्ष तक उन्होंने बाहर कोई भी job कर ली, उसके बाद में वापस आ जाते हैं। अपने घर का ही कामकाज देखते हैं, अपने घर के ही निकट अपना कोई business डाल लेते हैं। अपना काम से काम रखते हैं और अपने घर में आराम से रहते हैं ज्यादा हमें तृष्णा में पड़ना नहीं। आप ऐसे बच्चों को क्या कहोगे?

वह भी स्वतंत्र रहे और हम भी... मानसिकता है

देखो! पाँच साल पढ़ा, B.Tech की...M.Tech की... वापस लौट कर घर पर आ गया। अब बताओ महाराज क्या करें! इतना पढ़ा-लिखा बेटा घर में बैठा है। तुम्हें पढ़ा लिखा दिख रहा है, यह नहीं दिख रहा है उसके भीतर का भाव! उसने अपने जीवन में सब कुछ देख कर के भी, बाहर की हवा खा कर के भी, उसके अन्दर बाहर की कोई गंदी हवा नहीं गई और वह अपनी उस हवा से बच कर के वापस आ गया और यहाँ पर धन भी कमा रहा है, धर्म भी कर रहा है। आपके लिए भी सामने रहता है, तो सुख दे रहा है, समाज के भी काम आ रहा है और धर्म के भी काम आ रहा है। विडंबना तो यह है कि हमें मजा उसी में आता है...बेटा घर से बाहर रहे, वह भी स्वतंत्र रहे और हम भी...मानसिकता है। कई पिताओं की मानसिकता हो सकती है या कई बेटों की भी मानसिकता हो सकती है।

सिल पर भले ही चोट नहीं लगी, निशान तो पड़ रहा है.....

लेकिन उन मानसिकताओं के साथ में यह वाली मानसिकता देखे तो यह बहुत अच्छी विचारधारा मानी जाएगी, हमने अच्छी पढ़ाई कर ली, job भी करने का experience ले लिया और उसके बावजूद भी हम फिर अपने पुश्तैनी मकान में आ गए। अपने दादाओं के साथ, अपने पिताजी, माता जी के साथ में रह रहे हैं। Business भी अच्छा कर रहे हैं, job भी अच्छा कर रहे हैं और यहाँ पर हमें धर्म का माहौल भी मिल रहा है, तो धर्म की भावना भी अच्छी सीख रहे हैं। भले ही सीखते-सीखते तीन महीने गुजर गए हैं लेकिन महाराज! ऐसा लगता तो है कि सिल पर भले ही अभी कोई बहुत बड़ी चोट तो नहीं लगी है लेकिन थोड़ा निशान तो पड़ रहा है, ऐसा लगता तो है। नहीं समझ आ रहा? सिल समझते हो न! हाँ! सिल पर रस्सी आवत जात है, सिल पर पड़े निशान। अगर आप रोजाना रस्सी उस पर थोड़ा सा भी खींचोगे, उस पर

डालोगे, उस पर रस्सी घिसोगे, पत्थर भी रस्सी के निशान से धीरे-धीरे निशान वाला बन जाता है, जगह बना लेता है, कट जाता है। उतने स्थान तक इतने कठोर तो नहीं है। क्या सुन रहे हो, तीन महीने में थोड़े बहुत निशान पड़े कि नहीं। ऐसा तो नहीं है कि रस्सी टूटती-टूटती जा रही है, सिल पर कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। अगर थोड़ा बहुत भी संस्कार पड़ेगा तो उन्हीं लोगों पर पड़ेगा, जिनमें ऐसी भावना है। जो बाहर की हवा खा कर के भी आए हैं, बच कर के आए हैं और फिर आकर के अपने घर में, धर्म के साथ में रह रहे हैं, उन पर इस तरह के निशान बहुत जल्दी पड़ जाते हैं और उनके लिए यह धर्म बहुत जल्दी समझ में आने लग जाता है।

धर्म के साथ धन की भी भावना बनी रहे तो कोई बात नहीं

इसलिए आचार्य कहते हैं...धर्म को करते हुए भी आपके मन में अगर धन की भी भावना बनी रहे तो कोई बात नहीं लेकिन उस धन का लालच, उसकी तृष्णा का गणित पहले समझ लेना, तब उस चक्कर में पड़ना। नहीं तो क्या होगा? आप रोगी हो जाओगे। जैसे बाहर खाने वाला व्यक्ति नियम से रोगी हो जाएगा, ऐसे ही बाहर की हवा खाने वाला व्यक्ति नियम से भोगी हो जाएगा, योगी नहीं रह पाएगा फिर। जिनके लिए आदत पड़ जाती है, pizza, burger के बिना, उन्हें चैन नहीं पड़ता, आप देख लो उनकी क्या स्थिति बनती है? अब research हो रही है। doctor कह रहे हैं...बाहर का भोजन नहीं खाना चाहिए, पिज्जा, बर्गर। पहले बच्चे कहा करते थे, महाराज, रोजाना नहीं खाते हैं, कभी-कभी महीने में एक-आध बार खा लेते हैं।

fast food—बिमारियों का घर

उन बच्चों के लिए भी अब expert कह रहे हैं, research करने वाले लोग कह रहे हैं, science कहने लगी है...अगर आप एक दिन भी खाते हो तो भी आपके लिए नुकसान होता है क्योंकि उसका क्या गणित है? जब वह pizza-burger आप खाते हो तो उसमें salt बहुत होता है और उसको पचाने में बहुत ज्यादा energy body की लगती है। जब आप उस pizza-burger को खाते हो तो शरीर के अन्दर calorie एकदम से बहुत ज्यादा भी बनती है। आपके लिए वह fast food इसीलिए कहलाता है कि आपको बहुत जल्दी कुछ करना न पड़े और आपको लगने लग जाए पेट भर गया, energy मिल गई। अब उसका science बताया जा रहा है। एकदम से अगर आपके भीतर बहुत ज्यादा calorie बनेगी तो उसको पचाने के लिए भी जैसे मान लो glucose बनता है बहुत ज्यादा तो वह glucose को भी पचाने के लिए body के अन्दर जो insulin का स्राव होता है, वह उसको control करता है। Body में जब insulin ज्यादा बनेगा, जो insulin की glands हैं, उनको ज्यादा मेहनत करनी पड़ेगी। तब वह आपकी glucose को पचा पाएँगे और शरीर थकेगा।

अब यह science fast food के फायदे बता रही है। फायदे ही कहूँगा, शरीर थकेगा, किसके लिए? उस calorie को absorb करने के लिए शरीर थकेगा और जब शरीर थकेगा तो क्या होगा? आपको जरूरत से ज्यादा नींद आएगी, असमय में नींद आएगी और धीरे-धीरे जब आपके शरीर में यह थकान बढ़ेगी तो फिर क्या होता है? थकान बढ़ने पर फिर उसे बहुत जल्दी भूख की इच्छा होने लग जाती है। उसे फिर से

खाना पड़ता है और जब वह फिर से खाता है, तो फिर उसके साथ यही process चलता है। इसलिए pizza-burger खाने वालों को, बार-बार खाने की इच्छा होगी, भूख ज्यादा लगेगी।

fast food की भूख—imbalance system

वह भूख-भूख नहीं होती है, वह शरीर का एक imbalance system है जो आपको बार-बार भूख लगाएगा। जिसके कारण से आप फिर इन्हीं चीजों को खाएँगे। मोटापा बढ़ेगा और इस तरह की भूख के कारण से ही मोटापा बढ़ता है। मोटापा बढ़ा तो समझ कर चलना diabetes भी नियम से हो ही जाएगी। क्योंकि glucose जब ज्यादा बनने लग जाता है और insulin उसमें पर्याप्त मात्रा में उसे काम में नहीं आती है तो फिर वही जो असमर्थता है, उसी का नाम diabetes है। शरीर का जो असमर्थता हो जाती है, बस! वही एक diabetes का रूप ले लेती है और फिर इस तरह से जब यह भूख ज्यादा लग रही है diabetes हो गई है, मोटापा बढ़ गया है तो फिर आप अब अपने शरीर को control करने के लिए कभी सोचो कि हम एकासन कर ले, व्रत कर ले तो अब doctor कहेगा...नहीं! आपको बार-बार खाना है, थोड़ा-थोड़ा खाना है। अब doctor आपको व्रत भी नहीं करने देगा। ये किसके result हैं? यह fast food के better results कहलाते हैं।

जब दुनिया चुक गई, अब जाकर scientist बोल रहे हैं

जब दुनिया चुक गई, अब जाकर के science, अब कुछ कह रहे हैं, अब कोई scientist बोल रहे हैं। यह हमेशा यही होता है। पहले तो product बना दिए जाते हैं, दुनिया में उनकी खूब खपत की जाती है। जब बीमारियाँ चरम पर पहुँच जाती हैं और कंपनियाँ भी अपना profit चरम पर कर लेते हैं, तब जाकर के कोई scientist अपना मुँह खोलना शुरू करते हैं। तब research शुरू होती है, जब तक आदमी मिट चुका होता है। अब देख लो, हर आदमी मिट चुका है। बिना maggi के, बिना pizza -burger के किसी को भी अब चैन नहीं पड़ती है। अगर किसी से कहो भी...महाराज! वह तो हम जब कभी party में जाते हैं, महीने, दो चार महीने में कभी एक बार, साल में कभी एक बार खा लेते हैं। भाई साल में एक बार भी खा लेते हो तो उससे भी शरीर को नुकसान ही हो रहा है न! और वह नुकसान भी आपके लिए कोई हितकारी नहीं है। उससे भी आपके लिए आगे बीमारियाँ बनने के chance बढ़ते हैं। इसलिए यह एक बार भी लेना तो क्यों लेना? हिम्मत नहीं होती, बाहर जाना पड़ता है, घूमने जाना पड़ता है, लोगों के साथ रहना पड़ता है, बिना pizza-burger खाए, बिना maggi खाए, बिना chowmein खाए, कैसे काम चलेगा महाराज? और कभी कहीं, कुछ नहीं मिला तो भूखे मर जाएँगे। भूखे मर जाएँगे, इसलिए जहर खाकर के जीवन जीएँगे।

जो बच्चे बाहर की इस हवा से बच जाते हैं, वह धर्म कर पाते हैं

यह जो ज्ञान भीतर से काम कर रहा है, बस! यही ज्ञान बाहर की हवा में, हवा के साथ जब काम करने लग

जीवनादि की नश्वरता को बताते हुए, धर्म करने की प्रेरणा की जा रही है

जीअं जलबिंदु-समं, संपत्तीओ तरंग-लोलाओ।
सुमिणय-समं च पिम्मं, जं जाणसु तं करिज्जासु ॥४४॥

तुझे जो जानने में आए सो कर (भाषा का प्रभाव)

जीवन कैसा है? जल बिंदु के समान है। संपत्ति कैसी है? तरंगों के समान चंचल है और जो अपने प्रेमीजन हैं, प्रेम करने वाले लोग हैं, वे कैसे हैं? **‘सुमणीय सम’** यह सब स्वप्न की तरह है। **‘जं जाणसु तं करिज्जासु’** हे जाव! तुझे जो जानने में आए सो कर। अब क्या कहें, तुझे इससे ज्यादा क्या बोले? यही कहना पड़ेगा न! जब बहुत कह दिया जाता है, तो फिर अन्त में जो तुम्हारी मर्जी में आए सो करो, जो तुम्हारी समझ में आए वह करो, यही भाव है। **‘जं जाणसु तं करिज्जासु’** यह सूक्ति वाक्य है। जो लोग प्राकृत पढ़ रहे हैं या प्राकृत में interest रखते हैं, वह सूक्ति वाक्य को याद कर ले। बच्चों को सीधा सीधा गाली मत देना... भाड़ में जा! और देखो, language सुधारने के लिए भी, दूसरी language को भी अपनाने लग जाओगे न तो तुम्हारे अन्दर भी कषाय भाव भी कम हो जायेगा। उसी बात को भी कैसे बोलना? **‘जं जाणसु तं करिज्जासु’** **‘भाड़ में जा’** की जगह क्या बोलना? जो जानो सो करो। अब वह भाषा थोड़ी सी जब ज्यादा गुस्से में आ जाती है तो बदल जाती है। तेरे मन में आए सो कर और भाषा बदल गई। भाड़ में जा! यह भाषा धीरे-धीरे क्रोध के कारण से बदलती चली जाती है। उसको लाइन पर लाने के लिए वही भाषा बोलो, जो आचार्यों ने बोली है, उससे आगे मत बढ़ो। क्या बोलना? इतनी अगर लाइन बोलोगे तो गुस्सा भी आ रहा होगा तो नहीं आएगा या वहीं तक control हो जाएगा। इतना बोलते हुए वाक्य समझ आ रहा है... **‘जं जाणसु तं करिज्जासु’** जा तुझे जो करना है सो कर ले। जो जानता है सो कर ले। इस तरह के अगर विचार मन में आते हैं तो अगर इस तरह की शब्दावली का प्रयोग किया जाए तो वह हमारी कषायों को भी कम कर देते हैं। इसलिए इस गाथा से सीख लेना और जो अन्तिम 45वीं गाथा में कहा गया है, बार-बार बात वही कही जा रही है...

गाथा: 45

जीवन की नश्वरता को पुनः प्रकाशित करते हुए, बोध प्राप्ति की प्रेरणा

स्थौद्धतावृत्तम्

संझ-राग-जल-बुब्बु-ओवमे, जीविए य जलबिंदु-चंचले।
जुव्यणे य णइ-वेग-संणिभे, पावजीव! किमियं ण बुज्झसि ॥45॥

अन्वयार्थ- (पावजीव!) हे पापी जीव! (संझ-राग-जल-बुब्बु-ओवमे जलबिंदु-चंचले जीविए) संध्याकालीन, राग या लालिमा 'और' जल के, बुलबुले की, उपमा वाले 'तथा' जल की, बूंद 'के समान' चंचल, जीवन के विषय में **(य)** तथा **(णइ-वेग-संणिभे जुव्यणे)** नदी के, वेग के, समान, यौवन के विषय में 'तुम' **(किं)** क्यों **(ण)** नहीं **(बुज्झसि)** बोध को प्राप्त होते हो **(इयं)** यह **(य)** और 'भी बहुत आश्चर्य की बात है' ॥45॥

छंद का परिचय

यह 45वीं कारिका का जो छंद है, यह 'स्थौद्धतावृत्तम्' छंद कहलाता है। ऐसे तीन अलग-अलग छंदों में यह प्राकृत की गाथाओं के माध्यम से, कृतिकार ने परिश्रम बहुत किया है, हम लोगों को समझाने के लिए और वह परिश्रम इस जीव को संसार की अनित्यता, अशरणाता का ज्ञान कराने के लिए है। जो जीवन है, संध्या के राग की तरह है, जल के बुद-बुदे की तरह है और जो यौवन है वह जल बिंदु के समान चंचल है, नदी के वेग के सदृश है।

संबोधन में थोड़े कटु शब्दों का उपयोग

'पावजीव! किमियं ण बुज्झसि' ऐसा लगता है आचार्य भी अब मतलब कहते-कहते, थक तो गए ही हैं, थोड़ा शास्त्रीय भाषा में मतलब कुछ बुरा-सा कहने के लिए भी, जब कोई बच्चा बार-बार कहने से नहीं मानता है, तो फिर उसको कुछ थोड़ा सा, चोट पहुँचाने वाले भी शब्द बोले जाते हैं, ऐसे ही कुछ लग रहा है। यहाँ कह रहे हैं... 'पाव जीव' क्या नाम दे रहे हैं? अब अपने को, सबके लिए कह रहे हैं, सुनने वालों के लिए भी कह रहे हैं, सुनाने वाले के लिए भी कह रहे हैं, पढ़ने वालों के लिए भी कह रहे हैं, पढ़ाने वालों के लिए भी कह रहे हैं। क्या कह रहे हैं? 'पाव जीव' पाव जीव अर्थात् पाव भाजी वाला पाव नहीं। 'पाव' यानी अरे! पापी जीव, तू क्यों नहीं चेत रहा है? तू क्यों नहीं समझ रहा है? अब ऐसा कह कर के उसे समझाना पड़ रहा है। इसलिए कभी-कभी कहना पड़ता है...मूढ़ जीव, पापी जीव, दुष्ट जीव। ऐसा भी कहकर के आचार्यों ने संबोधन दिए हैं। इस तरह के संबोधन अध्यात्म में मिलते हैं, वैराग्य भावनाओं में मिलते हैं और

जहाँ-कहीं पर भी संवेग और वैराग्य की भावनाएँ बताई जाती, वहाँ पर इस तरह के चित्रण मिल जाते हैं। यह समझाने के लिए कि इस जीव को कोई न कोई संबोधन तो कहीं न कहीं, इसको छू ले, किसी संबोधन से तो इसको लग जाए।

आचार्यों का सम्बोधन—पाव जीव (पापी जीव)

तब अब यहाँ कहना पड़ा... **‘पाव जीव’ हे पाव जीव!** तू क्यों नहीं बोध को प्राप्त हो रहा है, तू क्यों नहीं समझ रहा है? तेरी चेतना कहाँ लुप्त हो रही है? जो तुझे इतना समझाने पर भी समझ में नहीं आ रहा है। हो सकता है समझदार बच्चा कहे... आप वही वही उपमाएँ, बार-बार, छंद बदल-बदल करके, कह रहे हो। फिर भी आचार्य कहते हैं... तुझे कैसे भी समझ में तो आए। जैसे लोरी सुनाई जाती है तो वह अलग-अलग लयों में भी सुनाई जाती है ताकि बच्चे को कोई सी भी लय अच्छी लग जाए और उसके लिए वह चीज उसके मन को शान्त कर दे।

तू अपने मन में, अपना बोध प्राप्त कर

उसी तरह से अलग-अलग छंदों में भी, बात वही कही जा रही है कि तू अपने मन में, अपना बोध प्राप्त कर और इस बात से चेत कि तू क्या कर रहा है? नहीं तो तुझे केवल एक ही संबोधन सुनने को मिलेगा... तू पाप करता रहा, इसलिए पाप जीव रह गया। बनना क्या था? पुण्य जीव बनना चाहिए था। क्या बन गया? पाप जीव बन गया। पापी जीव का संबोधन अपनी आत्मा को न मिले... किसका मिले? यह जीव बड़ा पुण्यात्मा है, बड़ा धर्मात्मा है। लेकिन समय ऐसा बिगड़ता चला जा रहा है, जब किसी जीव के लिए ऐसा सुनने को मिलता है कि यह धर्मात्मा है, तो उसके आस-पास के लोग उसे बढ़ाते नहीं हैं, उसे गिराने लग जाते हैं। अच्छा न कह कर के, उसके लिए बुरा कहने लग जाते हैं। यह कोई उम्र है अभी तेरे धर्म करने की, कर लेना, अभी जिन्दगी पड़ी है, अभी जो करने के काम है वह काम कर। यह बार-बार मन्दिर जाना, बार-बार पूजा करना, बार-बार महाराज के उपदेश सुनने के लिए जाना, जिन्दगी पड़ी है कर लेना। पहले घर में कमाई कर, जो business कर रहा है उसको ढंग से कर।

धर्मात्मा जीव की फजीहत

धर्मात्मा जीव की आजकल फजीहत भी होने लगी है। इतनी फजीहत होने लगी है कि सुनने में आता है, अगर कोई बच्चा धर्मात्मा है या बेटी धर्मात्मा है तो उसे अब रिश्ते नहीं मिलते हैं। यह किसकी कहानी है? यह सब आपकी ही सोच की कहानी है। यह सब घर-घर में, सुन सब रहे हैं धर्म लेकिन मन में क्या बस रहा है? मन में तो पाप ही बस रहा है। बेटी को कहाँ देना? कोई आजकल यह नहीं कहता कि जहाँ पर कोई धर्मात्मा जीव है, उस घर में देना। अरे! यहाँ तो बेटी बस वही पानी छानती रह जाएगी और मर्यादा के मसाले बनाते ही रह जाएगी। बेटी जीवन में आनन्द नहीं ले पाएगी, जिन्दगी जी नहीं पाएगी। यहाँ तो न आलू मिलते हैं खाने को, न प्याज मिलती है खाने को, न रात्रि में खाने को मिलता है, ऐसी जगह बेटी को नहीं देंगे। यह कोई दूसरे की कहानी नहीं है, यह सब आपकी ही कहानी है। ऐसे जीवों के लिये ही पाप जीव कह

करके संबोधन करना पड़ता है कि तुम पुण्यात्मा जीव नहीं हो। तुम्हारा धर्म, तुम्हारा पुण्य केवल दिखाने के लिए है। भीतर से तो तुम्हारे अन्दर पाप बसा हुआ है। आप बेटी के लिए धर्म नहीं दे रहे हो, आगे, उसे क्या देना चाह रहे हो? सुखी कहाँ रहेगी? आपके दिमाग में क्या बसा है? जहाँ पर स्वतंत्रता हो, जहाँ पर उसे यह सब boundation न हो। बेटा! यहाँ रात में भोजन नहीं बनता, यहाँ पर pizza-burger नहीं खाया जाता।

व्रतों-व्रतियों-धर्म का अनादर

ऐसे घर में कोई भी शादी नहीं करना चाहता। अरे! घर में माता-पिता व्रती हैं, बहू जा कर क्या करेगी? बेटी जा कर क्या करेगी? इसलिए आप समझो कि धर्म का हम आदर कर रहे हैं कि धर्म का अनादर कर रहे हैं? अगर आपके जीवन में इस तरीके के विचार हैं तो आप व्रतियों का भी अनादर कर रहे हैं, व्रतों का भी अनादर कर रहे हैं, आप धर्म का अनादर कर रहे हैं और धर्म का अनादर करने वाला जीव कभी भी पुण्यात्मा जीव नहीं कह सकते। आप लाखों का दान दे लो, खूब भगवान के मंदिर में जाकर के अभिषेक और धाराएँ कर लो, इससे कुछ नहीं होने का! जब तक कि हमारे मन में यह पाप बसा हुआ है कि धर्म करने के लिए बेटे-बेटियों का जीवन नहीं है, मौज मस्ती करने के लिए बेटे-बेटियों का जीवन है।

व्रत-प्रतिमा लेने से धर्म की महत्ता आएगी

इसलिए हमें ऐसे घरों में बेटे बेटियों को देना है, जहाँ पर सब तरह की स्वतंत्रता मिले। यह पाप जीव से संबोधन करने वाली भावना है। यह पाप अगर निकलेगा मन से, तभी इस समाज में धर्म फैलेगा। बहुत से लोग इसी कारण से, धर्म के समय पर आगे नहीं बढ़ पाते, हमारे बच्चे छोटे हैं, उनकी शादी नहीं होगी महाराज अगर हमने व्रत ले लिए, प्रतिमा ले ली क्योंकि ऐसे घरों में बेटों के साथ में कोई अपनी बेटियों को देना नहीं चाहता। इस तरीके के विवाह नहीं हो पाते और इस तरीके की जब condition बन जाती है तो व्यक्ति के लिए यह बातें दूसरे के माध्यम से भी जब दूसरों को पता पड़ जाती हैं तो उनके दिमाग में भी यही बात आने लग जाती है। धर्म का अनादर इसी का नाम है। इसलिए यह संबोधन मतलब आपको अपना जीवन अगर, यौवन अगर इस तरह की उपमाओं के साथ दिखाई देगा तो आपको धर्म की महत्ता आएगी और धर्म की महत्ता आने पर ही आपको लगेगा कि वास्तव में अगर जीवन जितना बचा है, उसे पुण्य के साथ जिया जाए, धर्म के साथ जिया जाए, पाप के साथ जी कर के हम यह संबोधन अपने लिए न अर्जित करें कि हमें यह सुनना पड़े... **‘पावजीव! किमियं ण बुज्झसि।’** यह कितना बड़ा संबोधन है। यह पाप भाव इसी का नाम है। इसलिए अपने मन के अन्दर यह विचार करो कि हम भीतर से धर्म कर रहे हैं, भीतर से धर्म की भावना है या केवल हमारी भावनाएँ, अपना केवल बाहर का धर्म और बाहर का standard बनाने के लिए है।

धर्म standard का पर्याय नहीं है—ढकोसला न बनायें

आज धर्म भी एक standard की वस्तु बन गई है, धर्म करने से भी standard बनता है। अच्छा दान देंगे

तो standard बनता है, अच्छी बोलियां लेंगे तो standard बनता है। अच्छे ढंग से अगर कोई भी तरह का धर्म करने का, हम कोई भी इन्द्र बनते हैं, कुछ बनते हैं, पात्र बनते हैं, वह भी एक standard बन जाता है। अब यह चीजें थी किसलिए? भीतर से धर्म करने के लिए थी लेकिन इनके पीछे जब भावना गलत छुपी हो गई तो वह उसी गलत भावना के कारण से, धर्म ढकोसला बन गया। और जब ऐसा ढकोसला बन जाता है, तो फिर इसी तरह के संबोधनों से कुछ समझ में आ सकता है। तो क्या संबोधन दिया जा रहा है? लगभग 45 गाथाओं के बाद में, यह हमारे लिए एक संबोधन दिया गया है... **‘पाप जीव..पापी जीव’** ऐसा कहने से भी थोड़ा सा चोट पहुँच जाए तो पाप करना अगर व्यक्ति कम कर दे, छोड़ दे तो यह बड़ी अच्छी बात होगी। समझना, बाहर की हवा हमारे दिमाग को खराब न कर दे, बाहर की हवा खाने की मनाई नहीं है, लेकिन बाहर की हवा लगनी नहीं चाहिए। हवा लगना समझते हो न? घर में बोलते है न, इसको हवा लग गयी है। जब सही सलामत नहीं चलता है बच्चा तो फिर क्या बोलना पड़ता है? इसको हवा लग गई है, बाहर की हवा लग गई है। **बाहर की हवा खाना अलग बात है और बाहर की हवा लगना अलग बात है।** इसलिए जो बच्चे बाहर की हवा खा कर के फिर अपने घर में आ जाते हैं, वह बच्चे बहुत समझदार बच्चे कहलाते हैं, जिन्हें बाहर की हवा नहीं लगी और जो धर्म की हवा आज भी खा रहे हैं। ऐसे बच्चों को कभी भी हतोत्साहित नहीं करना चाहिए और उनके लिए कोई comments न करके उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए और उनका अगर, प्रोत्साहन करने के लिए आपके पास में समय न हो, शब्द न हो तो हमारे उपदेश उन्हें सुना देना चाहिए।

गाथा: 46

काल के द्वारा मारे गये सभी प्राणी, कर्मानुसार कहीं के कहीं जाते हैं

आर्यावृत्तम्

अण्णत्थ सुया अण्णत्थ, गेहिणी परियणो वि अण्णत्थ।

भूयबलिव्व कुडुंबं, पक्खित्तं हय-कयंतेण ॥46॥

अन्वयार्थ- (हय-कयंतेण) हते यानी मारे गये हैं, काल के द्वारा 'तथा' (भूय-बलि-व्व) भूत की, बली के, समान (पक्खित्तं कुडुंबं) फैंके गये, 'ऐसे' कुटुंब को 'देखो जिसमें' (सुया) सुत यानी पुत्र (अण्णत्थ) अन्यत्र यानी कहीं और गया (गेहिणी) गृहिणी यानी पत्नी (अण्णत्थ) अन्यत्र अर्थात् कहीं और गयी 'तथा' (परियणो) परिजन (वि) भी (अण्णत्थ) अन्यत्र यानी कहीं और गये ॥46॥



वैराग्य शतक ग्रंथ राज

वैराग्य शतक ग्रन्थराज के माध्यम से लगभग 45 गाथाएँ आप लोगों ने सुन ली है, जिसमें अनित्य आदि भावनाओं का दिग्दर्शन हमें कराया गया। आज दो गाथाएँ पढ़ते हैं...गाथा नंबर 46 और 47

अण्णत्थ सुया अण्णत्थ, गेहिणी परियणो वि अण्णत्थ।

भूयबलिव्व कुडुंबं, पक्खित्तं हय-कयंतेण ॥46॥

जीवेण भवे भवे, मिलियाइ देहाइ जाइ संसारे।

ताणं ण सागरेहिं, कीरइ संखा अणंतेहिं ॥47॥

आचार्य कहते हैं... 'अण्णत्थ सुया' जिसे हम सुता कहते हैं, बहुवचन में यह बेटा भी बन सकता है और इसको हम बेटी के रूप में भी देख सकते हैं। यह सब 'अण्णत्थ' हैं यानी अन्य कहीं स्थित हैं। 'गेहिणी' मतलब स्त्री है, यह भी कहीं अन्य स्थित है। परिजन हैं, यह भी अन्यत्र कहीं स्थित हैं और यह सभी भूतबली के समान, यह कुटुम्ब जो कहीं-कहीं प्रक्षिप्त हो गया है, उसे कृदंत ने, कृतांत ने, हत कर दिया है, नष्ट कर दिया है।

अन्यत्व भावना

क्या कहते हैं? यह सुता, यह गेहिणी, यह परिजन सभी अन्य हैं, अन्य में ही स्थित हैं। अन्य का मतलब अपने से भिन्न हैं। जिसे हम other कहते हैं। हम स्वयं में स्थित हैं और वह भी जहाँ स्थित हैं, उसकी अपेक्षा से देखा जाए तो हर जीव एक दूसरे से अन्य है, भिन्न है। अन्य का मतलब जो पृथक् रूप से हमें अलग दिखाई दे, वह अन्य कहलाता है और हर कोई जीव अपने शरीर में स्थित है, अन्य रूप में स्थित है। सभी हमारे आसपास रहते हैं, साथ में रहते हैं। लेकिन इन सबका अपना-अपना जीवन है और यह सभी अन्य-अन्य रूप में हमें दिखाई देने चाहिए, इसका नाम ही **अन्यत्व भावना** कहलाती है। बीच-बीच में तरह-तरह की भावनाएँ आपके सामने आ जाती हैं। अशरण भावना कभी आ जाती है, कभी अनित्य भावना आ जाती है, कभी संसार भावना आ जाती है, कभी एकत्व भावना भी आ जाती है और कभी अन्यत्व भावना भी आ जाती है। अभी इतनी भावनाएँ यहाँ आपस में घूम रही हैं। इससे बढ़कर के अभी कोई दूसरी भावनाएँ नहीं आई यहाँ, न अभी यहाँ आस्रव भावना आई, न संवर भावना आई, न निर्जरा भावना आई। थोड़ा सा धर्म भावना कह सकते हैं, न लोक भावना आई और न बोधि दुर्लभ भावना आई।

बारह भावनाओं के माध्यम से तत्त्व ज्ञान

मतलब यह है कि यह वैराग्य शतक में बड़े सरल ढंग से जीवन की सत्यता को बताते हुए इन भावनाओं के माध्यम से हमें तत्त्व ज्ञान दिया गया है क्योंकि आचार्यों ने इन भावनाओं को, इन अनुप्रेक्षाओं को भी **‘तत्त्वानु चिंतनंऽनुप्रेक्षा’** ऐसा कहा है। यानी यह अनुप्रेक्षाएँ भी तत्त्व चिन्तन के रूप में हैं। हम इन भावनाओं का अगर चिन्तन-मनन कर रहे हैं तो समझना चाहिए, हम तत्त्व का चिन्तन कर रहे हैं। तत्त्व की बात सुन रहे हैं। जिसे तत्त्व कहते हैं...वह भावात्मक, सार्वभूत परिणति होती है और उस तत्त्व की बात सुनाते हुए यहाँ पर अन्यत्व भावना के माध्यम से बताया जा रहा है कि सभी अन्य-अन्य में स्थित हैं। देखा जाए तो जो भी हमारे माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची, ताऊ-ताई, दादा-दादी, बुआ-फूफा, मामा-मामी और नाना-नानी, इतने ही होते हैं आसपास...मौसा-मौसी मतलब कुल मिलाकर के इतने में काम चल जाता है। यह जो लोग अपने आसपास स्थित हैं यह सब हमें ऐसे लगते हैं यह सब हमारे अपने हैं, स्वजन हैं और इनके साथ में रहते हुए भी जब हम इन्हें अपने रूप में देखते हैं तो आचार्य कहते हैं...हम मोह के कारण से भ्रमित हो जाते हैं। जब हम अन्यत्व भावना भाएँ तो हमारे मन में विचार आना चाहिए ये सभी हमसे पृथक् हैं। मतलब यह सभी हमसे, हमारे स्वरूप से भी अलग हैं और यह अपने अस्तित्व में रहने के कारण से अपने आप में पृथक् हैं। जो चीज हमें पृथक् दिखाई देती है, उसको पृथक् मानने में क्या आपत्ति है? जो चीज हमें अपने से भिन्न दिखाई दे रही है, उसको भिन्न मानने में क्या आपत्ति आती है? मानो यह किताब है, यह बैठने की चौकी है, यह भी अपने से भिन्न है। जो हमारे लोग हैं, अपने साथ में रहने वाले लोग हैं, वह भी हमसे भिन्न हैं। जब इनको हम भिन्न रूप में मान ले, भिन्न रूप में ही हमने स्वीकार कर ले तो यह कहलाती है-अन्यत्व भावना और इसके माध्यम से एक तत्त्व का चिन्तन चलने लग जाता है। हम यह भी कह सकते हैं कि हम तत्त्व में स्थित हो गए। जब हम अपने से पृथक् को, पृथक् मान ले तो हम तत्त्व में स्थित हो गए और अगर हम मोह के कारण से इनको अलग न मान करके एक मानते हैं, स्वकीय मानते हैं तो हम तत्त्व से दूर हो गए।

पृथक को— पृथक मानें, पृथक देखें (आत्मा के निकट महसूस करेंगे)

आप देखें कि आपके मन में ही तुरन्त यह भाव आएगा कि जब हम इनको एक मानते हैं, स्वकीय मानते हैं तब अच्छा लगता है या जब हम इनसे अपने आप को भिन्न देखते हैं और इन्हें भी भिन्न मानते हैं तब अच्छा लगता है। यह भी आप थोड़ा सा self observe कर सकते हैं, यह सोचा जा सकता है। स्वयं को मानना तो अनादि काल से होता रहा है। यह भी हमारा संस्कार पड़ा हुआ है, जन्म से हमने इनको स्वकीय माना। लेकिन इनको जब हम अपने से थोड़ा पृथक मानें, पृथक देखें, तब हमें जो अच्छा लगेगा, वह एक अलग, आपके अन्दर का भाव आएगा। चला तो कहीं कुछ नहीं जाएगा, जो जहाँ है वहीं रहेगा, जो जैसा है वही रहेगा और आपके मानने से वह कोई आपसे छूट जाएगा ऐसा भी नहीं है। लेकिन जैसे ही आपकी मान्यता में थोड़ा सा यह परिवर्तन आएगा तो आप महसूस करेंगे कि हम अपनी आत्मा के निकट हैं, हम तत्त्व के निकट हैं। यह अनुप्रेक्षा हमें तत्त्व के निकट बनाती है। जब हमने महसूस किया हमारे ही बेटे हैं, हमारे ही पत्नी हैं, हमारे ही भाई हैं लेकिन यह सब अन्य-अन्य हैं, हमसे भिन्न-भिन्न हैं। इनका अपना-अपना अलग-अलग स्वरूप है, अलग-अलग इनका अस्तित्व है और यह अपने-अपने संस्कारों से अपने-अपने तरह से जी रहे हैं। इस तरह से जब हम विचार करते हैं तो इस विचार का नाम ही अन्यत्व भावना कहलाता है। तब आचार्य कहते हैं...यह अन्यत्व भावना हमें शुरू करनी चाहिए, कम से कम जो हमसे भिन्न है उन्हें तो हम भिन्न देखें।

पृथक को पृथक देखने में डर यानी मोह भाव

जब भिन्नता देखते-देखते थोड़ा सा अभ्यास बढ़ जाए तो हम अपने शरीर को भी अपने से भिन्न देख सकते हैं। क्या सुना? अब शरीर तो महाराज! हमारा ही है। यह तो अपने से भिन्न कहाँ दिखता है? जहाँ हम जाते हैं, वहीं यह जाता है। जहाँ हम सोते हैं, वहीं यह सोता है। जहाँ हम बैठते हैं वहीं यह बैठता है। जहाँ हम रहते हैं वहीं यह रहता है। इसलिए अभी आपके सामने direct शरीर की बात नहीं आई। पहले क्या कहा? यह पुत्र, पुत्रियाँ, यह स्त्रियाँ, यह परिजन, यह स्वजन, पहले इनको अपने से थोड़ा भिन्न देखो, इनसे अपनी दूरी मन से बनाओ। जब यह आपको भिन्न रूप से दिखाई देंगे, तब आपको धीरे-धीरे यह भी महसूस होने लगेगा कि हमारा शरीर भी हमसे भिन्न है। दिक्कत की बात तो यह है जिस चीज से हमें सुख मिलना चाहिए उसी से हमें डर लगता है। जिस चीज से, जिस भावना से हमें सुख मिलना चाहिए, सुख मिलता है उसी से हमें डर लगता है। ऐसी भावना करने में सुख मिलता है कि डर लगता है? डर लगता है। डर लगे तो समझना यही हमारा मोह भाव है, जो हमें वास्तविकता से दूर रख रहा है। जैसे-जैसे आपके यह मोह भाव में कमी आएगी, आपको डर नहीं लगेगा। आपको धीरे-धीरे अच्छा लगने लगेगा। आखिर इस विचार में डरने की क्या बात है? हमारा कोई भी बंधु है, कोई भी सखा है, कोई भी घर का व्यक्ति है, वह स्वयं में अलग है, हमसे अलग है, पृथक है। उसका परिणामन अलग है, हमारा परिणामन अलग है। लेकिन अगर इसमें डर लगता है तो मोह के कारण से डर लगता है। कहीं ऐसा विचार करते हुए वह मुझसे अलग न हो जाए और हम इसी मोह के कारण से जीवन में कभी भी यह विचार ला नहीं पाते।

जीवन की सत्यता को स्वीकारने में सुख है

यह तत्त्व की बात कभी सोच नहीं पाते और वह सब चीजें हमसे अलग हो जाती हैं, हम देख भी लेते हैं। कोई त्रासदी हो जाती है, कोई भूकम्प आ जाते हैं, कोई नदियों में, नहरों में बच्चे डूब जाते हैं। क्या होता है? सब अपने-अपने तरीके से मरण को प्राप्त हो जाते हैं। वह भी तो किसी न किसी के बच्चे होते हैं। वह भी तो किसी न किसी के सगे होते हैं। वह भी तो किसी न किसी के मोह के कारण से ही होते हैं। लेकिन जब वह पृथक होते हैं तो हमने उनको पृथक रूप में कभी जाना नहीं। मरण को प्राप्त हो गए, घटना घटित हुई तब हमें लगा यह हमसे छूट गए और छूटना निश्चित था। अगर हमने जीवन की सत्यता को पहले से नहीं स्वीकारा, हमने उसको यथार्थ रूप में पहले से नहीं माना तो हमें सुख नहीं मिलेगा क्योंकि डर के साथ में सुख नहीं मिलता है। सुख निश्चितता के साथ आता है। तत्त्व चिन्तन में सुख है, अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करने में सुख है लेकिन अगर हमें मोह के कारण से डर लगता है तो हम उस आत्मिक सुख से भी वंचित रहते हैं। अब इस सुख की प्राप्ति करने के लिए हमें कुछ नहीं करना। जो जैसा है उसको उसी रूप में हमें भाना बस!...चिन्तन करना।

अन्य का अन्य रूप में ही अपना परिणमन

आप देखो कोई भी व्यक्ति है, मानो कल यहाँ एक lady आई थी। बताया जाता है...वह सतना की ही lady थी, जबलपुर रहने लगी, दमोह रहने लगी कहीं भी, कुण्डलपुर, कटनी के बीच में कहीं भी। Two wheeler पर शायद पीछे बैठी थी। पीछे से किसी ने एकदम से टक्कर मार दी, गिर पड़ी और अचानक से दिमाग में चोट लग गई और चोट ऐसी लगी कि वह उससे उबर नहीं पाई। तीन दिन हो गए doctors ने कह दिया brain dead हो गया और अन्ततः कल शाम को ही ऐसा लग रहा था कि बस जीवन समाप्त हो चुका है, जब उसको थोड़ा सा देखने के लिए उधर तक गए। कहने का मतलब यह है कि अन्य जो है, वह अन्य रूप में ही अपना परिणमन कर रहा है।

मोह हमें भ्रमित करता है

जो अपने से अलग है, वह अलग ही है और उस अलग को, अलग मान कर के, अगर हम पहले से ही चिन्तन कर लेते हैं तो इसी से मोह में कमी आती है। अगर मोह में कमी नहीं आएगी तो कभी भी आत्मा के अन्दर तत्त्व का अभ्यास करने का भाव, आत्मा के अन्दर सम्यग्दर्शन का भाव आ नहीं पायेगा। मोह में कमी लाने के लिए कुछ ज्यादा नहीं करना है, आचार्य इतना ही कह रहे हैं। क्या करना है? इन्हें पृथक रूप में ही देखो, पृथक रूप में ही मानो और पृथक हैं ही। मानो आपके साथ में बैठे-बैठे यात्रा कर रहे हैं, गाड़ी पर चल रहे हैं, टक्कर लगी, उनको लग गई, उनका मरण हो गया। आपका कुछ नहीं बिगड़ा तो अलग थे तभी तो चले गए। एक होते तो कैसे चले जाते? एक जो हमारी मान्यता है यह मोह के कारण से है। जब मोह के कारण से हम सोचते रहते हैं तो यह मोह हमें दुःख देता है, भ्रमित करता है और यही हमें भीतरी आत्मिक सुख का अनुभव नहीं करने देता है।

जीव अपने कर्मों के अनुसार जीवन-मरण प्राप्त करता है

डर इसलिए लगता है क्योंकि ऐसा विचार करने से कहीं वैसा घटित न हो जाए। कहीं हमने अपने से भिन्न उन लोगों की जाना और वह वास्तव में हमसे कहीं जुदा न हो जाएँ, यह भी मोह कहता है और तत्त्वज्ञान क्या कहता है? जिसकी जितनी आयु है, जिसके जैसे कर्म हैं, वह उन्हीं कर्मों के अनुसार अपना जीवन-मरण प्राप्त करता है। अगर आप तत्त्व का चिन्तन करेंगे तो आपको शान्ति मिलेगी, सुख मिलेगा। अगर आप तत्त्व चिन्तन नहीं करेंगे तो आपके मोह के कारण से दुःख ही दुःख मिलेगा। आप देखो दुनिया में कितनी त्रासदी फैली हुई है। एक ओर युद्ध चल रहे हैं, अनेक और युद्ध हो रहे हैं। कितनी बर्बरता है लोगों में, कितनी वृशंस हत्याएँ, कितनी ज्यादाती महिलाओं के साथ, कितना दुराचार का भाव, आतंकवाद का भाव, आज लोगों के अन्दर दिखाई देता है। उसके साथ-साथ आप देखो जहाँ यह पाप के वातावरण निर्मित है, वहाँ कितनी बड़ी-बड़ी घटनाएँ घट जाती हैं। कभी बादल फट जाते हैं तो असम में, सिक्किम में कैसी बाढ़ें आ जाती हैं। कैसे घर के घर डूब जाते हैं? परिवार के परिवार चले जाते हैं। अब एक घर डूबा तो उसमें जितने भी परिवार होंगे सब जाएँगे। अगर आपके पास कोई खबर आ गई कि वहाँ पर चालीस मरे, सत्तर मरे तो आपको यह तो नहीं बताया गया कि एक परिवार के कितने मरे? पानी से निकलना हर किसी के लिए सम्भव नहीं होता। जब एक दूसरे के साथ में कोई रह भी रहा है और एक साथ अगर वह मृत्यु के लिए आपदा आ गई है तो अब कौन किसकी बचाएगा? एक भूकम्प आ चुका है। इतना बड़ा भूकम्प हजारों लोग मारे गए। अफगानिस्तान में भूकम्प आया, अभी ताजा खबर है, कल शनिवार के दिन की है। आप सोचे कि हजारों लोग जहाँ मर रहे हो, हजारों घर जहाँ पर तबाह हो गए हो, वहाँ पर कितने परिवार, कितने लोग? गिनती तो किसकी लगती है। जितने उस मलवे से निकल आते हैं, उनकी गिनती लगती है और जो दब जाते हैं उनकी कोई गिनती नहीं होती।

मृत्यु के बाद दूसरा शरीर मिला तो भी मोह का संस्कार नहीं छूटता

जीवन चल रहा होता है। अचानक से जीवन अगर मिटता है तो हम कुछ कर नहीं पाते हैं। संस्कार हमारा इस जन्म में मोह का था, मोह का ही बना रहा। जीवन मिट गया, अगला जन्म हमें फिर मिलेगा। जो मोह का संस्कार था उसमें कहीं कोई कमी नहीं आई। शरीर ही छूट गया, फिर से शरीर मिल जाएगा और शरीर दूसरा मिला तो फिर से हमारा वही मोह का संस्कार जागृत हो गया और हमने फिर उसी मोह के कारण से, फिर से वहीं से A B C D पढ़ना शुरू कर दिया। जो A B C D इस जन्म में सीखे थे, अब वही A B C D फिर से अगले जन्म में सीखना, फिर वही A B C D और वह A B C D सीखने के बाद भी हमें कोई नई A B C D नहीं सिखाई जाएगी। वह वही सिखाई जाएगी जो हम पिछले जन्म में सीख के आए। यह मेरा बेटा, यह मेरी मां, यह मेरी बहन, यह मेरा चाचा, यह मेरा ताऊ, यह मेरा सगा, यह दुश्मन, यह दोस्त, यह A B C D हमें फिर सिखाई जाती है और यही संस्कार बना रहता है तो कभी भी यह अन्यत्व भावना भाने का विचार आ ही नहीं पाता और इसी कारण से उसके मोह में अगर कमी नहीं आती तो उसके जन्मों में भी किसी भी तरह के संस्कार में कोई कमी नहीं आती।

अन्यत्व भावना भाई तो मोह का संस्कार थोड़ा-सा हल्का पड़ेगा

जब मोह में कमी आएगी, आपने इस जन्म में अगर थोड़ा सा तत्त्व का चिन्तन किया, अन्यत्व भावना भाई तो क्या होगा? आपके दिमाग पर जो भ्रम चढ़ा है वह एक बार थोड़ा सा हल्का पड़े, वह एक बार थोड़ा सा मोह में कमी आए तो उस मोह की कमी का जो संस्कार आपके लिए उपलब्ध हो गया, यह जीवन की सार्थकता है। यह आपके लिए अगले जन्म में भी, फिर यह मोह का संस्कार हल्का होकर के ही सामने आएगा और फिर अगर वह हल्का होकर के सामने आया तो हो सकता है कि आपके लिए फिर से वह निमित्त मिल जाए, वह कारण मिल जाए, आपके लिए वह फिर से यह भाव जागृत हो जाए कि भाई! यह मोह या हमारे सामने जो ये लोग हैं, इनके कारण से हमारे मन के अन्दर जो भ्रम पैदा होता है, यह भ्रम से हमें दुःख होता है और इसमें कहीं सुख मिले तो कहाँ मिले? हो सकता है कि आप ढूँढते-ढूँढते सतना आ जाओ। इस जन्म में नहीं आ पाए, हो सकता है अगले जन्म में आ जाओ। आपको फिर से वह निमित्त मिल जाए...**वैराग्य शतक** सुनने को मिल जाए। कोई तुम्हें उपदेश ऐसा सुनने को मिल जाए तो आपको लगे हाँ! मैं यही चाह रहा था। क्या लगेगा उस समय पर? यही चाह रहा था मैं, यही सुनना चाह रहा था मैं। जब आपके मन में ऐसा कभी भाव आए कि हाँ! यही सुनना चाह रहा था तो समझना कि आपके पूर्व संस्कार का परिपाक है। अभी तो सुनाया जा रहा है और हम सुन रहे हैं। लेकिन अभी यह भावना नहीं आ रही कि हाँ! ऐसा ही सुनने में हमें भीतर से सुख मिलता है। अभी तो हमें डर भी लग सकता है। मोह के कारण से हमारे मन में विचार आ सकता है कि कहीं ऐसा न हो जाए कि हम इधर पृथक्त्व का विचार करें, अन्यत्व का विचार करें और सब कुछ हमसे छूट जाए।

मोह की वृद्धि या कमी पूर्व के संस्कारों का फल

जब आपके मन में ऐसी भाव आ जाए कि हाँ! हमें यही सुनना था। यही ज्ञान चाहिए था जो हमें मिल रहा है तो सोचना कि हम हमारे अन्दर पहले से कोई संस्कार पड़ चुका था, वह संस्कार की तलाश थी और आज हमें वह संस्कार के मुताबिक ऐसा उपदेश सुनने को मिल रहा है। यह तभी सम्भव है अगर आपकी मोह में कभी कमी आई हुई होगी तो वह संस्कार आपको आगे भी मोह से कम होने की भावना पैदा करेगा। अगर आपने मोह की वृद्धि की है तो हर जन्म में मोह बढ़ेगा, बढ़ेगा और ज्यादा बढ़ेगा और ज्यादा बढ़ेगा, बढ़ता जाएगा, बढ़ता जाएगा और फिर वही बात बनेगी।

‘ज्यों मदिरा पी, मोह विकार, बढ़ता त्यों कर्मन का भार’

जैसे-जैसे मदिरा पीता है आदमी, तैसे-तैसे क्या बढ़ता है? उसका विकार बढ़ता चला जाता है। वह विकार बढ़ेगा तो मदिरा से छूट नहीं पाएगा, वह मदिरा को चाहता रहेगा। जन्म-जन्म में यह एकत्व की भावना की हमने...उनसे जो हमसे पृथक् हैं। जो हमारे अन्य थे, उन्हें हमने स्व मान कर के अपने मोह के कारण से उस मदिरा को बढ़ाया है, मोह की मदिरा जिसे कहते हैं। **‘ज्यों मदिरा पी, मोह विकार, बढ़ता त्यों कर्मन का भार’** यह **नई छहठाला** की पहली ढाल की अन्तिम पंक्ति है। यह जो मोह का विकार है यह बढ़ रहा है। अब यह किस जन्म में कम हो? अब मान लो, आपको अफगानिस्तान में जन्म हो गया होता, इजराइल में जन्म हो गया होता, ईरान में जन्म हो गया होता, लद्दाख में पैदा हुए होते, रूस में पैदा हुए होते, यूक्रेन में पैदा हुए होते तो क्या होता? यह मोह का विकार, मदिरा और बढ़ रही होती कि कम हो रही होती? बढ़ रही होती और

सतना में पैदा हुए तो? कुछ कम हो रही है कि नहीं हो रही है? अगर बैठ कर के सुन भी पा रहे हैं तो तभी सम्भव है जब थोड़ा सा नशा कम है। नशा अगर ज्यादा रहता है तो आदमी उधर से निकलेगा, इधर से सुनते हुए चला जाएगा और हो सकता है उसके मन में यह भी भाव आ जाए कि मेरे कान में एक भी शब्द पड़ न जाए। यह मोह का जब अतिरेक होता है, तब इस तरह का परिणाम उत्पन्न होता है।

मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर तो जीता है, मरता है, मैं इस शरीर से भी पृथक हूँ

इस मोह की कमी होने पर ही आपको, जो पृथक है वह पृथक दिखाई देगा। जो अपना है वह अपना दिखाई देगा। अब अभी तो यहाँ पर इतने पृथक चीजों की बात आ गई। अगर मोह कम होगा तो आपको अपना शरीर भी अपने से पृथक महसूस होगा। यह और मोह की कमी होने पर ही सम्भव है। दूसरे का शरीर तो दूसरे से पृथक महसूस होता है जब किसी का मरण अपने सामने हम देखते हैं तब। लेकिन अपना शरीर अपने से पृथक लगता नहीं महाराज! यह भी मोह के कारण से नहीं लगता। अपना शरीर भी अपने से पृथक है और जब उस शरीर में भी इस तरह से भावना करोगे... **‘मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर तो मिटता है, मरता है, जीता है, मैं इस शरीर से भी पृथक हूँ’** तब आपके अन्दर उस तत्त्व का जो सुख पैदा होगा, वह और अलबेला होगा। वह और अलग quality का होगा। जितना-जितना हम अपनी निकटता में आकर के, अपने साथ भी जुड़ी हुई चीजों को अपने से पृथक देखने की कोशिश करेंगे, उतना ही हम अन्यत्व भावना का गहरा-गहरा चिन्तन अपने अन्दर करते जाएँगे। फिर एक स्थिति बनती है...जब आदमी से कहा जाता है कि यह जो तुम्हारे विचार चल रहे हैं, यह जो तुम्हारे मन में भाव आ रहे हैं, यह भी तुम्हारे नहीं हैं। इन्हें भी अपने से पृथक देखो। यह कब कहना पड़ता है? जब आदमी अपने ही विचारों से परेशान होने लग जाता है। उसके दिमाग में गलत-गलत विचार आते ही रहते हैं और वह उन पर नियंत्रण नहीं कर पाता। तब यह पृथक्त्व भावना, यह अन्यत्व भावना और भीतर से काम आती है तब इन विचारों को भी अपने से अलग देखो। यह विचार भी तुम्हारे नहीं हैं और अधिक आपको उस समय पर सुख की, शान्ति की अनुभूति होगी। जितना-जितना हम इस तरह की अन्यत्व भावना भाएँगे हमारे अन्दर अपने आप सुख आएगा। हम इसलिए नहीं भाते कि कहीं ऐसा न हो कि बाहर का संयोग हमसे छूट जाए। वह संयोग न छूट जाए उस मोह के कारण से हम अपने अन्तरंग सुख की जो उपलब्धि है, उससे भी वंचित रह जाते हैं और यही वजह होती है... आदमी तत्त्व चिन्तन नहीं कर पाता, मोह चिन्तन में पड़ा रहता है। मोह के साथ चिन्तन नहीं होता, मोह के साथ चिन्ता होती है। मोह की चिन्ता में पड़ा रहता है, तत्त्व चिन्तन में नहीं आता। इसलिए यहाँ कहा जा रहा है, इन सबको देखो...कैसे देखो? भूतबलि के समान देखो, यह भूतबलि क्या है? कोई आचार्य का नाम तो है नहीं।

बली का मतलब—पूजा की द्रव्य जो हम अर्पित कर रहे हैं, जीव का वध बलि नहीं है

यह एक बलि का मतलब होता है...जैसे जो पूजा आदि की सामग्री होती है, उसे आप जब छतों पर फेंक देते हो, जो भगवान के लिए चढ़ाई गई, वह जो पूजा आदि की सामग्री है, उसका नाम शब्द साहित्य में बलि कहलाता है। इसको क्या बोलते हैं? बलि! पूजा की द्रव्य को भी बलि द्रव्य कहा जाता है। यह बलि शब्द है...अब यह शब्द दूसरे अर्थ में बिगड़ गया। बलि मतलब किसी के लिए कुछ मार करके चढ़ा देना उसका

जो कुटुम्ब फैला हुआ है, यह भी मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा

गाथा: 47

यह संसारी प्राणी, भव-भव में अनन्त शरीरों को धारण कर चुका है

जीवेण भवे भवे, मिलियाइ देहाइ जाइ संसारे।
ताणं ण सागरेहिं, कीरइ संखा अणंतेहिं॥47॥

अन्वयार्थ- 'इस' (संसारे) संसार में (भवे भवे) भव, भव में (जीवेण) जीव के द्वारा (जाइ देहाइ मिलियाइ) जो, देह, मिलाई गई यानी प्राप्त की गई (ताणं) उनकी अर्थात् उन शरीरों की (संखा) संख्या यानी गिनती (अणंतेहिं सागरेहिं) अनन्त, सागरों से 'भी' (ण) नहीं (कीरइ) की जा सकती है॥47॥

इस जीव के द्वारा भव-भव में संसार के अन्दर इतनी देहें मिली हैं कि अगर अनन्त सागरों की भी संख्या बनाई जाए तो वे भी कम पड़ जाए। क्या सुना? इतनी देह इस जीव को संसार में भ्रमण करते हुए प्राप्त हो चुकी हैं कि वह अनन्त सागरों के माध्यम से भी उसकी संख्या की पूर्ति नहीं हो सकती है। कितने सागर? मतलब अनन्त भी उसके सामने सागर रख दिए जाएँ और उन सागरों की जल की बूंदों को भी रख दिया जाए तो भी इतनी उन देहों की पूर्ति नहीं हो सकती, इतनी देहें छोड़ चुके हैं हम।

अन्यत्व भावना—देह सम्बन्ध

अब यह आ गई...अन्यत्व भावना देह सम्बन्धी। संसार भी दिख रहा है और देह से अन्यत्व भावना लाने के लिए क्या करें? यह विचार करें। इस संसार में कितने जीव, कितने शरीरों को धारण करके, कितनी तरह से मरण को प्राप्त होते रहते हैं, हम रोजमर्रा की जिन्दगी में देखते रहते हैं। कितने मक्खी-मच्छर, चींटे-चींटियाँ, छोटे-मोटे कीड़े-मकोड़े, कितनी कुचलते रहते हैं हम और कितनी बार वह सड़कों पर, घरों में, व्यापार के स्थानों पर, वह कुचले जाते हैं, मरते रहते हैं। उनके जन्म का कोई भी अन्त नहीं है, तो यह न समझा जाए कि यह जीव अलग हैं और हम अलग हैं। आज हम अगर मनुष्य बन गए हैं तो पहले हम भी ऐसे ही थे। इसी तरह से हमारे शरीर थे पहले और इसी तरह से इन शरीरों को धारण करके हम मिटते रहे। **‘क्षता विभिन्नाः मिलिताः निपीडता’** पढ़ा था न! कहाँ पढ़ा था? सामायिक पाठ में, दशलक्षण की बात है महाराज! वह तो भूल गए। उन जीवों को हमने क्या किया? क्षत-विक्षत कर दिया, भिन्न-भिन्न कर दिया, उन्हें घसीट दिया, किसी में मिला दिया, पीड़ित कर दिया और यह सब कृत्य जैसे उन जीवों के साथ होते हैं, ऐसे हमारी आत्मा के साथ भी यह सब कृत्य अनन्तों बार हो चुके हैं। कैसा लग रहा है? विश्वास नहीं होता। अगर विश्वास नहीं होता तो यह भी सोच सकते हो, क्या हम जैसे आज राजा बने बैठे हैं, अनादि काल से हमेशा ऐसे राजा ही बनते आए हैं? हमेशा कोई व्यक्ति राजा बनकर के रह ही नहीं सकता। हमेशा कोई व्यक्ति एक वैभव के साथ

में, एक पुण्य की पर्याय में हमेशा ही बना रहे, ऐसा सम्भव ही नहीं है। क्योंकि उस पुण्य की पर्याय में, उस वैभव के साथ में, पाप अवश्य होगा। शक्ति मिली, शोहरत मिली तो आदमी क्या करता है? तत्त्व का चिन्तन करता है? कि शक्ति मुझसे अलग है, शोहरत मुझसे अलग है। क्या करता है? वही करता है जो आज दुनिया में दिखाई दे रहा है। मोह का संस्कार पड़ा है तो वह अपने उस बल का प्रयोग करेगा।

ऐसे कोई पुद्गल द्रव्य बचे ही नहीं, जिन्हें आपने पहले ग्रहण न किया हो

एक देश का राजा होगा तो दूसरे देश तक को दबाएगा। नहीं चाहेगा तो भी जबरदस्ती युद्ध करेगा। आ मुझसे लड़, जीत कर दिखा...नहीं जीत पायेगा तो फिर मेरी गुलामी स्वीकार कर ले और नहीं तो फिर मुझसे लड़ के दिखा। मुझे जीतना ही है, तो वह जीत ही लेगा। आदमी के अन्दर जब बल आ जाता है, ऐश्वर्य का मद आ जाता है तो वह इसी तरह की प्रवृत्तियाँ करता हैं और यह मोह के कारण से, यह सब करता चला जाता है। जब आपको यह सब मिलेगा तो फिर क्या होगा? आपने दूसरों के साथ अत्याचार किया, दुराचार किया तो क्या होगा? अब उसके परिणाम से कहाँ जाएगा वह जीव? इसी तरह की कुयोनियों में जाएगा, जहाँ उसके अस्तित्व का भी अब कोई ठिकाना नहीं होगा। इसलिए कहा जा रहा है कि अपने शरीर को भी अपने से पृथक् देखो क्योंकि यह शरीर भी बहुत सारे अनन्त संख्या में मिल चुके हैं और अनन्त सागरों के जल से भी इसकी गिनती नहीं की जा सकती...इतने शरीर इस आत्मा ने प्राप्त कर लिए और त्याग दिए। लेकिन एक जन्म का यह शरीर, ऐसा लगता है कि यह मुझे ऐसा कभी मिला नहीं है। लेकिन आचार्य कहते हैं... ऐसा कोई परमाणु, ऐसे कोई शरीर के पुद्गल द्रव्य बचे नहीं है, जिन्हें आपने पहले ग्रहण न किया हो। अब सोचो आप, क्या हमारे लिए नया है?

तत्त्व चिन्तन से ही हमें थोड़ा सा मानसिक, आत्मिक सुख प्राप्त होगा

इसलिए अपने मन के अन्दर जब यह अन्यत्व भावना आती है, तभी अन्यत्व भावना के माध्यम से हम सोच सकते हैं कि हम भीतर से अगर तत्त्व का चिन्तन करेंगे तो मोह की कमी होगी और मोह की कमी होने पर ही हमें थोड़ा सा मानसिक, आत्मिक सुख की प्राप्ति होगी। अगर सुख भीतर का चाहते हो तो यह भावना आपको करनी पड़ेगी क्योंकि धर्म आपको दुःख नहीं देगा, यह विश्वास तो इतना कर ही लेना चाहिए। यह उपदेश, यह ज्ञान, आपको दुःख देने के लिए कि सुख देने के लिए है? मानो अभी सुख नहीं भी लग रहा है तो यह विश्वास तो करना ही पड़ेगा कि यह ज्ञान हमारे लिए दुःखकारी नहीं हो सकता है। अगर आज भी हमारे मन में दुःख आ रहा है तो इसका मतलब है...यह हमारी बुद्धि का भ्रम हो सकता है, मोह हो सकता है। लेकिन अगर हमें वास्तव में सुख की प्राप्ति होगी तो इसी ज्ञान से ही होगी, इसी तरह की भावना करने से ही होगी।

चिन्ता मोह के कारण से या तत्त्व के कारण से

इसलिए आचार्य कहते हैं...जो तत्त्व की भावना है उसको भाओ, मोह की चिन्ता में मत पड़ो। जब भी आपको दुःख होता है...किससे? मेरा बेटा यह नहीं कर रहा, बेटी यह नहीं कर रही, उसके साथ ऐसा हो

गया, उसके साथ वैसा हो गया, यह चिन्ताएँ आपको किससे उत्पन्न हो रही हैं? तत्त्व से? मोह से? कभी आप इस तरह की चिन्ता करते हुए, विचार कर पाते हो कि हम यह क्यों मोह की चिन्ता में पड़े हैं? चिन्ता तो हो गई, बच्चा खेल रहा था accident हो गया, fracture हो गया, चिन्ता हो गई। लेकिन उस चिन्ता के बावजूद भी आपने सोचा कि यह चिन्ता हमारी, मोह के कारण से है या तत्त्व के कारण से है? तत्त्व से होती तो क्या सोचते? कैसे कर्मों के साथ में यहाँ जन्म लिया है, आए दिन हाथ पैर तोड़ता रहता है। नहीं समझ आया? कई बच्चे ऐसे होते हैं, जब से जन्म लिया तब से दवाई खाए जा रहा है। doctor के पास ही ले जाना पड़ता है, ठीक ही नहीं रह पाता है। आपके लिए मोह तो आ रहा है और मोह से आप खूब चिन्ता करके, अपना समय, अपना पैसा, सब खर्च कर रहे हो। लेकिन कभी क्षण भर भी यह चिन्ता नहीं करते कि देखो! कहीं ऐसा तो नहीं, यह जीव जो हमें प्राप्त हुआ है, यह जो हमारा पुत्र आदि बनकर के हमें प्राप्त हुआ है, यह हमारे पिछले कर्मों के कारण से, हमें कष्ट देने के लिए हुआ हो और इसके भी कर्म ऐसे हैं, जो इसको भी कष्ट दे रहे हैं। यह विचार आ जाए तो क्या कहलाएगा? यह तत्त्व चिन्तन कहलाएगा और रोते रहना... महाराज! दुनिया का कोई ऐसा doctor नहीं बचा, कोई ऐसा hospital नहीं बचा, जहाँ हम इसको लेकर के न गए हो, ठीक नहीं हो रहा, ठीक नहीं हो रहा और रोने लग गए तो यह क्या हो रहा है?

मोह सुख दे रहा कि तत्त्व चिन्तन

मोह हमें सुख दे रहा है कि तत्त्व चिन्तन सुख देगा? अगर हम किसी क्षण यह विचार कर पाएँ कि देखो हम चाह रहे थे, हमें पुत्र प्राप्ति हो। पुत्र तो हो गया लेकिन जब से हुआ है, तब से लाखों रुपया बर्बाद हो चुका। हमने कमाया था मेहनत से और कितने लाखों रुपए हम इसके इलाज में लगा चुके हैं और अभी तक यह ठीक भी नहीं हो पा रहा है। आपके मन में कभी क्षण भर भी यह विचार आ सकता है कि देखो! यह संयोग हमारे लिए भी दुःख कारण है और इस जीव के लिए भी कैसे कर्मों का उदय है कि यह खुद भी दुःखी हो रहा है और हो सकता है पिछले जन्म में हमने इसको दुःख दिया हो, इसलिए इस जन्म में यह हमारे साथ उत्पन्न होकर के, अब यह हमको दुःख दे रहा है। यह सब मोह का कारण है और यह सब मोह के कारण से ही इस तरह की यह दुःख की परम्परा चलती है। ऐसा अगर क्षण भर में विचार आ जाए तो और दुःख बढ़ जाएगा? रोने लग जाओगे? क्या होगा? मतलब कि हम शान्त होना या रोना नहीं चाहते, ऐसा भी नहीं चाहते हैं। हमें अच्छा क्या लगता है? रोना ही अच्छा लगता है। किसी के भी पास जाओ, अपनी पीड़ा कहो और रोने लग जाओ, इसी में अच्छा लगता है।

मजा किस में आ रहा है? रोने में

अगर तत्त्व चिन्तन में अच्छा लगेगा तो क्या होगा? रोना भी छूट जाएगा, शान्ति रहेगी। जो भी हो रहा है, उसे आप देखोगे, जितना आप कर सकते हो उसे आप करोगे। लेकिन उसके कारण से परेशान नहीं होंगे। आपको भीतर से सुख मिलेगा कि नहीं मिलेगा अगर तत्त्व का विचार करोगे तो। हमें दुःख हो रहा है तो हम यह जान करके भी कि नहीं! यह दुःख नहीं है! मोह के कारण से हमें दुःख भी दुःख जैसा नहीं लगता। हम रो रहे हैं, दुःखी भी हो रहे हैं; लेकिन फिर भी हम सुखी होने की भावना कर ही नहीं रहे हैं और जो सुख होने की भावना है, उससे हमें डर लग रहा है। ऐसे समय में तत्त्व चिन्तन! वह तो doctor के यहाँ अन्दर

operation theater में पड़ा है, ventilator पर पड़ा है और हम क्या करें? बाहर बैठे-बैठे रोएँ तब तो अच्छा लगेगा। चार लोग खड़े होंगे आसपास तो उन्हें लगेगा कि हाँ! इसको अपने बेटे की चिन्ता है और अगर कहीं वह तत्त्व चिन्तन करने लग गई माँ नहीं समझ में आया? उसको भी डर लगेगा कि लोग क्या सोचेंगे? सोचो! बेटे का अन्दर operation चल रहा हो और आप बाहर खड़े हो तो आप तत्त्व चिन्तन करेंगे कि मोह के कारण से चिल्लाओगे, रोओगे? क्या अच्छा लगेगा आपको, बताओ तो? गले में दर्द होने लगा मेरे। अपनी मानसिकता बताओ...अच्छा क्या लगेगा? लगेगा तो वही अच्छा महाराज! अब वहाँ खड़े होकर के हम बिल्कुल शान्त हो जाएँ! तत्त्व चिन्तन करने लग जाएँ तो यह तो कोई व्यवहारिकता नहीं होगी। वहाँ बैठ कर के तो मुझे, हाँ! जब तक मुझे दो चार लोग पुचकारे नहीं, सहलाए नहीं, मेरे ऊपर हाथ न फेरे, मुझे समझाए नहीं, तब तक अच्छा नहीं लगेगा महाराज! अगर तत्त्व चिन्तन कर लिया तो फिर इसकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी और इसकी जरूरत नहीं पड़ी तो फिर मुझे मजा ही नहीं आएगा। तो मजा किस में आ रहा है? रोने में। दुःख किस में? अच्छा किसमें लग रहा है? सुख में कि दुःख में? मतलब सुख को हम चाहते ही नहीं हैं, यदि देखा जाए। अच्छा हमें किसमें लग रहा है? दुःख में ही अच्छा लग रहा है। मजा हमें रोने में ही आ रहा है। अपनापन हमें मोह के साथ ही लगता है।

देखो कितनी बड़ी विडम्बना है

तत्त्व चिन्तन करते हुए हमें कभी ऐसा लगता ही नहीं कि यह तत्त्व भी हमारा है, धर्म भी हमारा है। इसलिए आचार्य कह रहे हैं...यह अन्यत्व भावना का अभ्यास करते रहोगे तो ऐसी घटनाएँ जब सामने आएँगी तो उस समय पर रो पड़ना, गिर पड़ना, मूर्छित हो जाना, इन जो बीमारियों से, आपके लिए कोई भी तरीके का भीतर से एकदम से, आपके ऊपर आपत्ति आएगी, उससे आप अपने-आप को बचा पाओगे। अपने आप को भी बचाना चाहते हो कि नहीं? नहीं, महाराज! वह चले गए तो उनके साथ हम भी चले जाएँ। चले जाओ तुम भी, उन्हीं के साथ तुम भी अग्नि में कूद पड़ो। आदमी मोह के कारण तो मरना तो चाहता है, जलना भी चाहता है। लेकिन मोह को छोड़कर के सुखी नहीं रहना चाहता है। देखो! यह कितनी बड़ी विडम्बना है। मोह को छोड़कर के अपने अन्दर तत्त्व का चिन्तन नहीं करना चाहता, सुख की प्राप्ति का उपाय नहीं करना चाहता, दुःख की प्राप्ति के लिए तैयार है। उससे कह दो...जल जाओ तो जल जाएगा। सती प्रथा चलती रही पहले, एक जौहर प्रथा चलती रही पहले। कितनी औरतें, राजा होते थे सौ-सौ, दो सौ होती थी पहले तो भी वह सब जल जाती थी। यह धीरे-धीरे रोका गया, यह धीरे-धीरे बन्द हुआ। लेकिन जो मोह के संस्कार हैं, वह तो कभी रुके नहीं और वह रुकेंगे तो कब रुकेंगे? जब आप इस तरह से इत्मीनान से बैठ कर के सोचोगे, सुनोगे, पढ़ोगे, अपने भीतर कोई भावना करोगे तब कोई संस्कार रुकेगा। कौन सा संस्कार? मोह का संस्कार रुक पाना और यह नई अनुप्रेक्षाओं का, तत्त्व चिन्तन का संस्कार आ जाना, यही अपने लिए एक नई शुरुआत होती है और यही आत्मा के लिए हितकारी चीजें होती हैं। इसलिए यह विचार आपके अन्दर आना चाहिए कि मेरा शरीर भी कितनी बार छूट चुका है, मिट चुका है और मैं अपने शरीर को कितनी बार बदल चुका हूँ?

वैसे ही जैसे मैं रोजाना कपड़े बदलता हूँ

वैसे ही जैसे मैं रोजाना कपड़े बदलता हूँ। कपड़े तो फिर भी रखे रहते हैं, महाराज! नियम है हमारा चालीस जोड़ी कपड़े रखने का। लेकिन पहने तो एक जोड़ी हैं तो उनचालीस जोड़ी तो रखे हुए हैं। अब यह शरीर तो रखे हुए मिलेंगे नहीं। यह तो कहाँ गए? सब इसी मिट्टी में मिल गए। इसलिए इन शरीरों के प्रति भी, अगर हम थोड़ा-सा अपनी अन्तरात्मा में देखने की कोशिश करें तो हमारा इस शरीर से भी मोह छूट सकता है। इस तरह के विचार करने से ही शरीर के मोह में कमी आती है। जब शरीर के मोह की कमी नहीं होगी तो आपका कभी भी समाधि-मरण नहीं हो पाएगा। आप समाधि मरण की भावना कर ही नहीं पाएँगे क्योंकि मोही जीव कभी भी समाधि मरण नहीं कर सकता है। एक अच्छा जन्म के साथ में, तत्त्व चिन्तन करते हुए मरण को भी अच्छा बनाना, मोह की वृद्धि के साथ नहीं होगा, मोह की कमी के साथ होगा। एक बार जब इस तरह से कोई अच्छा कार्य जीवन में हो जाएगा तो बस! यही जिन शासन में जन्म लेने का सबसे बड़ा लाभ है और जिन शासन में जन्म लेने का क्या लाभ है? दुनिया में किसी भी धर्म में सम्प्रदाय में जन्म ले लेते।

जिन शासन में आप इस जन्म-मरण के चक्कर से छूट सकते हो

जिन शासन में जन्म लेने का लाभ क्या है? **‘तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गए जाँहि जैहँ सदीव’** कहाँ पढ़ते थे? एक कोई विनती है न...दर्शन पाठ। मतलब हे भगवन्! आपके शासन को सेवन करते हुए, आपके शासन में जिन लोगों ने अपने जीवन को लगाया, आपको समझा, आपको पढ़ा तो क्या हुआ? अनेक जीव इस संसार से मुक्त हो गए, हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। यह किसकी महिमा? यह सिर्फ और सिर्फ जिन शासन की महिमा और किसी शासन में आप इस जन्म-मरण के चक्कर से छूट नहीं सकते हो। यह सिर्फ इसी शासन में सिखाया जाता है, इसलिए यह भावनाएँ तभी आती हैं, जब हमने कुछ पहले समझा हो, तत्त्व ज्ञान हुआ हो। जिन शासन की कितनी बड़ी महिमा है...

वैराग्य और विरक्ति को जिन शासन में परिभाषित किया

जिन शासन की कितनी बड़ी महिमा है... **‘तुम शासन सेय अमेय जीव’ ‘अमेय’** अर्थात् अपरमित जीव, जिनकी कोई संख्या नहीं है, अनन्त अगर सिद्ध हुए हैं तो सिद्ध कैसे हुए? इसी शासन में अपने आप को पूरे के पूरे डूबो करके, इसी तरह के तत्त्व चिन्तन करते हुए, इसी तरह से अपने कई जीवन गुजारते हुए, अपनी आत्मा को इस संसार से मुक्त कर लिए। यह जिन शासन की महिमा कहलाती है। ये चीजें आपको अन्यत्र और कहीं नहीं मिलेंगी इसलिए यह जिन शासन की महिमा में ही ऐसी वैराग्य की बातें आती हैं। बाकी दुनिया में तो आप किसी भी शासन में देख लेना, सब जगह राग की बात मिलेगी, वैराग्य की बात आपको किसी भी धर्म में नहीं मिलेगी। वैराग्य के नाम पर आपको बस यही कहा जाएगा...हाँ भाई! ठीक है, घर में रहकर के भी विरक्ति से रहो, इसी का नाम वैराग्य है। लेकिन विरक्ति से रहें तो कैसे रहें? क्या सोच करके रहें? यह ज्ञान कहीं पर भी नहीं मिलेगा और यह ज्ञान हमें तीर्थकरों ने बहुत अच्छे ढंग से दिया है। बारह-बारह भावनाएँ हैं...किसी भी एक भावना में, आप अपना मन लगाओगे तो आपके अन्दर विरक्ति का भाव भीतर से आने लग जाएगा। इसलिए कहा जाता है हमेशा, भले ही हम दुनिया में सब लोगों के साथ रह रहे हो

गाथा: 48

वियोग में रोती हुई माताओं के आँसुओं का प्रमाण, सागर के जल से अधिक है

णयणोदयं पि तासिं, सागर-सलिलाओ बहुयरं होइ।

गलियं रुयमाणीणं, माऊणं अण्ण-मण्णाणं ॥48॥

अन्वयार्थ- (तासिं अण्ण-मण्णाणं रुयमाणीणं माऊणं) उन, अन्य अन्य 'जन्मों' में, रोती हुई, माताओं का (गलियं) गिरता हुआ (णयण-उदयं) नयनोदक यानी आँखों का पानी (सागर-सलिलाओ) सागर के, जल से (पि) भी (बहुयरं) बहुतर यानी अधिकतर (होइ) होता है ॥48॥

जीव संसार चक्र के अनन्त दुःखों का अन्त मोक्ष पुरुषार्थ से ही कर सकता है

वैराग्य शतक एक ऐसी कृति है, जिसका पता सतना से पहले किसी को भी नहीं था और इस कृति का अभी ढंग से प्रकाशन भी नहीं हुआ है, उस कृति की वाचना चल रही है। जिसमें तरह-तरह के विचार, भाव अपने अन्दर आते हैं और वह आप तक भी प्रेषित किए जाते हैं। यह ऐसे ग्रन्थ होते हैं जिनको पढ़ने की बजाय इन पर चिन्तन और मनन करने से ज्यादा लाभदायक होते हैं। पढ़ने में तो आप पढ़ेंगे तो बहुत जल्दी पूरा पाठ कर जाएँगे। आप कोई भी गाथा पढ़ेंगे बड़ी सरल लगेगी लेकिन जब उस गाथा को हम चिन्तन में लाते हैं, मनन करते हैं और वह चिन्तन-मनन करने के लिए कभी-कभी स्वयं आत्मा की नहीं, अन्य अनेक श्रोताओं की भी जरूरत पड़ती है। क्योंकि चिन्तन-मनन के दो तरीके होते हैं- या तो अकेले बैठ कर के ध्यान में चिन्तन-मनन कर लो और या फिर श्रोताओं के समक्ष बैठ कर के उसका चिन्तन-मनन कर लो। ध्यान में जो चिन्तन-मनन किया जाता है, वह सिर्फ अपने लिए लाभदायक होता है। किन्तु श्रोताओं के बीच में बैठ कर के जो चिन्तन-मनन होता है, वह लाभदायक होता है...अपने लिए भी और सबके लिए भी। इसलिए जो लोग भी सुन रहे हैं, पढ़ रहे हैं, उनको समझ आ रहा है या नहीं आ रहा है, यह तो बीच-बीच में एक पूछने की बात होती है...किन्तु इतना जरूर है कि यह केवल आपकी ही समझ के लिए नहीं है, हम भी बहुत कुछ अपनी समझ के लिए अपने लिए भी पढ़ते रहते हैं। इसी तरह से चिन्तन-मनन करके आपको भी कुछ देने की कोशिश करते हैं। यह केवल आपके लिए नहीं है, यह हमारे लिए भी है। समझ में सबके आना होता है और आने के लिए थोड़ा time लगता है। धीरे-धीरे ही हर चीज समझ में आती है, धीरे-धीरे ही विचार बनते हैं, धीरे-धीरे ही सब मन के विकारों पर नियंत्रण होता है। लेकिन अगर दिशा सामने हो, सही दिशा में गमन करने की एक ललक हो तो यह सभी कार्य आसानी से हो जाते हैं। वैराग्य शतक में इसी तरह की कुछ भावनाएँ जो आप निरन्तर पढ़ते आ रहे हैं...आज काव्य नंबर यह 48, 49 और 50 भी

पढ़ लेते हैं, कम से कम आधा शतक आज हो जाएगा।

**णयणोदयं पि तासिं, सागर-सलिलाओ बहुयरं होइ।
गलियं रुयमाणीणं, माऊणं अण्ण-मण्णाणं ॥48 ॥**

**जं णरए णेरइया, दुहाइं पावंति घोरणंताइं।
तत्तो अणंत-गुणियं, णिगोय-मज्झे दुहं होइ ॥49 ॥**

**तंमि वि णिगोयमज्झे, वसिओ रे जीव! विविहकम्मवसा।
विसहंतो तिक्ख-दुहं, अणंत-पुग्गल-परावत्ते ॥50 ॥**

जीव का अनन्त बार वियोग अनन्त बार माँ के दुःख का कारण बना है

यहाँ कहते हैं... **‘णयणोदयं पि तासिं’ ‘तासिं’ अर्थात् माऊणं। ‘माऊ’ यानी** माता, माता को माऊ कहते हैं। पिता को पिउ कहते हैं और माता को माऊ भी कहते हैं, माया भी कहते हैं। इन माताओं के नैनों का उदक, नैनों का जल, कभी ऐसा भी सुना है? नैनों का भी उदक होता है, नयन जल भी होते हैं... **‘मिले न गंगा का पानी, मिले न यमुना का पानी, चरण चढ़ाने लाए केवल आँखों का पानी’** कभी-कभी बोलते हो न? यह वही आँखों का पानी है। **‘णयणोदयं पि तासिं’** उन माताओं का यह नैनों का जल ‘अण्ण-मण्णाणं’ यानी अन्य-अन्य उन माताओं का यह अश्रु जल जो **‘रुयमाणीणं गलियं’** जो रोती हुई होती है, उनका वह जल इतना गल चुका होता है, इतना बह चुका है कि **‘सागर-सलिलाओ बहुयरं होइ’** कि सागर के जल से भी वह बहुत अधिक हो गया है। क्या कहना चाहते हैं? पिछले जन्मों में हमने इतने देह प्राप्त किए हैं और इतना हमारा देह का मरण होने पर माताओं का विलाप हुआ है कि उन माताओं के विलाप का अगर वह अश्रु जल देखा जाए तो सागर के जल से भी बहुत ज्यादा हो जाए। यानी इस जीव ने पिछले जन्मों में इतना माताओं को रुलाया है कि उनके अश्रु जल से सागर का जल भी कम पड़ता है और उनके अश्रु जल ज्यादा हो जाते हैं। यह कैसे होता है? बच्चे का जन्म होता है। जन्म होने के बाद ऐसा भी हो जाता है कि बच्चे का मरण पहले हो जाता है और माँ रोती ही रह जाती है। इस तरह के मरण होने पर भी माँ के लिए जो विलाप होता है, जो दुःख होता है, उसकी आँखों से जो आँसू आते हैं उन आँसुओं की अगर संख्या देखी जाए तो यहाँ आचार्य कहते हैं...कि वह भी सागर से ज्यादा आँसुओं का ढेर लग चुका है, इतने हमने जन्मों में माँओं को रुलाया है। माँओं के रोने के कई कारण हो सकते हैं। जब आपका जन्म होता है, बच्चे का जन्म होता है, तब भी माँ रोती है कष्ट होता है और जब बच्चे के लिए किसी भी तरह से रोग हो जाते हैं, किसी भी तरह से बच्चे को दुःख होता है, पीड़ा होती है तब भी माँ रो जाती है और जब बच्चे का कोई आकस्मिक मरण हो जाता है तब भी माँ रो जाती है। यानी कि कोई भी जातक होता है वह जन्म लेने के बाद में उन माँओं के लिए भी दुःख का कारण बन जाता है। कष्ट की कोई सीमा नहीं होती लेकिन वह कष्ट जब कहे नहीं जाते तो इस तरह से यहाँ पर समझे जाते हैं, जो यहाँ आचार्य कहते हैं। मोह के कारण से हम अनेक तरह के

विलाप कर लेते हैं, अनेक तरह से हम रो लेते हैं। किन्तु वह जो जीव चला गया होता है, उसका जो मरण हो जाता है, वह कहीं न कहीं फिर किसी माँ के गर्भ में पहुँच जाता है। वह फिर किसी न किसी के लिए दुःख का कारण बन जाता है और यह एक परम्परा भी निरन्तर चलती रहती है। इसी दुःख को ध्यान में रखते हुए यहाँ पर आपको याद दिलाया जा रहा है कि हम इतनी बार गर्भ में आए हैं, इतनी बार जन्म लिए हैं, इतनी बार हमारे जन्मों का बीच में ऐसा मरण हुआ है कि उसके कारण से अनेक माँओं के लिए बहुत दुःख मिला है और यह दुःख हमने दिए हैं।

प्रयास ऐसा हो कि भविष्य में यह जीव किसी के दुःख का कारण न बने

अब इन दुःखों को अगर हम थोड़ा सा यथार्थ रूप में माने तो हमारे अन्दर कोई भाव उत्पन्न हो सकता है कि अगर हमने किसी को दुःख दिया है तो हे भगवन्! आगे हम किसी को दुःख न दे। अगर हमारे अन्दर यह विचार आता है कि इस तरह का दुःख भी हम दे चुके हैं और हम देने का मतलब कि हमारी आत्मा दे चुकी है। इसी तरह से राग के कारण कोई चिपकने वाला न मिले तो वह सोचता है मैं दुनिया में सबसे बड़ा अनाथ व्यक्ति हूँ, मैं दुनिया में सबसे ज्यादा दुःखी व्यक्ति हूँ कि कोई मुझसे चिपकता नहीं। मेरा दुर्भाग्य है कि कोई मेरे पास बैठता नहीं। बार-बार सोचेगा कि मेरे अन्दर कौन सा वह दुर्भाग्य है जिसके कारण से कोई मुझे अपने पास बिठाता नहीं। आप देखो ऐसे भी बच्चे होते हैं, जिनको पास में बिठा कर के उन्हें गोदी में बिठाने का मन होता है और कुछ ऐसे भी बच्चे होते हैं जिन्हें पास में बैठने पर भी उनसे कहना पड़ता है...भाई दूर बैठना। क्यों? आपका राग किसी न किसी रूप में जिस बच्चे के प्रति होगा उसको आप पकड़ोगे और जिसके प्रति आपका राग नहीं है, उससे आप कोई मतलब नहीं रखोगे। राग को आप बढ़ाते भी हो, राग को आप पुष्ट भी करते हो, राग का आप रूपांतरण भी कर लेते हो। यह राग के रूपांतरण हैं...बहन के प्रति राग, पत्नी के प्रति राग, माँ के प्रति राग, यह राग के रूपांतरण हैं, राग नहीं बदला।

राग के कारण आत्मा पुनः पुनः जन्म लेता है

वह राग जो आत्मा के अन्दर स्थित है, राग का वह परिणाम जो आत्मा में बना रहता है, वह हमेशा इस तरह के जन्म हमें कराता रहेगा, जिस जन्म के कारण से हमारे राग की पूर्ति होने का कोई न कोई उसे मौका मिलता रहे। माँओं के गर्भ में जन्म होने का कारण क्या? हम कैसे रोकेँगे कि किसी माँ के गर्भ में अब हमारा जन्म न हो? यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जब आप सोचोगे तो आपके लिए यही उत्तर मिलेगा...आपको स्त्री से राग छोड़ना पड़ेगा। अभी स्त्रियों के लिए कुछ नहीं कह रहा मैं, अभी पुरुषों के लिए कहा जा रहा है...पुरुषों को स्त्रियों से राग छोड़ना पड़ेगा। क्योंकि पुरुष को अगर माँ के गर्भ में उत्पन्न होना है तो वह उत्पन्न होने का कारण उनके प्रति राग है। अब स्त्रियाँ पूछ सकती हैं...हमारा माँ के गर्भ में जन्म लेने का कारण क्या हो सकता है? बेटियाँ भी तो जन्म लेती हैं, बेटियों का माँ के प्रति क्या भाव आएगा? भाव वही राग का आएगा। बेटियों का भी माँ के प्रति राग होता है, बेटों का भी माँ के प्रति राग होता है। वह राग ही बार-बार आपको गर्भ में जन्म दिलाने का कारण बनेगा। जब वह राग हमें जन्म दिलाता है तो उसी के माध्यम से वह आत्मा जब अपने सम्बन्ध बना लेता है और उन सम्बन्धों में तरह-तरह से वह अपने राग का पोषण करता है तो राग की कहीं पर भी कमी नहीं होती है बल्कि उस राग को वह पुष्ट करता रहता है। आचार्य कहते हैं...

जन्म जन्मांतरों में हमने खूब राग ही पुष्ट किया है और इसी राग का यह परिणाम है कि अगर हम उन माँओं के गर्भों को देखें या उनके विलाप को देखें, उनके रुदन को देखें तो हमें तरस आ जाना चाहिए। हमारे मन में विचार आ जाना चाहिए कि हम बहुत माँओं को दुःखी कर चुके हैं।

वैराग्य अन्ततः दुःख का कारण नहीं, अनन्त सुख की ओर बढ़ते कदम है

जब भगवान महावीर स्वामी अपनी माँ त्रिशला को छोड़ते हैं तो माँ त्रिशला रोती है। कहती है... 'बेटा! मैंने तुझे इतना पाला-पोसा, बड़ा किया, मेरा एक ही तू बेटा था और तू भी मुझे छोड़कर जाने लगा'। वह महावीर भगवान उस समय पर क्या सोच रहे हैं? यह पता है आपको? उन्होंने अपनी माँ को क्या समझाया? उन्होंने अपनी माँ को क्या प्रति उत्तर दिया? उन्हें दिख रहा है कि माँ रो रही है और सामान्य से कोई भी व्यक्ति देखेगा तो कहेगा... देखो! कितना निर्दयी व्यक्ति है, माँ को रुला कर जा रहा है? क्या सुख मिलेगा इसको जो अपनी माँ को दुःख दे रहा है? कौन सा पुण्य कमाएगा जो अपनी माँ को विलाप करता हुआ छोड़ करके जा रहा है? कोई भी दार्शनिक होगा या कोई भी दूसरा सहृदय व्यक्ति होगा वह अपने आप यह सोच लेगा कि इस तरह का भाव सही नहीं है। यह कौन सा सन्यास है? यह कौन सा आत्म कल्याण है? जिसमें आप दूसरे को पहले दुःखी बनाते हो और इतने स्वार्थी बन जाते हो कि आपको जिससे जन्म मिला है, उसकी भी आप चिन्ता नहीं करते हो। इस तरह के प्रश्न कई बच्चे भी सोच सकते हैं, करते भी हैं। जिन्होंने आपको जन्म दिया आप उन्हीं को रोता-बिलखता छोड़ गए। उन्होंने आपको जन्म दिया था, आप उनके लिए बुढ़ापे में कम से कम सहारा बनते, माँ की तरह उनका पालन करते, अब वह माँ पिता अलग अकेले बिलखते रहेंगे, रोते रहेंगे... किसके सहारे जीएंगे? यह कौन सा सन्यास है? यह कौन सा धर्म है? यह कौन सा कल्याण, आत्म कल्याण की भावना है? और वह धर्म कैसा जिसमें आप दूसरों को दुःखी बना रहे हो। धर्म कभी किसी को दुःखी तो नहीं बनाता और आप दुःख देकर के जा रहे हो। एक माँ भी यह बात पुत्र से कह सकती है, त्रिशला ने भी यह बात महावीर भगवान से कही। जितने भी लोग आसपास खड़े थे, जिनको भी यह पता था कि महावीर छोड़ कर के जा रहे हैं... उनके मन में भी यही विचार था कि महावीर गलत कर रहे हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। माँ को अकेले छोड़कर के जाना और वह भी तब जब माँ को तुम्हारी जरूरत है क्योंकि आप युवा हो गए। माँ के लिए उस युवावस्था में ही तुम्हारे सहारे की जरूरत है और वह तभी देखना चाहती है कि बेटा युवा हो गया है अब इसके माध्यम से हमारे लिए सुःख मिलेगा और वह सुःख उसको तो मिल नहीं रहा उल्टा तुम उसे दुःख देकर के जा रहे हो। क्या उत्तर है बताइए? आप पंचकल्याणक कराते हो, यह scene आपके सामने आते हैं। भले यह बात अलग होती है कि उस समय पर प्रतिष्ठाचार्य को कहना पड़ता है माँ थोड़ा सा रो लो! लोग देख रहे हैं। कभी-कभी माँ को रोना नहीं आता है तो फिर वह रोने लग जाती है। रोने का थोड़ा सा उसे drama करना पड़ता है। कभी-कभी वास्तव में भी रोना आ जाता है। वह विचार उस पर निर्भर करता है कि वह कितनी तरह से उससे attach हुई है।

आत्म कल्याण के लिए घर-सगे-संबंधी छोड़ना एक बार का दुःख है बार-बार दुःखी होने

अब अगर वह बालक जा रहा है माँ रो रही है और आप लोग सब देख रहे हो तो जो नई पीढ़ी के लिए बच्चे हैं यह भी सोचते हैं... यह क्या है? इसको यह लोग अच्छा क्यों मान रहे हैं? यह धर्म कैसे हो सकता है जो

आप अपने ही लोगों को दुःखी बना रहे हो? आप कहते हो धर्म सबको सुखी बनाने के लिए दया धर्म है करुणा धर्म है। आपको अपनी माँ पर तो करुणा नहीं आ रही किस पर करुणा करने जाओगे? अपने पिता पर तो करुणा नहीं आ रही। जिन्होंने इतना बड़ा किया और सोचने के बाद में कि भाई यह बेटा इतना पढ़ लिखने के बाद में कोई अच्छा काम करेगा, मेरा नाम करेगा, वह तो कुछ हुआ नहीं। उनको उनके हाल पर छोड़ दिया और श्रीमान जी चलते बने। यह कौन सा करुणा धर्म है? यह कौन सा आत्म कल्याण का धर्म है? यह कैसे समझाया जाए? आपके पास इसका उत्तर क्या हो सकता है? जब कोई बेटा आपसे पूछे कि यह लोग जो सन्यास लेते हैं अपनी युवावस्था में घर छोड़कर के चले जाते हैं, माता-पिता को दुःखी कर जाते हैं, यह धार्मिक कैसे हो सकते हैं? जो अपनी माता-पिता की कभी खबर नहीं लेते उनके के लिए कितना दुःख हो रहा है? कितना उनके लिए परेशानियाँ हो रही है उसकी चिन्ता भी नहीं करते और घर छोड़ कर निकल जाते हैं, समाज में रह आते हैं। सबका ध्यान रखते हैं लेकिन उनका ध्यान नहीं रखते जिनसे जन्म लिया। सबके लिए कुछ न कुछ बता देंगे इस तरह से हाँ! अपना आत्म कल्याण करने के लिए यह करो, तुम्हें कोई दुःख आ गया है तो यह करो लो। वह अगर दुःख के बारे में कुछ पूछने आते हैं उन्हें कुछ नहीं बताते। क्यों? यह कौन सा निष्ठुर भाव है? यह कौन सा दया का भाव है? यह तो निष्ठुर पना हुआ न!

भगवान महावीर का वैराग्य

भगवान महावीर स्वामी के सामने भी यही दिक्कत थी। राजकुमार थे वह और वह तो माता-पिता के अकेले ही सन्तान होते हैं। अब जब त्रिशला कह रही है कि तुम्हारे अलावा मेरा कोई नहीं है, कुछ विचार तो करो। क्यों छोड़ कर के जा रहे हो? क्या कमी है यहाँ पर? कमी तो यहाँ कुछ नहीं है। सुःख की भी कोई कमी नहीं है, वैभव की भी कोई कमी नहीं है। कमी यहाँ कुछ नहीं है, प्रेम की भी कोई कमी नहीं है, स्नेह की भी कोई कमी नहीं है, सब कुछ भरपूर है। अब कमी कहाँ है? कमी वहाँ है जहाँ हमें दिखाई दे रही है? विचार यह है कि आज इस दुनिया को केवल एक माँ दिखाई दे रही है जिस माँ को हम रुला रहे हैं लेकिन इस दुनिया की आँखों में वह असंख्यात माँएँ नहीं दिखाई दे रही हैं जिनको हम पहले रुला चुके हैं। आज हम एक माँ को रुला कर के जो आगे भी आने वाली और असंख्यात माँएँ होंगी, उनको रुलाने से हम बचाने का प्रयास करने जा रहे हैं इसलिए हम एक माँ को रुला कर के घर छोड़ कर के निकल के जा रहे हैं। ताकि आगे फिर किसी माँ को इस तरह से रोना न पड़े, अब अगर आगे रोना नहीं पड़ेगा तो एक बार तो रोना पड़ेगा। लेकिन एक बार का रोना और बार-बार का रोना!...बताओ अगर आपके सामने कोई option तो कौन सा choose करोगे? बार-बार का रोना अच्छा है कि एक बार का रोना अच्छा है? कभी-कभी जब आप कोई भी चीजें खरीद करके लाते हो दुकान से सस्ती ले आते हो तो घर में लोग जो समझदार होते हैं, वे कहते हैं ले तो आए लेकिन यह ज़्यादा दिन चलने वाली नहीं है। एक बार लाते थोड़ा सा पैसा उससे double भी लग जाता, डबोड़ा भी लग जाता, कोई बात नहीं लेकिन वह चलती तो चीज बहुत देर तक। फिर कहना पड़ता है... **‘सस्ता रोए बार-बार और महंगा रोए एक बार’**। जो आप रो रहे हो, रुला रहे हो, रोने से बचा रहे हो, यह आपका सस्ता रोना है। हमारी माँ को दुःख न हो जाए, माँ के लिए हम बुढ़ापे में सहारे बने रहे हैं, यह आपका सस्ता वाला रोना है। आप तब भी रोओगे वह तब भी रोएगी। जब आप उसकी सेवा में होंगे तो भी वह रोएगी क्योंकि अगर तुम नहीं छोड़ कर जा रहे हो, वह छोड़ कर जाएगी तो वह रोएगी कि बेटा! मुझे तुझे छोड़ के जाना पड़ रहा है। नहीं समझे? जब तुम नहीं गए तो वह जाएगी और जब वह छोड़ कर के

जाएगी तो वह रोएगी...बेटा! अब मेरा time हो गया है, मेरा समय आ गया है। तुम इस घर को देखना, बच्चों की सम्भाल करना, व्यापार अच्छे से चलाना, जो संस्कार दिए हैं उन संस्कारों को बनाए रखना। बेटा! मैं जा रही हूँ तो वह रो रही है, रोना तो चल ही रहा है। अब यह रोना कौन सा है? यह सस्ता वाला रोना है। सस्ता रोए बार-बार और महँगा रोए एक बार, एक बार थोड़ा महँगा चीज खरीद लो। एक बार थोड़ी सी महँगाई के साथ में पुण्य लगा कर के उस कार्य को कर लो। एक बार अगर आपने उस अच्छी चीज को खरीद लिया तो यह बार-बार जो रोने का झंझट है, छूट जाएगा। यह बात किसके मन में थी? महावीर भगवान के मन में। इसलिए उन्होंने सोचा आज यह केवल त्रिशला रो रही है, हमें दिख रहा है कि पीछे ऐसी अनेक त्रिशलाओं को हम रुला कर के आए हैं और अगर हम आज भी यही खड़े-खड़े इसे मनाने लग जाएँगे और इसकी आँसुओं में अगर हम बह जाएँगे, तो आगे फिर हमें अनेक माँओं के आँसुओं को फिर हमें बहाना पड़ेगा। इसलिए मुझे आगे किन्हीं माँओं के आँसुओं को न बहाना पड़े इसलिए एक बार इस माँ के बह जाने दो। यह विचार आया, किसके अन्दर? महावीर भगवान के अन्दर। क्यों कहना पड़ता है यह बात कि माता-पिता को छोड़कर के भी, राग को छोड़कर के भी आप जब जाते हो तो आपको दुःख होता है कि नहीं होता? वह दुःख भी सस्ता वाला दुःख है। वह दुःख थोड़ा वाला दुःख है। एक बार वह थोड़ा दुःख हो जाए हो जाने दो लेकिन आगे अगर दुःख से बचते हैं तो उसके लिए एक बार आपको कोई न कोई दुःख इस तरह से किसी न किसी को देना ही पड़ेगा। क्योंकि दुःख के सागर में से निकलने के लिए भी आपको किसी न किसी को दुःखी एक बार बनाना ही पड़ेगा। लेकिन उसके कारण से फिर आप हमेशा के लिए दुःख के सागर से निकल जाओगे। यह दुःख से निकलने का तरीका है और अगर नहीं निकलते हैं तो जानते हो क्या होता है?

गाथा: 49

नरकों के दुःख से भी अनन्तगुणा दुःख, निगोद में होता है

जं णरए णेरइया, दुहाइं पावंति घोरणंताइं।
तत्तो अणंत-गुणियं, णिगोय-मज्झे दुहं होइ ॥49॥

अन्वयार्थ- (णरए) नरक में (णेरइया) नारकी 'जीव' (जं) जिन (घोर-अणंताइं दुहाइं) घोर यानी भयंकर, अनन्त, दुःखों को (पावंति) पाते हैं (तत्तो) उससे 'भी' (अणंत-गुणियं दुहं) अनन्त-गुणित, दुःख (णिगोय- मज्झे) निगोद के, मध्य में (होइ) होता है ॥49॥

गाथा: 50

कर्मों के वशीभूत हुआ जीव, निगोद में निवास करता है

तंमि वि णिगोयमज्झे, वसिओ रे जीव! विविहकम्मवसा।
विसहंतो तिक्ख-दुहं, अणंत-पुग्गल-परावत्ते ॥50॥

अन्वयार्थ- (रे जीव!) हे आत्मन्! (विविह-कम्म-वसा) विविध, कर्मों के, वशीभूत 'जीव' (अणंत पुग्गल-परावत्ते) अनन्त-पुद्गल-परावर्तन 'काल पर्यंत' (तिक्ख-दुहं) तीव्र दुःख को (वि-सहंतो) विशेषरूप से, सहता हुआ (वि) भी (तंमि णिगोय-मज्झे) उस, निगोद के, मध्य में (वसिओ) बसता है यानी रहता है ॥50॥

यह आगे की दो गाथाएँ हैं, यह बहुत बड़ा सत्य है जो हमारे सामने आ रहा है। कहते हैं... 'जं णरए णेरइया दुहाइं पावंति घोरणंताइं' आपने तो अभी मनुष्य पर्याय में थोड़ा सा दुःख दिया लेकिन इस दुःख को बचाए रखने के लिए आपने पाप बहुत कर लिया। कोई मेरे घर का सदस्य दुःखी न हो जाए इसलिए आपने खूब पाप कर लिया। पाप करने के उपरान्त क्या होगा? उनको तो दुःख नहीं हुआ लेकिन जो पाप किया, उस पाप के कारण से अब एक नया दुःख आपके सामने आ गया। पाप को भोगने कहाँ जाएँगे? नरकों में,

तिर्यचों में। नरक गति में जन्म हुआ, वह नरक गति में भी दुःख बढ़ता रहा, बढ़ता रहा, वहाँ पर भी बहुत दुःख भोगे जाते हैं लेकिन उन दुःखों का भी अन्त वहाँ पर नहीं होता। जीव वहाँ से भी निकलता है और वहाँ से निकलने के बाद में फिर वहाँ तिर्यच पर्यायों में खूब भ्रमण करता है। जैसे-जैसे उसका पुण्य कम होता चला जाता है, जैसे-जैसे उसकी आत्मा पर पाप का बोझ बढ़ता चला जाता है, उसे पंचेन्द्रिय से चार इन्द्रिय, चार इन्द्रिय से तीन इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय से दो इन्द्रिय, दो इन्द्रिय से भी एक इन्द्रिय तक का यह पूरा उसका graph नीचे उतरता चला जाता है, demotion होता चला जाता है।

नारकियों से भी अधिक दुःख जीव निगोद में प्राप्त करता है

नारकी फिर भी पंचेन्द्रिय है लेकिन वहाँ पर एक बहुत अच्छी बात कही गई है। वैराग्य शतक इस ग्रन्थ में सिद्धान्त की बातें आती नहीं है लेकिन एक सिद्धान्त की बात यह पहली बार आई है। जो वहाँ बताया जा रहा है कि नरक में यह जीव जो दुःख प्राप्त करता है, उससे भी अनन्त गुणा जीव दुःख निगोद में प्राप्त कर लेता है। यह बात आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य में भी लिखी नहीं मिलती और यह बड़े-बड़े महान आचार्यों के ग्रन्थ में लिखी बात नहीं मिलती, जो यह बात इस वैराग्य शतक ग्रन्थ में लिखी मिली है आज यह भी भगवान शान्तिनाथ का अतिशय है। नारकियों से ज्यादा दुःख किसको? निगोद जीवों को। यह निगोद क्या है? नई छहढाला की पहली ढाल जब पढ़ोगे तो समझ में आएगा। यह वह निगोद जीव हैं जो एक श्वास के 18वें भाग में जन्म लेकर के मरण कर लेते हैं। मतलब श्वास का 18वां भाग ही इनकी आयु होती है और इन्हें मरना होता है, फिर आयु बंध करके मरण को प्राप्त हो जाते हैं, फिर जन्म हो जाता है। मात्र एक इन्द्रिय, अनन्त जीवों का एक शरीर, एक के मरने पर अनन्तों का मरण, एक की श्वास या पर्याप्तियाँ होने पर अनन्तों की पर्याप्तियाँ और एक का शरीर ग्रहण करने पर अनन्तों का शरीर ग्रहण। आचार्य कहते हैं कि नारकियों से ज्यादा भी दुःख तिर्यच पर्याय, निगोद पर्याय में है क्योंकि वहाँ पर एक जीव का एक शरीर भी नहीं है। एक जीव का अपना-अपना शरीर जो होना चाहिए, वह भी उसे उपलब्ध नहीं है। इतनी ज्यादा, कहना चाहिए, गिरावट आ गई भावों में और यही वह जगह है जहाँ पर अनन्त काल तक रहा जा सकता है। बाकी कोई भी ऐसी पंचेन्द्रिय की पर्याय नहीं जो अनन्त काल तक रहा जा सके। क्योंकि नारकियों की अधिकतम आयु 33 सागर, लगातार भी सप्तम नरक में आप 10 बार जन्म नहीं ले सकते हैं यह भी नियम है। सप्तम नरक में लगातार बस दूसरी बार जाएगा, फिर उसका परिवर्तन कहीं न कहीं हो जाएगा। फिर बाद में जा सकता है लेकिन लगातार मतलब बीच में कोई तिर्यच आदि पर्याय में जन्म लेकर के पुनः वह नरक में चला गया, फिर तिर्यच में जन्म लेकर के पुनः सप्तम नरक में चला जाए, ऐसा नहीं होगा, लगातार तीन बार भी नहीं होगा, सप्तम नरक में। तब क्या करना पड़ता है? इन दुःखों को प्राप्त करके जो यह पाप कर्म का बंद अपने अन्दर आत्मा कर लेता है, तो इसे भोगने के लिए इसे निगोद जैसी जगहों पर निगोद पर्याय में उत्पन्न होना पड़ता है। जहाँ पर अनन्त जीवों को एक शरीर मिलता है और श्वास के 18वें भाग में जन्म लेकर के वह मरण कर लेता है। इतना दुःख है कि आचार्य कहते हैं... **‘भाव कलंक सुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति’** सिद्धान्त ग्रन्थों में बताया गया है कि उनके अन्दर भावों में इतनी कषायों की प्रचुरता है, इतना कलंक उनके भावों में जुड़ा हुआ है कि उसके कारण से वह निगोद पर्याय को आसानी से छोड़ नहीं पाते। नारकी पर्याय तो छूट जाएगी, तैंतीस सागर की आयु है, कुछ असंख्यात वर्ष की आयु है। लेकिन यह अनन्त काल रहने का स्थान अगर कोई जीव के लिए मिलता है तो वह निगोद स्थान है। तिर्यच गति का यह स्थान कहलाता

है और यहाँ पर होने वाले दुःख नारकियों से भी ज्यादा हैं, ऐसा आचार्य कह रहे हैं। इसलिए भी कहा जा सकता है क्योंकि नारकियों में तो फिर भी आयु अधिक है। व्यक्ति को सबसे ज्यादा दुःख किसका होता है? मरने का, जन्म लेने का। आप सोचो कि श्वास का 18वाँ भाग क्या होता है, जो हम एक श्वास लेते हैं अगर इतना भी मोटी-मोटी श्वास मानी जाए, उसके 18 portion कर लो। एक 18वाँ भाग, उतने में उसका जन्म होना है और मरण भी हो जाना है। यानी जन्म ले नहीं पाया, मर गया, जन्म ले नहीं पाया, मर गया, जन्म ले नहीं पाया, मर गया, यह सबसे बड़ा दुःख है। जन्म लेने के बाद किसी भी तरह के जन्म में अगर वह थोड़ा बहुत जी लेता है, तो भी उसको कुछ सुःख मिलता ही है। लेकिन जन्म के तुरन्त बाद जन्म लेते ही उस को मरण हो जाए तो सबसे ज्यादा दुःखद घटना होती है। इसलिए आचार्य कहते हैं...नारकियों से भी अनन्त गुणा दुःख कहाँ होता है? निगोदवास में होता है और ऐसे निगोदवास में अपने कर्मों के कारण से, यह जीव तीव्र दुःखों को सहन करते हुए अनन्त पुद्गल परावर्तनों को प्राप्त कर चुका है। यानी ऐसे निगोद में अनन्त काल तक रहना हुआ है और निगोद से निकलने के बावजूद भी फिर यह पुद्गल परावर्तन पूरे हो जाते हैं तो फिर से निगोद में ही जाना पड़ता है। यानी एक चक्र है और उस चक्र में अगर आप अपना पुरुषार्थ करके अगर उससे बाहर निकलने की कोशिश नहीं की तो यह चक्र घूमते हुए आप पुनः वहीं पहुँचोगे जहाँ से निकल कर के आए। यह बात निश्चित है जो भी यहाँ संसार में बड़े जीव दिखाई देते हैं, जिन्हें हम पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं वह सब निगोद से ही निकल कर के यहाँ आते हैं क्योंकि निगोद जीव तो आपको दिखाई नहीं देते। जो भी जीव यहाँ है, इसे व्यवहार राशि कहा जाता है। इस व्यवहार राशि में रहने वाले जितने भी जीव हैं, सब कहाँ से आते हैं? सब निगोद से आते हैं और इनका जब यह परावर्तन पूरा हो जाता है तो इन्हें फिर से निगोद में जाना ही पड़ता है। परावर्तन वहीं पर जाकर के खत्म होगा।

मोक्ष पुरुषार्थ करके ही जीव निगोद के दुःख से बच सकता है

परावर्तन यानी चक्र, द्रव्य परावर्तन का चक्र, कभी काल परावर्तन का चक्र, कभी क्षेत्र परावर्तन का चक्र, भाव परावर्तन का चक्र, भव परावर्तन का चक्र, यह परावर्तन के चक्र पाँच हैं। यह परावर्तन जहाँ से शुरू हुए वहीं पर जा करके पूर्ण होते हैं। फिर निगोद में इस जीव को अनन्त काल तक रहना ही होता है। मतलब अगर आप यह सोचो कि भाई थोड़े-थोड़े अच्छे-अच्छे काम करते रहो, मनुष्य पर्याय मिलती रहेगी, अपना काम चलता रहेगा काहे को हम मोक्ष वोक्ष के चक्कर में पड़े। अगर आपका ऐसा भाव हो तो मैं बता देता हूँ...भ्रम में नहीं रहना। मनुष्य पर्याय मिल जाएगी, थोड़ा दान पुण्य कर लो, थोड़े अच्छे काम कर लो, मनुष्य पर्याय मिल जाएगी, अच्छे ढंग से हम पुण्य के साथ जीते रहेंगे, काहे को हम मोक्ष वोक्ष के चक्कर में पड़े। क्यों? क्या होगा? आपको मनुष्य पर्याय कितनी बार मिलेगी? ज्यादा नहीं मिल सकती है। हमेशा मनुष्य पर्याय में आप रह ही नहीं सकते हो और मनुष्य पर्याय में रह कर के आप अगर पुण्य के साथ रहते हो तो उससे भी पाप का बंध करोगे और पाप का बंध करोगे तो पुनः तिर्यच पर्यायों में जाना ही पड़ेगा, नरक पर्यायों में जाना ही पड़ेगा। आज हम इतना सोच सकते हैं लेकिन अगली पर्याय में तो हम यह नहीं सोच सकते कि हम यह सोचकर के यहाँ आए थे...भाई आदमी अच्छे बने रहो कम से कम मनुष्य पर्याय में जन्म मिलता रहे। यह सोच आपकी आज हो सकती है लेकिन इस मनुष्य पर्याय में भी जो जीव आपका समय गुजर रहा है यह सब count हो रहा है। पंचेन्द्रिय पर्याय का भी एक fixed काल है। वह काल पूरा होने पर आपको पंचेन्द्रिय पर्याय में जन्म मिलेगा ही नहीं। कहाँ मिलेगा? अब पंचेन्द्रिय को छोड़ दो, चार इन्द्रिय,

तीन इन्द्रिय कोई भी पर्याय मिल सकती है क्योंकि पंचेन्द्रिय पर्याय का एक काल निश्चित है। कोई नारकी भी हमेशा नहीं रह सकता, देव भी हमेशा नहीं रह सकता, पंचेन्द्रिय मनुष्य भी या तिर्यच भी हमेशा नहीं रह सकता, उसमें रहने का भी एक निश्चित काल है। इसी तरीके से त्रस पर्याय का भी निश्चित काल है। त्रस मतलब? दो इन्द्रिय से लेकर के पाँच इन्द्रिय तक, त्रस पर्याय का भी एक निश्चित काल है। उस त्रस पर्याय के काल को अगर आपने ऐसे ही घूमते-घूमते पूरा कर लिया तो स्थावर पर्याय में जाना निश्चित है और यह निगोद पर्याय कहाँ होती है? यह स्थावरों में ही होती है। तिर्यच गति में ही होती है। एक इन्द्रिय की यह पर्याय है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में निगोद नहीं होता है। वनस्पति की यह एक quality है- निगोद पर्याय! जिसे क्या कहा गया? साधारण वनस्पति के नाम से शास्त्रों में कहा गया। यह एक time है, वह बताया गया जैसे मान लो 2000 सागर का काल बताया। यह दो हजार सागर का काल अगर पूरा हो गया तो वह नियम से फिर वह इन स्थावर पर्याय को प्राप्त कर लेगा। यह सिद्धान्त अगर हम ध्यान में रखें तो हमारे इधर-उधर गर्दन घुमाने की या जैसे हमारी गर्दन फँसी हुई हो तो उस गर्दन को इधर-उधर करने की भी कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।

मोक्ष पर्याय प्राप्त करने का भाव करके मोक्ष पुरुषार्थ करना चाहिए

अगर इस निगोद पर्याय से बचने का भाव आएगा तो आचार्य कहते हैं...तभी सम्भव है जब आप इस मनुष्य पर्याय में मोक्ष पर्याय को प्राप्त करने के लिए मोक्ष पुरुषार्थ करने का आप भाव करो। नहीं तो क्या होगा? पंचेन्द्रिय का time भी पूरा हो जाएगा, त्रस पर्याय का time भी भ्रमण करते-करते पूरा हो जाएगा और त्रस पर्याय का time पूरा होने का मतलब? वह cycle अगर पूरी हो गई तो कहाँ जाना है? नियम से स्थावर में जाना है। यह परावर्तन है, यह चक्र है। यह हमारी मर्जी से चलने वाला चक्र नहीं है कि हम हमेशा चाहे हर जन्म में थोड़ा बहुत दान पुण्य करते रहेंगे, देव बन जाएँगे, फिर आएँगे, मनुष्य बन जाएँगे। फिर थोड़ा सा दान पुण्य कर लेंगे, फिर देव बन जाएँगे। काहे को महाराज हम यह सन्यास के चक्कर में और यह सब मोक्ष पुरुषार्थ के चक्कर में पड़े। ऐसा भी सोच लेते हैं कभी पढ़े-लिखे लोग। हाँ! अब तो आप ज़्यादा पढ़े-लिखे नहीं हो इसलिए ज़्यादा नहीं सोच पाते होंगे। लेकिन थोड़ा सा भी पढ़ोगे या सोचोगे तो आपको लगेगा कि हाँ! ऐसा भी सम्भव है। जब ऐसा होगा तो फिर क्या होगा? तब यह विचार आता है, सिद्धान्त ग्रन्थों में लिखा रहता है...पंचेन्द्रिय पर्याय का भी काल निश्चित है और त्रस पर्याय का भी काल निश्चित है। अगर बीच में यह पंचेन्द्रिय आदि पर्यायों में हमने कोई अच्छा पुरुषार्थ नहीं किया तो नियम से अगली पर्यायों में चार इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदि में जन्म लेना निश्चित है।

संसार चक्र की तीव्रता राग से है—वैराग्य राग को कम करता है

यह ज्ञान अगर संसार को नहीं होगा तो आप इस पर्याय में रहकर के कभी भी पुरुषार्थ कर ही नहीं पाओगे। इसलिए वैराग्य का मतलब होता है...इन विचारों से, इन भावनाओं से अपने अन्दर राग में कमी लाना। जब राग में कमी आएगी तो आपके संसार चक्र की भी मंदता हो जाएगी। संसार चक्र की तीव्रता किससे है? राग पर्याय से, राग भाव से! इसलिए यह वैराग्य, किसकी कमी से आएगा? राग की कमी से आएगा। ऐसा यह वैराग्य भाव ही हमें निगोद में जाने से बचा सकता है, इसलिए आपको जो एक ज्ञान दिया जा रहा है,

गाथा: 51

**इस जीव ने निगोद से निकलकर, मनुष्य होकर
जिनधर्म को भी प्राप्त किया है**

णिहरीय कहवि पत्तो, तत्तो मणुयत्तणं पि रे जीव! ।

तत्थ वि जिणवर-धम्मो, पत्तो चिंतामणि-सरिच्छो ॥51॥

अन्वयार्थ— (रे जीव!) हे जीव! 'तुमने' (कह) किसी प्रकार (वि) भी 'निगोद से' (णिहरीय) निकलकर (मणुयत्तणं) मनुष्यपने को (पि) भी (पत्तो) प्राप्त किया 'और' (तत्थ) वहाँ अर्थात् उस मनुष्य भव में (वि) भी (चिंतामणि-सरिच्छो) चिंतामणि रत्न के, सदृक्ष यानी समान (जिणवर-धम्मो) जिनेन्द्र देव का, धर्म (पत्तो) प्राप्त किया है 'अब आत्महित में प्रयत्न करो' ॥51॥

वैराग्य शतक ग्रन्थराज के माध्यम से, प्राकृत भाषा में जो गाथाएँ निबद्ध की गई हैं, उन गाथाओं को पढ़ते हुए, उनका अर्थ समझते हुए और उन गाथाओं के अनुसार अपने अनुभव को भी उससे जोड़ते हुए यदि हम चलते हैं, तो ग्रन्थ का जो ध्येय है, अविध्येय है, वह हमारे पास तक पहुँचता है। इसी हेतु हम गाथाओं को पढ़ते हुए अर्थ के साथ तक भावार्थ तक भी पहुँचते हैं और उन भावों से अपने भावों को जब जोड़ते हैं तो हमें समझ आता है कि हम इन भावों के साथ में कितना अपने हृदय में अन्तर पाते हैं। यह अन्तर भी कम हो और इस अन्तर की भरपाई होती रहे, इसी हेतु यह क्रम निरन्तर चल रहा है कि हम आचार्यों के ज्ञान से अपने अन्तः को भरते रहें और जो अनुभव में अन्तर दिखाई दे रहा है, यह अन्तर भी थोड़ा कम हो। आज गाथा 51, 52 और 53 पढ़ते हैं...



णिहरीय कहवि पत्तो, तत्तो मणुयत्तणं पि रे जीव! ।

तत्थ वि जिणवर-धम्मो, पत्तो चिंतामणि-सरिच्छो ॥51॥

पत्ते वि तंमि रे जीव! , कृणसि पमायं तुमं तयं चेव ।

जेणं भवंधकूवे, पुणो वि पडिओ दुहं लहसि ॥52॥

उवलद्धो जिणधम्मो, ण य अणुचिण्णो पमायदोसेण ।

हा! जीव! अप्पवेरि! अ, सुबहुं परओ विसूरिहिसि ॥53॥

निगोद में रहने वाला जीव का मनुष्यगति प्राप्त करना

इन गाथाओं में पिछली गाथा के साथ में भाव जोड़ते हुए कहा जा रहा है...जो पहले कहा था कि निगोदवास

में यह जीव गिर पड़ता है और निगोदों में अनन्त काल तक ढाई पुद्गल परावर्तन काल तक भी यह जीव रहा था। इस तरह के निगोद में रहने के बाद भी यह जीव फिर से 'मणुयत्तणं' अर्थात् मनुष्यपने को प्राप्त कर लेता है। 'णिहरीय कहवि' किसी भी तरह से वह निकल आता है और फिर उस मनुष्यपने को प्राप्त करके वह जीव धीरे-धीरे कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि वह जिनवर प्रणीत धर्म को भी प्राप्त कर लेता है। इस निगोद पर्याय से निकलना अपने आप में बहुत ही दुर्लभ है। दुर्लभ इसलिए है कि उस निगोद में आप अपने मन से कोई भी पुरुषार्थ नहीं कर सकते क्योंकि वहाँ मन नहीं होता, वहाँ उपदेश नहीं सुन सकते। एक इन्द्रिय जीव की पर्याय होती है... ऐसी उस पर्याय में से अपने आप निकल आना यह बहुत कठिन काम है। जाना कठिन काम नहीं है, निकल आना उसमें से कठिन काम है। जब कोई उस पर्याय को प्राप्त कर लेता है, तो उस पर्याय को प्राप्त करने के बाद में उसे जैसे किसी घोर अन्धकार में कोई मूर्छित हुआ पड़ा रहे, उसे होश नहीं रहता; ऐसी ही वह दशा होती है। दुःख तो होता है यह कल बताया था लेकिन उस दुःख को भी प्राप्त करके उस पर्याय को छोड़ने का पुरुषार्थ कर पाना, यह वहाँ पुरुषार्थ से नहीं होता। दुनिया में बहुत सी चीजें पुरुषार्थ से प्राप्त नहीं की जाती, भाग्य से प्राप्त होती हैं... जिसे हम दैव योग कहते हैं।

दैव योग

अगर हम ध्यान रखें कि हर चीज अगर हम देखें, पुरुषार्थ से प्राप्त करने की सोचे तो हमें लगेगा कि हर चीज को हम पुरुषार्थ से कभी प्राप्त नहीं कर सकते। बहुत सी ऐसी चीजें हैं जो अदृश्य रूप में हैं और उनकी जब हम प्राप्ति करते हैं तो वह अपने किसी भी मनोभाव के बिना स्वयं जब वह चीज उपलब्ध होती है, तो कहना पड़ता है कि यह दैव योग से हुई है। संसार में समझाया जाता है कि हर चीज के लिए पुरुषार्थ करो। बच्चों को समझाया जाता है कि सफलता प्राप्त करने के लिए निरन्तर पुरुषार्थ करो। आपके लिए किसी भी तरह का कोई भी achievement होगा, बिना पुरुषार्थ के नहीं होगा। यहाँ पर सबको पुरुषार्थ करना पड़ता है किन्तु अगर हम यह देखे कि हमने यह मनुष्य जन्म प्राप्त किया है, इसके लिए क्या पुरुषार्थ किया? आचार्य कहते हैं कि इसके लिए आपको पुरुषार्थ की जरूरत नहीं पड़ी। यह कभी-कभार कुछ घटित होने वाली घटनाओं में से हैं जैसे कि भाड़ में चने भूँज जाते हैं, आजकल मिलते हैं कि नहीं भाड़? उन चनों का भुंजना भी आप देख ही लेते होंगे। जब उस भाड़ में चने गए तो उन चनों का उसमें भुंजना निश्चित ही हो जाता है। लेकिन उसी में से कुछ चने उचट जाते हैं, जो भाड़ से बाहर भी आ जाते हैं। अगर आप गौर से देखोगे तो आपको समझ आएगा। जो चने उस भाड़ में भुंज गए, वे तो भुंज गए और जो उचट गए, किसी भी तरह से बच गए... वे कैसे बच गए? वे उसी भाड़ में गिरने से भी बच गए। गिर तो गए लेकिन गिरने के बाद भुनते-भुनते भी वे उचट गए और ऐसे भी चने बहुत सारे हो जाते हैं। इसी तरह से अपने को यह ध्यान रखना पड़ता है कि ये निगोद के भाड़ में गए और सब भुंज गए। जो भी जाएगा वह दुःख जाएगा लेकिन कुछ निकल आए। कुछ उसमें कम समय में निकल आए, कुछ ज्यादा समय में निकल आए या कभी भी निकल आए; उसमें से जाने के बाद में निकल आना बड़ी चीज है। उस भाड़ में गिरने के बाद में उससे उचट कर आ जाना बड़ी चीज है, चाहे वह कभी भी आ जाए। उसी तरह से निगोद में पहुँचने के बाद इस जीव का बाहर आ जाना, यह पुरुषार्थ से नहीं। अब कहो कि उसका भाग्य क्या काम करेगा वहाँ? क्योंकि भाग्य होता तो निगोद में ही क्यों जाता? भाग्य किस बला का नाम है? अपने ही कर्मों का नाम भाग्य है। अब जब अपने ही कर्म थे तो उन्हीं कर्मों के कारण से तो वह गिरते-गिरते निगोद तक पहुँच गया। अब वहाँ कौन सा उसके

लिए कर्म आ गया? कौन सा उसने कर्म कर लिया जिस कर्म के कारण से वह निगोद से मनुष्य बन जाए? यह एक विचारणीय चीज है।

निगोद से निकलना: अवक्तव्य भंग

अब वहाँ वह कोई भाव नहीं कर सकता, पुरुषार्थ नहीं कर सकता लेकिन निगोद से निकल करके भी मनुष्य बनते हैं और निगोद से भी वहाँ से जीव निकलते रहते हैं। छह महीने आठ समय में 608 जीव निकलते रहते हैं। यह तो नित्य निगोद की बात है, इतर निगोद की तो कोई कहना ही नहीं है। निगोद से भी जब जीव निकलते हैं तो वहाँ एक इन्द्रिय पर्याय से वह निकल कैसे आया? कौन सा उसने पुण्य कर्म कर लिया? वह कौन से कर्म का उसके लिए फल मिल गया जिसके कारण से वह उस निगोद पर्याय से मनुष्य पर्याय को प्राप्त हो गया? अगर इस सारी स्थिति का आप विचार करें तो इसमें न तो आपको कहीं कोई पुरुषार्थ दिखाई देगा, न कहीं कोई आपको उसका कोई भाग्य काम कर रहा है, यह दिखाई देगा। एक chance की जो बात होती है, वह तीसरी चीज एक सामने आती है। भाग्य तो वह होता है जिसे हम बनाते हैं और फिर उसका फल भोगते हैं। जैसे हमने पिछले जन्म में कुछ अच्छे कार्य किए; हमारे लिए इस जन्म में वह अच्छे फल के रूप में दिखाई दे रहे हैं, यह हमारा भाग्य है। कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि चीजें भाग्य और पुरुषार्थ के अलावा भी चलती हैं और अगर उस तीसरी चीज को हम कुछ कहे या न कहे तो भी वह अनेकान्त दृष्टि से सिद्ध होती है। क्योंकि आपने अनेकान्त में दो विरोधी धर्म तो सुने होंगे लेकिन एक तीसरी चीज और होती है। जैसे नित्य है तो उसका विरोधी अनित्य है। जब उस अनेकान्त में नित्य भी घटित होता है, अनित्य भी घटित होता है, तो उसके साथ में और भी तीसरी चीज आ जाती है, जिसे कहा जाता है- अवक्तव्य।

अवक्तव्य भंग

क्या बोलते हैं? अवक्तव्य। यह अवक्तव्य क्या होता है? जो आप बोलते हैं न! हमारा वक्तव्य पूर्ण हुआ अर्थात् आपने बोल लिया। अब जब आप बोल न पाएँ तो उसका नाम क्या है? अवक्तव्य। जो अपने कहने में न आए, वह भी एक तीसरी चीज होती है; उसको कहते हैं- अवक्तव्य। हम जब भी अनेकान्त पढ़ते हैं, किसी भी तरह से जैन दर्शन को समझते हैं, तो हम हमेशा दो चीजों पर तो ध्यान देते हैं; कथंचित् वस्तु नित्य है, कथंचित् अनित्य है। कथंचित् वस्तु एक है, कथंचित् अनेक है। कथंचित् वस्तु द्रव्य रूप है कथंचित् पर्याय रूप है, हम इतना तो समझते हैं। आज हम एक चीज को और सीखने की कोशिश करें कि इन दो गुण-धर्मों के कारण से सप्त भंग नहीं बन सकते हैं। इन दो गुण-धर्मों से तीन गुण-धर्म बन जाएँगे। कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है, कथंचित् नित्य भी है और अनित्य भी है; यह तीसरा भंग बन जाएगा। आगे के हमें चार भंग और बनाने के लिए, चार उसके और प्रारूप बनाने के लिए हमें उसमें एक चीज जोड़नी पड़ती है- कथंचित् अवक्तव्य है। जहाँ हम दो विरोधी धर्मों का एक साथ कथन करने में असमर्थ हों और दोनों विरोधी धर्मों का भी एक साथ हमें वहाँ पर कार्य दिखाई न दे और हम न कह सकें कि यह एक से हो रहा है या आपस में उन विरोधी धर्मों में से भी किसी एक से नहीं हो रहा है, तो वहाँ पर अवक्तव्य का भी सहारा लिया जाता है। जब आप कोई बात को समझा रहे हो और बात समझाते-समझाते आपको लगे कि यह बात न

तो भाग्य से समझ में आती है, न पुरुषार्थ से समझ में आती है तो फिर तीसरी चीज आती है कि भाई! ये कुछ चीजें ऐसी भी हैं दुनिया में जिन्हें हमें अवक्तव्य के रूप में देखना चाहिए। अवक्तव्य का मतलब? कहने योग्य नहीं है, अनिर्वचनीय कहा जाता है इसको। अवक्तव्य यानी वह चीज कहने योग्य नहीं है, कहा नहीं जा सकता लेकिन होती तो है और जो चीज हर चीज हो रही है वह कहने योग्य हो जाए, यह जरूरी नहीं होता। जो चीज हो रही है वह कहने योग्य भी हो सकती है और न कहने योग्य भी हो सकती है। जो कहने योग्य है वह कह दी जाती है और न कहने योग्य है वह नहीं कही जाती है और अनकही चीज भी होती तो है। कितने ही आपके विचार हैं जो हो जाते हैं आपके भीतर, आप कभी कहते नहीं हैं, कहने में आते भी नहीं हैं और कह भी नहीं पाते हैं लेकिन होते तो हैं। इसी तरह से समझना कि दुनिया में हर चीज जो होती है, वह कहने योग्य भी होती है और कहने योग्य नहीं भी होती है। जब हम किसी चीज को कहने योग्य कह रहे हैं तो वह चीज हमारे लिए, हो सकता है कि हम उसे कह सकें कि यह पुरुषार्थ से होने योग्य है। जब हमें दिखाई देता है कि पुरुषार्थ से होने योग्य नहीं है, तो हम कहते हैं कि भाग्य से होने योग्य है लेकिन जब हमें दिखाई देता है, यह भाग्य से भी होने योग्य नहीं है। आज तक कभी भी निगोद के बारे में एक अच्छा discussion किया ही नहीं गया और यह discussion मैं आपके सामने पहली बार रख रहा हूँ।

निगोद से जीव का निकलना

मैंने भी पहले कभी किया नहीं इस तरह का discussion खुली सभाओं में और आज आपके सामने discussion रखा जा रहा है। पण्डित जी सामने बैठे हैं, पूछ लेना; उन्हें यह चीज कभी शास्त्रों में नहीं मिली होगी और उनके भी पण्डित जी रतनलाल जी गुरु जी ने उनको नहीं समझाई होगी यह वाली बात जो मैं उनको बताने जा रहा हूँ। मैं challenge देके बोलता हूँ हमेशा क्योंकि मुझे पता है कि कितना ज्ञान इस लोक में प्रचलित है। लोग कितनी जानकारी किस-किस चीज की रखते हैं, मुझे पता है और जो जानकारी नहीं है उसके बारे में भी मैं कह सकता हूँ कि यह जानकारी आपको नहीं है, जो मैं आज आपसे कहने जा रहा हूँ। कई लोग पूछते हैं कि निगोद से निकलना कैसे होता है? महाराज! समझाइए? बताइए? अब हम जब समझाने बैठे तो हम भी सोच में पड़ जाते हैं कि भाई! कैसे समझाएँ? शास्त्रों के आधार पर समझाएँ तो शास्त्रों में कुछ नहीं लिखा कि कैसे निगोद से वह जीव निकल के आ जाता है। पीछे का कारण कुछ नहीं है, अगर कुछ है तो सिर्फ एक कर्म philosophy है; उस जीव ने मनुष्य आयु का बन्ध कर लिया। अन्तरंग कारण क्या है? मनुष्य आयु का बन्ध कर लिया। अब पूछा जाए कि मनुष्य आयु का बन्ध कैसे कर लिया? उस तिर्यच पर्याय में जहाँ सिद्धान्त ग्रन्थों में लिखा होता है... **‘भाव कलंक सुपउरा णिगोदवासं ण मुंचति’** यानी वह निगोदवास को इसलिए नहीं छोड़ते हैं क्योंकि उनके भावों में इतनी कलमषता, इतनी कलंकता रहती है, उसकी प्रचुरता इतनी अधिक होती है कि वह कभी कम नहीं होती है। इसी कारण से वह जीव उसी तिर्यच आयु का ही बन्ध करते हैं और तिर्यच आयु का ही उनको उदय होता है और वह उस तिर्यच पर्याय में ही निरन्तर, उसी निगोद पर्याय में निरन्तर आयु का बन्ध करके जन्मते-मरते हैं। तो यह तिर्यच आयु की तो बन्ध की श्रृंखला उनकी चलती रहती है लेकिन बीच में कभी-कभार यह मनुष्य आयु का बन्ध कैसे हो गया? जब यह मनुष्य आयु के बन्ध की बात कहे तो हम कह सकते हैं कि भाई! यह मनुष्य आयु का बन्ध भी अगर मनुष्य करेगा, कोई दूसरा पंचेन्द्रिय करेगा तो हम कहते हैं कि भाई! उसने **‘स्वभाव मार्दवं च’** स्वभाव से उसके अन्दर मृदुता आ गई, मनुष्य आयु का बन्ध हो गया। **‘अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य’**

अल्प आरम्भ, अल्प परिग्रह के भाव आए, मनुष्य आयु का बन्ध हो गया। अब वहाँ निगोद में वह क्या अल्प आरम्भ, अल्प परिग्रह का भाव करेगा? वहाँ मनुष्य आयु के बन्ध होने का क्या कारण है? पुरुषार्थ कर नहीं सकता, सुध-बुध कुछ है नहीं। कर्म का उदय जिस तरह से आता है, वही कर्म का उदय अगले कर्म के बन्ध के लिए कारण बनता रहता है क्योंकि भावों में इतनी कलुषता है, इतनी भावों में कलंक की प्रचुरता है कि वह उससे हट कर के कुछ सोच ही नहीं पाता, कुछ भाव उसका दूसरा बन ही नहीं पाता। फिर भी यह निश्चित है कि जीव निगोद से मनुष्य पर्याय को प्राप्त करता है, सामने भी लिखा है। लेकिन यहाँ पर भी क्या कह के छोड़ दिया? एक शब्द डाल दिया **‘कहवि पत्तो’** क्या बोल दिया? **कहवि** का मतलब? **कथमऽपि** अर्थात् कैसे भी तुमने प्राप्त कर लिया? यहाँ ऐसा कह कर के छोड़ दिया। निगोद पर्याय से तुमने मनुष्य पर्याय को किसी भी तरह से मानो प्राप्त कर लिया। अब किसी भी तरह से कर लिया, कैसे भी कर लिया, कर लिया। यहाँ यह नहीं बता रहे कि कैसे कर लिया? नहीं समझे? कैसे के भी दो अर्थ होते हैं। भाई! एक आदमी कोई काम कर रहा है, उससे कहा जाता है कि तुमने काम कैसे भी कर लिया? एक कहा जाता है...तुमने यह काम कैसे कर लिया? और वह कह रहा है कि मैंने यह काम कैसे भी कर लिया? इसका मतलब क्या है? आप उससे पूछ रहे हो, यह काम तुमने कैसे कर लिया? यह M.B.B.S का exam तुमने कैसे fight कर लिया? अब वह कहता है...मैंने कैसे भी कर लिया। कैसे भी कैसे कर लिया? उस कैसे भी में कुछ रहस्य छिपा हुआ है। उसने वह कैसे भी कर लिया? अब वह यह खुद नहीं बता पा रहा है, कैसे कर लिया? अगर वह कहे कि मैंने बहुत पढ़ाई की थी, बहुत लगन से पढ़ाई की थी तो उसे पता है कि मेरे दोस्त और भी बहुत लगन से पढ़ाई करते हैं लेकिन उनका selection नहीं हुआ, मेरा हो गया। यह भी कहने में नहीं आता है कि मैंने बहुत लगन से पढ़ाई की थी, बहुत पढ़ाई की थी, बहुत घण्टों तक पढ़ा था इसलिए हो गया। फिर कहे कि मेरे भाग्य से हो गया तो भाग्य से होता तो फिर भाग्य तो बहुत सारे लोगों का होता है लेकिन सबका selection नहीं होता है, भाग्य होते हुए भी नहीं होता है। जो उस line में चलेंगे उन्हीं का होगा।

कभी-कभी कुछ चीजें by chance घटित हो जाती हैं

अब क्या कहा जाए? कैसे हो गया? जब कुछ कहने को नहीं बचता, असमंजस की जब स्थिति होती है, तो उसे क्या बोलते हैं? कैसे भी हो गया। मतलब हम आपसे स्पष्ट शब्दों में कुछ कह नहीं सकते। यूँ नहीं कह सकते कि भाग्य से हो गया कि हमारी मेहनत से हो गया लेकिन हमें ऐसा लग रहा है, कैसे भी हो गया। अब वह आप उसको चाहे गुरु कृपा कह लो, चाहे प्रभु कृपा कह लो; वह कृपा भी आपको एक शब्द ढूँढ़ लेने पड़ते हैं। जब हमें कोई चीज अपने भीतर से निर्णीत होकर के समझ में नहीं आती है, तो फिर हमारे पास एक ही सहारा रह जाता है कि सब चीज ईश्वर की कृपा पर डाल दो, गुरु की कृपा पर डाल दो। यह तीसरा बहाना आदमी के पास होता है कि जब उसे कुछ समझ में न आए तो फिर ईश्वर की कृपा से हो गया, गुरु की कृपा से हो गया; जबकि ये कोई चीजें नहीं हैं। न ईश्वर की कृपा कोई चीज है, न गुरु की कृपा कोई चीज है लेकिन यह आदमी अपने अन्दर एक विश्वास बनाकर के चलता है ताकि हमारे अन्दर उनसे एक जुड़ाव बना रहे, बस! इसका इतना ही मनोविज्ञान है। हमारा उनसे एक जुड़ाव बना रहे बस! और उस जुड़ाव को बनाए रखने के लिए वह उन चीजों को उनके ऊपर इसलिए भी रख देता है ताकि हमारे अन्दर अहं की पुष्टि न हो जाए। अपने अहं से बचने के लिए वह अपने बड़ों पर वह चीजें डाल देता है। यह तो डालने की बात हो गई लेकिन वास्तव में वह कैसे हो रहा है? यह उसको खुद भी समझ नहीं आ रहा है और जब उसको

समझ नहीं आता तो वह कह देता है...भाई! मुझे पता नहीं, कैसे भी हो गया? मुझे लगता है...इन आचार्यों को भी यह समझ नहीं आया इसलिए इन्होंने भी यही कह दिया कि कैसे भी प्राप्त कर लिया? तभी तो लिख रहे हैं... **‘गिहरीय कहवि पत्तो’** निकल कर के कैसे भी प्राप्त कर लिया। कैसे भी का मतलब? मैं यही पूछूँ किससे प्राप्त कर लिया? कैसे प्राप्त कर लिया? वह वही कहेंगे ‘कैसे भी प्राप्त कर लिया’ अरे भाई! कैसे प्राप्त कर लिया? उसके भीतर का कारण तो बताओ? अगर आप उस कारण को बताने में असमर्थ हैं और पूरा आगम उस कारण को बताने में मौन है, तो हमें अपनी चिन्तन की दिशा को थोड़ा सा बदलना चाहिए और वही चिन्तन की दिशा को बदलते हुए आज हम आपके सामने यह बात रख रहे हैं।

भाग्य और पुरुषार्थ के seven combinations

हमारे सामने दो ही चीजें होती हैं- एक भाग्य होता है, एक पुरुषार्थ होता है। आप मीमांसा एक ग्रन्थ है आचार्य समन्तभद्र महाराज का, उसमें वह **‘कथंचिदेव इष्टम् और कथंचिदेव अनिष्टम्’** यानी कुछ चीजें हमारे लिए इष्ट होती हैं, कुछ चीजें अनिष्ट होती हैं और वह कहते हैं कि कुछ चीजें **‘कथंचित् दैवात् कथंचित् पुरुषात्’** कुछ चीजें दैव से होती हैं, कुछ पुरुषार्थ से होती हैं लेकिन उसमें भी सप्तभंगी घटित की जाती हैं। सप्तभंगी का मतलब? उसके seven combinations बनते हैं। यानी कोई चीज अगर भाग्य से हो रही है, तो उसका विपरीत क्या है? पुरुषार्थ। ये दो चीजें हो गई- कथंचित् दैव, कथंचित् पुरुषार्थ। फिर कभी-कभी दोनों से वह बात कही जाती है- भाई! कथंचित् दैव और पुरुषार्थ, ये तीसरा एक हमारे सामने combination बन गया। अब चौथी बात जब शुरू होती है, तो वहाँ कहते हैं- कथंचित् अवक्तव्य। अवक्तव्य का मतलब? We cannot say it. अवक्तव्य का मतलब? यह हम कह नहीं सकते हैं लेकिन है। है तभी उसको एक चौथे प्रकार के रूप में रखा गया है तो उसका चौथा प्रकार क्या बन गया? कथंचित् अवक्तव्य है। फिर उसी के आगे बढ़े तो वह अवक्तव्य के साथ ही आगे की तीन चीजें जुड़कर के और आगे के तीन भंग बन जाते हैं- कथंचित् दैव अवक्तव्य, कथंचित् पुरुषार्थ अवक्तव्य और कथंचित् दैव पुरुषार्थ अवक्तव्य। ऐसे seven kinds of उसके जो यह कहना चाहिए प्रारूप बन जाते हैं, ये सात प्रकार के बन जाते हैं और कोई भी चीजों के हम सात ही भंग बना सकते हैं, combinations बना सकते हैं; इससे ज्यादा नहीं बना सकते हैं। अब इन सात में जब भी देखा जाता है, हम चर्चा दो चीजों पर ही करते हैं। मानो नित्य और अनित्य की चर्चा करना होगी तो हम नित्य या अनित्य पर ही चर्चा करेंगे, अवक्तव्य की चर्चा नहीं होती कभी। दैव और पुरुषार्थ पर चर्चा करेंगे तो हम दैव की कथंचित् दैव से घटित हो गयी बात, कथंचित् पुरुषार्थ से घटित हो गयी बात; यह कह लेंगे। कभी-कभी कह लेंगे कि कथंचित् दैव और पुरुषार्थ दोनों से घटित हो गई; ऐसा भी कह लेंगे। लेकिन कभी-कभी यह भी तो कहना चाहिए कि कथंचित् अवक्तव्य से भी कोई चीज घटित होती है और उस अवक्तव्य में दैव भी नहीं है, पुरुषार्थ भी नहीं है। हम नहीं कह सकते कि दैव, पुरुषार्थ दोनों के साथ भी यह घटित हो रहा है; ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि वह तीसरे भंग में चला जाएगा। चौथा भंग क्या बनता है? कथंचित् अवक्तव्य का भाव भी है और यह अवक्तव्य का मतलब? जब हम उन दोनों धर्मों से उस चीज को व्याख्यायित न कर सके तब हमें अवक्तव्य कहना पड़ता है, जो हम कह नहीं सकते। उसी अवक्तव्य को कहने के लिए हमें कहना पड़ता है कि यह कैसे भी हो गया। यह जो लिखा है...‘कहवि पत्तो’ अर्थात् कैसे भी प्राप्त कर लिया? मतलब कह नहीं पा रहे हम, कैसे प्राप्त कर लिया? अगर एक चीज से हो रहा होता तो कह देते, भाग्य से प्राप्त कर लिया और भाग्य वहाँ है कहाँ? दैव वहाँ है कहाँ?

निगोद में मनुष्य आयु का बन्ध, अचानक घटित होने वाली घटना

अगर हम कहे कि मनुष्य आयु का उसने बन्ध कर लिया तो मनुष्य आयु का ही केवल बन्ध किया है। उस मनुष्य आयु के बन्ध के साथ में कोई उसके लिए और कोई भाग्य उसका काम नहीं कर रहा था। वह मनुष्य आयु का बन्ध हो गया और वह कैसे हो गया? वह एक अचानक घटित होने वाली घटना है। न पुरुषार्थ से है, न पिछले किसी भाग्य के साथ चल रही है क्योंकि भाग्य साथ वहाँ देता ही नहीं है और दे भी नहीं सकता क्योंकि वहाँ पर कलंक की प्रचुरता का जो चक्र चल रहा है, उससे वह जीव निकल नहीं सकता और वह जो कलंक की प्रचुरता है, कषायों की प्रचुरता है, वही उसका भाग्य है। भाग्य तो वहाँ पर पूरी तरह से उसका negative है। उसके favour में वहाँ कोई चीज है ही नहीं, फिर भी by chance ऐसा हो गया और यह जो by chance होता है, इसी को अवक्तव्य कहा जाता है। कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें हम by chance महसूस करते हैं। एक choose करना और एक chance से होना। By choosing मतलब कोई चीज को हमने चुन कर के लिया, वह चीज अलग होगी और एक चीज by chance हो जाना, जिसमें हम समझ नहीं पाते यह कैसे हो गया? उस chance में जो चीज होती है, उसी में वह अवक्तव्य भाव घटित होता है। जिसे हम कहते हैं कि भाई! पता नहीं यह कैसे हो गया by chance? अब यह जो हो गया, उसके पीछे जब हमें कुछ पता नहीं होता है तब हम कहने लग जाते हैं कि भाई! ऊपर वाले की कृपा, ईश्वर की कृपा, गुरु की कृपा लेकिन वह कृपा से नहीं हो रहा है। कोई वह तुम्हारे लिए कृपा करते हुए बैठे नहीं हैं कि तुम किसी भी चीज को प्राप्त करो और हम तुम्हारे ऊपर वह कृपा कर रहे हैं ताकि वह चीज तुम्हें प्राप्त हो जाए। वह तो कृपा करने वाले को भी पता नहीं है कि तुम्हें क्या चीज प्राप्त हो गई? तुम उस कृपा करने वाले को आकर के बता देते हो कि आज आपकी कृपा से यह हो गया और उसे ही पता नहीं है। उसकी कृपा से होता तो उसको तो पता होता। कितनी बार लोग हमारे पास आकर के कह देते हैं कि महाराज! आपकी कृपा से मेरा बेटा pass हो गया। मुझे पहले पता होता न कि तुम्हारा बेटा pass हो गया, मेरी कृपा से हुआ है तो पहले मुझे पता होता न कि मैं कृपा कर रहा हूँ तो बेटा pass हो रहा है। सत्य को समझने के लिए हमें समझना चाहिए... अनेकान्त दर्शन को और अनेकान्त दर्शन में यह कृपा कोई चीज नहीं है। क्या चीज है? अवक्तव्य! हम कह नहीं सकते। हो तो गया, कैसे हो गया? यह नहीं कहा जा सकता। अब यह आपका एक कृतज्ञता का भाव हो सकता है, आपके अन्दर एक gratitude का भाव हो सकता है, जो आप कह दो... 'हाँ! आपकी कृपा से हो गया' लेकिन हुआ क्या? वह अवक्तव्य है। इस अवक्तव्य भाव को अगर हम ध्यान में रखें, तभी हम समझ सकते हैं कि निगोद से निकलने का कारण क्या है? वहाँ उसका कोई भाग्य उसके साथ में नहीं है, कोई उसका पुरुषार्थ साथ में नहीं है और अगर कुछ बचता है, तो यह अवक्तव्य बचता है बस! इस चौथे भंग को हम कभी भी highlight नहीं करते, इसकी कभी चर्चा नहीं करते। अगर कभी न्याय की चर्चा होती है, तो हम थोड़ा दो धर्मों की चर्चा तो कर लेते हैं लेकिन हम इस अवक्तव्य तक अपनी गति नहीं पहुँचाते हैं। कहा नहीं जा सकता कि वह कैसे निकल कर आ गया? भाड़ में जाकर के भी वह चना कैसे आ गया बाहर? वह वहाँ पर भाड़ वाला उसको, शायद वह अपना कलछुली लेकर के, क्या बोलते हैं उसको? बड़ा झारी लेकर के वह उसमें से निकाल रहा होगा इसलिए निकल कर आ गए होंगे। मतलब उसके पुरुषार्थ से निकल कर आ गया क्या? बाकी सब ढेर सारे तो उसी में भुनते रहे वे और वे कुछ कैसे उचट कर आ गए? वह जो उचट कर आ गए, इसी को कहा जाएगा कि हम कुछ कह नहीं सकते कैसे आ गये?

भाग्य और By chance

इसी को आचार्य कहते हैं- अवक्तव्य। इस अवक्तव्य को अगर आप समझ लीगे तो फिर आपको यह वक्तव्य देने की भी जरूरत नहीं पड़ेगी प्रश्न रूप में कि आखिर उस निगोद जीव से यह जीव कैसे निकल कर के आ जाता है? कैसे मनुष्य आयु का बन्ध कर लेता है? इसके पीछे कोई भी वक्तव्य नहीं है, आगम का कोई भी वक्तव्य नहीं है, किन्हीं आचार्यों का कोई भी वक्तव्य नहीं है। जब कोई वक्तव्य नहीं होता है तो हमें क्या कहना चाहिए? यह अवक्तव्य है। सुन रहे हो पण्डित जी? देखो! कोई भी चीजें हो सकती हैं। मनुष्य में तो हम उन चीजों को जो हम पा लेते हैं या बच जाते हैं या कोई accident होता है, बहुत से लोगों के बीच में एक की जान बच गई, हम उसको उसके भाग्य पर छोड़ देते हैं। इसलिए भी छोड़ देते हैं कि वह मनुष्य है, उसके पास भाग्य हो सकता है। क्योंकि वह अपनी आयु लेकर के आया है। हो सकता है कि वह अपनी अच्छी आयु लेकर के आया हो, वह अपना अच्छा पुण्य लेकर के आया हो; मनुष्य में तो भाग्य बनता है। आप सोचे कि निगोद में भाग्य भी नहीं है न। वह कोई अच्छे कर्म करके वहाँ नहीं गया है, मनुष्य तो अच्छे कर्म करके बन जाएगा। जब अच्छे कर्म करके बनेगा तो उसके अच्छे कर्म उसके भाग्य के रूप में होंगे। निगोद में तो कोई भाग्य नहीं था जाने का, वह तो दुर्भाग्य ही है। अब दुर्भाग्य से भाग्य की प्राप्ति कैसे होना? इसलिए यहाँ पर होने वाली घटनाओं को हम केवल समझ ही सकते हैं लेकिन उसको हम उस तरह से उदाहरण के रूप में नहीं ले सकते कि जैसे हमारे सामने कोई accident हो गया और हम बच गए। बच गए तो हम कह देते हैं कि भाई! हम अपने भाग्य से बच गए। हो सकता है आपका भाग्य उसमें हो क्योंकि आपके पुराने अच्छे कर्म आपके साथ में हो, आपका भाग्य हो सकता है आपको बचा ले लेकिन कभी ऐसा भी हो सकता है कि आप भाग्य के बिना भी बच गए हो तो वह कैसे बचोगे? उसका नाम है- by chance.

भाग्य और दुर्भाग्य में अन्तर

वह कर्म के कारण गए तो वह कर्म तुम्हारा दुर्भाग्य है न? वह भाग्य तो नहीं कहलाएगा। भाग्य और दुर्भाग्य में अन्तर समझ में आ रहा है कि नहीं? भाग्य से अच्छे काम होंगे, भाग्य से तुम्हारी जीवन रक्षा होगी, भाग्य से तुम्हारा सौभाग्य बनेगा और दुर्भाग्य से? तुम वहाँ ऐसी जगह पर पहुँच गए कि वह भाग्य तुम्हारा वहाँ पर था ही नहीं तुम्हारे साथ में। वह सब क्या था? वह सब दुर्भाग्य था। अब दुर्भाग्य से अचानक सौभाग्य का उदय कैसे आया? अब आप कहोगे कि मनुष्य आयु का बन्ध होने से आया। मनुष्य आयु का बन्ध कैसे हो गया? बिना भाव के कर्म का बन्ध नहीं होता। भाव आपके अन्दर कैसे आ गया? वह भाव कब आयेगा? भाव दो तरीके से, मतलब द्रव्य कर्म के उदय से आते हैं या भाव कर्म के उदय से आते हैं। भाव कर्म में तो आपकी प्रचुरता चल ही रही है, वह कलंक चल ही रहा है। द्रव्य कर्म भी उसी तरह के उदय में आ रहे हैं जो आपको उसी तरह के भावों की कलंकता बनाए रखे। आपके लिए वहाँ पर कुछ भी सहयोगी नहीं है। द्रव्य कर्म का उदय भी आपके लिए सहयोगी नहीं है और जो भाव कर्म होंगे, वे द्रव्य कर्म के ही ऊपर depend होंगे; इसलिए आप कुछ नया भाव कर ही नहीं सकते हो। द्रव्य कर्म, भाव कर्म समझते हो न?

द्रव्य कर्म और भाव कर्म

जो आत्मा में कर्म का उदय आ रहा है, उस कर्म के उदय से जो भाव होते हैं, उसे कहते हैं- भाव कर्म और

जिस कर्म के कारण से आया, उस कर्म को कहेंगे- द्रव्य कर्म। अब वहाँ पर क्या है? मनुष्य आयु का बन्ध होने के लिए जिस तरह का भाव चाहिए, वह भाव कर्म वहाँ बन नहीं सकता क्योंकि द्रव्य कर्म की cycle ऐसी चल रही है कि वह उस द्रव्य कर्म की कलंकता की प्रचुरता की भावना से भाव कर्म भी उसका कलंकित ही रहेगा। इसलिए कहना पड़ रहा है कि वहाँ पर उसका कोई भाग्य उदय में नहीं आ रहा है, कोई भाग्य काम नहीं कर रहा है। भाग्य वह होता है जो पहले से बना हुआ हो और किसी समय पर अचानक से काम आ जाए। मनुष्य आयु कोई पहले से बांध कर के नहीं रखता है कि अचानक से हमारे उदय में आ जाए, वह बांधी जाती है। उस समय बंध गई, अचानक से बंध गई, किसी कारण से बंध गई... वह कारण किसी को पता नहीं है, आचार्यों के भी कहने में नहीं आता है। इसीलिए यहाँ कहना पड़ा **‘कहवि पत्तो’** कैसे भी मिल गया उसको मनुष्य जन्म, कैसे भी प्राप्त कर लिया। अब जब यह कहने में आ जाए कि कैसे भी प्राप्त कर लिया तो इसका मतलब है कि अब उन आचार्यों से पूछना ही बेकार है कि कैसे प्राप्त कर लिया? क्योंकि जब उन्होंने कह ही दिया ‘कैसे भी प्राप्त कर लिया’ अगर उन्हें पता होता कि कैसे प्राप्त किया तो लिखते। इन शब्दों को भी तो आप समझो! कैसे भी प्राप्त कर लिया और कैसे प्राप्त कर लिया? इसमें अन्तर है? जब हम कहते हैं... ‘कैसे भी प्राप्त कर लिया’ मतलब हमें पता नहीं है, कैसे भी प्राप्त हो गया? और जो कैसे भी प्राप्त कर लिया जाता है, वह हमारे संज्ञान में भी नहीं होता कि कैसे भी प्राप्त हो गया।

भाग्य या पुरुषार्थ

ऐसी कोई चीज अगर प्राप्त हुई है तो वह कहलाएगी...हमें कहने में नहीं आ सकती कि वह चीज भाग्य से हो रही है या पुरुषार्थ से हो रही है। किससे हो रही है? जब भाग्य और पुरुषार्थ दोनों के बारे में कहना न बने तो उसी के लिए आचार्यों ने एक और चीज रखी है, जिसका नाम है- कथंचित् अवक्तव्य। यह आपको न्याय पढ़ाया जा रहा है, दर्शन शास्त्र पढ़ाया जा रहा है; जैन दर्शन का, सप्तभंग का यह न्याय पढ़ाया जा रहा है। आज तक इस तरह का खुलासा कभी हुआ नहीं, आज तक इस तरह से निगोद के बारे में अवक्तव्य रूप में यह व्याख्या कभी हुई नहीं। इसलिए आपसे कह रहा हूँ...निगोद से जीव कैसे निकल कर के आ जाता है? यह क्यों नहीं कहा गया? इसलिए नहीं कहा गया क्योंकि यह कहने योग्य है ही नहीं। यह अवक्तव्य भंग में ही जाएगा, जो चीज हमारे कहने में नहीं आ रही है। इसलिए कहना पड़ता है **‘कहवि’** किसी भी तरह से हो गया, बस हो गया। जब हो गया, उसके बाद की बात आपसे कही जाएगी। अब अगर आपने मनुष्य पर्याय प्राप्त कर ली है, तो आप अब क्या कर सकते हैं? कैसे कर सकते हैं? वह आपको बताया जाएगा। जो कैसे भी हो गया, वह आपके कहने में नहीं आएगा। मानो हम आपसे पूछे कि आप अपने घर में अपने माता-पिता के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए, आप माँ के गर्भ में आए। अब यह सोचो कि हमारी आत्मा उसी माँ के गर्भ में क्यों आई? यह बताओ? दुनिया बहुत बड़ी है। ढाई द्वीप में मनुष्य लोक के अन्दर बहुत सारे मनुष्य हैं। अगर हम केवल कर्म भूमि की भी बात करें तो कर्म भूमि में भी, चलो ठीक है विदेह क्षेत्र को छोड़ देते हैं, भरत-ऐरावत भी बहुत सारे हैं; 15 भरत हैं, ऐरावत क्षेत्र हैं। अब इनमें भी अगर हम इन सबको मिलाएँ, पाँच भरत, पाँच ऐरावत होते हैं और पाँच ही विदेह हैं तो ऐसे करके 15 कर्म भूमियाँ होती हैं। अब इन सब कर्म भूमियों में हम देखें कि इसी कर्म भूमि में, कौन सी कर्मभूमि में? इसी भरत क्षेत्र की, इसी भरत क्षेत्र की जो जम्बू द्वीप का भरत क्षेत्र है, इसी के आर्य खण्ड की भूमि में हम दुनिया के अनेक माँओं के गर्भ को छोड़कर के यहीं एक इसी माँ के गर्भ में क्यों आए? अब कहोगे कि हमारा भाग्य था।

भाग्य आपको मनुष्य बना रहा है, भाग्य से आप एक अच्छे कुल में जन्म ले लेंगे, भाग्य से आपको एक निरोगी पर्याय मिल जाएगी, भाग्य से आपको धर्म के अनुकूल कुल में जन्म मिल जाएगा; यह भाग्य है? पुरुषार्थ! कोई plane चला कर के तो आए नहीं कि भाई! सीधा यहाँ पर आकर के हमने land कर दिया, कुछ ऐसा तो हुआ ही नहीं। पुरुषार्थ तो वहाँ पर कहीं से कहीं तक कुछ है ही नहीं। हम कहीं से चले थे भाई! plane यहाँ से हमने uplift किया था, फिर वहाँ जाकर के हमने उसको land कर दिया, ऐसा तो कुछ हुआ नहीं।

कर्म के फलों में भी अव्यक्तव्य भाव

भाग्य अगर हम कहें तो भाग्य का मतलब सिर्फ इतना ही होता है, भाग्य अच्छे कुल में जन्म होना था, कहीं भी हो जाता। यहीं इसी जगह पर, इसी नगर में, इसी एक घर में आकर के, इसी पर्याय में क्यों उत्पन्न हुआ? कर्म का उदय हमें मनुष्य बना रहा है, मनुष्य गति में मनुष्य कर्म ले जाएगा; यह ठीक है। हम मनुष्य बन रहे हैं लेकिन मनुष्य भी तो बहुत सारे हैं। हम मनुष्य में, इसी मनुष्य पर्याय में कैसे आए? इसी नगर के इस जैन कुल में हम कैसे जन्म ले लिए? यहीं पर आकर के कैसे एकदम से हम बिल्कुल landing कर लिए और बैठ गए और नौ महीने तक बैठे रहे वहाँ? अब वह राग तो कल का याद आ रहा है आपको? वह राग भी कई जगहों पर जाकर के attack कर सकता है न? मानो कि आपने 10 लोगों से राग किया, जरूरी तो नहीं कि एक ही से राग होता है। मानो आपने 20 लोगों से राग किया, 10 लोगों से आपका राग था लेकिन जीव तो एक ही जगह उत्पन्न होगा। वहीं क्यों उत्पन्न हुआ? चलो! अब राग से मैं पूछता हूँ। उसके पास विशेष राग था! अगर वह विशेष राग था तो वह विशेष राग के कारण से वहाँ पर उत्पन्न हुआ। यह राग उसकी उत्पत्ति के लिए कारण तो है लेकिन वहीं उत्पन्न हो, इसके लिए कारण राग नहीं है। राग उस जगह पर उत्पत्ति का कारण है कि हाँ भाई! उस जगह पर यानी उस गर्भ में, किसी योनि में राग के कारण से जीव उत्पन्न होगा लेकिन यह decide करना कि मैं उसी जगह पर, उसी योनि में उत्पन्न होऊँगा; राग के आँखें नहीं लगी हुई हैं, यह काम कौन करेगा? राग की तीव्रता आपके लिए उस स्थान पर उत्पन्न कराने के लिए एक हेतु बन सकती है लेकिन वहीं पर ही उत्पन्न होना चाहिए, यह decision कौन लेता है? मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि कर्म के फलों को भी जब हम कहते हैं तो उसमें भी कहीं न कहीं अव्यक्तव्य का भाव आता है। लेकिन जब हमारे सामने केवल दो ही चीजें होती हैं तो हम उन्हीं दो की व्याख्या कर लेते हैं- भाग्य की, पुरुषार्थ की। एक तीसरी चीज और है, जिसे क्या कहा गया? अव्यक्तव्य। हम उसकी बात कभी नहीं करते जो आज करने बैठे हैं। अपनी life में भी हम आज पहली बार एक घण्टे तक इस अव्यक्तव्य पर चर्चा कर रहे हैं। न जाने कहाँ से मेरे दिमाग में आ गई यह बात! इस मंच पर बैठने से पहले भी नहीं पता था कि मुझे क्या बोलना है? और जब बोल रहा हूँ तब भी मुझे पता नहीं कि मैं क्या बोले जा रहा हूँ? लेकिन चल रहा है और मुझे लग रहा है कि बिल्कुल सही बोला जा रहा है। आप सोचिए! इस अव्यक्तव्य को अगर हम ध्यान में रखें तो यह भी कोई चीज होती है कि हम नहीं कह सकते कि यह राग के ही कारण से यहाँ उत्पन्न हुआ कि पुरुषार्थ से उत्पन्न हुआ। राग और पुरुषार्थ से ऊपर उठकर के भी एक चीज और है, जो हम कह नहीं सकते। राग की तीव्रता भी कई जगह हो सकती है। राग की तीव्रता भी, मान लो किसी जगह पर हो और वहाँ पर मान लो entry न हो तो क्या करेंगे? नहीं समझ आया? अब discussion करने बैठे हैं तो ढंग से ही कर लो।

जो चीज राग से नहीं चलती उसका नाम है- अवक्तव्य

यानी जहाँ आपकी राग की तीव्रता हो और वहाँ पर line clear न हो। आ गई समझ में बात! मतलब कोई entry का chance ही नहीं है वहाँ? तब क्या करोगे? वापिस turn ले लोगे? फिर कहना पड़ेगा कि कोई चीज है, जो राग से भी नहीं चलती है, राग के अलावा भी कोई चीज है...वह चीज क्या है? उसका नाम है- अवक्तव्य। आ गया समझ में? इसी तरह से हमें यहाँ समझना चाहिए कि मनुष्य जन्म अगर निगोद जीव से निकल कर के प्राप्त कर लिया जाता है तो इसके पीछे क्या कारण है? वह जो एक कारण है, वह भी उसको आप कारण की तरह क्यों नहीं मान रहे हो, यह एक बात कहने की है। सात भंग होते हैं, सात तरह के प्रश्न बनते हैं, उनमें से हम केवल पहले दो प्रश्नों की चर्चा करते हैं। वस्तु नित्य है, वस्तु अनित्य है, कथंचित् दैव से काम होता है, कथंचित् पुरुषार्थ से काम होता है, यहीं पर सब समाधान हो जाता है। कभी आगे क्यों नहीं बढ़ते? तीसरे धर्म की चर्चा क्यों नहीं करते हैं? हाँ...कभी दैव से भी और पुरुषार्थ से भी होता है। चलो! तीसरी भी बात हो गई। फिर चौथी? दैव से/पुरुषार्थ से हुआ, कुछ कहने में नहीं आया। दैव से हुआ कि पुरुषार्थ से हुआ, कुछ कहने में नहीं आ रहा; इसका नाम है- चौथा प्रश्न। यह चौथे type का प्रश्न आपके लिए यदि उत्तर के रूप में आता है, तो उसका उत्तर यह बनता है- कथंचित् अवक्तव्य। जब तीन प्रश्नों से उसका समाधान न हो तो चौथा समाधान अवक्तव्य से मिलता है। इस अवक्तव्य की बात यहाँ पर कही गई है जिसको कह दिया गया कि कैसे भी आप मनुष्य पर्याय को प्राप्त हो गए, बस! हो गए। सुन रहे हो न सब लोग? जो दूर दराज के हैं, वे भी सुन ले, online वाले भी सुन ले। अक्सर लोग मुझसे प्रश्न पूछा करते हैं और मैं उन प्रश्नों का उत्तर कभी भी व्यक्तिगत में बहुत कम देता हूँ। अब वह मेरा nature कह लो या कुछ कह लो। कभी कुछ ऐसे प्रश्न होते हैं जिन्हें मैं कहना चाहता हूँ या मैं समझ पाता हूँ कि इन्हें मैं समझा पाता हूँ, तब तो मैं बोलता हूँ थोड़ा बहुत, नहीं तो मैं उसको टाल देता हूँ। अब अगर यही प्रश्न आप कभी भी मुझसे अलग से पूछोगे तो मैं आपसे कुछ नहीं बोलूँगा। क्यों नहीं बोलूँगा? आप सोचोगे महाराज को पता नहीं होगा और मैं सोचता हूँ कि मैं तुम्हें बताऊँ तो तुम्हें समझ आएगा नहीं। क्योंकि इतनी detail, मैं किसी एक व्यक्ति से घण्टे भर तक नहीं कर सकता, वह मेरी nature में नहीं है। वह detail करने का time मुझे यहीं पर मिलता है। इसलिए आज जिन लोगों ने इस प्रश्न का उत्तर सुन लिया, वे सुन ले और जिनको भी कभी आगे इस तरह से फिर प्रश्न उत्पन्न हो तो यही चीज आगे forward कर देना कि भाई! महाराज की दृष्टि में इस प्रश्न का यह उत्तर है। निगोद जीव से मनुष्य पर्याय कैसे मिल जाती है? वहाँ कौन-सा पुरुषार्थ जीव कर लेता है? आप अब यही सुन लेना, मैं बार-बार नहीं सुना पाऊँगा। बस! मिल जाती है। कैसे मिल जाती है? बोलो तो! बोलते नहीं हो तुम लोग। अरे! कम से कम हमारे साथ तो बोलना सीखो। हमारा ही साथ नहीं दोगे तो किसका साथ दोगे?

गुरु के साथ से बहुत अच्छे परिणाम

गुरु की कृपा कहते हो तो गुरु के पहले साथ तो हो। गुरु कुछ बोल रहा है तो उसका साथ देना तो सीखो और गुरु का साथ देने में बड़ी आपके लिए सहूलियत है और बड़े फायदे हैं। फायदे इसलिए हैं कि आचार्यों ने कहा है- अगर तुम गुरु की हओ में हओ मिलाते रहोगे, भले ही गुरु ने गलत कह दिया हो तो भी तुम्हें उसका दुष्परिणाम नहीं भोगना पड़ेगा। तुम्हें बिल्कुल वही सफलता मिलेगी, जो तुम चाह रहे हो। क्योंकि

गलती की किसने? गुरु ने की वह जाने। मेरी तो श्रद्धा किस पर है? गुरु पर है। आपने कहा- अवक्तव्य है, हमने कह दिया- हओ, आप जानो! गलत व्याख्या करोगे, पाप का बन्ध आपको लगेगा, मैं क्या करूँ? मेरा तो श्रद्धान आप पर है, बस! बात खत्म। हिन्दी में तो इसके नाम अवक्तव्य, अनिर्वचनीय, ऐसे ही होते हैं और इस तरह से कोई भी चीज हम जब short form में अगर कहते हैं तो by chance. जो किसी भी तरह से कहने योग्य नहीं हैं बस! अब by chance में सब आ जाता है। अब उस by chance में तुम दिमाग लगाओगे कि ये भी by chance भाग्य से है कि हमारे पुरुषार्थ से है, तो उसमें भी जब आप मौन रह जाओ तो समझ लेना कि इसका नाम by chance है। इसलिए जब कभी हमें कोई चीज समझ में न आए और कोई हमें समझा रहा हो तो उसमें यही हमें करना पड़ता है कि जैसा आप कह रहे हो सही है। कृपा जैसे जो शब्द हैं वह भक्ति के प्रवाह में चलते हैं लेकिन जब ज्ञान का प्रवाह चल रहा है, तो यहाँ पर हमें हर चीज को स्वीकार करना पड़ता है और स्वीकार के लिए हमारे अन्दर एक भाव आना चाहिए कि जैसा गुरु कह रहे हैं, हम उसकी अनुमोदना करें। यह भी उन गुरु के वचनों की विनय कहलाती है। हम उनके साथ-साथ बोले, जैसे हम बोलते हैं- ओं नमः सिद्धेभ्यः तो आप सब मौन बैठे रहते हो। पाप लगता है आपको बोलने में क्या? आवाज आनी चाहिए ताकि वातावरण मंगलमय बने। अगर हम मंगलाचरण में कोई श्लोक पढ़ रहे हैं तो आप भी पढ़िए साथ में क्योंकि आप अगर साथ में पढ़ेंगे तो आपकी हमारे से जो energy है, वह connect होगी और आपके लिए वह reverse हो करके पहुँचेगी तो वह आपको बहुत ज्यादा फायदा देगी। सामूहिक मंत्र का, सामूहिक पाठ का यही फल होता है कि उसमें बैठे हुए लोग जो जितनी पवित्र भावना से पढ़ेंगे, उसकी भी उसमें energy शामिल होकर के वह उसके लिए return देगी। इसलिए कभी-कभी हमें यह सीखना पड़ता है, जो आप कह रहे हो सही है। कब तक? जब तक कि हमें कोई स्पष्ट रूप से आगम में कोई और नई लिखी हुई बात न बता दे तब तक। यानी मेरे इस अवक्तव्य की मर्यादा कब तक? देखो! जो है, clear बता रहा हूँ मैं आपको, शास्त्र की भाषा में ही बोल रहा हूँ। इस अवक्तव्य की मर्यादा कब तक? जब तक कि कोई दूसरा विद्वान, कोई दूसरा किसी भी तरह का ज्ञानी पुरुष, कोई अच्छा सा आचार्य प्रणीत कोई reference लेकर के, हमारे सामने लेकर के, न आ जाए तब तक आप इसको अवक्तव्य मानिए। बाकी चीज विद्वानों के ऊपर छोड़ दी, अब वे हमें दिखायेंगे और अगर हमें कोई नई चीज मिलेगी तो फिर हम उस चीज को भी सामने रखेंगे और आपको फिर वह चीज भी बतायेंगे कि अगर कुछ नई चीज मिली है, तो वह भी बताई जाएगी कि इसके पीछे का कारण क्या है? अभी तक तो कारण क्या समझ में आया? अवक्तव्य है। मनुष्य आयु का बन्ध हुआ यह ठीक है क्योंकि मनुष्य आयु के बन्ध के बिना मनुष्य आयु का उदय नहीं होगा तो मनुष्य आयु के बन्ध का भी कारण क्या? आप कहो...उसका भाव। हम पूछेंगे कि भाव कहाँ से आया? कर्म के उदय से आ नहीं सकता है क्योंकि कर्म का उदय तो वही चल रहा है, जो कलंक वाला कर्म है। कलुषित कर्म का उदय वही चल रहा है, नया उसको भाव नहीं देने देगा और अपने मन से वह पुरुषार्थ करके नया भाव पैदा नहीं कर सकता। मनुष्य तो कर सकता है, वह नहीं कर सकता क्योंकि एक इन्द्रिय में कहाँ से नया भाव उत्पन्न करने की क्षमता आएगी?

संक्लेश परिणामों की कमी होने से मनुष्य गति ही मिले, यह जरूरी नहीं

संक्लेश परिणामों की कमी होना अलग बात है और संक्लेश परिणामों की कमी से मनुष्य आयु ही बंध जाए, यह कोई जरूरी नहीं है। संक्लेश परिणामों में भी तिर्यच आयु बनती रहती है। संक्लेश परिणामों की

भी कमी हो गई मान लो तो भी मनुष्य आयु बंध जाए, कोई जरूरी नहीं है। संक्लेश परिणामों की कमी के साथ भी तिर्यच आयु का बन्ध होता है, संक्लेश परिणामों की कमी होने पर देव आयु का भी बन्ध होता है। वह निगोद कभी देव नहीं बन सकता direct लेकिन मनुष्य बन सकता है। इसलिए वहाँ पर उसको कैसे मनुष्य आयु के बन्ध के योग्य परिणाम आए, इसका कोई जब उत्तर नहीं मिलता तो वह उत्तर एक ही रह जाता है कि यह अवक्तव्य घटना है। संक्लेश परिणाम इतने कम नहीं हो जाते कि वह उस भाव कलंक की जो प्रचुरता है, उससे बिल्कुल ही वह down हो जाए। उसी संक्लेश के साथ में मनुष्य आयु का बन्ध कर लेता है, जिस संक्लेश के साथ में वह जन्म लेता है और उस संक्लेश में जो कमी आई तो वह कमी किस कारण से आई? वह कमी उसके लिए, वह कम संक्लेश उसके लिए मनुष्य आयु के बन्ध का कारण कैसे बन गया? जब इन सब प्रश्नों का उत्तर आपके सामने नहीं होगा तो फिर हमें इसी उत्तर पर आना पड़ेगा, यह अवक्तव्य है। अभी आपकी क्या सोच कर चलना है? by chance.

निगोद मनुष्य कैसे बन गया? यह एक अवक्तव्य घटना है। इसमें बहुत समय ले लिया आप लोगों ने!

गाथा: 52

जिनधर्म को प्राप्त करके भी, प्रमादरूपी भयानक- दोष से होने वाली हानि

पत्ते वि तंमि रे जीव! , कुणसि पमायं तुमं तयं चेव ।

जेणं भवंधकूवे, पुणो वि पडिओ दुहं लहसि ॥52 ॥

अन्वयार्थ— (रे जीव!) हे जीव! (तंमि पत्ते) उस 'श्रेष्ठ जिनधर्म' के, प्राप्त होने पर **(वि) भी (तुमं)** तुम **(पुणो)** पुनः **(तयं पमायं)** उसी, प्रमाद को **(चेव)** ही **(कुणसि)** करते हो **(जेणं)** जिस कारण से **(भव-अंध-कूवे)** संसाररूपी, अंधेरे, कुँए में **(पडिओ)** गिरकर के **(दुहं)** दुःख को **(वि) भी (लहसि)** प्राप्त कर रहे हो 'अतः प्रमाद छोड़कर आत्महित में लगे' ॥52 ॥

अब आचार्य कह रहे हैं...तुमने जिनवर धर्म भी प्राप्त कर लिया और यह जिनवर धर्म कैसा है? चिन्तामणि के सदृश है और ऐसे धर्म को प्राप्त करके भी तुम प्रमाद करते रहे। क्या करते रहे? प्रमाद।

इस प्रमाद के कारण से तुम इस संसार के अन्धकूप में पड़े रहे और दुःख को प्राप्त करते रहे, यह 52 नम्बर की गाथा में लिखा है। क्या लिखा है? संसार के इस अन्धकूप में पड़े रहना, इसी संसार में जन्म-मरण करते रहने के पीछे कारण क्या है? हमारा प्रमाद है, प्रमाद! प्रमाद समझते हो? बस! अच्छा काम क्यों नहीं कर रहे? हाँ.... कर लेंगे। आलस्य का मतलब ऐसा नहीं है कि कोई सोना ही हो, आलस्य का मतलब? एक शरीरगत आलस्य होता है, वह तो दिखाई देता है लेकिन जो मनगत आलस्य होता है, वह दिखाई नहीं देता। बस! वह नहीं करने का भाव मतलब कि आपके पास अभी कोई कारण नहीं है। हम आपसे पूछें- आप मुनि दीक्षा क्यों नहीं ले रहे? अच्छा बताओ, क्यों नहीं ले रहे? 'भाव नहीं हो रहे' नहीं...भाव-आव सब हैं। बस ठीक है, नहीं ले रहे, नहीं ले रहे। बताओ! पण्डित जी की क्या कमी है मुनि दीक्षा लेने में? शरीर अच्छा है, फुर्तीला है, अच्छे ढंग से चल-फिर सकते हो, ज्यादा केशलोच करने का भी कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा, इतने बाल भी नहीं हैं। ज्ञान भी अच्छा है, सबको पढ़ा सकते हो, सबको आगे बढ़ा सकते हो, क्यों नहीं कर रहे हो? इसी पण्डिताई में कौन सा आनन्द आ रहा है आपको?

प्रमाद क्या है?

अरे भाई! विदेश घूमना था, बीसों साल से घूम रहे हो, अब तो घूम चुके न? अब क्यों नहीं ले रहे हो? मुनि दीक्षा क्यों नहीं ले रहे? अगर आप मुनि दीक्षा ले लोगे तो विदेशी यहीं पर आयेंगे आपके पास में पढ़ने के

अरे! भाड़ में गए निमित्त-विमित्त सब! क्या निमित्त चाहिए तुम्हें? यहाँ निमित्त बैठा है, डोंगरगढ़ चले जाओ वहाँ निमित्त बैठा है, अब इतने निमित्तों में भी तुम्हारा काम न बने तो तुम्हारी बुद्धि भाड़ में गयी। मतलब तुम्हारी बुद्धि भाड़ में भुज रही है न? जब इतने निमित्त में से भी उछट के न आ पाए तो। और कौन सा निमित्त होता है? क्या केवली भगवान आयेंगे तुम्हें समझाने क्या कोई? इस पंचम काल में अब कौन से निमित्त आयेंगे? ये सब जो हम बातें करते हैं, इसका नाम ही प्रमाद है। यह समझ लो अच्छे ढंग से। हाँ! जितने भी हम excuse अपने भीतर से देते हैं, इसी का नाम जो है- प्रमाद कहलाता है। इस प्रमाद की यह भीतरी परिभाषा है, यह समझ कर चलो आप। प्रमाद मतलब आलस्य नहीं है, यह प्रमाद यानी प्रमाद ही है बस।

गाथा: 53

प्रमाद ही आत्मा का शत्रु है, उस प्रमादरूपी दोष का वर्णन करने वाली गाथा

उवलद्धो जिणधम्मो, ण य अणुचिण्णो पमायदोसेण ।
हा! जीव! अप्पवेरि! अ, सुबहुं परओ विसूरिहिसि ॥53 ॥

अन्वयार्थ— (जीव!) हे आत्मन्! (हा!) हा! 'अत्यंत खेद है कि दैवयोग से' (उवलद्धो) उपलब्ध (जिणधम्मो) जिनधर्म 'तुमने' (पमायदोसेण) प्रमादरूपी 'दोष के कारण' (अणुचिण्णो ण) अनुचीर्ण यानी सेवन, नहीं किया है 'इसलिए' (अप्प-वेरि!) हे आत्मा के, वैरी! 'तुम' (परओ) आगे (सुबहुं) अत्यधिक (विसूरिहिसि) खेद करोगे ॥53 ॥

यह प्रमाद आपके लिए आगे की गाथा में लिखा है- जिनधर्म को उपलब्ध हो गए लेकिन प्रमाद दोष के कारण से हमने उसका 'ण य अणुचिण्णो' 'अणुचिण्णो' अर्थात् हमने उसको खूब समझा नहीं, खूब अच्छे ढंग से उसका श्रद्धान नहीं किया, माना नहीं।

गुरु उपदेश

अगर हम बुंदेलखंडी भाषा में बोले तो एक शब्द बोला जाता है- महाराज! आप हमें चीन नहीं रहे। कभी-कभी बोलते हो न? हाँ! इतने दिन से चौका लग रओ है, आप अभी तक चीने नहीं हमें? मतलब क्या हुआ? चिनने का मतलब? पहचानना, समझ लेना, जान लेना। ऐसे ही धर्म तो मिल गया हमें, जिनधर्म... लेकिन हमने जिनधर्म को पहचाना नहीं, चीना नहीं उसको। यह समझो यहाँ लिखा है। यह प्राकृत का शब्द है 'चिण्णो' अनुपसर्ग लग गया तो 'अणुचिण्णो' हो गया और इसी शब्द का उपयोग हमने एक कल्याण-मंदिर स्त्रोत के पद्यानुवाद में भी किया है कि हे भगवन्! आपने मुझे कभी चीना नहीं। चीन, ऐसे उसमें लिखा हुआ है, पढ़ लेना मेरा पद्यानुवाद उसमें। वह चीन भी लोग पूछते हैं... चीन क्या है? वह चीन कोई चीन देश नहीं है, चीन मतलब वही है, चीन भाव कि हे भगवन्! हम आपकी पूजा किए जा रहे हैं, आप हमें चीन ही नहीं रहे। उसी तरीके से यहाँ कहा जा रहा है, आपको जिनधर्म मिल गया लेकिन आपने धर्म को समझा नहीं, पहचाना नहीं; यह धर्म कितना महान है? यह धर्म हमें कितने बड़े संसार के अन्धकूप से बाहर निकालने वाला है। यह धर्म हमें कैसे पंच परावर्तनों के चक्कर से बाहर निकालने वाला है; ऐसे इस धर्म को जाना नहीं। इसलिए कहना पड़ता है- हा हा हा, हा यानी? हाय हाय, यह तू क्या कर रहा है? हा, यह हाय तो बाद में आई है, पहले मूल शब्द क्या है? 'हा' जब कुछ ऐसा हो जाता है, जो कुछ sad हो, alas हो तो फिर कहना पड़ता है... हा! जीव! अप्पवेरि! तू तो अपना वैरी खुद बना हुआ है। अब इससे बड़ी

गाथा: 54

प्रमाद रूपी दोष के कारण, जिनधर्म का संचय न करने से होने वाली हानि

सोयंति ते वराया, पच्छा समुवट्टियंमि मरणंमि ।
पाव-पमाय-वसेणं, ण संचियो जेहि जिणधम्मो ॥54 ॥

अन्वयार्थ- (पाव-पमाय-वसेणं) प्रमाद रूपी, प्रमाद के, वशीभूत होने के कारण (जेहि) जिन्होंने (जिणधम्मो) जिनधर्म (संचियो ण) संचित, नहीं किया है (ते) वे (वराया) बेचारे (मरणंमि सं-उवट्टियंमि) मृत्यु के, निकट, उपस्थित होने पर (पच्छा) पीछे (सोयंति) शोक करते हैं ॥54 ॥

वैराग्य शतक एक अज्ञात कर्ता के द्वारा रचित ग्रन्थ है, जिसमें जन सामान्य के साथ घटित होने वाली घटनाओं का उल्लेख करते हुए संसारी प्राणी को भीतर से चेतावनी दी जाती है। संसारी प्राणी को भीतर से चेताने की कोशिश की गई है और इस संसार में रहते हुए भी हम धर्म की ओर अग्रसर हो, इसके लिए बार-बार एक प्रबोध, एक जागृति पैदा करने की कोशिश की गई है। पिछली गाथाओं में जो सुना है, उसी क्रम में आगे यह गाथा 54, 55 और 56 आती है, उसको क्रम से पढ़ते हैं...



सोयंति ते वराया, पच्छा समुवट्टियंमि मरणंमि ।
पाव-पमाय-वसेणं, ण संचियो जेहि जिणधम्मो ॥54 ॥

धी! धी! धी! संसारं, देवो मरिऊण जं तिरी होई ।
मरिऊण राय-राया, परिपच्चइ णिरय-जालाहिं ॥55 ॥

जाइ अणाहो जीवो, दुमस्स पुप्फं व कम्म-वाय-हओ ।
धणधण्णाहरणाइं, घर-सयण-कुडुंब-मिल्ले वि ॥56 ॥

आचार्य कहते हैं...इस संसार के प्राणी मरण के उपस्थित हो जाने पर पछतावा करते हैं...‘मरणंमि समुवट्टियंमि’ जब उनके सामने मृत्यु आती है, तो वह पश्चाताप करते हैं, पछताते हैं और उस समय पर वे

‘सोयंति’ अर्थात् शोक करते हैं। वे सभी ‘ते वराया’ वराक होते हैं। वराक का मतलब होता है- बेचारे। बेचारे के अर्थ में वराक कहा जाता है। वराक ओबामा नहीं है...यह वराक मतलब बेचारा। जो एक तरह से दीन हो जाए, लाचार हो जाए और वह कुछ भी करने के लिए उस समय पर इच्छा तो करे लेकिन कर न पाए तो उसको बेचारा कहा जाता है।

जीवन में धर्म संचय न करने के कारण मरण समय पर पछतावा

मरण के समय पर संसारी जीव की स्थिति कुछ ऐसी ही बनती है और वह उस समय पर इसी तरह के सम्बोधनों को प्राप्त होता है। उसकी स्थिति बेचारे जैसी होती है क्योंकि उसे समझ आता है कि **हमें जीवन में जो करना चाहिए था, वह हम नहीं कर पाए और जो नहीं कर पाए उसी का उसके लिए शोक रहता है।** मृत्यु के समय पर उसे पछतावा होता है। अगर मृत्यु उसके सामने आई हो और उसे लग रहा हो कि अब हम मृत्यु की गोद में ही स्थित हैं तो उसे जरूर इस तरह का पछतावा होता है। कई लोग होते हैं जिनके सामने मृत्यु तो आती है लेकिन अकस्मात् आती है, तो उन्हें पता भी नहीं पड़ पाता और किसी एक accident में, किसी एक ठोकर में वे तुरन्त ही चले जाते हैं। उस तरह के लोगों को यहाँ पर लक्ष्य नहीं किया गया। यहाँ पर उन लोगों को लक्ष्य में रख करके कहा जा रहा है, जो मृत्यु को देख रहे हैं, जिन्हें लग रहा है कि अब मृत्यु हमारे सामने है- दो दिन, तीन दिन, पाँच दिन, अधिकतम आठ-दस दिन...उन्हें समझ आता है, इससे ज्यादा अब हम जी नहीं सकते। उस समय पर जो स्थिति बनती है, उसके लिए यहाँ कहा जा रहा है। अगर व्यक्ति ने अपने जीवन में **‘ण संचियो जेहि जिणधम्मो’** गाथा में लिखा है- जिसने जिनधर्म का संचय नहीं किया है, तो वह बेचारा अन्त समय में पछतावा करेगा।

धर्म का संचय न करने वाला बेचारा है

इससे पहले एक गाथा में आया था कि अगर आपने जिनधर्म प्राप्त कर लिया है फिर भी आपने प्रमाद दोष से उसको चीना नहीं, पहले कहा था कि उसको पहचाना नहीं, समझा नहीं तो भी आपके लिए अन्त में खेद होगा। उसी बात को और आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि अगर आपको जिनधर्म प्राप्त तो हो गया, आपको जिनधर्म के योग्य सभी निमित्त मिल गए, सभी तरह के आयतन मिल गए, सभी तरह के आपको ज्ञान भी मिल गए, शास्त्र भी मिल गए, शास्त्रों के उपदेशक भी मिल गए, शास्त्रों में जो चर्या कही गई है, वह भी आपको दिखाने वाले मिल गए लेकिन फिर भी आपने उस जिनधर्म में जन्म लेने के बावजूद भी उसका संचय नहीं किया। पहले एक शब्द आया था कि आपने उसको समझा नहीं, पहचाना नहीं और आज कहते हैं...आपने जिनधर्म का संचय नहीं किया। संचय मतलब कुछ जोड़ कर रखना, collect करना जैसे आप money collect करके रखते हो, money lender बनते हो, ऐसे ही यहाँ कहा जा रहा है कि **आपको धर्म को भी संचित करना चाहिए था।** लेकिन आप धन को तो बहुत प्रेम से संचित करते रहे, धर्म का संचय नहीं किया। अगर धर्म का संचय नहीं किया तो अन्त में यह स्थिति बनेगी कि आप बिल्कुल दीन से, हीन से अपने आप में महसूस करते हुए शोकाकुल होंगे और दूसरे लोग आपको बेचारा समझे या न समझे लेकिन आप अपनी आत्मा को जरूर बेचारा के रूप में देखेंगे कि अब हमारे पास में कोई चारा बचा नहीं है, उसका नाम है- बेचारा। **‘बे’** का अर्थ राजस्थानी में तो **दो** भी होता है लेकिन **बे** मतलब **बिना** भी होता है।

जैसे बोलते हैं- बेरहम यानी जिसके पास में रहम न हो, उसे क्या बोलते हैं? बेरहम। ऐसे ही जिसके पास अब कोई चारा न बचा हो, लालू की तरह जिसने सारा चारा चबा लिया हो और अब कोई चारा बचा न हो तो वह क्या कहलाता है? बेचारा। ऐसा बेचारा बनने की स्थिति आती है।

प्रमाद की परिभाषा

आचार्य आपको सचेत कर रहे हैं, अन्त में आपको पछतावा होगा और उस पछतावे के पीछे जो कारण दिया है, वह कहा गया है... **‘पाव-पमाय-वसेणं’** पाप प्रमाद के वश से यह जीव जिनधर्म का संचय नहीं कर पाता। कौन-सा प्रमाद? यह एक वाक्य है। कल आपसे कहा जा रहा था प्रमाद यानी क्या? आपसे कहा जा रहा था, आपसे पूछा जा रहा था...प्रमाद मतलब बताओ? अब भी नहीं समझ पाए, कल कितना समझाया था। दिमाग का आलस, मन नहीं लगना, किसी चीज को टालना, excuse बताते जाना; यही सब कुछ बताया था...इसी का नाम प्रमाद है। धर्म के प्रति जागरूक नहीं होना, यह भी प्रमाद है और जो करने योग्य कार्य हैं, वे तो बता ही नहीं रहे हो...पण्डित जी बोलते ही नहीं हैं, हँसते रहते हैं। वह तो मुझे पता है, वह सब तो सिखाने के लिए है, दूसरों को सैद्धान्तिक परिभाषा का ज्ञान कराने के लिए है और वह अपनी विद्वत्ता बताने के लिए है और मैं कोई विद्वत्ता तो यहाँ बता नहीं रहा हूँ तो इसलिए मैं उस भाषा का प्रयोग नहीं कर रहा जो सर्वार्थसिद्धि की परिभाषा है **‘कुशलेषु अनादरः प्रमादः’** यह सर्वार्थ सिद्धि की परिभाषा है। इसका प्रयोग न करते हुए मैं उसको general way में बोल रहा हूँ कि प्रमाद का मतलब क्या है? यह तो आप कह रहे हो कुशल में अनादर होना प्रमाद है यानी वह कुशल भी क्या है? जो अपने लिए हितकारी कार्य हो वह नहीं करना। यह भी क्या है? प्रमाद है। यानी प्रमाद की जितनी भी परिभाषायें अभी आपने बोली हैं, वे सब प्रमाद की परिभाषायें हैं। अलग-अलग स्तर पर वे प्रमाद की परिभाषायें सब लागू होती हैं। मन में आलस होना, मन के अन्दर बहानेबाजियाँ होना और मन के अन्दर किसी भी धर्म कार्य के प्रति जागरूकता नहीं होना, हम ये सब परिभाषायें समझ करके समझ सकते हैं कि ये सभी तरह के प्रमाद हमारे भीतरी मनःस्थिति को बताते हैं।

पाप प्रमाद हमें जिनधर्म का संचय नहीं करने देता

इसी को ध्यान में रखते हुए यहाँ पर प्रमाद के साथ एक विशेषण लगाया गया **‘पाव-पमाय-वसेणं’** यह प्रमाद पाप प्रमाद कहलाता है। **‘पाप प्रमाद’** मतलब प्रमाद जो हमें पाप में तो लगा दे और पुण्य से बचा दे, उसका नाम प्रमाद है। जो पाप में मन लगा दे और पुण्य कार्य में मन न लगाए या उससे हमें दूर रखे, इसका नाम प्रमाद कहा गया...यह **अन्तरंग प्रमाद** कहलाता है। **बहिरंग प्रमाद** तो देखने में आता है। भाई! उबासी आ रही है, बैठे-बैठे लालाजी टिक गए, सो गए तो यह सब क्या है? यह बाहरी प्रमाद है, शारीरिक प्रमाद है लेकिन भीतरी जो प्रमाद है वह क्या है? **धर्म के प्रति रुचि नहीं होना, पुण्य कार्यों के प्रति रुचि नहीं होना लेकिन पाप कार्यों के प्रति तैयार रहना।** एक छोटा-सा भी message मिले तो हम पाप के लिए तैयार हैं और पुण्य कार्य के लिए घर में चार बार भी आदमी दरवाजा खटखटाए, अलग-अलग घर के लोगों को अलग-अलग Message दिया जाए, अलग-अलग mobile पर बताया जाए तो भी ध्यान नहीं रहा। ऐन Time पर क्या बोलता है आदमी? ध्यान नहीं रहा। भाई! आप सभा में क्यों नहीं आए? ध्यान

नहीं रहा, किसी ने बताया नहीं, उस समय पर किसी ने जगाया नहीं, मैं सो गया था, थोड़ा-सा आराम करने के लिए सोता ही रह गया। जब पाप कार्य का time आता है...भाई! party में चलना है तो घर का एक भी आदमी न सोता है, न किसी को सोने देता है। यह जो कार्य होता है, यह कार्य ही बताता है कि हमारा interest किधर है। जब हमारे interest में इस तरह का यह पाप होता है तो उससे जो प्रमाद होता है, उसी प्रमाद की वजह से हम जिनधर्म को प्राप्त करके उस धर्म का संचय नहीं कर पाते हैं।

प्रमाद बनाम धर्म

यह कहा है कि हमें अपनी आत्मा में धर्म को इकट्ठा करना चाहिए था। धर्म कहाँ इकट्ठा करोगे? जब तो होती नहीं धर्म के लिए, शरीर में धर्म इकट्ठा होता नहीं, धर्म को इकट्ठा कहाँ किया जाएगा? **अपनी आत्मा को धर्म से भरना, अपनी आत्मा में धर्म का संचय करना** क्योंकि वह आत्मा ही है जो इस शरीर को छोड़ने के बावजूद भी होगी और वह आत्मा ही है जो इस धर्म को ले जाकर के अगले जन्म में भी हमें हितकारी कार्यों में लगाएगी। उस धर्म का संचय करने के लिए कहा गया है और वह धर्म का संचय कब होगा? जब प्रमाद छूटेगा। जितना-जितना प्रमाद छूटेगा, उतना-उतना ही धर्म का संचय होगा और प्रमाद में सबसे बड़ा प्रमाद क्या है? पाप का प्रमाद है। पाप भाव जितना-जितना छूटेगा, उतना-उतना आपके भीतर धर्म का संचय होता चला जाएगा। अब आप मन में विचार करते रहो कि प्रमाद अगर आ रहा है तो कहाँ आएगा? हमारे मन में आएगा, उसको शरीर में मत देखो। अगर आपने दिन के 12 घण्टों में 8 घण्टे भी, 6 घण्टे भी अगर आपने प्रमाद से रहित होकर के कोई धर्म का संचय किया है तो बाद में आप ८ घण्टे अगर सो भी जायेंगे तो आपके लिए वह सोना पाप नहीं कहलाएगा क्योंकि आपने धर्म का संचय किया है। लेकिन जिन्होंने धर्म का संचय नहीं किया, वे अगर दिन में भी जाग रहे हैं तो उनका दिन में जागना भी सोने जैसा है। धर्म का संचय करने वाला व्यक्ति अगर दिन में किसी भी तरह से संचय कर लेता है और बाद में वह सो भी जाता है, तो भी उसका सोना आगे के लिए और धर्म संचय की स्फूर्ति के लिए कारण होता है, इसलिए उसका सोना भी पाप नहीं होता है, प्रमाद नहीं होता है। उसका सोना भी उसके लिए सोने जैसा होता है। जिस व्यक्ति के अन्दर इस तरह की जागृति रहती है, वह अपने अन्दर पाप से अपने आप को बचाने के लिए सोचता है तो वह उस प्रमाद से बच कर के ही अपने अन्दर धर्म उत्पन्न कर लेता है। पाप प्रमाद में जितनी कमी होगी, धर्म संचय उतना ही बढ़ता चला जाएगा। ये दोनों चीजें opposite हैं। पाप प्रमाद में जितनी वृद्धि होती जाएगी, धर्म का संचय उतना ही कम होता चला जाएगा। एक पाप प्रमाद है और एक धर्म संचय, दोनों चीजें सामने रखो...जैसे mathematics में होता है न और फिर उनका proportion बनाते हैं। यह पाप का प्रमाद अगर घटेगा तो इसका graph बढ़ेगा और पाप प्रमाद का graph बढ़ेगा, तो इसका graph घटेगा; ये दो चीजें हैं...ये दोनों चीजें सामने रखना चाहिए।

पाप प्रमाद धर्म से दूरी बढ़ाता है

अगर हमें धर्म का संचय करना है तो क्या करना? मन में जब भी पाप उत्पन्न हो, पाप का प्रमाद जब भी मन के अन्दर आए तो वह पाप में आदर कराएगा। पाप प्रमाद क्या कराएगा? पाप में आदर कराएगा, धर्म से हमें दूर रखेगा। आपको पता होता है कि सुबह मन्दिर में हमें अभिषेक करने का एक निश्चित समय होता है

लेकिन अगर आप उस निश्चित समय पर नहीं पहुँचते हो तो उसका कारण क्या होता है? आप सोते रहे। अगर आप पाप प्रमाद के कारण से सोते रहे और आपने वह धर्म संचय का समय छोड़ दिया तो क्या होगा? वह जो समय धर्म संचय का था, उस संचय के धर्म से आप वंचित हो गए मतलब आपने अपने ही प्रमाद से उस धर्म के संचय के समय को निकाल दिया।

आचार्यों द्वारा प्रदत्त उपाधियाँ

इसलिए आप क्या कहलाये? कल एक शब्द आपको सम्बोधन में दिया था...याद है किसी को? कल एक शब्द आपके सामने आया था। अच्छे शब्द, अच्छे Title जो आचार्यों के द्वारा दिए जाते हैं, अपने लिए जैसे हमें कोई बड़ी-बड़ी उपाधि दे, कोई award दे, कोई बड़े-बड़े पुरस्कार दे, उनको हम जैसे याद रखते हैं कि हमें पद्मभूषण मिला, कोई हमें नोबल पुरस्कार मिला। इस तरह से हमें ये उपाधियाँ ध्यान रखनी चाहिए जो आचार्य हमें अपने लिए देते हैं। कल एक बहुत अच्छी उपाधि मिली थी, सम्बोधन के रूप में थी, वह क्या थी? **अप्पवैरी! अप्पवैरी** यह है अपने लिए Title, इसको याद रखना चाहिए। अपने आपको दिन में १० बार बोल लेना चाहिए। मैं कौन हूँ? मैं **अप्पवैरी** हूँ। **अप्पवैरी** का मतलब? अपना बैरी मैं खुद ही हूँ। १० बार दिन में याद कर लेना चाहिए। जब-जब आपको पाप करने का भाव आए, तब-तब याद कर लेना चाहिए। मैं कौन हूँ? **अप्पवैरी** हूँ। जब-जब आपको गुस्सा आए, आपके लिए ईर्ष्या उत्पन्न हो, आपके अन्दर अहंकार उत्पन्न हो, तब तक आपको याद कर लेना चाहिए...मैं कौन हूँ? **अप्पवैरी** हूँ। मैं अपनी ही आत्मा का दुश्मन खुद बन रहा हूँ। मैं अपनी ही आत्मा को खुद दुःखी बना रहा हूँ। जो अपने आप को खुद दुःखी बना रहा है... वह क्या है? अपना खुद वैरी है। ये Title हैं जो याद रखने चाहिए। तुम चाहते हो कोई अच्छी-अच्छी उपाधियाँ दें महाराज। महाराज के पास हैं ही नहीं उपाधियाँ। जो उपाधियाँ हैं वे यही हैं और तुम्हारी अपेक्षा रहती है कि महाराज! आपको पता नहीं है जब पंच-कल्याणक हुए थे, तो हमने पूरा पंचकल्याणक कराया था, हमने पूरा रथ चलवाया था। हम सिंघई बने थे, हम सवाई सिंघई बने थे, हम सर्वश्रेष्ठ सवाई सिंघई बने थे। आप इन नामों से हमें बुलाओ तो अच्छा लगेगा। अब महाराज को इन सब नामों से कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि ये कोई धर्म के नाम, कोई आचार्यों के लिखे नाम नहीं हैं। कोई ग्रन्थों में नहीं लिखे कि रथ चलाना हो तो तुम्हें सिंघई बना देंगे और तुम्हें एक उपाधि मिल जायेगी। रथ सही चल गया, पहले जैसे चला था उससे और सवाया चल गया तो सवाई सिंघई बन जाएँगे और रथ चलाते हुए अगर रथ कहीं बीच में ही चूँ-चूँ कर गया तो वे चूँ-चूँ सिंघई भी कहलाने लग जाते थे। अब ये उपाधियाँ तो हम आपको देंगे नहीं, हम तो वही देंगे जो शास्त्रों में लिखा हुआ है- **अप्पवैरी**। सबको यह Title प्रिय होना चाहिए। कम से कम आचार्यों ने हमें कुछ कहा तो। क्या कहा? **तुम अपनी आत्मा के खुद वैरी हो, दुश्मन खुद बने हुए हो। इसलिए अपने को यही भाव ध्यान में रखते हुए यह ध्यान रखना है कि हम पाप प्रमाद के वशीभूत हैं तो अपने वैरी हैं।** अब ये पाप प्रमाद के वशीभूत होने के लिए क्या कारण हैं?

प्रमाद से असंयम का भाव

निमित्त कारण हैं कि उपादान कारण हैं? कल आपको सबका खुलासा कर दिया था। निमित्त भी कोई कारण नहीं, उपादान भी कोई कारण नहीं। कारण कहाँ से है, क्या है? यह सिर्फ एक अपने मन का कारण

है- **अप्पवैरी**। कल आपसे पूछा...भाई! आप यहाँ बैठे हो। क्या कारण है कि आप दो प्रतिमा के व्रत नहीं ले सकते हो? आप दो प्रतिमा को धारण करने का, व्रती बनने का भाव क्यों नहीं बना रहे हो, बताओ? आप जितने भी कारण बताओगे वे सब आपके बहाने होंगे, वे सब excuse होंगे आपके। कोई कारण ही नहीं है। ऐसे भी लोग हैं जिनके घरों में कुएँ बने हुए हैं, मन्दिर भी पास में है, पानी की कहीं कोई किल्लत नहीं है, व्रतों का पालन करने के लिए पर्याप्त घर में सामग्रियाँ हैं, सुविधाएँ हैं, पारिवारिक अनुकूलताएँ हैं, सब कुछ है लेकिन फिर भी नहीं करना। यह क्या है? इसका नाम है- प्रमाद।

प्रमाद पाप बन्ध का कारण

क्यों नहीं करना? अभी नहीं महाराज! फिर सोचेंगे। आगे के time में देखेंगे, फिर दो-चार साल बाद सोचेंगे। कभी फिर कोई चातुर्मास होगा तब देखेंगे, अभी नहीं। यह क्या है? इसका नाम है- प्रमाद! यह हम समझाना चाह रहे थे आपको। परिभाषा तो सैद्धान्तिक सभी को पता है लेकिन उसको वास्तविक रूप में समझना कि यह परिभाषा क्या कह रही है? हम जो भी धर्म का संचय करने का कार्य कर सकते हैं और वह नहीं कर रहे हैं और उसके लिए हमारे लिए कहीं कोई दिक्कत नहीं है संचय करने में, फिर भी नहीं कर रहे हैं, इसका नाम क्या है? प्रमाद और यह प्रमाद क्या है? पाप प्रमाद, बस! मानो कि आपको पता है कि अगर हम जैसे ही प्रतिमा धारण करेंगे, हमारा बाहर का खाना छूट जाएगा। हम होटलों में नहीं खा पाएँगे, हम पार्टियों में enjoy नहीं कर पाएँगे, हम मनचाहे ढंग से कहीं buffet system पर नहीं खा पाएँगे, यह आपको पता है। चलो ठीक है, आपको यह सब पता है और यह चीज आपके दिमाग में आती है तो हम क्या कर रहे हैं? इन सब चीजों में हमें क्या मिलेगा? इन सब भोजनों में हमें क्या मिलेगा? पुण्य मिलेगा? क्या मिलेगा? अशुद्ध भोजन करोगे, पाप का ही बन्ध करोगे। यह जो आपके अन्दर एक प्रमाद है जो आपको वह याद दिलाता है कि हमारा सब बाहर का छूट जाएगा। अरे भाई! बाहर का ही तो छूटेगा न, खाना तो नहीं छूट जाएगा। शुद्ध चीजें क्या घर में नहीं बनाई जाती हैं? शुद्ध चीजें क्या घर की बनी हुई बहुत सारी item के रूप में नहीं बनती हैं? क्या घर में बहुत सारी शुद्धता के साथ में चीजें बनाकर के हम अपना जीवन नहीं चला सकते हैं? कर सकते हैं लेकिन हम नहीं कर रहे हैं, इसी का नाम है- प्रमाद।

बेचारा कौन?

सुन लो आपकी भाषा में आपको बता रहा हूँ... **‘कुशलेशु अनादरः प्रमादः’** वह तो ग्रन्थों की भाषा में लिखा हुआ है। आपकी भाषा में उसकी व्याख्या क्या होगी? यह है। हम जो भी अच्छा कार्य करने की सामर्थ्य रखते हैं लेकिन फिर भी हम उस सामर्थ्य का उपयोग धर्म के संचय के लिए, व्रत के पालन के लिए न करके अव्रत के पालन के लिए कर रहे हैं, यह हमारा प्रमाद हमें धर्म के संचय से वंचित करता है। यही यहाँ पर आचार्य कहते हैं...अगर इस तरह से हमारा यह प्रमाद बढ़ता चला तो जीवन के अन्त में आपके पास में सिर्फ **वराक** वाली स्थिति बचेगी, बेचारे बचोगे आप सिर्फ। उस समय आपके लिए अगर आपका शरीर कोई साथ नहीं दिया होगा, आपको कोई रोग हो गए होंगे, आपके लिए ventilator पर डॉक्टरों ने छोड़ दिया होगा या वहाँ से भी आपको बाहर निकाल दिया होगा और कह दिया होगा कि भाई! अब आप दो-चार दिन के मेहमान हैं तो आपके पास में कुछ नहीं होगा। वहीं अगर आप व्रतों के साथ होंगे तो एक तो पहले

doctor के पास तक जाने की नौबत नहीं आएगी और मैं कहता हूँ...कभी आदमी को doctor के पास जाना भी नहीं चाहिए। हर पुण्यवान व्यक्ति को doctor और डॉक्टरों की दवाई से बचने की भरपूर कोशिश करनी चाहिए।

doctor और वकील से बचकर रहें

आजकल की डॉक्टरी मतलब डॉक्टरों के हाथ में गया तो बीमार न हो तो बीमार पड़ता है, मेरा तो दिमाग यह कहता है। आदमी मरने को न हो तो वहाँ से मरा हुआ लौट करके आता है, बिल्कुल मरते जैसा लौट करके आता है; यह आजकल की डॉक्टरों की स्थिति है। अब कोई doctor हम पर claim कर दे तो कर दे। मैं देखता हूँ, देखता रह जाता हूँ; व्यक्ति चलता-फिरता होता है, हष्ट-पुष्ट होता है, अच्छा खासा भर्ती होने के लिए जाता है, कुछ सही होने के लिए जाता है और वहाँ से बिल्कुल अधमरा लौट के आता है। ऐसी स्थिति में आपको यह सीख लेना चाहिए कि हे भगवन्! बस! हमें इतना पुण्य मिल जाए, कभी मैं doctor के हथे न चढ़ जाऊँ बस! दुनिया में अगर बचाव करना है, तो दो ही लोगों से बचकर रहना। भगवान से प्रार्थना करना प्रतिदिन कि मुझे दो लोगों के हाथ न चढ़ना पड़े, उनके दरवाजे पर न चढ़ना पड़े...एक doctor और एक वकील। अगर इन दो लोगों से बच कर के जिन्दगी निकल गई तो समझ लेना बहुत सुकून की जिन्दगी है, बहुत पुण्य की जिन्दगी है। घर में बीमारी के कारण से मर जाना अच्छा है लेकिन डॉक्टरों के पास जाकर के और डॉक्टरों के पास पहुँचने के बाद में वहाँ से बेशर्म होकर के इस तरह से लौटना, बेइज्जत होकर के वहाँ से इस तरह से लौटना, जब doctor कह दे मैं कुछ नहीं कर सकता; मैं समझता हूँ इससे बड़ा दुनिया में कोई आपकी आत्मा का अपराध नहीं हो सकता है। उस व्यक्ति की क्या इज्जत रह गई? क्या उसकी अपनी reputation रह गई? जब doctor ने कह दिया कि मैं आपका कुछ नहीं कर सकता और अब आप अपने लिए भी कुछ नहीं कर सकते। इज्जत कब थी? आप बेशक कोशिश करते हैं कि हम ठीक हो जायें लेकिन ठीक कहाँ हो जायें? घर में हो जायें।

धर्म की शरण में मरण

doctor के पास भी जाना पड़े, doctor से बस थोड़ा-सा परामर्श लेना पड़े तो जहाँ वह कहे कि तुम यह injection और यह ventilator और यह कर लो, वह कर लो तो कोशिश करना, उसके हाथ जोड़ना कि मैं ऐसे यमदूतों से अपने आप को दूर रखूँ। घर में आ जाना, अपनी जो भी औषधि बने वह ले लेना लेकिन इस तरह से लाइलाज हो करके वहाँ से लौट कर के वापस आने की अपेक्षा से और इस तरह से मरण करने की अपेक्षा से अगर हम घर में ही आराम से रहते हुए, अपनी औषधि खुद करते हुए, खुद अपने ढंग से उस भोजन-पान की कमी लाते हुए, अपने अन्दर एक धर्म का भाव लाते हुए धीरे-धीरे मरण की ओर जाएँ तो मरण होने के बावजूद भी आदमी आपकी इज्जत करेगा और मरते-मरते समय तक आपके कानों में गमोकार सुनाएगा, आपकी प्रशंसा करेगा कि आपने बहुत बड़ा साहस का काम किया। यह कहलाएगा इज्जत के साथ मरना।

गुरु शरण में मरण

आज मैं बहुत अच्छे दो शब्द बोलने जा रहा हूँ, बोल रहा हूँ क्योंकि आपको शास्त्रीय भाषाएँ समझ में नहीं आती हैं इसलिए दो नए शब्दों का प्रयोग कर रहा हूँ - एक इज्जत के साथ मरना और एक बेइज्जत होकर के मरना। जब doctor ने कह दिया- अब आप तीन दिन के मेहमान हैं, आप कुछ नहीं कर सकते; समझ लेना इससे बड़ी बेइज्जती हमारे जीवन की कुछ नहीं हो सकती। वह बेइज्जती किसने कराई? वह हमने खुद करी, **अप्पवैरी** बनकर के। अगर हमारे पास में कुछ व्रत होते, नियम होते, संयम होते तो हमें वहाँ तक पहुँचने की जरूरत नहीं। हम पहुँचते डोंगरगढ़, हम उन वैद्य के पास पहुँचते और वे हमें जिस संघ में भेजते, हम वहाँ पर जाते तो इज्जत के साथ मरते। हमारी डोली निकलती, अर्थी नहीं निकलती। अन्तर है कि नहीं दोनों में? कितनी आचार्य श्री के पास में बुजुर्ग लोगों की समाधियाँ हो रही हैं। 58 साल के लोग भी समाधि ले रहे हैं, 100 साल के लोग भी ले रहे हैं, 101 साल की अभी बूढ़ी माँ है, एक गोटेगाँव की, वह भी अभी समाधि लेने के लिए आचार्य महाराज के पास में पहुँची तो आचार्य महाराज ने उन्हें माताजी के संघ में refer कर दिया। यह एक तरीका होता है- इज्जत से मरने का। अगर आप जीवन के अन्त में बेइज्जत होकर के मरे, अब यह ध्यान रख लेना, आप मेरी इस गाली को भी याद कर लेना। जीवन में अगर हमने इज्जत कमाई है, तो इज्जत कमाने का मतलब यह नहीं होना चाहिए कि हम केवल इज्जत से जी रहे हैं। इज्जत कमाने का मतलब होता है- इज्जत से मरना। डॉक्टरों के पास से लौट कर के आना, बेरहमी से मर जाना, डॉक्टरों के पास पहुँच कर के braindead हो जाना और इस तरीके के उनके operation या उनके इंजेक्शनों के माध्यम से यह स्थिति बन जाना कि हमें अपना होश ही न रहे। यह सब जो है क्या है? यह सब बेरहमी से मरना है और बेइज्जत होकर के मरना है। जब आप इस तरह से मरेंगे इज्जत के साथ तो बेरहमी से नहीं मरेंगे। आपके लिए रहमदिल अनेक होंगे और अनेक आपके लिए उस समय पर उपचार करेंगे। बड़े-बड़े साधु-साध्वियाँ आपको सहला रहे होंगे, आपकी गर्दन को अपनी गोद में रखे होंगे, आपके सिर के ऊपर अपना हाथ रखे होंगे, इतनी रहमदिल से जिस जीव का मरण होगा, उसका नाम होगा इज्जत के साथ मरने वाला आदमी।

doctor का इलाज भी trial basis पर चलता है

अब यह सीख लो, मैं आपसे खुलेआम कह रहा हूँ। मरने से पहले और doctor के पास जाने से पहले विचार कर लेना कि अगर doctor ने कुछ कह दिया और हमारी इज्जत चली गई तो हम कहीं के नहीं रहेंगे। इसलिए doctor के पास जाने से पहले एक बार विचार कर लेना... मैं किसी साधु के पास चला जाऊँ, किसी साध्वी के पास चली जाऊँ। हमें लग रहा है हमने पूरी जिन्दगी जी ली है, हमने सब कुछ अपनी जिन्दगी में देख लिया है, उम्र भी पूरी हो रही है। अब इससे ज्यादा हमें डॉक्टरों की कैचियाँ और उनके इंजेक्शनों का शिकार नहीं बनना चाहिए। चाहे हमारा शरीर किसी भी तरीके से हमारा साथ दे या न दे। इसको कहेंगे इज्जत के साथ मरना और यह किसी को नहीं आ रहा है। इसलिए लोग अकाल में मर रहे हैं, अकाल मरण हो रहा है। कितने ही case रोजाना सुनता हूँ, केसों की तो बात छोड़ो, मैं कितने ही डॉक्टरों से सुन चुका हूँ। जो नए-नए doctor बनते हैं, वे doctor भी मेरे पास कई बार पश्चाताप करने आते हैं। कहते हैं महाराज! मैं आपको एक बात बता रहा हूँ, यह जो डॉक्टरी है, operation है, इसमें कुछ नहीं होता

है सिर्फ एक try basis पर काम चलता है। हम trial मारते रहते हैं patient के साथ में बस! और कई patient हमारे trial के कारण से मर जाते हैं। हमें पता होता है, ये हमारे कारण से मरे हैं। कई बार हम यह खुद decision ले नहीं पाते हैं कि हम इसको यह वाली dose दे कि यह dose दे और कोई भी एक choose करके दे देते हैं और वह dose उनके लिए harmful हो जाती है, उसकी death हो जाती है और हमें पता होता है। लेकिन यह बात अलग है, हमारे ऊपर कोई case नहीं कर सकता है। लेकिन मेरी आत्मा कहती है, मैंने कई केस बिगाड़े हैं। यह कौन बोल रहा है? यह doctor बोल रहा है एक। वह आपसे नहीं बोलेंगा यह बात, किससे बोल रहा है? वह मेरे से बोल रहा है। मैं समझ सकता हूँ कि हर चीज की कितनी condition हैं, कितनी boundary हैं, चाहे वह डॉक्टर हो चाहे medicine हो। अगर आप इन चीजों की हकीकत नहीं समझेंगे तो कभी भी धर्म का संचय, अगर आपने जीवन में नहीं किया, मृत्यु के समय पर भी हो सकता है। मृत्यु के समय पर भी सारे जीवन का धर्म संचय हो सकता है और वह मृत्यु कौन-सी? आज से एक नाम ले लेना। मैं नहीं जानता यह समाधिमरण और यह क्या होता है? ये सब नाम तो मुझे डरावने से लगने लगे।

समाधि हेतु interest एवं उत्साह आवश्यक

एक नया नाम आज से मैं launch कर रहा हूँ...सतना वाले पंडित जी! ध्यान रखें। इस नाम को ही अब आगे forward करना है आपको। जब व्यक्ति से कहा जाता है- सल्लेखना ले लो, उसे लगता है, ये तो मुझे मार डालेंगे। सल्लेखना लेना यानी? अभी यह खानपान छुड़ा देंगे, अभी कहेंगे यह मत पियो, यह मत खाओ, यह injection नहीं, वह दवाई नहीं। आधी तुम्हारी हालत उसी में खराब हो जाएगी। आदमी से अगर सल्लेखना की बात करते हो तो डरता है, समाधि की बात करते हैं तो डरता है। उसके अन्दर एक भीतर से जान फूँकनी पड़ेगी पहले। समाधि या सल्लेखना तो बाद में होती है, पहले एक जान फूँकनी पड़ती है जिसे आचार्य कहते हैं...उसे समाधि के प्रति पहले interested तो बनाओ। कल दादी माँ आई, ये दादी माँ बैठी हैं, ये भी उसी line में लगी हुई हैं। उनकी वह बेटा है- ब्रह्मचारिणी दीदी हैं। अब वह कहती है महाराज! हमारी माँ के लिए सम्बोधन दो आप, इनका और वैराग्य बढ़े, समाधि अच्छी हो। उस समय पर भी हमारे मन से यही भाव आया, छोटा-सा भाव था। समाधिमरण के समय पर होने वाले जो भाव होते हैं, वे अलग हैं लेकिन अगर आप पहले समाधिमरण लेने का मन बना रहे हैं तो आपको पहले यह मन बनना चाहिए कि समाधिमरण से बढ़िया कोई चीज नहीं है। पहले आपका एक interest बनना चाहिए, भीतर से एक जोश आना चाहिए। आचार्यों ने ऐसे **जोशीता** शब्द से कहा। इसका अर्थ मैं क्या निकालता हूँ? प्रीतिपूर्वक! प्रीति भी अब हल्की हो गई, जोश आना चाहिए, जोश! समाधिमरण का मतलब पहले हमारे अन्दर भाव आना चाहिए, अगर मरने की कहीं से भी आहट आ जाए तो हमें समाधिमरण मरना है अर्थात् इज्जत का मरण मरना है।

समाधिमरण अर्थात् इज्जत से मरण

समाधिमरण का पर्यायवाची नाम क्या? इज्जत से मरना। अरे! मरने के बावजूद भी आदमी डोली पर उठाये, महोत्सव मनाये। मरने के बावजूद भी आदमी ऐसे ही कहीं चिन न दे। चन्दन की लकड़ियों से भी अगर वह

अग्नि लगाये तो उसे लगे कि चन्दन भी सार्थक हो गया। कभी जलते देखा है आपने ऐसे चन्दन को? लेकिन जब कोई ऐसे साधकों की, मुनि महाराजों की जब समाधि होती है तो उसमें चन्दन ही जलाया जाता है। कोई बहुमूल्य वस्तु नहीं है उस देह के आगे, जिसने समाधिमरण से इस देह की साधना की। ऐसा इज्जत का मरण, इसके प्रति पहले हमारे अन्दर यह भावना होनी चाहिए कि हमें इज्जत से मरना है। पहला हमारा motive क्या होना चाहिए? इज्जत से मरना है। फिर उसके बाद जो होगा, जैसा process होगा वह बाद की बात है लेकिन मुझे इज्जत से मरना है। जब इज्जत से मरने की आदमी ठान लेगा तो फिर वह अपने आप अपने मन में भाव करेगा कि इज्जत से मरने का मतलब क्या होता है? और इज्जत से मरने के लिए हमें कहाँ जाना पड़ेगा? हॉस्पिटलों में नहीं जाना पड़ेगा। इज्जत से मरने के लिए हमें डोंगरगढ़, चन्द्रगिरी जैसी जगह पर जाना पड़ेगा। फिर वहाँ से आपको कहीं पर भी, किसी भी उपसंघ में, संघ में refer कर दिया जाएगा तो भी आप इज्जत के साथ मरोगे क्योंकि आपके लिए किसी भी तरह का कष्ट होगा, अगर वह doctor भी नहीं सम्भाल पा रहा है तो कोई नहीं सम्भाल पाएगा। उसको सम्भालने के लिए सिर्फ साधक लोग चाहिए और साधकों के हाथ से उनके समीप अगर आपका वह मरण होता है, तो इससे बढ़कर के आपकी जिन्दगी की इज्जत और कुछ नहीं हो सकती। इसलिए समाधिमरण का पर्यायवाची नाम क्या? इज्जत से मरना।

जब भी आपसे कोई निवेदन करे कि बताओ इसको क्या करें? यह patient अब इस हालत में हो रहा है, इसे कहाँ ले जाएँ? डॉक्टर के पास ले जाएँ कि आचार्य श्री के पास ले जाएँ? आपको एक ही suggestion देना है, उसको... क्या बोलना है? बोलना, तुम पहले यह decision कर लो कि इसको इज्जत से मारना है कि बेइज्जत करके मारना है। इतना-सा बोलना बस, सब समझ में आ जाएगा उसको। अगर इज्जत से जीवन जिया है, तो इज्जत से मरना भी तो सीखो। जब इज्जत से मरोगे तभी तो फिर शोक सभा होगी, कुछ होगा, आगे भी नाम आपका चलेगा, पीढ़ियों में भी नाम रहेगा। मेरी माता का समाधिमरण हुआ, मेरे पिताजी का समाधिमरण हुआ; इज्जत से मरण हुआ। अगर आप इज्जत से मरण करते हैं तो अपने आप उस मरण की value आपको समझ में आएगी। यह मरण की ही value होती है, जिसके कारण से वह जीव, जो आगामी उसे अनन्त जन्म-मरण मिलने थे, उन सबकी परम्परा का विच्छेद हो जाता है, एक बार इज्जत से मरने में। नहीं तो क्या चल रहा है? अनन्त काल से क्रम चलता आ रहा है, अनन्त काल तक चलता रहता। हमने अगर मरण के इस क्रम पर break लगाया तो वह break कब लगेगा? जब एक बार इज्जत से मर लोगे तो और हर बार हम बेइज्जत होकर के मरते हैं, इसलिए बार-बार जन्म होते हैं और बार-बार मरण होते हैं। हमें पहले मरण की value पता होनी चाहिए। जो इज्जत से एक बार भी मरण को प्राप्त हो जाता है, तो आचार्य कहते हैं... अधिक से अधिक सात-आठ जन्म में वह अनन्त सुख का भागी हो जाता है, अनन्त ज्ञान का भागी हो जाता है। यह मरण की value है और नहीं है तो देखो! संसार में क्या हो रहा है, आपके लिए बार-बार क्या किया जाएगा?

गाथा: 55

जीव चतुर्गति रूप संसार में, नाना पर्यायों को धारण करता हुआ दुख भोगता है

धी! धी! धी! संसारं, देवो मरिऊण जं तिरी होई।
मरिऊण राय-राया, परिपच्चइ णिरय-जालाहिं॥55॥

अन्वयार्थ- 'चतुर्गतिरूप' (संसारं) संसार को (धी!) धिक्कार है! (धी!) धिक्कार है! (धी!) धिक्कार है! (जं) क्योंकि 'यहाँ से' (देवो) देव भी (मरिऊण) मरण करके (तिरी) तिर्यच (होई) हो जाता है (राय-राया) राजाओं के, राजा यानी बड़े-बड़े पदवीधारी 'भी' (मरिऊण) मरण करके (णिरय-जालाहिं) नरक में, 'अग्नि की' ज्वालाओं के द्वारा (परि-पच्चइ) सब ओर से, पकाये जाते हैं॥55॥

इस संसार को धिक्कारो

'धी! धी! धी! संसारं' इस संसार को 'धी! धी! धी!' यानी धिक्कार हो! धिक्कार हो! धिक्कार हो! यह क्या संसार है? संसार की दुर्दशा को देखकर के भी तो कभी संसार को धिक्कार लिया करो। क्या संसार है? आदमी कहीं जा रहा होता है, तीर्थ यात्रा पर जा रहा होता है, ठोकर लग जाती है, मरण को प्राप्त हो जाता है। अचानक से उसका brain काम करना बन्द कर देता है; संसार में क्या है? इस संसार को धिक्कारो। कितने युद्ध हो रहे हैं संसार में? कितने बच्चे, कितने बड़े, कितनी इज्जत, कितनी आबरू? सब लूटी जा रही है। इस संसार को धिक्कारो। आप सोचो! बड़ी-बड़ी महिलायें, औरतों की जब सबके समक्ष इज्जत-आबरू लूटी जाती है, इस तरह से उनको बेनकाब किया जाता है, बेइज्जत किया जाता है, आप सोचो! इससे बड़ी इस संसार को धिक्कार करने वाली चीज और क्या हो सकती है? जो आसपास भी देखते रहते हो, दूर-दराजों में भी देखते रहते हो, आखिर वे भी तो मनुष्य ही हैं।

सुरक्षा कहीं नहीं

इतनी बड़ी posts पर होने के बाद कोई पुलिस का कर्मचारी है, कोई जवान है military का और इस तरह से उनके साथ में बेइज्जत होने का काम किया जाता है, तो इससे बढ़कर के अब और कहाँ सुरक्षा मिलेगी, बताओ? जो दूसरों को सुरक्षा दे रहे हैं, उन्हीं के साथ में जब इस तरह से बेइज्जत होने का काम किया जा रहा है, तो संसार में कहाँ सुरक्षा है? इसलिए संसार को धिक्कारो। छोटे-छोटे बच्चों को मार डालना, छोटी-छोटी कन्याओं का हरण कर लेना, उनके साथ में दुराचार करना...यह सब इस संसार में देखते हो तो एक बार तो मुँह से निकलना चाहिए...इस संसार को धिक्कार हो। संसार को धिक्कार करने का भाव आयेगा तब कहीं थोड़ा-सा भाव आयेगा संसार से दूर हटने का। इसलिए यहाँ आचार्य कहते हैं...

संसार में धिक्कार हो। अब ये चीजें तो आपके सामने घटित होने वाली हैं और यहाँ लिख रहे हैं वे चीजें, जो आपने देखी नहीं हैं पर होती हैं क्योंकि शास्त्रों में शास्त्रों की भाषा से बोला जाता है।

संसार की विचित्रता

इस संसार को धिक्कार हो जिसमें देव भी मरण करके तिर्यच बन जाता है। क्या बन जाता है? कहाँ देव पर्याय में था? और मर कर के पशु बन जाता है। यहाँ तक कि एकेन्द्रिय वनस्पति कायिक, एक वृक्ष का जीव भी बन जाता है। आम के वृक्ष में गया कि बबूल के वृक्ष में गया? एक इन्द्रिय बन कर के वहाँ हजारों वर्ष तक पड़ा रहेगा और एक क्षण पहले क्या था? देवों का सुख भोग रहा था, इस संसार को धिक्कार हो। एक क्षण पहले जो आदमी अच्छा जीवन जी रहा था, शानो-शौकत के साथ जी रहा था; एक क्षण में उसकी गोली लगी, मार दिया गया, एक क्षण में उसका विनाश हो गया, इस संसार को धिक्कार हो। जब-जब आप ऐसी घटनायें देखो तो आपके मन में विचार आना चाहिए, इस संसार को धिक्कार हो। जिस संसार में **‘राय राया मरिऊण’** राजाओं के राजा भी मर कर के **‘गिरय जालाहिं परिपच्चइ’** नरकों की ज्वालाओं में जाकर के पकने लग जाते हैं, ऐसे इस संसार को धिक्कार हो। एक क्षण में जो राजा थे, मरण किए... कहाँ गए? नरकों में गए।

राजा श्रेणिक का कथानक

बहुत दिनों से राजा श्रेणिक का नाम नहीं आया। कथा तो अभी पूरी हुई नहीं लेकिन आप लोगों को तो याद रहना चाहिए था कि राजा श्रेणिक भी अपने जीवन को जी रहे हैं और उस जीवन को जीते-जीते उनके अन्दर भी क्या चल रहा है? यही पाप का प्रमाद चल रहा है। कितनी बड़ी परीक्षा उन्होंने यशोधर मुनि महाराज की ले ली थी। सबको याद है न यहाँ तक? फिर उसके बाद में film बदल ही गई, वह character दिखाई नहीं दिया बहुत दिनों से। पश्चाताप भी हो गया था, पश्चाताप होने के बाद वह जो थोड़ा-सा ठीक हो गया था, जिन धर्म पर श्रद्धा हो गई। अब जब श्रद्धा हुई तो क्या हुआ? आसपास के लोगों से अगर आपने पहले जिस तरीके से अपने सम्बन्ध बना रखे हैं, आप अगर कभी सही मार्ग पर भी चलोगे तो वे चलने नहीं देंगे। यह बेइज्जत मरण कौन कराता है? अपने ही सम्बन्धी कराते हैं।



संगति का असर

राजा श्रेणिक ने यशोधर मुनि महाराज के गले में वह सर्प डालने के बाद और उनकी तपस्या को तीन दिन तक देखने के बाद में उसकी आँखों में पानी आ गया। समझ में आ गया कि जैन श्रमण, जैन साधु वास्तव में आत्मध्यानी होते हैं, वास्तव में कितने दृढ़ होते हैं लेकिन उसकी संगति पहले से किससे थी? बौद्धों से थी। अब संगति है, तो एकदम से छूटेगी नहीं और संगति है, तो उसकी संगति के कारण से आपको कुछ न कुछ उनके साथ अपना time spend करना पड़ेगा और कुछ न कुछ उनकी बातें भी सीखनी पड़ेंगी। उनके द्वारा जो कान भरे जाएँगे, वह भी आपके दिमाग में खलबली मचाएँगे। जो बौद्ध लोग, बौद्धों के साधु, बौद्धों

के भिक्षु थे; जब उन्हें पता पड़ा- यह राजा तो पहले हमको मानने वाला था अब यह जैन साधुओं को मानने लग गया, जैन धर्म का आदर करने लग गया। यह तो हमारे लिए बहुत बड़ी आपत्ति की बात हो जाएगी और राजा अगर बिगड़ गया तो धर्म पूरा चला जाएगा।

बौद्ध भिक्षुओं द्वारा राजा श्रेणिक को मिथ्या सम्बोधन

उन बौद्ध भिक्षुओं को चिन्ता हो गई... राजमहल में राजा को समझाने के लिए आ गए..."राजन! आप क्या करते हो? आपने हमारे आचार्य से एक संकल्प लिया था कि मैं जीवन में बौद्ध धर्म के अलावा और कुछ स्वीकार नहीं करूंगा और अब मैं सुन रहा हूँ कि अब आप जैन धर्म पालने लग गए। आप अपनी स्त्री की बातों में आ गए। वह राजा ही क्या जो स्त्री की बातों में चले और आप तो जानते हो कि दुनिया में जितने भी अनर्थ हुए, इन स्त्रियों की वजह से हुए। जो राजा स्त्रियों की बात में आ जाए, वह राजा कभी राज्य चलाने योग्य हो ही नहीं सकता। आप एक समझदार व्यक्ति थे, आप पर बहुत अच्छा विश्वास था और आपने फिर वही कार्य कर लिया, जो कार्य एक नासमझ व्यक्ति करता है। आप अभी भी विचार करो! आपने जो निर्णय लिया है वह सही नहीं है। यह ठीक है कि आपकी स्त्री रूपवती है, आप उसके रूप में मोहित हो लेकिन आपको अपने ज्ञान से काम लेना चाहिए। अगर वह किसी भी तरह से चालाकी करके अपने जैन साधुओं पर अपना विश्वास दिलाना चाहती है, तो भी आपको अपने आप में दृढ़ रहना चाहिए। आपको ऐसे बहुत जल्दी इन बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। आपको हमेशा यह संकल्प के रूप में हमारे बौद्ध भिक्षु ने आपको संकल्प दिलाया था कि आप कभी भी बौद्ध धर्म को छोड़कर के अन्य धर्म का जीवन में पालन नहीं करेंगे।" आज आप यह फिर क्या करने लग गए? पढ़ो आप चाणक्य की नीति, कौटिल्य की नीति, स्त्रियों के कारण से ही सब अनर्थ होते हैं। "जो राजा स्त्रियों की बातों में आ गया, वह राजा अपने राज्य से च्युत हो जाता है। राज्य का वहन कर ही नहीं सकता और आज वही सब मैं आपके अन्दर देख रहा हूँ। आप उस चेलना की बातों में आ रहे हो या आप उसके रूप से मोहित हो या आप अपनी नासमझी के कारण से जो चीजें अच्छी हैं, उनको समझ नहीं रहे हो। अभी भी आपके पास समय है, वक्त है; आप विचार करो। उन बौद्ध भिक्षुओं ने जब फिर से राजा श्रेणिक को भरा तो राजा श्रेणिक फिर से विचलित हो गये। पता है आपको? इतना बड़ा उपसर्ग देखने के बाद, सब कुछ समझने के बाद फिर से... यह होती है संगति की चीज। जो आपके कान में जैसा भरेगा, आपका दिमाग वैसा चलेगा।"

संगति का सम्यक् चयन

हम आपको कितना ही पढ़ाएँ... इज्जत मरण और बेइज्जत मरण लेकिन जब आप घर में जाओगे, अपने घर के लोगों से पूछोगे तो घर का बेटा कहेगा- लोग क्या कहेंगे? पिताजी को admit नहीं कराया, injection नहीं लगवाया, drip नहीं लगवाई, किसी भी तरह की कोई diagnosis नहीं करवाए, लोग क्या कहेंगे? मुझे नहीं करना यह सब काम। मेरे लिए तो इसी में ही इज्जत है और जब वह कहेगा तो चार लोग उसके सामने वैसा ही कहेंगे। फिर आपके दिमाग में वह चीज चढ़ जाएगी तो आपके लिए फिर से वही बेइज्जत मरण के लिए तैयार होना पड़ेगा। इसको कहते हैं- संगति। इसलिए जो व्यक्ति सही और गलत को समझ कर के अपनी संगति बदल देता है, वह व्यक्ति जीवन में सफल हो पाता है। सही-गलत को

गाथा: 56

धन, स्वजनादि सांसारिक वैभव भी, कर्म के कारण छूट जाते हैं

जाइ अणाहो जीवो, दुमस्स पुप्फं व कम्म-वाय-हओ।

धणधण्णाहरणाइं, घर-सयण-कुडुंब-मिल्ले वि॥56॥

अन्वयार्थ- (धण-धण-आहरण-आइं) धन-धान्य, आभरण अर्थात् आभूषण, आदि (व) और (घर-सयण-कुडुंब-मिल्ले) घर, स्वजन, कुटुंब के, छूटने पर 'यह' (जीवो) जीव (वि) भी (कम्म-वाय-हओ) कर्मरूपी, वायु से, आहत हुआ (दुमस्स) वृक्ष के (पुप्फं व) फूल के, समान (अणाहो) अनाथ 'हो' (जाइ) जाता है॥56॥

कर्म के उदय में जीव सहसा अनाथ हो जाता है

यहाँ आचार्य कहते हैं...देखो! अनादि से यह जीव अनाथ बना हुआ है और यह जीव कैसा अनाथ हो जाता है? इसके पास में इसका घर होता है। गाथा नम्बर 56 में क्या लिखा है? 'घर सयण कुडुंम मिल्ले वि' घर है, 'सयण' अर्थात् सजन है, स्वजन है, कुटुम्ब है और धन-धान्य है, आवरण आदि सभी प्रकार की jewellery है, आभूषण हैं, सब है। फिर भी 'कम्म वाय हओ' जब कर्म की हवा चलती है, सब उड़ जाता है, एक झटके में उड़ जाता है। कल आपने यहाँ शोक सभा मनाई न? सतना की महिला की। सब अच्छी थी, धार्मिक थी, सब तरह से सामाजिक, अच्छी social कार्यकर्ता थी, सब कुछ था लेकिन एक क्षण में...वही चीज लिखी है। कर्म का उदय आता है, तो हवा के एक झोंके की तरह आता है और वह झोंका ही ऐसा लगता है जैसे पीछे से आकर के किसी ने टक्कर मार दी, अचानक से कुछ भी सामने आकर के चीज टकरा गई। एक झोंके की तरह बस वह चीज आपके दिमाग को चोट पहुँचा गई और जीवन समाप्त हो गया।

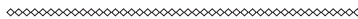
कर्म के थपेड़े

सब आवरण है, सब धन-धान्य है, घर है, स्वजन हैं, कुटुम्ब है, सब कुछ है लेकिन जब कर्म की वायु चलती है, कर्म का थपेड़ा पड़ता है...इसको क्या बोलते हैं? हवा का थपेड़ा पड़ता है न? कभी हवा में खड़े होकर देखना जब हवा तेज चलती हो। ऐसे थपेड़े पड़ते हैं, अगर कभी हवा में सो लो न...जब हवा तेज चल रही हो उस हवा में भी अगर रात भर सो लो तो जब सुबह उठोगे तो ऐसा लगेगा कि किसी ने रात भर हमें डण्डों से मारा हो। तुम्हें क्या पता? AC में सोने वालो! जब इस तरह की हवाओं में कभी सोना पड़ता है, तो पूरा बदन टूटता है, सुबह उठने के बाद। ऐसा लगता है जैसे रात भर कहीं पिटाई हो गई हो। ऐसे हवा के थपेड़ों

में भी भीतर से पिटाई हो जाती है, जान निकलती है। ऐसे ही जब कर्म के थपेड़े सामने पड़ते हैं तो क्या होता है? जीव सब कुटुम्बियों के बीच में होता है, सनाथ होता है, सब उसके आसपास होते हैं लेकिन वह तुरन्त से क्षण भर में अनाथ हो गया। कोई बचाने वाला नहीं, कोई सम्भालने वाला नहीं, कोई रक्षक नहीं, कोई स्वामी नहीं। और दूर क्या देखना है? जो घटना घटी उसी के लिए देख लो, क्षण भर में सब अनाथ हो जाता है और कैसे?

जीवन का सार

‘दुमस्स पुप्फं’ जैसे **‘दुम’** अर्थात् वृक्ष का फूल होता है; जब तक वृक्ष पर लगा है, लगा है, लगा है, अच्छा शोभित हो रहा है। सभी फूलों के साथ में उसकी भी शोभा बन रही है और जैसे ही वह हवा के झोंके से वृक्ष से गिरा, टूटा फिर उसकी कोई जिन्दगी नहीं है। किसी भी तरह से धूल में मिल जाएगा, पैरों में मिल जाएगा, पैरों के नीचे आ जाएगा, चकनाचूर हो जाएगा, उसकी जिन्दगी समाप्त। इसी तरह से बस यह जीवन है और इस जीवन में अगर व्यक्ति के लिए यह ध्यान आता है कि अच्छा खासा नाथ भी क्षण भर में अनाथ हो जाता है, तो **हमें धन संचय के साथ-साथ धर्म संचय पर भी ध्यान देना चाहिए, यही इस जीवन का सार है।**



गाथा: 57

यह जीव संसार में परिभ्रमण करने के कारण स्थान- स्थान पर बसा है

वसियं गिरीसु वसियं, दरीसु वसियं समुद्-मज्झम्मि ।
रुक्खग्गेसु य वसियं, संसारे संसरंतेणं ॥57॥

अन्वयार्थ- 'पंच परावर्तनरूप' (संसारे) संसार में (संसरंतेणं) संसरण यानी परिभ्रमण करने के कारण 'यह जीव' (गिरीसु) पर्वतों में (वसियं) बसा (दरीसु) गुफाओं में (वसियं) बसा (य) तथा (समुद्-मज्झम्मि) समुद्रों के, मध्य में (वसियं) बसा 'और' (रुक्ख-अग्गेस) वृक्षों के, अग्र 'भागों' में 'भी' (वसियं) बसा 'इसलिए जीव को संसार-दुःख से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए' ॥57॥



संसार परिभ्रमण में जीव विभिन्न स्थानों पर विभिन्न रूप धारण कर सुख-
दुःख का अनुभव करता है

वैराग्य शतक ग्रन्थ के माध्यम से प्राकृत की गाथाओं को पढ़ते हुए उन गाथाओं के भावार्थ के माध्यम से हम संसार की दशा को भी समझते हैं और इस संसार से मुक्ति प्राप्त करने के लिए भी क्या उपक्रम हो सकते हैं, वह भी हमारी समझ में धीरे-धीरे आते हैं। उसी क्रम को ध्यान में रखते हुए यहाँ गाथा नम्बर 57, 58 और 59 पढ़ते हैं...

वसियं गिरीसु वसियं, दरीसु वसियं समुद्-मज्झम्मि ।
रुक्खग्गेसु य वसियं, संसारे संसरंतेणं ॥57॥

देवो णेरुओ त्तिय, कीड-पयंगो त्ति माणुसो एसो ।
रुवस्सी य विरुवो, सुहभागी दुक्खभागी य ॥58॥

राओत्ति य दमगोत्ति य, एस सपागोत्ति एस वेयविऊ ।
सामी दासो पुज्जो, खलो त्ति अधणो धणवइ त्ति ॥59॥

इन गाथाओं में संसार में संसरण करने वाले जीवों के बारे में कहा गया है... 'संसारे संसरंतेणं, वसियं

वसियं यह जो तीन बार लिखा है, चार बार लिखा है कि यह जीव कहाँ-कहाँ पर वसा है? 'वसा' अर्थात् वास किया है। संसार में भ्रमण करता हुआ यह आत्मा पर्वतों पर भी वास किया है... **'दरीसु'** अर्थात् होता है, गुफाओं में भी वास किया है, समुद्रों के मध्य में भी यह वास करता रहा है और **'रुक्ख'** अर्थात् वृक्ष के अग्र भागों पर भी यह वास करता है। पिछले जन्मों में जब यह अनेक तरह के जीवन को जीता है, संसार में भ्रमण करते हुए अनेक प्रकार की इसे पर्यायें मिलती हैं तो उन पर्यायों में इस तरह का भी भ्रमण होना निश्चित होता है और यह भ्रमण यहाँ पर याद कराया जाता है इसलिए कि हम थोड़ा सा अतीत को याद करेंगे तो हम जो कुछ भी हमारा व्यतीत हो रहा है, उस पर हम ध्यान दे पाएँगे।

प्रवास स्थान, वास स्थान, निवास स्थान

कभी-कभी अतीत को याद करने से भी हमारा जो जीवन व्यतीत हो रहा है, उसकी दिशा बदल जाती है और उसमें एक रोक भी लग जाती है कि हम नया क्या कर रहे हैं? जीव के लिए जब इस तरह का अतीत दिखाया जाता है, तो इस अतीत को देखने से उसे यह समझ आता है कि हमारा संसार कुछ और है और इस संसार में भ्रमण करते हुए हमने हर एक स्थान पर निवास किया है, प्रवास किया है और वास भी किया है। कभी-कभी निवास कहीं होता है, प्रवास कहीं होता है और वास कहीं होता है। आदमी के लिए यह सब चलता रहता है। निवास स्थान कहीं होते हैं, प्रवासी बनकर के निकलता है तो कहीं और जाकर के थोड़ा सा प्रवास कर लेता है और उस प्रवास को करते-करते भी उसका प्रवास किसी शहर में, किसी स्थान में होता है। लेकिन वास तो उसका वहीं होता है, जहाँ उसके लिए रुकने का, सोने का, बैठने का स्थान मिलता है। हर आदमी के जीवन में आपने देखा होगा कि तीन चीजें रहती हैं। अपना एक निवास स्थान बना लेता है इसलिए कि वह हमारा permanent address है और उस permanent address को बनाने के बाद में फिर वह निकलता है प्रवास पर। चलो घूम कर आते हैं और वह घूमने निकलता है, तो यह उसका प्रवास का दौर कहलाता है। कभी कहीं गया, कभी कहीं गया और उस प्रवास में भी वह जहाँ जिस स्थान पर किसी एक क्षण बैठा होगा वह उसका वास कहलाएगा। अगर आप कहीं दूर से आए हैं...चाहे मेरठ से आए हो, चाहे दिल्ली से आए हो। अगर आप कहीं दूर से आए हैं, तो अभी आप प्रवासी हैं। यहाँ पर आकर के आपका प्रवास हो रहा है और उस प्रवास में अगर आप यहाँ थोड़ी देर बैठे हैं तो यह आपका वास स्थान कहलाएगा, यहाँ अभी आप बैठे हैं। जिस होटल में रुके हैं, जिस धर्मशाला में रुके हैं जब वहाँ जाकर के सोओगे, बैठोगे, खाओगे, पियोगे तो वह आपका वास स्थान कहलाएगा, वह भी प्रवास के दौरान का वास कहलाएगा। लेकिन निवास जहाँ है, वहाँ तक पहुँचने के लिए return में टिकट बनाकर के आदमी चलता है और उसे उसी निवास पर पहुँचना होता है, जहाँ से उसने अपनी यात्रा शुरू की थी। यह प्रवास पर जब हम निकलते हैं तो इसी तरह से यह प्रवास जब पिछले जन्मों का हम देखते हैं तो अनेक पशु, पक्षियों, इनकी पर्यायों में भी इस जीव ने अनेक तरह से स्थानों पर प्रवास किए होते हैं। आप देखते हो पशु-पक्षी...कई बार ऐसा होता है कि पक्षी जन्म तो किसी घोंसले में लेता है, कहीं लेता है लेकिन वह जब उड़ना शुरू कर देता है, तो उड़ते-उड़ते वह किसी शहर से किसी शहर तक पहुँच जाता है। किसी देश से किसी दूसरे देश तक भी पहुँच जाता है और वह अपने प्रवास में इतना आगे निकल जाता है कि फिर उसे अपनी नीड़ की याद नहीं आती है। उसे अपने निवास पर आना नहीं होता है और वह चाहे भी तो अब आना सम्भव नहीं होता है। यानी पक्षियों में भी इस तरह की भावना रहती है कि हम अगर जहाँ पर निवास कर रहे हैं तो हम

वहीं पर वास करने लग जायें। प्रवास में उन्हें जो स्थान मिल गया वास करने का, वह वहीं पर वास करने लग जाते हैं। पक्षियों का कोई एक निश्चित निवास नहीं होता। जब कभी उन्हें लगता है कि हमारे सामने अब कोई मौसम बदल रहा है, उन्हें कुछ संकेत मिल जाते हैं और उन्हें लगता है कि कोई बरसात का समय आ रहा है या अत्यधिक शीत का समय आ रहा है, तो वह तत्काल में कुछ अपना निवास बना लेते हैं। तत्काल में वह अपना थोड़ा सा निवास बनायेंगे और फिर निवास बनाकर के उसमें कुछ समय प्रवास करेंगे और फिर उसको भी छोड़ कर के निकल जायेंगे।

निवास स्थान की सुरक्षित होने का भाव सुकून देने वाला होता है

इन पक्षियों से भी अगर थोड़ा सा सीखा जाए तो आदमी के लिए भी संसार में भ्रमण करते हुए अपने निवासों से जो राग रहता है, उस राग में कमी आ सकती है। हर किसी के लिए अपने निवास स्थान से बहुत राग होता है। क्यों नहीं होगा? क्योंकि वहाँ पर वह जन्म लिया है, वहीं पर वह वृद्धि को प्राप्त हो रहा है, वहीं पर उसके लिए सुरक्षा है और उस सुरक्षा के स्थान में पहुँच कर के ही उसे लगता है कि हाँ! हम तो अपने घर आ गए। जब ऐसा लगता है कि हम अपने घर आ गए तो आदमी को थोड़ा सा लगता है कि हाँ! अब हम बड़ी सुकून की जगह पर आ गए। बाहर निकल कर के आपको कितना भी सुकून मिले तो भी वह थोड़ा लगता है, कम लगता है लेकिन जब आप अपने घर पर पहुँच जाते हैं तो वह सुकून आपको कुछ ज्यादा हो जाता है; भले ही सुविधाएँ कम हो। आप यह भी देख सकते हो कि घर में अगर सुविधाएँ कम भी होंगी, बाहर सुविधाएँ आपको ज्यादा भी मिल जायेंगी तो भी सुकून आपको बाहर कम मिलेगा। सुकून कहाँ मिलता है? जब घर पहुँच जाते हैं क्योंकि एक विचार चलता रहता है अभी हम चल रहे हैं, अभी हम प्रवास पर हैं। जब हम प्रवास पर होते हैं तो उस समय पर हमारे मन के लिए एक सुरक्षा का भाव नहीं बनता है।

यात्रा में मन अपनी व्यवस्था के साथ चलता है

आज यहाँ रुके हैं, यहाँ पर सब सामान उतारा, यहाँ भोजन किया, अनिश्चितता रहती है, न जाने कौन किस तरह के लोग होंगे? कैसा व्यवहार करेंगे? कौन सी आपत्ति आ जाए? कोई सी चीज कौन चुरा करके ले जाए? कुछ भी पता नहीं होता लेकिन फिर भी हम एक विश्वास के तहत चलते जाते हैं और अपना जीवन चलता चला जाता है, काम चलता रहता है। जब एक जगह आकर के हम थोड़ा सा रुक जाते हैं, एक दिन रुक गए, दो दिन रुक गए तो फिर थोड़ा सा लगने लग जाता है...हाँ! जगह सही है, अच्छी है, निश्चिन्तता है। तब कहने में आने लग जाता है, आए तो थे हम यहाँ पर लेकिन यहाँ आकर के भी हमें बहुत अच्छा लगा। समाज को भी धन्यवाद देने का भाव आ जाता है। यह भाव आने का मतलब है कि हम अगर किसी स्थान पर रुक गए हैं तो हमारा उस स्थान पर मन पहले दिन नहीं लगेगा। अगर आप थोड़ा सा रुकने का मन लेकर के आओगे और रुकने की भावना से आप किसी स्थान पर रुकोगे तो मन लगेगा। अगर आप कभी यात्रा पर निकलते हैं और आपको पता है कि हमें इस यात्रा पर, इस stoppage पर रुकना नहीं है, तो उस stoppage पर कितनी भी अच्छी व्यवस्थाएँ हो, आपका मन नहीं लगेगा। मन तो हमारे साथ स्वयं अपनी व्यवस्था लेकर के चलता है और हम मन को पहले से ही प्रशिक्षित कर देते हैं। हमें जहाँ पहुँचना है, वहाँ पहुँचने के बाद ही हमें थोड़ा सा लगता है कि हाँ! अब हम सुरक्षित स्थान पर आ गए, अब हमें सुकून मिल

गया। भले ही उस स्थान पर सुरक्षा कम हो या जहाँ पर आप छोड़ कर के आए हो, उस स्थान पर सुरक्षा ज्यादा हो लेकिन आपका मन पहले से तैयार था कि हमें वहाँ रुकना नहीं है, रुकना तो यहाँ है।

मन को सुकून देने के लिए उसे प्रशिक्षित करना पड़ता है

बहुत से यात्री आते हैं, डोंगरगढ़ से आते हैं। कुछ सतना के लिए आते हैं और कुछ ऐसा भी विचार करके आते हैं कि सतना के पास में खजुराहो है। वहाँ पर भी जिन मन्दिर हैं, जिन मन्दिर होने के साथ-साथ वहाँ भी माताजी का चतुर्मास भी है और खजुराहो एक ऐतिहासिक स्थान है इसलिए वहाँ सुविधाएँ ज्यादा मिलेंगी। बड़ी-बड़ी अच्छी धर्मशालाएँ होंगी। ऐसा विचार करके जब व्यक्ति यहाँ सतना आएगा तो उसका सतना में मन नहीं लगेगा। क्योंकि उसे कहाँ जाना है? उसे खजुराहो जाना है। अब वहाँ खजुराहो जाकर के वहाँ simple सी भी hotel में ठहर जाएगा तो उसे अच्छा लगेगा और यहाँ पर आपको 3 star hotel भी कोई दिखाएगा तो अच्छा नहीं लगेगा। क्यों? आपका मन पहले से बना हुआ है। हम यहाँ केवल दर्शन करने आए हैं, दर्शन करके शाम को निकल जायेंगे। रात हमारी सुकून से गुजरनी चाहिए वह खजुराहो में हम निकालेंगे। यह सिर्फ एक मन का प्रशिक्षण है, जो हमने पहले से train कर दिया mind को, वह उसी के according काम करता है। जो व्यक्ति सोच करके आया है कि नहीं! मुझे महाराज के पास रुकना है, मुझे यहाँ दर्शन का लाभ लेना है, सुबह फिर प्रवचन का लाभ लेना है तो उसे खजुराहो का कोई व्यामोह नहीं होगा। क्या है? कभी भी देख लेंगे। जिनालय होगा, यहाँ से निकल कर दर्शन करते हुए चले जायेंगे, फिर कभी अलग से आ जायेंगे लेकिन महाराज का अगर चतुर्मास सतना में चल रहा है, तो सतना में तो हमारा आना फिर बार-बार होगा नहीं। कौन हमें पूछेगा? अगर महाराज नहीं होंगे यहाँ पर, हम आ भी गए तो...कोई नहीं पूछेगा। दो पैसे में भी नहीं पूछेगा कोई। क्यों पूछेगा भला? भाई! आप आए हो, आप अपनी व्यवस्था से आए होंगे। अब आप कहोगे, कहाँ रुकना है?

mind को train करने पर वह उसी line पर चलता है

अरे भाई! दुनिया में सबको पता होता है, दुनिया में ढेर होटलें हैं। कहीं भी सड़क पर निकल जाओ, सब जगह लिखे हुए हैं। आप अपनी होटलें ढूँढ ली लेकिन जब आदमी को यह लगता है कि नहीं! अभी हम सतना आए हैं तो अभी हमें सतना में इसलिए रुकना है क्योंकि सतना में हमें hotel में नहीं रुकना है, सतना में हमें महाराज के पास रुकना है। हम भले ही hotel में थोड़ी देर के लिए वास कर लेंगे लेकिन हमारा प्रवास तो महाराज के चरणों में होगा। इसलिए यहाँ की हमें कोई भी दिक्कतें भी होंगी तो हम उनको ignore कर देंगे। हमें उसके लिए कोई जरूरत नहीं होगी। सुख-सुविधाएँ तो हमारे घर में भी बहुत हैं लेकिन मुनि महाराज का सानिध्य और प्रवचन का लाभ हमें अपने घर बैठे नहीं मिल पाता। इसलिए आदमी को यहाँ आने के बाद में अच्छा लगने लग जाता है। यह अच्छा लगने के लिए हमने अपने mind को पहले से trained कर दिया, बस! और कुछ नहीं है। आप अपने mind को जैसा ही trained कर दोगे, वह उसी line पर चलने लग जाता है। आप सिखा दो बस उसको हम जहाँ जा रहे हैं, वहाँ अच्छा है तो अच्छा है। अगर आपके मन में संशय है कि हम जहाँ जा रहे हैं वहाँ हमें दिक्कतें होंगी तो आपको दिक्कतें ही होंगी और अगर आप यह सोच कर निकलो कि हम जहाँ जा रहे हैं वहाँ पर अच्छा होगा तो अच्छा ही होगा।

क्योंकि आपके मन के माध्यम से ही आपको अच्छा या बुरा लगना है और मन को तो हर चीज पहले जो उसकी धारणा में जैसी चीजें बसी हुई हैं, उसी के अनुसार चाहिए और जैसा आपने मन को trained कर दिया मन को वैसा चाहिए तो मन तो अपने आप में कहीं न कहीं उड़ता ही रहता है और उड़-उड़ करके भी वह कहीं पर भी ठहर नहीं पाता। जैसे पक्षी है...उसे खुद पता नहीं होता कि हमारा निवास कहाँ था, प्रवास कहाँ है, वास आज का कहाँ है और कल का कहाँ होगा? उसे कुछ पता नहीं होता।

निवास के सुकून से प्रवास का सुख उत्कृष्ट है

यह पक्षी की तरह ही मन की उड़ान चलती है लेकिन अगर व्यक्ति के लिए थोड़ा सा इतना समझ में आए कि अगर सुकून मिलता है, तो कहाँ मिलता है? बोलो कहाँ मिलता है? प्रवास में मिलता है? नहीं मिलता। सुख अलग चीज है और सुकून अलग चीज होती है। सुकून कहाँ मिलेगा? सुकून प्रवास में नहीं मिलता, सुकून तो निवास में मिलता है। जहाँ हमने अपना स्थान बना लिया है, जहाँ हमारे अपने लोग पहचान के होते हैं, जहाँ हमारे अपने परिजन बैठे होते हैं और जिनके बीच में हम अपने आप को बिल्कुल सुरक्षित महसूस करते हैं, हमें अपनी पहचान बतानी नहीं पड़ती और न हमें उनसे कुछ पहचान लेनी पड़ती है। ऐसे स्थानों पर हमारा जब निवास स्थान होता है, उन स्थानों पर हम बड़ा सुकून महसूस करते हैं। मतलब अपने घर में...सबको कहाँ अच्छा लगता है? बोलो! अपने घर में। जब आपको अपने घर में अच्छा लगता है तो अपने घर में भी बैठ कर के यह संसार की भावना की जा सकती है। सुकून से बैठ कर के यह भावना करना है। मेरी आत्मा आज तो यहाँ घर में बैठी है लेकिन अतीत काल में कभी पक्षी बनकर के वृक्षों के ऊपर भी बैठी है, कभी पशु बनकर के गुफाओं में भी वास किया है, कभी मछली आदि जलीय जन्तु बनकर के समुद्र के मध्य में भी वास किया है। कभी पर्वतों के ऊपर भी अनेक तरह के जंगल आदि होते हैं, उनमें भी अनेक जंगली पशु बनकर के भी वास किया है और यह वास चलता रहता है। आज हम यहाँ बैठे हैं, अपने घर में बैठे हैं तो घर में बैठकर के सुकून से हमें क्या करना? सो जाना। सोने में क्या नई बात हो जाएगी? सोना तो हम प्रवास में भी कर लेते हैं। सोने के लिए तो हमारे लिए कोई भी धर्मशाला, hotel भी पर्याप्त होते हैं। घर में अगर हम सो भी गए तो हमने नया क्या कर लिया? घर में हमें क्या नया करना चाहिए? सुकून से बैठकर, अतीत की बात सोचना। जब आप देखते हो, थोड़ा सा जब आपकी वृद्धावस्था आएगी तो आपको लगेगा कि वृद्धावस्था में आपको अतीत की ज्यादा याद आएगी। आपको बचपन की याद जवानी में नहीं आएगी। कब आएगी? बुढ़ापे में आएगी कि जवानी में हमने क्या किया? बुढ़ापे में आपको अतीत की याद आएगी। जब आप कहीं घर में सुकून से बैठे होंगे तो उस निवास में भी आपको प्रवास की याद आएगी। हमने कहाँ-कहाँ प्रवास किए? कौन-कौन से प्रवास हमारे लिए सुखद रहे? कौन-कौन से प्रवासों में हमें कौन-कौन से सानिध्य मिले? उन सानिध्यों में हमें किस तरह का उपदेश आदि मिला? यह सब भी आपको याद आता है...कब? जब आप सुकून से घर में बैठकर के अपने अतीत के बारे में कभी सोचने का समय निकालेंगे तब और वह सोचने का समय निकलता है। जब आदमी वृद्धावस्था में पहुँचता है, तो उसके लिए और कुछ करने को नहीं रहता है, उसे अपनी ही यादों में खोने का वह समय होता है। अब अगर वहाँ बैठकर के भी आप याद कर रहे हो, किसको? अपने अतीत को! फिर तो थोड़ा सा अतीत को और दूर तक याद किया जा सकता है।

अतीत में आत्मा की दशाओं का चिन्तन ही समयसार है

ज्यादातर सामान्य आदमी वृद्धावस्था में क्या याद करेगा? हमने अपने घर में कितने लोगों के साथ में, किस तरह से सुख के समय व्यतीत किए? हम किस तरह से प्रवासों पर गए? कौन-कौन सी यात्रायें की? कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे enjoy किए? कौन-कौन सी होटलों में रुके? कौन-कौन सी तरह से हमने मौज मस्तियाँ की? कभी नदी के किनारे, कभी पर्वतों के किनारे, कभी किसी भी तरह की कहीं पर्वतों पर चढ़ाई करके या कभी नदियों में भी डुबकी लगा कर के या किसी भी तरह के swimming पूलों में डुबकी लगा कर के, यह सब आपको याद आएगा। कब? जब आप थोड़े से भीतर से अपने आपको वृद्ध महसूस करेंगे। आपको सुकून मिल रहा होगा, समय व्यतीत नहीं हो रहा होगा, तब आपको अतीत में थोड़ा सा जाना पड़ेगा। उस अतीत में अगर आप इतना ही अतीत अपने सामने रखें कि हमने अपने जीवन में क्या किया? तब आपको अपने बचपन से लेकर के बड़े तक कितने उतार-चढ़ाव आए? कितनी जगह आपको नफा नुकसान हुए? कितनी जगह आपने कोई साहसिक कदम उठाया? यह सब याद करके आपके जीवन में एक अतीत की picture सामने आएगी। इस अतीत की याद करते हुए आचार्य यह कहना चाह रहे हैं कि आप थोड़ा सा और लम्बा अतीत की तरफ अपनी दृष्टि ले जाओ। अधिकतर क्या होता है? हम उतना ही अतीत अपने सामने रखते हैं जितना हमने अर्जित किया है। हमने घर बनाया था, हमारे सामने परिवार बना है, हमारे सामने हमारे व्यापार तैयार हुए हैं, हमें सिर्फ इतना ही अतीत याद है लेकिन यह तो इस जन्म का अतीत है केवल। जो पिछले जन्मों का अतीत है, उसको भी अगर हम याद करेंगे तो शायद बहुत ज्यादा सुकून मिलेगा। सुकून किस मायने में? पिछले जन्मों का अतीत याद करोगे तो तुमको इस बात का सुकून मिलेगा कि देखो! आज हम सुकून से बैठ कर के कितना दूर तक का चिन्तन कर पा रहे हैं। यह आत्मा का ही चिन्तन है, यह आत्मा का ही ज्ञान है। आप यह न समझें कि तत्त्व चिन्तन या आत्मा का चिन्तन करने के लिए हमें केवल समयसार पढ़ना पड़ता है। आत्मा का चिन्तन करने के लिए आपको आत्मा की दशाओं का ज्ञान करना, वह समयसार तो किताबों में बन्द होगा लेकिन यह जो समयसार आपके सामने आ रहा है... अतीत का संसार, यह खुला समयसार है, यह खुली किताब है। यह एक ऐसी किताब है जिसके लिए आपको किसी किताब को खोलने की जरूरत नहीं है। बस! आपको सुकून से बैठ जाने की जरूरत है और आप विचार करो! आत्मा आज कितनी उम्र व्यतीत कर चुका? इस जन्म की इतनी उम्र व्यतीत होने पर आज हमें केवल इतना सा अतीत याद आ रहा है कि आज मेरे दो बच्चे हैं, उनके दो बच्चे हो गए, एक मेरा मकान है, एक दुकान है। इतने से अतीत से हम सन्तुष्ट हो रहे हैं। इतना ही अतीत नहीं है, इससे भी बढ़कर है और उस अतीत की ओर जैसे ही दृष्टि चली जाएगी तो बस वही अतीत की ओर दृष्टि जाना आपको चिन्ता से चिन्तन की ओर ले जाएगा।

चिन्ता नहीं चिन्तन करो

क्या सुना? आप अतीत को ही सोच रहे हैं सुकून से बैठ करके अपने निवास पर, अपने घर में लेकिन जब आप केवल अपने घर के बारे में सोच रहे हो तो चिन्ता है। जब आप किसी दूसरे के भी घर के बारे में सोच रहे हैं तो भी चिन्ता है। अपने देश के बारे में सोच रहे हैं तो भी चिन्ता है। दूसरे देश के बारे में सोच रहे हैं तो भी, जितने भी newspaper में जितनी भी headlines आती हैं, उनके बारे में सोच रहे हैं तो भी चिन्ता

है। अब इस चिन्ता को चिन्तन में कैसे बदला जाए? थोड़ी सी अतीत की उन रेखाओं को और लम्बा कर दो। अतीत में वह सोचना शुरू कर दो जो वर्तमान में हो रहा है, उससे हटकर के और अतीत के बारे में सोचना शुरू कर दो... वह चिन्ता आपका एक चिन्तन बन जाएगी। आप सोचने लग जाओगे, अतीत काल में हम पशु बनकर के भी कितनी जगहों पर उत्पन्न हुए होंगे? हम पक्षी बनकर के भी कितनी जगहों पर उत्पन्न हुए होंगे? हम जलीय जन्तु बनकर के भी कितनी जगहों पर रहे होंगे? और जैसे ही आपकी दृष्टि इस तरह की विचारधारा पर गई तो आप तत्त्व-चिन्तन से जुड़ गए, आप आत्म-चिन्तन से जुड़ गए इसी को कहते हैं- आत्म-मन्थन, आत्म-चिन्तन।

आत्म चिन्तन से सुकून की अनुभूति

इतना सरल है... आत्म-चिन्तन करना। लोग सोचते हैं, हम कैसे आत्म-चिन्तन करें? आत्म-चिन्तन में वह यही चिन्तन करते रह जाते हैं हमने छोटे से बड़ा संघर्ष किया है, हमने बहुत बड़े दुःख के दिन देखे हैं, आज हम इतनी अच्छी position पर आ गए हैं। लोगों को कैसे बतायें? क्या पता इन लोगों को कि हमने कितना संघर्ष किया? तब आज इतनी अच्छी position पर आये हैं। इतने में उनका वह चिन्तन, आत्म-चिन्तन लगने लग जाता है। उन्हें लगता है, यही हमारा आत्म-चिन्तन है। यह आत्म-चिन्तन नहीं है, यह आपकी सब चिन्ताएँ हैं। दिमाग में जितना ज्यादा हम space देंगे, दिमाग उतना ही स्वस्थ होगा। दिमाग में जितनी कम space होगी, जितना कम सोचने के दायरे होंगे, उतना ही दिमाग में अस्वस्थता आएगी। क्योंकि आप जानते हो, स्वस्थता का सम्बन्ध खुली हवा से होता है, space से होता है। जितना अच्छे खुले में आप बैठोगे, खुले में आप सोचोगे, खुले में बैठ करके आप जो महसूस करोगे वह आपको घर के अन्दर, चारदीवारी के अन्दर बैठकर के वह स्वस्थता नजर नहीं आएगी। दिमाग को तो हम बढ़ा नहीं सकते, दिमाग तो उतना ही रहेगा जितनी boundary बनी हुई है। Brain है, तो उतना ही रहेगा जितना उसका shape और जितना size है। अब बढ़ा क्या सकते हैं? हम उस brain के अन्दर आने वाले जो thoughts हैं, उनका जो एक दायरा है, limit है उसको हम expand कर सकते हैं। यह expand करने का यही तरीका होता है, अगर हम अपने अतीत के बारे में थोड़ा सा विचार करें, यह हमारा अतीत था, यह हमारा अतीत था तो क्या होगा? आप सुकून से घर में बैठ कर के आत्म-चिन्तन की दशा में आ जाओगे।

कोई भी आपका बच्चा, आपके घर का स्वजन आपको देखेगा तो यूँ नहीं कहेगा... दादाजी हमारे चिन्ता में पड़े हैं। क्या सोचेगा? अगर दादाजी चिन्ता में पड़े हैं तो उसको चिन्ता हो जाएगी और अगर वह देखेगा कि दादाजी चिन्ता नहीं करते, दादाजी क्या करते हैं? आत्म-चिन्तन करते हैं। उसे कैसे पता कि दादाजी आत्म-चिन्तन करते हैं? जब वह दादाजी के पास में बैठेगा तो दादाजी उसे वही बतायेंगे जो वह करते हैं। यह मान कर चलना आप। आप अपने बेटे से, अपने नाती से वही कहेंगे जो आप अपने लिए सोच रहे होते हैं। अगर आप आत्म-चिन्तन के कुछ भाव अपने अन्दर बनायेंगे, आप आत्म-चिन्तन की स्थिति में होंगे तो वह नाती भी आपके पास में बैठ जाएगा और कुछ पूछेगा! बताओ दादा जी! क्या सोच रहे थे? और आपने कभी उससे कह दिया... बेटा! हम सोच रहे थे जैसे तुम आज छोटे बनकर के हमारी गोदी में बैठे हो, ऐसे ही कभी हम अपने पापा की गोदी में बैठे थे और वह पापा भी कभी अपने पापा की गोदी में बैठे होंगे। बेटा! यह

जन्म, यह माता-पिता और पुत्र का इस तरह का यह क्रम न जाने कब से चल रहा है? और जैसे ही आपने इतनी सी बात उससे कही तो बेटा समझ लेगा, नाती समझ लेगा पापा किसी चिन्ता में नहीं हैं, दादाजी किसी चिन्ता में नहीं हैं, यह तो बहुत दूर की सोच रहे हैं। दूर की सोच रहे हैं तो क्या कर रहे हैं? चिन्ता नहीं कर रहे हैं। यही उस व्यक्ति, उस बच्चे के लिए, घर के लोगों के लिए, उन व्यक्तियों के लिए बड़े सुकून की बात होगी कि आप सुकून की जगह पर बैठकर के भी सुकून में हैं। नहीं समझ में आया? सुकून की जगह पर बैठ जाना और फिर सुकून महसूस करना, इन दोनों में अन्तर है। आप अपने निवास पर बैठ करके सुकून की जगह पर तो बैठ गए लेकिन अब आपको सुकून और महसूस करना है, तो कैसे करोगे? अगर आपको अपने घर के अन्दर क्या हो रहा है? क्या मच रहा है? क्या चल रहा है? वह अगर चिन्ता में पड़े हुए तो सुकून नहीं आएगा। अगर वह सुकून के लिए बैठे भी थे और वह दिमाग में आ गया कि आज फिर बच्चे लड़ गए, आज फिर बहुएँ लड़ गईं, आज फिर नातियों में खटपट हो गई और यही फिर चिन्ता आपके अन्दर पड़ गई तो फिर सुकून के स्थान पर भी सुकून नहीं मिलेगा। वह सुकून भीतर से तभी आएगा जब आप अपने चिन्ता का दायरा बढ़ायेंगे, आप अपने चिन्तन की दशा में आयेंगे तो आत्म-चिन्तन करना।

आत्म-चिन्तन का अभ्यास करना चाहिए

ये गाथाएँ हमें क्या बता रही हैं? आत्म-चिन्तन करना सीखो। आत्म-चिन्तन करने के लिए हमें कोई किताबों की जरूरत नहीं, कोई हमें बड़े-बड़े समयसार और प्रवचन सार खोलने की जरूरत नहीं। हम सिर्फ यही चिन्तन करें कि संसार में भ्रमण करता हुआ जीव कैसे-कैसे, कहाँ-कहाँ जन्म ले लेता है? कहाँ-कहाँ इस जीव का मरण होता रहता है? ऐसे जन्म, ऐसे मरण हम भी न जाने कितनी बार कर चुके हैं? न जाने कितनी बार हमारे ऐसे जन्म मरण हो चुके हैं? बस! इतना सा आप विचार करो। आप देखो! आपका मन कितना भीतर से आपको अच्छा सा लगाएगा और आपका मन खुद कहेगा कि वास्तव में ऐसे चिन्तन में जो सुकून मिलता है, जो शान्ति महसूस होती है, वह घर के लोगों की चिन्ता में कभी भी महसूस नहीं होती है। लेकिन यह भी आपको महसूस करके ही कहना पड़ेगा, अभी तो मैं कह रहा हूँ। मुश्किल तो यह है कि हमारे पास घर नहीं है, चिन्ता नहीं है और हम चिन्तन की दशा में बैठे हैं और उनके लिए बता रहे हैं...जो घर में बैठे हैं, चिन्ता में बैठे हैं और उनके अन्दर बैठ करके उनकी चिन्ता को दूर करने के लिए यह चिन्तन वह दे रहे हैं, जिनके पास में कोई चिन्ता नहीं है। अब यह विडम्बना है यह चिन्तन आप नहीं दे पाओगे क्योंकि आप उस दशा में तभी पहुँचोगे, जब आप इस तरह से करोगे। महसूस करो कभी अपने अन्दर कि हम आत्म-चिन्तन में होते हैं तब हमें ज्यादा अच्छा लगता है। जब हम आत्म-चिन्ता में होते हैं तब ज्यादा अच्छा लगता है। यह चिन्तन आपके दिमाग को और बड़ा बनाता है, सोच को बड़ा बनाता है और जब आपकी सोच बड़ी बनती है तब फिर घर में जो छोटी-मोटी बातें होती हैं, आप कहोगे...एक सूत्र दिया था न पहले, भूल गए? यह सब तो अनन्तों बार हो चुका है। इस तरह का जो विचार आएगा, इसी का नाम है- आत्म-चिन्तन। यह आत्म-चिन्तन के क्षण होते हैं, यही महत्वपूर्ण होते हैं और इन्हीं महत्वपूर्ण क्षणों में आप के लिए इन ग्रन्थों को भी पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं कि इनमें क्या लिखा है?

अगर कोई यूँ कहे कि हमें ग्रन्थों के पढ़ने से ज्ञान मिलता है, तो मैं आपसे कहूँगा एक ऐसा ग्रन्थ जिसके

पढ़ने से कोई ज्ञान नहीं मिलता, उसका नाम है- वैराग्य शतक। हर ग्रन्थ के पढ़ने से आपको कहीं न कहीं knowledge मिलेगी और मैं आपको ऐसा ग्रन्थ पढ़ा रहा हूँ, जिस ग्रन्थ की पढ़ने से कोई ज्ञान नहीं मिलता और मुझे वही ज्ञान पसन्द है कि जिससे पढ़ने से कुछ भी ज्ञान न मिले। हम अपने आप महसूस करें कि हमारे दिमाग में कोई नया ज्ञान नहीं आया है, बस! हमें पुराने ज्ञान से connect किया गया है।

निज का चिन्तन

कोई भी दुनिया में का नया ग्रन्थ पढ़ोगे, आपको हर ग्रन्थ में नया ज्ञान मिलेगा। यह पहली बार मुझे ऐसा ग्रन्थ मिला है, इस ग्रन्थ को पढ़ने से मुझे कोई नया ज्ञान नहीं मिल रहा। लेकिन फिर भी क्या मिल रहा है? सुकून मिल रहा है। सबसे अच्छी चीज यह होती है, जो मिलने के लिए होती है। क्या मिलना चाहिए? सुकून मिलना चाहिए। न पढ़ने की tension, न पढ़ाने की tension, न उसमें क्या लिखा है? इतना ज्यादा समझने की tension. अरे भाई! सबको समझ आ रहा है, क्या लिखा है। चलो भाई! देखते हैं दूसरी गाथा में कुछ नया मिल जाए। पहली गाथा में तो कुछ नया समझ में आया नहीं। आगे क्या लिखा है?



गाथा: 58

यह जीव संसार में पर्यटन के कारण ही सुख-दुःख का भागी होता रहता है

देवो णेरइओ त्तिय, कीड-पयंगो त्ति माणुसो एसो।

रुवस्सी य विरुवो, सुहभागी दुक्खभागी य॥58॥

अन्वयार्थ- (एसो माणुसो) यह, मनुष्य 'कितनी बार' (देवो) देव 'हुआ' (त्ति) इसी प्रकार 'कितनी बार' (णेरइओ) नारकी 'हुआ' (त्ति) इसी प्रकार 'कितनी बार' (कीड-पयंगो) कीट और पतंग 'हुआ' (य) तथा 'कितनी बार' (रुवस्सी) रूपवान (य) और (विरुवो) कुरूप 'भी हुआ इसी प्रकार कितनी बार' (सुह-भागी) सुख का, भागी 'हुआ' (य) तथा 'कितनी ही बार' (दुक्ख-भागी) दुःख का, भागी 'भी हुआ है इसका विचार करो' ॥58॥

संसार भ्रमण सुख-दुख का कारण है

यह जीव 'एसो' अर्थात् यह जीव देव हुआ, नारकी हुआ, कीड़ा हो गया, पतंगा हो गया, कौन हो गया? मनुष्य हो गया। 'एसो' यह जो एसो शब्द है, यह अपने लिए होता है...एसो- यह मैं। जब हम अपने आप को भी एक तरह से प्रत्यक्ष रूप में महसूस कर रहे हो...कैसा? चिन्तन तो अतीत का लेकिन हम अपने अन्दर एक प्रत्यक्ष रूप में उसी चिन्तन से जब जुड़ जाएँ तो वहाँ पर इस तरह का यह अव्यय शब्द, यह सर्वनाम शब्द का प्रयोग करना पड़ता है- 'एसो' 'एसो' अर्थात् यह...यह मतलब यह मैं...जब 'यह' कहा जाता है, तो यह वर्तमान के लिए होता है। 'वह' कहा जाता है, तो वह भूत के लिए होता है। सुन रहे हो? बोलते रहते हो, यह-वह, this and that. क्या difference है this में और that में? This मतलब this is here, this is present. वह this के साथ में कहा जाएगा, जो हमारे सामने है, this is और that is, वह other thing है। वह कोई भी दूसरी बात जब हम करेंगे तो that is. संस्कृत में भी सः, एषः। यह जो है यह एषः, एषः मतलब यह और सः यानी वह। क्या सुना? सः यानी वह और एषः यानी यह। 'यह' जब यह कहा जाता है, 'यह' तो अपने लिए होता है जो प्रत्यक्ष में है, वर्तमान में है, उसके लिए कहा जाता है 'यह' और जो अतीत में हो गया तो 'वह'।

'यह' यानि मैं, मेरी आत्मा कौन

इस गाथा में सिर्फ इतना ही आपको एक नई चीज मिलेगी 'यह'...यह कौन? यह मेरा आत्मा, यह मैं, जो मैं सोच रहा हूँ वही मैं। आज जो मनुष्य बना हूँ, इससे पहले कीट पतंगा भी था...कौन? 'यह'। यह मैं, कौन

था? कीड़ा था, पतंगा था...यह 'मैं' इससे पहले। अब पीछे से चलो इसी गाथा में। 'माणुसो एसो' लिखा है, यह मैं मनुष्य; इससे पहले क्या था? कीट पतंगा था। इससे पहले भी क्या था? नारकी था। उससे पहले क्या था? देव था। लेकिन बात आपको अतीत की करनी है। लेकिन वह सम्बन्ध अपनी प्रत्यक्षता से, अपने से बनाना है, तो वह आत्म-चिन्तन बनेगा। केवल अगर आप दिमाग में सोचते रहे कि ऐसा हुआ था, ऐसा हो सकता है, तो यह आत्म-चिन्तन नहीं बनेगा। आत्म-चिन्तन में अपनी आत्मा को इन अतीत की पर्यायों से जोड़ना, अपनी आत्मा को इन अतीत के भवों से जोड़ना और जब जोड़ना तो कैसे जोड़ना? मैं जब कीड़ा, पतंगा रहा होऊंगा तो क्या होता होगा उस time पर? किसी भी बिजली के bulb पर, किसी भी light पर, किसी भी लौ पर बार-बार गिर रहा होंगा। जो मुझे देख रहा होगा वह समझ रहा होगा कि देखो! यह बार-बार आ रहा है, कहीं यह मर न जाए, यह जल न जाए लेकिन 'मैं', 'मैं' बोलो बोलो? यह तो आत्म-चिन्तन है न? यह तो सबको आता है न? बोलो? तुम ही बोलो? मुझे अच्छा लग रहा था, मैं वहीं पर जा रहा था। कोई मुझे रोक भी रहा था तो भी मैं फिर से वहीं पर आ जाता था। कोई मुझे हाथ भी मारता था बचाने के लिए तो भी मैं उसके हाथ से थोड़ा सा दूर हट करके, घूम करके और फिर एक round लगा करके फिर वहीं पर आ जाता था। वह कौन था? वह मैं था। जब बचाने वाला थक गया, नहीं बचा पाया तो मैं अपनी जिद में उसी लौ पर बैठ गया, मेरे पंख जल गए, मैं तड़प गया, मैं वहीं पर अधमरा हो करके गिर गया और फिर मैं तड़पता रहा, गिरता रहा। सुबह हुई, लोग आए, झाड़ू लगाई, किसी का पैर पड़ गया, मैं कुचल गया, मैं मर गया; मेरा जीवन समाप्त हो गया।

आत्म-चिन्तन कैसे करें?

वह कौन था? वह 'मैं'! यह आत्म-चिन्तन है, यह वैराग्य का चिन्तन है। अगर आपको अपने शरीर से, अपनी पिछली पर्यायों से इस तरह से यहाँ बैठ कर के प्रत्यक्ष, चाहे आँख बन्द करके कर लो, चाहे आँख खोल के कर लो, यह आत्म-चिन्तन हो सकता है और इस चिन्तन के लिए कोई knowledge की बहुत ज्यादा आवश्यकता नहीं कि भाई! पहले किताबें पढ़ें। हमने शास्त्र पढ़े ही नहीं हैं। I know nothing, इसकी जरूरत ही नहीं है। आप कुछ नहीं जानते हो तो भी आत्म-चिन्तन कर सकते हो। इसलिए कह रहा था... इस ग्रन्थ में कुछ नया है ही नहीं। आत्म-चिन्तन करने के लिए कहा जा रहा है, इसलिए अगर आप इस ग्रन्थ को कभी अपने मन से पढ़ोगे तो आप कहोगे इसमें कुछ भी नया नहीं है। मैं भी अगर कभी अकेले में बैठ कर इसको पढ़ूंगा तो मैं सोचूंगा इसमें क्या नया है?

आत्म चिन्तन में अपनी अतीत की पर्यायों से सम्पर्क करना

क्या इसको पढ़ के मुझे मिल रहा है? यह तो पता ही है मेरे को। पञ्च परावर्तन का ज्ञान है मेरे को, मुझे सब पता है कि मैं देव बन चुका हूँ, मैं नारकी बन चुका हूँ। क्या नया है इसमें? नया अगर कुछ है तो सिर्फ इतना ही है कि आत्म-चिन्तन करने के लिए हमें अपने आप को कैसे पर्यायों से connect करना है बस! वह सिर्फ एक शब्द में कुछ अगर मिल रहा है, तो मिल रहा है- **एसो**। यह जो प्रत्यक्ष मैं महसूस कर रहा हूँ..**एसो** मतलब यही वर्तमान में, प्रत्यक्ष में, मैं ऐसा महसूस कर रहा हूँ...मैं पतंगा था, कीड़ा था। कितनी बार फिर मैं इसी तरह से मरा, कितनी बार इसी तरह से जल गया, कितनी बार ऐसे ही कुचला गया। मैं

आत्म चिन्तन से सामायिक और ध्यान



गाथा: 59

यह जीव संसार में राजा, रंक आदि विभिन्न रूपों को धारण करता रहता है

राओत्ति य दमगोत्ति य, एस सपागोत्ति एस वेयविऊ ।
सामी दासो पुज्जो, खलो त्ति अधणो धणवइ त्ति ॥59 ॥

अन्वयार्थ- (एस) यह 'जीव कितनी बार' **(राओ)** राजा 'हुआ' **(त्ति)** इसी प्रकार 'कितनी बार' **(दमगो)** द्रमक यानी भिखारी 'हुआ कितनी बार' **(स-पागो)** स्व-पाकी यानी चाण्डाल 'हुआ' **(य)** तथा **(एस)** यह **(त्ति)** इसी प्रकार 'कितनी बार' **(वेय-विऊ)** वेद-विद यानी शास्त्रों को, जानने वाला 'हुआ उसी प्रकार अज्ञानी हुआ' **(सामी)** स्वामी 'हुआ' **(दासो)** दास 'हुआ' **(त्ति)** इसी प्रकार 'कभी' **(पुज्जो)** पूज्य 'हुआ' **(य)** और 'कभी' **(खलो)** दुष्ट 'हुआ' **(त्ति)** इसी प्रकार 'कितनी बार' **(अधणो)** निर्धन 'और कितनी बार' **(धणवइ)** धनपति 'भी हुआ इसप्रकार संसार-स्वरूप विचारो' ॥59 ॥

यहाँ कहा जा रहा है... 'सुहभागी दुःखभागी य' मैं सुख का भी भागी बन चुका हूँ और दुःख को भी भोग चुका हूँ, सब बन चुका हूँ। 'राओत्ति य दमगोत्ति य' राजा भी बन चुका हूँ और भिखारी भी बन चुका हूँ। मैं यहाँ पर इस तरह से यह एस, एस फिर आ गया देखो! यह एस, एस मतलब बस और कुछ भी इसमें नया नहीं है, इन गाथाओं में। सिर्फ यही एक भाव नया निकल कर के आ रहा है...एस मतलब यह मैं, यह मैं। किसी दूसरे के लिए नहीं कह रहे हैं। वैराग्य शतक को बनाने वाले आचार्य या ऋषि मुनि एक तरह से दूसरे के लिए नहीं कह रहे हैं कि तू ऐसा कर चुका, कभी-कभी वे अपने लिए भी कहने लग जाते हैं। कभी-कभी दूसरों के लिए भी सम्बोधन हो जाता है...रे मूढ़! रे जीव! तूने ऐसा किया, तू अप्पवैरी रहा। वह जब तू कहते हैं तो तुम्हें लगता है वह मेरे लिए कह रहे हैं।

ग्रन्थ को लिखने वाले आचार्य स्वयं को ही संबोधित कर रहे हैं

वस्तुतः लिखने वाला अपने लिए ही कह रहा होता है...वह सबके लिए है, अप्पवैरी सबके लिए है। जो जानकार है, उसके लिए भी है, जो नहीं जानता है उसके लिए भी है। जब वह कह रहे हैं...रे जीव! तूने इस संसार में भ्रमण किया है, तो वह अपने ही जीव को पहले सम्बोधन देते हैं। इसलिए मैंने आपसे कहा था कि मैं आपको नहीं पढ़ा रहा हूँ, मैं खुद पढ़ रहा हूँ। क्योंकि मैं अगर कमरे में पढ़ूँगा तो इतने अच्छे ढंग से नहीं पढ़ पाऊँगा। मुझे पढ़ने के लिए इसी तरह का स्थान चाहिए जहाँ मैं एक घण्टे तक तीन गाथाओं को पढ़ सकूँ। कमरे में पढ़ूँगा तो एक घण्टे में 100 गाथाएँ आराम से पढ़ लूँगा। आधा घण्टे में ही पढ़ लूँगा 100 गाथाएँ लेकिन यहाँ पढ़ूँगा तो थोड़ा अच्छे ढंग से पढ़ पाऊँगा। इसलिए आप यह मत समझना कि मैं आपको

पढ़ रहा हूँ। मैं फिर कह रहा हूँ...मैं खुद पढ़ रहा हूँ, मैं खुद सीख रहा हूँ, मैं आचार्यों की भाषा से अपने आप को जोड़ रहा हूँ और यही देख रहा हूँ कि इस भाषा में क्या नयापन है? यह नयापन जो सामने आता है वह आपके सामने रख देता हूँ। **एस**, यह **‘स्वपाको’** एक स्वपाक होता है जैसे जो यह श्मशान वगैरह में रहने वाले जो जीव होते हैं, जो मरघटों पर गन्दे जीव होते हैं, जो माँस वगैरह खाते रहते हैं, वह स्वपाकी कहलाते हैं और वह भी मैं हो चुका हूँ। यह गीदड़, सियार, इस तरीके के कुत्ते यह भी मैं हो चुका हूँ और **वेयविऊ** मैं सब वेदों को जानने वाला अर्थात् शास्त्रों को जानने वाला भी मैं हो चुका हूँ। हाँ!... सब शास्त्र जान चुका हूँ मैं।

पूर्वजन्मों में जीव सभी पर्यायों को ग्रहण कर चुका है

पिछले जन्मों में भी बहुत पढ़ चुके होंगे, बहुत पढ़ाई की होगी। पिछले जन्मों में भी न जाने कितनी किताबें रटी होंगी लेकिन मृत्यु के उपरान्त सब delete हो जाता है। Brain भी नया मिल जाता है, body भी नई मिलती है, mind भी नया मिलता है लेकिन वह जो हमने पिछले जन्मों में learning की है, वह सब हमारी उसी brain के साथ में छूट जाती है, जो उस शरीर के साथ छूट गया। इसलिए सब पढ़ चुका हूँ मैं, सब वेदों का जानकार हूँ, सब पढ़ चुका हूँ, स्वामी भी हो चुका हूँ मैं, कौन? कभी किसी का स्वामी भी रहा हूँ, **‘दासो’** दास भी रहा हूँ, **‘पूज्यो’** पूज्य भी हुआ हूँ, बहुत सम्माननीय स्थिति में भी रहा हूँ, लोगों ने मुझे बहुत पूज्य बना कर के बिठाया हो, देखा हो, मुझे सम्मान दिया हो, वह भी मैं रह चुका हूँ। पूज्य भी बन चुका हूँ। **‘खलो’** दुष्ट भी बन चुका हूँ। सबके काम बिगाड़ने वाला भी बन चुका हूँ, सभा में खलबली मचाने वाला भी बन चुका हूँ। जब काम बिल्कुल चरम पर हो, बन गया हो तब एक बात ऐसी छोड़ देना, सारी सभा के विचार शान्त हो जाएँ, वह आदमी सबसे ज्यादा intelligent है। आप सोचो! आप कभी बैठे हो किसी सभा में या कोई meetings में या आपके office की meeting हो...जैसे आप कोई 20 लोग बैठे थे, आपने एक meeting कर ली और बस! decision आप लेने ही वाले थे कि हाँ! बस हम सब इस निर्णय पर पहुँचे हैं, अब हम आगे यह करेंगे और उसी समय पर कोई एक व्यक्ति आता है और आपको उसी समय पर अपने विचारों से, अपने idea से इस तरह से आपके सामने प्रस्तुति देता है कि जो आपने सोचा है, यह गलत है और इसमें बहुत नुकसान है। मैं जो कह रहा हूँ वह सही है और ऐसा करते ही वह जितने भी 20 लोग थे, वह सब हतप्रभ रह जाते हैं। यह इसने क्या कर दिया? मैं तो सोच रहा था ऐसा होता और इसने पूरी cassette ही घुमा दी। तो intelligent कौन? ऐसा भी वह आदमी रह चुका हूँ मैं। उस समय पर अपने आप को सबसे ज्यादा वह intelligent समझता है, जब वह यह समझे कि मैंने 20 लोगों की योजना पर पानी फेर दिया तो उससे बढ़कर के intelligent और कोई नहीं है। लेकिन शास्त्रों में उसके लिए नाम क्या मिलेगा? **खल**। खल का अर्थ ऐसा दुष्ट मैं था, जो सबके बनते हुए काम बिगाड़ देता था। वह भी मैं कर चुका हूँ, खूब कर चुका हूँ, मन भर के कर चुका हूँ। ऐसा दुष्ट भी मैं बन चुका हूँ और अपने आप को intelligent समझता रहा...देखो! मैंने आज 20 लोगों के मुँह बन्द कर दिए, एक भी कुछ नहीं बोल पाया मेरे सामने। लेकिन सब समझ रहे हैं कि इसने अपनी दुष्टता कर दी, इसने बनते हुए काम को बिगाड़ दिया और वह क्या समझ रहा है? मुझसे बढ़कर के intelligent कोई नहीं।

अपने अनेक रूपों को स्मरण करने से अहं का विसर्जन होता है

दूसरों की नजरों में वह दुष्ट रहा। उस जन्म में उसने अपने आप को दुष्ट नहीं समझा, अब यहाँ बैठ कर के वह सोचता है, मैं ऐसा भी दुष्ट रहा हूँ। हर एक चीज हमने कर ली है और उसके साथ मैं अपने आप को यह मैं, पूज्य भी मैं था, दुष्ट भी मैं था और 'अधनी' धन से रहित होकर के भी मैं रहा हूँ और धनपति होकर के भी मैं रहा हूँ। ऐसा कुछ भी नहीं है जो इस दुनिया में मैं न बना हूँ, न रहा हूँ और इस तरह से मैंने अपने अतीत में सब कुछ खुद मैंने ही पाया है। यह मैं, मैं मतलब मुझे मेरी आत्मा के साथ मैं यह सब सम्बन्ध अतीत के जब बनाने आ जाएँ तो आपके अन्दर वैराग्य की एक लहर उत्पन्न हो सकती है, पढ़ने से कभी नहीं हो सकती है। सुकून से बैठ कर के, अपने निवास स्थान पर जाकर के, AC में बैठ कर के, अपने घर पर पहुँच कर के जब सुकून से अपने कमरे में बैठ जाओ तो क्या सोचना? केवल घर के बारे में मत सोचना। थोड़ा सा यह सोचना, मैं यह हो चुका हूँ, मैं यह हो चुका हूँ, जो कुछ भी दुनिया में मैं देख रहा हूँ, वह मैं हो चुका हूँ। मैं भी किसी के द्वारा मारा गया हूँ, मैंने भी किसी को मारा है। यह सब मैं कर चुका हूँ।

ऐसा करने से क्या होगा? आपको अपने अनेक रूप दिखाई देंगे और जब आपको अनेक रूप दिखाई देंगे तो उनके बीच में यह जो आपका एक रूप होगा, इसमें आपको फिर अहं पैदा नहीं होगा, फिर आपको इसमें कुछ भी नयापन नहीं लगेगा। तब आपके मन के अन्दर जो एक सामान्य भाव आएगा, वही भाव वैराग्य का भाव कहलाएगा। राग में हम विशेष हो जाते हैं और वैराग्य में सामान्य हो जाते हैं। हम अगर उस सामान्य भाव में आयेंगे तो हमारे अन्दर शान्ति आएगी। हम महसूस करेंगे, हम जिस चीज को पाने के लिए इतना ज्यादा क्लेश कर रहे हैं, ये सब हम पा चुके हैं। ये सब हम पा चुके हैं, हम collector भी बन चुके हैं, हम बड़े राजनेता भी बन चुके हैं, हमने खूब dictatorship भी कर ली है और हम सब कुछ कर चुके हैं। यह सब अब हमारे इस जीवन में अगर कुछ हो भी रहा है, तो यह केवल इस जीवन के लिए है और उसमें भी वह अपने लिए कम, दूसरों के लिए ज्यादा है ताकि लोगों को पता रहे कि मैंने जीवन में कुछ कर लिया है। लोग यह न समझे कि इसने जीवन में कुछ किया ही नहीं, कुछ बना ही नहीं तो कुछ बनना पड़ता है।

अहं के विसर्जन से ही वैराग्य की उत्पत्ति होगी

नहीं समझ आया? कुछ बनना पड़ता है, बनना? बनना समझते हो? बनना... बनना... बड़े भाई! बहुत बन रहे हो आजकल, क्या हो गया? यह बनना। मतलब जो हम नहीं होते हैं, वह बनने की कोशिश करते हैं। मैं बनना चाहता हूँ, क्या? collector. मैं हूँ नहीं collector, मैं collector बनना चाहता हूँ। हर आदमी बनना चाह रहा है, बनना। बनने में मजा आएगा कि होने में मजा आएगा? अरे महाराज! बनकर ही तो हुआ जायेगा। जब मैं बन जाऊँगा collector, तभी तो मैं collector होऊँगा। तब तुम collector नहीं होगे, तब तुम्हारे सामने इतने काम होंगे, तुम्हारे सामने इतनी tension होगी कि तुम्हें collector बनने के बावजूद भी कभी महसूस नहीं होगा कि मैं collector हूँ। पूछ लेना उन लोगों से जो collector बन चुके हैं। यह तभी तक है जब तक मेरे अन्दर मुझे बनना है, बनना है और जब कोई भी चीज जब बनाई जाती है, बन भी जाते हैं तो वह original नहीं होती है। वह आपकी originality होगी ही नहीं। जो आपने बनाया है, वह आपका original नहीं है। जो आपके अन्दर अपने से आ रहा था, आप हो रहे थे, हो रहा है और

होते-होते अगर हो गया तो वह originality है। होते-होते बन गए तो सही बन गए और बनते-बनते बने तो कभी सही नहीं बन पाए। अन्तर समझ आ रहा है? बच्चे भी बैठे हैं आज, कल से program शुरू है। आज से ही इनकी यह training शुरू हो रही है। यह कुछ बन करके आए हैं। कोई न कोई exam, किसी न किसी तरह का कोई competitive exam clear करके आए हैं। अब यह कुछ बनने के लिए जो तैयारी की थी, उसका first year निकाल चुके हैं या अभी इनका admission हुआ है। अभी यह बन रहे हैं। बन रहे हैं, होते-होते बन गए तो फिर भी ठीक है लेकिन बनते-बनते बने तो उसमें बनने के बावजूद भी कुछ नहीं लगेगा कि मैं बन गया। इन दोनों के बीच का अन्तर व्यक्ति को अगर समझ आता है, तो अपने आप उसके लिए सन्तोष मिलेगा। भाई! ठीक है किसी को कुछ बनना था, किसी को कुछ बनना था। कोई कुछ बन गया, कोई कुछ बन गया। हम सब एक ही चीज क्यों बनना चाहते हैं? होते-होते हम जो बन जाएंगे, वह हम बन गए। आप होते-होते एक अच्छे श्रावक बन गए, हम होते-होते एक मुनि महाराज बन गए। हम भी तो कुछ बन गए लेकिन बनने के लिए बन गए, ऐसे बन कर नहीं बने, होते-होते बन गए। जो अपने आप सहज में होते-होते कुछ बन जाएं तो अच्छी बात है और अगर आप बनने के लिए कुछ करेंगे तो उसमें भी आपके लिए सुकून नहीं मिलेगा। इसलिए आपका समय हो रहा है, आप अपने घर पर जाइए, अपने-अपने निवासों में बैठिए और वहाँ पर बैठकर के क्या सोचना.....?

गाथा: 60

अपने कर्मों से प्रेरित यह जीव, चारों गतियों में जन्म लेता है

ण वि इत्थ कोइ णियमो, सकम्म-विणिविट्ठ-सरिस-कयचिट्ठो ।

अण्णाण्ण-रूव-वेसो, णडुव्व परियत्तए जीवो ॥60 ॥

अन्वयार्थ- (इत्थ) यहाँ यानी इस संसार में 'ऐसा' **(कोइ)** कोई **(णियमो)** नियम **(वि)** भी **(ण)** नहीं है 'कि पुरुष; पुरुष ही होगा स्त्री नहीं होगा, तिर्यच; तिर्यच ही होगा मनुष्य, देव अथवा नारकी नहीं होगा' **(स-कम्म-वि-णिविट्ठ-सरिस-कय-चिट्ठो)** स्व यानी अपने, कर्मों के द्वारा, विशेष रूप से, नियंत्रित 'और' उसी के अनुसार, किया है, चेष्टाओं को जिसने ऐसा 'यह' **(जीवो)** जीव **(णडुव्व)** नट, के समान **(अण्ण-अण्ण-रूव-वेसो)** अन्य-अन्य, रूप 'व' भेषों को **(परियत्तए)** परिवर्तित करता रहता है 'यही संसार का स्वरूप है' ॥60 ॥

भावना एवं ज्ञान में अन्तर तथा उनका महत्व

वैराग्य शतक यह एक छोटा सा ग्रन्थ है। सौ गाथाओं में प्राकृत भाषा के माध्यम से संसारी जीवों के लिए, सरल भाषा में संसार का और संसार से मुक्ति प्राप्त करने का बहुत अच्छा चित्रण इसके अन्दर किया गया है। जो भावनाएँ होती हैं वह बार-बार भाने योग्य होती हैं। ज्ञान होता है वह एक बार प्राप्त कर लेने योग्य होता है। जब हम ज्ञान की दृष्टि से किसी भी ग्रन्थ को पढ़ते हैं तो एक बार पढ़ लेने के बाद में हमें लगता है कि जो भी इसके अन्दर था वह हमने जान लिया, समझ लिया, पढ़ लिया। किन्तु जो भावनात्मक ग्रन्थ होते हैं उन्हें ज्ञान की दृष्टि से नहीं, उन्हें भावनाओं की दृष्टि से ही पढ़ा जाता है। इसलिए कल आपसे कहा था कि इस ग्रन्थ में कोई बहुत ज्यादा ज्ञान की बातें नहीं हैं लेकिन भावनायें इतनी बलवती हैं कि उन भावनाओं को हम अनेक-अनेक शब्दों के माध्यम से, अनेक-अनेक उपमाओं के माध्यम से और अनेक-अनेक छन्दों के माध्यम से भी जब भाने की भावना करते हैं तो वह ज्ञान से भी ज्यादा काम करने वाली चीज होती है। ज्ञान एक बुद्धि का विषय बनकर होता है तो भावना आत्मा के अन्दर आत्मसात करने की एक पद्धति होती है। इसलिए इन ग्रन्थों में जो यहाँ पढ़ रहे हैं यह बहुत सरल है। ज्ञान की दृष्टि से इनमें जो भी ज्ञान है, वह शायद आपको भी पता होगा और अगर यह किसी बच्चे को भी सुनाया जाए जिसने कभी कोई धर्मग्रन्थ न पढ़ा हो तो वह भी कहेगा...यह मैं जानता हूँ। इसलिए कभी-कभी ज्ञान से ज्यादा महत्वपूर्ण भावना होती है। हमारे अन्दर का वह विचार जो हमें भीतर से झकझोर दे, भीतर से हमें कुछ सोचने को मजबूर कर दे, यह ज्ञान से सम्भव नहीं होता, यह भावना से होता है। इसलिए इस वैराग्य शतक में कुछ भावनाएँ हैं जिनका



हम निरन्तर अध्ययन भी कर रहे हैं, निरन्तर उसकी व्याख्या भी पढ़ रहे हैं, सुन रहे हैं और उसी के माध्यम से वह भावना और ज्यादा पुष्ट होती चली जाती है। जब यह देखने में आता है कि इन भावों को हम अपने अन्दर कैसे समाहित करें? उसी क्रम में यह गाथा नम्बर 60-61-62 पढ़ते हैं...

**ण वि इत्थ कोइ णियमो, सकम्म-विणिविट्ठ-सरिस-कयचिट्ठो ।
अण्णाण्ण-रुव-वेसो, णडुव्व परियत्तए जीवो ॥60 ॥**

**णरएसु वेयणाओ, अणोवमाओ असाय-बहुलाओ ।
रे जीव! तए पत्ता, अणंतखुत्तो बहुविहाओ ॥61 ॥**

**देवत्ते मणुअत्ते, पराभिओगतणं उवगएणं ।
भीसण-दुहं बहु-विहं, अणंतखुत्तो समणुभूयं ॥62 ॥**

रूपों की प्राप्ति, कर्म फल का परिपाक

गाथा नम्बर 60 में कहते हैं...यहाँ पर कोई भी नियम नहीं है 'ण वि इत्थ कोइ णियमो' किस बात का? 'अण्णाण्ण-रुव-वेसो' जो यह जीव अन्य-अन्य रूपों को प्राप्त करता है, इन रूपों की प्राप्ति करने के लिए यहाँ पर कोई ऐसा एक नियम नहीं है कि आपने जिस रूप की प्राप्ति कर ली है, वही रूप आपको प्राप्त होता रहेगा। क्योंकि रूप की जो प्राप्ति होती है, वह होती है 'सकम्म-विणिविट्ठ-सरिस-कयचिट्ठो' अपने कर्मों से, जो हम अपने ही अन्दर, आत्मा के अन्दर निविष्ट कर देते हैं- कुछ संस्कारों को और उसके फल से फिर हम कुछ चेष्टाएँ करते हैं उन चेष्टाओं के कारण से ही यह अन्य-अन्य रूपों की प्राप्ति होती है।

कर्म चेष्टाएँ निर्धारित करती हैं हमारी पर्यायें, हमारी सुरूप-कुरूपता

अगर कोई व्यक्ति यह सोचे कि मैं मनुष्य बना हूँ तो हमेशा मनुष्य बना रहूँगा तो आचार्य कहते हैं...ऐसा तो कोई नियम नहीं है। अगर कोई सोचे कि कोई स्त्री है तो हमेशा स्त्री ही बनी रहेगी, अन्य-अन्य जन्मों में, तो ऐसा भी कोई नियम नहीं है। कोई जीव-जन्तु है, तिर्यच गति का कोई भी पशु-पक्षी है, वह सोचे कि अगर वह हमेशा इसी तरह की पक्षी की, पशु की पर्याय को प्राप्त करता रहेगा तो ऐसा भी कोई नियम नहीं है। फिर नियम क्या बनता है? अपने कर्मों से निविष्ट जैसी आपने चेष्टाएँ कर ली हैं, उसी चेष्टाओं के अनुरूप आपके लिए रूप आदि की क्रियाओं आदि की प्राप्ति होती है। जैसा हम अपनी आत्मा के अन्दर कर्म कर लेते हैं, उस कर्म के अनुरूप ही उस कर्म फल से, वह-वह रूप आदि प्राप्त होते हैं। अर्थात् अगर किसी के लिए उस रूप में कुरूपपना मिला है तो वह भी उसको अपने ही कर्म की चेष्टाओं के कारण से मिला है। अगर किसी को स्वरूप पना मिला है तो वह भी अपने ही कर्म के उन फलों के कारण से मिला है।

जैसा बोयेंगे वैसा पायेंगे

हर जीव अपनी आत्मा में इस तरह से कर्मों को निविष्ट कर लेता है, बिठा देता है कर्मों को कि उन्हीं कर्मों के फल से उसे फिर अलग-अलग तरह से चेष्टाएँ करने के लिए रूप मिल जाते हैं, अंग-उपांग मिल जाते हैं और उसे उन शरीरों की प्राप्ति हो जाती है, जो शरीर उसके सामने फल दे रहे होते हैं। इन सबके पीछे कारण क्या है? अपने-अपने किए हुए कर्मों के संस्कारों का फल है और कुछ नहीं है। आप देख सकते हैं ऐसे भी बहुत से जीव हमें दिखाई देते हैं, जो जन्म से ही कुछ अलग तरह की चेष्टाएँ करते हैं। जैसे सामान्य बच्चा सीधे-सीधे चलता है, उनको सीधे-सीधे चलना नहीं होता है। कोई बच्चे को आपने देखा होगा, कोई बेटी को भी आपने देखा होगा, जिसके पैर में कुछ इस तरह का उसे आप लकवा कह सकते हैं, लेकिन इस तरह का एक ऐंठन हो गया कि वह सीधा कदम नहीं रख सकती। अब यह कब से है? बचपन से है। अब इस चेष्टा के लिए कौन जिम्मेदार है? अगर वह अपना पैर सीधा उठा कर नहीं रख कर चल सकती तो इस चेष्टा के लिए वह जिम्मेदार, उस जीव का उस आत्मा का अपना स्वकीय कर्म है। सब लोग सीधे-सीधे चलते हैं लेकिन वह चलते हुए लड़खड़ाती है, चलते हुए उसके पैर तो लड़खड़ाते ही हैं लेकिन हाथ भी अगर देखोगे तो वह भी कुछ तिरछे हैं, कुछ टेढ़े-मेढ़े हो रहे हैं। आप पूछोगे यह सब कैसे हो रहा है? इसके पीछे क्या कारण है? यह कारण यहाँ थोड़ा बताया जाता है कि यह जीव अपने किए हुए कर्म से जिस तरह से उन्हें अपनी आत्मा में बिठा लेता है, उन्हीं कर्मों के सदृश उसे चेष्टाएँ करनी पड़ती हैं।

निविष्ट कर्मों के फल की अनिवार्यता

अब उसका पिछला जन्म हमें ज्ञात नहीं, पिछले जन्म में वह क्या थी? यह हमें ज्ञात नहीं। लेकिन हमें यह जो वर्तमान में वह कर्म का फल दिखाई दे रहा है यह सामने आ रहा है और इसको देख कर हम हैरान होते हैं कि यह बच्चा कितना दुःखी है? यह कितना बड़ा होने के बावजूद भी सीधा न अपने हाथों का इस्तेमाल कर पाता है, न सीधा चल पाता है। इस तरह के चेष्टाओं को देखते हुए अगर आपके मन में कोई विचार आए, भीतरी विचार तो यह आ सकता है जो यहाँ बताया जा रहा है। हम जो भी चेष्टाएँ कर रहे हैं, हमारे जो भी तरह से हाथ-पैर चल रहे हैं, हमारे मुँह की जो भी shape है, हमारी आँखें छोटी या बड़ी जैसी भी है, ये सब कैसे हैं? ये अपने किए कर्म के फल से हैं और कर्म में वह चेष्टा हमने पहले निविष्ट कर दी। निविष्ट मतलब हमने उस तरह के कर्म करके पहले उस अपनी चेष्टाओं से उन कर्मों को अपनी आत्मा में बिठा लिया और वह कर्म आत्मा में बैठ गए और वह कर्म जब फल देंगे तो समय पर देंगे।

नृत्य कला, साधना व व्यसन में अन्तर

एक बहुत ध्यान से सुनने योग्य बात मैं आपको बता रहा हूँ अगर आपके बच्चे भी सुन पाएँ तो ठीक है और नहीं सुन पाएँ तो उन्हें बाद में भी सुना देना। आज हम देखते हैं कि बच्चे तरह-तरह से नृत्य करते हैं, नाचते हैं, dance करते हैं। dance करना अलग बात है, नृत्य करना अलग बात है और उसके पीछे का एक उद्देश्य, क्या? दूसरों को लुभाना। दूसरे हमारे उस नृत्य को देख कर कहे...वाह! वाह! यह एक उद्देश्य अलग है। आजकल आप देखोगे बच्चों के लिए उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं होती है, बच्चे सिर्फ देखा-सिखी करते हैं। यह जितने भी आपके mobile के system चल गए हैं, बच्चों के मनोरंजन के लिए सब चीजें उनके अन्दर

होती हैं। बच्चे क्या करते हैं? उन्हें जिसका नृत्य अच्छा लग रहा है, जो गाना अच्छा लग रहा है, उसको सामने रखते हैं और वैसा ही नाचने की, वैसा ही गाने की चेष्टा करते हैं। अगर यह केवल मनोरंजन के लिए है केवल अपने लिए है, तो वाजिब है। थोड़ी देर के लिए अपना मनोरंजन कर लिया, कोई बात नहीं लेकिन अगर इसमें यह मन लग गया कि देखो मैं कितना अच्छा कर लेता हूँ, कितना अच्छा कर लेती हूँ और उसके लिए फिर वह नृत्य आदि की क्रियाओं को करके वह दूसरों को दिखाने के लिए हो गया। दूसरों को लुभाने के लिए हो गया, पैसा कमाने के लिए हो गया तो उद्देश्य बदल गया। नृत्य एक कला भी है और नृत्य एक व्यसन भी है, बुराई भी है।

कला साधना में उद्देश्य का महत्व

जब कला होती है तो उसे अच्छे उद्देश्य के साथ में प्रस्तुत किया जाता है। बच्चों को music भी सीखना चाहिए, dancing भी सीखना चाहिए लेकिन सीखने के बाद में अपने उद्देश्य बना कर रखने चाहिए कि हम इन उद्देश्यों के साथ में कभी भी दूसरों को लुभायेंगे नहीं। यह हमारी अपनी कला है, हम अपने लिए करेंगे। इस कला का प्रदर्शन अगर हमें किसी तरह से अच्छे उद्देश्यों के साथ करना पड़े, धर्म मंच पर तो करेंगे लेकिन बेवजह किसी की तालियाँ सुनने के लिए और बेवजह किसी के वाहवाही सुनने के लिए हमें यह कलाओं का प्रदर्शन करना है तो हम इससे बचेंगे। ऐसा हो सकता है? बच्चे सीखते हैं बहुत कुछ, सीखना अच्छी बात है लेकिन सीख कर उससे जब भी बिगड़ाव आता है तो उस बिगाड़ की वजह क्या होती है कि उन्हें अपने उद्देश्य पता नहीं होते हैं।

कर्म सिद्धान्त से लग सकता है, निविष्ट कर्मों के फल का अनुमान

आप कभी किसी ऐसे बच्ची को देखना, कोई आपकी दृष्टि में हो तो आप उसको focus मत करना। न यह सोचना कि मैं किसी को लक्ष्य लेकर कोई बात कह रहा हूँ। मैं अक्सर देखा करता हूँ, मुझे देखने में आता है तो देखने के बाद मेरे मन में कुछ विचार आता है। मैंने कभी अगर ऐसे किसी बच्चे को देखा, जो सीधा नहीं चल पा रहा है, उसके हाथ में भी थोड़ा सा टेढ़ापन आ गया, उसके पैर में भी थोड़ा टेढ़ापन आ गया और वह बचपन से आ गया। अब यह क्यों आ गया? जब वह बच्चा चल रहा है तो मुझे ऐसा लग रहा है जैसे कि वह नृत्य कर रहा हो लेकिन वह नृत्य नहीं कर रहा है। वह क्या कर रहा है? वह सीधा चल रहा है। लेकिन सीधा चलने की कोशिश में भी सीधा चल नहीं पा रहा है। उसके हाथ-पैर इस तरह से bend हो गए, मुड़ गए कि वह सीधा करने की कोशिश में भी उसको सीधा रख नहीं पाता। अब यह कैसे हुआ? कोई केवली भगवान होते, अवधिज्ञानी मुनि महाराज होते तो शायद देख करके बताते। लेकिन श्रुत ज्ञान जो हमारे सामने है उसमें एक अनुमान ज्ञान भी आता है, उस अनुमान ज्ञान के माध्यम से भी हम इसको थोड़ा सा व्याख्यायित कर सकते हैं। यह कर्म सिद्धान्त है और यह वही कर्म सिद्धान्त है, जो यहाँ बताया जा रहा है। जैसी चेष्टाएँ हमने की, वह चेष्टाएँ हमारी आत्मा में निविष्ट हो गई और चेष्टाओं से वह कर्म हमारी आत्मा में इस तरह से बैठ गए कि वह कर्म जब अपना फल देने के समय पर अपना फल दिए तो हमारे हाथ-पैरों को भी वैसा ही कर दिए।

कर्म बन्ध के समय जैसे रहेंगे भाव, वैसा ही मिलेगा फल

क्या आपको लगता है कि कभी ऐसा हो सकता है? जिस शरीर को प्राप्त करके हमने उस शरीर से केवल दूसरों का मनोरंजन किया हो, जो भी नृत्य हैं, गीत हैं, किसी भी तरीके के भड़कीले गाने हैं, उनके साथ होने वाले dance हैं, जब कोई कर रहा होता है तब करने वाले को यह पता नहीं होता है वह क्या कर रहा है? और देखने वालों को भी पता नहीं होता वह क्या देख रहे हैं? लेकिन भीतर एक जो कर्म का कृत्य चल रहा होता है, कर्म का जो कार्य चल रहा होता है, वह अलग चल रहा होता है। अगर वह कर्म उस समय पर, उस आत्मा में निविष्ट होगा तो कैसा होगा? वैसा ही होगा जैसी क्रिया की जा रही है, जैसा विचार किया जा रहा है, जैसा उस समय पर उसका movement हो रहा है। suppose करो, आपने अपने हाथ-पैरों को कुछ इस तरीके से घुमाया और उसके कारण से आपकी acting को देख कर बहुत सारे लोगों ने आपकी वाहवाही की। लेकिन उसी समय पर अगर आपके कर्म का बन्ध हो गया, उसी समय पर अपनी चेष्टाओं से अपनी आत्मा में वह कर्म इस तरह से निविष्ट हो गए तो बहुत कुछ सम्भव है कि अगले जन्म में अपने को उसी तरह के हाथ, उसी तरह के पैर बनने की स्थिति बन जाए। एक डरावनी बात बता रहा हूँ मैं लेकिन यह अनुमान ज्ञान से बता रहा हूँ।

अनुमान ज्ञान

अनुमान ज्ञान अर्थात् कर्म और कर्म फल का ज्ञान! यह अनुमान ज्ञान से बनता है...जैसे कि कहीं घुँआ निकल रहा है तो अनुमान लगाया जाता है। वह अनुमान सच्चा ज्ञान कहलाता है कि अगर वह घुँआ निकल रहा है तो मतलब बिना आग के कहीं घुँआ नहीं निकलता है। घुँआ इस बात को prove करता है कि वहाँ पर अग्नि है, इसी को अनुमान ज्ञान कहते हैं। घुँए से अग्नि का ज्ञान कर लेना, कर्म फल की चेष्टाओं को देख करके कर्म का ज्ञान कर लेना।

क्रियाओं में उद्देश्य का महत्व

अगर किसी व्यक्ति के लिए कर्म फल इस तरह से मिल रहा है कि वह हाथ-पैरों में उसका टेढ़ापन है तो उसने अपने इस जन्म में नहीं, पिछले जन्म में, इस तरह से चेष्टाएँ की। उन चेष्टाओं के दौरान ही उसको इस तरह से कर्म बन्ध हुआ कि उसके अच्छे उद्देश्य न होने के कारण से जिन चेष्टाओं से वह दूसरों को लुभा रहा था, दूसरों को अपनी ओर देखने को मजबूर कर रहा था, उसकी दृष्टि में सिर्फ यही भाव था कि लोग हमें देखे, लोग हमें और ज्यादा like करें, लोग हमें और ज्यादा appreciate करें। इसी भावना से वह जब कर्म बन्ध हो गया, तो अगले जन्म में भी लोग आपको देखेंगे। अगले जन्म में भी लोग आपके लिए ही देख कर के दंग रहेंगे। अब दंग तो होंगे लेकिन किस रूप में दंग होंगे? उन्हें नहीं पता कि यह किस लिए हो गया? मानो कि हमने उन्हीं की खुशी के लिए वह कार्य किया, वह उन्हें भी पता नहीं है लेकिन जब हम दूसरे रूप में उनके सामने आए तो वह दंग रह गए, यह कैसे हो गया? यह क्या हो गया और वह कोई और नहीं, वह हम ही होते हैं।

समान क्रिया करा सकती है पुण्य या पाप का बन्ध, उद्देश्य मात्र होता है कारण

उसके लिए यहाँ कहा जा रहा है...यह सब नट के समान काम चलता है। नट जानते हो? किसी भी तरह से वह कोई भी तरह का आकर्षण आपके सामने पैदा करके, आपके लिए दिखा करके इतनी वाहवाही लूट लेता है कि आपको लगे कि भाई! बहुत ही ज्यादा wonderful काम है यह तो, बहुत ही ज्यादा amazing चीज है, इसको हम सोच भी नहीं सकते। एक रस्सी यहाँ से लेकर वहाँ तक बँधी हुई है, नीचे कोई भी support नहीं है और अगर कहा जाए कि बीच में खाई है तो भी कोई बड़ी बात नहीं है। उस पर वह नट चलता है और चलते हुए दुनिया को दंग करने की एक तरकीब सामने ले आता है। उसी के साथ में जब वह अपना किसी भी तरह से, फिर अलग-अलग तरह से रूप बदल-बदल करके आपके सामने वह फिर से आपको प्रसन्न करता है, खुश करता है तो वह सब कुछ देखते हुए, देखने वालों को तो खुशी मिलती है लेकिन करने वालों के उद्देश्य अगर केवल दूसरों को दिखाने के होते हैं तो मुझे ऐसा लगता है...यह कर्म भी हमारे लिए बहुत दुःखदायी कर्म फल देने के कारण बन जाते हैं। वही नृत्य, वही क्रिया आपके लिए पुण्य बन्ध का भी कारण हो सकती है और वही नृत्य, वही क्रिया आपके लिए पाप बन्ध का भी कारण हो सकती है।

शरीर की रचना, नाम कर्म का कार्य

पाप का बन्ध करने के लिए आचार्यों ने कहा...योगों की वक्रता, यह शरीर के अन्दर आने वाली वक्रतायें जो हैं यह अशुभ नाम कर्म के बन्ध का कारण हैं, यह सूत्र में लिखा है। **‘योग वक्रता विसंवाद’** यह अशुभ नामकर्म, योगों की वक्रता क्या वस्तु है? मन-वचन-काय इतने कुटिल हैं, इतने विकृत रूप में हम सामने ला रहे हैं कि उनके कारण से हमारे लिए वह अशुभ नाम कर्म का बन्ध भी हो सकता है, शास्त्र में लिखा है। नाम कर्म का कार्य क्या होता है, जानते हो? शरीर को बनाना। यह काम कौन करता है? नाम कर्म। किसी भी तरह की शरीर की रचना है, यह कार्य कौन करता है? नाम कर्म। नाम कर्म का कार्य क्या हुआ? शरीर को, अंग-उपांगों को बनाना। अब अगर अंग-उपांग सही नहीं बन पाए, उनमें वह सीधापन नहीं आ पाया, उनमें वह टेढ़ापन रह गया तो यह टेढ़ापन कहाँ से आया?

योग वक्रता, अशुभ नाम कर्म का कारण

योग वक्रता यह सूत्र कह रहा है और योगों की वक्रता का मतलब क्या है? जब हम अपने शरीर को, अंग-उपांगों को इतने कुटिल ढंग से घुमाएँ, इतने कुटिल ढंग से उसको वक्र बनाएँ कि सामने वाला देख कर आपकी प्रशंसा करने लग जाए तो आपने प्रशंसा तो लूट ली लेकिन हुआ क्या? अगर कहीं कर्म बन्ध हो गया तो अगले जन्म में शरीर तो मिलेगा लेकिन ऐसा कुटिल शरीर मिलेगा कि इसे देखकर लोग अब प्रशंसा नहीं करेंगे, अब आपसे दूर भागेंगे। क्योंकि आपने वह कर्म का जो फल था, वह प्रशंसा के रूप में उसी जन्म में लूट लिया, उसको खा लिया। आपका पुण्य तो खाली हो गया, आपकी कुटिल क्रियाओं के साथ में वह कर्म का बन्ध हो गया और उस कर्म के फल से जब आपके लिए शरीर मिला तो शरीर तो मिला, मनुष्य तो बने, स्त्री या पुरुष का देह तो मिला लेकिन कहीं उँगलियों में टेढ़ापन, कहीं बाहों में टेढ़ापन, कहीं पैरों में टेढ़ापन, कहीं गर्दन में टेढ़ापन, यह तरह-तरह के टेढ़ेपन कहाँ से आ गए? यह टेढ़ापन कहाँ से आ

गया? यह टेढ़ापन आने का मतलब है कि यह हमने जो किया है, उसका हम फल देख रहे हैं। जो किया है उसी का फल है और जो किया है वह कहाँ बैठ गया है? वह हमारी आत्मा में बैठ गया है।

केवल उद्देश्य मात्र निर्धारित करता है- शुभ-अशुभ कर्म का बन्ध

आज मैं सावधान करना चाहता हूँ उन बच्चों को, जो बच्चे केवल mobile को देख-देख करके अनेक तरह के, इस तरह के नृत्यों को देख-देख कर, अपने शरीर में तरह-तरह घुमाव लाने की कोशिश करते हैं। वह अगर कोई आपको कला सीखने की दृष्टि है तो कला सीख लेना अलग बात है। मैं फिर कह रहा हूँ कि जो भी कर्म के बन्ध होते हैं, अपने उद्देश्यों के आधार पर होते हैं। अगर हमारा उद्देश्य कला सीखना है तो उद्देश्य पवित्र है और अगर हमारा उद्देश्य अपने शरीर से दूसरों को लुभाना है तो उद्देश्य अपवित्र है। अपवित्र उद्देश्य के साथ में शरीर की चेष्टाएँ होंगी, इस तरह की कलाएँ दिखाई जाएँगी तो नियम से ऐसे कर्म उस आत्मा में निविष्ट कर जाएँगे। जब फल मिलेगा तो आप दंग रह जाएँगे यह क्या हो गया? जो बच्चे जन्म के साथ में इस तरह से, आपने देखा होगा, आँख-नाक वैसे तो सबके पास होते हैं लेकिन फिर भी नाक की भी shape सबकी एक जैसी नहीं होती, आँख की भी shape-size सबकी एक जैसी नहीं होती। जो कुछ भी मिलता है वह अच्छा है, या बुरा है वह किससे मिलता है? यह सब हम इस जन्म में निविष्ट कर लेते हैं इसलिए पिछले जन्म में जो था, वह तो अब हमारे लिए ठीक है, उस पर तो हमारा कोई जोर है नहीं है अब। जो हो चुका, वह हो चुका। लेकिन इस जन्म में हम जो कुछ करें तो वह सावधानी के साथ करें कि हमारे लिए इस जन्म में कोई ऐसे कर्म हमारे अन्दर न बैठ जाएँ जो हमें आगे किसी रूप में विकृत बना दे।

कृत चेष्टाएँ होती हैं- विकलांगता का कारण

कभी आपने ऐसे भी बच्चों को देखा होगा, जिनकी केवल एक आँख काम करती है, एक आँख बन्द रहती है। मैं किसी की बुराई नहीं कर रहा। आप कर्म फलों को देखकर कर्म का अनुमान लगाना सीखो। मैं आपको यह बताना चाह रहा हूँ कि इस ग्रन्थ में?...अब मैं क्या करूँ, ज्ञान होता नहीं है तो भी मुझे ज्ञान दिख जाता है। वैसे मैं कह रहा था इसमें कुछ ज्ञान नहीं है लेकिन इसमें वह ज्ञान है, जो ज्ञान हमें भावनाओं से जोड़ रहा है। अपने कर्मों को निविष्ट कर लिया हमने अपनी आत्मा में और उसी के कारण से 'कयचिट्ठो', वह कृत चेष्टाएँ, जो चेष्टाएँ की जा रही हैं वह उसी के कारण से हो रही हैं, यह ज्ञान इसके अन्दर है। अर्थात् अगर किसी की एक आँख है, एक आँख छोटी है या बड़ी है, एक आँख बन्द है, एक आँख खुली है। आप क्या समझते हो? इसको किसी बीमारी के कारण ऐसा हो गया, वह बीमारी भी अगर हुई तो किस कारण से हुई?

आत्मा ही कर्ता, आत्मा ही भोक्ता

हमारी दृष्टि थोड़ी सी कर्म की ओर जानी चाहिए। उसने अपने इस जन्म में अगर उसे कुछ याद नहीं है तो कोई बात नहीं लेकिन पिछले जन्म में उसने कुछ ऐसा कृत्य किया, एक आँख का उसने ऐसा दुरुपयोग किया कि वह एक आँख बन्द हमेशा के लिए अपनी ही चेष्टाओं से हो गई। यह समझ आती है बात आपको?

अन्यथा यह काम कौन करेगा? जब सबको दो आँखें मिली हैं, सबकी आँखें खुलती हैं तो उसकी दो आँखें क्यों नहीं खुल रही हैं? आँखें तो मिली दोनों लेकिन खुलती एक है, एक बन्द है। बोलो क्या करोगे अब? कोई भी डॉक्टर उसको खोलने में समर्थ नहीं है, कोई भी operation उसके लिए सुधार नहीं सकता है, कुछ नहीं कर सकता है। बताओ? अब आप क्या करोगे, यह कैसे हुआ? इसके पीछे क्या कारण है? science क्या बोलेगा इसके लिए? क्या reason है? वह कहेगा कुछ hereditary होगा तो वह कहता है वह भी नहीं है। घर में सब लोग अच्छे हैं, genetic कुछ नहीं है, माता-पिता अच्छे हैं, सुन्दर हैं, बच्चा ऐसा पैदा हो गया। क्या करोगे? किसका दोष है? बच्चे का दोष है। अब अगर वह बच्चा भी अपने को बच्चा जैसा दिख रहा है और बच्चे को क्या दोष दोगे? उसको तो देख करके अपने को दया भाव आएगा, उसकी मासूमियत को देख करके अपने को दया उत्पन्न होगी कि यह इसके साथ क्या हो रहा है, कैसे हो गया? दोष उस बच्चे का नहीं है क्योंकि बच्चा तो आपको बाहरी रूप में दिखाई दे रहा है। दोष उस आत्मा के भीतर जो बन्धे हुए कर्म हैं, उसका है और वह बन्ध किसने किया? वह बन्ध भी उसी आत्मा ने किया। अपने पिछले जन्म में उस आत्मा ने ऐसे कर्म का बन्ध कर लिया, उस कर्म के फल से उसको इस तरह का शरीर प्राप्त हो गया, चेष्टाएँ ऐसी प्राप्त हो गईं।

शरीर का लचीलापन, पुण्य कर्म का फल

आप देखो कि हमें अपने शरीर के माध्यम से अगर कुछ अच्छा करने को मिला है तो हम अच्छा तभी कर सकते हैं जब हमारे उद्देश्य अच्छे हो। इसलिए यह बच्चों को सिखाना चाहिए कि बच्चों, कोई बात नहीं, हमारे जीवन में अगर हमें अच्छा शरीर मिला, फुर्ती मिली, flexible body मिली हम उसको किसी भी तरह से, कहीं से भी rotate कर पाएँ, यह सब पुण्य के उदय से मिलती है...नहीं तो हर कोई नहीं कर सकता। अगर आपने वह कर ली, कई लोग तो करने की चेष्टा करेंगे तो उनकी कई बार हड्डी भी break हो जाती है। हर कोई नहीं कर सकता। body की flexibility होना अपने आप में एक अलग चीज है और यह सबको नहीं मिलती। सबके अपने-अपने पुण्य कर्म से उनको मिलती है, जिनको मिलती है। इस बात को आप इस तरह से समझ सकोगे कि अगर आपके सामने मानो कोई आसन लगाने को कहे तो आप आसन तभी लगा पाओगे जब आपकी body में flexibility होगी। कौन से आसन? आपसे कहा जाए... दोनों पैरों को सीधा फैलाओ और अपने पैरों के अँगूठों को अपने हाथ से पकड़ कर के अपने माथे को अपने घुटनों पर रखो...**उत्तान पादासन**। अगर आपकी कमर में flexibility होगी तो लगा पाओगे नहीं तो लगाने की चेष्टा करोगे तो कमर में disc slip हो जाएगी। तरह-तरह के आसन होते हैं। मानो कि आप एक **बद्ध पद्मासन** होता है...दोनों हाथ-पैरों को आपने एक पद्मासन के रूप में बान्ध कर रख लिया और अपने दोनों हाथों को पीछे ऐसे अलग-अलग ले जाकर के और दोनों घुटनों को पकड़ना। उल्टे रूप में, उल्टे हाथ से, दोनों फँसा करके, करके देखना! उससे समझना कि आपकी body flexibility है कि नहीं है। कुछ भी पकड़ नहीं आएगा, कमर तक नहीं पहुँचेगा, बड़ी कमर वाले तो कभी कर ही नहीं सकते। आपको अपनी body को flexible बनाने की कोशिश तो करना कि body में tightness न आए। जितनी body flexible रहेगी उतने उसके अन्दर movement अच्छा होगा, movement अच्छा होगा तो वह energetic रहेगी और body की flexibility होने का मतलब है कि वह अपने आप में बिल्कुल स्वस्थ है। उसके अंग-उपांग कहीं पर भी उसको परेशान नहीं कर रहे हैं और वह कर पाता है। इस तरह की कोई

भी क्रिया जैसे कि एक **अर्ध मत्सेंद्रासन** होता है अब आप देख लेना, कैसा होता है?

कुटिल उद्देश्य से बन्धता है अशुभ कर्म

यह वही लोग कर पाएँगे जिनकी कमर कहीं पर भी किसी भी angle पर rotate कर जाए। लेकिन अगर आप इन चीजों को करने के बावजूद भी यह चीज किस लिए? अपने लिए, अपने स्वास्थ्य के लिए, अपने को अच्छा बनाए रखने के लिए, यह उद्देश्य तो ठीक है। लेकिन अगर इसी को दिखा कर हम पैसा कमाने लग गए, इसी को दिखा कर हम ताली बजवाने लग गए तो मुझे लगता है... यह अशुभ नाम कर्म के बन्ध का कारण बन जाता है। आप लोगों के लिए एक नया ज्ञान दे रहा हूँ, एक नया आपके सामने भाव आ रहा है। इस भाव को लोग समझ पाएँगे जिन्होंने थोड़ा सा यह कर्म सिद्धान्त पढ़ा हो या नहीं भी पढ़ा हो तो इतना तो समझ में आ ही रहा है कि जैसे हम कर्म की चेष्टा अभी कर रहे हैं, यह चेष्टाएँ निष्फल नहीं होती हैं। यह चेष्टाएँ हमें फल देती हैं और इन्हीं चेष्टाओं के कारण से अगर हमारी चेष्टाओं में कुटिलता है तो वह कुटिलता ही हमारे लिए अशुभ नाम कर्म के बन्ध का कारण हो जाती है। अब यह शरीर तो हमारे लिए शुभ नाम कर्म के कारण से शुभ मिला लेकिन इस शरीर को प्राप्त करके जब हमने चेष्टाएँ कुटिल की तो उन कुटिल चेष्टाओं के कारण से जब अगला शरीर मिलेगा तो मुश्किल खड़ी होने की है। समझा पाओगे बच्चों को? बच्चों को कर्म सिद्धान्त समझ आ रहा है न?

यथा चेष्टा तथा कर्म बन्ध

आज हम जैसी कुटिल चेष्टाएँ करेंगे वैसी ही कुटिल चेष्टाओं से अगर हमारे लिए अशुभ नाम कर्म के बन्ध हो गए तो हमें अगले जन्म में अशुभ शरीर की प्राप्ति हो सकती है। चेष्टाओं की कुटिलता क्या होती है? यह आप अच्छे ढंग से समझ सकते हो, यह आपके mobile में भरा पड़ा है। कुटिल चेष्टाओं से अपने आप को बचाने की कोशिश करो। अशुभ नाम कर्म ही शरीर को अशुभ बनाएगा और अशुभ नाम कर्म के बन्ध का कारण क्या बताया? योगों की वक्रता। इस पर ध्यान दो, यह मैं पूरा सैद्धान्तिक तरीके से बोल रहा हूँ। यह कर्म और कर्म के फल का अनुमान लगाने के लिए इस सिद्धान्त को हमने सामने रखा है कि अगर हमें आज कोई भी चेहरा, कोई भी शरीर विकृत रूप में हमारे सामने आता है तो उसमें इस जन्म का उसका कोई दोष नहीं है। उस आत्मा ने पिछले जन्म में जरूर कुछ ऐसे कुटिल कर्मों का बन्ध किया अपनी कुटिल चेष्टाओं से, जो उस आत्मा में निविष्ट हो गई और इस जन्म में अब उसको फल देने के लिए आ गई। अब उस फल से कोई भी इंकार नहीं कर सकता। हमें ऐसे जीवों को देख कर यह विचार जरूर कर लेना चाहिए कि देखो! किस-किस तरह से कर्मों के फल जीवों को भोगने पड़ जाते हैं।

अशुभ कर्म का फल दुखदायी, परिवार के लिए व समाज के लिए

परिवार के कर्म अलग चीज हो गई, देखो! परिवार के लिए तो क्या है? एक इतना ही हुआ कि भाई देखो आपको दुख मिला। आप जैसा चाह रहे थे, समाज के परिपेक्ष में, आपके लिए अनुकूल नहीं है, घर के परिपेक्ष में वह आपके लिए अनुकूल नहीं है। एक दुःख मिला, दुःख मिलना अलग बात है। आपका कर्म

गाथा: 61

इस जीव ने अनंतबार नरकों में जन्म लेकर भयंकर वेदनाओं को सहा है

णरएसु वेयणाओ, अणोवमाओ असाय-बहुलाओ।

रे जीव! तए पत्ता, अणंतखुत्तो बहुविहाओ ॥61॥

अन्वयार्थ- (रे जीव!) हे जीव! (तए) तेरे द्वारा (णरएसु) नरकों में (अणोवमाओ-असाय-बहुलाओ बहु-विहाओ वेयणाओ) जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती ऐसी 'तथा' असाता की, बहुलता है जिसमें ऐसी बहुत, प्रकार की, वेदनाओं को (अणंतखुत्तो) अनंतबार (पत्ता) प्राप्त किया गया है ॥61॥

वेदना, कर्म फल का परिपाक

इसलिए आचार्य कहते हैं...जो कुछ भी हम यहाँ भोग रहे हैं, वह सब किससे? कर्म के फल से। अब इतना ध्यान रख कर आप जान लेना। नरकों में भी गाथा 61 में लिखा है कि नरकों में वेदनायें मिलती हैं। असाता की बहुलता वाली वेदनायें होती हैं और इतनी वेदनाएँ हैं कि उसकी कोई उपमा नहीं है- **‘अणोवमाओ’** और यह जीव को प्राप्त होती है। कितनी बार? अनन्त बार होती हैं। बहुत प्रकार की वह वेदनायें वहाँ पर सहन करता है यह वेदनायें नरक में जाकर कैसे सहन करेगा? यहाँ पर उसके लिए वह कारण है। मानो अगर यहाँ पर हमने किसी को शरीर में चाकू गोदे हैं तो अब आपके लिए वह कर्म जो यहाँ पर हो रहा है, यह कर्म यह कर्म नहीं है। यह कर्म जो हमारी आत्मा में बन्ध रहा है, अदृश्य कर्म वह अलग है। यह कर्म तो आपका शरीर छूटने पर छूट गया लेकिन जो कर्म यह करते हुए आत्मा में जो कर्म बैठ गया, आत्मा में जो कर्म बन्ध गया, वह आत्मा को जब कर्म नरक में ले जायेगा, तब आपके अन्दर भी ऐसे ही चाकू गोदे जायेंगे। वह चाहे नरक में गोदे जाएँ, चाहे जिस पर्याय में गोदे जाएँ। अगर आपने किसी पशु के लिए गोदा है तो पशु पर्याय में भी मिल सकता है, आपने मनुष्य के लिए गोदा है तो नरक पर्याय में भी मिल सकता है। जैसा आप कर्म कर रहे हैं, वह कर्म आपकी आत्मा में बैठ रहा है, यूँ समझे आप। वह जो कर्म है वह अदृश्य है, वह आपकी आत्मा में इस लोक के बाद, परलोक में भी आपके सामने होगा लेकिन वह कर्म नहीं होगा कर्म का फल होगा।

जैसा कर्म वैसा फल - कर्म सिद्धान्त

आचार्य कहते हैं...नरकों में जो वेदनायें भोगनी पड़ रही हैं, उसका कारण क्या? कोई हमें अग्नि में डाल रहा है, कोई हमारे टुकड़े-टुकड़े कर रहा है, कोई हमें तला रहा है, कढ़ाओं में। तुमने यहाँ पर पशुओं को मारा, आदमियों को मारा-काटा, उनको भी कढ़ाओं में तला, ये माँस भक्षी लोग जो माँस भक्षण करते हैं। पशुओं

[illegible]

गाथा: 62

इस जीव ने देव और मनुष्य पर्यायों में भी अनेकों दुःखों को सहा है

देवत्ते मणुअत्ते, पराभिओगत्तणं उवगएणं।
भीसण-दुहं बहु-विहं, अणंतखुत्तो समणुभूयं ॥62॥

अन्वयार्थ- 'इस जीव ने' (देवत्ते) देवपने में 'और' (मणुअत्ते) मनुष्यपने में 'भी' (पराभिओगत्तणं उवगएणं) पराधीनता की, प्राप्ति के कारण (बहु-विहं भीसण-दुहं) बहुत, प्रकार वाले, भीषण, दुःखों को (अणंत-खुत्तो) अनंतबार (सं-अणुभूयं) गहराई से, अनुभव 'किया है' ॥62॥

बन्धन का जीवन

अगली गाथा में कहते हैं 'देवत्ते मणुअत्ते' देव पने को भी प्राप्त कर लिया, मनुष्यपने को भी प्राप्त कर लिया तो भी 'पराभिओगत्तणं' को प्राप्त किया अर्थात् पराश्रिता को प्राप्त किया। कितने ही लोग गुलामी की जिन्दगी जीते हैं बहुत ज्यादा दूसरे के pressure में, बहुत कठिनता से अपना जीवन निकालते हैं और इस तरह से बन्धनों में पड़कर, बन्धक बनकर भी जीवन निकालते हैं। दुनिया में देख लो तमाम तरह के युद्ध हो रहे हैं, कितने लोगों को बन्धक बनाया जाता है, कितने लोगों की kidnapping की जाती है, कितने लोगों को कितना बुरा-गन्दा जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता है? आज अपने समाज के जो एक सभ्य समाज माना जाता है, इसकी कितने लड़के, कितनी लड़कियों को गायब कर दिया जाता है उन्हें पता नहीं रहता है, वे गुमशुदा की list ही अखबार में निकालते रहते हैं और उनका जीवन न जाने कहाँ से कहाँ तक नरक में पहुँच जाता है। जीते जी नरक में पहुँच जाता है। पता नहीं होता आपको? यह सब जो हो रहा है, होता है, इसके पीछे क्या है? अपना कर्म। अपना कर्म और वह कर्म किस समय पर फल दे? वह कर्म को पता है।

कर्म करने में सम्भलना ही अच्छे भविष्य की नींव

घनसौर में चातुर्मास हो रहा था, एक बच्चा 20 साल का अचानक से गायब हो गया। वह चातुर्मास में तो मिला नहीं, आज तक भी मिला नहीं है। उसको पता नहीं है कि उस बच्चे का आखिर हुआ तो क्या हुआ? 20 साल का बच्चा, आप सोचो, जैन समाज के बच्चे की बात कर रहा हूँ। यहाँ लोग बैठे हैं घनसौर के रिश्तेदार होंगे, जानते होंगे। आज तक उसका पता नहीं है, अच्छा-खासा लड़का, अच्छा business करता, सब कुछ बढ़िया, देखने में अच्छा लगने वाला। यह तो एक छोटी सी बात है, आजकल ये खबरें रोजाना, हर शहर में हो रही हैं। इसके पीछे कारण क्या है? अपना कर्म। इसलिए पिछला जो करके आए वह तो हम

देख रहे हैं। इस जन्म में अगर हमें कुछ अच्छा मिला है, तो कहीं शैतान मत बन जाना, अभिमान में मत आ जाना। इस जन्म में अगर हमने कुछ बुरा किया तो फिर हमारा future अन्धकारमय होगा। इसलिए देवपने को प्राप्त करके भी देवता लोग बहुत से ऐसे होते हैं जो उनके under में रहते हैं, उनके बन्धन में रहते हैं, उन्हें जैसा कहना है वैसा करना पड़ता है। ऐसे ही मनुष्यों में होता है। मनुष्यों को भी, कितने मनुष्यों को दूसरों के बन्धनों में रहना पड़ता है और तरह-तरह से torcher किया जाता है। सब कुछ सहते हैं, ऐसे भीषण दुःख को बहुत प्रकार, अनन्त बार इस जीव ने अनुभूत किया है। इसलिए हे जीव! कर्म करने में सम्भल जा... यह कहने का तात्पर्य है।

कुटिलता से बचे

अपने मन-वचन-काय को कुटिल मत बना, कौटिल्यों की नीति मत सीख। एक कौटिल्य नीति भी है, उसको सीखने की जरूरत नहीं है। आचार्य गुरुदेव के द्वारा लिखा हुआ 'सुनीति शतक' है उसको सीखने की जरूरत है। कुटिलतायें क्या सीखना? कुटिलतायें तो हम सीखते ही रहते हैं, बिना सीखे सीख जाते हैं। लोग कुटिलतायें सीख करके राजनीति में, धर्म में उसका उपयोग करके अपने आप को बहादुर और ज्ञानी मानते हैं, यह उनकी अज्ञानता होती है। इसलिए आचार्य कहते हैं... यह सब अपने कर्म जो हम आज कर रहे हैं, यह कुटिल कर्म हमें अगले जन्म में फल देंगे, इसलिए कुटिलता से बचो। शरीर अगर अगले जन्म में विकृत मिलेगा तो उसके पीछे कोई और कारण नहीं होगा, हमारे ही कुटिल भाव कारण होंगे, इसलिए अपने भावों की कुटिलता से बचो।

शरीर का दुरुपयोग करने से बन्धते हैं- अशुभ कर्म

दूसरों को धोखा देना, दूसरों को लुभाना, दूसरों के सामने इस तरह से अपने शरीर की प्रस्तुति करना कि लोग जो है उसे देख कर हमको बहुत like करे, उससे हमारा बहुत नाम हो जाए तो आप इस शरीर का इस तरह से अगर दुरुपयोग करेंगे तो अगले जन्म में फिर यह शरीर तो मिलेगा लेकिन फिर आपका दुरुपयोग हो चुका होगा। फिर वह देख कर के लोग आपकी हँसी करेंगे और वह हँसी फिर आपको सहन नहीं होगी क्योंकि वह कर्म आपने कब बाँध लिया? वह कर्म आपने जानबूझ करके इस अच्छी पर्याय को जब आपने प्राप्त की तब बाँध लिया। इसलिए अच्छे कुल के बच्चे, अच्छे कुल में जन्म हुए लिए हुए बच्चे, अच्छे कार्यों के साथ अच्छे संस्कारों के साथ जब आगे बढ़ते हैं तभी अपना इस जीवन में भी अच्छा कार्य करते हुए, अच्छा पुण्य अर्जित कर पाते हैं और अगले जीवन भी उनके सुरक्षित रह पाते हैं। अन्यथा आप देख रहे हो दुनिया में इतनी बुराइयाँ हैं, इतनी कुटिलताएँ हैं कि अगर उन कुटिलताओं को बच्चों के सामने रख दिया जाए तो बच्चे अपना मनः सन्तुलन खो देते हैं और उन कुटिलताओं के शिकार हो जाते हैं। इसलिए यह कुटिलताएँ, इन गाथाओं से समझना।

दया भाव, हितकारी भाव ही उज्ज्वल भविष्य का कारण

अगर कोई हमें बन्धक बना कर जीवन जीने को मजबूर कर रहा है, तो इसका मतलब है कि हमने पिछले

गाथा: 63

यह जीव अनेक दुःखों से सहित तिर्य्यचगति में भी
अनंतबार जन्मा और मरा है

तिरियगइं अणुपत्तो, भीम-महा-वेअणा अणेगविहा।
जम्मण-मरणरहट्टे, अणंतखुत्तो परिब्धमिओ ॥63॥

अन्वयार्थ- 'इस जीव ने' (अणेग-विहा भीम-महा-वेअणा) अनेक, प्रकार की, भयंकर, महान्, वेदना वाली (तिरियगइं) तिर्य्यचगति को (अणुपत्तो) बार-बार प्राप्त किया है 'तथा' (जम्मण-मरण-अरहट्टे) जन्म और मरणरूपी अरहट/रहट यानी घटियंत्र में (अणंत-खुत्तो) अनंतबार (परिब्धमिओ) परिभ्रमण 'किया है' ॥63॥



वैराग्य शतक एक अज्ञात कृतिक ग्रन्थ है, जिसके माध्यम से सभी संसारी सामान्य जीवों के लिए एक सरल उद्बोधन प्राप्त हो रहा है। वह सरलता इसलिए है क्योंकि इस ग्रंथ में कोई सैद्धांतिक कठिन बातें नहीं हैं। वह सरल बातें हैं, जो सबके ध्यान में भी आती हैं और सबको कभी न कभी महसूस भी होती हैं। इन्हीं बातों को पढ़ते-पढ़ते हम 62 गाथाएँ पढ़ चुके हैं। आज 63, 64 और 65 वीं गाथा पढ़ते हैं...

तिरियगइं अणुपत्तो, भीम-महा-वेअणा अणेगविहा।
जम्मण-मरणरहट्टे, अणंतखुत्तो परिब्धमिओ ॥63॥

जावंति केवि दुक्खा, सारीरा माणसा व संसारे।
पत्तो अणंतखुत्तो, जीवो संसार-कंतारे ॥64॥

तण्हा अणंतखुत्तो, संसारे तारिसी तुमं आसी।
जं पसमेउं सव्वोदहीणमुदयं ण तिरीज्जा ॥65॥

ये गाथाएँ हैं, जिनके अर्थों में अगर हम देखते हैं तो कहते हैं कि इस जीव ने 'तिरियगइं' अर्थात् तिर्य्यच गति को प्राप्त करके 'भीम-महा-वेअणा अणेगविहा' अनेक प्रकार की बहुत भयंकर महावेदना प्राप्त कर ली है।

अर्थात् तिर्यच गति में यह जीव भ्रमण करके बहुत बड़ी-बड़ी वेदनाओं को झेल चुका है।

‘जम्मण-मरणरहट्टे’ यह जन्म-मरण की एक रहट चल रही है, जिसमें यह जीव अनन्त बार इस तरह से तिर्यच गति में अनेक तरह के जीव आदि बनकर परिभ्रमण कर चुका है।

सत्य है कि मनुष्य गति के जीव भी अनेक बार तिर्यच गति की वेदनाओं को सहन कर चुके हैं

इस जीव को सम्बोधन दिया जा रहा है जो मनुष्य भव में है और इस मनुष्य गति के जीव के लिए कहा जा रहा है कि आपने तिर्यच गति में अनेक बार अनेक प्रकार की वेदनाओं को सहा है। जब किसी मनुष्य के लिए ऐसा कहा जाता है तो हो सकता है कि उसे थोड़ी नाराजगी भी हो जाए कि हम तो यहाँ पर बहुत अच्छा मनुष्य जीवन लेकर बैठे हैं, एक बहुत प्रतिष्ठित जीवन लेकर बैठे हैं, बहुत अच्छी stage पर हैं और आप हमारी बिल्कुल ही एक गाथा में सारी धो देते हो। कई लोग नाराज भी हो जाते हैं कि हम तो मनुष्य बने हैं, बहुत अच्छा जीवन जी रहे हैं, बहुत ज्ञान अर्जित किया है, विवेक पूर्ण जीवन जी रहे हैं और हमारी समाज में प्रतिष्ठा है, मान-मर्यादा है और आप बच्चों के सामने, हमारी पत्नी के सामने, हम सब एक साथ बैठे होते हैं, माता-पिता भी बैठे होते हैं, सबके सामने, आप कुछ भी धो देते हो, बिल्कुल! पर यह धोना ही कहलाता है। चाहे बच्चे बैठें हो, पत्नी बैठी हो, पति बैठा हो, माता-पिता बैठे हो, सबके सामने सबके लिए यह उपदेश है। किसी एक को नहीं कहा जा रहा, जो एक को बुरा लगे। कोई एक दूसरे की तरफ देखे तो यह तब देखना होता है, जब किसी एक के लिए कहा जा रहा हो और दूसरा उसकी ओर देखे...भाई! देख ले तेरे लिए कहा जा रहा है तो ऐसा तो है नहीं है।

उपदेश सामान्य और विशेष परिस्थिति अनुकूल होते हैं

सबके लिए जब कहा जा रहा है तो कोई भी अगर एक दूसरे की तरफ देखेगा तो सबको समझ में आएगा कि भाई! यह सामान्य उपदेश है और सामान्य सबके लिए होता है। देखा जाए तो उपदेश सामान्य ही होता है। दो तरह के उपदेश होते हैं- एक सामान्य उपदेश और एक विशेष उपदेश। सामान्य उपदेश जो होता है, वह सामान्य दिनों में होता है और सामान्य जनों के लिए होता है और विशेष उपदेश विशेष दिनों में होता है और विशेष जनों के लिए होता है। दो दिन से कुछ विशेष भी चल रहा था और वह जो अलग-अलग जगहों से बाहर से बहुत सारे बच्चे आए थे, कोई CA करके आया था, कोई CAT का exam देकर आया था, कोई NET का exam निकाल कर आया, कोई NEET का निकाल कर आया, कोई CLAT का निकाल कर आया, जगह-जगह से बच्चे जो बाहर से आए, उन सबके लिए वह जो दो दिन थे, वे विशेष दिन थे। इन विशेष दिनों में जो प्रवचन हुए, जो उनके लिए ज्ञान दिया गया वह भी विशेष था। यह बात अलग है कि हमें दोनों तरह के role play करने पड़ते हैं- सामान्य भी और विशेष भी। जब आपके सामने बैठते हैं तो यह सामान्य दिनों का सामान्य जनों का काम चलता है तो इसमें सामान्य role play करना पड़ता है। जब उन विशेष रूप से विशेष बच्चों के सामने कुछ विशेष बात होती है तो उसमें कुछ विशेष ज्ञान भी देना होता है। कुल मिलाकर जो अनेकान्त धर्म कहता है, वह यही कहता है कि हम सामान्य और विशेष दोनों रूपों को धारण करें और धारण क्या करें? वह हमारे अन्दर रहते ही हैं। सामान्य और विशेष दोनों तरह के गुण धर्म हमारे अन्दर रहते हैं और इन्हीं दोनों गुण धर्मों के माध्यम से हमारा जीवन चलता है।

सामान्य व विशेष में भेद

आप देखते हो...रोजाना आप भोजन करते हो वह सामान्य भोजन होता है और कभी-कभी आपके घर में कोई उत्सव का दिन होता है तो फिर आप कुछ विशेष भोजन भी करते हो। विशेष हमेशा नहीं होता, सामान्य हमेशा नहीं होता, सामान्य-विशेष चलता रहता है। लेकिन जिन्हें सामान्य-विशेष की संयोजना एक साथ करनी होती है तो भी कभी-कभी लोग विचार कर लेते हैं कि भाई बहुत खा ली दाल-रोटी, बहुत खा लिया चावल और खिचड़ी, अब थोड़ा कुछ मीठा भी हो जाए तो वह विशेष हो जाता है। अर्थात् व्यक्ति सामान्य के साथ में विशेष को हमेशा पसंद करता है और इस तरह से ही जीवन का क्रम चलता रहता है। दिनों में भी देखते हैं तो जिन दिनों में कुछ विशेष आयोजन हो जाते हैं, वह विशेष दिन हो जाते हैं और फिर जिन दिनों में बीच में कोई आयोजन नहीं होते हैं वह सामान्य दिन होते हैं। आपके सामने यह जो उपदेश है, यह सामान्य रूप भी है और विशेष रूप भी है। सामान्य होता है, थोड़ा सा विशेष हमें भी बना देना पड़ता है क्योंकि केवल दाल रोटी खाते-खाते आप भी अघा जाओगे तो फिर कहोगे रोज-रोज वही दाल रोटी कैसे अच्छी लगेगी? इसलिए उसी दाल रोटी में से कुछ न कुछ ऐसा बना लिया जाता है जो आपको विशेष लगने लग जाए और विशेष क्या होता है? उसी दाल का थोड़ा वह परांठा type का बना देते हो और क्या बोलते हो? चीला तो चीला बन जाता है। उसी दाल की पकौड़ी बना देते हो तो पकौड़ी बन जाती है, पकौड़ा बना देते हो तो पकौड़ा बन जाता है। उसी दाल का किसी भी तरह का कोई गोल-गोल अप्पा बना दो, गप्पा बना दो वह सब बन जाता है। यह सब shape बदलते रहते हैं, कुछ- कुछ नई-नई चीजें बन भी जाती हैं लेकिन दाल की तो quality वही रहती है।

सामान्य उपदेश को भूमिका बनाकर विशेष बनाना

इसी तरह से आचार्य यहाँ उपदेश दे रहे हैं और वह उपदेश देखा जाए तो सामान्य ही होता है। जब हम समझते हैं, यह बात को जानते हैं कि यह आत्मा, यह जीव, पिछले जन्मों में अनेक-अनेक तरह के पर्यायों में, अनेक-अनेक तरह की गतियों में भ्रमण कर चुका है। यह बात हमको पता तो होती है और ऐसा भी होता है कि कहीं न कहीं हम लोगों ने चीज सुन भी रखी होती है। जब तक आपके लिए कभी कोई चीज सुनने में आई, आप उसे छोड़ देते हो, भूल जाते हो। लेकिन कुछ विशेष अवसरों पर अगर उसे याद दिलाई जाती है, तो थोड़ी सी उसकी भूमिका बनानी पड़ती है। क्योंकि एकदम से आपका mind इस बात को सुनने के लिए तत्पर नहीं होता कि यह बात हमारे लिए कहीं अच्छी लग रही हो। भला किसको अच्छी लगेगी अगर हम आपसे कहें कि हम पिछले जन्म में सब प्रकार के तिर्यच बन चुके हैं। बात गले उतरती है? और उन तिर्यचों में भी सब प्रकार की हम वेदना सह चुके हैं और वह वेदनाएँ छोटी-मोटी नहीं होती, महाभीम वेदनाएँ, भयंकर वेदनाएँ, हम सह चुके होते हैं। अनेक प्रकार की वेदनाएँ हम सह चुके होते हैं।

सहनशक्ति आत्मा में होती है न कि शरीर में

अर्थात् अगर हम यह देखें कि आत्मा की सहन शक्ति कितनी है? जैसा उस आत्मा के लिए किसी भी तरह का दुःख मिलता है, उसे किसी भी तरह की पीड़ा मिलती है, आत्मा आखिर सह तो लेती ही है। कष्ट होता है, चिल्लाता है लेकिन चिल्लाते हुए भी सहन कौन कर रहा होता है? आत्मा ही कर रहा होता है। हम दूसरे

को अगर देखे उस पीड़ा में तो लगता है कि कैसे सहन कर रहा होगा? लेकिन वही पीड़ा जब हमारे ऊपर भी आती है तो हम भी उसी तरह से सहन कर जाते हैं, जैसे दूसरा कर लेता है। दूसरे को देख कर लगता है कि यह पीड़ा बहुत बड़ी है, यह पीड़ा कैसे सहन कर रहा होगा? लेकिन जब वह पीड़ा खुद पर आ पड़ती है तो वह किसी न किसी तरह से उसको सहन कर लेता है। यह कहलाती है- सहन शक्ति। क्या बोलते हैं? यह सहन शक्ति है। अब यह सहने की शक्ति, शरीर की शक्ति नहीं होती है, यह आत्मा की शक्ति होती है। शरीर तो क्या सहन करेगा? शरीर को अगर सहन होता तो रोग होते ही क्यों? शरीर को अगर सहन होता तो उसके लिए बंधन में डाल कर उसी को पीड़ा हो जाती, आत्मा को पीड़ा होती क्यों? सहन शरीर नहीं करता, सहन कौन करता है? हमारा आत्मा करता है। सहनशक्ति शरीर में नहीं होती, सहनशक्ति आत्मा में होती है और उस सहन शक्ति के कारण से ही वह आत्मा बड़ी-बड़ी पीड़ाओं को, बड़े-बड़े दुःखों को सहन कर लेता है। मनुष्य जन्म में भी सहन कर लेता है, तिर्यच गति में भी सहन कर लेता है, यहाँ तक की नरक गति में भी सहन कर लेता है।

तिर्यच गति की वेदनाएँ

पिछले दिनों में नरक की बात बताई थी, अब यह बात बढ़ते-बढ़ते आगे निकल कर तिर्यच गति की आ गई। आप देखो तिर्यच गति में भी कितनी पीड़ाएँ, अगर हम उन जानवरों को सामने देख ले तो हमारे अन्दर विचलितपना आ जाए, हम अपना धैर्य खो बैठे कि इतना दुःख! इतना दुःख! कितने तरह से उनको पीड़ित किया जाता है, कितने तरह से उनको बाँधा जाता है, कितनी तरह से उनको बंधनों में रखकर, उन्हें मरण करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। यह तमाम तरह की भयंकर पीड़ाएँ, जिनके कारण से उनके प्राण कभी भी निकल सकते हैं और वह निकलते हुए देखते रहते हैं। उनके पास भी मन होता है। एक साथ पचास, सौ कोई भी जानवर बंधे पड़े हैं और एक-एक करके सबको मारा जा रहा हो और वह देख रहा हो कि यह इसको मारा जा रहा है, इसके ऊपर यह छुरी चला दी गई, इसके ऊपर तलवार चला दी गई, इसको यहाँ से काट दिया गया, इसको यहाँ से काट दिया गया, यह चीख रहा है। लेकिन जिसका नंबर नहीं आया वह सब देख रहा हो, आप सोचो उसके ऊपर क्या गुजर रही होगी? उसे यह भी लग रहा है कि अब यह नंबर धीरे-धीरे मेरे ऊपर भी आने वाला है। क्योंकि जहाँ पर एक साथ सब बंधे हुए होते हैं, सबके कत्ल एक-एक करके हो रहे होते हैं और वह देख भी रहा होता है, उस समय पर उसके मन में कितना भय होता है? वह जानवर कितना वह भीतर से डरा हुआ, दुःखी हुआ होता है, जब वह देख रहा हो कि अब यह बारी मेरी आने वाली है, मेरी गर्दन पर अब छुरी चलने वाली है और वह सब देख रहा है सामने यह सब एक-एक करके यह सब मेरे ही जैसे लोग थे, सब कट गए, सब मर गए।

पशुओं में इन्द्रियाँ मनुष्य से अधिक सशक्त होती हैं

आपको ऐसा लगता है कि जैसे पशु को कुछ समझ नहीं आता, उन्हें कुछ ज्ञान नहीं होता। लेकिन उन्हें हम लोगों से ज्यादा ज्ञान होता है। उनकी इन्द्रियाँ हम लोगों से ज्यादा सशक्त होती हैं, उनका मन हम लोगों से ज्यादा चीजों को जो आगे होने वाली है, उन्हें भाँप लेता है और हमसे ज्यादा उनकी इन्द्रियाँ काम करती हैं। इस कारण से वह अपने मन में समझ लेते हैं कि यह जो हमारे साथ में थे, आपको देखने में सब पशु एक

जैसे लगेंगे, सभी भैंस देखोगे आपको सब एक जैसी लगेंगी, सब गाय देखोगे आपको सब एक जैसी लगेंगी। लेकिन गाय को पता होता है कि यह कौन गाय कब की है? कहाँ से आई है? कैसी है? कौन सी है? वह सब एक दूसरे को देख रहे होते हैं। लेकिन जब अपने समक्ष मरण होता हुआ देखता है वह जानवर और उसका भी जब नंबर आता है तो आप समझ सकते हो कि वह पीड़ा कितनी बढ़ चुकी होती है। भय, डर, भीतर से आक्रांत मन की स्थिति कितनी तीव्र हो चुकी होती है, जिसके कारण से वह जीव अपने प्राणों को त्याग तो देता है। लेकिन कितना तड़पता है, कितना व्याकुल होता है, कितना उसे उस पीड़ा को सहन करना पड़ता है, यह आप सोच सकते हो उन जानवरों की महा भयंकर वेदनाओं को देख कर। ये वेदनाएँ आपको आपके mobiles पर भी देखने को मिल सकती हैं। इन वेदनाओं को देख कर हमें लगता है कि देखो! इनके ऊपर कितना अत्याचार हो रहा है? कितनी पीड़ा यह सहन कर रहे हैं?

जीवों के प्रति दया भाव से परिणामों में परिवर्तन

लेकिन यहाँ आचार्य कहते हैं...ऐसी वेदनाएँ अपनी आत्मा भी सहन कर चुकी है। एक बार नहीं, दो बार नहीं, दस बार नहीं, यहाँ बस नहीं होता है। बस करो, बस करो, बहुत हो गया, बहुत हो गया, अब दुःख मत देना भगवन्! यहाँ कोई भगवान नहीं होता है। कुछ भी बताने वाला, न कोई भगवान के सामने की गई प्रार्थना कोई काम करती है। यहाँ पर कोई भगवान आपको न पशु बनाता है, न नारकी बनाता है, न भगवान के सामने की जाने वाली प्रार्थना से कोई बचाव होता है। बचाव होगा तो कैसे होगा? इस प्रकार का जब हम उपदेश सुनते हैं, हमारे ज्ञान में जब ये चीजें आने लग जाती हैं तो हमारे अन्दर के परिणाम दूसरे जीवों के प्रति दया के साथ जुड़ जाएँ, दयालु हो जाएँ और हमारे अन्दर जो यह भाव आता है कि नहीं ऐसा कुछ नहीं होता है, यह हमें सिर्फ डराने वाली बातें हैं। अगर बच्चों को बताया जाए तो बच्चे सबसे पहले क्या बोलेंगे? ये सब बातें हमें डराने के लिए किया जाता है ताकि हम धर्म करने लग जाएँ ताकि हम मन्दिर जाने लग जाएँ।

जो डर पाप से बचाए वह अच्छा है

लेकिन इन बातों में डराना नहीं होता है, यह बातें वास्तविक हैं। इन बातों को सुनने के बाद भी अगर कभी डर लग जाए और उसके कारण से भी धर्म में मन लग जाए तो भी आचार्य कहते हैं अच्छा है वह डर। वह डर बुरा नहीं है। कौन सा डर? मैं कभी पशु न बन जाऊँ, मैं कभी पक्षी न बन जाऊँ, मेरे को कभी ऐसे ही मुर्गा-मुर्गी बनकर कभी मरना न पड़ जाए। हे भगवन्! मेरी आत्मा कभी इस प्रकार की गतियों में न चली जाए! इस तरह का जो विचार अपने अन्दर अगर आता है तो वह डर भी बहुत अच्छा माना गया है। उस डर से यह नहीं होगा कि आप डर से सहम जाओगे या डर से कहीं दुबक कर बैठ जाओगे या कहीं किसी को देखोगे नहीं, ऐसा नहीं होगा। लेकिन वह डर आपको पाप करने से बचाएगा। आपके अन्दर राग की कमी लाएगा, कषाय की कमी लाएगा और उस कषाय की कमी के कारण से आपके परिणामों में एक मंदता आ जाएगी, कषाय की मंदता आ जाएगी, जिसके माध्यम से आपको संसार से भीति उत्पन्न होगी। यह कहा गया है...संसार से डरना। किससे डरना? संसार से डरना। अब संसार क्या चीज है? जो संसार हमारे सामने है, इस संसार से डरना। संसारी व्यक्ति से मत डरना लेकिन संसार से डरना। संसार का स्वरूप जानकर

अपने मन में विचार करना कि इस संसार के इस कार्य में, जन्म-मरण की इस रहट में, हर आत्मा कई बार इस तरह से तिर्यच पर्याय को प्राप्त होता है। अनन्त बार इस तरह की हमने वेदनाओं को सहन किया है और यह वेदना और कोई नहीं हमारी आत्मा भी सहन कर चुका है। अब आप उससे फायदा भी उठा सकते हो, उससे आप धर्म भी कर सकते हो और इस तरह की भावनाओं के माध्यम से आपके अन्दर एक आत्म शक्ति भी बढ़ सकती है।

सकारात्मक पहलू से सहनशीलता बढ़ती है

अगर हम इसके positive तरीके देखे तो, अगर हम इसके सकारात्मक पहलू देखे कि इस प्रकार के ज्ञान से हमें क्या मिलता है? हमारी सहनशीलता बढ़ती है। कैसे बढ़ती है? जैसे कोई बच्चा रो देता है और बच्चा कहीं गिर पड़ा हो, एकदम से चोट खा गया हो। वह बच्चा पहले भी इस तरह से गिरता रहा हो, चोट खाता रहा हो। आज वह बच्चा जब फिर गिर गया तो माँ ने उसे उठाया और कहने लगी...बेटा! बहुत ज्यादा नहीं लगी, इससे ज्यादा तो तेरे को बहुत पहले लग गई थी। जब तू छः महीने पहले गिरा था न, तब बहुत ज्यादा लग गई थी। जैसे ही माँ ने उस बच्चे को याद दिलाया कि छः महीने पहले जब तू गिरा था तब इससे भी ज्यादा चोट लगी थी, यह तो अभी बहुत बच गया, बाल-बाल बच गया तो क्या होगा? बताओ क्या होगा? माँ के इस प्रकार बोलने से बच्चे के दुःख में कमी आएगी। आएगी कि नहीं आएगी? और बच्चे को जो अभी दुःख होना था उसको सहन करने की शक्ति उसके अन्दर आ जाएगी। यह तरीका होता है कि नहीं?

आत्मा में बहुत सहन शक्ति होती है

ठीक ऐसे ही आचार्य हमें इस ज्ञान के उपदेश के माध्यम से हमें समझा रहे हैं...बेटा! आज तू छोटी-छोटी चीजें सहन नहीं कर पा रहा। इससे ज्यादा तो दुःख तो पशु पर्याय में जब तुझे बाँधा गया था, रोंदा गया था, तुझे काटा गया था, तूने सब सहन कर लिया था। आज तुझे छोटी-छोटी सी पीड़ा बहुत बड़ी दिखाई दे रही है, इससे बड़े-बड़े कष्ट तू पहले सहन कर चुका है। तेरी आत्मा में बहुत शक्ति है। इस सहन शक्ति को तू अपने अन्दर भाँप, अपने अन्दर देख। क्या होगा? बड़े बच्चों के अन्दर भी एक सहनशीलता आ जाएगी। आएगी कि नहीं? आप विचार करो! जब आपके सामने कोई कष्ट हो, शरीर में कोई रोग हो, पीड़ा हो और आपको उस समय पर कोई बता दे कि इससे भी ज्यादा पीड़ा आप उस नरक में या तिर्यच गति में सहन कर चुके हो तो आपको अगर विश्वास हो जाए कि इससे भी ज्यादा...? हाँ बेटा! इससे भी ज्यादा, यह तो कुछ भी नहीं है। यह तो पापा ने तेरे गाल में एक ही चांटा मारा और उस चांटे से न तेरे गाल पर कोई लकीर का निशान आया, न कुछ आया। जब तू बैल था तो तेरे ऊपर कितने कोड़े मारे जा रहे थे। बार-बार इतने कोड़े मारे गए, इतने कोड़े मारे गए, तेरे पीठ पर खून निकल आता था। बिल्कुल खून-खच्छर हो जाता था और फिर भी तू कुछ नहीं कह पाता था। क्योंकि तेरी गर्दन पीछे तक भी घूम नहीं सकती, मालिक को देख भी नहीं सकती। ऐसी बाँध दी गई थी और तूने सब कुछ सहन किया। जैसे वह चलाना चाहता था तू चलता था, वह दौड़ाना चाहता था तो तू दौड़ता था, वह तेरे ऊपर जितना भी बोझा ढोना चाहता था, तुझे ढोना पड़ता था। तू कुछ कह ही नहीं सकता था क्योंकि मालिक तेरे आगे नहीं रहता था, मालिक तेरे पीछे चलता था। सींग अगर तू मारना भी चाहे तो मारने के लिए कोई सामने नहीं मिलता था और तुझे सब कुछ वह सहन

करना पड़ा। तू कितना खून- खच्छर हो गया था, यह मैं देख रहा था। कौन? वैराग्य शतक को बनाने वाले आचार्य कह रहे हैं...मैं देख रहा था, तू उस समय कितना खून- खच्छर हो गया था लेकिन तेरे मुँह से न कोई आवाज निकलती थी, न कोई कराहट होती थी। तुझे पता था कि मेरी आवाज को कोई यहाँ सुनने वाला नहीं है। तू मन ही मन में रो लेता था, तेरी आँखों में आँसू तो आ जाते थे लेकिन उन आँसुओं को कोई देखने वाला होता नहीं था और आज पापा ने एक छोटा सा झापड़ मार दिया, थप्पड़ मार दिया, भाई ने एक थोड़ा सा थप्पड़ मार दिया तो तू आग बबूला होता है, मैं उसे छोड़ूँगा नहीं। तेरे दोस्त ने तेरी थोड़ी सी पिटाई कर दी तो तू आग बबूला होता है मैं उसको छोड़ूँगा नहीं। तेरे अन्दर बहुत सहन शक्ति है और इस सहनशक्ति के भाव के साथ मैं अगर तू आज भी अपने मन में भावना करेगा 'मेरे पास बहुत सहनशक्ति है' तो तू इन सब चीजों को भी भूल सकता है और इन सब चीजों को भी सहन करके दूसरों को क्षमा कर सकता है। यह सहनशक्ति बढ़ाने की बात है। इसलिए इस प्रकार के ज्ञान से हमें क्या मिलेगा ? हमारी सहनशक्ति बढ़ सकती है जब हम ऐसा विश्वास कर ले तो।

चिन्तन करें कि पूर्व पर्यायों में इससे भी ज्यादा दुःख सहन किए हैं

आप देखते भी हो मनुष्यों में भी कितनी तरीके की पीड़ाएँ, कितने तरह के रोग हो जाते हैं और कितनी बुरी तरह से हम मनुष्यों को भी तड़पते हुए देखते हैं और उस समय पर आप उन्हें अगर कहीं यह उपदेश दे सको, कहीं समझा सको भाई! परेशान मत हो, दुःखी मत हो, इस तरह की पीड़ा, इससे भी ज्यादा पीड़ा, इससे भी बहुत ज्यादा पीड़ा, हमने भी सहन की, तुमने भी सहन की लेकिन अब इस समय पर परिणामों में शान्ति रखो, परिणामों में शान्ति रखो। दुःखी मत हो, आकुल-व्याकुल मत हो। अगर आपके थोड़े से सहलाने से, थोड़ा सा कहने से उसके परिणामों में शान्ति आ जाए तो यही इस उपदेश का सार है। अन्यथा इन उपदेशों का मतलब ही क्या? आप कहोगे कि हम तिर्यच बने हैं? आप कह रहे हो इसलिए मान ले रहे हैं, वैसे लगता नहीं महाराज हम कभी तिर्यच बने हो, कहीं से कहीं तक हम में तिर्यचों जैसे कोई संस्कार तो दिखाई दे ही नहीं रहे। अब संस्कार भी गिनाएँ कि तिर्यचों जैसे कैसे संस्कार होते हैं? तिर्यचों जैसे भी संस्कार अगर आपको देखने को मिलेंगे तो कैसे मिलेंगे बताओ? मान कर चलो जैसे कोई गाय है, गली में घूमती रहती है न? इस घर के सामने गई, वहाँ पर कुछ भी पड़ा था, थैली वगैरह, कुछ भी छिलके वगैरह, कुछ भी, वहाँ पर मुँह मारा उसने। कुछ मुँह में डाला, कुछ निकाला, थोड़ा सा फिर आगे बढ़ गई। फिर दूसरे के घर के सामने गई, फिर वहाँ कुछ घूरे पर कुछ मिल गया, कुछ वहाँ से उसने उठा लिया, कुछ वहाँ से खा लिया, थोड़ा सा वहाँ पर भी उसने कुछ बिखेर दिया, फिर आगे बढ़ गई। वहाँ से वहाँ तक गई, तब तक भी उस के मुँह में कुछ रखा हुआ है और वह चल रही है और चलते-चलते फिर उसको कुछ सामने दिख गया तो उसने वहाँ पर भी मुँह मारा, वहाँ पर भी सूँघा, देखा कुछ अपने काम का है कि नहीं। उसे लगा कि इसमें कुछ भोजन के जैसा कुछ पदार्थ है, कुछ गंध आ रही है, उसने फिर उसको अपने अन्दर डाल लिया और दिन भर उस गाय का, उस पशु का यही काम चलता रहता है।

नियम अनुसार भोजन नहीं करना अर्थात् तिर्यचों के समान भोजन

अब आप कहते हो हम मनुष्य हैं, हम बहुत समझदार मनुष्य हैं महाराज! हमने बहुत बड़ा विकास कर लिया

है। हम computer के जमाने में पैदा हुए हैं। अब आप देखो कि हमारे अन्दर संस्कार कैसे हैं? अब मुझसे बुराई मत मान लेना। अब हम अपने आपके संस्कारों को पशुओं से थोड़ा सा compare करें तो हम समझ सकते हैं कि हमारे संस्कारों में कुछ पशुओं की गंध आती है कि नहीं आती? कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें देखा जाए तो घर से निकले... एक pouch छीला, मुँह में डाला। अपनी दुकान तक नहीं पहुँचे, बीच में एक पान की दुकान पड़ी, फिर वहाँ पर खड़े हो गए। फिर वहाँ पर जो पुराना मुँह में था उसको थूका, फिर नया मुँह में डाला फिर आगे बढ़े। फिर अगली दुकान पर पहुँचे अपनी दुकान पर बैठ गए, दुकान पर बैठने के बाद में थोड़ी सी ग्राहकी की और फिर कुछ पान आ गया, फिर कोई सुपाड़ी आ गई, फिर कुछ pouch आ गया, फिर कोई व्यक्ति आ गया, फिर उसके सामने खोला। आधा उसको दिया, आधा हमने खाया, आधा फेंका, शुरू हो गए। चल रहा है... कभी मुँह में पान-सुपाड़ी चाहिए, कभी रजनीगंधा चाहिए, कभी तलब चाहिए, कभी कुछ rajshree चाहिए, सब चाहिए और बीच-बीच में फिर कुछ चाय भी चाहिए, कुछ bread भी चाहिए, कभी biscuit भी चाहिए, कभी pizza भी चाहिए, कभी burger भी चाहिए, सब चाहिए। सुबह का भोजन अलग चाहिए, शाम का भोजन अलग चाहिए, सब चाहिए। Breakfast, dinner सब चाहिए। क्या चल रहा है? नहीं महाराज! हम पशु की तरह थोड़ी न खाते हैं। हम तो cup-plate में चाय पीते हैं, हम तो यह डोसा-वोसा खाने लगे न लोग? हाथ से नहीं खाया जाता डोसा। उसमें काँटा लगाया जाता है, चिमटी लगाई जाती है तब वह काँटे से, चिमटी से बना करके लिया जाता है, जैसे चिमटी में आधा लटक रहा हो अपने मुँह में डाला जाता है, वह भी एक खाने का style है। क्या कर रहे हैं हम? हम तो महाराज बहुत पढ़े-लिखे मनुष्य हैं, सभ्य मनुष्य हैं, इसलिए काँटे का, चिमटी का, चम्मच का, कप-प्लेट का प्रयोग कर रहे हैं। जानवर तो इन चीजों का प्रयोग करना जानते नहीं तो आप हमको जानवर से कैसे compare कर सकते हैं? अब आप समझ सकते हो कैसे compare किया जा सकता है? जानवर भी खा रहा है, उसके भी खाने का कोई भी नियम नहीं है, कोई भी खाने का उसका कोई भी ढंग नहीं है, वह जैसे भी मिलता है, खा लेता है। आप भी क्या करते हैं? जो भी आपके सामने आ जाता है... भाई! आज pouch कहाँ गया? आज सिगरेट कहाँ गई? उसने निकाली, आधी तुमको पिलाई, आधी खुद पी। आधा उसने खाया, आधा तुमने खाया, फिर एक आया, फिर दूसरा आया और यह क्रम दिन भर दुकान पर बैठे-बैठे चलता रहता है। दुकान से घर तक आओगे, घर से दुकान तक जाओगे, कहीं से कहीं तक जाओगे, रास्ते में जितने भी जगह पर आपका मुँह खुल सकता है, आप खोल लेते हो, जितनी जगह पर आपको थूकना होता है, आप थूक लेते हो और यह क्रम चलता रहता है। अब बताओ जानवर के क्रम में और अपने इस क्रम में क्या बड़ा अन्तर है?

काँटे और चिमटी से खाने की पद्धति माँसाहार करने वाले जीवों की पद्धति

भले ही जानवर के पास में खाने के लिए वह चिमटी न हो, काँटे न हो लेकिन वह भी खा तो लेता ही है न? और वह खाते हुए भी कुछ न कुछ उसके मुँह में लटका रह जाता है, कुछ न कुछ वह भीतर कर लेता है, खाता तो वैसे ही है। आप भी सोचे, हमारे संस्कारों में क्या है? जब कभी भी आदमी को खाने के लिए कहा जाता था तो उससे कहा जाता था... अपने हाथों से खाओ। किससे खाओ? हाथों से खाओ। चम्मच की चीज हो तो चम्मच से खा लो कोई बात नहीं। लेकिन ये काँटे और चिमटी से खाने की पद्धति कहाँ से आ गई? यह पद्धति कहाँ से आ गई बताओ? यह कोई style नहीं है। यह सब पद्धतियाँ जो आपके सामने आई

हैं, अगर आप ध्यान से देखोगे तो मांसाहार करने वाले जीवों की style है ये सब।

भोजन के लिए कांटे, knife का प्रयोग करना पशु समान भोजन करना

चिकन बिरयानी खाने वाले लोगों को देखना कैसे खाते हैं? ये सब मांसाहारी लोग इस तरीके से चिमटियों से निकालना, चाकूओं से निकालना, इस तरीके से निकाल-निकाल कर खाने की जो पद्धति है, यही पद्धति शाकाहार में जोड़ी गई है। यह विदेशों से आई हुई इस तरीके की ये सब पद्धतियाँ, मांसाहारी लोगों से आई हुई ये पद्धतियाँ हैं। अब इस तरीके की जब यह पद्धति चल रही है तो आप सोचो कि उधर जानवर कोई भी चीज को खाता है, नोचता है, अपने नाखूनों से नोंच कर खा लेता है? इधर आप क्या कर रहे हो? इधर भी आप किसी न किसी तरीके के कोई knife से, किसी भी चीज से आप उसको नोंच रहे हो और ले रहे हो। संस्कारों को अगर देखना हो तो देख सकते हो। जानवरों के संस्कार आज भी मनुष्यों में दिखाई दे सकते हैं। बुरा नहीं मानना बस।

पिछले जन्म के कष्टों को स्मरण करने से सहनशक्ति आती है

जब आचार्य इस तरह की बातें लिखते हैं तो हमें ऐसा लगता है यह सब हमारा अतीत हो चुका है। हमें कुछ पता ही नहीं होता या हम वैसे होते ही नहीं हैं क्योंकि हम यहाँ पर बहुत अच्छे बने बैठे होते हैं। लेकिन जब हम अपने संस्कार देखेंगे तो हमें पता पड़ेगा कि हमारे संस्कारों में आज भी यह सब चीजें शामिल हैं, जो चीजें हम पशुओं के साथ होता हुआ देखते हैं। पशु जैसा करते हैं, हम वैसा आज भी करते हैं। यह संस्कार हमारे अन्दर रहे हो और इन संस्कारों के साथ-साथ अगर हमारे सामने कोई अच्छी चीज हो सकती है, तो इस तरह की गाथाओं के उपदेश से वह अच्छी चीज इतनी हो सकती है कि हम अपने अन्दर उस तरह की पर्यायों में जो कष्ट हमने सहन किए हैं, उन कष्टों को सहन करने की, सहनशीलता लाने की एक अगर भावना आ सकती है तो इस तरह के ज्ञान से आ सकती है। यह आचार्य यहाँ आपको पिछले जन्म के कष्टों को याद दिला रहे हैं, आपको दुःखी बनाने के लिए नहीं। किस लिए? आपको सहनशील बनाने के लिए। इसको कहते हैं- सहिष्णु, सहनशील होना, यह आज की बहुत बड़ी जरूरत है। इसको Tolerance power कहते हैं।

संयमित व व्यवस्थित भोजन सहनशक्ति बढ़ाने में सहायक

इससे आपके अन्दर की सहन शक्ति अगर बढ़ेगी तो कैसे बढ़ेगी बताओ? इस तरह का चिन्तन करोगे तो बढ़ेगी। मानो किसी बच्चे ने कहा कि महाराज! मुझे बार-बार भूख लगती है, मुझे बार-बार खाना पड़ता है, मेरा मन नहीं मानता। आप कह दो कि आधा घंटा मुँह बंद करके रख लो, एक घंटा मुँह बंद करके रख लो। आजकल के बच्चों की तो और बड़ी दिक्कत की काम है। उन्हें कैसे समझाया जाएगा? उनकी सहन शक्ति को कैसे बढ़ाया जाएगा? जब आप उन बच्चों को समझा सको...बेटा! ऐसा तो जानवर करते हैं, बार-बार खाना-पीना। एक तो current यहाँ लग सकता है। जो अच्छे बच्चे होते हैं, अच्छे मनुष्य होते हैं वह बार-बार हर समय पर नहीं खाते रहते। Time पर खाना, Time पर पीना। हम आदमी हैं, जानवर नहीं हैं।

बच्चा एक तो इस ज्ञान से समझ सकता है। दूसरा उसको समझाने का तरीका यह हो सकता है कि बेटा! देखो अगर बार-बार खाओगे तो तुम्हारे अन्दर सहनशीलता नहीं रह जाएगी। एक बार खाओ, दो बार खाओ, तीन बार खाओ लेकिन time पर खाओ, अच्छी तरह से बैठ कर खाओ। ऐसा नहीं है कि जानवर कहीं भी चलते-फिरते खाता रहता है, ऐसे तुम भी खड़े, चलते-फिरते, घूमते-घामते, अपने घरों में खाते-पीते रहते हो, यह जानवरों की तरह नहीं। कैसे? एक जगह बैठ कर, ढंग से, व्यवस्थित होकर खाओ। इससे क्या होगा? सहनशीलता बढ़ेगी, बार-बार भूख मत चिल्लाया करो। बार-बार खा करके इस तरीके से जीवन हमने तिर्यक पर्याय में अनेक बार व्यतीत किया है। अब हम मनुष्य बने हैं, हमें अपनी सहनशीलता बढ़ानी चाहिए। अगर आप इस तरह से दो प्रकार का उनके सामने, बच्चों के सामने चित्रण दोगे और इस तरह से बच्चों को समझाने की कोशिश करोगे तो बच्चे की सहनशीलता भी बढ़ सकती है। भूख तो हमने बहुत पहले भी सहन की है, बेटा! बार-बार ऐसे भूख-भूख चिल्लाने से अपनी कमजोरी बढ़ती चली जाती है, शक्ति कम होती चली जाती है। अपने आप बच्चे के अन्दर एक सहनशक्ति बढ़ेगी और वही सहनशक्ति उसके लिए उसे अपने आप संयमित भी बना देगी। यह ज्ञान जो हमें यहाँ दिया जा रहा है, आखिर इस ज्ञान का प्रयोजन क्या?

गाथा: 64

इस जीव ने शारीरिक और मानसिक दुःखों को इसी संसार में प्राप्त किया है

जावंति केवि दुक्खा, सारीरा माणसा व संसारे। तिरियगइं
पत्तो अणंतखुत्तो, जीवो संसार-कंतारे ॥64 ॥

अन्वयार्थ- 'इस' (जीवो) जीव ने (संसारे) संसार में (जावंति) जितने (केवि) कुछ, भी (सारीरा) शारीरिक (व) अथवा (माणसा) मानसिक (दुक्खा) दुःख हैं 'उन सभी को' (संसार-कंतारे) संसाररूपी, वन में (अणंतखुत्तो) अनन्तबार (पत्तो) प्राप्त किया है ॥64 ॥

शारीरिक और मानसिक दुःख अनंत बार मिल चुके हैं

आचार्य कहते हैं... 'जावंति केवि दुक्खा' जितने भी किसी भी प्रकार के दुःख हैं, चाहे वह शारीरिक हो, चाहे मानसिक हो, इस संसार में तुमने उन्हें अनन्त बार प्राप्त किया है। इस संसार के जंगल में रहने वाले जीवों को यह सब दुःख अनेक बार, अनन्त बार मिल चुके होते हैं। न केवल शारीरिक दुःख बल्कि मानसिक दुःख भी। अब आप सोचो! जब आपके मन को कोई छोटी सी बात पर दुःखी बना देता है, कोई आपसे कह देता है...आज आपने अच्छा भोजन नहीं बनाया, आज आपने हमारे साथ अच्छा behave नहीं किया, आज आपने हमको अच्छी तरह से देखा नहीं, आज आपके अन्दर हमारे लिए आपकी नजरों में आदर नहीं था। तब क्या होता है? हमको सब मानसिक दुःखों की प्राप्ति हो जाती है। ये सब क्या हैं? मानसिक दुःख। अब इन दुःखों को भी जीतना, इनके लिए भी सहनशीलता बना कर रखना तो क्या याद करना? भाई! जब गाय थे, भैंस थे, कुत्ते थे, पशु थे तब कौन हमें प्रेम से देखता था? कौन हमको आदर करता था? कौन हमको अच्छे-अच्छे गाने सुनाता था? मीठे-मीठे शब्द बोलता था हमारे सामने? कौन हमसे आप कह कर बोलता था? कौन हमारे पैर छूता था? उल्टा हमारी पिटाई होती थी, दुल्कारे जाते थे। इस घर में पहुँच गए, इस गली में पहुँच गए, इस मोहल्ले में पहुँच गए, यहाँ से भगाया उस गली में पहुँचे, वहाँ से भगाया उस गली में पहुँचे, बेइज्जत होकर कितने जन्म निकाले। अब थोड़ा सा अगर किसी ने हमारी ओर नहीं देखा, थोड़ा सा हमको किसी ने तिलक नहीं लगा पाया, भूल गया, जल्दी-जल्दी में उसे याद नहीं रहा कि तिलक भी लगाना था तो हमको मानसिक पीड़ा हो गई, दुःख हो गया। आपने हमारा अनादर कर दिया और वह भी बुला कर किया। यह अच्छी बात नहीं थी। या तो आप हमें बुलाते नहीं और बुलाया था तो इस तरह से आपने अनादर क्यों किया? सबके सामने सबको सब कुछ gift दिया हमको gift नहीं दिया? यह सब क्या है? ये सब मानसिक दुःख हैं।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त सहनशीलता बढ़ाने में सहायक

इन मानसिक दुःखों को भी अगर जीतना होगा, सहनशीलता लानी होगी तो क्या याद करना पड़ेगा? मुझे तो लगता है इससे अच्छा कोई विज्ञान नहीं होगा। अगर आपके दिमाग में यह बात बस जाए कि हर आत्मा का पुनर्जन्म होता है, हो चुका है। अनन्त बार हमारी आत्मा का इन प्रकार की पशु-पक्षियों की पर्यायों में जाना हो चुका है। यह पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर अगर आपका विश्वास होगा तो आपका इन सब बातों पर विश्वास बनेगा और इन बातों पर विश्वास बनने का मुझे जो सबसे अच्छा फायदा दिखाई देता है वह यही दिखाई देता है...इससे हमारी सहनशीलता बढ़ेगी। अन्यथा इन गाथाओं में हमें कोई ज्ञान नहीं दिखाई दे रहा। यह तो हम पहले कई बार सुन चुके हैं, सुनते ही रहते हैं।

वैराग्य भावना की गाथाओं का अर्थ

इह संसार महादुःख कारण, भरमत ओर न आवै।

जनम मरण जरा दुःख दावै, जीव महा दुःख पावै॥

पढ़ते ही रहते हैं भक्ति। आप नया क्या पढ़ा रहे हो महाराज? वैराग्य शतक में क्या नया है? जो वैराग्य भावना में लिखा हुआ है, जो हम शाम को भी पढ़ लेते हैं, कभी भी पढ़ लेते हैं। वही तो है सब कुछ और क्या है ?

कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी।

कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, वध-बन्धन भयकारी॥

यही तो है। और क्या है? अब पढ़-पढ़ कर रट तो लिया लेकिन इस पढ़ने का मतलब क्या? यह ज्ञान हमें अगर हमारी सहनशीलता को बढ़ाने के लिए कारण बने तो मैं समझता हूँ, इस ज्ञान का अपने लिए यह उपयोग है। अन्यथा यह ज्ञान बिल्कुल सामान्य ज्ञान है।

आत्मा में राग की कमी होना ही इन गाथाओं का उद्देश्य

इतना सामान्य ज्ञान है, अगर किसी ने नहीं भी पढ़ा होगा तो सबको आता है। हाँ! पशुओं में खूब दुःख होते हैं सब जानते हैं। अब विशेष क्या? विशेष आपको बना कर देना पड़ता है। सामान्य यहाँ लिखा हुआ है, विशेष हमें बनाना पड़ता है। अगर हम विशेष न बनाएँ तो एक घंटा कैसे फिर आपको समझ में आए? सामान्य बात तो आपको समझ में आएगी नहीं एक घंटा? एक घंटा क्या समझ में आएगी? विशेष ही समझ में आएगी। क्योंकि सामान्य ज्ञान तो आपके पास भरपूर है। विशेष के माध्यम से हमें इन गाथाओं के यह sense निकल कर सामने आते हैं कि इसके माध्यम से हम अपने जीवन में जब भी शारीरिक मानसिक दुःखों का अनुभव करें तो हम यह सोच सकें कि ऐसे कष्ट तो हमने पिछले जन्मों में अनन्त बार भोगे हैं। ये कष्ट कोई नए नहीं हैं और केवल हमारे लिए नहीं आए हैं। हमारी ही आत्मा ने पिछले जन्मों में अनन्त बार खूब अनुभूत किए और वर्तमान में जो है वह उसका अनन्तवाँ हिस्सा भी नहीं है, इतना छोटा है। जब यह विचार आएगा, तभी जाकर हमारे मन को इस तरह के वैराग्य के गाथाओं से कुछ वैराग्य के भाव हमारे अन्दर आएँगे। वैराग्य का मतलब क्या है? राग की कमी होना। और क्या मतलब होता है वैराग्य का?

जिनवाणी माँ का ज्ञान

गाथा: 65

संसार में ही जीव ने अनंतबार भूख और प्यास की भयंकर वेदना को सहा है

तण्हा अणंतखुत्तो, संसारे तारिसी तुमं आसी।
जं पसमेउं सव्वोदहीणमुदयं ण तिरीज्जा ॥65॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्!' (तुमं) तुम्हें 'इस चतुर्गतिरूप' (संसारे) संसार में (अणंतखुत्तो) अनन्तबार (तारिसी तण्हा) वैसी, प्यास 'सतायी यानी लगी' (आसी) थी (जं) जिसे (पसमेउं) शांत करने के लिए (सव्व- उदहीणं) सभी, समुद्रों का (उदयं) जल 'भी' (तिरीज्जा ण) समर्थ, नहीं (आसी) था 'इसका बारम्बार विचारकर संसार से विरक्त होवो' ॥65॥

तृष्णाएँ तुम्हारे अन्दर वेदनाएँ उत्पन्न करती हैं

'तण्हा अणंतखुत्तो, संसारे तारिसी तुमं आसी' 'तण्हा' अर्थात् तृष्णा, क्या कहते हैं? तरह-तरह से तृष्णा की प्यास। अगर हम शारीरिक तृष्णा कहे तो वह प्यास के रूप में होती है और मानसिक तृष्णाएँ कहे तो वह इच्छाओं के रूप में होती हैं। यह तृष्णा दोनों तरह से हम यहाँ पर समझ सकते हैं। यह संसार में इस तरह की तृष्णाएँ कितनी बार तुम्हारे अन्दर वेदना उत्पन्न कर चुकी हैं? और इस तरह की वेदनाओं को दूर करने के लिए तुमने खूब प्रयास भी किए हैं। शारीरिक तृष्णा की बात करें तो प्यास-प्यास! पानी-पानी! यह भी एक बहुत बड़ी वेदना है। अगर आपको समय पर पानी न मिले तो क्या होता है? अगर हम उस पानी का अंदाजा लगाएँ कि हम दिन भर में कितना पानी पी जाते हैं? हर दिन के पानी को अगर हम calculate करते चले जाएँ और आज अगर हम 60 साल के हो रहे हैं, हम उस पानी को calculate करके समझ सकते हैं...कितने-कितने ton, gallon पानी हम पी चुके हैं और फिर भी हमारी तृष्णा में आज भी वैसे ही प्यास लगती है, जैसी कल लगती थी, जैसी पहले लगती थी। अब यह प्यास की जो तृष्णा है, इस प्यास को बुझाने के लिए हमने कितने-कितने जल पी लिए और आचार्य कहते हैं- अगर तुम्हें सागरों का, जो बड़े-बड़े समुद्र होते हैं, उन समुद्रों का भी पूरा-पूरा जल पिला दिया जाए तो भी तृष्णा कभी बुझने वाली नहीं है। अब क्या करोगे? इसीलिए तो महाराज हम रात में पानी का कभी त्याग नहीं करते हैं। रात में भोजन का तो त्याग करने की सोच लेते हैं लेकिन रात में पानी का त्याग...कभी नहीं। कम से कम पानी की तो छूट रहने दो, महाराज! रात में कहीं प्यास लगने लग जाए, दूध न मिले, चाय न मिले, कोई बात नहीं, पानी तो मिलना ही चाहिए। कई बार बीमार पड़ जाते हैं, दवाई खानी पड़ जाती है, नींद नहीं आती है, कम से कम पानी तो पी सके तो इसलिए कई लोग रात में पानी का त्याग नहीं कर पाते।

संयम के लिए त्याग आवश्यक

जब आपके लिए कभी भी कोई नियम हो गया, कोई भी आपके लिए संयम आ गया और उसके बाद फिर आपको प्यास लगे तो क्या करेंगे? इसीलिए तो महाराज संयम नहीं लेते हैं, इसीलिए तो नियम नहीं लेते हैं। आप सोचो कि दुनिया में कितने सारे व्रती लोग हैं, गृहस्थ भी हैं, रात्रि में पानी नहीं पीते हैं। आपको तो सर्दियों में भी प्यास लगती होगी, मुझे लगता है सर्दियों में भी लोगों को पानी बहुत अच्छा लगता है। सर्दियों में भी लोग ठंडा पानी पसंद करते हैं। जब जिनकी सर्दियों में ठंडा पानी अच्छा लगता होगा, उन्हें गर्मी में तो वह सामान्य पानी नहीं, जब तक कि उसमें बर्फ के गोले न डाल दिए जाएँ, बिल्कुल chilled water. वह पानी जब आपको पीने की आदत पड़ी हो और आपके लिए मानो रात में पानी न मिले, प्यास लग रही हो, रात्रि का समय हो गया हो और आपके सामने कोई भी तरह के आपके नियमों के कारण से आपको वह कोई भी साधन समझ नहीं आ रहे हो, प्यास लग रही है लेकिन पिएँगे नहीं। क्यों नहीं पिएँगे? क्योंकि रात्रि में पानी पीने का भी त्याग है।

तृष्णा पर संयम रखना चाहिए

बताओ क्या करेंगे अब? जब कोई पानी हमें पीना नहीं है, पानी की प्यास भी लग रही है, अब उस प्यास को कैसे बुझाएँगे? अब कौन पानी पिलाए? उस समय पर ही यह ज्ञानामृत काम में आता है। उस समय पर ही यह जिनवाणी का पानी काम में आता है, जो संयमी जीव उस पानी को पी कर सन्तुष्ट हो जाते हैं, संतोष के साथ में सो भी जाते हैं, रात निकाल लेते हैं। लेकिन कभी भी रात्रि में पानी पीते नहीं है। कौन सा पानी पीते हैं रात में? यह जिनवाणी का पानी पीते हैं जो यह लिखा है...सारे सागरों का जल तुमने पी लिया है, लेकिन तुम्हारी प्यास कभी भी बुझी नहीं है। यह प्यास बुझाने के लिए अगर आपके लिए कोई भी साधन कभी भी मिल जाते हैं तो आप बुझा तो लेते हो लेकिन वास्तव में देखा जाए ऐसी भी स्थिति बनती है, जब आपके समक्ष पानी पीने के लिए तो हो लेकिन आप पी नहीं पाओ। यह भी देखा है आपने कभी? कभी नहीं देखा? वृद्धावस्था में दादा जी की ऐसी स्थिति बन जाती है कि वे पानी मुँह में तो ले ले लेकिन गुटक न पाएँ। समाधि करने वालों की भी ऐसी स्थिति बन जाती है कि पानी लेने की इच्छा तो कर ले लेकिन मुँह में जाने के बाद में उसे भीतर तक खींचने की ताकत भी नहीं रह जाती है। आपने देखा हो न देखा हो, हमने तो खूब देखा है और यह पंडित जी तो देखते ही रहते होंगे, समाधि कराने वाले देखते ही रहते हैं। बिल्कुल कंठ में शक्ति नहीं रहती है लेकिन पानी दिखाओ तो मना नहीं करता है। अब बताओ क्या तरीका रह गया है? अब अन्तिम इलाज क्या है? पी पाओगे नहीं! और पीने की तृष्णा है।

तृष्णा को जीत कर ही समाधिमरण कर सकते हैं

अब इस तृष्णा को अगर मारने का कोई तरीका है तो वह क्या है? भैया! त्याग कर दो, अब पानी का, इसलिए त्याग की जरूरत पड़ती है। त्याग कर देगा तो क्या होगा? भीतर से तृष्णा अब मर सकती है। भाई! अब पीना ही नहीं है, पीने लायक रहा ही नहीं हूँ, अब उसका विकल्प ही छोड़ देना, उधर ध्यान लगाना ही नहीं है कि कोई हमें पानी दे या न दे। इस तरह के विकल्प से जब वह मुक्त हो जाता है, तब वह पानी के त्याग के साथ में बिल्कुल निर्विकल्प होकर अपने शरीर को छोड़ देता है। इसी को कहते हैं- तृष्णा को जीत

गाथा: 66

संसारी प्राणी को किस प्रकार भूख की वेदना सताती है, उसका विवेचन

आसी अणंतखुत्तो, संसारे ते झुहावि तारिसिया ।
जं पसमेउं सव्वो, पुग्गलकाओ वि ण तरिज्जा ॥66 ॥

अन्वयार्थ- 'हे जीव!' (ते) तुम्हारे लिए 'इस चतुर्गतिरूप' (संसारे) संसार में (अणंत-खुत्तो) अनन्त-बार (तारिसिया झुहा) वैसी, भूख (वि) भी 'सतायी यानी लगी' (आसी) थी (जं) जिसे (पसमेउं) शांत करने के लिए (सव्वो पुग्गल-काओ) सभी, पुद्गलकाय (वि) भी (तरिज्जा ण) समर्थ, नहीं (आसी) थे 'इसका विचारकर संसार एवं भोगों से विरक्त होवो' ॥66 ॥

वैराग्य शतक ग्रन्थ के माध्यम से जिन गाथाओं को हम पढ़ रहे हैं, उसी को आगे बढ़ाते हुए 66, 67 और 68, इन तीन गाथाओं को भी आगे पढ़ते हैं...

आसी अणंतखुत्तो, संसारे ते झुहावि तारिसिया ।
जं पसमेउं सव्वो, पुग्गलकाओ वि ण तरिज्जा ॥66 ॥

काऊणमणेगाइं, जम्मण-मरण-परियट्ठण-सयाइं ।
दुक्खेण माणुसत्तं, जइ लहइ जहिच्छियं जीवो ॥67 ॥

तं तह दुल्लह-लंभं, विज्जु-लया-चंचलं च मणुयत्तं ।
धम्मंमि जो विसीयइ, सो काउरिसो ण सप्पुरिसो ॥68 ॥



जीव की अनन्तकालीन क्षुधा वेदना तथा उसके शमन हेतु पुद्गल ग्रहण की निष्फल क्रिया

यहाँ आचार्य कहते हैं... 'अणंतखुत्तो' अर्थात् अनन्त बार तुम्हारे द्वारा इस संसार में 'झुहावि तारिसिया आसी' आसी अर्थात् थी, इस तरह की 'झुहा' यहाँ पर छुआ के लिए है, छुआ मतलब क्षुधा के लिए है। यह प्राकृत कुछ सामान्य, जो शौरसेनी प्राकृत

है, उससे भी कुछ विशिष्ट सी कभी-कभी लगती है। क्षुधा को प्राकृत में छुआ कहते हैं। यहाँ छा का भी झा बना दिया गया तो वह झुआ हो गया तो झुआ भी कह सकते हैं, छुआ भी कह सकते हैं। ऐसी यह जो क्षुधा है, यह भी अनन्त बार संसार में ऐसी उत्पन्न हुई थी, ऐसी हुई है। **‘जं पसमेउं सव्वो’** जिसको प्रशमित करने के लिए अर्थात् शान्त करने के लिए, सभी पुद्गल काय भी **‘ण तरिज्जा’** यानी कि सभी पुद्गल कायों को भी अगर किसी भी तरह से प्राप्त कर लिया जाए तो वे पुद्गल काय भी, पुद्गल समूह भी **‘ण तरिज्जा’** तुम्हारी उस वेदना को पार कराने में, तैराने में, पार कराने में समर्थ नहीं हो सकते हैं, ऐसा इसका अर्थ समझना। जिस तरह से कल प्यास के लिए कहा था, उसी तरह से आज यहाँ पर भूख के लिए कह रहे हैं।

भूख और प्यास, जीवन है या जीवन चलाने के लिए है?

ये दो ही तो चीजें हैं- भूख और प्यास। जिसके कारण से जीना पड़ता है या यूँ कहो कि इन्हीं के कारण से जीवन चलता है और कभी-कभी तो हम यह भूल ही जाते हैं कि भूख-प्यास से जीवन चल रहा है कि जीवन के कारण से भूख-प्यास चल रही है। यह भूख-प्यास हमारे जीवन में इस तरह से सम्मिलित है कि हम अपने जीवन में इसको अपना एक अभिन्न अंग मान कर चलते हैं। जीवन का यह अभिन्न अंग है और इस भूख-प्यास के माध्यम से हमारे लिए जब भी कभी कोई पीड़ा होती है या भूख-प्यास की इच्छा होती है, तो हम उस पीड़ा को तत्काल दूर तो कर लेते हैं लेकिन यह नहीं सोच पाते कि यह कब तक करेंगे और इसका आखिर समाधान क्या है?

सूक्ष्मतम- सार्वकालिक ज्ञान, तीर्थंकर वाणी की विशेषता

जो भी जैन आचार्य हुए हैं, तीर्थंकरों की वाणी जो भी हमें प्राप्त हुई है...उसमें सबसे बड़ी विशेष बात यही है कि हमेशा जैन आचार्यों ने, जैन ऋषियों ने, हर चीज का बहुत बारीकी से अध्ययन किया है। या यूँ कहो कि तीर्थंकर के ज्ञान में हमें यह बारीकी से सारा ज्ञान मिला है। जो बात कभी एक सामान्य संसारी प्राणी सोच भी नहीं सकता, वह बातें हमें तीर्थंकरों ने बताई हैं। अब वह बातें सामान्यतः संसारी प्राणी के लिए समझ में आ जाएँ या न आ जाएँ, उन्होंने उसकी चिन्ता नहीं की। उन्होंने यह नहीं सोचा कि हम सामाजिकता के साथ में जीने वाले इन सामाजिक प्राणियों के लिए यदि इनके ही मतलब की बात बतायेंगे तो तो ये जल्दी सुन लेंगे और अगर हम कोई भी इससे विपरीत या उल्टी बात बोलेंगे तो ये बिचक भी जायेंगे, सुनेंगे नहीं। उसकी भी कभी तीर्थंकरों ने चिन्ता नहीं की। यानी कि तीर्थंकरों ने कभी यह नहीं सोचा कि इन संसारी जीवों के लिए उन्हें वही ज्ञान देना चाहिए, जो यह सुनना चाहते हैं; अच्छे ढंग से समझना चाहते हैं और इसको interest के साथ सुने। इसकी उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की और यही एक बहुत बड़ी वजह है कि जैन धर्म हर तरह से श्रेष्ठ होते हुए भी, हर तरह से हमारी बीमारियों का इलाज करते हुए भी, कई बार इन्हीं कारणों से लोग जैन धर्म को पसन्द नहीं करते।

सामान्य संसारी लोगों में जैन धर्म की स्वीकारता की कमी का कारण

जैन धर्म के स्वीकार करने की जो कमी आई, उसका भी एक बहुत बड़ा कारण यह है कि यह जैन धर्म में

वह बात नहीं की जाती, जो बात संसारी जीव चाहता है। हम जैसा सोच रहे हैं, हम जैसा चाह रहे हैं, आप वैसा बोलो तब तो अच्छा लगता है और आप जब उल्टा वर्णन करते हो तो फिर लोग सोचते हैं कि भाई! ये तो न खाने देते हैं, न पीने देते हैं। उल्टा जब भी खाने-पीने की इच्छा करते हैं तो ये कहते हैं...तुम अनन्त बार खा चुके हो, अनन्त बार पी चुके हो। यह भी एक बहुत बड़ा कारण है। संसार में जैन धर्म हर कोई नहीं अपना पाया, इसका यह भी एक बहुत बड़ा कारण है कि तीर्थंकरों ने और उन्हीं के अनुसार चलने वाले ऋषियों, मुनियों ने कभी इस बात की चिन्ता नहीं की कि हम आपकी भाषा में आपकी जो चाह है, उसी की पूर्ति करें। अब चाह होती तो क्या होती? कितना अच्छा होता, अगर यहाँ पर खाने-पीने का विज्ञान बताया जा रहा होता। हमें क्या-क्या खाना चाहिए? कितनी मात्रा में खाना चाहिए? किस खाने से हमारे जीवन में कैसे, उत्कर्ष होता है? क्या खाने से फेफड़े अच्छे होते हैं? क्या खाने से दिमाग अच्छा चलता है? क्या खाने से, बाल सफेद नहीं होते हैं? क्या खाने से बुढ़ापा नहीं आता है? ऐसा कुछ बताते तो कितनी भीड़ लगी होती; कितने लोग सुन रहे होते? यह सब जैन मुनि उल्टा बोलते रहते हैं। यह तो बताते नहीं कि क्या खाने से, क्या पीने से हमारा जीवन और अच्छा चलेगा और ज्यादा स्फूर्ति आएगी और उम्र बढ़ेगी और अच्छे ढंग से युवावस्था रहेगी, बुढ़ापा नहीं आएगा, आँख-कान कमजोर नहीं होंगे। ऐसे ज्ञान देते और इन्हीं बातों में लोगों को लगाए रखते तो लोगों के अन्दर हमेशा इस बात की इच्छा बनी रहती है कि हम अपने शरीर को और कैसे अच्छा, बनायें और कैसे अच्छा बनायें और क्या खाएँ, क्या पिएँ, कौन सी औषधियाँ लायें? इस तरह से लोगों में एक जिज्ञासा बढ़ती तो हर कोई इसको स्वीकार करता।

आचार्य भगवन्तों की वाणी सामान्य लोगों को समझाने की गुरुदेव की कला

हम तो सबको समझ सकते हैं। हम तो बीच में बैठे हैं, ऊपर वालों के और नीचे वालों के बीच में बैठे हैं। इसलिए कभी नीचे की दृष्टि से भी सोचना पड़ता है, कभी ऊपर की दृष्टि से भी सोचना पड़ता है और दोनों तरह से सोचते हैं, तो यह बात समझ में तो आती है...यह बार-बार क्या वही, अनन्त बार हम खूब प्यास सहन कर चुके हैं, अनन्त बार भूख सहन कर चुके हैं। अरे! आज की भूख तो सहन हो नहीं रही है, अनन्त बार की आप बात कर रहे हो। नीचे वाले तो यह सोच रहे हैं कि आप उस भूख को, प्यास को दूर करने के अच्छे-अच्छे तरीके बताओ और ऊपर वाले हमसे यह कह रहे हैं कि इनको बार-बार यह ज्ञान दो कि यह भूख, यह प्यास, यह अनन्त बार हो चुकी है, इसमें ज्यादा ध्यान मत दो। अब हम बीच में फँस गए हैं। बताओ किसकी सुने?

समस्त पुद्गलों का ग्रहण भी निष्फल रहा भूख-प्यास की वेदना शमन करने में

गाथाएँ कहती हैं कि इन सब भूख-प्यास की वेदनाओं को शमन करने के लिए हमने सब प्रकार के पुद्गलों को खा लिया है। कोई भी पुद्गल-काय, ये सब क्या हैं जो हम खाते हैं सब? सब पुद्गल होता है। पुद्गल का मतलब जिसमें पूरण-गलन होता रहता है, उसे पुद्गल कहते हैं। जो भरता-पुरता रहता है, उसको पुद्गल कहते हैं। अब यह सब पुद्गलों का काय अर्थात् समूह होता है, सब पुद्गलों का समूह है। मतलब कि अन्न है, गेहूँ है, आटा है, सब क्या है? सब पुद्गलों का समूह है। हम जो भी चीजें खाते हैं, ये सब पुद्गलों के समूह से बनी हुई चीजें हैं और यह अनेक पुद्गलों का समूह, चाहे वह किसी भी प्रकार की सब्जियाँ हो, चाहे फल हो, चाहे मेवा

हो, चाहे मिष्ठान्न हो, चाहे दुग्ध आदि से बनी हुई चीजें हो, सभी क्या हैं? सब पुद्गलमय हैं।

पूरण-गलन, पुद्गल का स्वभाव

पहले तो आपके दिमाग में यह बात आनी चाहिए कि हम जो कुछ भी उपभोग कर रहे हैं, यह किसका कर रहे हैं? पुद्गल का कर रहे हैं। जीव का नहीं करते, जीव की मुख्यता से भोजन नहीं होता है। भोजन में मुख्यता किसकी रहती है? पुद्गल की। ये सभी पुद्गल पदार्थ हैं, ऐसे पौद्गलिक पदार्थ हैं कि जिनको कभी भी अगर थोड़ा सा अच्छे ढंग से रखा जाए तो ये बने से रहते हैं और नहीं रखा जाए तो तुरन्त मिट भी जाते हैं। पूरण-गलन इनमें चलता रहता है। किसी भी पदार्थ में, किसी भी पदार्थ को मिला देने से वह उसमें mix भी हो जाता है। हम भी एक साथ अगर नहीं खा पाते हैं, एक-एक करके भी खा लेते हैं तो भी जाकर पेट में सब mix हो जाता है और वह पूरण-गलन स्वभाव के कारण से वह हमारा शरीर भी जो पुद्गल है, उस पुद्गल में वह effect डालता है। शरीर भी कैसा है? पौद्गलिक है। कम से कम इतना तो विज्ञान हमारे दिमाग में आ जाए, भले ही तीर्थंकरों ने यह कहा है कि हम सब पुद्गल खा चुके हैं, कोई बात नहीं लेकिन इतना तो दिमाग में आ जाए कि हम पुद्गल खा चुके हैं और पुद्गल को ही खिला रहे हैं। हम सभी पुद्गलों को खा चुके हैं और पुद्गल को ही खिला रहे हैं।

पौद्गलिक शरीर की स्वस्थता, पुद्गल के पूरण-गलन अनुपात की अपेक्षा से

शरीर कैसा है? यह भी पौद्गलिक है यानी जिसमें पूरण-गलन होता रहे। पुरता भी रहता है, गलता भी रहता है। एक निश्चित अनुपात से पूरण-गलन चलता रहता है। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अवस्था आगे बढ़ती जाती है, उम्र आगे बढ़ती जाती है, कोई दिक्कत नहीं होती है। अगर उसका कहीं ratio बिगड़ जाता है, तो दिक्कत आ जाती है। पूरण ज्यादा हो जाए, गलन न हो तो भी दिक्कत आ जाएगी और पूरण न हो, गलन ज्यादा होने लग जाए तो भी दिक्कत आ जाएगी। उम्र के हिसाब से पूरण और गलन का एक निश्चित अनुपात चलते रहना चाहिए तो यह शरीर स्वस्थ बना रहता है और इस शरीर में यह पूरण-गलन की अवस्था, अपने आप कर्मों की संयोजना से चलती रहती है।

पूरण-गलन क्या है?

अब यह पूरण-गलन क्या? मानो आपने कोई भी भोजन अपने शरीर में डाला तो वह शरीर में जाकर पहले उस शरीर की पूर्ति में लग जाता है। शरीर में किन चीजों की कमी है? कौन सी vitamins की कमी है? कौन सी proteins की कमी है? कौन से जगह पर क्या तत्व पहुँचना चाहिए, उन तत्वों की पूर्ति कर देता है वह। यह क्या हो गया? यह पूरण हो गया। यह पूरण होने के साथ-साथ कुछ गलन भी होता रहता है। जो काम में आ गया, वह काम में आ गया; जो नहीं काम में आ गया, वह गल गया। गल गया अर्थात् निकल गया, wastage हो गया। यह पूरण और गलन निरन्तर चलता रहता है। अब अगर पूरण ज्यादा हो जाए मतलब शरीर में पूरण-पूरण तो ज्यादा हो, गलना कम हो तो क्या होगा? अच्छा ही होगा महाराज!

पूरण-गलन का सही अनुपात स्वस्थता का द्योतक है

जो कुछ भी हम ले, वह पूरा का पूरा शरीर में लग जाए। पूर्ति ज्यादा हो जाए, पूरे ज्यादा और गले कम तो यह अच्छा ही माना जाएगा। लेकिन अगर गलना बिल्कुल बन्द हो जाए तो आपके लिए दिक्कत का काम हो जाएगा। एक अनुपात रहना चाहिए। कितना हमने पूरा है और कितना उसमें से गल रहा है? यह अनुपात प्रतिदिन का आपको पता होना चाहिए। कितना हमने intake किया है और कितना output हो रहा है? इसका एक अनुपात आपको पता होना चाहिए। अगर वह अनुपात से सही चल रहा है, तो ठीक है, स्वास्थ्य सही है, शरीर सही काम कर रहा है, machine सही काम कर रही है। अब अगर मान लो पूरण होने लग जाए ज्यादा और गलन न हो; जानते हो यह भी एक बीमारी सी बन जाती है। मानो आपने पानी पिया या भोजन किया और वह भोजन और पानी न जाने कहाँ, कैसे बैठ गया, क्या हो गया? वह गल नहीं रहा है, निकल नहीं रहा है, बहुत बड़ी problem हो जाती है। अगर आपने पानी पिया है और पानी pass-out नहीं हो रहा है, urine के through निकल नहीं रहा है, तो अपने आप वह एक बड़ी बीमारी का रूप ले लेगा। स्थान पर फूलता चला जाएगा, धीरे-धीरे पानी बढ़ता चला जाएगा, आपको operate कराना पड़ेगा। यह क्या हो गया? पूरण तो हुआ लेकिन गलन नहीं हुआ, यह बहुत नुकसान का काम है। यह पूरण और गलन दोनों चलते रहने चाहिए, अनुपात से चलने चाहिए। अगर कभी पूरण कम हुआ और गलना ज्यादा हो गया तो भी नुकसान होने लग जाता है। गलना यानी गल ज्यादा रहा है और पूरण कम हो रहा है। अर्थात् जो लिया जा रहा है, उससे वह पूर्ति तो कुछ हो नहीं रही है और लेते हैं, उससे ज्यादा निकल जाता है। यह क्या हो गया? यह भी एक बीमारी हो गई। आप सोचो कि यह शरीर कितने अच्छे ढंग से, व्यवस्थित ढंग से काम कर रहा है, जो आपको स्वस्थ बनाए हुए है। यह पूरण और गलन, यह शरीर का स्वभाव है और जो पदार्थ हम ले रहे हैं अन्न आदि के रूप में, वह भी इसी स्वभाव वाले हैं। अतः यह पुद्गल, पुद्गल का काम करता है।

पुद्गल को पुद्गल में समाहित करता जीव - एक शरीर विज्ञान

पुद्गल, पुद्गल के साथ उपकार करता है, इस पुद्गल के उपकार के साथ में इस जीव का भी उपकार हो जाता है क्योंकि इन सब क्रियाओं को करने वाला कौन है? जीव है। अब विज्ञान क्या बनता है? जीव पुद्गल को, पुद्गल में समाहित करता है। यही विज्ञान निकल कर आया? पुद्गल, पुद्गल को समाहित नहीं कर रहा है, जीव पुद्गल को पुद्गल में समाहित कर रहा है; करने वाला जीव है। अपने आप अगर वह पुद्गल, पुद्गल में समाहित होता रहे; पुद्गल, पुद्गल का उपकार करता रहे तो उससे क्या होगा? जब तक कि उसमें जीव न हो।

पुद्गल - जीव का उपकारी

इसलिए आचार्यों ने कहा, पुद्गल जीव पर उपकार करता है। क्या बोला? पुद्गल जीव पर उपकार करता है, जीव पर उपकार है। वह जीव है, जो उस पुद्गल को ग्रहण करता है और उसको ग्रहण करके जीवन जीता है। पूरी आयु जी लेता है। किसके कारण से? इन्हीं पुद्गलों को ग्रहण करता है, इन्हीं पुद्गलों को छोड़ता है और जीव इस पुद्गल के साथ में रहते हुए अपनी बुद्धि का प्रयोग करता रहता है, अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता रहता है, अपनी इन्द्रियों के साथ जीता रहता है और इस तरह से यह जीव इन पुद्गलों के साथ रहते हुए अपने

ऊपर इन पुद्गलों के माध्यम से उपकार करता रहता है। किसका उपकार किसके ऊपर हुआ? जीव का उपकार पुद्गल पर नहीं कहा गया, पुद्गल का उपकार जीव पर कहा गया है।

पुद्गल जीव को इन्द्रियों के सुख देने में सहायक

पुद्गल अजीव है, उसमें कोई भी ज्ञान नहीं है, वह बिल्कुल non living matter है और जीव living matter है, चेतन है, consciousness है उसके अन्दर। अब यह पुद्गल उस जीव पर उपकार कर रहा है, जीव को बनाए रखे हुए है, जीव को जीने में सहायक बनता है। जीव के लिए सब प्रकार के इन्द्रियों के सुख देने में सहायक बनता है। जीव को सब प्रकार से अपने मोह आदि, राग आदि की पूर्ति करने में सहायक बनता है। यह सब किसको, किसके माध्यम से उपकार किया जा रहा है? जीव को, जीव का उपकार किया जा रहा है। किसके माध्यम से? पुद्गलों के माध्यम से। अब आप इस चीज को यूँ समझो। अब जो लिखा था, वह तो अलग लिखा था। वह मैं सीधा-सीधा पढ़ता तो आपकी नाक, भौंहें टेढ़े-मेढ़े होने लगते, इसलिए मैंने थोड़ी सी यह भूमिका अलग बनाई है।

जीवों पर पुद्गलों के उपकार की ग्रहणता

अब इसी चीज को समझने के लिए हम इस तरह से समझें, वैज्ञानिक भाषा में...पुद्गल हमारे जीव पर उपकार कर रहा है। हम इस पुद्गल का उपकार ग्रहण करते रहते हैं। भूख लगी, हमने खा लिया। प्यास लगी, पानी पी लिया। पानी ने शरीर पर उपकार कर दिया, भोजन ने शरीर पर उपकार कर दिया और जीव ने उस उपकार को ग्रहण कर लिया गया अर्थात् जीव हमेशा पुद्गल के ऋणी हैं, पुद्गल का ऋणी है एक तरह से कहा जाए तो। अब आपको सोचना है...जीव बड़ा है कि पुद्गल बड़ा है? बताओ, महत्व किसका है? जीव का कि पुद्गल का? जीव का। अब जो बड़ा होता है, उसे ऋणी होना चाहिए कि उऋण होना चाहिए; ऋण रहित होना चाहिए? इस तरह से अब आपको समझाने की कोशिश की जा रही है। यानी कि हमें यह महसूस होने लग जाए कि मैं जीव हूँ, जीव बड़ा है, जीव के पास ज्ञान है, जीव महान है। जीव तू बड़ा महान, कौन महान है? मनुष्य तू बड़ा महान है, बोलते हो न? मनुष्य में भी कौन मनुष्य? जो मनुष्य जीव रूप में है, वह मनुष्य जीव महान है। अब यह महान तो है लेकिन काम किससे ले रहा है? पुद्गल से ले रहा है और कभी उसके बारे में सोचता नहीं है कि इस पुद्गल ने मेरे ऊपर कितना उपकार कर दिया है, कितना कार्य कर दिया है और यह पुद्गल मेरे साथ में कब-कब से मेरे साथ में उपकार करता चला आ रहा है? हमने एक भी बार इसके उपकार को भी स्मरण नहीं किया। हम इतने कृतघ्नी रहे। कभी किया क्या? कभी तुमने कहा क्या? यह देखो, यह रोटी मेरे ऊपर कितना उपकार कर रही है; यह मेरे भीतर जा रही है, यह मुझे शक्ति देगी। कभी कहा तुमने रोटी से? रोटी तो अजीव है, उससे क्या कहना? कोई मूर्ख और समझो, यह क्या बोलने जा रहा है?

पुद्गलों के उपकार का स्मरण ही करायेगी हमें उससे उऋण

आचार्य कहते हैं...आपको अगर यह महसूस होने लग जाए कि इन पुद्गलों ने हमारे ऊपर बहुत-बहुत कई बार, अनन्त बार इस तरह के उपकार किए हैं। हमने इस पुद्गल पर कभी कोई उपकार नहीं किया और कर

भी नहीं सकते। जीव कभी पुद्गल पर कोई उपकार नहीं कर सकता और जीव अगर उपकार कर भी देगा तो पुद्गल को उससे लेना-देना भी नहीं है। क्या फर्क पड़ रहा है उसको? भाई! गेहूँ है, रोटी है, आटा है; चाहे तो तुम उसको जला दो, चाहे तुम उसकी रोटी बना लो, चाहे उसकी लपसी बना लो, चाहे कढ़ी बना लो, चाहे ऐसे ही उसको घूरे पर डाल दो। उसे क्या फर्क पड़ रहा है? तुम्हें अपने काम में लेना हो तो ले लो, नहीं काम में लेना हो, जिसको देना हो उसको दे दो। पुद्गल पर तो जीव का कोई उपकार बनता नहीं। अब जीव को कभी तो यह सोचना चाहिए, यह सोचना बनता है कि नहीं? कि आखिर कितना पुद्गल मेरे द्वारा भोगा जा चुका है? कितने पुद्गल ने मेरी जीव पर कितनी बार उपकार किया है? आखिर यह श्रृंखला कभी बन्द होनी चाहिए कि नहीं? क्या फर्क पड़ रहा है, महाराज? उसे तो वैसे ही कुछ पता नहीं है, free में मिल रहा है, आ रहा है, खा रहा है, जी रहा है, जीव अपना उपकार कर रहा है, जीव अपना कार्य कर रहा है। आचार्य यहाँ कहते हैं... थोड़ा सा जागो, थोड़ा सा सावधान होओ और यह विचार करो कि इस पुद्गल का इतना अनन्त बार, अनन्त काल में उपभोग करते हुए भी आपने कभी यह नहीं सोचा कि इस पुद्गल का हमारे ऊपर कितना उपकार है? अब हमें इस पुद्गल का ऋणी नहीं होना चाहिए, हमें इस पुद्गल से भी मुक्त होना चाहिए। यह भाव बनाना पड़ेगा, इस पुद्गल से भी हमें मुक्त होना चाहिए।

कैसे रोके पुद्गल के उपकार की श्रृंखला को?

जब तक यह हमारे साथ जुड़ा रहेगा, हमारे ऊपर उपकार करता रहेगा तब तक हमारे लिए यह पुद्गल से संयोग बना रहेगा और यह पुद्गल से संयोग कभी छूटेगा नहीं अगर हम इस chain को कभी भी रोकेंगे नहीं। यह chain बनी हुई है न? प्यास लगी, पानी डाला; भूख लगी, भोजन डाला; शरीर में डाला और शरीर जो है अपना काम किया और जीव जो है उस कार्य को करने का कर्ता बना रहा। अब यह chain जो बनी हुई है, यह कैसे टूटेगी? पहले क्या करना पड़ेगा? पहले उस बाहर की चीज पर, जिससे कि हम इस शरीर पर उपकार करते हैं, उसको हमें समझना पड़ेगा या उसमें हमें कमी लानी पड़ेगी और वह कमी कैसे लानी पड़ेगी? हम इसका कम से कम उपयोग करें। जब भी इसके उपयोग का समय आए तो हम यह न सोचें कि हम इसके उपयोग से ही अपना जीवन चलायेंगे, हमें यह सोचना कि हम इसका कम से कम उपयोग करके जीवन चलाएँ। जीवन चले लेकिन इसका उपयोग कम से कम हो। अभी उल्टा हो रहा है, हमारी तृष्णा इतनी ज्यादा बढ़ी हुई है कि हमें लगता है कि हमारी क्षमता तो कम है और चीजें हमें बहुत सारी दिखाई देती हैं। हम क्या करते हैं? उन सब चीजों को एकदम से भोग लेना चाहते हैं, खा लेना चाहते हैं, पी लेना चाहते हैं और फिर हमें याद आता है... नहीं-नहीं, एक साथ सब कर लीगे तो बीमार पड़ जाओगे तो हमें रुकना पड़ता है बीमारी के डर के कारण से लेकिन मन तो होता है कि सब खा ले, सब पी ले। इस मन की जो तृष्णा है, इस पर अगर control लगेगा तो कैसे लगेगा?

भूख का नियंत्रण ही ला सकेगा, शरीर तथा तृष्णा पर नियंत्रण

बाहर की चीजों पर आप पहले नियंत्रण रखेंगे तो आपके भीतर की भूख पर नियंत्रण आएगा और उस भूख पर नियंत्रण आएगा तो अपने आप आपका शरीर पर नियंत्रण आएगा और जब शरीर पर नियंत्रण आएगा

तो जीव उन चीजों का उपभोक्ता जो अधिकता में बना हुआ है, वह कम उपभोक्ता उस जीव का हो सकता है। उन पुद्गलों का कम उपभोग करने वाला वह जीव हो सकता है। आचार्य कहते हैं...यह कमी कब आएगी? जब सोचोगे तब आएगी, अपने आप तो आएगी नहीं। आपने कभी ऐसी advertise देखे होंगे, खाने पीने के जो advertise आते हैं न, क्या होता है उनमें? जैसे मान लो वह एक पहले आता था लिज्जत पापड़, लिज्जत पापड़, आज भी आता है क्या? आता है? वे क्या दिखाते हैं उसमें? जैसे पापड़ बन रहा है, सिंक रहा है, भुन रहा है और उसका धुआँ निकल रहा है, उसकी खुशबू निकल रही है तो वह बच्चे को दिखायेंगे, ऐसी आँखें फैल गईं। ऐसे दिखाया जाता था न? अर्थात् अगर भूख न लगी हो तो खाने की इच्छा न हो तो, अब यह जो चेष्टा है, यह जो दिखाई जा रही है, यह क्या है? यह तृष्णा को बढ़ाया जा रहा है। यह advertise क्या कर रहा है? अपने अन्दर की तृष्णा को बढ़ा रहा है। अरे भाई! पापड़ है, खाना है, थोड़ा सा खा ले अगर मान लो खाना ही है लेकिन वह खाने के लिए ऐसे पूरा दम लगा दे और पूरी आँखें निकाल ले और तब खाना शुरू करे तो इसका मतलब क्या है? वह बहुत ज्यादा उत्सुकता से, बहुत ज्यादा तृष्णा से, बहुत ज्यादा इच्छा से खाना चाहता है।

जितनी बढ़ेगी तृष्णा, उतना ही पुद्गल हावी होगा

आचार्य यहाँ क्या समझाते हैं? इतनी तृष्णा से किसी भी चीज को खाने की जरूरत नहीं है। तुम्हें खाना ही है न, खा लो, आराम से खा लो। थोड़ा सा जितना तुम्हें आवश्यक है, उतना ले लो। जो तुम्हारे लिए तृष्णा को बढ़ाए, उस चीज पर पहले अगर आप नियंत्रण लाओगे तो तुम इस पुद्गल से अपना छुटकारा कुछ कर पाओगे। नहीं तो जितनी भूख बढ़ाओगे, जितनी तृष्णा बढ़ाओगे, यह पुद्गल तुम्हारे ऊपर हावी होगा और इस पुद्गल से तुम्हें कभी मुक्ति मिलने की नहीं है।

जीव की आहारक अवस्था क्या है?

आचार्य कहते हैं...जब से यह जीव जन्म लेता है, तब से इसको क्या कहा गया है? सिद्धान्त की भाषा में इसे आहारक कहते हैं। क्या कहते हैं? आहारक मतलब हमेशा आहार ले रहा है। कैसे आहार ले रहा है? आप श्वास ले रहे हो, श्वास के साथ-साथ आपको यहाँ पर जो यह वातावरण है, इस वातावरण के माध्यम से आपके शरीर में हमेशा पुद्गलों का संचय हो रहा है और आपके शरीर से कुछ पुद्गल निकल भी रहा है। हर समय यह पूरण-गलन चल रहा है। यह आहार मुख्य है जो शरीर को बनाए रख रहा है। यह आहार चलता रहेगा जब तक कि शरीर के अन्दर बैठा हुआ वह जीव उसमें अपनी क्रिया करता रहेगा। मन-वचन-काय की उसकी जब तक क्रिया चलती रहेगी तब तक क्या होगा? यह पूरण-गलन, आहार का ग्रहण और छोड़ना, यह निरन्तर चलता रहता है। सिद्धान्त की भाषा में जब से यह जीव उस योनि स्थान में जन्म लिया, तब से ही यह आहारक है और मृत्यु पर्यन्त तक यह आहारक ही रहता है। आहार कभी छूटता नहीं है।

आहार त्याग-अनशन तप हो, न कि शरीर की अस्वस्थता का कारण

अब अगर हमने उस आहार को थोड़ी देर के लिए छोड़ दिया तो वह क्या हो गया? आचार्य कहते हैं...वह

आहार का आपने त्याग नहीं कर दिया है, आहार को आप थोड़ी देर के लिए छोड़ कर बैठे हो। किस लिए बैठे हो? जब थोड़ा सा रुकेंगे, थोड़ा सा छोड़ कर बैठेंगे, तभी भीतर से इच्छा पैदा होगी और तभी जाकर अगले time में हम उस आहार को ग्रहण कर पायेंगे। वह जो छोड़ना है, वह छोड़ने का उद्देश्य दो तरह का हो सकता है। एक तो हमें आहार इसलिए नहीं लेना कि आज हम बिना आहार के ही रहेंगे और बिना आहार के ही आज हम अपना पूरा दिन निकालेंगे...इसे उपवास कहते हैं, अनशन कहते हैं, तप कहते हैं। आज हम अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करेंगे, आहार की इच्छा को भी आज हम रोक लेंगे, एक तो यह तरीका होता है। दूसरा, आज हम आहार इसलिए नहीं ले रहे हैं, अभी इसलिए नहीं ले रहे हैं क्योंकि आज हमसे खाया नहीं जा रहा है, आज बहुत भरा हुआ है। कभी-कभी अफरा भी हो जाता है, अफरा जानते हो? जब अफरात खा लेते हैं तो फिर अफरा हो जाता है। अक्सर विवाह-शादियों से आने के बाद में ऐसा अफरा होता है, जब अफरात मात्रा में खा लिया जाता है। फिर उसके बाद में एक दिन, दो दिन आदमी “आज इच्छा नहीं है, आज इच्छा नहीं है, आज कुछ पिला दो, आज कुछ और ऐसा कुछ खिला दो” यह जब करता है, तो इच्छा नहीं है मतलब इच्छा खाने की नहीं है, इच्छा बना रहा है। इच्छा बनाने के लिए भी एक दिन नहीं खाता है, दो दिन नहीं खाता, ऐसा भी कर लेता है। दो तरीके से हो गया खाना।

जीने के लिए खाना, यह भाव ही लाएगा इच्छाओं पर नियंत्रण

आचार्य यह कहना चाह रहे हैं कि अगर आपको अपनी इच्छा पर नियंत्रण करना है, तो आप इस तरह से सोचने की कोशिश करें कि हम इस आहार को बहुत बार ले चुके हैं। अब हमें जितना लेना है, अपना केवल थोड़ा सा जीवन चलाने के लिए लेना है। यह भावना कैसे पैदा होगी? यह तभी पैदा होगी जब आपको यह पता पड़ जाए कि इस पुद्गल काया ने हमारे ऊपर बहुत अधिकार जमा रखा है, तब यह भावना आएगी। हमें खाने के लिए जीना है या जीने के लिए खाना है? बोलो! सोच समझ कर बोलना, नहीं कुछ भी बोल पड़ो। खाने के लिए जीना है या जीने के लिए खाना है? बात में कोई ज्यादा अन्तर तो है नहीं, जी तो दोनों ही रहे हैं। एक खाने के लिए जी रहा है और एक जीने के लिए खा रहा है। बताओ क्या चाहिए आपको?

वर्तमान की विपरीत सोच- खाने के लिए जीना

सही बोलना! खाने के लिए जिएगा तो खाने के लिए जी रहा हूँ भाई! अब जी रहा हूँ तो खाना तो चाहिए, यह आखिर इतनी चीजें किस लिए बनी हैं? आज के बच्चों से कहो कुछ भी तो क्या बोलते बच्चे? ये सब इतने सारे अच्छे-अच्छे व्यंजन, इतनी अच्छी-अच्छी dishes किस लिए बनी हैं? यह नहीं खाओ, वह नहीं खाओ, अरे भाई! खाने के लिए ही तो बनी हैं। बच्चों का उत्तर क्या होता है? जब ये चीजें खाने के लिए हैं तो खाने दो न, मना क्यों करते हो? रोकते क्यों हो? उन बच्चों को यह नहीं पता होता है कि हमें खाने के लिए जीना है कि जीने के लिए खाना है। उनकी वह tendency क्या बता रही है कि वे खाने के लिए जी रहे हैं। जीते रहेंगे तो खाने को मिलता रहेगा। आज हमने यह खा लिया, शाम को यह खायेंगे, कल फिर यह खायेंगे, फिर दोपहर में यह खायेंगे, ऐसा उनके दिमाग में चलता रहता है। यह क्या हो गया? यह खाने के लिए जी रहा है। कल इसलिए जीना है क्योंकि कल हमें यह खाना है, वह आज नहीं मिला है, आज तो उसकी सामग्री, raw material आया है, कल बनाया जाएगा। कल हमें यह मिलेगा तो इसलिए वह कल

जीने के लिए खाना, यह भाव ही बनेगा समाधि मरण में सहयोगी



कठिनाई से प्राप्त मनुष्य जीवन से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है।

अन्वयार्थ- (जीवो) जीव (अणेगाइं जम्मण-मरण-परियट्ठण-सयाइं) अनेकों, जन्म-मरण के, परिवर्तनों के, सैकड़ों को **(काऊणं)** करके **(जइ)** यदि **(दुक्खेण)** दुःख से **(माणुसत्तं)** मनुष्यपने को **(लहइ)** प्राप्त करता है 'तो' **(जह)** जैसी **(इच्छियं)** इच्छा हो 'वैसा अर्थात् आत्मा की सर्वोत्कृष्ट अवस्था, मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है' ॥67॥

आचार्य कहते हैं...अगर ऐसा नहीं करोगे तो **‘जम्मण-मरण-परियट्ठण-सयाइं अणेगाइं’** अनेक बार तुम्हें जन्म मरण के ये सैकड़ों परिवर्तन अनेक बार तुम्हें ऐसे ही करते रहने पड़ेंगे और फिर इस तरह के परिवर्तन करते-करते, करते-करते बड़े दुःख से तुम्हें मनुष्य जन्म की प्राप्ति होती है और जो तुम्हें यह मनुष्य जन्म मिला है, यह बड़ी दुःख से मिला है। दुःख यानी? बहुत कष्ट सहन करने के बाद में तुम्हें यह मनुष्य जन्म मिला है। अब इस मनुष्य जन्म को प्राप्त करके **‘जहिच्छियं जीवो’** जैसी तुम्हारी इच्छा बने, वैसा तुम करो। अब इच्छा अगर अच्छी बना लो तो अच्छे ढंग से भी जी लोगे और इच्छाएँ अगर सही ढंग से नहीं समझोगे तो फिर जैसे जीते आए हो वैसे ही जीते रहोगे। आचार्य कहते हैं....यह मनुष्य जन्म बहुत दुर्लभ है और इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को कैसे बताया गया? इसको तुमने प्राप्त कर लिया लेकिन दुर्लभता से प्राप्त होने के बावजूद भी यह क्षणभंगुर है।



गाथा: 68

दुर्लभ मनुष्यभव को प्राप्त कर, धर्म में लगाना श्रेयस्कर है; खेद करना व्यर्थ है

तं तह दुल्लह-लंभं, विज्जु-लया-चंचलं च मणुयत्तं ।
धम्मंमि जो विसीयइ, सो काउरिसो ण सप्पुरिसो ॥68 ॥

अन्वयार्थ- (जो) जो 'पुरुष; शास्त्रों में जिस तरह मनुष्यभव की प्राप्ति तथा उसके उपयोग की दुर्लभता के दृष्टांत दिये जाते हैं' **(तह)** उसी तरह **(विज्जु-लया-चंचलं दुल्लह-लंभं तं मणुयत्तं)** विद्युतरूपी, लता के समान, चंचल 'तथा' दुर्लभता से, प्राप्त, उस, मनुष्यपने को **(धम्मंमि)** धर्म 'संबंधी कार्य' में **(ण)** न 'लगाकर' **(विसीयइ)** विषाद यानी खेद/दुख करता है 'तो समझो कि' **(सो)** वह **(काउरिसो)** कायरपुरुष है **(सप्पुरिसो)** सत्पुरुष **(ण)** नहीं 'हो सकता है' ॥68 ॥

अति दुर्लभ मनुष्य जन्म क्षणभंगुर है

तीसरी गाथा में क्या कहते हैं? 68 नम्बर की गाथा में कि दुर्लभता से तो तुमने इसको प्राप्त किया लेकिन 'विज्जु-लया-चंचलं च मणुयत्तं' यह मनुष्यपना बिजली के समान है। बिजली अर्थात् चमक गई और गई। चमक गई, चमक गई बस। वह कब चमकी और कब गई पता ही नहीं पड़ता। ऐसे ही यह मनुष्य जन्म कब आया? कब गया? कभी-कभी पता ही नहीं पड़ता। यह विद्युत के समान क्षणभंगुर है, चंचल है, लता जैसे हिलती रहती है, ऐसे ही यह भी हमेशा, अब आया कि अब गया कि अब मरा कि अब जिया, इसके साथ संशय बना ही रहता है, ऐसा यह मनुष्य जन्म है। एक तो बहुत मुश्किल से मिलता है, दुर्लभता से मिलता है, बड़े पुण्य से मिलता है और मिलने के बावजूद भी यह टिकता नहीं है ज्यादा और थोड़े बहुत दिन टिक जाए तो तुम्हें फिर क्या दिखता है?

अनन्तकालीन तृष्णा के संस्कार, धर्म में खेद-खिन्नता का कारण

अब खा लो, अब खा लो, अब पी लो, अब भोग लो तो यह जो आता है, उसके बीच में यह कहाँ से आता है? यह पिछले जन्मों की तृष्णा के कारण से उसका मन कभी भी पिछले जन्मों में भरा नहीं, उसकी तृष्णा कभी भी अनन्त जन्मों में भी कभी पूर्ण हुई नहीं...इसलिए उसे इस जन्म को प्राप्त करके फिर से यह तृष्णा में जीवन चला जाता है। अब इस तरह की तृष्णा से रोकने के लिए आचार्य कहते हैं...अगर तुम इस तृष्णा में जीवन जीते चले जाओगे, तो धर्म से तुम्हें, क्या होगा? खेद-खिन्नता होगी। 'धम्मंमि जो विसीयइ' धर्म से जो विषीदति अर्थात् खेद-खिन्न होता है...अरे भाई! अब यही तो खाने-पीने, मौज उड़ाने का time था

और उसी time पर यह धर्म का भाव आ गया। अब यह भी नहीं खा रहे, यह भी नहीं खा रहे, यह भी नहीं पी रहे, यह भी सब छुड़ा दिया, यह क्या हो गया? हे भाई! यह धर्म तो अपने को खाने-पीने नहीं देता तो धर्म से उसको खेद-खिन्नता आने लग जाती है। जबकि खेद-खिन्नता किससे आनी चाहिए थी?

अनन्तों काल का पुद्गल ग्रहण बने खेद-खिन्नता का कारण

यह खाना-पीना तो अनन्त बार, बहुत बार हो चुका है, बहुत खा लिया, सब खा लिया। आचार्य कहते हैं, कोई नया गेहूँ है ही नहीं है market में। मतलब न कोई नयी सब्जी है, न कोई नया गेहूँ है; ऐसा कोई भी पुद्गल नहीं है, जो अपन ने खा कर उसको छोड़ा न हो। वह वैसा का वैसा नये-नये रूपों में बनकर आता रहता है लेकिन नया पुद्गल कुछ भी नहीं होता है। अगर यह बात दिमाग में बैठ जाती है, तब तो उसकी तृष्णा में कुछ कमी आती है और अगर यह ज्ञान नहीं है, तो तृष्णा बढ़ती ही चली जाती है।

धर्म से विपरीत सोच, कायर-पुरुष का लक्षण

धर्म से वह दूर हो जाता है क्योंकि उसे लगता है कि इस जन्म में मुझे यह खाने पीने के लिए मिला है, तो धर्म के चक्कर में अभी पड़ेंगे तो ये सभी मजे किरकिरे हो जायेंगे। न ये कुरकुरा खाने देंगे और न ये चाऊमीन खाने देंगे, न ये pizza-burger खाने देंगे, न ये चाय पीने देंगे, न coffee पीने देंगे; जन्म-जन्म के दुश्मन मेरे सामने कहाँ से आ गए? इसलिए वह धर्म से दूर रहता है। धर्म की बात आते ही उसे खेद-खिन्नता होने लग जाती है। देखो! बीच में धर्म मत लाना, अभी यह धरम-वरम करने का time नहीं मेरा। मुझे खाने-पीने दो, चैन से रहने दो, मुझे जीने दो और ऐसा करते-करते क्या होता है? उसे जो क्षणभंगुर जीवन मिला था, वह कभी भी नष्ट हो जाता है और उसकी तृष्णा न इस जन्म में पूरी हुई, न अगले जन्म में पूरी होगी। ऐसे जीवों को यहाँ क्या कहा गया है? **‘सो काउरिसो ण सप्पुरिसो’** वह कापुरुष है, कापुरुष बोलते हैं? कायर पुरुष को। पुरुष के साथ में जब ‘का’ लगा दिया जाता है, तो वह कापुरुष हो जाता है। कायर, डरपोक, दीन, हीन और सत्पुरुष? जो इस तरह की तृष्णा से ऊपर उठ जाए, वह सत्पुरुष है। अब सोचना है कि क्या बनना है? कापुरुष या सत्पुरुष? इसी को कायर कहते हैं, इसी को कातर कहते हैं; कातर एक शब्द आता है न? बहुत से लोगों ने तो सुना ही नहीं होगा। जब भजन पढ़ते हैं, तभी सुनने में आता है उन्हें; कौन सा भजन?

**अस्त हो रहे ज्ञान सूर्य ने, सोचा था एक दिन की शाम,
मेरे ढल जाने के बाद, कौन करेगा मेरा काम।
अंधकारमय मोह जगत में, ज्ञान प्रकाश भरेगा कौन?
मेरे जीवन की बुझती ज्योति को और जलाए कौन।
सब अयोग्य कातर दिखते हैं, कोई न दिखता है निष्काम,
मेरे ढल जाने के बाद, कौन करेगा मेरा काम?
कौन करेगा मेरा काम?**

यह आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज ने सोचा। क्या दिख रहा था उन्हें? सब अयोग्य, कातर दिखते हैं, कातर मतलब? कातर मतलब? कायर, डरपोक या जो कतराते रहे हर काम से। कातर अर्थात् कतराना। कोई भी अच्छा काम बताया; बच गए, बचने के बहाने ढूँढ़ लिए। जो व्यक्ति कतराएगा, वह चारित्र को कभी भी अंगीकार नहीं कर सकता है। उन्होंने देखा कि सब कोई हमें ऐसा दिखाई दे रहा है, **‘कोई न दिखता है निष्काम’** जिस व्यक्ति के अन्दर किसी भी तरह की तृष्णाएँ न हो, वही व्यक्ति सत्पुरुष कहलाता है और ऐसा सत्पुरुष उन्हें एक मिला जीवन में... वह विद्याधर था और उसी सत्पुरुष ने आज न जाने कितने सत्पुरुष तैयार कर दिए। कापुरुष होता तो कापुरुष ही तैयार होते और सत्पुरुष थे तो सत्पुरुष तैयार हो गए।

सत्पुरुष तथा कापुरुष की परिभाषा

एक सत्पुरुष कई सत्पुरुषों को तैयार कर सकता है, बशर्ते कि उनके अन्दर यह पता हो कि क्या सत्पुरुषपना होता है और यह सत्पुरुषपना इसी का नाम है... जो तृष्णा को जीतता है, वह तो सत्पुरुष है। जो तृष्णा में बह जाता है, वह कापुरुष है। अब अपने बच्चों की दीन-हीन दशा को देखो। खाने की चीजें सामने आते ही, अब इनको क्या बोलोगे? आप तो कहोगे बच्चा हमारा बहुत अच्छा है लेकिन धर्म की दृष्टि से यह क्या है? यह कापुरुष है कि सत्पुरुष है? तो आपको उसे क्या बनाना चाहिए? सत्पुरुष बनाना चाहिए।

कैसे बनायें बच्चों को सत्पुरुष?

उसको बताना चाहिए बेटा! खाने की मना नहीं, खाओ लेकिन उस खाने की दृष्टि को ध्यान में रखो कि हम जो खा रहे हैं, यह खाना ही हमारा जीवन नहीं है, हमें जीने के लिए खाने की जरूरत पड़ती है, इसलिए खाना चाहिए; न कि खाने के लिए जीना चाहिए। अगर यह बच्चे को समझ में आ पाए तो वह हर तरीके का संयम बना सकता है, हर तरह की चीजों से तृष्णा छोड़ सकता है और हर तरह के वह नियम, संयम के साथ में आगे बढ़ सकता है; यही आचार्यों का ज्ञान है।

जीने के लिए प्रेरित करती है आचार्यों की वाणी- जिनवाणी

आचार्य आपको खाने के लिए प्रेरित नहीं करते हैं, क्या करते हैं? जीने के लिए प्रेरित करते हैं और जीने के लिए जितना खाना है उतना खा लो, कोई बात नहीं लेकिन आचार्य कभी इस बात की प्रेरणा नहीं देते हैं कि तुम यह भी खाओ, यह भी खाओ, यह भी खाओ, यह भी पियो क्योंकि उन्हें पता है... यह सब तो... अब तो बुरी नहीं लग रही जिनवाणी? अच्छी लग रही है? जिनवाणी अच्छी लगती है कि नहीं लगती? यह जिनवाणी में ही आपको मिलेगा बस यह ज्ञान। बाकी दुनिया में सब किताबों में क्या मिलेगा? यह खाने से यह होता है, यह खाने से यह होता है और यहाँ कहते हैं... सब खा-पी चुके, अब थोड़ा सा इस खाने की तृष्णा को छोड़ कर आत्मा का भजन करो, आत्मा का गुणगान करो, आत्मा पर ध्यान दो तो कल्याण होगा अन्यथा तुम्हारा कभी इस संसार से जन्म-मरण से कल्याण होने वाला नहीं है।

जिनवाणी हमें हमेशा जब पहली बार पढ़ोगे तो ऐसा ही लगेगा हमें उल्टा ज्ञान देती है। जिनवाणी पहली बार पढ़ोगे तो आपको बातें सब उल्टी सी लगेंगी। हमें भी जब पहली बार पढ़ते थे तो सब उल्टा लगता था। लेकिन जब पढ़ते जाते हैं, पढ़ते जाते हैं, जब जिनवाणी में रस आने लग जाता है, रस आने लग जाता है तब लगता है; जिनवाणी उल्टी नहीं है, अपनी बुद्धि उल्टी चलती है। यह महसूस हो जाना कि जिनवाणी में उल्टा ज्ञान नहीं है, अपनी बुद्धि उल्टी चल रही है, अपनी बुद्धि उल्टा काम करती है, अपनी बुद्धि गलत सोच रही है; यह जब अपने भीतर से एहसास होने लग जाता है, तब जाकर सम्यग्ज्ञान उतरता है, भीतर से सम्यग्ज्ञान पैदा होता है। इसी का नाम सम्यग्ज्ञान है।

जिनवाणी का ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है, अपना ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं होता है। इसलिए आचार्य कहते हैं... बात तो आपको यही सुननी पड़ेगी, यही समझनी पड़ेगी, चाहे आपको आज समझ में आए या कभी समझ में आए। इसलिए वह लोगों की इच्छा के अनुसार ज्ञान नहीं देते हैं, ज्ञान तो जो सही होगा, वही दिया जाएगा। कभी भी रोगी को रोगी के अनुसार नहीं चलाया जाता है। रोगी की इच्छा के अनुसार कभी भी एक वैद्य नहीं चलता है, वैद्य को अपनी इच्छा के अनुसार रोगी को चलाना पड़ता है; तभी जाकर रोगी का रोग ठीक होता है। तो हम सब क्या हैं? रोगी हैं और जिनवाणी क्या है? रसायन है और वैद्य कौन है? अरे! वर्धमान स्तोत्र पढ़ते नहीं हो? वर्धमान स्तोत्र नहीं पढ़ते हो? उसमें लिखा हुआ है, उस वर्धमान स्तोत्र में लिखा हुआ है कि हे भगवन्! आप तो वैद्य हो और आपकी वाणी रसायन है और वह रसायन हम लोगों के लिए रोग मुक्ति का कारण है। इसलिए जिनवाणी हमें रोगों से मुक्त करती है, भगवान हमारे लिए सर्वश्रेष्ठ वैद्य हैं। वैद्य के अनुसार दवा लेनी पड़ती है, रोगी को अपनी इच्छा के अनुसार नहीं चलना पड़ता है, तभी जाकर रोग ठीक होता है, नहीं तो रोग पर control हो ही नहीं सकता। **‘न भैषज्यं आतुरेच्छानुवर्ती’** यह सर्वार्थसिद्धि की line है कि जो दवा होती है, वह कभी आतुर, अर्थात् रोगी की इच्छा के अनुसार नहीं होती है। इसलिए जब भी हमें लगे कि जिनवाणी में यह बात हमें सही नहीं लग रही है, तो हमें अपना दिमाग संभालना चाहिए और सोचना चाहिए कि हम उल्टे चल रहे हैं; जिनवाणी तो हमें सीधा चलाने की ही कोशिश कर रही है।



गाथा: 69

मनुष्य जन्म प्राप्त होने पर, मात्र जिनधर्म का ही सेवन करना चाहिए

उपजातिवृत्तम्

मणुस्सजम्मे तडिलद्धयंमि, जिणिंधम्मो ण कओ य जेणं।
तुट्टे गुणे जह धाणुक्कएणं, हत्था मलेव्वा य अवस्स तेणं ॥69॥

अन्वयार्थ- (जेणं) जिसने 'भी' (मणुस्स-जम्मे) मनुष्य-जन्म में (तडि-लद्धयंमि) तट यानी संसार समुद्र के किनारे के, प्राप्त होने पर (जिणिंध-धम्मो) जिनेन्द्रदेव का, धर्म 'पालन' (ण) नहीं (कओ) किया 'तो समझो' (तेणं) उसने (जह) जैसे (धाणुक्कएणं) धनुर्धारि के द्वारा 'युद्धक्षेत्र में' (गुणे तुट्टे) प्रत्यंचा के, टूट जाने पर 'उस धनुर्धारि को' (अवस्स) अवश्य 'हाथ मलना पड़ता है ठीक वैसे ही' (हत्था) हाथों को (मलेव्वा) मलने, के समान 'कार्य' (कओ) किया ॥69॥



वैराग्य शतक इस कृति के माध्यम से प्रतिदिन हम थोड़ा-थोड़ा संसार, शरीर और इन्द्रियों के सुखों के बारे में सुनते हैं, प्रतिदिन हमारे अन्दर राग से वैराग्य की ओर जाने की एक ज्ञान की रोशनी दी जाती है और प्रतिदिन हम अपने आपको थोड़ी देर के लिए उस ज्ञान के प्रकाश से भरने की कोशिश भी करते हैं। इसी क्रम में ऋषियों, मुनियों की शिक्षाओं को ध्यान में रखते हुए आगे पढ़ते हैं....गाथा नम्बर 69, 70 और 71, ये अलग-अलग छन्दों में भी प्राकृत भाषा में लिखे गए काव्य हैं। यह उपजाति छन्द है, जो आपके सामने है...

मणुस्सजम्मे तडिलद्धयंमि, जिणिंधम्मो ण कओ य जेणं।
तुट्टे गुणे जह धाणुक्कएणं, हत्था मलेव्वा य अवस्स तेणं ॥69॥

रे जीव ! णिसुणि चंचलसहाव, मिल्हेविणु सयलवि बज्झभाव।
णव-भेय-परिग्गह-विविह-जाल, संसारि अस्थि सहु इंदयाल ॥70॥

पिय-पुत्त-मित्त-घर-घरणि-जाय, इहलोइय सव्व णिय- सुह-सहाय।
ण वि अस्थि कोइ तुह सरणि मुख्ख! इक्कल्लु सहसि तिरि-णिरय-दुक्ख ॥71॥

मनुष्य जन्म बिजली के समान चंचल

प्राकृत भाषा के ये छन्द अन्यत्र कहीं पर भी उपलब्ध नहीं होते हैं, यह इस कृति में अलग-अलग तरह से

ज्ञेय रूप में हमें छन्दों को पिरो करके ज्ञान दिया गया है। आचार्य कहते हैं... **‘मणुस्सजम्मे तडिलद्धयंमि’** यह मनुष्य जन्म ऐसा है, जैसे कि हमने किसी एक तरह से तट को प्राप्त कर लिया हो। अगर हम थोड़ा सा तड़ित शब्द को देखें तो यह तड़ित मतलब बिजली भी होता है। जैसा कि ऊपर कहा था... **‘विज्जुलया चंचलम्’** अर्थात् यह मनुष्य जन्म जो हमें प्राप्त हुआ है, जैसे कि मानो हमने बिजली ही पकड़ ली हो। वैसे बिजली पकड़ी नहीं जाती, बिजली चंचल होती है, उसको कोई भी पकड़ नहीं पाता। लेकिन उस चंचल बिजली की तरह ही यह मनुष्य जन्म हमें प्राप्त हो गया।

जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा बताये मार्ग पर चलने में मनुष्य जन्म की सार्थकता

ऐसा मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी अगर हमने **‘जिणिंदधम्मो ण कओ’** जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बताए हुए धर्म को अगर हमने नहीं माना या नहीं किया तो आचार्य कहते हैं कि जैसे धानुष्क होता है... धनुर्धारी जीव को धानुष्क कहते हैं। वह जब रण में हो, युद्ध के समय पर हो और उसके हाथ का वह धनुष टूट जाए, वह धनुष चलाने के लिए तैयार हो और उसकी वह प्रत्यंचा पर चढ़ाते ही वह डोरी टूट जाए तो क्या होगा? वह उस समय पर **‘हत्था मलेव्वा य अवस्स तेण’** वह उस समय पर केवल हाथ मलता हुआ रह जाएगा। जो काम करना चाहिए था वह काम नहीं कर पाएगा, युद्ध का वह लाभ नहीं ले पाएगा और उस समय पर उसके सामने अगर वह धनुष टूट जाता है, तो वह केवल हाथ मलते हुए रह जाता है, सोचता है अब मैं क्या करूँ?

मनुष्य पर्याय अत्यंत दुर्लभ

ठीक इसी तरह से आचार्य कहते हैं... मनुष्य जन्म को प्राप्त किया अर्थात् तुमने बहुत बड़ी दुर्लभता को प्राप्त कर लिया। अगर देखा जाए तो चार गति में यह मनुष्य जन्म है, तो यह एक संसार का किनारा भी है। अगर संसार के किनारे पर कोई व्यक्ति होता है तो वह मनुष्य ही होता है। नारकी जीव तो संसार में ही पड़े होते हैं, तिर्यच जीव भी संसार में ही घूम रहे होते हैं, देव लोग भी संसार में ही भटक रहे होते हैं, किन्तु मनुष्य को संसार का किनारा कहा जा सकता है... मनुष्य पर्याय। इसलिए क्योंकि मनुष्य उस पर्याय में उत्पन्न होने के बाद वह सब कुछ कर सकता है, जो एक मनुष्य को अपने पुरुषार्थ के माध्यम से करना चाहिए और वह पुरुषार्थ करने की ताकत केवल मनुष्य में होती है। नारकी जीव पुरुषार्थ करना भी चाहे तो कर नहीं सकता, तिर्यचों को पुरुषार्थ करने की प्रेरणा दी जाए तो वह बहुत कम उत्पन्न होती है, देवों के लिए पुरुषार्थ करने की योग्यता बनती नहीं है। अगर एक मात्र मनुष्य को हम देखे तो यह पुरुषार्थ करने की योग्यता बनती है। धर्म का पुरुषार्थ करने की भी और मुक्ति का पुरुषार्थ करने की। धर्म को अर्जित करने के लिए भी मनुष्य जन्म चाहिए और मुक्ति को प्राप्त करने के लिए भी मनुष्य जन्म चाहिए। इसलिए अगर हम देखे तो यह मनुष्य जन्म एक संसार का किनारा है, मानो कि हम संसार के किनारे पर आकर खड़े हो गए। बस! हमें थोड़ा सा उस किनारे पर आने के बाद भी थोड़ा सा हमें और पुरुषार्थ करना चाहिए था तो हम उस किनारे से अपने आप को पार लगा लेते।

कश्ती अक्सर वहाँ डूबती है जहाँ पानी कम रहता है

जैसे चलते-चलते, चलते-चलते किनारे पर आ जाते हैं और किनारे पर भी कभी-कभी नैया डूब जाती है। सुना है न? **‘मेरी कश्ती तो वहाँ डूबी, जहाँ पानी कम था’** ऐसा क्यों कहा जाता है कि जहाँ पानी कम था, पानी कहाँ कम होता है, जानते हो? पानी हमेशा कहाँ कम होता है? पानी किनारे पर ही कम होता है और कश्ती जब भी डूबती है तो कहाँ डूबी? किनारे पर डूबी। हमारी कश्ती वहाँ डूबी जहाँ पानी कम था। ऐसा क्यों कहा जाता है? इसलिए कहा जाता है कि हम जब सोच कर चलते हैं कि भाई हमें पुरुषार्थ करना है, हमें आगे बढ़ना है, हमें बहुत बड़ी नदी को पार करना है। **‘पार कर आया नदी की मझधार को, लेकिन हमारी कश्ती वहाँ डूबी जहाँ पानी कम था’** ऐसी है यह पूरी एक शायरी, शेर।

धर्म करने का पुरुषार्थ केवल मनुष्य पर्याय में ही संभव

पूरी हम उस नदी की मझधार को पार कर आए, जहाँ पर गहरापन होता है, जहाँ पर डूबने के chances होते हैं, वे सब हमने cross कर लिए उस समय पर हम पुरुषार्थ करते रहे। यानी बड़े पुरुषार्थ से हमने मनुष्य गति को प्राप्त किया है, क्योंकि हम नरक से बच कर आए, तिर्यचों की गति से बच कर आए, तब जाकर हमें यह मनुष्य गति की प्राप्ति हुई। अब इस मनुष्य गति में ही बस यह पुरुषार्थ हो पाता है कि हम धर्म कर सकते हैं। देव गति में धर्म करने का पुरुषार्थ नहीं होता। वहाँ तो आपको सुख भोगने का एक बन्धन है, आपके लिए अपने मन को रंजायमान करने के लिए, अपने मन के सुखों की प्राप्ति करने के लिए परिपूर्ण साधन आपको उपलब्ध हैं तो आपको वहाँ पर वही करना होगा जो वहाँ मिलेगा, वहाँ बन्दिशें हैं। जिस वातावरण में आप जन्म लिए हैं, उस वातावरण का उपभोग कीजिए। अब यहाँ पर आकर धर्म की बात मत करिए, वहाँ धर्म नहीं होता। वहाँ किसी भी तरह का आप अपने मन में संयम लाना चाहे, कोई भी तरह का मन के अन्दर हम विचार करना चाहे कि हम थोड़ी देर के लिए इन इन्द्रियों के सुखों से बच जाएँ, भोग-उपभोग के सुखों से बच जाएँ, नहीं बच पाओगे। क्योंकि वहाँ आप सुख भोगने के लिए मजबूर हैं। देव गति में जीव सुख भोगने के लिए मजबूर होता है, नरक गति में जीव दुःख भोगने के लिए मजबूर होता है और तिर्यच गति में जीव बध-बन्धन में पड़ने के लिए मजबूर होता है।

मनुष्य गति, संसार तट का किनारा

एक मनुष्य गति होती है, इसलिए इस मनुष्य गति को अगर हम देखे तो एक संसार तट का किनारा कहा जा सकता है। अब हम यह सारा संसार का जो नदी थी, संसार का जो पूरा बहाव था, हम उसको पार करके आए, इतनी दुर्गतियों से बचते हुए आए और इस मनुष्य गति को प्राप्त हो गए। यहाँ पर आने के बाद में फिर क्या हुआ? हमें यहाँ से तरना था। तैरते-तैरते हम किनारे तक आ गए और किनारे पर आने के बाद में, हमें किनारे पर आने के बाद बस नदी के पार उतरना था, तरना था लेकिन हुआ वही...हमारी कश्ती वहीं डूबी जहाँ पानी कम था। यानी कि जब हमें विश्वास हो गया कि अब हम पार होने ही वाले हैं, पार उतरने ही वाले हैं और उसी समय पर हमारी कश्ती डूब गई। क्यों डूब गई? शायद वह confidence, overconfidence में बदल गया। कभी-कभी overconfidence भी घातक हो जाता है। हम तो अब पार लग ही गए, ऐसा सोचते-सोचते कि हम पार लग ही गए तो भी वह नाव डगमगा जाती है और उस नाव के अन्दर पानी आ

जाता है और व्यक्ति अहं में आकर उस थोड़े से पानी में भी डूब जाता है।

मझाधार की अपेक्षा किनारे पर डूबना एक सोचनीय अवस्था

किनारे पर भी डूबना होता है और किनारे पर जो अगर डूब गया तो इसका मतलब है कि उसने बचने की कोशिश की, उसको बचाने की कोशिश की लेकिन वह बच नहीं पाया। जब व्यक्ति किनारे पर डूबे तब वह ज्यादा शोचनीय अवस्था को प्राप्त होता है, बजाय इसके कि वह मझाधार में डूबे, बीच में डूबे। भाई! बीच में तो सबको डूबना ही था, बहाव बहुत था, सबको पता है कि वहाँ पर से तो कोई बच कर आ नहीं पाता तो वहाँ पर डूब गए। वहाँ पर अगर हमारा संसार बढ़ गया तो कोई बात नहीं है, क्योंकि वहाँ सबको मालूम है, वहाँ डूबना ही है। आश्चर्य की बात तब होती है, जब किनारे पर हम आने को होते हैं और हम हाथ बस किनारे पर रखने वाले होते हैं, थोड़ा सा दूरी बचती है और हमें लगता है कि बस अब तो हम पार ही लगने वाले हैं और उसी समय पर हम डूब जाएँ तो आप समझो यह बहुत बड़े अफसोस की बात होती है। अफसोस किसका होगा? आप train को पकड़ने के लिए जा रहे थे और बस आप पहुँचे ही थे और आपके ही सामने पहुँचते-पहुँचते train start हुई और उसने गति पकड़ ली। आप थोड़ी सी तेज भी दौड़े लेकिन उसको पकड़ नहीं पाए। आपकी पहले से टिकट book थी, reservation था, सब था लेकिन आपकी train छूट गई। क्या करेंगे? **‘हत्था मलेव्या’** अब क्या करेंगे? यह भी प्राकृत की भाषा, देखो यह संस्कृत में नहीं मिलेंगे ऐसे शब्द। जब भी आपको ऐसा अफसोस हो, तो क्या सोचना? अब क्या करें? हाथ मलते रह गए...अरे भाई! थोड़ी सी चीज में, थोड़ी से देर में इतनी बड़ी चीज हमारे सामने से निकल गई, अब क्या करें?

सामने आई हुई उपलब्धि को प्राप्त न कर पाना अर्थात् हाथ मलते रह जाना

हाथ मलते रह गए, यह भी एक कहावत है न? हाथ मलते रह गए। हाथ मलते रह गए अर्थात् हमारे सामने कोई उपलब्धि होनी थी, कोई chance आया था और हम उस chance को भुना नहीं पाए तो हम हाथ मलते रह गए। चुनाव आ रहे हैं और उन चुनावों में भी सब लोग अपना-अपना पुरुषार्थ करते हैं। लेकिन यह भी बात है कि विजय तो दो पार्टियों में से एक की होती है और इस बार तो MP के अन्दर देखा जाए तो लोग कहते हैं भाई! कमल तो खिलेगा। कमल तो खिलेगा, अब यह पता नहीं है कौन सा कमल खिलेगा कि कमल का नाथ खिलेगा? मतलब कमल दो चीज हैं, एक कमल का फूल है और एक कमलनाथ है, अब यह पता नहीं है लेकिन कमल तो खिलेगा। जब दो चीजें होती हैं तो सामने एक चीज निश्चित होती है कि यह होगा। अब दो में से एक की विजय होगी तो एक को तो हाथ मलना ही पड़ेगा, अब यह नहीं कहा जा सकता कि कौन हाथ मलेगा? लेकिन हर व्यक्ति पुरुषार्थ करता है। पुरुषार्थ करते-करते भी कई बार सब तरह के जो भी हमारे अनुमान होते हैं, वह सब बदल भी जाते हैं, कभी-कभी अपने अनुमानों के अनुसार काम हो भी जाता है। बात यह है कि अगर हमने बहुत मेहनत की है और मेहनत करने के बावजूद भी अगर हमें उसका फल नहीं मिलता है तो बहुत अफसोस होता है, इसी को कहते हैं- हाथ मलना।

अच्छे उद्देश्य के साथ की मेहनत से सफलता

हम यह देखे कि हम जो यह मेहनत कर रहे हैं, यह मेहनत हमारी किस ओर जाती है? एक मेहनत होती है अपने संसार के कामों में लगने की, अपने परिवार की चलाने की। एक मेहनत होती है- देश के लिए कुछ करने की, धर्म के लिए कुछ करने की, यह भी एक मेहनत होती है। इस मेहनत के साथ-साथ जब हम यह देखते हैं कि हमारा जीवन अगर वास्तव में अच्छे उद्देश्यों के साथ धर्म के लिए हमें कुछ करना है, देश के लिए हमें कुछ करना है, अगर इन उद्देश्यों के साथ आगे बढ़ता है तो भले ही हमारे लिए वह सफलता मिले या न मिले लेकिन आदमी के उद्देश्यों के कारण से उसे उसका सुख मिलता है, उसे उसका पुण्य भाव हमेशा सहयोगी बनता है। उसे हमेशा यह बात समझ में आती है कि हमने जो कुछ भी किया है अपने जीवन में, दूसरों के हित के लिए किया है। वह हम हित पूरा कर पाएँ या न कर पाएँ, कोई बात नहीं लेकिन हमने अपने उद्देश्य में किसी तरह की कोई कमी नहीं रखी।

धर्म सेवा के उद्देश्य से जीवन में संतुष्टि

क्या होता है? आदमी के हाथ कोई चीज लगे या न लगे लेकिन वह अपने आप में सन्तुष्ट रहता है। अगर आप धर्म की सेवा करना चाहते हैं, देश की सेवा करना चाहते हैं, समाज की सेवा करना चाहते हैं तो यह आपके उद्देश्य आपके जीवन को आगे बढ़ाते हैं और आप अगर किसी भी तरह की कोई प्राप्ति न भी कर पाएँ, उपलब्धि न भी कर पाएँ तो भी आपके लिए हाथ मलने वाली स्थिति नहीं आती है। हाथ मलने का काम कब होता है? जब हम कोई चीज को पाने के लिए तत्पर हो और उस समय पर हमारे लिए उद्देश्य तो कुछ न हो लेकिन हम केवल बस उस चीज पर दृष्टि रख रहे हो, वह चीज हमें मिल जाए और नहीं मिल पाए तब हाथ मलना कहा जाता है। हम इसी तरह से समझे कि अगर हमारे सामने धनुष चलाने का अवसर आया, हम युद्ध में थे और उसी समय पर क्या हुआ? हमने कमान तानी और डोरी टूट गई। अब वहाँ पर कुछ भी उपाय नहीं है, दूसरा धनुष लाने का, उस डोरी को बांधने का तो यह क्या होगा? यह हाथ मलना होगा। मनुष्य जन्म को प्राप्त किया...हम और भी बहुत सारे कामों में लग गए लेकिन अगर हमारे सामने एक अच्छा उद्देश्य होता तो शायद हमें हाथ नहीं मलना पड़ता और वह अच्छा उद्देश्य क्या हो सकता है?

जैन धर्म के अनुसार पर कल्याण की अपेक्षा स्व कल्याण महत्वपूर्ण

दुनिया के सामने दो चीजें होती हैं- या तो हम दूसरे का कल्याण करें या हम अपना कल्याण करें। स्व-कल्याण या पर-कल्याण। कभी-कभी व्यक्ति जब देश की, समाज की, धर्म की सेवा में जुटता है तो अपना एक उद्देश्य बना लेता है कि मुझे पर-कल्याण करना है। लेकिन जैन आचार्यों की ये विशेष बातें रही हैं कि उन्होंने कहा है कि पर-कल्याण के साथ में भी स्व-कल्याण का ध्यान रखना। कभी-कभी तो यह भी कहा गया है कि स्व-कल्याण ज्यादा महत्वपूर्ण है, पर-कल्याण इतना महत्वपूर्ण नहीं है। जैन धर्म के अन्दर यह जो एक सिद्धान्त है- स्व-कल्याण का, यह अन्य धर्मों से हमें थोड़ा सा अलग करता है।

आत्म कल्याण के लिए चन्द्रगुप्त मौर्य ने ली जैनोद्री दीक्षा

एक आपको बात बता रहा हूँ, यहाँ पर विधायक महोदय भी बैठे हैं। जब चन्द्रगुप्त यह मन बना लेता है कि मुझे सन्यासी होना है, सन्यासी होना है यानी मुझे जैन धर्म में दीक्षा लेना है तो चाणक्य को यह पता पड़ता है। चन्द्रगुप्त अपनी बात को बताने के लिए चाणक्य के पास आते हैं और कहते हैं कि मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ तो चाणक्य पहले से ही बोलने लग जाते हैं...मुझे पता है तुम क्या कहना चाह रहे हो? आपको कैसे पता? मुझे पता है कि मेरे आसपास क्या होता रहता है? मैं जान रहा हूँ, तुम यह सन्यास लेना चाह रहे हो, यानी तुम यह सब समाज-सेवा छोड़ना चाह रहे हो। यह आत्म-कल्याण का मार्ग, यह तुम्हारे दिमाग में बस गया है। यह एक तरह का सामाजिक अभिशाप है। चाणक्य क्या बोलता है? यह एक तरह का सामाजिक अभिशाप है। हमें दुःख है कि तुम इसकी गिरफ्त में आ गए लेकिन कोई बात नहीं...तुम सन्यास लेना चाहते हो, तुम अपना कल्याण करना चाहते हो, करो हम तुम्हें रोकेंगे नहीं।

केवल जैन तीर्थकरों द्वारा स्वहित की महत्ता का वर्णन

मतलब? विचारों का द्वंद्व आप इस dailog में समझ सकते हो, विचारों में मतभेद आप इस dailog में समझ सकते हो। चाणक्य कहता है कि मुझे समाज-सेवा करनी है, मुझे देश का कल्याण करना है, मुझे समाज के हित में काम करना है, मैंने यह मन बनाया है। चन्द्रगुप्त क्या कहते हैं? कि समाज-कल्याण बहुत हो चुका, मुझे अब आत्म-कल्याण करना है। चाणक्य उस बात को एक अभिशाप के रूप में वहाँ कहते हैं। उनकी दृष्टि में क्या है? एक सामाजिक अभिशाप यानी आत्म-कल्याण करना एक सामाजिक अभिशाप के रूप में वह वहाँ कह रहे हैं कि यह तुम भी इस बुराई में फँस गए अर्थात् उनकी दृष्टि में वह चीज अच्छी नहीं है। यह बात आपके लिए ध्यान रखने योग्य है, यह बात वास्तविक है। दुनिया में किसी भी धर्म के अन्दर आप देखोगे, परहित की बात तो कही गई है लेकिन स्वहित की बात सिर्फ और सिर्फ तीर्थकरों के द्वारा कही गई है, जैन धर्म के अन्दर कही गई है।

परहित करना आसान है कि आत्महित?

आचार्य यहाँ तक भी कहते हैं... ‘आदहिदं कादव्यं’ पहले आत्महित कर लेना चाहिए, ‘जइ सक्कइ पर हिदं च कादव्यं’ यदि समर्थ हो तो परहित करना। अगर समर्थ नहीं हो तो आत्महित तो कर ही लेना। अब आप सोचें कि परहित करना आसान है कि आत्महित करना आसान है? अलग-अलग दृष्टि से अगर हम देखेंगे तो परहित करना लोगों को आसान लगता है। लेकिन परहित में भी कठिनाई है और परहित के अनुसार अगर हम चलते हैं, तो कभी-कभी परहित में इतनी बुद्धि लग जाती है कि फिर आत्महित करने की बुद्धि बनती नहीं है तो आत्महित उससे भी ज्यादा कठिन हो जाता है। जितने भी चिन्तक हुए, उनके अन्दर यह छंद रहे, परहित में लगे कि आत्महित में लगे।

स्वहित में ही मनुष्य जन्म की सार्थकता

जैन तीर्थकरों ने कहा कि पहले आत्महित के बारे में सोचो क्योंकि परहित करते हुए कहीं तुम्हारी उम्र पूरी

ही गई, समय तुमसे चला गया, मनुष्य जन्म मिला था, तुम परहित में लग गए और कुछ नहीं कर पाए तो क्या होगा? **‘हत्था मलेव्या’** क्या करना पड़ेगा? हाथ मलते रह जाओगे क्योंकि परहित का कोई भी उसकी सीमा नहीं है, संसार हमेशा से है, हमेशा से रहेगा। संसार में लोग हैं, चलते रहेंगे, हमेशा दुःखी लोग मिलेंगे, हमेशा गरीब लोग मिलेंगे, हमेशा अनाथ लोग मिलेंगे, हमेशा असहाय लोग मिलेंगे, आप कितने भी जन्म धारण करते रहोगे तो भी आप इस गरीबी को, इस असहायता को, इस अनाथता को कभी दूर नहीं कर पाओगे। ये बातें बिल्कुल बेमानी हैं कि अगर कोई कहे, चाहे वह कोई भी party का हो, चाहे वह भाजपा का हो, चाहे वह congress का हो, कोई भी party वाला व्यक्ति अगर यह बात कहता है कि मैं गरीबी इस दुनिया से दूर कर दूंगा तो यह सबसे बड़ी बेईमानी की बात है, यह सबसे बड़ा झूठ है। दुनिया के अन्दर से गरीबी कभी दूर नहीं हो सकती। कोई नेता कभी इस गरीबी को दूर नहीं कर सकता क्योंकि यह गरीबी साथ में चलने वाली चीज है, अमीरी की तरह। जैसे दिन के साथ में रात रहती है, ऐसे ही गरीबी के साथ यह अमीरी चलेगी, सुख के साथ दुःख चलेगा, धूप के साथ जैसे छाया चलती है, वैसे ही चलेगी, इसको कोई दूर नहीं कर सकता। ये बातें सब बेईमानी हैं कि अगर कोई कहे कि मैं इस सत्ता में आ जाऊँ तो मैं गरीबी दूर कर दूंगा। कभी किसी की गरीबी दूर नहीं हो सकती। आप कितनी चीजें मुफ्त में बाँट लें, कितने भी आप प्रलोभन दे ले किसी के लिए, कितनी ही तरह की योजना बना ले, कभी किसी की गरीबी दूर नहीं हो सकती। हर आदमी के अन्दर गरीबी उसके मन में बसी हुई है, वह गरीबी बनी ही रहेगी। आदमी के अन्दर हम समाज-सेवा के माध्यम से जब यह भाव देखते हैं कि उसे परहित करना है, परहित करना है तो आप यह भूल जाते हैं कि परहित करने में अपना हित कितना है। कई लोग कहते हैं...परहित में ही अपना हित समाया हुआ है लेकिन तीर्थंकर कहते हैं...नहीं! ऐसी बात नहीं है, अपना हित अलग से करना पड़ता है। परहित अलग चीज है और परहित करते हुए आप सन्तोष थोड़ा सा ले सकते हो कि हाँ! इसमें भी आत्महित निहित है लेकिन वास्तव में आत्महित तो अलग से करना पड़ता है।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने समय रहते परहित को छोड़कर आत्महित के लिए सन्यास धारण किया

चन्द्रगुप्त भी है, वह बहुत बड़ा साम्राज्य का एक बहुत बड़ा राजा है, मुकुटबद्ध राजा, वह अन्तिम मुकुटबद्ध राजा माना गया है। इतना बड़ा अखण्ड साम्राज्य का अन्तिम वह नायक था, जो राजा होते चले आ रहे थे, उनमें यह अन्तिम राजा था जिसने मुनि दीक्षा को अंगीकार किया। आचार्य भद्रबाहु के पास में वह गए, सन्यास धारण किया, उसके बाद में कोई भी ऐसा अखण्ड भारत का कोई राजा नहीं हुआ जिसने सन्यास धारण किया हो, वह अन्तिम राजा माने जाते हैं, चन्द्रगुप्त मौर्य। उन चन्द्रगुप्त ने भी यह समझ करके कि मैं अगर परहित में ही लगा रहूँगा तो मुझे समय नहीं मिलेगा और यह समय जो मेरे हाथ से जा रहा है, फिर बाद में मुझे हाथ ही मलना पड़ेगा, यह गाथा शायद उनके सामने रही होगी। जिसने मनुष्य जन्म को प्राप्त करके तीर्थंकरों के बताए हुए धर्म को नहीं जाना, जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बताए हुए धर्म को नहीं जाना, वह कभी अपना आत्महित कर ही नहीं सकता। यहाँ जिनेन्द्र भगवान के धर्म को नहीं जानने का मतलब क्या? मैं यह नहीं कह रहा कि जिनेन्द्र भगवान के धर्म को मानना। आत्महित की बात अगर कहीं मिलेगी तो आपको जैन धर्म के अन्दर ही मिलेगी। परहित करने के लिए अनेक लोगों ने प्रयास किए और परहित करने वाले लोगों की खूब प्रशंसा होती है दुनिया के अन्दर। इन्होंने समाज सेवा के ये बड़े काम किए, इन्होंने देश सेवा के बड़े काम किए, उनके नाम खूब लिए जाते हैं, उनकी खूब statue बनाई जाती हैं, उनके ऊपर

खूब माल्यार्पण किया जाता है, उनको लोग मानते हैं, उनको अपना ideal बनाते हैं। किनको? जो परहित में अग्रणी होते हैं। बुरा नहीं कह रहा हूँ, अच्छा है।

जैन धर्म की विशेषता- आत्महित करने के लिए आपको परहित का भी संकल्प छोड़ना पड़ेगा

लेकिन जैन धर्म की यह जो विशेषता है, वह आपको ध्यान में रखनी होगी कि अगर मनुष्य जन्म प्राप्त करके आप केवल परहित, परहित, परहित में लगे रहे और आपने आत्महित नहीं किया तो आपको जरूर अन्त में असन्तोष होगा, आपको हाथ मलने जैसी स्थिति बनेगी जो यहाँ कहा जा रहा है। क्योंकि आत्महित करने के लिए आपको परहित का भी संकल्प छोड़ना पड़ेगा। आप सोचे कि जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य थे वह, कितने बड़े सम्राट थे? वह चाहते तो कितने लोगों का क्या हित नहीं कर सकते थे? अब हित में क्या करोगे? आप इतना ही कर सकोगे, लोगों को सबके पास में उनकी रोटी दे दो, लोगों को आजीविका के साधन दे दो, भाई भूखों नहीं मरे, आदमी दो time की रोटी खा ले, चैन की नींद सो ले। इतने से भी क्या उसका हित हो गया? यह हित करना उन समर्थ राजाओं के बस की बात थी और उन्होंने कर भी लिया था लेकिन उसके बावजूद भी उन्हें लगा कि इस हित से भी कोई अपना हित होने वाला नहीं है, तो उन्होंने क्या किया? सन्यास धारण किया। जब वह चाणक्य के पास पहुँचे तो वह कहते हैं कि मैं अब जैन मुनि के पास जा रहा हूँ तो चाणक्य कहते हैं...ठीक है! तुम कहीं भी जाओ लेकिन मैं समाज-सेवा करने के लिए कटिबद्ध हूँ। मुझे समाज सेवा करना है, मैं समाज को आगे बढ़ाऊँगा, मैं देश चलाऊँगा। एक बहुत बड़ा यहाँ पर एक वैचारिक मतभेद आप देख सकते हो और वह मतभेद होते हुए भी दोनों ने अपना-अपना रास्ता अलग-अलग रखा, विवाद नहीं किया, उनका मन हुआ स्वहित करने का तो चाणक्य ने उन्हें जाने दिया।

चाणक्य ने भी अन्त में आत्म-कल्याण की भावना से सन्यास धारण किया

यह बात अलग है कि हिन्दू धर्म में यह नहीं बताया जाता कि चाणक्य ने भी अन्त में आखिर क्या किया? जैन धर्म में वह बताया गया है। चाणक्य ने भी अन्त में सन्यास धारण किया है, चाणक्य ने भी अन्त में अपने अन्दर आत्म-कल्याण की भावना से उस सब समाज-सेवा का त्याग किया और वह भी एक साधु बने और अन्त में उनके ऊपर भी एक बड़ा उपद्रव हुआ, उपसर्ग हुआ और उसमें भी उन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया, समाधि धारण की। इस तरह का पूरा ज्ञान आपको जैन धर्म में दिया जाता है, बताया जाता है और यह आचार्यों ने लिख रखा है। न आपके पास में चाणक्य की पूरी जानकारी है, न आपके पास में चन्द्रगुप्त की जानकारी है। जीवन के अन्त तक क्या होता है? यह बात अगर हम नहीं बताते हैं तो कहानी अधूरी रहती है और यह कहानी सीखने के लिए आपको एक पुस्तक पढ़नी पड़ेगी, सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य। **जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य** के नाम से पुस्तक है और वह पुस्तक **ज्ञानपीठ** से प्रकाशित है और उस पुस्तक के ऊपर अनेक schools में अभी परीक्षा का कार्य चल रहा है, जो यहाँ के कुछ बच्चे आगे आकर कर रहे हैं। यह इसलिए हो रहा है क्योंकि आप समझे, जिन महापुरुषों को आप जिस रूप में देख रहे हैं, वह आपका एकांगी दृष्टिकोण है। आप उनकी पूरी कहानी भी देखे कि उनका अन्त किस रूप में होता है? वे पुस्तकें यहाँ उपलब्ध हैं। जब भी आपके पास में कोई भी विधायक, सांसद आते हैं, आप उन्हें वह पुस्तकें जरूर भेंट किया करें...

एक **चन्द्रगुप्त मौर्य** और एक **भरत का भारत**, ये दोनों पुस्तकें यहाँ उपलब्ध हैं और ये दोनों पुस्तकें ऐतिहासिक पुस्तकें हैं। ये पुस्तकें हर एक पढ़े लिखे व्यक्ति के पास तक पहुँचनी चाहिए। विचार उसके अन्दर तभी आएगा जब वह कुछ पढ़ेगा और पढ़ कर उसमें समझ आएगा कि हाँ भाई! इस चीज का यह अन्त इस तरह से कहा गया है। आचार्य कहते हैं... अपना आत्महित करने के लिए अगर व्यक्ति तत्पर होता है तो इसमें उसे कभी भी हाथ नहीं मलना पड़ेगा। क्योंकि जिसने आत्म कल्याण कर लिया, आत्महित की बात सोच ली तो अब हाथ मलने को बचा क्या? परहित करने के बाद भी आपको हाथ मलना पड़ सकता है लेकिन आत्महित करने के बाद आपको हाथ नहीं मलना पड़ेगा। जो भी समाज-सेवी लोग हैं, देश की सेवा करने वाले लोग हैं, उनसे हम इतना ही कहना चाहते हैं, आप देश की सेवा कीजिए, समाज की सेवा कीजिए लेकिन जब आपको लगे कि हमने समाज-सेवा कर ली, हमारी उम्र तीन चौथाई गुजर गई, एक चौथाई बची है, अब कहोगे हमारी उम्र कैसे हमें पता पड़ेगी? सबको सब पता रहती है।

मनुष्य को उम्र का एक चौथाई भाग स्वहित में लगाने के लिए तत्पर होना चाहिए

अगर हमें ऐसा लगता है कि हमने अपनी उम्र का तीन चौथाई भाग परहित में लगा दिया है तो आचार्य कहते हैं... एक चौथाई भाग अपने को स्वहित में लगाने के लिए तत्पर हो जाना चाहिए। यानी उस समय पर हम अब दूसरों की चिन्ता में न पड़ कर आत्महित के लिए तत्पर हो। वही बातें सुने, वही बातें पढ़े जिससे कि आत्मा की धारणा हमारे अन्दर बने, अपने स्वरूप को जानने का हमारे अन्दर ज्ञान आए। हम केवल उतनी चीजों को पढ़ने के लिए भी हमारे पास में बहुत साहित्य होता है, बहुत चीजें होती हैं, जिसमें आत्महित छुपा होता है। ऐसे उपदेश, अध्यात्म के उपदेश आपके लिए निरन्तर मिलते रह सकते हैं और उन उपदेशों को ग्रहण करके हम उसके अनुसार अगर हम अपनी मनोवृत्ति बनाते हैं तो आपको कभी भी हाथ मलने की नौबत नहीं आएगी। यहाँ पर यह हाथ मलने का जो भाव है, यह इसलिए है कि आदमी इस मनुष्य तट पर आ गया, तट के बहुत निकट आ गया अर्थात् संसार के किनारे पर आ गया और यहाँ किनारे पर आने के बाद में उसे क्या करना चाहिए था? एक हाथ और मारना चाहिए था बस! और वह किनारे पर आ जाता, संसार से पार उतर जाता। वह एक हाथ मारने वाली क्या बात है? जो वहाँ पर आने के बाद में वह गाफिल होने लग जाता है तो पुनः वह उसी मझधार में चला जाता है।

संसार सागर से पार उतरने वालों के मुक्ति हाथ में माला लिए खड़ी रहती है

वहाँ पर आने के बाद में उसे लगता है... अरे भाई! ऐसे सुख, ऐसी पाँच इन्द्रियों के वैभव, ऐसा राजत्व, ऐसा साम्राज्य, इतनी luxury life, यह तो पहले कभी मिली नहीं होगी। बस ऐसा उसने जहाँ सोचा और उस वैभव में जहाँ वह भ्रमित हुआ, बस वहीं से वह पुनः reverse होना शुरू हो गया। जो उसने प्राप्त किया है, उस किनारे पर आकर उसे एक हाथ और मारना चाहिए था कि इसको भी मैं एक हाथ मार के पीछे कर दूँ। जो उसे उस मनुष्य जन्म में उपलब्ध हो गया है, उसे भी वह एक हाथ मार कर पीछे करने की हिम्मत ले आए, इसको भी मैं पीछे कर दूँ, इसको भी मैं छोड़ दूँ, इसको भी मैं अपने मोह से हटा दूँ। बस! जहाँ उसने यह हिम्मत की, वहीं उसके सामने मुक्ति खड़ी हुई है, माला लिए हुए हाथ में खड़ी हुई है कि बस! तू इसको पीछे कर और मैं तुझे माला पहना दूँ।

मुक्तिमाला

कौन सी माला? मुक्तिमाला। मुक्ति की स्त्री खड़ी रहती है किनारे पर लेकिन वह किनारे तक कोई पहुँचता ही नहीं है। सब वहीं किनारे पर आनन्दित होकर फिर से वहीं डूबने की तैयारी कर लेते हैं और फिर से reverse gear लगा लेते हैं और फिर उसी मझधार में पहुँच जाते हैं। जहाँ पर पहुँचने के बाद में एक छोटे से साहस की जरूरत रह जाती है, छोटा सा साहस। बड़ा साहस तो आप करके आए, दुनिया की मझधार पार करके आए लेकिन कश्ती कहाँ डूबी? वहाँ क्यों डूबी जहाँ पानी कम था? यह बात सच है, इसलिए डूबी क्योंकि वहाँ पर हम गाफिल हो गए। हमने सोचा कि अब तो हम किनारे लग ही गए। हमने सोचा कि अब तो हमने मंजिल पा ही ली, बस! इतना सोचते-सोचते ही हम प्रमाद में आ गए और हम डूब गए।

नरक निगोद की यात्रा

यही वजह होती है कि आदमी मनुष्य जन्म को प्राप्त करने के बाद में भी फिर से निगोद तक की यात्रा पर उतर जाता है। भूल गए निगोद? नरक निगोद की यात्रा यह famous है...जैसे Delhi-Bombay famous रहता है, ऐसे ही नरक निगोद की यात्रा famous है। अर्थात् अगर आपने इतनी ऊँचाइयाँ प्राप्त कर ली हैं और वहाँ पर आने के बाद में आप गाफिल हुए तो फिर सीधे नरक निगोद की यात्रा का भी वह पात्र बन जाता है और वह क्यों बन गया? वहाँ पर आकर उसे एक छोटा सा साहस और करना चाहिए था। एक हाथ पीछे और एक हाथ आगे। पीछे के लिए पीछे वाली चीजें पीछे करना और आगे के लिए आगे वाली चीज को पकड़ना बस! और मुक्ति उस तट पर खड़ी थी और वह खड़ी रह जाती है। शायद कोई महापुरुष आए, सत्पुरुष आए लेकिन वहाँ आने के बाद में सब कापुरुष बन जाते हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य एक सत्पुरुष

कल शब्द आए थे न? शब्द महत्व के हैं सभी... सत्पुरुष अर्थात् इतना और साहस कर ले कि जो मिला है उसको और छोड़ दे एक बार और फिर वह सन्यास को धारण कर ले जैसे चन्द्रगुप्त मौर्य ने किया तो वह प्रशंसनीय हो जाता है। वह चन्द्रगुप्त मौर्य, आचार्य भद्रबाहु के पास पहुँच कर जब वह निर्ग्रन्थ दीक्षा को धारण कर लेते हैं तो वह आत्म कल्याण में तत्पर हो जाते हैं तो उनकी प्रशंसा की जाती है। यह इतिहास है, सर्वत्र लिखा हुआ है लेकिन यह बताया नहीं जाता। इसलिए आपसे कह रहा हूँ कि एक किताब जरूर पढ़ना, जो चन्द्रगुप्त मौर्य की यहाँ पर distribute हो रही है, schools में उसकी परीक्षा चल रही है। वह बहुत अच्छा कार्यक्रम हो रहा है। उसमें आप समझ सकोगे कि बच्चों के लिए भी अगर हम यह ज्ञान दे पायेंगे तो इसी तरह से दे पायेंगे, जब हम उन्हें थोड़ा सा कुछ पुरस्कार दे, कुछ हम उनको प्रलोभन दे ताकि वह कम से कम उस निमित्त से पढ़ तो ले।

सन्यास का मतलब कार्यों से मुक्ति

यही बात जब आपके दिमाग में रहेगी, तब आपको लगेगा कि हाँ! हम अपनी उस धरोहर के बारे में भी कुछ जानते हैं और हम यह भी जानते हैं कि पर-कल्याण से ज्यादा महत्वपूर्ण स्व-कल्याण होता है। यह अगर

A horizontal decorative element consisting of a series of small diamonds arranged in a repeating pattern across the width of the page.

गाथा: 70

शरीरादि सभी परिग्रहों को छोड़कर, परलोक की चिंता करना चाहिए

पद्धरीवृत्तम्

रे जीव! णिसुणि चंचलसहाव, मिल्लेविणु सयलवि बज्झभाव।
णव-भेय-परिग्गह-विविह-जाल, संसारि अत्थि सहु इंदयाल ॥70 ॥

अन्वयार्थ- (रे जीव) हे, आत्मन्! (णि-सुणि) अच्छी तरह से, सुनो (चंचल-सहाव) चंचल, स्वभाव वाले 'शरीरादिक' (सयल बज्झ-भाव) सकल यानी सभी, बाह्य, पदार्थों को 'और' (णव-भेय-परिग्गह-विविह- जाल) नव (दस), भेदों वाले, परिग्रह के, विविध, जाल या समूह को (वि) भी (मिल्लेविणु) छोड़कर 'आत्मकल्याण के संबंध में भी विचार करो क्योंकि' (संसारि) संसार में 'जो कुछ है वह' (सहु) सभी (इंदयाल) इंद्रजाल 'के समान क्षणभंगुर' है ॥70 ॥

नौ प्रकार के परिग्रह का इन्द्रजाल, सतरंगी रंगों का आकर्षण

'रे जीव! णिसुणि' सुन ले! यह सब तुझे जो मिले हैं, ये सब चंचल स्वभाव वाले लोग हैं। जो भी तुझे बाहर की चीजें मिली हैं। 'सयलवि बज्झभाव' जो बाहरी जितने भी तेरे पास में पदार्थ हैं, ये सब कैसे हैं? चंचल स्वभाव वाले। जो नौ प्रकार का 'णव-भेय-परिग्गह-विविह-जाल' यह नौ प्रकार के परिग्रह का जो जाल है, यह भी सब संसारी जीवों का इन्द्रजाल ही समझना चाहिए। यह परिग्रह का जाल क्या है? इन्द्रजाल है। इन्द्रजाल का मतलब? वही सतरंगी रंगों का एक आकर्षण। यह नौ प्रकार का परिग्रह यहाँ पर बताया गया है।

वैराग्य शतक ग्रन्थ की विशेषताएँ

इस ग्रन्थ में कुछ-कुछ विशेषताएँ तो मिल रही हैं। ज्ञान जिसे हम बोध कहते हैं, बोध तो मिल ही रहा है, बोध के साथ कुछ शोधपरक बातें भी मिल रही हैं। आपको ध्यान हो तो एक दिन आपको बताया था इसी ग्रन्थ में, यह एक महत्वपूर्ण बात मिली थी कि **नरकों से भी ज्यादा दुःख निगोद में होते हैं।** यह वैराग्य शतक की महत्वपूर्ण बात थी और उसी महत्वपूर्ण बात में यह भी एक महत्वपूर्ण बात जोड़ी जा सकती है जो यहाँ लिखी है, नौ प्रकार के परिग्रह। आज तक हमने कितने प्रकार के परिग्रह पढ़े? 10 प्रकार के परिग्रह पढ़े हैं...क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, स्वर्ण, धन, धान्य, दासी, दास कुप्यप्रमाणतिक्रमाः नौ हो गए, अब कहीं-कहीं तत्त्वार्थ सूत्र के इस सूत्र के साथ में कुप्य के साथ भांड भी जोड़ दिया जाता है, तो भांड जोड़ेंगे तो दस होगा और नहीं जोड़ेंगे तो नौ होगा।

मतलब कि नौ प्रकार का परिग्रह होता है, यह आज तक मुझे reference नहीं मिला। यह पहली बार मुझे यह वैराग्य शतक में reference मिला, यह मेरे लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है। सूत्र मिलता है लेकिन कहीं पर भी यह सूत्र नहीं मिला कि नौ प्रकार का परिग्रह होता है, दस प्रकार का परिग्रह हर जगह लिखा हुआ है और उसमें दस प्रकार के परिग्रह में कुप्य के साथ में भांड अन्तर्भूत है, यह भी टीकाकारों ने लिखा। लेकिन किसी ने यह लिखने की हिम्मत नहीं की कि नौ प्रकार का परिग्रह होता है, यह वैराग्य शतक की बहुत बड़ी देन है, जो मुझे सतना की देन के रूप में हमेशा याद रहेगी। नई बात सब सभा में बताने के लिए कि नौ प्रकार का भी परिग्रह मान्य है, पुराने आचार्यों के द्वारा, ऋषियों मुनियों के द्वारा। प्राकृत भाषा में लिखे इस ग्रन्थ का reference आप दे सकते हैं... गाथा नम्बर 70। यह कितनी अच्छी बात है और यह नौ प्रकार का परिग्रह भी सब यहाँ पर, क्या कहते हैं? यह सब इन्द्रजाल है। इसमें भी तुम कुछ सुख की प्राप्ति की इच्छा मत करो क्योंकि जैसे-जैसे तुम इसको पकड़ते जाओगे, वैसे-वैसे यह तुम्हारे सामने से नष्ट होता चला जाएगा। इसलिए आत्महित की इच्छा करने वाला व्यक्ति परिग्रह को बढ़ाने के चक्कर में नहीं पड़ता, आत्महित की इच्छा करने वाला व्यक्ति पर वस्तुओं की इकट्ठा और उसका संचय करने की स्थिति में नहीं पड़ता, वह पर वस्तुओं में एक हाथ मारकर करके, क्या करता है? उन्हें पीछे छोड़ देता है और अगली मंजिल की ओर आगे बढ़ने की कोशिश करता है। इसको कहा गया... 'सप्पुरुषा' सत्पुरुष ये हैं। ऐसे सत्पुरुष बनते हैं, तब आपके लिए ये भाव जरूर उत्पन्न होंगे कि हमें आत्महित करना चाहिए।



गाथा: 71

**इस संसार में सुख के सभी साथी हैं किन्तु दुख
अकेले ही भोगना पड़ता है।**

**पिय-पुत्त-मित्त-घर-घरणि-जाय, इहलोइय सव्व णिय-सुह-सहाय।
ण वि अत्थि कोइ तुह सरणि मुख्ख!, इक्कल्लु सहसि तिरि-णिरय-दुक्ख ॥71॥**

अन्वयार्थ- (मुख्ख!) हे मूर्ख! (इहलोइय) इस लोक संबंधी (सव्व) सभी (पिय-पुत्त-मित्त-घर-घरणि-जाय) पिता, पुत्र, मित्र, घर, गृहिणी 'आदिकों का' समूह (णिय-सुह-सहाय) निज यानी अपने-अपने, सुख को 'बनाये रखने के' स्वभाव वाला है 'तथा' (तिरि-णिरय-दुक्ख) तिर्यचों और नरकों के दुख 'तुम' (इक्कल्लु) अकेले (सहसि) सहते हो (तुह) तुझे (कोइ) कोई (वि) भी (सरणि) शरण (ण) नहीं (अत्थि) है 'इसलिए आत्मकल्याण में सावधान होवो' ॥71॥

सभी सांसारिक सम्बन्ध अपने-अपने सुख स्वभाव वाले हैं

वही बात यहाँ पर इस पद्धरी छन्द में अलग से 71 नम्बर की कारिका में भी लिखी है। ये जो तुम्हारे पिय हैं, पुत्र हैं, मित्र हैं, घर हैं, घर को चलाने वाली घरनी है, जाया है, ये सब इस लोक में, ये अपने-अपने सुख स्वभाव वाले हैं। क्या हैं? मतलब ये सब अपने-अपने सुख स्वभाव के कारण से तुम्हारे साथ हैं। बात थोड़ी सी गलत सी लगेगी। पत्नी साथ में क्यों रहती है? क्योंकि उसका सुख तुमसे जुड़ा है? पुत्र साथ में क्यों रहते हैं? क्योंकि उनका सुख तुमसे जुड़ा है और वह जुड़ा है तो किस रूप में जुड़ा है? शरण के रूप में नहीं जुड़ा। उन्हें यह लग रहा है कि जब तक ये हैं, ये अच्छा कमाएँगे, अच्छा हमें खिलाएँगे, हमारा सुख इनसे है। देखो! सही बात तो सही है। कभी-कभी आँख बन्द करके भी सुन लिया करो सही बात। आँख बन्द करने का मतलब? जब कोई बात हमें थोड़ी सी कड़वी सी लगती है, बुरी सी लगती है तो आँखें आदमी बन्द कर लेता है, फिर भी कान से सुनने में आ ही जाता है। कभी-कभी ऐसी सच्चाई थोड़ी सी आँख बन्द करके भी सुन लिया करो। जैसे कभी कोई बिल्ली होती है और बिल्ली पर मार पड़ती है तो बिल्ली आँख बन्द कर लेती है लेकिन फिर भी खाती तो वही रहती है, चाटती तो मलाई रहती है लेकिन छोड़ती नहीं है। पता तो होता है उसे कि डण्डा पड़ रहा है। उसी तरह से कभी-कभी सच्चाई आप सुन लिया करो और यह सच्चाई है, सब अपने-अपने सुख के कारण, बोलते हैं न वह? **‘अपने अपने सुख को रोवे पिता पुत्र दारा’** बस! वही वाली बात है। अपने-अपने सुख सबको दिख रहे हैं और अपने-अपने सुखों के लिए सब क्या करते हैं? आपसे तरह-तरह की माँग करते हैं, आपको तरह-तरह से आगे बढ़ने के लिए भी कहते हैं और आपको लगता है कि यह हमारे लिए हितकर है।

लेकिन आचार्य कहते हैं...इनमें कोई भी तुम्हारे लिए हितकर नहीं है, कोई भी तुम्हारे लिए शरण नहीं है क्योंकि इनके निमित्त से जो पाप अर्जन किया जाएगा, उसका फल तो तुमको अलग ही अपने अकेले ही भोगना पड़ेगा और वह पाप **‘इक्कल्लु सहसि’** यहाँ आचार्य कह रहे हैं...कल्लू सब **‘इक्कल्लु सहसि’** इक्कल्लु मतलब अकेले ही सहन करना पड़ेगा। क्या? **‘तिरि-णिरय-दुक्ख’** तिर्यच गति के दुःख, नरक गति के दुःख तुम्हें सब अकेले ही सहन करने पड़ेंगे। तुम जितनी मायाचारी कर रहे हो, तुम जितना दो रूपए के दो सौ कमाने के लिए तत्पर हो रहे हो, तुम जितना दूसरों को ठग-ठग करके अपना घर बढ़ा रहे हो, इन सब मायाचारी का फल तुम्हें तिर्यच गति में प्राप्त होगा। यह अकेले तुम्हें भोगना पड़ेगा, तब तुम्हारे कुटुम्बीजन कोई भी तुम्हारे लिए बचाने वाले नहीं होंगे। अभी तो तुम्हें लग रहा है कि मैंने बेटे की पढ़ाई के लिए ऐसा कर लिया, अपना घर बनाने के लिए ऐसा कर लिया, अपनी पत्नी को सुखी बनाने के लिए ऐसा कर लिया लेकिन यह सब भी तुम्हारे लिए दुःख देने वाले अन्ततः सिद्ध होंगे क्योंकि जब तुम्हें इन पाप कर्मों का फल भोगना पड़ेगा तो न तिर्यच गति में तुम्हारे साथ कोई होगा, न नरक गति में तुम्हारे साथ कोई होगा। इसलिए बहुत आरम्भ, बहुत ज्यादा परिग्रह करने की यह लालसाएँ और उसके निमित्त से किए जाने वाले अर्थोपार्जन और उस अर्थोपार्जन के निमित्त से होने वाले बड़े-बड़े पाप, ये सब हमारे लिए दुःख देने वाले हैं। इसलिए परहित छोड़ कर, पर सेवा छोड़ कर, पर से मोह छोड़ कर...क्या करो? **‘आद हिदम का दब्बम’** आत्मा का हित करने के लिए तत्पर हो जाओ। यह सीख हमें ये ऋषि-मुनि दे रहे हैं।



गाथा: 72

जीवन पत्ते पर लटकती हुई ओस की बूँद के समान
क्षणस्थायी है

मागधिकावृत्तम्

कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुआण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए ॥72॥

अन्वयार्थ- (गोयम!) हे गौतम! (जह) जिस प्रकार (कुस-अग्गे) घास यानी तृण के, अग्रभाग पर (लंबमाणए) लटकती हुई (ओस-बिंदुए) ओस की बूँद (थोवं) थोड़ी देर (चिट्ठइ) ठहरती है (एवं) इसी प्रकार (मणुआण) मनुष्यों का (जीवियं) जीवन 'भी' (समयं) समय 'मात्र' (चिट्ठइ) ठहरता है 'इसलिए आत्मकल्याण में' (पमायए) प्रमाद (मा) मत 'करो' ॥72॥

वैराग्य शतक इस ग्रन्थराज की आगे की गाथाएँ 72, 73 और 74 पढ़ते हैं...

कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुआण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए ॥72॥

संबुज्झह किं ण बुज्झह, संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हु उवणमंति राइओ, णो सुलहं पुणरवि जीवियं ॥73॥

डहरा बुद्धा य पासह, गब्भत्थावि चयंति माणवा।
सेणे जह वट्ठयं हरे, एवं आउ-खयंमि तुट्ठइ ॥74॥

यह एक नया सा छन्द है और इस छन्द को कुछ लिख रखा है- मागधिका छन्द के नाम से लिख रखा है।

मागधिका छन्द

यह छन्द जो यहाँ पर कुछ नई लय में आपको बताया जा रहा है। प्राकृत में अलग-अलग तरह से गीत बनते हैं, गायन होते हैं और सभी प्रकार के छन्दों में लय बनाई जाती है और जो भी छन्द इस लोक में प्रचलित

होते हैं, उन्हीं छन्दों में रचनाएँ भी प्राचीन ऋषियों मुनियों ने की हैं। यह लय आपको एक अलग ही लय लग रही होगी और इस लय में जो भाव है, वह भी आपको लयबद्ध करने के लिए है।

मनुष्य जीवन ओस बिन्दु समान क्षणिक

‘कुसगगे जह ओसबिंदुए’ ‘कुसगग’ कहते हैं- कुश का अग्र भाग अर्थात् एक विशिष्ट घास होती है, उसको कुश कहा जाता है। उसके अग्र भाग पर जैसे ओस की बिन्दु आ जाती है और वह **‘लंबमाणए’** एक तरह से ओस की वह बिन्दु लटक भी रही हो तो **‘थोवं चिट्ठइ’** थोड़ी देर ही वह उस कुश के अग्र भाग पर ठहर पाएगी। आपने देखा भी होगा घास के ऊपर, उसके तिनके के अग्र भाग पर जब ओस की बिन्दु ठहरती है, तो वह कुछ लटकती हुई सी भी दिखती है। यानी कि वह गिरने ही वाली है और वह गिर भी जाती है। जब वह बिन्दु उस पर ठहर गई हो, लटक रही हो तो वह कितनी देर तक ठहर पाएगी? इसी तरह से **‘मणुआण जीवियं’** यह मनुष्यों का जीवन है, यह उस कुशाग्र पर स्थित ओस बिन्दु की तरह अस्थिर जीवन है। उस पर टिका हुआ जैसे वह पानी का कण किसी भी तरह से वहाँ बहुत देर तक नहीं टिक सकता और वह गिरता हुआ सा दिखते-दिखते वह गिर ही जाता है, ऐसे ही यह मनुष्यों का जीवन कहा गया है।



प्रमाद न करके समय का सदुपयोग करना

इसलिए यहाँ कहा गया **‘समयं मा पमायए गोयम!’** जैसे कि भगवान महावीर स्वामी गौतम को ही यह ग्रन्थ बता रहे हो, गौतम को ही यह उपदेश दे रहे हो और भगवान महावीर स्वामी गौतम गणधर के लिए यह उपदेश देते हुए कह रहे हैं कि- हे गौतम! प्रमाद में समय मत गंवा अर्थात् भगवान महावीर स्वामी तीर्थंकर जो केवलज्ञान के साथ में विद्यमान हैं और उनके समक्ष गौतम परमेष्ठी बैठे हैं, विशिष्ट-विशिष्ट ऋद्धियों के धारी हैं, उनके लिए भी कह रहे हैं कि तुम प्रमाद में समय मत गंवाना। अब आप सोच सकते हो कि जो मुनि महाराज हैं, गणधर परमेष्ठी हैं, जो विशिष्ट ऋद्धियों के धारी हैं, उनके लिए भी भगवान चेतावनी दे रहे हैं कि तुम प्रमाद में समय मत गंवाना। इधर हम संसारी जीवों को, जिनके पास कोई भी तरह की न ऋद्धि हैं, न सिद्धियाँ हैं और श्रावकों के लिए कहो तो उनके पास न कोई व्रत है, न कोई नियम है। उनके लिए भी अगर यह उपदेश दिया जाए तो यह उपदेश कितना भारी होगा कि प्रमाद में समय मत गुजारो। आचार्य कहते हैं कि जो समय हमें मिला है, उस समय का सदुपयोग करो, उपयोग करो। उस समय को इसी तरह से जब हम देखेंगे कि हमारे मनुष्य जीवन का यह आयु का क्षय, हमारा समय इसी तरह से निकलता चला जाता है...जैसे रोजाना रात्रि में बूंद उस कुशाग्र के अग्र भाग पर आ जाती है और सुबह होते ही वह गिर जाती है। उसी तरह से यह प्रति क्षण आयु कम होते हुए समय गुजरता जाता है और यह आयु का कोई भी क्षण प्रमाद के साथ न गुजरे, ऐसा तीर्थंकर गणधर परमेष्ठी को सम्बोधित करते हैं। आप सोच सकते हैं कि जब तीर्थंकर गणधर परमेष्ठी को सम्बोधित कर रहे हैं तो प्रमाद कितनी बड़ी चीज होगी।

प्रमाद के दुष्परिणाम

जिनके लिए हमेशा अप्रमत्त दशा बनी रहती है, प्रमाद नाम का गुणस्थान तो कहने के लिए होता है जो गणधर परमेष्ठी के रूप में अनेक ऋद्धियों के स्वामी होते हैं उनके लिए भी यह कहा जा रहा है कि प्रमाद मत करना। क्योंकि जो प्राप्त किया है वह प्रमाद से नष्ट हो जाएगा। जो भी तुमने उपलब्ध किया है, जो भी तुम्हें प्राप्त हुआ है, अगर तुमने प्रमाद किया तो वह छूट जाएगा। वह प्रमाद एक ऐसी चीज है जिसके कारण से आपका बहुत बड़ा परिश्रम के साथ साधा गया कार्य भी बिगड़ सकता है और वह जो उपलब्धि आपने की है वह उपलब्धि भी छूट सकती है; इसका नाम है- प्रमाद। अब आप सोचो कि प्रमाद कितनी बड़ी चीज है? आपको लगता है कि हमारे जीवन में तो कोई प्रमाद है ही नहीं। इसका मतलब है कि हम इतने प्रमादी हैं कि हमें प्रमाद ही समझ में नहीं आ रहा है। जैसे किसी नींद में पड़े हुए व्यक्ति से कहा जाए कि उठी और वह कहे कि नहीं! मैं तो उठा ही हुआ हूँ, मुझे बार-बार क्यों टोकते हो? मैं तो जाग ही रहा हूँ। उसी तरह से इस संसारी प्राणी से अगर कहो कि प्रमाद से ऊपर उठो तो यह कहता है कि मैं कौन सा प्रमाद कर रहा हूँ? मैं तो जाग ही रहा हूँ। इस नींद के उदाहरण से आप समझ सकते हो कि प्रमाद कौन सी चीज होती है? प्रमाद ऐसी चीज होती है जैसे निद्रा आने पर उस निद्रा में स्थित व्यक्ति के लिए अगर हम कहते हैं कि तुम उठो तो वह कहता है कि नहीं! मैं तो उठा ही हुआ हूँ और अगर वह उस निद्रा में केवल लेटा हुआ हो, वह सोच रहा है कि इस निद्रा से अभी उठने के बाद मैं हमें बहुत सारे काम करने पड़ेंगे इसलिए पड़े रहो आराम से और अगर कोई कहता है कि जागो-जागो तो उससे हम यह भी कह सकते हैं कि हम तो जाग ही रहे हैं, क्यों परेशान कर रहे हो? उठ इसलिए नहीं रहा क्योंकि अभी उठेंगे तो बहुत सारे काम करने पड़ेंगे। इसलिए सोचता है कि पड़े रहो, थोड़ी देर और पड़े रहो। यह पड़े रहने का जो आराम है, पड़े रहने का जो एक आनन्द है, वह फिर खड़े होने के बाद में नहीं मिलता। उस पड़े रहने में उसे जो अच्छा लगता है, वही उसका प्रमाद होता है कि वह उसे बैठने नहीं दे रहा है। उसका मन रहता है कि बस! हम ऐसे ही लेटे रहे, लेटे रहने में अच्छा लगता है उसको। क्या कर रहे हो? आप बताओ! क्या करना है? जो करना है हम लेट के कर सकते हैं। कुछ सुन लो, कुछ पढ़ लो, कुछ काम कर लो। बताओ! क्या काम करना है? सब लेट कर लूँगा। mobile ले लेगा, लेटे-लेटे सब काम कर लेगा। पढ़ने की कहो तो लेटे-लेटे सब पढ़ लेगा, खाने की कहो तो लेटे-लेटे ही खा लेगा। किसी भी तरह के कोई भी खेल खेलना है तो लेटे-लेटे ही खेल लेगा। उसे लेटे रहने में अच्छा लगता है, वह उठना नहीं चाहता क्योंकि उसे पता है कि उठने के बाद में फिर हमें शरीर को चलाना पड़ेगा, मेहनत करनी पड़ेगी, फिर हम थक जाएँगे और उसमें हमें इतना अच्छा नहीं लगता जितना लेटे रहने में अच्छा लगता है। यह घर वाले हमारे दुश्मन हैं कि हमें लेटने भी नहीं देते हैं। वह बच्चा जिस तरह से या बड़ा जिस तरह से उस लेटे रहने की आदत में ही अपने को सुखी पाता है। अब उससे कहो कि भाई! जागो, प्रमाद छोड़ो तो वह कहेगा हम जाग तो रहे हैं, प्रमाद कर कहाँ रहे हैं?

प्रमाद का प्रभाव

अब उसके लिए यह समझाना जिस तरह से मुश्किल है कि तुम प्रमाद में पड़े हो इसलिए तुम फुर्ती से काम नहीं कर रहे हो, उठ नहीं रहे हो, अपने काम में नहीं लग रहे हो, उसी तरह से आज के व्यक्तियों को समझाना कठिन है। प्रमाद क्या है, कैसे समझाया जाए? हर किसी से कहो कि महाराज! आपके प्रवचन सुन रहे हैं,

बिल्कुल एक झपकी तक नहीं आती। कान खड़े के खड़े रहते हैं, आँखें खुली की खुली रहती हैं। वैसे तो सुना जाता है कि केवल देव ही अनिमेष लोचन वाले होते हैं लेकिन आपके प्रवचन सुनते-सुनते वे निमेष भी नहीं झपकते, इतना भी प्रमाद नहीं आता है। फिर भी आप कह रहे हो कि हम प्रमादी हैं। आप यह समझ सकते हो कि यह प्रमाद का स्तर कितना बड़ा है कि जब तीर्थंकर गौतम से कहते हैं कि प्रमाद मत करो तो आप सोचो कि प्रमाद कितनी बड़ी चीज है? यह प्रमाद कहाँ तक चलता है? यह प्रमाद कहाँ तक व्यक्ति के साथ में रहते हुए उसे किसी भी तरह से छल सकता है, यह प्रमाद की देन है। जब इस तरह का प्रमाद आता है, तो उस समय पर वह अपनी किसी भी तरह की निधि को भूल जाता है और वह निधि भूल जाने का नाम है कि मतलब हम अपनी आत्म जागृति से हट गए। एक क्षण भी गौतम! ऐसा मत निकालना कि जब तुझे आत्मा का स्मरण न हो, यह कहना चाहते हैं- तीर्थंकर। किससे? गौतम से। तू किसी भी तरह के कार्य करना, किसी भी तरह से लोगों के प्रश्नों के उत्तर देना, समझाना, किसी भी तरह के उपदेशों की व्याख्या करना; यह सब ठीक है लेकिन एक भी क्षण ऐसा न चला जाए, जब तुझे अपनी आत्म विस्मृति हो जाए। प्रमाद का नाम क्या है? आत्मा का स्मरण छूट जाना। यह मत समझ लेना कि जो हमारे सामने उपदेश सुन रहे हैं, इनके कारण से हम बहुत बड़े हो गए हैं, हमारे पास बहुत ऋद्धियाँ हैं, हमारी बहुत मान्यता है; जैसे ही तू इन भावों में आएगा, ये भाव सब किसके कहलाएँगे? ये प्रमाद के भाव कहलाएँगे क्योंकि इन भावों में आत्म स्मरण नहीं है, आत्म विस्मरण हो गया। जब तक तेरे पास में आत्मा का स्मरण है कि मैं आत्मा हूँ; सबसे बात करते हुए भी, सबको देखते हुए भी, सबको समझते और समझाते हुए भी, जब तक तेरे दिमाग में यह रहेगा कि तू आत्मा है, बस! उतनी ही तेरे लिए जागृति है; बाकी सब समय प्रमाद में चला जाएगा।

प्रमाद का स्वरूप

लोगों को देखते हुए भी यह देखना कि मैं लोगों को नहीं समझा रहा हूँ, मैं उनकी आत्मा को प्रतिबोधन दे रहा हूँ। मेरे सामने स्त्री और पुरुष नहीं बैठे हैं, मेरे सामने आत्माएँ बैठी हैं। मेरे सामने कोई छोटे बच्चे या बड़े बच्चे नहीं बैठे हैं, मेरे सामने आत्माएँ हैं, जीव हैं, चेतनाएँ हैं, इनको मैं कुछ बता रहा हूँ। अगर तेरे दिमाग में यह रहेगा, तो तू जागृत है। जागृत है तो अप्रमाद है और अगर तेरे दिमाग में यह छूट गया और तूने सोचा कि ये छोटे हैं, ये बड़े हैं, ये स्त्री हैं, ये पुरुष हैं तो यह तेरा प्रमाद कहलाएगा क्योंकि तेरी दृष्टि कहाँ गई? शरीर पर गई, लोगों के चेहरे पर गई। ये बाल हैं, ये वृद्ध हैं; यह सब देखेगा और उनको उसी रूप में समझेगा तो तेरी दृष्टि में आत्मा नहीं आएगी तो आत्म जागृति नहीं होगी। इसलिए कोई भी काम करना, जागृति के साथ करना। जागृति का नाम ही अप्रमाद है; इसलिए गौतम प्रमाद मत करना।

समवशरण में गणधर परमेष्ठी का महत्व

इस समवशरण में बैठे हो, सब लोग हमारे बाद अगर किसी को देख रहे हैं तो किसको देख रहे हैं? तुम्हीं को देख रहे हैं। तीर्थंकर के बाद में अगर कोई आकर्षक व्यक्तित्व वहाँ होता है समवशरण में तो वह कौन होता है? गणधर परमेष्ठी का। भले ही वहाँ पर कितने ही केवलज्ञानी क्यों न बैठे रहें, कितने ही विक्रिया ऋद्धियों के धारी क्यों न बैठे रहें, तरह-तरह की औषध ऋद्धियों के और अक्षीण महानस जैसी ऋद्धियों के भी धारी क्यों न बैठे रहें लेकिन सबसे ज्यादा अगर आकर्षण होता है, तीर्थंकर के समवशरण में, तीर्थंकर के बाद

अगर व्यक्ति किसी को देखता है तो वह कौन होता है? वह गणधर परमेष्ठी होते हैं। कितना भी बड़ा राजा हो, कितना भी बड़ा चक्रवर्ती हो, वहाँ पर वह सामान्य हो जाते हैं। भगवान आदिनाथ के समवशरण में अगर भरत जी भी चले जाते हैं तो वह लोग भरत जी को नहीं देखते हैं। देखेंगे किसको? जो उनके गणधर थे वृषभसेन, उनको देखते हैं। उनके पास में सब तरह की ऋद्धियाँ, सब प्रकार का ज्ञान, भगवान की वाणी को झेलने की शक्ति और उनके अन्दर भगवान के बाद में उस तीर्थ को आगे बढ़ाने का अगर श्रेय जाता है, तो किसको? गणधर परमेष्ठी को। इसलिए यह अपने आप में एक बहुत बड़ी विभूति होती है। भगवान के प्रमुख शिष्य, भगवान जिस पर ध्यान दे, भगवान जिसको अपना उपदेश दे और सम्बोधन भी दे, तीर्थकर के मुँह से अगर कोई नाम निकलता है तो किसका? सिर्फ गौतम का निकलता है। भगवान महावीर स्वामी के मुख से सम्बोधन निकलेगा तो किसका? सिर्फ गौतम का निकलेगा और किसी का नहीं निकलेगा। आप सोचो कि जब लोग ऐसा सुनते हैं तो उन्हें भी लगता है कि गौतम से बढ़कर इस सभा में और कोई दूसरा पुण्यवान महापुरुष नहीं है, जिसका नाम भगवान महावीर स्वामी ले। वह भगवान महावीर स्वामी अगर direct सम्बोधन किसी को देते हैं तो वह उनके प्रमुख शिष्य गौतम गणधर होते हैं। इतनी महिमा होती है गणधर परमेष्ठी की। तीर्थकर का समवशरण है लेकिन उनके प्रमुख संचालक, उनके प्रमुख शिष्य, direct disciple of Lord Mahavira कौन कहलाते हैं? वह इन्द्रभूति गौतम गणधर कहलाते हैं। अंतेवासी कहते हैं इनको अर्थात् जो बहुत निकट में वास करते हैं...अन्त अर्थात् अन्त में रहने वाले को अंतेवासी नहीं कहते हैं, जो बहुत निकट में रहते हैं उनको अंतेवासी कहा जाता है। भगवान महावीर स्वामी ने भी अगर कभी सम्बोधन दिया तो गौतम को दिया और वह सम्बोधन में उन्होंने ज्यादा कुछ नहीं किया क्योंकि उन्हें पता है कि ज्ञान तो इसको भरपूर है, ज्ञान की तो कोई कमी है ही नहीं है। बुद्धि ऋद्धियाँ हैं इसके पास, कोष्ठ ऋद्धियाँ हैं इसके पास, मैं जो कुछ भी बोलता हूँ...उसकी लम्बी-लम्बी व्याख्याएँ करने की और उनको समायोजित करने की सब बुद्धि है इसके पास। यूँ तो कह नहीं सकता कि तू अपना ज्ञान बढ़ा। यूँ भी नहीं कह सकता कि तू अपनी तप की महिमा को बढ़ा क्योंकि तप की भी सारी ऋद्धियाँ उनके पास हैं। भगवान महावीर के पास में अब बचा क्या गौतम को सम्बोधित करने के लिए? ज्ञान की सभी शक्तियाँ उनके पास आ गई। बस! एक केवलज्ञान ही नहीं है और वह भी जानते हैं कि वह हो ही जाएगा। जिसको अवधिज्ञान हो गया, मनःपर्यय ज्ञान हो गया, मनःपर्यय ज्ञान में भी विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान हो गया, उसको नियम से केवलज्ञान की प्राप्ति होती ही है। अब उस केवलज्ञान की प्राप्ति करने के लिए क्या करना? उसके लिए भी भगवान ने गौतम को सिर्फ इतना ही सम्बोधन दिया, प्रमाद नहीं करना। क्षण भर भी तुम भीतर से जागृति मत छोड़ देना। यह आत्म जागृति अगर बनी रहेगी तो धीरे-धीरे तुम्हारा यह हर क्षण सार्थक होता जाएगा और तुम्हारा यह मनःपर्यय ज्ञान, अवधिज्ञान सब काम में आता जाएगा और यह आगे चलकर तुम्हारे लिए केवलज्ञान का कारण भी बन जाएगा लेकिन इन ज्ञानों में भी बह मत जाना। अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, यह कोई केवलज्ञान के कारण नहीं हैं इसलिए इन ऋद्धियों में भी प्रमाद मत कर लेना कि ये ऋद्धियाँ मेरे पास में हैं और किसी के पास नहीं हैं। ऐसा विचार करना भी प्रमाद है। मैं ऋद्धि सम्पन्न हूँ, ऐसा विचार कर लेना भी प्रमाद है। मैं गणधर के महापद पर प्रतिष्ठित हूँ, ऐसा विचार कर लेना भी प्रमाद है। मैं सभी मुनियों में सर्वश्रेष्ठ हूँ, ऐसा विचार कर लेना भी प्रमाद है; इस प्रमाद से बचाने के लिए भगवान महावीर स्वामी गौतम को सम्बोधन देते हैं। अब आप सोचो! आपका प्रमाद कितना गहरा रहा है। मैं कौन हूँ? कौन से घराने का हूँ? अगर घराने का नाम, मैंने अपनी दुकान का नाम रख लिया है कोई घराना तो वह हमेशा दिमाग में

झूलता रहता है। अब अगर किसी ने रख लिया कि मैं राजघराने का हूँ तो उसे हमेशा अपनी पहचान में राजघराना ही दिखता है। मतलब कि जब तक वह अपनी पहचान आत्मा के अलावा अन्य किसी भावों से करता रहेगा, वह क्या होगा? उसका प्रमाद होगा। आप सोच रहे हो कि मैं एक मनुष्य हूँ तो यह भी आपका सोचना प्रमाद है क्योंकि जब आप यह सोचो कि मैं सिर्फ आत्मा हूँ, चेतना हूँ तो आपकी वह प्रमाद की तीव्रता घटेगी, तब आप अपने निकट होंगे और इसके अलावा आप जो भी सोचते हैं, वह सब प्रमाद की कोटि में जाता है।

प्रमाद के लक्षण

मैं छोटा हूँ, मैं बड़ा हूँ, मैं मोटा हूँ, मैं पतला हूँ, मैं गंजा हूँ, मैं गोरा हूँ, यह सब क्या होता है? यह मैं जिस तरह से जुड़ता है, यह सब आपको क्या बना रहा है? यह आपको प्रमादी बना रहा है और इसी मैं की पूर्ति में अगर आप लग गए तो आप प्रमादी बनते चले जाएँगे। इसलिए जो गौतम गणधर परमेष्ठी जैसे भी महान ऋद्धिधारी मनुष्य वहाँ पर विराजमान हैं तो उनके लिए भी यह भाव आता है कि मैं, भगवान के बाद कौन? अगर यह भी भाव कर लिया तो यह भी प्रमाद का भाव हो गया, भगवान के बाद मैं; इसलिए भगवान महावीर स्वामी का सम्बोधन जरूरी पड़ गया। गौतम! जो जितना धनाढ्य होगा, जो जितना ऋद्धि सम्पन्न होगा, जो जितना ज्ञान और तप की ऋद्धियों से युक्त होगा, उसे उतना ही ज्यादा जागृत होने की आवश्यकता है। गरीब का प्रमाद अलग होता है और अमीर का प्रमाद अलग होता है। तुम बड़े हो, बड़े पद पर प्रतिष्ठित हो, तुम्हारा प्रमाद इसी तरह का है तो तुम अपने आप को इस प्रमाद से बचाना। इसलिए अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान में अपनी विशेषताएँ मत खोजना। तुम्हें जब भी केवलज्ञान की प्राप्ति होगी, अवधिज्ञान में मन लगाने से नहीं होगी। मैं विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानी हूँ, सर्वावधिज्ञान का धारी हूँ; ऐसा मन लगाने से नहीं होगी। किससे होगी? तुम्हें जब भी केवलज्ञान की प्राप्ति होगी, भाव श्रुतज्ञान के माध्यम से होगी। किससे होगी? भाव श्रुतज्ञान।

भाव श्रुतज्ञान

यह जितनी भी तुमने शास्त्रों की रचना कर रखी है, यह जितना भी तुमने द्वादशांग बना रखा है, यह भाव श्रुतज्ञान नहीं है; यह क्या है? यह द्रव्य श्रुतज्ञान है। इसे क्या बोलेंगे? यह द्रव्य श्रुतज्ञान है। भाव श्रुतज्ञान कहाँ से आएगा?

स्वात्माभिमुख- संवित्ति- लक्षणं श्रुत चक्षुषा।

पश्यन् पश्यामी देव! त्वां केवलज्ञानचक्षुषा॥

यह समाधि भक्ति का प्रथम श्लोक है। पढ़ाई थी आपको संस्कृत में भी समाधि भक्ति? 'स्वात्माभिमुख-संवित्ति' स्व आत्मा के अभिमुख जो हमारा संवेदन होता है, संवित्ति होती है, यह लक्षण वाला जो श्रुतज्ञान की आँख है, इसी को भाव श्रुतज्ञान कहते हैं। जो श्रुतज्ञान हम सुन रहे हैं, वह भाव श्रुतज्ञान नहीं है। जो हम पढ़ रहे हैं, वह भाव श्रुतज्ञान नहीं है; जो हम पढ़ा रहे हैं, वह भी भाव श्रुतज्ञान नहीं है। भाव श्रुतज्ञान क्या होगा? जब आप पढ़ लिए, सुन लिए और सुनने के बाद में आँख बन्द करके बैठ गए। स्व आत्मा के

अभिमुख अपना परिणाम, अपना संवेदन आपने किया। **‘स्वात्माभिमुख- संवित्ति’** अपनी आत्मा के अभिमुख अगर आपका संवेदन होगा कि मैं आत्मा हूँ, ज्ञान-दर्शनमय मैं आत्मा हूँ, चैतन्य स्वभाव वाला मैं आत्मा हूँ...यह परिणति जब आपकी अपने ही अभिमुख, अपने ही परिणामों से होगी, तो इसका नाम है- भाव श्रुतज्ञान।

भाव श्रुतज्ञान से केवलज्ञान की प्राप्ति

इस भाव श्रुतज्ञान के माध्यम से ही आप भगवान को देखते-देखते, देखते-देखते अपनी अन्तरात्मा को देखते चले जाएँगे और अपनी अन्तरात्मा को देखते-देखते, देखते-देखते आप खुद भी भगवान बन जाएँगे। **‘स्वात्माभिमुख- संवित्ति- लक्षणं श्रुत चक्षुषा।’** यह श्रुतज्ञान की आँख से अगर आप अपनी आत्मा की संवित्ति करेंगे और उसी से आप अपने आप को देखेंगे तो **‘पश्यन्’** अर्थात् देखते हुए हे भगवन्! मैं आपको देख लेता हूँ। कैसे? **‘केवलज्ञानचक्षुषा’** केवलज्ञान की आँख से मैं आपको देख पाऊँगा या मैं आपको देख लेता हूँ। उसका कारण क्या है? अपनी आत्मा की ओर अभिमुख होने की परिणति यही स्वसंवेदन ज्ञान कहलाता है, यही भाव श्रुतज्ञान कहलाता है और इसी भाव श्रुतज्ञान की परिणति में रहने से ही केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। जब भाव श्रुतज्ञान होगा तो केवलज्ञान आपके सामने आ जाएगा। भाव श्रुतज्ञान ही आपको केवलज्ञान के लिए कारण बनेगा। इसलिए जितना भी ज्ञान का साम्राज्य है, यह केवलज्ञान के लिए कारण नहीं है...गौतम! प्रमाद मत करना।

अप्रमाद अवस्था

यह मत सोचना कि मैं अवधिज्ञान से पूरे लोक को जान लेता हूँ, यह मत सोचना कि मैं मनःपर्यय ज्ञान से चितित, अचितित, अर्धचितित, सभी प्रकार के लोगों के मन की बातों को जान लेता हूँ। इनसे तुझे कभी भी केवलज्ञान नहीं होगा। ये तेरे सब क्षण प्रमाद के होंगे। अप्रमाद के क्षण क्या? **‘स्वात्माभिमुख- संवित्ति’** अपनी आत्मा के अभिमुख अपना संवेदन लाओ, यही भाव श्रुतज्ञान है। इसी के माध्यम से तुम्हें अप्रमाद दशा का अनुभव होगा। बाकी सब क्या है? प्रमाद दशा है। तुम्हें केवलज्ञान की प्राप्ति भी इसी अप्रमाद दशा से होगी। यह बात भगवान महावीर स्वामी केवलज्ञानी होकर भी किसको समझा रहे हैं? गौतम गणधर को समझा रहे हैं। उनकी समझाई हुई बातें हमारे पास तक भी आ गई, हम भी पढ़ रहे हैं, हम भी समझ रहे हैं और हम भी समझा रहे हैं लेकिन समझाने में भी प्रमाद ही है। अगर यह सोच लिया कि हम समझा रहे हैं तो प्रमाद है और यह सोच लिया कि एक आत्मा अनेक आत्माओं को सम्बोधन करने का प्रयास कर रहा है, तो अप्रमाद है।

जीवन की क्षणभंगुरता

जब हमारी दृष्टि में अपना संवेदन होता है, जब हमारी दृष्टि में आत्मा आ जाती है तो हम उस समय पर निष्प्रमाद हो जाते हैं, अप्रमाद हो जाते हैं और वही हमारे जीवन के सार्थक क्षण होते हैं। बाकी तो आयु गलती जा रही है, समय निकलता चला जा रहा है और ओस की बूंदों की तरह सब कुछ झड़ता चला जा



गाथा: 73

**मनुष्य जीवन बार-बार नहीं मिलता है, इसलिए
रत्नत्रय की प्राप्ति में उपयोग लगाना चाहिए।**

**संबुज्झह किं ण बुज्झह, संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हु उवणमंति राइओ, णो सुलहं पुणरवि जीवियं ॥73॥**

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्!' (**संबुज्झह**) संबोध को प्राप्त हो 'क्योंकि प्राप्त हुआ मनुष्य' (**जीवियं**) जीवन (**सुलहं**) सुलभ (**णो**) नहीं है 'तथा' (**पेच्च**) परलोक में (**संबोहि**) संबोधि यानी रत्नत्रय 'भी' (**खलु**) निश्चय से (**दुल्लहा**) दुर्लभ है 'और फिर बीती हुई' (**राइओ**) रात्रियाँ अर्थात् रात और दिन (**हु**) नियम से 'उसी रूप में दुबारा' (**उवणमंति ण**) प्राप्त, नहीं होते हैं अर्थात् वापस नहीं आते हैं (**पुणरवि**) फिर, भी 'तुम' (**किं**) क्यों (**ण**) नहीं (**बुज्झह**) बोध को प्राप्त होते हो 'आश्चर्य की बात है' ॥73॥

बोध को प्राप्त होना एक मुश्किल कार्य

इसी छन्द में, आगे की गाथा में '**संबुज्झह**' बोध को प्राप्त हो जाओ। अब तो सुन लो, अब तो समझ लो, अब तो जान लो, अब तो जाग जाओ '**संबुज्झह**' '**किं ण बुज्झह**' क्यों नहीं बोध को प्राप्त होते हो? जैसे कोई माँ बच्चे को जगाती है कि अब तो जग जा, बहुत देर हो गई अब तो जग जा। क्यों नहीं जाग रहा है? क्यों नहीं जाग रहा है, क्या हो गया है? उसको थोड़ा-सा हिलाती है। आँखें खोल कर देख लेता है तो माँ सोच लेती है कि हाँ! जग रहा है और जैसे ही माँ चली जाती है, पट्टा फिर चादर डाल लेता है, फिर सो जाता है। फिर उसे आहट मिली कि कोई बुलाने आ गया, कोई जगाने आ गया; वह फिर कह देता है कि हाँ! जाग रहा हूँ, जाग रहा हूँ और वह ऐसे ही जागते-जागते सो भी लेता है और किसी की आहट मिले तो उससे पहले ही वह जागने का कार्य भी कर लेता है। कोई आया तो जागने के लिए तैयार है कि हाँ! मैं जाग रहा हूँ। क्यों बार-बार परेशान करती हो? एक घण्टा हो गया तब से मैं जाग ही तो रहा हूँ, पढ़ रहा हूँ, देख किताब सामने रखी है, मैं पढ़ रहा हूँ। अब माँ को भी पता है कि यह पढ़ते-पढ़ते भी सो जाता है, झपकी ले रहा है, उठ नहीं रहा है, प्रमाद से रहित नहीं हो रहा है। आलस इस पर छाया हुआ है और कह रहा है कि मैं पढ़ रहा हूँ। अब क्या करे? बस! कह ही सकते हैं कि उठ जा, उठ जा, बैठ जा, बहुत देर हो गई, बिस्तर छोड़ दे। इसी तरह से आचार्य क्या कह रहे हैं? '**संबुज्झह**' '**संबुज्झह**' बोध को प्राप्त हो जा, बोध को प्राप्त हो जा, जाग जा... '**किं ण बुज्झह**' क्यों नहीं जागता? क्यों नहीं बोध को प्राप्त होता? अब बताओ! इससे अच्छे शब्द क्या मिलेंगे? और कितनी करुणा से और कितने प्रेम से समझाया जाए? पुचकारो तो वह पट्टा और ज्यादा लढ़िया जाता है और डंडा मारो तो बिगड़ जाता है। यही समझ में नहीं आता कि इस पट्टे को कैसे संभाला जाए? जैसे माँ उस पट्टे को संभालने में मुश्किल महसूस करती है, ऐसे ही जिनवाणी माँ; हम सब भी पट्टे बने हुए हैं, पट्टे

का मतलब? जिन पर कोई असर पड़ता नहीं। कहने का असर नहीं पड़ता, उसको हिलाओ तो असर नहीं पड़ता, पानी डालो तो असर नहीं पड़ता, चाय की प्याली भी ले आओ सामने तो भी असर नहीं पड़ता, पट्टा पी लेगा और फिर सो जाएगा।

मनुष्य जीवन में ज्ञान की सुलभता

ऐसे ही आचार्य यहाँ कह रहे हैं... **‘संबोधि खलु पेच्च दुल्लहा’** अभी जग जा! यह समय निकल जाएगा तो पेच्च अर्थात् प्रेत्य, प्रेत्य का अर्थ होता है- परलोक, परलोक में फिर तेरे लिए यह संबोधि बहुत दुर्लभ हो जाएगी, यह समझ तेरे लिए बहुत दुर्लभ हो जाएगी, कुछ समझाने वाला न कोई मिलेगा, न कुछ समझने का वहाँ पर निमित्त होगा। **‘संबोधि’** संबोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेना या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपलब्धि कर लेना, उसमें जागृत रहना... इसका नाम है- संबोधि। यह बोधि, जिसको कहते हैं- बोधि-समाधि, बोधि कभी भी छूटनी नहीं चाहिए। यह बोधि यहाँ प्राप्त कर ले, परलोक में कोई भरोसा नहीं है कि तुझे बोधि की प्राप्ति हो या न हो। इसलिए यह रातें **‘णो हु उवणमंति राइओ’** यह रातें फिर दोबारा नहीं आएँगी और जो जीवन है, यह सब तेरे लिए अभी सुलभ है; यह पुनः लौट कर नहीं आएगा। अभी भी तू जाग जा, जाग जा, जाग जा; यह सम्बोधन है। कैसे जाग जा? धर्म-कार्य में जाग जा। कम से कम श्रावक को श्रावक के ही कार्यों में जागृति हो जाए तो भी वह जागृति कहलाती है। आत्मध्यान के कार्य में जागृति हो जाए, यह तो बहुत बड़ी बात है लेकिन श्रावक अपने श्रावक के भी कार्यों में जाग जाए तो भी यह बहुत बड़ी जागृति है। हम किस तरह से अपने इस समय को और ज्यादा उपयोग में ला सकते हैं? किस तरह से हम और अधिक भगवान जिनेन्द्र देव की आराधना कर सकते हैं? किस तरह से हम अपने सम्यग्दर्शन के निमित्तों को सामने ला सकते हैं? इन सब बातों के बारे में सोचने का नाम ही जागृति कहलाता है, अप्रमाद दशा कहलाती है।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप

हर चीज का अपना-अपना महत्व होता है क्योंकि आचार्यों ने कहा- बोधि का मतलब सम्यग्दर्शन है और सम्यग्दर्शन का मतलब होता है- जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करते हुए जिनेन्द्र भगवान के गुणों का स्मरण करना, अपने अन्दर जिनेन्द्र भगवान के गुणों का कीर्तन करना, अपने अन्दर जिनेन्द्र भगवान के गुणों में अनुराग रखना। इसको क्या कहा गया? इसको सम्यग्दर्शन कहा गया, इसी का नाम बोधि है। इस जन्म में आप जितनी अच्छी से अच्छी भगवान की भक्ति कर सको, जितनी अच्छी से अच्छी आपके सामने जिनेन्द्र भगवान के गुणों में अनुराग की भावना उत्पन्न हो जाए; समझना यही हमारे लिए बहुत अच्छे क्षण हैं या तो जिनवाणी में अनुराग आ जाए या जिनेन्द्र भगवान के गुणों में अनुराग आ जाए। मुनि महाराज का इतना ही काम रहता है और इसी काम में आपको चातुर्मास में लगाए रखते हैं। या तो जिनवाणी में अनुराग कर लो और जिनवाणी में अनुराग करते-करते, जिनवाणी सुनते-सुनते अगर आपको कुछ समझ आ रही हो तो जिनेन्द्र भगवान में भी अनुराग करने की भावना बना लो, भगवान की भक्ति करने की भावना बना लो। ये छोटी-छोटी पूजाएँ नहीं, कुछ बड़ी-बड़ी पूजा, बड़ी-बड़ी भक्ति करने की भावना बना लो। यह भावना बनाना भी अपने आप में एक सम्यग्दर्शन की वृद्धि करना है और इस तरह की भावनाएँ श्रावकों में अगर आती हैं

तो कब आती हैं? जब मुनि महाराज का सानिध्य मिलता है, चातुर्मास का समय चल रहा होता है, तभी इस तरह की भावनाएँ बन पाती हैं। अन्य समय में तो क्या करोगे? बस! वही शान्तिनाथ भगवान की पूजन कर लीगे, एक विधान कर लीगे ज्यादा से ज्यादा, हो गया। लेकिन हमें अगर कोई बड़ी पूजा, बड़ी भावना करनी है, बड़ा कोई हमें कार्य करना है तो यह भावना करने का भी यही समय होता है...जब न गर्मी होती है, न सर्दी होती है और यह सब आपके सामने जो समय आ रहा है, यह सब सोने का समय नहीं आ रहा है, यह सब प्रमाद रहित होने का समय आ रहा है। क्या बच रहा है अब? चार दिन बाद दशहरा है, बीस दिन बाद बस हर हर गंगे, ओं अहं बस! अब इसी में आप और क्या अच्छा कर सकते हो? यह निष्प्रमाद होकर सोचोगे तो आपके कुछ काम बनेंगे। इसलिए भगवान की भक्ति अपने आप में जिनेन्द्र भगवान के गुणों का स्मरण करना है और इस तरह के गुणों का स्मरण करने वाला जीव भी बोधि की प्राप्ति कर लेता है। सम्यग्दर्शन को सबसे पहले बोधि कहा गया और रत्नत्रय को भी बोधि कहा गया है। उस रत्नत्रय की प्राप्ति तो आपको सम्भव है नहीं तो आप किसकी प्राप्ति कर सकते हो? सम्यग्दर्शन की। उसके लिए क्या करना? जैसे हमारे अन्दर श्रद्धा बढ़े, उस श्रद्धा को बढ़ाना और श्रद्धा बढ़ाने के तरीके क्या होते हैं? जिनवाणी को सुनना भी होता है और भगवान की भक्ति करना भी होता है। ये दोनों तरीके अगर आप अपनाते रहोगे तो आपके अन्दर श्रद्धा बढ़ती रहेगी और हर व्यक्ति के अन्दर यह मन होना चाहिए कि हम अपने जीवन में कुछ ऐसे बड़े-बड़े, भगवान की पूजा, विधान आदि कार्य करते रहें जिसके माध्यम से हमें अगले जन्म में भी भगवान की भक्ति करने को मिलती रहे।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के साधन

जैसी अपनी क्रियाएँ करोगे, जिस क्रिया में अधिक समय लगाओगे, जैसा आप संचय करोगे कर्म का, वैसा ही अगले जन्म में आपको उसका फल मिलने वाला है। भगवान के समवशरण में पहुँच भी गए लेकिन भगवान की भक्ति नहीं आएगी तो! तो भी काम नहीं बनेगा। इसलिए भगवान के समवशरण में पहुँचाने के लिए तो यह ज्ञान पर्याप्त हो जाता है लेकिन भगवान की भक्ति करने के लिए आपको तरह-तरह से भगवान की भक्ति करने का, आयोजन करने का जो मन बनता है, यह आयोजन ही जिनेन्द्र भगवान की भक्ति को बढ़ाने वाला, समाज के अन्दर एक प्रभावना लाने वाला, समाज के अन्दर एकजुटता लाने वाला और पूरी समाज को भगवान की भक्ति के एक रंग में बहाने वाला अगर कोई माहौल होता है, तो वह भगवान की बड़ी-बड़ी पूजाओं के माध्यम से बनता है। यह माहौल अगर आप नहीं बना पाते हैं या नहीं आपके द्वारा बनता है, तो इसका मतलब है कि आप रूखे-सूखे लोग हो। रूखे-सूखे समझते हो? भीतर से कोई भी आपमें लगाव नहीं है, राग नहीं है, भगवान के प्रति कोई अनुराग नहीं है। बस रूखे-सूखे आए, बैठे, सुन लिए, चले गए। अभी गए घण्टे भर बाद तो कल ही शक्ति दिखाएँगे अब; ऐसे लोगों से कोई भी जिनशासन की प्रभावना नहीं हो सकती। रूखे-सूखे होने का मतलब? हम अपने तरीके से जी रहे हैं, हम अपने तरीके से सब काम कर रहे हैं, यह रूखा-सूखा होता है और जब हम एक तरीके से सब काम करते हैं तो वह कहलाता है- हम भगवान की भक्ति में भीग रहे हैं, हम भगवान के आनन्द में डूब रहे हैं। इस तरीके का जब माहौल बनता है तब कहलाता है कि हाँ!, यह भक्ति का माहौल है।

बोधि का मतलब क्या होता है? अपने अन्दर भगवान की भक्ति उत्पन्न होना और उसके लिए हमेशा तत्पर रहना; यह बोधि का कार्य है। जैसी भक्ति चातुर्मास के प्रारम्भ में दिखाई दे रही थी, उससे भी कम से कम चातुर्मास होते-होते तो वह दस गुना भक्ति और बढ़ जानी चाहिए। लेकिन वह भक्ति कम हो रही है कि बढ़ रही है? अगर बढ़ रही होती तो हर जगह से आवाज आ रही होती...महाराज! हमें भी भगवान की भक्ति और अच्छी करना है और अच्छी करना है, कुछ आप बताओ; वह आवाज ही नहीं आती है। बस एक routine चल रहा है; सुबह आ गए, थोड़ी देर दर्शन दे गए, प्रवचन सुन लिए, थोड़ी बहुत आहार-चर्या में शामिल हो गए; दिन भर फुर्सत। समाज की जोड़ने का एक कार्य करना, समाज के अन्दर धर्म-प्रभावना भगवान जिनेन्द्र देव के गुणों की करना; यह समाज के वरिष्ठ लोगों का कार्य होता है और इस कार्य में जो लोग अग्रणी होते हैं, वही लोग समाज को संचालित करने के अधिकारी होते हैं। यह रखे-सूखेपन से भगवान की भक्ति नहीं होती है। भगवान की भक्ति करने के लिए कुछ करना पड़ता है; कुछ भीतर से गीला होना पड़ता है, मन से, भावों से। कुछ हमें अपने अन्दर से ऐसी भावना करनी पड़ती है कि यह भगवान की भक्ति हमारे लिए जन्म-जन्म में ऐसी ही मिलती रहे, ऐसी भगवान की भक्ति हमें करने का मौका मिलता रहे; ऐसा विचार जब तक आपके अन्दर नहीं आएगा, तब तक आप रखे-सूखे लोग कहलाओगे। अब यह आपको सोचना है कि आप रखे-सूखे हो कि गीले-भीगे हो, यह आपको विचार करना है।



गाथा: 74

बालक हो या वृद्ध; आयु की समाप्ति पर, सभी को
मरना ही पड़ता है

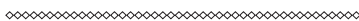
डहरा बुढ़ा य पासह, गब्भत्थावि चयंति माणवा।
सेणे जह वट्ठयं हरे, एवं आउ-खयंमि तुट्ठइ ॥74 ॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्!' (पासह) देखो (डहरा) बालक (य) और (बुढ़ा) वृद्ध 'तथा' (गब्भत्था माणवा) गर्भस्थ यानी गर्भ में स्थित, मनुष्य (अवि) भी 'प्राणों को' (चयंति) त्यजते हैं यानी त्यागते हैं (जह) जिस प्रकार (सेणे) श्येन यानी बाजपक्षी (वट्ठयं) वर्तकपक्षी यानी बटेर/तीतरपक्षी 'के प्राणों' को (हरे) हरण करता है (एवं) इसी प्रकार (आउ-खयंमि) आयु का, क्षय होने पर 'मृत्यु जीवन को' (तुट्ठइ) तोड़ देती है यानी हरण कर लेती है 'इसलिए आत्मकल्याण में सावधान होवो' ॥74 ॥

धर्म का संचय

‘डहरा बुढ़ा य पासह’ देखो! आचार्य कह रहे हैं...चाहे बूढ़ा हो, चाहे बालक हो, सब देखो। गर्भस्थ हो उसको भी देखो। ये सब मनुष्य जितने भी हमारे सामने आ रहे हैं, यह सब क्या हो रहा है? सब अपनी-अपनी उम्र पाकर थोड़े-थोड़े समय में जन्म ले-ले कर सब जीवन को समाप्त करके जा रहे हैं। जैसे ‘सेणे जह वट्ठयं हरे’ जैसे कोई ‘वट्ठयं’ अर्थात् बोलते हैं- एक चिड़िया होती है और उसको जैसे कोई बाज पक्षी पकड़ लेता है, वैसे ही यह आयु का क्षय हो जाने पर तुम्हारे इस जीवन को हरण कर लिया जाता है और तुम्हारा जीवन छूट जाता है। इसलिए मृत्यु होने से पहले, जीवन छोड़ने से पहले अपने अन्दर धर्म का संचय कर लो, धर्म अपने अन्दर भर लो। कैसे भर लो? केवल सुनने से ही भरते रह जाओगे? भरने का काम कैसे होगा? पूछोगे नहीं तो हम क्यों बताएँगे? हमें नहीं बताना। हमारा तो धर्म भरने का काम चल ही रहा है। अपने लिए तो सब तरह से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र की आराधना बराबर बनी हुई है, अपनी तो धर्म की झोली हमेशा भर रही है। अब अगर तुम्हें भरना हो तो तुम सोचो कि कैसे हम अपने अन्दर धर्म को भर सकते हैं? कैसे हम अपने अन्दर धर्म का संचय कम समय में भी अत्यधिक कर सकते हैं? Routine के कामों से तो अत्यधिक काम नहीं होता, कुछ आपको routine से हट करके करना पड़ेगा, तभी आप धर्म का अच्छा संचय कर पाओगे और इस तरह का संचय करने के लिए भी आपके पास जितना समय बचा है, उसी में आपको सोचना पड़ेगा कि हम धर्म का अच्छा संचय कैसे करें?

समय जाने के बाद में फिर आपके हाथ कुछ नहीं लगेगा और जब तक आप सोचते रहोगे तब तक आप प्रमाद में चलते रहोगे; बाद में हाथ मलते रह जाओगे जो कल बताया था। कुछ आवाज ही नहीं आ रही! यह **डहरा, बुढ़ा**, सब तो बैठे हैं यहाँ। **डहरा** अर्थात् बालक, **बुढ़ा** अर्थात् बूढ़े, यह बुढ़ा शब्द भी हिन्दी का नहीं है, किसका है? प्राकृत भाषा का है। वृद्ध यह कहा जाता है, तो संस्कृत में बोला जाता है और प्राकृत में वृद्ध को क्या बोलते हैं? बुढ़ा। इसलिए अगर आपसे बुढ़ा कहा जाए तो बुरा मत मानना। **डहरा, बुढ़ा!** इन सबको देखो! आचार्य कहते हैं- इन सबको देखो! तो हम देख ही रहे हैं। अब क्या देखो? कितने ही बालपन में चले जाते हैं? कितने गर्भ में ही चले जाते हैं? कितने ही बूढ़े होकर के चले जाते हैं? जा सब रहे हैं लेकिन अपने अन्दर धर्म भर करके कौन जा रहा है? यह देखो। धर्म कैसे भरा जाता है? यह देखो। धर्म के उन कारणों को अपनाओ, जिन कारणों से धर्म हमारे अन्दर और अधिक, और अधिक आ सकता है। हर चीज का एक season होता है, हर चीज का एक समय होता है कि जब आप उस चीज को अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होता हुआ देखते हो। देखते हो न? हर चीज की फसल आती है, हर चीज खाने का एक season आता है, हर चीज का business करने का एक time आता है, वह साल में एक ही बार आता है। इसी तरह से यह आपके पास में time है, यह season का time है। किसका? तुम्हारे season का, यह धर्म के season का time है और इस season में अगर तुम्हें सीढ़ लग गई या सीज गए बिल्कुल, ठंडे पड़ गए तो फिर क्या होगा? फुर्सत; फिर न जाने कब आचार्य श्री की कृपा होगी? फिर न जाने कौन आएगा? कौन जाएगा? तब तक के लिए फुर्सत। इसलिए यह season चल रहा है, धर्म के इस season को अच्छे ढंग से भुनाने की कोशिश करो। आप लोगों के थोड़े से परिणाम अच्छे बनने चाहिए, भाव जागृत होना चाहिए, सामाजिक समरसता का एक भाव बनना चाहिए। जो कुछ भी आपने गलतियाँ की हैं, उन सबको धोने के लिए भी आपको एक अच्छा माहौल बनाने का कार्य करना चाहिए; यह बात भी हमेशा ध्यान रखो। गलतियाँ सबसे हो जाती हैं लेकिन जाते-जाते सब दिवाली के दिन ही होली हो जानी चाहिए। होली-दिवाली सब एक साथ हो जानी चाहिए। किसी के मन में कोई म्लानताएँ नहीं रहनी चाहिए। समाज का बच्चा-बच्चा, समाज का बड़ा-बूढ़ा, हर कोई व्यक्ति जब भगवान की भक्ति के कार्यक्रम में एक रंग में रंग जाए, तब समझ में आएगा कि यह समाज बहुत अच्छे ढंग से आगे भी धर्म की प्रभावना, जिनशासन की प्रभावना करती रहेगी और इस समाज के माध्यम से भी आगे धर्म की वृद्धि होती रहेगी। इस तरह के कार्य करने से भी हमारे अन्दर सम्यग्दर्शन की वृद्धि होती है। इन कार्यों को करने में जो अग्रणी होंगे, वही लोग शाबाशी के पात्र होते हैं, बाकी तो सब रखे-सूखे कहलाते हैं। आपको अपने भाव जागृत करना है।



गाथा: 75

संसार में प्राणियों के मरण को देखकर पापों से मुक्त होना चाहिए

तिहुयण-जणं मरंतं, दट्ठणं णयंति जे ण अप्पाणं।
विरमंति ण पावाओ, धिद्धि धिट्ठणं ताणं ॥75॥

अन्वयार्थ- (तिहुयण-जणं) त्रिभुवन यानी तीनों लोकों के प्राणियों को (मरंतं) मरते हुए (दट्ठणं) देखकर (जे) जो (अप्पाणं) आत्मा को धर्म कार्य की तरफ (ण) नहीं (णयंति) ले जाते हैं वे (पावाओ) पापों से (विरमंति ण) विरमण अर्थात् मुक्त नहीं हो सकते हैं। (ताणं) उनकी यानी उन प्राणियों की (धिद्धि) धृष्टता को (धिद्धि) धिक्कार हो ॥75॥



वैराग्य शतक, यह प्राकृत भाषा में निबद्ध कृति, संसार के सभी जीवों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है और संसार की दशा का ज्ञान कराते हुए, आत्महित की ओर प्रेरित करने के लिए इस कृति के अन्दर जो भावनाएँ हैं, वे भावनाएँ बहुत ही प्रेरणास्पद हैं और सभी के लिए हितकर हैं। यह हम पिछले दिनों से पढ़ते हुए, सुनते हुए समझ रहे हैं और देख भी रहे हैं। इसी क्रम में आज दो गाथाएँ पढ़ते हैं...75 और 76

तिहुयण-जणं मरंतं, दट्ठणं णयंति जे ण अप्पाणं।
विरमंति ण पावाओ, धिद्धि धिट्ठणं ताणं ॥75॥

मा मा जंपह बहुयं, जे बद्धा चिक्कणेहि कम्मेहिं।
सव्वेसिं तेसिं जायइ, हियोवएसो महादोसो ॥76॥

सांसारिक दशा देखकर आत्महित की ओर प्रेरित होना

आचार्य कहते हैं... 'तिहुयण-जणं मरंतं दट्ठणं' तीन लोक में लोग हर समय मर रहे हैं, मरते हुए देखे जाते हैं। ऐसा देखकर भी 'जे ण अप्पाणं णयंति' जो अपनी ही आत्मा को प्राप्त नहीं करते या वे 'विरमंति ण पावाओ' जो पापों से दूर नहीं हटते, 'धिद्धि' अर्थात् धिक्कार हो 'ताणं' अर्थात् उनकी 'धिद्धि' अर्थात् धृष्टता को। उनकी उस धृष्टता को धिक्कार हो, जो जीव इस लोक में मरते हुए लोगों को देखकर भी स्व को प्राप्त करने के लिए तत्पर नहीं होते, अपनी आत्मा का हित करने के लिए तत्पर नहीं होते और पापों से दूर नहीं होते।

संसार में चारों ओर अशान्ति

यह संसार का एक बहुत बड़ा चित्रण है और यह चित्रण अगर कभी शान्ति से संसार की गति चल रही हो तो फिर भी हमारे लिए देर से समझ में आने लायक हो सकता है। किन्तु जब संसार में चारों ओर अशान्ति हो उस समय तो यह चित्रण बहुत ही महत्वपूर्ण होता है और बहुत जल्दी हमारे लिए समझ में भी आ सकता है। चारों ओर दुनिया में हम देख रहे हैं...पुराने समय की अपेक्षा से इस वर्तमान समय में बहुत हाहाकार मचा हुआ है। हो सकता है कि जिस समय पर इन ऋषियों ने ये ग्रन्थ लिखे हो, उस समय पर ऐसा कुछ न हो और उस समय पर नहीं होते हुए भी यह बात तो निश्चित है कि मृत्यु हमेशा लोगों के सामने आती रहती है। कभी अकाल रूप में भी आती है तो कभी सकाल रूप में भी आती है। मृत्यु का आना हर समय पर चलता रहता है। हर कोई अपने आसपास अनेक तरह की घटनाओं को देखता है, दुर्घटनाओं को देखता है और उसके माध्यम से भी उसे यह ज्ञात होता रहता है कि मृत्यु हर व्यक्ति के लिए दस्तक दे रही है। ये बातें उस समय की हो सकती हैं, जब यह ग्रन्थ लिखे गए हो, दुनिया में शान्ति हो और अगर हम यह देखे कि दुनिया में शान्ति कब रही तो वे शान्ति के क्षण भी हमें बहुत कम दिखाई देंगे।

इतिहास में नरसंहार के उदाहरण

हमेशा दुनिया में राजाओं के शासन रहे, राजाओं के माध्यम से हमेशा अन्य राज्यों पर आक्रमण होते रहे। अन्य-अन्य राजा भी हर किसी राजा के ऊपर आक्रमण करने के लिए हमेशा लड़ाई, संग्राम करते रहे। आप इतिहास उठाकर देखेंगे तो आपको इतिहास में कभी भी ऐसा लगता है कि शान्ति इस दुनिया में कभी रही ही नहीं है। चाहे ईसा से पहले का इतिहास उठा कर देखे या ईसा के बाद का देखे। ईसा के पहले भी आप को वह इतिहास मिलता है जब नन्द राजा, मौर्य वंश के राजा, ये सब आपस में लड़ते रहे। ईसा से पहले के इतिहास में भी चाहे वह सम्राट अशोक हो, चाहे उनके पुत्र संप्रति हो या उसके बाद होने वाले खारवेल जैसे राजा हो, इन सबका भी इतिहास पढ़ेंगे तो भीषण नरसंहार सभी ने किया है।

नरसंहार देखकर सम्राट अशोक का हृदय परिवर्तन

सम्राट अशोक के समय पर इतना नरसंहार हुआ था कि एक जगह लिखा है उसके शिलालेखों में, उसकी अपनी ही कुछ विचारधाराएँ कहीं-कहीं लिखी हुई मिलती हैं तो उसमें लिखा है कि उस नरसंहार को देख कर, हिंसा के उस तांडव नृत्य को देखकर उसके अन्दर यह एक दया का भाव आ गया था और उसने हमेशा के लिए ऐसे नरसंहार न करने का एक संकल्प ले लिया था। इतनी उसकी आत्मा दुःखी हुई थी। ये नरसंहार हमेशा से होते रहे, लोग हमेशा मरते रहे। जैसे आपके दुकान और मकानों में हमेशा सफाईयाँ होने से चीटियाँ, चींटे, छोटे-छोटे जीव-जन्तु मरते रहते हैं, ऐसे ही इस दुनिया में बड़े-बड़े युद्ध होते हैं और मनुष्य भी कीड़े-मकोड़ों की तरह मरते रहते हैं। यह बात अलग है कि उन कीड़े-मकोड़ों के मरने से, अपने मकानों में जो मरते हैं, उससे हाहाकार नहीं होता लेकिन जब पंचेंद्रिय मनुष्य मरते हैं तो थोड़ी हाहाकार ज्यादा बढ़ जाती है और इस तरह का यह कृत्य आप देखेंगे इतिहास में तो होता आया है, हर समय चला है। ईसा के पहले का भी इतिहास आपके सामने होता है, ईसा के बाद का भी इतिहास आपके सामने होता है। आप देखते हैं...चाहे वह अंग्रेजों का राज्यकाल रहा हो, चाहे वह मुगलों का राज्यकाल रहा हो, हर राज्य काल में

बुरी तरह से लोग मारे जाते थे, बहुत बुरी तरह से लोगों को पीड़ाएँ दे दे करके भी मारा जाता था।

संसार में हिंसा का आतंक सदैव रहा है

आतंक का कभी भी अन्त नहीं हुआ और हमेशा दुनिया में इस तरह की हिंसाएँ बनी रही, अराजकताएँ बनी रही, आतंक बने रहे और इन आतंकों में विशेष रूप से हम देखते हैं जीवों का घात होता है, जीवों की मृत्यु होती है। एक सामान्य रूप से जीवों का मरण होता है, तो इतना आदमी को पश्चाताप नहीं होता, दुःख नहीं होता। एक कोई दुर्घटना होती है, दो, चार, दस, बीस, चालीस लोग मरते हैं लेकिन जब इस तरह के युद्ध होते हैं तो उन युद्धों में संख्या का कोई अता-पता नहीं होता। जहाँ शहर के शहर मारे जाते हो, जहाँ लोगों के पूरे घर के घर ढहा दिए जाते हो, वहाँ पर लोगों की मरने वालों की जो संख्या होती है, उसका आकलन कोई भी सरकार अच्छे ढंग से कर ही नहीं सकती। इसलिए इस दुनिया में हमेशा आपको देखने को मिलेगा कि लोग हमेशा इस दुनिया में मर रहे हैं। जीने वालों को मत देखो, मरने वालों को देखो। क्योंकि जीने वाले भी कभी भी मरण को प्राप्त हो सकते हैं और दुनिया में जब आप इस तरह के लोगों को मरता हुआ देखते हैं तो वह मरण देखकर ही आपके अन्दर कुछ संसार से भीति उत्पन्न हो सकती है। यह वह चित्रण है जो दुनिया में हमेशा रहेंगे। चाहे वह इन ग्रन्थकारों के द्वारा ग्रन्थ रचने का समय हो या उससे पहले का समय हो या उसके बाद का समय हो या आज का समय हो, हर समय पर आपको इस तरह के ये चित्रण दुनिया में दिखते रहेंगे।

आतंक और बर्बरताएँ हमेशा रही हैं

आप अपने इतिहास में भी देखेंगे, कितने तरह के युद्ध, प्रथम विश्व युद्ध, द्वितीय विश्व युद्ध सब हो चुके हैं। कितने-कितने तरह के नरसंहार हुए हैं और न जाने कितने-कितने लोग किस-किस तरह से मारे गए। जलियाँवाला बाग हत्याकांड सब इतिहास में पढ़ते हैं। सामने बैठी हुई सभा में गोलियों की वर्षा करते हुए ऐसे-ऐसे हिटलर हुए हैं जिन्होंने सब लोगों को जीते जी मार डाला। कितने ही लोगों को उस अहिंसा के आंदोलन में या स्वतंत्रता के आंदोलन में पकड़-पकड़ करके बुरी तरह से प्रताड़ित करके उनकी मृत्यु हुई है। अगर उनका इतिहास पढ़ोगे तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इतनी बर्बरताएँ इस दुनिया में रही हैं और उन बर्बरताओं के बीच में आज अगर हम थोड़ा-सा शान्ति से बैठे हैं तो हम यह न सोचे कि हम हमेशा इसी तरह की शान्ति से जीते आए हैं और हम कभी इन बर्बरता के शिकार नहीं हुए हो। हम भी इस तरह की प्रताड़नाओं के शिकार हुए हैं। संसार में हर जीव इस तरह की बर्बरता का, आतंक का शिकार बनता है और हर जीव के लिए इस तरह की, दुर्दान्त मृत्यु जिसे कहते हैं, वह उसे झेलनी पड़ती है। इस तरह की मृत्यु मनुष्य जन्म पाकर भी कई जीव, कई प्रकार से पीड़ा के साथ में झेलते हैं, मृत्यु को प्राप्त होते हैं लेकिन अगला जन्म मिलने पर उन्हें वह मृत्यु की पीड़ा भूलने में आ जाती है और यही वजह होती है कि व्यक्ति पिछला इतिहास जब भूल जाता है तो वह नए जीवन में कुछ नया करने के लिए सोच नहीं पाता है। यही बात यहाँ कही जा रही है, कुछ नया नहीं कहा जा रहा।

मृत्यु तो निश्चित है

आपको दुनिया में हमेशा मरते हुए लोग दिखाई देंगे, बहुत भारी तादाद में मरते हुए लोग दिखाई देंगे। आज जिस क्षण हम यहाँ बैठे हैं। आप देखो! दुनिया में कितनी तादाद में लोग आज भी मर रहे हैं, मारे जा रहे हैं। अभी कुछ दिनों पहले रूस और यूक्रेन का युद्ध चल रहा था। वह थमा कि नहीं थमा पता नहीं है, लेकिन एक नया युद्ध और शुरू हो गया और उस युद्ध में आप साक्षात् देख रहे हैं... आजकल तो आपके मोबाइलों में आपके हाथ में साक्षात् सब कुछ दिखाई देता है, किस तरह से मिसाइलें, किस तरह की वे गनें, उन लोगों के लिए कैसे मृत्यु करा देती है? उन मिसाइलों को पता नहीं होता कि हम कहाँ गिरेंगे, कहाँ मरेंगे, किन को मारेंगे? और वे सब लोग जो उसकी चपेट में आते हैं, मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

मृत्यु कभी किसी पर दया नहीं करती

आप सोचो, सबके अपने घर परिवार होते हैं। सब अपने घरों में रहते हुए सुरक्षा महसूस करते हैं। सबके अपने बच्चे होते हैं, सबके अपने रिश्तेदार होते हैं और सबके अपनी बहुत-बहुत इच्छाएँ होती हैं, सबके अपने बहुत-बहुत लक्ष्य होते हैं कि हम बड़े हो रहे हैं, यह करेंगे, यह करना है। हमें यहाँ पर व्यापार करना है, बच्चे को इस तरह से पालन-पोषण करना है। ये सबके अपने मनसूबे होते हैं लेकिन उन सबको मृत्यु कुछ नहीं देखती। अगर कहीं पर आतंक है तो उस आतंक का जो व्यक्ति शिकार हो जाता है, तो वह तड़पता हुआ मर तो जाएगा लेकिन मृत्यु कभी उस पर दया कर नहीं सकती।

देशों के बीच हो रहे युद्ध से आतंकित है मानव जाति

आप यह सोच सकते हैं कि इच्छाएँ हमें कहाँ शान्ति देती हैं? इन इच्छाओं की पूर्ति से अगर थोड़ी देर के लिए हमें शान्ति मिलती भी है, तो इस शान्ति से हमारा कितना हित होता है, कितना हमारा भला होता है? इस शान्ति से भी हमें कितना-सा सुख मिल जाता है? इसलिए यहाँ आचार्य कह रहे हैं... आप अगर दुनिया की किताब को देखना चाहे तो दुनिया खुली किताब है, आप उस किताब को देखें। आपके हाथ का जो mobile है, उसमें सब कुछ आ रहा है और आज देखें कि आज दुनिया में कितना-कितना हाहाकार मच रहा है। Israel और hamas के बीच में होने वाले इन युद्धों में, फिलिस्तीनी और यहूदियों के बीच में होने वाले इन युद्धों में आप देखें। कोई उस युद्ध के बारे में अगर सोचे तो आप सोच सकते हैं कि जब दोनों पक्षों में युद्ध हो रहा है, तो एक पक्ष में थोड़ा-सा कम लोग मर रहे हैं दूसरे पक्ष में थोड़ा ज्यादा लोग मर रहे हैं। जिसके पास में शक्ति ज्यादा है, वह ज्यादा लोगों को मार सकता है। जिसने अभी शक्ति का कम प्रयोग किया है, वह कम लोगों को मार पा रहा है लेकिन लोग मर रहे हैं। कह सकते हैं कि अगर Israel तीन गुना लोगों को मार रहा है तो Hamas भी Israel लोगों को एक गुना तो मार ही रहा है। अगर इधर Israel एक हजार मरते हैं, तो उधर वह फिलिस्तीनी तीन हजार मर जाते हैं, चार हजार मर रहे हैं। आप सोचो चार-चार हजार लोग अगर record के तहत आपके सामने आ रहे हैं कि इतने लोगों की मृत्यु है, तो यह तो वह है जिनके कोई गवाह हैं जिनके कोई सबूत हैं।

मृत्यु का तांडव देखकर क्या सोचना चाहिए?

अब सोचो किसी बस्ती में, किसी स्थान में, किसी शहर में, जहाँ पर हजारों लोग एक साथ मरण को प्राप्त हो जाए, वहाँ आदमी क्या सोचेगा? वहाँ आदमी को क्या सोचना चाहिए? आदमी वहाँ पर चारों तरफ लाशों को बिछा हुआ देखेगा, अपने घर-परिवार को उजड़ा हुआ देखेगा, अगर उसे कहीं दूर किसी की मृत्यु भी दिखाई देगी तो वह उन सबको देख कर क्या करेगा? थोड़ा सहमेगा, डरेगा लेकिन उसे यह ज्ञान नहीं मिलेगा जो बताया जा रहा है।

मृत्यु के भय पर विजय प्राप्त करने के लिए शाश्वत ज्ञान की आवश्यकता है

इन्हीं चित्रों को देखते हुए, इन्हीं परिस्थितियों को देखते हुए हम इस ज्ञान से भी जुड़ सकते हैं जो ज्ञान हमें यहाँ दिया जा रहा है और यह ज्ञान शाश्वत सत्य है, जो हमें दिया जा रहा है। संसार में लोग मरते भी रहेंगे हमेशा, तरह-तरह के आतंक के शिकार होते रहेंगे हमेशा। आप उनको देखकर सहमते रहेंगे, डरते रहेंगे, भीतर से दुःखी भी होंगे लेकिन फिर भी आपके अन्दर अगर सुख आएगा, आपके अन्दर अगर उस डर से किसी भी तरह से विजय प्राप्त होगी तो वह सिर्फ और सिर्फ इस शाश्वत ज्ञान के माध्यम से होगी। एक दूसरे को देख कर डर जाना, किसी भी भयानक परिस्थिति को देखकर किसी सहम जाने की स्थिति में आ जाना, यह एक सामान्य घटना है। आपके दिमाग में यह आना चाहिए कि अगर इस तरह की मृत्यु हम प्रतिदिन देखते हैं इस तरह के मरण हम प्रतिदिन देखते हैं तो आपको लगता है कि यह मरण विदेशों में हो रहे हैं और विदेशों में भी जब रहने वाले लोग थे जब वे दूसरों के मरण देखा करते थे तब भी वह यही सोचते थे कि यह मरण कहीं और हो रहे हैं।

आज लोग कीड़े-मकोड़ों के समान मरण को प्राप्त हो रहे

अगर आप उन मरणों को भी निकटता से देखना चाहे तो आज आप अपने ही mobiles पर अच्छे ढंग से देख सकते हैं। आप एक क्षण के लिए विचार तो कीजिए कि जब किसी जगह पर दो-चार लोगों की मृत्यु हो जाती है तो कितना हाहाकार मचता है और जहाँ पर हजारों लोग एक साथ मरण को प्राप्त होते हो, वहाँ रोने वाले भी उनके शवों पर नहीं मिलते हैं। जिनके परिवार अपने आप में मिट गए, उनके परिवारों में जो लोग मर गए, उस परिवार के कोई जन बचे नहीं तो कौन किसके लिए रोएगा? सबको किसी न किसी तरह से बस ऐसे ही वहाँ से हटा दिया जाता है, साफ कर दिया जाता है। किसी जगह पर इस तरह से उन्हें दफन कर दिया जाता है जैसे कि आप अपने घर के सामने आए हुए कीड़े-मकोड़ों को अपनी झाड़ूओं से साफ कर देते हो। आप सोचो कि अगर हमारे सामने इस तरह के मरण आ रहे हैं तो हमारे सामने दो ही स्थिति बन सकती है या तो हम उनके साक्षात् गवाह हो, हम उनको सामने देख रहे हो या वे हमसे बहुत दूर हो।

घटनाओं से सीख ले

अगर आपके सामने वह मरण बहुत दूर में उपस्थित है तो आपको लगता है यह मेरी बात नहीं है, यह उनकी बात है। अगर यह मरण आपके सामने भी आ जाएगा तो उस समय पर भी आपके सामने क्या होगा?

थोड़ा-सा डर होगा, थोड़ी देर के लिए आप भीति को प्राप्त हो जाएँगे, भीतर से सहम जाएँगे, इससे ज्यादा कुछ नहीं होगा। लेकिन समझदार व्यक्ति वह होता है, जो दुनिया में कहीं पर भी कोई चीज घटित हो रही हो, उससे कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त करता है। दुनिया के अन्दर होने वाले क्रिया-कलापों को देखकर भी वह आत्महित को साधने की कोशिश करता है। दुनिया के अन्दर जो घटित हो रहा है उसे देखकर भी वह अपने लिए यही सोचता है कि इस स्थिति में मैं क्या करूँ? आप क्या कर पाएँगे? जो करने वाले लोग हैं, जो उन देशों के प्रधानमंत्री हैं, राष्ट्रपति हैं, वे अपने-अपने काम कर रहे हैं। जिनको जिस के साथ मिलना है, जिनको जिसके साथ रहना है, वे उसके साथ मिल रहे हैं, आप सामान्य जनता क्या करोगे?

आत्महित का विचार होना चाहिए

आपके मन में तो यह विचार आना चाहिए कि कम से कम हमें यह सहूलियत मिली है, इस तरह का यह समय मिला है, एक हमें आराम से सोचने का यह मौका मिला है कि हम इस समय पर एक अपने मन के अन्दर कोई विचार ला सकते हैं तो वह विचार हमारे आत्महित का विचार होना चाहिए। हमारे लिए कहीं कोई दिक्कत नहीं है। हम दुनिया में होने वाली हाहाकार को देख रहे हैं लेकिन उस हाहाकार को देखते हुए भी हम अपने लिए क्या सोच सकते हैं? एक आदमी तो वह होगा जो सोचेगा...भाई! जिसको मरना है मरे, जिसको मारना है मारे, अपनी तो जिन्दगी आराम से चल रही है। एक तो यह सोचने का तरीका होता है। या तो यह सोच लो या फिर यह भी सोचा जा सकता है कि कितने लोग इस तरह से मर रहे हैं, मरते हैं और इस तरह की मृत्यु के शिकार हम भी हो सकते थे, हो सकते हैं।

पापी जीव की विचारधारा

अगर मर भी गए तो मरने से पहले हमने क्या ऐसा कर लिया कि हमें उस मरने के बाद कुछ हमारे साथ अच्छा हो कर चला जाए। मरने से पहले हमने ऐसा क्या कर लिया कि हमें अपनी मृत्यु का अफसोस न हो कि हम मर गए और कुछ कर नहीं पाए। यह विचार कौन कर सकता है? यह विचार भी वही व्यक्ति कर सकता है जिसके अन्दर थोड़ा-सा पापों से डर लगने लगा हो, संसार से डर लगने लगा हो। इसलिए यहाँ आचार्य कहते हैं...वे लोग बहुत पापी हैं, जो उस पहली विचारधारा के साथ चल रहे हैं कि दुनिया में देखते हुए भी ये सब लोग मर रहे हैं और विचार कर रहे हैं कि ये तो यह मर रहे हैं। उनके मरण के बारे में दूसरों को तो बता रहे हैं लेकिन खुद उस मरण से डरकर कोई भी आत्महित के लिए तत्पर नहीं हो रहे हैं और अपने लिए यही सोच रहे हैं कि यह तो उनके लिए मरना है, हम तो अपनी जिन्दगी बहुत safety के साथ में जी रहे हैं।

आत्महित का भाव नहीं करना ढीठता है

ऐसे लोग, अगर इस ग्रन्थ के हिसाब से देखा जाए तो इन्हें यहाँ क्या कहा गया है? जानते हो! **‘विरमंति ण पावाओ’** ये सब पापी जीव हैं। पापी क्यों है? मृत्यु सामने खड़ी है लेकिन फिर भी पाप करने में ही आनन्द आ रहा है। मृत्यु का समाचार सुनने के बावजूद भी मृत्यु से डर करके, मृत्यु से भीति को प्राप्त होकर अपने

आत्महित के लिए करने का भाव नहीं आ रहा है। करना तो वही पाप है, जो पाप दुनिया में हर कोई करता हुआ मरण को प्राप्त हो रहा है। आचार्य कहते हैं...इससे बड़ी ढीठता और क्या हो सकती है? ढीठता समझते हो धृष्टता, ढीठपना। ढीठ कहते हैं कि जिसको कुछ भी कहा जाए और उसे कुछ भी फर्क न पड़े, तो कहते हैं भाई! यह तो बहुत बड़ा ढीठ आदमी है, उससे कुछ भी समझाने से कोई मतलब नहीं है। कितना भी इससे कुछ कहो इससे कोई फर्क पड़ता नहीं है। यही शब्द यहाँ इस्तेमाल किया गया।

आत्म तत्त्व की प्राप्ति के लिए उपाय नहीं करने वाले मनुष्यों को धिक्कार है

दुनिया में मरने वाले लोगों को देख कर भी अगर आप अपनी आत्मा को कुछ नहीं समझ रहे हो, अपनी ही आत्म तत्त्व की प्राप्ति के लिए कोई उपाय नहीं कर रहे हो, पापों से दूर नहीं हो रहे हो तो आचार्य कहते हैं... ऐसे मनुष्यों की धृष्टता को धिक्कार हो, इनकी ढीठता को धिक्कार हो! यह ढीठता ही है जो हमें हर तरह से समझाने के बावजूद भी कुछ समझाने नहीं देती, उसका नाम धृष्टता कहलाती है, ढीठपना कहलाता है। जैसे बच्चे को माँ समझाती है कि बेटा! चोरी नहीं करना और वह बच्चा नहीं मानता है तो वह चोरी कर ही लेता है। ऐसे बहुत से बच्चे होते हैं, आपने देखा होगा कि उनसे जिस कार्य के लिए मना करें वे चोरी-छुपे वह काम करते हैं। चोरी भी करते हैं, झूठ भी बोलते हैं, बुरे काम भी करते हैं और जितना उनसे मना किया जाए, वह काम उतनी उस्तादी के साथ और करने की कोशिश करते हैं। उन बच्चों के लिए वह माँ जब यह समझ लेती है कि इस बच्चे को मेरी बात समझ नहीं आ रही है, तो उन बच्चों को एक title दिया जाता है- यह तो ढीठ हो गया। महाराज! यह किसी की नहीं सुनता, आप ही सम्भाल लो इसको। अगर मेरी नहीं सुनता तो आप सम्भाल लो। अगर वह ढीठ हो गया तो किसी की नहीं सुन सकेगा, महाराज की भी नहीं सुन सकेगा, आपकी भी नहीं सुन सकेगा।

ढीठपना कहाँ से आता है?

अब यह ढीठपना आता कहाँ से है? जब किसी के अन्दर कोई भी गलत काम करने की आदत पड़ जाती है और वह अपनी ही आदत से मजबूर होता है कि मुझे यह गलती जरूर करनी है क्योंकि इसमें मुझे अच्छा लगता है, तो यही गलती उसे बार-बार जब repeat करने में आती है, तो यही उसको ढीठ बना देती है। गलती को अगर आपने सुधारा नहीं, गलती पर अगर आपने विचार किया नहीं और उस गलती पर आपने विजय प्राप्त करने की कोशिश नहीं की तो वह गलती आपको धीरे-धीरे ढीठ बना देगी और ऐसा ढीठपना जब आ जाता है तो वह एक गहरा संस्कार पड़ जाता है। फिर उसको समझाने से कोई फर्क नहीं पड़ता है और उसके लिए किसी भी तरह का उपाय आप करोगे, उस उपाय से उसके अन्दर कोई भी परिवर्तन होने का कोई भी chance नहीं रहता है।

शरीर को नश्वर जानकर भी संसार से विरक्ति का भाव नहीं आना ही धृष्टता है

यहाँ आचार्य कह रहे हैं...इन संसार के लोगों की ढीठता तो देखो! कितने लोग मरते हैं? सब देख रहे हैं लेकिन फिर भी कोई इस संसार से हटने की कोशिश नहीं कर रहा है। संसार से दूर जाने की कोशिश नहीं

ढीठ मनुष्यों को उपदेश देना व्यर्थ

उपदेश सुनना और सुनना एक आदत-सी हो गयी है

वैराग्य व चारित्र की परिपूर्णता से ही ठीकता छूटेगी



गाथा: 76

तीव्र कर्मों से बन्धे हुए जीवों के लिए उपदेश कार्यकारी नहीं होता है

मा मा जंपह बहुयं, जे बद्धा चिक्कणेहि कम्मेहिं।
सव्वेसि तेसिं जायइ, हियोवएसो महादोसो ॥76 ॥

अन्वयार्थ- (जे) जो (चिक्कणेहि कम्मेहिं) गाढ़ कर्मों से (बद्धा) बंधे हुए हैं उनको (बहुयं) बहुत (मा) मत (जंपह) बोलो क्योंकि (तेसिं सव्वेसि) उन सभी के लिए (हियोवएसो) हित का उपदेश (महादोसो) महादोषरूप ही परिणत (जायइ) होता है ॥76 ॥

ज्यादा बोलने- समझाने से भी ढीठपना बढ़ता है

जब हमें ढीठता ज्यादा दिखने लग जाए और यह महसूस होने लग जाए कि भाई! ज्यादा समझाने से कोई फर्क नहीं पड़ता है, तो आचार्य भी सोचते हैं, अब क्या करो? बोलना बन्द करो, उपदेश देना बन्द करो। वे खुद कहते हैं ‘मा मा जंपह बहुयं’ अब बहुत ज्यादा मत बोलो। अभी शतक पूरा नहीं हुआ है, अब उन्हें लग रहा है कि बस 75 हो गए हैं, 25% काम और बचा है। अब उन्होंने अपने मन में सोच लिया है कि भाई बोलना कम करो, बोलना बन्द करो और बोलना कम करते-करते भी 25 गाथा लिख जाएंगी। तीन चौथाई हिस्सा चातुर्मास का निकल गया है, एक चौथाई बचा है। आज से भी हम speed कम करेंगे, बोलना कम करेंगे तो भी वह पूरी कम-कम बोलते-बोलते दीपावाली आ जाएगी। लेकिन कहना पड़ता है, क्या करें? ज्यादा मत बोलो, ज्यादा मत समझाओ, ज्यादा मत किसी से कुछ कहो क्योंकि उससे भी कभी-कभी ढीठपना बढ़ता जाता है।

बहुत मत बोलो, थोड़ा बोलो

बच्चे को अगर ज्यादा उसी बात पर जोर दिया जाए, ज्यादा किसी बात के लिए रोका जाए तो बच्चा वही गलती और ज्यादा समझदारी से करने लग जाता है। वह सोचता है कि मुझे रोजाना मना किया जाता है, चोरी नहीं करना, बेटा! चोरी नहीं करना। ठीक है! अब चोरी तो करेंगे लेकिन तुम्हें पता नहीं पड़ेगा कि चोरी कैसे करेंगे? अब चोरी हम घर में नहीं करेंगे चोरी अब हम बाहर करेंगे, चोरी तो करना है। किसी से कहा जाए झूठ मत बोलना, झूठ मत बोलना तो वह कहता है कि ठीक है झूठ नहीं बोलेंगे, तुमसे बिल्कुल नहीं बोलेंगे लेकिन जिससे भी बोलेंगे उससे बिना झूठ बोले हम रहेंगे नहीं। तो जब किसी के अन्दर इस तरह की ढीठता आने लग जाती है तो आचार्य कहते हैं...अब समझाओ नहीं, रुक जाओ। बोलना बन्द करो, चुप हो जाओ तो वही यहाँ पर बात आ रही है ‘मा मा जंपह बहुयं’ मत बोलो, मत बोलो, मत बोलो। अभी यूँ

कहा जा रहा है...बहुत मत बोलो मतलब थोड़ा बोलो।

समझाने का प्रयास तो करते रहने पड़ेगा

क्यों कहा जा रहा है ऐसा? क्योंकि उन्हें पता है कि इन ढीठों के बीच में से ही कोई न कोई एक-आध निकल आएगा जो आत्महित की ओर तत्पर हो जाएगा। जब भी निकलेगा तो कहाँ से निकलेगा? ढीठों में से निकलेगा न। लोग आत्म कल्याण करेंगे तो मोक्ष से आकर तो नहीं करेंगे। कहाँ से करेंगे? जो संसार में है वही तो करेंगे और संसार के लोगों को समझाने के लिए हमेशा इस तरह के प्रयास करते रहने पड़ेंगे। जिनको जिस तरह का समझ में आ रहा है उनको उस तरह का लाभ हो रहा है। अब वह लाभ एकदम से दिखाई दे जाए, वह सम्भव नहीं है। मरना तो एक साथ हो सकता है लेकिन वैराग्य कभी एक साथ किसी को नहीं होता और वह काल, वह समय भी नहीं है कि एक साथ सौ-सौ आदमी, पचास-पचास आदमी, दो-दो सौ आदमी वैराग्य को प्राप्त हो जाएँ।

एक साथ वैराग्य होना क्या सम्भव है?

ऐसा कभी हो सकता है? एक समाज में से पचास-पचास लोग अपने आप वैराग्य को प्राप्त हो जाएँ? भाई! यह दुनियादारी छोड़ो, घर-बार छोड़ो। क्या करो? ये जितने भी घर हैं, इन सब घरों को तो बना दो सन्त भवन या व्रती भवन और इनमें ही खुद रहकर इस तरह से रहो कि भाई अपने को लगे कि भाई हम दूसरे के घर में रह रहे हैं। यह भी एक वैराग्य का तरीका हो सकता है। अगर मान लो आपको घर त्यागने में कठिनाई होती है कोई बात नहीं, आप दस लोग मिलकर ऐसा एक माहौल बना सकते हो। भाई! मेरे घर में तुम रह लेना, तुम्हारे घर में हम रह लेंगे और घर किसी के नहीं हैं तो घर से विरक्ति हो जाएगी। घर में रह कर क्या करना? भाई! सभी लोग हम व्रतों का पालन करते हैं, पापों से बचकर, बिल्कुल व्रत-प्रतिमा लेकर हम यहाँ पर पूरा का पूरा एक दूसरे का सहयोगी बनकर धर्म करते हैं। ऐसे दस-बीस लोग एक साथ करने का अपने साथ में एक माहौल नहीं बना सकते? बना सकते हैं अगर चाहे तो। जैसे हम दुनिया में देखते हैं लोग हजारों- हजार एक साथ मर सकते हैं लेकिन हजारों- हजार लोग एक साथ धर्म करने को तत्पर नहीं होते, पाप से दूर हटने को तत्पर नहीं होते लेकिन अगर होना चाहें तो हो सकते हैं।

समझदार भी इन्हीं ढीठों में से निकलेंगे

भाई! हमें जितना जीवन मिला है अब हम उस जीवन को पापों से बचकर गुजारेंगे, व्रतों के साथ गुजारेंगे और ऐसा करने के लिए जो भी हमें एक दूसरे का सहयोग करना पड़ेगा, हम एक दूसरे के सहयोगी बनेंगे और एक दूसरों के व्रतों के हम पूरक बनेंगे। लेकिन हम इस पाप से बचकर अब शेष जीवन जीएँगे। अगर मान लो हजारों लोगों में से दस-बीस लोग भी निकल आते हैं तो यह भी उपदेश की सार्थकता हो जाती है और यह लोग कहाँ से निकलेंगे? ये इन्हीं ढीठों में से निकलेंगे क्योंकि आचार्यों को पता है कि ढीठ व्यक्ति अगर समझता नहीं है तो समझता नहीं है और समझता है तो फिर ढंग से समझता है। एक उम्मीद की किरण तो जाग्रत रहती है। अगर बच्चा गलत काम कर रहा है, कर रहा है, कर रहा है, कर रहा है, कब तक?

जब तक उसका मन कर रहा है लेकिन अगर उसे कभी भी एक बात से कोई ठेस लग जाए तो वह सारी की सारी जिन्दगी में उसने जितने गलत काम किए, उन कामों को छोड़कर अच्छाई के रास्ते पर जब चलने लग जाता है, तो कई लोगों को और अच्छा बनाने के लिए वह उदाहरण भी बन जाता है। काम में आएँगे लोग यही, इसलिए घर का बेटा घर का ही होता है। बेटा चाहे झूठ बोले, चाहे चोरी करे, चाहे परिग्रह रखे, चाहे कितनी भी हिंसा करे, आखिर बेटा किसका है? बेटा तो अपना ही है।

एक के परिवर्तन से कई और भी प्रभावित हो जाते हैं

इसी तरह से आचार्य जब जिनवाणी के माध्यम से उपदेश देते हैं तो इन ढीठों के बीच में उपदेश देते हुए वे यही विचार करते हैं कि इन्हीं में से वह बेटा निकलेगा। कोई न कोई बेटा होगा, जो क्या करेगा? इन उपदेशों को ग्रहण करके अपने अन्दर एक परिवर्तन लाएगा और यह इन ढीठों में से ही सम्भव है और जब यह परिवर्तन आएगा तो वह परिवर्तन कई लोगों के परिवर्तन का कारण बन जाएगा। अब एक भी ढीठ अगर सुधर जाता है, तो कई ढीठ उसको देख कर सोचने लग जाते हैं...भाई! यह तो हमारे ही साथ चोरी करता था, यह तो हमारे ही साथ में सब पाप करता था और यह सुधर गया तो क्या होगा? उनके अन्दर भी परिवर्तन आने लग जाता है। इसलिए कोई न कोई एक ढीठ भी तैयार हो जाए, जो सुधरने की पूरी कोशिश में आ जाए। सुनाई पड़ रहा है कि नहीं? इतने ढीठ तो नहीं हो गये सुनाई भी नहीं पड़ रहा हो? माँ पूछती बेटा! सुन रहा है कि नहीं सुन रहा है, तो वह ढीठ सुनता भी नहीं पढ़ा। उसे पता है कि यह बार-बार यही बात कहती है, जो मुझे करना है वही करना है और इसको जो कहना है वह कहना है, तो इसलिए वह सुनते हुए भी अनसुनी-सा करता है। कहीं ऐसा ही तो आपके साथ नहीं हो रहा है? अगर हो रहा हो तो आचार्य बताते हैं...इसका भीतरी कारण क्या है?

अंतरंग कारण को जानना चाहिए

जब भी हमें बाहरी प्रयासों को करने के बाद में कोई सफलता न मिलती हो तो हमें अन्तरंग कारण को देखना चाहिए। हताश नहीं होना चाहिए, हमेशा पुरुषार्थ करने का भाव रहना चाहिए। सुधार करने वाला सुधार करेगा, सुधारक सुधार करने के लिए उपदेश देगा। यह कार्य निरन्तर चलने की प्रक्रिया है और इसमें यह नहीं सोचना है कि हमें इससे कितनी सफलता मिल रही है? सफलता मिलेगी तो उन व्यक्तियों को अपने ही कर्मों के कारण से मिलेगी और वे कर्म कौन से होते हैं? आचार्य यहाँ कह रहे हैं...जिनकी आत्मा में ज्यादा-ज्यादा चिकने-चिकने कर्म बन्धे हुए हैं। देखो! कैसे लिखा है? **‘चिकणेहि कम्मेहिं जे बद्धा’** कौन से कर्मों से जो बन्धे हैं? चिकने कर्मों से जो बन्धे हैं। अर्थात् **कर्म चिकने भी होते हैं और सूखे भी होते हैं।** सूखे होंगे तो थोड़ा-सा कहने से झड़ जाते हैं, थोड़ा-सा मन में विचार आता है तो झड़ने लग जाते हैं, मन में भाव आ जाता है कि हाँ! बहुत अच्छा कहा जा रहा है, समझाया जा रहा है, चलो कुछ तो हम आगे बढ़ते हैं।

सूखे और चिकने कर्मों का उदाहरण

कई बच्चे होते हैं अपने आप ही महाराज को देखते हुए उनके पास में बैठते हुए, रहते हुए अपने मन में विचार

करते हैं...देखो! मैं तो क्या-क्या खाता था? क्या-क्या खाती थी? यह सब खाना- पीना हम कितना गलत करते थे। लेकिन जब से हम यह संगति को प्राप्त हुए हैं तब से हमें लगने लगा है कि यह सब खाने-पीने के बिना भी बहुत अच्छे ढंग से जीवन निकाला जा सकता है। ऐसा विचार अपने मन में जब आ जाता है, तो यह कैसे लोगों के मन में आएगा? जिनके कर्म ज्यादा चिकने नहीं हो। अगर सूखे-सूखे कर्म अपने अन्दर बाँध रखे हैं तो थोड़े-से हिलाने से वह...क्या बोलते हैं उसको? जैसे वह कोई मिट्टी का ढेर लगा हो और उसमें एक पैर डाल दो तो सब मिट्टी खिसक जाती है, ऐसे ही अगर कर्म बन्धे तो सबके हैं, अगर चिकने-चिकने बाँध रखे हैं तो फिर कितने ही उपदेश दिए जाएँ, वे सब उपदेश ऊपर से slip हो जाते हैं। जैसे चिकना घड़ा बोलते हैं, पानी ऊपर से सब चला जाता है। अगर कर्म सूखे होंगे तो वे कर्म हट जाएँगे, भीतर से अपना ज्ञान स्वभाव प्रकट होगा, भीतर से राग की कमी होने पर वीतरागता का आनन्द महसूस होगा, भीतर से अपने आत्म सुख की ओर तृप्ति का भाव उत्पन्न होगा। अगर वे कर्म हल्के होंगे तो इन उपदेशों से हट जाएँगे, चिकने होंगे तो उपदेश देने वाला ही हट जाएगा।

चिकना घड़ा

आचार्य कहते हैं कि इन सब जीवों के लिए, जो चिकने कर्मों से बन्धे हुए हैं, इनके लिए ज्यादा मत बोलो। किनके लिए ज्यादा मत बोलो? जिनके कर्म बहुत चिक्कड़ है, चिकने घड़े जो हैं। अब बताओ चिकने घड़े कितने हैं यहाँ? अब ढीठ से बात किस पर आ गई? चिकने घड़े पर आ गयी। आपको लगता है कि हमारे अन्दर थोड़े-थोड़े से कर्म ढलते हैं, कोई हमारे अन्दर थोड़ा-थोड़ा सा भाव आता है और हम थोड़ा-थोड़ा-सा आगे बढ़ते हैं। थोड़े-थोड़े से कोई भी हम मन में विचार करते हैं...चलो भाई! अब maggi बहुत खा ली, pizza-burger बहुत खा लिए, रात में बहुत भोजन कर लिया, लहसुन प्याज बहुत खा ली, होटलों में बहुत खा लिया, अब थोड़ा-सा इस पर विराम लगाते हैं। यह मन में विचार आता है, बोलो? चिकने घड़ों! जब मन में विचार आएगा तो समझना कि थोड़े-से कर्म हल्के हो रहे हैं, तब तो इन उपदेशों से हमारे ऊपर कुछ फर्क पड़ रहा है और अगर बिल्कुल भी कोई विचार नहीं आता तो समझना, हमारे कर्म बहुत ही हमको पकड़े हुए हैं। ढीठ बनने का कारण क्या है कि हमारे कर्म ही हमको बहुत जकड़ चुके हैं और उसी जकड़न के कारण से हम अपने अन्दर कोई भी नया विचार, नया ज्ञान, नया संयम का भाव, नया कोई भी हम आगे बढ़ने का भाव अपने लिए नहीं ला पाते हैं। यह हमारे कर्मों की चिक्कणता के कारण से होता है, तो इसमें बुरा मानने की बात नहीं है।

उपदेश सुनाना और सुनना बन्द नहीं करना है

अर्थात् आचार्यों ने हमारे ऊपर उपकार कर दिया कि कहीं ऐसा नहीं करना कि कल से तुम प्रवचन बन्द कर देना क्योंकि कह दिया न उन्होंने...बहुत मत बोलो, बहुत मत बोलो! और कहीं मेरे मन में आ जाता है बहुत मत बोलो! तो अब क्या है? बन्द करो अब यह प्रवचन, सब ढीठ तो है ही है। आचार्य कहते हैं...इन ढीठों में तुम्हें पता नहीं है, कुछ के कर्म तो हल्के होते हैं जो बिल्कुल मिट्टी की तरह खिसक जाएँगे। तुम इनमें हथोड़े चलाते रहो, टुक टुक टुक टुक करते रहो, ये सुधर जाएँगे और इनके कर्म धीरे-धीरे हल्के हो जाएँगे और जो चिकने कर्म वाले होंगे उनमें ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ेगा। लेकिन अब तुम्हें पता तो है नहीं किसके कर्म चिकने

हैं? किसके कर्म हल्के हैं? तुम अपना काम करते रहो। जिसके हल्के होंगे वे झड़ जाएँगे और ऊपर निकल कर आ जाएँगे और जो चिकने होंगे, वे संसार में ही घूमते रह जाएँगे। फिर करना क्या है? वही करना है जो रोजाना करते आए हैं अर्थात् उपदेश बन्द नहीं करना है। जब हमें उपदेश सुनाना बन्द नहीं करना है तो आपको भी सुनना बन्द नहीं करना है।

कभी हितकारी उपदेश भी महादोष के लिए हो जाता है

अब इन्हीं चिकनों में से किसी के लिए वह उपदेश हित का होगा और किसी के लिए वह उपदेश ऐसा भी हो सकता है कि वह उपदेश उसके लिए उल्टा पड़ जाए। उल्टा पड़ने का मतलब? ऐसे भी लोग होते हैं जो यह सोचते हैं कि रोजाना महाराज हमें कुछ न कुछ आगे बढ़ने को कहते हैं। रोजाना महाराज हमें कुछ न कुछ, कभी चाय का त्याग करा दिया, कभी यह maggi का त्याग करा दिया, कभी इन चीजों का त्याग करा दिया। अगर रोजाना आएँगे तो कुछ न कुछ छोड़ते चले जाएँगे तो कुछ खाने को नहीं बचेगा, कल से प्रवचन सुनने आना ही नहीं है। उनके लिए यह उपदेश क्या हो गए? गुणकारी नहीं हुए, क्या हो गए? दोष के लिए हो गए। आचार्य कहते हैं... **‘हियोवएसो महादोसो’** हितकारी उपदेश भी महादोष के लिए हो जाता है। किनके लिए? जो भीतर से चिकने घड़े हैं उनके लिए हितकारी उपदेश भी किसके लिए होता है? दोष के लिए हो जाता है, महादोष के लिए हो जाता है क्योंकि उन्हें वह हितकारी उपदेश सुनने के बावजूद भी ऐसा लगेगा कि कहीं इस उपदेश के कारण से हमारे किन्हीं पापों में कोई कमी न आ जाए। जो इतना अपने आप को पापों से जकड़ा हुआ होगा, उसके लिए यह उपदेश कभी भी हितकारी नहीं होंगे और गुणकारी नहीं होंगे।

उपदेश सुनकर बच्चे भी छोटे-छोटे त्याग ले लेते हैं

जितने भी लोग यहाँ सुन रहे हैं, चाहे वह कुर्सियों पर बैठे हों, चाहे वहाँ मुडगारियों पर बैठे हों, चाहे यहाँ ये सामने बैठे हो, ये उपदेश सुनने में डरते तो नहीं हैं। इतना तो पक्का है कि ये इतने ठीठ तो हो गए हैं कि इनके लिए यह उपदेश महादोष का कारण नहीं है। क्यों? यह देखो! बच्चियों की भी line बैठी हुई है। समझ में सबको आता है और कई बच्चियाँ इनमें से ऐसी हैं जो धीरे-धीरे कोई न कोई संकल्प ले जाती है, कोई न कोई त्याग कर लेती हैं और अपने आप मेरे कान में बता जाती हैं, महाराज! अब हम maggi का त्याग कर दे रहे हैं, अब हम burger का त्याग कर दे रहे हैं, अब हम lipstick का त्याग कर दे रहे हैं। ऐसी भी बहुत सारी बच्चियाँ हैं जो यहाँ पर सामने बैठी हैं। इसका मतलब है कि उपदेश सुनने में डर किसी को नहीं है और डर इसलिए नहीं है क्योंकि भीतर हमारे कर्म बहुत ज्यादा चिक्कड़ नहीं हैं, हिलते तो हैं।

जिन्हें सुनकर द्वेष न उत्पन्न हो वही हितोपदेश है

हमें यह उपदेश कभी भी ऐसा नहीं लगता कि इससे हमारा अहित हो रहा हो या इससे हमारा नुकसान होगा। अगर ऐसा नहीं लगता है तो आचार्य कहते हैं...यह उपदेश आपके लिए हितकारी उपदेश है, हितोपदेश है और हितोपदेश की यही पहचान है कि वह आपके लिए दोष रूप न लगे, आपको उनसे द्वेष

उत्पन्न न हो। तब तो ये उपदेश कैसे हैं? हितोपदेश हैं। आपको अब यह समझ में आ जाना चाहिए कि हमें यहाँ पर जो उपदेश दिया जा रहा है, वह हमारे लिए कैसा है? हितोपदेश है कि अहितोपदेश है? हितोपदेश है क्योंकि इन उपदेशों को सुनकर हमारे अन्दर कोई उपदेशों से द्वेष उत्पन्न नहीं हो रहा है, दोष उत्पन्न नहीं हो रहे हैं, बल्कि हम गुणों की ओर ही आगे बढ़ रहे हैं। इसलिए अगर यह उपदेश हितोपदेश हैं तो फिर यह श्रृंखला रोकी नहीं जाएगी और यह हितोपदेश चलते रहेंगे। जब तक कि ऊपर से high command के कोई आदेश नहीं आएँगे तब तक ये हितोपदेश चलते रहेंगे। अब वे high command के आदेश कब आएँगे, कैसे आएँगे? अभी दीपावाली तक तो आप बिल्कुल safe हो। बीच में कभी ऐसा नहीं होगा कि आपको खाली करने को कहा जाए कि भाई जैसे Israel ने कह दिया, गाजा पट्टी खाली कर दो। ऐसे आपके लिए कोई order आने वाले नहीं हैं।

व्रतों के ग्रहण करने की शक्ति बढ़ाओ

लेकिन इतने दिनों में भी आपके अन्दर कुछ ऐसे परिवर्तन आने चाहिए जो परिवर्तन पिछले तीन महीनों में नहीं दिखाई दिए हो, वह आने वाले बीस दिनों में दिखाई देने चाहिए। सुनते-सुनते, ठोकर लगते-लगते, चोट लगते-लगते, थोड़ा-सा तो वह कर्म कटते-कटते कुछ अगर कट रहे हो तो अपने जीवन में उन बुराइयों को छोड़ने के लिए, अपने अन्दर अच्छे-अच्छे संकल्प लेने का भाव अवश्य करना चाहिए। जितनी हमारे पास में अच्छी सहूलियत है, उन सहूलियत के अनुसार हमें व्रत-संयम के क्षेत्र में भी आगे बढ़ने का प्रयास अवश्य करना चाहिए।

कर्मों पर चोट करने का साहस जुटाओ

अगर आप ऐसा नहीं करोगे तो आप समझना कि आप भीतर से बहुत ढीठ हो, आपके कर्म बहुत चिकने हैं और अगर आप ऐसा कर पा रहे हो तो इसका मतलब है कि कहीं न कहीं हमने कर्मों पर भी अपनी धाक लगा दी। अर्थात् एक बार अगर हमने उन कर्मों पर चोट पहुँचा दी तो इसका मतलब है कि हमें जगह मिल गई है, हम उन कर्मों को अब हिला सकते हैं। अगर एक बार भी आपके अन्दर ऐसा साहस आ जाएगा तो यह साहस आपका दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए आपको संसार के दुःखों से मुक्त करेगा और आपको कर्मों से भी हल्का बनाएगा।

आचार्यों के उपदेश हमारे आत्महित में होते हैं

आचार्यों के ये सभी उपदेश इसीलिए हैं..हम अपनी आत्मा का हित करें, कर्मों से अपनी आत्मा को हल्का करें, अपने अन्दर जो बन्धन हैं लोभ के, कषायों के, पापों के, उन बन्धनों को हम खुद ब खुद तोड़ने की कोशिश करें और हम अपने अन्दर इस तरह की शक्ति अर्जित करें कि हम देख रहे हैं कि संसार में सब लोग मर रहे हैं लेकिन हम ऐसी शक्ति अर्जित करें कि मरने से पहले हम पाप करके नहीं बल्कि पुण्य करके, धर्म करके, मरण को प्राप्त हो ताकि हमारा मरण होने के उपरान्त भी आगे का जीवन सार्थक बने, अच्छा बने। इस तरह का अगर हम विचार करते हुए अपना जीवन आगे निकालते हैं तो आगे के दिनों में आपके अन्दर

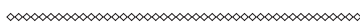
कुछ अच्छे परिवर्तन दिखाई देने चाहिए। जो परिवर्तन हमने अभी तक नहीं देखे हैं, वह देखने में आना चाहिए।

प्रतिमाओं को लेने के भाव बनाने की प्रेरणा

अभी तो सिर्फ एक ही बात चल रही है...जिसको देखो भाई! महाराज! आपकी पिछ्छी चाहिए, आपकी पिछ्छी चाहिए। पिछ्छी सबको चाहिए, पीछे कोई नहीं लगना चाह रहा। नए-नए ग्राहक तो आ रहे हैं, बहुत बढ़िया-बढ़िया ग्राहक भी आ रहे हैं...पिछ्छी चाहिए, पिछ्छी चाहिए। कोई यह भी तो बोले कि महाराज अणुव्रत चाहिए, बारह व्रत चाहिए, दो प्रतिमा के व्रत चाहिए, महाराज आपके पीछे लगना चाहते हैं, आप हमेशा हमें इसी तरह से अपने पीछे लगा कर रखना ताकि हम भी आपके रास्ते पर चलते-चलते महाव्रती एक दिन बन जाएँ। इस तरह का तो भाव कोई नहीं कर रहा। क्या करना है आपको? प्रतिमा लेने के भाव करो, दो प्रतिमाओं के पालन करने के विचार बनाओ, एक प्रतिमा का पालन करने का विचार बनाओ, बारह व्रतों का पालन करने की भावना करो। इस तरीके के अणुव्रतों के साथ आगे अपने आप को बढ़ाओगे तो कुछ अच्छा बनेगा और अगर एक बार महाव्रती के पीछे लग जाओगे तो पिछ्छी तुम्हें पुरानी तो क्या? नई पिछ्छी भी तुम्हें मिलने का साहस आ जाएगा। अभी तो आप पुरानी माँगे जा रहे हो। नई नहीं लेना कभी? नई पिछ्छी लेने का भी साहस कैसे आएगा? पहले महाराज पुरानी दे दो, ऐसे? लेकिन उसके साथ भी अपने अन्दर व्रतों के ग्रहण करने की शक्ति बढ़ाओ इसी में आत्मा का हित है।

पापों से दूर हटो और व्रतों का पालन करो

आचार्य यहाँ कह रहे हैं...देखो! दुनिया में सब कुछ हम देख रहे हैं। कब हमारे ऊपर बिजली गिर पड़े, कब हमारे ऊपर गाज़ गिर पड़े? कुछ नहीं कहा जा सकता। इसलिए मरने से पहले अच्छे कार्य करके बुद्धिपूर्वक अपने जीवन में इन पापों से बच कर अपनी बुद्धि को चलाओगे तो आपका यह जीवन सार्थक होगा। इसलिए आचार्य हमेशा कहते हैं कि अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए पापों से दूर हटो, व्रतों का पालन करो।



गाथा: 77

अनन्तसुखस्वरूप मोक्ष में आदरभाव करना, धन-
स्वजन आदि सांसारिक वैभवों में नहीं

कुणसि ममत्तं धण-सयण-विहव-पमुहेसु अणंतदुक्खेसु।
सिढिलेसि आयरं पुण, अणंत-सुक्खंमि मुक्खंमि ॥77॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्!' (धण-सयण-विहव-पमुहेसु अणंत-दुक्खेसु) धन, स्वजन, वैभव 'आदि' प्रमुख यानी प्रधान 'कारण' हैं, अनन्त-दुःखों 'को प्राप्त कराने' में (पुण) फिर 'भी तुम इनमें' (ममत्तं) ममत्व करते हो (पुण) किन्तु (अणंत-सुक्खंमि मुक्खंमि) अनन्त सुख 'स्वरूप' मोक्ष में (आयरं) आदरभाव को (सिढिलेसि) शिथिल यानी कमजोर करते हो 'इस बात का गंभीरता से विचार करो' ॥77॥

वैराग्य शतक इस ग्रन्थ के माध्यम से बहुत से लोग यहाँ बैठे हुए और अन्यत्र भी संसार की विचित्र दशा का वर्णन सुन रहे हैं और यह वर्णन निरन्तर चल रहा है। जिस क्रम से यह वर्णन धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए हमारे अन्दर संसार के सब प्रकार के जो भाव हैं, उन सब भावों के साथ में हमें किस समय पर क्या सोचना चाहिए? और किस समय पर हमारे अन्दर किस तरह के विचार आने चाहिए? यह बात बताने के लिए, अपने हित की बात करने के लिए, राग की कमी के लिए और कषायों की कमी के लिए इस तरह के ग्रन्थों की उपादेयता बहुत अधिक बनती है। इसी क्रम में गाथा नम्बर 77 और 78 पढ़ते हैं...



कुणसि ममत्तं धण-सयण-विहव-पमुहेसु अणंतदुक्खेसु।
सिढिलेसि आयरं पुण, अणंत-सुक्खंमि मुक्खंमि ॥77॥

संसारो दुहहेऊ, दुक्खफलो दुस्सह-दुक्ख-रुवो य।
ण चयंति तं पि जीवा, अइबद्धा णेह-णिअलेहिं ॥78॥

ममत्व भाव

आचार्य कहते हैं...यह जीव 'ममत्तं कुणसि' ममत्व कर रहा है। कहाँ कर रहा है? 'धण-सयण-विहव-पमुहेसु' धन में ममत्व कर रहा है, अपने जो स्वजन हैं, उनमें ममत्व कर रहा है और जो उसके पास में कुछ

वैभव है, सम्पदा है उसमें ममत्व कर रहा है। इन्हीं तीन चीजों की प्रमुखता के साथ में यह ममत्व भाव उत्पन्न किया जाता है और इन सब में जो प्रमुख ममत्व का भाव है, वह धन का है। स्वजन भी ममत्व के विषय बनते हैं और वैभव, जिसमें अनेक चीजें आ जाती हैं। चाहे वह अपना किसी भी तरह का ऐश्वर्य हो, अपना प्रभाव हो, अपना किसी पद पर प्रतिष्ठित होना हो, यह सब वैभव कहलाता है। इन सबके विषय में भी एक ममत्व भाव यह जीव कर रहा है और इन सब चीजों में होने वाला जो ममत्व है, आचार्य यहाँ कह रहे हैं... **‘अणंतदुःखेसु’** यह सब अनन्त दुःख रूप चीजें हैं। इनमें ममत्व करना यानी दुःख में ममत्व करना। इनसे मोह बढ़ाना यानी दुःख से मोह बढ़ाना। जिन चीजों में हम ममत्व करते हैं, हम उन्हीं चीजों को प्राप्त करते हैं। चीजें हमारे सामने होती हैं लेकिन भीतर से वे चीजें अगर हमें दुःख दे रही हैं तो हमें वह दुःख महसूस नहीं होता। हमें चीज को प्राप्त करने की जो लालसा होती है, वह सामने रहती है। हमें चीजों में सुख की अवभासना होती है, भले ही वह वस्तु हमारे लिए किसी भी तरह का दुःख क्यों न दे रही हो। दुःख को अगर हम ममत्व के साथ में जोड़ लेते हैं तो आगे भी आचार्य कहते हैं...आपको दुःख ही मिलेगा।

जितना अधिक ममत्व उतना अधिक दुःख

दुःख एक भीतरी भावात्मक चीज है और उस दुःख को सामने अभिव्यक्त करने के लिए अनेक तरह की ये चीजें आ जाती हैं जिनमें कुछ चेतन है, कुछ अचेतन है। धन है यह अचेतन है, स्वजन है यह चेतन है, वैभव है यह भावात्मक है और इन सब चीजों के साथ में जो हमारा ममत्व का भाव है। वह ममत्व जितना अधिक है मान कर चलिए कि दुःख उतना ही अधिक है। इन सब अनन्त दुःख वाली चीजों में अगर हमने ममत्व किया है तो ऐसी मन की परिणति बन जाती है। मन जहाँ पर लग जाता है, मन जहाँ पर आदर करता है, बस! वहीं पर वह लगा रहता है तो आचार्य कहते हैं...हमने इन चीजों में ममत्व किया मतलब इन्हीं चीजों का हमने आदर किया, इन्हीं चीजों पर हमने ध्यान दिया। हमने धन के अलावा कब किस चीज पर और ध्यान दिया?

हमारे जीवन में धन का महत्व

जितना हमारे जीवन में धन का महत्व है शायद किसी भी चीज का महत्व नहीं होगा और अगर हम इस क्रम को देखे तो यह क्रम भी बिल्कुल सही लिखा हुआ है। हमें लगता है कि हमारे स्वजनों का महत्व हमारे लिए बहुत है लेकिन धन का महत्व उससे भी ज्यादा है। कभी-कभी स्वजन घर पर रहते हैं, स्वजनों को भी हम उपेक्षित कर देते हैं जब हमारे सामने धन की बात आती है। धन कमाने के लिए हमें जब कहीं जाना होता है, धन कमाने के लिए जब हमें कोई भी तरह की मेहनत करनी पड़ती है तो वहाँ पर हम अपने स्वजनों की भी उपेक्षा कर देते हैं। किसी भी तरह के स्वजनों का कोई काम हो, हम उसको टाल सकते हैं कि भाई! यह काम आपका दो दिन बाद भी हो जाएगा। लेकिन अभी जो हमारे सामने ग्राहकी का समय आया है यह महत्वपूर्ण है, आप तो दो दिन बाद भी मिल जाओगे। जो भी हमारे अपने हितैषी होते हैं, हमारे अपने परिजन होते हैं, हमारे अपने ही बन्धु होते हैं उनको भी हम कुछ समय के लिए ignore कर सकते हैं और यह सोच लेते हैं कि धन है तो ये सब हैं और धन नहीं होगा तो ये कोई भी हमारे नहीं होंगे और न हमारे कुछ काम के होंगे।

भावों को समझना आवश्यक है

इसलिए आप यह बात समझें कि आचार्यों ने हमारे भावों को पकड़ा है और हमारे भावों को ही यहाँ पर चित्रित किया है। हमें यहाँ पर कुछ सिखाया नहीं जा रहा है, न हमें यहाँ पर कुछ पढ़ाया जा रहा है। हमें यहाँ पर कोई training भी नहीं दी जा रही है, हमें यहाँ पर कोई teaching भी नहीं दी जा रही है। हमें यहाँ पर केवल अपने ही भावों से involve होने की एक पद्धति बताई जा रही है। आप यह न समझें कि यहाँ आपको कुछ पढ़ाया जा रहा है, आप बहुत पढ़े-लिखे हैं। आपको कोई training दी जा रही हो ऐसा भी नहीं है क्योंकि आप पहले से बहुत trained हैं। पढ़ाने वालों से ज्यादा trained हैं, समझाने वालों से ज्यादा trained हैं और आप इतने trained हैं कि अगर आपके भी सामने कोई कह दे कि आप इनको थोड़ा-सा समझा दे ताकि यह थोड़ा-सा अपना ममत्व छोड़ दे तो आप उन्हें भी दो-दो घण्टे तक lecture दे सकते हो, इतने trained हो चुके हो आप। इतनी आपकी teaching हो चुकी है। जरूरत teaching और training की नहीं है, जरूरत है understanding की। teaching और training से बड़ी चीज होती है- **understanding**, जिसे कहते हैं- **एक समझ**। जरूरी नहीं कि जब कोई हम teaching पा रहे हो तो हमारे अन्दर समझ आ जाए, जब हम कोई training ले रहे हो तो हमारे अन्दर समझ आ जाए। समझ एक अलग चीज है और teaching और training जो होती है...वह किताबों से हो सकती है, वह किसी course के through हो सकती है, वह किसी एक system के through हो सकती है। लेकिन understanding के लिए कोई system नहीं चाहिए। जब व्यक्ति के अन्दर एक सहज यह understanding आती है तो वह अपने आप को involve करता है, उनसे...जो चीजें सामने हो रही हैं। जैसे कि कल कहा था कि आपको चारों ओर लोग मरते हुए दिखाई दे रहे हैं। यह आपकी एक समझ हो सकती है, इसको सिखाने की कोई जरूरत नहीं है, इसके लिए कोई training करने की जरूरत नहीं है। mind आपका trained है, mind आपका सब चीजें सीखा हुआ है। बस! एक समझ की जरूरत है।

जीवन की घटनाओं को करने के लिए किसी training की जरूरत नहीं

इस तरह के जो भावना प्रधान ग्रन्थ होते हैं, यह जो वैराग्य शतक जैसे ग्रन्थ हैं, मुझे कहीं नहीं लगता कि इन ग्रन्थों में हमें कोई शिक्षा दी जा रही है, हमें कोई चीज के लिए train किया जा रहा है। नहीं! इनमें केवल एक समझ पैदा की जा रही है, चीजें हम समझते हैं। हमारे सामने जब धन हो रहा हो, season का time चल रहा हो, सुबह से शाम तक हमें अपनी दुकान पर रहना हो और उसी समय पर अगर हमारे घर में किसी बच्चे की चोट भी लग जाए तो हम कह देंगे, हम आपकी व्यवस्था कर देते हैं। घर में जो उसके दूसरे लोग हैं, उसको दिखा लाना। अभी कोई अगर बहुत ज्यादा serious नहीं है तो हमें परेशान करने की जरूरत नहीं है। हम आकर के घर पर बाद में देख लेंगे। अभी थोड़ा-सा season का समय चल रहा है, ग्राहकी लगी हुई है, disturb न करें। ये हमारे जीवन में घटित होने वाली चीजें हैं, इसके लिए हमें कोई train नहीं किया गया कि आपको ऐसा बोलना है...जब आपके घर में कोई पीड़ित हो जाए, किसी को चोट लग जाए और आपकी दुकान चल रही हो, आपको दुकान बन्द न करने की इच्छा हो और यह सोचने की इच्छा हो कि थोड़ी देर के लिए यह विचार हमारे सामने से हट जाए तो इसके लिए आपको कोई train नहीं किया गया।

हमारे लिए धन ही सर्वोपरि है

कोई आपको किसी भी business management के course में teaching नहीं दी गई है चाहे भले ही आपने MBA कर लिया हो या BBA कर लिया हो। ये teaching और training की चीजें नहीं हैं, ये हमारी understanding की चीजें होती हैं। इसलिए इस ग्रन्थ में जो कहा जा रहा है, वह सिर्फ एक समझ पैदा करने के लिए है। धन हमारे सामने सर्वोपरि होता है। हम कितने ही किसी से वायदे करें, कितने ही किसी के सामने promise करें कि नहीं, आप हमारी जिन्दगी में बहुत अहम हो लेकिन किसी की जिन्दगी में कोई अहम नहीं होता है। सबसे बड़ी चीज होती है- धन। जब आदमी के सामने धन आता हुआ दिखाई देता है तो वह अपने सब रिश्तों को दरकिनार कर देता है। जब आपके सामने कोई भी तरह का offer आ जाए और आपसे कहा जाए कि आपको घर छोड़ कर के ऐसी जगहों पर रहना है, जहाँ पर न कोई धर्म का साधन मिलेगा, न आपको आपका परिवार मिलेगा लेकिन आपको वहाँ पर बहुत अच्छी कमाई होगी। ये जितने भी लोग बैठे हैं, यहाँ एक भी नहीं टिकेंगे। चाहे उसके लिए हमें सिंगापुर जाना पड़े चाहे सीलोन जाना पड़े चाहे श्रीलंका, कहीं भी जाना पड़े। हम पहुँच जाएँगे अगर हमें वहाँ से धन प्राप्ति का कोई भी interesting offer मिल जाए। यह बात हमारे अन्दर जो समझ के माध्यम से पैदा हुई है, एक धन के प्रति हमारे अन्दर जो समझ है, वह अपने आप में अलग है। इसे किसी school courses में नहीं समझाना पड़ता।

धन से ही status

इसे समझने के लिए तो हमें अपनी समझ खुद ब खुद देखनी पड़ती है और इन ग्रन्थों में थोड़ा-सा झाँकना पड़ता है कि हाँ! जो लिखा है वह सच भी है कि नहीं है। जिनके लिए गृहस्थी प्रधान है, जिनके लिए समाज प्रधान है, जिनके लिए व्यापार प्रधान है, जिनके लिए अपना समाज में status बनाना मुख्य कार्य है, उनके लिए धन भी अपने आप में मुख्य कार्य हो जाता है। आपका status आपके स्वजनों से नहीं बनेगा कि आपकी family में कितने member हैं? कितने अच्छे-अच्छे member हैं? वे कितने beautiful हैं या वे कितने talented हैं? इससे आपका status नहीं बनेगा। आपका status किससे बनेगा? किससे बनेगा? जितना अच्छा आपके पास में यह धन होगा, उसी से आपका status बनेगा। इसलिए आपके सामने सब चीजें secondary हैं...चाहे पत्नी हो, चाहे बच्चे हो, चाहे परिवार हो। जब धन प्राप्ति के साधन सामने होते हैं तो आदमी के सामने हर चीज secondary हो जाती है। इसलिए आचार्य कहते हैं...सबसे ज्यादा ममत्व अगर गृहस्थ का रहता है, संसारी प्राणी का रहता है तो किसमें रहता है? धन में रहता है।

स्वजनों से अपनापन

दूसरे नम्बर पर उसके स्वजन आते हैं। जो उसके साथ रहने वाले लोग हैं, वे उसके लिए इतने महत्वपूर्ण नहीं होते हैं जितना धन होता है। लेकिन अगर वह भी उसके साथ में हैं तो वह सोच लेता है...कोई बात नहीं, धन भी है, स्वजन भी हैं, वैभव भी है, यानी हमारे पास में सुखपूर्वक जीने के लिए सब कुछ है। जब आपके अन्दर यह भाव आ गया, हमारे पास सुखपूर्वक जीने के लिए सब कुछ है, हमें इन्हीं में अपना समय निकालना है, हमें इन्हीं में अपना interest बढ़ाते जाना है तो इसी interest का नाम है- **ममत्व भाव**।

मम यानी मेरा, त्व यानी उस मेरे का जो भाव है- वह ममपन, मेरापन कहलाता है। जो तेरा है, वह तेरापन और जो मेरा है, वह मेरापन। यह पन जरूर होना चाहिए, केवल मेरा से काम नहीं चलता, मेरे के साथ में मेरापन, अपना से काम नहीं चलता, अपनापन। क्या चाहिए आपको? आप अपने तो हैं लेकिन आप में अपनापन नहीं दिखता है। ऐसा कभी-कभी महसूस होता है, किसी के साथ में रहते हुए, आप अपने तो हैं लेकिन आपसे अपनापन नहीं दिखता है। क्यों नहीं दिखता है? जैसे अपनापन दिखा कर के बात की जाती है, जैसा अपनापन दिखा कर के अपनी किसी भी तरह से मन वचन काय की क्रिया की जाती है वैसा आप नहीं करते हो। इसलिए आप अपने तो हो क्योंकि अब आप अपने ही घर में हो, वे भाई-बहन भी हो सकते हैं, वह पिता-पुत्र भी हो सकते हैं, वे दो भाई भी हो सकते हैं, कोई भी हो सकता है।

अपनेपन और मेरेपन में अन्तर

अपने सब हैं लेकिन अपने होते हुए भी अपनापन, ये थोड़ी-सी different चीज है। मेरा होना और मेरापन होना, इन दोनों में अन्तर आ जाता है। वह अन्तर क्या है? अन्तर है भीतरी रस का, जो मम का रस है। मेरा जो रस है, उस रस में पना होता है। पना किसमें होता है? आ गया याद? आम का पना! पना तो हर किसी का हो सकता है। वह कच्चे आम का भी हो सकता है, पके आम का भी हो सकता है, वह किसी भी fruit का हो सकता है। चाहे वह केले का भी पना हो सकता है, वह सेब का भी हो सकता है, वह किसी भी चीज का पना हो सकता है। पना मतलब रस। किसी भी चीज में अगर भीतर से रस आता है तो उसमें पना आया और पना आया तो उसके साथ में अच्छी bonding होती है। फिर bonding समझते हैं न? वह पने के साथ होती है। इसलिए अगर आपने कभी आम खा लिया तो इतना आपको आम के साथ में ममत्व नहीं आएगा, जितना आपको आम का पना पीने में या उसको खाने में जितना आपको interest आएगा, जितना आपको आम के साथ में ममत्व आएगा, वह आम के पने के साथ आएगा। पना भीतर का रस होता है और वह रस जिस चीज में आता है, हम उसी से बन्ध जाते हैं। अगर रस नहीं आ रहा है तो बन्धन नहीं है, रस आ रहा है तो बन्धन है।

अपनेपन के भाव में ही बन्धन है

अब हम कहते हैं कि हमें बन्धना नहीं है लेकिन पूरा लेना है। यह कैसी उल्टी बात हो गई? अगर आपको किसी में रस आएगा तो आप बन्धोगे ही और अगर आप यह सोचते हो कि हम बन्धना नहीं चाहते और रस मिल जाए, यह possible नहीं है। कोई भी relation हो...चाहे वह family का, अपने माता-पिता के साथ में relation हो, चाहे पति-पत्नी का relation हो, चाहे भाई-भाई का relation हो, अगर एक दूसरे में रस आता है तो बन्धन है और रस नहीं आता है तो कोई बन्धन नहीं है। मेरा होना अलग चीज है और मेरापन होना अलग चीज है। अपना होना अलग बात है और अपनापन होना अलग बात है। अपने तो सभी होते हैं, घर में रहने वाले सभी सदस्य अपने हैं लेकिन सबसे अपनापन नहीं होता। पन सब में नहीं आता, वह पना उसी में आएगा जिसमें अपना कुछ अलग से interest आता है। वह interest आपका घर के किसी एक सदस्य में भी आता है तो उसी से आपका अपनापन है। बाकी सदस्य आपके साथ में रह रहे हैं, वह आपके अपने हो सकते हैं। यह पन जो है वह हमें बाँधता है। रस आपके अन्दर किस चीज के

साथ जुड़ रहा है? रस आपको किस चीज से जोड़ रहा है? आपको अपने भीतर का वह रस देखना है। वह रस दिखाने के लिए आपको कोई MBA की class attend करने की जरूरत नहीं है। वह रस की समझ पैदा करने के लिए ही आपको वैराग्य शतक जैसे ग्रन्थों की classes attend करने की जरूरत है। यह classes आपके लिए कोई अलग से आपको train नहीं कर रही हैं। यह आपके अन्दर एक समझ पैदा कर रही है कि हम समझ पायें कि रस किस में आ रहा है? धन में ज्यादा रस आ रहा है कि जो हमारे घर के लोग हैं, उनमें ज्यादा रस आ रहा है कि जो हमारा अपना एक status बना हुआ है, हमारा एक प्रभाव बना हुआ है, उसमें हमें ज्यादा रस आ रहा है। हम किसी पद पर आसीन हैं हमें उसमें ज्यादा रस आ रहा है। आप जिस चीज में अपना ज्यादा रस महसूस करो...आपको क्या लगेगा? वही चीज तो है जिससे हमें सुख मिलता है।

वास्तव में जहाँ रस आ रहा है, वहाँ सुख नहीं दुःख है

लेकिन आचार्य क्या कह रहे हैं? वही चीज तो है जिसके कारण से तुम दुःखी हो। अब यह बड़ी उल्टी understanding हो जाती है। हमें लग रहा है कि उसी में सुख है, हमें लग रहा है कि अगर हम किसी पद पर आसीन है तो तभी तक हम सुखी है जब तक हम उस पद पर हैं और आचार्य कहते हैं...अगर आप किसी भी पद से, प्रतिष्ठा से, धन से, स्वजनों से बन्ध गए, आपको उसमें रस आने लगा तो आप दुःख से बन्ध गए। आपको दुःख होगा अब यह समझने की बात है कि जहाँ हमें सुख की अवभासना हो रही है, वहीं पर हमको कहा जा रहा है कि वहीं आपके साथ में दुःख है। अब हम यह कैसे समझ विकसित करें कि जिस चीज में हमें दुःख हो रहा है, उसी चीज में हमें सुख लग रहा है और हमारे से यह कहा जा रहा है कि सुख नहीं है, यह दुःख है। इसलिए कोई भी गृहस्थ सुख को छोड़ना नहीं चाहता है। बताओ क्या नहीं छोड़ना चाहते? दुःख को नहीं छोड़ना चाहता कि सुख को नहीं छोड़ना चाहता?

गृहस्थ सुख नहीं छोड़ना चाहता

किसी भी गृहस्थ से पूछे हम...आप क्या नहीं छोड़ना चाहते तो वह क्या कहेगा? मैं सुख को नहीं छोड़ना चाहता महाराज! जैसा सुख मुझे अपने घर में लगता है, अपने परिवार के बीच में बैठ कर के लगता है, अपने दुकान में लगता है, वैसा सुख हमें फिर कहाँ मिलेगा? अगर हमने सब छोड़ दिया तो। आदमी सुख नहीं छोड़ना चाह रहा है और यहाँ क्या कह रहे हैं? यह सुख नहीं है, यह क्या है? यह दुःख है। जब उसे यह लगे कि यह सुख नहीं है, दुःख है तब तो वह छोड़ने की कोशिश करें। जब उसे यह दुःख नहीं लग रहा है तो इसका मतलब है उसे उन-उन चीजों में रस आ रहा है और जब तक यह रस आएगा तब तक आपके लिए इन-इन चीजों में हमेशा आदर होगा। इन-इन चीजों को आप बड़े अच्छी दृष्टि से देखेंगे, इन-इन चीजों को आपके लिए एक सुख की दृष्टि से देखने का अभिप्राय आपका बना रहेगा।

दो नाव पर एक साथ सवार नहीं हो सकते

अब दूसरी चीज सामने आती है। अगर इन चीजों के प्रति आदर है तो आचार्य अगली line में क्या कहते

हैं? उसकी opposite बात करते हैं... **‘अणंत-सुखंमि मुखंमि’** क्या कहते हैं? अनन्त सुख वाला जो मोक्ष है, उसमें तुम्हारा आदर **‘सिद्धिलेसि’** शिथिल हो रहा है। आदर तो एक ही चीज में हो सकता है... या तो संसार के कारणों में आदर कर लो या मोक्ष के कारणों में आदर कर लो। interest एक ही चीज में आएगा... या तो संसार की चीजों में interest ले लो या मोक्ष की चीजों में interest ले लो। लेकिन अगर आप चाहो कि दोनों मिल जाएँ तो दोनों जगह आदर होता नहीं है। दोनों रास्तों पर चला नहीं जाता है... जैसे दो नाव पर सवार होकर के नहीं चला जाता। दो नाव पर सवार होकर के आप नदी पार नहीं कर सकते, वैसे ही दो जगहों पर आदर करके आप कहीं नहीं पहुँच सकते। दो जगह पर आदर हो भी नहीं सकता क्योंकि यह दोनों opposite taste की चीजें हैं। आपका taste अगर धन, स्वजन और वैभव में है तो यह मान कर चलिये कि आपका taste अनन्त सुख रूप मोक्ष में नहीं है और अगर आपका taste अनन्त सुख रूप मोक्ष में है तो आपका taste धन, स्वजन और वैभव में नहीं होगा। रस किस में आ रहा है? स्वाद किसमें आ रहा है? अच्छा किसमें लग रहा है? ये दो बातें हैं और दोनों opposite हैं। taste भी opposite हैं, वस्तुएँ भी opposite हैं, भाव भी बिल्कुल विपरीतता के साथ है। अगर आपको मोक्ष सुख में आदर होगा तो आपको संसार सुख में आदर नहीं होगा और अगर आपको संसार के सुख में आदर भासता है, लगता है तो आप यह मान कर चलिये आपको मोक्ष सुख से कोई लेना-देना नहीं है। आपका मोक्ष सुख में आदर का भाव नहीं है क्योंकि अगर आपको मोक्ष सुख में आदर आएगा तो इन चीजों में आपके अन्दर से वह पना नहीं बहेगा, वह रस नहीं बहेगा जो आपके अन्दर बह रहा है। **‘दो पथ पंथी चले न पंथा’** क्या सुन रहे हो? दो चीजों में एक साथ सवार होकर के जैसे आप किसी भी नाव से नदी पार नहीं कर सकते, ऐसे ही आप दोनों पर आप हाथ मारे कि हमें संसार का भी सुख मिल जाए और मोक्ष का भी सुख मिल जाए तो मिल नहीं सकता है।

एक जगह आदर बढ़ेगा तो दूसरी जगह शिथिलता होगी

‘दो काम नहीं होए सयाने, राग भोग और मोक्ष हो पाने’ सुन रहे हो सयाने! सब सयाने ही है। **‘दो काम नहीं होए सयाने’** दो काम एक साथ नहीं होंगे। हमें राग-भोग भी चाहिए और मोक्ष भी चाहिए। दोनों एक साथ नहीं होंगे। इसलिए यहाँ कहा जा रहा है कि अगर आपका आदर मोक्ष सुख में शिथिल हो रहा है तो इसका मतलब है- आदर एक जगह बढ़ रहा है। एक जगह आदर बढ़ेगा, दूसरी जगह आदर शिथिल होगा, एक जगह आपका interest बढ़ेगा दूसरी जगह interest कम होगा। क्योंकि मन एक ही है और वह जहाँ पर रुचि करेगा, जहाँ पर वह अपना मन लगाएगा, वह वहीं पर उस चीज को प्राप्त करने की इच्छा करेगा। अब आपको सोचना है कि हमारा मन कहाँ पर रस ले रहा है? आप कहते हो कि हमें घर में वैरागी होकर के रहना है। आप घर में वैरागी होकर के रहिए लेकिन अपने आप से छल मत कीजिए। घर में वैरागी होकर के रहने का यह एक माप-तोल बताया जा रहा है। यह माप है घर में वैरागी होने का, आपका रस किस में है? आप अपने आप से पूछिए और किसी से मत पूछिए। अपने ही मन से खुद समझिए कि हमारा रस जिस चीज में आ रहा है, हमें जिस चीज में सुख लग रहा है, बस! वही हमारे लिए उपादेय है, वही हमारे लिए मुख्य वस्तु है बाकी तो सब औपचारिक है। आपने मोक्ष को मुख्य वस्तु बनाया है या औपचारिक बनाया है? घर में वैरागी होने का title आपको तब मिलेगा जब आप घर में रह कर के भी अपने अन्दर इस तरह के मोक्ष सुख में आदर प्राप्त करेंगे तो आपको घर में रह करके भी वैरागी होने का title मिलेगा।

सेवा भाव या बगावत

समाजजन होते हैं, समाज के कार्यकर्ता होते हैं, सांसद होते हैं, विधायक होते हैं, समाज सेवी होते हैं लेकिन ये सब क्या सोचते हैं, क्या कहते हैं? अगर हमें काम करने को मिल गया तो हम कर लेंगे और नहीं मिला तो नहीं करेंगे। ऐसा मन में अगर भाव आ जाता है तो यह भाव तो समाज सेवा का भाव बनता है और अगर हमें हमारी इच्छा के अनुसार काम करते हुए नहीं मिला तो हम क्या करेंगे? हम बगावत करने लग जाएंगे तो फिर क्या होगा? अगर आप बगावत पर उतर आये तो इसका मतलब यह है कि आप समाज सेवा के कार्य में रुचि नहीं रखते हैं। जब आपके अन्दर यह भाव होगा कि हमें यह काम करना है तो यह काम करना प्रमुख होना चाहिए। इससे मतलब नहीं है कि यह काम हमें किस party में रह करके करना है? समाज सेवा करने वाला व्यक्ति पार्टियाँ नहीं देखता है, काम देखता है और अगर आपके अन्दर वह काम करने की भावना है तो आप उस काम को कर ले जाएँगे क्योंकि आपको मतलब सिर्फ काम से है। जब व्यक्ति यह कहता है कि मैं तो महाराज केवल समाज सेवा कर रहा हूँ। जब भी कोई नेता आएगा, सांसद आएगा, विधायक आएगा, कोई भी व्यक्ति आएगा यही कहेगा महाराज मुझे तो नियुक्त कर दिया गया है। भगवान की कृपा से मैं समाज सेवा के कार्य में लगा हुआ हूँ, जितनी हो जाए, हो जाए। यह कहने का एक dialogue है या यह भीतर से समाज सेवा का भाव है। यह बात कब सामने आती है? यह तब सामने आती है जब हम समाज सेवा करते हुए भी अपनी पद-प्रतिष्ठा को तो ऊपर रखते हैं और समाज सेवा हो जाए तो ठीक, न हो जाए तो ठीक। ऐसी स्थिति में हम सामाजिक कार्यकर्ता अच्छे कार्यकर्ता नहीं बन सकते।

श्रेष्ठ कार्यकर्ता कौन?

एक घर का अच्छा व्यक्ति तब अच्छा व्यक्ति कहलाता है...जब वह घर का सारा काम भी करता हो और घर के किसी भी काम से उसका लगाव भी न हो। सामाजिक कार्यकर्ता वे सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ता हो जो समाज का हर काम भी करता हो लेकिन उसके समाज के किसी भी पदों से या किसी भी तरह के लोगों से उसका लगाव भी न हो। काम सबके में आ रहा है, सबका काम कर रहा है और उसका लगाव किसी से नहीं है। ऐसा व्यक्ति कहीं मिलेगा, ढूँढो उसको? घरों में ढूँढो, समाज में ढूँढो। हम अगर कोई काम करते हैं तो किसी न किसी के साथ जुड़ करके करते हैं, लगाव के साथ करते हैं। अगर आपके अन्दर वास्तव में यह भावना है कि हमें भगवान ने इस काम के लिए दिया है और हमें यह काम करना है तो आपका मतलब सिर्फ काम से होगा।

सेवा से मिले मेवा

सेवा अपने आप में इतना बढ़िया काम है, सेवा अपने आप में एक इतना बड़ा धर्म है कि अगर आदमी केवल सेवा करे तो सेवा से ही सब कुछ प्राप्त कर सकता है। केवल सेवा, उस सेवा में अपेक्षा न हो। ऐसी सेवा जिस सेवा में किसी दूसरे के किसी भी आदर की अपेक्षा न हो और दूसरा हमसे thank you कहे, इसकी भी अपेक्षा न हो। वह सेवा कहाँ मिलती है? एक lady हुई है मदर टेरेसा करके, कभी आपने नाम सुना हो? सब सुने होंगे। उसका नाम आता है सेवा करने के काम में। विकलांग बच्चों को, अपाहिज बच्चों को, किसी भी तरह के अन्धे बच्चों को सेवा करने का काम उसने शुरू किया था। जब व्यक्ति किसी की सेवा करता है

तो वह उस व्यक्ति की अपेक्षा नहीं करता है। वह इतनी अपेक्षा रखता है कि मेरी सेवा से इसको सुख मिल जाए, मेरी सेवा से अच्छा हो जाए। बस इसी तरह से जब कोई अच्छा समाज सेवी होता है तो वह सिर्फ यही सोचता है कि मेरी सेवा से मेरे कार्यकाल में, मेरे द्वारा, इनके लिए ये अच्छे काम हो जाए, इनके अच्छे काम बन जायें, इनकी ये सारी की सारी जो अड़चनें हैं, ये दूर हो जायें। ठीक इसी तरह से जब कोई एक अच्छा गृहस्थ होता है, अपने घर में रहता है, तो घर में रह कर के भी वह इसी तरह से सेवा करता है। घर के लोगों का पालन-पोषण करेगा लेकिन जुड़ाव किसी से नहीं, किसी के लिए मरना-मिटना, यह वाला विचार नहीं करना सबके लिए। यह कहलाता है- घर में रहकर के वैरागी होना। एक राजा के लिए भी कहा जाता है कि एक राजा धर्मप्रिय राजा तब हो सकता है जब वह राजा होकर के भी न्याय के साथ काम करता रहे तो वह धर्म प्रिय राजा कहलाएगा।

भरत चक्रवर्ती थे...घर में वैरागी

एक राजा भी घर में रह कर के वैरागी हो सकता है। जो भरत चक्रवर्ती हैं जिनके लिए कहा जाता है...घर में रहकर के वैरागी थे। कैसे थे? घर में रह कर के वैरागी। कितना बड़ा उनका साम्राज्य था? पूरे भारत जैसे और अनेक छह खण्डों के वे एक राजा थे और जिनके नाम पर, यह भरत के नाम पर, यह भारत देश चलता था। ऐसे वे चक्रवर्ती राजा 96 हजार रानियाँ, करोड़ों घोड़े, करोड़ों हाथी जिनके साम्राज्य में, जो छोटे-छोटे देशों के राजा हैं, वे सब उनके चरणों में हमेशा नतमस्तक रहते हो, ऐसे चक्रवर्ती राजा के लिए भी घर में रहकर के कैसे वैराग्य का भाव आ सकता है?

जिज्ञासा का समाधान

एक बार आप जैसा कोई व्यक्ति, सतना का, उनके पास में पहुँच गया। यह पूछने के लिए कि भाई चक्रवर्ती वैरागी कैसे हो सकते हैं? पहुँच गया राजा के पास में। हमने सुना है कि आप घर में रह कर के बहुत वैरागी रहते हैं, आपको राज-पाट के कामों से कोई मतलब नहीं होता, ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है? उन्होंने उस व्यक्ति को समझाने के लिए न कोई teaching दी, न कोई training दी। धर्म हमेशा न आपको कोई teaching देता है न training देता है। क्या देता है? understanding देता है, धर्म आपके अन्दर एक समझ पैदा करता है और समझाने के लिए जरूरी नहीं है कि हम आपको direct वह चीज सीधी कहे, तभी आपको समझ में आये। समझाने के लिए कोई भी तरह का हम program आपके सामने रख सकते हैं। वह program आपके अन्दर एक समझ पैदा कर सकता है।

राजा ने ली परीक्षा

भरत चक्रवर्ती ने उस व्यक्ति के लिए कहा...हम आपके लिए आदर करते हैं और आप अगर हमारे राज्य में आए हो और आपकी अगर इतनी जिज्ञासा है तो उस जिज्ञासा का समाधान तो बाद में कर लेंगे, पहले आप थोड़ा-सा हमारा राजमहल घूम कर आओ। अब आपने कभी देखा तो है नहीं कि हमारे राजमहल में कितनी हजारों रानियाँ हैं? कितने हजार हमारे बेटे हैं? कितनी लाखों की सेना है? एक बार देख तो लो। आप आए

हो यहाँ तक तो आपको पूरा राज्य घुमा देते हैं। उस व्यक्ति ने कहा...बड़ी अच्छी बात होगी, आप अगर घुमाना चाहते हैं तो यह तो हमारे लिए बड़ी सौभाग्य की बात है। उस व्यक्ति के हाथ में उन्होंने एक दीपक दिया जो तेल से भरा हुआ था। उससे कहा...इसको अपने हाथ में पकड़ो और बड़ी सावधानी से चलना और इस दीपक को लेकर के आप हर एक section में जाना। चाहे वह हमारी रानियों का section हो, चाहे हमारे सेना के लोगों का section हो, उस हर एक section में जाना और फिर आप लौट करके आना। लेकिन एक बात याद रखना...अगर आप इस दीपक को लेकर के सावधानी से लौट कर के वापस आ गए तो मैं आपको मनचाहा धन दूँगा। मैं आपको मनचाहे राज्य का राजा बना दूँगा और अगर इस दीपक में से थोड़ा-सा भी तेल गिर गया तो आपके पीछे दो लोग चलेंगे, हाथ में तलवार लिए हुए। वे उसी समय पर आपका सर कलम कर देंगे। अब राजा बनने के लिए हमारे अन्दर कितनी सावधानी होनी चाहिए, कितनी quality होनी चाहिए? एक राजा कैसे अपने राज-पाट को सम्भालता है? यह आपको इस घटना से समझ में आ सकता है।

सावधानी से परीक्षा हल की

उस व्यक्ति को उन्होंने दीपक थमा दिया और उस व्यक्ति ने कहा...यह तो बड़ी सहज बात है, easy है। क्या करना है? कुछ नहीं करना है तो वह व्यक्ति उस दीपक को, जो बिल्कुल तेल से लबालब भरा हुआ है, उसको लेकर के चल रहा है। अब जब वह चलना शुरू किया तो उसके दिमाग में आया...तेल की एक बूँद भी गिर न जाए, नहीं तो पीछे दो आदमी हाथ में तलवार लिए हुए चल रहे हैं। क्या करना है? अब राजा ने कहा है... घूमने जाना है तो घूम करके तो आना है। वह अपने राजमहल की जो रानियों के रहने के स्थान थे, वहाँ ले गया, जहाँ उनकी सेनाएँ रहती थी, वहाँ ले गया, जहाँ पर हाथी बन्धे हुए थे, वहाँ ले गया, जहाँ पर मन्त्री लोगों की सभाएँ चलती थी वहाँ ले गया और इस तरह से घुमाते-घुमाते-घुमाते-घुमाते अपने राजमहल में अपनी सभा के बीच में उस आदमी को वापस ले आया गया।

परीक्षा में सफल होने पर भारत चक्रवर्ती सन्तुष्ट हुए

वह इतना समझदार था, उसने कहीं भी एक तेल की बूँद गिरने नहीं दी क्योंकि रास्ता कहीं ऊबड़-खाबड़ नहीं था, राजमहल था। सावधानी से चला क्योंकि उसे उस समय पर क्या दिख रहा था? क्या दिख रहा था बताओ? तुम्हें क्या दिखेगा? अगर उस समय पर तुम्हें दीपक थमा दिया जाए, क्या दिखेगा? वह राजमहल में घूम कर के आया, हर section में घूम करके आया। हर तरीके के उसने जहाँ-जहाँ पर जलसे होते हैं, वे सब चीजों को देख करके आया और राजमहल में आकर के भरत चक्रवर्ती के सामने खड़ा हो गया। भरत चक्रवर्ती ने कहा...भाई! बहुत समझदार आदमी निकले तुम तो। एक भी तेल की बूँद नहीं गिरने दी तुमने और इतनी बड़ी जगह पर तुम घूम करके आ गए, इतना पूरा राज्य तुमने घूम लिया और हमारे आदमी पीछे चल रहे थे, वे भी आपको देखते रहे लेकिन कहीं पर भी उन्होंने देखा कि आपके हाथ से तेल की एक बूँद भी नहीं गिरी और दीपक बिल्कुल लबालब जैसा का तैसा भरा हुआ है।

देखने के उपरान्त भी दृष्टि किसी पर नहीं गयी

इतनी सावधानी से आप चल करके आ गए तो अब मैं आपसे पूछता हूँ...आपने राजमहल में कौन-कौन-सी चीजें देखी? बताओ क्या अच्छा लगा आपको? वही चीज मैं आपके लिए समर्पित करूँगा। कौन-सा भोजन अच्छा लगा? कौन-सी रानियाँ अच्छी लगी? कौन-से तुम्हें हाथी-घोड़े अच्छे लगे? कौन-से हीरे-जवाहरात अच्छे लगे? आपको हर section में ले जाया गया...बताओ क्या अच्छा लगा? जो अच्छा लगे आप माँग लो। आपने अब मेरी बात पूरी कर दी, अब आपकी माँग की बात है। आप माँगो, क्या माँगना है? बताओ क्या माँगते हो? अब वह आदमी जो सामने राजा के खड़ा है, कह रहा है...राजन्! चल तो आया सब जगह से, घूम तो सब जगह से आया, एहसास तो सब जगह हुआ कि जानवर बन्दे हैं, यहाँ रानियाँ बैठी हैं, यहाँ लोग खेल रहे हैं, यहाँ पर यह रत्न रखे हुए हैं, यहाँ पर ये सोने के ढेर लगे हुए हैं। सब देख कर आ गया लेकिन दृष्टि किसी पर भी नहीं गई।

जब मृत्यु सामने खड़ी हो तो कुछ भी दिखाई नहीं देता

क्यों? ऐसा क्यों हो गया? आपने हाथ में जो थमा दिया था, यह मृत्यु का पिटारा हाथ में जो थमा दिया था कि अगर हाथ में से थोड़ा-सा भी तेल गिरा तो क्या होगा? जान जाएगी जान और जान चली गई तो इन सोने-चाँदी, राजा-रानी का क्या करेंगे हम? इसलिए मैं सब कुछ घूम करके तो आ गया लेकिन देखा कुछ नहीं। कोई भी चीज को मैं दृष्टि भर कर के देख नहीं पाया और मैं सब जगह घूम करके आ गया। राजा कहते हैं...अब आई आपकी समझ में कुछ बात! जब हमारे सामने मृत्यु खड़ी हो तो हमें कुछ भी सामने हो, कुछ भी दिखाई नहीं देगा। आप पूछ रहे थे न कि आप इस राजापने के साथ में कैसे यहाँ पर राज्य भार को सम्भालते हैं? इसका उत्तर यही है कि जैसे आपको मृत्यु दिखाई दे रही थी तो मृत्यु के कारण से आपको इस राजमहल में कहीं भी मन नहीं लगा, ऐसे ही मुझे हर समय लगता है कि मेरे सामने मृत्यु नाच रही है, इसलिए राज भोग में, किसी भी काम में मेरा कभी भी मन नहीं लगता है। लेकिन फिर भी राजा के पद पर प्रतिष्ठित होकर के बैठा रहता हूँ। इसको कहते हैं- राज सेवा, इसको कहते हैं- समाज सेवा।

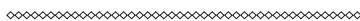
भरत चक्रवर्ती की अर्ह भक्ति

एक अच्छे राजा का यह गुण होता है। किसी भी चीज से चिपकना नहीं। अपने भण्डार भरे हैं तो उन्हें भी देख कर के उसे कोई सुख नहीं मिलता है कि इस भण्डार में सुख है। सुख किसमें मिलता है? सुख उसको मिलता है जहाँ पर वास्तव में सुख होता है। अगर राजा है तो राजा के कर्तव्यों की पूर्ति कर रहा है उसमें सुख है और वह कर्तव्यों की पूर्ति करते हुए भी इन सब राज-पाट के कामों से अलग क्यों है? क्योंकि उसे लग रहा है कि यह कर्तव्य भी अगर हमें करने को मिले हैं तो इन कर्तव्यों के साथ तो हम इन सब संसारी जीवों से अलग होकर के भी ये कर्तव्य कर सकते हैं। लेकिन अगर हमें अपना मन लगाना है तो कहाँ लगाना है? उस सुख में लगाना है जो सुख अनन्त सुख है। इसलिए उस भरत चक्रवर्ती को हमेशा सिद्धों की याद आती थी। हर काम करते हुए, उसे हमेशा सिद्ध भगवान याद आते थे, शुद्ध आत्मायें याद आती थी, हमेशा उसे अर्ह याद आता था और भरत चक्रवर्ती हमेशा **ओं अर्ह नमः** का जाप किया करता था।

उसके माथे पर अर्ह लिखा रहता था। सिद्धों को उसने अपने माथे पर बिठा रखा था कि कहीं विस्मृति न हो जाए। इसलिए कभी-कभी वह क्या करते थे? दूसरों के माथे पर भी अर्ह लिखवा देते थे तो उससे क्या फायदा मिलता था? हमें अपने माथे का तो अर्ह दिखाई नहीं देगा। हमने उन अर्ह को, उन सिद्धों को कहाँ बैठा रखा है? अपने सर्वोत्कृष्ट अंग पर बिठा रखा है। वह अपने सामने रहने वाले लोगों के माथे पर क्या लिखवा देते थे? अर्ह। क्यों? ताकि मुझे हमेशा किसी को भी देखना पड़े तो देख कर के क्या याद आ जाए? अर्ह की याद आ जाए, सिद्धों की याद आ जाए और इस तरह से वे हमेशा सिद्धों को याद किया करते थे इसलिए उन्हें घर के राज-पाट में कभी भी सुख नहीं भासता था। उन्हें सुख कौन-सा अच्छा लगता था, आदर किस सुख में वह किया करते थे? वह उस अनन्त सुख में आदर किया करते थे जो शुद्धों की आत्मा में होता है, शुद्ध आत्माओं में होता है। इसलिए उन्हें घर में रह कर के वैरागी कहा जाता था। ऐसा आपको दिखने लग जाए...हर समय पर हमारे सामने संसार का भी सुख दिख रहा है और मोक्ष का भी सुख दिख रहा है लेकिन हमारा आदर किस चीज में होगा? अगर मोक्ष सुख में आदर होगा तो आपके लिए संसार के काम भी अपने कर्तव्य की तरह से पूरे हो जाएँगे और आप संसार के किसी भी काम में अपने आप को इतना involve नहीं करेंगे कि अगर वह काम करने को नहीं मिले तो आप बगावत पर उतर आयें।

अहिंसा के अनुयायी गाँधीजी

भाई काम करने वाला बगावत क्यों करेगा? टिकट मिल गई तो ठीक है और नहीं मिली तो भी ठीक है। भाई! टिकट नहीं मिलने पर बगावत पर क्यों उतर आना? पार्टी छोड़ देना? यह बात एक अच्छे समाज सेवी की तो समझ में नहीं आती। आपको अगर अपने अच्छे कामों से प्रयोजन है, तो कोई टिकट के बिना भी आप अपने जीवन में अच्छे से कामों को सामने ला सकते हो। आप जिस देश में रह रहे हो, जिस देश में आपको यहाँ पर स्वतन्त्रता के साथ रहना मिल रहा है, उस देश में गाँधीजी ने वह स्वतन्त्रता दिलाई थी। आप बताओ कि गाँधीजी कौन से पद पर थे? और सब गाँधीजी का नाम लेते हैं। बताओ वे प्रधानमंत्री थे कि राष्ट्रपति थे...क्या थे? वे राष्ट्रपति नहीं बने लेकिन **राष्ट्रपिता** बने। किस बल पर बने? इसी अहिंसा धर्म की सीख के बल पर बने। इसी घर में रहकर के वैरागी वाली जो सीख थी, यह उन्हें पता थी। उन्हें किसी भी चीज से ममत्व नहीं था। हमारा जब किसी भी चीज से ममत्व होगा तो वह ममत्व ही हमको उस चीज से बाँधेगा, जोड़ेगा, दुःख पैदा कराएगा और यह बात गाँधीजी को अपने जीवन में अच्छी तरह से पता थी क्योंकि उन्हें जैन धर्म की शिक्षाएँ भी पता थी। अहिंसा की शिक्षा उन्हें भीतर से ज्ञात थी, सत्य के लिए वह प्रयोग किया करते थे और इस तरह से उनका जो कार्य चलता था, इसी कारण से वह राष्ट्रपिता तो बने लेकिन वे एक अकेले व्यक्ति थे, जो राष्ट्रपिता कहलाते हैं, बाकी सब तो राष्ट्रपति कहलाते हैं।



गाथा: 78

लोग सभी प्रकार से दुःख स्वरूप संसार को भी नहीं
त्यागना चाहते हैं।

संसारो दुहहेऊ, दुक्खफलो दुस्सह-दुक्ख-रुवो य।
ण चयंति तं पि जीवा, अइबद्धा णेह-णिअलेहिं ॥78॥

अन्वयार्थ- 'यह' (संसारो) संसार (दुह-हेऊ) दुःख का, हेतु यानी कारण है (दुक्ख-फलो) दुःखरूप, फलवाला है (य) तथा (दुस्सह-दुक्खरुवो) दुःसह यानी अत्यंत, कठिनाई से, सहन किये जाने वाले, दुःखरूप है 'किन्तु' (णेह-णिअलेहिं) स्नेहरूपी, निगड यानी बेड़ियों से (अइ-बद्धा) अत्यंत, बँधे हुए (जीवा) प्राणीगण (तं) उसको अर्थात् उस संसार को (पि) भी (ण) नहीं (चयंति) त्यागते हैं 'यह बड़े आश्चर्य की बात है ॥78॥

संसार दुःखों का हेतु है

सेवा करते हुये भी हम संसार को यह देखे.. 'संसारो दुहहेऊ' कि संसार कैसा है? दुःख का हेतु है। 'दुक्ख फलो' संसार के कामों में पड़ोगे तो दुःख का ही फल मिलेगा। 'दुस्सह दुक्ख रुवो य' और हमें बहुत दुस्सह दुःखों को सहना पड़ता है। इसलिए अगर हम संसार के कोई भी काम कर रहे हैं तो यह सोच करके करें कि संसार के काम तो दुःख के काम है। लेकिन संसार में सेवा का जो काम है, वह दुःख से दूर रहने का काम है। अब ये दोनों चीजें जिस व्यक्ति के अन्दर आ जाएँगी, उसी को समझदार व्यक्ति कहा जाएगा। वही व्यक्ति भीतर से धर्म के साथ होगा और वही व्यक्ति अपने जीवन में सब कुछ करने के बावजूद भी सुखी होगा, दुःखी नहीं होगा। दुःख का हेतु नहीं होना चाहिए क्योंकि दुःख के हेतु से आपको दुःख के ही फलों की प्राप्ति होगी। जैसा कारण होगा वैसा ही कार्य होगा। कारण क्या है? ममत्व भाव कारण है।

सेवा भाव में ममत्व नहीं होता

ये दोनों गाथाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। जिस चीज में आपने अपना ज्यादा attachment कर लिया, आप ज्यादा ममता भाव के साथ जुड़ गए। सेवा भाव में ममता नहीं होती है। ममता के साथ सेवा हो सकती है लेकिन सेवा भाव में ममत्व नहीं होता है। सेवा करने का मतलब है कि हम सिर्फ लोगों के हित में काम कर रहे हैं, हमें किसी से कोई ममत्व नहीं है और यह अगर ममत्व नहीं होगा तो आपको संसार के दुःखों के हेतुओं में रहकर के भी आपको दुःख नहीं मिलेगा क्योंकि आपकी दृष्टि कहाँ होगी? भगवान पर होगी या भगवान के सुखों पर होगी। कुछ लोग होते हैं, उनकी दृष्टि केवल भगवान पर होती है। भगवान ने हमें इस

काम के लिए नियुक्त कर दिया। भगवान के कारण से हमें ऐसा जन्म मिला, हम इस तरह की सेवा कर रहे हैं, यह भी एक लोगों के सोचने का तरीका होता है। दूसरा तरीका होता है सोचने का कि हम भगवान के कामों को न देखकर के हम भगवान के सुख में अपना मन लगाते हैं।

स्नेह की बेड़ियाँ

जो थोड़ा-सा ज्यादा आध्यात्मिक हो जाते हैं वे भगवान के सुखों में अपना मन लगाते हैं। हमें इस सुख से कोई मतलब नहीं है, जो सेवा का सुख मिल रहा है। हमें तो कौन-सा सुख चाहिए? जो आत्मा का सुख है, अनन्त सुख है, जो मोक्ष का सुख है, जो सुख ममता से रहित है। इस ममता से रहित होने में हमें जो सुख मिल रहा है यह सुख हमारा है। ममत्व भाव के साथ जो हो रहा है, वह हमारा सुख नहीं है। इस तरह का विचार जब आ जाता है तो वह अति स्नेह वाली चीजों से बँधा होकर के भी उससे मुक्त हो सकता है। अन्यथा आचार्य कहते हैं...यह जीव **‘नेह की निगल’** से बन्धे हुए हैं। **‘नेह की निगल’** यानी स्नेह की बेड़ियों से बन्धे हुए हैं। यह स्नेह भी आपको बाँधने का काम करता है और जब तक यह स्नेह आपका किसी भी चीज से रहेगा, अगर आपका अपनी सेवा से भी स्नेह हो गया तो वह सेवा भी आपको दुःख देने लग जाएगी। सेवा से भी स्नेह नहीं...स्नेह किससे?

सेवा से नहीं अपितु सेवा के सुख से स्नेह रखें

स्नेह केवल उस सुख से जो हमें सेवा से मिलता है। अगर आपको सेवा से स्नेह हो गया तो क्या होगा? जब तक आपको सेवा करने को मिल रही है तब तक आप सुखी महसूस करोगे और जब सेवा करने को नहीं मिलेगी...मान लो हम कहीं अपाहिज हो गए, कोई हमारे सामने ऐसी दुर्घटना घट गई, अब हम सेवा नहीं कर पा रहे हैं तो अब क्या करोगे? अब दुःखी हो जाओगे तो सेवा से सुख नहीं। आपको जो सेवा करने के भाव में अगर स्नेह है तो स्नेह से आपको वह दुःख अगर मिल रहा है तो आपको सोच लेना चाहिए, वह स्नेह भी हमारे लिए दुःख का कारण है। सेवा मात्र तो सेवा में क्या होगा? जब तक हमें करने की योग्यता है हम कर रहे और जब नहीं करने की योग्यता होगी तो हम प्रभु भजन करेंगे। अनन्त सुख में, अनन्त सुख का जो स्थान है- मोक्ष, उसमें अपना मन लगायेंगे। हमें संसार के किसी भी प्राणी से कोई प्रयोजन नहीं है। यह जिन्दगी को सही ढंग से जीने का तरीका है।

व्यक्ति स्नेह के कारण से दुःखी है

किसी भी चीज से आपका लगाव आपके लिए दुःख का कारण बनता है, यह इन दो गाथाओं से समझ लेना। इसलिए जो भी व्यक्ति दुःखी है, किसके कारण से? स्नेह के कारण से। मैं तो कहता हूँ आपको अपनी party के प्रति भी स्नेह नहीं होना चाहिए। party से क्या मतलब है भाई? जो काम अच्छा करें, हमारा लगाव तो उससे होना चाहिए। अगर ऐसा विचार आएगा तो आपको दुनिया का कोई भी व्यक्ति जो आपके विपक्ष में भी खड़ा होगा, आपको कभी भी दुश्मन नजर नहीं आएगा। यह सबसे अच्छी सेवा होगी कि हम किसी को भी दुश्मन की दृष्टि से न देखें। बताओ कौन-सी सेवा अच्छी है? हमें अपनी पार्टी से मतलब नहीं

गाथा: 79

यह जीव; अपने किये कर्मों के फल स्वरूप ही घोर दुःख पाता है

णिय-कम्म-पवण-चलिओ, जीवो संसार-काणणे घोरे।
का का विडंबणाओ, ण पावए दुसह-दुक्खाओ ॥79॥

अन्वयार्थ- (णिय-कम्म-पवन-चलिओ) अपने, यानी स्वकीय, कर्म-रूपी, पवन के द्वारा, चलायमान 'यह' (जीवो) जीव (घोरे संसार-काणणे) भयंकर, संसाररूप, कानन यानी वन में (का का) क्या-क्या (दुसह- दुक्खाओ विडंबणाओ) दुःसह यानी अत्यन्त, कठिनाई से, सहन किये जाने वाले, दुःख स्वरूप, दुर्दशाओं को (ण) नहीं (पावए) पाता है 'यह बात विचार करने योग्य है' ॥79॥



वैराग्य शतक, इस ग्रन्थराज के माध्यम से प्रतिदिन कुछ नए-नए सूत्र हमें मिलते हैं और इन सूत्रों में छिपी हुई भावनाओं को और विचारों को जब हम समझने की कोशिश करते हैं तो हमारे अन्दर एक नया ज्ञान, एक नया संस्कार भी पड़ता है और उसी क्रम में यह गाथा 79 नम्बर की आगे पढ़ते हैं...

णिय-कम्म-पवण-चलिओ, जीवो संसार-काणणे घोरे।
का का विडंबणाओ, ण पावए दुसह-दुक्खाओ ॥79॥

कर्म ही जीव को दिशा देते हैं

आचार्य कहते हैं... 'संसार काणणे घोरे' यह संसार का जो कानन है, जंगल है, यह बड़ा घोर है, भयंकर है और इस संसार के इस जंगल में यह जीव 'णिय-कम्म-पवण-चलिओ' यह जो जीव चल रहा है, गति कर रहा है, किसी भी तरह का भ्रमण कर रहा है, उसके पीछे का अगर कोई कारण है, तो वे कहते हैं... 'णिय कम्म पवण चलिओ' अपने कर्मों की पवन से यह जीव चलता है। इस जीव को चलाने के लिए अगर भीतर से कोई प्रेरणा देता है या इसको बल मिलता है, तो वह कोई और बाहर की चीज नहीं है, वह है- उसका अपना कर्म। 'णिय कम्म' जो उसने स्वयं अपना कर्म अर्जित किया है, वह कर्म ही उसको उस दिशा की ओर ले चलता है, जिस दिशा में वह जाना चाहता हो या न जाना चाहता हो। उसे ले जाएगा तो उसका वह कर्म ले जाएगा। जिस तरह से पवन का काम आगे बढ़ाने का होता है, नौका को आगे चलाने का होता है, ऐसे ही इस जीव को आगे बढ़ाने का काम उसके अपने कर्म करते हैं। यूँ तो हम देखें कि हर जीव यह चाहता

है कि हम अच्छा ही करें। हर जीव यही कोशिश करता है कि हम अपने जीवन में अच्छे से अच्छे कार्य करें, हम अपना भविष्य अच्छा बनायें लेकिन कभी-कभी उसके वह कर्म भी उसे उस ओर ले जाते हैं, जिन कर्मों के कारण से उसका भविष्य वह चाहते हुए भी बना नहीं पाता।

भविष्य का निर्धारण भी कर्मों द्वारा होता है

आप सोच सकते हैं... भविष्य का निर्धारण करना सब कुछ हमारे हाथ में नहीं होता। हम एक अच्छी सोच के साथ चले भी, हम एक अच्छे काम करने के लिए तत्पर भी हो लेकिन अगर हमारा कर्म हमें कुछ प्रेरित करता है, कुछ दूसरी दिशा में चलाता है, तो उस दिशा में चलकर के भी हमारे कर्म हमको उस अच्छे काम से वंचित कर सकते हैं। यहाँ पर एक बहुत बड़ा हमें ज्ञान दिया जा रहा है और उस ज्ञान के साथ में हमारे अन्दर एक समझ भी पैदा की जा रही है कि इसमें ज्ञान की बहुत ज्यादा जरूरत नहीं है। यह सब कोई जानता है... **‘अपने-अपने कर्म का फल भोगे संसार’** हर कोई इस बात की जानकारी रखता है इसलिए इसमें ज्ञान की कोई बड़ी बात नहीं है, बात है समझदारी की। कल भी आपसे कहा था, यहाँ आपको न teaching दी जा रही है, न training दी जा रही है; यहाँ पर सिर्फ understanding बनाई जा रही है। यह सबको पता है कि हर कोई व्यक्ति अपने-अपने कर्म का फल भोगता है, अपने कर्म के अनुसार ही उसका सब कुछ अच्छा या बुरा होता है लेकिन यह जानकारी पर्याप्त नहीं है। पर्याप्त होती है समझदारी और यह समझदारी ही बताने के लिए यहाँ पर आपको यह एक वैराग्य रूप में उपदेश है।

कर्म के फल सबके जीवन में दिखाई देते हैं

हर जीव अपने-अपने कर्म का मारा है। कोई किसी को नहीं मारता, सब अपने-अपने कर्म से मरते हैं, अपने-अपने कर्म का मारा हर कोई जीव है। किसी जीव के लिए अगर कभी हम देखते हैं कि वह कोई अच्छा भी करना चाह रहा है, तो वह अच्छा नहीं कर पाता। इसके पीछे भी कारण उसका कर्म होता है और किसी के जीवन में कभी कुछ अच्छा नहीं होता, इसके पीछे भी उसका कर्म होता है। किसी के जीवन में हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति थोड़ा-सा कोई अच्छा काम करता है और उसको बड़ा अच्छा फल मिल जाता है... यह भी उसके कर्म का फल होता है। कभी-कभी हम देखते हैं कि कोई जीवन में बहुत अच्छे-अच्छे काम करे लेकिन उसे थोड़ा-सा अच्छा फल मिलता है और कभी-कभी थोड़ा भी अच्छा फल नहीं मिलता। हो सकता है कि किसी ने अपने जीवन में बहुत अच्छे काम किए हो लेकिन उसे हमेशा बुरा फल ही देखने को मिले। इन सबके पीछे क्या कारण है? वह कारण अगर हम ध्यान में रखें तो उसका नाम समझदारी है।

बुरी घटना को ही जीवन में इतना महत्व क्यों दिया जाता है?

जब भी कभी कोई चीज हमारे सामने घटित होती है, बाहर से कोई घटना हमारे सामने घटती है, अच्छी या बुरी तो हम अच्छी घटना के लिए तो इतना ज्यादा महत्व नहीं देते हैं लेकिन जब बुरी घटना घटती है, तो हमें सोचने में आता है... आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? व्यक्ति सोचने को जब मजबूर होता है कि हमारे साथ ही ऐसा क्यों होता है? वह सोचता है कि यह हमारे साथ हो रहा है मतलब हमारे साथ कोई बुरा कर रहा है।

अच्छी घटनाओं में आपको कभी याद नहीं आएगा कि यह हमारे साथ क्यों हो रहा है? मानो अगर कोई आपका सम्मान करे बार-बार तो आपको कभी नहीं लगेगा कि हमारे साथ हमारा ही सम्मान क्यों किया जा रहा है? आप कहोगे कि नहीं यह तो मेरा हक है, हम ही इसके काबिल हैं। लेकिन अगर आपका कोई अपमान कर देता है, अगर आपके लिए कोई भी सम्मान नहीं मिलता है या सम्मान योग्य काम करने के बावजूद भी आपका अपमान होता है, तो आपके अन्दर यह विचार आएगा। तब विचार आएगा कि यह हमारे साथ ऐसा क्यों होता है? कभी-कभी आपको यह भी महसूस होगा कि हमने अच्छे काम किए और उस अच्छे काम में चार लोग शामिल थे और हमने सबसे ज्यादा मेहनत की, हमने सबसे ज्यादा उसमें प्राणपन से काम किया, सबसे ज्यादा हमने ही उसमें अपना समय लगाया, अक्ल लगाई, सब कुछ किया लेकिन सम्मान मेरा नहीं हुआ; सम्मान किसी और का हो गया।

पुरुषार्थ के अनुरूप सफलता न मिलने पर खेद-खिन्नता आती है

जब आपके सामने इस तरह की स्थिति बने कि हम अच्छा करते हैं लेकिन हमारे लिए अच्छा होता नहीं है। लोगों से ज्यादा हम मेहनत करते हैं तब भी हम ज्यादा नहीं कमा पाते; लोगों से ज्यादा हम पुरुषार्थ करते हैं तब भी हमें उतनी सफलता नहीं मिलती। लोगों से ज्यादा हम अपने लिए अच्छे-अच्छे कामों में लगने की कोशिश करते हैं तब भी हमें उसके अच्छे फल नहीं मिलते। तब आपके मन में एक विचार आता है कि हमारे साथ ऐसा क्यों होता है? जब आपके साथ में अच्छा हो रहा होगा, तब विचार नहीं आएगा कि हमारे साथ ऐसा अच्छा क्यों होता है? उसके लिए तो आप कहेंगे...नहीं! इसके तो हकदार हम ही थे इसलिए हमारे साथ अच्छा हो रहा है। हमारे बहुत अच्छे दिन चल रहे हैं। आपको उन दिनों के बारे में सोचने की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। जरूरत कब पड़ती है? जब कुछ बुरा होता है, मन चाहा नहीं होता है। सोचते कुछ हैं और होता कुछ है और वह कुछ होते हुए भी अच्छा नहीं होता है, वह बुरा हो जाता है।

जिन्दगी में काम बिगड़ते ही चले जाते हैं

सोच कर चलते हैं कि चलो कोई अच्छा काम करने चल रहे हैं, अच्छा व्यापार करने चल रहे हैं, अच्छी कोई अपनी scheme बना रहे हैं लेकिन वह सारी की सारी schemes उल्टी पड़ जाती हैं। सब विचार उल्टा अपने लिए और नुकसान देने वाले हो जाते हैं। तब उस समय पर आदमी के मन में एक विचार आता है.... यह हमारे साथ क्यों हो रहा है? ऐसा किसी के साथ नहीं होता जैसा हमारे साथ हो रहा है और यह विचार हर व्यक्ति के अन्दर आएगा कि जैसा हमें मिल रहा है, वैसा किसी को नहीं मिलता। इतना नुकसान कभी किसी ने नहीं झेला होगा, जितना नुकसान हमने झेला। मेरे माता-पिता ने मुझे कुछ नहीं दिया, मैं बिल्कुल सड़क पर था और मैंने मेहनत की, तब जाकर के मुझे कुछ मिला। मेरे साथ जो होता है वह किसी के साथ नहीं होता...ऐसा विचार हर व्यक्ति के अन्दर आता है। जितना हम मरते-मरते बचे, ऐसा रोग हो गया था, डॉक्टरों ने यह कह दिया था, वह कह दिया था और फिर भी हम बच पाए या हम उस रोग में इतने पीड़ित हो गए कि रोगी, रोगी, रोगी, रोगी होते ही चले गए तो उस समय पर विचार आता है कि ऐसा मेरे साथ क्यों होता है? और किसी के साथ तो नहीं होता। और किसी को कुछ होता है तो अच्छा हो जाता है, और किसी को कुछ होता है तो जल्दी वह line पर आ जाता है और हमारे साथ होता है तो गाड़ी पटरी से उतरी

तो उतरी ही चलती चली जाती है। एक काम बिगड़ा, दूसरा बिगड़ा, चार बिगड़े और काम बिगड़ते ही चले जाते हैं, कोई काम बनते ही नहीं।

ज्ञान काम नहीं आता, समझदारी काम आती है

यह विचार जब-जब आपके मन में आए तब आप सोचते हो...यह मेरे साथ क्यों हो रहा है? अब क्या सोचोगे? किसकी कहोगे? भगवान मेरे साथ कर रहा है? कोई ईश्वर मेरे साथ बुरा कर रहा है? कोई खुदा मेरे साथ बुरा कर रहा है? किसके लिए हम उस बुराई के लिए जिम्मेदार ठहराएँ? उस समय पर हमारे सामने भीतर से देखने पर कुछ भी समझ नहीं आता कि हम किसको कहे कि यह हमारे साथ ही बुरा क्यों हो रहा है? सबके कर्म अच्छे हैं, सब अच्छा जीवन जी रहे हैं, बस! हमारे साथ ही ये सब परेशानियाँ क्यों आती हैं? जब-जब आपके मन में यह विचार आए तो आपके अन्दर ज्ञान की जरूरत नहीं है। फिर कह रहा हूँ... किसकी जरूरत है? समझदारी की। ज्ञान काम नहीं आता, समझदारी काम आती है। ज्ञान और समझदारी का मतलब ही यही है कि ज्ञान तो एक बुद्धि का आयाम होता है। वह तो एक पिटारे में जैसे मस्तिष्क का पिटारा, उसमें रखा रह जाता है, वह काम नहीं आता।

समझदारी क्या है?

समझदारी क्या होती है? जिस समय पर हमारे सामने जो सही विचार आना चाहिए, वह सही विचार आ जाए, उसका नाम समझदारी है। ज्ञान हमारे सामने बहुत होते हुए भी याद नहीं आएगा कि हमें इस समय पर क्या करना है? मानो आपके सामने कोई परिस्थिति ऐसी बन जाए कि आपको बहुत ही instant decision लेना है कुछ, बहुत fast decision लेना है आपको...या तो यह करना है या यह करना है। उस समय पर आप क्या सोचोगे? हमने यह पढ़ा था, हमने वह पढ़ा था, ये नीतियाँ पढ़ी थी, वे नीतियाँ पढ़ी थी, ये शास्त्र पढ़े थे, वे शास्त्र पढ़े थे, ये उपदेश सुने थे, वे उपदेश सुने थे। कुछ याद आ जाए कि हम इस स्थिति में क्या निर्णय ले? कुछ याद नहीं आएगा, सब कुछ block हो जाएगा। अगर आपके सामने ऐसी कोई परिस्थिति बनती है जब आपको कोई निर्णय लेने की स्थिति बनती है और उस समय पर आप अपने ज्ञान का भी प्रयोग करना चाहेंगे तो ज्ञान का प्रयोग नहीं होगा। कोई भी ज्ञान आपका काम नहीं आएगा। न वह ज्ञान आपके स्मरण में आते हुए भी स्मरण में आएगा और अगर वह स्मरण में होगा तो भी आपको लगेगा यह ज्ञान काम का नहीं है। यह कुछ हमारी problem को solve नहीं कर रहा है। Problem solve किससे होती है? ज्ञान से नहीं होती। आपको कितनी भी teaching कोई दे, कितनी भी coaching आपको कराए और कितनी भी आपको किसी भी तरह की training दे दी जाए लेकिन जिस समय पर आपके सामने यह स्थिति आ जाए, अब हम क्या निर्णय ले? अब हमें क्या करना चाहिए? उस समय पर आपका निर्णय आपके ज्ञान से नहीं होगा। उस ज्ञान के साथ एक चीज होगी, जिसे कहते हैं- बुद्धि और उस बुद्धि का नाम ही होता है- समझदारी।

कर्मानुसारिणी बुद्धि

ज्ञान में और बुद्धि में अन्तर होता है। ज्ञान तो भर लिया जाता है। यह पढ़ लिया, वह सीख लिया, यह सुन लिया। यह क्या कर लिया हमने? यह ज्ञान कर लिया। लेकिन उससे भी बड़ी एक चीज होती है- बुद्धि। बुद्धि समझदारी के साथ चलती है और बुद्धि ही वह चीज होती है जो आपको उस समय पर decision लेने के लिए आपको कहेगी। नहीं! क्या करना है? इस दिशा में चलना है। यह decision लेना है, यह काम आपकी बुद्धि करेगी। उस बुद्धि को भी पैदा करने वाला कौन होगा? वह बुद्धि कहाँ से आएगी? ईश्वर की मेहरबानी से? भगवान की कृपा से? गुरु की कृपा से? ये जितनी भी कृपाएँ होंगी, ये सब बाहर से काम करने वाली हो सकती हैं, होंगी लेकिन भीतर से आपका decision होगा, वह आपकी अपनी जो बुद्धि से होगा, उस बुद्धि को भी प्रेरित करने वाली जो हवा है, उस बुद्धि को भी एक दिशा में चलाने वाली जो चीज है, उसका नाम है- कर्म। क्या नाम है? कर्म। वह आपकी बुद्धि को उस दिशा में चलाएगा। इसलिए एक बहुत अच्छी सूक्ति है... **‘बुद्धि कर्मानुसारिणी’** बुद्धि कैसी चलती है? कर्म के अनुसार चलती है। यानी आपके अगर कर्म आपके अच्छे हैं तो वे आपकी अच्छी दिशा में ले जाएंगे।

बुद्धि हर स्थिति में काम आती है

कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि एक शराबी व्यक्ति है। एक शराबी व्यक्ति के साथ में उसका मेल हो गया मतलब बुरे व्यक्ति के साथ में उसका सम्पर्क हो गया। हो सकता है कि उसके कर्म अगर अच्छे हो तो वह उस शराबी व्यक्ति के साथ में मिलकर के भी, उसके साथ में रहकर के भी वह शराब छोड़ दे, पीना छोड़ दे। आप कहोगे, ऐसा कैसे हो सकता है? अगर किसी शराबी की किसी शराबी से दोस्ती हो गई और अच्छी दोस्ती हो गई और जो पहले से पियक्कड़ था, उसको मानो कोई अच्छी बुद्धि चल गई, कुछ उसको अच्छा संयोग मिल गया, कोई उसको अच्छा उपदेश मिल गया और उसने ठान ली कि नहीं! अब मुझे शराब नहीं पीनी। बहुत अनर्थ कर चुका हूँ, अब इससे ज्यादा नहीं करना और उसने वह शराब छोड़ दी। जब उसने वह शराब छोड़ी तो उसकी संगति में आया हुआ जो उसका दूसरा व्यक्ति था, अब वह भी सोचता है कि जब इससे ही मैंने पीना सीखा था तो अब इसने छोड़ दी और मेरी इससे बहुत ज्यादा गहरी दोस्ती है, तो वह भी उसको पीना छोड़ देता है, छोड़ सकता है। अब आप सोचो! बुरी संगति में भी कभी आदमी पड़कर के सम्भल सकता है। यह सब होता है। कैसे? यूँ नहीं कहना कि अब हमें फिर बुरी ही संगति करना है कि हमें शराबी के साथ ही रहना है।

हमारे कर्मों के अनुसार ही हमारी बुद्धि चलती है

मैं आपको यह उदाहरण दे रहा हूँ, यह बताना चाह रहा हूँ कि संसार में सब कुछ घटित होता है। एक अच्छा व्यक्ति है, एक ऐसा बच्चा है जिसने कभी अपने जीवन में शराब नहीं पी। लेकिन उसके लिए अपने आप ऐसा माहौल मिल गया, ऐसा वातावरण मिल गया, उसके दिमाग में अचानक से इतनी निराशा आ गई, frustration आ गया कि उसने शराब पीना शुरू कर दी। जिसके संस्कारों में कभी शराब नहीं थी, उसने शराब पीना शुरू कर दी और जिन्दगी भर वह पीता रहा, बर्बाद हो गया। अन्त तक उसे कोई समझाने वाला नहीं मिला, अन्त तक उसने उस चीज से अपने आप को बचा नहीं पाया। कौन-सी चीज है जो हमें प्रेरित

करती है? बच्चा पढ़ने के लिए जाता है, बड़े बड़े शहरों में और वहाँ पर पढ़ते हुए पढ़ भी जाता है और बिगड़ भी जाता है। कुछ ऐसे भी बच्चे होते हैं जो बिगड़ल होते हैं लेकिन बिगड़ कर के भी कोई अच्छा काम कर जाते हैं, अच्छा पढ़ जाते हैं, अच्छी दिशा में चले जाते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो बिल्कुल हमें घर में रहते हुए बिल्कुल innocent समझ में आते हैं, बिल्कुल भोले समझ में आते हैं और बाहर निकलने के बाद में बड़े से बड़े गन्दे कामों में पड़ जाते हैं। किसके संस्कार? किसने कर दिया? उसकी बुद्धि ऐसी कैसे चल गई? कैसे उसकी बुद्धि में यह बिगाड़ आ गया या जो बिगड़ी हुई बुद्धि थी, उसकी बुद्धि में कैसे सुधार आ गया? इसका एक ही उत्तर है... **‘बुद्धि कर्मानुसारिणी’** बुद्धि किससे चलती है? कर्म के अनुसार चलती है। दूसरे पर आप दोष अगर देना चाहे तो दे सकते हैं लेकिन आपकी आत्मा अगर यह स्वीकार कर ले कि दूसरों पर दोष देने से कोई मतलब है नहीं, करते तो आखिर हम ही हैं। दूसरे की तो हम ओट में ले लेते हैं लेकिन निर्णय हमारा होता है, बुद्धि हमारी होती है और हमारी बुद्धि किससे चलती है? अपने कर्मों से चलती है। अगर आपको उस क्षण यह याद आ जाए जिस क्षण आपका बिगाड़ हो रहा हो, तो यह समझदारी है और यह क्षण कौन-सा होना चाहिए? जब आपको लगता है, यह हमारे साथ ही क्यों होता है?

उदाहरण न. 1

एक पति-पत्नी हैं...भाव करते हैं कि हमारे घर में भी एक पुत्र की उत्पत्ति हो। उन्होंने अपने पुत्र के लिए भाव किया, पुरुषार्थ किया। किसी के लिए चार महीने में गर्भ गिर जाता है, किसी के दो महीने में गर्भ गिर जाता है, किसी के सात महीने में गिर जाता है, किसी को नौ महीने में भी गिर जाता है। कोई ऐसा भी बच्चा होता है जो किसी तरह से ऐसा रोगी हो जाता है कि उसके कारण से माँ की मृत्यु हो जाती है। हमने सोचा था अच्छा। क्या करना है? पुत्र प्राप्ति हो जाए और हो क्या गया? पुत्र भी प्राप्त नहीं हुआ और पत्नी की भी मृत्यु हो गई। ऐसा होता है कि नहीं होता है? आदमी सोचता है कि इससे अच्छा तो यह होता कि मैं पुत्र प्राप्ति का पुरुषार्थ ही नहीं करता लेकिन करता कैसे नहीं? **‘बुद्धि कर्मानुसारिणी’** बोलो? याद कर लो एक चीज, बहुत काम आएगी **‘बुद्धि कर्मानुसारिणी’**।

उदाहरण न. 2

आदमी जा रहा है तीर्थ यात्रा के लिए और तीर्थ यात्रा में ही ऐसी दुर्घटना हो गई, खुद की मृत्यु हो गई, परिवार के लोगों की मृत्यु हो गई और जा किसलिए रहा था? तीर्थ यात्रा के लिए। दूसरे लोग तरह-तरह की मस्ती करने के लिए जा रहे हैं, तरह-तरह की होटलों में जा रहे हैं, उन्हें कुछ नहीं हो रहा है। एक व्यक्ति तीर्थ यात्रा करने जा रहा है और उसके लिए बुरा हो जाता है। आप क्या कहोगे? यह इसकी बुद्धि क्यों हुई? उधर क्यों गया था? Accident उसका क्यों हो गया? उधर जाना ही क्यों था? उस सड़क पर ही क्यों गया था? उस दिशा में ही क्यों गया था? क्या बोलोगे? कौन ले गया उसको उस दिशा में? कौन ले जाता है उसको उस ओर? कौन उसको प्रेरित कर रहा था कि नहीं मुझे वहीं जाना है? आप कभी-कभी आश्चर्य करोगे कि कोई व्यक्ति एक छोटी-सी घटना में इतना ज्यादा उसके लिए दुर्घटना हो जाती है कि उसकी मृत्यु हो जाती है। वह देखता है कि इतने से भी ज्यादा बड़ी-बड़ी घटनाएँ होने के बावजूद भी लोग बच के आ जाते हैं। यह कौन कर देता है? यह कौन होता है? जो हमारे भीतर हमें उस दिशा में ले जाता है, उस गड्ढे में गिरा देता है, गड्ढे

से बचा लेता है और गड्ढे में गिरने के बावजूद भी हमें जीवन मिल जाता है और किसी को गड्ढे में भी नहीं गिरना पड़ता तो वह केवल अपनी कार से टकराता है, अपने सामने ही कांच से और उसका देहान्त हो जाता है। यह कौन होता है? यह ज्ञान से समझ में नहीं आएगा। इसके लिए क्या चाहिए? एक भीतरी चीज है, जिसका नाम क्या है? **बुद्धि है, समझदारी है।** यह बुद्धि है, जिसके कारण से यह अपनी-अपनी पवन उसके भीतर रहती है। पवन मतलब वायु जो उस बुद्धि को चलाती है।

शम्बूक और लक्ष्मण का दृष्टान्त

आप एक प्रसंग याद करो जो रामायण में आता है। शम्बूक का नाम आपने सुना होगा? शम्बूक कौन था? सूर्यनखा का पुत्र था। क्या किया उसने? 12 वर्ष तक एक वृक्ष की कोटर में बैठकर के उसने साधना की और उस साधना से उसने एक चन्द्रहास खड़ग की सिद्धि कर ली... एक ऐसी तलवार जो देवताओं के लिए भी सिद्ध करना मुश्किल होता है। देवताओं के पास भी नहीं होती है, उस तलवार को उस एक व्यक्ति ने बड़ी कठिन साधना के साथ में सिद्ध कर लिया। वह साधना उसने एकान्त में एक वृक्ष की कोटर में बैठकर के की। जब उसके लिए वह साधना को पूरा होने का समय आ गया और उसके सामने वह तलवार दिख भी रही है कि वह तलवार उसे सिद्ध हो गई है। उस सिद्धि का एक और उसमें कारण होता है कि यह तलवार सिद्ध हो जाने के बाद भी तीन दिन तक इसे छूना नहीं। तीन दिन तक और इसकी आराधना करना, तब यह तुम्हारे हाथ में आ जाएगी। उन्हीं तीन दिनों के बीच में एक दूसरा व्यक्ति आता है- घूमते-घामते, जिसका नाम लक्ष्मण था। वह आता है घूमते-घामते और सामने वृक्ष पर लटकती हुई तलवार को देखता है। उसे नहीं पता कि अन्दर कौन बैठा है? वृक्ष की कोटर में कौन बैठा है? उसने देखा कि यह तो बहुत बढ़िया तलवार है, बहुत शानदार तलवार है, बहुत चमकती हुई तलवार है, ऐसी तलवार तो हमने पहले कभी देखी नहीं और लक्ष्मण ने वह तलवार हाथ में उठाई और क्या किया? देखे तो यह कितनी पैनी है? क्या है? उसने यूँ वृक्ष में दे मारी और उसी वृक्ष में वह बैठा था, जिसने उसको सिद्ध करना था, उसको सिद्धि उसकी थी और end time पर आकर के लक्ष्मण ने वह तलवार हाथ में ली और उसको घुमा दिया और उसका सर कट गया। किसका? उसका सर कट गया जिसने सिद्ध करनी थी, जिसको सिद्ध हो चुकी थी।

सिद्धि ही मृत्यु का कारण बन गई

बस! वह end का time था... जैसे कोई आपने व्रत किया हो और उसका निष्ठापन करना होता है न? बस! एक निष्ठापन का और अन्तिम व्रत था उसका बस! वह और उसी व्रत में उन दिनों के बीच में यह घटना घटित हो गई कि वह लक्ष्मण आ गए बीच में और वह तलवार उनके हाथ में आ गई। 12 वर्ष तक सिद्धि करता रहा, 12 वर्ष तक कौन? शम्बूक। अब बताओ, उसने क्या सिद्धि की? अपनी मृत्यु की सिद्धि कर रहा है कि किसी दूसरे के लिए सिद्धि कर रहा है? उसकी यह बुद्धि चली कि मुझे यह सिद्धि करना है। सोचना एक-एक घटना को! व्यक्ति अच्छा करने के लिए चला क्योंकि विद्याधर होते हैं या कोई भी बड़े ऐसे लोग होते हैं, इस तरह की सिद्धि किया करते हैं और इन सिद्धियों से ही उनके लिए शक्तियाँ मिलती हैं, जीवन चलते हैं। अब उसने सोचा कि मुझे एक काम करना है और उसने पूरा अपना प्राणपन से वह काम किया और अन्ततः वह सिद्धि उसके हाथ में आकर के भी नहीं आ पाई और उसकी मृत्यु का कारण बन गई।

सिद्धि होने के बाद भी शम्बूक को उसका सुख नहीं मिला पाया

अब आप विचार करो कि आदमी क्या करने चला है? 12 वर्ष से वह क्या कर रहा है? यह विचार करो। क्या कर रहा है 12 वर्ष से? कोई सिद्धि कर रहा है? कोई अपने लिए हितकारी काम कर रहा है या क्या कर रहा है या अपनी ही मृत्यु को ढूँढ़ने निकला है? लेकिन जब आदमी यह काम करने बैठा था, तब उसे ऐसा तो नहीं लग रहा था कि इसके कारण से मेरी मृत्यु होगी। लेकिन उसकी बुद्धि क्या कह रही है? तुझे चन्द्रहास खड़ग को सिद्ध करना है और ऐसी सिद्धियाँ बहुत कम लोगों में होती हैं और इसके लिए तू बहुत योग्य है और यह काम तुझे करना है। कितनी मेहनत करनी पड़े, तुझे यह काम करना है और उसने वह काम करने का मन ठान लिया। 12 वर्ष की तपस्या की उसने और सिद्धि होने के बाद भी वह चीज उसके हाथ में नहीं लग पाई और उल्टी उससे ही उसकी मृत्यु हो गई। अब बताओ इसके पीछे क्या है? कौन उसकी मृत्यु का कारण है? किसके कारण से वह सिद्धि होने के बावजूद भी वह उसे उसका सुख नहीं मिल पाया? किसको दोष दोगे बताओ? एक व्यक्ति है जो जिन्दगी भर मेहनत करता है और उसे कुछ नहीं मिलता है और एक व्यक्ति घूमते-घामते आता है और उसे हाथ में कुछ भी आ जाता है और उसको चलाता है और उसे खुद पता नहीं होता है कि यह क्या चल गया और यह क्या हो गया?

आखिर बनते-बनते बात क्यों बिगड़ जाती है?

अपनी जिन्दगी में भी ऐसा कुछ होता है कि नहीं होता रहता है? कभी-कभी लगता है... **‘बनते-बनते बात बिगड़ जाती है क्यों, जलते-जलते बाती बुझ जाती है, क्यों?’** अब वह क्यों? कई लोग जब यह भजन पढ़ते हैं तो मुझसे पूछते हैं... महाराज! ‘क्यों, क्यों’ क्यों बोल रहा है आपने इसमें? कुछ ‘क्यों’ का उत्तर तो दो आप। बनते-बनते बात बिगड़ जाती है क्यों? वह ही भजन बन गया क्यों? जबकि इसमें कोई उत्तर ही नहीं है। कभी-कभी उस ‘क्यों’ में ही मजा आता है न? उस ‘क्यों’ की ओर सोचने की ओर आपकी दृष्टि तो जाए, आप उस ओर थोड़ा देखो तो कि क्यों आखिर इसमें क्या कहा जा रहा है? आपकी समझदारी क्या कह रही है? **‘जलते-जलते बाती बुझ जाती है क्यों?’** अब बताओ क्यों? क्यों? उसका उत्तर इस तरह के उपदेशों में मिलता है, उसका उत्तर इस तरह के भावों के साथ आता है। यहाँ पर आपको इसका उत्तर मिल रहा है- क्यों बनते-बनते बात बिगड़ जाती है? बात बन गई थी न? कितनी बार ऐसा होता है कि आपके घर में बेटा होती है, बेटे होते हैं, सम्बन्ध बनाने चले जाते हो और सम्बन्ध बन जाते हैं और बनने के बावजूद भी अचानक से call आता है कि भाई! हो नहीं पाएगी, बात आगे बढ़ नहीं पाएगी, बेटा तैयार नहीं हो रहा है या कुछ और कारण हैं जो आपको बताए नहीं जा सकते हैं, बात खत्म कर दो। क्या हुआ? बनते-बनते बात बिगड़ जाती है क्यों? अब यह क्यों का जवाब क्या है?

‘क्यों’ अर्थात् हमारा अपना कर्म

यह जवाब हर किसी के पास में रहना चाहिए, यह silent answer है। यह बताने वाला answer नहीं है। यह answer जैसे ही आपके सामने आएगा, आपको एक झटका लगेगा भीतर से और आपके अन्दर वह समझदारी आएगी और आप स्वयं सोचने लग जाओगे। क्यों? इस ‘क्यों’ का उत्तर क्या है? हमारा अपना कर्म। कोई भी बात बनते-बनते बिगड़ती भी है, तो भी अपना कर्म और बिगड़ते-बिगड़ते अगर बन

भी जाती है, तो भी अपना कर्म। यह अपने कर्म के कारण से हर जीव चल रहा है। अपने कर्म के कारण से ही यह जीव मिटेगा, अपने ही कर्म के कारण से जीव बनेगा। आप किसी को लाख मिटाने की कोशिश करो या हम किसी को लाख मिटाने की कोशिश करें, कोई मिट नहीं सकता।

रावण का उदाहरण

रावण को मिटाने की कोशिश किसने की, बताओ? राम ने कि सीता ने कि लक्ष्मण ने? बताओ किसने की? अगर ज्ञान देखोगे तो ज्ञान आपको क्या कहेगा? रावण को मिटाने की कोशिश किसने की? लक्ष्मण ने की। आपके यहाँ विजयादशमी होगी तो आप क्या करोगे? हिन्दुओं के यहाँ विजयादशमी होगी तो वे क्या करेंगे? एक कहेगा राम ने रावण को मिटाया, एक कहेगा लक्ष्मण ने रावण को मिटाया, एक कहेगा सीता ही तो थी जो रावण को मिटाने का कारण बन गई लेकिन समझदारी क्या कहती है? ये सब ज्ञान की बातें हैं। समझदारी की बात क्या है? रावण को किसने मिटाया? रावण को मिटाने वाला कोई नहीं था। रावण को कोई नहीं मिटा सकता था सिवाय उसके कर्म के। वह कर्म था जिसने उस रावण की बुद्धि को विपरीत कर दिया, वह कर्म था जिसने उस रावण के अन्दर सीता के प्रति मोह पैदा कर दिया, वह कर्म था, जो जा रहा था कहीं और युद्ध के लिए और रास्ते में वह सीता के मोह में मोहित हो गया और उसको उठा लाया।

जीव पुरुषार्थ से नहीं अपितु स्वकर्म वश चलता है

किससे चल रही है बुद्धि? 'णिय-कम्म-पवण-चलियो' 'चलियो' किससे चलोगे? चलो, चलो! कहाँ चलोगे? जहाँ आपको आपकी बुद्धि ले जाएगी। जहाँ आपको उस बुद्धि को ले जाने वाले कर्म आपके पीछे ले जायेंगे और वह आपको भी पता नहीं होता है कि कर्म हमें किस दिशा में ले जा रहे हैं? लेकिन हमें हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि हमेशा हर जीव को चलाने का पुरुषार्थ जीव स्वयं भी नहीं करता। उस जीव को चलाने वाला कौन है? उसका कर्म है। चलियो, चलियो, चलियो; बोलते हो न कई बार? चलो, चलो, चलो; यहाँ चलो, वहाँ चलो...कैसे चलोगे? जहाँ चलोगे, जहाँ आप पहुँचोगे, वहाँ पहुँचाने वाला आपका अपना कर्म होगा। अपने-अपने कर्म से ही हर व्यक्ति चलता है। व्यक्ति कहीं जन्म लेता है, कहीं व्यापार करता है, कहीं जाकर के उसका जीवन चलता है और कहीं जाकर के उसकी मृत्यु होती है। देखते हो न? जन्म कहाँ लेता है, व्यापार कहाँ करता है, घर-मकान कहाँ बनाता है और अन्त में मरता है, तो जाने कहाँ मृत्यु हो जाती है? उसे खुद नहीं पता होता है। **चलियो चलियो** में सब चला जाता है। कौन चला रहा है? हर व्यक्ति को अपने-अपने कर्म भीतर से हवा देते रहते हैं। यह हवा देने का काम, यह हवा बहुत बुरी चीज होती है। कई बार जब आपके बच्चे कुछ बिगड़ने लग जाते हैं तो आपको कहना पड़ता है...इसको बुरी हवा से बचाओ लेकिन अगर उसको हवा भीतर से उसके कर्म दे रहे हैं तो आप लाख बचाने की कोशिश करोगे, बचा नहीं पाओगे और यह हवा ही होती है जो बस हमें देनी पड़ती है।

निजकर्म पवन

जैसे किसी को हमें उकसाना है, तो क्या बोलते हैं? भाई! इसको हवा दे दो, थोड़ी-सी हवा तो दे दो, फिर

देखो मजा। थोड़ा-सा उसके कान में एक बात तो डाल दो। यह जो हवा देने का काम है, यह हवा कहाँ से आती है? यह हवा हमारे अन्दर से उत्पन्न होती है और यह हवा कौन दे रहा है? निजकर्म पवन। यह पवन कहाँ से आ रही है? यह हवा भीतर से अपने कर्म देते हैं। हमें अपने ही कर्मों की हवा से आगे बढ़ना होता है, आगे चलना होता है, दिशाएँ मिलनी होती हैं। अच्छी दिशा में गए तो, बुरी दिशा में गए तो, यह कौन चला रहा है? इसको हम कहते हैं, एक भीतर से हमारा intuition होता है। यह intuition भी कहाँ से आता है? अगर हमें कोई inspire कर रहा है, तो वह inspiration भी कहाँ से मिलती है? यह भीतर की यह एक हवा है, यह pressure है, जिसका नाम है- कर्म। यह कर्म की हवा है और इस हवा से हर कोई चल रहा है। यह बात अगर ध्यान में रहे, तब हमें यह समझदारी आएगी।

जीवन की विडम्बनाएँ कर्माधीन है

‘का का विडम्बणाओ, ण पावए दुसह-दुक्खाओ’ इस हवा के कारण से न जाने जीव कौन-कौन सी विडम्बनाएँ नहीं पा लेता है। किस-किस तरीके के दुःख पा लेता है? किस-किस तरीके की विडम्बनाओं में पड़ जाता है? इसके पीछे क्या है? एक मुख्य कारण है तो भीतर की हवा और उस हवा का नाम है- कर्म पवन। क्या बोलते हैं? कर्म पवन। अपनी कर्म की हवा के कारण से वह सुखपूर्वक किसी घर में भी उत्पन्न होता है, तो दुस्सह दुःखों का भागी बन जाता है। अच्छे घराने में भी बच्चे पैदा होने के बावजूद भी कई कष्टों के और दुःखों के भागी बन जाते हैं। कैसे? अपने कर्म की हवा उनको इस तरह से चलाती है कि उन्हें हर तरह का सुख मिलने के बावजूद भी उन्हें भीतर से कभी सुख नहीं मिलता। इन सब विडम्बनाओं के पीछे अगर कोई कारण है, तो क्या है? अपना कर्म। जब भी आपके सामने ये विडम्बनाएँ आएँ, विडम्बना समझते हो न? क्या होती है विडम्बना? बताओ! विडम्बना है समस्या, परेशानियाँ और कठिनाइयाँ, मुश्किल की स्थितियाँ, जब समझ में न आए कि क्या करें? यह करें कि वह करें? एक के साथ कई विडम्बनाएँ सामने आ जायें तो उस समय पर क्या करना? जिस विडम्बना को solve करने की कोशिश करोगे, उसके पीछे पड़ोगे, वह विडम्बना उतनी बढ़ जाएगी।

समय निकलने पर कर्म स्वतः शान्त हो जाते हैं

जैसे कभी-कभी अगर शरीर में कोई रोग हो जाता है, फोड़ा हो जाता है और अगर उसको आप यह चाहो कि हम इसको जल्दी ठीक कर दे और आपने उसको जल्दी दबा दिया, जल्दी उसको ठीक करने के लिए उसका operation करा दिया तो क्या होगा? वह बढ़ जाएगा। कोई भी कष्ट अगर आया है, कोई भी अपने सामने कर्म की विडम्बना आई है, तो वह भी अपनी एक ताकत लेकर के आती है और उस ताकत से अगर लड़ने की कोशिश करोगे तो आप सफल नहीं होगे क्योंकि अभी उसकी ताकत ज्यादा है। आपको लगेगा यह बढ़ा हो जाएगा फोड़ा तो क्या होगा? भाई! उसको बढ़ा होने में जितना time लगेगा, वह लगेगा फिर उसको फूटने के बाद जितना सुधरने में time लगेगा, लगेगा। उसको आप जल्दी भी करने की कोशिश करोगे तो वह ठीक नहीं होगा क्योंकि वह किससे चालू है? कर्म पवन से प्रेरित है वह। आप उसको जल्दी भी समाधान करने की कोशिश करोगे तो जल्दी-जल्दी में भी कई बार और देर हो जाती है। कई बार आप देखते हो कि कोई काम आपको जल्दी करना हो तो जल्दी-जल्दी में वह काम और बिगड़ जाते हैं। वह चीज

बहुत छोटी-सी होती है, हमें यहाँ से यहाँ उठाकर के रखनी है लेकिन जल्दी में उसे यहाँ से उठाकर रखोगे तो बीच में छूट जाती है, टूट पड़ती है वह। हर चीज अपने समय से चल रही है। हर चीज समय पर होती है और हर चीज जब कर्म के द्वारा प्रेरित होती है, तो उस समय पर कुछ नहीं करना होता है। सिर्फ कर्म को देखना होता है और समय को निकालना होता है और कुछ नहीं करना होता है। शान्ति अगर आएगी तो इसी कर्म का विचार करने से आएगी। **‘स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयम् लभते शुभाशुभम्’** क्या कहते हैं आचार्य?

‘स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा’ जैसे आत्मा ने पहले कर्म किए हैं, **‘तदीयम् शुभाशुभं फलं लभते’** यह आत्मा उसी के अनुसार शुभ या अशुभ फल को प्राप्त करता है बस!

वैभव से सुख भी और विनाश भी

आज अगर आप किसी की शोहरत देख रहे हो, आज अगर आप किसी का कोई बहुत वैभव भी देख रहे हो तो यह वैभव उसके कर्म के द्वारा प्रेरित भी हो सकता है, प्रेरित है और यह वैभव उसके लिए सुख का भी कारण बन सकता है, यह वैभव उसके विनाश का भी कारण बन सकता है। आखिर रावण के विनाश का कारण क्या बना? उसका वह गुरुर, उसका वह वैभव, उसका वह अहंकार जिसके कारण से वह किसी को भी कुछ समझता नहीं। वैभव आदमी के सुख का भी कारण बन सकता है और वैभव, सम्पदाएँ आदमी के लिए दुःख का भी कारण बन सकती हैं और यह depend करता है कि वह किस तरह की कर्म से भीतर से चल रहा है?

बाहरी और भीतरी हवा

कौन-सी हवा उसको लग रही है? हर आदमी एक हवा से चल रहा है। अब हम उसमें कोई-सी भी हवा देना चाहे। यह हम एक और नया काम कर लेते हैं, आदमी को हवा दे दो थोड़ी-सी, चढ़ा दो। अरे! थोड़ी-सी बता तो दो, उसको पता नहीं है, तो हमने भी एक हवा देने का काम किया। लेकिन वह हवा उसके लिए ही लगेगी जिसको भीतर से कर्म हवा देगा और उसके लिए हवा लगेगी नहीं जिसको भीतर से कर्म हवा नहीं देगा। हर आदमी बाहर की हवा से नहीं चलता, किससे चलता है? यह ध्यान कर लो। अच्छे ढंग से मन में विचार करके उसको बांध कर रख लो। हर आदमी कौन-सी हवा से चलता है? भीतर की हवा से चलता है, कर्म की हवा से चलता है। इसलिए हम उसे चाहे बाहर से हवा दे या न दे लेकिन अगर उसके बनने का time आएगा, तो बनेगा और मिटने का time आएगा, तो मिटेगा। कर्म करेगा सो होगा, तुम्हारे करे कुछ नहीं होगा।

हमारे सुख-दुःख कर्मों से ही प्रेरित है

कितने ही लोगों के लिए लोग बुरा सोच लेते हैं लेकिन उनका बुरा नहीं हो पाता क्योंकि जब तक कर्म उनके लिए बुरा नहीं चाहेगा, तब तक बुरा नहीं होगा। आप लाख किसी व्यक्ति के बारे में सोचते रहो कि यह

कितना हमारे लिए बुरा कर रहा है, इसका बुरा हो जाए लेकिन उसका बुरा तब तक नहीं होगा, जब तक कि उसका कर्म उसके लिए बुरा करने के लिए हवा न दे। दुनिया में अच्छा या बुरा जो कुछ भी हमें दिख रहा है, चल रहा है, यह किसके द्वारा चल रहा है? अपनी कर्म की पवन से ये सब जीव प्रेरित हैं और उसी के अनुसार इन्हें अनेक तरह की विडम्बनाओं का सामना करना पड़ता है और तरह-तरह के दुस्सह दुःख भी अगर यह जीव भोगता है, तो अपनी उस कर्म की फल से ही भोगता है। इसलिए सुख की बात यहाँ पर नहीं लिखी क्योंकि सुख में तो तुम्हें ध्यान ही नहीं रहता है। सुख में कहाँ कहते हो कि हम कौन से कर्म के फल से महाराज! सुख भोग रहे हैं? आज तक किसी ने नहीं कहा मुझसे आकर के। लेकिन जब दुःख का समय आता है तब जरूर कहने आता है...आदमी कि महाराज! ऐसे कौन से कर्म हैं जिसके कारण से मुझे लाभ मिलना था, लाभ नहीं हुआ? यह हमको सुख मिलना था, सुख नहीं मिला; हमारा एक काम बनना था, काम नहीं हुआ?

इसलिए यहाँ पर लिखा गया है, जो भी विडम्बनाएँ हैं...जो भी दुस्सह दुःख हैं, वह सब हमारे अपने ही कर्म की पवन से प्रेरित हैं। आप उसके लिए सोचने के लिए बस थोड़ा-सा अपना मन बनायें कि जो कुछ भी हमारे लिए भीतर से दुःख का भाव आता है, वह किसके द्वारा? अपने कर्म की पवन से आ रहा है। सुख के लिए क्यों नहीं कहा जा रहा? क्योंकि सुख में आप सोचना नहीं चाहते हो, इसलिए सुख की बात नहीं है। जब भी व्यक्ति के लिए किसी तरह का दुःख आए, वह क्या सोचे? यही अपने कर्मों का फल था, यही कर्मों की नियति थी। इसलिए नियति भी अपने आप में एक बड़ी चीज होती है, जो कर्मों के माध्यम से नियत हो जाती है; कोई भगवान के माध्यम से नियत नहीं होती। उसका नियंत्रण कौन करता है? कर्म। कर्म नियन्ता है। अपने कर्म पर हमेशा विश्वास करते हुए, अपनी दिशा में आगे बढ़ते हुए अच्छे या बुरे फल जब भी आपके सामने आयें तो आप यह जरूर विचार करना कि अगर हमने कुछ भी अच्छा किया है, फल हमारा हमारे अपने कर्म के अनुसार ही मिलेगा और इसलिए यह प्रश्न यहाँ पर छोड़ दिया जाता है....

गाथा: 80

तिर्यचों के दुःखों का वर्णन

सिसिरंमि सीयलाणिल-लहरि-सहस्सेहि भिण्णघणदेहो ।
तिरियत्तणंमि रण्णे, अणंतसो णिहण-मणुपत्तो ॥80 ॥

अन्वयार्थ- (सिसिरंमि) शिशिर में यानी घोर ठण्ड के दिनों में (सीयल-अणिल-लहरि-सहस्सेहि) शीतल, वायु यानी हवा की, हजारों, लहरियों के द्वारा (भिण्ण-घण-देहा) भेदी गई हैं, मजबूत, देह 'जिनकी ऐसे तुम' (तिरियत्तणंमि रण्णे) तिर्यचपन रूपी, अरण्य यानी जंगल में (अणंतसो) अनन्तबार (णिहणं) निधन को (अणुपत्तो) प्राप्त हुए हो ॥80 ॥



81 पढ़ते हैं...

वैराग्य शतक, इस ग्रन्थ के माध्यम से हम बहुत आगे बढ़ गए हैं। 80वीं नम्बर की गाथा पर पहुँच गए हैं और इन गाथाओं में बहुत कुछ जो भाव थे, हम सुन चुके हैं। फिर भी जब अध्यात्म में भावों की प्रधानता रहती है तो उन्हीं भावों का कुछ repetition भी होता है ताकि हमारे अन्दर एक दृढ़ श्रद्धा बने, हमारे अन्दर दुःखों से अपने आप को जीतने की एक शक्ति मिले। इन्हीं भावनाओं को ध्यान में रखते हुए यह गाथा 80 और

सिसिरंमि सीयलाणिल-लहरि-सहस्सेहि भिण्णघणदेहो ।
तिरियत्तणंमि रण्णे, अणंतसो णिहण-मणुपत्तो ॥80 ॥

गिम्हायव-संतत्तो, रण्णे छुहिओ पिवासिओ बहुसो ।
संपत्तो तिरियभवे, मरणदुहं बहु विसूरंतो ॥81 ॥

शिशिर ऋतु की वेदना

ये दोनों गाथाएँ तिर्यच भव के बारे में बताने वाली हैं। कहा जा रहा है... 'सिसिरंमि सीयलाणिल-लहरि-सहस्सेहि' अनेक ऋतुओं में एक ऋतु आती है, जो आगे आने वाली है। वह शिशिर ऋतु, जिसमें कि सभी के लिए बहुत ज्यादा शीत की वेदना होती है, ठण्ड महसूस होती है। उस शिशिर ऋतु में, उन शीतल जो हवाएँ चलती हैं, उनकी लहरों के माध्यम से, उन हवाओं के तरंगों के माध्यम से, देह कैसी हो जाती है? आचार्य यहाँ कहते हैं... 'भिण्णघणदेहो' घनीभूत देह भी भिन्न हो जाती है, टूटने लग जाती है और देह के अन्दर भी

अच्छे-अच्छे जो हाड़ होते हैं, उनमें भी फूटन पड़ जाती है। हाड़-फूटन सुना है? ठण्ड में वे हाड़ भी टूटने लग जाते हैं, फूटने लग जाते हैं। स्वस्थ होते हुए भी व्यक्ति के लिए, हड्डियों में दर्द होने लग जाता है, घुटनों में दर्द होने लग जाता है, कमर में दर्द होने लग जाता है। जहाँ पर वे हड्डियाँ जुड़ती हैं, उन स्थानों में दर्द होने लग जाता है। ऐसे शिशिर के वातावरण में भी **‘तिर्य्यक्तगंमि रण्णे, अणंतसो णिहण-मणुपत्तो’** यह तिर्य्यच भव को प्राप्त करके इस जीव ने **‘अरण्य’** में यानी जंगल में, अनन्त बार निधन को प्राप्त किया, मरण को प्राप्त किया।

तिर्य्यच गति में ठण्डे वातावरण के दुःख

किसकी बात कही जा रही है? तिर्य्यच की कही जा रही है। आप लोग तो रजाई में बैठ जाते हो, कमरे के अन्दर heater लगा करके बैठ जाते हो, उसके बावजूद भी खूब गरम-गरम चीजें खा भी लेते हो, पी भी लेते हो और ऊपर से नीचे तक अपने-आप को बिल्कुल pack कर लेते हो तो आपकी तो बात यहाँ है ही नहीं। बात किसकी है? तिर्य्यचों की है। वे तिर्य्यच जो अरण्य में हैं, जंगल में हैं, जहाँ उनके पास में कुछ भी बचाव के साधन नहीं हैं। गुफाओं में तो फिर भी कभी बचाव हो जाते हैं लेकिन जंगल में बचाव के साधन क्या मिलते हैं? जो झाड़ियाँ हैं, वृक्ष हैं, जहाँ कहीं घनीभूत होकर के ऐसे कोई भी स्थान हैं, उन स्थानों में दुबक करके, छुप करके वे बैठ जाते हैं। ऐसे स्थानों में बैठने के बावजूद, जब वह ठण्ड रात्रि की गिरती है और वह वातावरण जब, चारों ओर ठण्डी-ठण्डी हवाओं के माध्यम से शरीर को तोड़ता है, तो वह मनुष्यों के लिए तो हाहाकार मचाने वाला होता ही है लेकिन तिर्य्यचों के लिए भी वह दुःख देने वाला होता है। आपको ऐसा लगता है कि जानवर तो सब सहन कर लेते हैं, जानवर के शरीर तो मोटी खाल के होते हैं। वह सब हवा-पानी, सर्दी-ठण्ड सब सहन कर जाते हैं। इस तरह की ठण्ड को सहन करते हुए भी उनकी मृत्यु हो जाती है, यह यहाँ बताया जा रहा है। वह मृत्यु हो रही है तो इसका मतलब यही है कि उन्हें वह ठण्ड सहन नहीं होती है और उनकी भी ठण्ड में मृत्यु होती है। इसलिए आप इस धारणा में मत रहना कि तिर्य्यचों की कभी ठण्ड में मृत्यु नहीं होती। अनेक तिर्य्यच, अनेक पशु, अनेक पक्षी, ठण्ड में मरण को प्राप्त होते हैं। जब उनका वह मरण होता है, उनके अन्दर वह वेदना उत्पन्न होती है, तो उस वेदना से वे कितने तड़पते हैं? इस तड़पन का अगर हम थोड़ा-सा यहाँ पर स्मरण करें तो आचार्य कहते हैं...हमारे अन्दर जो डर बैठा होता है, उस डर से हम अपने-आप को बचा सकते हैं।

प्रत्येक जीव ने तिर्य्यच पर्याय में दुःख सहा

उन्होंने कितनी तड़फन सहन की और यह तड़फन उनकी है तो आचार्य कहते हैं...यह तड़फन हमारी भी होनी चाहिए और हमारी भी है। क्योंकि कोई भी जीव ऐसा नहीं है, जिसने तिर्य्यच पर्याय में इस तरह के दुःखों को सहन नहीं किया हो। तिर्य्यच पर्याय में, जैसे हमें दूसरे जीवों के दुःख दिखाई देते हैं, वैसे ही हमने भी इस तरह के दुःख सहन किए हैं, मरण को प्राप्त किया और आज जब हमारे सामने सब तरह के साधन हैं तो उन साधनों में बैठकर के हम अपने इन रात्रियों को गंवाते हैं, व्यतीत करते हैं...सोने के माध्यम से। क्या ऐसा हो सकता है? कि कभी हम ठण्ड में बैठकर के, इन रात्रियों को जब व्यतीत करें तो हमें ऐसे जीवों की याद आ जाए, तिर्य्यचों की याद आ जाए कि वे ठण्ड में अपना जीवन कैसे निकाल रहे होंगे?

ऐसी कष्ट की पर्याय इस जीवात्मा को कभी प्राप्त न हो

ठण्ड में भी वे जीव इधर-उधर भटकते हैं। आप देखते हो गलियों में बहुत सारे कुत्ते घूमा करते हैं। उन्हें अगर कहीं घर में घुसने की जगह मिल जाए तो वे ठण्ड में घुस जाते हैं। वे ढूँढते ही रहते हैं कि कहीं कोई ओट मिल जाए, कोई दुकान के बाहर की भी अगर थोड़ी-सी दहलीज खाली भी पड़ी रहती है और ऊपर अगर थोड़ा-सा उन्हें दिखाई देता है कि छत है, तो बैठ जाते हैं। ठण्ड में वे ढूँढा करते हैं कि कोई भी स्थान उन्हें मिल जाए और मृत्यु कई बार विचित्र-विचित्र तरीके से हो जाती है। छोटे-छोटे बच्चे होते हैं, पिल्ले होते हैं, वे भी कितनी बार उन ठण्डों में मर जाते हैं। उनकी मृत्यु को देखकर के कभी यह विचार आना कि ये कैसे अपना जीवन निकाल रहे हैं, कैसे ये कष्ट सहन कर रहे हैं? और हम यहाँ बैठे-बैठे heater में हाथ ताप रहे हैं। यह विचार करके ही आपके अन्दर एक भाव आ सकता है कि हे भगवन्! ऐसी कष्ट की पर्याय इस जीवात्मा को, मुझे कभी प्राप्त न हो, इसलिए क्या कर ले? ठण्ड में हाथ तापने की जरूरत नहीं है, मूँगफली खाने की और चाय पीने की जरूरत नहीं है।

आलस्य त्यागकर पाप कर्म को नष्ट कर सकते हैं

ठण्ड में बैठकर के भी हम मन ही मन अपने हाथों में माला लेकर के या अपने हाथों को रजाई में भी डाल करके, मन में बैठे-बैठे णमोकार का जाप करके, अपने पाप कर्म को नष्ट कर सकते हैं। यह भावना कैसे विकसित होगी? ठण्ड में तो सोने का मन होता है और ठण्ड की रात्रियाँ बड़ी-बड़ी होती हैं, दिन छोटे होते हैं और बड़ी रातों में आपको लगता है कि भाई! यही तो वे रात्रियाँ हैं जब चैन की नींद, आठ-आठ घण्टे अगर सोने की आपके अन्दर आदत आ गई तो यह आलस्य आपको कहाँ ले जाएगा? कौन-सी गति में ले जाएगा? अगर हम अपने अन्दर कुटिलता का, इस तरह का विचार करके और प्रमाद में लीन होकर के, अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो यह भी हमारे लिए पाप बन्ध का कारण होता है। अब आप कहोगे महाराज! सोने में भी पाप है क्या? सोने में पाप तब नहीं है जितना सोना आपके लिए आवश्यक है। ठण्ड में ज्यादा शरीर थकता नहीं है। आप दिन भर दुकान में कितनी भी मेहनत करोगे तो थोड़ी-सी थकान होगी और वह थकान आपकी ठण्ड होने के कारण से, आपके शरीर में ज्यादा कष्ट नहीं होता तो वह कम नींद में भी आपकी वह थकान दूर हो जाती है। यानी ठण्ड में नींद तो कम आनी चाहिए, कम आती है और रात्रि बड़ी होती है। यह विज्ञान है। अब अगर आपकी नींद, मान लो 5 घण्टे में पूरी हो गई, बहुत-बहुत 6 घण्टे में पूरी हो गई और रात है आठ घण्टे की, 10 घण्टे की तो अब क्या करोगे? शाम को 6 बजे से अंधेरा होना शुरू हो जाता है और सुबह 6 बजे तक 12 घण्टे हो गए...कितना सोओगे बताओ?

सुख के दिन तो व्यतीत हो जाएँगे पर आगे का समय कैसा आएगा?

अब अगर आप उस समय को व्यतीत करने के लिए, बेवजह अपना समय गुजार रहे हो, mobiles में लगे हो, किसी भी तरह से अपने उस समय को व्यर्थ उपयोग में ला रहे हो तो आचार्य कहते हैं...यह आपकी जो कुटिलता है कि आप अपना मन धर्म में नहीं लगा रहे हो, आपके अन्दर डर नहीं है कि अगली पर्याय में हमारे साथ क्या हो सकता है? आपके अन्दर यह भय नहीं आता कि यह सुख के दिन हमारे ज्यादा टिकने वाले नहीं हैं। अगर आप इस तरह से अपने सुखों के दिनों को व्यतीत करेंगे तो ये दिन तो व्यतीत हो जाएँगे लेकिन

आगे का समय कैसा आ सकता है? आचार्य कहते हैं...तिर्यच पर्यायों की तरह भी, आगे का समय आ सकता है। पिछला समय भी ऐसा रहा है और आगे का समय भी ऐसा आ सकता है क्योंकि तिर्यच पर्याय इसी तरह की कुटिलता के साथ मिलती है।

तिर्यचों में सोने के संस्कार मनुष्य से आये हैं

अगर आपके अन्दर सोने के संस्कार हैं तो आप देखोगे बहुत सारे तिर्यच सोते ही रहते हैं। कुत्तों को देख लो, चाहे गायों को देख लो, चाहे भैंसों को देख लो, चाहे सूअरों को देख लो, चाहे खरगोशों को देख लो, किसी को भी देख लो। उन्हें बस थोड़ा-सा safety का माहौल मिला और अब उन्होंने झपकी ली और वहीं बैठे हैं कि लेटे हैं, आपको समझ नहीं आएगा। यह जो सोने की आदत तिर्यचों में दिखाई देती है, यह आदत तिर्यचों में कहाँ से आई? यह संस्कार कहाँ से आया? यह तिर्यचों में जो संस्कार आया, यह मनुष्यों की आदत थी। जो मनुष्यों ने अपनी आदत बना कर के, अपने समय को सोने में गंवाया तो उनके ऐसे कर्म के बन्ध हो गए। चलो ठीक है, अब तुम्हें सोना ही है तो अब वह कर्म आपको ऐसी गति में ले जाएँगे, जहाँ सिर्फ सोना ही सोना है और कुछ काम नहीं है। कुत्तों के लिए कोई काम नहीं होता है। शूकरों को देखोगे आप, शूकरों के बच्चों को देखोगे, उनको कोई काम नहीं होता। बस! वे झुण्ड के झुण्ड में पड़े-पड़े बस सोते रहते हैं। सोओ, अब कितना सोना है?

ऐसे कर्म बन्ध न हों जो हमें तिर्यच पर्याय में ले जाएँ

तुम्हारी जो आदत थी, वह तुम्हारे कर्म बन्ध का कारण बन गई। अब वही कर्म बन्ध आपके लिए जब फल देगा तो इस तरह से वह आपके सामने आएगा तो वह कर्म फल अब इस रूप में फलेगा। इसलिए आचार्य कहते हैं...ठण्डी रातों में अगर समय मिल जाए तो ज्यादा धर्म ध्यान करना चाहिए और वह धर्म ध्यान करने का विचार कहाँ से आएगा? जब ये गाथाएँ सामने होंगी। जहाँ जंगलों में, अरण्य में, एकान्त स्थानों में, ऐसे पशु अनेक प्रकार से अपने दुःखों को सहन करते रात्रि व्यतीत कर रहे हैं, वहाँ हम उनके लिए कुछ कर पाएँ या न कर पाएँ लेकिन अपने लिए यह सोच सकते हैं कि हमें इस तरह की रात्रियों में, ऐसे कर्म बन्ध न हो, जो हमें इस तरह से तिर्यच पर्याय में ले जाएँ। तब क्या होगा? जागृति आएगी। रात्रि में ठण्ड के समय पर ऐसा होता है कि नींद आती नहीं है, आप जबरदस्ती नींद लेते हैं। जैसे किसी बच्चे को अगर नींद नहीं आ रही है तो उसके लिए एक गर्मी दी जाती है और गर्मी जहाँ मिलेगी, वहाँ नींद अपने आप आने लगेगी। अपनी नींद, जो थकान के कारण से आई है, वह तो इतनी आएगी कि वह चार घण्टे में आपको fresh कर देगी, बहुत-बहुत पाँच घण्टे में आपको fresh कर देगी, खड़ा कर देगी। बस! बैठ जाओ अब आप। अब क्या करें? रात्रि तो बहुत बड़ी है। अब वह नींद जो आप लेंगे और नींद लेने के लिए अब आप क्या करेंगे? अब आपको गर्मी चाहिए तो गर्मी चाहने के लिए अब आपको गरम-गरम चीजें, गरम-गरम वस्त्र, गरम-गरम आपको साधन सामने चाहिए। वे जब आपके सामने होंगे तो फिर आप पड़े रहेंगे।

प्रमाद ही आपके लिए दुःख का कारण बनेगा

गर्मी से नींद आने लग जाती है। अगर हम जबरदस्ती भी अपने लिए गर्मी देंगे तो वह नींद आने लगेगी। लेकिन वह नींद अब आना नहीं चाह रही है, अब आप जबरदस्ती बस पड़े रहना चाहते हैं। यह जो आपका प्रमाद है, यह प्रमाद ही आपके लिए दुःख का कारण बनेगा। हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे सामने दो चीजें होती हैं- एक सुखद चीजें होती हैं जो हमें सुख देने वाली होती है और एक हितकारी चीजें होती है जो हमारा हित करने वाली होती हैं। कौन-सी दो चीजें? एक सुखद और एक हितकर, दो चीजें होती हैं।

सुखद या हितकारी? निर्णय आपका

सुखद चीजों में हमें सुख मिलता है और हर सुखद चीज हमें शुरुआत में सुख देती है लेकिन बाद में उसके परिणाम हमें दुःख के रूप में भोगने पड़ते हैं। हितकारी चीज के साथ क्या होता है? हितकारी चीज जो होगी वह आपको बड़ी कठिन साधना के साथ में शुरू-शुरू में थोड़ा-सा दुःख देगी लेकिन बाद में सुख देने वाली होगी। यह निर्णय आपको करना होता है कि हमें सुखद चीजों के साथ जीना है कि हितकारी चीजों के साथ जीना है। हमें अपने जीवन में सुख का समय ज्यादा देखना है कि हित का समय ज्यादा देखना है, यह निर्णय किसके ऊपर है? वह आपके ऊपर है। सुखद क्या है? नींद खुल गई, नींद नहीं आ रही है फिर भी जबरदस्ती कम्बल मुँह के ऊपर डाल लिया, रजाई डाल ली, फिर भी जबरदस्ती सो गए। नहीं आ रही है नींद, थोड़ी-सी ठण्डी लग रही है, फिर बीच में चाय पी ली, रात में फिर उठ गए, फिर खा लिया, नींद आ जाए, यह क्या है? यह आपके लिए बड़ा सुखकर लग रहा है महाराज! सोने का जो मजा है, वह आप क्या जानो? आपके पास न बिस्तर हैं, न आपके पास वस्त्र हैं, आपके जीवन में तो सोने का भी आनन्द नहीं है।

सुखकर का भविष्य क्या?

जो सुखकर लगता है, जो सुखद है, वह आपके लिए अभी सुखकर लग रहा है लेकिन उसका भविष्य क्या है? आचार्य कहते हैं...यह भविष्य हो सकता है। जब उस पर्याय में पहुँचे तो वहाँ पर भी अब क्या मिलेगा? वहाँ पर वही मिलेगा जो इस पर्याय में आपने चाहा, बस नींद चाही। अब देखो शूकर के बच्चे होते हैं, कुत्तों के पिल्ले होते हैं, बस! सोते ही रहते हैं, सोते ही रहते हैं और उस ठण्ड में सोते-सोते ही मर जाते हैं। बड़े भी अगर हो जाते हैं, चाहे वह कुत्ते हो, चाहे शूकर हो, चाहे वह कोई भी और गाय के बछड़े वगैरह हो, बड़े होने के बावजूद भी वह सोने में ही अपना समय निकालने की कोशिश करते हैं। वह उनकी मजबूरी होती है कि उन्हें उधर घूमना पड़ता है कि भ्रमण करना पड़ता है लेकिन अगर उन्हें मौका मिल जाए तो वे एकान्त चाहते हैं। उन्हें बस मिल जाए कि यहाँ कोई आसपास न हो और स्थान सुरक्षित हो। यह जानवर की सबसे बड़ी संज्ञा होती है, निद्रा को एक संज्ञा के रूप में कहा गया है। यह निद्रा भी अपनी एक आदत होती है, एक संज्ञा होती है और इस अगर संज्ञा को नहीं जीतते हैं तो आचार्य कहते हैं...यह भविष्य सामने आ सकता है।

हितकर का चुनाव करें

ऐसा भविष्य कब आता है? जब हम सुखद का चुनाव करते हैं, सुखद चीजों का निर्णय ले लेते हैं। हमें सुख मिले और हम हितकर को भूल जाते हैं। जबकि हमें क्या सोचना चाहिए? हितकर चीजों का चुनाव करना चाहिए, हितकर चीजों के लिए हमें निर्णय लेना चाहिए। हितकर चीजों के बारे में सोचना चाहिए। हमारे लिए हितकर क्या है? अगर हम उस ठण्ड में भी, रजाई के बीच में भी बैठकर के, णमोकार का जाप करने लग जाएँ, **ओं अर्ह नमः**, का जाप करने लग जाएँ और उस रजाई में बैठकर के भी हम, मन ही मन इन अरिहन्त भगवान का ध्यान करने लग जाएँ और अगर चलो अरिहन्त का ध्यान भी न आए तो इन तिर्यच गति के दुःखों का ध्यान करने लग जाएँ, क्या चला जाएगा आपका? महाराज! सोने का मजा चला जाएगा। अब वह सोने का मजा आपके साथ कितना रहेगा? कभी आपने ऐसा किया है कि ठण्ड की रातों में बैठकर के कभी हम सोचे, मुनि महाराज कैसे ठण्ड में रात्रि व्यतीत करते हैं? तिर्यच कैसे ठण्ड में रात्रि व्यतीत करते हैं? जिनके पास में साधन नहीं होते हैं वे कैसे रात्रि व्यतीत करते हैं? हे भगवन्! इनको ये जो दुःख मिले हैं, ये दुःख कहीं हमारी आत्मा को न मिल जाएँ। इसलिए भी जाप कर सकते हैं और अगर वह दुःख आपको उस समय पर याद आ जाएँ तो उन दुःखों से भी आपके अन्दर एक जागृति आ सकती है। नींद चली जाएगी लेकिन आप नींद को भगाना नहीं चाहते। धर्म ध्यान करने के लिए रात्रियाँ मिलती हैं और वह धर्म ध्यान अगर होता है, तो ही यह दुःखों से बचने का, सामने एक मौका आता है।

कुटिलता से तिर्यच गति की प्राप्ति

राजा श्रेणिक बहुत दिनों से आपके सामने नहीं आए। ये कुटिलताएँ कई बार मन के अन्दर आ जाती हैं और इन कुटिलताओं के साथ में जीवन आपके साथ निकलता चला जाता है और आप देखेंगे कि इन कुटिलताओं में भी, बड़े-बड़े राजा बह जाते हैं। तिर्यच गति की प्राप्ति किससे होती है? ये कुटिलताएँ, मन की कुटिलताएँ! आपको बताया गया था कि राजा श्रेणिक ने अपने जीवन में जब जैन धर्म के बारे में सीखा, जैन मुनियों को देखा तो उसके बावजूद भी फिर से एक बार उनके मन में विचलन हो गया, इतना बताया था आपको।



राजा श्रेणिक द्वारा जैन मुनियों की परीक्षा

बौद्धों के कहने से उन राजा के मन में फिर से विचार आ गया कि हम जैन मुनियों की और परीक्षा करते हैं। उन्होंने क्या किया? घर में जहाँ पर जैन मुनियों को लाकर के उन्हें आहार आदि कराया जाता है, उस स्थान पर उन्होंने कुछ गड्ढा खोद कर के वहाँ पर अपवित्र, जो हड्डी वगैरह होती है ऐसी वस्तुएँ वहाँ पर भरवा दी। अब यह प्रक्रिया उस समय की है, जिस समय पर अवधिज्ञानी हुआ करते थे, प्रत्यक्ष ज्ञानी मुनि महाराज हुआ करते थे। आज के समय के परीक्षा के तरीके नहीं हैं। ये उस समय की परीक्षा के तरीके हैं। अब उन्होंने देखा कि यह चलना बहुत कहा करती है कि हमारे मुनि महाराज दिव्यज्ञानी होते हैं, इस भव की भी बात जान लेते हैं, उस भव की भी बात जान लेते हैं। चलो एक बार और देखते हैं कि ये हमारी बात तो जान लेते हैं, लेकिन यहाँ आस-पास भी कुछ है, उसकी भी बात जानते कि नहीं जानते? यह सोच करके उन्होंने क्या किया? कि जो रसोईघर था उसके आस-पास, उस रसोईघर के किनारों पर उन्होंने इस तरह का अपवित्र

वातावरण तैयार कर दिया।

चेलना का राजा श्रेणिक पर शक

यह चलन को पता पड़ गया और उन्होंने उस स्थान को ढांक दिया। राजा श्रेणिक ने अपनी रानी चेलना से कहा कि देखो कभी भी अगर मुनि महाराज आएँ तो उन्हें पड़गाहन जरूर करना, उनको आहार जरूर कराना और मुझे बता देना मैं उनको आहार कराऊँगा। जब रानी चेलना ने यह बात राजा के मुँह से सुनी तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और उसे लगा कि ये अभी-भी कुछ थोड़ा-सा मन में शंका रखे हुए हैं, अभी भी यह परीक्षा लेने के विचार में हैं। संयोग से एक दिन तीन मुनि महाराज उनके घर के सामने आए। रानी चेलना को पता पड़ा, अब वह सोच में पड़ी कि इन मुनि महाराज को हम कैसे ज्ञात कराएँ? कि यह राजा परीक्षा लेना चाहता है और इनकी परीक्षा में कहीं यह जैन धर्म को बिल्कुल ही न छोड़ दे, ऐसा कुछ न हो जाए।

रानी चेलना की विवेकशीलता

ऐसा ज्ञान करने के लिए उसने मन में विचार किया कि मुनि महाराज के पास में मतिज्ञान होता है, श्रुतज्ञान होता है। किन्हीं-किन्हीं के पास अवधिज्ञान भी होता है और राजा परीक्षा ले रहा है अवधिज्ञानियों की। मुनि महाराज अगर मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी हैं तो वे जो चीजें अवधिज्ञान से दिखाई देती हैं वे दिखाई देंगी नहीं। उन मुनि महाराज को आहार के लिए, जब सामने वे आ रहे थे तो रानी चेलना ने उनके सामने ऐसी तीन उँगलियाँ की। उन तीन उँगलियों को देख कर के उन मुनि महाराज ने समझ लिया कि यह क्या कहना चाह रही है?

तीन गुप्तियाँ होंगी तो तीसरा ज्ञान भी होगा

मतलब यह था...अगर आपके पास में तीन गुप्तियाँ होंगी तो तीसरा ज्ञान भी होगा। जिसे कहते हैं... मनोगुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति। अवधिज्ञान होगा तो आप यह देख पाओगे कि यहाँ राजा ने क्या कर रखा है? और अवधिज्ञान नहीं होगा तो ये सब चीजें देखने में आएँगी नहीं। मुनि महाराज तीन आए और तीनों को उसने तीन उँगलियाँ करके दिखाई और तीनों मुनि महाराज लौट गए, उसको दो उँगलियाँ दिखा करके। क्या दिखा कर के? दो उँगलियाँ दिखा कर के मतलब हमारे पास में तीन गुप्तियाँ नहीं हैं, दो ही गुप्तियाँ हैं। या यूँ कह लो कि हमारे पास में तीन ज्ञान नहीं हैं, दो ज्ञान हैं...हम मतिज्ञान और श्रुतज्ञान वाले हैं। जब तुम्हें आहार कराना हो तो कराओ, नहीं कराना तो मैं जा रहा हूँ। तीन मुनि महाराज आए और लौट गए।

राजा श्रेणिक के मन की जिज्ञासा

फिर एक मुनि महाराज आए और उस समय पर फिर उसने तीन उँगलियाँ दिखाई तो मुनि महाराज पड़ग गए, उनको अवधिज्ञान था। वे पड़ग करके, जब वह अपने स्थान तक पहुँचे तो वहाँ पहुँच कर के लौट आए। जब लौट आए तो लौटते समय राजा श्रेणिक ने पूछ लिया...महाराज! क्या हो गया? महाराज ने कहा... कुछ नहीं! आपका यह जो स्थान था वह अपवित्र था। इस कारण से वह हमारे आहार के योग्य नहीं था, हम

इसलिए लौट आए। राजा श्रेणिक को यह तो पता पड़ गया कि मुनि महाराज को, यह स्थान हमारा ज्ञात हो गया लेकिन उसे यह समझ नहीं आया कि वे जो तीन आए थे, वे कैसे लौट गए? वह नहीं समझ पाया तो वह एक-एक करके उन तीनों मुनि महाराज के पास गया। अब मैं आपको उन मुनि महाराज की बात बता रहा हूँ जिन्होंने यह कहा था कि मेरे पास काय गुप्ति नहीं है।

तांत्रिक की मंत्र सिद्धि

वह राजा उनसे पूछता है कि आपके पास काय गुप्ति नहीं है, इसका मतलब क्या है? काय गुप्ति कैसे नहीं है? मुनि महाराज उससे कहते हैं... मैं एक बार शमशान में तपस्या कर रहा था, लेटा था। शवासन लगा कर के मैं तप कर रहा था और उसी समय पर एक मंत्रवादी आया। जो मंत्र-तंत्रों की सिद्धि करते हैं, ऐसा एक व्यक्ति आया और उस व्यक्ति ने आकर के देखा कि यहाँ पर कोई भी पूरा शव चाहिए था उसको। मंत्र सिद्धि करने के लिए, शव चाहिए पड़ते हैं, कपाल चाहिए पड़ते हैं तो वह उसको ढूँढने के लिए वहाँ आया। उसने देखा कि यहाँ पर, यह शव अच्छा पड़ा हुआ है। कौन-सा? मुनि महाराज का। उसने क्या किया? वह जो सिद्धि का तरीका होता है कि किसी की खोपड़ी कहीं से लेकर के आया और उसने वह खोपड़ी लगा कर के, उस शव के ऊपर, सिर के ऊपर वह खोपड़ी लगा दी। वह एक सिद्धि करने का तरीका होता है कि उसमें वह कोई चीज बना रहा है... मानो खीर बना रहा है। इस सिद्धि करने के तरह-तरह के, तंत्र-मंत्र के तरीके होते हैं। अब वह उस तरीके से, उस खोपड़ी में क्या बना रहा है? कोई भी चीज रांध रहा है, खीर बना रहा है और उसके लिए, बनाने के लिए उसने उसमें आग लगा दी। ऐसा करने से उसे मंत्र सिद्धि होती।

मुनि महाराज की काय गुप्ति नहीं रही

अब क्या हुआ? मुनि महाराज थे, लेटे हुए थे। उसने क्या समझा? कि यह शव पड़ा हुआ है। एक खोपड़ी उनकी खोपड़ी के आगे लगाकर के उसका बर्तन बना दिया और उसने आग लगा कर के उसमें अपनी चीजें बनाना शुरू कर दिया। रात्रि है, अन्धकार है, अपना मंत्र पढ़ रहा है... 'ओं फट स्वाहा, ओं फट स्वाहा'। अब इधर क्या हुआ? अब मुनि महाराज थे, अब क्या करें? उठ कर भाग नहीं सकते, लेटे हैं तो लेटे हैं। अब उसने आग लगा दी और वह आग लगते-लगते अब खोपड़ी के पास तक आ गई। यानी उस खोपड़ी में जलते-जलते वह अपनी खोपड़ी तक आ गई और उस आग में उनका जब सिर जलने लग गया तो अपने आप वह जो हण्डी उसके ऊपर रखी हुई थी, वह सिर के हिलने से, वह खोपड़ी के हिलने से, वह सब हिल गया और वह गिर गई। इधर वह खोपड़ी हिल गई, हण्डी गिर गई... जैसे ही वह गिरी तो वह तो दौड़ा, भागा क्योंकि उसे लगा कि कोई विद्या सिद्ध हो गई, कोई भूत आ गया और डर के मारे वह तो भागा।

काय गुप्ति यानी विपत्ति के समय भी तन को नहीं हिलाना

इधर क्या हुआ? यह अधजली अवस्था में उधर रात्रि में पड़े रहे। सुबह हो गई और सुबह होने के बाद में जब लोगों ने इधर-उधर जाकर के देखा और किसी तरह से पता पड़ा कि ऐसे एक मुनि महाराज वहाँ पर, जिनका सिर जल रहा है, ऐसी स्थिति में पड़े हुए हैं तो फिर वहाँ के लोगों ने आकर के देखा। आकर के देखा

तो वास्तव में मुनि महाराज जीवित थे, उनका सिर जल रहा था और वे मुनि महाराज को उठा कर के लाए और उनकी चिकित्सा की और उनको अच्छे ढंग से, उनकी सेवा करने के लिए तत्पर हो गए। अब यह क्या हुआ? यह काय गुप्ति का अभाव हो गया। काय गुप्ति समझ रहे हो? कुछ भी हो जाए शरीर हिलना नहीं चाहिए। कई बार, इस तरीके की गुप्तियों के अभाव होने पर क्या होता है? जो अवधि-ज्ञान आदि बड़ी-बड़ी ऋद्धियाँ होनी चाहिए, वे नहीं हो पाती।

विपत्ति के समय मुनि महाराज का चिन्तन

अब उस समय पर जब यह मुनि महाराज जल रहे थे और उस समय पर जब यह अपने उस ध्यान में थे तो वह क्या विचार कर रहे थे? वह विचार यही था, जो यहाँ पर लिखा हुआ है। क्या विचार कर रहे थे? मेरा सिर यह जला रहा है, मेरी खोपड़ी में आग लग रही और इस तरह की आग मैं पहले भी कई बार सहन कर चुका हूँ, जब मैं तिर्यच था, जब मैं नारकी था....यह ज्ञान हमेशा काम आता है। कष्ट के समय पर अगर आपको कष्ट सहना है, समता धारण करना है, तो यह ज्ञान काम आएगा और यह ज्ञान जितना श्रावकों के काम में नहीं आता, उससे ज्यादा मुनि महाराजों के काम आता है, साधुओं के काम आता है, व्रतियों के काम आता है, त्यागियों के काम आता है।

श्रावक सुख चाहता है और साधु हित

श्रावकों को क्या पड़ी? श्रावक तो अपना प्रतिकार किसी न किसी तरह से कर ही लेता है। उसे तो सुख चाहिए, हित नहीं चाहिए और साधु को क्या चाहिए? हित चाहिए, सुख नहीं चाहिए। साधु को अपनी आत्मा का हित दिखता है, त्यागियों को अपनी आत्मा का हित दिखता है। इसलिए जब उनके सामने कोई दुःखद स्थिति बनती है, तो उस समय पर भी वे हित का ही विचार करते हैं। अगर हम इस स्थिति में इस दुःख को सहन नहीं करेंगे तो यह दुःख हमारे लिए कभी भी छूटेगा नहीं। इसलिए इस दुःख को सहन करना है और सहन करने के लिए क्या करना है? मन में ज्ञान आना चाहिए, विचार आना चाहिए।

विपत्ति के समय क्या विचार करें?

विचार कहाँ से आएगा? यह यही विचार होते हैं... तुमने तिर्यच पर्याय में अनन्त बार ऐसे दुःखों को सहन करके मरण किया है, इसलिए एक बार जाग्रत होकर के तुम इन दुःखों को सहन कर लोगे तो आगे के लिए तुम्हें कभी भी ऐसे दुःखों को सहन करना नहीं पड़ेगा। समता इसी से आती है...ऐसी समता भाव का परिणाम आपके लिए, चाहे ठण्ड हो, चाहे गर्मी हो, किसी भी स्थिति में बन सकता है। अगर ठण्ड में दुःख होते हैं तो गर्मी में भी दुःख होते हैं।

गाथा: 81

तिर्यचों के दुःखों का पुनः दिग्दर्शन

गिम्हायव-संतत्तो, रण्णे छुहिओ पिवासिओ बहुसो।
संपत्तो तिरियभवे, मरणदुहं बहु विसूरंतो ॥81॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्! तुम' (तिरिय भवे) तिर्यच के, भव में (रण्णे) अरण्य यानी जंगल में (गिम्हा-आयव-संतत्तो) ग्रीष्मऋतु के, आतप यानी गर्मी से, संतप्त हुए (बहुसो) अनेक बार (छुहिओ) क्षुधित यानी भूखे रहते हुए 'तथा' (पिवासिओ) पिपासित यानी प्यासे रहते हुए 'और' (बहु) बहुत (विसूरंतो) खेद करते हुए 'अन्त में' (मरण-दुहं) मरण के, दुःख को (संपत्तो) प्राप्त हुए हो 'इस बात का गहराई से चिंतन करो' ॥81॥

ग्रीष्मकाल के दुःख

ग्रीष्म में आतप से तप्त होकर के भी अरण्य में प्यास के साथ, भूख के साथ, बहुत प्रकार से मरण होता है। मरण के दुःखों को वह जीव प्राप्त करता है। इस तरह से भी तिर्यच गति में अनेक बार, गर्मियों में भी, तीव्र गर्मी में भी, भूख और प्यास के दुःख से मृत्यु होती है। यह भी कहा जा रहा है अगली गाथा में...यानी हमेशा मृत्यु होगी तो कैसे होगी? यह प्रकृतिकृत दुःख कहलाते हैं और इन प्रकृतिकृत दुःखों में तिर्यच जीव ऐसे होते हैं, जो असहाय होते हैं, उन्हें हमेशा भोजन-पानी, सोने आदि की व्यवस्थाएँ नहीं मिलती हैं इसलिए वे मरण करते हैं।

दूसरों के दुःखों का चिन्तन करना धर्मध्यान है

इस तरह से जब वह दुःखपूर्वक मरण को प्राप्त होते हैं तो उनकी वह वेदना, आचार्य कहते हैं...अगर हम आज जागृति के साथ याद करेंगे तो हम उन दुःखों से आगामी समय में अपने आप को बचा पाएँगे। गर्मी में दुःख हो तो गर्मी के समय पर याद करना और ठण्ड के समय पर दुःख हो तो ठण्ड के समय पर याद करना। गर्मी के समय पर भी अनेक तरह की पीड़ाएँ होती हैं, वे पीड़ाएँ आपको दिन में होंगी और ठण्ड के समय पर अगर कोई पीड़ा होगी तो वह रात में बढ़ेगी। अगर आपके लिए वह रात्रि व्यतीत नहीं हो रही है तो इस तरह से धर्म ध्यान करना। यह धर्म ध्यान करने का सरल उपाय है। दूसरे दुःखी जीवों के दुःख का चिन्तन करना... यह क्या है? यह धर्म ध्यान है। जानते हो धर्मध्यान कितने प्रकार का होता है? चार प्रकार का होता है। कौन-कौन-सा? आज्ञा-विचय धर्म ध्यान, अपाय-विचय धर्म ध्यान, विपाक-विचय धर्म ध्यान, और संस्थान-विचय धर्म ध्यान।

विचय यानी चिन्तन करना

अब यह विचय क्या है? जो सब में एक-एक शब्द डला हुआ है- विचय। विचय यानी चिन्तन करना। जिस समय पर आपका मन, जिस तरह की चीज का चिन्तन करेगा, उसी तरह से आपके ध्यान का भाव आएगा कि वह ध्यान आपके लिए कैसा हो रहा है? अगर आप भगवान की आज्ञा का चिन्तन करते हैं तो आज्ञा-विचय धर्म ध्यान है। अगर आप भगवान के द्वारा बताए गए, इन जीवों के दुःखों का चिन्तन करते हैं तो यह अपाय-विचय धर्म ध्यान कहलाता है कि जीव किस-किस तरह से कहाँ-कहाँ दुःख को प्राप्त है? इस चिन्तन का नाम क्या है? अपाय-विचय धर्म ध्यान। दूसरों के दुःख का चिन्तन करना, यह दुःख, हे भगवन्! जीव कैसे सहन करते हैं? आपकी नींद नहीं आती है, आप डर जाते हो, नींद की गोलियाँ खाते हो, वह सब आर्त-ध्यान होता है।

नींद नहीं आना-एक अच्छी opportunity

अगर नींद नहीं आती है तो उस नींद नहीं आने को भी आप एक अच्छी opportunity मान सकते हो। नींद नहीं आ रही है, क्या करें? धर्म ध्यान करो। तिर्यच गति में जो दुःख मिल रहे हैं, उनका चिन्तन करो। नरक गति में जो दुःख मिलते हैं, उनका चिन्तन करो। मनुष्य गति में जो दुःख मिल रहे हैं, उनका चिन्तन करो। ऐसा चिन्तन करने से क्या होगा? जो आपका दुःख है वह दुःख आप भूल जाओगे। यह **अपाय-विचय धर्म ध्यान** है और इस अपाय-विचय धर्म ध्यान में अगर यह भी आ जाए कि भाई! ये दुःख मिलते हैं तो कैसे मिलते हैं? जीवों को उनके कर्म से मिलते हैं।

आर्तध्यान न आए, धर्म ध्यान आ जाए

उनके भी जो कर्म बन्ध हुए तो कैसे हुए? वह कर्म बन्ध इसी तरह के आर्तध्यान से हुए, प्रमाद से हुए, जिसके कारण से वह कर्म बन्ध आगे जाकर के इस तरह से फल देते हैं। अपने मन में आर्तध्यान न आए, धर्म ध्यान आ जाए। इसके लिए सरल-सा उपाय है कि आप दूसरे के दुःखों के बारे में सोचना शुरू कर दे। विचय मतलब चिन्तन करना शुरू कर दे, सोचना शुरू कर दे। आपकी नींद नहीं आ रही है, धर्म ध्यान से समय निकलेगा, पुण्य बन्ध होगा, आपकी नींद समय पर आगे के समय में आने लग जाएगी। लेकिन नींद की गोली खा कर के सोओगे तो क्या होगा? आर्तध्यान में समय गुजरेगा, आगे-आगे बेहोशी के क्षण बढ़ेंगे और धीरे-धीरे मूर्छा आएगी और मूर्छा में ही मरण हो जाएगा। क्या चाहते हो? यह आपको निर्णय करना है। अगर हमें नींद नहीं आ रही है, थोड़ा-सा हमें कष्ट होगा, नींद नहीं आ रही है। लेकिन अपने मन को अच्छा बनाने के लिए हम हितकर चीजों का चिन्तन करें।

धर्म ध्यान में दुःखों का चिन्तन

हितकारी क्या है? अरे भाई! सोने से ज्यादा हितकारी है- धर्म ध्यान करना और धर्म ध्यान करने का मतलब जो हमें कुछ भी नहीं आता है, तो कोई बात नहीं। हम इसी दुःख का चिन्तन करें कि बहुत से लोग नींद रात्रि में ले ही नहीं पाते हैं, इन दुःखों के कारण से। हमारे लिए तो कोई ऐसा दुःख नहीं है कि हम ठण्ड से या गर्मी

से परेशान हैं। हमारी अपनी कोई अगर नींद नहीं आने का कोई दुःख है, तो इस दुःख को भी हम धर्म ध्यान में बदल सकते हैं। यह सोच करके कि लोग तो इसलिए नहीं सो पाते हैं कि उन्हें भूख लगी होती है, प्यास लगी होती है, ठण्ड सहन करनी पड़ती है, गर्मी सहन करनी पड़ती है। लेकिन हमें ऐसा कुछ नहीं हो रहा है, हम तो कम से कम धर्म ध्यान कर सकते हैं। ऐसे लोग तो तड़प-तड़प के मर जाते हैं, धर्म ध्यान भी नहीं कर सकते हैं। यह विचार मन में आ सकता है...कब? जब हमें लग रहा हो कि हमें अपना हित करना है। इसलिए हितकर चीजों की ओर हमारी दृष्टि होगी तो हम सुख की ओर नहीं जाएंगे और उसमें अपना हित कर ले जाएंगे। अगर हमें थोड़ा-सा भी उसमें दुःख हो गया...क्या दुःख होगा? नींद नहीं आई, कोई बात नहीं। ऐसा कोई भी मनुष्य का शरीर नहीं होता, अगर वह थका हुआ हो उसको नींद न आए।

एक बार धर्म ध्यान करके देखो

आप एक बार धर्म ध्यान करके देखो और धर्म ध्यान से आप अपने अन्दर एक थकान महसूस करो और वह धर्म ध्यान करते-करते, आपके लिए अपने-आप लगने लग जाएगा कि हमें नींद आ रही है और आपको नींद आ जाएगी। यह सोचते-सोचते कि नींद नहीं आ रही है, नींद नहीं आ रही है, यह क्या है? यह आर्त ध्यान है और यह सोच लेना कि नींद नहीं आ रही है, अच्छी बात है। क्या करना है? धर्म ध्यान करना है। **‘जमो अरहंताणं, जमो सिद्धाणं’** करना है। कुछ नहीं आता है, इतना तो आता है। इसमें मन न लगे तो जीव, जो इधर-उधर दुःखी जीव हैं, उनके बारे में चिन्तन करना। यह जैसे ही चिन्तन होगा, आपका मन स्वस्थ हो जाएगा और अपने आप साता का उदय होगा तो निद्रा आ जाएगी। क्योंकि धर्म ध्यान करोगे तो साता के परिणाम होंगे, साता के परिणाम होंगे तो निद्रा के परिणाम आ जाएंगे। निद्रा हमेशा साता वेदनीय के उदय के साथ आती है, ऐसा सिद्धान्त कहता है। यह सिद्धान्त आपको पता नहीं होते। इसलिए जो लोग चिल्लाते रहेंगे.... नींद नहीं आ रही, इधर-उधर दौड़ रहे हैं, इधर-उधर भाग रहे हैं, यह खा रहे हैं, वह गोलियाँ खा रहे हैं, वे आर्त ध्यान कर रहे हैं, दुःख में मर रहे हैं और दुःख में ही मरेंगे।

आर्तध्यान अर्थात् दुःख का ध्यान और धर्म ध्यान अर्थात् हित का ध्यान

इसलिए मन को स्वस्थ बनाना है तो क्या करना? धर्म ध्यान करना। मन की स्वस्थता आर्तध्यान से नहीं होती है। आर्तध्यान यानी दुःख का ध्यान और धर्म ध्यान यानी हित का ध्यान। सुख का ध्यान अभी नहीं कहेंगे। जब आप हितकारी चीज में लगोगे तो आगे चलकर के, मतलब उस दिन आपको भले ही नींद न आए लेकिन अगले दिन नींद आएगी। दो दिन न आए तीसरे दिन आएगी। सुखद आपको मिलेगा लेकिन पहले आपको थोड़ा-सा दुःख महसूस करना, दुःख झेलना पड़ेगा। अगर धर्म ध्यान के साथ थोड़ा-सा दुःख झेल करके, लम्बे समय तक हम सुखी रहना चाहते हैं तो हम समझते हैं...यह ज्यादा अच्छी चीज है। इस विकल्प को चुनना ज्यादा अच्छा है, बजाय इसके कि हम तत्काल में नींद की गोलियाँ खा कर के, सुखी होकर के, अपने को आगे के लिए भी नींद में डालना चाहते हैं और आर्तध्यान में डाल कर के, अपने जीवन को दुःखी बनाना चाहते हैं। यह ज्यादा अच्छा विकल्प नहीं होगा।

समता के साथ कष्ट का समय निकालना होता है

अच्छा विकल्प क्या होगा? थोड़ा-सा रोग में भी, कष्ट में भी, धर्म ध्यान करके उस समय को निकालना, समता के साथ में अपने अन्दर धर्म ध्यान के भाव से साता का बन्ध करना, यह ज्यादा अच्छा विकल्प है। इसलिए हितकारी चीजों में प्रारम्भ में कैसा लगेगा? कष्ट लगेगा। घर के सब लोग तो सो रहे हैं, खर्राटों की आवाजें आ रही हैं, एक हम ही है कि नींद भी नसीब नहीं है। अब बैठ गए... 'णमोकार का जाप करने के लिए, बैठ गए धर्म ध्यान करने के लिए' ऐसा लगेगा कि देखो! यह तो, सब सुख में है और हम ही दुःख में हैं। अब यह बुद्धि आपकी थोड़ी-सी बदल जाए। यह आपका दुःख नहीं है, यह आप दुःख को जीत रहे हैं और आगे के लिए अच्छे सुख की तैयारी कर रहे हैं। यह आप अपना हित कर रहे हैं, यह अगर विचार आएगा तो आप धर्म ध्यान कर पाएंगे अन्यथा जीवन आर्तध्यान में ही गुजरता है। यह गृहस्थों के लिए बता रहा हूँ, थोड़ा-थोड़ा-सा।

मुनि महाराज का चिन्तन

मुनि महाराज देखो! शमशान में पड़े हैं, जल रहे हैं। क्या चिन्तन कर रहे हैं? और कोई उन्हें सिद्धान्त ग्रन्थों का स्मरण नहीं आएगा। बस! यही चिन्तन होता है common, जो सब काम में आता है। जिस समय पर जल रहे हैं, अग्नि लग रही है, यही विचार करेंगे.... तिर्यच गति में कितनी बार हम जल-जल के मरे हैं? जंगलों में आग लग जाती है कोई बचाने वाला नहीं होता है, कितने पशु जिन्दा जल जाते हैं? हम भी उनमें इसी तरह से जलकर मरे, तड़फे। लेकिन आज हमारे पास में बुद्धि है तो हम अपने अन्दर की क्षमता को देखें। हमारे अन्दर कितनी दृढ़ता है, कितनी समता है, ऐसा विचार करते हुए उस अग्नि को सहन कर रहे हैं। भले ही वह खोपड़ी हिल गई, हिल गई तो हिल गई, हमने नहीं हिलाई, अपने आप हिल गई।

स्त्री पर्याय में एक स्वाभाविक भय बना रहता है

कभी-कभी ऐसा हो जाता है न! जैसे एकदम से, आपके सामने कोई रबड़ की छिपकली डाल दे एकदम से। रबड़ की छिपकली आती न, अगर एकदम से आपके सामने, पूरी सभा एकदम से क्षुब्ध हो जाएगी। गलती से किसी के ऊपर आ गई तो कोई हिलना नहीं भी चाह रहा तो भी हिल जाएगा। लेकिन अगर आप थोड़ी समझदारी के साथ बैठे रहें, अगर आपको पता हो कि यह रबड़ की छिपकली है, तो आप बैठे रह सकते हैं। उसके लिए भी साहस चाहिए, लड़कियों में वह साहस मुश्किल ही है। इसलिए कहा जाता है... **'स्त्रियों को मोक्ष नहीं होता'** क्यों नहीं होता? क्योंकि उनमें इस तरीके का डर बहुत भरा रहता है। इन स्त्रियों को अपने आप इस तरीके के डर के भाव बने रहते हैं। पुरुषों में एक साहस होता है कि वह उस डर को समझ सकते हैं, उसको झेल सकते हैं। स्त्री को पता भी होगा कि छिपकली है, तो उसको नाम से ही उसको डर लगेगा। उसको पता भी होगा कि रबड़ की है, खाएगी नहीं तो भी उसको देख कर के उसे गिलगिली आएगी और यह ताकत किसमें आ जाती है? यह पुरुष में एक ताकत आती है कि वह इस तरह से अपने मन को सम्भाल सकता है।

यह भी एक बहुत बड़ा कारण है कि स्त्री में भय रहता है, बहुत ज्यादा भय होता है। एक डरावनापन स्त्री में बहुत ज्यादा होता है। बहुत जल्दी डरने की एक आदत जो होती है, यह आदत भी स्त्री के अन्दर ध्यान नहीं करने देती है, एकाग्रता नहीं बढ़ने देती है। इस कारण से स्त्रियों को शुक्ल ध्यान नहीं होते और शुक्ल ध्यान नहीं होंगे तो केवलज्ञान नहीं होगा, मोक्ष तो दूर है। यह मुख्य कारण है। अब यह बात हर स्त्री को स्वीकार करनी चाहिए कि मेरे अन्दर इतनी एकाग्रता नहीं आ सकती, जितनी एकाग्रता पुरुष में आ जाती है। अगर यह स्वीकार्यता आ गई तो धर्म ध्यान होगा और यह स्वीकार्यता नहीं आएगी तो आपको आज्ञा विचय नाम का भी धर्म ध्यान नहीं होगा क्योंकि यह आज्ञा यानी उपदेश है... आज्ञा यानी भगवान के द्वारा बताई हुई बात है कि स्त्रियों को मोक्ष नहीं होता है। अब स्त्रियाँ भी केवल इस बात का चिन्तन करे कि हमको मोक्ष क्यों नहीं होता है? जैसा भगवान ने कहा है, वैसा चिन्तन करेंगे, तो इसका नाम है- **आज्ञा विचय धर्म ध्यान**। अब देखो धर्म ध्यान कितना simple है?

आप अपनी कमजोरी के बारे में चिन्तन करें.... मुझे स्त्री पर्याय मिली है, इतना ध्यान मुझे स्त्री पर्याय में कभी नहीं हो सकता। भले ही पंचम काल में किसी को शुक्ल ध्यान नहीं होता लेकिन अगर मैं चौथे काल में भी होती तो भी मुझको शुक्ल ध्यान नहीं हो सकता। इतनी स्त्री पर्याय की विडम्बना है क्योंकि स्त्री पर्याय क्षण-क्षण में भीतर से डरती है। उसके शरीर को लेकर के, उसकी अपनी मानसिकताओं को लेकर के, उसे क्षण-क्षण में डर लगता है, इसलिए उसके अन्दर स्थिरता नहीं आती। ऐसा विचार करना भी धर्म ध्यान है। यह धर्म ध्यान के तरीके हैं, आसान तरीके और यही आसान तरीके आपको बताए जा रहे हैं। इन्हीं आसान तरीकों को अर्ह योग के माध्यम से सिखाया जाता है।

धर्म ध्यान शुरुआत में थोड़ा-सा कठिन लग सकता है, लेकिन सुख तो वास्तव में लम्बे समय के लिए मिलेगा तो किससे मिलेगा? धर्म ध्यान से। इसलिए धर्म ध्यान हितकर है और आर्त ध्यान प्रारम्भ में सुखकर है लेकिन बाद में दुःखकर है। अब चुनाव आपको करना है कि आपको क्या चाहिए? आर्त ध्यान चाहिए कि धर्म ध्यान चाहिए? इन दोनों चीजों की विशेषताओं को देख कर के, अपना मन धर्म ध्यान में, हितकारी चीजों में लगाने की कोशिश करेंगे तो आपका हित होगा।



गाथा: 82

वर्षाऋतु में तिर्यचों को होने वाले दुःखों का वर्णन

वासासु रण्णमज्झे, गिरि-णिज्झरणोदगेहि बुज्झंतो ।
सीयाणिल-डज्झविओ, मओसि तिरियत्तणे बहुसो ॥82॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्! तुम' (तिरियत्तणे) तिर्यचों के भव में (रण्ण-मज्झे) अरण्य यानी जंगल के, मध्य में (वासासु) वर्षाऋतु में (गिरि-णिज्झरण-उदगेहि) पर्वतीय, झरने के प्रवाह, जल के द्वारा (बुज्झंतो) बहाकर ले जाते हुए 'तथा' (सीय-अणिल-डज्झविओ) ठंडी, वायु से, दग्ध हुए (बहुसो) बहुत बार (मओसि) मरे हो 'इसका विचार करो' ॥82॥

वैराग्य शतक की गाथाओं का क्रम चल रहा था, उसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए आज दो गाथाएँ पढ़ते हैं...82 और 83

वासासु रण्णमज्झे, गिरि-णिज्झरणोदगेहि बुज्झंतो ।
सीयाणिल-डज्झविओ, मओसि तिरियत्तणे बहुसो ॥82॥

एवं तिरिय-भवेसु, कीसंतो दुक्ख-सय-सहस्सेहिं ।
वसियो अणंत-खुत्तो, जीवो भीसण-भवारण्णे ॥83॥

तिर्यच गति के दुःखों का वर्णन करते हुए यह 80 से 83 तक की ये चार गाथाएँ हैं जिनमें 2 गाथाओं का वर्णन आप सुन चुके और इन 2 गाथाओं में जो 82 नम्बर की गाथा है, इसमें 'वासासु रण्णमज्झे' यानी वर्षाओं के दिनों में जब जंगलों में जीव रहते हैं तो उन जंगलों में 'गिरि-णिज्झरणोदगेहि बुद्धंतो' पर्वत हैं, झरने हैं। उनके पर्वतों पर बहने वाले जो झरने होते हैं उनके जल से बहुत सारे जीव उसमें डूब जाते हैं। यह 'बुज्झंतो' लिखा है, यह 'बुद्धंतो' समझना चाहिए इसको। ऊपर की गाथाओं में शिशिर ऋतु की यातनाओं का वर्णन हो चुका था, ग्रीष्म ऋतु की यातनाओं का वर्णन हो चुका था।



वर्षा ऋतु में तिर्यच गति के जीवों के दुःख

अब यहाँ पर थोड़ा वर्षा ऋतु की यातना की बात कही जा रही है। यूँ तो हम सब देखते ही रहते हैं, जानते ही रहते हैं लेकिन थोड़ा इत्मीनान से कुछ सोचने का, विचार करने का जो समय मिलता है, वही समय हमारे लिए धर्म ध्यान का समय होता है। उस समय को निकाल पाना, थोड़ी फुर्सत मिलना और फुर्सत से बैठ पाना, इस भागम-भाग की जिन्दगी में से बड़ा कठिन होता है। हमें क्या पड़ी है कि हम दूसरों के बारे में सोचे, दूसरों की चिन्ता करें, दूसरों के दुःखों को अपना दुःख बनाए क्योंकि हर आदमी अपने सुख की इच्छा करता है। दूसरों के दुःख को अपना दुःख बनाने से हमें क्या मिलेगा? हम जैसा चिन्तन करेंगे वैसा हमारे मन में परिणाम आएगा। हम दूसरों के दुःख का विचार करेंगे तो हमारे मन में भी दुःख आएगा। हो सकता है कि किसी के मन में यह विचार भी आए कि अगर हम दुःखी होंगे, दुःख का भाव लाएँगे तो हमारे लिए असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होगा।

दुःख से असातावेदनीय कर्म का आस्रव

यह भी कहा गया है कि अगर हम दुःख का परिणाम रखते हैं, शोक का परिणाम रखते हैं तो हमें असाता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है। **‘दुःख शोक तापाक्रन्दन’** कहा ही गया है। अब यहाँ पर जो हमें तिर्यच गति के दुःख बताए जा रहे हैं इनसे क्या हमारे अन्दर दुःख का परिणाम आता है? और प्रयास तो यही किया जा रहा है कि हमारे अन्दर इन तिर्यच गति के दुःखों से मन में दुःख आए। ये तिर्यच गति के दुःखों को सुनकर के, इनको पढ़ करके, इनका चिन्तन करके आपके मन में दुःख पैदा हो। यानी आपको दुःख भी उत्पन्न कराया जा रहा है, अब हो न हो बात अलग है।

जिनवाणी और गुरु जो कहते हैं, उसे ध्यान से सुनो

यह तो हम कह चुके हैं, पहले सुन ही चुके हैं कि अपन बहुत ढीठ लोग हैं। अपने अन्दर बहुत जल्दी किसी की बातों से कोई फर्क पड़ता नहीं है। खासतौर से जिनवाणी की बातों से तो बहुत जल्दी फर्क पड़ता नहीं। अड़ोस-पड़ोस की बातें सुनकर के तो बहुत जल्दी फर्क पड़ता है। अगर बगल का व्यक्ति कान में कुछ कहता है तो बिल्कुल सत्य भासता है और जब जिनवाणी कुछ कहती है, गुरु कुछ कहते हैं... हाँ! हाँ! सुना तो है, सुनते ही रहते हैं, सुनने के लिए बैठे हैं। ऐसा सोच कर के कुछ भीतर ज्यादा फर्क पड़ता नहीं है। यहाँ पर यह भी विचार आना चाहिए कि जब हमें तिर्यच गति के दुःख बताए जा रहे हैं, अन्य गति के दुःख बताए जा रहे हैं तो इन गतियों के दुःख से हम अगर दुःखी होंगे तो क्या वास्तव में हमारे लिए असातावेदनीय का बन्ध होगा? क्या हमारे इस दुःख के कारण से हमारे परिणाम दुःखी होंगे? हमें दुःख का आस्रव होगा?

तिर्यच गति के दुःखों का चिन्तन संवेग को बढ़ाता है

अगर इन परिणामों से दुःख उत्पन्न होता है तो आचार्य कहते हैं, इससे आपके अन्दर असातावेदनीय का आस्रव नहीं होगा। इससे आपके अन्दर असातावेदनीय जो स्थित है, वह बाहर निकल जाएगी। इससे आपको असातावेदनीय कर्म का होने वाला बन्ध कम हो जाएगा। इससे आपके राग परिणामों में कमी

आएगी तो जो कर्म बन्ध हो रहा है उसमें कमी आ जाएगी। जब हम अपने दुःख की चिन्ता करेंगे तो हमारा दुःख बढ़ता है। अपने आस-पड़ोस के लोगों का अपने परिचितों के दुःख की चिन्ता करते हैं, तो दुःख बढ़ता है। लेकिन जब हम सामान्य रूप से किसी भी गति के जीवों के दुःखों का चिन्तन करते हैं, तो हमारे अन्दर दुःख नहीं बढ़ता, संवेग भाव बढ़ता है। क्या बोलते हैं इसको? संवेग भाव।

संवेग भाव क्या है?

यानी हमारे अन्दर जो तरह-तरह के आवेग होते हैं, उन आवेगों में कमी आ जाती है और एक संवेग भाव की वृद्धि होती है, जिसके कारण से हम संसार के दुःखों को देखकर के, समझ कर के, उन दुःखों में हम फिर से न गिर पड़े, इस तरह का अपने अन्दर एक भाव पैदा होता है, यह दुःख हमें फिर से प्राप्त न हो जाए। यहाँ क्या कहा जा रहा है? इन दुःखों को प्राप्त करके **‘तिरियत्तणे बहुसो’** अर्थात् तिर्यचपने में, तिर्यच गति में **‘बहुसो’** यानी बहुत बार **‘मओसि’** यानी तुम मरे हो। कैसे मरे हो?

तिर्यचों के दुःख देखकर स्वयं के अनन्तों बार भोगे हुए दुःखों का स्मरण आना चाहिए

वर्षा हो रही थी। आप देखो वर्षा ऋतु में कितने तिर्यच, कैसे उस वर्षा में बहते चले जाते हैं। एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, सब जीवों की गति देखो उस समय पर, कैसी होती है? अत्यधिक वर्षा होने पर तो बड़े-बड़े पशु भी बह जाते हैं, गाय-भैंस तक भी बाढ़ों में बह जाते हैं और जो पशु अपने आप को नहीं रोक सकते, अगर वहाँ पर पानी ज्यादा भर जाता है, पानी ज्यादा बह जाता है, तो उन जंगलों में चाहे वे पंचेन्द्रिय किसी भी तरीके के हो, खरगोश जैसे भी हो तो वे भी सब कैसे अपना बचाव कर पाएँगे? जो न वृक्षों पर चढ़ पाते हैं, न कहीं कुछ अपना बचाव कर पाते हैं। ऐसे अनेक जीव जो इस वर्षा में पर्वतों के झरनों से, नदियों के बहाव से बह कर के, शीतल हवाओं से जलकर के मर जाते हैं। उन तिर्यचों के दुःखों के बारे में भी विचार करना चाहिए। क्यों करना चाहिए? क्योंकि हम ऐसा पिछले जन्मों में अनन्त बार कर चुके हैं तो अपनी ही आत्मा में अपने ही दुःखों का स्मरण करके हमें शायद यह ध्यान आ जाए कि ये दुःख हम भोग चुके हैं। अपनी आत्मा में ही अपने दुःखों का स्मरण इस रूप में करना कि ये दुःख हम प्राप्त कर चुके हैं तो शायद हमारे अन्दर यह विचार आ जाए कि अब यह दुःख हम प्राप्त कर चुके हैं तो पुनः यह दुःख हमें न मिले।

जिनवाणी के माध्यम से आने वाले ये विचार हमारे भविष्य को सुरक्षित करते हैं

बात तो अतीत की कही जा रही है, connect आपको past time से किया जा रहा है लेकिन इस तरह से अगर अपने मन में विचार आता है, तो future की सुरक्षा है। भविष्य सुरक्षित रहेगा। जब भी हम इस तरह के तिर्यचों के दुःखों के बारे में सोचते हैं तो हम विचार तो कुछ नहीं करते हैं लेकिन ये दुःख हमारे सामने अगर आते हैं तो इसी तरह के जिनवाणी के माध्यम से आ सकते हैं, उपदेशों के माध्यम से आ सकते हैं, अन्यथा हम देखते रहते हैं। देखा जाए तो दुनिया में सबसे ज्यादा जीव अगर किसी गति में होते हैं, तो वे तिर्यच गति में होते हैं। सबसे ज्यादा जीव जन्म और मरण करते हैं तो तिर्यच गति में करते हैं और यूँ कहो

कि अगर सबसे ज्यादा किसी गति में रहने का काल होता है, तो वह भी तिर्यच गति का ही होता है। नरक गति, देव गति के 33 सागर काल तो बहुत छोटे पड़ते हैं। तिर्यच गति में रहने का बहुत काल है।

सबसे ज्यादा समय तिर्यच गति में ही बिताया है

तिर्यच गति में भी अगर देखा जाए तो एक इन्द्रिय पर्याय में रहने का सबसे ज्यादा काल है, सबसे ज्यादा समय है। अगर आपसे कहा जाए कि अनन्त काल यह जीव कहाँ रह सकता है? वह निगोद पर्याय में रह आता है। जो निगोद पर्याय भी तिर्यच गति की ही पर्याय है। ऐसी उस निगोद पर्याय में, एक इन्द्रिय पर्याय में रहने के बाद भी यह जीव अगर कभी किसी तरह से बाहर निकलता है, तो पृथ्वीकाय बन जाता है। आप सोचे कि अगर कोई पृथ्वीकाय में भी उत्पन्न हो गया तो वहाँ पर भी उसे कितने दुःख मिलते हैं? मानो मिट्टी में कोई जीव उत्पन्न हो गए और वह मिट्टी में जीव हैं। उन जीवों को किस तरह से रोंद दिया जाता है? किस तरह से वह मिट्टी को भी पानी आदि से बहा दिया जाता है? किस तरह से मिट्टी को भी कुचलते रहते हैं? उस पर चलते रहते हैं और जीवों की मृत्यु होती रहती है।

पृथ्वीकायिक जीवों के प्रति दया का भाव आना चाहिए

उन पृथ्वीकायिक जीवों के प्रति हमारे अन्दर दया का विचार तो तब आएगा, जब हमें थोड़ा-सा विश्वास भी जमे कि उन जीवों में जान है, उस स्थान में भी जीव हो सकते हैं, उनके अन्दर भी ऐसे स्थानों पर जीव रहा करते हैं। इस तरह का जब विचार आता है तब जाकर के उन पृथ्वीकायिक जीवों के बारे में, उनके दुःखों के बारे में हम सोच सकते हैं। अब आप देखो! कितने तरीके से इन पृथ्वीकायिक जीवों को रोंदा जाता है, इनकी मृत्यु होती है। जितना भी पृथ्वी के अन्दर खनन का काम है, वह सब क्या होता है? खनन में पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा नियम से होती है। आप देखो आज दुनिया में सबसे ज्यादा यह खनन का काम मिलता है। बड़े-बड़े व्यापार खनन माफिया famous हो चुके हैं और इस तरह के व्यापार करने वाले लोग पृथ्वी को इतना खोद देते हैं, इतना खोद देते हैं कि वह पृथ्वी किसी काम की नहीं रह जाती।

खनन से पृथ्वी की उर्वरक क्षमता खत्म होती है

सारी उसकी उर्वरक क्षमता नष्ट हो जाती है, उस पर घास तक भी नहीं आती, इतना उस पृथ्वी का दोहन कर लेते हैं। आज चारों ओर देखो, अगर कहीं पृथ्वी का कोई भी भाग ऐसा हो कि जहाँ पर खनन न हो रहा हो तो आप देखेंगे कि वह भाग बहुत कम है। अधिकांश भागों पर पृथ्वी पर खनन हो रहा है। आदमी को पता पड़ जाए कि यहाँ पर कोई तरह की धातु मिलती है, कोई तरह का यहाँ पर कोयला आदि निकल आता है, यहाँ का पाषाण अच्छा है। लगा-लगा के बड़ी-बड़ी मशीनें वह उसको बिल्कुल खाली कर देता है। उन पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा, उनकी हानि, पत्थरों के टूटने से भी होती है, पत्थरों के कूटने से भी होती है क्योंकि पत्थर में भी पृथ्वीकायिक जीव होते हैं। जब भी कोई पाषाण का काम किया जाएगा, पत्थर का काम किया जाएगा, गिट्टी का काम किया जाएगा, इस तरह की कोई भी मिट्टी के माध्यम से ईंट आदि बनाने का काम किया जाएगा तो हर काम में पृथ्वीकायिक जीवों की मृत्यु होती रहेगी। वे जीव जन्म लेते रहेंगे,

मरते रहेंगे। उन जीवों को कितनी बार जन्म लेना पड़ता है, मरना पड़ता है, इसकी कोई गिनती नहीं है।

पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा के बिना मकान या मन्दिर, कुछ भी नहीं बन सकता

अपने मकान कभी भी पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा के बिना बन ही नहीं सकते। मकान हो, मन्दिर हो, कोई भी चीजें हो, पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा के बिना कोई चीज तैयार नहीं हो सकती। हम अपने घरों में अच्छे-अच्छे फर्श लगवाते हैं, किसी भी तरीके के उनमें घिसाई करवाते हैं। कभी भी विचार नहीं आता कि इनमें पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा होती है और अच्छे-अच्छे ढंग से उसको चिकना करवाते हैं। करना पड़ता है, क्या करें? सब कर रहे हैं तो हमको भी करना है।

पृथ्वीकायिक के दुःखों का चिन्तन असाता को नहीं अपितु संवेग भाव को बढ़ाता है

करते हुए भी आचार्य कहते हैं एक बार क्षण भर विचार तो करो कि पृथ्वीकायिक जीव जो हमें दिखाई भी नहीं देते हैं लेकिन अगर वे मरण को प्राप्त होते हैं, जन्म को प्राप्त होते हैं तो हम उनके दुःखों के बारे में सोच तो सकते हैं, चिन्ता तो कर सकते हैं। इस चिन्तन से आपके अन्दर थोड़ा-सा संवेग भाव बढ़ेगा मतलब थोड़ा आपको संसार से डर लगेगा। यह डर, यह दुःख आपके लिए संसार को बढ़ाने का कारण नहीं होगा। यह असाता के बन्ध का कारण नहीं होगा। यह डर, यह दुःख आपको संसार से बचाने का कारण होगा। अगर हम कहे कि भय से भय को जीता जा सकता है, तो यह यहाँ पर भी हो सकती है कि अगर आप अपने अन्दर एक दूसरा भय पैदा कर लो, किसका? संसार के दुःखों का तो आपको दुनिया के सारे दुःखों के भयों से मुक्ति मिल जाएगी। पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा देखते ही रहते हैं।

जलकायिक जीवों की हिंसा होना निश्चित है

जल कायिक जीवों की हिंसा भी देखते ही रहते हैं। कितने से लोग हैं जो कभी जल को छान करके उपयोग में लेते हो या उसको गर्म करके उपयोग में लेते हो? अब वह जल चाहे छने, चाहे गर्म हो, अगर उसमें जलकायिक जीव है, तो जलकायिक जीवों की मृत्यु तो होनी है। यानी ये वे चीजें हैं, जो हमारे सेवन में आनी है। इनके बिना हमारा जीवन चलना नहीं है और इनके माध्यम से ही हम जी पाते हैं और इनकी हिंसा होना भी निश्चित है। जल नहीं पियेंगे, अपना ही जीवन समाप्त हो जाएगा। जलकायिक जीवों की हिंसा भी कितनी होती है दुनिया के अन्दर आप देख लो!

जलकायिक जीवों की हिंसा कैसे कम हो?

जल से बिजली बनती है। कितने बड़े-बड़े बाँधों में वह जल को रोका जाता है, जल के माध्यम से कितनी सफाइयाँ की जाती है? कितनी बड़ी-बड़ी फैक्टरियों में जल की खपत होती है? कितना जल का उपयोग होता है? जल के माध्यम से कितनी वह जलकायिक जीवों के साथ साथ अन्य अनेक कायिक जीवों की हिंसा होती रहती है? यह विचार भी करना संवेग भाव को बढ़ाना है। उस जल को हम फेंक देते हैं, उस जल को हम रोंद देते हैं, उस जल में हम किसी भी तरीके से कूद पड़ते हैं, उस जल को हम किसी भी तरह से

उछाल देते हैं, वह सब उसमें रहने वाले जो जलकायिक जीव हैं, उन सब की हिंसा होती ही है। आपके घरों में ऊपर सबके यहाँ पर टंकियाँ लगी रहती हैं, syntex की टंकियाँ सबके यहाँ रखी रहती हैं। पहले के पुराने जमाने में जो मकान बनते थे, भवन बनते थे, उनकी पहचान ध्वजाओं से होती थी।

पहले छत पर लगी ध्वजा- घरों की शोभा थी

शास्त्रों में लिखा मिलता है...जो अच्छे भवन होते हैं वे सब अपने घरों में, अपने भवनों में, क्या लगाते थे? ध्वजा, पताका लगाते थे। ध्वजाओं के माध्यम से घर की शोभा बढ़ाते थे। गृहशोभा बढ़ाने का अच्छा उपाय पहले के जमाने में क्या चलता था? अपने घरों की छतों पर अच्छी-अधिक संख्या में ध्वजाएँ लगाना, यह चलता था। यह घरों की पहचान होती थी। आज घरों की पहचान क्या है? जिसके घर के ऊपर टंकी रखी है मतलब ठीक है, घर में कुछ दम है, पानी-वानी है, व्यवस्थाएँ ठीक हैं। अब यह घर की पहचान बन गई है।

जल का अत्यधिक बर्बादी को रोकने

आप सोचो कि जब वह टंकी भर जाती है उसके बाद भी उसका पानी कितना फैलता रहता है? कितने system आ गए हो, automatic system कि टंकी भर जाएगी, अपने आप पानी बन्द हो जाएगा। लेकिन फिर भी अभी कहीं सब जगह system लगते नहीं हैं, दिखते ही नहीं हैं। किसी भी सन्त भवन में हमें रुकना हो, किसी भी धर्मशाला में रुकना हो, पानी आसपास फैलता हुआ नजर आता ही है, आवाजें आती रहती हैं और पानी बहता ही रहता है, गिरता ही रहता है। जहाँ रुकते हैं वहाँ की छतों पर पानी बहता ही रहता है। कौन कहे, कितनी बार कहे, किससे कहे? पानी का बहना, पानी का व्यर्थ होना, पानी का ऊपर से नीचे गिरना, पानी को किसी भी तरीके से फेंकना, पानी का अनेक प्रकार से misuse करना, यह सारा का सारा उन जलकायिक जीवों का वध है। आप सोचो कि जब आप एक गाड़ी धोते हो तो उसमें कितना पानी लगता है? जो आप बड़ी गाड़ी लाए हो 6 seater, 8 seater अब उस गाड़ी को आपको हर आठ दिन में एक बार धोना है। कितना पानी बहता है? सड़कों पर पानी बहता ही रहता है।

व्यर्थ में ही जलकायिक जीवों की हिंसा हो रही है

सुबह-सुबह उठकर के लोगों का यही काम होता है। पुराना पानी बहाना और नया पानी भरना, अपने घर के आगे पानी फैलाना। लोग सुबह-सुबह घर के आगे अपनी सफाई करते रहते हैं, पानी फैलाते रहते हैं और वह पानी के माध्यम से पूरे सब जगह पर गीला-गीला कर देते हैं और उसके माध्यम से होने वाली पानी की हिंसा किसी के मन में भी नहीं आती कि भाई! व्यर्थ में जलकायिक जीवों की हिंसा क्यों की जाए? यह सफाई कितनी दिन देर तक रहेगी? दिन तो छोड़ो कितनी देर तक रहेगी और उस सफाई से क्या होना जाना है? जहाँ पर अनेक लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं, कूड़ा-कचरा होना ही है और हर घर के सामने यह सफाई करने का, बड़े-बड़े पानी को बहाने का यह प्रक्रम चलता ही रहता है। इन सबसे क्या होता है? यानी जलकायिक जीव कितनी बार, किस तरह से पटके जाते हैं, रोंदे जाते हैं? उन जीवों को किस तरह से बहना

पड़ता है और उनके ऊपर भी लोग किस तरह से अपने-अपने वाहनों को चलाते हैं, खुद चलते हैं।

स्थायर जीवों की हिंसा रोक नहीं सकते पर नियन्त्रित तो कर सकते हैं

इसके अलावा देखा जाए तो उन जलकायिक जीवों में जब आपके use किए हुए bathrooms के जब साबुन और detergents के जब पानी जाते हैं तो उन जलकायिक जीवों का वध उससे भी होता ही रहता है। ये जलकायिक जीवों की हिंसा, दुःख तो है। वे जीव उसी में जन्म ले रहे हैं, मर रहे हैं। कब निकल कर के अन्य गति में जाएंगे? कोई पता नहीं है लेकिन अनेक-अनेक जीवों का वध हो रहा है। स्थायर जीवों की हिंसा रोक नहीं सकते लेकिन आचार्य कहते हैं...उसे नियन्त्रित तो कर सकते हैं, अगर विचार हो तो। पूर्ण रूप से रुकना तो सम्भव नहीं है क्योंकि उसी के माध्यम से जीवन चलना है।

अग्निकायिक जीव की रक्षा करनी चाहिए

अग्नि है, तो अग्निकायिक में भी जीव होते हैं। अब वे अग्निकायिक जीव भी जब-जब अग्नि जले, तब तक उसमें अग्निकायिक जीव उत्पन्न होंगे और मरते रहेंगे अपनी आयु पूरी करके। अगर आपने अग्नि को जला कर के बुझाया तो उत्पन्न भी हो गए वे जीव और बुझाया तो वे मर भी गए। अब जितनी बार जलाओगे, उतनी बार जीव उत्पन्न होंगे और जितनी बार बुझाओगे उतनी बार वे जीव मरेंगे। अग्नि को जलाना और बुझाना, यह पाप पहले थोड़ा-बहुत लगता था किसी को...यह पाप होता है। पुराने जमाने में दादी अम्माओं को थोड़ा-बहुत ये knowledge रहती थी, पुराने जमाने की। आजकल तो कुछ फर्क ही नहीं पड़ता। पहले के लोग थोड़ा-सा अग्नि को save करके चलते थे मतलब अग्नि बार-बार नहीं जलाते थे। एक बार जलाते थे तो शाम तक काम आती थी, चूल्हे की अग्नि होती थी तो। एक बार जला दी, शाम तक जलती थी। शाम को बुझा दी तो फिर अगले दिन ही जलाते थे, बार-बार जला नहीं सकते।

ज्यादा साधन होने से ज्यादा पाप बन्ध हो रहा है

साधन नहीं थे, इसलिए? साधन नहीं थे इसलिए भी और साधन नहीं थे तो पाप कम होता था। अब साधन बढ़ गए हैं तो पाप ज्यादा होता है। जितनी भी ये पाप की बढ़ोत्तरी हुई है, साधन बढ़ने से ही हुई है। पानी के पहले साधन कम थे तो पानी कम खपत होती थी और पानी कम लगता था और कम पानी में जीवन चलता था। अग्नि को उत्पन्न करने के साधन कम थे तो अग्नि कम उत्पन्न होती थी, खपत भी उसकी कम होती थी, जीवों की हत्या भी कम होती थी। जब ये साधन बढ़ गए, मनचाहे तरीके से इनका उपयोग होने लगा तो जब देखो तब अग्नि तैयार है, जब देखो तब पानी तैयार है। पहले का व्यक्ति पानी भी अगर उपयोग में लाता था तो उतना ही लाता था जितना वह कहीं से निकाल कर के लाता था। पहले कुओं से, बावड़ी से पानी निकाल करके लाने पड़ते थे। पानी का उपयोग भी सीमित तरीके से होता था कि भाई! इतनी दूर से भर करके लाना पड़ता है। तुम्हें अगर दो बाल्टी पानी से नहाना है, तो खुद जाओ खींच कर लाओ, समझ में आ जाएगा तुमको।

आजकल पानी का misuse हो रहा है

अब तो घर-घर में फुव्वारे लगे हैं, नल की क्या बात है! बस on करना है और कितनी देर तक वह on रहेगा इसकी भी कोई चिन्ता नहीं है। कहाँ जा रहा है, कहाँ से आ रहा है? बस बैठे उसके नीचे। यह जो अत्यधिक पानी का misuse है, यह भी आपके लिए पाप बन्ध का कारण बनता है। पहले के लोग इस तरह के पाप से बचते थे और बचे रहते थे। यूँ मत कहो कि उनके पास में साधनों की कमी थी। अगर साधनों की भी कमी थी तो भी उनके पास ज्ञान भी था और कम साधन होने के कारण से उन्हें पाप का बन्ध भी कम होता था। आज साधन बढ़ रहे हैं तो पाप का बन्ध भी ज्यादा बढ़ रहा है।

गलत तरीके से नहाने से पक्षाघात होने की सम्भावना रहती है

आज व्यक्ति के लिए असावधानियों के कारण से अनेक तरह के ऐसे रोग भी हो रहे हैं, जो उन्हें पता नहीं होते हैं। आप कभी समझ सकते हो कि आपके गलत तरीके से नहाने से भी आपके लिए बीमारियाँ हो सकती हैं? आपका paralysis हो सकता है, पक्षाघात हो सकता है, brain hemorrhage हो सकता है, किससे? गलत तरीके से नहाने से और यह बात आयुर्वेद में एक संस्कृति में बताई गई है कि अगर आप गलत तरीके से नहाते हैं तो वह नहाने का गलत तरीका आपके लिए पक्षाघात का कारण बन सकता है। पक्षाघात समझते हो न? एक तरफ का हिस्सा बिल्कुल काम करना बन्द कर देता है, अकड़ जाता है, पक्षाघात हो गया। एकदम से दिमाग की इधर की नसें काम करना बन्द कर दी या इधर की नसें काम करना बन्द कर दी। एकदम से आपकी आँखें आदि सब कुछ एकदम से बन्द हो गई, मुँह टेढ़ा हो गया। जानते हो इसका बहुत बड़ा एक कारण क्या है? सही ढंग से नहाने की विधि भी नहीं जानना।

आज लोगों की असावधानी के कारण अनेक रोग हो रहे हैं

आजकल जो ये रोग हो रहे हैं उन रोगों में इस तरीके की असावधानियाँ बहुत बड़ा कारण है और लोगों को पता नहीं होता। आप कभी सोचें! पहले के लोग नहाते थे तो कैसे नहाते थे? नदियों में नहाने जाते थे, कुँए के पास नहाते थे तो सबसे पहले क्या करते थे? नदियों में अगर आप घुसोगे तो पहले आपका सिर जाएगा कि पैर जाएगा? पैर जाएगा मतलब पानी पहले कहाँ आना चाहिए? पैर पर आना चाहिए। कभी भी आप कुँए से पानी निकाल कर के भी अगर नहाते थे, पुराने लोगों को देखना नहाते हुए तो पहले क्या करते हैं? पैर पर पानी डालते हैं। पहले पैर पर पानी डालेंगे फिर उसके बाद में छाती पर पानी डालेंगे, फिर उसके बाद में सिर पर पानी डालेंगे। यह तरीका होता है नहाने का, रोगों से बचने का तरीका। अनेक रोग इसी कारण से हो रहे हैं। लोगों को पता नहीं होता है एकदम से क्या हो गया? झटका लग गया, एकदम से paralysis हो गया, एकदम से आवाज चली गई, एकदम से दिमाग का एक हिस्सा काम करना बन्द कर दिया। आपको पता ही नहीं है ये सब बीमारियाँ आप फोकेट में ला रहे हो। आप बाथरूम में जाते हो। अपने बाथरूम के अन्दर तरह-तरह के फुव्वारे लगे हुए हैं, आप सीधा उसके नीचे खड़े हो गए। पहले पानी कहाँ आया? सिर पर आया। यह सबसे बड़ी बीमारी का कारण है।

नहाने का भी बहुत बड़ा विज्ञान है

अगर आपने कभी पहले लोगों को नहाते हुए देखा हो तो लोग इतनी सावधानी से नहाते थे कि जब छाती में पानी डालते हैं तो इधर के हाथ से इधर पानी डालते हैं और इधर के हाथ से इधर पानी डाला जाता था, ऐसे करके। एक बहुत बड़ा विज्ञान है नहाने का और अब अगर आप देखो तो सीधा-सीधा ऊपर से पानी आता है और यही पानी आपके लिए पक्षाघात का कारण बन जाता है। अगर आपको नहाना भी सही तरीके से आ जाए तो आप इस बीमारी से बच सकते हो और यह बीमारी बहुत कुछ इसी कारण से होती है। नहाने का सही तरीका पहले के लोगों को आता था तो वह धीरे-धीरे अपने नीचे से ऊपर की ओर नहाने के लिए पानी का उपयोग करते हुए आते थे। लेकिन जब सुविधाएँ ज्यादा बढ़ गई तो पानी अब ऊपर से नीचे की ओर जाता है और इसी सुविधा के कारण से पक्षाघात का रोग बढ़ता है। इस मौसम में तो कुछ ज्यादा ही बढ़ता है, यह आप ध्यान रखना।

सीमित साधन तो पाप भी कम और रोग भी कम

पुराने लोगों के पास में साधन कम थे, पाप भी कम होता था, रोग भी कम होते थे। आज आपके पास में साधन बहुत हो गए हैं, पाप भी बहुत बढ़ता है और रोग भी बहुत होते हैं क्योंकि आपको पता ही नहीं होता है किस तरह से ये रोग हमारे ऊपर आ धमक पड़ते हैं? पहले के लोगों को कभी आपने सुना कि वे अग्नि से घर में अपनी रसोई घर में जल जाते हो। कभी सुनने में आता था? दादी अम्मा का मुँह जल गया हो, सिर जल गया हो? यह क्यों जलने लगे? अब pressure cooker आ गए, फटने लगे। कितनी भी सावधानी रखी जाए तो भी कभी न कभी वे फट ही जाते हैं। कहीं सीटी उलझ गई, नहीं आई ऐसा सोच लिया, वैसा हो गया। कितने लोग इस कारण से जलते हैं, मरते हैं।

संसाधनों का सीमित उपयोग करना सीखें

अग्नि का उपयोग भी सीमित तरीकों से किया जाए, सीमित संसाधनों से किया जाए और पहले के जो संसाधन होते थे, वे हमारी safety के साथ चलते थे। कभी भी चूल्हे की अग्नि से कोई जलने वाला नहीं होता। भले ही उसमें हाथ डालते रहो, चूल्हे में हाथ डालते रहते थे घर के लोग तो भी कभी उनके हाथ नहीं जलते थे और आज lighter है। हर समय पर बस! टक-टक-टक-टक करते रहो, फिर काम लो फिर बन्द कर दो। फिर शुरू, फिर एक मिनट बाद फिर बन्द कर दिया, फिर एक मिनट बाद फिर टक किया, फिर शुरू। कितनी बार वह lighter से अग्नि जलती है कितनी बार अग्नि बुझती है, यह आपको अगर ध्यान रहे तो आप उसकी अगर बारियाँ भी कम कर लेंगे तो आपके लिए पाप बन्ध कम हो सकता है। एक बार हमें भोजन पकाना है, एक बार अगर अग्नि जल गई तो हम उस अग्नि को बनाए रखें और उस अग्नि का उपयोग करने के बाद में जब वह अग्नि एक बार बुझ जाए तो बार-बार हमें अग्नि को लाने की जरूरत न पड़े, यह पाप बन्ध से बचने का तरीका है। बिना अग्नि के काम नहीं चलेगा। भोजन पकेगा तो अग्नि का उपयोग करना पड़ेगा लेकिन उस संसाधनों का हम सीमित उपयोग करना सीखें तो अग्निकायिक जीवों की हिंसा भी कम होगी, पाप का बन्ध भी कम होगा।

वायुकायिक जीवों की अनावश्यक हिंसा से भी बचें

इसी तरीके से वायुकायिक की बात है और वायुकायिक जीव भी इसी तरीके से कितनी जगह पर पिस जाते हैं, रुंद जाते हैं, मर जाते हैं। जितने भी संसाधन आज उपयोग में आते हैं...चाहे वे पंखे हो, चाहे cooler हो, चाहे A.C. हो, सब में वायुकायिक जीवों की हिंसा होती ही रहती है। दूषित वायु A.C. के माध्यम से बाहर निकलती है वह आपके कमरे के अन्दर नहीं होती है, वह बाहर जाती है, उससे बहुत बड़ा pollution होता है। वायुकायिक जीव दूषित होते हैं और उन वायुकायिक जीवों के माध्यम से वह हिंसा बढ़ती है तो मनुष्यों तक की हिंसा होती है। पशु-पक्षियों तक की हिंसा होती है। वनस्पति की भी हिंसा कितनी होती है? कितनी मात्रा में होती है? आप देख सकते हो! चारों ओर वनस्पति लहरा रही होती है लेकिन जितना अपने काम की हो, उतना अगर हम उपयोग करें और बाकी को हम बचा कर के रखे तो यह भी हमारे लिए एक बहुत बड़ा पर्यावरण की सुरक्षा का कार्य हो सकता है और यह पर्यावरण की सुरक्षा करना हमें जैन आचार्यों ने बहुत अच्छे ढंग से समझाया था लेकिन हम भूल गए।

पर्यावरण की सुरक्षा जीवों पर दया रखने से होगी

पर्यावरण की सुरक्षा कैसे होगी? इन्हीं पंच स्थावर जीवों पर दया रखने से होगी। पंच स्थावर जीवों का जो बिना वजह व्यर्थ का घात होता है, उसको रोकने से होगी। हम अपने जीवन में अगर इतना भी विचार कि हम इस पर्यावरण को अच्छा रखना चाहते हैं तो क्या करें? जितना अपने लिए पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति उपयोग की है, उतना उपयोग में लिया और बाकी का हमें व्यर्थ से बचना है, तो हम उसको अपने लिए control में रखें कि हमें व्यर्थ का यह जो नुकसान है, उसको हम अगर रोक पाते हैं तो हम अपने भी जीवन में पाप बन्ध रोक पायेंगे और पर्यावरण की सुरक्षा भी कर पायेंगे। यह पाँचों स्थावर आज देखा जाए सबसे ज्यादा दुनिया में इन्हीं की हिंसा होती है और सबसे ज्यादा तिर्यच गति में रहने वाले यही जीव होते हैं और इन्हीं जीवों के माध्यम से सारा का सारा इस प्रकृति का वातावरण चलता है और इन्हीं जीवों के माध्यम से मनुष्य का और सभी का जीवन चलता है। अब इन जीवों के दुःख तब याद आएँगे जब हम इसका स्मरण करें।

वनस्पति का छेदन-भेदन व्यर्थ में न करें

ये तिर्यच गति के जीव, वनस्पति में भी जीव हैं। हम जितनी वनस्पति का उपयोग करेंगे उतनी वनस्पति हमारे लिए काम की रही, बाकी की सब वनस्पति के व्यर्थ में छेदन-भेदन और व्यर्थ का जो उसका उपयोग होता है, उसको हम अगर बचा करके रखें तो हम इस वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा से भी बच सकते हैं। यहाँ तो आचार्य कहते हैं...आप हिंसा से बच पाए या न बच पाए लेकिन अगर आप विचार करते हैं कि इस तरह के यह जीव हमेशा मरण को प्राप्त होते हैं, दुःख को प्राप्त होते हैं। इन जीवों का इस तरह से अनेकों बार मरण हो चुका है और वे जीव हम भी थे। हम भी इसी तरीके से पानी में बहते हुए मर गए। कितने चीटें, कितनी चीटियाँ, कितनी लटें, कितने तरीके के जमीन पर चलने वाले छोटे-मोटे कीड़े-मकोड़े, जब पानी गिरता है तो सब बह जाते हैं। कौन बचता है?

बरसात की अनुमोदना करना यानी हिंसा का अनुबन्ध करना है

जब पानी की जरूरत होती है तब आप कहते हो भाई! पानी बरस जाए, पानी बरस जाए, पानी बरस जाए। कभी-कभी आप मुनि महाराज के पास भी कहने आ जाते हो, महाराज! कुछ तो करो, पानी नहीं बरस रहा और कभी अगर पानी बरस गया तो आप कहने लग जाते हो, महाराज! आपकी कृपा हो गई, पानी बरस गया। आपको पता है, आप क्या बोल देते हो और हम लोग क्या सुनते रहते हैं? अब यह पानी बरस जाए, पानी नहीं बरसे, इस तरीके का विचार करना भी पाप बन्ध का कारण होता है मुनि महाराज के लिए। क्योंकि पानी बरसेगा तो तुम्हें तो अच्छा लगेगा कि पानी बरस रहा है। फसलें होंगी, सब अच्छा होगा लेकिन अनेक-अनेक जीवों का वध होगा, उसकी अनुमोदना कौन करेगा? उस अनुमोदना का पाप बन्ध कौन अपने सिर पर लेगा? पानी न आपकी सोच से बरस रहा है, न आपके करने से कुछ बरस रहा है, न कुछ आपके कहने से बरस रहा है। लेकिन हम अगर यह भी विचार करते हैं कि और पानी बरसे और पानी बरसे, अभी तो पानी बरसा ही नहीं है। अभी तो 2 इंच हुआ है, 3 इंच हुआ है, इस बरसात में तो बहुत कम वर्षा हुई है और यह विचार आपका चलता रहता है।

बरसात किसी के आशीर्वाद से नहीं होती

यह विचार आपके अन्दर उन जलकायिक जीवों की हिंसा के साथ-साथ अनेक त्रस जीवों की हिंसा की भी अनुमोदना करने वाला विचार है। अब हम आपसे पूछते हैं कि अगर आप विचार नहीं करोगे तो क्या पानी नहीं बरसेगा? पानी आपके विचार करने से बरसता है कि आपकी हाय-तीबा करने से बरसता है कि आपके ज्यादा पूजा विधान करने से बरसता है कि आपके ज्यादा कोई भगवान के आशीर्वाद मिलने से बरसता है? ये सब मिथ्या धारणाएँ आपके अन्दर जब तक है तब तक आप अपने अन्दर अनेक प्रकार की जीवों के हिंसा से होने वाले पाप बन्ध के लिए अपने आस्रव के द्वार खोले हुए हो।

बरसात में त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा

मुनि महाराज कभी भी पानी बरसे या न बरसे, इस तरह की अनुमोदना का भाव अपने मन में कभी भी नहीं लाते हैं क्योंकि वह जलकायिक जीवों की हिंसा के साथ-साथ त्रसकायिक जीवों की हिंसा के भी त्यागी होते हैं। उन्हें पता होता है कि पानी बरसने से आपको तो ठण्डक मिल जाएगी लेकिन कितने सारे जीव होंगे, पृथ्वीकायिक से लेकर के दो इन्द्रिय तक, तीन इन्द्रिय तक, चार इन्द्रिय तक, कितने जीवों की हिंसा होती है! जब बरसात होती तो आप देखो कितने जीव नए उत्पन्न हो जाते हैं और कितने जीव उस वर्षा में अगर मान लो, जगह-जगह पर गड़े हो गए तो उत्पन्न तो हो गए और अगले दिन फिर धूप निकल आई, पानी सूख गया तो वे उसी में टर-टर करते हुए मर भी जाते हैं। कितने केचुएँ निकलते हैं? कितने मेंढक निकलते हैं? कितने छोटे-छोटे से ऐसे जीव उत्पन्न होते रहते हैं मछली सरीखे? वह सब कहीं छोटे-छोटे गड्ढों में पोखरों में उत्पन्न हुए उत्पन्न हुए और मरण को प्राप्त हो गए। आप वर्षा-वर्षा करके उसकी अनुमोदना करने से भी अनेक तरह की हिंसा के अनुबन्ध अपने अन्दर कर लेते हैं, यह विचार किया जा सकता है।

बरसात अपनी नियत परिणति से होती है

पानी जब बरसे, बरसेगा। आप उसको हाथ लगा कर रोक नहीं सकते हो। नहीं बरस रहा तो आपके चिल्लाने से बरसेगा नहीं। अपने मन में शान्ति रख कर के निकलना, शान्ति रख कर के उस प्रकृति को देखना, शान्ति रख कर के अपना धर्म ध्यान करना, यह सम्भव है क्या? आवेग आता है। यह क्या कहलाता है? आवेग। पानी बरसे, पानी बरसे, पानी बरसे... पानी नहीं है भाई! तुम्हारे घर में तो पानी है ही न। तुम्हें तो खाने को मिल ही रहा है, तुम्हें तो पीने को मिल ही रहा है न तो हाय-तौबा करने से क्या हो जाएगा? हाय-तौबा करने से कोई ईश्वर आपके ऊपर प्रसन्न हो जाता है क्या? कहीं से वर्षा हो जाती है कि बादल आपके सुन लेते हैं? क्या हो जाता है? मेघ कुमार देव प्रसन्न हो जाते हैं? क्या हो जाता है? बताओ तो कैसे पानी बरसता है? सब लोगों के दिमाग में भरा हुआ है कि ईश्वर पानी बरसाता है, भगवान की कृपा से पानी बरसता है। किससे पानी बरसता है? हर चीज अपने समय पर नियत परिणति से होती है।

चतुर्थ काल से छठे काल तक की व्यवस्था

जब पंचम काल की शुरुआत होती है, इस तरह की वर्षाएँ शुरू होने लग जाती है, चतुर्थ की शुरुआत होती है तब से शुरू हो जाती है और ये वर्षाएँ चतुर्थ काल से पहले नहीं होती है, जब भोगभूमि का काल चलता है। जैसे चतुर्थ काल शुरू हो जाता है... ये ऋतुएँ शुरू हो जाती हैं। छठवाँ काल आएगा, अन्त आएगा। आपके लिए पानी की वर्षा नहीं होगी, विष की वर्षा होगी, अग्नि की वर्षा होगी, धुएँ की वर्षा होगी, धूलि की वर्षा होगी। अब ये वर्षाएँ कहाँ से होंगी? आपके रुकने से रुकेंगी नहीं।

काल स्वभाव के बल से वर्षाएँ होती हैं

हर चीज समय से होती है। 'काल सहाय बलेण' तिलोयपण्णत्ति में एक हेतु आया है। ये वर्षाएँ किससे होती हैं? काल स्वभाव के बल से होती है। किससे होते हैं? काल स्वभाव... काल का अपना एक स्वभाव है। उसके कारण से ये वर्षाएँ होंगी। अभी कोई अग्नि की वर्षा नहीं होगी क्योंकि अभी पंचम काल चल रहा है। जब अन्त आएगा छठवें काल का, तब ये अग्नि की वर्षाएँ होंगी, उनको कोई नहीं रोक पाएगा। किसके बल से? काल स्वभाव के बल से। जब भी ऋतु आएँगे, समय पर वर्षा होगी तो वर्षा अपने समय पर हो रही है। किसके कारण से? काल स्वभाव से हो रही है। कोई ईश्वर नहीं कर रहा है। आपके चिल्लाने से कोई वर्षा नहीं हो जाती है, न आपके कोई पूजा-विधान करने से वर्षा हो जाती है। यह तो हम अपने ऊपर ओड़ लेते हैं। जिस दिन हमने पूजा-विधान शुरू किया कहीं छींटे आ गए। देखो महाराज! इन्द्र देव प्रसन्न हो गए। यह वह ही बुद्धि है कि भाई! कुत्ता बैलगाड़ी के नीचे चल रहा है। कौन चला रहा है? देखो बैलगाड़ी हम चला रहे हैं। सत्य बता रहा हूँ आपको। इन सब भ्रमों में मत पड़ा करो। अपने अन्दर अगर पाप बन्ध की कमी लाना है, तो चीजों को तटस्थ होकर के देखना सीखो। गृहस्थ होकर के भी आप पाप की बन्ध की अनुमोदना से बच सकते हो, अगर आप इस तरह की चीजों में neutral हो जाओ तो।

गाथा: 83

तिर्यचों के भव में यह जीव, लाखों दुःखों को सहता
हुआ, संसार में रहा है

एवं तिरिय-भवेसु, कीसंतो दुक्ख-सय-सहस्सेहिं।
वसियो अणंत-खुत्तो, जीवो भीसण-भवारण्णे ॥83॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्!' (एवं) पूर्वोक्त प्रकार से (तिरिय-भवेसु) तिर्यचों के, भवों में 'यह' (जीवो) जीव (दुक्ख-सय-सहस्सेहिं) लाखों, दुःखों के कारण (कीसंतो) क्लेशित होता हुआ (अणंतखुत्तो) अनंतबार (भीसण-भव-अरण्णे) भीषण अर्थात् भय उत्पन्न करने वाले, संसार रूपी, अरण्य यानी वन में (वसियो) बसा है अर्थात् रहा है 'इस बारे में सोचो' ॥83॥

दुःखों से क्लिष्ट हो जाते हैं, तिर्यच

तिर्यच गति के जीवों के बारे में सोचोगे तो आपके लिए यह विचार आएगा कि 'एवं तिरिय-भवेसु, कीसंतो' इस तरह से तिर्यचों के भवों में यह जीव 'दुक्ख-सय-सहस्सेहिं कीसंतो' हजारों, लाखों दुःखों से 'कीसंतो' अर्थात् क्लिष्ट होता है, दुःखी रहता है, कीसता ही रहता है। कीसना जानते हो? क्या बोलते हो? आपके यहाँ भी कुछ बोला जाता है न बुन्देलखण्ड में क्लेश करने को? कैसे कीस रहा है कोई आदमी! क्या बोलते हो, कुछ बोलते हो? क्लेश तो ठीक है। भीतर ही भीतर जब वह रोता रहता है, भीतर ही भीतर जब दुःखी बना रहता है। कीस रहा है, कीस रहा है, ऐसा बोला जाता है। क्लेश रहा है, क्लेश रहा है, ऐसा बोला जाता है। वह क्लेश से ही कीस बन जाता है। मतलब भीतर ही भीतर दुःखी रहना और भीतर ही भीतर अपने अन्दर हुम्म-हम्म ये करते रहना, यह सब क्या है? बात-बात में ऐसे लगना जैसे मरे जा रहे हो। इसको क्या बोलते हैं?

मनुष्य गति से भी लाख गुणा क्लेश तिर्यच गति में होते हैं

जब हम भीतर से दुःखी होते हैं और भीतर का दुःख अगर बाहर आना होता है, तो यही जो आदत बन जाती है यही तरीका उसके लिए सामने आ जाता है। अब उस समय पर आपके दुःख को देख कर के दूसरा दुःखी तो हो सकता है लेकिन आपका वह दुःख आपके द्वारा रोका नहीं जा रहा है और आप उस दुःख में भी अपने आप को तटस्थ नहीं रख पा रहे हो और भीतर से आवाज अगर चाहो तो रोक सकते हो लेकिन आप रोकना नहीं चाहते क्योंकि आपको पता है अगर ये आवाज रुक जाएगी तो सामने वाले की sympathy मिलना बन्द हो जाएगी। इसलिए जब कोई रोगी हो जाए बुखार आ जाए फिर देखो वह कैसे करता है? कैसी आवाज आती है उसकी फिर? उसको बोलते हैं- किलस रहा है। चलेगा तो, उठेगा तो, भोजन भी करेगा तो

ऐसे करेगा...अम्म-अम्म, यह जो क्लेश आपको मनुष्य जीवन में दिखाई देते हैं इससे लाख गुणा क्लेश कहाँ होते हैं? तिर्यच गति में। जो बोल भी नहीं पाते, किलस भी नहीं पाते, लेकिन भीतर ही भीतर उनकी पीड़ाएँ इतनी बढ़ जाती हैं कि उन्हीं पीड़ाओं से वह दुःखी होकर के अन्य-अन्य गति में जन्म लेते रहते हैं।

अनन्त जन्म-मरण का चिन्तन करने से पाप, राग और आवेग में कमी आती है

आचार्य कहते हैं...ऐसे ‘अणंत-खुत्तो’ अनन्त बार हम लोगों का ऐसा ही मरण ‘भीसण-भवारण्णे’ इस भयानक संसार रूपी अरण्य में, जंगल में अनन्तों बार हमारा जन्म हुआ है, अनन्तों बार हमारा मरण हुआ है। ऐसे अनन्त जन्म-मरण का चिन्तन करने से यह तो कहा ही था आपसे कि धर्म ध्यान होता है और इस धर्म ध्यान के साथ-साथ संवेग भाव बढ़ता है, संसार से डरने की प्रणाली भीतर आती है। संसार में ज्यादा रचने-पचने का भाव नहीं आता है, अगर आप तिर्यच गति के दुःखों का चिन्तन करते रहेंगे तो। यह यूँ ही नहीं लिखा है, यह कारण वशात् लिखा गया है कि अगर हम इस तरह का दुःख मन में विचार करते हैं तो हमारे अन्दर पाप में भी कमी आएगी, राग में भी कमी आएगी और आवेग में भी कमी आएगी। कितनी चीजों में? पाप में, राग में, और आवेग में। यानी पाप बन्ध भी कम होगा उस time पर जब आप ये चिन्तन करोगे। राग जो आपका दुनिया के कामों में लग रहा होगा, दुनिया के राग-रंग में आपका मन लग रहा होगा, वह भी छूट जाएगा और एक आवेग जो संसार में आगे बढ़ने के लिए, संसार का कर्म बन्ध करने के लिए आवेग भीतर जो पड़ा रहता है, वह भी कम हो जाएगा। ये तीनों चीजें आत्मा के हित में होंगी। ध्यान रहेगा?

वैराग्य शतक का मुख्य प्रयोजन

तिर्यच गति के दुःखों का चिन्तन करने से पाप में कमी आती है, राग में कमी आती है और आवेग में कमी आती है। यही आत्मा के हितकारी भाव है। इनमें कमी आए तो आत्मा का हित होगा। इसलिए आचार्य बार-बार इन चीजों को हमारे सामने ला रहे हैं। न जाने कितनी बार ये तिर्यच गति के दुःख आ गए होंगे हमारे सामने, इस वैराग्य शतक में। पहले भी कई बार आ चुका और फिर यह नए ढंग से आ गया तो हर बार जब भी हम विचार करते हैं तो नया-नया तो आता है। ज्ञान भी नया-नया लगता है, संवेग भाव भी नया-नया आता है। इसीलिए आचार्य कहते हैं...इस तरह का धर्म ध्यान करते रहो, इसी तरह से अपने राग में कमी लाते रहो ताकि आपको संसार के इन आवेगों में ज्यादा रचना-पचना न पड़े तो आप इन तरह के दुःखों को से अपने आप को बचा पायेंगे। यही इस वैराग्य शतक का मुख्य प्रयोजन है कि हम अपने अन्दर राग की, पाप की और आवेग की कमी लाएँ। इतना ही आज के लिए पर्याप्त है।



गाथा: 84

नरकों के दुःखों का वर्णन

दुष्ट-कम्म-पलयाणिल-पेरिओ भीसणंमि भवरण्णे ।
हिंडतो णरएसु वि, अणंत-खुत्तो जीव! पत्तोसि ॥84 ॥

अन्वयार्थ- (जीव!) हे जीव! 'तुम' (दुष्ट-अट्ट-कम्म-पलय-अणिल-पेरिओ) दुष्ट, अष्ट, कर्म रूपी, प्रलयकाल की, अनिल यानी वायु से, प्रेरित हो (भीसणंमि भव-अरण्णे) भीषण यानी भयानक, संसाररूपी, जंगल में (हिंडतो) परिभ्रमण करते हुए (अणंत-खुत्तो) अनन्त-बार (णरएसु) नरकों में (वि) भी (पत्तोसि) प्राप्त हुए हो ॥84 ॥



वैराग्य शतक नाम की प्राकृत भाषा में निबद्ध इस कृति के माध्यम से प्रतिदिन अपने भावों में धर्म लाने के लिए, आचार्यों की वाणी के अनुसार अपने भावों को चलाने के लिए, यह स्वाध्याय का उपक्रम हो रहा है। इसी क्रम में गाथा नम्बर 84 और 85 पढ़ते हैं...

दुष्ट-कम्म-पलयाणिल-पेरिओ भीसणंमि भवरण्णे ।
हिंडतो णरएसु वि, अणंत-खुत्तो जीव! पत्तोसि ॥84 ॥

सत्तसु णरय-महीसु, वज्जाणल-दाह-सीय-वियणासु ।
वसियो अणंत-खुत्तो, विलवंतो करुण-सद्देहिं ॥85 ॥

जीव का संसार भ्रमण

ये दो गाथायें हैं और ये मात्र दो ही गाथायें हैं, जिनमें नरक की बात की गई है। पिछले दो दिनों से आप चार गाथाओं में तिर्यच गति की बात सुन रहे थे। यहाँ पर नरक की बात केवल दो गाथाओं में समाप्त की गई है।

इस संसार में भ्रमण करते हुए इस जीव ने 'अणंत-खुत्तो' यानी अनन्त बार नरकों में भी वेदना को प्राप्त किया है... 'भवरण्णे हिंडतो' इस संसार के जंगल में भ्रमण करते हुए। जब संसार का यह भीषण जंगल सामने आता है, तो भ्रमण करते-करते इस जीव को सभी जगहों पर पहुँचना होता है। क्योंकि जब गति

अपने अनुसार नहीं होती है और किसी दूसरी चीज से प्रेरित होकर के जब कोई गति होती है, तो यह जीव कहीं का कहीं भी पहुँच जाता है। संसार में चार गतियाँ ही हैं और चार गतियों से ही यह पूरा का पूरा संसार भरा हुआ है। चार गतियों में भ्रमण करते हुए यह जीव परवश होकर के कभी कहीं पहुँच जाता है, कभी कहीं पहुँच जाता है और इस जीव को भी पता नहीं होता कि यह जीव कहाँ पहुँच सकता है? और इस जीव के लिए कहाँ पर कितनी वेदनाएँ मिल सकती हैं?

पाप में प्रवृत्ति: दुष्ट अष्ट कर्मों से प्रेरित

आप देखते हैं कि संसार में जब भी कोई जीव जीता है, तो किसी भी तरह का वह पाप करेगा। वह पाप करते हुए उसे कभी यह नहीं लगता कि मैं बहुत गलत कर रहा हूँ। एक बहुत बड़ी मनुष्य की मनःस्थिति होती है। पाप करते हुए वह कभी विचार नहीं करता कि मैं बहुत गलत कर रहा हूँ। पाप करते हुए उसके मन में कभी विचार नहीं आता कि इसका फल मेरे लिए तिर्यच गति या नरक गति हो सकता है। यह जानते हुए भी कि कोई भी कृत्य जो गलत है, पाप के रूप में है, समाज में स्वीकृत नहीं है, फिर भी वह कार्य कर लेता है और इस तरह के कार्य वह कैसे कर लेता है? आचार्य यहाँ एक हेतु दे रहे हैं... **‘दुष्ट कम्म पलयाणिल पेरीओ’** जो यह आत्मा दुष्ट अष्ट कर्मों की प्रलयकारी पवन से प्रेरित है, उसके कारण से यह पाप कर लेता है, उसके कारण से संसार में कहीं का कहीं पहुँच जाता है। यह नहीं भी जाना चाहता है, तो वहाँ पहुँच जाता है जहाँ इसके लिए पहुँचने के बाद में महसूस होता है कि यह मैं कहाँ आ गया? कोई भी जीव पाप करते हुए यह नहीं विचार करता कि मुझे इसके फल से नरक आयु का बन्ध हो सकता है। मैं इसके कारण से नरक की वेदनाओं को भोग सकता हूँ लेकिन वह जीव जब पहुँच जाता है, तो वह भोगने के लिए मजबूर होता है और भोग भी लेता है।

दुःखों को भोगने में लगा दी आत्मा की अनन्त शक्ति

यह आपसे पहले भी कहा था कि इस जीव में अनन्त शक्ति है और इस अनन्त शक्ति का अगर इस जीव ने कहीं कुछ अच्छा उपयोग किया है, तो इसी रूप में किया है। सुख को भोगने के लिए अनन्त शक्ति का उपयोग नहीं हुआ, दुःख को भोगने में अनन्त शक्ति का उपयोग हुआ है। जब नरक की वेदनाओं को जीव प्राप्त करता है तो वह अनन्त शक्ति उसकी लगती है उस दुःख को भोगने में और भोग लेता है। उस वेदना को सहन करने में वह सहन कर लेता है। इस तरह की शक्ति का उपयोग अगर हुआ तो ऐसे ही हुआ और जब भी इस जीव ने पाप किया तो पाप करते हुए भी इसने शक्ति लगाई और शक्ति लगाने के बाद में जब इसने पाप करने के बाद उस फल को भोगा तो भी शक्ति से ही उस फल को भोगना पड़ा। अब यह शक्ति किसकी है? शक्ति शरीर की नहीं होती, शक्ति आत्मा की होती है। आत्मा की शक्ति अगर आपको वैसे किसी काम में दिखाई दे, न दे लेकिन अगर दुःख भोगने में आत्मा की शक्ति आपको महसूस होती है, तो यही एक वो चीज है जिससे आप समझ सकते हो कि आत्मा में शक्ति है क्योंकि शक्ति से ही आत्मा उस दुःख को भोग पाता है। यह बात अलग है कि वह चीखता है, रोता है, बिलखता है लेकिन भोग लेता है। आखिर आदमी दुःखी होते हुए भी कौन सा दुःख नहीं भोग पाता? सब भोग लेता है।

पाप : बिना नतीजा सोचे किया गया दुष्कृत्य

जिस समय पर पाप करता है, तो वह पाप भी आराम से कर लेता है और शक्ति लगा कर के पाप कर लेता है। आप सोचे! प्रतिदिन इस तरह के कृत्य आपके सामने आते हैं; लोगों की लड़ाइयों की, झगड़ों को देखकर के, आपस में भाई-भाई के बीच में वैर को देख कर के यह आपको दिखाई देता है कि लोग किस तरह से बड़े-बड़े पाप कर लेते हैं। अभी हाल की एक घटना है कि कहीं पर एक भाई ने दूसरे भाई को tractor से कुचला। यह बिल्कुल current news है। tractor से कुचला, एक बार में नहीं कुचला, सात बार में कुचला उसने, आठ बार में कुचला। अब देखो आप! एक भाई, एक भाई को कुचल रहा है; tractor से कुचल रहा है। आप सोचे! कि जब भाई-भाई के रूप में किसी घर में पैदा हुए होंगे तो कितने प्रेम से रहे होंगे। जब बड़ा भाई, छोटे भाई को देखा होगा कि मेरे घर में एक और जीव आ गया, यह मेरा भाई है, यह भाई होकर के मेरे साथ में रहे से रहेगा। कितना एक दूसरे ने प्रेम किया होगा? कितना एक दूसरे के साथ आगे बढ़े होंगे, एक दूसरे को देखते हुए और बड़े होने के बाद में ऐसे-ऐसे कृत्य हो जाते हैं। जब एक व्यक्ति इस तरह का कृत्य करने को उतारू हो जाता है, तो उस समय पर वह सोच ही नहीं पाता कि इस कृत्य का क्या फल होगा? अब यह तो निश्चित है कि जिस चीज के लिए लड़ रहे थे, शायद वह tractor के लिए लड़ रहे थे और उसने उसे tractor से ही कुचल दिया। जिस चीज के लिए लड़ रहे थे, वे चीजें वहीं रह जाएंगी। अब आगे अगर वह सजा मिलेगी तो क्या होगा? कारावास मिलेगा। किसका सुख मिलेगा अब? पाप करते हुए आदमी यह भूल जाता है कि मैं जिस छोटी सी चीज के लिए इतना बड़ा कार्य कर रहा हूँ, इतना बड़ा पाप कर रहा हूँ, इसका अगर हमें कोई नतीजा मिलेगा तो क्या मिलेगा? और इसका फल क्या होगा?

क्रोध का आवेग : ज्ञानहीनता तथा विवेकहीनता का परिचायक

अब आप थोड़ा सा विचार कर सकते हो। क्या आदमी नहीं जानता कि जब मैं किसी का कत्ल करता हूँ, murder करता हूँ तो इसके कारण से मुझे jail जाना पड़ेगा, मैं पकड़ा जाऊँगा। नहीं जानता क्या? उसके दिमाग में नहीं आता क्या? आता है, जानता भी होता है। लेकिन फिर भी जिस समय पर उसे जो करना होता है, वह कर लेता है। यह दिमाग एक ऐसी चीज है, जिस समय पर उसके अन्दर यह क्रोध का आवेग आ जाए तो उस समय पर उसका सारा ज्ञान, सारी विवेक बुद्धि छूट जाती है और वह उस आवेग में वह सब कर जाता है और बाद में अब वह देखेगा कि न उसके पास में उसका घर है, न tractor है, न लोग हैं, अब वह अकेला jail में पड़ा होगा, सजा भुगतेगा। अब यह सजा हमें इस कृत्य की यहाँ पर ही दिखाई दे रही है।

नरकों को भोगना, पाप फल की निष्पत्ति

हम अगर कोई भी पाप कर रहे हैं, उसकी सजा हमें यहीं पर दिखाई दे रही है लेकिन यह सजा इतने में पूरी नहीं होती। अगर आपने निर्दयता से किसी को मारा है, किसी को काटा है, तो आपके लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि अब आपके लिए jail हो गई, देख जाए तो अब वहाँ कोई दुःख नहीं है ज्यादा, बस इतना ही है कि घर-परिवार छूटा है। खाने-पीने को limit से मिलेगा, time पर मिलेगा, हर समय नहीं मिलेगा लेकिन मरता तो आदमी वहाँ पर भी नहीं है, जीता है। यह बात अलग है कि कभी-कभी ऐसी सजाएँ भी हो

जाती हैं कि आदमी को फांसी दे दी जाती है। वह भी एक क्षण का दुःख है, वह भी एक क्षण मात्र की पीड़ा है। वास्तव में ये पीड़ाएँ अगर कहीं हमें फलीभूत होती हुई दिखाई देती हैं, आत्मा ने जिस निर्दयता के साथ में वह कृत्य किया है, वह दुष्कृत्य किया है, वह उस फल को कहाँ भोगने जाता है? आचार्य कहते हैं...यह नरकों में भोगने जाता है।

jail में सुविधाएँ

अब उस हत्या का इतना सा फल नहीं है कि आपको jail हो गई। कई लोग तो jail में भी खुश रह लेते हैं, हमने देखा है। Jail में भी हम खूब रहे हैं, देखे हैं। रहने का मतलब? बड़ी-बड़ी jail में रहने का मतलब? अगर एक दिन भी रुके तो एक दिन भी रहना ही कहलाता है न? देखा वहाँ पर, ऐसा लगता ही नहीं है कई कैदियों को देख करके, वहाँ के लोगों को देख करके कि ये jail में हैं। दिल्ली के अन्दर एक मंडोली jail है, जो तिहाड़ jail का ही एक part है। इतनी up to date jail बनी हुई है कि वहाँ पर आप घुसने के बाद में महसूस करोगे जैसे किसी hotel में पहुँच गए, ऐसी jail बनी हुई है। अब वहाँ पर रहने वाले जो लोग हैं, वे भी सब मस्त रहते हैं। थोड़ा सा दुःख है, तो बस इतना ही है कि परिवार नहीं है, बच्चे नहीं हैं। बस अगर कुछ भाव आ जाता है, तो इतना ही आ जाता है कि कब यहाँ से निकलेंगे? लेकिन उन्हें वहाँ पर इतनी सुविधाएँ अच्छी मिली हुई हैं कि उन्हें वहाँ पर कोई ऐसी परेशानियाँ महसूस नहीं होती। अब ऐसी जगह पर हम देख कर के आए तो समझ में आया कि यहाँ पर भी क्या दुःख हैं इनको? कैद हो गई, कुछ नहीं है। अच्छा खाने को मिलता है सुबह-शाम, रहने को मिलता है, सब लोगों के साथ में गप्पें करने को मिलता है। हर तरह से वहाँ पर काम लगे हुए हैं, काम करने को मिलता है, सो आदमी अपना जीवन निकाल लेता है। व्यस्तता बनी रहती है, जेलों में भी आजकल खूब काम होने लगे हैं। कुछ नहीं है तो हथकरघा ही खुलने लग गया तो सूत कातो, कपड़े बनाओ। काम में आदमी लग जाता है तो भूल जाता है अपनी पीड़ा, अपना दुःख भूल जाता है। अब इसकी सजा क्या?

किसी को पीड़ा देकर मारा, तो मात्र कैद सही न्याय नहीं

मानो अगर आपने किसी भाई को, अपने ही भाई को, एक मनुष्य को, आपने सात बार, आठ बार एक tractor से रेंदा, काटा या किसी ने चाकू से किसी को गोदा; वह मरा, वह कितनी पीड़ा से मरा? वह जो पीड़ा उसको बिलखते हुये हुई, उसकी जो जान निकली, उसकी कितनी मुश्किल से जान निकली? आपको अगर कैद हो गई तो आपके लिए क्या हो गया? यह बताओ! कुछ नहीं हो गया, बस! इतना ही है कि घर-बार छूट गया; कोई मृत्यु तो नहीं हो गई? वहाँ कोई ऐसी पीड़ा तो दी नहीं जाती आजकल कि भाई! कोई hunter से मार रहा हो कि कोई पहले वह बेलन चलाए जाते थे, ऐसे-ऐसे पहले कृत्य होते थे। आजकल ऐसा कुछ नहीं होता। अपने जमाने में हमने ऐसे भी लोगों को देखा कि जिनके ऊपर, जब थाने में चले जाते थे चोरी आदि के मामले में और वह नहीं बोलते थे तो वह सीधा उनके ऊपर बड़े-बड़े बेलन चलाए जाते थे, उन्हें पीटा जाता था, बुरी तरीके से मारा जाता था। आजकल ऐसा कुछ नहीं होता था। बस! jail में बन्द कर दिया। सामने वाला जानता है कि यह किसलिए होता है? कि सजा कबूल नहीं करेंगे तो होगा तो वह तुरन्त कबूल कर लेता है- भाई! मैंने चोरी की थी, की थी। लगा दो, case लगा दो, हो जाएगा।

हत्या की है, की है; सामने वाला जानता है तो पिटने का कोई काम नहीं। पीड़ा सहन करने का कोई काम नहीं। ठीक है! बन्द कर दोगे, कोई मार तो डालोगे नहीं। खिलाओगे-पिलाओगे, काम मिलेगा, रहेंगे, चलता रहेगा।

इतनी सी सजा, पूरा न्याय नहीं

क्या-क्या मादा हो रहा है, क्या मन हो रहा है? कई लोग घर में भी परेशान हैं। बोले...इतनी अच्छी सुविधाएँ महाराज बता रहे हैं, इतनी अच्छी जगह है। अनाथ आश्रम में जाने से भी कोई फायदा नहीं मिलेगा। इतनी अच्छी जगह है, वहाँ पर आराम से आपकी जिन्दगी कटेगी और उम्र कैद हो गई तो फिर पूछना ही क्या है? उम्र कैद का मतलब ही होता है कि बस! पूरी उम्र वहीं पर गुजारना। अब आप समझें! कि आखिर इस पाप का दुःख क्या मिला? और इतना सा कोई कृत्य करने के बाद उसे अगर इतना सा दुःख मिला और इतनी सी उसे सजा मिली तो यह सजा अभी पूरा न्याय नहीं है।

कर्म करे सही न्याय

दुनिया में सबसे बड़ा न्याय हमें हमारा कर्म दिलाता है, कोई Judge नहीं दिलाता है, यह हमेशा ध्यान रखना। सबसे बड़ा न्याय दिलाने वाला कौन है? कर्म है। वह कर्म आपको लेकर के जाएगा वहाँ, जहाँ आपको इससे भी अनन्त गुना पीड़ा होगी, तब वह कर्म फलीभूत होगा। तब उस कर्म का पूरा फल मिलेगा। और वह ले जाने वाला कोई और नहीं है, कोई भगवान नहीं, कुछ और नहीं, वह सिर्फ अपना कर्म है और उसी कर्म को यहाँ पर पवन के रूप में कहा गया है। उस कर्म की पवन से, हवा से प्रेरित होता हुआ जीव नरकों में पहुँच जाता है। भीतर से इस आत्मा को प्रेरणा कौन देगा? पेरेगा कौन? प्रेरित करने का मतलब? पेरेना। अब आप तो पेरेने का अर्थ कुछ और ले लेते हो। पेरेना मतलब? दुःखी बनाना लेकिन अगर हमें अपना ही कर्म प्रेरित कर रहा है और अपना ही कर्म हमें उस नरक में ले जा रहा है, तो वह कर्म ही हमको पेरेने के लिए वहाँ पहुँच गया, कोई दूसरा नहीं ले जाएगा। वह जो दुष्कृत्य हमने किया है, उसके फल से वह कर्म प्रेरित करके उस जीव को नरक में डाल देगा और वहाँ पर वह पहुँचने के बाद में जो वेदनायें भोगेगा, उनका तो कहना ही क्या है?

अनन्त कालीन संसार भ्रमण का कारण कर्म

आचार्य यहाँ ये कहना चाहते हैं कि अगर आप अनन्त संसार में अनन्त काल से यहाँ रहते हुए आए हो तो आप यह मान कर चलना कि यह हवा के कारण से यह जीव हर गली में पहुँच चुका है। हर गली का मतलब? इस संसार की, तीन लोक की ऐसी कोई गली नहीं बची, ऐसी कोई जगह नहीं बची, ऐसा कोई स्थान नहीं बचा जहाँ इस जीव ने जन्म न लिया हो। नरक एक बहुत बड़ी जगह है।

कर्म से प्रेरित हुआ यह जीव कहीं का कहीं पहुँच जाता है

भाई! अगर देखा जाए तो पूरे तीन लोक में सबसे ज्यादा area, अगर आधा area तीन लोक का घेर लेता

है, तो नरक ही घेर लेता है। तीन लोक के बीचों-बीच में एक छोटा सा गोलाकार तो एक मध्य लोक है और नीचे देखा जाए तो सात राजू, क्या है? नरक है, सात नरक हैं। ऊपर देखा जाए तो सात राजू में भी स्वर्ग तो कम पड़ जाएंगे, उनका area कम पड़ जाएगा, नरकों का area ज्यादा पाया जाएगा। आप देखेंगे कि इन गलियों में घूमते हुए, गली यानी? जैसे कि हम इस संसार के एक शहर में घूम रहे हैं या जंगल में घूम रहे हैं, तो घूमते हुए हम उन गलियों में पहुँच जाएंगे। जैसे हवा से प्रेरित होता हुआ कोई भी तिनका कहीं का कहीं पहुँच जाता है, ऐसे ही कर्म से प्रेरित हुआ यह जीव कहीं का कहीं पहुँच जाता है और यह नरकों में भी पहुँच जाता है। पहली बात तो यह है कि इस जीव ने पिछले समयों में, अनन्त काल में बिना नरक के अपना समय निकाला ही नहीं है। अगर अनन्त काल हमें संसार में रहते हुए हुआ है, तो यह बात भी निश्चित है कि उन अनन्त कालों में ये वाले शहर भी हमने देखे हैं, जंगल के ये नजारे भी हमने देखे हैं। कौन से? नरक के दुःखों के नजारे सब देखे हैं और सब सहन कर लिए हैं, इतनी शक्ति है हममें।

नरकों के दुःख भोगने के बाद भी दुःख सहन नहीं होता

इसलिए कह रहा था कि हमारी अपनी आत्मा की शक्ति से हमने बहुत दुःख सहे हैं, अब यहाँ आकर के हमें थोड़ा सा भी दुःख सहन नहीं होता है। अभी हम इतने अच्छे फलीभूत होकर के यहाँ पर बैठे हैं, इतनी अच्छी स्थिति में बैठे हैं, अभी हमसे अगर कोई दुःख की बात करे तो हम दुःख की बात सुनना भी नहीं चाहेंगे। अभी अगर आपसे कोई कहे कि भाई! थोड़ी देर के लिए धूप में खड़े हो जाओ या ठण्ड में एक घण्टे के लिए खड़े हो जाओ तो आप खड़े नहीं हो पाओगे। खड़े होने का दुःख- काहे के लिए खड़े करना? मानो आपसे कह दिया जाए कि एक घण्टे ठण्ड में कायोत्सर्ग करना है। कायोत्सर्ग समझते हो न? क्या करना है?

सहनशीलता का हो विकास

बस! काया को छोड़ कर के खड़े हो जाना, एक घण्टे के लिए ठण्ड में खड़े रहना बस। क्यों दुःख सहूँ? क्या जरूरत है? वह ठण्ड का दुःख तो ठीक है...हम अपने घरों में भी किसी भी तरह से अपनी ठण्ड को दूर करने के लिए हर उपाय करने के बावजूद भी उस ठण्ड को हम रोते रहते हैं, कितनी ठण्ड पड़ रही है? कितनी ठण्ड पड़ रही है? कितनी ठण्ड पड़ रही है? सब तरीके के उपाय हैं, सब साधन हैं और सब साधनों से ठण्ड कहीं नहीं लग रही है लेकिन फिर भी कितनी ठण्ड पड़ रही है? कितनी ठण्ड पड़ रही है? सुनते हैं कि जब आचार्य श्री सतना में आए थे, उस समय बहुत ठण्ड पड़ी थी। शायद ऐसी ठण्ड फिर दोबारा पड़ी नहीं है, ऐसा सतना वाले कहते हैं। अब वह ठण्ड पड़ी थी तो सहन किसने की थी? आपने की थी या आचार्य श्री ने की थी? जिन्होंने की, उन्होंने तो कुछ नहीं कहा कि बहुत ठण्ड, बहुत ठण्ड, बहुत ठण्ड और जिन्होंने नहीं की, वे कहते फिरते हैं...बहुत ठण्ड, बहुत ठण्ड, बहुत ठण्ड। आखिर वह ठण्ड निकली तो, सभी की निकलती है, सहन सभी कोई करता है लेकिन अगर हम उसे सहन करने की दृष्टि से कर रहे हैं तो वह सहनशीलता कहलाएगी और अगर वह सहन करने की दृष्टि नहीं है, तो बस अपने मन के अन्दर एक उससे दूर भागने का भाव कहलाएगा और उसके कारण से आपके अन्दर कभी भी वह सहन शक्ति नहीं आएगी, जो आनी चाहिए। अगर हम यहाँ पर देखे, गाथा में कहते हैं कि इस जीव ने सातों ही नरक की पृथ्वियों में वज्र अनल की दाह के सदृश वेदना को प्राप्त किया है और उतनी तीव्र ठण्ड को भी सहन किया है।

नरक के दुःख के प्रकार

आखिर नरकों में और क्या होता है? क्षेत्रगत दुःख जो होता है, वह इसी रूप में होता है। नरकों में पाँच प्रकार के दुःख होते हैं। एक होता है- **‘असुर कुमार कृत दुःख’** असुर कुमार जो देव होते हैं, उन देवों के द्वारा दिया जाने वाला दुःख। दूसरा होता है- **शारीरिक दुःख**। तीसरा होता है- **मानसिक दुःख**। चौथा होता है- **क्षेत्र जन्य दुःख** और पाँचवाँ होता है- **आपस में दिए जाने वाला दुःख**। ये पाँच तरह के दुःख होते हैं। ज्यादा नहीं हैं वैसे, ज्यादा कहीं कुछ नहीं है, आत्मा सब सहन कर लेता है।

नरकों के दुःख

मनसे अवरोधित होती हैं आत्मा की शक्तियाँ

(1) मानसिक दुःख- अगर यहाँ पर भी zero degree temperature हो जाए तो वह भी सहन कर लेगा और नरक में भी अगर zero से minus भी कितना हो जाए तो वह भी सहन कर लेगा; आत्मा में इतनी सहनशक्ति है लेकिन मन से कितना करता है, यह अलग बात है। करना पड़ जाए तो सब कर लेगा। बच्चा London गया है; वहाँ पर देखो जाकर के कि ठण्ड में क्या होता है? हमेशा वहाँ पर बर्फ जमी रहती है, हमेशा zero temperature रहता है, minus भी हो जाता है। क्योंकि London आए, अब London से वापस भारत जाएँगे तो अच्छा नहीं लगेगा। job तो यहीं पर है, काम तो यहीं पर है, वहाँ जाकर के क्या करेंगे? जितनी भी ठण्ड होगी, वह कुछ होगा, वह अपनी इच्छा से वह सहन कर लेगा लेकिन अगर उसे कभी ऐसी ठण्ड का कोई वातावरण बिना उसकी इच्छा के मिल जाए तो उसे मुश्किल हो जाएगी। अगर उससे भी कम ठण्ड अगर उसे यहाँ भारत में आकर के मिल जाए तो यहाँ पर आकर के वह कुलबुलाएगा।

कुलबुलाने का मतलब? यहाँ पर आकर के चिड़चिड़ा होगा और इससे कई गुना ठण्ड वहाँ London में जाकर के सहन कर लेगा क्योंकि हम London में हैं। हमें यहाँ रहना जरूरी है और यहाँ पर ऐसा ही होता है इसलिए। यहाँ पर वह by chance आया और यहाँ उसका मन नहीं था कि ऐसा हमें ठण्ड मिले और वैसी मिल गई तो उसे ऐसा लगेगा कि यहाँ पर कितनी ठण्ड है। लेकिन सहन आदमी तब कर जाता है, जब उसे अपनी इच्छा से सहन करना होता है। जब उसे अपनी इच्छा के बिना सहन करने की स्थिति बन जाती है, तो वह दुःख बन जाता है। वह मानसिक दुःख भी हो जाता है और उस मानसिक दुःख को बढ़ाने के लिए क्षेत्रकृत दुःख ये कारण बन जाते हैं।

(2) क्षेत्रकृत दुःख- अब नरकों में क्षेत्रकृत दुःख हैं। गर्मी है, तो वह तीव्रता पर है और सर्दी है, तो वह भी तीव्रता में है। अब कितनी गर्मी, कितनी सर्दी? अब आचार्यों की बात पर विश्वास करो तो कुछ बोलूँ! अभी तो नरकों पर ही विश्वास नहीं है, वहाँ की गर्मी-सर्दी पर क्या विश्वास होगा? विश्वास होता है नरकों पर कि नरक जैसी कोई चीजें हैं? बोलो! मुण्डी हिला कर बताना! नरक पर विश्वास होता है? कितने लोगों को हो रहा है? यही विश्वास होता है कि हम नरक में ऐसी वेदना भोग चुके हैं। कैसी वेदना? इतनी गर्मी! इतनी गर्मी! इतनी गर्मी! कि अगर वहाँ पर एक लाख योजन ऊँचा जो सुमेरु पर्वत है, वह अगर उस नरक में पहुँचा

दिया जाए इतना बड़ा पहाड़ तो क्या हो जाए? वह पहाड़ वहाँ पर गर्म होते-होते, नीचे पहुँचते-पहुँचते तक पानी बन जाएगा। ऊपर के पाँच नरकों में इतनी गर्मी है। यानी वह पानी बन जाएगा लोहे का, बिल्कुल गर्म होते-होते, वह इतना गर्म स्थान है कि वहाँ पर वह लोहे का अगर मान लो वह पहाड़ हो तो वह लोहा बिल्कुल कैसा हो जाए? गल जाए, पानी-पानी हो जाए, इतनी गर्मी है। अब यह जो temperature, वह कोई नापा नहीं किसी ने। वैज्ञानिक तरीके से अगर इस temperature को बताया जाता तो शायद अच्छा होता। शास्त्रों में कहीं लिखा नहीं मिलता कि यह कितना high level का temperature है, यह कितने degree का temperature है? यह पता नहीं मिलता। बस इतना लिखा मिलता है कि इतना भारी temperature है। अब इस temperature की क्या कल्पना है? इतना ही बड़ा गोला जब वह वहाँ जाकर के बिल्कुल melt हो गया। अब आगे के नरकों में जब जाता है, छठवें-सातवें नरकों में तीव्र शीत है, ठण्ड है, वहाँ इतना cold है कि अगर वही लोहे का गला हुआ गोला, वही पहाड़ अगर नीचे उतरे तो वह वहाँ पर जाकर के बिल्कुल जम जाए, वह फिर से पहाड़ बन जाए, इतनी ठण्ड है वहाँ पर। अब विज्ञान यहाँ फेल हो जाएगा कि minus में temperature कितना जा सकता है और high temperature plus में कितना जा सकता है? ऐसा दुनिया में कोई स्थान नहीं मिलेगा सिवाय नरक के। अब आप अपने मन में यह विचार करो कि मैं ऐसे नरक में रह कर के आया, जहाँ पर मैंने क्षेत्रजन्य ऐसा असह्य दुःख भोगा।

(3) शारीरिक दुःख- और क्षेत्र की क्या बात की जाए कि वहाँ पर अगर जमीन पर पैर भी रखा जाए तो घास भी जो होती है, वह भी बिल्कुल तलवारों की धार जैसी बिछी हुई हो, वहाँ पर ऐसी घास होती है। मतलब पैर रखने में भी आपको इतनी पीड़ा होगी जैसे हजार बिछू एक साथ डस रहे हो। न तो वहाँ हम खड़े हो सकते हैं, न बैठ सकते हैं, न लेट सकते हैं, न भाग सकते हैं और सब करना पड़ता है। लेटेंगे भी, भागेंगे भी, खड़े भी होंगे; नहीं करेंगे तो तुम्हें दूसरा दुःख देने के लिए बैठा है, परस्पर में दिया जाने वाला दुःख, वह तुम्हें कहीं भी एक क्षण बैठने नहीं देगा।

(4) परस्पर में दिया जाने वाला दुःख- चलो भाई! किसी वृक्ष के नीचे बैठ ले। वहाँ दूर-दूर दिखाई देते हैं वृक्ष से और वहाँ बैठने जाओ तो वे सब नारकियों की विक्रियायें होती हैं। वहाँ पर जैसे ही वह आदमी बैठने की, नारकी बैठने की कोशिश करता है, तो ऊपर से वे पत्ते गिरते हैं बिल्कुल करीत के समान उसके शरीर को छेदते हुए, भेदते हुए तो पत्तों से उसका शरीर बिल्कुल फिर छलनी-छलनी हो जाता है। वृक्ष के वृक्ष उसके ऊपर तुरन्त गिर पड़ते हैं, विक्रिया शक्ति से और उसको फिर कुचल देते हैं। इतनी वेदना है कि पूरी जैसे आग की भट्टी में हम, कल्पना करो कि आग की भट्टी में हम दौड़ रहे हो। आग की भट्टी तो देखी है न? उस आग की भट्टी में मानो हम दौड़ रहे हो, उसमें हमें कोई मार रहा हो, हमें कोई काट रहा हो, हमको कोई बड़े भयंकर भेष दिखा करके, हमारे सामने कोई तरह-तरह के औजार लेकर के हमको उसमें मार रहा हो। अब आग की भट्टी में एक बार चले जाओगे, मनुष्य होगा तो वह तो जल जाएगा, मर जाएगा, फुर्सत हो जाएगी। लेकिन वहाँ मरने का नहीं, बाकी सब करने का है। जितने time तक वहाँ रहना है, जितनी आयु वहाँ मिली है, उतने time तक जीना है, मरना नहीं है। मरना तब होगा जब आयु पूरी होगी, जब तक आयु पूरी नहीं होती है तब तक इसी तरीके से वहाँ जीना है।

(5) असुर कुमार कृत दुःख- आप सोचो कि आग की भट्टी में हम जल रहे हो, हमें कहीं पर भी कोई क्षण मात्र के लिए न भूख को मिटाने का सुख मिल रहा हो, न प्यास को मिटाने की कोई बात हो और हमें खूब भूख लग रही हो, खूब प्यास लग रही हो, पूरा शरीर हमारा तड़प रहा है, जल रहा है, ऊपर से हमारे आजू-बाजू बीसों नारकी हमें काट रहे हैं, रोंद रहे हैं, हमारे टुकड़े-टुकड़े कर रहे हैं और टुकड़े-टुकड़े करके वहाँ पर और दूसरे लोहे के कढ़ाहे हैं, उनमें डाल दे रहे हैं। वे टुकड़े-टुकड़े होने के बावजूद भी हमारी आत्मा अलग-अलग नहीं होती है, कटती नहीं है, मिटती नहीं है, फिर से वे टुकड़े जुड़ जाते हैं। हम फिर वहाँ पर तड़पते हैं और जैसे-तैसे उस कढ़ाहे में से, कैसे भी वहाँ से निकल पाते हैं, भाग पाते हैं, फिर वहाँ से भागते हैं। फिर देखते हैं- सामने कोई नदी है, सामने कोई वृक्ष है, वहाँ जाते हैं; जहाँ जाओ वहाँ पर तुम्हें नारकी-नारकी भरे मिलेंगे और वहाँ पर एक क्षण के लिए भी सुख नहीं है और ऐसा time छोटा-मोटा time नहीं, अनन्तकाल में ऐसा असंख्यातों बार इन नरकों में जाना इस आत्मा का हो गया।

नरक वेदना को भी आत्मा सहता है- यह उसकी अनन्त शक्ति का बोध कराता है

अब विचार करो आप, कितनी शक्ति है आत्मा में? आप कहते हो आत्मा में शक्ति नहीं है, कुछ दिखाई नहीं देती है, कोई शक्ति के काम ही नहीं कर पाते हैं। सब हो जाएँगे, जब नरक में पहुँचेंगे तो शक्ति मिल जाएगी। अभी शक्ति नहीं है। वह शक्ति कहाँ से आ जाती है, जब हम इतने सारे दुःख भोग लेते हैं और यहाँ एक छोटा-मोटा भी कोई दुःख हो जाता है, हमारे ऊपर सारे दुःखों का पहाड़ टूट पड़ रहा है, सारे दुःख हमको ही मिल रहे हैं, इस घर में सब सुखी हैं, केवल बस हम ही दुःखी हैं। हमारे साथ ऐसा हो गया, यह हो गया, वह हो गया। यह व्यापार में कमी हो गई, यह हमको घर का हिस्सा नहीं मिला, यह मर गया, वह मर गया मतलब ऐसा लगता है कि जैसे सारे दुःख हमको ही मिले हैं और हम उन दुःखों को सहन नहीं कर पा रहे हैं तो हम हताश होकर के मर जाते हैं। इससे अच्छी ताकत तो कहाँ मिलती है? नरकों में मिलती है। अब आप यह सोचो कि अगर हम इस बात को यहाँ बैठ कर के याद करें तो थोड़ी ताकत हमें मिल सकती है कि नहीं मिल सकती? यह नरक के दुःखों को अगर हम विश्वास के साथ में थोड़ा सा याद कर ले तो हमें अपने दुःखों को सहन करने की ताकत मिल सकती है कि नहीं मिल सकती?

5,68,99,584 रोग एक साथ वह नारकी जीव भोगता है

एक छोटा सा भी रोग हो जाता है शरीर में तो ऐसा लगता है जैसे सहन करने की ताकत है नहीं, मर गए.. इससे अच्छा तो मर जाएँ। ऐसे-ऐसे रोग हो जाते हैं, जब आदमी तड़प-तड़प करके, ऐसा लगता है कि जैसे दुनिया में सब सुखी हैं, केवल हम दुःखी हैं। और नरकों में कितने रोग होते हैं? जितने भी एक मनुष्य के शरीर में अधिकतम रोग हो सकते हैं, वह सारे के सारे रोग नरक में एक साथ भोगने को मिलते हैं। यहाँ तो एक रोग होगा, दो होंगे, दस होंगे, बीस होंगे, इससे ज्यादा नहीं होंगे। वहाँ कितने होते हैं? पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानबे हजार पाँच सौ चौरासी रोग एक साथ वह नारकी जीव भोगता है। याद हुआ कि नहीं? इतनी जल्दी याद नहीं होता! पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानबे हजार पाँच सौ चौरासी (5,68,99,584) इतने रोग हर नारकी हर समय भोगता है यानी इतने रोगों का जो पिण्ड, एक शरीर में इतने रोग हो सकते हैं और ये सब रोगों का असाता वेदनीय के तीव्र उदय में वहाँ पर फल भोगने को मिलता

है।

नरक के दुःखों का स्मरण किया जाए तो जिनेन्द्र भगवान की वाणी पर विश्वास बढ़ता है

अब आप सोचो कि अगर हमारे शरीर में कोई रोग हो और हम उस समय पर इन रोगों को याद कर ले तो क्या होगा? कितने फायदे होंगे, पता है? एक तो आपका धर्म पर विश्वास आएगा, जिनेन्द्र भगवान की वाणी पर विश्वास आएगा कि हाँ! नरक होते हैं और नरक पर विश्वास आने का मतलब है कि आपको जिनेन्द्र भगवान की वाणी पर विश्वास आना। यह बहुत बड़ी चीज है! नरक पर विश्वास हर किसी को नहीं होता। पढ़े-लिखे बच्चों को भी नहीं होता और जो पढ़ लेते हैं, उनको भी नहीं होता। जो विद्वान महोदय हो, उनको भी हो यह जरूरी नहीं है लेकिन गणित पूरा याद हो सकता है कि कितने राजू का कौन सा नरक है? नरकों में कितना दुःख है? क्या गणित बताया गया, वह सब होगा लेकिन विश्वास होना...तो यह विश्वास कब आता है, जानते हो? जब रोग आते हैं और उन रोगों के समय पर इस तरह से स्मरण किया जाए...इन नरक के दुःखों का तो विश्वास बढ़ता है जिनेन्द्र भगवान की वाणी पर, जिनवाणी पर और उस विश्वास से भी इस मनुष्य को यहाँ पर सम्यग्दर्शन हो सकता है। विश्वास बढ़ना चाहिए तो नरक की वेदना को स्मरण करने से विश्वास बढ़ता है, किस पर? लोक के आकार पर, लोक के स्वरूप पर। उस समय पर नरक को याद करना यानी एक तरह से लोक विचय नाम का धर्म ध्यान करना है।

लोक विचय धर्म ध्यान

कौन सा? धर्म ध्यान के आपको चार भेद तो बताए थे लेकिन दस भेद होते हैं। उनमें एक लोक विचय नाम का भी धर्म ध्यान होता है, संस्थान विचय नाम का भी धर्म ध्यान होता है; यह सब धर्म ध्यान कहलाएगा अगर उस समय पर ये याद आ जाए तो। नरकों में इतने रोग हैं, हमारे पास तो क्या है? कुछ नहीं है। थोड़ा सा घुटनों में दर्द हो गया, थोड़ा सा कहीं कमर में दर्द हो गया, थोड़ा सा कहीं सिर में दर्द हो गया, कहीं थोड़ा सी चोट लग गई, कहीं हड्डी टूट गई, कहीं गिर पड़े, कहीं bed पर पड़े हैं; अब किसी को यही दुःख है। मानो accident हो गया, हड्डी टूट गई, चार जगह से operation हो गए, अब पड़े हैं, bed पर पड़े हैं, तो bed पर पड़े हैं अब चल-फिर नहीं सकते, घूम-फिर नहीं सकते, दुनिया में सब लोग घूम-फिर रहे हैं हम bed पर पड़े हैं, अब यही दुःख है।

नरक के दुःखों के चिन्तन से फायदे

अब इस दुःख का उपाय क्या है? इस दुःख को भी हम यह समझ कर के दूर कर सकते हैं कि हम तो फिर भी बहुत सुखी हैं। नरक के दुःखों को याद करके आपको दुःख जीतने की ताकत आएगी इसलिए यह नरक के दुःख हमारे सामने आए हैं। दूसरा इसका फायदा क्या है? इससे दुःखों को जीतने की ताकत आती है। **पहला-** हमारे लिए इस तरह का चिन्तन करने से जिनवाणी पर विश्वास बढ़ता है। **दूसरा-** इससे नरक के दुःखों को याद करके हमारे अन्दर दुःखों को जीतने की ताकत आती है यानी सहनशीलता बढ़ती है और **तीसरा-** हमारे अन्दर वह पाप भाव में कमी आएगी, जिसके कारण से हम रुग्ण अवस्था में भी पाप कर

सकते हैं और उस पाप भाव को हम करने से बच पाएँगे, जो आगामी काल में हमें नरक में ले जाने से बचाएगा। ये तीन फायदे हैं इन नरक के दुःखों का चिन्तन करने से और इन तीनों से ही अपना भविष्य अच्छा होने वाला है। आचार्य कहते हैं- ऐसे नरक के दुःखों का चिन्तन भी निरन्तर करते रहना चाहिए, चाहे भले ही रजाई में बैठ करके कर ली लेकिन करना चाहिए।

आर्त ध्यान व धर्म ध्यान में अन्तर

हम सोचते ही कब हैं? क्या पड़ी है अपने को, नरक में क्या हो रहा है? तिर्यच गति में क्या हो रहा है? क्या सोचने की पड़ी है? जब पड़ेगी तभी धर्म ध्यान होगा; नहीं पड़ी है तो तुम अपने भोगों के सुख में आर्त ध्यान कर रहे हो। यह हमारा सुख चला न जाए, जिस सुख को हम यहाँ भोग रहे हैं; यह आर्त ध्यान है और यह धर्म ध्यान है। आपके अन्दर इस प्रकार का विचार आने पर ही यह महसूस होगा कि इतने सारे दुःखों को वह नारकी जीव कैसे भोग लेता है? हम जब दूसरे नारकी की बात करेंगे तो फिर याद आएगा कि भाई! ऐसा दुःख तो मेरी आत्मा ने भी भोगा है। जब ऐसा इतना बड़ा दुःख भोगा है, तो यह तो बहुत छोटा है। अब वहाँ पर तो क्या करता है?



गाथा: 85

यह जीव; सातों नरकों में ऊष्ण और शीत की वेदना को सहता है

सत्तसु णरय-महीसु, वज्जाणल-दाह-सीय-वियणासु।
वसियो अणंत-खुत्तो, विलवंतो करुण-सद्देहिं ॥85 ॥

अन्वयार्थ- 'हे जीव तुम' (सत्तसु णरय-महीसु) सातों, नरकों की, भूमियों में (वज्ज-अणल-दाह-सीय-वियणासु) वज्र की, आग के, 'समान' दाह में 'और' शीत की, वेदनाओं में (करुण-सद्देहिं) करुण, शब्दों से (विलवंतो) विलाप करते हुए (अणंत-खुत्तो) अनन्त-बार (वसियो) बसे हो यानी वहाँ नरकों में रहे हो 'इन वेदनाओं के बारे में सोचो' ॥85 ॥

‘विलवंतो करुण सद्देहिं’ वहाँ तो करुण शब्दों से विलाप करता है, करुणा के शब्दों से। करुण शब्द मतलब? मुझे कोई बचा ले, मेरे ऊपर कोई दया कर दे। वहाँ गिड़गिड़ाता है, रोता है, एक दूसरे नारकी के सामने; जानता है कि यह मुझे मारने आ रहा है, तो भी उसके लिए गिड़गिड़ाता है। इतना दीन-हीन होकर के वहाँ पर करुणा के शब्द अपने मुँह से निकालता है कि मुझे कोई बचा ले, मुझ पर दया करो; ऐसा रोता है, विलाप करता है लेकिन वहाँ कोई रोने के बावजूद भी बचाने वाला नहीं मिलता। यह विलाप अगर याद आ जाए तो वहाँ पर आपके लिए यह हो सकता है कि भाई! हमें रोने से क्या मिलने वाला है? हमें वहाँ पर इन दुःखों के साथ विलाप करने से क्या होगा? अगर हम इन दुःखों के समय पर उन दुःखों को याद कर ले तो और यह दुःख अपने सामने आ ही जाते हैं। रोगों की पीड़ाएँ हर आदमी को बड़े-बड़े दुःख का एहसास करा देती हैं और उसके कारण से हर आदमी के लिए ऐसा समय आता है जब वह भीतर ही भीतर रोता है लेकिन उस रोने में आर्त ध्यान होता है।

नरक के दुःखों का चिन्तन बढ़ाता है- सहनशक्ति

अगर हम उस रोते समय पर यह याद कर ले कि इससे भी ज्यादा दुःख हम पहले भोग चुके हैं तो आत्मा की शक्ति बढ़ सकती है और बढ़ जाएगी, सहनशक्ति बढ़ जाएगी। अगर आपको लगता है कि हमें अपनी मानसिक सहनशक्ति बढ़ाना है, तो आप नरक के दुःखों पर विचार कीजिए। कभी आपको depression नहीं होगा, guarantee से कह रहा हूँ। कोई भी मानसिक बीमारियाँ नहीं होंगी, depression की बीमारियाँ नहीं होंगी, इस तरह के दुःखों का जो स्मरण करेगा उसकी मानसिक शक्ति मजबूत रहेगी। क्या दुःख है हमें?

आभासी दुःख से दुःखी होना कमजोरी का लक्षण

लोगों को दुःख होते भी नहीं हैं तो भी दुःख लगने लग जाते हैं। मानो ठण्ड आने वाली है, तो बहुत से लोग अभी से ठण्डाने लग गये। कल्पना करते से ही दुःख आने लग जाता है। ठण्ड आने वाली है, ठण्ड आयेगी तो ठिठुरेंगे, दर्द होगा; दुःख होगा क्योंकि किसी को पता है कि कई लोगों के शरीर में जो दर्द होते हैं वे ठण्ड में ही निकलते हैं बाहर, अभी नहीं निकलेंगे। वे ठण्ड में बाहर निकलेंगे, वे ठण्ड का इन्तजार कर रहे हैं। जितने भी joint pain होते हैं, सब ठण्ड में उभर के आएँगे। गर्मियों में वे pain सब दबे रहते हैं और जितने भी सब, शरीर के अन्दर कहीं पर भी अगर कोई weakness होगी, किसी भी muscle में, किसी भी जगह पर तो वह pain ठण्ड में होने वाला है। कहीं पर भी, दांत के मसूड़ों के दर्द, दांत के दर्द; सब कब निकलेंगे? सब निकलेंगे अभी, ठण्ड में आने वाले हैं; डरो मत। क्या करना है? बोलो! कौन सा दुःख याद करना है? कभी-कभी दूसरों के दुःखों को या अपने भी दुःखों को और अधिकता से जब हम जान लेते हैं और उसका स्मरण कर लेते हैं तो हमारे दुःखों में कमी आ जाती है और यह बात निश्चित है, कमी आती है; तभी इस तरह के गीत आपके सामने आते हैं... **‘दुनिया में कितना गम है, मेरा गम कितना कम है’** सुना है कि नहीं? क्या मतलब है इसका? अब दुनिया में कितना गम है? अब यह दुनिया अपनी बहुत बड़ी हो गई है, चार गतियों की दुनिया है। इस दुनिया में देखोगे तो दुनिया में कितना गम है? अपना गम कितना कम है। आखिर यह क्या formula है? यहीं से तो निकला है यह formula और यहाँ क्या सिखाया जा रहा है? यही तो सिखाया जा रहा है। बस गाया नहीं जा रहा है, बस गाथाएँ गाई जा रही हैं; शब्द बदल गये हैं। ये गीत तो अच्छे लगते हैं पर ये गाथाएँ- ये अच्छी नहीं लगती। इनको दोबारा पढ़ने का मन नहीं होता। इनको revise करने का मन नहीं होता। एक बार भी पढ़ने का मन नहीं होता महाराज! revise करने की बात तो दूर की है। वह तो आप सुना रहे हो इसलिए सुन रहा हूँ, बाकी कौन सुनने बैठता है इन नरकों की बातें और ये तिर्यचों की बातें।

Depression व anxiety दूर करने का अचूक उपाय

सब लोगों को आज motivation चाहिए, अच्छी-अच्छी बातें चाहिए, सुख की बातें चाहिए। कैसे हम अपने अन्दर की anxiety को दूर करें, depression दूर करें? यह सुनना है महाराज! आप तो और डरा रहे हो। जिन चीजों पर हमें विश्वास नहीं है, उन चीजों को हमें सुना रहे हो। जिस पर आपको विश्वास नहीं है, उसी पर आपको विश्वास करना है। जिन चीजों पर आपने अभी तक विचार नहीं किया है, उसी का विचार करना है और जिस तरह से आप चाहते हो कि हमारी सहनशक्ति बढ़े, उसके जो आप ये तरीके अपनाते हो, ये सब छोटे-मोटे तरीके हैं, ये कोई permanent उपाय नहीं हैं किसी भी तरीके से; आप अपनी anxiety को, depression को दूर नहीं कर सकते हो। उसका permanent उपाय यह है कि अगर आप इस तरह का नरक का चिन्तन करो तो आपके लिए यह दुःख दूर हमेशा के लिए हो जाएँगे। अब मानो कि जैसे आपको आपस में कोई दुःख दे रहा है। अब आपस में आपको कोई दुःख देगा तो कितना देगा? बताओ अच्छा, क्या होगा? आपका कोई काम बिगाड़ने की कोशिश करेगा, क्या करेगा? ज्यादा से ज्यादा क्या करेगा? मानो कोई आपको मार नहीं रहा है, केवल बस आपको क्या कर रहा है? परेशान कर रहा है। मानो कि आप अपने घर से बाहर निकलने वाले हो, गाड़ी में बैठे थे और उसने गाड़ी की हवा निकाल दी। नहीं

समझ आया? कोई भी आप काम करने जा रहे थे, उस काम को उसने बीच में कहीं न कहीं से रोक दिया या कोई काम आपका बनने वाला था, नहीं बना। कोई आप जमीन खरीद रहे थे, आपका रिश्ता बन गया था, आपके लिए वे चीजें मिलने वाली थी, अचानक से किसी ने उसमें कोई दूसरी बात कर दी; बात बिगड़ गई, आप tension में आ गए। जमीन नहीं मिल पाई, घर नहीं मिल पाया, रिश्ता नहीं बन पाया। हर आदमी बार-बार वही आदमी मुझे दुःख दे देता है, मुझे परेशान कर रहा है, मेरे काम नहीं बनने दे रहा है। मेरे पास इतनी सारी चीजें थी और मैं कोई भी काम पूरा नहीं कर पा रहा हूँ।

परस्परकृत दुःख

अब यह क्या है? इसको नरक के दुःख से कैसे जोड़ोगे, बताओ? पाँच प्रकार के दुःखों की याद रखो। कुछ तो भर लो इस भेजे में तब भेजें तुम्हें यहाँ से कहीं और। अगर ये दुःख याद कर लोगे तो नरक में भेजना नहीं पड़ेगा, नरक में जाओगे नहीं और ये दुःख याद नहीं रहेंगे तो अपने आप चले जाओगे। अब पाँच प्रकार के दुःख में एक दुःख है- **परस्पर कृत दुःख**, कौन सा? परस्पर कृत दुःख; मतलब हर नारकी वहाँ पर एक दूसरे को दुःख देता है। अब आप इसमें यह याद करो कि अगर यह नारकी इतने बड़े-बड़े दुःख देता है कि वह हमें उठाकर के बड़े-बड़े कढ़ाहों में डाल देता है, गरम-गरम लोहे के कढ़ाहों में हमें पटक देता है और हम वहाँ पर तड़पते रह जाते हैं, मगोड़े की तरह चटक जाते हैं, तब हम कुछ नहीं कर पाते। हम इस बगल वाले आदमी से परेशान हो रहे हैं। यह मेरे काम बिगाड़ रहा है, यह मेरे रिश्ते नहीं होने दे रहा है, ये मेरी बेटी की शादी में कोई न कोई अड़बंगा लगा देता है। उससे तुम्हें परेशानी हो रही है। अब अगर इसको याद करो तो क्या होगा? यह तो कितना percent निकलेगा, बताओ? 0.00000000000000000001% भी नहीं निकलेगा, वह दुःख इतना है।

नरक के तीव्रतम दुःख की कल्पना से मिलता है, दुःख सहने का सम्बल

कितना दुःख है? अच्छा अब इसी से अन्दाजा लगाओ कि मानो आपको रोग हुआ है, कितने रोग होते हैं? extreme में कितने? 5 करोड़ तो याद रह ही सकते हैं, आगे की digit याद न रहे, कोई बात नहीं। अब 5 करोड़ में अपने शरीर में अगर ज्यादा से ज्यादा रोग होंगे तो कितने होंगे? कितने रोग हैं? Diabetes होगी, BP हो जाएगा, bypass हो जाएगी, heart की problem हो जाएगी, cholesterol हो जाएगा, कमर में दर्द हो जाएगा, घुटने का दर्द हो जाएगा और liver खराब हो जाएगा, kidney खराब हो जाएगी। फिर भी बचे रह जाओगे। फिर भी बचा रह जाएगा, आदमी फिर भी जियेगा। अब इतने रोग होने के बावजूद भी कितने रोग हुए? केवल आठ रोग गिनने में आये ये। मान लो और भी चलो मान लें कि भाई accident हो गया है, पड़ा हुआ है; ज्यादा से ज्यादा दस रोग, बारह रोग, बीस रोग, कितने होंगे? पाँच करोड़ में बीस रोग का क्या percentage बनता है, बताओ? कौन सी आपने CA की है बताओ हमें?

जिनवाणी पर विश्वास: नरक के दुःख से बचने का उपाय

आखिर हम अगर गणित भी लगाएँ तो गणित के हिसाब से चले तो लेकिन वो गणित तो तब चले, जब हमें

विश्वास हो इन चीजों पर। इसलिए आचार्य कहते हैं...इन चीजों पर विश्वास करोगे तो ही आगे इन दुःखों से बच पाओगे और अगर विश्वास नहीं करोगे तो इन दुःखों में फिर पड़ोगे और आज तक हम जो ये दुःख भोगते आए हैं, इसी विश्वास की कमी के कारण से भोगते आए हैं और इसी विश्वास की कमी का नाम है- मिथ्यादर्शन।

सम्यग्दृष्टी व मिथ्यादृष्टी की सोच में अन्तर

अनन्त काल तक जन्म-मरण उन्हीं का होता है जो मिथ्यात्व के साथ भ्रमण करते हैं। इसलिए हम और आप सब आत्माओं की यह बात है। सभी ने अनन्त काल में कभी इन चीजों पर विश्वास नहीं किया, इसलिए सम्यक्त्व का भाव नहीं आया और इसलिए हमारे यह जन्म-मरणों की परम्परा कभी रुकी नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव कभी भी इस तरह के दुःखों का पात्र नहीं बनता है। वह by chance अगर बनता है, तो तब बन जाता है जब उसने पहले नरक आयु का बन्ध कर लिया हो और बाद में फिर उसे भान हुआ हो, यह मैंने क्या कर लिया? जैसे राजा श्रेणिक। पहले बड़े-बड़े उपसर्ग कर दिए, पहले बड़े-बड़े मुनि के ऊपर कष्ट दे दिए, बड़े-बड़े पाप कर लिए, नरक आयु का बन्ध कर लिया और बाद में ऐसा भी पुण्य आ गया। देखो! अब पुण्य की भी क्या बलिहारी कहें। तीर्थंकर महावीर भगवान का कम से कम दर्शन हो जाना कितना बड़ा पुण्य का भाव है। इन कर्मों का कुछ नहीं कहा जा सकता! आदमी एक तरफ कितने बुरे-बुरे कृत्य कर रहा है और एक तरफ उसके पुण्य कितने अच्छे-अच्छे फल रहे हैं। मुनि महाराज के ऊपर घनघोर उपसर्ग, भयंकर उपसर्ग- साँप डाल दिया और फिर भी पुण्य जब फला तो कैसा फलता है? साक्षात् भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में भगवान को देखना, कितनी बड़ी बात है! आँखें खोल कर के सुन रहे हो कि नहीं? कान खोल कर नहीं सुना रहा हूँ मैं; किसलिए बोल रहा हूँ? आँखें खुली रहेंगी तो कान अपने आप खुले रहेंगे इसलिए बोल रहा हूँ। आँखें फटी की फटी रह जाती हैं जब हम विचार करें कि एक ऐसा व्यक्ति जिसने अपने एक ही जीवन में इतना मुनि महाराज के ऊपर घोर उपसर्ग किया हो और उसे अपने उसी जीवन में साक्षात् भगवान महावीर के समवशरण में, श्रावक के कोठे में, सबसे पहले मनुष्य के कोठे में उसे बैठने को, श्रावक शिरोमणि बनकर बैठने को मिल रहा हो। क्या है पुण्य और पाप? देखो आप!

दुष्ट अष्ट कर्मों की परिणति

तरह-तरह के पुण्य हैं, तरह-तरह के पाप हैं। एक ही जन्म में तरह-तरह से फलते हैं तो अगले-अगले जन्म की तो बात ही क्या है! इसलिए एक ही जीवन में तरह-तरह के पाप भी देखने को मिलते हैं और तरह-तरह के पुण्य भी देखने को मिलते हैं और पापी लोगों के साथ भी कई तरह के पुण्य सामने आ जाते हैं और पुण्यात्मा जीवों के सामने भी कई तरह के पाप सामने आ जाते हैं। यह सब किसका खेल है? यह दुष्ट अष्ट कर्मों की पवन से प्रेरित होने पर इस जीव को तरह-तरह के कर्म-फल मिलते हैं। भगवान के समवशरण में साक्षात् अरिहन्त भगवान का दर्शन करना, समवशरण में बैठना, भगवान की वाणी को सुनना, बताओ कितना बड़ा पुण्य है! अगर हम अपने पुण्य से यहाँ नापे तो उस राजा श्रेणिक का कितना बड़ा पुण्य है! आज अपने सामने अरिहन्त भगवान महावीर स्वामी के, तीर्थंकर प्रभु के दर्शन नहीं हैं और जिसे साक्षात् तीर्थंकर

भगवान के दर्शन हो रहे हो और उस जीव को! जिसने अतीत में इतने बड़े-बड़े पाप किए। इसलिए कोई भी किए हुए कार्य, कोई भी किए हुए पाप उसी अनुसार फलेंगे जितना हमारे अन्दर balance होगा। अगर पुण्य का balance बन रहा है, बढ़ रहा है, तो वह पाप होने के बावजूद भी उसका फल तुरन्त मिले, जरूरी नहीं है। उस समय पर पुण्य के फल से पुण्य मिलेगा और जब पाप के फल का time आएगा तो पाप का फल भी मिलेगा। इसलिए एक ही पर्याय में सारे फल नहीं मिल जाते हैं, यह हमेशा ध्यान रखना। आप कहते हो- हमने इतनी पूजा की, हमने इतनी भक्ति की, हमने इतना धर्म किया, फिर भी हमारा पुण्य कुछ दिख नहीं रहा है, हमारा कुछ पुण्य नहीं फल रहा है। कोई भी पुण्य हो या कोई भी पाप हो, सब एक जन्म में नहीं फल जाते हैं। जैसा आपके सामने वातावरण पिछले कर्मों के प्रभाव से बना हुआ है, कभी-कभी हमें वह भोगना पड़ता है और जो हम आज अर्जित कर रहे होते हैं, उसके लिए अभी time नहीं आ रहा है। उसका time जब आएगा तब भोगने को मिलेगा, एक जन्म नहीं है। इसलिए एक जन्म में ज्यादा हैरान होने की बात नहीं, एक जन्म के लिए ज्यादा परेशान होने की बात नहीं। शान्ति से, समता से अपनी सहनशक्ति को बढ़ाओ, इस तरह के नरक के वर्णनों को याद करके।

नरक की शाश्वतता

इसलिए हर व्यक्ति को इन नरकों पर विश्वास होना जरूरी है क्योंकि जब तक आपको चार गतियों पर विश्वास नहीं होगा, तब तक आपके अन्दर भगवान जिनेन्द्र देव की वाणी पर विश्वास नहीं आएगा। सम्यग्दर्शन की कोई सम्भावना कहीं से कहीं तक होती नहीं है। आ रहा है विश्वास? नरक होते हैं? कितने होते हैं? सात होते हैं। उसमें कितने बिल होते हैं? कितने बिल होते हैं? 84 लाख रहने के अलग-अलग स्थान होते हैं। उन सात नरकों के अन्दर 84 लाख बिल हैं और वहाँ पर कितने नारकी होते हैं? न संख्यात होते हैं, न अनन्त होते हैं; वहाँ पर असंख्यात नारकी निवास करते हैं और हमेशा यह स्थान full रहते हैं। कभी यहाँ पर क्या सुन रहे हो? दुनिया में अनन्त जीव हैं, उनमें से असंख्यात जीव कहाँ मिलेंगे? नरकों में। कभी यहाँ पर खाली स्थान नहीं मिलेंगे कि भाई! यह कोना खाली रह गया, इस नरक में असंख्यात में कमी आ रही है, कोई आ ही नहीं रहा है कि भाई! संख्यात रह गए हैं। हमेशा भरे मिलेंगे और हमेशा वहाँ पर जन्म भी होते रहेंगे, हमेशा वहाँ पर मरण भी होते रहेंगे। किसी भी तरह से वहाँ पर संख्या में कमी आती ही नहीं है। यह संसार अनादि काल से ऐसे जीवों से भरा हुआ है और अनन्त काल तक ऐसे ही जीवों से भरा हुआ हमेशा बना रहेगा। अब उन्हीं जीवों के बीच में हम लोग भी जीव हैं तो बस अब अपनी-अपनी गति को सुधारो, अपनी-अपनी बात को देखो कि हम उनमें शामिल होना चाहते हैं कि नहीं? किसमें शामिल होना चाहते हैं? उन जैसे कार्य करो। जिसमें शामिल नहीं होना चाहते उनसे बचो और जिनमें शामिल होना चाहते उन जैसे कार्य करो। क्या करना है? करना तो वही है, जो हमें करना है महाराज! बस आपकी समझ तो एक घण्टे ही काम आती है।

गुरु सानिध्य का लाभ

अगर समझ लोगे तो फिर कहीं अच्छी जगह भी मिलेंगे और नहीं समझोगे यहाँ तो फिर बहुत दूरियाँ बढ़ जाएँगी। फिर कभी मिले न मिले, कुछ कहा नहीं जा सकता है। इसलिए कह रहा हूँ, समझदारी रखोगे तो आगे भी मिलते रहोगे। आगे भी आपको यह सानिध्य मिलते रहेंगे और आगे भी आपको ऐसी निकटता

गाथा: 86

मनुष्यभव में होने वाले दुःखों का वर्णन

पिय-माय-सयण-रहिओ, दुरंतवाहिहिं पीडिओ बहुसो ।
मणुअभवे णिस्सारे, विलाविओ किं ण तं सरसि ॥86 ॥

अन्वयार्थ- 'हे जीव! इस' (णिस्सारे मणुअभवे) निस्सार, मनुष्यभव में 'तुमने' (पिय-माय-सयण-रहिओ) पिता, माता 'व' स्वजनों से, रहित होते हुए 'तथा' (दुरंत-वाहिहिं) दुःख में ही है अन्त जिनका ऐसी दुरन्त यानी भयंकर, व्याधियों से (पीडिओ) पीड़ित होते हुए (बहुसो) बहुत प्रकार से (विलाविओ) विलाप किया है 'तुम' (तं) उसको यानी उस विलाप को (किं) क्यों (ण) नहीं (सरसि) स्मरण करते हो? ॥86 ॥

प्रतिदिन की भांति आज भी हम वैराग्य शतक की एक गाथा को लेकर के आगे बढ़ते हैं, गाथा नम्बर 86 पढ़ते हैं...

पिय-माय-सयण-रहिओ, दुरंतवाहिहिं पीडिओ बहुसो ।
मणुअभवे णिस्सारे, विलाविओ किं ण तं सरसि ॥86 ॥

यह वैराग्य शतक किन्हीं प्राचीन ऋषि-मुनि के द्वारा रचित है और इसमें संसार की वास्तविकता का वर्णन है। इन गाथाओं को पढ़े बिना कुछ भी कहने का मन हमारा बनता नहीं है। जब भी कोई बात प्रारम्भ होती है, जब तक सामने कोई भी पूर्व आचार्यों की वाणी न हो तब तक अपनी भी वाणी मुँह से निकलती नहीं है। इसलिए इस गाथा को आगे रखकर आप जिस प्रसंग में बैठे हैं, उस प्रसंग की भी बात करूँगा। थोड़ा सा हम समझते हैं कि जो भाव हमारे लिए वास्तव में होना चाहिए, वह भाव इन ग्रन्थों में है।



जीव अत्यधिक भयानक व्याधियों से पीड़ित होता हुआ रोया है

आचार्य कहते हैं... 'पिय माय सयण रहिओ' पिता-माता और स्वजन से रहित होकर 'दुरंतवाहिहिं पीडिओ बहुसो' यह जीव बहुत 'दुरंत' अर्थात् अत्यधिक भयानक, जिनका अन्त न हो, ऐसी कठिन व्याधियों से पीड़ित होता हुआ बहुत बार 'मणुअभवे णिस्सारे' इस निस्सार मनुष्य भव में 'विलाविओ' रोया है। 'किं ण तं सरसि' क्या तुम उसको याद नहीं कर रहे हो? आज यह बात कही जा रही है। मनुष्य भव की बात है

क्योंकि आप पहले नरक भव की, तिर्यच भव की बातें सुन चुके हो। मनुष्य भव भी यह अनेक बार प्राप्त हुआ है और अनेक बार इस मनुष्य भव में भी अनेक तरह की व्याधियों से जीव पीड़ित रहा है।

पूर्व भव के दुःखों की स्मरण करने से मनः शान्ति

आचार्य कहते हैं, यह मनुष्य भव को तुमने हमेशा निस्सार किया है, इसमें कोई सार नहीं था। ऐसे निस्सार मनुष्य भव में तुमने अनेक तरह से अपने माता-पिता, स्वजनों के साथ रहकर भी विलाप किया और कभी-कभी ऐसा हुआ कि वह भी नहीं रहे। माँ भी नहीं रही, पिता भी नहीं रहे, अपने बन्धु भी नहीं रहे और तुम व्याधियों से पीड़ित होकर अकेले दुःखी होते रहे। इस तरह का दुःख तुमने पहले भी मनुष्य भव में अनेक बार प्राप्त किया है। अगर उस दुःख को भी स्मरण कर लोगे तो आज भी तुम्हारे मन में थोड़ी सी शान्ति आ जाएगी और तुम्हें अपने दुःखों से मुक्ति मिलने के लिए खुद एक चिकित्सा तुम्हारे मन में आ जाएगी।

पिछले जन्मों के व महापुरुषों के दुःखों को देखकर भी हम अपने दुःख कम कर सकते हैं

आचार्य यह कहना चाहते हैं कि जब भी हमारे अन्दर दुःख आते हैं, चाहे वह रोगों के हो, किसी भी तरह की मानसिक व्याधियों के हो तो उस समय पर हमें अपने पुराने दुःखों को याद कर लेना चाहिए और हर मनुष्य के जीवन में यह जन्मान्तरों में घटित हो चुका है। इसलिए हर मनुष्य को इस बात पर भी विश्वास करना चाहिए कि हम पहले भी मनुष्य हो चुके हैं और कई बार मनुष्य होने के बावजूद भी हमने कभी इस तरह का ज्ञान प्राप्त नहीं किया। कई बार मनुष्य होने के बावजूद भी हमने पिछले जन्मों के दुःखों का स्मरण नहीं किया क्योंकि हमें पिछले जन्मों का विश्वास हुआ नहीं। यह बात इसलिए बताई जाती है ताकि हम अपने पिछले जन्मों का भी विश्वास करें और जब हम पिछले जन्मों का विश्वास करेंगे तो हमें इस जन्म के दुःख बहुत कम हैं, यह अपने आप आभासित होने लगेगा। इसलिए पिछले जन्मों के दुःखों को देखकर भी हम अपने दुःखों को कम कर सकते हैं। इस जन्म के दुःखों को देखकर भी हम अपने दुःख कम कर सकते हैं और जो महापुरुष हुए हैं, उनके दुःखों को देखकर भी हम अपने दुःख कम कर सकते हैं।

संसार में सभी को शारीरिक व मानसिक दुःख उपलब्ध

आज की बात एक महापुरुष से जुड़ती है, जिस महापुरुष का आज के दिन अवतरण हुआ। जैसे आकाश में चन्द्रमा की चाँदनी सभी को शीतलता देती है वैसे ही इस धरती पर एक महापुरुष ऐसा है, जो आज भी सभी भव्य जीवों को शीतलता प्रदान कर रहा है। एक ऐसे महापुरुष के जीवन में भी अगर हम झाँककर देखे, उन आचार्य परमेश्वरी के जीवन में भी हम झाँककर देखे तो हम उनके भी दुःखों को देख सकते हैं। आपने कभी सोचा है कि उन्होंने भी अपने जीवन में बहुत पीड़ायें झेली हैं, दुःख प्राप्त किए हैं। आपको सुख के दिन तो याद रहते हैं लेकिन दुःख याद नहीं रहता और उनके जीवन में अगर हम देखे तो उन्होंने अपने जीवन में बहुत दुःख झेला है। शारीरिक दुःख भी बहुत झेला है और मानसिक दुःख भी वह शायद बहुत झेलते रहते हैं। झेलते रहते हैं, वह उनकी सामर्थ्य है कि वह झेलते हुए भी हँसते रहते हैं। यह उनकी योग्यता है कि वह शारीरिक पीड़ा में भी स्वस्थ जैसे दिखते हैं और मानसिक दुःखों को प्राप्त करके भी वह शायद उतने ही खुश

रहते हैं, जितना आप दुःख के बिना रहते हैं। यह उनकी योग्यता है लेकिन दुःख तो संसार में सभी को होता है, शारीरिक दुःख भी मिलते हैं, मानसिक दुःख भी मिलते हैं।

जब आचार्य श्री को मलेरिया हुआ था

यहाँ आप अभी सुन रहे थे, सतना की बात है, पण्डित महेश जी का नाम सुन रहे थे। यहाँ पर एक पण्डित नीरज जी हुए, उनका नाम सुन रहे थे। यहाँ एक और विद्वान बैठे हैं जिनका नाम सिद्धार्थ है, उनकी भी आप बात सुन सकते हैं और उनके भी जो पूर्वज रहे हैं... पण्डित जगनमोहन लाल जी शास्त्री, उनका सम्बन्ध कटनी से भी रहा है और सतना से भी है। उस समय की वह बात है जब आचार्य महाराज कटनी में थे और कटनी प्रवास में उन्हें बहुत तीव्र ज्वर आया था। यह बात बहुत कम लोगों को ज्ञात होगी लेकिन जो युवा लोग हैं या जो उस समय के लोग हैं, उन्हें वह सब बातें याद होंगी। आचार्य महाराज का उस कटनी प्रवास के दौरान इतना तीव्र ज्वर आना, 107 डिग्री का बुखार! कभी आया है आपको? कितना? एक सौ सात डिग्री। कभी 99 से 100 हो जाए और 101 हो जाए तो आफत होने लग जाती है और 102 हो जाए तो दिन में तारे दिखने लग जाते हैं और कहीं दो से ऊपर पहुँच जाए तो अब बचेगा कि नहीं बचेगा? ऐसा संशय होने लग जाता है। एक सौ सात डिग्री बुखार, हम कभी सोच भी नहीं सकते और उन्हें जब भी बुखार आया, इसी तरह का आया। ऐसा बुखार उनके जीवन में एक बार, दो बार नहीं; बीस बार उनके जीवन में इस तरह का बुखार आ चुका है, तीव्र बुखार से वह पीड़ित हो चुके हैं। जब वह कटनी में थे, उस समय पर आप जानते हैं कि जैसा सतना में मच्छरों का प्रकोप है, ऐसे ही कटनी में भी मच्छरों का प्रकोप है। यह area मच्छरों वाला area ही है और उस समय पर भी वह शायद उस प्रकोप के कारण से उन्हें मलेरिया बुखार आया हो और वह उस मलेरिया बुखार में इतने पीड़ित हो गए, इतने पीड़ित हो गए कि उस समय पर वहाँ पर क्षुल्लक जी के रूप में समयसागर जी महाराज थे, योग सागर जी महाराज भी क्षुल्लक जी थे। समयसागर जी महाराज को भी बुखार आ गया, आचार्य महाराज को भी बुखार आ गया; संघ में और भी एक दो महाराज थे, उनको भी बुखार आ गया।

क्षुल्लक स्वरूपानंद जी कौन थे?

अब उस समय पर पण्डित जी कहें कि इन सबको संभालने का दायित्व कौन ले? पंडित जी ने योग सागर जी महाराज से पूछा कि क्या अपने संघ में कोई, वरिष्ठ कोई साधु नहीं है? योग सागर जी महाराज ने कहा कि हाँ! एक क्षुल्लक स्वरूपानंद जी हैं, वह आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के अन्तिम शिष्य हैं तो उनको बुलवाया गया। उस समय पर वहाँ अजमेर से अनेक और श्रावक आए और उन सब श्रावकों के माध्यम से भी वैयावृत्ति हुई और फिर आचार्य महाराज का कई दिनों के बाद में स्वास्थ्य धीरे-धीरे ठीक हुआ। जब आचार्य महाराज का स्वास्थ्य ठीक हुआ, तो वह कटनी से विहार करके कुंडलपुर गए। यह बात है 76-77 की और कुंडलपुर विहार करके जब गए, कुंडलपुर में रुके और वहाँ पर भी दस दिन रुक पाए होंगे और उसके बाद में पुनः बुखार आ गया उनको और वहाँ पर फिर से वह पण्डित जगनमोहन लाल जी वहाँ पहुँचे और कुछ दिन वहाँ रहे। उस समय पर जब आचार्य महाराज को बुखार आया, वह बुखार जब थोड़ा सा हल्का पड़ा तब भी उनके शरीर में कमजोरी थी और उस कमजोरी में भी वह अपनी पूरी आवश्यक चर्या

करते थे और चर्चा करने के साथ-साथ वह हमेशा समयसार जी सुना करते थे।

अनासक्ति महायोगी महाराज श्री द्वारा रचित महाकाव्य

पण्डित जी उस समय पर समयसार जी पढ़ा करते थे और आचार्य महाराज सुना करते थे। उन्होंने शायद उस समय पर एक अध्यात्म अमृत कलश की एक book तैयार कर ली थी और उसकी भी चर्चा आचार्य महाराज से किया करते थे। यह बात अलग है कि उस चर्चा के उपरान्त आचार्य महाराज ने उन्हें बहुत सुझाव दिए थे, वे सारे सुझाव अभी वर्तमान की पुस्तक में सुधर नहीं पाए लेकिन चर्चा थी। उसी प्रसंग में मुझे मुनि श्री योग सागर जी महाराज ने बताया क्योंकि जो भी पुरानी बातें हैं 76-77 की, वे मुझे कहाँ से पता होंगी तो मुझे जितनी भी पुरानी जानकारी है, वह मुझे प्रामाणिक सूत्रों से अगर मिलती है, तो मुनि श्री योग सागर जी महाराज के माध्यम से मिलती है। उन्हीं से प्राप्त जानकारी को लेकर के हमने एक संस्कृत में, प्राकृत में आचार्य महाराज के ऊपर एक काव्य लिखने की कोशिश की थी, उसका नाम है- **अनासक्त महायोगी**, यह महाकाव्य।

आचार्य श्री द्वारा शास्त्रीय विनोद भाव

जब वह जानकारी हमें मिली तो मुनिश्री ने बताया कि उस समय पर आचार्य महाराज इतने सचेत थे, इतने जागृत थे कि जब वह पण्डित जी पढ़ते थे तो पढ़ते-पढ़ते भी कभी-कभी वह थोड़ा सा विनोद कर लिया कर लेते थे। विनोद समझते हो? लेकिन वह होता था विनोद, हास्य, कैसा? शास्त्रीय होता था। महाराज ने मुझे बताया कि उस ग्रन्थ में एक बार 77 नम्बर के पेज पर एक वैराग्य की चर्चा आई तो आचार्य महाराज ने कहा...पण्डित जी! देखो, पेज नम्बर 77 है, आपकी उम्र भी 77 है और संयोग की बात है कि ईस्वी भी 77 चल रही है। पण्डित जी उस समय पर देख कर मुस्कुराने लग गए और वह समझ गए कि आचार्य महाराज क्या कहना चाह रहे हैं। 77 की उम्र हो रही है, वैराग्य की चर्चा चल रही है, पेज नम्बर भी 77 है। आप समझ सकते हो कि आचार्य श्री क्या कहना चाह रहे हैं और सन 77 की बात है।

आचार्य श्री को वैराग्य कैसे हुआ

अब यह सब संयोग मिल गए तो पण्डित जी के मन में हास्य तो उत्पन्न हो गया। फिर जब आचार्य महाराज थोड़े स्वस्थ हो गए तो वह उनके पास में रुकते थे। सुबह-सुबह आते थे, अर्घ आदि चढ़ाते थे, पूजा करते थे, उनके पास में बैठकर रोजाना चर्चा किया करते थे तो एक दिन उन पण्डित जी ने आचार्य महाराज से पूछा- महाराज! आपसे एक बात पूछना चाहते हैं। आचार्य श्री ने कहा- बताओ, क्या पूछना है? पण्डित जी कहते हैं...महाराज आपसे यह पूछना है कि आपको इतनी कम उम्र में वैराग्य कैसे हो गया?

आचार्य महाराज को भगवान से राग हो गया

आचार्य महाराज कहते हैं...भगवान से राग हो गया इसलिए संसार से वैराग्य हो गया। जब यह उत्तर दिया

आचार्य श्री ने तो पंडित जी विचार करने लगे कि आचार्य श्री आज भी मनोविनोद में है क्योंकि यह कोई वास्तविक उत्तर तो है नहीं। थोड़ी देर उन्होंने चर्चा की, चर्चा करने के बाद में फिर उन्होंने दोबारा पूछा- महाराज जी! आप सही-सही तो बताओ, यह तो आपने हास्य में टाल दिया। आपको वैराग्य हुआ कैसे? आपको वैराग्य होने का कारण क्या है? मैं जानना चाहता हूँ। फिर आचार्य श्री कहते हैं...तुम जैसे लोगों के चेहरों को देख करके मुझे वैराग्य हो गया मतलब तुम जैसे पढ़े-लिखे लोग, अच्छी उम्र के लोग, घर में अच्छे ढंग से रहने वाले लोग भी दुःखी दिखाई देते हैं, चिंतित दिखाई देते हैं। संसार का हर प्राणी मुझे परेशान दिखाई देता है इसलिए उन्हें देखकर मुझे वैराग्य हो गया; दूसरी बार उन्होंने यह उत्तर दे दिया। पण्डित जी का समय पूरा हो गया, पण्डित जी चले गए। पण्डित जी सोचने लगे कि आचार्य श्री अपने वैराग्य के बारे में भी हमें कुछ बताना नहीं चाहते हैं तो उन्होंने सोच लिया कि इनके जीवन में शायद इस जन्म का यह वैराग्य नहीं है। इनके जीवन का यह वैराग्य पूर्व जन्म का वैराग्य है इसलिये इन्हें सहज वैराग्य की यह प्राप्ति हुई है। जब वैराग्य पूर्व जन्म का होता है, तो इस जन्म में कोई विशेष कारण मिले, ऐसा जरूरी नहीं होता है और बिना कारण के भी व्यक्ति उस पथ पर आगे बढ़ जाता है।

107° बुखार और पैर में कांटा लगना

आचार्य महाराज ने जब इस तरीके से पण्डित जी से कहा तो आप समझ सकते हैं कि उनके अन्दर पीड़ा की अवस्था में भी, रोग की अवस्था में भी कितना उनके अन्दर साहस रहता है, जागृति रहती है और जब यही प्रसंग आचार्य महाराज कभी-कभी हम लोगों को भी संघ में सुनाया करते थे तो बड़े चाव से कहते थे- 107 बुखार आता था, 107। सप्तम गुण स्थान वालों को इतना तीव्र बुखार आना बहुत कम होता है और सातवें गुणस्थान में सात बुखार की अनुभूति करने वाले हम हैं। मतलब कि सप्तम गुणस्थान में रहते हुए भी, सात बुखार आकर भी, अपने अन्दर जागृति बनाए रखना, चिल्लाना नहीं, चीखना नहीं यह बहुत बड़ी बात होती है। शायद किसी को आता नहीं होगा इतना बड़ा बुखार। ऐसा लगता है कि जैसे बड़ा बुखार भी बड़े आदमियों को ही आता है, बड़े लोगों को ही आता है। एक बार आचार्य महाराज के पैर में कांटा लग गया और वह कांटा कई दिनों के बाद में निकला और जब कांटा निकला तो वह काफी बड़ा कांटा था। संघ में सब लोग साथ में चल रहे हैं, कांटे लगते रहते हैं लेकिन इतना बड़ा कांटा किसी ने नहीं देखा जो आचार्य श्री के पैर में लगा और जब वह कांटा निकला तो आचार्य श्री कहते हैं- यह तो बहुत बड़ा है। बड़े महाराज को बड़ा ही कांटा लगता है, ऐसा लगता है। बड़े व्यक्तियों के ऊपर उपद्रव भी बड़े-बड़े होते हैं। आप यह विचार करें कि उनके जीवन में बीसों बार इस तरीके के बुखार आ चुके, उनकी पीड़ाएँ बुखार की तो हमने कम देखी हैं लेकिन और पीड़ाएँ तो हमें देखने को मिली और वह देखी हैं।

हरपीज रोग की वेदना को भी आचार्यश्री ने शांत भाव से सहन किया

अमरकंटक की बात है, वहाँ के पास में एक पेंड्रा स्थान है, वहाँ पर आचार्य श्री को एक हरपीज रोग हुआ था जिसका साक्षात्कार मैंने किया। आचार्य महाराज के निकट रहकर देखता था कि उस हरपीज रोग में उन्हें इस दायें पैर के जंघा से लेकर नीचे पैर तक वह पीड़ा होती थी और वह कमर के पास तक भी वे लाल-लाल से दाने आ गए थे। उस समय पर वह हरपीज जो रोग होता है, उसमें इतनी वेदना होती है कि

अगर वह जिसको होगी, उसी को समझ में आएगी। संयोग की बात है कि उसी समय पर बिलासपुर में एक inspector था, उसको हरपीज की वेदना हुई और उस समय पर एक news viral हुई कि उसे इतनी हरपीज की वेदना हुई कि वह अपनी पेंट उतार कर, दफ्तर से बाहर आकर, वह बाहर सड़क पर दौड़ने लग गया; इतनी वेदना हुई। उस समय पर लोग आए और उन्हें यह समाचार आचार्य महाराज को दिया। सबको पता पड़ा तब हमें लगा कि देखो एक inspector जैसा बलिष्ठ जवान भी, पुलिस का आदमी भी इस वेदना को नहीं सह पाता है और आचार्य महाराज यहाँ कितने शान्त भाव से उस वेदना को सहन कर रहे हैं। वह वेदना इतनी होती थी कि अगर हवा की थोड़ी सी भी, कोई ऊपर से थोड़ी सी हवा कर दे या कहीं से थोड़ी सी हवा की लहर आ जाए तो वह हवा भी चुभती थी।

जब नरक की वेदना का स्मरण आया

आचार्य महाराज ने अपने उस वेदना के समय पर एक वाक्य बोला था हम लोगों के समक्ष- यह सुना है, नरकों में हजारों बिच्छू काटते हैं लेकिन आज हमें समझ में आ रहा है कि नरकों में हजारों बिच्छू काटते हैं, तो कैसी वेदना होती होगी; यह आज हमें अनुभूति हो रही है। आप सोचे...वेदना के प्रसंग में भी वह हमें ऐसा ज्ञान देते हैं और शान्त भाव से ऐसा ज्ञान दे रहे हैं; इसलिए दे रहे हैं क्योंकि उन्होंने यह सब वैराग्य के शतक, वैराग्य के भाव सब उनके अन्दर समाए हुए हैं और यही वैराग्य के भाव हैं कि वैराग्य में भी अगर हमें स्थिरता रखनी है, तो हमें वह क्षण याद करने पड़ते हैं कि ऐसी पीड़ाएँ, ऐसे दुःख हमने अनन्तों बार भोगे हैं। जब भी कभी पीड़ा हो, दुःख हो; इस तरह का विचार करने से ही समता का भाव आ सकता है। इसलिए यह वैराग्य शतक में हमें बार-बार कहा जा रहा है...अगर आपको नरक के जैसी वेदना हो, तो नरक की पीड़ा याद कर लो; तिर्यचों जैसी वेदना हो तो तिर्यचों की पीड़ा याद कर लो; मनुष्यों की वेदना हो तो मनुष्यों की पीड़ा याद कर लो; कोई भी पीड़ा अगर तुम पुरानी याद करोगे और उसको स्मरण करके शान्त भाव रखोगे तभी यह वर्तमान की पीड़ा आपकी, बिना बन्ध किए हुए, बिना कर्मबन्ध के आपके अन्दर से बाहर निकलेगी। समता का भाव अगर आएगा तो कैसे आएगा? इन्हीं प्रसंगों को याद करने से आएगा। आचार्य महाराज के प्रसंगों को भी अगर हम ध्यान में रखें कि उन्होंने अपने समय में कितनी-कितनी पीड़ाएँ सहन की? जब वह हरपीज का रोग हुआ तो उस समय पर वहाँ पर आस-पास अमरकंटक था; जड़ी-बूटियों का वहाँ पर बहुत ही प्रचार चलता है। अनेक लोग वहाँ पर इस प्रकार के आते हैं कि जो जड़ी-बूटी के विषय में विशेष रूप से जानते हैं। एक व्यक्ति आया, हाथ में एक लकड़ी को लिए हुए और कहने लगा कि महाराज! अगर हम यह लकड़ी बस एक बार हम उस स्थान पर फेर दे तो सारी पीड़ा दूर हो जाएगी और यह बात उसने आचार्य श्री से नहीं कही। जो हम लोग बाहर रहते थे, हम लोगों से कही।

अनेक महाराज जी का एक ही समय पर दीक्षा दिवस

हम थे, उस समय मुनि श्री प्रसाद सागर जी महाराज थे, जिनका आज दीक्षा दिवस भी है, यह भी आपको याद रखना चाहिए। मुनि श्री प्रशांतसागर जी महाराज जिनकी समाधि हो गई है, उनका दीक्षा दिवस भी आज के ही दिन है। ऐसे अनेक मुनि महाराज आज भी जो दीक्षा दिवस जिनका है, अपूर्व सागर महाराज थे उनकी भी समाधि हो गई, आज भी निर्णय सागर जी महाराज हैं, एक प्रबुद्ध सागर महाराज हैं, एक विनीत

सागर जी महाराज हैं, इन सबका दीक्षा दिवस भी आज का ही दीक्षा दिवस है। ऐसे अनेक मुनि महाराजों का दीक्षा दिवस भी है आज और ये मुनि महाराज जगह-जगह पर अपने चातुर्मास कर रहे हैं, जगह-जगह पर अपनी धर्म-साधना कर रहे हैं। मुनि श्री विनीत सागर जी महाराज को भी अगर आप देखोगे तो देखोगे कि महाराज की हड्डी-पसली बिल्कुल सप्त में बाहर दिखी गई। कभी देखा है? अरे भाई! यहाँ तो चातुर्मास हुआ है, हमने सुना है। अरे वाह! ऐसे मुनि महाराज और उनके साथ में रहने वाले मुनि महाराज हैं, वे चन्द्रप्रभ सागर महाराज लेकिन शरीर में अन्तर होते हुए भी दोनों के अन्दर के वैराग्य में, तपस्या में कहीं कोई कमी नहीं दिखाई देगी। इससे आप जान सकते हो कि बाहर से बलिष्ठ दिखने की जरूरत नहीं है। भीतर का साहस, भीतर की जो आत्मशक्ति होती है, उसके कारण से ही व्यक्ति तप के मार्ग पर, त्याग के मार्ग पर आगे चल पाता है। आज वह चन्द्रप्रभ सागर महाराज, मुनि श्री प्रसाद सागर जी महाराज, आचार्य महाराज के निकट हैं, उनके चरण-सानिध्य में हैं और उनके भी उस दीक्षा दिवस की मंगल भावना उन तक प्रेषित हो जाए, इसलिए बोलिए मुनि श्री प्रसाद सागर जी महाराज की जय, मुनि श्री विनीत सागर जी महाराज की जय। ऐसे मुनि महाराजों के दर्शन जो आप कर लेते हो, यह सब भी आपके पुण्य के योग से होता है और जब आचार्य महाराज इस तरह से आज्ञा दे देते हैं...जाओ! सतना में जाकर चातुर्मास कर लेना। यह मुनि महाराज का तो पुण्य होता ही होगा, साथ में श्रावकों का भी पुण्य होता होगा, ऐसा लगता है।

आचार्य श्री का अद्भुत प्रसंग

जब इस तरह से प्रसंग बनते हैं तो वे प्रसंग याद आते हैं कि जब मुनि श्री प्रसाद सागर जी थे, हम थे; उस समय पर आचार्य महाराज के निकट में और वह व्यक्ति आया। हम लोगों से कहने लगा- महाराज! एक बार मुझे आचार्य श्री की उस स्थान पर लकड़ी फेर लेने दो, जड़ी-बूटी है, बिल्कुल ठीक हो जायेंगे। बस! एक बार थोड़ी सी लकड़ी फेरने का दर्द होगा लेकिन मैं एक बार फेर दूँगा तो मुझे विश्वास है ठीक हो जायेंगे। अब बताओ! क्या करें? हम लोग चिन्ता में पड़े कि आचार्य महाराज को हवा तक भी सहन नहीं हो रही है और यह लकड़ी घुमाना चाह रहा है उनके शरीर पर। उनसे पूछेंगे तो वे कभी हाँ नहीं करेंगे और हम लोगों को चिन्ता होती है कि अगर यह विश्वास से कह रहा है, ठीक हो सकता है तो शायद ठीक हो जाएँ, एक बार करा कर देख लेते हैं। क्या करें? ऐसे निर्णय कभी-कभी लेने पड़ते हैं।

आचार्य श्री का समता भाव

अब आचार्य महाराज आराम से विश्राम की स्थिति में हैं और वह व्यक्ति आया। उसको धीरे से कहा...ठीक है! तुम अपना प्रयोग करके देख लो लेकिन पीड़ा बढ़नी नहीं चाहिये, समाप्त होनी चाहिये। वह बड़ी दृढ़ता से, आत्म विश्वास से कहने लगा- महाराज! आज पीड़ा बिल्कुल सही हो जाएगी। उस व्यक्ति ने वह एक लकड़ी थी, अच्छी मोटी और उसने महाराज की, आचार्य श्री की यहाँ कमर से लेकर इस तरीके से उसने कस कर घसीटी कि वह घसीटते हुए नीचे पैर के अंगूठे तक लाया और आचार्य महाराज उस समय पर क्या कहें, इतनी वेदना में उन्होंने उसको सहन किया लेकिन फिर भी उन्होंने उफ नहीं किया और फिर बोले-

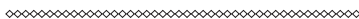
प्रसाद! तुम क्या करवाते रहते हो? प्रसाद सागर जी महाराज से बोले- क्या करवाते रहते हो? उस समय पर इतना जब उन्होंने बोला तो महाराज जी डर गए लेकिन वह व्यक्ति ने इस लकड़ी खींच दी और हुआ कुछ नहीं, उल्टा पीड़ा और बढ़ गई और वह बहुत वेदना हो गई और आचार्य श्री उस वेदना को भी सहन कर गए। अब वह वेदना चली लगभग, वह वेदना वहाँ पर सात-आठ दिन तक बनी रही और वह वेदना जब समाप्त हो गई तो थोड़ी सी हल्की होने के उपरान्त ही आचार्य श्री ने उस पेंड्रा से विहार कर दिया और वे अमरकंटक आ गये। चलने में कठिनता थी, चलने में असुविधा थी, दर्द था लेकिन फिर भी जैसे ही उनके लिए थोड़ी सी चलने की स्थिति बनी, वे चल पड़े। अब वे अमरकंटक तक चल कर आ गये। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, चलते-चलते अमरकंटक आ गए और अमरकंटक में आने के बाद में उस समय पर कहते हैं... प्रवचन हुआ। थोड़ी देर बैठ गए और बोले...उस समय पर कहते हैं- यह अमरकंटक का पहाड़ पैर क्या चढ़ते? इरादों ने चढ़ा है। इतना उनका मजबूत इरादा रहता है। जब आचार्य महाराज को उस समय पर पेंड्रा में पीड़ा हुई तो मैंने देखा...एक रात वह बिल्कुल भी नहीं सोए और बस लेटे रहते थे और उस लेटने की स्थिति में जब वह कोई भी अपना प्रतिक्रमण है, सामायिक है, सब बराबर; स्वाध्याय है, सब बराबर मन ही मन करते रहते थे। स्वयंभू भी आचार्य श्री रोजाना पढ़ते थे और उस दिन जब सुबह-सुबह स्वयंभू पढ़ने का समय हुआ तो आचार्य महाराज के निकट हम बैठे थे। हमने कहा...आचार्य श्री! आज स्वयंभू हम सुना दे तो आचार्य श्री कहते हैं- नहीं! आवाज भी चुभ रही है। मतलब उन्हें इतनी वेदना थी कि किसी का बोलना भी उन्हें चुभ रहा था। कोई बात नहीं, फिर थोड़ी देर वे उसी स्थिति में रहे फिर उन्होंने आँख खोली, देखा मेरी ओर तो मैं समझ गया जैसे अभी इशारा समझ गया था, ऐसे ही मैं आचार्य श्री का इशारा समझ गया। फिर उस समय पर हमने धीरे-धीरे, बहुत धीमे-धीमे जितना कि वह सहन कर सकें, उतनी शान्ति के साथ में पहली बार हमने आचार्य श्री को स्वयंभू स्तोत्र सुनाया होगा, जो जिन्दगी भर हम उनसे सुनते रहे।

आचार्य श्री का आत्मबल बहुत है कि केशलोंच कर लिया

आप सोचे कि जब आचार्य श्री पेंड्रा से अमरकंटक पहुँच गए और वहाँ पहुँचने के उपरान्त अगले ही दिन उनके केशलोंच का समय हो गया था; उस पीड़ा में विहार करने के उपरान्त भी उन्होंने अगले दिन केशलोंच कर लिया। सब मुनि महाराज कहते रह गये...आचार्य श्री, यह केशलोंच थोड़ा बाद में भी हो सकता है क्योंकि एक दिन बाद चातुर्मास की स्थापना होनी है और जब चातुर्मास की स्थापना एक दिन बाद होगी तो उपवास फिर होना है। उस समय पर पीड़ा उनको पूरी थी लेकिन उन्होंने अपनी दृढ़ता से उस समय पर केशलोंच किया। केशलोंच की पारणा की और पारणा के उपरान्त अगले दिन फिर चातुर्मास की स्थापना का फिर एक उपवास कर लिया और इतना उन्होंने परीषह सहन करते हुए भी अपने मन के अन्दर, अपने किसी भी तरह की आवश्यकों में कोई कमी नहीं लाई। यह साहस, इसे कहते हैं- आत्म-बल। हम कभी आचार्य महाराज की इन प्रसंगों से आत्म-बल लाने की कोशिश क्यों नहीं करते हैं? जब हमारे सामने दुःख आते हैं तो हम अपने इन महापुरुषों के चरित्रों से कुछ सीखते क्यों नहीं हैं? हम केवल पूजा करने में और केवल जो है उनकी आरती उतारने में ही अपना धर्म-ध्यान समझ लेते हैं लेकिन अगर हम इस तरह के प्रसंगों को सुनकर अपने अन्दर एक आत्म-बल बढ़ायें, आत्म-साधना बढ़ायें तो शायद यह आचार्य महाराज की सच्ची उपासना होगी, यह आचार्य महाराज के प्रति सच्ची श्रद्धा होगी।

अनासक्त महायोगी ग्रन्थ, आचार्य महाराज का जीवन चरित्र है

अगर हम उन्हें अपना आदर्श मानते हैं तो उनके इन प्रसंगों को ध्यान में रख कर हमारे अन्दर यह साहस आना चाहिए कि हम भी कठिन परिस्थितियों में इसी तरह से आचार्य परमेष्ठी को याद करके, उनके गुणों का स्मरण करके हम इस तरह से अपने दुःखों को दूर कर पायें; यही हमें इस वैराग्य शतक में सिखाया जा रहा है। आपको आचार्य श्री के गुणों का स्मरण अगर होता है तो केवल एक पूजा के माध्यम से ही होता है और किसी माध्यम से नहीं होता। आपसे कहा था कि यह **अनासक्त महायोगी** एक ग्रन्थ है, जो प्राकृत में, संस्कृत में, हिंदी में तीनों भाषा में लिखा हुआ है। अगर यह ग्रन्थ आपको केवल हिंदी-हिंदी में भी उपलब्ध होता है तो इस पूरे ग्रन्थ को अगर आप पढ़ोगे तो आपको लगेगा कि वास्तव में आचार्य महाराज का जीवन क्या है? बिल्कुल ईसा की शताब्दियों के माध्यम से ऐतिहासिक व्याख्यानों की तरह और हर तरह के प्रसंगों में उनके भीतरी गुणों को अभिव्यक्त करते हुए **अनासक्त योगी**, यह ग्रन्थ लिखा हुआ है। हम चाहते हैं कि अगर आपकी आचार्य श्री पर वास्तविक श्रद्धा है, तो इस ग्रन्थ को आप एक बार अवश्य पढ़ो और अगर यह ग्रन्थ आप एक बार पढ़ेंगे तो हम चाहते हैं कि इस ग्रन्थ की एक बार इस तरह से आपके माध्यम से अध्ययन होना चाहिए; हर व्यक्ति के माध्यम से वह ग्रन्थ पढ़ने में आना चाहिए।



गाथा: 87

यह जीव संसार रुपी वन में अकेला ही भ्रमण करता है।

पवणुव्व गयणमग्गे, अलक्खिओ भमइ भववणे जीवो।
ठाणट्ठाणंमि समुज्झिऊण धण-सयण-संघाए ॥87॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्!' (पवणुव्व) पवन के, समान अर्थात् जिसतरह पवन (अलक्खिओ) अलक्षित यानी अप्रगट/अदृश्य स्वरूप होता हुआ (गयणमग्गे) आकाश मार्ग में (ठाणट्ठाणंमि) स्थान-स्थान पर (भमइ) भ्रमण करता रहता है 'ठीक उसी तरह यह' (जीवो) जीव (धण-सयण-संघाए) धन 'और' स्वजनों के, समूहों को (सं-उज्झिऊण) बिलकुल, त्यागकर (भव-वणे) संसाररूपी, वन में (ठाणट्ठाणंमि) स्थान-स्थान पर (अलक्खिओ) अलक्षित-सा (भमइ) भ्रमण करता रहता है ॥87॥

प्रतिदिन की भांति धर्म देशना के इस अवसर पर वैराग्य शतक ग्रन्थ के माध्यम से आचार्यों के भावों को आगे समझते हुए अपने जीवन की समस्याओं का समाधान करने का इसी में से कुछ उपाय ढूँढ़ते हैं। आज गाथा नम्बर 87 पढ़ते हैं...

पवणुव्व गयण मग्गे, अलक्खियो भमइ भववणे जीवो।
ठाणट्ठाणंमि समुज्झिऊण, धण- सयण- संघाए ॥87॥

जीव कैसा है

आचार्य कहते हैं... 'पवणुव्व गयण मग्गे' गगन-मार्ग में पवन की तरह, गगन-मार्ग आकाश को कहते हैं... क्योंकि आकाश हमेशा खाली सा दिखाई देता है और उसमें अनेक चीजें रहती हैं और पवन भी उसी आकाश में रहती है, वायु का प्रवाह भी उसी आकाश में रहता है। जिस तरह से इस गगन-मार्ग में अर्थात् आकाश में पवन हमें हमेशा अलक्षित दिखाई देती है अर्थात् दिखाई नहीं देती है... 'अलक्खियो' अर्थात् जो हमें पहचानने में न आए, दिखाई न दे, उसे हम अलक्षित कहते हैं। जैसे आकाश मार्ग में हवा देखने में नहीं आती, ऐसे ही 'भववणे जीवो' इसी तरह से इस संसार वन में जीव भी अलक्षित है, देखने में नहीं आता और फिर भी 'भमइ' अर्थात् भ्रमण तो करता ही है। जिस तरह से हवा भ्रमण करती है, देखने में नहीं आती; ऐसे ही इस संसार के वन में जीव भी भ्रमण करता है, देखने में नहीं आता। जीव भ्रमण तो करता है लेकिन जीव देखने



में नहीं आता और इस जीव को यहाँ पर अलक्ष्य कहा है, अलक्षित कहा है; जो देखने में नहीं आता, वह पहचानने में नहीं आता, वह भी होता तो है। जैसे हवा होती है; देखने में नहीं आती, पहचानने में नहीं आती लेकिन होती तो है। उसी तरह से जीव दिखाई नहीं देता, पहचानने में नहीं आता, कभी पकड़ में भी नहीं आता लेकिन होता तो है।

नय के माध्यम से जीव को जानना

यह जीव की यहाँ पर जो हमें पहचान बताई जा रही है, जीव को समझने का जो हमें ज्ञान दिया जा रहा है, यह जीव का वास्तविक ज्ञान है और इस ज्ञान को ही आचार्यों ने कहा है...यह निश्चय नय का ज्ञान कहलाता है। दो तरह के नय आपने सुने होंगे। बच्चों ने भी सुन ही रखे हैं, कौन से नय? व्यवहार नय और निश्चय नय। जो भी चीजें हमें दिखाई देती हैं, वह दोनों तरह से दिखाई देती हैं- व्यवहार से भी और निश्चय नय से। हमें पता होना चाहिए, हम अगर किसी भी पदार्थ को, किसी भी वस्तु को केवल एक नय से जानते हैं, एक ही दृष्टिकोण से हम देखते हैं, जानते हैं तो वह ज्ञान हमारे लिए दुःख का ज्ञान बन जाता है और जब हम दोनों नयों से संसार की व्यवस्था, जीव की व्यवस्था जानेंगे तो वह ज्ञान हमारे लिए सुख का ज्ञान बन जाएगा। जब ज्ञान दुःख देता है, तो समझना कि हम केवल वस्तु को, जीव को एक रूप में जान रहे हैं और जब हम एक रूप में जानेंगे तो वह हमारा ज्ञान एक तरह से दुःख का ज्ञान होगा, दुःख देने वाला होगा और उसी को मिथ्या ज्ञान भी कहा जाता है। जब हम दोनों तरह से जीव को जानेंगे तो वह ज्ञान हमें सुख देगा; वह सम्यग्ज्ञान कहलाएगा और उसके माध्यम से ही हमारे जीवन में उजाला आता है। किसके माध्यम से? सम्यग्ज्ञान के माध्यम से।

सम्यग्ज्ञान के माध्यम से सुख की व मिथ्याज्ञान के माध्यम से दुःख की अनुभूति

मिथ्याज्ञान के माध्यम से जीवन में अंधेरा हो जाता है और अंधेरे में अक्सर दुःख होता है और सम्यग्ज्ञान के माध्यम से जीवन में उजाला आता है और उजाले में ही सुख मिलता है। बताओ! आप सुख में बैठे हो कि दुःख में बैठे हो? सुख में बैठे हैं। जब हम जीव को समझते हैं तो यह जीव दोनों तरह से अगर ज्ञान रखेगा तब तो यह समझेगा और सुख की अनुभूति करेगा और अगर यह जीव एक ही प्रकार का ज्ञान रखता है, केवल अपने अन्दर मिथ्या ज्ञान ही रखता है या केवल मोह का ज्ञान ही रखता है, तो यह जीव धीरे-धीरे दुःख में चला जाता है, अंधेरे में चला जाता है। यह अंधेरा कई तरह का होता है...बाहर का अंधेरा तो समझ में आता है लेकिन भीतर भी एक अंधेरा होता है, वह हमारी समझ में नहीं आता है, उस अंधेरे में हम डूबते चले जाते हैं।

मानसिक अन्धकार

यह अज्ञान का अंधेरा होता है, जिसके कारण से हम अपनी मानसिकता को धीरे-धीरे कमजोर करते चले जाते हैं। जिसके कारण से हमारे मन के अन्दर धीरे-धीरे दुःख बढ़ता चला जाता है और हम उस अन्धकार में पड़ते चले जाते हैं जो मानसिक अन्धकार कहलाता है, अज्ञान का अन्धकार कहलाता है। आचार्य यहाँ

कहते हैं कि जीव हमेशा अलक्षित है, अलक्षित अर्थात् दिखाई नहीं देगा। अब अपने को जो दिखाई दे रहा है, वह सब क्या दिखाई दे रहा है? अब यहाँ पूछे हम... यहाँ कौन बैठे हैं? ये बच्चे बैठे हैं, ये लोग बैठे हैं, कौन हैं ये? बोलो! कौन हैं? जीव हैं। अब यहाँ कहा जा रहा है कि जीव दिखाई नहीं देता और ये सब जीव ही तो बैठे हैं जो दिखाई दे रहे हैं। ये कौन दिखाई दे रहे हैं? जीव दिखाई दे रहे हैं। जीव को ही हम देख कर चलते हैं, तभी तो कहा जाता है कि भाई! दया-धर्म का पालन करो, जीव देख करके चलो, जीव की हिंसा न हो जाए, जीव हमसे मर न जाए, जीव का ख्याल रखो। हम क्या देख कर चलते हैं? जीव देख करके चलते हैं और यहाँ कहा जा रहा है कि जो संसार में भ्रमण करने वाला जो जीव है, वह अलक्षित है; वह दिखाई देता नहीं है। दिखाई नहीं भी देता है और दिखाई देता भी है।

जीव के स्वरूप

जीव के हमें दोनों रूप दिखाई दे रहे हैं कि जीव दिखाई नहीं भी देता है और जीव दिखाई देता भी है। जब हमें जीव दिखाई नहीं देता तो हम देखे कि वास्तव में जीव नहीं दिखाई देता, जीव का शरीर दिखाई देता है। क्या दिखाई देता है? शरीर। जीव दिखाई नहीं देता लेकिन हम जीव के शरीर को देख कर ही समझ लेते हैं कि यह जीव है और वह जीव ही हमारे लिए काम का होता है। जीवों से ही हमारे रिश्ते बनते हैं। रिश्ते किससे बनते हैं? सम्बन्ध किससे बनते हैं? पति-पत्नी के सम्बन्ध, पिता-पुत्र के सम्बन्ध, मित्र-मित्र के सम्बन्ध, किससे बनते हैं? जीवों से ही बनते हैं और जीवों से वह सम्बन्ध बनते हुए भी यहाँ कहा जा रहा है कि जीव हमें दिखाई नहीं देता है।

जीव तीन लोक में भ्रमण करता है

वह जीव क्या करता है? 'ठाणट्टाणंमि' स्थान-स्थान में 'धण-सयण-संघाए' धन के, स्वजन के समुह में 'समुज्झिऊण' छोड़-छोड़ करके उन सबको भ्रमण करता रहता है। जीव का काम क्या है? भ्रमण करना। संसारी जीव की पहचान क्या है? घूमना, भ्रमण करना; जीव भ्रमण कर रहा है। आप सोचते हो कि हम भ्रमण कर रहे हैं, मनुष्य भ्रमण कर रहा है; यहाँ पर कहा जा रहा है कि जीव ही भ्रमण कर रहा है। मनुष्य तो उसकी एक दशा है और मनुष्य उसके लिए एक छोटा सा स्थान है। भ्रमण करने के लिए तो उसके पास में तीन लोक का बहुत बड़ा स्थान है और भ्रमण करने के लिए वह तीनों लोकों में घूमता है, तीनों लोकों में भ्रमण करता है और उसी तरह से घूमता है जैसे हवा घूमती है। हवा को कहीं से कहीं पहुँचने में कोई time नहीं लगता। हवा कहीं से कहीं किसी भी समय पहुँच सकती है। ऐसे ही यह जीव एक स्थान से दूसरे स्थान में कभी भी पहुँच सकता है। इसे भ्रमण करने के लिए बहुत बड़ा लोक मिला हुआ है और उसमें यह जीव नियम से भ्रमण करता है और दिखाई नहीं देता। जो दिखाई नहीं देता वह जीव है और वही जीव भ्रमण कर रहा है और जो दिखाई दे रहा है वह जीव नहीं है वह मनुष्य हो सकता है, कीड़ा हो सकता है, तिर्यच गति का जीव हो सकता है जो दिखाई दे रहा है। जीव जब हमें दिखाई देता है, तो वह एक स्थान है उसका; उस स्थान पर हमें दिखाई देता है लेकिन वह उस स्थान पर थोड़े दिन के लिए रहने आया है। फिर वह स्थान छोड़ देगा, दूसरे स्थान पर पहुँच जाएगा। ऐसे करके वह 'ठाणट्टाणंमि' 'ठाणट्टाणंमि' अर्थात् स्थान-स्थान पर, स्थान-स्थान पर सब जगह उसे जाना होता है, सब जगह उसे भ्रमण करना होता है। किसको? कौन जीव

को? दूसरे जीव को? किस जीव की बात कही जा रही है? जो हम जीव हैं, उन सभी जीवों की बात कही जा रही है। हर जीव स्थान-स्थान पर घूमता है। अब आप अगर इस मनुष्य में, इस मनुष्य गति के स्थान में आ गए, आप एक मनुष्य बन गए, आप अगर एक अभी बच्चे के रूप में हैं, आगे आप बड़े रूप में हो जायेंगे तो यह भी आपके लिए एक स्थान है थोड़े दिन रुकने का।

जीव का एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण

कैसे? जैसे यहाँ पर रेवाड़ी के बच्चे आए, रहने के लिए आए कि रुकने के लिए आए? क्या करने आए? बताओ! रुकने के लिए आए। रुकने के लिए आए तो कितना रुकने के लिए आए? तीन दिन के लिए रुकने के लिए आए। रुकने के बाद क्या करोगे? रुकने के बाद यहाँ पर रहोगे नहीं, यहाँ से चले जाओगे। ये जबलपुर के लोग आए हैं, रुकने आए कि रहने आए? क्या करने आए? बताओ! कोई तीन दिन रुकने आता है, कोई तीन घण्टे रुकने आता है, कोई 30 मिनट रुकने आता है; चला जाता है। अब हम बैठे-बैठे देखते रहते हैं। कितने सारे लोग आते हैं, दुनिया में कितने तरीके के लोग आ चुके, कितने देशों से, प्रदेशों से, विदेशों से कितने लोग आते हैं और कितने लोग चले जाते हैं और आ रहे हैं, जा रहे हैं, आ रहे हैं, जा रहे हैं, सब अपनी इच्छा से आ रहे हैं। कोई हमारी इच्छा से तो नहीं आता? सब अपनी इच्छा से आ रहे हैं, कोई एक दिन के लिए आता है, तीन दिन के लिए आता है, कोई दो दिन के लिए आता है; सब अपना-अपना अनुकूल time देख कर आते हैं। कब जाना? किसी occasion पर जाना कि जब महाराज खाली time पर होंगे तब जाना? कहीं अभी शिविर तो नहीं लग रहे हैं? फुर्सत में जाना कि शिविर के time पर जाना? सब अपनी-अपनी planning से आते हैं, अपना-अपना समय देख कर आते हैं और अपने-अपने समय से बंधे हुए होते हैं। कोई दो दिन की टिकट बनाकर लाता है, कोई तीन दिन की टिकट बनाकर लाता है और उसके बाद में उसे जाना ही होता है। कहाँ जाएगा? कुछ दिन फिर अपने घर पर रहेगा, कुछ दिन फिर कहीं और दूसरे स्थान पर रहेगा, फिर कहीं और दूसरे स्थान पर रहने लग जाएगा। इस संसार में भी मनुष्य होकर भी कितने स्थान वह जीव बदलता रहता है और यह सब करते हुए भी वह, अगर मनुष्य की दृष्टि से देखा जाए तो एक ही स्थान पर रह रहा है, सब मनुष्य गति में अभी रह रहा है, रह लेता है।

जीव का एक गति से दूसरे गति में भ्रमण

अब यह मनुष्य गति में कब तक रहेगा? बोलो! इस गति को भी छोड़ेगा कि नहीं? गति छूटेगी तो वह स्थान भी छूटेगा कि नहीं कि जहाँ पर रहता है? जहाँ रुकता है, जहाँ रहता है, वह स्थान भी छोड़ेगा कि नहीं छोड़ेगा? जब वह स्थान छूटेगा तो फिर वह जीव कहाँ जाएगा? फिर दूसरी गति में जाएगा, फिर दूसरे स्थान पर पहुँच जाएगा, फिर वहाँ रहने लग जाएगा और फिर वहाँ पर भी इसी तरह से करने लग जाएगा। यह स्थान-स्थान को छोड़-छोड़ कर जीव भ्रमण करता रहता है और जीव कभी दिखाई नहीं देता लेकिन स्थान-स्थान पर जहाँ रुकता है, वहाँ थोड़ी-थोड़ी देर के लिए वह देखने को मिल जाता है। अब यहाँ इतने सारे जीव बैठे हैं, ये इतने सारे जीव देखने को मिल रहे हैं। अब ये एक स्थान पर बैठे हैं, ये एक स्थान छोड़ देंगे, दूसरा स्थान ग्रहण कर लेंगे; फिर उस स्थान को भी छोड़ देंगे, उसको भी ग्रहण कर लेंगे। जैसे एक गति में भी ये स्थान अनेक तरह के बदल लिए जाते हैं, ऐसे अगर हम अपने दिमाग को थोड़ा सा फैलायें और तीन लोक के अन्दर देखे

तो बहुत स्थान हैं जहाँ पर यह जीव उन स्थानों में रह-रह करके, छोड़-छोड़ करके, उन गतियों को भी छोड़-छोड़ कर अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग गतियों में चला जाता है। कौन चला जाता है? जीव चला जाता है। अब जीव चला जाता है यह तो ठीक है, अब जब वह जीव यहाँ रह रहा है, किसी स्थान पर रह रहा है, तो वह जीव नहीं कहलाएगा।

ज्ञान प्रकाश है, मोह अंधकार है

अब यहाँ से मान लो कोई जीव चला जाएगा तो क्या कहलाएगा? बेटा चला गया, पति चला गया, बेटी चली गई, पत्नी चली गई, मम्मी चली गई, पापा चले गए, दादा चले गए, बुआ चली गई, फूफा चले गए, मौसी चली गई, मामा चले गए, मौसा चले गए, मामी चली गई, भांजा चला गया, भतीजा चला गया, चाचा चला गया, काका चला गया, नानी चली गई, नाना चला गया, पड़दादा चले गए, पोते का पुत्र चला गया, पोते की बहू चली गई, वह चाचा सास की बहू चली गई, चाचा ससुर चले गए, कुछ बचा; इतने में हो जाएगा? एक गति के लिए इतना पर्याप्त है। अब सोचो! क्या चला गया? हम जब भी कहेंगे तो हम क्या बोलेंगे? चाचा चले गए, ससुर चले गए, चाचा ससुर चले गए, हम यही बोलेंगे। हम कभी बोलेंगे जीव चला गया? सुनो, समझो! जिन दर्शन को पढ़ते हो, सुनते हो, आचार्य जो हमें ज्ञान देना चाह रहे हैं उस ज्ञान को अगर नहीं समझोगे तो अन्धकार में रहोगे, दुःखी रहोगे। इस ज्ञान को समझोगे तो प्रकाश में आओगे, सुखी रहोगे क्योंकि ज्ञान ही प्रकाश है, मोह अन्धकार है। मोह के कारण से बुद्धि उल्टी चलती है, एकांगी चलती है। मोह के कारण से हम केवल उतना ही देखते हैं, जितना सब देख रहे होते हैं। यह मेरा बेटा है, यह मेरा पिता है, ये मेरे पुत्र हैं; ये सब देख रहे होते हैं लेकिन इतना देखना किसके कारण से है? यह तो मोह के कारण से है। व्यवहार जितना भी चलता है, सब मोह से चलता है और हम जितना भी जानते हैं, व्यवहार नय से ही जानते हैं और व्यवहार के कारण से उस मोह को हम अनेक-अनेक सम्बन्धों में व्याख्यायित कर लेते हैं। ये सभी सम्बन्ध सबके साथ होते हैं। अब जब भी किसी जीव का एक स्थान पर रहने के बाद दूसरे स्थान पर जाना होता है, तो जीव का तो स्वभाव है, जाना है। यह बात अलग है...कोई पूरा time रह कर चला जाता है, कोई आधा time रह कर चला जाता है, कोई कम time में चला जाता है, कोई बिल्कुल ही कम time में चला जाता है। अब कभी भी चला जा सकता है, अब कोई क्या कर सकता है? भाई! जब तुम्हें जाना ही था तो तुमने परिवार क्यों बना लिया? अब उसे क्या पता था, मुझे जाना है। कोई आदमी यह तो सोच कर बैठता ही नहीं है कि मुझे जाना है इसलिए मुझे परिवार नहीं बनाना है। परिवार बनाता रहता है, परिवार बुनता रहता है। इधर जाने की आ जाती है, जब time आ जाता है जीव चला जाता है। उसका परिवार होता है, अधूरा रह जाता है। जीव चला गया यह विचार में आता है? कि हमारा कोई सम्बन्धी था वह चला गया; यह विचार में आता है? बताओ! देखो! अभी तो सब विचार में आएगा हम समझा रहे हैं इसलिए, जब घर में कुछ होगा तब समझना पड़ेगा। घर में कुछ भी होगा, किसी के साथ कभी भी किसी भी वक्त कुछ भी हो सकता है, किसी के भी घर में कुछ भी हो सकता है, कोई guarantee किसी भी चीज की है नहीं। अगर कुछ होता है और होने से हमें दुःख मिलता है, तो उस दुःख को दूर करने का अगर कोई तरीका है, तो क्या है? यह ज्ञान है, जो हमें यहाँ दिया जा रहा है।

सुख क्या है?

मैं हमेशा इन ज्ञानों में सुख ढूँढता हूँ। इस वैराग्य शतक में ज्ञान नहीं ढूँढ रहा हूँ। यह मैं पहले भी कह चुका हूँ, इस ग्रन्थ में कोई ज्ञान है ही नहीं है, इस ग्रन्थ में क्या है? समझदारी है, सुख की बातें हैं। अगर तुम्हें सुख समझना है, सुख से रहना है, तो इस चीज को समझो। यह ग्रन्थ अगर आप पढ़ भी लोगे तो एक क्षण में पढ़ लोगे। इसमें कोई अर्थ आपको नहीं मिलेगा, कोई नई बात आपको महसूस नहीं होगी। बताओ? इस गाथा में कौन सी नई बात है? हर मम्मी जानती है, हर बच्चा जानता है। जीव एक स्थान से दूसरे स्थान पर छोड़-छोड़ कर इस संसार में हवा की तरह घूमता रहता है, भ्रमण करता रहता है, Everyone knows. इस बात को हर कोई जानता है। नया क्या है? इसी ज्ञान में अब आप सोचो कि अपने मतलब का क्या है? अपने को सुख ढूँढना है। इस दुनिया में क्या ढूँढना है अपने को? दुःख नहीं ढूँढना है। क्या ढूँढना है? हम किसकी खोज में निकले? सुख की खोज में निकले। जो पढ़े उसमें से सुख ढूँढें, जो सुने उसमें से सुख ढूँढें, जो हम करें उसमें भी सुख ढूँढें और अगर सुख नहीं मिलते हुए भी हमें कुछ मिल रहा है, तो क्या मिल जाए? मान लो दुःख मिल जाए और हम ढूँढने निकले थे सुख और हमें मिल रहा है दुःख तो उस समय पर भी हमें विचार करना पड़ेगा कि इस दुःख में भी कोई सुख है कि नहीं? इतनी गहरी समझ अगर अपने अन्दर होगी तो यह जीवन अच्छे से जी पायेंगे...नहीं तो रोते-रोते आए हो, रोते-रोते ही जाओगे।

दुःख में सुख की खोज

सुन लो अच्छे ढंग से! जो दुःख भी मिल जाए तो उसमें भी हमें सोचना है कि भाई! इसमें भी कोई सुख की बात हो सकती है। इतनी अगर अपने अन्दर positivity होगी तो यह जिनवाणी अपने काम में आएगी अन्यथा आपके लिए अभी तो सुनने में अच्छा लग रहा है। अगर कोई घर में खुदा न खास्ता कुछ हो गया, कुछ गमी हो गई, कुछ कमी हो गई तो आपका दुःख इतना भी बढ़ सकता है कि यहाँ उपदेश सुनना भी भूल जाओ। आना ही नहीं हमें सुनने के लिए, बैठना ही नहीं हमें सुनने के लिए। अगर कहीं सुनना भी हो रहा हो, सुनाया भी जा रहा हो तो रास्ता काट कर निकल जाना क्योंकि हमें दुःख है। हमने मान लिया हमारे अन्दर दुःख है, अब दुःख में हमें कोई बात किसी की सुननी नहीं है। अब यह दुःख जब आपके अन्दर आ जाएगा तो इस दुःख से निकालने का अगर कोई एक अच्छा तरीका होगा तो यह जिनवाणी ही होगी और कोई नहीं निकाल सकेगा तुम्हें दुःख से। अगर तुम खुद दुःख से नहीं निकलना चाहोगे तो तुम्हें कोई नहीं निकाल पाएगा। दुःख से निकलने का एक ही तरीका है, हम जिनवाणी का श्रवण करें और जो कहा जा रहा है...उसको सुनने की कोशिश करें।

निश्चय का दृष्टिकोण

अगर इस संसार में जीव है, तो वह जीव भ्रमण करता है। एक जगह पर रुकता है, कुछ time के लिए रुकता है और अगर उस time पर रुकने में अगर आपने उसके साथ कोई भी तरह के अपने सम्बन्ध जोड़ लिए तो वे सम्बन्ध जुड़ तो गए, किससे जुड़े? मोह से जुड़े...मोह ही एक व्यवहार कहलाता है। व्यवहार कहो, मोह कहो; एक ही बात है। अर्थात् वह सम्बन्ध आपने व्यवहार से जोड़ा, मोह से जोड़ा लेकिन उस सम्बन्ध के पीछे एक और दृष्टिकोण था, उस पर आपने ध्यान नहीं दिया। उसको भी देखा जा सकता था

और वह दृष्टिकोण क्या था? वह निश्चय का दृष्टिकोण है, वह मोह से रहित होने का दृष्टिकोण है और वह दृष्टिकोण हमें जीव को दिखाता है, सम्बन्धों को नहीं दिखाता है। अब जब जीव है सामने तो हम उसको देख रहे हैं...किस रूप में? यह मेरी मम्मी हैं, यह मेरे चाचा हैं, यह मेरे नाना हैं, यह मेरे पिता हैं, ये मेरे पुत्र हैं; हम इन सम्बन्धों के रूप में देख रहे हैं। जब यह जीव चला गया तो क्या हुआ? सम्बन्ध टूट गया, मोह टूट गया। अब मोह टूट गया तो आपको उस मोह के कारण से अभी भी दुःख हो सकता है। क्यों होगा? क्योंकि आपका जो सम्बन्ध था, वह सम्बन्ध छूट गया। जो मोह था, उस मोह की पूर्ति नहीं हुई और आपके लिए अब जो दुःख होगा, वह दुःख अब आपके लिए गहरा होता चला जा सकता है और उस दुःख से आप दुःखी भी हो सकते हो। अब इस दुःख से दूर होने का उपाय क्या? जो यहाँ बताया जा रहा है। दूसरा दृष्टिकोण जो मोह से ऊपर उठकर होता है, वह कहलाता है- निश्चय का भाव, जीव को देखने का भाव। क्या चला गया? जीव चला गया। अभी तक हमने क्या बोला? मम्मी चली गई, पापा चले गए, भाई चला गया। यह हमारा सारा का सारा जो बोलना है, सोचना है, यह मोह के साथ बोलना-सोचना है। जब हम कहेंगे जीव चला गया तो जब हम जीव की बात करेंगे, जीव था, जीव कुछ देर तक हमारे साथ रहा, चला गया। जब हम जीव पर focus करेंगे तो वह हमारे लिए मोह में कमी लाएगा। देखो! चीजें कुछ नहीं हैं, जो चला गया, वह चला गया। अब आपके अपने सोचने का तरीका क्या है? वह आपके ज्ञान के ऊपर निर्भर करेगा कि आप सम्यग्ज्ञान के साथ चल रहे हो या उल्टे ज्ञान के साथ चल रहे हो।

सम्यक् दृष्टिकोण

सम्यग्ज्ञान के साथ चलोगे तो आपको दोनों तरह का ज्ञान होना चाहिए। जीव आता है, मोह के कारण से उससे सम्बन्ध बनते हैं, यह व्यवहार है। यह जीव का व्यवहारिक स्वरूप है, जो हर गति में देखने को मिलता है। जीव अपनी उम्र पूरी करके या उम्र से पहले भी जा सकता है, चला गया। मोह के कारण से सम्बन्ध थे, छूट गए। अब जीव चला गया। अगर उस जीव की ओर दृष्टि जाएगी तो दुःख में कमी आएगी, मोह में कमी आएगी। भाई! जीव था, स्वयं आया था स्वयं चला गया। किसी ने बुलाया था क्या? बुलाने से क्या आ जाता कोई? वह स्वयं बना था? स्वयं आया था, स्वयं उसने अपने आस-पास अपनी चीजें निर्मित की थी और उन्हीं चीजों में कुछ चीजों से उसका मोह जुड़ गया था और वह उन चीजों के साथ कुछ दिनों तक रहा और वह चला गया। अगर हम इस निश्चय पर ध्यान देंगे, जीव के उस स्वरूप पर ध्यान देंगे, जीव आता है, जीव चला जाता है। आता है तो अच्छा लगता है और चला जाता है तो बुरा लगता है। भाई! आना भी तो जाने के लिए ही होता है। नहीं होता? महाराज आए हैं, कैसा लग रहा है? अच्छा नहीं लग रहा है? नहीं! लग रहा है? किनको अच्छा लग रहा है? अरे! हाथ उठाने को तो कोई भी हाथ उठा देगा। अब हमारे सामने हमारी बुराई थोड़े ही न करोगे। कोई भी आता है, तो अच्छा लगता है और जब आता है, तो यह भी निश्चित है कि वह आया है, जाने के लिए ही आया है। आना तो सबको अच्छा लगता है और जाना किसी को अच्छा नहीं लगता। आपको ये बच्चे अच्छे लग रहे हैं, आए हैं; अच्छे लग रहे हैं? अगर आए हैं तो आप इनको भी थोड़ा सा रोक सकते हो...बेटा! अभी मत जाओ, अभी रुक जाओ, अच्छा लग रहा हो तो यहीं पर और रहो। ऐसा किसी ने कहा? कोई नहीं कहता। अपना बच्चा होता इसमें कोई तो?

प्रेम भाव के साथ ही अपनेपन का भाव

एक बच्चा सतना का भी है इसमें, **सफल!** तेरी मम्मी रोक रही होगी तेरे को? रोक रही है? फिर क्या करेगा? अब सबके साथ आए हैं तो सबके साथ जाना ही होगा। मम्मी ने अलग से बुला कर तुझे भोजन भी कराया होगा? बुलाया था? घर में अलग से बुला कर, अच्छे से भोजन कर लिया? नाश्ता, मिठाई सब खा ली? अच्छा! तुझे इतनी समझ नहीं आई कि इतने सारे बच्चे हमारे साथ में हैं, इनको भी हम मिठाई खिलाते। खिलाई थी? देखो! मम्मी बोल पड़ी, बैठ जा। मैं एक मम्मी की बात नहीं कर रहा, एक बेटे की बात नहीं कर रहा, मैं यह बताना चाह रहा हूँ कि जैसे आपके अपने बेटे होते हैं, आपको अपने बच्चे से मोह होता है, आपको अपना बच्चा अपना लगता है; ऐसे ही अगर हम अपनी दृष्टि थोड़ी सी व्यापक करे तो हमें हर बच्चे में अपना बच्चापन भी दिखाई दे सकता है, हर बेटे में अपनापन दिखाई दे सकता है। आखिर सोचने की बात है, आखिर यह दिमाग क्या काम करता है? अपना बेटा भी दूर रह रहा है और जो बेटे हैं, वे भी दूर रह रहे हैं। हमने एक से अपनापन बना रखा और बाकी के हमारे नहीं हैं। एक को तो हमने बुला लिया, एक को हमने खिला लिया, एक को हमने लाड़ कर लिया और बाकी के? अगर मन में प्रेम हो, अगर सब बच्चों में अपनापन हो तो हर व्यक्ति के अन्दर यह भाव आ सकता है...हर बच्चा मेरा है, हर बच्चा अपना है, हर बच्चे से अपनापन हर किसी का हो सकता है।

हर किसी में अपनापन देखना

आप एक-एक बच्चे को अपने घर पर भी बुला कर खिला सकते हो और अगर आपके अन्दर अपनापन हो तो हम जैसे अपने बच्चे के लिए अच्छी-अच्छी चीजें पहुँचाते हैं, भेजते हैं, खिलाते हैं; ऐसे ही इन बच्चों के लिए भी आज हमारी तरफ से भोजन इन बच्चों का, एक महीने के लिए हमारी तरफ से बच्चे भोजन करेंगे। आखिर जिन बच्चों को हम जीवन भर अपने पास रखते हैं, वो बच्चे अगर जीवन भर हमारे पास नहीं भी हैं और हम अगर समर्थ हैं तो हम अगर एक ही जगह पर बीस बच्चों का, चालीस बच्चों का, पचास बच्चों का अगर हम भोजन एक साथ उन्हें करें, करायें, दे तो क्या होगा? जन्म-जन्मान्तरों में और इसी जन्म में अगर आपने कभी किन्हीं के लिए इस तरह के अपने प्रेम-भाव से उन्हें पाला है, पोसा है तो आपके प्रेम में कभी भी इतनी कमी नहीं आएगी कि दूसरे आपको छोड़ कर जायें और आपको उनके अभाव में रोना पड़े।

अपनेपन के पुण्य से जन्म-जन्मान्तर के सुख

यह पुण्य किससे मिलता है? यह आपस में प्रेम-भाव से मिलता है। अपना बच्चा कभी अगर असमय में छोड़ कर चला जाता है, तो कितना दुःख होता है और वह दुःख क्यों होता है? क्योंकि हमने अपने बच्चों की तरह दूसरे बच्चों का पालन पोषण नहीं किया। इसलिए जो लोग अपने बच्चों की तरह दूसरों के लिए भी देते हैं, करते हैं; उनके लिए अपने परिवार के सुख मिलते हैं, अपने बच्चों के सुख मिलते हैं और कभी-कभी आपको देखने को मिलता होगा, ऐसे भी घर होते हैं जहाँ पर बच्चे कुछ उम्र के बाद वियोग को प्राप्त हो जाते हैं, मृत्यु हो जाती है और माता-पिता को दुःख होता है। इसका कारण क्या होता है? यही कारण होता है। हम जब इस संसार में आए हैं और इस संसार में हमें यह सब कुछ देखने को मिल रहा है, तो हम यहाँ पर ऐसे कर्म करें जिसके कारण से हमारे अगले जीवन में हमें दुःख न मिले। सबसे प्रेम करोगे, सबके लिए

कुछ न कुछ दोगे, सबके लिए कुछ न कुछ अच्छा भाव रखोगे तो आपको अपने जन्म-जन्मान्तरों में ये सुख मिलते रहेंगे और देखो! जब आप बड़े आदमी बनोगे, बड़े राजा बनोगे तो एक-एक राजा के कई-कई पुत्र होते हैं और वे पुत्र कैसे बन जाते हैं? इसी तरह के प्रेम से बन जाते हैं। मानो अगर आप पचास बच्चों को एक साथ भोजन दे रहे हो, एक साथ इनका पालन कर रहे हो, ये पचास बच्चे कभी तुम्हारे पुत्र बन गए तो तुम्हें पिता की तरह देखेंगे, माँ की तरह देखेंगे, तुम्हारे स्नेह से जुड़ेंगे। किस कर्म के कारण से? आज तुमने यहाँ कोई अच्छा कर्म किया; यह कर्म तुम्हें जन्म-जन्मान्तरों में सुखी बनाने में कारण बनता है, यह नहीं सीखते। सतना के लोग बहुत पढ़े-लिखे हैं, सब सीखते हैं; बस! प्रेम-भाव नहीं सीखते हैं। आपस में किसी को कुछ देना, आपस में प्रेम से रहना, यह सीखना बड़ा मुश्किल काम है।

एक दूसरे का सहयोग

एक दूसरे के सहयोगी बनना, एक दूसरे के लिए कुछ करना, यह करना बड़ा कठिन काम है; बाकी सब आसान है। यह करना भी सीखना चाहिए कि नहीं सीखना चाहिए? सीखना चाहिए। अगर कभी व्यक्ति, आप सोचो! कोई व्यक्ति बड़ा राजा बनता है और उस राजा के पास में बहुत सारे लोग होते हैं और वे लोग उसके स्नेह के कारण से उससे जुड़े रहते हैं तो ये लोग स्नेह से जुड़ कर कैसे बन जाते हैं? जो उसने अपने मनुष्य जन्म में अनेक तरह के इस तरह से दान किए, पुण्य कार्य किए, वही सभी लोग अगले जन्म में उसके स्नेही बनकर उसका साथ देते हैं और वह एक राजा की तरह अपने अन्दर अनुभूति लाता है कि मैं बड़ा राजा हूँ और ये सब हमारे लिए सहयोगी बने हुए हैं, ये सब पुण्य। मनुष्य जन्म प्राप्त करने के बाद अपनी दिमाग व्यापक रखनी चाहिए। एक बच्चे के मोह से जुड़ोगे, दो बच्चों के मोह से जुड़ोगे, अपने बच्चों के मोह से जुड़ोगे तो मोह बढ़ेगा और जहाँ मोह बढ़ेगा वहाँ नियम से मानकर चलना, दुःख बढ़ेगा। अपने बच्चे से जितना मोह रखते हो उतना ही दूसरे बच्चों से अगर मोह रखोगे तो सुख बढ़ेगा और केवल अपने बच्चे से मोह रखोगे तो दुःख बढ़ेगा। मोह ही दुःख का कारण है। इसलिए आचार्य कहते हैं...अगर हमें यह समझ आ जाए, यहाँ इतने जीव आए हैं, ये जीव हैं। कुछ समय के लिए ये जीव आए हैं और इन जीवों के साथ में हम अगर स्नेह रखते हैं, इनके साथ में हम वात्सल्य और प्रेम के भाव से पेश आते हैं तो हम इन जीवों का प्रेम जन्म-जन्मान्तरों में अपने साथ बांध सकते हैं और यही एक बांध कर जाने वाली चीज है, बाकी कोई चीज बांध कर जाने वाली नहीं है।

क्या जाएगा साथ में? मोह बांध कर जाना है कि सबका प्रेम बांध कर जाना है? मोह बांध कर जाओगे तो फिर मोह ही मिलेगा और उतना ही मिलेगा जितना तुमने चाहा है और वह छूट गया तो फिर दुःख होगा और प्रेम बांध कर जाओगे, जहाँ जाओगे इतने लोग मिलेंगे तुम्हें प्रेम करने वाले...जैसे कहते हैं- किसी का भरे-पूरे घर में जन्म हुआ और एक का ऐसे घर में जन्म हुआ कि जन्म देने के बाद में माँ को भी परवरिश करने की फुर्सत नहीं है और उसके आस-पास न उसके पिता हैं, न कोई है, न घर के कोई लोग हैं। यह किस कारण से होता है? हमने अगर पिछले जन्मों में दुनिया से प्रेम किया है, दुनिया का प्रेम बटोरा है, तो हमें अगले जन्म होते ही इतना प्रेम मिलेगा कि हम प्रेम में ही पलसे-पुलते जायेंगे और अगर हम मोह में रहे तो बस जिससे मोह किया है उतना ही मिलेगा; यह संसार का सिद्धान्त है। यही यहाँ बताया जा रहा है...

अगर आपको यह समझ आ जाए कि यहाँ पर जीव आता है, जाता है और इस आने-जाने के बीच में अगर कोई चीज साथ में जाती है, तो वह है- प्रेम। बस! और कुछ नहीं जाएगा, आपके सम्बन्ध आपके पास रह जायेंगे।

मोह के कारण से एकांगी समझ

जो जीव चला जाएगा वह सम्बन्धों को लेकर नहीं जाएगा, वह तो अपनी अलग रास्ते पर चला गया और आपका वह सम्बन्ध तब तक रहेगा, जब तक आपको उस जीव की याद रहेगी। आप भी चले जाओगे तो आप भी अलग रास्ते पर चले जाओगे। अब वे दोनों जीव अलग-अलग रास्ते पर चले गए, किसी को कुछ नहीं पता और जब तक हम यहाँ हैं, तब तक रो रहे हैं। यह मेरा था, यह मेरा चला गया, यह मुझसे वियोग को प्राप्त हो गया, यह मुझे कब मिलेगा? कोई कभी नहीं मिलेगा। जो मिलता है, वह सब संसार में मोह के कारण से मिलता है और मोह के कारण से ही संसार में सभी सम्बन्ध बनते हैं। जीव तो किसी के साथ हमेशा एक जैसे सम्बन्ध रखने वाला होता ही नहीं है। हमेशा कोई जीव आपका सम्बन्धी बना रहे, कोई नहीं बनता। कौन पता? कौन जीव कौन सा सम्बन्धी बन गया? और अगले जन्म में वह जीव न जाने कौन से लोक के किस छोर पर चला गया और यहाँ बैठे-बैठे...महाराज! उसकी सद्गति हुई होगी कि नहीं? ऐसी चिन्ता करते हैं...जैसे जन्म-जन्म तक हमें उसी के साथ रहना हो। बस एक ही जीव की चिन्ता है जो हमारा था, उसकी सद्गति हुई होगी कि नहीं? जब उसकी मृत्यु हुई थी तो उस समय पर उसके परिणाम बहुत अच्छे थे महाराज! उसकी सद्गति ही हुई होगी? आप थोड़ा ठप्पा तो लगा दो। आपको अभी भी उसी की चिन्ता है, जीव की चिन्ता नहीं है। किसकी चिन्ता है? जो मेरा था उसकी चिन्ता है। यह जो मेरेपन की चिन्ता के साथ में अगर सारे जीवों की चिन्ता करो तो क्या होगा? क्या दिखाई देगा आपको? आँख बन्द करके देखोगे संसार में हर क्षण कितने जीव जी रहे हैं, मर रहे हैं? कितने तरह से जीव हर गति में जा रहे हैं? हर गति से निकल रहे हैं? क्या है इस संसार में इसके अलावा कुछ चल रहा है। हर जगह पर, बड़ी-बड़ी जगहों पर जहाँ अभी भी युद्ध हो रहे हैं, उन युद्धों में अभी भी लोग मर रहे हैं, हर जगह पर लोग accidents में मरते रहते हैं। हर जगह पर लोग आग में मरते रहते हैं, पानी में डूब-डूब कर मरते रहते हैं, हर जगह पर लोगों के कत्ल होकर मरण को प्राप्त होते रहते हैं, जीव सब जगह मरते रहते हैं लेकिन जब जीव को जीव देखोगे तो समझ में आएगा...यह संसार में तब तक चलता रहेगा, जब तक कि यह जीव मोह करता रहेगा और मोह करने के माध्यम से अगर यह जीव अपनी समझ बनाता है, तो एकांगी इसकी समझ रहती है। दूसरा दृष्टिकोण निश्चय का जो होता है, वह जब तक ज्ञान में नहीं आता तब तक अन्धकार मन में रहता ही है।

सीधी सोच

जब कोई अपना सम्बन्धी चला जाता है, तो हम यह तो कहते हैं- महाराज! मेरे चाचा चले गए, मेरी बुआ चली गई, मेरे फूफा चले गए लेकिन हम यह कभी नहीं कहते हैं, जीव चला गया। अगर कहना भी सीख लेंगे तो विचार बदल जाएगा; बोलने से ही विचार बदल जाता है। अगर आपके बोलने में जैसे ही जीव आएगा, आपका दृष्टिकोण बदल जाएगा; जीव चला गया। अब कभी भी यह बात ध्यान में रख सकोगे कि अपने सम्बन्धियों का कभी भी वियोग हो तो उस समय पर हम अगर एक दूसरे से बात करें तो यह कहें,

भाई! क्या हो गया? कोई तुमसे मिलने आए, बैठने आए, क्या बोलते हैं उसको? बैठने जाते हैं लोग, यही बोलते हैं न? क्या बैठने जाते हैं? बैठ कर क्या मिल जाता है? थोड़ा सांत्वना देने जाते हैं, बैठने जाते हैं; इसलिए जाते हैं ताकि सामने वाले को लग जाए कि मैं भी हूँ तुम्हारे साथ में, वह चला गया तो कोई बात नहीं। अगर आप में थोड़ी समझदारी आ जाए, थोड़ा अगर हम पर विश्वास हो, जिनवाणी पर विश्वास हो तो आज से एक प्रण कर लेना क्योंकि सबके घर हैं, सबके परिवार हैं, सबके यहाँ कोई न कोई जाने वाला तैयार रहता है। जाना-आना सबके यहाँ चलता रहता है। अगर कोई चला जाए और कोई अपने सामने बैठने आए तो आप उससे इतना कह सको...कोई बात नहीं भाई! जीव आया था, जीव चला गया; बस! इतना बोलना है आज से। सामने वाला दंग रह जाएगा। सामने वाला जो आपको यह सोच कर आया था कि आप उसे देख कर रोयेंगे, आपके लिए दुःख होगा। वह सोचेगा कि नहीं! यह हमसे बहुत समझदार हैं, हम इनको क्या मनायेंगे? इन्हें तो जिनवाणी का ज्ञान मिला है, इन्हें तो गुरु का ज्ञान मिला है। ये हमको भी समझाने में तैयार हैं। इसलिए भाई! यहाँ ज्यादा बैठने की जरूरत नहीं है, कोई बात नहीं भाई! आए थे, अब हम जा रहे हैं, जल्दी जा रहे हैं। वह जल्दी चला जाएगा। भगाना चाहते हो कि नहीं? कि बैठाए रखना चाहते हो, उसके साथ रोना चाहते हो और दुःखी होना चाहते हो? मन तो वही करता है महाराज! लोग आते रहें, मिलते रहें, बैठते रहें, दुःखी करते रहें और हम दुःखी होते रहें। यही मन होता है। कई लोगों का मन होता है, बस! लोग उसी-उसी बात को पूछते रहें, वहीं-वहीं बैठते रहें, दुःख होता रहे, दुःख बढ़ता रहे, वह रुलाते रहें और हम रोते रहें बस! यह भाव अगर बढ़ता जाएगा तो क्या होगा? इसी से जिन्दगी निकल जाएगी। जिन्दगी किससे निकलेगी? रोने से निकलेगी कि अच्छे ढंग से जीने से निकलेगी? जीने के लिए क्या, अपनी सोच बदलनी पड़ेगी? उस समय पर आपको यह कहना पड़ेगा, यह बोलना पड़ेगा, यह सोचना पड़ेगा...जीव आया था, चला गया। बोल पाओगे? नहीं बोल पाओगे? उस समय तो महाराज! आँखें भर जायेंगी, मुँह भर जाएगा, कण्ठ रुक जाएगा, रोने की पड़ेगी; उस समय आपकी बातें कहाँ याद आयेंगी। क्या बोलना पड़ेगा? आप क्यों आ गए भैया यहाँ पर? जब कोई बैठने आए अपने पास में, तो अपन उससे पूछें- भाई! आप क्यों परेशान हो रहे हैं? आप क्यों आ गए? जीव आया था, चला गया। अरे बाप रे! यह तो बिल्कुल उल्टी खोपड़ी का है। वह सामने वाला सोचेगा क्या? यह तो बिल्कुल उल्टे दिमाग का है। अब उसका यह दिमाग उल्टा है कि सीधा है? बताओ! आप किसकी बात ज्यादा मानते हो, जो आपके आसपास लोग हैं उनकी मानते हो कि हमारी मानते हो? बताओ! कुछ नहीं मानते, सब झूठे हो, एक number के झूठे हो। हम थक जायेंगे समझाते-समझाते लेकिन बात तो उनकी ही मानोगे। वह अगर यह समझे कि यह तो क्या बोल रहा है? यह तो बिल्कुल इसका दिमाग खराब हो गया या यह तो बिल्कुल कैसा बोल रहा है? उल्टा बोल रहा है और हम आपसे कहें, आपकी यह सोच उल्टी नहीं है, यह सोच सीधी है। आपको यह क्या बोलना है? यह आपको सीधा बोलना है। आपको किसकी चिन्ता करनी है? बात किसकी माननी है? बताओ! मान कर दिखाओगे?

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप

जब कोई आपके पास ऐसी condition में बैठने आए और आप कही, भाई! कुछ नहीं है, होता है, जीव आया था चला गया, होता रहता है; संसार इसी का नाम है। इतना बोल पाओगे? नहीं महाराज! Never. देखो! सामने वाला बोलेगा तो आपको बुरा लगेगा और सामने वाला इससे बोलने की हिम्मत इसलिए नहीं

गाथा: 88

संसार में जीवों को प्राप्त होने वाले दुःखों का वर्णन

विद्धिज्जन्ता असयं, जम्म-जरा-मरण-तिक्ख-कुंतेहिं।

दुहमणुहवन्ति, घोरं, संसारे संसरंत जिया ॥88 ॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्! ये' (जिया) जीव 'चतुर्गतिरूप' (संसारे) संसार में (संसरंत) संसरण यानी पर्यटन करते हुए (जम्म-जरा-मरण-तिक्ख-कुंतेहिं) जन्म, जरा 'और' मरणरूप, तीक्ष्ण, कुंतों यानी भालों के द्वारा (असयं) बारम्बार (विद्धिज्जन्ता) बींधे यानी छेदे जाते हुए (घोरं) भयंकर (दुहं अणुहवन्ति) दुःख का, अनुभवन करते हैं 'इस संबंध में सोचो' ॥88 ॥

प्रस्ताविक



आप सभी लोगों के समक्ष वैराग्य शतक ग्रन्थ के माध्यम से प्रतिदिन पूर्व आचार्यों प्रणीत कुछ मंगलमय भावों का वर्णन किया जाता है। यह ग्रन्थ प्राकृत भाषा में निबद्ध है। यह ग्रन्थ की अभी तक जानकारी किसी को भी नहीं है और इस ग्रन्थ पर प्रथम बार इस तरह से, इस ग्रन्थ के प्रकाशन होने से पहले ही इसकी वाचना प्रारम्भ हो चुकी है। ऐसे इस ग्रन्थ को जो आप प्रतिदिन सुन रहे हैं, पढ़ रहे हैं; इसी क्रम में इस गाथा नम्बर

88 को पढ़ते हैं-

विद्धिज्जन्ता असयं, जम्म-जरा-मरण-तिक्ख-कुंतेहिं।

दुहमणुहवन्ति घोरं, संसारे संसरंत जिया ॥88 ॥

कैसे बनें मृत्युंजयी?

आचार्य कहते हैं... 'विद्धिज्जन्ता' यानी भेदे गए हो, 'विद्ध' हुए हो यानी जैसे किसी अस्त्र-शस्त्र से छेदे जाते हैं, भेदे जाते हैं, ऐसे ही यह 'जिया' अर्थात् जो जीव हैं; यह भेदे गए हैं, छेदे गए हैं। 'असयं' यानी बहुत बार, 'जम्म-जरा-मरण-तिक्ख-कुंतेहिं' जन्म, जरा, मरणरूपी तीक्ष्ण, कुंता बोलते हैं- भाला को, इन तीव्र तीन-तीन नुकीले भालों से यह जीव पिछले समयों में भेदे गए हैं। एक बार नहीं अनेक बार भेदे गए हैं और इस तरह से जीवों ने संसार में बहुत दुःख का अनुभव किया है। संसार में भ्रमण करते हुए जीव निरन्तर यह जन्म, जरा और मृत्यु के तीक्ष्ण दुःखों का अनुभव करते हैं। जब भी कोई जीव मरण को प्राप्त होता है, तो उस समय पर उसको बहुत भारी दुःख होता है, भय होता है और उस दुःख के समय पर अगर उसे कोई थोड़ा

सा साहस दे दे, ढाढ़स बना दे और उसके परिणामों में कोई एक समता का भाव ला दे तो यह अपने आप में बहुत बड़ा पुण्य का कार्य होता है। मृत्यु जब भी अपने समक्ष आएगी, आती है, उस समय पर मृत्यु से डर होना स्वाभाविक है लेकिन उस मृत्यु के समक्ष होने पर भी अगर हम उस मृत्यु को जीतने का साहस कर पाएँ और उससे निडर होकर सामना कर पाएँ तो हम इन दुःखों से हमेशा के लिए बच पाते हैं।

तीर्थकर भगवान प्रणीत, मृत्यु पर विजय पाने की कला

यह मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की ही कला हमें तीर्थकरों ने सिखाई है। जन्म, जरा और मृत्यु ये तीनों ही दुःख, एक मृत्यु को जीतने से ही समाप्त हो जाते हैं। जब तक हम मृत्यु को नहीं जीतते, तब तक इस तरह के दुःखों का हम सामना करते रहते हैं और आचार्य कहते हैं...यह जीव निरन्तर संसार में परिभ्रमण करते हुए ऐसे दुःखों को सहन करता है। आप देखें कि अगर आपके समक्ष कोई ऐसे जीव आते हैं जो मृत्यु से भयभीत हो और अगर आप उन्हें कुछ थोड़ा सा सम्बल दे कर उनकी भावनाओं को थोड़ा सा अच्छा बना दे, उनके परिणाम थोड़ा सा अच्छे बन जायें तो उनके भय दूर होने पर उनके परिणामों से उन्हें सद्गति की प्राप्ति तो होती ही है। लेकिन एक बार अगर उन्हें इस तरह से मरण पर भय न रहे और मरण पर वह विजय प्राप्त करने की भावना कर ले तो ये तीनों प्रकार के दुःखों से इस जीव को मुक्ति मिल सकती है।

मृत्यु पर विजय, सब दुःखों पर विजय - केवल जैन धर्म की सीख

संसार में हर जीव को आज रहने के तरीके बताए जाते हैं, जीने के तरीके बताए जाते हैं। कैसे जियें, कैसे जीवन जियें? Art of living सिखाई जाती है। यहाँ आचार्य Art of living तो सिखाते ही हैं लेकिन Art of death भी सिखाते हैं। कैसे मरे? मरने की कला अपने आप में इतनी महत्वपूर्ण है कि यह आगामी समय में आने वाले दुःखों से बचाने का कारण बनती है। अब यहाँ आचार्य कह रहे हैं...हे जिया! तूने इस संसार में अनेक दुःख सहे हैं, अनेक दुःख सहे हैं, अनेक दुःख सहे हैं; यह बार-बार याद दिलाया जा रहा है। किसको? जिया को। यह जिया क्या होता है? जीव होता है।

रखें धर्म-लाभ लेने की भावना, कुछ सीखने की भावना

यह प्राकृत पढ़ने वालों को ही समझ में आएगा कि जिया अर्थात् जीव होता है। आप देखो कि लोगों में एक अपनी भाषा के प्रति भाव तो उत्पन्न हो रहा है, प्रेम तो उत्पन्न हो रहा है और आज से आप देखोगे कि जैसे ये रेवाड़ी के बच्चे, अभी तीन दिनों से थे यहाँ पर, ये भी प्राकृत भाषा में ही कुछ **द्रव्यसंग्रह** का लाभ ले रहे थे और भी चीजें सीख रहे थे। आचार्य महाराज के **‘सुनीति शतक’** के श्लोकों को भी इन्होंने पढ़ा, सीखा। अब इनका तो कार्यक्रम आज पूरा होगा और आज से फिर एक नया कार्य शुरू होगा जो प्राकृत भाषा के रूप में और प्राकृत शिविर के रूप में होगा। अब यह प्राकृत का जो कार्यक्रम आपके सामने आएगा, यह भी रेवाड़ी वालों के द्वारा ही संचालित हुआ होगा अर्थात् ये तीन दिन पिछले और आगे के ये तीन दिन, ये रेवाड़ी के लिए ही समर्पित हैं। फिर क्यों कहना कि महाराज रेवाड़ी चलो, रेवाड़ी चलो। जब आप लोग आने में समर्थ हैं और स्वयं भी आ सकते हैं और लाभ ले सकते हैं और आसपास के लोग भी आ ही रहे हैं। अभी

तो कटनी के लोग ही दिखाई दे रहे हैं। यह अमरपाटन के लोग तो पढ़ने थोड़े ही न आए होंगे, ये तो केवल दर्शन करने आए होंगे। लेने आए हैं, इनको लग रहा है दिवाली पास में आने वाली है, महाराज! इधर-उधर जायेंगे। कहीं जाने का मन बनायें, इससे पहले अमरपाटन जाने का मन बना ले, ऐसा सोच कर आए हैं; अच्छी भावना है। अगर आप अपने मन में धर्म का लाभ लेने की भावना रखते हैं, कुछ सीखने की भावना रखते हैं तो वह भावना हम कहीं आसपास रहकर भी सीख सकते हैं।

प्राकृत भाषा का, मूल आचार्यों के ग्रन्थ पढ़ने का महत्व

प्राकृत भाषा का अगर हम थोड़ा सा महत्व समझेंगे तो हमें अपने जीवन में ये जो शब्द प्रयुक्त होते हैं, उनका भी हम यह origin समझ सकेंगे कि ये शब्द कहाँ से निकले हैं? आप सब सुनते हैं... **‘जिया कब तक उलझेगा, संकल्प-विकल्पों में’** अब यह जिया आया कहाँ से? यह जिया शब्द अपने आप में देखो! प्राकृत का शब्द है। अब यह जिया ही है, अब हम यूँ कहें कि जीव से जिया बन गया तो ऐसा नहीं बनेगा। क्योंकि जीव का तो जीव ही रहेगा। अब यह अपने आप में एक नया शब्द है- जिया। अब यह जिया शब्द की उत्पत्ति अगर हम ढूँढ़ें तो हमें कहीं नहीं मिलेगी, सिर्फ इसी एक **वैराग्य शतक** ग्रन्थ में मिलेगी। यहाँ तक कि आप आचार्य कुंदकुंद के सभी ग्रन्थ पढ़ लो, आपको कभी जिया शब्द नहीं मिलेगा। यह इस **वैराग्य शतक** ग्रन्थ में ही आपको जिया शब्द मिलेगा कि यह बोल-चाल का, हिन्दी का यह शब्द आचार्य ने यहाँ पर प्रयुक्त किया है। अब आप समझो, पुरानी भाषाओं को पढ़ने से हमें कितने लाभ होते हैं। हमें पता पड़ता है, हम क्या बोल रहे हैं? कहाँ से बोल रहे हैं? उसका मूल उत्स क्या है? श्रोत क्या है? और इस तरह की जानकारीयाँ जब हमें होती हैं तो हमारे अन्दर एक अलग तरह की विशुद्धि उत्पन्न होती है। इसलिए हमेशा हमें मूल आचार्यों के ग्रन्थों को अवश्य पढ़ने का भाव करना चाहिए।

दुःख का याद करके ही उसे जीतने का मार्ग ढूँढ़ना

यहाँ कहते हैं कि अगर हमारे जी में जिया का एक तरह से अगर अर्थ होगा तो हम कहते हैं भाई! जो जिए, उसका नाम है- जिया, जो जीता रहता है। जीते रहने का नाम ही जीव होता है और जीते रहने का नाम ही जिया होता है। अब अगर यह जीवन जी रहे हैं तो हमारे हृदय में यह भावना बनी रहनी चाहिए कि हम अपने इन दुःखों को याद करके, उन दुःखों को जीतने की कोशिश करें। आचार्य यहाँ अगर दुःखों को याद दिला रहे हैं कि हमने ये दुःख अनन्त काल में प्राप्त किए हैं, अनन्त बार प्राप्त किए हैं तो अब हमारे मन के अन्दर एक भाव यह भी आ जाना चाहिए, अगर हमने ये दुःख प्राप्त किए हैं तो अब हमें इन दुःखों को जीतना भी है।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त की पुष्टि होती है, भोगे जा रहे सुख-दुःख की निरन्तरता से

अब ये दुःख आपने प्राप्त किए हैं। पूर्व जन्म की बात आपसे कही जा रही है और इन दुःखों को अगर हमने प्राप्त किया है, तो यह बात निश्चित है कि ये पुनर्जन्म हमारे होते रहे हैं। इसी कारण से ये दुःख हमारी आत्मा को प्राप्त हुए। तो जब तक हम इस तरह से अपने मन में विचार नहीं करेंगे, पुनर्जन्म के सिद्धान्त को नहीं

सामने लायेंगे, तब तक हमारे लिए यह दुःख कोई मायने रखेंगे ही नहीं। दुःख हमारे सामने कब आयेंगे? जब हम यह स्वीकार करें, पुनर्जन्म होता है। आत्मा जन्म-जन्मान्तरों से इस संसार में भ्रमण करता आया है। अनादि काल से आत्मा की इसी तरह से अन्य-अन्य स्थानों को छोड़-छोड़ करके उसकी गति होती रही है, उसका भ्रमण होता रहा है; यह बात ही बताती है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त आपके अन्दर गहरा बैठा होना चाहिए। इस विषय में प्रश्न ही नहीं होना चाहिए कि पुनर्जन्म होता है या नहीं होता है। पुनर्जन्म के बिना आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं होगा। आत्मा का अस्तित्व नहीं होगा तो संसार में भी सुख-दुःख किससे मिलेगा? अगर हमें दुःख मिलता है, तो किससे मिलता है? अपने ही पूर्व में किए हुए कर्मों के फल से मिलता है और जब हमारे कर्म पहले के हमारे साथ होंगे ही नहीं तो फिर दुःख किससे मिलेगा? सुख किससे मिलेगा? जो हम कर्म करते रहते हैं, वे कर्म हमारी आत्मा में बंधते रहते हैं और वही अन्य-अन्य जन्मों में हमारे साथ बने रहते हैं। उन्हीं के माध्यम से हमें सुख-दुःख की अनुभूतियाँ होती हैं। हमें अपने-अपने योग्य स्थानों पर जन्म आदि की भी प्राप्ति पूर्व जन्म के पुण्यों से ही होती है।

पुण्य-पाप के उदय

अगर आपका कहीं ऐसे स्थानों पर जन्म हो गया, जहाँ पर कोई भी आपको धर्म की कोई एक line बताने वाला नहीं है, जहाँ पर धर्म-गुरु का कभी दर्शन भी नहीं होता है, तो ऐसे स्थानों पर जन्म होना भी अपने ही, किसके उदय से? पाप के उदय से और ऐसे स्थान पर जन्म होना कि आप बस घर से गाड़ी उठाओ और कहीं पर भी निकल जाओ। तीस किलोमीटर इधर कि तीस किलोमीटर उधर, कहीं भी निकल जाओ। अमरपाटन वाले कटनी की तरफ निकल जायें तो वहाँ पर मुनि महाराज के दर्शन हो जायें। सतना में आ जायें तो मुनि महाराज के दर्शन हो जायें। कहीं पर भी गाड़ी उठाकर निकल गए और आपको जगह-जगह दर्शन हो जाते हैं, यह आपका जन्म इन स्थानों पर होना भी पुण्य के उदय से होता है। जन्म का भी अपना एक महत्व रहता है।

अनासक्त महायोगी ग्रन्थ पर आगामी परीक्षा की घोषणा

आपसे कहा था कि **अनासक्त महायोगी** आचार्य महाराज के ऊपर लिखा हुआ एक महाकाव्य है। अमरपाटन वाले, कटनी वाले भी थोड़े बहुत पढ़े-लिखे तो है ही हैं। आजकल बिना पढ़े-लिखे तो कोई मिलते ही नहीं हैं। यहाँ पर एक **अनासक्त महायोगी**, यह जो ग्रन्थ है, इस पर आगामी समय में एक परीक्षा होने वाली है। आप लोग भी उसका पाठन करके उस परीक्षा से जुड़ सकते हैं। चाहे तो यहीं पर आकर परीक्षा दे सकते हैं। नहीं बने तो आपके लिए वहाँ पर बैठे-बैठे भी परीक्षा देने का माहौल बन सकता है। आप पढ़ना शुरू करें, आपको बहुत सारी अच्छी-अच्छी जानकारियाँ उस **अनासक्त महायोगी** पढ़ने से मिलेंगी।

महापुरुषों के जन्म-स्थल का रहस्य तथा महत्व

देखो! जब हम जन्म की बात करते हैं तो अपने आप हम विचार करें...आचार्य महाराज का जन्म कहाँ हुआ? सदलगा में हुआ। सदलगा कौन से प्रान्त में आता है? कर्नाटक प्रान्त में आता है। आपको सिर्फ इतना ही

मालूम है कि आचार्य महाराज का जहाँ जन्म हुआ है, वह सदलगा स्थान है लेकिन अगर आप वहाँ नहीं भी गए हैं, केवल ग्रन्थ पढ़ेंगे और हम भी नहीं गए हैं लेकिन फिर भी प्राप्त जानकारी के अनुसार जो लिखा है, वे सारी जानकारियाँ एकत्रित करके इस तरह से लिखी हैं कि आपको वहाँ सदलगा के आसपास और क्या-क्या है, वह सब भी आपको उसमें जानकारी प्रारम्भिक अध्याय में ही मिल जाएगी। महापुरुषों के जन्म भी कुछ विशिष्ट स्थानों पर ही होते हैं। आप देखो! जितने भी तीर्थकर हुए, सारे तीर्थकरों के जन्म कहाँ हुए? कहाँ हुए? कोई अयोध्या कह रहा है, कोई बनारस कह रहा है, कोई हस्तिनापुर कह रहा है, कुछ तो बोलो! सबको मिलाकर बोलोगे तो क्या होगा? **भारत!** भारत तो बहुत बड़ा हो जाएगा। अब इतनी भी जानकारी नहीं होगी तो कैसे काम चलेगा? कम से कम इतना तो बताओ कि सभी तीर्थकरों का जन्म एक नगर में न सही तो एक प्रदेश में तो कह ही सकते हैं। कौन से प्रदेश में? उत्तर प्रदेश में। सभी तीर्थकरों का जन्म कहाँ हुआ है? उत्तर प्रदेश में। जानकारियों का बहुत अभाव है आपके अन्दर और अगर हम कहें कि बड़े-बड़े महान आचार्यों का जन्म कहाँ हुआ है? कर्नाटक प्रान्त के उसी सदलगा के आसपास के area में।

कर्नाटक - महान आचार्यों की जन्म-स्थली

अब यह जानकारी आपको मिलेगी जब आप पढ़ेंगे तब। सदलगा के आसपास ही एक कोथली गाँव है, वहाँ पर आचार्य देशभूषण महाराज का जन्म हुआ है। सेडवाल एक गाँव है, वहाँ पर आचार्य विद्यानंदी महाराज का जन्म हुआ। वहाँ पर एक भोज गाँव है, जहाँ पर आचार्य शांतिसागर जी महाराज का जन्म हुआ। ये सब वहीं आसपास के ही गाँव हैं। अब आपको जब यह सब जानकारियाँ मिलेंगी, जब आप पढ़ेंगे तब और ये सब चीजें एक साथ लिखी हुई रखी हैं। लिखने वाला लिखता है, मेहनत करता है लेकिन पढ़ने वाले अगर पढ़ते नहीं हैं तो उन लिखने वालों की मेहनत का कोई भी उपयोग हो नहीं पाता।

आचार्य श्री के जन्म-स्थल की विशेषता तथा अन्य साधारण महत्व

आप सबके अन्दर यह भाव आना चाहिए कि हम जाने, आखिर क्या आचार्यश्री के जन्म-स्थान का भी कोई महत्व है, तो वह कितना बड़ा महत्व है? जिस जन्म-स्थान के पास में ही श्रवणबेलगोला है और वहाँ पर इस विश्व का आठवाँ आश्चर्य भगवान बाहुबली की उत्तुंग प्रतिमा इस संसार को अहिंसा का सन्देश देने के लिए विराजित है। ऐसे उस स्थान पर, वहाँ पर आचार्य महाराज का जन्म हुआ है। जन्म का स्थान भी पूर्व पुण्य के उदय से नियुक्त होता है। आप कहाँ पर जन्म लिए हैं और जहाँ पर जन्म लिए हैं वहाँ पर अगर आपका पुण्य होगा तो ही वहाँ पर जन्म मिलेगा जहाँ धर्म का वातावरण होता है और उस धर्म के वातावरण में जन्म लेने के बाद ही हम धर्म के बारे में कुछ सीख पाते हैं, कुछ उन्नति कर पाते हैं।

जिनवाणी दूर करती है- मरण का डर

इसलिए जब भी कभी जन्म होता है, तो जन्म तो अच्छी जगह पर हो गया। अब उस जन्म को सुधारते-सुधारते मरण की ओर जाना भी, यह सीख पाना यह हमें तीर्थकरों के ज्ञान से मिलता है। मरण के प्रति डरना नहीं, यह कहाँ से सीखोगे? यह जिनवाणी से सीखने को मिलेगा। आपके लिए कोई भी व्यक्ति किसी भी तरह

से आपको चेतावनी दे, आपके लिए बुरा सोचे, आपके लिए मृत्यु के लिए भी योजना बना ले लेकिन आपको मरण के प्रति डर न आए। इतना साहस हमें कहाँ से मिलेगा? यह ज्ञान, यह साहस हमें जिनवाणी से मिलता है। इसलिए जिनवाणी पढ़ी जाती है, इसलिए हमें आचार्यों के चरित्र पढ़ने से साहस मिलता है और इसीलिए हमें जब पठन-पाठन के माध्यम से जिनवाणी पढ़ने में हमारे अन्दर रुचि आने लग जाती है, तो हमारे अन्तरंग के अनेक तरह के कल्मष दूर होते हैं, कलुषताएँ दूर होती हैं और हमारे मन के परिणाम निर्मल बनते हैं।

निरन्तर जिनवाणी पठन-पाठन का महत्व

यह पढ़ने का एक बहुत बड़ा उद्देश्य होता है, इसलिए पढ़ने के लिए ही आपको प्रेरित किया जाता है। अब हम यहाँ बैठे हैं तो आप देख रहे हो कि लोग निरन्तर कुछ न कुछ सीख रहे हैं, पढ़ रहे हैं। अमरपाटन वाले भले ही आज आए हैं लेकिन अगर सतना के किसी भी बच्चे से पूछोगे तो उसे पता होगा कि यहाँ पर कितनी-कितनी चीजें यहाँ के लोग पढ़ रहे हैं, सीख रहे हैं। यह पठन-पाठन के माध्यम से ही, जिनवाणी की प्रभावना के माध्यम से ही जिनधर्म आगे बढ़ता है और बढ़ेगा। इसलिए जो भी अच्छी इन्द्रियाँ लिए हुए हैं, अच्छी बुद्धि लिए हुए हैं, जिनको अभी दिख रहा है, सुन रहा है, वह अपनी आँखों का, कानों का, मन का, बुद्धि का, प्रयोग किसमें करें? जिनवाणी के पठन-पाठन में करें। इसीलिए ये नई-नई चीजें आपके सामने आती रहती हैं, कोई न कोई परीक्षाएँ इसलिए सामने आती हैं तो परीक्षा के निमित्त से आप गहराई से पढ़ते हो। यहाँ के लोगों ने पहली ढाल की परीक्षा दे ली, नई छहढाला की दूसरी ढाल की भी परीक्षा दे ली और अब एक परीक्षा का क्रम आ रहा है- आचार्य महाराज के बारे में जानना।

आचार्य महाराज का चरित्र पढ़कर आती है- जीवन में निर्मलता

आचार्य महाराज के चरित्र को पढ़कर भी हमारे अन्दर निर्मलता आएगी क्योंकि आचार्यों की भक्ति करने से ही हमारे चरित्र में निर्मलता आती है। अब ऐसे प्रसंगों को जब हम पढ़ते हैं तो हमारी बुद्धि अच्छी होने लग जाती है। दुनिया में आज देखो क्या-क्या हो रहा है? आप देखो! दुनिया में चारों ओर युद्ध ही युद्ध हो रहे हैं। धर्म-स्थानों को लेकर के भी, तीर्थ-स्थानों को लेकर के भी ऐसी स्थिति बनती है कि लोग बस! अब मर मिटने को तैयार हैं, युद्ध करने को तैयार हैं। आज इतना ही पर्याप्त है।

**ओं अर्ह ओं अर्ह ओं अर्ह बोल,
ओं अर्ह ओं अर्ह ओं अर्ह बोल,
सभी कार्य की सिद्धि से तू पहले इसको बोल।
सभी कार्य की सिद्धि से तू पहले इसको बोल।
सभी कार्य की सिद्धि से तू पहले इसको बोल।**

मुनिश्री के सहज, सरल, निर्मल, उदात्त, क्षमाशील अंतःकरण का परिचय

एक बात और बता ही देना चाहता हूँ मैं आपको। कल से जब से मैंने यह समाचार सुना, अब मेरे मन में जो भी भाव आ रहे हों और उन भावों के कारण से एक रात्रि में एक अलग ही तरह का कोई स्वप्न चलता रहा। अब उस स्वप्न का क्या फल होगा? वह तो वक्त बताएगा लेकिन एक अलग तरह का आज रात्रि में स्वप्न आया और पूरी रात्रि मानो उस स्वप्न में ही निकल गई। मैं आपको स्वप्न बताये देना चाहता हूँ क्योंकि हमारे अन्दर कोई भी बातें छुपाने की होती नहीं हैं। जो है सो सब आपके लिए ही है। अब वह विचार कल से जब से सुना है, तब से शायद उसका रूपान्तरण स्वप्न में इस तरह से हो गया हो, ऐसा मुझे आज स्वप्न होने के बाद याद आया। स्वप्न में क्या हुआ, मैं किसी व्यक्ति के पास खड़ा हूँ और उस कमरे में एक छोटा सा बालक लेटा हुआ था। बच्चा, छोटा सा, दूधमुँहा बच्चा जिसको कहते हैं। एक व्यक्ति ने जो वहाँ कमरे में था, उसने उसकी गर्दन दबा दी। मुझे समझ नहीं आया, यह सब क्या हुआ। उसने उसकी गर्दन दबा दी और वह बच्चा चीखा। मैं उस कमरे से, वहाँ से बाहर निकल आया और कमरे से बाहर निकलने के बाद मैं किसी दूसरी जगह पर चला गया। अब स्वप्न तो स्वप्न ही होता है, अब यही समझ में नहीं आ रहा है कि मैं वहाँ पर मुनि रूप में था कि मुझे क्या वहाँ पर भाव था, वो कुछ याद नहीं है लेकिन अब क्या याद आता है, मुझे उस स्थान पर फिर से जाना है क्योंकि वहीं पर मैं रुका हुआ हूँ। अब मुझे उस स्थान पर फिर से जाना है, मैं वहीं पर रुका हुआ हूँ, तो मैं उस स्थान पर अब उस कमरे में तो नहीं जा सकता क्योंकि वहाँ पर उसने उसका कत्ल कर दिया। कुछ देर बाद जब वहाँ पर उस कमरे में पहुँचा, तो वहाँ पर देखा कि कमरे में बहुत सारी मिट्टी खोद दी गई है और हम उस बगल के कमरे में गए, तो वहाँ पर एक कोई माता बैठी हुई है और उसकी लोग आरती उतार रहे हैं। ऐसा लगा कि जैसे उस कब्र को खोद कर उस बच्चे को शायद उस मिट्टी में समाहित कर दिया गया हो। वहाँ डर के कारण से कोई भी चीज की जानकारी लेने की कोशिश नहीं की और वहाँ से निकल आया। फिर जब कुछ लोगों के बीच में बैठा, तो बातचीत हो रही थी। अब वह जो व्यक्ति था, वह व्यक्ति न उसका कोई चेहरा याद है, न कुछ याद है, बस वह व्यक्ति नीली colour की dress पहने हुए था, shirt पहने हुए था। अब जब बातचीत हो रही थी, तो उस व्यक्ति ने किसी भी तरह से मुझे वहाँ बुलाने की कोशिश की। जब उसे बुलाने की कोशिश की, तो मैं समझ गया कि मुझे वहाँ बुलाया जा रहा है। अर्थात् व्यक्ति को यह पता है कि इसने कत्ल करते हुए देख लिया है, तो शायद इसलिए वह मुझे बुला रहा है और वह मेरे साथ भी कुछ भी कर सकता है। अब बहुत देर तक उस व्यक्ति के पास नहीं जाने के लिए इधर-उधर टालता रहा, घूमता रहा और चलते-चलते आखिर उस व्यक्ति के सामने आ ही गया और उस व्यक्ति के सामने जैसे ही आया, वहाँ कुछ अंधेरा सा था, उसने torch डाली और मुझे पहचान हुई कि हाँ यही नीली shirt पहने हुए यह व्यक्ति है और जैसे ही उसने वह torch डाली अपने ऊपर और मेरी नींद खुल गई। उस समय 3 बजकर के 10 मिनट हो रहे थे। मेरे उठने का time हो चुका था। अब यह स्वप्न हमने देखा। क्या इसका प्रयोजन है? और इस स्वप्न को देखने के बाद मैं बहुत देर तक मन में यही चलता रहा कि यह आज क्या हो गया? यह क्या देखता रहा? तो फिर उसके बाद मैं मुझे समझ में आया कि यह क्यों हो गया? क्या हो गया तो उस समय पर? फिर मुझे समझ में आया कि कल जो मैंने महेशगिरी का video देखा था, उसके कारण से शायद मेरे दिमाग में कुछ इस तरह के विचार चल रहे हों और कुछ यह हिंसा का वातावरण मेरे दिमाग में छाया हुआ हो लेकिन फिर भी मैंने अपने अन्दर सब प्राणियों के प्रति क्षमा की भावना से, मैंने एक माला फेरी। मैं सबको क्षमा करता हूँ, सबसे क्षमा मांगता हूँ और उस महेशगिरी को भी क्षमा करता

हूँ, जिसने ऐसे वचन बोले कि अगर दिगम्बर साधु यहाँ गिरनार पर आए, तो उनके घड़ काट देना। मैंने उसको भी हृदय से क्षमा करके सामायिक में अपना मन शान्त किया। ये विचार मुझे आपके समक्ष रखने थे क्योंकि मैं निर्गन्थ साधु हूँ। कोई भी विचार अपने अन्दर आता है, वह सब आपके लिए होता है, आपके द्वारा दिया गया होता है, मेरा कुछ नहीं होता है। इसलिए **ओं अर्ह नमः**

आज के लिए इतना पर्याप्त।

गाथा: 89

संसारी प्राणी मोह के उदय में, संसार से व्याकुलित नहीं होते हैं

तहवि खणंपि कयावि हु, अण्णाण-भुयंग-डंकिया जीवा ।

संसार-चारगाओ, ण य उविज्जंति मूढमणा ॥89 ॥

अन्वयार्थ- (तहवि) तथापि (अण्णाण-भुयंग-डंकिया मूढमणा जीवा) अज्ञानरूपी, भुजंग के द्वारा, डसे गये 'ये' मूढमना, जीव (हु) निश्चित रूप से (कयावि) कदापि यानी कभी, भी (खणंपि) क्षणमात्र, भी (संसार-चारगाओ) संसाररूपी, चारक यानी काराग्रह से (उविज्जंति ण) उदविग्र यानी व्याकुलित, नहीं होते हैं 'यह बड़े आश्चर्य की बात है' ॥89 ॥

आचार्यों के द्वारा रचित यह वैराग्य शतक नाम की कृति प्राकृत भाषा की एक अद्भुत कृति है, जिसका वाचन प्रतिदिन गाथाओं के माध्यम से यहाँ पर सुनने-समझने को मिलता है। उसी क्रम में आज गाथा नम्बर 89 पढ़ते हैं....

तहवि खणंपि कयावि हु, अण्णाण-भुयंग-डंकिया जीवा ।

संसार-चारगाओ, ण य उविज्जंति मूढमणा ॥89 ॥

आचार्य कहते हैं... 'तहवि' यानी तथापि, फिर भी; 'खणंपि' यानी क्षण भर भी, 'कयावि' कभी भी, 'अण्णाण-भुयंग-डंकिया जीवा' ये जो संसार के जीव हैं, ये अज्ञान रूपी भुजंग से डंकित हैं यानी डसे गए हैं, अज्ञान रूपी सर्प से डसे गए हैं। इसलिए संसार-चारगाओ संसार का जो यह चारक यानी एक काराग्रह है, उससे कभी भी 'ण य उविज्जंति मूढमणा' यह मूढमन होने के कारण से उससे कभी दूर नहीं हटते, उद्विग्र नहीं होते। आपके लिए इस तरह की गाथाएँ, लगता है कि current लगाने वाली होनी चाहिए। जब इस तरह से आचार्य कहते हैं...हमें एक तरह से मूढमना भी कहते हैं, अज्ञान से हम डंकित हैं, अज्ञान के सर्प से हम काटे गए हैं ऐसा भी कहते हैं और यह भी कहते हैं कि ऐसा होते हुए भी हम इस संसार से थोड़ा भी उद्विग्र नहीं होते हैं।



उद्विग्न और उद्वेग भाव अलग-अलग

उद्विग्न होने का मतलब है... एक संसार से डर जाना, एक संसार के भयों से त्रस्त हो जाना, संसार के दुःखों को देखकर के भीतर से उन दुःखों में न पड़ जाऊँ, इस तरह का विचार करना, यह उद्विग्न भाव कहलाता है। एक उद्वेग भाव होता है, जो आपके अन्दर एक दूसरे तरह का ऐसा वेग पैदा कर देता है जिसके कारण से आप उस उद्वेग में आकर के अपनी कषायों में बह जाते हैं और एक उद्विग्न भाव होता है जो यह उद्विग्न भाव आपके अन्दर एक संसार से भय उत्पन्न करता है लेकिन आचार्य कहते हैं... ऐसा भय होता नहीं है, हो नहीं पाता। कितना कह रहा हूँ, कब से कह रहा हूँ, कितने दिनों से समझा रहा हूँ? आज 90 के निकट गाथाएँ आने वाली हैं और इतने दिनों से हर एक गाथा में हर तरह के दुःखों का वर्णन किया गया; नरकों के भी दुःखों का वर्णन किया, तिर्यचों का भी दुःख बताया, मनुष्यों का भी दुःख बताया लेकिन यह मनुष्य उद्विग्न नहीं होता।

हमारी बुद्धि की मूढ़ता का कारण मोह और अज्ञान

इन सब दुःखों को देखकर के भी क्षण भर भी यह विचार नहीं करता कि मैं इस संसार के कारागृह में पड़ा हुआ हूँ और इस कारागृह में पड़े रहने का कारण है- हमारी मूढ़बुद्धि। जो हमारी बुद्धि के अन्दर यह मूढ़ता आती है कि यह सब हम मोह के कारण से, अज्ञान के कारण से सब सम्बन्धों को अपना मानते हैं, यह मूढ़बुद्धि हमें क्षण भर भी हमें उद्विग्न नहीं होने देती है। बाकी तो सब ठीक लगता है महाराज! बस आप सम्बन्धों पर प्रहार मत किया कीजिये। जो हमारे सम्बन्ध हैं, जिनके साथ में हम रहते हैं, जो हमसे घुले मिले हैं बस! आप उनसे हमें उद्विग्न मत कीजिए। संसार से उद्वेग होगा... हो जाएगा लेकिन हमारे मन में कभी भी ऐसा भाव जब आता है, तो हमें डर लगने लग जाता है कि हमारे अपने हमसे कभी भी बिछुड़ न जाएँ। यह जो एक मोह का भाव है, इसी मोह भाव को शास्त्रों में अज्ञान कहा जाता है ‘अण्णाण मोहित मदी’ अज्ञान से मति जो है मोहित हो जाती है और मोह के कारण से बुद्धि में अज्ञान भी उत्पन्न हो जाता है; दोनों बातें हैं।

सम्बन्धों की फिसलपट्टी में राग-द्वेष की चिकनाई

मोह होगा तो आपको जीव, जीव नहीं दिखाई देगा; जीव के साथ में अनेक सम्बन्ध दिखाई देंगे। जीव अपना दिखाई देगा जबकि जीव कभी किसी का होता नहीं; जीव तो जीव है। जब अपना शरीर भी अपने साथ में हमेशा होते हुए भी अपना नहीं होता तो दूसरा जीव अपना कैसे हो सकता है? लेकिन दूसरे जीव को अपना कहने की जो बुद्धि है, उस जीव में जो अपनापन मानने की बुद्धि है, बस! यहीं पर हम धोखा खा जाते हैं। यह एक फिसलपट्टी है जिस पर हम फिसल जाते हैं और जैसे फिसलपट्टी पर थोड़ा-सा अगर कहीं चिकनाई लगी हो, तब तो फिसलने के chances और बढ़ जाते हैं। ऐसे ही यह सम्बन्धों की फिसलपट्टी पर जब स्नेह, राग थोड़ा-सा बढ़ जाता है, मोह बढ़ जाता है, तो उस मोह के कारण से हम उन सम्बन्धों में फिसल जाते हैं, बह जाते हैं। जब सम्बन्धों में बहते हैं तो हमारे अन्दर अपने आप वह राग-द्वेष की प्रवृत्ति भी बढ़ने लग जाती है और जब यह प्रवृत्ति बढ़ती है, तो हमारे अन्दर के वह परिणाम कलुषित भी होते हैं और हमारा ज्ञान भी अज्ञान के रूप में बदल जाता है।

सम्यग्दृष्टि के अन्दर भी मोह

अब समस्या यह है कि जब लोग शास्त्र पढ़ लेते हैं और थोड़ा-सा अपने अन्दर विद्वान होने के भाव में आ जाते हैं तो क्या होता है? लोगों के अन्दर यह भाव आता है कि सम्यग्दर्शन अगर हमारे अन्दर है और हम सम्यग्दृष्टि हैं तो हमारे अन्दर मोह नहीं होगा...ऐसा एक प्रचलन बना दिया गया है। हम सम्यग्दृष्टि हो गए, सम्यग्दृष्टि मोह से रहित होता है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने अन्दर मोह रखते हुए भी उसे मोह नहीं मानता। जबकि आचार्य कहते हैं- मोह के कारण से आपके अन्दर वह सम्यक्त्व भाव टिक नहीं सकता और मोह के कारण से आपका ज्ञान, अज्ञान भी बन जाता है। ज्ञान को हम अज्ञान नहीं बनना देखना चाहते और ज्ञान हमारा ज्ञान ही है क्योंकि हमारे अन्दर तत्त्व का श्रद्धा है, तो हम सम्यग्दृष्टि हैं, तो हमारे अन्दर सम्यग्ज्ञान है और जब सम्यग्ज्ञान है, तो फिर हमारे अन्दर मोह आ नहीं सकता क्योंकि सम्यग्ज्ञानी को मोह होता नहीं है। ऐसा जब लोग पढ़ लेते हैं तो मोह में रहते हुए भी अपने आप को कभी मोहित होता हुआ समझते नहीं हैं। इसलिए पढ़ने वाली बातें अलग होती हैं और समझने वाली बातें अलग होती हैं।

मोह और अज्ञान परस्पर सहचर

यहाँ आचार्य अपने को समझा रहे हैं कि जब भी हमारी मति में मोह उत्पन्न होगा, वह अज्ञान उत्पन्न करेगा और अज्ञान के कारण से भी मोह उत्पन्न होता है तो मोह भी अज्ञान को बढ़ाने का कारण बन जाता है। अब जब आपके अन्दर मोह होता है तो क्या होता है? हम अपने सम्बन्धों में इस तरह से रागात्मक परिणति करने लग जाते हैं कि उन सम्बन्धों में थोड़ी-सी भी कमी होने पर वह परिणति द्वेषात्मक होने लग जाती है और यह राग-द्वेष की फिसलपट्टी पर हमारा मन हमेशा फिसलता रहता है। अब यह राग और द्वेष की जो कमी होगी वह तब होगी, जब हमारे अन्दर का थोड़ा-सा भ्रम दूर हो। मन के अन्दर जो मूढ़ता बैठी रहती है, भ्रम बैठा रहता है; वह भ्रम हमें हमेशा थोड़ा-थोड़ा आगे-आगे बढ़ाता है।

मन की चंचलता

जैसे मान कर चलो, यहाँ पर आप दूर-दूर से आए हैं। अब यहाँ आए, बैठे। जब आप पहले क्षण आए यहाँ पर तो आपको बहुत अच्छा लगा। अब आप यहाँ दो-चार घण्टे रुक गए, मान लो एक रात रुक गए तो अब क्या होगा? अब फिर हमारा मन कहेगा, थोड़ा इधर-उधर देखो, आसपास कुछ है कि नहीं। नहीं समझे? आसपास का मतलब? अब यहाँ देखो आसपास भी कुछ है कि नहीं? थोड़ा-सा कुछ कहीं घूमने चले। कहाँ है भाई! सतना में कोई ऐसे point कौन से जहाँ पर घूमा जा सकता है? कहाँ जाया जा सकता है? कुछ बताइए, कुछ है कि नहीं सतना में कुछ देखने लायक? अब यहाँ आए तो आए तो थे किसलिए? महाराज के पास जाएँगे, महाराज के दर्शन करेंगे, महाराज से ज्ञान लेंगे, उनके सानिध्य में बैठेंगे और यहाँ बैठे...हो गए चार दिन, चार घण्टे हो गए, दो दिन हो गए। अब चले थोड़ा-सा आसपास भी कहीं घूम करके आते हैं। अब मान लो सतना में कुछ घूमने लायक नहीं है, तो कहाँ जाएँ? क्या है सतना में घूमने लायक? गौशाला में चले जाओगे ज्यादा से ज्यादा और क्या होगा? इसके अलावा अब क्या करें? थोड़ा-सा कहीं आसपास कुछ हो। अब आसपास तो चित्रकूट है। कहाँ जाओगे घूमने? कहीं कोई आसपास तीर्थक्षेत्र हो, चलो वहाँ घूम आते हैं; खजुराहो चले जाते हैं।

हमारे मन का भ्रम ही हमें बनाता है मूढ़

अब इस तरह के मन में विचार आने लग जाते हैं और वे विचार कहाँ से आते हैं? उन जगहों के आकर्षण से नहीं आते, वे विचार आते हैं- मन के अन्दर एक फिसलन होती है। वह फिसलन हमें कहीं एक जगह टिकने नहीं देती है। मन के अन्दर का यह जो भाव है, यही भ्रम कहलाता है और इस भाव को अगर हम समझ पाएँ तो हम कहीं टिक पाएँ। संसार का कोई भी प्राणी एक जगह कहीं टिकने की कोशिश करता नहीं है और अगर कर भी ले तो उसका मन उसे टिकने देता नहीं है। यह भ्रम उसके अन्दर लगता है, सुख यहाँ नहीं है; कहाँ है? वहाँ। अच्छा यहाँ नहीं लग रहा है, कहाँ लगेगा? वहाँ। जब वहाँ था तो वहाँ से यहाँ आया, अब यहाँ से फिर वहाँ, फिर वहाँ से वहाँ, वहाँ से फिर वहाँ, इस तरह से मन के अन्दर एक भ्रम की परिणति चलती रहती है और वह भ्रम ही हमें मूढ़ बनाता है। इसको कहते हैं- मूढ़मना।

मूढ़मना फिसलने में ही आनन्द मनाता है

क्या title दिया आचार्यों ने हमारे लिए? जो संसार से हटते नहीं, संसार से उद्विग्न नहीं होते; ये मूढ़ मन वाले लोग हैं। इनके मन के अन्दर मूढ़ता इतनी गहरी बैठी हुई है, इतनी भरी हुई है कि ये हर चीज को अपना मान कर के उसी पर फिसलते हैं, गिरते हैं, दुःखी होते हैं और फिर से वही काम शुरू कर देते हैं। बच्चों की फिसलपट्टी देखी है न आपने? बच्चे झूले झूलते हैं, फिसलपट्टी पर फिसलते हैं और फिसल भी जाते हैं और कभी-कभी मान लो उनको चोट भी लग जाए, गिर भी जाएँ तो भी वे, फिर से ठीक हुए लेकिन मन नहीं मानता। फिसलपट्टी दिख रही है, तो देखो फिसलने का मजा कुछ और ही है। यानी चलने के मजे से ज्यादा किसका मजा दिखता है? फिसलने का। यानी कुछ लोग फिसलने में भी खुश होते हैं। इंतजार करते हैं... भाई देखो! फिसलने का भी कुछ मजा होगा। मानो ऐसे समझो कि जैसे हमारे सामने कहीं कोई चीज पड़ी हुई हो। मानो कि किसी ने केले के छिलके फेंक दिए हो और आप उस पर एक बार उससे फिसल गए। अब फिसलने से यह भी हो सकता है कि आपके लिए फिसलने का भी कुछ आनन्द आया हो। भाई! यह तो बड़ा अच्छा लगता है जब फिसल जाते हैं तो। क्या हुआ? थोड़ी-सी चोट लगी...नहीं! नहीं! वह थोड़ी-सी धमक लगी थी, थोड़ा-सा फिसल गए थे लेकिन जो फिसले थे वह भी एक अच्छी अनुभूति थी। थी कि नहीं? फिर क्या करना? जब भी कभी केले के छिलके दिखे, उन पर अपना पैर रखना और फिसलना। यानी आपके अन्दर अगर फिसलने में ही आनन्द आएगा तो बार-बार आपको वह फिसलन की अनुभूति याद आएगी।

राग से ही मन में फिसलन

यही बात हर जगह होती है। जब हमारे सामने हमारे बेटे होते हैं, हमारी बेटियाँ होती हैं, हमारे पति होते हैं, हमारे रिश्तेदार होते हैं, हम उनसे जब जुड़ते हैं, राग का बन्ध कर लेते हैं तो उस समय पर हमें अच्छा लगता है। जैसे ही राग हुआ मतलब हम फिसल गए। यह राग क्या है? मन को फिसलाने वाली चीज है और जैसे ही मन फिसला तो हमें वह अच्छा लगा। अब वह अच्छापन हम याद रखे, अब हुआ क्या? घर में मामाजी आए थे, बड़ा अच्छा लगा या दामादजी आए थे, बड़ा अच्छा लगा। अब आए, वे दो दिन रहे। अब दो दिन में उनसे स्नेह हो गया, राग में हम अच्छे बंध गए, फिसल गए, अब वे चलते बने। जाना तो है ही है। अब दो

दिन बाद जब वे चलने लगे तो चलने के बाद में जब उनका जाना हुआ, वियोग हुआ तो अब हमें वह फिसलन याद आई कि देखो! जब आए थे तो हमने कितना एक उनके लिए अच्छा स्वागत किया था, कितना हमने आत्मीयता रखी थी और वह कितनी अच्छी अनुभूति थी तो हमें अब वह फिसलन याद है। इसका नाम क्या है?

राग-द्वेष की अनुभूतियाँ भ्रमित करती हैं

अब हमें वह फिसलन याद है, तो हमें क्या लग रहा है? जब कोई आता है तो अच्छा लगता है और जब कोई जाता है तो बुरा लगता है। यह राग और द्वेष की अनुभूतियाँ हमारे अन्दर गहरी बैठ जाती हैं और इन्हीं को हम सम्भालते रहते हैं। अब वे नहीं आए तो कोई और आ जाए। अब वे भी न आए तो हम ही किसी के यहाँ चले जाएँ। अब कोई अपने यहाँ नहीं आ रहा है, तो हम ही चलते हैं किसी के यहाँ पर। आदमी टिकना नहीं चाहता, आदमी इस राग-द्वेष में ही फिसलना चाहता है। उसका मन करता है कि भाई! हम कहीं हो कर के आएँ, घूम कर के आएँ। क्या बोलता है? घूम करके आएँ। घूम करके वह आएगा तो आएगा यहीं पर लेकिन अभी उसका मन यहाँ से थोड़ा-सा दूसरी जगह पर घूमने का हो जाता है। यह जो मन होता है यह मन इसीलिए होता है क्योंकि उसे एक जगह का राग मिलने के बाद में वह दूसरी जगह के राग की अनुभूति करना चाहता है। यह मन के अन्दर का एक बहुत बड़ा भ्रम होता है और वहाँ जाएगा तो देखेगा... वहाँ क्या मिला? अरे! हमने सोचा था कोई बहुत अच्छी खास जगह होगी। यह तो सब जगह ऐसे ही दिखते हैं, ऐसे ही शहर होते हैं, ऐसे ही मन्दिर होते हैं, ऐसे ही भगवान होते हैं, वहाँ जाकर के भी देखा कुछ खास नहीं था। सुनते हैं, नाम नया था। अब भाई नाम अलग-अलग होंगे तो नया-नया तो होगा ही। यह जब विचार अपने अन्दर का अपने को समझ में नहीं आता, तब हम उस मन के कारण से मूढ़ बनते चले जाते हैं।

पर पदार्थों में स्व की कल्पना करना अज्ञान

आचार्य कहते हैं...जब तक इस तरीके का भ्रम अपने मन के अन्दर पड़ा रहता है, हम अज्ञान के सर्प से खुद अपने मन को डसाते रहते हैं और वह अज्ञान हमें जो होता है वह दूसरी वस्तुओं में स्वपन की कल्पना के साथ आता है। पर पदार्थों में स्व की कल्पना करना। जबकि पर, पर ही है; वह पर कभी स्व नहीं होगा क्योंकि उसका अस्तित्व उसके रूप में है, आपका अस्तित्व आपके रूप में है लेकिन हम पर को स्व मानने की जो कल्पना में डूब जाते हैं, यही हमारे अज्ञान का सबसे बड़ा डंक हमारे मन में हमें लगता रहता है और इसी के कारण से सब कुछ होते हुए भी हम संसार से उद्विग्न नहीं होते।

हम संसार के दुःख देखकर भी उद्विग्न नहीं होते

मानो आप संसार में कितने दुःख मिलते हैं लोगों को! अगर आपको दुःख नहीं है कोई बात नहीं, दूसरों के दुःखों को भी देख लेना। नहीं मिलते दुःख? संसार में कितने लोग कितने तरीके से दुःखी होते हैं...

कोई पितृ बिना नित झूरे, होए मरै तो रोवे।

खोटी संतति से दुःख उपजे, क्यों प्राणी सुख सोवे॥

दुःख अनेक तरह से हमारे सामने आ जाते हैं और उन दुःखों में हम रह लेते हैं। मानो किसी के लिए कोई वियोग हो गया, दुःख हो गया; हम उस दुःख में रह लेते हैं लेकिन हम यह नहीं सोचते कि इस दुःखी संसार से हमारा निकलना कैसे हो? कितने ही तरह के दुःख आ जाते हैं।

दुःख में डूबना या दुःख से उबरना, स्वयं के हाथ

आपने पंडित भूरामल जी का नाम सुना है? सबने सुना है। अब पंडित भूरामल जी के जीवन में जब वह 10 वर्ष के थे, उस समय पर उनके पिता की मृत्यु हो गई और वे पाँच भाई थे। अब आप समझो... पाँच पुत्र हैं, एक व्यक्ति घर चलाने वाला है और उसकी मृत्यु हो गई। माँ को दुःख अलग है, बच्चों को दुःख अलग हो गया। घर का पालन-पोषण कैसे होगा? कौन इस घर को आगे चलाएगा? कैसे होगा? अब ये सारे दुःख सामने आ गए। अब आप सोचो! कि उन दुःखों में कैसे जीव निर्वाह करता है? आखिर जीव है, जीएगा। अब वे जीव जितने भी हैं, चाहे वह पिता रहे न रहे, उनका जीवन चलेगा कि नहीं चलेगा? चलता है। अब बच्चा छोटा भी है, 10 वर्ष की उम्र है, मानो पिता की मृत्यु हो गई। अब आप सोचो कितनी बड़ी बात है। दुःख हुआ लेकिन इस दुःख को अगर समझे तो क्या होगा? वह समझदारी से उस दुःख को अगर समझेगा, तो उस दुःख से दूर भी हो सकता है और नहीं समझे तो उस दुःख में डूब भी सकता है। अब एक वह दुःख का प्याला है, अब गम के प्याले में अगर डूबना ही चाहो तो डूब जाओ और उबरना चाहो तो उबर जाओ। यह किसके ऊपर है? यह उस व्यक्ति के ऊपर है जिसके सामने सब परिस्थितियाँ हैं और ये परिस्थितियाँ कोई नई नहीं हैं, सबके सामने आती हैं।

सम्यग्ज्ञानी संसार से उद्विग्न होता है

अब उन्हीं पाँच बच्चों में से एक बच्चा क्या बन गया? पहले तो वह काशी बनारस में पढ़ने गया, एक विद्वान बन गया और फिर विद्वान बनने के बाद में उसके अन्दर इतना सम्यग्ज्ञान आ गया कि उसने मन में विचार कर लिया, घर पर आने के बावजूद भी अपनी माँ से कहा... मैं पढ़कर के तो आ गया हूँ लेकिन आप जो तैयारी में लगी हुई हो कि मेरा विवाह हो जाए, मैं विवाह नहीं करूँगा क्योंकि मैं अब जीवनपर्यंत माँ सरस्वती की आराधना करूँगा। अब यह विचार आना, इसको कहते हैं- संसार से उद्विग्न होना। जब हमें दिख रहा है कि पिता का दुःख हमें हुआ, किसी तरह हम उस दुःख से उबरे। अब फिर हम पिता बनेंगे, फिर हम किसी के लिए दुःख बनेंगे; यह दुःख की परम्परा बढ़ती रहेगी। इस तरह की परम्परा आगे न बढ़े, इस तरह का दुःख आगे न बढ़े इसलिए इस दुःख को एक बार जीतना है, तो क्या करना? जो हमारे साथ हुआ, वह दूसरों के साथ हमारे कारण से न हो तो वह दुःख से दूर होने के लिए जब एक व्यक्ति सोच लेता है, तो वह कहलाता है- संसार से दूर होने वाला। संसार से अब उसके अन्दर उद्वेग आ गया।

ज्ञान और अज्ञान भाव

देख लिया सब संसार! संसार की स्थिति सब समझ में आती है। ऐसा विचार करके जो व्यक्ति माध्यस्थ भाव में आ जाता है, उदासीन भाव में आ जाता है उसके अन्दर संसार के प्रति कोई लालसा नहीं रह जाती

है, तो यह कहलाता है- ज्ञान भाव। अगर बार-बार हमारे अन्दर वही मोह बढ़ता रहता है, तो यह कहलाता है- अज्ञान भाव। अब यह अज्ञान भाव समझ में आ जाना चाहिए देखते-देखते, सीखते-सीखते, कुछ न कुछ लोगों की समझते-समझते और कभी-कभी अपने अन्दर जो बन रही हैं परिस्थितियाँ, उनको भी देखते-देखते। आसपास की चीजों को भी अगर आप समझदारी से देखोगे तो आपको इस तरह की घटनाएँ, इस तरह के कार्य, इस तरह की विडम्बनाएँ जगह-जगह आपको दिखाई देंगी।

ज्ञान भाव को स्थाई बनाना आवश्यक

अब इसको देख कर के क्या सोचना? देखो! संसार में कितना दुःख है। उस दुःख से दूर होने की कोशिश करना, यह ज्ञानी का कर्तव्य होता है और यही ज्ञानपना कहलाता है। ऐसा ज्ञान भाव जो हमारे अन्दर स्थाई रूप से थोड़ा-सा टिके तो वह तब टिक पाता है जब हम कहीं स्थाई रूप से थोड़ा-सा टिकने की कोशिश करें। हम स्थाई रूप से कहीं टिकना ही नहीं चाहते हैं। हम तो थोड़ी देर के लिए टिकने आते हैं और टिक नहीं पाते हैं उससे पहले टिकट बना लेते हैं। आगे की टिकट तैयार है, तो जब आगे की टिकट तैयार है और कहीं टिकाव नहीं है तो फिर आपके अन्दर कोई चीज गहरी पैठ करेगी नहीं। यह जीवन में टिकाव आवश्यक है। हम थोड़ा-सा रुकें, ठहरें, टिके और यह महसूस करें कि अब हमारे अन्दर यह राग-द्वेष की फिसलपट्टी पर हमारा जो मन बार-बार उलझता है, फिसलता है, इससे हम अपनी अन्दर की उस पट्टी की जो चिकनाई है उसको हम थोड़ा कम करें। यह भीतर से जब कम होता है तब कुछ लगता है कि हाँ! हम भीतर से कुछ उपलब्ध कर रहे हैं और ये प्रसंग बनते रहते हैं।

राजा श्रेणिक का मुनि महाराज से प्रश्न

आपको कुछ दिनों पहले बताया था...उन मुनि महाराज के बारे में जिनका सिर जल गया था। किसकी घटना है वह? राजा श्रेणिक के समय की घटना है वह। राजा श्रेणिक की घटना है जब वे एक मनोगुप्ति, कायगुप्ति, वचनगुप्तिधारी मुनि महाराजों के पास में पहुँच करके उनसे पूछते हैं कि आपके पास में ऐसी क्या कमी थी कि आप हमारे घर में आए और वापस चले गए। भूल गए सब? वह एक कायगुप्ति जिनके पास नहीं थी, उन मुनि महाराज के पास पहुँचे तो उन्होंने बताया कि क्या घटना घट गई। उन्होंने कहा कि मैं शमशान में जब तपस्या कर रहा था, मेरे सिर के ऊपर सिंगड़ी किसी ने जला दी, एक दूसरा कपाल रख दिया और उसके कारण से मेरा सिर झुलस गया। वह कपाल हिल गया, मेरी कायगुप्ति उसमें छूट गई। अब आपको यह बताना चाह रहा हूँ कि वह जैसे कायगुप्ति छूटी, मुनि महाराज का सिर जल गया और जलने के बाद में उसको जब आसपास के गाँव में लोगों ने देखा तो वहाँ पर वैद्यों को बुलाया गया और वैद्यों को बुलाने के बाद में उनके अच्छे उपचार करने के लिए पूछा गया तो वैद्यराज ने कहा...इनको एक विशिष्ट तेल की आवश्यकता है जिसे लाक्षा मूल तेल कहते हैं, लाक्षा तेल कहते हैं; उससे इनका उपचार हो सकेगा। वह तेल ही इनके ये सब जो घाव हैं, इनको भर सकेगा।



जिनदत्त सेठ का सोम शर्मा ब्राह्मण के घर जाना

अब यह बात थी वहाँ पर जिनदत्त सेठ के पास में जो मुनि महाराज के लिए वैयावृत्ति करने को तत्पर थे और वैद्यराज को लेकर के आए तो मुनि महाराज ने उनसे कहा- लाक्षा तेल लेकर के आओ और बहुत मात्रा में चाहिए। कहाँ मिलेगा? कहने लगे...इसी नगर में एक सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता है। उसके घर में वह तेल मिलेगा और वह तेल जो है उसकी पत्नी ने बड़ी मेहनत से बना कर के रखा है, वह उसी के पास है। जिनदत्त सेठ गए...किसके यहाँ? सोम शर्मा के यहाँ। मित्रता की, प्रार्थना की, किसी भी तरह से हमें यह तेल उपलब्ध करा दो; मुझे मुनि महाराज को ठीक करना है। सोम शर्मा की जो पत्नी थी, उसने वह तेल उनके लिए दे दिया और कहा देखो! एक घड़ा तेल रखा हुआ है, वह घड़ा ले लो और ले जाओ, मुनि महाराज की सेवा करना। एक घड़ा तेल उसने यूँ ही दे दिया, कुछ उससे लिया नहीं।

मोह कम होने पर ही उदारता का भाव

एक घड़ा तेल उसने बिना पैसे के, बिना धन के यूँ ही दे दिया उसको। कैसे दे दिया? आप सोच सकते हो कि हम किसी के लिए एक घड़ा तो ठीक है, एक बिलिया भी तेल दे सकते हैं किसी को free में। भाई! हर चीज की कीमत है...तेल की कीमत है, घी की कीमत है, यहाँ तक कि नमक की भी कीमत है। आप एक कटोरी नमक भी नहीं दे सकते free में किसी को और उसने एक घड़ा तेल ऐसे ही दे दिया। जिनदत्त सेठ से कह दिया...ले जाओ।

यानी पहले के लोगों में कितना उदार भाव रहता था कि घर में अगर कोई चीजें रखी हैं तो वह ऐसा नहीं है कि उससे उनका मोह इतना जुड़ा हुआ है कि वे उसके कारण से इतना मोहित हैं कि उसको किसी को देंगे नहीं। हमारे लिए है तो हम ही उसका उपभोग करेंगे, हमारे ही काम में आएगा। अगर किसी के लिए काम में आने की चीज है, तो उसको देंगे और देते हुए भी उससे कुछ नहीं लेंगे। आज के जमाने में और उस जमाने में यह अन्तर था, यह समझो आप। अगर आप समझना चाहते हो, मोह कैसे कम किया जाता है या मोह क्यों नहीं होता है या मोह में कैसे कमी लाई जाती है, तो इस दृष्टान्त को देखो आप।

मोह क्या है?

हमारे पास में चीजें हैं और वे चीजें हमारे भी उपयोग में नहीं आ रही हैं लेकिन हम अपने पास में उनको रखे हैं। क्या सोच कर? कभी उपयोग में आएँगी, कभी इससे हम काम लेंगे, कभी हम इसको पहनेंगे, कभी इसको हम सजाएँगे, कभी इसका कुछ न कुछ उपयोग होगा और सोचते-सोचते वे चीजें तो पुरानी होती जाती हैं; नई-नई चीजें, नई-नई varieties आती जाती हैं और जिसके बारे में हम सोच रहे थे, उसका उपभोग करने का तो हमारे पास समय नहीं है। इतनी चीजें हैं अपने पास में और कोई अगर माँगने आ जाए या कोई जरूरतमन्द आदमी दिख जाए और हम उसके लिए कुछ देने का भी अगर भाव कर ले तो लाख उसको सुनाएँगे, एहसान करेंगे और इतनी खराब-सी चीज उसके लिए देंगे कि वह लेकर के चला जाए और उसको याद दिलाएँगे...देख! ध्यान रखना, बहुत काम की चीज थी मेरे लिए, मैंने तेरे को दे दी है। यह

क्या है? ये मोह की practical परिभाषाएँ हैं।

संग्रहण की मानसिकता बदले

अगर मोह को समझना चाहते हो तो ऐसे समझो। जब हमें पता है कि कोई भी चीज पर वस्तु हमारी नहीं हो सकती है और यह पर वस्तुओं का संग्रह सिर्फ क्या है? यह हमारी मानसिकता है, हमने अपने पास में रख लिया यह हमारी मानसिक ग्रहण शक्ति है। वस्तुतः वह वस्तु कभी हमारी होती नहीं है। लेकिन हमारा मन कहता है। आप तो एक घड़ा तेल की बात कर रहे हो, एक घड़ा पानी नहीं देगा कोई किसी के लिए। आप तेल की बात कर रहे हो और वह भी कौन-सा महंगा तेल? कौन-सा? लाक्षा तेल। यह सामान्य से तुम्हारा सरसों का और सोयाबीन का तेल नहीं, इससे 10 गुना कीमत उसकी ज्यादा होती है। अब ऐसा तेल उसने एक घड़ा तेल उसके लिए दे दिया यानी उस सोमशर्मा के अन्दर, उसकी पत्नी के अन्दर, क्या कहा जाएगा? मोह है कि नहीं है? बोलो! नहीं है।

संकीर्णता का भाव ही अज्ञान जनित मोह भाव

जब मोह नहीं होता है, तो किसी चीज से मोह नहीं होता है। चीजें रखी भी होती हैं, आपके काम में आ रही हैं...आप ले लीजिए। इतनी उदारता के भावों में दिन प्रतिदिन कमी आती जा रही है। आदमी देखो! कितना संकीर्ण होता चला जा रहा है। कितना अपने आप को दूसरी चीजों से बांधता चला जाता है कि वह उन चीजों के साथ मरने-मिटने को तैयार हो जाता है लेकिन किसी चीज से अपना एक अलगाव होता है, उसे महसूस नहीं करना चाहता। कोई भी चीजें हैं, आपके पास रखी हैं, दूसरे के उपयोग की हैं, आप उन्हें दूसरे के लिए नहीं देते क्योंकि वे मैंने कमाई हैं, मेरे पैसे से अर्जित हुई हैं, मैंने उनके लिए मेहनत की है। उसमें मेरेपन का जो भाव आता है, यही राग भाव अज्ञान जनित भाव कहलाता है और यह अज्ञान का नाम ही मोह भाव कहलाता है- पर वस्तुओं में अपनापन मानना।

मोह का हल्कापन या गाढ़ापन?

अब अपनापन कितने ही तरीके का हो सकता है। भाई! जिस घर में हम हैं, वह अपना घर है, जिस घर में अपनी चीजें रखी हैं, वे अपनी चीजें हैं। लेकिन वे अपनी होते हुए भी जब जरूरत पड़े तो किसी के लिए दे दी तो उस समय पर हमारे अन्दर कोई भी व्यथा उत्पन्न नहीं हुई, कोई भी मन में विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ तो यह भी अपना होते हुए भी उसको दे दिया गया तो यह कहलाएगा मोह का हल्कापन। जब मोह का गाढ़ापन होता है, तो चीजों से बंध जाते हैं और कोई चीज अगर थोड़ी भी खराब हो जाती है, तो क्या होता है? पूरा घर क्लेश में चला जाता है, पूरे घर में सबका दिमाग खराब हो जाता है। जबकि चीजें किसके लिए होती हैं? बनने-मिटने के लिए होती हैं।

मोह की कमी और संसार से मुक्ति

हम उनमें अपनापन मान लेते हैं, अपने तरीके से हम उन्हें अपने पास में रख लेते हैं लेकिन हर चीज अपने

स्वभाव में है; वह मेरी कभी हो नहीं सकती है। **पर** पर रहेगा, **स्व** स्व रहेगा; यह भाव जितना practically आपके अन्दर बढ़ेगा, उतना ही आपके अन्दर मोह और अज्ञान की कमी होगी और तभी आपको यह संसार से मुक्ति मिलेगी। यह मोह का भाव बढ़ता है, जब हम चीजों से अपना जुड़ाव, अपना लगाव बढ़ाते हैं।

वस्तु विनिमय की व्यवस्था

एक घड़ा लाक्षा तेल उसने जिनदत्त से कह दिया... उस कमरे में रखा है उठा लो, ले जाओ और उसने एक शब्द भी नहीं बोला कि यह मैंने बहुत मेहनत से कमाया है, बहुत मेहनत से अर्जित किया है, यह बहुत कीमती है, इसके लिए आपको इतना पैसा देना पड़ेगा। क्योंकि वह जानती थी कि इन्हें अभी जरूरत है। वह जितना पैसा मांगती, उतना पैसा वह सेठ उसको देता लेकिन उसने कुछ नहीं मांगा। किस लिए? आप कहोगे मुनि महाराज के लिए, इसलिए? ऐसी कोई बात नहीं, ऐसी कोई भावना नहीं उसके अन्दर। उसे इतना है कि तुम्हें तेल की जरूरत है तो ले जाओ। पहले के लोग ऐसा ही वस्तु विनिमय किया करते थे। एक बार अगर किसी ने कोई अपने से चीज ले ली, ठीक है कभी उसको भी किसी चीज की जरूरत पड़ेगी और वह उसके घर पर जाएगा तो उसको भी वह उसी तरह से प्रदान कर देगा। वह चीज नापी नहीं जाएगी कि हमने तुम्हें तेल दिया था, तो हम तुम्हें घी कैसे दे दे। अगर उसके घर में घी होगा तो वह एक घड़ा घी भी उसे वापस ऐसे ही दे देगा जैसे वह एक घड़ा तेल दे रहा है उसको।

पहले के लोग उदार होते थे

पहले के लोगों में यह उदारता रहती थी यानी मोह पहले इसलिए कम रहता था। आज मोह बहुत बढ़ा हुआ है। हर छोटी से छोटी चीज पर आदमी मरने-मिटने को तैयार है। पहले जमीन कितनी रहती थी, पता नहीं रहता था। घर कितने बड़े-बड़े रहते थे, पता नहीं रहता था। घर में कितने सामान रखे हैं, पता नहीं रहता था। घर में कितने लोग हैं, उनकी संख्या भी। बहुतायत में सब चीज बहुत रहती थी और मोह कुछ नहीं होता था।

जितनी वस्तुएँ ज्यादा, उतना मोह कम

मैं आपको फिर एक बात बता रहा हूँ, यह उल्टा गणित बता रहा हूँ आपको। ध्यान रखना! घर में जितने लोग ज्यादा होंगे, वस्तुएँ ज्यादा होंगी, मोह उतना ही कम होगा और घर में लोग जितने कम होंगे, उतना ही मोह आपके अन्दर ज्यादा बढ़ेगा। आपको लगता है एक बच्चा है तो मोह कम है, दो बच्चे हो जाएँगे तो मोह ज्यादा हो जाएगा, तीन बच्चे हो जाएँगे तो मोह ज्यादा हो जाएगा, चार हो गए तो मोह और बढ़ जाएगा, संसार बढ़ जाएगा। मैं आपको बता रहा हूँ... यह गणित उल्टा है। आपके चार बच्चे होंगे तो चार बच्चों में आपका मोह कम होगा। दो होंगे तो मोह और ज्यादा होगा। एक होगा तो मोह आपका सिर चढ़ कर बोलेगा। यह गणित हमेशा ध्यान रखना। एक में मोह बहुत गाढ़ा होगा और चार में, पाँच में मोह बहुत dilute हो जाएगा।

मोह ही परेशानी का कारण

पहले के लोग मोह कम करते थे। चीजें बहुत होती थी, लोग बहुत होते थे, सब कुछ बहुत होता था और आज चीजें कम हैं। एक बर्तन भी घर में आता है, एक tea set, cup set भी आता है, एक भी कोई चीज घर में आती है, तो इतना मोह उत्पन्न होता है कि वह कहीं टूट न जाए, बिखर न जाए, किसी के हाथ से गिर न जाए और अगर कभी गिर गया तो आफत आ जाती है घर के अन्दर। पहले के लोग! गिरता था, आता था, टूटता था, मिटता था, कोई भी तरह की कोई परेशानी नहीं होती थी।

जिनदत्त सेठ से पहले घड़े का फूटना

एक घड़ा वह जिनदत्त सेठ लेकर के आगे गया। घर के आगे निकल ही नहीं पाया था कि उसे किसी तरह से उसको फिसलन हो गई। फिसल गया वह आपके केले के छिलकों पर। केले आपने खा लिए, फिसला किसी को दिया। अब वह फिसल गया। फिसल गया तो घड़ा उसके सिर से गिर गया। गिर गया तो वह सारा तेल बह गया, सब मिट्टी में मिल गया। एक घड़ा तेल मिट्टी में मिल गया। अब आपके granite वाले फर्श तो होते नहीं कि भाई! सीधा बटोर ले। कौन से फर्श होते थे पहले? सब मिट्टी-मिट्टी होती थी। सड़क तो मिट्टी, गाँव की तो मिट्टी, अब वह सब मिट्टी में मिल गया एक घड़ा तेल।

जिनदत्त सेठ का अपराध बोध

अब तो जिनदत्त सोचने लग गया...यह मेरे से कितना बड़ा अपराध हो गया। मैं इतने नेक काम के लिए जा रहा था और इतनी मेहनत से इसके घर तक आया था, इतनी मिन्नतें की थी तब इसने मुझे एक घड़ा तेल दिया और अब मुझे यह तेल नहीं मिलेगा तो मुनि महाराज को ठीक कैसे कर पाऊँगा? इसी तेल से मुनि महाराज ठीक होने हैं और यह तेल केवल इसी के पास है। अब क्या करे? बताओ क्या करे? अब दोबारा जाना पड़ेगा। अब दोबारा जाता है कैसे भी, डरकर, सहमकर। इतना बड़ा सेठ है लेकिन देखो! अगर पैसे से दिया होता तो तन कर जाता। चल कोई बात नहीं, वह फूट गया चल दूसरा दे; अब वह तन भी नहीं सकता। अब free में मिला था, सेवा के लिए मिला था; वह टूट गया, फूट गया।

तुंकारी से दूसरी बार घड़ा लाना

अब वह फिर से गया सोमशर्मा की पत्नी के पास में...उसका नाम जानते हो क्या था? उसका नाम था- तुंकारी। क्या नाम था उसका? तुंकारी। अब वह उसके पास में गया तो फिर से उसने कहा- बहन जी! क्या बोलेगा और? Aunty जी? बहन जी! क्षमा कर देना, बहुत गलती हो गई। आपकी इतनी मेहनत और उस मेहनत से हम जिस नेक काम के लिए जा रहे थे, वह भी हमारा सफल नहीं हुआ। मुझे अपने पर बहुत शर्म आ रही है कि मैंने कितना बड़ा गलत काम कर दिया, अपराध हो गया, मुझसे कितनी बड़ी गलती हो गई? मुझे क्षमा कर दो। वह कहती है- क्या हो गया? क्या क्षमा कर दो? आपने जो घड़ा दिया था तेल का, वह रास्ते में जाते ही मेरे से फिसल गया और वह घड़ा फूट गया। वह कहती है...इसमें इतना घबराने की क्या बात है? कोई बात नहीं है, कमरे में दूसरा घड़ा रखा है आप ले जाइए।

तुंकारी की सहजता

ऐसे ही उसने बड़ी सहजता से कह दिया। कमरे में दूसरा घड़ा रखा है आप उसे उठा लीजिए, ले जाइए। जिनदत्त तो देखते रह गया। इतनी बड़ी चीज और उसकी आँखों में न कोई क्रोध, न कोई शिकन, न कोई बार-बार पूछा-ताछी कि ऐसे कैसे कर दिया? गलती हो गई, अब एक बार मैं फिर से तुम्हें दे देती हूँ। दोबारा ध्यान रखना, ऐसा नहीं होना चाहिए। तुम तो होती तो कितनी सुना देती। बिना सुनाए तो हम कभी किसी का उपकार कर ही नहीं सकते, यह हमारी आदत में है और उसने बिना कुछ कहे... वहाँ रखा है आप आराम से ले जाइए, कुछ भी चिन्ता मत कीजिए, आप ले जाइए, मुनि महाराज की सेवा कीजिए। उसने दूसरा घड़ा उठा लिया। यह तुम्हारे लिए है।

पुनः दूसरे घड़े का फूटना

अब वह दूसरा घड़ा लेकर के घर से निकला। थोड़ी दूर चला, ऐसा संयोग बना कर्म का कि वह फिर से फिसल गया किसी के छिलके पर। जैसे तुम जानबूझकर फिसलते रहते हो किसी के ऊपर, ऐसे वह फिर से फिसल गया। अब वह फिर से फिसल गया, घड़ा फिर से टूट गया। पूरा तेल फिर से मिट्टी में मिल गया। अब तो जिनदत्त के होश उड़ गए, अब क्या करें? यह कौन-सी हमारी परीक्षा हो रही है? यह हमारे साथ हो क्या रहा है? हम अपने घर तक नहीं पहुँच पा रहे हैं और यह नुकसान एक के बाद एक होता जा रहा है।

जिनदत्त सेठ का शर्मिन्दा होना

हमारा कार्य सफल क्यों नहीं हो रहा है? हम अच्छे काम के लिए, अच्छे उद्देश्य के लिए इतना अच्छा भाव किए हुए हैं और यह व्यवधान, अब क्या करें? फिर घर तक नहीं पहुँच पाया, अब दूसरा घड़ा फिर टूट गया। अब तो वह और ज्यादा सहम गया, डर गया। क्या मुँह लेकर के जाएँ? बोलते हो न ऐसे? किस मुँह से अब आपके सामने पहुँचें? किस मुँह से अब आपसे बात करें? बड़ी शर्मिन्दगी महसूस होती है। अब एक सेठ होकर के किसी के घर पर जा रहा है, एक सामान्य व्यक्ति के घर पर जा रहा है और उससे चीजें लेकर के आ रहा है और वे चीजें जिस काम के लिए ले जा रहा है, वह कार्य की पूर्ति नहीं हो रही है।

तीसरे घड़े का भी फूटना

तीसरी बार फिर गया... दो घड़े फूट गए अब तीसरी बार फिर गया। बहन जी! क्या हो गया? अभी तो मैं घर तक पहुँचा ही नहीं। क्यों नहीं पहुँचे? वह घड़ा फिर से टूट गया, फिर फूट गया, तेल फिर खराब हो गया। आप इतना परेशान क्यों हैं? इतना भावुक क्यों हो रहे हैं? इतनी शर्मिन्दगी क्यों महसूस कर रहे हैं? इतना रो-से क्यों रहे हैं, इतना रोना-सा मुँह क्यों बना लिया आपने? अभी हमारे पास में एक घड़ा और है। तीन घड़े रखे थे, दो फूट गए हैं, एक और रखा हुआ है; आप उसको ले जाओ। सुन रही हो! कौन कह रहा है? ये क्षमताएँ देखो! तीसरा घड़ा भी उसने दे दिया और तीसरा घड़ा लेकर के भी वह चला। क्या कह रहे हो? अब नहीं फोड़ना महाराज! तीसरा घड़ा भी वह लेकर के चला और संयोग से वह तीसरा घड़ा भी फूट गया।

तुंकारी की उदारता

तीन घड़े फूट गए लेकिन घर तक अभी पहुँचा नहीं। अब वह फिर से आता है। अब वह कहती है- क्या हो गया सेठ जी? फिर आ गए आप। बहन जी! न जाने क्या हो गया है? मैं घर तक पहुँच ही नहीं पाता हूँ, घड़ा बीच में ही फूट जाता है। अब वह कहती है- जो बड़े-बड़े घड़े थे, वे तो सब शायद निकल गए, अब छोटा घड़ा रखा है वहाँ पर। छोटी-सी, एक छोटी-सी, हाँ! उसमें तेल रखा हुआ है। अब आप उसको ले जाइए, वह बचा हुआ है और उसको आप सुरक्षा के साथ ले जाना।

तुंकारी का समता भाव

तीन घड़े फोड़ दिए और चौथा घड़ा लेने के लिए जब वह जिनदत्त सेठ उसके पास आता है और उसके अन्दर क्रोध की एक लहर नहीं देखता है, उसके चेहरे पर समता का भाव देखता है तो वह पूछ उठता है...बहन जी! तेल तो ले जाएँगे बाद में, पहले यह तो बताओ कि तुम्हारे अन्दर इतना नुकसान होने के बावजूद भी गुस्सा क्यों नहीं आता? क्या पूछता है? इतना नुकसान होने पर भी आपके चेहरे पर बिगाड़ क्यों नहीं आता? गुस्सा क्यों नहीं आता? इतनी आपकी बहुमूल्य चीजें टूट गईं फिर भी आपके चेहरे पर कोई शिकन नहीं। किसने पूछा? जिनदत्त सेठ ने। किससे पूछा? तुंकारी से। वह बड़ी शान्ति से उत्तर देती है।

मोह की कमी से मन में शान्ति

वह उत्तर आपको, बड़ा लम्बा उत्तर देती है वह, थोड़ी देर से समझाया जाएगा। अभी क्या ध्यान रखना है? चीजों का नुकसान होने पर भी अगर हमारे अन्दर मोह नहीं होगा तो हम इतने शान्त रह सकते हैं। ये तो घड़े फूटे हैं, अगर आदमी भी टूट जाता है, चेतन वस्तु भी छूट जाती है, टूट जाता है, सब कुछ हो जाता है, तो भी हम इतने शान्त रह सकते हैं अगर हम चाहे तो और यह तभी सम्भव है जब हमारे अन्दर मोह की कमी हो। जब मोह की कमी होगी तो हम संसार की इन क्रियाओं से डरेंगे कि अगर हम रोएँगे, दुःखी होंगे, तो इससे हमारे अन्दर कोई समाधान नहीं मिलेगा।

मोह का अभाव दिल को मजबूत बनाता है

हमें समाधान तो हमारे मन के ज्ञान से मिलेगा, मन की शान्ति से मिलेगा और यह समाधान आपको जब मिलेगा, तब इस तरह की मूढ़ताएँ मन के अन्दर जो भरी हुई हैं, वे अपने आप कम होने लग जाएंगी। इसलिए मन की मूढ़ता को कम करने के लिए यह समझते रहना है, हमारे सामने किसी भी तरह का नुकसान हो, कुछ भी हो, टूट-फूट हो लेकिन हमारा दिल न टूटे। चीजें टूट जायें कोई बात नहीं लेकिन हमारा दिल टूटना नहीं चाहिए। इतना मजबूत दिल किनका होगा? जो मोह से रहित होंगे उन्हीं का होगा। अतः आचार्य आपके दिल को मजबूत बनाने के लिए यह बात कह रहे हैं...अपना दिल अगर मजबूत बनाना चाहते हो तो क्या करना? मोह कम करो।

मोह और राग की कमी करना आवश्यक

आपका दिल मजबूत इससे नहीं होगा कि आप कितना घी खाते हो और कितने बादाम खाते हो। दिल मजबूत होगा इससे कि आपके अन्दर मोह की कमी, राग की कमी किस रूप में है? आप चीजों को अपने से अलग देखो। ठीक है! उनका जीवन उनके साथ, चीजों की मर्यादा उनके साथ। चीजें आती हैं, जाती हैं; लोग आते हैं, जाते हैं लेकिन हमें उनसे व्यथित होकर के, दुःखी होकर के अपने मन को दुःखी बनाना और छोटी-छोटी बातों पर... दिल टूट गया। क्या टूट गया? भाई! operation कराने की जरूरत ही क्या पड़ती जब दिल टूट गया तो फिर? यह दिल क्यों टूटता है? किस बात के कारण से आपके अन्दर इतना गम छोटी-छोटी बातों पर आ जाता है और किस बात के कारण से आप इतने परेशान हो जाते हैं? यह बात अगर आपके अन्दर समझ में आएगी तो आपके कभी भी heart की surgery किसी doctor को नहीं करनी पड़ेगी। heart की surgery तभी तो करनी पड़ती है। क्यों होती है? जब आपके अन्दर ऐसा मोह बैठ जाता है, निराशा बैठ जाती है, गम बैठ जाता है, दुःख बैठ जाता है। आप भीतर ही भीतर जब परेशान होने लग जाते हैं, सारा दिमाग आपका disturb हो जाता है, तो आप अपने आप में समझ नहीं पाते कि इसका मूल कारण क्या है?

दुःख मोह में

इसका मूल कारण है- मोह भाव। दूर रहो उससे और दूर होने में आता नहीं। लड़का अपना हो तो दुःख और अपना लड़का अगर खोटा हो तो दुःख और खोटा भी लड़का अगर कहीं छूट जाए तो भी दुःख और खोटा भी अगर अपने पास में रहे तो भी दुःख। दुःख तो कभी छूटता ही नहीं। क्यों नहीं छूटेगा? दुःख लड़के में नहीं है, दुःख आपके मोह में है। चीज अच्छी नहीं है, तो दुःख और अच्छी है तो उसकी प्राप्ति नहीं हो रही है, तो दुःख और अच्छी चीज भी अगर नहीं है और वह भी अगर अपने से छूट जाए तो उसके छूटने का दुःख। मोह कभी किसी चीज को छोड़ता नहीं है, चिपकता है; बार-बार वही गलती करता है और दुःख में बार-बार डूबने की कोशिश करता है।

संसार के दुःखों से डरो

इसलिए आचार्य कहते हैं.. अपने मन की मूढ़ता को खुद दूर करने की कोशिश करो और यह ज्ञान इसीलिए है। आपको संसार में रहकर के संसार से डर लगना चाहिए, संसार के दुःखों से भय आना चाहिए। न कि मेरे ऊपर दुःख आ गया इस बात से भयभीत होना चाहिए। क्या सुना? दुःख किसके ऊपर आया? मेरे ऊपर आया? नहीं! यह संसार में दुःख है; मुझे इस बात का दुःख होना चाहिए कि संसार में सब जीवों को ऐसा ही दुःख मिलता है। न कि इस बात का कि मेरे लिए ऐसा दुःख हो गया। यह अपने अन्दर विचार रहेगा तो आपकी सावधानी से पूरा जीवन निकलेगा, नहीं तो आज आप देख लो! कितने case depression के हो रहे हैं। हर तीसरा आदमी depression का शिकार है और क्या कारण है? यही कारण है! job अच्छी नहीं मिली, पत्नी अच्छी नहीं मिली, अच्छी मिली तो वह एक महीने में चली गई, घर में business नहीं चल रहा है, पैसा आया था देने को था वह दे नहीं रहा है, कर्जा चढ़ रहा है। ये सब चीजों से जितना-जितना आपका लगाव है, वह चीज आपके अन्दर दुःख का कारण बनती जा रही है; और कोई कारण नहीं है।

गाथा: 90

कालरूपी अरहट से बचने के लिए मृत्युंजयी बनना चाहिए

कीलसि कियंत-वेलं, सरीर-वावीइ जत्थ पइसमयं ।
काल-रहट-घडीहिं, सोसिज्जइ जीवियंभोहं ॥90॥

अन्वयार्थ- 'हे आत्मन्! तुम इस' (सरीर-वावीइ) शरीररूपी, बावड़ी में (कियंत-वेलं) कितने, वेला/समय 'पर्यंत' (कीलसि) क्रीड़ा करोगे (जत्थ) जहाँ अर्थात् जिस बावड़ी में (पइसमयं) प्रतिसमय (काल-रहट- घडीहिं) कालरूपी, अरहट/रहट/घटीयंत्र के, घड़ों के द्वारा (जीविय-अंभ-ओहं) जीवनरूपी, जल, ओघ यानी राशि को (सोसिज्जइ) सोखा जा रहा है 'निश्चितरूप से विचार करो' ॥90॥

आक-खण्ड या चिन्तामणी रत्न, क्या चाहिए इस नश्वर देह से?

वैराग्य सद्गम् इदि गंथम् फुप्पव्विदिणेसु, सव्वेही जीवेही सुणिज्जमाणा ।
तिठंति तथ्य या नवदीय गाहाय आइरीएणवुत्तम् ॥

कीलसि कियंत वेलं, सरीर-वावीइ जत्थ पइसमयं ।
काल-रहट-घडीहिं, सोसिज्जइ जीवियंभोहं ॥90॥

मम सरीरं-वावीइ सरिसं होदि । किम् सरिसं? वावी, जत्थ पडि समयं सव्वे जीवा कीडंति,
अत्थ, आइरिय देवो कहेदि कियंतं बलं, अम्हि सरीरे ।

काल-रहट-घडीहिं, कालस्य रहटेण पडिसमयमं पडिक्खणं आउखएण जीविय ।

काल रहट समान नश्वर जीवन

प्रति समय काल की रहट से यह जीवन का जल सूख रहा है। जब यह जीवन का जल सूख रहा है, तो इस शरीर की वापी में या वामी में कितनी देर तक क्रीड़ा करोगे? कितनी वेला मिलेगी? कितना समय मिलेगा

जो इस शरीर में क्रीड़ा करके निकालोगे? क्योंकि यह शरीर तो प्रति समय काल की चक्र से, काल की रहट से घूम रहा है और इसमें जो जीवन आ रहा है, वह सूखता जा रहा है। जीवन का जल इसमें आकर के गिरता जा रहा है, सूखता जा रहा है। जो हमारा जीवन है, यह जल की तरह है और जल जब आता है तो वह ऊपर आने के बाद में जैसे रहट से नीचे गिर जाता है, ऐसे ही वह जल नीचे रहट से आकर के फिर वह कहीं भी चला जाता है, उसका कोई पता ठिकाना नहीं रहता।



अविनश्वर आत्म तत्त्व की ओर दृष्टि रखो

ठीक इसी तरह आचार्य कहते हैं कि इस शरीर की वापी में यह जल जो भरा हुआ है आयु कर्म का, यह प्रति समय निकल रहा है। इसलिए इस नश्वर शरीर में क्रीड़ा मत करो, अविनश्वर आत्म तत्त्व की ओर देखो; यह प्रकारान्तर से यहाँ पर कहना है। शरीर में क्रीड़ा करने का उपक्रम मनुष्य का एक पुराना संस्कार है और इस पुराने संस्कार के कारण से इस शरीर में इसकी रुचि, इस शरीर में इसको आनन्द आना एक स्वाभाविक सा इसका भाव बन जाता है। आचार्य कहते हैं कि इस शरीर में क्रीड़ा करने का मतलब है कि हम अपने अविनश्वर समय को नश्वर में जोड़ रहे हैं। उन क्षणों को हम अपने समक्ष रखें, जब हम यह देख सकते हैं कि हमारे सामने दोनों तरह की चीजें हैं। एक तरफ हमारे सामने अविनश्वर आत्म तत्त्व है और एक तरफ हमारे सामने यह नश्वर देह है। अब इसमें हमें किसको choose करना चाहिए? खेलना तो जरूरी है, क्रीड़ा तो करना ही है। बच्चे थे तब भी क्रीड़ा करते थे, बड़े हो गए तब भी क्रीड़ा कर रहे हैं और बूढ़े हो जाएँगे तब भी क्रीड़ा तो करेंगे ही क्योंकि बिना क्रीड़ा किए हुए, बिना खेले हुए किसी का मन लगता है नहीं तो खेलना तो है। आचार्य कहते हैं...कितनी देर तक इस शरीर में खेलोगे? कहाँ खेलना चाहिए? शरीर में खेलने के लिए क्यों यहाँ पर एक आश्चर्यजनक भाव व्यक्त किया जा रहा है कि आखिर आप इस शरीर में कितनी देर तक खेलोगे? यह जो आश्चर्य व्यक्त किया जा रहा है वह इसलिए किया जा रहा है कि जीवन कहीं और चल रहा है और आप क्रीड़ा कहीं और कर रहे हो। शरीर में क्रीड़ा करने वाले लोगों के लिए कहा जा रहा है कि शायद आपको पता नहीं कि खेलने की और भी अच्छी जगह थी। क्या अच्छी जगह हो सकती हैं?

आक-पिण्ड या चिन्तामणि दिव्य रत्न, किसमें रमोगे?

एक तरफ आपके सामने एक चिन्तामणि के समान दिव्य रत्न है और दूसरी तरफ एक ऐसा आक के पिण्ड के समान, जिसमें कोई सार नहीं है, ऐसा निस्सार आपके सामने एक पदार्थ है। अब क्या करना है? किस में आनन्द लेना है? दो चीजें अगर आपके सामने रखी हो, एक तरफ चिन्तामणि रत्न रखा हो और एक तरफ क्या हो? आक के पिण्ड के समान केवल एक निस्सार सी वस्तु रखी हो। आक-पिण्ड जानते हो? आक का फूल, आक-पिण्ड; ऐसे समझो कि जैसे कभी कोई खेतों से कुछ ये सफेद-सफेद रंग के कुछ फूल से उड़ के आ जाते हैं, जो उड़ते रहते हैं, अपने वस्त्रों पर टिक जाते हैं। ऐसा कोई एक निस्सार सा फूल जिसको हम पकड़ भी नहीं पाते; पकड़ ले तो उसमें कोई सुगन्ध भी नहीं होती है फिर भी वह फूल-सा दिखाई देता है और एक तरफ आपके सामने चिन्तामणि दिव्य रत्न रखा हो तो आचार्य पूछते हैं...आप किस में रमोगे?

किसमें लगोगे?

जिसमें आप आदर करोगे, उसी की उपलब्धि होगी

एक तरफ 'इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखंडकं, ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्याद्रियन्तां विवेकिनः' उनसे पूछा जा रहा है जो विवेकी हैं। विवेकी किसमें आदर करेंगे? आदर किसमें करेंगे? किससे खेलेंगे? क्योंकि जिसमें हम खेलेंगे उसी में हमारा आदर होगा और वह आदर भाव हमारा अगर पिण्ड के उस आक-खण्ड में हो रहा है, अगर हमारा उस निस्सार पदार्थ में हो रहा है तो यह भी ध्यान से होगा और अगर हमारा आदर दिव्य रत्न में हो रहा है, तो वह भी ध्यान से होगा। ध्यान से दोनों चीजें मिलेंगी। क्या चाहिए आपको? अगर रत्न की और उस निस्सार फूल की बात कही जाएगी तो आप निश्चित रूप से रत्न को ही choose करेंगे क्योंकि आप विवेकी हैं, ऐसा मान कर मैं चल रहा हूँ। मान सकता हूँ? आप विवेकी हैं और विवेकी लोगों के लिए ही कहा जा रहा है कि विवेकी पुरुष किसमें आदर करेगा? आचार्य स्वयं प्रश्न करके छोड़ देते हैं। निश्चित रूप से जो विवेकवान पुरुष होगा वह दिव्य रत्न में आदर करेगा। उसी तरह से आचार्य वहाँ प्रकारान्तर से कहना चाहते हैं कि अगर हमारे सामने यह शरीर है, तो यह शरीर कैसा है? यह उस आक-पिण्ड की तरह है और हमारा आत्म तत्त्व है, वह कैसा है? वह चिन्तामणि दिव्य रत्न की तरह है। अब इसमें अगर जो विवेकवान पुरुष होगा तो वह किसमें आदर करे? इसके लिए आचार्यों ने कहकर के छोड़ दिया और वह आदर करने से ही आपके लिए वह क्रीड़ा का भाव बनेगा। जिसमें आप आदर करोगे, उसी में आपकी क्रीड़ा होगी।

आत्मा में क्रीड़ा करना ही चैतन्य क्रीड़ा

अब आप सोचोगे कि अपनी आत्मा में हम क्या क्रीड़ा कर पाएँगे? आत्मा में बहुत अच्छी क्रीड़ा होती है। आत्मा में क्रीड़ा करने का जो सुख है, आनन्द है, वह कुछ अद्भुत ही होता है और जैसे कोई एक नया खेल जो हमने कभी अपने पुराने जीवन में भी कभी न खेला हो, अगर वह नया खेल अगर हमें कोई खेलने की इच्छा हो तो वह एक ही जगह पर मिलेगा। कहाँ मिलेगा? उसे अपने आप में खेलना, अपनी आत्मा में खेलना। इस आत्मा में क्रीड़ा करने के लिए आचार्यों ने कहा कि अगर आप एक बार कौतुकवश भी इसमें क्रीड़ा करना शुरू कर दोगे तो आपको इतना मजा आएगा, इतना सुख मिलेगा कि आपको इस क्रीड़ा में ही रमना हो जाएगा। एक बार कौतुक वश भी अगर इस तरह की क्रीड़ा शुरू कर दो कि आखिर देखें तो इस आत्मा में है क्या? बहुत बातें सुनते हैं आत्मा की, एक बार इसमें लग कर तो देखें! एक बार इसमें क्रीड़ा करके तो देखें! जब आपके मन में इस तरीके का विचार आएगा तो वह क्रीड़ा आपकी आप में होने लगेगी तो यह क्रीड़ा ही चैतन्य क्रीड़ा कहलाती है, चिद्धिलास कहा जाता है। चेतना का एक विलास है, चेतना का भी एक वैभव है, चेतना में भी रुकने का, रहने का एक आनन्द है और उस चेतना में क्रीड़ा करना यानी शाश्वत तत्त्व में रमना। किस में रमना? शाश्वत तत्त्व में।

चिद्विलास शाश्वत तत्त्व में रमो

जो क्षणभंगुर है, नश्वर है, वह हमारी मृत्यु के उपरान्त छूट जाएगा क्योंकि आयु हर समय घटती है। जीवन भीतर से सूख रहा है। कितनी देर तक इस शरीर की वापी में रहकर के इसमें क्रीड़ा की जाएगी? और यह क्रीड़ा आपके लिए कोई आनन्द नहीं देगी, यह सिर्फ आपके अन्दर एक तृष्णा पैदा करेगी। सन्तोष मिलेगा, सुख मिलेगा, वास्तविक रूप से तृप्ति मिलेगी तो कहाँ मिलेगी? आत्म क्रीड़ा में, चैतन्य क्रीड़ा में। अपने चिद्विलास में रमने में, जो आनन्द और तृप्ति मिलती है, वह तृप्ति इस जीव को कभी भी अपने शरीरों में रमण करने से मिली नहीं है। यह तो आप इस वैराग्य शतक में पिछले कई दिनों से सुन चुके हैं कि ऐसे शरीर हमने हर गतियों में अनेक बार धारण किए हैं। जब शरीर धारण किए हैं तो हमने क्या किया है? शरीर में ही तो रमण किया है। शरीर को ही तो अपना मान करके, शरीर के ही सुख में तो हमने अपना सुख माना है और शरीर के ही सुख को अपना मानकर के हमने कभी, आत्मा का सुख होता है, चेतना का सुख होता है, उसको कभी सुख माना ही नहीं है। बस! यही भूल है। इस भूल को बार-बार सुधारने के लिए आचार्य कहते हैं- इस शरीर में कब तक सुख मानोगे? इस शरीर में कब तक क्रीड़ा करोगे? इस शरीर में कब तक रमण करोगे? इस शरीर में रमण करने जैसा कुछ है नहीं।

विवेकी पुरुष शरीर से मोह को छोड़ते हैं

अगर कल अष्टपाहुड़ पड़ा होता, शाम को बैठे होते तो पता पड़ता कि इस शरीर में क्या-क्या है। पित्त, अंत, आंतें हैं, पित्त है, 'फुफ्फुस' फेफड़े हैं, कलेजा है, हृदय है, श्लेष्मा है, कफ है, लार है, क्या-क्या है और बोलो? मल है, मूत्र है, रुधिर है, आंव है, पीव है, क्या है और बताओ? कौन सा अमृत टपक रहा है? कहाँ से अमृत टपकता है? यह तो बताओ? इस शरीर में क्या है? विवेकी पुरुष थोड़ा सा विचार तो करे कि जहाँ इस शरीर में इसका इतना राग उत्पन्न हो रहा है, इस शरीर में इतना रागान्वित होकर के दुःखी होता है, इस शरीर में क्रीड़ा करने लायक ऐसा क्या है? रमने लायक ऐसा क्या है? अगर इसी में रमने लायक होता तो विवेकी लोग इस शरीर से मोह क्यों छोड़ने का पुरुषार्थ करते। महापुरुष हमेशा इसी भाव में जीते हैं कि जो हमारे सामने यह दिखाई दे रहा है, यह जो नश्वर देह दिखाई दे रही है हमें इससे ऊपर उठना है। जब हम इस शरीर में क्रीड़ा करते हैं, पुरुषार्थ करते हैं, अपने लिए भी सुख मिलता है, दूसरे के लिए भी सुख मिलता है और उस सुख के उपरान्त कभी-कभी पुत्र उत्पत्ति हो जाती है, पुत्री उत्पत्ति हो जाती है और फिर भी वह उत्पत्ति होने के बाद जरूरी नहीं है कि हमें उस पुत्र से, पुत्री से सुख मिल पाए। मल्लप्पा का नाम सबने सुना है? थोड़ी सी बात अनासक्त महायोगी की भी कर लेते हैं।

मनुष्य जीवन की दुर्लभता

अब आप देखो! धर्मात्मा पुरुष भी पुरुषार्थ करते हैं। जीवन मिला है, सब जी रहे हैं, हमको भी वैसे ही जीना पड़ता है, करते हैं। आपको पता होना चाहिए कि आज तो आपको दिखाई दे रहे हैं- चार पुत्र लेकिन इससे पहले भी उनके पुत्र और पुत्री और भी हुए थे, जो मरण को प्राप्त हो गए। सबसे पहले एक पुत्र हुआ जिसका नाम रखा गया, क्या था? कोई बताएगा? अब आपसे Paper में ही पूछेंगे, जब अनासक्त योगी Paper होगा। उसका नाम रखा गया था...चन्द्रकुमार। छह महीने केवल जी पाया, मृत्यु हो गई। उसके बाद में एक

पुत्री उत्पन्न हुई, जिसका नाम था...सुमन। उसके बाद महावीर उत्पन्न हुए, उसके बाद विद्याधर उत्पन्न हुए और वह सुमन बेटी भी उन दोनों भाइयों के साथ में खेली, बड़ी हुई, 6 वर्ष तक जी और छह वर्ष के बाद में कोई उसे ऐसी असाध्य बीमारी हो गई कि छह वर्ष के बाद उसकी भी मृत्यु हो गई। अब आप सोचो! जहाँ बेटे की मृत्यु हो गई, बेटियों की मृत्यु हो गई; आगे जो बेटे हैं, उनका पालन-पोषण करने में कितना भय उत्पन्न होगा? ऐसे भय के बीच में इन पुत्रों का पालन-पोषण हुआ। जब यह भय आता है तो यह बात निश्चित है कि मनुष्य भव में हमें तभी समझ आता है कि दुर्लभता क्या है? मनुष्य भव में क्या दुर्लभ है? मनुष्य भव को पाना दुर्लभ है। मनुष्य जीवन को पाकर के जीना दुर्लभ है और जीते हुए भी पूर्ण आयु जी लेना दुर्लभ है और पूर्ण आयु निरोगता के साथ जी लेना दुर्लभ है और उस निरोगता के साथ में सम्यग्ज्ञान के साथ जीना तो और भी दुर्लभ है। अब ये दुर्लभतायें हैं।

शरीर रमण केवल तृष्णा का कारण, सुख तो आत्म रमण से मिलेगा

अब इन दुर्लभताओं के बीच में यह आदमी शरीर में रमता है। जीव अपने आप में नहीं रमता, शरीर में रमता है और जब इस जीव का शरीर में रमण होता है तो इसके अन्दर हमेशा तृष्णा बढ़ती ही रहती है। आचार्य कहते हैं...अगर एक बार आप इस शरीर से हटकर के अपनी आत्मा में रमण करने की एक छोटी सी भी चेष्टा कर लो, कभी भी कर लो, भूल के भी कर लो तो आपको उसमें एक लगन लग सकती है। उसमें आपके लिए एक सुख मिल सकता है और उसी सुख से आपकी तृप्ति होगी और किसी चीज से तृप्ति नहीं होगी। यह सुख कहाँ मिलेगा? कहीं बाहर खोजने से नहीं मिलेगा, यह सुख अपने भीतर मिलेगा। **‘अप्पा अप्पम्मि रओ’** आत्मा अपनी आत्मा में रमण तो करे और वह रमण करने की विधि बताने के लिए ही हमारे सामने अरिहन्त भगवान आ जाते हैं, सिद्ध भगवान आ जाते हैं। हम उन अरिहन्त और सिद्धों का स्मरण करते-करते अगर हम अपनी आत्मा में ठहरने लग जाते हैं तो अरिहन्तों का भजन करना भी सार्थक हो जाता है। अरिहन्तों का भजन तभी सार्थक है। केवल बाहर-बाहर हम रहते रह जायें और बाहर से ही केवल ध्यान करते रह जायें तो भजन सार्थक नहीं है। भजन करते-करते हमें अपनी अन्तरंग आत्मा में रमण करने का भाव उत्पन्न हो जाए, यह अरिहन्त भगवान की सबसे बड़ी पूजा है, यह अरिहन्त भगवान का सबसे बड़ा भजन है। अब उसमें रमण करने में आपको रस आना चाहिए और वह रस मिलेगा तो कैसे मिलेगा? वह रस आपको उस चेतना के भावों में जो उसका वैभव है, उस चेतना की जो शाश्वत सत्ता है, उस चेतना के जो ज्ञान आदि गुणों का, जो उस चेतना में शक्तियाँ हैं, उन शक्तियों की तरफ अपने को उन्मुख करने पर उस वैभव का रस आ सकता है और वही शाश्वत रस होगा।

आत्म रस की अनुभूति का मार्ग

अब जिसको रस की आदत लगी है, दूसरी चीजों में रस लेने की तो उसे अपनी आत्मा में रस आता नहीं है। आत्मा में रस अगर कहीं आपने पढ़ लिया है कि आत्मा कैसी है? आपने पढ़ लिया है द्रव्य संग्रह में कि **‘वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठणिच्छया जीवे णो संति’ ‘णो संति’ नहीं होते हैं, क्या-क्या नहीं होते हैं? पंच वण्णा, पंच रसा, दो गंधा, अट्ठ फासा जीवे णो संति।** अब आपने पढ़ लिया...भाई! आत्मा में तो पाँच प्रकार के रसों में से कोई रस है ही नहीं। फिर क्या सोचोगे आप? न आत्मा में खट्टापन है, न

मीठापन है, न कड़वापन है, न चरपरा है, न कुछ कषायला है; आत्मा में कोई रस ही नहीं है। अब क्या करें? अब जब आत्मा में रस नहीं है तो फिर अब रस किस में मिलेगा? आपके अन्दर यह विचार जब आएगा कि आत्मा में रस नहीं है, तो कौन सा रस नहीं है? ये खट्टा, मीठा, कड़वा; ये रस नहीं है। अब इन रसों के अलावा भी कोई रस होता है कि नहीं होता है? वह रस आपकी अनुभूति में तब आएगा जब आप अपनी आँखें बन्द करेंगे। वह रस आपके अनुभव में तब आएगा जब आप अपने अन्दर यह सोच कर बैठेंगे कि मैं इस आक-पिण्ड से अपना मोह हटाकर के चैतन्य-पिण्ड में अपना अनुराग रखूँगा, चैतन्य-पिण्ड की ओर अपना भाव लगाऊँगा। इस विषय में जब आपका रस आएगा, तब उसका रस झरेगा और वह रस कभी-कभी इसीलिए नहीं झर पाता कि हमें जो दुनिया में बाहर रस दिखाई दे रहा है उसी में रस आता है, तो हमें भीतर का रस कभी मिलने का विचार नहीं आ पाता है।

आत्म रस की अनुभूति, शारीरिक अभावों से परे

आप देखो! यहाँ पर एक महिला बैठी हैं। बारामती से आई हैं वह, महाराष्ट्र से। दोनों नेत्रों से उन्हें दिखाई नहीं देता लेकिन उन्हें सुन-सुन करके, याद करने की इतना श्रुतज्ञान को अपने अन्दर धारण करने का इतना रस आता है कि उन्हें कुछ भी बता दिया जाए, वह हर चीज उन्हें याद हो जाती है। पिछली बार भी वह आई थी शिविर में **‘तित्थयर भावणा’** एक ग्रन्थ है प्राकृत में लिखा हुआ, उसकी गाथाएँ उन्होंने याद कर ली। **तित्थयर भावणा** ग्रन्थ, उसकी गाथाएँ याद हो गईं उनको। कोई भी ग्रन्थ उन्हें पढ़ा दिया जाए, सुना दिया जाए, याद हो जाता है। दिखाई नहीं देता लेकिन आप चेहरा देख लेना, कितना प्रसन्न दिखाई देता है। आप भी उनकी प्रसन्नता देख कर के प्रसन्न हो सकते हो। अब आप देखो! कि हम रोते रहें, हमारे पास आँखें नहीं हैं, हमें दिखाई नहीं देता है; हम रोते रहें तो रोते रहो। कौन तुमको चुप कर सकता है? अगर हमारे पास इतने अभावों के बावजूद भी भीतर से कोई रस आ रहा है, तो इसी रस को कहते हैं- जिनवाणी का रस। इसी रस से आत्मा का रस उत्पन्न होता है तो वह रस हमारे अन्दर एक आनन्द पैदा करता है और इस तरह का अगर हम दुर्भाग्य भी कहें तो यह दुर्भाग्य भी सौभाग्य के लिए होता है। जिसके कारण से हम ऐसे नेत्र-विहीन होकर के भी अपने भीतर के नेत्र खोल पाते हैं; वह सम्यग्ज्ञान के नेत्र खुलने का यह सौभाग्य मिलता है। इसे तीसरा नेत्र कहते हैं। दो नेत्र तो सबके पास हैं, तीसरी आँख खुलनी चाहिए।

आत्म रस / अद्भुत रस / शान्त रस की अनुभूति ही सम्यग्दर्शन

सम्यग्ज्ञान में रस आना, जिनवाणी की बात सुनने में रस आना, भीतर से अपनी चिन्तामणि सदृश उस आत्म-तत्त्व में रस आना, इस तरह का रस आने का जब विचार बन जाए तो उसी का नाम है- सम्यग्दर्शन की अनुभूति, सम्यग्ज्ञान की भावना। इसके अलावा और कुछ नहीं होता और कोई काम में लगना ही नहीं, सब काम हो चुके। बेटे हैं, बेटियाँ हैं, सब हो गया; अब इसी में रस आना। अब यह जो रस आ रहा है, यह रस कहाँ से आ रहा है? अब हम कहें कि भाई! आत्मा में रस नहीं होता। नहीं होता, ठीक है! लेकिन जो होता है, वह अद्भुत होता है। वह कौन सा रस है? अद्भुत रस है, नौ रसों में एक अद्भुत रस भी होता है; तो आत्मा में कौन सा रस है? अद्भुत रस है, शान्त रस है; यह रस आत्मा में बहते हैं। इसलिए भगवान का भजन करते-करते भी यह भावना आनी चाहिए हमें कि भले ही आत्मा रस-विहीन है लेकिन हमारे अन्दर

तो रस, अद्भुत रस, शान्त रस जरूर बहता है और बहना चाहिए। वे लाइनें आपने पढ़ी होंगी..

**रस विहीन आतम रस अनुपम, रस विहीन आतम रस अनुपम,
निज अनुभव रसियारे, निज अनुभव रसियारे।
एक बार चाखे जा रस जो, एक बार चाखे जा रस जो, लगे भोग रस खारे,
अरिहन्त भजन कर प्यारे, अरिहन्त भजन कर प्यारे।
जा करने ते पातक भाजें, जा करने ते पातक भाजें, दूर होंय अंधियारे॥
अरिहन्त भजन कर प्यारे, अरिहन्त भजन कर प्यारे।**

आत्म रस - अरिहन्त भगवान से सच्चा प्यार

ऐसे अरिहन्त का भजन कर प्यारे, प्यारे लाल! प्यारे लाल भी एक नाम होता है न? लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल तो सबको याद है, मैं प्यारे तुमको बना रहा हूँ। तुम हमारे प्यारे हो। अभी तक तो तुम अपनी पत्नी के प्राण-प्यारे थे, अब तो हमारे प्राण-प्यारे हो रहे हो। हमारे प्यारे बनो तो धीरे-धीरे तुम्हें अरिहन्तों का भी प्यार मिलेगा और धीरे-धीरे अपनी आत्मा को भी प्यार करने का भाव आएगा। आखिर कब होगा? अपनी आत्मा से प्रेम करना, अपनी आत्मा का प्यार अपने अन्दर अनुभूति में आना; यह सब तभी सम्भव है जब हमें अरिहन्त भगवान से सच्चा प्यार होने लग जाए। जब प्यार होने लग जाएगा तो फिर आपके लिए यह उपाधि मिल ही जाएगी- प्यारे! लाल लगाने की जरूरत नहीं है, फिर तो सब लाल ही लाल है, लाल ही लाल है फिर तो सब। बस! एक बार ऐसा भाव मन में आ जाए कि हाँ! इस शरीर के लिए जो हमारा इतना अनुराग रहता है, इसका शतांश भी हमारा अपनी आत्मा की ओर लगने लगे तो फिर हमें दुनिया के सब रस, बेरस लगने लगे।

लगे भोग रस खारे, अरिहन्त भजन कर प्यारे।

आत्म रस और शरीर रमण रस की अनुभूति का अन्तर दिलाएगा, गलती का अहसास

यह भाव खारेपन का अनुभूति के साथ जुड़े। जब एक रस की अनुभूति होगी तब दूसरा रस खारा लगेगा। अभी तो आपने एक ही रस, खारे को ही मीठा समझ लिया है और जिसमें रस है, उसको आपने बेरस समझ लिया, वह रस तो है ही नहीं उसमें। **‘वण्ण रस पंच गंधा न संति’** वह आपने ऐसे मान लिया, उसमें रस है ही नहीं। यह एक बहुत बड़ी गलती हो चुकी है और इस गलती को सुधारने के लिए ही यह सब ज्ञान के अभ्यास, शास्त्र के अभ्यास, प्राकृत के अभ्यास, संस्कृत के अभ्यास चल रहे हैं। वैराग्य शतक भी आप सुन रहे हो, पढ़ रहे हो। पिछले दो दिनों में यहाँ पर न जाने कहाँ से, कितने दूर-दूर से भी लोग आ गए और इन सब लोगों ने अष्टपाहुड़ ग्रन्थ की कुछ चयनित 50 गाथाओं का अध्ययन कर लिया। आचार्य कुंदकुंद देव के उस अष्टपाहुड़ ग्रन्थ की 50 गाथाओं को याद भी कर लिया और आज उसकी परीक्षा भी दे ली और दो दिन में उन्होंने उस श्रुतज्ञान का वह रस ले लिया है। आज उन लोगों ने उस रसानुभूति के साथ में यहाँ पर परीक्षा दे ली और उस परीक्षा का परिणाम भी आज दोपहर में घोषित हो जाएगा। अब आप सोचो! कि इन

लोगों को इसमें कितना रस आ रहा है? प्राकृत भाषा के ग्रन्थ पढ़ने में, प्राकृत भाषा को सीखने में कि ये अपने घर से, दूर-दूर से आकर के तीन-तीन दिन तक यहाँ रुककर के यह परीक्षा दे रहे हैं। आज इन्होंने इतना अपना मन बनाया है कि यह दोपहर में भी उस परीक्षा को घोषित तो करेंगे ही, इन रेवाड़ी के लोगों को देखते हैं तो हम सोचते हैं कि कहाँ से ये शुरू हुए थे, आज ये कितने बड़े हो गए हैं। जब रेवाड़ी में चतुर्मास था तब तो कुछ भी नहीं था। A B C D भी शुरू नहीं हुई थी और आज ये इतने बड़े हो गए हैं कि उन्हें यह मंच छोटा दिख रहा है। मतलब इतने Program हैं इनके पास में दिखाने के लिए, बताने के लिए आपको कि आपके पास भले ही समय न हो लेकिन इनके पास समय है। ये अपना समय निकालकर के आए हैं और इन्हें अपेक्षा नहीं है कि सतना के लोग हमारे इस Program में देखने आएँगे कि नहीं आएँगे। ये अपनी भीड़ भी अपने साथ में लेकर के आए हैं। तुम्हें तो बस 12 बजे खा-पी करके... नींद ले लेना, तुम तो अपने सोते रहना तो तुम्हें तो कुछ कहने की जरूरत ही नहीं है। अब इतना Program ये लेकर के आए हैं कि अपने ही लोग अपना Program, अपना सारा System सब इनके साथ में है और आज इनको दोपहर में कार्यक्रम करने का मन यहाँ से नहीं हुआ। कहाँ से हुआ? जहाँ से दशलक्षण पर्व मनाया गया था, वहाँ से हुआ है और वहीं पर होगा आज दोपहर का कार्यक्रम। सतना वालों को तो कुछ... सुनना है? देखना है? क्या होता है? क्या Planning है? क्या Programming है? अगर हम जानने की कोशिश करें तो हमारे लिए भी बहुत कुछ फायदा मिलेगा और मिल सकता है, रस आने की बात है। यह रस जो हमारी निद्रा का रस है, यह रस थोड़ा सा Change हो जाए; आलस्य का रस है, यह रस Change हो जाए। जो हमारे अपने धन में मोह का रस है, यह रस Change हो जाए तो थोड़ा सा हम एक दो घण्टे का समय निकाल पायें और उसमें कुछ अपना रस divert करें तो कुछ और भी अद्भुत रस आपको मिल सकता है।

कविता का रस रखता है कवि को बुढ़ापे से दूर

चंद्रसेन जी बैठे हैं, पूछ रहे हैं...महाराज! कविता सुनाने का रस किसको आता है? कविता में कौन सा रस झरता है? कविता सुनाने का रस उस रसिक को आता है जो रसिक पहले कविता बनाता है और कविता बनाने के बाद में वह कविता सुनाता है और कविता सुनाने के बाद में उसे सबसे ज्यादा रस तब आता है, जब उसके सामने तालियाँ बजती हैं। एक रस कविता का होता है, वह वीर रस हो सकता है, शान्त रस हो सकता है, कोई भी रस हो सकता है। लेकिन एक रस श्रोताओं को सुनाने के बाद जो अपने कानों से झरता है, वह रस कुछ अलग ही होता है और वह रस ही उस रसिक को जीवित बनाए रखता है। कविता को भी जीवित बनाए रखता है और उस सुनाने वाले, उस वक्ता को भी, कवि को भी वह जीवित बनाए रखता है और इसीलिए कवि कभी भी बूढ़ा नहीं होता है। कवि कभी बूढ़ा नहीं होगा, कविता कभी बूढ़ी नहीं होगी; आदमी बूढ़ा हो सकता है लेकिन अगर आदमी कवि है, तो जितना-जितना वह और अपनी उम्र में जाता जाएगा, आप देखोगे कि उसकी आवाज और गहरी होती जाएगी, गम्भीर होती जाएगी, बुलन्द होती जाएगी और उसके रस के कारण से उसके अन्दर ऐसा लगेगा नहीं कि मेरी उम्र कुछ बढ़ गई है। उसके अन्दर हमेशा एक ताजापन, एक नयापन उसके अन्दर महसूस होगा और इसी का नाम है- कविता के रस का आनन्द। यह कविता का रस है, काव्य रस है; हर चीज का अपना रस है और रस लेने का नाम ही जीवन है।

ज्ञान रस सबसे बड़ा रस

जिस जीवन में रस नहीं है...वह जीवन, जीवन नहीं है। बस! रस लेना आना चाहिए, किसी भी चीज में लो। चाहे आप हिन्दी की कविता में लो, चाहे प्राकृत की गाथा में लो। अब मान लो किसी ने प्राकृत की गाथा याद कर ली और वह उस गाथा को ही पढ़ने में, सुनने में रस ले रहा है, वह भी एक रस है। हमें अगर इस तरह से इन रसों की अनुभूति होने लग जाए, जो रस हमारे निकट रहते हैं, उन रसों के माध्यम से हमारा कुछ भी, कभी भी बिगाड़ नहीं होता है बल्कि हमारे भीतर आत्मा और पुष्ट होती है। ऐसे ज्ञान रस को भी सबसे बड़ा रस कहा गया है। **“रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत्”** आचार्य कहते हैं...तुम उस रस का पान करो जो ज्ञान रस है, जो बहुत बड़ा हुआ रस है, बहुत उठा हुआ जिसका वैभव है, ऐसे उस चैतन्य के ज्ञान रस का रस-पान करो। ‘रस यतु’ जिसे रसिकों ने जिसका रस लिया है **“रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत्”** तो ऐसा रस जो आता है, यह रस ही जीवन का आनन्द होता है और जीवन जीव से सम्बन्धित होता है।

जीवन का आनन्द जीव के रस में है या जीभ के

अगर हम कहें...जीवन का आनन्द कहाँ है? जीव के आनन्द में ही जीवन का आनन्द है। जीव का आनन्द! और जीव का आनन्द कहाँ मिलेगा? जब जीव से रस बहेगा। शरीर के रस से जीव का रस नहीं बनता, जीव के रस से जीव को आनन्द आता है और अभी आपको जीव का रस नहीं आता, अभी आपको जीभ का रस आता है। बस इतना सा अन्तर है। अभी हमारा जीवन जीभ के रस में आनन्दित है...खट्टा, मीठा, चरपरा; एक से एक Tasty item हर क्षण चाहिए, हर दिन चाहिए। छहों प्रकार के रसों से सुशोभित भोजन हर समय चाहिए। आदमी को सोचना पड़ता है कि इन छह रसों को कैसे adjust करें एक बार के Time में। पहले मीठा खाये कि नमकीन खाये कि पहले चटपटा खाये? क्या खाये? यह भी बताना पड़ेगा, क्या खाना पहले?

भोजन में रस ग्रहण का क्रम

आप तो पहले भोजन कर लेते हो और फिर कहते भोजन होने के बाद में थोड़ा मीठा हो जाए लेकिन अगर देखो! आयुर्वेद की पद्धति के अनुसार मैं आपको बताऊँ तो आपको मीठा सबसे पहले लेना चाहिए। क्योंकि जिस समय पर आपकी भूख अच्छी होती है, आपकी अग्नि तेज होती है, उस समय पर आप उस जो मीठे को लोगे, वह मीठा थोड़ा सा गर्म होना चाहिए; वह गर्म मीठा आपकी अग्नि को बढ़ाएगा। उसके बाद में आप भोजन लोगे तो यह भी तय है कि भोजन आप ज्यादा नहीं करोगे। ज्यादा भोजन नहीं होने से एक तो दुनिया को फायदा होगा, अन्न की खपत कम होगी और दूसरा तुम्हारे लिए फायदा होगा कि मोटापा कम होगा और फिर उसके बाद में आपको थोड़ा सा नमकीन लेना चाहिए, फिर कषायला लेना चाहिए और फिर जब आपके लिए चरपरा भोजन थोड़ा सा करने के बाद में फिर अन्त में आपको कुछ कड़वा लेना चाहिए। वह कड़वा जो कुछ भी होगा, वह आपके सारे भोजन को पचाने का काम करेगा। थोड़ा सा कड़वा, कैसा कड़वा? करेला-वरेला नहीं! करेला तो सब्जियों के रूप में खा लिया है आपने। अन्त में थोड़ी सी मेथी खा लो, जीरा खा लो, अजवाइन खा लो, इसकी फंकी लगा लो; जो भी आपने खाया है उससे फिर अफरा नहीं होगा,

कब्ज नहीं होगी और वह सब कुछ digest हो जाएगा और ये बीमारियाँ जो आजकल हो रही हैं, वे इसी कारण से भी हो जाती हैं कि आप भोजन के बाद में अजवाइन नहीं खाते, सौंफ नहीं खाते, लोंग नहीं खाते। ये मसाले अन्त में खा लेने चाहिए और अगर त्रिफला मिल जाए तो त्रिफला भी खा लेना चाहिए। थोड़ा कड़वा लगेगा, अच्छा लगेगा।

जीभ रस से जीव रस में जाना

ये तो किसके रस हो गए? जीभ के। देखो! कितने आनन्दित हो गए? जब से मैं जीव का रस बता रहा था, तो ऐसा लग रहा था, सब bore होते जा रहे हैं। अब क्या करें? आदत खराब पड़ी है, रस तो उसी में आता है। अभी जीव के रस में आनन्द आ रहा है कि जीभ के रस में आनन्द आ रहा है? बताओ! अब जीभ के रस का आनन्द लेते हुए भी थोड़ा सा divert होकर के जीव रस में अगर आनन्द थोड़ा सा आने लग जाए, तो कुछ balance भी बने। उल्टा क्या करते हो? जीभ के रस का आनन्द लिया, सो गए, खरटि लेने लग गए। क्या हो गया? जिस समय पर आपको जीव के रस का आनन्द लेना था, वह समय आप सोने में निकालते हो, Mobile देखने में निकालते हो, व्यर्थ की गपशप करने में निकालते हो और अगर उसी समय पर आप थोड़ा सा जीव का रस लेने की भावना करो, उसी समय का सदुपयोग अगर हो जाए तो यह मनुष्य जन्म की जो सार्थकता है, वह बच जाए। ये रस हैं, कई तरह के रस हैं। कल आपको बता रहा था... एक लाक्षा रस होता है, तेल का रस; लाक्षा तेल का रस। वह रस भी कितनी बार मिट्टी में मिला, तीन बार मिट्टी में मिला। चौथी बार तक वह रस मुनि महाराज के पास तक तो पहुँच गया लेकिन वह सेठ सोच रहा है कि इसके अन्दर कौन सा रस है? जिसके कारण से इसे क्रोध नहीं आया। वह कौन सा रस है? बोली! शान्त रस; इतना हो सकता है शान्त रस! इतना गाढ़ा शान्त रस! इतना गाढ़ा शान्त रस! कि उसके आगे इतना नुकसान होने के बावजूद भी क्रोध उत्पन्न न हो, ऐसा शान्त रस। अब यह शान्त रस कहाँ से आया?

शान्त रस और भय रस की तुलना

उसी बहन जी से पूछो कहाँ से आया? वह जिनदत्त सेठ पूछ रहा था बहन जी से- बताओ तो यह कहाँ से आया यह रस? वह बताने लगती है- देखो भैया! मैं आपको बता रही हूँ। मैं जिस घर में रहती थी, विवाह से पहले की बात बता रही हूँ, मेरे आठ भाई थे और आठ भाई के बीच में, मैं अकेली बहन थी। अब आप सोच सकते हो कि मैं कितनी लड़ैली थी? लड़ैली समझते हो? लाड़ली, लड़ैली, लाड़ली। लाड़ली तो मुख्यमंत्री ने शुरू कर दिया। अब मैं कितनी लाड़ली थी कि मुझे आठ भाइयों का प्रेम मिलता था और उन आठों के विवाह हो गए थे तो आठों की बहुएँ आई थी; उन आठ भाभियों का भी स्नेह मिलता था और मैं उस स्नेह के कारण से इतने मद में थी, मेरे मन के अन्दर सब कुछ अच्छा चलता था, बस! मेरे अन्दर पता नहीं क्या एक बुराई थी और वह यह थी कि मुझसे कोई तू करके बोल दे तो मुझे गुस्सा आ जाता था। इस बात से घर के लोग बहुत परेशान थे और उस परेशानी का कारण यह था कि अगर कोई मुझसे तू करके बोल दे तो मैं कुछ भी कर सकती थी। इतना गुस्सा आ जाता था मेरे को, जो भी सामने रखा है उसे पटक दूँ, कितनी भी कोई चीजें अच्छी हो उसका नुकसान कर दूँ। किसी के सिर पर कुछ भी दे मारूँ, बस तू नहीं बोलना और यह



बात पूरे नगर में फैल गई; यहाँ तक कि राजा तक को पता पड़ गई। वह उसका जो पिता है, वह राजा के पास भी निवेदन करने गया कि महाराज! इस शहर में आप मुनादी पिटवा दो कि कोई मेरी बेटी से तू करके न बोले, नहीं तो उसकी आफत आ जाए तो फिर मुझे अभयदान देना, मैं कुछ नहीं जानता। इतना उसको गुस्सा आता था। राजा ने मुनादी पिटवा दी थी कि भाई! इस लड़की से कभी भी तू करके मत बोलना। बाकी तुम्हें जो बोलना है सो बोलना और उसे किसी बात पर गुस्सा नहीं आता। उसका नाम इस कारण से famous हो गया था- तूंकारी। ये तूंकारी उसका नाम नहीं था, उसके उपाधि लग गई उसके साथ में; ऐसा नाम उसका famous हो गया। अब जब famous हो गया सब तरह से, उसके सामने जो लोग आयें तो कहें- भाई! लड़की तो बहुत अच्छी है, बहुत beautiful है, सब कुछ है, quality भी है उसमें और हर तरीके की उसमें skills भी हैं; सब कुछ है लेकिन एक ही कमी है कि इसका जब गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ता है, तो फिर इसे कुछ भी सझता नहीं है। यह बात पूरे नगर में फैल गई और आस-पड़ोस के सब, मतलब शहरों में भी पहुँच गई तो अब उसकी शादी नहीं हुई। कौन करे ऐसी लड़की से शादी? भई! कौन आफत मोल ले? अगर कहीं खुदा न खास्ता किसी के मुँह से घर में तू निकल जाए तो यह तो पूरे घर का ही विनाश कर देगी। उसकी शादी होने में दिक्कत आने लग गई। जब शादी होने में दिक्कत आने लग गई, सब तरह से उसके पिता ने, भाइयों ने प्रयास किए, उसकी शादी नहीं हो रही थी। अब ये एक सबसे बड़ा दुःख हो रहा था। यह एक सबसे बड़ा उसका minus point था कि सब कुछ अच्छा है, अब कोई समझना नहीं चाहता है। वह सब कुछ अच्छी है, पढ़ी लिखी है, सुन्दर है लेकिन एक छोटी सी बात का इतना पूरे नगर के अन्दर बवाल फैल गया कि उसके इसी के कारण से, इसी बात से कोई उससे शादी नहीं करना चाहता। अब बताओ इसमें कौन सा रस है? कौन सा रस है इसमें? इसे कहते हैं- भय रस। यह भी एक रस है, जिसके कारण से आपके अन्दर भय उत्पन्न होता है, वह भय भी आपके अन्दर से मन का एक विचार है जो बहता है। इस भय रस के कारण से भी कार्य बिगड़ जाते हैं और इसलिए आपको भी इन रसों को ध्यान में रखते हुए कि हमें कौन सा रस लेना है? कौन सा रस छोड़ना है? यह विवेक हमेशा बनाए रखना है। अब उसकी शादी कैसे होती है? यह बात तो हम बाद में करेंगे, Time बहुत हो रहा है लेकिन यह ध्यान रखना है कि जीवन में रस हमने कौन सा लिया है? कौन सा बाकी है? जो बाकी है उस रस को लेने की कोशिश करना।

गाथा: 91

प्रमाद को छोड़कर, आत्मकल्याण के मार्ग में लगना चाहिए

रे जीव! बुज्झ मा मुज्झ मा पमायं करेसि रे पाव! ।
किं परलोए गुरु-दुक्ख-भायणं होहिसि अयाण! ॥91॥

अन्वयार्थ- (रे जीव!) हे, जीव! 'तू' (बुज्झ) बोध को प्राप्त हो (मुज्झ) मोहित (मा) मत हो (रे पाव!) हे, पापी! 'धर्मकार्य में यानी आत्मकल्याण के मार्ग में' (पमायं) प्रमाद को (मा) मत (करेसि) करो (अयाण!) हे अज्ञानी! (परलोए) परलोक में (किं) क्या (गुरु-दुक्ख-भायणं) भारी, दुःख के, भाजन यानी पात्र (होहिसि) होवोगे? 'विचार करो' ॥91॥

वैराग्य शतक के गाथाओं के क्रम को आगे बढ़ाते हुए गाथा नम्बर 91 पढ़ते हैं...

रे जीव! बुज्झ मा मुज्झ मा पमायं करेसि रे पाव! ।
किं परलोए गुरु-दुक्ख-भायणं होहिसि अयाण! ॥91॥

पापी जीव को सम्बोधन की आवश्यकता

आचार्य यहाँ सम्बोधन करते हुए कहते हैं... 'रे जीव' जीव को सम्बोधन करने के लिए एक और विशेषण लगाया गया 'रे पाव' 'पाव' अर्थात् जो पाप करता है, उस जीव को पाव कहा जाता है। पाप करने वाले जीव को सम्बोधन किया जाता है। वैसे भी सम्बोधन की जरूरत पाप करने वाले जीव की ही होती है। जो पुण्य कर रहा है, धर्म कर रहा है उसे कोई सम्बोधन की जरूरत ही नहीं है। अब यह पुण्य करते हुए भी लोग और-और सम्बोधन चाहते हैं कि मुझे और सम्बोधन मिले, मुझे और उपदेश मिले। यह पुण्य करने वाले जीवों की एक अभिलाषा बन जाती है। सम्बोधन पाप करने वाले जीवों के लिए होते हैं और पाप करने वाले जीवों के लिए यह कहना पड़ता है कि 'रे जीव मा मुज्झ' तू मोह में गाफिल मत हो। अब यहाँ पर जब हम पाप की बात करते हैं तो आचार्य कहते हैं कि तू मोह मत कर और जब हम पुण्य की बात करते हैं तो हमें यह समझ में आता है कि हम पुण्य भी करते रहें और मोह भी करते रहें। जब पुण्यात्मा जीव को समझाना होता है तब भी यह कहना पड़ता है कि तू मोह मत कर और जब पापात्मा जीव को समझाना होता है, तब भी कहना पड़ता है कि तू मोह मत कर।



मोह न करने का सम्बोधन

मोह में पुण्यात्मा जीव भी रह जाता है और पुण्यात्मा जीव भी मोह में रहकर के मोह के कारण से और अधिक पाप कर जाता है, तो उसको भी फिर पाप ही कहा जाता है। उसको भी सम्बोधन करने के लिए फिर आचार्य यह **‘रे पाव’** इस तरह का विशेषण बना लेते हैं। मतलब यह है कि अगर हम इस **पाव** विशेषण को देखे और इस सम्बोधन को देखकर के अगर हम यह सोचे कि यह सम्बोधन से हमें क्या बोध दिया जा रहा है? यहाँ पर कहा जा रहा है... **‘बुज्झ मा मुज्झ’** क्या कहते हैं? **बुज्झ** अर्थात् बोध को प्राप्त हो, **‘मा मुज्झ’** मोह को प्राप्त मत हो। मोह से हटाने के लिए, मोह से बचाने के लिए एक सम्बोधन दिया जाता है, एक चेतावनी दी जाती है कि तू मोह मत कर।

पुण्यात्मा जीव को भी सम्बोधन की आवश्यकता

अब इधर होता यह है कि जो पापी जीव होता है, उसको तो हम समझते हैं कि यह मोह करता ही है क्योंकि मोह के कारण से ही यह बहुत तीव्र पाप करता है, मोह के कारण से ही यह बड़े-बड़े अपराध कर लेता है। जब हम पुण्यात्मा जीव को देखते हैं तो हम उसमें मोह नहीं देखते, उसमें तो हम यह देखते हैं कि यह तो पुण्य कर रहा है, अब इसको क्या समझाने की जरूरत है? अर्थात् अगर कोई व्यक्ति पूजा कर रहा है, स्वाध्याय करता है, स्वाध्याय कराता है, तो अब उसको हम क्या समझाएँ? वह तो सब अच्छा कर ही रहा है। उसके लिए भी कुछ समझाइश हो सकती है जो यहाँ पर बताई जा रही है...कि आपका भगवान के गुणों में अनुराग है, आप पूजा करते हैं, आपके अन्दर जिनवाणी की इच्छा उत्पन्न होती है, आप स्वाध्याय करते हैं, आपके अन्दर मुनियों के, साधुओं के प्रति स्नेह उत्पन्न होता है, आप आहार दान, सेवा आदि कार्य करते हैं, ये सब अच्छे कार्य हैं। अब इन अच्छे कार्यों को करते हुए भी अगर उस जीव को चेताना हो, समझाना हो तो आचार्य कहते हैं...मोह मत कर। अब इन अच्छे कार्यों को करते हुए भी मोह मत कर। यह उस पुण्यात्मा जीव को हमेशा सोचते रहना पड़ेगा कि अच्छे कार्यों को करते हुए भी हम मोह कर रहे हैं कि नहीं कर रहे हैं तो मोह तो चलता रहता है। अब आप कुछ थोड़ा सा समय निकालते हैं जिसमें आप अपने पुण्य कार्य कर लेते हैं, अन्य कार्य जो आपके मोह के साथ होते हैं वह होते रहते हैं और उस मोह में मोहित होने पर भी जब बुद्धि के ऊपर कभी बहुत तीव्र दबाव आने लग जाता है, तो वह मोह फिर परेशानी का कारण भी बनने लग जाता है।

अनेक प्रकार के मोह

बच्चा होता है, वह भी मोह करता है। सम्बन्धों के मोह भी होते हैं और अपने कार्यों के मोह भी होते हैं। अब सम्बन्धों के मोह तो जो हैं वे बने ही रहेंगे लेकिन जो हम कार्य कर रहे होते हैं उन कार्यों के भी मोह होते हैं। अपने-अपने सभी के कार्यों के अपने-अपने मोह होते हैं। बच्चा पढ़ता है तो उसका मोह होता है कि मुझे पढ़ना है, तो उसे पढ़ाई से मोह होता है। अब वह पढ़ाई में इतना मोहित होता है कि जब वह पढ़ाई में अच्छे नम्बरों से पास नहीं होता या उसे कोई अच्छा अपना भविष्य नहीं दिखाई देता तो वह बच्चा उस मोह के कारण से ही दुःखी होता है। अगर हम किसी व्यापारी की बात करें तो उसे अपने व्यापार से मोह होता है। वह अपने व्यापार के कारण से दूर-दराज स्थानों पर भी जाता है, रुककर आता है। अनेक तरह से अकेला

भी रहकर बड़े-बड़े शहरों में अपना समय गुजार कर आता है कि मुझे व्यापार के निमित्त से घर छोड़कर भी होटलों में रहना पड़ता है। लोग जाते हैं अपनी उधारी निकालने के लिए या माल खरीदने के लिए या अपना कोई नया business शुरू करने के लिए तो दिनों-दिनों तक दूसरे शहरों में पड़े रहते हैं। यह सब हमें व्यापार के मोह से हो जाता है, यह भी मोह है। व्यापार में भी मोह होता है, पढ़ाई में भी मोह होता है, आपका जो कुछ भी कार्य है, उस हर कार्य में आपको मोह हो सकता है। यहाँ पर हम यह सम्बोधन अपने लिए उस रूप में भी लगा सकते हैं कि हमें इस मोह से भी बचना है।

मोह का होना ही पाप है

अब यह मोह को अगर हम देखे तो आचार्य कहते हैं...यह मोह भी पाप होता है। अब आपको क्या लगता है? पाप अलग होता है और मोह अलग होता है। पाप तो वह होता है महाराज! हिंसा नहीं करना, हिंसा कर ली तो पाप हो गया, झूठ बोल लिया पाप हो गया, चोरी कर ली पाप हो गया, कुशील कर लिया पाप हो गया, परिग्रह कर लिया पाप हो गया। मोह में क्या पाप होता है? यह कहाँ कहा गया है? मोह में तो कहीं पाप होता ही नहीं। हम अपने किसी भी कार्य के साथ में मोहित होते रहें और उस कार्य के मोह में अपनी बुद्धि को पीड़ित भी कर ले, दुःखी भी कर ले तो भी हमें लगता नहीं कि वह कार्य भी हमारे लिए मोह उत्पन्न करा रहा है और उसके कारण से हमें दुःख हो रहा है। आपके किसी भी कार्य से आपको मोह उत्पन्न हो सकता है और मोह का होना ही पाप है। अब यह मोह का होना पाप कैसे होता है? अच्छा एक बात बताओ कि अगर मोह का होना पाप नहीं होता तो चक्रवर्ती को गृह त्याग क्यों करना होता? तीर्थकरों को गृह त्याग क्यों करना होता है? बताओ! तीर्थकरों के लिए तो हमेशा पुण्य आश्रय होता है। उनके अन्दर ऐसे पुण्य कर्म का निरन्तर उदय चलता है कि वह कुछ न भी करें तो भी पुण्यात्मा ही बने रहेंगे, पुण्य ही उनके अन्दर आएगा। कोई भी वह कभी पाप भाव करते नहीं, कोई पाप कार्य करते नहीं; उनके लिए हमेशा पुण्य का उदय चलता रहता है।

तीर्थकर नाम कर्म की महिमा

अब अगर आप थोड़ा सिद्धान्त जानते हैं तो यह भी समझ सकते हैं कि तीर्थकर नाम कर्म भी अपने आप में पुण्य कर्म है। उसका उदय भले ही अभी तीर्थकरों के लिए घर में नहीं होता लेकिन उस पुण्य प्रकृति के भी प्रभाव से उन्हें सारे सुख मिलने लग जाते हैं। इन्द्रों की और बड़े-बड़े देवों की उन्हें सेवाएँ मिलने लग जाती हैं और उसी पुण्य के कारण से वह दुनिया में एक अलग तरह की प्रतिष्ठा को प्राप्त भी कर लेते हैं। अब उन्हें सब तरह की प्रतिष्ठा प्राप्त है, सब तरह का उन्हें पुण्य का योग प्राप्त है, अब उस पुण्य को भी प्राप्त करने के बाद में क्या उनके लिए यह सम्बोधन बनेगा जो यहाँ कहा जा रहा है? **‘रे जीव! बुज्झ मा मुज्झ मा पमायं करेसि’** प्रमाद मत करो। **रे पाव!** यह जो विशेषण दिए जा रहे हैं, ये किसके लिए हैं? अगर हम यँ समझें कि ये केवल पापात्मा के लिए हैं तो फिर यँ कहना पड़ेगा कि पुण्यात्मा को कभी भी मोह होता नहीं। पुण्यात्मा के लिए कभी पाप का आश्रय होता नहीं और जब पुण्यात्मा को पाप का आश्रय नहीं होता तो फिर उस पुण्यात्मा को कोई भी तरह का और बोध दिया जाए इसकी जरूरत रह नहीं जाती। यह विचार करने का है कि अगर पुण्यात्मा के लिए भी बोध दिया जा रहा है, तो वह बोध किस रूप में होगा?

प्रमाद और मोह

तीर्थकर बहुत पुण्यात्मा हैं। जो सम्यग्दृष्टि हैं, चक्रवर्ती हैं; वह भी पुण्यात्मा हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अपने आप में पुण्यात्मा ही होते हैं और उन पुण्यात्माओं के लिए भी यह विचार तो आता ही है कि मैंने प्रमाद किया, मैं प्रमाद कर रहा हूँ। आता है? उन्हें भी विचार आता है। प्रमाद हो रहा है तो मोह हो रहा है, मोह हो रहा है तो कहीं न कहीं प्रमाद हो रहा है। प्रमाद की चर्चा तो पहले भी की गई है लेकिन मोह की चर्चा नहीं की गई। यहाँ हम देखें तो दोनों चीजों के लिए मना किया जा रहा है... **‘मा मुञ्ज मा पमायं करेसि’** मोह मत कर, प्रमाद मत कर। अब यह प्रमाद होगा तो मोह के साथ होगा क्योंकि मोह के कारण से ही जीव अच्छे कार्यों में प्रमाद करता है। अब उसके लिए जो अच्छे कार्यों में मन नहीं लगना या उत्साह नहीं होना या अच्छे कार्यों को सम्पादित नहीं करना, यही उसका मोह है और इसी मोह के कारण से उसके अन्दर प्रमाद उत्पन्न होता है, तो वह उस प्रमाद में रहकर अपने अन्दर उस अच्छे कार्य को सम्पादित नहीं कर पाता जो वह कर सकता है।

मोह रूपी शत्रु

‘मोहरूपो रिपुः पापः’ यह कहा गया है। यह आचार्य समंतभद्र महाराज की वाणी है। **‘मोहरूपो रिपुः पापः कषायभटसाधनः’** क्या कहते हैं? पाप क्या है? मोह रूप जो रिपु अर्थात् शत्रु है, वही पाप है। अब यहाँ पर आप देखो तो आचार्य यह कह रहे हैं कि मोह रूपी शत्रु ही पाप है। अब यह मोह है, तो पाप है। अब इधर हम कह रहे हैं कि वे पुण्यात्मा जीव हैं, तीर्थकर हमेशा पुण्य का आस्रव करते हैं और वह पुण्यात्मा होने के कारण से उनके अन्दर पाप आना नहीं चाहिए और पाप नहीं भी आता है, तो भी उनके अन्दर मोह तो है। अब आप कहोगे कि उन्हें कहाँ मोह है? जब तक वह घर में हैं। उन्हें घर में रहते हुए भी घर के कार्यों को करना, घर को अपना मानना, घर के लोगों के साथ रहना; यह सब उनके अन्दर भी होता है। अपना परिवार होता है, उस परिवार के बीच में रहते हैं, उनके बड़े-बड़े कार्य होते हैं।

क्षायिक सम्यग्दृष्टी कौन होता है?

वह राजा सरीखे भी होते हैं तो बड़े-बड़े राजाओं के कार्य करते हैं। चक्रवर्ती होते हैं तो चक्रवर्ती की तरह निर्णय लेते हैं। अब वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि मतलब? जिनके लिए उल्टी बुद्धि कभी होनी नहीं, मिथ्या बुद्धि जिनके अन्दर आनी नहीं क्योंकि मिथ्या बुद्धि आती है मिथ्यात्व के माध्यम से, मिथ्यादर्शन के माध्यम से और वह मिथ्यादर्शन उनके अन्दर है नहीं। मिथ्या बुद्धि उनके साथ में है नहीं।

तीर्थकरों का पुण्य

अब जब मिथ्या ज्ञान उनके पास है नहीं, तीर्थकर हैं, पुण्यवान् आत्मा हैं, हर कोई उनके पुण्य को सराह रहा है और उन्हें खुद भी महसूस हो रहा है कि देखो! यह कैसा पुण्य है? गर्भ में आने से पहले देवों की सेवा होने लग जाती है, देवियों की सेवा होने लग जाती है, गर्भ में आने के बाद सेवा होती है, जन्म लेने के बाद सेवा होती है और जन्म के उपरान्त भी अलौकिक-अलौकिक कार्य होते रहते हैं जो सामान्य मनुष्यों के साथ में

होते नहीं हैं। अब इस तरह का विचार तो उनको भी आता होगा और वह भी अपने मन में विचार करते होंगे कि यह हमारे साथ क्या हो रहा है? करते तो होंगे ही! जब किसी बच्चे को जरूरत से ज्यादा खिलाया जाए, जरूरत से ज्यादा लाड़ किया जाए, जरूरत से ज्यादा उसे अच्छी बहुमूल्य वस्तुएँ दी जाएँ, जरूरत से ज्यादा उसका आदर सम्मान किया जाए और वह जान रहा है कि ऐसा आदर सम्मान हर किसी का होता नहीं है क्योंकि यह देव लोगों के द्वारा किया जाने वाला सम्मान है और देव लोग हर किसी का सम्मान करते नहीं हैं; तो उसे भी पता होता है कि यह सम्मान किसका हो रहा है? हमारा हो रहा है।

गारव क्या है?

अब उन्हें उस सम्मान में अच्छा तो लगता ही होगा। नहीं लगता होगा? यह जो सम्मान में अच्छा लगना, इसको कहते हैं **‘गारव’**। यह भीतर से अच्छा लगना, जो अच्छा हो रहा है, सब अच्छा चल रहा है, यह जो भीतर से एक feeling आती है...इसी का नाम शास्त्रों में **गारव** कहा गया, **गारव!** यह भीतर से थोड़ा सा क्या करता है? एक गुरुता का भाव लाता है। थोड़ा सा आदमी को भारी बना देता है, तो आदमी के अन्दर एक सम्मान का भाव आ जाता है। आदमी अपने अन्दर महसूस करता है कि हाँ! हम भी कुछ हैं। यह जो भाव आता है, इस भाव में गारव की अनुभूति होती है। यह भी एक मोह है। आपसे कह रहा हूँ कि अगर आपका शरीर स्वस्थ होगा तो आपको स्वस्थ शरीर से भी मोह हो जाएगा और आपका शरीर रुग्ण है, तो आपको रुग्ण शरीर से भी मोह हो जाएगा। जब रुग्ण शरीर से मोह हो रहा है तो रो रहे हैं। रोगी शरीर है, रोग से मोह हो रहा है, तो रो रहे हैं। क्यों रो रहे हैं? क्योंकि मेरा शरीर है, रोगी हो गया है, ठीक होना चाहिए, स्वस्थ होना चाहिए तो रोग के कारण से भी मोह हो रहा है। जब निरोग हो गए, स्वस्थ हो गए, फिर देखो! चाल ढाल कैसी हो जाती है? वह भी मोह के कारण से होता है। सूट-बूट पहन कर निकलो, बढ़िया गर्म कपड़े पहन कर निकलो, shoes और tie लगाकर निकलो, फिर देखो! आदमी को कैसा लगता है? अच्छी bike दे दो, फिर देखो! पीछे किसी को और बिठाल दो, फिर देखो! क्या speed आती है गाड़ी में? यह सब किससे हो रहा है? यह मोह नहीं होता?

रे जीव! बुझ बुझ : जागृत हो जागृत हो

हम यह समझते हैं कि जो हिंसा कर रहा है, झूठ बोल रहा है, पाप कर रहा है, उसके लिए सम्बोधन है। वह मोह कर रहा है और पुण्यात्मा जीव मोह नहीं कर रहा? उसके भी मोह हैं, उसके भी मोह के तरीके हैं, वह मोह कर रहा है, मोह के कारण से ही वह इन सब चीजों में आनन्द ले रहा है। चक्रवर्ती होगा, बड़े-बड़े रथों पर बैठकर निकलेगा, आगे-पीछे घोड़ों की सेनाएँ होंगी, हाथियों की सेनाएँ होंगी, पैदल चलने वाले पदिकों की सेनाएँ होंगी, न जाने कितने-कितने उसके पीछे जुलूस चलते हैं। बस! घर से बाहर कदम रखे नहीं कि कभी भी जमीन तो touch होती ही नहीं है। अब हम ऐसे पुण्यात्मा के अन्दर भी कभी कह सकेंगे कि यह मोह हो रहा है। इसके लिए भी क्या यह सम्बोधन हो सकता है? ‘मोह मत कर, प्रमाद मत कर’ **रे जीव! बुझ बुझ** जागृत हो, जागृत हो। बुझ अर्थात्? जागृत हो, बोध को प्राप्त हो। जो तेरा मन प्रमाद में डूब जाता है, तेरा मन जो मोह में गाफिल हो जाता है उससे मन को हटा।

द्रव्य से अपनत्व का भाव ही मोह होता है

हर किसी चीज में जो तेरे सामने आती है, तू उसी में मोह करने लग जाता है। जो कुछ भी तेरे पास रखा होता है, तो उसी में मोह करने लग जाता है। जिस किसी भी चीज को तू अपना कह देता है, तो उसी में मोह करने लग जाता है। जो कोई भी चीज तेरे निकट आ गई, वह तेरी हो गई; तू उसी को अपना मानने लग जाता है, तो उसी में मोह करने लग जाता है। कोई भी चीज चाहे वह चेतन हो, अचेतन हो, आदमी हो, औरत हो, कोई पदार्थ हो, कोई भी चीज हो जो निकट में आए, अपने पास में वह कोई चीज रहे तो उसी में उसका मोह होने लग जाता है। मोह का मतलब? बस! यह मेरा है, यह मेरा है। जब 'यह मेरा है' इस तरह का विचार आएगा तो यह मोह हो गया और इस मोह को आचार्य कहते हैं- यह **रिपु** है, **रिपु** अर्थात् शत्रु है क्योंकि यह भी एक पाप है।

मोह और कषाय का गणित

‘मोह रूपो रिपुः पापः कसाय भट साधनः’ कषाय के जो भट होते हैं, योद्धा होते हैं, ये इसको और साधन के रूप में इसके साथ रहते हैं। सेना होती है, राजा होता है। राजा को बल मिलता है सेना से और सेना को बल मिलता है राजा से। सेना सुशोभित होती है राजा से, राजा को बल मिलता है सेना से। यह मोह एक राजा है, कषाय इसकी साधन है, सेना है। इन्हीं साधनों के कारण से यह मोह बढ़ता है, मोह को वह बढ़ा लेता है। जब भी मोह बढ़ेगा, कषाय बढ़ेगी; यूँ कहें कि कषाय बढ़ाने पर आदमी के अन्दर मोह बढ़ जाता है और वह मोह उसके लिए पाप बन्ध का कारण हो जाता है, तो यह भी प्रक्रिया भीतर चलती रहती है। आप अपने पुण्य के उदय में अगर मोहित हो रहे हैं तो पुण्य के उदय में भी आप पाप कर रहे हैं। क्या निष्कर्ष निकल रहा है इतना गणित बताने का? अगर हम अपने पुण्य के उदय में भी मोहित हो रहे हैं तो वह पुण्य का उदय भी चल रहा है और पाप का बन्ध भी चल रहा है। क्योंकि वह मोह आपको पर वस्तु के साथ में जोड़ कर, उससे अपनापन बनाकर आपके अन्दर वह पाप का आस्रव करा रहा है। तब उस जीव के लिए भी वह सम्बोधन देना होता है कि यह भी मोह है, इसको भी छोड़।

पुण्य के उदय में भी तीर्थकर को वैराग्य क्यों होता है?

अगर यह मोह नहीं होता, अगर यह पाप नहीं होता तो **‘तीर्थकर क्यों त्यागे’** क्यों त्यागे? पुण्य के उदय में सब अच्छा चल रहा था, अचानक से उन्हें क्या स्मरण हो आया? अचानक से उन्हें क्या याद आ गया कि उनकी बुद्धि एकदम से पलटी खा गई? यह मैं क्या कर रहा हूँ? यह मैं कहाँ बैठा हूँ? यह मैंने कितना समय राजपाट में निकाल दिया? यह मैं कहाँ मोह में पड़ा हुआ हूँ? मैंने प्रमाद में गाफिल होकर कितना समय, कितनी उम्र अपनी व्यर्थ कर दी? ये सब तो संसारी जीवों के काम हैं, मैं परमार्थ से अपनी आत्मा का कल्याण करता, मैं यह कहाँ पड़ा हुआ हूँ? यह विचार उनके अन्दर कभी आता है कि नहीं आता? बताओ कब आता है? वैराग्य के समय। यानी यह विचार आता है वैराग्य के समय या इस विचार के समय पर वैराग्य आ जाता है? यह विचार का जो समय आए, इस विचार का जैसे ही उनके लिए योग्यता बने, यह विचार जैसे ही बने उन्हें वैराग्य आ जाता है। आप कहते हैं कि वैराग्य का समय आने पर यह विचार आता है लेकिन यह विचार जिस दिन कर लेंगे वे, उसी दिन वैराग्य आ जाता है। यानी यह विचार करना ही **‘बुझा’**

बोध को प्राप्त होना है। यह विचार करना ही अपने आत्मा को उपलब्ध होना है। इसलिए ऐसे आत्माओं के लिए एक title लग जाता है- **आत्मवान**। क्या कहते हैं इनको? आत्मवान।

आत्मवान और मोहवान परस्पर विपरीत हैं

यह आत्मवान क्यों हो गए? पहले भी तो आत्मा ही थे लेकिन यह आत्मवान नहीं थे। अब आत्मा है, तो आत्मवान क्या होगा? धन है तो धनवान क्या होगा? धन है तो धनवान कब होगा? जब वह धन से अपने आप को जोड़ेगा। यह धन मेरा है, इस भाव के साथ मैं वह अपने आप को जब उस धन से जोड़ लेगा तो वह कहलाएगा...धनवान। ऐसे ही मैं आत्मा हूँ; जब वह अपने आप को इस आत्मा के भाव से जोड़ लेगा, मैं तो आत्मा हूँ तो वह कहलाएगा...आत्मवान। जब यह भाव नहीं आता कि मैं आत्मा हूँ; मैं एक राजा हूँ, मैं तीर्थंकर हूँ, मैं बहुत पुण्यवान हूँ, मैं बहुत ही सुन्दर हूँ, मैं बहुत ही श्रेष्ठ व्यक्ति हूँ; ये सब भाव जब तक आ रहे हैं, तब तक यह आत्मवान नहीं है, यह मोहवान है। मोहवान और आत्मवान ये दोनों चीजें साथ नहीं चलती, ये एक दूसरे के विपरीत हैं। संसार में हर प्राणी इन दोनों चीजों को साथ में लेकर चलने की कोशिश करता है।

जैन धर्म अन्य धर्म से भिन्न कैसे?

हर दर्शन में, हर धर्म में, हर सम्प्रदाय में यह व्यवस्था बनाई गई है...भैया! अपने कर्तव्यों को करो, अपने घर में रहो और यह भी बोध प्राप्त करते रहो, जो हमें शास्त्रों में दिया गया है और तरह-तरह के हमें इन पवित्र ग्रन्थों में जो ज्ञान दिया गया है, इस ज्ञान के साथ भी जीते रहो। आदमी अपने अन्दर वह ज्ञान भी प्राप्त करता रहता है और उसके साथ में उस मोह के साथ में जीता भी रहता है और दोनों तरह से चलकर वह अपना जीवन निकाल लेता है। भगवान की कृपा से हमारा जीवन बहुत अच्छा चल रहा है। ज्ञान भी मिल रहा है, सत्संगति भी मिल रही है, अच्छे काम भी बन रहे हैं, अपना घर परिवार भी अच्छा चल रहा है, everything is well managed. ऐसे आदमी के लिए बड़ा सुकून रहता है जिन्दगी जीने का और उसे अच्छा लगता है। अब जैसे ही जैन धर्म सामने आता है; यह जैन धर्म हर चीज को काटता चला जाता है। हर चीज की परतें उधेड़ते चला जाता है, हर चीज की depth में घुसता चला जाता है। यह जैन धर्म हर आदमी के अन्दर के भावों को ऐसे काटता-तोड़ता चला जाता है कि उसके अन्दर उसे हिला देता है बिल्कुल। यह कौन सा धर्म? यह जैन धर्म ही है बस। बाकी सब धर्म में मजे करो, अच्छे से रहो, अच्छा घर बना लो, अच्छी जिन्दगी जियो, अच्छा पैसा कमाओ...बस! ठीक है। किसी दूसरे का बुरा मत करो, कभी किसी के साथ अन्याय मत करो, कुछ न करो अच्छी जिन्दगी जियो; यह करते रहो। हर धर्म इसको अच्छा कहता है और हर धर्म यहीं पर समाप्त हो जाता है; बस! इतना ही अच्छा जीवन है। सत्य के साथ जियो, प्रेम के साथ जियो, सबके साथ हिल-मिल करके रहो, किसी की बुराई मत करो, किसी की निन्दा मत करो, किसी का बुरा मत सोचो बस! इससे अच्छा जीवन और क्या होगा? हर धर्म के अन्दर ये अच्छाइयाँ हैं और इन्हीं अच्छाइयों पर हर धर्म यहीं से शुरू होता है और यहीं पर समाप्त हो जाता है। इससे आगे किसी भी धर्म में कोई गति नहीं है। ज्यादा है, थोड़ा सा भगवान की भक्ति कर लो, भक्ति में डूब जाओ। ज्यादा है, तो भगवान की भक्ति करते-करते ध्यान में डूब जाओ। बस! इतना ही ठीक है, इससे ज्यादा कुछ भी और करने को होता नहीं है और इससे ज्यादा

करने के लिए कोई धर्म कहता भी नहीं है।

जैन धर्म निष्ठुर?

अब यह जैन धर्म है, अब इसे क्या कहूँ? बड़ा निष्ठुर धर्म है यह। कैसा? **निष्ठुर**। निष्ठुर समझते हो क्या होता है? किसी पर दया ही नहीं करता और कहता है कि सबसे बड़ा धर्म दया करना, इसी जैन धर्म में ही समझाया जाता है। सबसे ज्यादा अहिंसा और दया के गुणगान जैन धर्म में ही गाए जाते हैं और जैन धर्म में घुसते चले जाओ, घुसते चले जाओ, घुसते चले जाओ तो ऐसा लगता है कि सबसे ज्यादा निष्ठुर यही धर्म है? अब देखो! तीर्थकरों को देखो! कितने अच्छे राजकुमार से घर में बैठे हैं और क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं और सम्यग्दृष्टि जीव के लिए क्या पुण्य? क्या पाप? अपने आप जिसका भाव सब जीवों के प्रति कल्याण का है, सब जीवों के प्रति दया का भाव है, सबके लिए वह हितकर सोचने वाले हैं, हितकर करने वाले हैं और घर में रह कर भी वह बिल्कुल घर से निर्लिप्त हैं। कोई उनके अन्दर किसी भी व्यक्ति का या वस्तु का कोई मोह नहीं है। सब में वह शान्त हैं, कभी गुस्सा नहीं करते, कभी मायाचार नहीं करते, कभी परिग्रह की कोई लालसा नहीं रखते। अब ऐसे जीव को भी यह धर्म सम्बोधन देने लग जाता है। ऐसे जीव को भी ये गाथाएँ प्रेरित करने लग जाती हैं। **‘रे जीव! मा मुज्झ’** अब क्या **‘मा मुज्झ’**? इतना अच्छा जीवन चल रहा है; किसी भी गृहस्थ का इतना अच्छा जीवन नहीं होगा, जितना अच्छा जीवन एक तीर्थकर का घर में रह कर होता है। कोई पाप नहीं, न पाप का विचार है, न कोई पाप का कार्य है, न कोई हिंसा है, न परिग्रह है और न उन्हें किसी से मोह है कि भाई! इन्द्र आया है, अब तू बहुत देर तक मेरे साथ रहा, अब क्यों जा रहा है? यहीं पर रह न, मेरे साथ में ही रह न, अच्छा लग रहा था। अब तू मुझे छोड़ कर कहाँ स्वर्ग में जा रहा है? तो वह कह रहा है- “नहीं-नहीं, अब मैं फिर आऊँगा आपके पास। जब दोबारा आपका कोई कल्याणक होगा न तब मिलूँगा, तब आऊँगा, तब तक के लिए see off। उन्हें उससे कोई मोह उत्पन्न हो जाए कि नहीं-नहीं, तू मत जा, यहीं रुक जा, रह जा, अच्छा लग रहा था, रोजाना अच्छा अमृत खिलाता था। वह अमृत की व्यवस्था तो मैं दूसरों से करवा दूँगा लेकिन मुझे जाना है, मुझे और भी दूसरे काम हैं तो वह चल देता है। कभी दुःखी होते हैं, ये बालक? ये रोजाना हमें खिलाते हैं, पिलाते हैं, अमृत दिलाते हैं और तरह-तरह से हमारी सेवा करते हैं और देखरेख करते रहते हैं। ये इन्द्र uncle जी आए थे, अभी जा क्यों रहे हैं? इन्द्र भी uncle जी बन जाएँगे न बच्चे के लिए? अब uncle जी कहाँ जा रहे हो? नहीं बेटा! अब मुझे अपने स्वर्ग में भी जाना है, कहीं तेरे जैसे और बच्चे पैदा हो गए हो तो उनको भी तो देखना है। उनके भी तो कल्याणक करना है और भी काम हैं मुझे, एक तेरे ही साथ रहने का थोड़ी न है। फिर यहाँ कौन रहेगा? नहीं-नहीं, मैं अपने बहुत सारे सेवकों को लगा दूँगा, तू चिन्ता मत कर, अमृत तुझे रोजाना मिलेगा। बच्चा दुःखी हो जाए- uncle जी, मम्मी! मम्मी! मम्मी! uncle कहाँ गए? महावीर पूछ लें त्रिशला से...मम्मी! uncle जी कहाँ गए? वे रोजाना आते थे, देखने में अच्छे लगते थे, बड़ी सेवा करते थे, मुझे ऐरावत हाथी पर बिठाते थे, घुमाते थे, वह uncle जी कहाँ गए? अब उस बेटे को इतना भी मोह नहीं है, यह समझो आप। उसको उन uncle से भी मोह नहीं है। आपका बेटा होता तो? बेटा क्या, आप भी होते तो कम थोड़ी न होते। एक बार अगर कोई ऐरावत पर घुमा दे तो क्या आप ऐरावत से फिर उतरना चाहोगे? यह बताओ अच्छा? एक बार कोई free में भी आपको कोई अच्छी गाड़ी में बिठा ले और घुमा दे और फिर एकदम से घुमाने के बाद में कहे- भाई! चलो आ गया अपना स्थान। अरे! इतनी जल्दी आ गया! उसको न ऐरावत से मोह है, न इन्द्र से मोह

है, न घर में किसी से मोह है; अब ऐसे जीव को भी आचार्य छोड़ नहीं रहे, ये गाथाएँ छोड़ नहीं रहीं? उसको भी यह सम्बोधन दे रहे हैं। उसके लिए भी सम्बोधन है कि नहीं? यह सम्बोधन कब तक चलेगा? जब तक कि वह बिल्कुल आत्मवान न हो जाए।

आत्मवान v/s मोहवान

एक मोहवान और एक आत्मवान। आत्मवान अर्थात् बस आत्मा ही तेरी हो तो आत्मवान। जैसे धन तेरा होता है तो तू धनवान हो जाता है, ऐसे ही आत्मा तेरी हो जाए तो आत्मवान, मोह तेरा है तो मोहवान। अब दुनिया को तो लगता है कि इनको कोई मोह है नहीं। तीर्थकरों के लिए जब भी कोई उनका चरित्र-चित्रण किया जाता है, कभी किसी ने सुना, किसी पुराण में देखा, कभी कहीं लिखा हो कि इनको कोई मोह होता है। देखो! एक बड़ी बात समझने की है, पुराण ग्रन्थों में कभी तीर्थकरों के लिए नहीं लिखा जाता कि यह किसी से मोहित हो रहे हैं; आपने कभी नहीं सुना होगा। न उन्हें अपने माता-पिता से मोह होता है, न उन्हें इन्द्र से मोह होता है, न उन्हें घर परिवार में जो भी लोग उनकी सेवा करने वाले होते हैं; उन्हें किसी से मोह होता है? किसी से भी मोह नहीं होता। अब जब मोह नहीं है, तो फिर उन्हें इस मोह में कैसे कहा जाए कि इस मोह को छोड़ो और उन्हें खुद भी यह स्मरण होता है कि मैंने इतना समय कहाँ व्यतीत कर दिया? इस मोह में मैं कहाँ पड़ गया? उनके अन्दर कोई मोह है ही नहीं और उन्हें जब समय आता है, जब इस तरह का विचार आता है तब उन्हें लगता है कि यह समय हमने मोह में व्यतीत कर दिया। यह मोह की भीतरी बातें कर रहा हूँ मैं, गहराई की बातें बता रहा हूँ। शास्त्रों के शब्दों में उलझना नहीं चाहता। यह सराग सम्यग्दृष्टि, वीतराग सम्यग्दृष्टि, यह क्षायिक, ये सब इनमें उलझने की जरूरत नहीं है। यह समझने की जरूरत है कि उस जीव में मोह नहीं है, यह तो हम बाहर से देख रहे हैं। किसी भी पुराण में यह नहीं लिखा गया कि उन्हें किसी भी जीव से मोह होता है या किसी भी खाने-पीने की चीज से मोह होता है, किसी भी चीज से उन्हें कोई मोह होता है, ऐसा किसी पुराण में किन्हीं आचार्यों ने लिखा नहीं। अमृत मिल रहा है तो हमें अमृत ही मिलना चाहिए और कोई थोड़ा सा भी कम हो गया, फीका हो गया तो उन्हें रोना आ जाए कि नहीं-नहीं भाई! मीठा कम है। आज इसकी quality कैसे बदल गई? ऐसा कभी कुछ होता है कि नहीं? नहीं होता? आप तो इतने ज्यादा श्रद्धालु हो तीर्थकर भगवान के कि आप उनके बारे में कुछ सोच भी नहीं सकते। उनके बारे में आपको कुछ सोचना भी पाप लगेगा। वह तो हम ही हैं कि पाप-पुण्य से डर नहीं लगता अपने को, बस वह हम सोचाए जा रहे हैं आपको।

वैराग्य का समय

उनके अन्दर भी यह भाव कभी आता है कि नहीं आता? और अगर नहीं आता तो बिल्कुल ही उन्हें किसी से मोह नहीं है, तो आखिर उन्हें एक समय पर यह सब क्यों याद आता है? मैंने मोह में इतना समय निकाल दिया, मैंने प्रमाद में इतना समय निकाल दिया और यह जो समय आता है, इस समय को जो आप कहते हो यह वैराग्य का समय है; तो इस समय पर उन्हें अब किससे वैराग्य? वैराग्य तो पहले से ही है। राग तो किसी से है ही नहीं है, मोह तो किसी से है ही नहीं है। आपने देखा ही है, किसी भी चीज से मोह नहीं होता। कभी वह यह नहीं कहते अपने घर में, मेरा विवाह करा दो मैं बड़ा हो गया, मुझे अच्छी राजकुमारी चाहिए।

किसी ने कहा? इतने पुराण पढ़ते रहते हो, पढ़-पढ़ कर इतने, कभी नहीं कहा न? चक्रवर्ती भी अगर तीर्थकर होंगे तो भले ही उनके 96 हजार रानियाँ हो गई होंगी, विवाह हो गए होंगे लेकिन कभी उन्होंने कुछ नहीं माँगा; अपने आप सब मिल गया। सब कुछ है उनके पास में और राग किसी से है नहीं, मोह किसी से है नहीं। अब कैसे कहें उनसे? तुम यह मोह छोड़ दो। अब समझो! यह धर्म कितना निष्ठुर है कि उन्हें घर में अच्छे ढंग से भी रहने नहीं देता। बताओ! धर्म अच्छा है कि बुरा है? अच्छा है। क्यों? वह अपने थोड़े ही न हैं, अपना बेटा थोड़े ही न है वह, इसलिए अच्छा है। अपना बेटा करने लग जाए ऐसा तो? माँ रोने लग जाएगी। क्या कमी है घर में? क्यों निष्ठुर बन रहा है? क्यों तुझे मेरे ऊपर दया नहीं आ रही है? अब उसको दया नहीं आ रही है कि धर्म को दया नहीं आ रही है। उस जीव ने ऐसा धर्म सीख रखा है, जो धर्म किसी की दया में बहता नहीं है। जो धर्म किसी के आँसुओं में बहता नहीं है, जो धर्म किसी की दया में मोहित होता नहीं है; ऐसा धर्म उसने सीख रखा है। उसके संस्कारों में पड़ा है और ऐसा धर्म उसे जब याद आ जाए, बस! तभी वह सब कुछ छोड़ कर चलने लग जाता है। यह धर्म बस उसे याद आ जाए, यह संस्कार उसका बस उसके अन्दर उदय में आ जाए और यह संस्कार उदय में आते ही उसके अन्दर एक ऐसा बोध प्राप्त हो जाता है कि उस बोध में वह सोचने लग जाता है कि यह जो कुछ भी मैं अपना जीवन जी रहा था, यह सब मोह में जी रहा था। अब देखो! कोई भी घर के लोग नहीं कहेंगे कि यह मोह में जी रहा था, पड़ोस के लोग नहीं कहेंगे कि मोह में जी रहा था, कोई भी रिश्तेदार नहीं कहेंगे कि यह मोह में जी रहा है, यहाँ तक कि आचार्य भी, ज्ञानी, प्रत्यक्ष ज्ञानी भी नहीं कहेंगे कि यह मोह में जीने वाला जीव है लेकिन उस जीव को लग रहा है कि मैं मोह में जी रहा हूँ। इसको कहते हैं- मोहवान। आपसे अगर कोई मोहवान कह दे, आपसे अगर कोई मोही कह दे तो आपको बुरा लग जाएगा। कोई अध्यात्म ग्रन्थ पढ़ लेते हैं, अपने अन्दर एक सम्यग्दर्शन का दृढ़ श्रद्धान रख लेते हैं ऐसे अनेक जीव हैं, उनसे अगर कोई कह दे- 'आप मोही हैं', उन्हें बुरा लग जाएगा। ज्ञानी हैं, कोई विद्वान हैं; उनसे अगर कोई कह दे 'आप मोही हैं' तो उन्हें बुरा लग जाएगा लेकिन क्या मोही होने के साथ-साथ ज्ञानी होना एक साथ चल सकता है? और अगर चलता है, तो उसे चलने दिया जाता।

अन्य दार्शनिकों के मतों में धर्म

दो ही कल्याणक बहुत अच्छे लगते हैं, कौन से? एक गर्भ के और एक जन्म के। यह तीसरा आता ही क्यों है? जब मोह के साथ में ही ज्ञान चल रहा है, तो मोह उस ज्ञान को बाधित नहीं कर रहा है और ज्ञानी ज्ञान में है, ज्ञानी अपने वैराग्य में है, ज्ञानी जागृत है, सब कुछ है। दुनिया के हर धर्म की किताब में यही मिलेगा- बस! यहीं पर सब कुछ है। इसलिए आप सुन लो अनेक ऐसे दार्शनिकों के प्रवचनों को, अनेक ऐसे सन्तों के प्रवचनों को कि दुनिया से भाग रहे हैं। भाग करके तुम दुनिया से कहाँ जाओगे? घर छोड़ना अर्थात् दुनिया से भागना है। कईयों के प्रवचनों में आपको यह बात मिल जाएगी और वे उनके लिए भी प्रवचन कर लेंगे, जो दुनिया से इस तरह से छोड़ कर निकले हैं और जो घर में बैठे हैं बढ़िया कुर्सी पर, चाय पीते हुए, चुस्की लेते हुए, वे उनके लिए कहेंगे- 'ये सब दुनिया से भागने वाले लोग हैं, ये क्या जाने' भाई! दुनिया में भाग करके जाओगे कहाँ? दुनिया में रहना है तो दुनिया से भाग करके अलग अपना स्थान बनाने की क्या जरूरत है? घर छोड़ने से ही क्या दुनिया छूट जाती है? घर छोड़ने से दुनिया छूट जाती, तो पशु-पक्षियों के भी कोई घर नहीं होते। वे अपने घर छोड़-छोड़ के भागते रहते हैं। आज यहाँ पर रैनबसेरा है, कल कहीं रैनबसेरा है, कल दूसरी जगह पर रैनबसेरा है। पक्षियों के झुण्ड देखते हो न रोजाना? नई-नई जगहों पर जाते हैं उड़-उड़

कर, थोड़ी देर रुकते हैं, सुबह होती है फिर निकल जाते हैं, फिर आगे रैनबसेरा कर लेते हैं। इससे क्या मिलता है? घर छोड़ने से क्या मिल जाता है? भागने से क्या मिल जाता है? यह दुनिया से भागना है। माँ को दुःखी करना, पिता को दुःखी करना, परिवार को दुःखी करना। अच्छे साधन मिले थे उन साधनों को छोड़ कर अब दुःख में रहना। अब न सर्दी से बचने का कुछ है, न गर्मी से बचने का कुछ है, न कुछ है और अब परेशान होना। जंगलों में रहना, वनों में रहना, अकेले रहना, दुःखी होना। ऐसे धर्म की निन्दा करने वाले लोग, ऐसे बड़े-बड़े दार्शनिक मिलेंगे, ऐसे बड़े-बड़े पण्डित मिलेंगे, ऐसे बड़े-बड़े प्रवचनकार मिलेंगे, जो इस stage से ऊपर उठने के लिए जैसे ही कदम उठाया जाता है; वह निन्दा पर उतर आते हैं। बड़े-बड़े दार्शनिकों की आप बातें सुन लेना। ओशो, एक नाम सुना होगा आपने? बहुत प्रवचन चलते हैं इसके। यह इसी तरह का व्यक्ति है। आप देखोगे कि यह खुद कैसे? बिल्कुल ऊपर से नीचे तक अच्छे बढ़िया मखमली कपड़ों में ओढ़े बैठा रहता है और बैठा-बैठा इस तरह की बातें करके लोगों के दिमाग को घुमाता रहता है। लोग सुनते हैं और समझते हैं कि हाँ भाई! बिल्कुल सही कह रहा है।

किसी भी धर्म की निन्दा करना बहुत आसान है

उसको लगता है कि दुनिया में जो मैं बोल रहा हूँ, बस वही सच है और जो मैं जानता हूँ, बस वही ज्ञान है और जो मैं बता रहा हूँ, बस वही प्रवचन है; उसके अलावा कोई कुछ नहीं है। इसलिए उसने दुनिया के हर धर्म की कमियों को तो ठीक ही है, अच्छाइयों को भी कमियाँ बनाने का उसके पास ज्ञान है और बनाया है उसने। अगर आपने गृह त्याग किया है, घर छोड़ कर निकले, कपड़े त्याग कर दिए, आप नग्न हो गए, आपने तपस्या कर ली, क्या कर लिया? किसी भी चीज की उपलब्धियों को आप एक क्षण में नकार सकते हो और उसको नकारने में आपको देर क्या लगेगी? आपको सिर्फ मुँह से ही तो बोलना है। आपने क्या कर लिया? हम अगर किसी भी अच्छी चीज की कमियों को भी गिनाने चले जायें तो कमियों पर भी आदमी का दिमाग चला जाएगा। वह भी इसको सही मानने लग जाएगा कि हाँ! वास्तव में ये सब कमियाँ हैं। यह जैन लोगों ने ऐसा धर्म बना रखा है और उस धर्म के कारण से खुद भी दुःखी होते हैं, दूसरों को भी दुःखी बनाते हैं। आज का जो यह समाज है, आज के जो पढ़े-लिखे बच्चे हैं, ये सब सुख में जीना चाहते हैं, सुख में रहना चाहते हैं, मोह में रहना चाहते हैं तो उनके लिए वही अच्छा लगता है कि कभी हमें कोई ऐसी बात न बता दे कि हमें अपना सुख छोड़ना पड़ जाए। जब कोई उनसे कह दे कि तुम सुख में रहते हुए भी धर्म कर रहे हो, सुख में रहते हुए भी तुम जिन्दगी जी रहे हो, सुख में रहते हुए भी तुम्हारा जीवन जागृत है तो उन्हें लगता है कि इससे बढ़कर कोई अच्छा उपदेशक नहीं मिलेगा, हमें इसी को follow करना है और करते हैं लोग; कई लोगों के मन में एक विचार आ जाता है।

सच्चा जैन शास्त्रों पर विश्वास रखेगा

एक video आजकल चल रहा है, कई लोग बता देते हैं। एक ने मेरे से आकर कह भी दिया कि मेरा भाई उस video को सुनने के बाद में मुझसे कहता है कि देखो! तुम थोड़ा दुनिया में और भी तो लोगों को सुना करो कि तुम अपने ही महाराज के प्रवचन सुनती रहती हो। जब देखो तब वही द्रव्य संग्रह, वही प्रवचनसार, वही अष्ट पाहुड़, वही वैराग्य शतक। कुछ दुनिया में और भी तो लोगों के view देखा करो, सुना करो। देखो

वह क्या कह रहा है? वह क्या कह रहा है? वह कहता है कि एक बार हमारे पास में कोई साधु आए, साध्वी आई और उनके पैरों में पट्टी बंधी हुई थी। हमने उनसे पूछा कि पट्टी क्यों बंधी है? वह कहने लगी- मैं पैदल चलती हूँ और पैदल चलने के कारण से मेरे पैर छिल जाते हैं तो मैंने पट्टी बाँध ली। जब पैदल चलने से पैर छिल जाते हैं, पट्टी बाँध ली, तो जूते ही पहन लो, चप्पल ही पहन लो। नहीं! नहीं! वह मेरे शास्त्र में नहीं लिखा इसलिए नहीं पहन सकती। वह कहता है - शास्त्र में नहीं लिखा तो शास्त्र में लिख लो, तब पहनने लग जाओ। इतनी सी बात कहकर उसने अपने सारे श्रोताओं को क्या कर दिया? उसने जैन धर्म की उस साध्वी की धज्जियाँ उड़ा दी। अब जब भी आप उस उपदेशक की बातें सुनोगे, प्रवचन सुनोगे तो आपको लगेगा कि बात तो सच्ची है। भाई! तुमसे सहन नहीं होता है, तुम्हें अगर पट्टी लगानी पड़ रही है तो फिर अब तुम जूती ही पहन लो। कपड़े की चप्पल ही पहन लो, क्या दिक्कत है? वह नहीं पहन सकती क्योंकि वह शास्त्र में नहीं लिखी। भाई! शास्त्र के पीछे इतना पड़ने की क्या जरूरत है। अब इस एक बात को लेकर उसने सारी साध्वियों की, सारे साधुओं की धज्जियाँ उड़ा दी। अब हो सकता है कि उसके पास में कोई साध्वी पहुँची, न पहुँची; उपदेशकों के तो क्या है दिमाग अपने आप उदाहरण बना लेते हैं। अब जो जैन श्रद्धालु ने यह सुन लिया तो अब वह क्या सोचता है? कि बात तो देखो वास्तव में सही है। ये जैन लोग बिना वजह कष्ट उठाते हैं, पैदल चलते हैं, पैरों में छाले पड़ जाते हैं, फिर कुछ न कुछ लगाते हैं और जब इनसे सहन नहीं होता है, तो फिर चलते ही काहे को हैं। अगर कभी खुदा न खास्ता उसने देख लिया कि इनके पैरों में कुछ लगा हुआ है मान लो कहीं कोई पट्टी लग गई है, कोई band aid लग गई है तो फिर वह कहेगा कि भाई! फिर पैदल चलने का प्रयोजन ही क्या है, क्यों चल रहे हो? अब क्या करोगे? ये लोग ढोंग करते हैं, ये सब जिद्दी लोग होते हैं, अड़ियल लोग होते हैं, बस! अपने शास्त्रों की बातें मानते हैं। जिन्दगी जीना जानते नहीं, जमाने के हिसाब से चलते नहीं, शास्त्रों के हिसाब से चलते हैं, इसलिए इनकी जिन्दगी कोई जिन्दगी नहीं है।

जैन धर्म के नियमों को रूढ़िवादी कहना अज्ञानता

ऐसा उसने कह दिया और सुनने वालों को अच्छा भी लगेगा। ये सब क्या रूढ़िवादी लोग हैं, पुरानी बातों पर ही बस घिसे-पिटे जा रहे हैं। न अपने पास में शक्ति है न कुछ वैसा करने का भाव है, बस किए जा रहे हैं, बहे जा रहे हैं। शास्त्रों को बदल नहीं सकते, शास्त्रों में लिखा नहीं इसलिए कर नहीं सकते, इसलिए क्या करें? यही तो रूढ़िवादी लोग कहलाते हैं, इन्हीं को तो कहते हैं बस, लकीर के फकीर बने रहना। क्या करें? किसके शास्त्र पढ़ें? अब उसके शास्त्र पढ़ो जो सुना रहा है। मन हो जाएगा आपको, उसी के शास्त्र पढ़ो अब जो सुना रहा है। देखो! कितनी बढ़िया बात कह दी उसने। शास्त्रों में नहीं लिखा है इसलिए ये लोग नहीं कर रहे हैं और अगर ये शास्त्रों के विरुद्ध चल लेंगे तो उन्हें पाप लग जाएगा। आज का जमाना है और इस जमाने में भी ये लोग पुरानी रूढ़िवादिता के अनुसार अभी भी अपनी धारणा बनाए हुए हैं। इनसे बड़े अज्ञानी और कौन होंगे? अब क्या समझाओगे? बताओ! उपदेशक को आप क्या समझा सकते हो? और जिसने उसका यह उपदेश सुन लिया है और उसकी भी अगर धारणा वैसी बन गई है कि ये सब साधु ढोंग करते हैं और इनसे यह सहन नहीं होता है, तो ये शास्त्रों के नाम पर भी उन चीजों को जबरदस्ती किए रहते हैं तो उन्हें क्या समझाओगे? बताओ! है कोई समझ आपके पास? यह problem एक महिला की हो गई। वह मेरे पास आकर कहने लगी- देखो मेरा भाई ऐसा कह रहा है महाराज! इस video को सुनकर कि तू कुछ

और सुनती ही नहीं है, कुछ और पढ़ती ही नहीं है। तुझे बस महाराज के अलावा कुछ दिखता ही नहीं है। तुझे उनके ज्ञान के अलावा कुछ दिखता ही नहीं है, तू उन्हीं में लगी रहती है। यह सुन! देख! यह क्या कह रहा है? और जैनी हैं दोनों भाई बहन।

स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए दूसरों की फजीहत करना

अब भाई ऐसी बात उस बहन से कह रहा है। अब वह बहन को उत्तर देते नहीं बना तो मेरे पास आ गई। अब बताओ! मैं क्या उत्तर दूँ उसको? कोई भी चीज होती है, अगर उसका उत्तर है, समाधान है तो क्या हो सकता है? एक तो यह है कि हर कोई हमेशा पैरों में पट्टी लगाकर चलता है क्या? एक common sense में भी कुछ सोचने की बातें होती हैं और उसके पास वह साध्वी आई, वह न जाने कौन सी साध्वी होगी? अब जैनों में भी दिगम्बर भी हैं, श्वेताम्बर भी हैं। कभी आपने ऐसे दिगम्बर साधुओं को तो कभी ऐसे कपड़े और पट्टी लपेटे देखा नहीं होगा। अब किसने क्या उदाहरण बना दिया? वह वास्तविक घटना है भी कि नहीं भी। ऐसे चिन्तकों के मन में अपने आप विचार आते हैं, ये खुद अपने उदाहरण बनाते हैं और ये खुद फजीहत करके दूसरों की, अपने आपको श्रेष्ठ उपदेशक सिद्ध करते हैं।

अज्ञानी उपदेशक मिथ्या उपदेश देकर श्रोताओं, प्रशंसकों की संख्या बढ़ाते हैं

अब यह चीज अगर आपके समझ में नहीं आएगी तो आप कभी भी सही गलत को समझ ही नहीं सकोगे। आप देखो! कौन ऐसे पट्टी लगाकर के और ऐसे कि भाई! शास्त्रों में लिखा है इसलिए ढोना पड़ रहा है। अरे भाई! अगर मान लो कभी उसने लगा भी ली तो क्या पट्टी एक कोई स्थाई समाधान है? कभी-कभार अगर कभी कुछ चोट लग भी गई और पट्टी अगर लगा भी ली तो क्या उससे उसका कोई धर्म भ्रष्ट हो गया? या लगाने से हो गया या नहीं लगाने से हो गया, इससे क्या लेना-देना? भाई! वह तब भी पैदल चलने का उसका व्रत है तो पैदल ही चलेगा, कपड़े नहीं पहनने का व्रत है तो कपड़े नहीं पहनेगा। वह अगर कभी-कभार कोई आपत्ति आने पर किसी भी तरह से अपने लिए कोई भी protection ले लेता है, तो वह उसके व्रतों का खण्डन तो नहीं हो जाता। ऐसे भी लोग हैं जिन्हें उसकी कभी कोई जरूरत नहीं पड़ती और अगर वह protection कभी ले भी ले तो आपके लिए तो पट्टी क्या है? अगर मान लो band aid भी लगा दी किसी ने, कोई लेप भी लगा दिया किसी ने तो भी आप कहोगे। जब जिसको कहना ही है, तो आप कोई दवाई भी लगा देगा तो भी कहोगे कि भाई! यह दवाई क्यों लगा दी? तुम्हें शरीर से मोह होगा इसलिए सहन नहीं हुआ तो दवाई लगा ली। अब शरीर से मोह है तो फिर यह साधना कर ही क्यों रहे थे? कहने का तो कोई अन्त ही नहीं है न? शरीर से मोह है तभी तो आपने ये साधन अपना लिए, यह दवाई लगा ली, यह पट्टी लगा ली। कल को कह बैठेगा, शरीर से मोह नहीं है तो भोजन ही करने क्यों जाते हो? आप किसका मुँह रोकोगे? बताओ! शरीर से मोह नहीं है, तो फिर भोजन ही करने क्यों जाते हो और यूँ भी कहते हो, हमारा शरीर से मोह नहीं है। ये सब लोग तुम्हें बेवकूफ बना रहे हैं। इन्हें कुछ करना धरना है नहीं है, कमाना खाना है नहीं है, बस! दूसरे के घर में चले जाते हैं, खा-पी आते हैं और कहते हैं- हमें शरीर से मोह नहीं है। जब कोई उपदेशक ऐसा कह देगा तो आपको क्या लगेगा? बताओ! सही बोल रहा है, सही कह रहा है? लगेगा तो सही कह रहा है बिल्कुल। अब तुम्हें अगर ज्यादा श्रद्धा है, तो नहीं लगेगा सही लेकिन जिनको श्रद्धा नहीं

है, उन्हें तो सही लगेगा ही न? सही तो कह रहा है, गलत क्या कह रहा है? अब मतलब क्या है कि मर जाओ, बिना भोजन किए मर जाओ। कैसे भी हो, तुम्हें शरीर से मोह नहीं है, घर त्याग दिया था, मोह त्याग दिया था तो अब क्या करो? बिना भोजन के रहो, जब तक रह सको रहो। तुम्हारी ताकत है दो दिन, चार दिन, दस दिन, एक महीना, एक साल; जितने तुम जी सको जी लो। क्या करना है तुम्हें? मोह तो है ही नहीं शरीर से।

उपदेशकों को उपदेश देने में कोई खर्चा नहीं लगता है। उन्हें तो बस इतना चाहिए कि हमारे उपदेशों को बस प्रशंसा करने वाले हमारे सामने प्रशंसक रहें और हम बोलते जाएँ, वे ताली बजाते जाएँ। बस हमारे लिए यही बढ़िया है और ऐसे उपदेशकों के सामने भी ढेर श्रोता मिल जाते हैं। हर चीज की बुराइयाँ करने के लिए भी लोगों के पास में ज्ञान है, हर अच्छाइयों में बुराइयाँ निकालने का भी लोगों के पास में ज्ञान है। जिनका मानसिक स्तर एक तरह से set हो गया है, जिनका mind set हो गया है, तो उन्हें उससे beyond कुछ भी चीजें देखने का जब knowledge ही नहीं है, तो उन्हें उस चीज से आगे बढ़ने पर जैसे ही कोई आगे बढ़ने की कोशिश करता है, तो उसकी कमियाँ निकालने के लिए उनके पास में पूरे शब्द होते हैं, पूरा ज्ञान होता है, पूरे उदाहरण होते हैं। अब आप क्या कहोगे?

आचार्य विद्यासागर जी महाराज के तप का उदाहरण

अब ऐसे व्यक्ति को कभी यह दिखाया जाता कि जब आचार्य महाराज विहार कर रहे थे, विहार करते हैं। उनके पैर में एक बार कंकड़ अन्दर, छलनी-छलनी उनके पैर हो गए, उसमें कंकड़ घुस गए। वह कंकड़ घुसने के बावजूद भी वह चलते रहे, विहार उन्होंने रोका नहीं। एक दिन जब किसी ने वह कंकड़ निकाल दिए, उसमें दो-तीन-चार ऐसे कंकड़ निकल आए और कंकड़ निकलने के बावजूद भी उन्होंने उस पर कोई भी पट्टी नहीं चिपकवाई। ठीक है! हल्दी का लेप लगा दिया, घी हल्दी का लेप लगा दिया और फिर वह चलने लग गए, चलते रहे। अब ऐसे साधक भी जब हैं और इस तरह से भी जब करके कोई तरह का अपने पास में ऐसा भाव नहीं लाते कि हमें पट्टी की जरूरत है, कि हमें कपड़े की जरूरत है, तो आप समझ सकते हो कि यह कोई उदाहरण हमेशा के लिए दिया जाने वाला उदाहरण तो नहीं है। लेकिन उस एक आदमी ने यह उदाहरण देकर, अब वह उदाहरण किसका हो? कपड़े, पट्टियाँ; यह आपको श्वेताम्बर साधुओं पर तो मिल जाएँगे, दिगम्बर साधुओं के पास में आपको कब दिखे? कपड़े और पट्टी पहने हुए।

साधु की निन्दा के भाव से कुतर्क

अब ये सुनने वाले लोग दिगम्बर भी हैं और सुन रहे हैं और साधु की मजाक सुनकर, अपने अन्दर साधु पर श्रद्धा तो है ही नहीं, इसलिए वे उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। साथ में अपनी श्रद्धा नहीं है, इसलिए दूसरों की श्रद्धा है तो उसके ऊपर comment कर रहे हैं। ये पढ़े-लिखे लोगों के काम हैं। पढ़े-लिखे लोग दिमाग में बहुत hi fi होने लग जाते हैं, हवा में उड़ते हैं। हर कुतर्क को वे सही मानने लग जाते हैं। उन्हें किसी भी सिद्धान्त की मर्यादाएँ और किसी भी सिद्धान्त के पीछे दृढ़ होकर आत्मविश्वास के साथ चलते हुए भी, उन सिद्धान्तों को follow करते हुए भी लोग किस तरह से अपनी कर्म-निर्जरा करते हैं? कि आत्म-विशुद्धि

बनाए रखते हैं कि व्रतों के पालन का क्या पुण्य होता है? कि श्रद्धा क्या होती है? इससे कोई मतलब नहीं। कुतर्कों की बात जहाँ सामने आ जाए तुरन्त उन्हें विश्वास हो जाता है। अब ऐसे पढ़े-लिखे लोग आप के घरों में ही बैठे हुए हैं। आप उन पढ़े-लिखे लोगों को यहाँ नहीं भेजते, वे पढ़े-लिखे लोग यहाँ नहीं सुनने आते, जो पढ़े-लिखे हैं वह सुनने आ जाते हैं। अब समस्या यह है कि जब उनके अन्दर श्रद्धा नहीं बैठती है, तो वह इस तरह की अपने अन्दर एक निन्दा का भाव साधुओं के प्रति ले आते हैं और उस निन्दा के भाव से वह दूसरे के सामने भी उन साधुओं की मजाक बनाने के लिए इस तरह के कुतर्क देने लग जाते हैं। यह सुनिए आप, यह पढ़िए आप। अब उन्हें कौन समझाए? कौन समझाए उन्हें कि सेवा कोई चीज है कि नहीं? किसी चीज की सुरक्षा करना भी कोई धर्म है कि नहीं? या आहार आदि करने से कोई अपना जीवन चलाते हुए भी अगर आहार आदि नहीं करे तो आत्महत्या बड़ा पाप है कि आहार आदि करके अपनी आत्म साधना करे, वह बड़ा पुण्य का काम है। अब उन्हें कौन समझाए? क्वचित् कदाचित अगर किसी ने कोई उपचार ले लिया और अपने उस तात्कालिक उपचार के बाद में उसने अपने प्रायश्चित आदि करके, अपनी आत्म-निन्दा करके, अपनी आत्म-साधना को आगे बढ़ा लिया तो यह पुण्य का कार्य है कि वह उसको बिल्कुल ही छलनी-छलनी करके पैर काट ले और मर जाए, यह बड़ा कार्य है।

जैन सिद्धान्तों पर विश्वास जरूरी

यह समझदारी तब आती है, जब हम जैन सिद्धान्तों को दृढ़ता से सुने, समझे, विश्वास के साथ में उन सिद्धान्तों को समझते हुए आगे बढ़ें। नहीं तो आपको धर्म में भी बहुत सारे negative point दिखाई दे जाएँगे। इसीलिए लोग कहते हैं... घर में रह कर ही धर्म होता है, जो घर को छोड़ देते हैं वे दुनिया से भागते हैं और भाग करके कभी भी, धर्म क्या कर लोगे? एक मिनट में उसकी मजाक बनाकर आगे बढ़ जाएँगे, किसकी? जिसने घर छोड़ा, जिसने तपस्या की, जिसने त्याग का मार्ग अपनाया। भाई! यह क्या मार्ग है? अब यह मार्ग किसको बुरा लग रहा है? जिसको घर में रहना अच्छा लग रहा है, जिसको सोफा पर बैठकर प्रवचन करना अच्छा लग रहा है, उसको यह मार्ग अब बुरा लग रहा है। क्योंकि इसको अगर हम अच्छा कह देंगे तो हमारे प्रशंसक हमको बुरा कहने लग जाएँगे। अगर हम इसको नीचा नहीं दिखा पाए तो हमारे प्रशंसक हमको नीचा देखने लग जाएँगे। इसलिए क्या करना? उन उपदेशकों की यह एक जरूरत हो जाती है कि अगर उन्हें साधु का दर्जा दे दिया गया, किसी दार्शनिक का दर्जा दे दिया गया तो उन्हें यह सिद्ध करना भी जरूरी है कि हमसे बड़ा भी कोई नहीं है और इसके लिए हमें अच्छे त्यागियों की, तपस्वियों की, साधुओं की निन्दा भी करना पड़े तो उसमें भी हम पीछे नहीं हैं। अब यह मानसिकता जब तक समझ में नहीं आएगी, तब तक आपको किसी भी उपदेशक की कोई भी बातें समझ में आ नहीं पाएँगी। बड़े-बड़े उपदेशकों के, बड़े-बड़े चिन्तकों के ये काम हैं। धर्म का level कहाँ है? जैन धर्म में धर्म का level कहाँ से शुरू होता है? भाई! घर में रह कर जितना तुम धर्म करते हो, उससे लाख गुना धर्म तीर्थकर कर लेते हैं घर में रहकर के लेकिन फिर भी वह घर को छोड़ते हैं, मोह को तोड़ते हैं और इसलिए, क्योंकि घर में रहकर के भी हमारा समय पूरा आत्मा के लिए नहीं लगता, आत्मवान नहीं हो पाते। हमें मोह आता ही है और हम मोहवान रहते ही हैं।

उस आत्मवान की अनुभूति करने के लिए यह गृह त्याग करके तीर्थकर भी साधना का मार्ग अपनाते हैं तो वह साधना के मार्ग से ही अपने आत्म-साध्य को प्राप्त करते हैं। अब यहाँ पर बस सबकी गति रुक जाती है। जितने भी धर्म, सम्प्रदाय, दार्शनिक, उपदेशक हैं, सब बस यहीं तक सीमित हैं घर तक क्योंकि जैसे ही घर छूटा...न खाने का ठिकाना, न पीने का ठिकाना, न रहने का ठिकाना, न अपनों का ठिकाना, न सुविधाओं का ठिकाना। इसलिए सबसे अच्छा काम है कि जो गृह त्याग करे, उनकी निन्दा करके इस समाज की यह समझा दो कि ये तो दुनिया से भाग रहे हैं, ये तो अपने माता-पिता को दुःखी बना रहे हैं, ये तो भरी-पूरी जिन्दगी को छोड़ कर, सुख का मार्ग छोड़ कर दुःख का मार्ग अपना रहे हैं। ये मूढ़ हैं, अज्ञानी हैं। जो दुःख के मार्ग पर जाएगा, वह भला परलोक में भी क्या सुख पाएगा? जो अभी दुःख भोग रहे हैं, आगे भी दुःख भोगेंगे। इन्हें कोई समझाने वाला नहीं है, ये तो रुढ़िवादी हैं। बस इतना कह कर इस दुनिया की अपने कब्जे में कर लो और इसमें सब लोग प्रसन्न होंगे, सब ताली बजाएँगे और सब पढ़े-लिखे लोग आपकी सभा में आकर बैठेंगे, आपके प्रशंसक बनेंगे। यह बड़ा सीधा simple काम है और यह काम चल रहा है। दुनिया का स्तर कहाँ तक है? तीर्थकरों के घर में रहने तक भी आज दुनिया का स्तर नहीं है, फिर तीर्थकरों के तो दो कल्याणकों का भी स्तर नहीं है अभी दुनिया का और वह तीर्थकर इन दो कल्याणकों को भी छोड़ कर तीसरे कल्याणक में, चौथे कल्याणक में और पंच कल्याणक को प्राप्त करके जब मोक्ष को प्राप्त करते हैं तो उनकी ये क्या बात कर पाएँगे? जो ये भोगी लोग हैं, जो ये ढोंगी लोग हैं; उनकी ये बातें करने बैठ जाते हैं। यह विचार तो तभी आएगा न, जब आपको अपने सिद्धान्तों का कोई ज्ञान होगा। तप करके भी वह क्या करते हैं, क्या पाते हैं? जब आपको ही ज्ञान नहीं है, तो उनकी बातें सुनकर आप भी उनकी बातों में बह जाएँगे, यह बात निश्चित है। आचार्य कहते हैं- यह भी प्रमाद है, यह भी मोह है। परलोक में तुम्हें यह बहुत भारी दुःख देगा। यह भी अज्ञान है इसको भी छोड़ी और तब तक इस अज्ञान को छोड़ी जब तक कि तुम केवलज्ञान को प्राप्त न हो जाओ। तब तक मोह छोड़ा जाता है, तब तक प्रमाद छोड़ा जाता है जब तक कि वह ज्ञान रूप आत्मा खूद न बन जाए।



गाथा: 92

अति दुर्लभ जिनशासन के विषय में भ्रमित नहीं होना चाहिए

बुज्झसु रे जीव! तुमं, मा मुज्झसु जिणमयंमि णाऊणं।
जम्हा पुणरवि एसा, सामग्गी दुल्लहा जीव! ॥92॥

अन्वयार्थ- (रे जीव!) हे आत्मन्! (तुमं) तुम 'जिनधर्म/जिनशासन को' (णाऊणं) जानकर (बुज्झसु) बोध को प्राप्त हो (जिणमयंमि) जिनमत यानी जिनशासन के विषय में (मुज्झसु) मोहित यानी भ्रमित (मा) मत हो (जीव!) हे प्राणी! (जम्हा) जिससे कि 'यह मानवजीवनरूप सामग्री पाना सार्थक हो क्योंकि अन्य सभी साधन-सामग्री मिलना' (पुणरवि) फिर, भी 'सुलभ है किन्तु' (एसा सामग्गी दुल्लहा) यह 'जिनधर्म, श्रावक कुल, धर्म का सुनना आदि' सामग्री 'पाना अत्यंत' दुर्लभ है ॥92॥



प्रतिदिन की भाँति आज भी हमारे लिए आर्ष-परम्परा से प्राप्त इन ग्रन्थों के माध्यम से बोध की प्राप्ति होती है। इसी बोध को प्राप्त करते हुए यह गाथा क्रमांक 92 और 93 आगे पढ़ते हैं....

बुज्झसु रे जीव! तुमं, मा मुज्झसु जिणमयंमि णाऊणं।
जम्हा पुणरवि एसा, सामग्गी दुल्लहा जीव! ॥92॥

दुलहो पुण जिणधम्मो, तुमं पमायायरो सुहेसी य।
दुसहं च णरय-दुक्खं, कह होहिसि तं ण याणामो ॥93॥

आचार्य कहते हैं... 'बुज्झसु रे जीव!' जीव को सम्बोधित करते हुए कहते हैं... रे जीव! बुज्झसु यानी बोध को प्राप्त हो। जैसा पहले कहा था, वही सम्बोधन पुनः कहा जा रहा है क्योंकि बार-बार कहने पर ही जागृति आती है। बहुत काल से सोए हुए, अनादि काल से भ्रम में पड़े हुए जीवों के लिए एक बार में कहने से, एक बार में जगाने से नींद खुलती नहीं है। इसलिए जीव को बार-बार कहना पड़ता है, बार-बार सम्बोधित करना पड़ता है और बार-बार उसे जगाने के लिए कहा जाता है कि तुम जागो... जागो...

जिनमत का अनुसरण: जागो और पथ से मत भटको

“बुझसु” अर्थात् जागो ‘मा मुझसु’ मोहित मत हो जाना। ‘जिणमयंमि णाऊणं’ जिनमत को जानकर के फिर कहीं भ्रमित मत हो जाना, मोहित मत हो जाना, कहीं पथभ्रष्ट मत हो जाना क्योंकि संसार में अनेक तरह के जीव आपके लिए मिलते हैं। अनेक तरह के प्रलोभन आपको दिखाई देते हैं और अनेक तरह के विचार भी लोगों के अपने समक्ष आते रहते हैं। उन सब विचारों को सुनकर के भी, तरह-तरह के लोगों की बातें सुनकर के भी कभी मोहित मत हो जाना कि तुम आत्म-कल्याण से च्युत हो जाओ। ऐसा कभी मोहित मत हो जाना कि तुम अपने आत्म-ज्ञान से छूट जाओ। जिनमत को जानकर के सबसे बड़ी चीज जो हम प्राप्त करते हैं, वह यही है कि हमें अपना आत्म-बोध होता है। स्वयं का ज्ञान होना, स्वयं का बोध होना, स्वयं को जानने की अभिलाषा उत्पन्न करना, यह जिनमत का सबसे बड़ा उपकार होता है। आचार्य कहते हैं कि अगर आपने इस जिनमत को थोड़ा सा जाना है, जिन भगवान के द्वारा कही हुई बात को थोड़ा सा जाना है, तो इसको जानते रहना। आत्मा और शरीर का विज्ञान हमेशा अपने अन्तः में रखना। किसी भी प्रकार की बातों में आकर के यह मत भूल जाना कि मैं, जो दुनिया में हो रहा है, वही प्राप्त करूँगा और उसी में रमूँगा, उसी में रहूँगा; इस तरह से कोई भूल मत कर जाना क्योंकि दुनिया तो अनेक तरह की विचित्रता वाली होती है और दुनिया में विचित्रता के साथ ही सब कुछ चलता है। अब दुनिया की इस विचित्रता के बीच में आप अपनी अखण्डता बनाए रखना, आप अपने अन्दर बोध को जागृत बनाए रखना, आप अपनी एकात्मस्वरूप आत्मा की भावना करना। यह आपके लिए प्रति समय होते रहना चाहिए। जब हम जिनमत की बात करते हैं तो जिनमत में हमें दो रूप दिखाई देते हैं- एक- जिनमत का जब हम बाहरी रूप देखते हैं तो उस बाहरी रूप में हमें एक शान्ति की आकृति दिखाई देती है। जिनमत में अगर हम कोई भी बाहरी रूप देखते हैं भगवान का, प्रभु का तो वह एक ध्यान की, शान्ति की और दुनिया से विरक्त होने की भावना दिखाई देती है। आप जब भी भगवान की मूर्ति देखते हैं, प्रभु को हमेशा आप जब जिस स्थिति में देखते हैं, उस स्थिति में आपके लिए सबसे पहला जो सन्देश मिलता है भगवान को देखकर के, वह क्या मिलता है? शान्ति चाहिए। शान्ति कहाँ मिलेगी? आत्मा में मिलेगी। यह सन्देश कैसे दिया जाता है? जो आँख बन्द किए हैं, किसी की न सुन रहे हैं, न किसी को देख रहे हैं; ऐसी ध्यान अवस्था में, निज ध्यान में जो लीन हैं, वह शान्ति की अवस्था में लीन हैं और इस तरह का विचार जब आपके अन्दर आए जिनमत को देखकर के, जिन भगवान को देखकर के तो उस समय पर आपके अन्दर यही सबसे पहले आना चाहिए कि हमें भी भगवान के जैसी शान्ति चाहिए। अपनी आत्मा का सुख चाहिए; अपनी आत्मा के सुख से बढ़कर के दुनिया में कोई सुख नहीं है।

तात्कालिक और त्रैकालिक सुख: आत्म-कल्याण के पथ पर

जिनमत से भ्रमित होने का मतलब यही है कि हम अपने आत्म-सुख की गवेषणा न करके बाहरी सुख में अपनी गवेषणा करने लग जाएँ कि यह सुख हमें मिल जाए, यह सुख हमें मिल जाएँ। यह सुख हमारे सामने तात्कालिक तो हमारे लिए एक सुविधाजनक हो सकते हैं और हो जाएँ तो कोई बात नहीं लेकिन भीतर से अपना विश्वास ऐसा रहना चाहिए कि ये सुख तत्काल के लिए हैं, त्रैकालिक नहीं हैं। एक तात्कालिक सुख होते हैं, एक त्रैकालिक सुख होते हैं। एक तात्कालिक ज्ञान होता है, एक त्रैकालिक ज्ञान होता है। तात्कालिक मतलब? जो चीजें जैसी सामने आ गई, जो विचार जैसा सामने आ गया, हमने उसको स्वीकार कर लिया,

हमने अपना उससे काम निकाल लिया; यह तात्कालिक हो जाता है। त्रैकालिक क्या होता है? ऐसी चीजें जो तीनों कालों में हमारे साथ रहें। आज का जो हमारा present है, यही आगे चलकर के हमारे लिए यह past हो जाएगा और जो आगे-आगे हमें अपना future दिखाई दे रहा है, वह धीरे-धीरे present में convert होता चला जाएगा तो तीनों कालों में हम जुड़ते चले जायेंगे। आत्मा का अस्तित्व तीनों कालों में बना रहता है इसलिए आत्मा के सुख की अगर हम भावना करेंगे, आत्मा के सुख की बात करेंगे तो हम जिनमत को समझ पायेंगे। जिनेन्द्र भगवान ने हमेशा आत्म-सुख के लिए प्रेरित किया, आत्मा के ज्ञान के लिए प्रेरित किया। अगर तत्काल में हमें कहीं कोई सुख मिल भी जाए, लग भी जाए तो उस सुख को हम यह न समझ ले कि यह सुख हमारे साथ चला जाएगा; कोई सुख हमारे साथ जाएगा नहीं। मानो कि आज आपने कोई अच्छे-अच्छे व्यंजन खा लिए, अच्छे-अच्छे आपके लिए बिस्तर मिल गए, अच्छे-अच्छे आपको रहने के स्थान मिल गए, अच्छे-अच्छे आपको पहनने की चीजें मिल गई, आपको सारी सुख-सुविधाएँ मिल गई; अब इन सुख-सुविधाओं से क्या करेंगे? ये तात्कालिक हैं, त्रैकालिक तो नहीं हैं। त्रैकालिक मतलब? हमेशा रहने वाली और तात्कालिक मतलब? कुछ समय के लिए, काम चलाने के लिए। मानो कि यदि हम किसी पद पर भी प्रतिष्ठित हैं तो हम त्रैकालिक होते हैं कि तात्कालिक होते हैं? तात्कालिक ही होते हैं। यहाँ पर पूर्व राष्ट्रपति कोविंद जी के बड़े भाई साहब आए हुए हैं गुना से, यहाँ बैठे हैं। अब आप सोचे कि राष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद में प्रतिष्ठा तो बनी रहती है लेकिन उसमें 'पूर्व' लगाना पड़ता है क्योंकि दुनिया का कोई भी पद हमेशा रहने वाला नहीं होता है। हर चीज ex के साथ चल जाती है। अब कोई ऐसी भी चीज हो जिसमें ex न लगे, ex का मतलब क्या होता है? मतलब आप जो आज हैं, वे कल नहीं होंगे। आपके सामने कल जो आएगा, उसमें आज का यह ex लग रहा है; यह भी तो सोचे! परसों आप जो होंगे, उसके लिए आज यह ex हो गया। यह धीरे-धीरे जो हमारा आगे-आगे बढ़ना हो रहा है, हम आगे-आगे बढ़ते जा रहे हैं, हम अपने जैसे-जैसे future को पकड़ते जा रहे हैं और हम अपने present को छोड़ते जा रहे हैं। हमारा यह जो present है, यह सब past होता जाएगा, past होता जाएगा।

तात्कालिक सुख और वास्तविक सुख में अन्तर

आज हम जैसे क्या बोल रहे हैं? present. आज हम present में कहाँ present हैं? आज हम present में यहाँ सतना में present हैं लेकिन कल हम यहाँ हो, नहीं हो; एक महीने बाद हम यहाँ हो, नहीं हो; एक साल बाद हम यहाँ हो, नहीं हो; यह सब हमारे लिए, यह present सब क्या हो जाएगा? सब past हो जाएगा। जो Present में हम जहाँ पर present हैं, वह सब past होता जा रहा है, सब past होता जा रहा है, सब past होता जा रहा है। उसके बाद में आपको सिर्फ memory में रहेगा कि हाँ भाई! मैं सतना में बैठा था, मैं सतना गया था, मैंने महाराज के प्रवचन सुने थे, मैंने महाराज के दर्शन किए थे और महाराज को भी याद आया। नहीं समझ में आया? महाराज को भी याद आ सकता है कि हाँ! मैंने भी सतना में प्रवचन किये थे, मैं भी सतना में बैठकर के वैराग्य शतक पढ़ता था; इतना तो याद आ ही सकता है न? अगर यह सब याद आता है, तो इस याद में क्या रहेगा? जो आज हमारा present है, वह आगे चलकर के जब भी हम होंगे तो यह सब हमारा past बनता जा रहा है। आचार्य कहते हैं कि हमेशा आप उस चीज पर focus करो जो त्रैकालिक रहे, हमारे साथ हमेशा रहे। एक बार अपने अन्दर ऐसी धारणा बनाओ, ऐसा ज्ञान अपने अन्दर पक्का कर लो, ऐसी सुख की भावना अपने अन्दर पक्की कर लो कि देखो!

बाहर का तो कोई भी सुख होगा, वह तो मौसम के अनुसार बदलता रहता है। भाई! गर्मी आई तो cooler अच्छा लगता है, ठण्डी आ गई तो heater अच्छा लगता है। अब ये सब तो व्यवस्थाएँ बदलती रहेंगी लेकिन भीतर से हमें क्या अच्छा लगना चाहिए? क्या केवल heater और cooler से ही सुख मिलता है कि भीतर भी कोई सुख होता है? यह हमें जिनमत में जब जिन भगवान की मूर्ति देखते हैं तो सिर्फ उस मूर्ति को देखने से ही हमें यह सन्देश मिल जाता है कि आपको सुख की परिकल्पना, सुख की धारणा बाहर नहीं करनी। कहाँ करनी? भीतर करनी, बाहर की चीजें तो बदलती रहेंगी। ऋतुएँ बदलती हैं, सामान बदलेंगे, हवाएँ बदलेंगी, वातावरण बदलेंगे, सब बदलेगा लेकिन आपको भीतर से यह ध्यान रखना है कि सुख कहाँ है? सुख अपनी आत्मा का होता है। भाई! पंखा का सुख, cooler का सुख, AC का सुख, CA बनने का सुख, BA करने का सुख, MBA करने का सुख, MBBS करने का सुख; ये सब क्या हैं? ये सब बाहर की परिकल्पनाओं से उत्पन्न, विचारों से उत्पन्न हमारे अन्दर के भाव हैं; ये अपने आत्मिक सुख नहीं हैं। आचार्य कहते हैं कि आत्मिक सुख की एक बार अपने अन्दर धारणा बना लो। जिनमत में अगर तुमने जन्म लिया है या जिन गुरुओं के तुमने उपदेश भी सुन लिए हैं, जिनमत में एक बार भी तुमने यह दिगम्बर रूप देख कर के अपने मन में कोई भी सुख का भाव लिया है तो एक बार यह विचार स्थाई कर लेना, दुनिया में रहकर के भी यह विचार छोड़ना नहीं। कौन सा विचार? सुख तो शाश्वत आत्मा में ही होता है, बाकी तो सब तात्कालिक है। कैसा है? तात्कालिक, काम चलाऊ है। अगर हमें किसी भी चीज से कोई सहूलियत मिल रही है, तो उसे हम तात्कालिक सुख समझे लेकिन वास्तविक सुख तो वह होता है जो हमेशा बना रहे, एक जैसा रहे।

असली सुख और ज्ञान: आत्मा में निवास

‘तत्सुखं यत्र नासुखं’ क्या कहते हैं आचार्य? सुख वह है जहाँ पर असुख न हो यानि दुःख न हो... **‘तत्सुखं यत्र नासुखं’** **‘तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं’** ज्ञान वह है, जहाँ पर अज्ञान न हो। सुख वह है, जहाँ पर दुःख न हो। जब भी हम बाहरी चीजों से जुड़ते हैं तो वही बाहरी चीजें समय बदलने पर हमारे लिए दुःख देने लग जाती हैं। अभी तक cooler अच्छे लग रहे थे, अब वह cooler में अगर सो गए तो सुबह पता पड़ेगा, गला भर गया, cough हो गया और पूरे शरीर में दर्द हो गया, बुखार हो गया, जुकाम हो गया। अब वही cooler हमारे लिए दुःख का कारण हो गया। doctor के पास गए तो doctor ने कहा- तुम्हें पता नहीं था कि मौसम बदल चुका है, अब cooler में नहीं सोना है। क्या करें? ऐसे वातावरण में सोना है, जहाँ पर ज्यादा ठण्डी हवा न लगे। अब वही ठण्डी हवा आपके लिए विरक्ति का कारण बन गई, दुःख का कारण बन गई। अब वह हवा तो तात्कालिक है। गर्मी है, तो हवा की जरूरत है और गर्मी नहीं है, तो ठण्डी हवा की कोई जरूरत है नहीं। यह समझकर के कि यह सब तो बाहर से काम चलाऊ चीजें हैं, भीतर की जो चीजें हैं वे अलग होती हैं। सुख तो वह होता है जहाँ पर कोई दुःख हो ही नहीं; ऐसा सुख हमें अपनी आत्मा में मिलता है। ज्ञान वह होता है जहाँ पर अज्ञान फिर कुछ बचे ही नहीं। ऐसा ज्ञान हमें कहाँ मिलेगा? वह भी हमें किताबों में नहीं मिलेगा। वह कहाँ मिलेगा? वह भी हमें अपनी आत्मा में मिलेगा। जिनमत में अगर आपने जन्म लिया है, जिनमत को अगर आपने समझा है, जिनेन्द्र भगवान का थोड़ा सा भी अगर आपने दर्शन किया है, तो बस यह बात आपके दिमाग में स्थाई हो जानी चाहिए; ज्ञान तो भीतर है, सुख तो भीतर है। भीतर भी कहाँ? मन में नहीं, आत्मा में। मन भी चला जाएगा शरीर के साथ। शरीर मिटेगा, मन भी मिट

जाएगा। मन के विचार भी शरीर के छूटने से छूट जायेंगे लेकिन आत्मा नहीं छूटती। आत्मा का जो ज्ञान है, आत्मा का जो सुख है, वह सुख उसका बना रहता है और उस सुख की प्राप्ति करने के लिए अगर हम तत्पर होते हैं तो वह हमारा एक शाश्वत जो सत्य के साथ में चलने वाला हमारा भाव है, विचार है; वह आगे-आगे भी हमारे साथ बना रहता है। इसलिए आचार्य कहते हैं- बोध को प्राप्त हो, बार-बार जागृति लाओ, बार-बार लाओ। आप सोचते होंगे, एक ही बात को दो-दो बार, चार-चार बार क्यों कहे जा रहे हैं? जैसे कोई बच्चा सो रहा हो और बहुत गहरी नींद में सो रहा हो तो उसको एक बार कहने से वह उठता नहीं है और खासतौर से वह बच्चा जिसका अभी-अभी जन्म हुआ हो। नहीं समझ आया? जो जन्म लिया बच्चा होता है, वह बहुत ज्यादा सोता है। धीरे-धीरे, जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ती है, तैसे-तैसे उसका सोना कम होता है। अब आप तो आज 12 घण्टे जग पा रहे हो, उससे ज्यादा भी जग लेते हो, 24 घण्टे में 16 घण्टे भी जग सकते हो, सात-आठ घण्टे आपने सो लिया लेकिन जो नया बच्चा है, जो अभी जन्म लिया है, वह क्या करता है? वह 24 घण्टे में कितने घण्टे सोता है, बताओ? 20-22 घण्टे सोता है, दो घण्टे मुश्किल से जागता है वह। ऐसे ही अगर आपको यह जिनमत में आपकी आँखें खुली हैं तो यह समझ लो कि यह आपका नया जन्म हुआ है, आप नए-नए बच्चे हो अभी। पहली बार आपने यह जैन धर्म सीखा है, पहली बार आपने जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किए हैं, पहली बार आपने जिन गुरुओं से ये जिनशास्त्र पढ़े हैं। अभी हम सो ही रहे हैं। सोते-सोते हमें कोई जगा रहा है लेकिन नींद तो हमारी पुरानी है, वह पुरानी कहाँ से आई?

आत्मिक जागृति: बाहरी मोह से मुक्ति की ओर

जैसे गर्भ में भी वह पड़ा-पड़ा सोता ही रहा, ऐसे ही वह जन्म भी ले लिया तो अभी भी पड़ा-पड़ा सो ही रहा है। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे उसके लिए जागृति आती है। अब माँ के लिए बच्चा दिखता है तो उसका मन नहीं मानता है। आँखें तो खोले तो बार-बार माँ उसको जगाती है। अब नए बच्चे को जितना आप जगाओगे, जितनी बार उसकी आँखें खुलवाओगे; उतनी उसकी नींद और ज्यादा खराब करोगे। और माँ को ऐसा लगता है कि ये ज्यादा देर नहीं सोए, यह मुझे देखे, यह इधर-उधर देखे, यह नई दुनिया में आया है तो इसे जानकारी मिले और कहीं ऐसा तो नहीं है कि आँखें खोलता ही न हो तो वह डर के कारण से बार-बार चुटकी बजाती रहती है और बार-बार जो है, कहीं उसके माथे पर हाथ लगाएगी, कहीं गाल पर हाथ लगाएगी, बार-बार उसे जगाने की कोशिश करती है। यह उसके जो जगाने की कोशिश है, यह कोशिश एक बार नहीं होती है बार-बार चलती रहती है और उसे यह भी लगता है, चलो सो भी जाए, सो भी जाए और सोते-सोते उसे लगता है, यह दो घण्टे से सो रहा है, कुछ गड़बड़ तो नहीं हो गया...बेटा! बेटा! तो हिला कर देखती है। कहीं वह सो न जाए, वह जागने की कोशिश धीरे-धीरे उतनी ही करेगा जितनी उसके कान में आवाज पहुँच जाती है। वह भी सोचता रहता है- अब मैं बहुत देर से सो रहा हूँ, अब कोई आवाज आ रही है; आँख खोलो, आँख खोलो। अब वह नहीं भी समझता होता है, तो भी वह धीरे से देख लेता है। थोड़ी देर वह आँख खोले रहता है, थोड़ी देर जागृत अवस्था में रहता है। जितनी देर जागृत रहता है, उतना माँ को बहुत अच्छा लगता है, घर के लोगों को बहुत अच्छा लगता है कि देखो! अभी जाग रहा है, जाग रहा है, जाग रहा है तो उसके साथ खेलते रहते हैं, खेलते रहते हैं और वह बहुत जल्दी थक जाता है क्योंकि वह नया-नया है, अभी उसमें ताकत आयी नहीं है। वह बहुत जल्दी सोने की स्थिति में होता है। ठीक यही स्थिति आप बच्चों की होती है। अभी सब ऊँघती नींद में हो। हाँ! जाग रहे हो? हाँ, हाँ; सुन रहे हो? हाँ, हाँ और तुरन्त मोहित हो जाते हो।

मोहित होने का मतलब? तुरन्त भूल जाते हो कि हमें कहाँ जागना चाहिए। जागने का मतलब है कि हम यह समझते रहें कि बाहर जो कुछ भी है, यह सब काम चलाऊ है। बाहर जो कुछ भी है, यह सब तात्कालिक है। बाहर जो कुछ भी है, ये सब सुख-दुःख, अच्छे-बुरे विचार, अनुकूलता-प्रतिकूलता; ये सब चलती रहेगी। इससे हमें उलझना नहीं, इसमें उलझना नहीं है। हमारे भीतर जो है, हमें उसमें रमना है। अगर यह तात्कालिक अनुकूलता-प्रतिकूलता हमारे लिए हो भी गई तो भी यह हमारी नहीं है। यह विचार आपके अन्दर बना रहे और यह चलता रहे कि यह सब चलता रहता है, होता रहता है लेकिन हमें इसमें मोहित नहीं होना है। हर आदमी बाहर के क्रिया-कलापों में मोहित है। हर आदमी अपनी आँख खोलकर के जो दुनिया देख रहा है, उसमें मोहित होता है तो वह मोहित उसमें न हो। किसमें मोहित हो जाता है? वह बाहर की चीजों में मोहित मतलब भ्रमित हो जाता है। वह बाहर की चीजों में तो पड़ गया और भीतर की जो चीज थी उसे भूल गया तो उसके अन्दर पुनः वह जागृति आए इसलिए बार-बार कहना पड़ता है...जागो! बोध को प्राप्त हो! यह मत सोचो कि बाहर हमारा जीवन अभी सुख से बीत रहा है, तो यह सुख है। यह सुख तुम्हारे साथ हमेशा रहने वाला नहीं है इसलिए अभी तुम्हें जो सामग्री मिली है, यह बड़ी दुर्लभ है।

आत्मिक सामग्री की दुर्लभता

क्या कहते हैं? **‘जम्हा पुणरवि एसा सामग्री दुर्लभा जीव!’** यह सामग्री बहुत दुर्लभ है। कौन सी सामग्री? पूजन करने की सामग्री? कौन सी सामग्री दुर्लभ है? यह हमको जो मनुष्य का जन्म मिला है, यह भी एक सामग्री है। ऐसे स्थान पर हमारा जन्म हुआ कि जहाँ पर हम आपस में एक दूसरे के भावों को समझ सकते हैं, अपनी बुद्धि एक दूसरे की समझदारी के साथ में काम करती है; यह बुद्धि भी एक सामग्री कहलाती है। हमारे शरीर में अभी उठने-बैठने की क्षमताएँ हैं, इन्द्रियाँ सही काम कर रही हैं; यह भी एक समझदारी कहलाती है, यह भी दुर्लभ सामग्री है। इस दुर्लभ सामग्री के साथ में हम चलते-चलते आज यहाँ सरस्वती भवन तक आ गए, यहाँ आकर के हम बैठ गए; यह भी एक दुर्लभ सामग्री है। नहीं है? ये सब दुर्लभ सामग्रियाँ हैं और इन दुर्लभ सामग्रियों को प्राप्त करके भी मोहित मत हो जाना, फिर भ्रमित मत हो जाना और होता यही है। महाराज! जब तक आपके सामने बैठते हैं तब तक तो लगता है दुनिया असार है, वैराग्य सा आने लग जाता है और जब तक आता है तब तक आप **ओं अर्ह नमः** करने लग जाते हो। फिर मैं उठ के चला जाता हूँ और फिर हमारी दुनिया वही हो जाती है। यह जो फिर आपकी दुनिया वही हो गई, उसी दुनिया में आप फिर न खो जाओ, इसीलिए पुनः फिर आपसे कहा जाता है...आज फिर एक नई सुबह हो गई, फिर जाग जाओ और फिर जागने के लिए कहा जाता है; मोहित मत हो! जागते रहो! जागते रहो! जागते रहो! अपनी आत्मा में ही सुख है, इस बात की जागृति बना कर रखो। अपनी आत्मा में ही पूर्ण ज्ञान है, इस बात की जागृति बना कर के रखो। बाकी सब तो दुनिया आना-जाना है और दुनिया के कोई भी क्रिया-कलाप कभी भी स्थाई रहने वाले नहीं हैं। मैं आत्मा, हमेशा इस दुनिया में जन्म लेता रहा हूँ तो मैं स्थाई हूँ शरीर स्थाई नहीं है। राम स्वरूप जी वैसे तो सुनते ही रहते थे लेकिन प्रत्यक्ष सुनने के लिए यहाँ तक आए हैं। अब देखो! कितने अच्छे नाम होते हैं- राम स्वरूप। मतलब हमारा स्वरूप क्या है? राम ही मेरा स्वरूप है। जैसे राम का स्वरूप है, वही हमारा स्वरूप है। अब राम को भी क्या कहा जाता है? राम भी एक अपने आप में पूर्ण नाम नहीं है। राम भी पूर्णता को तब प्राप्त होते हैं, जब उसमें एक आत्मा और लग जाता है, तो क्या बोलते हैं? आत्माराम। क्योंकि राम को भी वह याद करना पड़ता है। किसको? आत्मा को।

आत्मा का सुख और उसकी महत्ता

मानो कि आज आपको बुढ़ापा है, आज आपके लिए इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं तो यह सब बाहर के दुःख समझना लेकिन भीतर आत्माराम तो सुख स्वरूप है। आत्माराम का स्वरूप सुखमय है, आत्माराम का स्वरूप ज्ञानमय है, ऐसे भीतर से अपने अन्दर बार-बार जो अपनी यह बुद्धि को चलाओगे, इसका नाम है- जागृति और यह जागृति बार-बार छूटती है, बार-बार नोंद आ जाती है। हम फिर बाहर की ही पहचान में डूब जाते हैं और यही बाहर की पहचान फिर हमें भ्रमित कर देती है। इस भ्रम से बचने के लिए आचार्य कहते हैं- तुम्हें ये सब दुर्लभ सामग्रियाँ मिली हैं। बताओ! यहाँ तक आना सुलभ था कि दुर्लभ था? दुर्लभ था तो दुर्लभ प्राप्त हुई चीज को भी आगे बनाए रखना, यह सबसे बड़ी समझदारी होती है।



गाथा: 93

प्रमाद जीव का शत्रु है और यही दुःख का मूल भी है

दुलहो पुण जिणधम्मो, तुमं पमायायरो सुहेसी य।
दुसहं च णरय-दुक्खं, कह होहिसि तं ण याणामो ॥93॥

अन्वयार्थ- 'हे जीव' (जिणधम्मो) जिनधर्म (पुण) पुनः 'प्राप्त होना अत्यंत' (दुलहो) दुर्लभ है (य) और (तुमं) तुम (पमाय-आयरो) प्रमाद में, आदर करने वाले (च) तथा 'ऐहिक' (सुहेसी) सुख के, अभिलाषी हो (णरय-दुक्खं) नरक का, दुःख (दुसहं) दुःसह्य है 'यह नहीं जानते हो' (तं) तुम, 'भविष्य में (कह) कैसे (होहिसि) होवोगे 'यह हम' (ण) नहीं (याणामो) जानते हैं? ॥93॥

यह चीज हमारे अन्दर बनी रहे, बनी रहे इसलिए आचार्य कहते हैं...यह सामग्री, हे जीव! दुर्लभ है और 'दुलहो पुण जिणधम्मो' यह पुनः पुनः जिनधर्म प्राप्त करना दुर्लभ है क्योंकि जिनधर्म में ही इस तरह से आत्मा का स्वरूप बताया जाता है। इस तरह से आत्मा की, सुख की, ज्ञान की, यह जो concept है; ये जिनधर्म में ही बताए जाते हैं। बाकी तो सब लोग बाहर की इन्द्रियों और मन में ही सन्तुष्ट होते रहते हैं। आत्मा के लिए सुख मिले, आत्मा को शान्ति मिले, आत्मा के लिए शाश्वत रूप से सुख मिले, इस तरह का concept केवल जिनधर्म में मिलता है; इसलिए कहना पड़ता है कि यह जिनधर्म दुर्लभ है। सुलभ चीजें तो आसानी से मिल जायेंगी, दुर्लभ चीजें कठिनाता से मिलती हैं। अगर वह मिल गई हैं तो अब उसमें 'तुमं पमायायरो सुहेसी य' यानी अब तुम उस प्रमाद में आदर मत करो। दुर्लभता की चीज को प्राप्त करके अब प्रमाद में फिर आदर मत करो, फिर अब से 'सुखेसी' मत बन जाओ। एक शब्द आया, क्या? सुखेसी। सुखेसी मतलब सुख की इच्छा करने वाला। कौन से सुख की? बाहर के सुख की, इन्द्रिय सुख की, शारीरिक सुख की। केवल शारीरिक सुख की इच्छा करोगे तो यह प्रमाद में आदर कहलाएगा क्योंकि तुम्हारा मन शारीरिक सुख में लगेगा, बस! हमें शरीर का सुख मिले। शरीर के सुख की इच्छा करने से तो कष्ट होगा आगे चल करके, इसलिए शरीर के सुख की इच्छा नहीं करना। किसकी इच्छा करना? आत्मा के सुख की इच्छा करना।

आत्मा और शरीर के सुख में अन्तर

शरीर के सुख की इच्छा की तो प्रमाद हुआ और आत्मा के सुख की इच्छा की तो जागृति हुई। शरीर के सुख की इच्छा की तो मोहित हो गए। आत्मा के सुख की इच्छा की तो बोधित हो गए। शरीर के सुख की इच्छा की तो मोह हो गया और आत्मा के सुख की इच्छा की तो बोध हो गया। बस! इतना सा अन्तर है। बार-बार इस बात को कहा जा रहा है, जागृति बनाए रखने के लिए कहा जा रहा है और आचार्य अन्त में क्या कहते

हैं? **‘दुसहं च णरय-दुखं’** यह नरक के जो दुःख हैं, यह आत्मा के लिए बड़े दुस्सह होते हैं, सहन करने योग्य नहीं होते हैं लेकिन फिर भी आत्मा बड़ी कठिनता से इनको सहन करती है और **‘कह होहिसि’** और यह कैसे होंगे? **‘तं ण याणामो’** यह हम नहीं जानते कि फिर यह नरक के दुःख कैसे होंगे? हम नहीं कह सकेंगे लेकिन होते तो यह बहुत भयंकर हैं, दुस्सह होते हैं। इनकी पीड़ा फिर सहन नहीं होगी क्योंकि अगर तुम यहाँ पर अपने शरीर के सुख में मस्त हो गए, अपनी बाहर इन्द्रियों के सुख में मस्त हो गए तो फिर आगे चलकर के नरक के दुःख भोगने पड़ सकते हैं। इसलिए इन सुखों में सुख मत मानो, आत्मिक सुख को सुख मानो; यह जिनमत की सबसे बड़ी सीख है।

आत्मा के सुख के लिए शरीर के कष्ट का महत्व

अब यह सीख, बताओ! अच्छी है कि बुरी है? अच्छी है। अब अगर अच्छी है, तो इस सीख की प्राप्ति के लिए अगर कुछ किया जाएगा तो फिर थोड़ा बहुत कष्ट भी हो जाए तो चलेगा न? नहीं समझे? जैसे कल कह रहा था- अगर आपके लिए यह जिनमत में चलना है, यह सीख प्राप्त करके आप आगे बढ़ रहे हो तो क्या करना? मानो कि जैसे कल बात चल रही थी कि भाई! जैन साधु पैदल चलते हैं, चप्पल नहीं पहनते हैं। अब कोई कहे- भाई! यह कष्ट क्यों उठा रहे हो? अब कष्ट तो हो गया। मान लो ज्यादा हो गया, नहीं सहन किया गया, कोई उसने थोड़ी सी दवा कर ली तो अपराध कर लिया क्या? यह बात समझने की है कि अगर वह कष्ट उठा रहा है, तो वह कष्ट भी तात्कालिक है। कोई भी आपने उसके लिए दवा लगा ली या कुछ उपचार कर लिया तो वह भी तात्कालिक है। अब लेकिन उसका संकल्प क्या है? हम कष्ट तो शरीर के सहन कर लेंगे और इस शरीर के कष्ट के सहन के साथ में हमें आदत डालनी है कि हमें आत्मा के सुख की भावना करनी है, तो जिसको यह पता नहीं है कि यह शरीर का कष्ट क्यों सहन कर रहा है? शरीर के कष्ट को सहन करके भी यह आत्मा की भावना कर रहा है, तो समझो उसकी आत्मा की भावना कितनी प्रबल होगी। यह बात जब सामने वाले को पता नहीं होती है, तो वह मजाक बनाता है कि शरीर का कष्ट तो आप सहन कर रहे हो और यह शरीर के कष्ट को सहन करके आप क्यों अपने आप को दुःखी बना रहे हो? वह दुःखी नहीं बना रहा है, वह जान रहा है कि शरीर को तो कष्ट होना ही है, होता रहता है; हम नहीं कष्ट देंगे तो यह हमें कष्ट देगा। अगर आप कष्ट नहीं दोगे शरीर को तो शरीर आपको कष्ट देगा। करके देख लो आप नहीं तो। आप बिल्कुल सुख में पल जाओ, बिल्कुल AC में पड़े रहो, खा लो, पी लो अच्छा। सब हलुवा खा लो, रसगुल्ला खा लो, सब खा लो और आराम से लेट जाओ। सुख में पड़े रहो, शरीर को बिल्कुल भी हिलाना डुलाना मत, चलाना फिराना मत बिल्कुल भी। बिल्कुल AC में डाले रखो, देखे कितने दिन जीते हो तुम। आखिर शरीर को तुम कितना लालन-पोषण करोगे, कितना उसको खिलाओगे, पिलाओगे और ज्यादा करोगे तो नुकसान होगा। शरीर के लिए अगर कष्ट थोड़ा सा दे भी दोगे तो कभी-कभी तुम्हें कष्ट लगता है लेकिन उस कष्ट से शरीर के प्रति विरक्ति आती है, आत्मा की भावना प्रबल होती है और इस कारण से वह कष्ट को सहन करने की हिम्मत बनाता है और हिम्मत बनाने के लिए इस तरह का वह संकल्प ले लेता है, व्रत ले लेता है कि मैं ऐसा ही जीवन में तपस्या करूँगा और वह इस संकल्प के साथ में तपस्या करता रहता है। अब यह बताओ कि अगर उसकी तपस्या में कभी कोई इस तरह के कष्ट की अधिकता हो गई और उस कष्ट की अधिकता में वह कुछ अपना protection कर लेता है, तो इसमें यूँ तो नहीं कहना बनता कि भाई! जब

तुम्हें protection करना ही था तो फिर अब तुम नंगे हुए ही क्यों थे? या तुमने शरीर पर कपड़े छोड़े ही क्यों थे? जब तुम्हें ठण्ड लग रही थी; कमरे के अन्दर ही बैठना था तो फिर कपड़े ही क्यों छोड़े थे? अब ये बातें सीधी कहलायेंगी कि उल्टी कहलायेंगी? कोई अगर यूँ कहे कि अगर आपको ठण्ड लग रही है इसलिए आप कमरे में बैठे हो या गर्मी लग रही है। इसलिए आप हवा में बैठे हो तो फिर आप हवा में बैठ ही रहे हो तो cooler में ही बैठ लो या आप ठण्ड से बच ही रहे हो तो रजाई ही ले लो। ये बातें फिर कुतर्क की ओर चली गईं। वह एक स्थिति तक हर चीज को सहन करने की आदत डाल रहा है, हर चीज को एक स्थिति तक सहन कर रहा है और एक स्थिति में बने रहने के लिए वह संकल्पित है कि मैं कभी भी पैरों में जूते-चप्पल नहीं पहनूँगा, शरीर पर कपड़ा नहीं डालूँगा लेकिन मैं फिर भी गर्मी-सर्दी सब सहन करूँगा। बाहर-भीतर प्रकृति के अनुसार होना अलग बात है लेकिन किसी भी परिग्रह को स्वीकार कर लेना, यह उसकी मति में और उसकी नियति में नहीं है; इसलिए उसका संकल्प अपने आप में उसे आत्मा का संकल्प बनाकर के मोक्ष की ओर ले जाने वाला संकल्प होता है।

अन्तर्मन की शक्तियों को साकार करने के लिए शारीरिक सुखों से उबरना

अब यह बात, यह भीतरी जानकारी जिस दार्शनिक को पता नहीं है, तो वह दार्शनिक कुछ भी आपके सामने कुतर्क कर सकता है। कोई आपसे कहे...बेटे! आपके पास भी उत्तर नहीं होगा। भाई! जब कपड़े उतार दिए हैं, नग्न हैं तो अब गर्मी-सर्दी सब सहन करनी ही है तो फिर अब बचते क्यों हो? कमरे में क्यों बैठना? कमरे में भी कोई और अन्दर का कमरा क्यों ढूँढ़ते हो फिर? यह क्या है? यह क्या है? यह उसकी मानसिकता है कि मैं अपने अन्दर की सहनशक्ति को बना रहा हूँ, बना रहा हूँ, बढ़ा रहा हूँ लेकिन मैं बाहरी चीजों के आवरण को स्वीकार नहीं करूँगा। आवरण तो मेरा केवल यह प्रकृति कृत आवरण होगा और उस प्रकृति कृत आवरण में मैं जी रहा हूँ और उसी में जो वह उसकी मर्यादा में, उसके व्रतों के अन्तर्गत होगा, उसको वह मानेगा, उसको वह स्वीकार करेगा। अब उसके कष्ट को देखकर के आप उसकी मजाक बनाने लग जाओ तो यह जो काम है, यह काम ही अनेक दार्शनिकों का बन गया है, अनेक लोगों का बन गया है। इसलिए लोग जिनमत को प्राप्त होकर के भी, जिनधर्म को समझकर के भी, कभी-कभी ऐसी बातों में जब आ जाते हैं तो भ्रमित हो जाते हैं। यह भी मोहित होने का एक तरीका है, यहाँ बताया जा रहा है। मतलब आपने अच्छा संकल्प लिया और फिर आप किसी की बात में आकर के संकल्प से भ्रमित हो गए या आपने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया और फिर आप किसी दूसरे की बात सुनकर के भ्रमित हो गए। मानो अभी तो आप यहाँ पर सिर हिला रहे हो और कोई आपके सामने कोई कुतर्क कर बैठे। कोई अच्छे ढंग से, कोई अपनी मखमली बातों से और आपको जो है, अच्छे ढंग से जो है, आपका mind wash कर दे तो फिर क्या होगा? हाँ भाई! ऐसा कोई सुख आत्मा में होता नहीं है, ऐसा कोई ज्ञान आत्मा में होता नहीं है, ये सब तो दुःख प्राप्त करने की चेष्टाएँ हैं। इसलिए जो है यह सब छोड़ देना चाहिए और हमें सुख से रहना चाहिए। निरोगी काया बनाकर के रहना चाहिए, जितना पालन-पोषण हम कर सकते हैं हमें करना चाहिए और ये सब जो हैं हमें ठण्ड के, गर्मी के ये दुःख हैं, पैदल चलने के दुःख हैं, एक time खाने के दुःख हैं, उपवास करने के दुःख हैं; ये सब हमें कभी नहीं करना चाहिए। ये सब बातें तो गलत हैं। क्या करना है अब? अगर हम इन सब ज्ञान को नहीं समझ पाए और फिर भ्रमित हो गए।

आचार्य कहते हैं- अभी तुम अपने शारीरिक सुख के लिए ये सब बातें कह रहे हो, दैहिक सुख की इच्छा के कारण से ये सब बातें कह रहे हो लेकिन ये सब दैहिक सुख भी आगे दुःख के कारण बनेंगे और फिर वहाँ तुम्हें कैसा दुस्सह दुःख भोगना पड़ेगा? यह हम भी नहीं जानते; यह तुम्हारी आत्मा ही भोगेगी तब पता पड़ेगा। अभी तत्काल में अगर अपने लिए, किसी भी तरह से अपनी आत्मा के व्रतों का पालन करने के लिए अगर कोई थोड़ा सा दुःख भी सहन करना पड़ जाता है, तो वह दुःख भी उस आत्मा के अन्दर लगे हुए कर्म की सफाई करने के लिए ही होता है। वह भी कर्म निर्जरा के लिए ही होता है। वह भी अपने संस्कारों को परिवर्तित करने के लिए ही होता है। आप अपने शरीर से जो अपना मन जुड़ा हुआ है, इसको अपनी आत्मा से जोड़ने का संस्कार कैसे बदल पाओगे? बताओ? जब तक कि आप थोड़ा बहुत शरीर को, किसी भी तरह से आप उसको तप के रूप में, त्याग के साथ में आगे नहीं बढ़ाओगे तो आप अपनी आत्मा में कैसे उस संस्कार को बदल पाओगे? क्योंकि आत्मा का संस्कार मन के माध्यम से क्या आता है? भाई! सुख तो देह में है, देह में है, देह में है। अब हमें क्या बनाना है? सुख तो आत्मा में है, आत्मा में है, आत्मा में है। अब इसके लिए हमें अगर कुछ थोड़ा छोड़ना पड़े, कुछ हमारे लिए त्याग हो जाए, कुछ तप भी हो जाए तो वह तप भी हमारे लिए उपयोगी है। यह बात जिनको पता नहीं होती है या जो तप और त्याग की भावनाओं में विश्वास नहीं करते हैं; वह केवल दैहिक सुख, भौतिक सुख में ही लगे रहते हैं और भौतिक सुख में जो लगा हुआ है, उसके लिए यहाँ चेतावनी है कि यह सुख आपके लिए आगे दुःख का कारण बनने वाला है, बड़ा दुःख मिलने वाला है, मैं नहीं जानता हूँ। जाग रहे हो कि नहीं? हाँ! नींद बार-बार खुलती है कि सो जाते हो? यह जागृति है, ऐसा बोध बनाकर के रखो। अब यह बोध अगर आता है, तो फिर कुछ बात बनती है। अब मान लो सप्त व्यसन हैं, सप्त व्यसन समझते हो न? जुआ खेलना, चोरी करना और मांस खाना, मदिरा पीना, परस्त्री सेवन, वेश्यागमन और शिकार खेलना; ये सात व्यसन माने जाते हैं। अब यह सात व्यसन छोड़ देना। अब अगर आचार्यों ने कहा...इन व्यसनो में नहीं पड़ना, यह सात व्यसन छोड़ देना तो अब! क्यों छोड़ना भाई? कभी कुछ खाने को न मिले तो वह भी खा लेंगे, कभी कुछ पीने को न मिले तो वह भी पी लेंगे, कभी कुछ enjoy करने को न मिले तो वह भी कर लेंगे, कभी कुछ खेलने को न मिले तो वह भी खेल लेंगे। यह अगर आपके अन्दर संकल्प नहीं हैं और आप कभी भी कुछ भी कर लेंगे तो यह दुःख आपके लिए आगे चलकर के आपके अन्दर यह लगेगा तत्काल में कि यह सुख है लेकिन यही आपके लिए आगे चलकर के दुःख का कारण बन जाएगा। जिनमत में क्या सिखाते हैं? इन बुरी आदतों से बचना। ये पाप के खेल हैं, ये पाप की आदत हैं, इनमें नहीं पड़ना। अब इन चीजों का हमारे लिए संकल्पपूर्वक त्याग होना कि भाई! किसी भी परिस्थिति में इन सात बुराइयों से हम बिल्कुल भी अपने आप को नहीं जोड़ेंगे। मरना स्वीकार है लेकिन इन सप्त व्यसनो में पड़ना स्वीकार नहीं है। यह सब राम स्वरूप के परिवार के ही लोग बैठे हैं आगे, ये सात बुराइयों से बचने का संकल्प लेना है। वैसे तो करते ही नहीं होंगे, आप सभी लोग बहुत अच्छे हैं।

संकल्प से आत्मा की रक्षा जन्म-जन्मान्तर में भी होती है

इतने बड़े राष्ट्रपति महोदय के भाई हैं तो ये सब अच्छे ही लोग हैं लेकिन संकल्प होने का मतलब? यह संकल्प होता है जो हमारी आत्मा की रक्षा करता है और आत्मा के अन्दर ऐसा संस्कार डाल देता है कि जन्म-जन्मान्तर में भी हम फिर इन चीजों को नहीं करते हैं, ये संकल्प होते हैं। इसलिए सभी से कहना है कि यह संकल्प जरूर लेना, हम इन सात बुरी आदतों में कभी नहीं पड़ेंगे। seven bad habits इसी का

नाम है। पहले ये seven bad habits छोड़ना। सप्त व्यसन इसी को कहा गया है। यह होता भी नहीं होगा लेकिन यह संकल्प के साथ करना कि हम अपनी आत्मा में इस संकल्प को बनाए रखेंगे, ऐसा कभी नहीं करेंगे। उससे क्या होता है? अगर कभी-कभार हमारी बुद्धि भ्रमित भी हो गई तो कहीं न कहीं इस संकल्प से हमारी रक्षा भी हो जाती है, अगर कभी बुद्धि भ्रमित हो गई, जन्म-जन्मान्तर में भी भ्रमित हो गई मानो।

मैं आपको वह बता रहा था, क्या? तूंकारी की बात सुना रहा था न? भूल गए आप लोग। अच्छा! हम तो नहीं भूले महाराज! आप ही भूल जाते हो। अब वह तूंकारी जब बता रही थी कि मेरे घर में मेरे साथ क्या हुआ और मुझे इतना क्षमा का भाव क्यों आ गया? वह अपनी पिछली घटना सुना रही थी तो बताने लगी...मेरे कितने भाई थे? देखो! भूल गए तुम लोग, कितने भाई थे उसके? आठ भाई थे और उसका जो original name था...वह था भद्रा। क्या नाम था? भद्रा मतलब बहुत भद्र पुरुष यानी अच्छा, सीधी-सादी, भद्रा नाम था उसका। लेकिन उसका यह नाम उसकी उस bad habit के कारण से पड़ गया कि उसमें एक हठ थी, जिद थी या उस तुम शब्द से उसको बिगड़ने की जो आदत थी, उसके कारण से उसका यह नाम पड़ गया। अब नाम इतना पड़ गया, इतना बिगड़ गया कि पूरे नगर में, राज्य में विख्यात हो गया कि भाई! इस लड़की से कोई भी शादी नहीं करना, नहीं तो आफत होने की है। अब पिता को कितना बड़ा कष्ट हो गया कि लड़की है, बड़ी हो गई है, उसकी शादी नहीं हो रही है। पिता के लिए लड़की को देखकर के, बड़ा देखकर के सबसे पहला जो भाव आता है, वह यही आता है कि कैसे ही इसकी जल्दी से शादी हो जाए? पिता के लिए लड़की सामने बड़ी हुई नहीं कि उसके सिर का सबसे बड़ा दर्द यह होता है, बस! इसकी जल्दी से शादी हो जाए। उसकी शादी होने के बाद ही उसका सिर हल्का होता है। उसके सिर में बस यही दर्द था, उसके पिता के सिर में इसकी शादी नहीं हो रही।



एक व्यसनी जुआरी की दास्तान: विवाह की शर्त और परिणाम

अब क्या करें? अब एक संयोग की बात, देखो! घटना कहाँ से घटती है? एक जुआरी था। जुआरी मतलब जुआ खेलने वाला। अब वह जुआ खेलने वाला एक जुआरी था। वह जुआरी जुआ खेलते-खेलते उस व्यसन में इतना लिप्त हो गया, इतना लिप्त हो गया कि वह धीरे-धीरे अपना सब कुछ खो बैठा। अब सामने वाले के ऊपर उसका, एक तरह से उसके ऊपर कर्जा भी हो रहा है और सामने वाले को उसे देना भी है और देते-देते, देते-देते वह चीजें दांव पर लगाता गया, लगाता गया। धीरे-धीरे उसने सब कुछ दांव पर लगा दिया। अब उसके पास कुछ नहीं बचा और कुछ नहीं बचने के बावजूद भी कर्ज उसके ऊपर है। जो सामने और जुआरी बैठे हैं न, वे सब उससे मांग भी रहे हैं और वह सब हार गया। अब सब जुआरियों ने मिलकर के क्या किया? अब तो इसके पास कुछ बचा ही नहीं तो अब क्या करो इसको? अब यह क्या देगा? इसको पकड़ी, इसको मारो तो सब उसकी मारने लग गए, घूँसा देने लग गए, मारने लग गए अब उसकी। अब उसके इस कष्ट को किसी ने देखा तो यह देखकर के यह बात पहुँची उस भद्रा के पिता के पास में। भद्रा मतलब वह तूंकारी के पिता के पास में यह बात पहुँची कि देखो! वहाँ पर एक व्यक्ति पिट रहा है, जुआरी है

और उसको ये लोग बड़ी निर्दयता से मार रहे हैं, उसको बचा लो और उसको बचाने वाला कोई नहीं है। आप सेठ हो, आप ही बचा सकोगे क्योंकि वे जुआरी सब उससे पैसा माँग रहे हैं और वह सब हार चुका है। जिसका पैसा उसके दांव पर लगा हुआ है, वे सब उससे पैसा माँग रहे हैं। नहीं दे रहा है तो पिट रहा है। अब क्या करें? उसका पिता गया, उसने देखा और उसकी दुर्दशा को देखकर के उसने सोचा कि क्या करें? इसको मैं बचा तो लूँगा क्योंकि वह सेठ है। जुआरियों के कितने पैसे देने पड़ते हैं, वह सब तो कोई बड़ी चीज है ही नहीं है लेकिन इसको पैसा देने के बाद में, उसके दिमाग में क्या चल रहा है? मेरी बेटी की शादी नहीं हो रही, कोई मेरी बेटी से शादी करने को तैयार नहीं है। क्योंकि वह तूंकारी नाम से बिल्कुल उसका दिमाग खराब हो जाता है। अब उसके दिमाग में आया कि मैं इसी से इस शर्त पर बात करूँ। वह कहता है- देखो! मैं तुम्हें इस दुर्दशा से बचा लूँगा, बस! मेरी एक शर्त मान लेना। वह कहने लगा- क्या शर्त है? मैं तुम्हारी क्या शर्त पूरी कर सकता हूँ? मैं तो बिल्कुल ही सब कुछ खो चुका हूँ। मेरे पास कोई पैसा-वैसा है ही नहीं है। बोले- शर्त कुछ नहीं है; मेरी एक सुन्दर सी बेटी है, तुम उससे विवाह करने को तैयार हो जाओ तो मैं तुम्हें बचा लूँगा। वह तो बड़े आश्चर्य में पड़ गया... यह कौन सी शर्त हुई? एक तो मेरे जैसा व्यसनी, जुआरी और मुझे बचाने के लिए यह इतना राजसेठ आदमी और यह कह रहा है कि अपनी बेटी से विवाह कर देगा। यह तो कोई बात ही समझ में नहीं आई और बेटी सुन्दर है और अच्छे घराने की है, तो उससे विवाह करने को कौन मना करेगा? यह कौन सी बात हुई? यह तो उसकी समझ में ही नहीं आई तो वह कहने लगा कि आखिर दाल में काला क्या है? कुछ बताओ तो ऐसा क्यों कहना चाह रहे हो तुम? उसने फिर उससे स्पष्ट किया कि देखो! ऐसी बात है, उसके अन्दर कोई दुर्गुण नहीं है। बहुत अच्छी है, पढ़ी-लिखी है, हर कला में प्रवीण है और हँसमुख है; सब कुछ है लेकिन उसके अन्दर बस एक ही दिक्कत है। उससे कभी भी तुम, तुम मत बोलना, तू नहीं निकालना उसके सामने बस। बाकी सब कहना, आप करके बोलना, हम लोग करके बोलना; यह सब चलेगा लेकिन तू नहीं करना। बस! इतनी सी बात है, इसके कारण से मेरी बेटी से कोई विवाह नहीं करता है।

धर्म में नियम लेने से पुण्य कर्म के उदय विपत्तियों में रक्षा करते हैं

अगर तुम तैयार हो जाओ तो मैं तेरे लिए अभी यहाँ पर सब तुझे यहाँ से बचा करके चलूँगा। वह तो बड़ा आश्चर्य में पड़ गया। उसने कहा- इससे अच्छी बात क्या होगी? बस इतनी सी बात है! नहीं करूँगा, कोई दिक्कत नहीं। उसने जो है उसकी बात को स्वीकार कर लिया और उसने जब स्वीकार कर लिया तो सेठ ने वहाँ पर जो कुछ भी उसका पैसा-वैसा था, वह जुआरियों को दिया और उसको बचाया और बाद में फिर अच्छे दिन, एक दिन जो है, सेठ ने उसका विवाह उसके साथ कर दिया। उसका नाम था...सोमशर्मा। अब विवाह हो गया। बहुत दिन तक विवाह के उपरान्त भी वह अच्छे से रही पति के साथ में, पति भी अच्छे से रहा। वह ध्यान रखता था, कभी इसके लिए हमें ऐसा नहीं बोलना है और कोई दिक्कत वाली बात थी नहीं और इस तरह से विवाह होकर के सब चीजें बड़ी शान्ति से सुखपूर्ण ढंग से चलती रही। कब तक चली? कभी न कभी तो कुछ न कुछ घटित हो ही जाता है। कर्म के उदय में भी कभी न कभी, कुछ न कुछ घटित हो ही जाता है। अब देखो! उस जुआरी का भी कितना बड़ा कर्म का उदय! मैं यह कहना चाह रहा हूँ, आज तो केवल इतना ही कि उस जुआरी के कौन से कर्म का उदय आ गया कि इतनी विपत्ति में पड़कर के और

इतना कर्जा लेकर के और मार खाते हुए और व्यसनों में पड़ने के बावजूद उसे सेठ की पुत्री मिल गई विवाह करने के लिए। यह कौन से कर्म का उदय आ गया तो यह वही कर्म का उदय है जिस कर्म के कारण से आप यहाँ बैठे हो। यहाँ बैठे हो, हम आपसे कह रहे हैं, नियम ले लेना; यह नियम ही रक्षा करने वाला होता है। मतलब अगर उस जीव ने कभी नियम लिया है और फिर भी वह कभी मोहित हो गया, भ्रमित हो गया, पथ भ्रष्ट हो गया तो भी उसकी रक्षा करने के लिए उसका पुण्य ऐसे सामने आ जाता है कि वह बच भी जाता है और अच्छी कन्या से विवाह भी हो जाता है।

यह बचाने वाला कौन? कौन? बचाने वाला है भगवान, वह भगवान ही हमारा कर्म होता है। बचाने वाला है- कर्मराम। वह कौन है? वह कर्मराम है। वह बचाने वाला है और वही जिलाने वाला है, वही मारने वाला है, सब कुछ वही होता है; हमारा कर्म। हम कहते हैं- भगवान ने बचा लिया और कोई भी बाहर से कहेगा तो यही कहता है- भगवान ने बचा लिया और बाहर से यही कहने में आता है- भगवान ने बचा लिया लेकिन वास्तव में बचाता कौन है? अपना कर्म बचाता है।

संकल्प का जन्म-जन्मान्तरों तक प्रभाव

जो हमने पिछले अच्छे कर्म किए, अच्छा संकल्प लिया, यह संकल्प हमारे जन्म-जन्मान्तरों में भी साथ रहता है और कुछ साथ नहीं रहेगा आपके जन्म-जन्मान्तरों में। यह संकल्प साथ रहेगा कि हमने गुरु जी से संकल्प लिया था। यह संकल्प आपकी जन्म-जन्मान्तरों में भी कभी आपकी बुद्धि बिगड़ेगी तो आपकी रक्षा इससे हो जाएगी और सोमशर्मा की तरह अगर कभी किसी व्यसन में पड़ भी गए तो सेठ की कन्या मिल जाएगी। मतलब कन्या मिलने का मतलब? वह तो एक उपहार है। बच गए यह बहुत बड़ी बात है न? दुर्दशा से बच गए। कहाँ तो जुआरी मार रहे थे और कहाँ सेठ घराने में रहने को मिल गया भाई! और कुछ नहीं करना पड़ा। अगर कभी चीजें बुरी भी हो रही होती हैं तो उस समय पर भी अपना कर्म अगर साथ देता है, तो उसमें भी आदमी की बरकत हो जाती है। आपको लगता है कि चीजें हमारे सामने बुरी हो रही हैं, हमारे साथ बुरा हो रहा है; बुरा नहीं हो रहा है, वह आपके भीतर अगर कोई अच्छा कर्म का उदय आएगा तो उस बुराई से भी आपको बहुत बड़ा फायदा मिल जाएगा। लोग दूसरों के लिए बुरा करते हैं और बुराई में अगर कोई फंस भी जाता है, तो कई बार उस बुराई से उसके जीवन में एक नया बदलाव आ जाता है। एक नई उसके लिए राह मिल जाती है और उसका जीवन कहीं का कहीं पहुँच जाता है। बड़े-बड़े डाकू भी बड़े-बड़े उच्च पदों पर पहुँच जाते हैं, मंत्री बन जाते हैं। वे डाकू बनकर के नहीं, मतलब वे डकैती छोड़ भी देते हैं न? डाकू भी तो कई बार साधु बन जाते हैं कि नहीं बन जाते हैं? डाकुओं के लिए भी साधु बनने का उन्हें अगर निमित्त मिला तो कहाँ मिला? जब कोई बड़ा उन्होंने कोई जुर्म कर लिया, बड़े कोई डाकू बनकर के और अचानक से उनके सामने कोई साधु आ गया और उसने समझा दिया तो फिर वह उतना ही अच्छा साधु बन जाता है। बुराई भी कई बार हमें अच्छाई की ओर ले जाती है, अगर हमारे अन्दर कोई अच्छे कर्म का फल हमें मिल जाए तो और वह अच्छे कर्म का फल कैसे मिलता है? इसी तरह के संकल्प जो हमने पूर्व जन्म में कभी न कभी ले लिए होते हैं, उन्हीं संकल्पों से हमारी अगले जन्मों में रक्षा होती है। इसलिए यह याद रखना

गाथा: 94

इस नश्वर शरीर से ही शाश्वत सुखरूप धर्म की प्राप्ति होती है

अथिरेण थिरो समलेण णिम्मलो परवसेण साहीणो।
देहेण जइ विढप्पइ, धम्मो ता किं ण पज्जत्तं॥94॥

अन्वयार्थ- (जइ) यदि **(अधिरेण समलेण परवसेण देहेण)** अस्थिर, समल 'रोगादिक के कारण' पराधीन, शरीर से **(थिरो)** स्थिर **(णिम्मलो)** निर्मल 'रोगादिक से मुक्त' **(साहीणो)** स्वाधीन **(धम्मो)** धर्म **(विढप्पइ)** उपार्जित होता है **(ता)** तो 'उस परिस्थिति में' **(किं)** क्या 'यह' **(पज्जत्तं)** पर्याप्त **(ण)** नहीं है 'क्या हमें आत्मकल्याण उपार्जित नहीं कर लेना चाहिए, अवश्य कर लेना चाहिए॥94॥

वैराग्य शतक के माध्यम से पूर्व आचार्यों की भावनाओं को अपने लिए उपयोगी समझते हुए गाथा नम्बर 94 पढ़ी जाती है...

अथिरेण थिरो समलेण णिम्मलो परवसेण साहीणो।
देहेण जइ विढप्पइ, धम्मो ता किं ण पज्जत्तं॥94॥



आचार्य कहते हैं... 'देहेण जइ विढप्पइ' इस देह से अगर कुछ चीजें प्राप्त हो जाएँ तो उन्हें प्राप्त कर लेना चाहिए क्योंकि यहाँ पर देह का भी स्वभाव बताया जा रहा है और उसके विपरीत जो आत्म-तत्त्व है, उसका भी स्वभाव बताया जा रहा है या यूँ कहें कि देह से विपरीत जो कुछ भी है, उसको भी प्राप्त करने का अगर प्रयोजन बन जाता है तो आचार्य कहते हैं...वह प्राप्त कर लेना चाहिए।

देह का स्वभाव अस्थिर

देह का सबसे पहला स्वभाव है- अथिर होना, अस्थिर होना। अस्थिरता से यह देह चलती है और अस्थिर होने का मतलब होता है कि देह के साथ में होने वाली कोई भी चीजें स्थिर नहीं हैं, देह में बनने वाली कोई भी धातुएँ, उपधातुएँ सदा स्थिर नहीं रहती और देह की अवस्था में परिवर्तन होना, यह उसका सबसे बड़ा अस्थिरपन है। यह ठीक है कि देह में पाँच इन्द्रियाँ हैं, पाँच इन्द्रियाँ बनी रहती हैं लेकिन उनकी शक्ति में कमी आना, उस देह की अस्थिरता उसकी वृद्धता के साथ में दिखाई देना और उस देह की अस्थिरता में अनेक

रोग आदि की उत्पत्ति होना; यह सभी के लिए समझ में आता है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि यह देह स्थिर नहीं है, स्थाई भाव के साथ में नहीं है और देह की स्थिरता नहीं होने का मतलब ही है कि यह देह किसी भी क्षण, किसी भी तरह से आपके लिए पीड़ा उत्पन्न भी कर सकती है। आपके अपने जो स्वभाव हैं, उनको वह बदलने में कारण भी बन सकती है। देह के कारण अस्थिरता भी आती है। देह स्वयं अस्थिर है और अगर उसका अस्थिर स्वभाव और ज्यादा दिखाई देने लग जाए, प्रकट होने लग जाए तो उससे भी मानव मन में एक अस्थिरता आने लग जाती है क्योंकि मन देह से ही जुड़ा होता है।

अस्थिर होने से मन भी विचलित हो जाता है

अस्थिर होने का अगर भाव ज्यादा दिखाई दे जाए यानी शरीर में बनने वाले वात-पित्त-कफ हैं अगर ये समान तरीके से परिवर्तित होते रहें, साम्य अवस्था में बने रहें तो ठीक चलता है और कहीं कुछ बिगड़ जाए, यह रोग का रूप ले ले, प्रकुपित हो जाएँ तो यह अस्थिरता भी मन की अस्थिरता के लिए कारण बन जाती है। इसलिए आप देखते होंगे कि जिसके शरीर में रोग उत्पन्न हो जाता है; उसका मन भी विचलित हो जाता है, उसका मन भी धीरे धीरे रुग्ण होने लग जाता है। यूँ कहें कि देह की अस्थिरता से मन की अस्थिरता बन जाती है, तो यह बहुत सामान्य बात है। क्योंकि देह में अगर कहीं पर भी यह दिखाई देता है कि यह देह अब बचने वाली नहीं है, तो आप समझें कि उसके मन में कितनी अस्थिरता, कितनी चंचलता, कितना भय, कितना उसके अन्दर भीतर से दुःख बैठ जाता है; यह अस्थिरता का स्वभाव है। यह जानते हुए भी मन के अन्दर वह बात जब बैठ जाती है, तो वह मन को भी रोगी बना देती है।

देह को ही अपनी आत्मा मानना

यह इसलिए भी होता है कि जब हम देह और आत्मा को एक मान लेते हैं और देह को ही आत्मा मानते हैं तो हमें देह की अस्थिरता में दुनिया फिर अस्थिर दिखने लग जाती है। हमारे केन्द्र में सिर्फ देह होती है। देह मिटी यानी हमारी दुनिया मिटी। देह से अगर हमें सुख नहीं मतलब दुनिया में कहीं सुख नहीं। देह में अगर रोग हो गया मतलब अब हमारे मन में कुछ भी अच्छा लगने का नहीं। यह देह के केन्द्र पर जब हमारा मन टिका हुआ होता है, तो इस तरह के परिणाम उस मन में आना सहज होता है। इसलिए हमेशा दुनिया में हर प्राणी एक ही भाव में रहता है और देह को ही केन्द्र बना कर के चलता है और देह के साथ ही एकमेक होकर के वह अपने भाव जोड़कर के रखता है। अब इस दुनिया के अन्दर अगर हम देखें तो सारे के सारे जो भाव बनते हैं, वह सब देह के आश्रित हो जाते हैं और वह देह अगर अस्थिरता के भाव में आ गई तो सारा मन, कितना भी उसने कुछ न कुछ उपलब्ध किया हो लेकिन उसका मन पूरा का पूरा खराब हो जाता है। देह की अस्थिरता में सब अस्थिर हो जाता है। अस्थिर का मतलब सब कुछ अस्त व्यस्त हो जाएगा। आपका मन चीजों को अच्छे ढंग से संभालते हुए आगे चल रहा हो, व्यवसाय संभाल रहा हो, घर परिवार संभाल रहा हो लेकिन अगर आपकी देह अस्थिर हो गई तो सब balance बिगड़ने लग जाता है। देह की अस्थिरता अपने आप में होने के लिए भी जो कारण हैं तो उसके लिए भी आचार्य कहते हैं... एक अस्थिर नाम कर्म के उदय से भी देह में अस्थिरता आ जाती है।

स्थिर और अस्थिर नामकर्म

दो तरह के नामकर्म बताए गए... एक स्थिर और एक अस्थिर। अस्थिर नामकर्म के उदय से रोग हो जाते हैं, जल्दी भी हो जाते हैं। अस्थिर नामकर्म के उदय से देह में किसी भी तरह की प्रतिकूलता आने पर पीड़ाएँ उत्पन्न हो जाना और किसी भी तरह के वातावरण या मौसम के परिवर्तित हो जाने पर रोग आदि हो जाना... यह अस्थिर नामकर्म के कारण से होता है। स्थिर नामकर्म का उदय होगा तो आप सहन कर लगे। थोड़ा सा भी कुछ मौसम परिवर्तित होगा... जुखाम, खाँसी, बुखार न आए, यह स्थिर नामकर्म का उदय समझना और थोड़ा सा भी मौसम परिवर्तित हुआ और तुरन्त बुखार, जुखाम, खाँसी, दस्त, तमाम तरह की बीमारियाँ लग जाएँ; यह समझना अस्थिर नामकर्म का उदय है। यह अस्थिर नामकर्म के उदय के कारण से बहुत जल्दी शरीर में रोगों का प्रकोप होता है, अस्थिरता आती है और स्थिर नामकर्म का उदय बना भी रहे तो इतना तो ठीक है कि वह रोग से बचा रहता है। लेकिन शरीर की अस्थिरता अनेक तरह से उसके सामने कभी भी आ सकती है। accident हो जाना, किसी भी तरह का और कोई आघात पहुँच जाना, किसी भी कारण से उसके लिए वृद्धावस्था भी समय से पहले आ जाना और किसी भी कारण से उसके लिए वृद्धावस्था में आने से पहले ही मरण आदि हो जाना; यह सब स्थिर नामकर्म के उदय होते हुए भी सम्भव होता है। नामकर्म के उदय तो दोनों हैं... अस्थिर भी है और स्थिर भी है। अब अस्थिर और स्थिर, ये दोनों नामकर्म के उदय देह में दोनों भाव बनाए रखते हैं। कभी आपकी धातु-उपधातुओं में स्थिरता बनी रहती है, अस्थिर नामकर्म के उदय के कारण से रोग आदि से उनका बचाव होता रहता है। अगर कभी अस्थिर नामकर्म का उदय तीव्र हो जाता है तो रोग आदि का प्रकोप ज्यादा हो जाता है और वह स्थिरता जो थी, वह विचलित हो जाती है।

अस्थिर से स्थिर को प्राप्त कर लो

ये दोनों ही नामकर्म शरीर से जुड़े हुए हैं लेकिन यहाँ पर जो कहा जा रहा है... **‘अथिरेण थिरो’** यहाँ आचार्य कहते हैं... अस्थिर से स्थिर को प्राप्त कर लो। क्या कहते हैं? अस्थिर शरीर है, उसमें भले ही चाहे अस्थिर नामकर्म का उदय हो, चाहे स्थिर नामकर्म का उदय हो, वह कुछ समय के लिए निरोग भी रहा आए, वह रोग से रहित होकर के आपका शरीर भले ही स्थिरता के साथ में चला आए लेकिन फिर भी स्थिर को प्राप्त कर लो। अब आपके सामने दो चीजें हैं- एक अस्थिर वस्तु है और एक स्थिर वस्तु है। अब वह स्थिर क्या होता है? अस्थिर तो यहाँ देह के लिए कहा जा रहा है; ये जितना भी यहाँ विशेषण बनाए गए हैं... **‘अथरेण, समलेण, परवसेण, देहेण’** इसके साथ जुड़ते हैं, यह देह है। देह की अस्थिरता के होते हुए भी कुछ ऐसी चीजों का उपार्जन कर लो, कुछ ऐसा प्राप्त कर लो जो स्थिर हो।

धर्म सदैव स्थिर है

क्या कहते हैं? स्थिर क्या है? **‘धम्मो ता किं ण पज्जत्तं’** उस धर्म के लिए क्यों नहीं प्राप्त कर लेता है, जो धर्म तुम्हारे अन्दर हमेशा स्थिर रहेगा। स्थिर क्या है? धर्म स्थिर है। अब कौन सा धर्म स्थिर है? जो आप पूजन कर रहे हो वह स्थिर है? जो स्वाध्याय कर रहे हो वह स्थिर है? क्या स्थिर है? जो आप दान आदि कर रहे हो, वह स्थिर है? क्या स्थिर है? जो धर्म है वह स्थिर है, अगर वह पूजन से धर्म हो रहा है तो स्थिर है,

स्वाध्याय से धर्म हो रहा है तो स्थिर है, दान से धर्म हो रहा है तो स्थिर है। बस! वह धर्म के भाव के साथ होना चाहिए। पूजा का भाव भी धर्म के भाव के साथ होना चाहिए, स्वाध्याय में भी धर्म का भाव जुड़ना चाहिए, दान आदि में भी धर्म का भाव जुड़ना चाहिए, वह धर्म के साथ हो तो स्थिर है। पूजा से भी धर्म होता है। अगर वह धर्म हो गया, आपके भीतर स्थिरता आ गई तो वह धर्म आपके अन्दर स्थाई हो गया। पूजा से क्या धर्म हो जाएगा? जो आपके अन्दर पूजा करते हुए अपने पूज्य के प्रति जो श्रद्धा बैठ गई, अपने पूज्य के प्रति हमेशा यह अनुराग बैठ गया कि इसी पूजा से, इसी श्रद्धा से हमारी आत्मा का कल्याण होगा; यह आपके अन्दर बैठ गया तो यही श्रद्धा स्थिर हो गई। अगले जन्म में भी आपको अपने आप भगवान की याद आने लगेगी, अपने आप आपके अन्दर पूजा करने का भाव आने लगेगा। अपने आप आपको भगवान को देखकर, प्रतिबिम्बों को देखकर के उल्लास उत्पन्न होने लगेगा। यह संस्कार हैं, यह धर्म है और इसी धर्म को प्राप्त करने के लिए यहाँ कहा जा रहा है- अथिर से भी स्थिरता को उपार्जन कर लो।

दो से ही है दुनिया

दो चीजें आपके सामने हमेशा रहेंगी क्योंकि दुनिया इसी का नाम है। दो से दुनिया बनती है, एक से दुनिया नहीं बनती है। दुनिया है तो दो चीजें हैं और वे दो चीजें क्या हैं? एक अस्थिर चीज भी आपके सामने है और एक स्थिर चीज भी आपके सामने है। अब आपके ऊपर है कि आपका focus किस पर है? अगर दुनिया में हैं तो दो चीजें हैं और अगर हम अपनी दुनिया से अपने आप को बचाना चाहते हैं या हम अपनी दुनिया को खुद समाप्त करना चाहते हैं तो दो से एक पर आना पड़ेगा। एक में दुनिया नहीं होती है, दो से दुनिया बनती है। नाम ही है उसका दुनिया। दु से शुरू होती है- वह दुनिया। दुनियादारी की बातें जब दूसरा कोई होगा अपने साथ में तो होती हैं; नहीं तो एक आदमी अकेला मस्त रहता है। उसे दुनिया की कोई चिन्ता ही नहीं होती है। दुनिया उसके बारे में कुछ भी कहती रहे, कुछ भी बकती रहे, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर कोई दूसरा है साथ में, इसका क्या होगा? तो उसकी चिन्ता पड़ती है। दुनिया दो से बनती है और दो आपके पास में हैं कि नहीं? जब-जब दो आपको महसूस होंगे, तब-तब आपको चिन्ता होगी। जब-जब आपको एक महसूस होगा तो आपको कभी चिन्ता नहीं होगी। अब दो आपके पास में हैं तो कोई दूसरा व्यक्ति भी हो सकता है, दूसरा कोई आपका साथी भी हो सकता है, दूसरा कोई आपका रिश्तेदार भी हो सकता है या आपके अपने परिवार का भी कोई हो सकता है। दो हैं तो दुनिया है लेकिन यहाँ आचार्य कह रहे हैं- अगर तुम अकेले आदमी हो तो भी तुम दो हो, एक नहीं हो।

दो से दुनिया है, एक से मोक्ष

अकेला आदमी भी दो के साथ में है और उसके पास भी दो चीजें हैं, दोनों अलग-अलग हैं। अब अकेले के पास में दो क्या हैं? दोनों अलग-अलग चीजें हैं। अकेला भी आदमी है, तो उसके पास में दो हैं और अगर वह एक के साथ दो हो गया तब तो फिर दो और दो चार हो गए फिर तो। फिर चार को संभालना है, दो को नहीं संभालना है। बस! उसी के संभालने में बस फिर दुनिया दिखने लग जाती है और अगर आप अकेले होकर के भी अपने अन्दर यह महसूस कर पाते हो कि मैं दो हूँ तो वे दो क्या हैं? अगर आपको वे दो दिखाई दे रहे हैं, दो आपके साथ में चल रहे हैं, शरीर और आत्मा तो समझो कि अभी भी हम दुनिया में ही चल रहे

हैं। अब दुनिया से हटना है तो बस और कुछ नहीं करना, दो पर focus न करके focus एक पर करना क्योंकि दो से दुनिया है और एक से मोक्ष है बस।

जैन गणित में दो से संख्या की गणना

संख्या जब भी शुरू होती है, दो से शुरू होती है जैन गणित में; आपका गणित आप जानो। आपके गणित में संख्या एक से शुरू होती होगी लेकिन जैन गणित में संख्या दो से शुरू होती है। जानते हो क्यों? logical है यह। एक से संख्या अगर शुरू करते हैं तो एक का जब हम पहाड़ा पढ़ते हैं तो एक के पहाड़े में क्या होता है? एक एकम एक, एक दूनी दो हो जाता है क्या? बोलते तो ऐसे ही हैं। एक दूनी दो, एक तीये तीन, ऐसा कुछ नहीं होता है। एक में एक का गुणा करेंगे तो एक ही तो रहेगा। आप ऐसे कैसे बोल लीगे? दो का पहाड़ा पढ़ते हो तो दो दूनी चार, दो तीये छः। पहाड़ा दो से शुरू होता है, एक का कोई पहाड़ा नहीं होता है। वह आपको पढ़ाया जाता हो तो बात आपकी अलग है, आपके गणित की बात अलग है। जैन गणित में एक का पहाड़ा नहीं होता है। एक में एक ही रहेगा, एक में एक एक एक के साथ गुणा करना है आपको, एक में एक का गुणा करेंगे एक रहेगा। एक में फिर एक का गुणा कर दोगे तो फिर एक रहेगा लेकिन दो में एक का गुणा करेंगे तो दो रहेगा लेकिन दो में दो का गुणा किया तो दो दूनी चार हो गया, दो तीये छः हो गया, यहाँ संख्या बनती चली जाती है। संख्या वह होती है, जो आगे-आगे कहीं बन रही हो। एक में कभी भी संख्या, वह बढ़ने के लिए कारण तो बन सकती है लेकिन एक को संख्यात नहीं कहा जाता। एक को एक इकाई कहा गया बस! एक है वह। संख्यात की जो गणना होती है, वह दो से शुरू होती है। दो है तो कुछ संख्या कहलाएगी, भाई! है कुछ है! एक अकेले को क्या संख्या बोलना? एक तो उसके ही अपने अस्तित्व के लिए है, एक तो अकेला ही होता है, एक की कोई संख्या नहीं गिनी जाती है कि भाई! यह एक आदमी है, ऐसा कहने में आ जाता है। लेकिन एक आदमी को कहने की जरूरत नहीं है कि वह आदमी है बस! इतना ही पर्याप्त। जब वहाँ एक से ज्यादा हो तो कहना पड़ता...भाई! यहाँ दो आदमी हैं, यहाँ तीन आदमी हैं और नहीं हैं तो एक की कोई गिनती नहीं है, वह है बस अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए।

पूर्व में पहाड़े को दुनिया कहते थे

दुनिया दो से बनती है। अब आप उस दो को समझो कि दो क्या है? इसलिए जब भी पहले पहाड़े चलते थे तो मुझे किसी ने बताया कि दुनिया बोलते थे इसको पहाड़े को भी। दो के पहाड़े से शुरू होती थी मतलब दो से ही दुनिया शुरू होती है। दुनिया बोलते हैं? दुनिया सुनाओ! लो सुन लो, दुनिया सुनाओ! दुनिया सुनाने का मतलब दो से सुनाओ, दो से गिनती सुनाओ, दो से पहाड़ा सुनाओ। एक का पहाड़ा नहीं सुनता कोई भी, एक एकम एक, एक दूनी दो, एक तीये तीन; यह कोई नहीं सुनता है, यह सबको पता होता है। दो से पहाड़ा शुरू होता है। जहाँ आपकी दुनिया शुरू होगी, वहाँ दो से शुरू होगी; अब यह आप पक्की मान के रख लो अपने मन के अन्दर, अब दो अगर आपने कोई दूसरा एक और अपने बगल में बिठा लिया। जैसे कि कल कहानी में बता रहे थे...राजा सिद्धार्थ और त्रिशला जी बगल में आकर के बैठ गईं। अब ऐसी दुनिया शुरू करना है तो यह भी एक दुनिया है और अगर भगवान महावीर स्वामी को देखना है, तो उनकी भी अपनी एक दुनिया है। दो जब तक रहेंगे तब तक दुनिया है, संसार है और दो से एक होने का नाम ही संसार से दूर

हटना है। बस दो से एक होना। जितना ज्यादा आप दो में जुड़ते चले जाओगे कि हमारे पास दो हो जाएँ, फिर दो के चार हो जाएँ, वह आप दुनिया में बढ़ते चले जाओगे।

वैराग्य ही अभय है

वैराग्य उसको कहते हैं...जो अपनी दुनिया न बढ़ाए। वैराग्य उसको कहते हैं जिसे अपनी गिनती बढ़ाने में मजा न आए, किसी भी चीज की गिनती। वैराग्य उसको कहते हैं जो अपने अन्दर सिर्फ अपने आप को एक माने और बाकी के जितने भी उसके आसपास रहें, उन्हें कभी भी अपनी गिनती में न ले कि मेरी गिनती में आते हैं। इसका नाम क्या है? वैराग्य। वैराग्य होगा तो निर्भीकता होगी, वैराग्य नहीं होगा तो भय आपके समक्ष खड़ा है। इसलिए **वैराग्यमेवाभयम्** ऐसा कहा गया है, **वैराग्यम् एव अभयम्** वैराग ही अभय है। अगर आप अभय रहना चाहते हो, निर्भीक रहना चाहते हो तो आपको यह वैराग्य की शरण में आना ही पड़ेगा क्योंकि दो से जुड़े, भय उत्पन्न हुआ। अब मान लो हम अपने शरीर से भी जुड़े तो भय हो गया; शरीर मिट न जाए, शरीर मर न जाए, शरीर को कोई आफत न पहुँचा दे, शरीर कट न जाए, दो से जुड़े तो भय हो गया और अगर आप अपने भी शरीर से नहीं जुड़े तो आपके अन्दर कोई भय नहीं। एक से जुड़ोगे तो कोई भय नहीं। अब शरीर के अलावा किसी दूसरे और व्यक्ति से जुड़ गए तो अब आपको लगता है आपकी सुरक्षा हो गई। एक से दो भले, बोलते हो न? दो से चार भले, भले क्यों? क्योंकि उनसे हमारा भला होता रहेगा, हम उनके साथ में जुड़कर के अपने आप को सुरक्षित महसूस करते हैं लेकिन आप अगर समझदारी से अपने मनोभावों को देखोगे तो आपको पता पड़ेगा कि आपके अन्दर भय बढ़ जाता है। दूसरे की चिन्ता आपको पड़ी रहेगी। आप यहाँ बैठे हो, आपके घर में जो आपके हैं उनको आप छोड़ कर के आए हो तो उनका भय आपको है।

राग से सम्बन्ध एवं सम्बन्ध से भय

याद आते ही, चिन्ता होते ही भय उत्पन्न होता है और वह भय सम्बन्धों से बढ़ता चला जाता है। भय, सम्बन्धों के जितने ज्यादा वृद्धि होगी, उतना ज्यादा वह भय उस उस सम्बन्धी बढ़ता चला जाएगा। इसलिए भय वहाँ है, जहाँ सम्बन्ध हैं, जहाँ सम्बन्ध हैं वहाँ राग है और जहाँ पर राग नहीं है वहाँ सम्बन्ध नहीं, जहाँ सम्बन्ध नहीं वहाँ पर भय नहीं। आदमी को लगता है कि जितना मैं अपने सम्बन्ध बनाऊँगा, उतना ही मैं सुरक्षित रहूँगा। इसलिए किसी के सम्बन्ध नहीं भी होता है, तो जबरदस्ती बुला-बुला के, बिठा-बिठा के आदमी उससे अपना सम्बन्ध बनाता है। बैठ तो जा थोड़ा सा, मेरी बात तो सुन, तू मुझे बहुत अच्छा लगता है, तू जब मेरे पास आता है तो मुझे बहुत निश्चिन्तता आ जाती है। मुझे मन में कोई भी भय होता है तो दूर हो जाता है, न जाने क्यों मुझे तुझसे स्नेह है? बेटा! बैठ जा, बेटा! बैठ जा और बेटा बैठ गया। अब बेटा तो बैठ गया लेकिन जिसने उसको बिठाया है, उसे लग रहा है कि अब यह बेटा मेरे पास बैठा रहे तो मेरे को अच्छा लगता रहे। अब अच्छा लगने का मतलब क्या है? उसे भीतर भय है। उस भय को वह सुरक्षित तब तक समझ पाता है कि जब तक उसके सामने कोई दूसरा बैठा हो।

निर्भीक व्यक्ति को रागात्मक सम्बन्ध बनाने की जरूरत नहीं

निर्भीकता जो होती है वह एक के पास होती है और जो निर्भीक होता है, वह कभी किसी से अपना भय बताता नहीं है। निर्भीक को कुछ कहने की जरूरत नहीं है कि मुझे भय लग रहा है या नहीं लग रहा है या मुझे तेरी जरूरत है, मुझे तेरे पास में बैठ कर के अच्छा लगता है या तेरे आ जाने पर मुझे अच्छा लगता है; इस तरह की बात करना भी भय का प्रतीक होता है। निर्भीक व्यक्ति अपने अन्दर इस तरह का जब भाव नहीं लाता तो वह अपने अन्दर इस तरह का कभी भी भय भी नहीं रखता और बिना भय के वह कभी भी किसी से रागात्मक कोई सम्बन्ध बनाने की कोशिश भी नहीं करता। अब आप सोचो! कि आपको सम्बन्ध बनाने पड़ते हैं कि नहीं? कई बार तो आपको पक्का मालूम होता है कि यह मेरा बेटा है, तो भी उससे कहलवाते हो- बेटा! बोल, पापा बोल। अगर बहुत दिनों से बेटे के मुँह से पापा न सुना हो तो फिर उससे बुलवाना पड़ता है...बेटा! बोल तो मैं तेरा कौन हूँ? बता। नहीं समझ में आया? छोटे बेटे को आप कितनी बार पूछते हो घर में? बता मैं तेरा कौन हूँ? कोई भी नया रिश्तेदार आ जाएगा तो उसके सामने उससे बुलवायेंगे- बता, मैं तेरा कौन हूँ? बता, मैं कौन हूँ? वह कहेगा- दादू, वह कहेगा- नानू। उसे बार-बार याद दिलाकर के आप अपने सम्बन्धों को बनाते हो और उस सम्बन्ध को बनाकर के आप अपने अन्दर एक भय है, क्या भय है? यह है तो मैं निर्भय हूँ। जबकि यह गलत गणित है, उल्टा गणित है। वह है, तो आप भयभीत हो लेकिन आपको लगता है कि मैं अगर अकेला होऊँगा तो मुझे भय लगेगा और जब तक आदमी के दिमाग में यह पड़ा रहेगा कि मैं अकेला हूँ तो भयभीत हूँ; वह आदमी कभी भी राग और वैराग्य का अन्तर समझ ही नहीं सकेगा।

वैराग्य भाव से निर्भीकता आती है

वैराग्य में भय नहीं होता है। अगर वैराग्य में ही भय होता तो फिर? फिर संसार में ही उसे निर्भीकता समझ में आती और संसार में जितना आगे बढ़ता चला जाता तो निर्भय होता चला जाता लेकिन ऐसा होता नहीं है। जब-जब आदमी की दुनिया में दो का पहाड़ा बढ़ेगा और वह उस दो के पहाड़े में अपने आप को जितना ज्यादा जोड़ता चला जाएगा, वह उतना ही ज्यादा भयभीत होता चला जाएगा। इसलिए दुनिया का मतलब ही है जब तक हमारे सामने दो हैं, अब वे दो कोई भी हो सकते हैं और अगर कोई भी नहीं है, तो भी हमारे सामने जब तक यह ध्यान है कि यह दूसरा हमारा शरीर भी है, तब तक दुनिया है। जब यह ध्यान छूट जाए, नहीं! मैं अकेला ही हूँ, मैं सिर्फ आत्मा ही हूँ, शरीर तो उसके साथ लगा हुआ है, तो आप बिल्कुल निर्भीक हो जायेंगे। आपको कोई भी challenge देगा, आपको कोई भी तरीके की आपके सामने बाधा आएगी, आपके सामने कोई भी तरीके का आपत्तिजनक कोई भी वातावरण उत्पन्न होगा, आप अपने आप में निर्भय होंगे क्योंकि आपको पता है कि मैं एक हूँ, मैं अकेला हूँ। अब आप सोचो! कि अगर आपके सामने कोई वातावरण भय का बना रहा हो तो आप क्या सोचोगे? मेरा कौन है? मेरा कौन है? कौन मेरा साथ देगा? कौन मेरे साथ होगा? नहीं समझ आ रहा? आप यही सोचोगे न? मेरे साथ जब परेशानी होगी तो मेरे साथ कौन होगा? जितना आप यह सोचोगे, मेरे साथ कौन होगा? जैसे ही आप दो की तरफ गए तो आपका भय बढ़ेगा और हर आदमी यही करता है।

आत्मा में स्थिरता भय मुक्त करवाती है

मानो कि आपके घर में कोई कह दे कि आज शाम को चोर आने वाले हैं, आप अपने आप को बचा कर रखना तो आप क्या करोगे और आप घर में अकेले हो तो आप उस घर में रहकर के चोरों से मुकाबला करने की सोच पाओगे या सोचोगे कि हम घर में और भी दो-चार लोगों को बुला ले...क्या सोचोगे? बोलो! यही सोचोगे न? घर में और भी हमारे कोई भी परिवार के लोग हैं, बेटे हैं, उनको बुला ले। आज हमको challenge मिला है, चोरी होने वाली है या कोई हमारे लिए मान लो, कत्ल करने आने वाला है या कोई ने कह दिया है, आज की शाम आपकी अन्तिम शाम है तो आप क्या सोचोगे? बताओ! हमारे साथ कौन? यही सोचने में आएगा। जब जब आप यह सोचोगे हमारे साथ कौन? आपके सामने भय होगा और जब आप बिल्कुल यह निडरता के साथ में सोच पाओ कि मैं पहले से ही दो हूँ। मुझे तो इस दो को भी एक करना है और ऐसा अगर आपने मन में विचार किया तो आपके सामने भय आ नहीं सकता है। इसलिए कहा गया है... **‘वैराग्य ही अभय है, राग में भय है’** अपने शरीर से हुआ राग भी हमें भय उत्पन्न कराता है और अगर अपने शरीर से हमें राग नहीं है, तो हमें शरीर का भी कोई भय नहीं होगा और जिसको शरीर का भय नहीं होगा, उसे दुनिया में किसका भय होगा? उसे किसी का भय नहीं होगा। निर्भीकता का मतलब है कि अपने अन्दर राग की कमी लाना और राग से जो चीजें जुड़ी हुई हैं, उन्हें अपने से अलग देखना और ये चीजें अगर हमारे सामने हैं तो ये हमारे सामने अस्थिर हैं। स्थिर तो मेरा स्वभाव है, मेरी आत्मा है, स्थिर है और कुछ स्थिर नहीं है। आत्मा ध्रुव है और शरीर अध्रुव है, आत्मा स्थिर है और शरीर अस्थिर है; जब यह विचार आने लग जाता है, तो अपने आप मन भय-मुक्त हो जाता है।

भाव और स्वभाव अलग अलग

आचार्य श्री के पिताजी का नाम क्या था, बोलो? अब तो याद हो रहा होगा? सब अनासक्त योगी पढ़ रहे होंगे। बचपन की उनकी बात है। उनके भी पिता का नाम था, किसी को पता है? अब अनासक्त योगी पढ़ रहे हो, परीक्षा होगी। मल्लप्पा के पिता का नाम पारिसप्पा। क्या था? वहाँ सब अप्पा, अप्पा ही होते हैं और अप्पा माने? आत्मा। सब वहाँ पर अपना इसी तरह से आत्म-भाव रख लेते हैं, धीरे-धीरे अपना आत्म-कल्याण कर लेते हैं लेकिन बचपन में कोई कैसा भी हो सकता है। अब पारिसप्पा के सामने जब मल्लप्पा छोटे थे तो उस समय पर यह पढ़ते नहीं थे, स्वाध्याय नहीं करते थे। पारिसप्पा कई बार कहते थे- सब काम करता है, सब करता है लेकिन स्वाध्याय नहीं करता। मतलब यह संस्कार में था, घर में था स्वाध्याय करना। वह जितना कहते थे...उतना ही उनके मन में नहीं करने का और भाव आता था। कभी-कभी एक हठीला स्वभाव भी होता है। कैसा? हठीला स्वभाव। हठीला स्वभाव जानते हो? आदमी में भी होता है, औरतों में भी होता है। हठीला स्वभाव का मतलब? कोई कुछ कहे तो एक हठ सी बैठ जाती है, नहीं करूँगा। अगर कहा है तो और नहीं करूँगा। जैसे मम्मी कभी कहे- बेटा! भोजन कर ले तो नहीं करना और जब कोई न पूछे तो फिर ढूँढता फिरता है, भोजन कहाँ रखा है? भोजन कहाँ रखा है? ऐसा होता है न? कई बच्चों के साथ भी ऐसा होता है। ऐसे बच्चे जो है एक हठीले स्वभाव के होते हैं और यह स्वभाव सभी के अन्दर होता है। मल्लप्पा को पारिसप्पा कह-कह के परेशान। कभी मैं तुझे स्वाध्याय करते हुए देख पाऊँगा या नहीं? इतना तक कह दिया उन्होंने एक बार तो भी मल्लप्पा के ऊपर कोई फर्क नहीं, अब तो और नहीं करना। अब

वह स्वभाव बन गया, कोई बात नहीं लेकिन भीतर से भाव कुछ अलग होता है और स्वभाव कुछ अलग होता है। कई बार आप ऐसा महसूस करोगे, भाव अलग जाता है; स्वभाव अलग जाता है।

तुंकारी का हठी स्वभाव

वह जो कल आपको, भूल गए कौन सी कल? तुंकारी। वह तुंकारी अपनी कहानी सुना रही थी न? क्या सुना रही थी? मेरा विवाह कैसे हुआ? यह तो पता पड़ गया आपको, उसका विवाह सोम शर्मा के साथ कैसे हुआ? अब विवाह हो गया, विवाह तो अच्छा चल ही रहा था। कब तक चलेगा? स्वभाव कभी न कभी दिखाई दे ही जाता है। भाव कभी न कभी बिगड़ ही जाता है और अगर भीतर से हम किसी चीज से बच रहे हैं तो वह बचना होता नहीं है, वह कभी न कभी बाहर निकल ही आता है। एक बार वह सोमशर्मा जब किसी कारणवश रात में देर से आ पाया। जैसे मान लो 9 से 12 देखने गया हो, अब उस time पर शायद theatre न भी होते हो तो कुछ न कुछ तो चलता ही था न? घूमते थे, नाटक-वाटक देखते हुए लौटकर के आ रहे हैं, रात की 12 बज गई। अब वह घर में; देखते-देखते, देखते-देखते सो गई। 12 बज गए; श्रीमान जी आए नहीं अभी, सो गई वह। सो गई तो नींद लग गई उसकी। श्रीमान जी आए 12 - 12:30 बजे और वह खटखटाए। अब उसने खटखटाने की आधी नींद में आवाज तो सुन ली कि हाँ आ गए हैं, अब उसने दरवाज़ा नहीं खोला। अब आधी नींद में उसके मन में आया; इन्होंने मुझे परेशान कर रखा है, यह कोई घर में आने का time है, हमें नहीं उठना। देखते हैं...आज इनको बाहर ही रहने दो, थोड़ा सा मजा इनको भी आने दो आज। उसके मन में आ गया कि मुझे आज दरवाजा नहीं खोलना। अब उसके अन्दर यह तो आ रहा है कि वह बाहर खड़े हैं लेकिन उसे अपने एक हठीले स्वभाव के कारण से, यह भी कौन सा? यह हठीला स्वभाव होता है, अपना स्वभाव समझने की कोशिश किया करो। हमें पता है कि चीज गलत है, पति बाहर खड़ा है, दरवाजे पर आवाज दे रहा है और वह घर का दरवाजा खोलने के लिए कह रहा है, नाम लेकर के बार-बार बोल रहा है लेकिन एक, क्या मन में भाव आ गया? नहीं खोलना। ऐसा भाव आता है कि नहीं आता? नहीं आता कभी? तुरन्त खोल देते हो उचक के? बिल्कुल लपक के? बड़े अच्छे स्वभाव हैं आप लोगों के! सतना के स्वभाव वाले लोग तो दुनिया में दीपक लेकर के ढूँढ़ेंगे तो भी हाँ! हाँ! बजा लो, बजा लो, ताली बजा लो, बहुत बढ़िया, बहुत बढ़िया। इतने अच्छे लोग ढूँढ़ेंगे तो भी मिलेंगे नहीं और ढूँढ़ते-ढूँढ़ते फिर यहीं पर आना पड़ेगा हमें कभी न कभी अच्छे लोगों को ढूँढ़ने के लिए। बाकी तो दुनिया में सब तरह के, बुरे स्वभाव वाले सब जगह हैं।

अब वह तुंकारी का स्वभाव। उसने सुन लिया, पति बड़ी प्रेम से बुला रहा है- प्रिये! कल्याणवती! श्रीमती! उसने जितने अच्छे-अच्छे सम्बोधन हो सकते थे- 'भाग्यवान! देवी! परमेश्वरी! कुछ तो सुनकर के जग जा, कुछ तो क्यों परेशान कर रही है? खोल तो दे दरवाजा और उसने सब सुनकर के अनसुनी कर दी। उसने मन में सोच लिया- मुझे अब इनको भी मजा, यही बोलते हैं न? कभी भी घर में आ जाना, कभी भी लेट-लपेट आना, यह क्या तरीका है? हमें नींद आ रही है, सोने नहीं दे रहे, अब आज बाहर ही रहो। देखते हैं क्या होता है? उसने दरवाजा नहीं खोला। जितने भी अच्छे-अच्छे शब्द थे, सोमशर्मा ने सब उसके

पर्यायवाची ढूँढ-ढूँढ करके आवाज लगाई। आपको तो इतने अच्छे शब्द भी नहीं आयेंगे जितने अच्छे नामों से उसने पुकारा और जैसे-जैसे वह अच्छे नामों से पुकारता जा रहा है, वह और ज्यादा उसके अन्दर हठ बढ़ती जा रही है।

हर किसी के अन्दर हठ होती है

यह हठ एक अलग तरीके की चीज होती है। सामने दिख रहा होता है कि मम्मी कह रही है- बेटा! भोजन कर ले, भोजन ठण्डा हो रहा है। उसे पता है कि ठण्डा भोजन मुझे नहीं रुचता है, तो भी हठ के कारण से वह नहीं करता है। आप भी कभी बेटे ही तो रहे होगे? बड़े हो गए तो कोई बात नहीं, ऐसी हठें उत्पन्न नहीं हुईं कभी? यह हठ होती है; बेटे में होती है, बेटों में होती है, हर किसी के अन्दर तरह-तरह की हठ हो सकती हैं। सामने आपको दिख रहा है कि इससे नुकसान होता है, हो रहा है लेकिन अगर कोई कह रहा है, तो कहते हैं और मनाना, क्या बोलते हैं? बहुत मनाना लेता है, बहुत मनवाता है तो वह हठ के कारण से होता है। अब यह उस हठीले स्वभाव के कारण से वह आधी नींद में पड़ी रही और वह सुनती भी रही कि क्या-क्या बोला जा रहा है? क्या-क्या बोला जा रहा है? अब उसके लिए जो सोमशर्मा था, उसके लिए जब बहुत देर हो गई और सब तरीके के उपाय और सब तरीके के अच्छे सम्बोधन देने के बाद में उसे कुछ समझ नहीं आया, तब एक ही ब्रह्मास्त्र उसके पास बचा। ब्रह्मास्त्र! सबसे बाद में चलाया जाता है। जब उसने देखा कि यह उठ नहीं रही, एक घण्टा हो गया, डेढ़ घण्टा हो गया, 12 से 2 बज गई तो उसने फिर उसके दिमाग में आ गया और वह बोल बैठा। क्या बोल बैठा? अरे! तुंकारी! दरवाजा तो खोल दे और उसने जैसे ही कहा... 'तुंकारी' बस! उसकी नींद क्या खुली, उसका क्रोध इतना सातवें आसमान पर चढ़ा और ऐसा सातवें आसमान पर चढ़ा; तुरन्त दरवाजा खोल के, एकदम से दरवाजा खोला क्या? मानो तोड़ कर बिल्कुल आवाज देकर के दरवाजे के बाहर निकलती हुई ऐसी गई हवा की तरह कि रात के अंधेरे में न जाने वह कहाँ चली गई? और वह सोमशर्मा कहते ही रह गया- रुक! रुक! रुक! कहाँ जा रही है? कहाँ जा रही है?

हठ का बुरा परिणाम

अब वह सोमशर्मा भी सोचा- यार! कहाँ जाएगी? जाने दो उसको भी, मुझे दो घण्टे से परेशान कर रही थी। मैं भी बैठा हूँ घर पर अब आ जाएगी लौट कर। कहाँ जाएगी रात के अन्धेरे में? और वह चली गई। ऐसी दौड़ी जैसे कि मानो उसको कोई हवा लग गई हो। क्या बोलते हो आप लोग? हवा लग जाती है न? कोई ऊपर चढ़ गया हो। ऐसे गुस्से में दौड़ती चली गई, दौड़ती चली गई, दौड़ती चली गई और एक वन में पहुँच गई, जंगल में पहुँच गई। अब कोई नहीं उसके साथ में। कोई अता-पता नहीं। घर कहाँ रह गया? शहर कहाँ रह गया? ऐसी दौड़ती चली गई और वहाँ पहुँचने के बाद में, भाई! चोर उचक्के तो सब जगह रहते ही हैं, चोर उचक्कों ने उसको पकड़ लिया, अपने सरदार के पास ले आए और सरदार ने उसके साथ में बस अपनी कोई जबरदस्ती करना शुरू कर दी। अब उसको समझ आया कि यह मैं कहाँ फँस गई? अब उसे समझ में आ रहा है कि मैं अपने गुस्से के कारण, अपने हठीले स्वभाव के कारण से मैंने कितना नुकसान कर लिया। अब यह हठ कैसी? मानो चली भी गई बाहर तो अब लौट कर नहीं आना। कहती हैं, हमारे अन्दर हठ नहीं होती। जब मायके चली जाती हैं तो फिर कैसे बुलाना पड़ता है? पूछना इनसे। हठीला स्वभाव मतलब? जब

हमारे मन में है, तो भी मना करना, यह हठीला स्वभाव होता है। एक तरफ हम चाहते हैं कि हाँ! वह बुलाने आएँ, लेने आएँ तो भी नहीं नहीं, अभी तो हमें मम्मी, अभी तो हमें भैया बहुत अच्छे से मना रहे हैं, अच्छे से रख रहे हैं, अभी मत आना और फिर भी- हाँ हाँ, देख लेना, बच्चे परेशान कर रहे हैं तो चले आना। कई बार इस तरीके के स्वभाव जब बिगड़ जाते हैं तो बड़े-बड़े नुकसान भी हो जाते हैं। अब उसे लग रहा है...यह मैं कहाँ आ गई? इन चोरों के सरदार के पास आ गई। अब मेरा क्या होगा? मुझे यहाँ बचाने वाला कोई नहीं है। यह हठीला स्वभाव!

हठीला स्वभाव वैराग्य के साथ हो तो लाभदायक

इधर मलप्पा को देखो! उनका हठीला स्वभाव! उन्होंने अपने पिता के सामने कभी स्वाध्याय नहीं किया। फिर जब वह बड़े हो गए, बचपन में नहीं किया लेकिन जब बड़े हो गए, 18 वर्ष के हो गए तो अपने आप उनके अन्दर बिना स्वाध्याय के भी ऐसा भाव आया कि मैं विरक्ति को प्राप्त हो जाऊँ, वैराग्य धारण कर लूँ। आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के पास चले गए Bangalore में और वहाँ पर जाकर के बैठ गए। पारिसप्पा आए उनको लेने, बड़ी मुश्किल से मतलब और घर पर गए और घर पर पहुँचे तो एक साल के बाद में फिर उनका विवाह करा दिया। श्रीमंती मिल गई लेकिन फिर भी विवाह होने के बावजूद भी, सब परिवार होने के बावजूद भी अन्त-अन्त में उन्होंने आखिर मुनि दीक्षा ले ही ली और वे मल्लि सागर मुनि महाराज बन ही गए। एक भाव है और एक स्वभाव है, यह ध्यान रखना। भाव है वैराग्य का, अगर उस वैराग्य के भाव के स्वभाव में भी कभी हठीला स्वभाव चलता है, तो यह स्वभाव उसके साथ जुड़कर के भी कई बार अच्छे काम करा देता है। मानो अगर किसी के अन्दर वैराग्य का भाव आ रहा है और स्वभाव उसका हठीला है, तो उसके लिए यह लाभदायक है। क्योंकि इसी हठ के कारण से वह अपने वैराग्य को आगे बनाये रख पाएगा या कभी न कभी वैराग्य को प्राप्त कर लेगा। स्वभाव अगर अच्छे भावों के साथ मिल जाए तो कभी कभी वह स्वभाव भी बुरा होने पर भी अच्छा बन जाता है और वैरागी को तो हठीला होना ही पड़ता है। आपके ऊपर कोई उपसर्ग आ गया, आपके लिए कोई दिक्कत आ गई, अगर आपका हठीला स्वभाव होगा तो फिर आप हटेंगे नहीं। हठीला का मतलब? हठ आ गई। हठ आ गई तो वह अपनी बात पर टिका हुआ है, हटेगा नहीं। इसको क्या बोलते हैं? हठीला स्वभाव। लेकिन यह हठीला स्वभाव अच्छे गुणों के साथ हो, वैराग्य के साथ हो, तपस्या के साथ हो तो यह लाभदायक है। बुरे ग्रह भी होते हैं, अगर वह कभी अच्छे ग्रहों के साथ में अपनी युति बना लेते हैं तो वह बुरे ग्रह भी अच्छे काम करने लग जाते हैं। बुराई भी कई बार कोई भी के स्वभाव में पड़ी होती है लेकिन वह अगर अच्छे गुणों के साथ में आगे बढ़ने लग जाती है, तो बुराई भी एक अच्छाई का रूप ले लेती है। यह हठीले स्वभाव का दुर्गुण तो है लेकिन अगर यह वैराग्य और तपस्या के साथ जुड़ जाए तो वही वैरागी, वही तपस्वी हठ से फिर अपनी तपस्या भी कर सकेगा। अपने कर्मों का नाश भी हठ के कारण से कर सकेगा और बाहुबली की तरह अगर खड़ा रहेगा तो हठीले स्वभाव के कारण ही खड़ा रहेगा एक वर्ष तक; यह तपस्या भी हठ की तपस्या है। आदिनाथ भी अगर बैठे छः महीने तो हठ के कारण से बैठे; इसलिए एक हठ योग प्रसिद्ध है दुनिया में।

एक हठ योग भी होता है

सुन रहे हो? दुनिया में एक हठ योग भी है और उसको हठ योग इसलिए कहा गया, यह बैठ गए तो फिर यह हिलेंगे नहीं, हटेंगे नहीं अपने स्थान से। ठाकुर झुक नहीं सकता, ठाकुर टूट नहीं सकता; ठाकुर मर सकता है। यह ठाकुर, यह ठकुराई कहाँ से आती है? यह हठीले स्वभाव से आती है लेकिन अगर यह वैराग्य के साथ है, तो यह कर्म-निर्जरा का कारण बनती है। ऐसी कर्म-निर्जरा कि वह खड़े हैं तो एक साल के अन्दर केवलज्ञान प्राप्त कर ही लेंगे। इस तरीके का स्वभाव और भाव, ये दोनों अगर आप समझेंगे तो खराब स्वभाव वाला व्यक्ति भी क्यों न होगा, अगर अच्छे भावों में आना शुरू कर देता है, तो उसका वह खराब स्वभाव भी अच्छे भावों के साथ जुड़कर के अच्छा बन जाता है। दिक्कतें हो गई, वह तुंगारी निकल गई, चोरों के पास पहुँच गई। अब सरदार उसके साथ में कुछ भी करने लग गया लेकिन उसने अब वहाँ पर भी अपना हठीला स्वभाव दिखाया। जैसे ही उसे लगा कि मेरे शील पर आपत्ति आने वाली है, तो वह एकदम से बिल्कुल मूर्ति बनकर के बैठ गई, कायोत्सर्ग की मुद्रा में मूर्ति बनकर के बैठ गई और बस! अपने इष्टदेव का स्मरण करने लग गई। उसकी उस दृढ़ता के कारण से, वहाँ की वनदेवी ने उसकी रक्षा कर दी और उस वनदेवी ने उन चोरों से, उन सरदारों से उसको बचा करके उसे वहाँ से बाहर निकाल दिया।

तुंगारी के दुर्दिन

लेकिन वह बाहर निकलने के बाद भी किसी एक ऐसे पापी व्यक्ति के हाथ फिर पड़ गई, जिसने उसको पकड़ लिया और वह पकड़ने के बाद में उसके साथ में उसे बहुत कष्ट देता था, पाप तो नहीं करता था उसके साथ लेकिन उसे बहुत कष्ट देता था। ऐसे भी दुष्ट स्वभाव के लोग होते हैं कि जैसे मानो उसको खिलाता भी है और उसको मारता भी है। ऐसे लोग घर में भी देखे जाते हैं। वही दिक्कत उसके साथ थी कि वह फिर एक ऐसे व्यक्ति के पास पहुँच गई, ऐसे व्यापारी के पास पहुँच गई, जो कपड़े रंगने का काम करता था और उसके लिए उसने उसको use करना शुरू किया। वह क्या करता था? उसको खिलाता भी था। खिलाता इसलिए था क्योंकि यह हृष्ट-पुष्ट रहेगी तो उसके बाल नोंचता था तो बाल नोंच-नोंच करके उसके सिर से, उसके शरीर की नसों से खून निकालता था और फिर खून निकालने के बाद में तेल भी लगाता था ताकि यह बनी रहे। इस तरीके के torture करने वाले काम आज भी दुनिया में बहुत होते हैं। गाय-भैंस के साथ भी यही होता है। भैंस का दूध तब तक निकाला जाता है, निकाला जाता है जब तक वह निकालने लायक रहती है और नहीं रहती तो उसको कसाईखाने पहुँचा दिया जाता है। यही स्थिति उसके साथ होने लगी। उसे वह मीठा भी खिला रहा है, अच्छे बलिष्ठ भोजन भी खिला रहा है और साथ-साथ उसकी नसों से खून भी निकाल रहा है और खून होने के बाद में जब खून-खून हो जाती है, दर्द होने लग जाता है, तो उसे वह लाक्षा तेल भी उसके लिए लगाता है। उससे ठीक भी करता है और ठीक होने के बाद में फिर हर 15 दिन बाद, हर 10 दिन बाद फिर उसको नोंचता है, फिर उसका खून निकालता है और उसके खून से वस्त्र रंगता है। रेशमी वस्त्र रंगता है और वे रंगे हुए वस्त्र बहुत अच्छे-अच्छे पैसों में बिकते हैं और इस तरह का वह व्यापार करता है। अब उसके हाथ पड़ गई वह। अब सोचो! यह हो गई तुंगारी की दशा। जब यह दशा उसकी हो गई तो अब उसके लिए यह लगे कि मैं कौन से दुर्दिनों को यहाँ पर झेल रही हूँ और ये दुर्दिन अब कैसे जायेंगे? यहाँ कौन मुझे बचाने आएगा? और यहाँ पर इतना प्रबन्ध है कि मैं यहाँ से कहीं से भी भाग

करके निकल नहीं सकती, जा नहीं सकती और उसके लिए एक क्रोध के कारण से, एक हठीले स्वभाव के कारण से इतना उसे कष्ट भोगना पड़ गया।

मनुष्य जीवन में अनेक तरह के कष्ट

यह बहुत बड़ा कष्ट होता है। किसी को एक झटके में मार दिया जाए तो इतना कष्ट नहीं होता है। लेकिन उसे नौच-नौच करके अधमरा कर दिया जाए और मारा भी न जाए, यह बहुत बड़ा कष्ट होता है। इस तरह के कष्ट अक्सर जो लोग दूसरों को पीड़ा देते हैं, सताते हैं; वह लोग इस तरह के कष्ट दिया करते हैं। आपको पता नहीं है, दुनिया में कितने बच्चे kidnap होते हैं। कितने बेटे, कितनी बेटियों को चुरा लिया जाता है, kidnapping कर ली जाती है और उसके बाद में फिर उनके इसी तरीके से कार्य किए जाते हैं। इतना भी सुना जाता है कि उन बेटे-बेटियों को अन्धा तक बना दिया जाता है और फिर उनसे भीख मँगवाई जाती है और उसके माध्यम से उनके सरदार उस पर अपना काम चलाते हैं। न केवल भीख मँगवाई जाती है, जब वे भीख माँग-माँग करके या किसी भी तरह से अपनी जिन्दगी खोने लग जाएँ या उन्हें लगे कि अब इस उम्र में इनकी यह kidney, इनके liver बहुत ज्यादा काम के हैं तो वे किसी भी तरह से बेच भी दिए जाते हैं और उनको नष्ट भी कर दिया जाता है और ये व्यापार भी दुनिया के अन्दर खूब चल रहे हैं। अभी आपके नौ दुर्गों में भी एक ऐसा case खुला था। आपको ध्यान नहीं है मतलब बच्चे आते हैं माँ का प्रसाद लेने के लिए... जगह-जगह पर लोग प्रसाद बाँटते हैं, बेटे-बेटियाँ, छोटे-छोटे बच्चे आ जाते हैं और किसी ने उनको अगवा किया और अपने जो उनके चल रहे हैं ठिकाने और वहाँ तक पहुँचने के लिए उन्होंने अपना सम्बन्ध बनाया, अपनी फिरौती माँगी और वह बात खुल गई। उसमें पाँच लोग, बड़े-बड़े पाँच लोग पकड़े गए, जो छोटे-छोटे बच्चों को अगवा करके इस तरह का काम किया करते हैं। यह सब काम आज भी चल रहे होते हैं। कितने तरीके से आज मनुष्य के जीवन में भी कष्ट आते हैं। यह आप अगर थोड़ी सी आँख खोल करके देखो तो आप सोच सकते हो। कोठारी काण्ड! ध्यान है सबको? कितने बच्चों को मार-मार करके उनका माँस और उनके शरीर के अवयव वह घर में रहकर के बेचता रहा, बेचता रहा; कितने बच्चों को? इतने बड़े-बड़े काण्ड, राक्षसों जैसे काण्ड एक मनुष्य कर लेता है और उसके अन्दर कोई भी टस से मस होने का भाव नहीं होता है।

वर्तमान में बच्चों के प्रति असीमित निर्दयता

कितनी बड़ी-बड़ी हिंसाएँ होती हैं और उन हिंसाओं को अगर हम देखे, समझे तो आज भी हम समझ सकते हैं कि बच्चों के प्रति आज भी कितनी निर्दयता के साथ में लोग व्यवहार करते हैं और उन बच्चों के साथ में जिनका ऐसा होता होगा, उन्हें कितनी पीड़ा होती होगी। ये पीड़ाएँ मनुष्य जन्म में भी भोगते हैं और भोग रहे हैं लोग, अनगिनत लोग भोग रहे हैं। आप यहाँ सुरक्षित बैठे हैं, आपको कुछ पता नहीं है। अगर आप दुनिया में आँख उठाकर के देखेंगे तो ऐसे ठिकाने आपको अपने ही आसपास, अपने मोहल्लों में मिल जाएँगे लेकिन आपको पता नहीं होता है कि क्या चल रहा है? और जब वे चीजें खुलती हैं तब पता पड़ता है...अरे! हमारे घर के बगल में ऐसा काण्ड हो गया! और वह हो जाता है। मनुष्य जीवन में भी आदमी पूरा सुरक्षित अपने जीवन को अपने ढंग से जी ले, यह बहुत बड़ा उसके पुण्य का उदय होता है तब हो पाता है। आप

देखोगे कि इस तरह के बच्चों को विकलांग बनाकर के उन्हें जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता है और उनके अंगों के भीतरी parts को बढ़ा होने के बाद में लाखों में बेच करके उनसे अपना व्यापार बनाया जाता है। अधमरा करके जब उन्हें छोड़ दिया जाता है, तो एक kidney से, बिना kidney के वह कितना जिएगा? अपने आप मर जाएगा, हमने तो मारा नहीं। उसकी kidney निकलवा दी, उसका liver निकलवा दिया; इस तरीके के काम आजकल बहुत हो रहे हैं और इसीलिए यह kidnapping की जाती है। ये सब चीजें मनुष्य जीवन में होने वाले दुःखों के साथ में याद रहनी चाहिए, पीछे का वैराग्य पाठ सपाट नहीं हो जाना चाहिए, वह भी याद रहना चाहिए।

जन्म मृत्यु के बीच अनगिनत दुःख

मनुष्य जन्म के भी दुःख गिनाए गए थे लेकिन कितने गिनाए जायेंगे, कितने लिखे जाएंगे? यह जन्म के दुःख तो अगर सही ढंग से लिखना हो तो, जो थानों में reports होती हैं उनके data लिए जाए; उससे समझ में आएगा, कितने तरीके के दुःख कितने बच्चे भोगते हैं? शास्त्रों में कितने दुःख लिखे मिलेंगे? इसलिए यहाँ पर तो बस common बात कर देते हैं...जन्म, जरा, मृत्यु के दुःख हैं। अरे! जन्म और मृत्यु के बीच में कितने दुःख हैं, इन्हें कौन गिनेगा? ये दुःख गिनने के लिए तो आपको अपनी files खुद खोलनी पड़ेंगी, अपनी दृष्टि खुद उठानी पड़ेगी और देखना पड़ेगा...आज भी संसार में मनुष्य कितना असुरक्षित है? कितना भयभीत है? जहाँ पर मनुष्य रह रहे हैं वहाँ पर आसपास राजाओं के वातावरण, वहाँ पर रहने वाले लोगों के वातावरण अगर अच्छे नहीं होते हैं तो मनुष्य हमेशा भयाक्रांत रहते हैं। दुनिया के सब देशों के अन्दर देखो! किस तरह के भय पड़े हुए हैं आज। चाहे वह अमेरिका हो, चाहे अफगानिस्तान हो, चाहे वह इधर आपका फिलिस्तीन हो जहाँ पर यह युद्ध चल रहा है; कुछ भी हो आप देखो! जगह-जगह पर किस तरीके के यह सब भयाक्रान्त माहौल बना हुआ है; भयाक्रान्त! सब भयभीत! कौन सा युद्ध चल रहा है अभी? इजराइल, हाँ! गाजा, हमास। कितने लोग भयभीत! मतलब कभी भी कोई भी rocket आकर के गिर जाता है, कभी भी buildings की buildings गिर जाती हैं, कुछ नहीं है तो अपने आप भूकम्प आ रहे हैं। हजारों-हजारों लोग मर रहे हैं भूकम्पों में। आप सोचे कि मनुष्य का जीवन भी कितना सुरक्षित है? लोग हमसे पूछ रहे थे...महाराज! कल आपको झटके तो नहीं लगे यहाँ पर भूकम्प के? नेपाल में आया था, रीवा की तरफ आया होगा, रात को कहीं सतना में भी थोड़ा बहुत दो second का झटका लगा होगा। लगा था किसी को? अरे! कौन को ध्यान रहता है? लगा था? हल्का-फुल्का होगा। समझ लो अब आप, सुरक्षा कहाँ? जिस मकान में हम बैठे हैं, उस मकान का मलबा ही अपने ऊपर गिर जाएगा तो सुरक्षा कहाँ? इसलिए हर चीज अस्थिर है।

एक है तो स्वाधीन, दो है तो पराधीन

शरीर समल है मतलब मल सहित है; आत्मा निर्मल है। दोनों चीजें आपके पास में हैं, focus किस पर करना है? यह आपकी बुद्धिमानी है। शरीर के साथ होना परवश होना है और आत्मा के साथ होना स्वाधीन होना है, निर्णय आप कीजिए। अगर आप देह के साथ रहते हैं तो अस्थिरता का जीवन जी रहे हैं, देह के साथ रहते हैं तो आप मलिन जीवन जी रहे हैं। देह के साथ रहते हैं तो आप परवश हैं और अगर आप आत्मा

के साथ रहते हैं, आत्मा को focus करते हैं, आत्मा में रहने का भाव करते हैं तो आप निर्मलता में रहते हैं, आप स्वाधीन रहते हैं, आप स्थिर वस्तु के साथ रहते हैं। आपके लिए कभी कोई चीज आपको भय उत्पन्न करने वाली नहीं होगी और इसी भाव के साथ रहने का नाम धर्म है। सच्चा धर्म क्या है? अपनी आत्मा में, अपनी आत्मा को मानकर के उसी के निकट रहना, बस! यह सच्चा धर्म है; बाकी तो सब उसके लिए औपचारिक चीजें हैं। पूजा से धर्म होगा तो कब होगा? जब तुम्हें यह ज्ञान हो जाए कि मैं आत्मा हूँ, तब तो धर्म हुआ और तुम्हें इतना ही मालूम रहा कि बस पूजा करते रहेंगे तो पुण्य मिलता रहेगा, काम चलता रहेगा तो नहीं लगता कि धर्म हो रहा है। धर्म आपको निर्भीक बनाएगा। जब वह मल्लप्पा फिर बड़े होने के बाद, विवाह होने के बाद में आचार्य शान्ति सागर जी महाराज के पास में गए तो फिर उन्होंने उस समय पर एक पत्नी व्रत लिया, ब्रह्मचर्य व्रत लिया, कई तिथियों के व्रत लिए और उसके साथ-साथ अपने खाने-पीने के व्रत लिए। यह व्रत लेने के बाद में उन्होंने आचार्य शान्ति सागर जी महाराज से पूछा...यह व्रत तो बहुत हो गए, कुछ ज्ञान की भी एक बात बता दो। यह सब मिलेगा आपको, किस में लिखा हुआ मिलेगा? अनासक्त महायोगी में। 'कुछ ज्ञान की बात भी बता दो'। वे बोलते हैं आचार्य महाराज- हमेशा ध्यान रखना... **'शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है'** यह सबसे बड़ा ज्ञान है और यही ज्ञान उनके पास में रहा तो एक दिन वह मल्लप्पा, मल्लि सागर भी बन गए इसी ज्ञान की बदौलत; यही सबसे बड़ा ज्ञान है। एक के पास में ये सब चीजें हैं। जो एक है वह स्थिर है और दो है तो अस्थिर है। एक है तो निर्मल है और दो हो गया तो? बोली? समल हो गया, मलिन हो गया। एक है तो स्वाधीन है और दो हो गया तो? पराधीन है। एक यानी आत्मा और दो यानी शरीर। अब आपको दूसरे के पास रहना है तो, दुनिया में रहना होगा और अपने पास रहना है तो मोक्ष में रहना होगा। जहाँ आपको रहना हो वहाँ रहना, बस ध्यान यह रखना कि हमें दुनिया में रहकर के भी अगर इस दुनिया से अपने आप को बचाना है, तो हम एक के पास रहें और एक यानी? आत्मा। यह बच्चों को बालबोध में पाठशाला में भी पढ़ाई जाती है। एक- आत्मा, दो- राग द्वेष, तीन- लोक; यहाँ से गिनती शुरू होती है। एक- आत्मा, यह गिनती मत भूलना। उस आत्मा के निकट रहने से यह गिनती आपकी बढ़ेगी नहीं जो संसार की है और यह गिनती अपने आप एक पर ही समाप्त हो जाएगी। इसी भाव के साथ में यहाँ पर कहा गया- हम इन दो चीजों में भी एक चीज को अपनाएँ जो स्थिर है, निर्मल है और स्वाधीन है। इसलिए धर्म करना ही हमारे लिए उपयोगी है और वही हमारे लिए रक्षक है।

गाथा: 95

गुणरूप वैभव से संपन्न व्यक्ति के पास ही धर्मरूपी रत्न होता है

जह चिंतामणि-रयणं, सुलहं ण हु होइ तुच्छ-विहवाणं।
गुण-विहव-वज्जियाणं, जियाण तह धम्म-रयणं पि ॥95॥

अन्वयार्थ- (जह) जिस प्रकार (तुच्छ-विहवाणं) तुच्छ, वैभव वाले 'गरीब व्यक्ति' के लिए (चिंतामणि-रयणं) चिंतामणि, रत्न (सुलहं) सुलभ (ण) नहीं (होइ) होता है 'ठीक' (तह) उसी प्रकार (गुण-विहव-वज्जियाणं जियाण) गुणरूपी, वैभव से, रहित, जीवों के लिए (पि) भी (हु) नियम से (धम्म-रयणं) धर्मरूपी, रत्न (सुलहं) सुलभ (ण) नहीं (होइ) होता है ॥95॥

पुण्यवानों को ही चिन्तामणि रत्न सुलभ होता है

वैराग्य शतक ग्रन्थ राज के वाचन के इस क्रम में आज गाथा नम्बर 95 पढ़ते हैं।

जह चिंतामणि-रयणं, सुलहं ण हु होइ तुच्छ-विहवाणं।
गुण-विहव-वज्जियाणं, जियाण तह धम्म-रयणं पि ॥95॥

आचार्य कहते हैं...जैसे चिन्तामणि रत्न सुलभ नहीं होता है 'तुच्छ-विहवाणं' जो तुच्छ वैभव को धारण करने वाले हैं उनके लिए चिन्तामणि रत्न सुलभ नहीं है। तुच्छ वैभव का मतलब होता है जिनके पास में पहले से ही दरिद्रता है उन्हें चिन्तामणि रत्न भी सुलभता से प्राप्त नहीं होता है। उदाहरण इसलिए दिया जा रहा है कि जो कुछ भी हमें बहुमूल्य वस्तु प्राप्त होती है वह बहुमूल्य वस्तु भी जो मूल्यवान लोग हैं उन्हीं को प्राप्त होती है। बहुमूल्य वस्तुओं की प्राप्ति भी पुण्यवान जीवों को होती है, गुणवान जीवों को होती है। जो व्यक्ति जन्म से ही दरिद्रता को प्राप्त है उसके लिए यह निश्चित होता है कि वह पुण्यवान नहीं है और जो पुण्यवान नहीं होता तो उसे ऐसे रत्नों की प्राप्ति भी नहीं हो पाती। यूँ कह सकते हैं आप कि पैसे वालों को ही बड़ी-बड़ी चीजें मिलती हैं, धन वालों को ही रत्न मिलते हैं और धन वालों को ही और धन की वृद्धि होती है और ऐसा मानने में कोई बाधा भी नहीं है कि धन से धन बढ़ता है और ज्ञान से ज्ञान भी बढ़ता है। जिसके पास में जो होता है वह उसे कहीं न कहीं अपने पुण्य से प्राप्त होता है और उसी पुण्य को जब वह बढ़ाता चला जाता है, तो उसे और अधिक लाभ होते चले जाते हैं। आज के समय में इस तरह के दृश्य आपको देखते हुए मिलेंगे कि जो लोग



किसी भी तरह से अपनी पूंजी लगा पाते हैं वही पूंजीपति बन पाते हैं। पूंजीपति बनने के लिए थोड़ी पूंजी अपनी भी लगानी पड़ती है। पूरा का पूरा loan से काम चलाने में दिक्कत आ जाती है और कभी-कभी अगर अपना पुण्य नहीं होता है तो फिर loan भी चुकाना मुश्किल हो जाता है।

पुण्य से ही धनवान और वैभववान होगा

इसलिए आचार्य कहते हैं कि अगर किसी को चिन्तामणि जैसे रत्न की भी प्राप्ति होगी तो वह जीव भी बहुत पुण्यवान होगा और वह जीव जो पुण्यवान होगा तो नियम से वह धनवान होगा, वैभववान होगा। जिन भी लोगों को यह धन और वैभव की प्राप्ति न्याय अर्जित धन के माध्यम से सहजता में होती है उन्हीं को पुण्यवान कहना चाहिए। यूँ नहीं कि जो कोई भी धन वैभव की अधिकता में है वह सभी पुण्यवान है क्योंकि धन वैभव की अधिकता तो लोग न जाने कितने तरह के अन्याय के उपायों से कर रहे हैं और कर लेते हैं। लेकिन यहाँ पर उन्हीं के वैभव की बात कही जा रही है जो न्यायार्जित धन से अपनी वृद्धि करते हैं। धन की उस वृद्धि होने पर चिन्तामणि रत्न को भी प्राप्त करना उनके लिए सुलभ नहीं होता लेकिन अगर सुलभ होगा तो उन्हीं के लिए होगा। अचानक से lottery हर किसी की खुलती नहीं है और ऐसा भी बहुत कम होता है कि कोई व्यक्ति दरिद्री हो और एकदम से अचानक से वह करोड़पति बन जाए। यह अपने पुरुषार्थ करते हुए जब वह व्यक्ति आगे बढ़ता है, अपनी बुद्धि का उपयोग करते हुए अपनी मेहनत को लगन के साथ में आगे बढ़ते हुए जब अपने लक्ष्य की ओर जाता है तब उसके साथ में ऐसी संभावनाएँ बन जाती हैं। लेकिन सबके साथ में भी वह नहीं होता और जिसके साथ में हो जाता है समझना चाहिए कि उसके पुण्य के उदय में उसे अच्छा पुरुषार्थ करने का और अच्छा करने का भी एक मौका मिला। यह बात निश्चित है कि जब तक आपके पल्ले में पुण्य नहीं होगा तब तक आपको मेहनत करने पर भी कुछ प्राप्त नहीं होगा।

पुण्य के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए

इसलिए मेहनत दोनों तरह की करनी चाहिए पुण्य को प्राप्त करने की भी और वस्तुओं को प्राप्त करने की भी। ज्यादातर लोग मेहनत एकतरफा करते हैं इसलिए जीवन में असंतोष रहता है, अभाव रहता है। मेहनत दोनों तरह की होनी चाहिए...पुण्य की प्राप्ति के लिए भी पुरुषार्थ किया जाता है और भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए भी पुरुषार्थ करना पड़ता है। यह जितना भी आपके सामने कहा जा रहा है कि जिस तरह से यह चिन्तामणि रत्न दुर्लभ है, तुच्छ वैभव वालों के लिए, वैसे ही गुणों का वैभव जिनके पास में नहीं है उनके लिए उन जीवों के लिए धर्म रूपी रत्न भी दुर्लभ है। कितनी बड़ी बात यहाँ कही! यह धर्म भी एक रत्न है।

धर्मरूपी रत्न आत्मिक वैभव के लिए है

चिन्तामणि रत्न आपके बाहरी वैभव के लिए है और धर्म रूपी रत्न आपके आत्मिक वैभव के लिए है और यह धर्म रत्न भी हर किसी को उपलब्ध नहीं होता। यह भी हर किसी को प्राप्त नहीं होगा, इसके लिए भी व्यक्ति चाहिए लेकिन धर्म रत्न की प्राप्ति के लिए वैभववान धनवान व्यक्ति नहीं चाहिए, गुणवान व्यक्ति चाहिए। गुण रूपी वैभवों से जो रहित होगा उसके लिए धर्म रत्न भी दुर्लभ हो जाता है और जिसके पास में गुण होते

हैं वह धर्म को भी प्राप्त कर लेता है। अब आप देखो धर्म रत्न की प्राप्ति करने के लिए आदमी के अन्दर गुणों के होने की आवश्यकता यहाँ पर बताई गई है।

गुण क्या होते हैं?

गुण क्या कहलाते हैं? जो भी अच्छे भाव हैं, वह सब आदमी के गुण कहलाते हैं। मानो ईमानदारी भी एक गुण है, लगन भी एक गुण है, किसी भी काम को मेहनत के साथ करना भी एक गुण होता है। सच्चाई के साथ चलना भी एक गुण होता है और हमेशा न्याय पूर्वक अपनी विचारधारा बनाए रखना भी एक गुण होता है। अच्छे वचन बोलना भी एक गुण होता है और दया धर्म के साथ में अपने और दूसरों के लिए अच्छा सोचना भी एक गुण होता है। ये सब गुण कहलाते हैं। जिसे हम कहते हैं quality और यह quality जिसके पास होती है वही कहलाता है qualitative person और उसी person के अन्दर यह धर्म रत्न शोभित होता है उसी को यह धर्म रत्न की प्राप्ति होती है। अब आप धर्म की प्राप्ति करने के लिए जब भी सोचते हो तो हर किसी को धर्म प्राप्ति कराने की इच्छा करते हो। लेकिन आचार्य क्या कहते हैं? यह धर्म भी एक बहुमूल्य रत्न है। यह भी एक ऐसा बहुमूल्य पदार्थ है कि इसकी प्राप्ति की योग्यता हर किसी को नहीं होती और वह योग्यता होगी तो वह योग्यता के लक्षण उसको दिखाई दे जाएँगे। भीतर से उसके अन्दर कुछ न कुछ भाव, उसके गुणों का किसी न किसी तरह से प्रदर्शन, उसके अन्दर का भाव, लोगों के सामने आ जाएगा और उसके अन्दर अगर गुण होंगे तो वह धर्म धारण करने की योग्यता बना पाता है। मतलब कि बिल्कुल ही दुर्गुणी-निर्गुणी व्यक्ति में धर्म नहीं आता है।

धर्मधारण की योग्यता गुणी व्यक्ति में होती है

जिस व्यक्ति के अन्दर न कोई विनम्रता हो, न कोई सरलता हो, जिस व्यक्ति के अन्दर न किसी भी तरह की ईमानदारी का भाव हो, उस व्यक्ति के अन्दर कभी भी धर्म आने का कोई chance नहीं होता है। धर्म रत्न उसी के लिए संभाला जाता है, जो इन गुणों में कहीं न कहीं अपने अन्दर महसूस करता हो कि मेरे पास यह गुण है। यह बात अलग है कि कभी-कभी आपको बाहर से देखने वाला दुर्गुणी व्यक्ति भी ऐसा लगेगा कि इसके पास में कोई गुण नहीं है लेकिन कभी-कभी वह भी धर्म रत्न हासिल कर लेता है। वह इसलिए कि उसके पास में गुण तो है लेकिन वह किसी संगति के कारण से किन्हीं बुरी बातों में पड़ गया, किन्हीं बुरे कामों में पड़ गया और उस कारण से जब उसे कभी कभार कोई निमित्त मिल जाता है कोई संयोग मिल जाता है तो वह अपने गुणों को प्रकट भी कर लेता है और वह गुणवान बन भी जाता है। अब आप सोचो... कोई चोर हो, जुआ खेलने वाला हो, हर तरीके की गंदी आदतों से हमेशा घिरा रहता हो ऐसा व्यक्ति भी कभी-कभी साधुओं की संगति में आकर के सुधर जाता है। आप कहोगे वह तो दुर्गुणों से भरा हुआ था, उसके पास तो कोई भी गुण नाम की चीज नहीं थी, वह तो व्यसनी था, सब प्रकार के गंदे कामों में वह लिप्त था और वह कैसे सुधर सकता है? उसे धर्म रत्न की प्राप्ति कैसे हो सकती है? आचार्य कहते हैं... गुण उसके अन्दर भी होते हैं।

सभी व्यक्तियों में कोई न कोई गुण अवश्य होते हैं

आपको किसी समय पर वह गुण न दिखाई दे, उसके आचरण में किसी भी तरह का सही भाव दिखाई न दे लेकिन सबके भीतर कोई न कोई गुण अवश्य होते हैं। गुणों से रहित कोई व्यक्ति नहीं होता। चोर लुटेरों में भी गुण होते हैं और उनके अन्दर का वह गुण प्रकट करने का उन्हें कभी-कभी अवसर नहीं मिलता और जब अवसर मिल जाता है तो उनके गुण भी प्रकट हो जाते हैं। चोर लुटेरे भी ईमानदारी से चोरी करते हैं, चोर लुटेरे भी सत्यवादी होते हैं। चोर लुटेरे भी जिस तरह की चोरी करके अपने सरदार को देते हैं उसमें जितना हिस्सा मिलना चाहिए, वह उतना हिस्सा ही पाते हैं और सरदार के साथ बिल्कुल वफादारी के साथ काम करते हैं। यानी सरदार से तो उनकी वफादारी है ही न! उनकी श्रद्धा आपके प्रति नहीं है कोई बात नहीं, धनिकों के प्रति नहीं है कोई बात नहीं लेकिन अपने सरदार के प्रति श्रद्धा तो है गुण तो है। जब वह अपने सरदार के पास जाएँगे तो उसी अदब से पेश आयेंगे, उसी नम्रता से पेश आयेंगे जिस तरह से एक गुणवान व्यक्ति अपने बड़ों के समक्ष पेश आता है तो उनके अन्दर भी नम्रता है...यह भी गुण है।

दुर्गुणी व्यक्ति के अन्दर भी गुण होता है

धन को लाना, धन को चुराना और चुराने के लिए भी ऐसी जगह से चुराना जहाँ पर उस धन को किसी न किसी तरह के अन्याय और असत्य के माध्यम से अर्जित किया गया है, ऐसे धन को चुराने का भी संकल्प कई डकैतों का रहता है, चोरों का रहता है। वह उस घर में चोरी नहीं करेंगे जहाँ पर न्याय से धन आता है। वह उस घर में चोरी नहीं करेंगे जहाँ पर लोगों के लिए धन का उपयोग सही ढंग से किया जाता है। वह चोरी वहाँ करेंगे जहाँ पर लोग धन को अन्याय से कमाते हैं दूसरों को दुःख देकर के कमाते हैं और फिर उसका दुरुपयोग भी करते हैं। ऐसे लोगों को देखकर के जब कोई चोरी भी करता है तो उस चोर के अन्दर भी कुछ गुण होते हैं। वह देखता है कि हमें कहाँ चोरी करना है? अगर चोरी करने गया है तो सिर्फ चोरी ही करता है। अगर घर में कोई छोटा बच्चा है या कोई इस तरह का कोई असहाय व्यक्ति है तो उसके ऊपर वार नहीं करता... ऐसे भी गुण होते हैं चोरों में। उसे कोई अकेली महिला भी मिल गई तो वह उसके ऊपर भी प्रहार नहीं करेगा उसके साथ भी कोई जबरदस्ती नहीं करेगा। उसका कार्य केवल पैसा लेने का है तो सिर्फ पैसा ही लेता है, यह चोरों के आदर्श होते हैं। हर किसी चोर के हो, नहीं कह सकता और यूँ नहीं कहना कि महाराज आप चोरों की प्रशंसा क्यों कर रहे हो? मैं आपको यह बता रहा हूँ कि दुर्गुण जो आपको दिखाई देते हैं वह दुर्गुण जरूरी नहीं है कि आदमी के अन्दर वही गुण हमेशा बने रहते हों और वह दुर्गुण किसी कारणवश भी हो सकते हैं। जब उसको सत्संगति मिल जाती है तो वह अपने दुर्गुणों को छोड़ भी देता है। धर्म रत्न की प्राप्ति कर भी लेता है।

सत्संगति सबसे बड़ा गुण है

आचार्य शान्ति सागर जी महाराज के समय पर एक मुनि महाराज हुए जिनका नाम था...पाय सागर महाराज। जब आप उनका कभी जीवन चरित्र पढ़ो और वह जीवन चरित्र उनका तो अलग से क्या लिखा मिलेगा। आप चरित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्ति सागर जी का कभी ग्रन्थ पढ़ो तो आपको मिलेगा। उन्होंने अपने बारे में खुद बताया और दुनिया उनके बारे में उस समय पर जानती थी कि उनसे ज्यादा अपराधी,

व्यसनी कोई नहीं था। यानी वह हर बुरे काम में लिप्त थे लेकिन आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के प्रभाव से उनमें ऐसा बदलाव आया कि वह अपने आप को इतना समर्पित कर दिए, इतना समर्पित कर दिए कि उन्होंने एक दिन मुनि धर्म को अंगीकार कर लिया और उन्होंने अपनी आत्मा में सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र के रत्नों की प्राप्ति कर ली। अब आप सोचो यह धर्म रत्न किसको मिलते हैं? मिलेंगे तो गुणवान व्यक्ति को ही मिलेंगे लेकिन आप जिसे दुर्गुणी समझ रहे हैं वह जरूरी नहीं है कि वह दुर्गुणी ही हो, व्यक्ति के अन्दर गुण रहते हैं। किसी बात से या किसी प्रयोजन से उसे कुछ बुरे काम कर जाने पड़ जाते हैं इसका मतलब यह नहीं है कि वह आदमी भीतर से ही बुरा होता है। यह शिक्षा भी आप को हमेशा जैन धर्म से लेते रहना चाहिए। इसलिए जैन धर्म में कहा जाता है...पापी से पापी व्यक्ति भी हो उसको भी आप सन्मार्ग पर ला सकते हैं। आप उसको भी सम्बोधन दे सकते हैं और उसको भी अच्छे वचन सुना कर के उसे सन्मार्ग पर लाकर के उसे आगे धर्म प्राप्ति के लिए प्रेरित कर सकते हैं। दुर्गुण का मतलब, गुणों के वैभव से रहित होने का मतलब वह होता है कि जब व्यक्ति धर्म की बात को सुनना भी पसन्द न करे। बुरे लोग वह कहलाएँगे जो धर्म की मजाक उड़ाते हो, बुरे लोग वह कहलाएँगे जो सच्चे धर्म की बात सुनना भी पसन्द नहीं करते हो।

जैन कुल में जन्म लेने मात्र से गुणवान नहीं हो जाते

बुरे लोग वह कहलाएँगे, जो सच्चे धर्म को देख कर के उसे एक ढोंग ही समझते हो। लेकिन आपके घरों में भी ऐसे बुरे लोग मिल जाएँगे जो जैन कुल में जन्म लिए हैं लेकिन वह धर्म क्रियाओं को सिर्फ ढोंग समझते हैं। मन्दिर जाना सिर्फ एक ढोंग समझते हैं। उपदेश सुनना सिर्फ एक दिन भर की एक क्रिया समझते हैं और किसी भी प्रकार के उपदेशों से उन्हें कोई भी लगाव उत्पन्न नहीं होता। ऐसे ढोंगी आपके घरों में भी बैठें होंगे लेकिन आप उन्हें दुर्गुणी नहीं कहेंगे। आप जब भी दुर्गुणी कहेंगे किसको कहेंगे? किसी दूसरे घर वाले को कहेंगे, दूसरे धर्म वाले को कहेंगे। जबकि दूसरे धर्म का व्यक्ति अगर कभी भी उपदेश सुन ले, किसी भी तरह से मुनिराज के दर्शन कर ले, किसी भी तरह से कोई भी बात उसके घर अन्दर बैठ जाए तो वह बहुत जल्दी उसे स्वीकार कर लेता है और आपके घरों में ऐसे पढ़े बैठे होंगे, सब पढ़े कहलाते हैं, जिन पर कोई असर नहीं पड़ता, वह बैठे होंगे। ऐसे भी लोग होंगे जिन्होंने चातुर्मास में एक बार भी आकर के मुनि महाराज के दर्शन न किए हो, उनके चरण स्पर्श भी न किए हो, उनके निकट बैठ कर के उन्हें ढंग से नमोस्तु भी न किया हो, दो बातें भी उनकी न सुनी हो...ऐसे भी पढ़े ढूँढेंगे तो बहुत सारे मिल जाएँगे। मिलेंगे कि नहीं मिलेंगे? जैनियों की बात कर रहा हूँ। कईयों को तो पता भी नहीं होगा कि कहाँ क्या चल रहा है? आप समझें कि हम अपने घर के लोगों को कभी दुर्गुणी नहीं समझते। जैन कुल में जन्म ले लिया तो यह समझते हैं कि वह तो बहुत पुण्यवान है बहुत गुणवान हैं। जिन्हें अपनी समाज में घटित होने वाली गतिविधियों से कोई लेना देना नहीं और जिनके अन्दर किसी भी तरह का, गुरुओं का लाभ लेने का भाव नहीं, उपदेशों का लाभ लेने का भाव नहीं, आप उन्हें केवल जैन होने मात्र से गुणी कैसे कह लो? उससे अच्छे तो कभी-कभी चोर उचक्के समझ में आते हैं।

दुर्गुणी लोगों को अच्छे माहौल में लाना चाहिए

दुर्गुणी लोग जो दुनिया में दिखाई देते हैं अगर उन्हें कभी थोड़ा सा भी बैठने का, निकट में बैठने का माहौल मिल जाए या उन्हें कभी निकट में बैठने का अवसर मिल जाए और उन्हें एक बात भी अच्छी सी बता दी जाए तो वे बड़े आसानी से स्वीकार कर लेते हैं। आप समझो, यहाँ पर उन्हीं गुणों की बात कही जा रही है। गुणवान व्यक्ति होगा, कहीं पर भी रहेगा धर्म ग्रहण कर लेगा और कर लेते हैं लोग। इसलिए कहा जा रहा है कि जिन जीवों में गुण होंगे, वह तो धर्म को ग्रहण कर लेंगे लेकिन जिनमें गुण नहीं होते हैं वह कभी धर्म ग्रहण नहीं कर पाते। उनके लिए धर्म रत्न दुर्लभ हो जाता है।

अपने बच्चों को धर्म के स्थान पर लाना चाहिए

अब ऐसे भी कई आपके बच्चे होते हैं, जिन्हें मुनि महाराज के सामने आने में ही भय लगता है या कहो कि डरते हैं। क्यों डरते हैं? आना नहीं चाहते। उनका डर आपने निकाला क्यों नहीं? उनके डर को आपने समझा क्यों नहीं कि यह किस बात से डरते हैं? जब तक उनका डर निकलेगा नहीं तब तक उनके अन्दर जो छुपा हुआ गुण है, वह प्रकट होगा नहीं। अब उनका डर निकालना आपकी पहली जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वह सामने आने से क्यों बचते हैं? क्यों कतराते हैं, क्यों डरते हैं? यह जब आप उनके भीतर का एक डर दूर करोगे, तब जाकर के उनका वह गुण प्रकट होगा और वह फिर उस धर्म रत्न को ग्रहण करने के योग्य बनेंगे। इसलिए धर्म रत्न अपने आप में महंगा रत्न है और इसके लिए भी गुणवान होना जरूरी है। अन्यथा आप देखोगे अगर कोई गुणवान नहीं है और धर्म रत्न को ग्रहण कर भी लेता है तो भी वह धर्म का पालन नहीं कर पाता है। मानो अगर आप में उदंडता है, अकखड़ता है गुरुओं के विनय करने का भाव नहीं है, हमेशा दूसरों के प्रति दुर्व्यवहार करने का भाव है, कठोर वचन बोलने का भाव है, दूसरों पर हमेशा व्यंग्य कसने का भाव है...यह सभी दुर्गुण आपके अन्दर हैं और फिर भी अगर आप धर्म सुन तो रहे हो, लेकिन जरूरी नहीं कि आप उस धर्म रत्न को ग्रहण कर पाओ। अब दोनों चीजें ध्यान में रखना वह भी लोग हैं जो धर्म में हैं लेकिन धर्म रत्न को ग्रहण नहीं कर पा रहे हैं और वह भी लोग हैं जिनके पास में धर्म का माहौल नहीं है लेकिन धर्म रत्न ग्रहण कर सकते हैं उन्हें थोड़ा सा वातावरण मिले तो उनके परिणाम बहुत बदल जाते हैं।

चातुर्मास में कुछ न कुछ नियम तो होना चाहिए

ऐसे भी कुछ लोग होते हैं, जो अपने आप मन ही मन में भले ही रोजाना दर्शन करने न आ पाते हो लेकिन अपने ही मन में यह नियम ले लेते हैं कि जब तक महाराज चातुर्मास यहाँ कर रहे हैं हम इतने व्यसनों का त्याग कर देते हैं, हम यह चीजों का सेवन नहीं करेंगे, ऐसे भी बहुत से लोग होते हैं। वह हमसे भी कहने नहीं आयेंगे लेकिन अपने मन में कर लेंगे।

दुर्गुण और सुगुण होना भीतरी भावों से सम्बन्ध रखता है

दुर्गुण और सुगुण की परिभाषा आपके देखने में जैसी आए वैसी होती हो हम ऐसा नहीं कहना चाहते हैं। दुर्गुण और सुगुण की परिभाषा एक अलग ही है और वह भीतरी भावों से सम्बन्ध रखने वाली परिभाषा है

और यह भावों का सम्बन्ध व्यक्ति ही जानता है। ऐसे बहुत से व्यक्ति होते हैं जिन्हें चातुर्मास से पहले इन्तजार रहता है कि महाराज का चातुर्मास यहाँ होगा तो हम इस तरह के नियमों का पालन करेंगे और कर लेते हैं। वह सामने बैठे हुए भी लोग हो सकते हैं और जो सामने नहीं हैं हो सकता है कि वह एक बार भी चातुर्मास में दर्शन करने न आए हो लेकिन नियम का पालन कर रहे हो। संभावनाएँ सब होती हैं और सब लोग समय-समय पर अपना पत्ता खोलते हैं। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो शहर में जब तक रहते हैं तब तक नहीं आते और जब विहार होगा तब सामने आयेंगे, ऐसे भी लोग होते हैं। सबकी अपनी अपनी मानसिकताएँ होती हैं लेकिन हम बहुत जल्दी किसी के लिए यह कहने की जरूरत न करें कि यह व्यक्ति दुर्गुणी है, यह व्यक्ति सुगुणी है। जिसके अन्दर गुण होगा वह बाहर से दिखाई न भी दे तो भी वह अपने गुणों के भाव में रहते हुए धर्म कर जाता है। इसलिए आचार्य कहते हैं धर्म रत्न किसको कब कहाँ मिल जाए? कुछ कहा नहीं जा सकता। बस गुण होने चाहिए।

गुण के साथ श्रद्धा और समर्पण से परिणाम बदल जाते हैं

आपके अन्दर सबसे पहला गुण है तो भीतर से आपके अन्दर थोड़ी सी श्रद्धा होनी चाहिए, थोड़ा सा समर्पण का भाव होना चाहिए। यह समर्पण का भाव धीरे-धीरे बढ़ता हुआ कितना बढ़ सकता है? आप सोचो कि एक व्यसनी व्यक्ति को भी मुनि महाराज बनाने में या बनने में कोई आपत्ति नहीं आती है और जो लोग आपत्ति दर्ज करते रहते हैं वह आपत्ति दर्ज करते ही रहते हैं और जिनको जो करना होता है वह कर जाते हैं। जो सोच भी नहीं सकते लोग कि इतना व्यसनी व्यक्ति कभी एक चीज का त्याग नहीं कर सकता, वह मुनि व्रतों का पालन कर ले और बाद में वह एक आचार्य भी बन गए। आचार्य पाय सागर के नाम से विख्यात हुए। कहते हैं कि वह अपने आप में ऐसा कोई अपराध नहीं, ऐसा कोई कृत्य नहीं जो उन्होंने न किया हो। उसके बावजूद भी आचार्य शान्ति सागर जी महाराज को सब पता था और फिर भी उन्होंने दीक्षा दी। अगर वह व्यक्ति सतना का होता तो क्या होता है यह बताओ? वह सतना में अगर आचार्य महाराज दीक्षा दे रहे होते तो क्या होता है यह बताओ? तुम सब विरोध में खड़े हो जाते महाराज जी आप क्या कर रहे हो! आप यही कहते कि महाराज यह दीक्षा यहाँ मत दो, आप किसी दूसरे शहर में दे देना, मेरे सामने सामने, जो ये दुनिया की बुराई इसके अन्दर है, कल तक जो सब बुराईयाँ कर रहा था आज आप उसे दीक्षा दे रहे हो, हमें इसके चरणों में लेटना पड़ेगा। हम इसके सामने हाथ जोड़ के नमोस्तु करेंगे। कैसे आपका मन बनेगा बताओ? हम अपने परिणामों को कभी भी बदलना नहीं चाहते, सामने वाला अपने परिणामों को बदल भी रहा हो तो हम उसे स्वीकार करने की भी हिम्मत अपने अन्दर नहीं रख पाते हैं।

अपने अन्दर बुराईयाँ शाश्वत नहीं हैं वह बुराईयाँ आप बदल सकते हैं

सोचो गुणवान कौन है? दुर्गुणी कौन है? किसी के बदलाव को हम स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं और जिसके अन्दर बदलाव आ रहा है वह अपने आपको बदल रहा है वह स्वीकार कर रहा है कि नहीं! कल तक मैंने बहुत गलतियाँ की थी, आज से मैं कोई भी गलती नहीं करूँगा। ऐसे भी लोग हैं मैं बता रहा हूँ आपको जिनकी कल दीक्षा होने वाली है और आज वह cigarette पी रहे हैं, ऐसे भी लोग हैं। लेकिन पी ली तो पी ली बस! कल के बाद फिर जीवन में नहीं पियेंगे... नहीं पियेंगे मतलब फिर नहीं पियेंगे। आज भी वह

तम्बाकू खा ली यानी खा ली! आज भी cigarette पी ली, पी ली लेकिन कल से अब नहीं पियेंगे, नहीं पियेंगे पक्का...उन्होंने फिर जीवन में नहीं पी। यह धर्म वह चीज स्वीकार करता है कि आपके अन्दर कमियाँ, बुराइयाँ कभी भी रही हो लेकिन आप जिस दिन से अच्छा बनने की कोशिश करेंगे आपको अच्छा स्वीकार कर लिया जाएगा। क्योंकि धर्म कहता है...आपके अन्दर की वह बुराइयाँ शाश्वत नहीं हैं, वह बुराइयाँ आप बदल सकते हो। बस आप बदलने का मन बनाओ और जिस दिन आप उन बुराइयों को बदल लो, उसी दिन आपकी अच्छे लोगों में गिनती होने लग जाएगी। यह धर्म इतना खुला वातावरण हमेशा बनाए रखता है और यह वातावरण ऐसा खुला आपके दिमाग में भी रहना चाहिए। आपके दिमाग खुले हुए नहीं रहते हैं। धर्म की किताबों में यह वातावरण हमेशा खुला रहता है। किसी ने कोई अपराध कर दिया, किसी से कोई गलती हो गई, वह गलती होने के बावजूद भी स्वीकार लेना कि बेटा कोई बात नहीं अगर वह गलती का तुम्हारे अन्दर पछतावा है और तुम इसे स्वीकार करना चाहते हो और उसका प्रायश्चित्त करना चाहते हो तो आज भी तुम्हारे लिए दरवाजा खुला हुआ है, इस मार्ग पर चलो।

कर्म के फल और पुण्य का उदय

तूकारो! क्या हुआ? उस व्यक्ति के पास पहुँच गई, जहाँ उसको घोर यातनाएँ मिल रही हैं, कष्ट मिल रहे हैं, मिल रहे हैं और उन कष्टों में भी उसे जीना पड़ रहा है। कर्म है, कर्म के फल आदमी को कई बार अपनी बुद्धि से अपने कुछ, कहना चाहिए...बुरे कामों के फल से उसे भोगने पड़ जाते हैं ! पड़ गए लेकिन उसका मन क्या था? मैं यहाँ कैसे आपत्ति के दिनों में इन दुर्दिनों में अपना समय निकाल रही हूँ अब मेरा यहाँ से निकलना कैसे होगा? लेकिन उसके अन्दर भी गुण भी हैं और दुर्गुण भी हैं। गुण तो सब कुछ है...उसके पास में कितना शील का गुण था, जिसके कारण से वह उन चोरों के सरदारों से भी बच कर के आ गई, उसकी रक्षा वन देवी ने कर ली। किस गुण के कारण से? शील गुण के कारण से और एक दुर्गुण है वह क्या? हठी है। तूकारो 'तू' शब्द सुन नहीं सकती है, यानी कोई भी उससे अगर जो बुरा लग रहा है, वह कहे तो उसे सुनकर के उसका क्या बोलते हैं? खून खौल जाए और इधर अपने शील की रक्षा करने के लिए उसने कैसा कायोत्सर्ग किया? कैसे उसने भगवान का स्मरण किया? कि वन देवी ने आकर के उसकी रक्षा कर ली। अब वहाँ से तो बच गई लेकिन फिर एक दुष्ट के हाथ में लग गई और वह उसको खिला भी रहा है, उसके बाल भी नोच रहा है और उसकी मालिश भी कर रहा है। उसकी नसों से खून भी निकाल रहा है और उसको लाक्षा तेल भी लगा रहा है। यह दुष्टता के साथ में वह उसको अपने पास में रखे हुए हैं उसका पालन कर रहा है और वह अपना व्यापार चला रहा है और ऐसा करते करते कई दिनों के बाद में उसका जो भाई था, वह किसी कारण बस उस गाँव से निकला, जहाँ पर वह रुकी हुई थी और संयोग से उसे उस घर में आना हुआ, जहाँ पर उसकी यह स्थिति बनी हुई थी। वह भाई ने जब इस तरह से देखा कि यह मेरी बहन यहाँ पर है और उसे यह देख कर के अंदाजा लगाया कि यहाँ कैसे आई होगी? उसने किसी भी तरह से उस बहन को उस घर से निकालने की भरपूर कोशिश की और कोशिश में वह सफल हो गया। वह अपनी बहन को लेकर के घर चला गया। यह एक संयोग की बात, उसका पुण्य उदय आया उसे अपना घर मिल गया।



पुण्य का उदय जब आता है तो सब अच्छा होता है

अब घर मिल गया तो घर में ही रहना नहीं होता है, घर में रहने का मतलब है समाज में रहना। हर गाँव में, हर नगर में एक समाज होती है, समाज में रहना है घर में रहना है। अब क्या होता है? इतने दिनों से कहाँ गई थी? कहाँ-कहाँ रह कर के आ गई? कैसे इसके दिन निकले थे? इसको घर में रख लिया। अब इसको कैसे स्वीकार किया जाएगा? समाज इसको स्वीकार करेगी कि नहीं करेगी, ये सब बातें आती हैं और इस तरह की बातें आज से पहले और ज्यादा भी होती थी क्योंकि पहले तो समाज की पंचायतें होती थी, गाँव की पंचायतें होती थी। आज तो लोगों को पंचायतों से भी कोई मतलब नहीं है। तुम अपनी पंचायत अपने पास रखो, हमारी पंचायत हमारे पास में है। आज किसी को किसी की पंचायत से कोई मतलब नहीं है। लेकिन पहले लोगों के लिए यह सब जिम्मेदारियाँ होती थी कि अगर किसी भी गाँव में, किसी भी नगर में, किसी भी व्यक्ति ने अपनी समाज के अन्दर कुछ भी गलत किया है या उसके चरित्र पर किसी भी तरह का किसी को संदेह हुआ है तो उसका निवारण किया जाता था और ऐसी स्थिति में भी उसके लिए किसी न किसी तरह का प्रायश्चित आदि देकर के उसे धर्म मार्ग पर लगाया जाता था और उसके साथ भी वही हुआ। उसे घर में तो रहने को मिल गया लेकिन धीरे-धीरे उसे समाज में भी रहने में दिक्कत तो आई लेकिन समाज में वह धीरे-धीरे रहने लग गई और उसे स्वीकारता मिल गई और वह फिर से अपना वह जीवन अच्छे से जीने लग गई। उसके बाद उसे एक बार मुनि महाराज के जब उसे दर्शन हुए कभी तो उसने एक ही व्रत अपने जीवन में उतारने के लिए लिया था, एक व्रत लिया था उसने।

मुनि महाराज से कोई न कोई नियम अवश्य लेना चाहिए

महाराज सबके लिए अलग-अलग नियम दे रहे थे, सबको अलग-अलग व्रत लेने का भाव आ रहा था। कोई रात्रि में भोजन नहीं करने का व्रत ले रहा था, कोई रोजाना मन्दिर जाने का व्रत ले रहा था, कोई रोजाना शाकाहार करने का व्रत ले रहा था, कोई दिन में खाने का व्रत ले रहा था, कोई केवल कुछ फल कुछ सब्जियाँ का नियम बना रहा था, कोई दो प्रतिमा के व्रत ले रहा था, कोई एक प्रतिमा के व्रत ले रहा था सब अपने अलग-अलग व्रत ले रहे थे, कोई आलू प्याज नहीं खाने का व्रत ले रहा था, कोई कटहल बेगन नहीं खाने का व्रत ले रहा था, कोई तम्बाकू सिगरेट नहीं पीने का, खाने का व्रत ले रहा था। उसने क्या व्रत लिया? उसने मुनि महाराज से एक व्रत लिया महाराज! मैं आपके सामने आज संकल्प करती हूँ कि मैंने अपने जीवन के अनुभव से यह पाया है कि मैंने जो भी दुर्दिन देखे हैं, मेरी जो भी दुर्दशा का मुझे अनुभव हुआ है उसका एक मात्र कारण था...मेरा क्रोध और मैं आज आपके चरणों में संकल्प लेती हूँ कि मैं जीवन में कभी भी क्रोध नहीं करूँगी, मेरे सामने कितना ही विपरीत वातावरण क्यों न आ जाए। बस उसने एक नियम लिया मुनि महाराज से, कोई खाने पीने के नियम नहीं लिए उसने और यह नियम आजकल कोई नहीं लेता है। इसीलिए जितने भी लोग हमारे पास आते हैं महाराज कोई नियम दे दो, कोई नियम दे दो तो हमारे पास वे नियम होते ही नहीं हैं। जो नियम तुम्हें लेना है और जो नियम हमें देना है वह नियम तुम्हें पालना है ही नहीं है इसलिए मैं चुप बैठ जाता हूँ...भैया! ले लो अपने मन से ले लो जो तुम्हें लेना है। अब मना भी क्या करूँ? अगर कुछ अपने मन में सोच कर आए हो तो ले लो आशीर्वाद है। अगर कुछ हमसे पूछना चाहते हो तो हमें यह खाने पीने के नियमों में कोई भी हमें तथ्य सा दिखाई देता नहीं है।

नियम वे लेने चाहिए जिससे भावात्मक शुद्धि हो

नियम वे होने चाहिए, जिससे हमारी चित्त शुद्धि हो, जिससे हमारी भावात्मक शुद्धि बने जिससे हमारी आत्मा पर कोई संस्कार पड़े। आज तक किसी ने कोई नियम लिया कि महाराज मैं कभी जीवन में क्रोध नहीं करूँगा। मेरे जीवन में तो कोई नहीं आया और ऐसा कोई ले भी नहीं सकता। अचानक से कभी गुस्सा आ गई तो, कभी वातावरण विपरीत हो गया और हमारे अन्दर गुस्सा आ गई तो नियम टूट जाएगा। टूट जाएगा ठीक है! लेकिन आपने कभी उस नियम को भी पालन करने का कभी अपने अन्दर सोचा कि मैं ऐसा नियम ले सकता हूँ। मानो अगर आपने नियम ले लिया और नियम आपका एक महीने तक अच्छे से चल गया। एक महीने के बाद मान लो आपको गुस्सा आ गया, गुस्सा ही तो आया लेकिन एक महीने तक आप उसे समझते तो रहे कि मुझे गुस्सा नहीं करना, एक महीना मेरा बिना गुस्से के निकल गया। अब अगर कभी आपके लिए गुस्सा आ गया तो आप उसका प्रायश्चित भी तो ले सकते हो कि महाराज हमसे वह गुस्सा आखिर हो गया। अब मुझे वह प्रायश्चित देकर के उसी नियम में फिर से दृढ़ बना दो तो क्या होगा? जीवन में ज्यादा से ज्यादा आपका वह नियम एक बार, दो बार, तीन बार टूटेगा मुझे लगता है कि जीवन के तमाम वर्षों में वह नियम अच्छे ढंग से पलेगा। इससे बढ़कर के आपकी आत्मा पर और क्या संस्कार पड़ेगा कि हमें किसी पर क्रोध नहीं करना, हमें क्षमा का भाव धारण करना और यह क्षमा ही सबसे पहला हमारा धर्म है। इस धर्म का संस्कार पड़ गया तो उस जीव को कोई पूजा करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इसलिए यह नियम कोई नहीं लेता। अपने आत्म सुधार के नियम कोई नहीं लेता। अपनी बुराइयों को त्यागने के नियम कोई नहीं लेता। बस! आलू नहीं खाएँगे, प्याज नहीं खाएँगे, रात में नहीं खाएँगे, भले ही रात भर लड़ेंगे लेकिन रात में खाएँगे नहीं, रात भर बच्चों को गालियाँ देंगे, पत्नी को मारेंगे, सब करेंगे लेकिन रात में खाएँगे नहीं। पानी छना पिएँगे भले ही किसी के ऊपर गुस्सा आ गई तो एक पूरा कुण्ड का कुण्ड उसके ऊपर लुड़का देंगे लेकिन पानी छना पिएँगे।

वास्तव में धर्म क्या है ?

यह अगर हमारी विचारधारा बनी रही तो यह सिर्फ धर्म का ढकोसलापन कहलाता है। जो व्यक्ति कभी भी धर्म नहीं जानता लेकिन उसके अन्दर भी धर्म अपने आप आने लग जाता है, जब वह समझता है कि वास्तव में धर्म क्या है? धर्म वह जिससे हमें आपत्तियों से बचने का एक मौका मिलता है। वह तुंकारी को यह समझ में आया कि मैं आपत्तियों में क्यों पड़ी? एक अपनी एक हठ की वजह से, एक अपने गुस्से की वजह से और उसी गुस्से के कारण से मेरा कितना अनर्थ हुआ और मैं अपने पुण्य से बचकर आ गई। लेकिन अब मैं यह संकल्प करती कि अपने जीवन में मेरे सामने कुछ भी मिट जाए, कुछ भी हो जाए मैं गुस्सा नहीं करूँगी क्योंकि इसका अनर्थ मैंने देख लिया। उस दिन का वह संकल्प था कि उसने अपने जीवन में वह संकल्प बखूबी निभाया। उसी का परिणाम था कि जब जिनदत्त सेठ उसके घर में आया, एक घड़ा लिया तेल का, वह फूट गया, दूसरा घड़ा लिया वह भी फूट गया, तीसरा लिया वह भी फूट गया और जब उसने यह कहानी अपनी जिनदत्त को सुनाई, तब जिनदत्त को लगा कि वास्तव में धर्मात्मा जीव तो यही है... धर्म रत्न का पालन करने वाली आत्मा तो यही है। यह धर्म रत्न कहलाता है। क्षमा रत्न है कि नहीं बताओ? नहीं है! क्षमा की पूजा कर ली बस! क्षमा की आराधना-भावना करने का भीतर से जब तक गहरा विचार नहीं आया तो

आपने उस धर्म रत्न को क्या धारण किया? इसलिए आचार्य कहते हैं कि जो अपने अन्दर गुणों को धारण करने की इच्छा करते हैं जिनके अन्दर गुणों की पहचान होती है, उन्हीं के अन्दर धर्म उतरता है। धर्म कोई बाहरी चीज नहीं है कि आपके ऊपर तिलक लगा दिया जाए कि आप धार्मिक हो गए। गुणों की पहचान जहाँ होगी वहाँ धर्म होगा। जिस तुंकारी ने यह समझ लिया कि क्रोध अनर्थ का कारण है और क्षमा शान्ति का कारण है, उस तुंकारी ने अपने अन्दर धर्म रत्न प्राप्त कर लिया।

व्रतों का दृढ़ता से पालन करना बहुत बड़ा गुण है

जिनदत्त सेठ जो उसके पास में बचा-खुचा लाक्षा तेल था वह लेकर के मुनि महाराज के पास गए। मुनि महाराज की सेवा की और संयोग से मुनि महाराज की सेवा करने से वह मुनि महाराज की भी व्याधि दूर हो गई, मुनि महाराज भी निरोगी हो गए...सेवा करोगे तो फल तो मिलेगा ही। सेवा की, अब वह मुनि महाराज को भी देखो कि कितनी विपरीत परिस्थितियों में भी उन्होंने अपना धर्म नहीं छोड़ा। सिर जल गया हो, आधा जल गया हो जिनका, सिर में कितनी पीड़ा होगी और उस पीड़ा में भी उन्होंने धर्म नहीं छोड़ा। जिनदत्त सेठ की वैयावृत्ति से उनकी सेवा से वह ठीक हो गए। लेकिन अगर उनके अन्दर की दृढ़ता देखी जाए तो आप समझ सकते हो कि व्रतों को अंगीकार करके उसे जीने का जो भाव होता है, वह भाव भी अपने आप में एक बहुत बड़ा गुण कहलाता है। यह गुण नहीं है, एक तो वह है कि हमने व्रत अंगीकार कर लिए। एक व्रत उसके प्राण बन जाते हैं। व्रत प्राणों से प्यारे...जब प्राण बन जाते हैं तो उसका जीवन बन जाते हैं और यह जीवन जब बन जाता है तो यह भी एक अपनी lifestyle बन जाती है। लोगों को देखने में लगता है...क्या ऐसा भी जीवन जिया जा सकता है! जीने की practice करोगे तो सब जीवन जिया जा सकता है। जब तक वहाँ बैठे रहोगे तब तक वह practice नहीं हो पाएगी यहाँ आकर के बैठ जाओगे तो अपने आप practice होने लग जाएगी।

मुनि धर्म अंगीकार करने से जीवन में बदलाव

सब एक दूसरे से कह रहे हैं...आपके लिए कह रहे हैं महाराज! यह भी एक जीने का तरीका होता है। आपको लग रहा है कि अब यह कितना परिवर्तन लाएँगे? यह कैसा जीवन जिएँगे? अब इनके अन्दर यह जीवन जीने की आदत कैसे बनेगी और वह सब बन जाती है। कल तक जो व्यक्ति व्यसनी है जैसे ही मुनि धर्म अंगीकार कर लेता है, क्या करने लग जाता है? अब उसे तम्बाकू और cigarette याद आएगी? अब उसे कोई भी तरीके की बुरी आदतें या drinking याद आएगी कुछ भी? कल तक सब किया उसने और आज उसने अगर धर्म अंगीकार कर लिया ऐसा परिवर्तन आता है उसके अन्दर कि उसकी पूरी जीवनचर्या एक अलग ही मोड़ पर चली जाती है। वह खुद भी नहीं समझ सकता कि ऐसा बदलाव क्या आ सकता है। लेकिन जो बदलाव लाता है उसे वह बदलाव महसूस होता है। दूसरा देखता रहेगा बस! कि ऐसा बदलाव इसमें आ सकता है? लेकिन आ जाएगा, अगर आप बदलाव की इच्छा करेंगे तो बदलाव होने के लिए पहले आपको इतनी बड़ी risk लेनी पड़ेगी। risk क्या? गुरु के चरणों में समर्पित होना पड़ेगा, उनसे दीक्षा पहले अंगीकार करनी पड़ेगी और फिर उसके बाद में देखना पड़ेगा कि हाँ! बदलाव हो रहा है कि नहीं और नहीं हुआ कोई तो? वह तुम्हारी योग्यता के ऊपर है जब हर जगह पर risk होती है तो इसमें भी risk है। जब

business करते हो दुकान चली तो और नहीं चली तो, सब होती है risk तो हमेशा ही रहती है। इसी तरह से व्रतों में भी risk होती है। आपने दीक्षा अंगीकार की और उसके बाद में आपके भीतर बदलाव आया तो और नहीं आया तो...सम्भावना दोनों है। आ गया तो बल्ले-बल्ले और नहीं आया तो हल्ले-हल्ले। आएगा तो फिर आपकी बड़ाई होगी बल्ले बल्ले होगी और नहीं आया तो हल्ला होगा...यह क्या हो रहा है? यह क्या हो रहा है?

गुणवान लोग ही धर्म का पालन करते हैं

अगर आपके अन्दर वह बदलाव आने की कोई भी क्षमता दिखाई दे रही तो इसका मतलब है- आप गुणवान हैं और गुणवान लोग ही धर्म का पालन कर पाते हैं, धर्म को अंगीकार कर पाते हैं। इसलिए जिनके पास में गुण होंगे वह अपने गुणों की वृद्धि कर लेंगे, जिनके पास में धन होगा वह अपने धन की वृद्धि कर लेंगे, लेकिन जिनके पास में गुण कहीं से कहीं तक हैं ही नहीं तो उनके अन्दर धर्म की प्राप्ति भी कहीं से कहीं तक होगी ही नहीं। यह बहुत अच्छी बात यहाँ कही गयी...आपके अन्दर कोई न कोई गुण ऐसा होना चाहिए जो आपके गुणों को बढ़ाता चला जाए। गुणों से गुणों का आकर्षण होता है। एक समर्पण एक, नम्रता का भाव, एक अच्छा बनने की पहल, एक छोटा सा गुण भी अगर आपके अन्दर है तो वह गुण आपको बहुत बड़े परिवर्तन के साथ आपके सामने आ सकता है। एकदम उसके अन्दर परिवर्तन आ जाता है।

पराश्रित चर्या क्या है?

अब एक ही बार वह भोजन करेगा, दूसरे के घर में जाकर के करेगा, दूसरा जितना देगा उतना ही ले पाएगा, दूसरा देने के लिए हाथ में कटोरी पकड़े है और दे नहीं रहा है तो भी माँग नहीं पाएगा। कई बार होता है ऐसा, लोग कटोरी पकड़ा देते हैं किसी के हाथ में, लो भैया यह भी चला देना। अब वह आकर के खड़ा हो जाता है और अब वह मेरी शक्ल देखता है मैं उसकी शक्ल देखता हूँ। उसकी समझ में नहीं आता है कि महाराज मेरी शक्ल क्यों देख रहे हैं? उसे इतना भी ज्ञात नहीं उसके हाथ में कटोरी पकड़ा दी। फिर अपनी आँखें नीचे करनी पड़ती हैं, जो हाथ में आ रहा है वही ले लो और धीरे-धीरे वह कटोरी पीछे चली जाती है... महाराज ले नहीं रहे! महाराज ले नहीं रहे उसे देना ही नहीं आ रहा...यह नहीं कहेगा वह। महाराज! ले ही नहीं रहे, महाराज! ले ही नहीं रहे और कई बार ऐसा हो जाता है, ऐसा संयोग बनता है कि जैसे मान लो जब वह देने को शुरू हो और उसी समय पर कोई दूसरा भी आकर के अड़ जाये तो दो हाथ, तीन हाथ एक साथ आ गए और हम ने मुंडी हिलाई तो तीनों हाथ चले गए। अब वह तीनों में किसी को ऐसा ज्ञान नहीं आता कि मना किसके लिए किया गया? तीन option थे, मना किस चीज के लिए किया गया? महाराज! नहीं ले रहे, महाराज! नहीं ले रहे! यह कहलाती है- पराश्रित चर्या। लेकिन अब अगर उसे अपने अन्दर बदलाव लाना है, तो वह सब कुछ हँस करके सहन कर लेगा और कभी-कभी हँसी इसी बात पर भी आती है। इस तरह का जब परिवर्तन आने लग जाता है तो आप सोचो कितना बड़ा परिवर्तन है। कल तक जो दिन भर खाता था, रात में भी खाता था, आज वह इतना संकल्पित हो गया कि अपने जीवन में केवल एक बार ही खाएगा।

त्याग में भी आनन्द है

अब उसके पास में कोई भी तरीके के वह साधन जो पहले वह use करता था अब वह नहीं करेगा। न रजाई होंगे, न गद्दे होंगे, न कम्बल होंगे, न मोटी चादरें होंगी, कुछ नहीं होगा, ढलेगा! लेकिन वह धीरे-धीरे ढलते ढलते ढलते वैसा हो जाएगा और यह कब होगा? जब उसे यह लग रहा हो कि मुझे ऐसा करना है तो वह कर जाता है। एक बार भीतर से बैठ जाना चाहिए कि ऐसा करने में भी अच्छा लगता है, ऐसा करने में भी आनन्द है, तो उसमें भी आनन्द आने लग जाता है। आपको जिस तरह से भोगों में आनन्द आने लग जाता है, ऐसे ही त्यागी को त्याग में आनन्द आने लग जाता है। लेकिन आप त्याग का आनन्द नहीं समझ पाते हैं। आपको लगता है कि आनन्द त्याग में नहीं है आनन्द तो भोगों में है। लेकिन त्यागी को त्याग में आनन्द आएगा। वह जिस तरह से अपने त्याग भाव को बढ़ाएगा, उसे उतना ही उस त्याग भाव में अच्छा लगेगा और वह हमेशा यह कोशिश करेगा कि मैं अपने इस त्याग की प्रवृत्ति को न केवल बाहरी चीजों के साथ में किन्तु भीतरी मानसिकताओं के साथ में भी इसका इस प्रवृत्ति को मैं बढ़ाऊँ।

सबसे बड़ा धर्म त्याग धर्म है

भीतरी मानसिक भावों के त्याग की प्रवृत्ति और यह त्याग जब बढ़ने लग जाता है तो व्यक्ति भीतर से भी सुधरने लग जाता है और बाहर से भी सुधरने लग जाता है। सबसे बड़ा धर्म...त्याग धर्म ही है। आपको कुछ भी धर्म करना पड़ता है तो आपको त्याग करना ही पड़ता है और बिना त्याग के कोई धर्म होता भी नहीं है। मिलेगा बाद में पहले तो त्यागो! यह इतनी बड़ी शर्त के साथ में दुकान चलती है। भगवान महावीर स्वामी की यह दुकान कितनी बड़ी दुकान है, वह कितने बड़े brand हैं और उन्हें कितना अपने product पर विश्वास है कि कोई भी आदमी पहले आएगा तो पहले वह सब कुछ छोड़ो। क्या मिलेगा इससे, क्या मिलेगा? तुम में इतना समर्पण है कि नहीं छोड़ने का तो तुम आ कर हमारी दुकान पर खड़े हो, नहीं तो आगे बढ़ो। चलो यहाँ से कोई काम नहीं तुम्हारा। इतना बड़ा दुकानदार कौन हो सकता है समझो? जिसको अपने माल पर विश्वास हो, ग्राहक जो भी आएगा वह मेरा माल खरीद कर जाएगा और हम कितना भी उसके लिए कीमत लगाएँगे अगर उसे quality आती है, तो वह उस quality को लेकर के जाएगा। यह बड़ी दुकानों के बड़े दुकानदारों के काम होते हैं।

आपको यहाँ कौन सा सुख मिलेगा

आपको पहले कुछ नहीं बताया जा रहा है, आपको यहाँ क्या मिलेगा? कौन सा सुख मिलेगा? क्या आपको मिलेगा? यहाँ कुछ नहीं मिलेगा। पहले आप सब त्याग करो। उसके बाद जो मिलेगा, वह आपको बाद में समझ में आएगा। इतनी बड़ी risk! जीवन में फिर वह चीज छोड़ने के बाद में हमें दोबारा वह चीज मिलेगी कि नहीं? फिर दोबारा नहीं मिलेगी। त्याग एक बार करना है, पूरा करना है। इसका नाम है- धर्म और इसी धर्म के साथ में जो व्यक्ति चलता है, उसी को कुछ हासिल होता है। अगर आपको एक पूजा भी करनी है भगवान की तो उसके लिए भी कुछ त्याग करना पड़ता है और बिना त्याग के आपने पूजा की तो पूजा! पूजा भी नहीं होती है। त्याग के साथ ही पूजा होगी और जितनी अच्छी पूजा होगी, जितनी बड़ी पूजा होगी उसमें उतना बड़ा त्याग भी होगा। अगर बड़ा त्याग नहीं है, तो बड़ी पूजा हो ही नहीं सकती है। समय का त्याग,

धन का त्याग, अपने भावी का त्याग, यह सब त्याग के साथ मैं आपके अन्दर वह पूजा का भाव आएगा तो समर्पण कुछ दिखाई देगा तो कुछ काम बनेगा।

भोग हमें बड़ा नहीं बनाता, त्याग बड़ा बनाता है

इसलिए त्याग आपको बड़ा बनाता है, यह धारणा आपके अन्दर बनेगी तब आपको एक धर्म रत्न की महिमा समझ में आएगी। कौन हमें बड़ा बनाता है? भोग बड़े नहीं बनाते हमको, त्याग हमको बड़ा बनाता है। जितना व्यक्ति अपने किसी भी तरह की चीजों का त्याग भाव से आगे बढ़ता है वह व्यक्ति अपने अन्दर एक बहुत बड़ा बड़प्पन महसूस करता चला जाता है और उसके अन्दर का वह त्याग भाव ही उसको बहुत शक्ति देता चला जाता है। उसकी आत्म शक्ति बढ़ती चली जाती है। इसलिए हमेशा यह ध्यान रखो कि धर्म free में नहीं मिलता। यह धर्म रत्न है रत्न free में नहीं मिलते हैं और दरिद्रों को नहीं मिलते हैं यह बहुत अच्छी line है यह ध्यान रखना।

धर्म रत्न हीनों को नहीं गुणवानों को मिलता है

यहाँ कहा गया है कि चिन्तामणि रत्न दरिद्रों को नहीं मिलते। ऐसे ही धर्म रत्न गुण हीनों को नहीं मिलते, गुणवानों को ही मिलते हैं। अगर आपके अन्दर गुण होंगे तो आप उससे कुछ सीख पाएँगे, चातुर्मास का लाभ ले पाएँगे। अब तो चातुर्मास ही ही गया, अब तो कोई लाभ बचे ही नहीं है। बस चार दिन बाद दीपावली आनी है और एक दीपावली का लाभ होना है, उसके बाद तो कोई लाभ आपके पास है ही नहीं। अब वह जो कुछ भी है वह सब देखा जाएगा। वह सब देखे जाने वाली बातें हैं। अब जो हमें देना था, वह तो हमने आपको दे दिया। हमारा काम तो हमने अपना कर लिया जो हमें करना है दीपावली तक। उसके बाद तो जो करना है, वह आपको हमसे अब करवाना पड़ेगा। अब गंगा उलटी बहेगी, यह ध्यान रखना! अभी हमारी मजबूरी थी कि गुरुजी ने आशीर्वाद दिया था कि सतना जाना है तो हमें सतना जाना है। अभी हमें देना था, अब दीपावली के बाद जो होगा। वह आप अगर लेना चाहोगे तो दिया जाएगा। अब हमें देने की मजबूरी नहीं है यह ध्यान रखना बस आप। अगर आप लेने की इच्छा करोगे तो ही मिलेगा। अभी तक तो हम मजबूर थे हाँ भाई हमें तो देना ही है क्योंकि पाँच महीने हमें यहाँ रहना है तो हमें देना है, इसलिए दे रहे थे। अब हमें देने की कोई मजबूरी नहीं है। आगे की चिन्ताएँ अब आपको करना है, आगे की योजनाएँ आपको बनानी हैं। अगर आपको किसी भी तरीके के लाभ चाहिए तो आप अपने अन्दर गुण पैदा करें। अच्छी चीजों के लाभ गुणवानों को मिलेंगे, निर्गुणियों को नहीं मिलेंगे। यह इस जो गाथा में कहा गया है इसको आप भीतर से समझिए और अपने अन्दर अगर गुण पैदा करोगे तो तुम्हें लाभ मिलेंगे, गुण हीन होंगे तो कोई लाभ नहीं मिलेंगे। अब यह आपके ऊपर है कि आप अपने आप को गुणवान होकर के प्रस्तुत करते हो या अपने आप को गुणहीन मानते हो। यह आपकी अपनी योग्यता है और जैसी योग्यता आपकी होगी वैसा लाभ मिलेगा वैसा कार्य होगा।

गाथा: 96

मिथ्यात्व को त्यागे बिना जिनशासन का लाभ नहीं मिल सकता

जह दिट्ठी-संजोगो, ण होइ जच्चंधयाण जीवाणं।
तह जिणमय-संजोगो, ण होइ मिच्छंधजीवाणं ॥96 ॥

अन्वयार्थ- (जह) जैसे (जच्च-अंधयाण जीवाण) जन्म से, अंधे, जीवों के लिए (दिट्ठी-संजोगो) दृष्टि का संयोग (ण) नहीं (होइ) होता है (तह) उसी प्रकार (मिच्छ-अंध-जीवाणं) मिथ्यात्व से, अंधे, जीवों के लिए (जिणमय-संजोगो) जिनमत यानी जिनशासन का, संयोग (ण) नहीं (होइ) होता है ॥96 ॥



वैराग्य शतक प्राकृत भाषा का यह लघुकाय ग्रन्थ है। जिसमें संसार शरीर और भोगों से विरक्ति प्राप्त करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा दी गई है और जीवों को सम्यक् मार्ग पर लाने के लिए भी बहुत अधिक प्रेरित किया गया। न केवल राग से वैराग्य की ओर आने की इसमें प्रेरणा है अपितु मिथ्यात्व से सम्यक्त्व को भी प्राप्त करने की प्रेरणा है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए यहाँ गाथा नम्बर 96 से पढ़ते हैं...

जह दिट्ठी-संजोगो, ण होइ जच्चंधयाण जीवाणं।
तह जिणमय-संजोगो, ण होइ मिच्छंधजीवाणं ॥96 ॥

मिथ्यात्व से अंध जीवों को जिनमत का संयोग नहीं मिल पाता है

कहते हैं...जैसे दृष्टि का संयोग जात्यंध जीवों को नहीं होता है, उसी तरह से मिथ्यांध जीवों को जिनमत का सहयोग मिल नहीं पाता है। जात्यंध वह होते हैं...जो जन्म से अंधे होते हैं। जन्म से ही जिनको आँख न मिली हो तो अब उन्हें दृष्टि जो भीतर की है, उसका संयोग भी उन्हें नहीं मिल पाता है। जिस तरह से जात्यंध जीवों के लिए ऊपर से किए गए किसी भी तरह के कोई उपचार काम नहीं आते और उनकी दृष्टि अगर जन्म से ही मुँदी है, बंद है तो उसको खोलना असंभव होता है। उसी तरह से आचार्य कहते हैं...मिथ्या भावों से अंधे हुए जीवों के लिए भी जिनमत का संयोग हो नहीं पाता है। आप विचार करेंगे कि जिनमत का संयोग तो मिथ्यादृष्टि जीवों को ही होता है। सम्यग्दृष्टि जीव को तो संयोग हो ही चुका है तभी वह सम्यग्दृष्टि हुआ है। फिर यहाँ यह क्यों कहा जा रहा है? कि जो मिथ्यांध जीव हैं उन्हें जिनमत का संयोग हो नहीं पाता है। एक मिथ्यांध वह होते हैं...जो अपने अन्दर उस मिथ्या भाव को जन्म से ही लेकर के उत्पन्न हुए हैं और एक

मिथ्यांश वह होते हैं... जो अपने अन्दर के मिथ्याभाव को जन्म से लेकर के उत्पन्न तो होते हैं किन्तु वह अंधापन इतना नहीं होता जितना कि जात्यंध जीवों का होता है। एक व्यक्ति वह होता है, जन्म से जिसकी दृष्टि कमजोर होती है... एक वह होता है जिसके पास में दृष्टि होती ही नहीं। जिसकी जन्म से ही दृष्टि नहीं है उसे किसी भी उपायों से दृष्टिवान नहीं बनाया जा सकता। लेकिन जिसके पास में थोड़ी भी दृष्टि है और वह दृष्टि धीरे-धीरे कमजोर हुई है तो उसकी दृष्टि को संभाला जा सकता है।

जिनमत का संयोग बहुत दुर्लभ है

आचार्य कहते हैं कि मिथ्या से अंध हुए जीवों के लिए जिनमत का संयोग बड़ा दुर्लभ है। जब भी हम देखेंगे तो सभी जीव इस पंचम काल में मिथ्यात्व के साथ ही जन्म लेते हैं और मिथ्यात्व के साथ ही आगे बढ़ते हैं। फिर भी यह जो कहा जा रहा है कि मिथ्या से अंध हुए जीवों के लिए जिनमत का संयोग बहुत दुर्लभ है या मिलता ही नहीं है तो इसमें यह विचार करणीय है कि यह किस दृष्टि से कहा जा रहा है? आखिर जब भी किसी को समीचीन मार्ग की प्राप्ति होगी तो यह निश्चित है कि उससे पहले वह मिथ्यामार्ग पर था और बुरे मार्ग पर चलने वाला ही अच्छा बनता है। मिथ्यामार्ग पर चलने वाला ही सम्यक् मार्ग प्राप्त करता है, संसारी आत्मा को ही मुक्ति की प्राप्ति होती है। संसार में रहकर के भी संसारी आत्मा के अन्दर यह विपरीतता बनी रहना स्वाभाविक है और उस स्वाभाविक विपरीतता में यह भी बताया गया है कि विपरीतता कितनी तीव्रता के साथ होनी चाहिए? अगर मिथ्यात्व भाव की तीव्रता होती है तो यह जीव जिनमत का संयोग भी प्राप्त नहीं कर पाता है। तीव्रता के उदय में आपका ऐसे स्थानों पर जन्म आदि भी नहीं होगा, जहाँ पर की जिनमत का संयोग मिलता हो। तीव्रता होगी तो आपको इस तरह की संयोग दशा भी नहीं मिलेगी कि आपके लिए कोई जिनमत की बात सुनने को मिल जाए। मिथ्या भाव की तीव्रता होने पर ही यह सम्भव होता है कि आप किसी ऐसे स्थान पर जन्म ले, ऐसे जगहों पर आपका जन्म हो जहाँ पर आप जन्म लेने के बाद में कभी सुन भी न पाएँ कि जिनमत क्या होता है? अगर सुन भी लिया तो सुनने के बाद में स्वीकार करने की भी बुद्धि न आ पाए क्योंकि कई बार ऐसा होता है कि अगर आप में किसी भी मत का आग्रह हो गया तो फिर अब आप जिनमत को सुन नहीं पाएँगे। यह आग्रह बुद्धि के माध्यम से बहुत तीव्रता में भी पहुँच जाता है। यह आग्रह इतना बढ़ जाता है कि जब हम किसी भी मत को सुनते हैं तो उस मत को फिर हम छोटा ही समझ कर के सुनते हैं। उसको हम महत्वहीन समझ कर के ही सुनते हैं और यह आग्रह हर मत के अन्दर आ जाता है। अलग-अलग मत के लोग होते हैं और वह अपने मत में इतने आग्रही हो ही जाते हैं कि वह किसी दूसरे को सुनकर के भी अच्छी बातें भी सुनना पसंद नहीं करते, बुरी तो बुरी होती हैं लेकिन अच्छी बात भी सुनना पसंद नहीं करते। किसी दूसरे मत में अगर अच्छी बातें हैं, अच्छे विचार हैं, अच्छी साधना पद्धति है तो उसको स्वीकार कर पाना, यह अनाग्रही लोगों का काम होता है। जो खुले दिमाग के लोग होते हैं, उनका काम होता है और ऐसे लोग बहुत कम होते हैं। ज्यादातर लोग जिस मत में जन्म लेते हैं उस मत के वह आग्रही हो जाते हैं, भले ही उस मत में कितना भी गलत हो लेकिन वह उन्हें सही दिखाई देने लग जाता है। वहाँ कितना ही हिंसा का कार्य हो रहा हो वह भी उन्हें धर्म दिखाई देने लग जाता है। कितनी विपरीतताएँ हो उसके बावजूद भी वह उन्हें सही लगने लग जाता है। ऐसे व्यक्तियों के लिए यहाँ कहा जा रहा है कि यह मिथ्या अंधकार में पड़े हुए जीवों के लिए जिनमत का संयोग दुर्लभ हो जाता है।

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन के लिए भी पुण्य चाहिए

अब यह जो दुर्लभता है, यह दुर्लभता उन्हीं के लिए है...जिनके अन्दर उस मिथ्या की तीव्रता है। इतनी तीव्रता जैसे कि किसी के अन्दर दर्शनावरणीय कर्म की इतनी तीव्रता, अन्तराय कर्म की इतनी तीव्रता कि उसे मनुष्य जन्म तो मिले, आँखें तो मिले लेकिन आँखों में दृष्टि न मिले। आँखें तो खुले लेकिन आँखों से कुछ दिखाई न दे। इतना जब तीव्र भीतर से दर्शनावरण कर्म का, अन्तराय कर्म का उदय होगा तो उस जीव के लिए बाहर से किसी भी तरह का कोई भी संयोग मिले कोई भी चीज दिखाने का तो उसे किसी भी चीज की कोई भी दृश्य वस्तु का उसके अन्दर दर्शन हो नहीं सकता। इसी तरह से आचार्य कहते हैं- मिथ्यांध जीवों के लिए जिनमत का संयोग नहीं होता। अगर आपने वर्धमान स्तोत्र पढ़ा हो तो उसमें भी एक जगह हमने लिखा है...कि जब भगवान को केवलज्ञान हो जाता है तो भगवान केवलज्ञान होने के बाद में 5 हजार धनुष ऊपर उठ जाते हैं। मानो वह इसलिए ऊपर उठ गए कि मिथ्यादृष्टि जीव जो हैं, वह आपको हे भगवन्! अब देख नहीं पाएँगे। उनके पुण्य में नहीं है कि वह आपको देख पाएँ। इसलिए आप इतने ऊपर उठ गए। लोग पूछते हैं महाराज आपने ऐसा क्यों लिखा? इसलिए लिखा क्योंकि यहाँ पर लिखा है। यद्यपि हमने यह पढ़ कर नहीं लिखा। लोग पूछते हैं कि मिथ्यादृष्टि जीव तो जाते हैं, भगवान के समवशरण में और आपने लिख दिया कि भगवान आप इतने ऊँचे पहुँच गए, इतने ऊँचे उठ गए कि अब मिथ्यादृष्टि जीवों को दर्शन का पुण्य कहाँ? इसीलिए आप इतने ऊपर विराजमान हो गए तो वह इसी भाव के साथ लिखा है। यहाँ क्या लिख रहे हैं? मिथ्यादृष्टि जीवों को जिनमत का संयोग नहीं और हमने वहाँ लिखा कि मिथ्यादृष्टि जीवों को हे भगवन्! आपके दर्शन का लाभ नहीं, बात बराबर है। भगवान के दर्शन के लिए भी पुण्य चाहिए। भगवान जिनेन्द्र देव के दर्शन करने के लिए उनके समवशरण में पहुँचने के लिए भी बुद्धि सरल चाहिए, सम्यक् चाहिए, पाप की कमी चाहिए, मिथ्यात्व भाव की कमी चाहिए तब भगवान के पास तक वहाँ पहुँच पाते हैं। जिनके अन्दर वह तीव्रता है तो उस तीव्रता के कारण से ही उनकी बुद्धि reverse gear मारती है। reverse gear समझते हो? बुद्धि पीछे की ओर खींचती है। आगे कुछ भी हमारा जाने का मन होगा तो आपकी बुद्धि पीछे खींचेगी क्योंकि जब मिथ्या भाव की तीव्रता होगी तो वह सामने सही चीज होकर भी आप उसको समझ नहीं पाएँगे। जब भी कभी किसी आग्रही व्यक्ति के समक्ष कोई चीज कही जाती है तो वह उसमें यह समझता है कि हमारी चीज तो सर्वोत्कृष्ट है और जो दूसरी चीजें हमारे सामने आ रही हैं, वे सब चीजें छोटी हैं...निकृष्ट हैं। यह आग्रह कहलाने लग जाता है। छोटा और बड़ा भाव भी जब दृष्टि सही नहीं होती तो दिखाई नहीं देता। राग में, वीतरागता में अन्तर भी तभी समझ में आता है, जब दृष्टि में थोड़ा सा सफाई हो गई हो, बुद्धि में थोड़ा सा मिथ्या भाव की कमी हो गई हो। नहीं तो आदमी राग और वीतरागता को भी बराबर तोलता है।

भगवान के स्वरूप का वर्णन

जब तक आपके अन्दर यह बुद्धि नहीं आएगी कि वीतरागता का महत्व ज्यादा है कि राग का महत्व ज्यादा है? भाई! राग तो दुनिया में सभी कोई कर लेता है। राग से बचकर निकले तो उसका महत्व कुछ बनता है। हिंसा तो दुनिया में हर कोई करता है, सब कोई उपदेश देता है। हिंसा तो बिना उपदेश के भी लोग करते रहते हैं लेकिन बिना हिंसा के कोई अहिंसक बने तो उसकी कोई महत्ता है। आदमी को यह भी समझ नहीं

आता कि जिन्हें हम भगवान कहते हैं, उन भगवान में क्या गुण होने चाहिए? और वह भगवान को हम कैसे भगवान कहें? भगवान हम उनको भी मान लेते हैं जो हिंसा कर रहे होते हैं। उनको भी मान लेते हैं जो राग कर रहे होते हैं। उनको भी मान लेते हैं जो अपनी गोदी में स्त्रियों को बिठाए रखते हैं...हम उनको भी भगवान मान लेते हैं। लेकिन हम कभी यह सोच ही नहीं पाते हैं कि यह सही है या गलत है। क्योंकि हमारे ऊपर एक आग्रह का अन्धकार छा जाता है। हम जहाँ जन्म लिए हैं वहाँ जो है, वह सही है। विचार करने का भाव बुद्धि के अन्दर कभी-कभी किन्हीं-किन्ही आत्माओं में आता है और वह तभी आ पाता है जब उनके अन्दर कषाय की कमी हो, मिथ्यात्व की कमी हो। तभी उनके सामने कोई चीज आएगी तो उन्हें कोई अच्छा भाव दिखाई देगा। उन्हें जिनमत की चीज सामने आने पर भी तब समझ में आएगा, जब उनके अन्दर कुछ मिथ्यात्व भाव की कमी हो। अन्यथा कितने ही लोग होते हैं जो जिन शास्त्रों को भी पढ़ लेते हैं, जिनमत को अच्छे ढंग से समझ लेते हैं। अगर आपके लिए कभी दर्शन शास्त्र पढ़ने का कोई संयोग मिल जाए, आपके college में भी पढ़ाया जाता है, न्याय पढ़ाया जाता है, दर्शन शास्त्र पढ़ाए जाते हैं...छहों दर्शन पढ़ाए जाते हैं। जब आपने छहों दर्शन पढ़े तो छहों दर्शनों में आपको जैन दर्शन भी पढ़ने को मिल गया। लेकिन जैन दर्शन पढ़ने के बावजूद भी आपका जिनमत में संयोग नहीं हुआ, श्रद्धान नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ? क्योंकि हमने उस चीज को अपने उदार विचारों के साथ में कभी समझा ही नहीं। अनेकान्त दर्शन, अनेकान्त के विचार के साथ चलता है और एकान्त दर्शन, एकान्त विचारों के साथ चलते हैं। इस अनेकान्त दर्शन में हमने अनेकान्त दृष्टि से कभी चीजों को देखा ही नहीं कि हाँ! दृष्टि इस सापेक्ष भी बनाएँ कि राग की नहीं, राग को छोड़कर के जो राग से ऊपर उठकर के वीतरागता की ओर चलते हैं, हमें उनकी महत्ता समझनी चाहिए। राग की क्या महत्ता समझना? तीर्थंकर महावीर भगवान कभी किसी का वध नहीं किए, कभी किसी को मारे नहीं। इसलिए आज वह तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी लोगों के द्वारा मान्य नहीं है। हर कोई नहीं मानता उनको क्योंकि उन्होंने किसी को मारा ही नहीं। किसी का वध करते, किसी को मारते, किसी राक्षस का कत्ल करते, उसे सिर कलम करते तो लगता कि कोई साहस का काम किया। लोग किसको मानते हैं? जो किसी का वध करे, लोग उससे प्रतापी मानते हैं, भगवान मानते हैं। जो किसी दूसरे को मिटाए और जो खुद को मिटाने पर तुला है, खुद के अपने विकारों को मिटाने पर तुला है, खुद की अपनी कषायों को मिटाने पर तुला है... अरे! खुद को मिटाने से कुछ नहीं होता है। जबकि कोई भी खुदा बनेगा तो किससे बनेगा? खुद में ही खुद को मिटा करके ही खुदा बना जाता है। जब व्यक्ति खुद में ही अपने आप को खोदता है, खुद में ही अपनी कषायों को अलग करता है, खुद में ही अपनी खोज करता है, तब वह खुद ही भगवान बन जाता है। लेकिन आदमी के लिए लगता है...हम तो भगवान उन्हीं को मानेंगे, जिन्होंने किसी का कुछ ऐसा कार्य किया हो, ऐसे राक्षस को मिटाया हो, जो राक्षस पूरे लोक के अन्दर तहलका मचाए हुए हो, वह हमारा हीरो है और वह हीरो बन जाते हैं।

भगवान सबके प्रति प्रेम रखते हैं

इसलिए भगवान महावीर स्वामी, महावीर होते हुए भी, अपने कर्मों पर विजय प्राप्त करते हुए भी, उन्होंने अपने जीवन में किसी को मारा नहीं। इसलिए जन सामान्य उन्हें समझ नहीं पाया और जन सामान्य ने उन्हें कभी समझ कर के उन्हें अपना भगवान मानने की इसीलिए कोशिश नहीं कर पाई क्योंकि वह कोई भी ऐसा जीवन में कृत्य नहीं किए, जिसके कारण से उनका नाम इस रूप में होता कि उन्होंने इस इनका

वध किया, उन्होंने इनकी मृत्यु की। उन्होंने किसी की मृत्यु नहीं की, उनके सामने अगर कोई द्वेषी भी आए, उन्हें मारने वाले भी आए, उनके सामने कोई किसी भी तरह के उनसे ईर्ष्या रखने वाले लोग भी आए और उनके लिए बुरा करने वाले लोग भी आए तो भी उन्होंने कभी किसी के लिए बुरा सोचा तक नहीं, करना तो दूर की बात है। अब आप सोचो कि कितनी बड़ी बुद्धि है? हमारी बुद्धि कहाँ जाती है? हम क्या सोचते हैं? हमारी बुद्धि में कम से कम तो इतना भाव होना ही चाहिए कि हम भगवान्‌ उनको कहें, जिन्होंने किसी का कभी वध न किया हो, किसी को कभी मारा न हो। अगर मार भी दिया हो तो बाद में उन्होंने उसका पश्चाताप किया हो कि मेरे द्वारा इसका वध हो गया। हे भगवन्! मुझे अपने राजकार्यों में रहकर के क्या-क्या अनर्थ करने पड़ते हैं? इस तरहके अनर्थों से जब पश्चाताप होता है तब वह कृत्य छोड़ दिया हो। जब वह कृत्य छोड़ देंगे तो उसके बाद में जो उनके अन्दर सब जीवों के प्रति प्रेमभाव आएगा, सब जीवों को एक समान दृष्टि से देखने का भाव आएगा, उस दृष्टि का हमें आदर करना चाहिए। यह समझदार लोगों का काम होना चाहिए था। हमें कौन सी बुद्धि का आदर करना? कौन सी दृष्टि का आदर करना? जिस दृष्टि में किसी का कोई शत्रु हो ही नहीं। ऐसा व्यक्ति हमारे सामने लाओ, जिसका कोई शत्रु हो ही नहीं। सामने वाला कहे कि मैं आपको जान से मार दूँगा, फिर भी वह कहे आप मेरे मित्र हैं, आप मेरे शत्रु नहीं है। ऐसी दृष्टि सामने लाओ...वह मेरा भगवान्‌ होगा और उसी को अगर हम भगवान्‌ मानेंगे तो हमारे अन्दर वह दृष्टि आएगी। नहीं तो हमारे आदर्शों में अगर हिंसा है तो आपके अन्दर भी हिंसा आएगी। हमारे आदर्श अगर अहिंसक होंगे तो हमारे अन्दर भी अहिंसा आएगी।

कमठ और पार्श्वनाथ भगवान्‌

हम आखिर इतनी भी चीज क्यों नहीं सोच पाते अपनी बुद्धि से कि भगवान्‌ के अन्दर सब जीवों के प्रति प्रेमभाव होना चाहिए और जब सबके प्रति प्रेम होता है तो हम किसी का वध करने को तत्पर क्यों होंगे? हम उसे अपने प्रेम से सिंचित करके उसकी बुद्धि को बदल करके अपने चरणों में एक दिन ऐसा बना कर के लाएँगे कि वह सामने वाला भी हिंसा करने का मिथ्या बुद्धि छोड़ कर के हमेशा के लिए समीचीन बुद्धि बनाने का एक संकल्प कर पाए। यह काम तीर्थकर कर सकते हैं और उन्होंने किया है। चाहे महावीर भगवान्‌ हो, चाहे पार्श्वनाथ भगवान्‌, देख लो आप कमठ उनके लिए कितना-कितना क्लेश देता रहा, हिंसा करता रहा, कमठ उनको कितनी बार मारता रहा, मारता रहा 10-10 जन्म तक मारता रहा। आखिर कभी पार्श्वनाथ तीर्थकर ने कमठ को मारने का एक भी बार विचार नहीं किया। हमने उन्हें भगवान्‌ कब माना? अरे! तुम्हारे लिए तो पार्श्वनाथ भगवान्‌, भगवान्‌ बाद में तुम्हारे सामने भगवान्‌ के रूप में आए, अगर तुमने 10 जन्म पहले से भी जब-जब वह मुनि महाराज बने तब से भी अगर उन्हें भगवान्‌ मानते तो भी वह भगवान्‌ ही आपको दिखाई देते क्योंकि उनमें भगवत्ता 10 जन्म पहले से ही शुरू हो गई थी। कितनी बार वह मुनि महाराज बनकर के उस कमठ के उपसर्ग को सहते रहे। कभी अजगर बन कर वह कमठ निगलता रहा, कभी भील बन कर के बाण मार कर के उनका गला काटता रहा, सब करता रहा लेकिन उन्होंने कभी भी उस भील को या अजगर को कभी भी अपनी शक्तियों से मारने की कोशिश नहीं की।

आग्रह को त्याग कर जिनमत का संयोग प्राप्त होता है

एक तरफ यह भगवान बनने की प्रक्रिया है और एक तरफ हम...भगवान जो वध कर देते हैं, हम उनको भगवान कह देते हैं। हमें समझना चाहिए कि भगवान के अन्दर सबसे प्रेम नहीं होगा तो वह भगवान, भगवान कैसे होगा। भगवान का मतलब सबके प्रति प्रेम भाव, जिसके अन्दर शत्रु मित्र की कल्पना ही न हो। गीता में कहा गया है कि जिसके अन्दर शत्रु मित्र की कल्पना नहीं होती, वह स्थितप्रज्ञ हो जाता है। उसकी प्रज्ञा स्थित हो जाती है और ऐसा स्थितप्रज्ञ जीव ही सत्व गुण वाला होकर के अपनी आत्मा का दृष्टा बनता है। उसी को मुनि कहा गया है, उसी को वीतराग कहा गया है। इस वीतरागता की गाथा सब जगह लिखी हुई है लेकिन हमें कुछ भी दिखाई नहीं देता, हम कुछ भी नहीं पढ़ना चाहते, हम कुछ भी सोचना समझना नहीं चाहते, हमारे अन्दर की बुद्धि इतनी आग्रहों से जुड़ जाती है कि हम उसके अलावा कोई दूसरी चीज भी सामने आती है तो हम उसको उसी रूप में परिवर्तित कर देते हैं जैसी हमारी बुद्धि में चल रहा है। अगर हमारी बुद्धि में पहले से ही उल्टा भाव बैठा है तो सीधी चीज को भी हम उल्टी चीज में परिवर्तित कर देंगे। मिथ्या अंधकार जब अन्दर छाता है तो आचार्य कहते हैं...आपको जिनमत का संयोग नहीं मिल पाता। भले ही आपके सामने जिनमत का कितना ही प्रसार हो रहा हो? कितना ही आपके सामने तीर्थकरों का गुणगान हो रहा हो? लेकिन आपको वह संयोग नहीं हो पा रहा है, क्यों नहीं हो पा रहा? क्योंकि आप आग्रहों को छोड़ नहीं पा रहे। जब आपको जिनमत का संयोग होगा तब आपको समझ में आएगा कि जीव अपना कल्याण स्वयं करता है। जीव अपना हित-अहित स्वयं करता है और उसको करने के लिए कोई भी भगवान उसके लिए बीच में नहीं आता है। न भगवान अहित करने की प्रेरणा देता है, न भगवान हित करने की प्रेरणा देता है। भगवान अगर आपके अन्दर वीतरागता के रूप में होगा तो आप वीतराग भगवान को देखकर अपने आप अपने हित में लगने लग जाएंगे। जिनमत का संयोग पाकर के अगर हम एक बार उस जिनमत में घुलने-मिलने लग गए। उस जिनमत की विद्या को, उसके ज्ञान को अपने अन्दर आत्मसात करने लग गए, तब उसका संयोग मिलना हमारे लिए हितकर होगा। मानो कि आप लोगों ने जिनमत में जन्म ले लिया और जन्म लेने के बाद में अब आप लोग बस इतना ही जानते हैं कि हम जिनमत के अनुयायी हैं। इसके अलावा आपको मानो कोई पता नहीं है। आपको इस जिनमत की प्राप्ति होने पर भी आपको क्या लाभ मिलेगा? केवल इतना कहने से लाभ मिल जाएगा कि हमारे तीर्थकर भगवान महावीर स्वामी है, पार्श्वनाथ भगवान हैं। हम शान्तिनाथ भगवान की पूजा करते हैं, नेमीनाथ भगवान की पूजा करते हैं, इतने से जिनमत का संयोग मिल जाएगा।

आत्मा में जिनमत का संयोग चारित्र के बल पर ही होगा

जिनमत का संयोग, संयोग क्या चीज होती है? संयोग यानी चीज आप आपस में मिल जाए...जैसे दूध में पानी मिला दिया जाता है तो दूध में पानी का संयोग हो गया। पानी में शक्कर मिला दी जाए तो पानी में शक्कर का संयोग हो गया। ऐसा संयोग बने जिनमत का तब कुछ बात बने। अभी तो पानी अलग रखा है शक्कर अलग रखी है दूध अलग रखा है पानी अलग रखा है। संयोग नहीं होने पाता क्योंकि उसके लिए हिम्मत नहीं पड़ती महाराज! क्या पता कहीं संयोग होते होते हमारे भीतर कुछ घटित हो गया और कुछ का कुछ बन गया तो क्या होगा? इसलिए भी कई लोग संयोग नहीं चाहते। लेकिन आचार्य कहते हैं...जब तक

आप संयोग नहीं करोगे अपने भीतर, तब तक आपके अन्दर कोई परिवर्तन नहीं आएगा। कई लोगों के लिए संयोग बुद्धि उत्पन्न होती है लेकिन वह डर के कारण से संयोग नहीं करते हैं। जब तक संयोग नहीं होगा तब तक भीतर से परिवर्तन आएगा नहीं क्योंकि आत्मा में अगर कोई चीज घुलेगी मिलेगी नहीं तो उस आत्मा के अन्दर परिवर्तन कैसे आएगा? आचार्य कहते हैं...इतने से काम नहीं चलेगा कि आपने पूजा कर ली, अभिषेक कर लिया और आप अपने लिए बस आधा घंटा भगवान के सामने बैठ कर के चले गए या मुनि महाराज की दो चार बातें सुन ली, उपदेश सुन लिया, सुनकर के चले गए, यह आपने संयोग नहीं किया कुछ भी, यह तो ऊपर-ऊपर से अलग-अलग बात रही। संयोग क्या होता है यह बताओ हमें? अगर आपने भोजन किया है तो भोजन सामने रखेगा तो कहलाएगा भोजन का संयोग हो गया या भोजन आपके भीतर घुल गया, मिल गया, पहुँच गया, तब कहलाएगा कि अब भोजन का संयोग हो गया...बताओ? यह ज्ञान सामने रखा है उपदेश आपके कानों में पहुँच रहे हैं, इससे संयोग होगा या जब उस उपदेश को हम आत्मसात करने के लिए आगे बढ़ेंगे तब संयोग होगा। आप यह ध्यान रखना...जब तक आप चारित्र के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ेंगे तब तक आपके अन्दर ज्ञान का भी संयोग और श्रद्धान का भी संयोग हो नहीं पाएगा। क्योंकि जब हम चारित्र के क्षेत्र में आगे बढ़ते हैं तो चारित्र को पालन करने में बड़े कष्ट महसूस होते हैं। कठिनाइयाँ लगती हैं और जब कठिनाइयाँ सामने होती हैं और फिर भी बुद्धि में श्रद्धान बराबर बना रहता है, ज्ञान बराबर वही काम करने के लिए कहता है जो हमने पहले जाना है, उसी के अनुसार चलना है तो आपका श्रद्धान ज्ञान और मजबूत होता चला जाता है। वह चारित्र जो है वह आपके श्रद्धान ज्ञान को और बढ़ा करके उसे आत्मा में संयोग संबंध के साथ में प्रविष्ट कराता रहता है। यानी आत्मा के अन्दर जिनमत का संयोग अगर होता है तो वह चारित्र के बल पर होता है। जब आप अपने आप को समर्पित कर दे, अब हम जीवन पर्यंत केवल इसी प्रकार का कार्य करेंगे, जो कार्य हमें जिनमत में केवल आत्मकल्याण के लिए बताया गया है तो वह आपके अन्दर का जो संयोग बनेगा, जिनमत के प्रति जो श्रद्धान बनेगा, वह श्रद्धान ही काम का होगा। बाकी सब बाहर का संयोग होगा बाहर से छूट जाएगा।

जिनमत का संयोग मिलने पर भी आत्मसात् नहीं करना बहुत बड़ी कमी होती है

संयोग भी दोनों ही प्रकार के होते हैं- एक भीतरी और एक बाहरी संयोग। भोजन जब तक बाहर रखा है तो संयोग तो हो गया, भोजन तो मिल गया लेकिन कैसे मिला? कब तक है यह? बाहर का संयोग और बाहर के संयोग का लाभ न उठाया जाए तो बाहर का संयोग भी खराब सा दिखने लग जाता है कुछ दिनों बाद। जिस भोजन को हम सामने देख रहे हैं लेकिन अपने मुँह में नहीं रख रहे हैं तो वह भोजन भी कब तक आपके सामने रखा रहेगा? वह भी धीरे-धीरे खराब सा लगने लगेगा। वह भी धीरे-धीरे खराब हो जाएगा। वह भोजन कब काम का होगा? कब आपके लिए वह पुष्टिकारक होगा? जब आपको वह संयोग मिला और आप उसको खा ली, आत्मसात कर ली, ग्रहण कर ली। अब भाई जब संयोग मिल ही गया है तो अब ग्रहण करने में देरी क्यों? यह बात समझ में नहीं आती मुझे इन जैनियों को देख कर के। जिनमत का मिलना और जिनमत का संयोग होना और वह संयोग हमें मिल भी गया, फिर भी हमारे अन्दर कुछ संयोग नहीं हो रहा, यह तो एक बहुत बड़ी कमी मानी जाएगी। यह संयोग मिला तो हमने इसको केवल एक बाहरी संयोग बनाया और अन्तरंग में कोई संयोग नहीं बनाया तो उस बाहरी संयोग का कोई उपयोग नहीं। इसीलिए कुछ दिनों के बाद में आपको बाहरी संयोग भी खराब से लगने लगेंगे। मन नहीं लगेगा आपको बाहरी संयोगों

में। मतलब कि अगर आपको मान लो चातुर्मास का संयोग मिल गया और लगातार आपको चातुर्मास मिलते जाएँ, मिलते जाएँ, मिलते जाएँ, आपको बिल्कुल भी मन नहीं लगेगा चातुर्मासों में कि कुछ नया होता है? कुछ नहीं होता है। आपके लिए वह संयोग अपने आप खराब हो जाएगा क्योंकि आपके भीतर कुछ हो नहीं रहा है। इसीलिए कुछ जगह ऐसी भी होती हैं, जहाँ पर लगातार चातुर्मास होते रहते हैं, होते रहते, होते रहते हैं और धीरे-धीरे यह स्थिति बनती है...सभा में बस दो आदमी मिलते हैं या चार आदमी मिलते हैं, सारे संयोग खराब दिखने लग जाते हैं।

बाहरी संयोग मिलने पर उसे भीतर ग्रहण नहीं किया तो व्यर्थ है

ऐसी भी जगह हैं, आचार्य महाराज की कृपा है, जब वह देते हैं तो छप्पर फाड़ कर देते हैं। लगातार दिए ही जा रहे हैं, दिए ही जा रहे हैं, नाम लेना ठीक नहीं लगेगा। लेकिन स्थिति यही बनने लग जाती है और उन्हीं स्थितियों में हम पहुँच गए। माने हमसे पहले छः सात साल से मानो चातुर्मास चल रहे हो। यहाँ की बात नहीं कर रहे, यहाँ के लोग तो बहुत अच्छे हैं। यहाँ की समाज का तो कहना ही क्या है? जितनी प्रशंसा करो उतनी कम है। लेकिन मैं उन समाजों की बात कर रहा हूँ, जहाँ पर पिछले सालों चातुर्मास चलते रहे हो, चलते रहे हो, चलते रहे हो और हम पहुँच गए और हमने देखा...भाई! यह क्या तमाशा है? महाराज प्रवचन करने बैठे और सामने दो आदमी नहीं बैठे। महाराज यहाँ कोई प्रवचन सुनने आता ही नहीं। भाई समाज कितने घर की? बोले 200 घर की, 300 घर की। बोले...कहाँ है? सब अपने-अपने काम में। तब समझ में आता है कि आदमी को संयोग मिलने पर भी क्या हो गया? सामने थाली रखी है, अब खराब क्या होगा? थाली ही खराब होगी न! अब वह थाली खराब क्यों लगेगी? जब सामने रखी है रखी है, रखी है और खाया जा नहीं रहा है खा नहीं रहे हैं तो क्या होगा? धीरे-धीरे उस भोजन से भी बास आने लग जाएगी। बास समझते हो...दो तरह की बास होती है। एक सुवास होती है वैसे बास तो बास ही को बोलते हैं। एक अलग तरह की बास आने लग जाती है। फिर लोगों को क्या लगता है? अरे भाई! महाराज आए, माताजी आई, साधु आए, अरे! वह तो आते ही रहते हैं, वह तो हर साल चातुर्मास होता ही रहता है। अरे! चातुर्मास में तो कार्यक्रम होते ही रहते हैं। वह तो सब चलता ही रहता है। यह क्या होने लगा? यह बास आने लग गई अब। ऐसी बास आने लग जाती लोगों की, बसाते हैं फिर क्योंकि संयोग अगर अच्छा भी हो गया और उसके बाद में आपने उसको भीतर से नहीं लिया तो वह संयोग आपके लिए हितकर, पुष्टिकारक होगा ही नहीं। इसलिए कहा जा रहा है कि संयोग करना। एक संयोग बाहरी होता है और एक संयोग भीतरी होता है और भीतरी संयोग के लिए हिम्मत चाहिए। भीतरी संयोग होगा तो कब मिलेगा? मैं आपसे बता रहा हूँ कि जो भी लोग दीक्षा ले लेते हैं...मुझे अपने अनुभव से यह समझ में आता है कि अगर दीक्षा ले लेते हैं तो वह अनुभव पाते हैं जिसके माध्यम से हम भगवान तीर्थकर के प्रति श्रद्धा रख पाते हैं कि वास्तव में यह है तीर्थकर भगवान का जिनमत। यह श्रद्धा जो उत्पन्न होती है वह दीक्षा के बाद ही उत्पन्न होती है, दीक्षा के पहले कौन सी श्रद्धा होती है मुझे समझ में नहीं आती? भले ही शास्त्रों में लिखी रहती है।

ग्रहस्थों को सम्यग्दर्शन होगा तो चरित्र को धारण करके ही होगा

ग्रहस्थों के पास भी सम्यग्दर्शन होता है, मुझे समझ नहीं आता। कैसा होता है? कुछ नहीं समझ आता।

क्या सम्यग्दर्शन होगा? क्या सम्यग्ज्ञान होगा? होता होगा तो चौथे काल में होता होगा। इस पंचम काल के गृहस्थों में तो मुझे कहीं सम्यग्दर्शन समझ में नहीं आता। अगर श्रद्धा उत्पन्न होगी आपके अन्दर, दृढ़ता उत्पन्न होगी तो वह चारित्र को अंगीकार करने से ही होगी। अगर आप दीक्षित हो गये एक बार जिनमत में तो जिनमत में दीक्षित होने पर ही आप के लिए एड़ी से लेकर चोटी तक की ताकत सब उस समय पर काम आने लग जाती है। इतनी ताकत लगानी पड़ती है हर काम में। वह हर तरह की चर्या में, हर तरह के संयम का पालन करने में एड़ी से लेकर चोटी तक की ताकत लगानी पड़ती है तब जाकर के लगता है कि भाई अब तो कुछ आत्मा से कर्म की निर्जरा हो रही है, अब तो आत्मा में विशुद्धि उत्पन्न हो रही है, अब आत्मा में संस्कार उत्पन्न हो रहा है, अब आत्मा का अनुभव हो रहा है और यह आत्मानुभव जो होता है यह इसी तरह की विरक्ति के माध्यम से होता है। एक बार विरक्ति का भाव आएगा, वैराग्य का भाव आएगा तभी यह वैराग्य शतक पढ़ने का कुछ लाभ प्राप्त होगा। आपने तो अभी वैराग्य शतक सुना है, आत्मसात तो नहीं किया। आत्मसात होने का मतलब है कि जब आपके अन्दर इस संसार से वैराग्य इस तरह से उत्पन्न हो कि आपको जिनेन्द्र भगवान के इस मत के अलावा और कुछ आपको दूसरी चीज दिखाई न दे। हम दिन भर इसी का आनन्द ले, इसी में रमे, इसी के अनुसार अपनी मन, वचन, काय की प्रवृत्ति बनाएँ। इस तरह का संयोग अगर हम भीतर से लेने लग जाते हैं और यह चीजें हमारे अन्दर पहुँचने लग जाती हैं, तब जाकर के यह संयोग, संयोग कहलाता है और उसी संयोग की यहाँ पर चर्चा है। अन्यथा वह संयोग जो बाहर से मिलते हैं वह हमारी मिथ्याबुद्धि को मिथ्या बनाए ही रखते हैं। जब तक आदमी के ऊपर कुछ बीतती नहीं है तब तक उसे कुछ समझ में आता नहीं है और बीतने के लिए क्या करना? कहते हैं न! एक बार ओखली में सिर दे दो फिर देखो कैसी धमक पड़ती है तब समझ में आएगा कि ओखली क्या है? और सिर क्या है? और धमक कितनी बड़ी है? अभी तो आप देखते रहते हो, सुनते रहते हो। जब तक हम उसको स्वयं महसूस नहीं करेंगे, तब तक वह आत्मा के ऊपर उसका संस्कार पड़ता ही नहीं। इसीलिए आचार्यों ने यहाँ कहा कि मिथ्यांध जीवों को जिनमत का संयोग मिलता ही नहीं। आपको जिनमत का संयोग मिल गया, आपको लग रहा है लेकिन मुझे लग रहा है कि आपको जिनमत का संयोग मिला ही नहीं, मिलेगा ही नहीं। तब तक नहीं मिलेगा जब तक कि आप उस धारा में कूद न पड़ो। जब तक कि आपके अन्दर वह भाव न आ जाए या तो जिँगे मरेंगे या फिर मोक्ष जाएँगे। एक ही बात का भाव आना चाहिए कि बस! अब तो इस संसार से अपनी आत्मा का या तो कल्याण करना है और या फिर इस आत्मा के अन्दर इतनी विशुद्धि उत्पन्न करना है जो हमें इन शास्त्रों में बताई गई है। तभी जाकर के वह आपके अन्दर उस भाव को आत्मसात करने की चेष्टा आ सकती है। बाकी तो सब हम सुनते रहते हैं, गुणस्थान होते हैं, विशुद्धि होती है। लेकिन यह होती है, बदलते हैं तो कैसे बदलेंगे? आपको कूदना पड़ेगा। किसमें।

धर्म की राह पर चार प्रकार के लोग

पानी का संयोग आपको मिलेगा तो कब मिलेगा? नदी के किनारे-किनारे बैठ कर के पैर उसमें हिला रहे हो और उस पानी को इधर-उधर करके आनन्द ले रहे हो और कहते हो कि हम नदी के पास होकर के आ गए, नदी में नहा कर के आ गए। नहाया नहीं आपने, डुबकी नहीं लगाई आपने, आप क्या करते रहे? पैर उसके ऊपर इधर-उधर करते रहे। बस यही संयोग है...जिनमत में जन्म लेने के बाद में जो लोग उस नदी

के किनारे बैठे-बैठे पैर हिला रहे हैं, वह आनन्द तो किसी दूसरी चीज का ले रहे हैं और कह रहे हैं कि हम नदी में नहा के आ गए। नदी में क्या नहा लिए? आप तो केवल नदी के पास में खड़े होकर के उसकी हवा लेकर के बस! केवल उसके पैरों पर अपना हिला कर के, पानी डाल कर के खुश हो कर के आ गए। एक लोग वह हैं...जो वहाँ पर बैठने की भी ताकत नहीं रख पाते हैं केवल नदी को दूर से देखकर के, केवल उसकी हवा लेकर के आ जाते हैं घूम कर के आ जाते हैं नदी के किनारों पर और कहते हैं कि हम नदी में नदी के पास होकर के आ गए, एक वह भी लोग हैं। एक वह भी लोग हैं, जो नदी के पास तक जाते नहीं हैं लेकिन उन्हें पता है कि नदी बह रही है, यहाँ पर नदी है लेकिन कभी नदी के पास तक गए नहीं, एक वह भी लोग हैं। एक वह भी लोग हैं जो नदी में डुबकी लगाते हैं रोजाना। कितने तरह के लोग हो गए? चार तरह के लोग हो गए। जो नदी के पास तक घूम करके आते हैं लेकिन नदी को उन्होंने देखा नहीं अभी तक, ऐसे भी लोग हैं वह भी लोग कौन से हैं? आप समझ सकते हो। उन्हें पता होता है कि नदी बह रही है यहाँ नदी है लेकिन उन्होंने कभी नदी को देखा नहीं है। वह लोग थोड़े उससे अच्छे जरूर हो जाते हैं, जो नदी के किनारे तक पहुँच जाते हैं कभी-कभी हवा खाने आ जाते हैं और हवा खा कर चले जाते हैं। वह दूसरी Quality के लोग हो गए। तीसरी Quality के लोग वह हो गए...जो थोड़ा सा नदी के पास बैठ गए, किनारों पर बैठ गए, थोड़ा सा पानी भी उसका अपने पैर से हिला लिए, थोड़ा सा पानी भी मार लिए, अपने हाथ पैर में स्वाहा-स्वाहा कर लिए और थोड़ा सा इतना करके आ गए। भाई खुश हो गए, नदी के पास होकर के आ गए। एक चौथा आदमी वह है...जो नदी में डुबकी लगाने का साहस करता है। जो नदी में डुबकी लगाने का साहस करता है वही नदी को तैरने का साहस कर सकता है और उसी के लिए अगला किनारा मिलता है। यह ध्यान रखने की बात है। अब आपको सोचना है कि आप कौन सी Quality में आने वाले लोग हो? पहली तो नहीं कहलाएगी, कौन सी कहलाएगी दूसरी या तीसरी? तीसरी! तीसरी भी नहीं है अभी। चौथी तो हो ही नहीं सकती। दूसरी तो उतनी ही है कि बस आप आ गए, बैठ गए, देख लिया, सुन लिया यह दूसरी Quality हो गई। तीसरी में भी हाथ पैर थोड़े से जो है पानी में जाएँ, वह तब जाएँगे, जब आप कुछ दर्शन प्रतिमा ले, व्रत प्रतिमा ले, तब कुछ हाथ पैर थोड़े से उस पर नदी के पानी में touch करने को मिलेंगे। तब समझ में आएगा... अरे भैया! बाहर का खाने का त्याग कर दिया। इतना बड़ा त्याग अब जीवन में कभी किसी भी पार्टी में खाने को नहीं मिलेगा। अपने ही घर का खाना पड़ेगा। तब थोड़ा सा कुछ हाथ पैर में कुछ पानी चढ़ेगा वो और वह भी चढ़ कर के सूखता रहेगा। चौथा त्याग जो होता है... वह सबसे बड़ा त्याग होता है। जो चौथी Quality है वह है सबसे बड़ी Quality। क्या है? बस क्या करना? अब डुबकी लगाओ यार बहुत हो गया किनारों पर बैठे-बैठे। पानी है, नदी है तो उसका आनन्द लो और आनन्द लेने के लिए अब डरना क्या? जब हमें अपने भगवान पर विश्वास है, अपने गुरु पर विश्वास है तो अब हमें और कौन से विश्वास की जरूरत है? कि हमारा आत्मविश्वास बढ़े। आत्मविश्वास कैसे बढ़ेगा? आप हिम्मत करो, किनारे से थोड़ी सी उतरने की हिम्मत तो करो, विश्वास बढ़ेगा। आप धीरे-धीरे आगे बढ़ोगे तो आपके अन्दर ऐसा विश्वास आता चला जाएगा कि हाँ! हम अब किनारे पर तैरना सीख गए हैं तो थोड़ा सा अन्दर जाएँगे तो उसमें भी तैर लेंगे और अगर वहाँ पर भी तैरना आ गया तो बड़ी-बड़ी मंझधार भी कभी आएँगी तो हम उसमें भी तैर के निकल जाएँगे। यह शक्ति कहाँ से आएगी? जिनमत का संयोग करना। संयोग करने का मतलब ऊपर से नीचे तक आत्मा नहा जाना उसमें। अभी तो हम पानी में नहाते हैं तो शरीर नहाता है, ऊपर से पानी डालते हैं, भीतर से पानी आना। इसी तरह का भाव एक भजन में लिखा हुआ है...

हुआ गीला मेरा तन तो, कई सौ बार पानी से,
नहीं भीगा हृदय मेरा कभी भी जैनवाणी से।
मुझे वो भक्ति सिखला दो जो मन के मैल धो डाले,
रहे बस ध्यान चरणों का यही बस चाह भर देना।
मेरे भगवन् मुझे एक बार तू आगाह कर देना।
जभी हो शाम जीवन की मुझे इतलाह कर देना।

यह वही भाव है, आखिर भजनों में भी कोई भाव आते हैं तो कहीं न कहीं ये सब ज्ञान से ही आते हैं। यह ज्ञान ही जब भीतर अनुभव के रूप में बदलता चला जाता है तो फिर उसमें अपने आप भीतर से अपने आप एक गूँज निकलती है, शब्द निकलते हैं, ध्वनि निकलती है। इसलिए भजन नहीं कहे गए हैं। इनको क्या नाम दिया गया? अन्तर्गुँज। यह गूँज है भीतर की।

आत्मसात का क्या अर्थ है

अगर वह भीतर से निकलती है तो फिर उसमें यह नहीं देखना पड़ता कि यह भाई शब्द हल्के हैं कि हम क्या लिख रहे हैं? भाई जो मन में आ रहा है वह पक्का है। वह अपने भी काम का है और सबके काम का है। आत्मसात करना यानी हम बोलते हैं...हमने किसी चीज को आत्मसात कर लिया, मैंने ज्ञान को आत्मसात कर लिया। आत्मसात यानी आत्मा में वह चीज समा जाए और आत्मा में चीज तब समाती है जब हम कोई मेहनत करते हैं। जब हमारे सामने वह चीज कठिनता से हमें प्राप्त होती है और उस चीज को जब हम कठिनता से प्राप्त करने के बाद में जब उसका अनुभव करते हैं तब वह चीज हमारे लिए आत्मसात हो जाती है। ऊपर से लगाया गया injection या drip आत्मसात नहीं होती है, भीतर से खाया गया भोजन, वह पूरे शरीर के अन्दर आत्मसात होता है। क्या सुना? मानो आपके लिए किसी विटामिन की कमी है और कोई विटामिन की कमी के लिए आपको ऊपर से injection लगाया जा रहा है वह आत्मसात नहीं होता है।

आत्म शक्ति पर विश्वास होना चाहिए

किसी को डेंगू बुखार आ गया, platelets कम हो गईं, अब उसके लिए injection लगाए जा रहे हैं, drip लगाए जा रहे हैं, वह आत्मसात नहीं होता है। कुछ भी अगर आप में क्षमता हो...खाने की, पचाने की और आप वह चीजें खाएँ जिनसे कि वह चीजें बनती हैं तो वह चीज पूरी body के अन्दर energy देगी, आत्मसात होगी, वह रोगों से भी लड़ेगी और आपकी शक्ति को भी बढ़ाएगी। इसलिए बुखार आने पर या कोई रोग होने पर आप बाहरी उपचारों में तो बहुत ज्यादा पड़ते हैं लेकिन भीतर से उपचार कैसे हो? यह अगर आपको ध्यान नहीं रहता तो केस बिगड़ता चला जाता है। एक डेंगू बुखार भी लोग बड़े-बड़े डॉक्टर control नहीं कर पाते हैं। अब उस बुखार का नाम डेंगू है, क्या है? वह नाम सब दे रखे हैं, सब डरावने नाम दे रखे हैं, डरावनी बातें करते हैं और doctor इन case को भी नहीं संभाल पाते कि आदमी को बुखार

से भी बाहर निकाल पाएँ। अभी एक दिल्ली में रोहिणी के एक मन्दिर में एक माली काम करता था और नई उम्र का ही था। 25 साल का होगा लगभग और उसको डेंगू बुखार हुआ। डॉक्टर नहीं संभाल पाए आखिर उसकी death ही हो गई। सब चीज बाहर-बाहर से होगी तो death निश्चित है और डॉक्टरों का सारा विश्वास बाहर पर रहता है बस। injection लगाओ drip लगाओ, दवाईयाँ दो लेकिन उन्हें कोई भी ऐसी चीजों पर विश्वास नहीं होता, जो चीजें भीतर से खाने के बाद में शरीर में वह तत्व बनाती हैं, जिन तत्वों की हमें जरूरत होती है। न उन्हें कोई सब्जियों पर, न फलों पर, न किन्हीं vitamins के sources पर विश्वास होता है। बस उन्हें जो कुछ भी बता दिया गया है कि इस बुखार की दवा यह है तो बस वही दवा उनके दिमाग में चढ़ी रहेगी। इसके अलावा वह कुछ नहीं करेंगे, चाहे patient मर जाए। बस! वह कह देंगे, संभला नहीं case बिगड़ गया उसके platelets बढ़े नहीं। अरे बढ़े नहीं तो उसकी ताकत से नहीं बढ़े कि तुम्हारी ताकत से नहीं बढ़े। वह आया क्यों था तुम्हारे पास में? अगर तुम्हें दवा देने के बाद में platelets बढ़ाना नहीं आता है तो फिर दवा दे ही क्यों रहे हो?

इससे अच्छा तो वह अपने घर में पपीता खा कर बढ़ा लेता, किशमिश और मुनक्का खा कर बढ़ा लेता, गर्म पानी पीता तो भी कम से कम मरता तो नहीं वह और यह निश्चित बात है। बढ़े-बढ़े बुखारों में भी अगर वह केवल तुलसी और काली मिर्च का भी प्रयोग करता तो भी बच जाता। लेकिन ऐसा हौआ बना दिया जाता है कि वह न डॉक्टर से अपने पास लाने का होता है, न डॉक्टर उसे छोड़ने का होता है और मरीज ऐसी condition में फँस जाता है कि वह कहीं का नहीं रहता। न घर वाले उसे वापस लौटा कर ला सकते हैं क्योंकि डॉक्टर ने कह दिया... इसकी platelets कम हो गई तो आधी तो घर वालों की जान उसी में निकल जाती और उस मरीज ने सुन लिया तो आधा उसका उत्साह कम हो जाता। उन्होंने ने कह दिया कि बिल्कुल भाई 20 हजार रह गई है, 50 हजार से ऊपर होनी चाहिए, कितना ऐसे कुछ होता है? आधी जान तो उसकी वैसे ही निकल गई कि अब तो हम मरने के कगार पर आ के खड़े हो गए तो अब उसकी platelets कहाँ से बढ़ेगी, जब उसकी energy नहीं बढ़ रही तो। अब ऊपर से आप उसको drip लगाओ, इधर-उधर दुनिया की उसकी नाक में, कान में नलियाँ ठोको आधा आदमी तो अधमरा वैसे ही कर दिया। पहले भी यह सब चीजें हुआ करती थीं, सब तरह के रोग हुआ करते थे लेकिन लोग इन सब बीमारियों से अपने घर पर ही रहकर के इन चिकित्साओं से उभर आते थे और आज आदमी बुखार में भी नहीं बच पा रहा है। समझ लो आप! अभी कह दे तो अभी डॉक्टर सब मिलकर के हमारे ऊपर case करने लग जाएँगे। अब बढ़ा बचना पड़ेगा भाई आजकल बहुत जल्दी FIR होने लगी है, कुछ कहा नहीं कि तुरंत complaint होती है, तुरंत FIR होती है। बढ़ा मुश्किल हो गया आज के जमाने में, हाँ मोदी कुछ भी कहते रहें कांग्रेस के लिए कुछ नहीं होगा, कांग्रेस कुछ भी कहती रहे मोदी के लिए कुछ नहीं होगा। बस हमने अगर किसी के लिए कुछ बोल दिया तो बड़ी आफत हो जाएगी। देखो कैसे लड़ रहे हैं दोनों? खुलेआम भाजपा कांग्रेस को गाली देती है, कांग्रेस भाजपा को, सब खुले आम नाम ले लेकर के सब बोल रहे हैं, सब गाली दे रहे किसी के ऊपर कोई case नहीं होंगे क्योंकि चुनाव में सब जायज है। आदमी के लिए जब तक इतनी भी समझ न रहे कि हमें जिस तरह की विद्या से संचित किया गया है, वह विद्या आखिर लोगों के लिए इतनी काम आ रही है और उस विद्या से वास्तव में कितना नुकसान हो रहा है? या फायदा हो रहा है यह भी एक आग्रह दिमाग में बैठ जाता है, जो medical line में चले जाते हैं उनके दिमाग में ही बैठ जाता है कि

जो हम कर रहे हैं बिल्कुल सही है। उसके अलावा उन्हें कुछ भी सही दिखाई नहीं देता है।

बुखार को सही करने का सरल उपाय

मुझे ऐसा लगता है कि अगर वह case एक जीता जागता 25 साल का आदमी, भाई समझो कितनी ताकत होती है युवा आदमी के अन्दर और एक 25 साल के आदमी अगर बुखार आया और डॉक्टर नहीं संभाल पाया तो मैं कहता हूँ कि ऐसा कौन सा बुखार होता है? जो बाहरी उपचारों से न उतरे और आपके भीतरी अरे भाई! उसको लंघन भी करा दोगे तो लंघन से भी ज्वर टूट जाता है, खिलाने की जरूरत नहीं है उपवास में ज्यादा कुछ और हम उसे खिलाए जा रहे हैं। कुछ न कुछ ऊपर से डाले जा रहे हैं, दिए जा रहे हैं, ऐसी हालत खराब हो जाती है कि आदमी उससे उबर ही नहीं पाता है। अब ऐसा डर बैठ गया लोगों में हर रोज एक दो case आते हैं महाराज! डेंगू हो गया platelets कम हो गई, आशीर्वाद दे दो। ऐसे मांगता है आशीर्वाद जैसे कि बिल्कुल मरने के कगार पर खड़ा हो, समाधि ले रहा हो ऐसे आशीर्वाद दे दो। अरे भाई बुखार ही तो है इतना ज्यादा अपने आप को down करने की क्या जरूरत है? कुछ नहीं भी खाओगे तो भी बुखार जो है तीन दिन के अन्दर हल्का पड़ जाएगा लेकिन डर इतना बैठ जाता है कि वह चीजें ऐसी समा जाती हैं कि बुखार तो बुखार रहता है दूसरे और attack हो जाते हैं। यह सब चिकित्सा पद्धतियों के माध्यम से जो आपके लिए हो रहा है, यह भी इसी भाव में आएगा कि हम उस मिथ्याभाव में, हर चीज के मिथ्याभाव में इतने ज्यादा जीते हैं कि हमें दूसरी चीज कभी भी सुखी बनाने के लिए समझ में ही नहीं आती है। अब आपसे कहा जाए कि भाई आप बुखार में लंघन कर लो तो लंघन करने को तैयार नहीं हैं। लेकिन डॉक्टर के पास जाकर के जान देने को तैयार है। लंघन मतलब उपवास कर लो कुछ मत खाओ। नहीं खाएँगे तो कमजोरी हो जाएगी, मर जाएँगे। वहाँ मरना दिख रहा है और वह मर रहे हैं वहाँ मरना नहीं दिख रहा है। जबकि बुखार की दवा है कि अगर कुछ नहीं खाओगे तो बुखार जल्दी टूट जाएगा। केवल गर्म पानी पियोगे, बुखार जल्दी निकल जाएगा और कुछ चाहिए हो तो थोड़ा सा मुनक्का ले लो, तुलसी का पानी ले लो, तुलसी का काढा ले लो, काली मिर्च मिला कर के निकल जाएगा। ज्यादा हो तो पेट सफा करने की कोई चीजें ले लो। वह खा लो बुखार निकल जाएगा और कुछ नहीं होता है बुखार सिर्फ जब पेट में गंदगी ज्यादा बाहर नहीं निकलती है और जम जाती है तो बुखार का रूप लेने लग जाती है। और यह सब चीजें नहीं होने के कारण से बड़ी-बड़ी injection, बड़ी-बड़ी दवाइयाँ, बड़े-बड़े drip, सब चल जाते हैं लाखों के बजट बन जाते हैं और जो मूल काम होना चाहिए वह नहीं होता। यह भी एक बहुत बड़ा मिथ्या अंधकार हमारी बुद्धि में पड़ा रहता है, जो हमारा नुकसान कर देता है। सामने सामने से हमारा आदमी निकल जाता है, मिट जाता है और हम हाथ खड़े मलते रह जाते, कुछ हाथ में नहीं आता है और यह आप देख रहे हो, सब हो रहा है, चारों तरफ। क्या चाहिए आपको?

हर कार्य में सफल होने के लिए हिम्मत चाहिए

हर काम के लिए हिम्मत चाहिए। जीव को बचाने के लिए भी हिम्मत चाहिए और जीव को तिराने के लिए भी हिम्मत चाहिए। अगर हिम्मत नहीं है तो कुछ नहीं है। इसलिए हिम्मत से काम लो। नदी में पैर हिलाते हिलाते बहुत देर हो गए हैं और नदी के पास घूमते घूमते बहुत दिन हो गए हैं। कुछ नदी में डुबकी लगाने की

गाथा: 97

जिनेन्द्रदेव का जिनधर्म ही श्रेष्ठ है उसी का सेवन करना चाहिए

पच्चक्खमणंतगुणा, जिणिंद-धम्मे ण दोसलेसोवि ।
तहवि हु अण्णाणंधा, ण रमंति कयावि तंमि जिया ॥97 ॥

अन्वयार्थ- (जिणिंद-धम्मे) जिनेन्द्रदेव के, धर्म में (पच्चक्खं) प्रत्यक्ष (अणंत-गुणा) अनंत गुण हैं (दोस-लेसो) दोष, लेश यानी अल्पमात्र (वि) भी (ण) नहीं हैं (तहवि) तथापि (अण्णाण-अंधा जिया) अज्ञान से, अंधे, जीव (हु) निश्चितरूप से (कयावि) कदापि (तंमि) उसमें अर्थात् जिनधर्म में (रमंति ण) रमते, नहीं हैं 'यही आश्चर्य की बात है' ॥97 ॥



जिनेन्द्र भगवान के बताए हुए धर्म में अनन्तों गुण हैं

वैराग्य शतक ग्रन्थ की गाथाएँ समापन की ओर हैं, जैसे यह चातुर्मास समापन की ओर है वैसे ही यह ग्रन्थ भी समापन की ओर है... गाथा नम्बर 97 पढ़ते हैं...

पच्चक्खमणंतगुणा, जिणिंद-धम्मे ण दोसलेसोवि ।
तहवि हु अण्णाणंधा, ण रमंति कयावि तंमि जिया ॥97 ॥

आचार्य कहते हैं... 'पच्चक्खमणंतगुणा' प्रत्यक्ष रूप से भी देखे तो 'जिणिंद-धम्मे' 'अणंतगुणा' यानी जिनेन्द्र भगवान के बताए हुए धर्म में अनन्तों गुण दिखाई देते हैं। 'ण दोसलेसोवि' और कुछ भी, लेश मात्र भी इसमें दोष दिखाई नहीं देता है। 'तहवि हु अण्णाणंधा' फिर भी देखा जाए तो अज्ञान से जो अंधे लोग हैं 'ण रमंति कयावि तंमि' इस धर्म में फिर भी वह कदापि रमण नहीं करते हैं।

जिनेन्द्र भगवान द्वारा बताये गए धर्म में गुणों को प्रत्यक्ष रूप में देखे

ऐसे जीव जो अज्ञान अधंकार से युक्त हैं, वह कभी भी जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बताए हुए इस धर्म में रमण नहीं करते हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है। भगवान जिनेन्द्र देव के द्वारा बताए हुए धर्म में दोष नहीं हैं, गुण हैं और यह गुण आपको प्रत्यक्ष भी दिखाई दे सकते हैं। एक वह होता है कि हम सोच समझ कर के, पढ़-लिख कर के कोई बात कहते हैं, समझते हैं। एक होता है कि हम बिना पढ़े भी प्रत्यक्ष से चीजों को देख कर के

समझ पाते हैं। जब हम कोई चीजों को सुनकर, आगम से पढ़कर बोलते हैं तो वह अलग हमारे अन्दर श्रद्धा का भाव लाता है। किन्तु अगर हम भगवान के द्वारा बताए हुए धर्म को अपनी बुद्धि से प्रत्यक्ष रूप से भी देखे तो भी हमें उसमें अनन्त गुण दिखाई दे सकते हैं। अब अगर हमारे सामने यह धर्म आता है तो हम आपसे पूछें कि इसमें अनन्त गुण क्या हो सकते हैं? आप इतना देखते हैं, सुनते हैं, जानते हैं, आपको कौन से इसमें अनन्त गुण दिखाई दे रहे हैं।

धर्म की अवधारणा और विचारधारा

भगवान के द्वारा बताए गए इस धर्म में क्या आपको अनोखा दिखाई देता है? क्या आपको ऐसा लगता है कि यह हमारे लिए अच्छा है? सबके लिए अच्छा है, इसकी अवधारणाएँ इसकी विचारधाराएँ ऐसी कौन सी हैं? जो सबके लिए कल्याणप्रद हैं। इस तरह की बातों का अगर हम विचार करें तो हम समझ सकते हैं कि भगवान जिनेन्द्र देव के द्वारा बताए हुए धर्म में भी अनेक गुण हैं। जब हम भगवान के द्वारा बताए हुए धर्म को सुनते हैं, समझते हैं तो उसमें हमें बहुत अच्छी बात क्या दिखाई देती है? मैं आपसे आज पूछ रहा हूँ... आपको बहुत अच्छी बात क्या दिखाई देती है? बताइए? केवल बिना सोचे समझे आपको बोलना है जो आपको अच्छी बात लगती है। अगर आपको कोई अच्छी बात लगती है तो क्या हो सकती है? बताओ! कोई कह रहा है आप ही अच्छे हो इसलिए अच्छी बात, अच्छी लगती है। अगर हम अच्छे हैं तो इसका मतलब यह है कि अच्छापन हम में नहीं होता है, अच्छापन भगवान के द्वारा बताए गए उस निर्ग्रन्थ रूप में होता है, जो उन्होंने बताया। आदमी तो क्या अच्छा होगा? लेकिन जब वही व्यक्ति उस निर्ग्रन्थ रूप को धारण कर लेता है और भगवान के बताए हुए उस मार्ग पर चलने लग जाता है, तो वह अच्छा बनने लग जाता है। जब एक निर्ग्रन्थ रूप प्राप्त करके एक सामान्य व्यक्ति भी अच्छा बन सकता है, अच्छा दिख सकता है, अच्छा भाव कर सकता है तो यह अच्छाई और बढ़ते बढ़ते कहाँ तक जा सकती है? अगर कोई चीज है तो बढ़ भी सकती है। अच्छाई बढ़ती है तो कहाँ तक ले जाती है? मोक्ष तक ले जाती है। आपको इस निर्ग्रन्थ रूप को देख कर के क्या अच्छा लगता है? निर्ग्रन्थ रूप में आपको कौन से गुण दिखाई देते हैं? चलो हम आज आपसे यही पूछते हैं। अपरिग्रह की भावना दिखाई देती है! कोई कह रहा है भगवान दिखाई देते हैं! सभी के लिए करुणा दिखाई देती है, निर्ग्रन्थ रूप को देखकर आपको क्षमा भाव दिखाई देता है, निर्विकार भाव दिखाई देता है, रत्नत्रय भी दिखाई दे जाता है। इस निर्ग्रन्थ रूप को देख कर के आपको रत्नत्रय भी दिखाई देता है, कैसे दिखाई देता है?

निर्ग्रन्थ रूप ही गुणवान होता है

आपके अन्दर अगर यह भाव आता है कि यह निर्ग्रन्थ रूप हमें तीर्थकरों ने बताया, जिनेन्द्र भगवान ने बताया और इस धर्म को जो लोग पालन कर रहे हैं, वह अनेक अनेक रूपों में हमें अनेक-अनेक गुणों को दिखा रहे हैं तो आप समझो कि भगवान ने यह निर्ग्रन्थ रूप बताकर के भी इस जगत पर बहुत बड़ा उपकार किया। यह निर्ग्रन्थ रूप भी गुणवान लोगों के द्वारा ही धारण किया जाता है और यह व्यक्ति को गुणवान ही बनाता है। कैसा यह निर्ग्रन्थ रूप होता है? जब तक व्यक्ति निर्ग्रन्थ रूप को धारण नहीं करता, तब तक वह एक सामान्य व्यक्ति की तरह रहता है और ऐसे समझो कि जैसे कोई धूली में पड़ा हुआ कोई जैसे रत्न भी हो और

उसके ऊपर कीचड़ लग रही हो...जैसे उसकी कोई महत्ता नहीं रहती और उसी रत्न से अगर थोड़ा सा धूली हटा दिया जाए, कीचड़ हटा दिया जाए और उसके ऊपर जो अनेक किट्टमा लगी हुई है वह हटा दिया जाए तो वह रत्न कैसे चमकने लग जाता है?

विद्याधर अनासक्त महायोगी के संस्मरण

अगर आप आचार्य महाराज के जीवन को देखो, विद्याधर की अवस्था में उन्होंने जब अपना गृह त्याग किया और वह देशभूषण महाराज के पास पहले पहुँच गए और वहाँ पहुँच कर के भी कुछ समय उनके पास में रहे। उनके साथ में विहार भी करते रहे। जब वह उनके साथ में विहार करते थे तो आप जो अनासक्त महायोगी ग्रन्थ है उसमें आपको एक फोटो भी मिलेगी, उसमें विद्याधर संघ के समक्ष खड़े हुए हैं कोने में... एक छोटा सा लड़का जैसा जैसे अपनी फोटो खिंचाने के लिए, कह दिया गया हो...बेटा तुम भी खड़े हो जाओ तो वह भी खड़े हो गए। अब उस समय पर उस विद्याधर को देखो जो उन आचार्य देशभूषण महाराज के संघ में है, अनेक मुनि महाराज हैं...बीच में आचार्य महाराज खड़े हैं और वह फोटो आपको अनासक्त महायोगी में देखने को मिल जाएगी। फिर उसके बाद में वह उनके समक्ष और अनेक श्रावक श्राविकाएँ भी बैठी हैं, क्षुल्लक ऐलक भी बैठे हैं, आर्यिकाएँ भी बैठी है और वहीं पर एक विद्याधर कोने में भी खड़े हुए हैं। यह चित्र आपको जो बड़ा ग्रन्थ है- अनासक्त महायोगी, उसमें मिलेगा। जिसमें संस्कृत प्राकृत सब लिखी हुई है उसमें और अगर आपको छोटी सी हल्की सी किताब चाहिए, जिसमें केवल हिन्दी हिन्दी लिखी हुई है तो उसमें शायद ये चित्र न हो। आप यह देख सकते हो कि एक व्यक्ति एक छोटा सा बच्चे के रूप में वहाँ खड़ा है और उसको आप देख कर के क्या कल्पना कर पाओगे? उस फोटो में देख कर के आपको कभी नहीं लगेगा कि यह एक छोटा सा बालक आगे चलकर के इतना बड़ा महान व्यक्तित्व का धारी एक महान आचार्य बन सकता है।

विद्याधर ने संकल्प के साथ अपनी यात्रा आगे बढ़ाई

उस फोटो को देख कर के आपको क्या लगेगा? लेकिन जब उन्होंने अपने जीवन में संकल्प के साथ में अपनी यात्रा आगे बढ़ाई तो उन्होंने जहाँ जैसा मिला वैसा किया। बताते हैं कि उस संघ में रहते हुए, उन्होंने कभी-कभी डोली तक भी उठाई। वह महाराज डोली में भी चला करते थे। उन्होंने डोली तक भी उठाई और वह संघ का सारा काम किया करते थे...चाहे कमण्डलु में पानी भरने का काम हो चाहे, चौके का काम हो। जो भी समय पर आवश्यक पड़ता है तो वह सारा काम किया करते थे और इस तरह से वह विहार कराते कराते उत्तर भारत से उल्टे दक्षिण भारत तक पहुँच गए थे। स्तवनिधि एक जगह है, वहाँ तक पहुँच गए और वहाँ पर जब संघ पहुँच गया तो लोगों को पता पड़ गया सदलगा पास में था। माता-पिता को पता पड़ गया, विद्याधर अब तो पास में आ गया है, क्या करें? चलो मिलने चलते हैं। मल्लप्पा तो मल्लप्पा ही हैं। कहीं नहीं जाना, कुछ नहीं करना, अपने आप आ जाएगा, जब दिमाग ठण्डा हो जाएगा। इस विचार से कई दिनों तक तो वह गए नहीं। लेकिन घर के लोग तो घर के ही लोग होते हैं और माँ तो माँ ही होती है। अब इतनी पास में आ गया है...चलो तो! कब से देखा नहीं है? देखने चलते हैं, मिलने चलते हैं और कह करके उन्होंने आखिर मल्लप्पा को मना लिया और वह एक दिन वहाँ पहुँच गए। उससे पहले भी अनेक लोग आस पड़ोस

के लोग मिलने आते रहे और जब उन्होंने मिल लिया तो कहा कि अब चलो घर पर। उनके लिए बार-बार मल्लप्पा कहने लगे, अब घर पर चलो, घर पर चलो, यहाँ पर रह कर के क्या करोगे? घर पर बहुत अच्छे से सब कुछ हो जाएगा और जब उन्होंने देखा कि अब हम सदलगा के पास में आ गए हैं तो अपनी परेशानियाँ अब बढ़ गई हैं। आए दिन कोई न कोई इस तरह की बातें करते रहते हैं, आते रहते हैं लोग और वह सब अपना एक disturbance बढ़ गया है। उन्होंने फिर आचार्य महाराज से निवेदन किया... महाराज! हमें यहाँ से वहीं भेज दो जहाँ से आप हमें लेकर के आए।

अध्ययन के लिए विद्याधर राजस्थान गए

हम वहाँ पहुँचे थे उल्टा...दक्षिण से उत्तर पहुँचे आप, फिर हमें उत्तर से दक्षिण ले आए और यहाँ पर आकर के अब यह लोग परेशान करते हैं। आए दिन कुछ न कुछ मिलने वाले आते हैं, परिचित लोग आते हैं तो महाराज अध्ययन हो नहीं पाता है और आपकी कुछ कर कृपा हो जाए तो कुछ दिशा निर्देश हो जाए तो कुछ अच्छे से जीवन में सीख पाए, पढ़ पाएँ, आगे बढ़ पाएँ। महाराज ने कहा बेटा! उत्तरी भारत में चले जाओ। उधर राजस्थान में ही चले जाओ, जहाँ तुम पहले पहुँचे थे और वहाँ पर एक आचार्य शिवसागर महाराज है, उनके पास चले जाना और उनके पास पहुँच करके तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा। वह चले गए और उन्होंने अपने जीवन की यात्रा में वह एक लम्बी यात्रा भी की फिर से। मतलब पहले तो वह अपना घर छोड़ कर के दक्षिण से उत्तर पहले गए, फिर विहार करते करते फिर दक्षिण ले गए महाराज देशभूषण। उसी स्तवनिधि पर उन्हें सात प्रतिमा के व्रत मिल गए थे। अब वह ब्रह्मचारी थे सात प्रतिमा के व्रत थे, वह फिर से यात्रा करते हुए train में बैठ कर के दो दिन में वह फिर से राजस्थान के अजमेर पहुँचे। जब अजमेर पहुँचे तो दो दिन तक उन्होंने कुछ भी खाया पिया नहीं और वहाँ पहुँचने के बाद में अगले दिन सुबह जब उन्होंने भगवान के दर्शन कर लिए स्नान आदि करके उसके बाद में, बताते हैं कि खाना पीना तो बाद में पहले तो भगवान के दर्शन करके पानी पी कर के दो दिन के जगे हुए थे, सो पहले तो उन्होंने नींद ली, सो गए। फिर जब उठे दोपहर में तब जाकर के वहाँ पर उनके एक परिचित पहले से थे वह श्रावक जिसका नाम अक्सर जानते हो आप लोग आया करता है- कजोड़ीमल। वह कजोड़ीमल श्रावक उनके सामने आया और उनसे वार्तालाप हुआ। तब उन्होंने कहा कि कहाँ जाना है? बोले हमें तो आचार्य शिवसागर महाराज के पास जाना है। बोले वहाँ क्यों जाना है? अध्ययन करने के लिए जाना है, पढ़ना है। तब उन कजोड़ीमल श्रावक ने कहा अगर आपको अध्ययन ही करना है तो हम आपको एक ऐसे मुनि महाराज के पास ले चलते हैं जो संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान हैं, अध्ययन उनके पास जितना श्रेष्ठ होगा, उतना किसी के पास नहीं होगा। वह उन्हीं आचार्य शिवसागर महाराज के शिष्य हैं और आपको उन्हीं के पास ले चलते हैं। उन्होंने बड़े सहज भाव से कह दिया कि मुझे क्या फर्क पड़ता है। मुझे तो जहाँ अच्छे से ज्ञान अध्ययन मिले वहीं पर मुझे ले चलो, मुझे अपने जीवन में कुछ सीखना है, कुछ करना है।

धर्म की तेरस मनाएँ

आज धनतेरस मना रहे हैं लोग, तेरस मना रहे हैं, इसलिए यहाँ 13वीं जैसा वातावरण दिख रहा है। धनतेरस, आज भले ही बारस है लेकिन लोग आज धनतेरस मना रहे हैं। अच्छी बात है! पर्व आते हैं लोगों में उत्साह

रहता है और उत्साह लोगों में क्या रहता है? लोग तो उत्साह दिला देते हैं। अब जब दुकानों पर भीड़ होगी, तो कहीं न कहीं किसी को दुकान पर कमी तो होगी ही। जब आज धन की दुकान चल रही है तो थोड़ी धर्म की दुकान पर भीड़ कम होगी, धन की दुकान आज ज्यादा मिलेगी। दो दिन बाद यहाँ पर भी धर्म की दुकान पर भीड़ दिखाई देगी लेकिन फिर भी कोई बात नहीं। जिन लोगों के लिए धन की प्राप्ति की भावना रहती है, वह धनतेरस ही मनाते हैं लेकिन जिन्हें लगता है कि धन से भी बड़ा धर्म है, वह धर्म की भी तेरस मनाने के लिए तैयार रहते हैं और धर्म की वह तेरस क्या बताती है? सबसे बड़ा धन क्या है? यह पैसा, यह दुकानदारी, यह सोना चाँदी यह जो हम इकट्ठा कर लेते हैं, खरीद लेते हैं। यह सब हम एक शौक की तरह या कभी-कभी एक trend की तरह भी करते रहते हैं। कई लोगों के लिए लगता है कि भाई धनतेरस आ रही है तो धनतेरस पर ही कोई अच्छी jewellery खरीदेंगे, धनतेरस पर ही खरीदेंगे। कोई अच्छा घर में set लाना है तो धन तेरस पर ही लाना है कोई गाड़ी लाना है तो धन तेरस पर ही लाना है। आज सबसे ज्यादा गाड़ियाँ निकलती हैं तो आपके लिए वह धन किसी भी तरह से हो सकता है।

विद्याधर ने की ज्ञान लक्ष्मी की आराधना

लेकिन अगर आप जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बताए गए धर्म की ओर देखे तो सबसे बड़ा धन, सबसे बड़ी लक्ष्मी किसकी कहा गया? ज्ञान लक्ष्मी सबसे बड़ी लक्ष्मी कही गई। इस ज्ञान लक्ष्मी के सम्पन्न हो जाने पर ही धन की सम्पन्नता बनती है और अगर यह ज्ञान नहीं है तो कुछ भी नहीं बनता। वह विद्याधर देखो आप कि ज्ञान के लिए परिश्रम की है अपने जीवन में... बार-बार घर छोड़कर के दूसरे प्रान्त में जाना, एक दिशा से दूसरी दिशा में जाना किसके लिए? आप धन के लिए एक दिशा से दूसरी दिशा में दौड़ते हैं और वह किसके लिए दौड़ रहे हैं? ज्ञान के लिए दौड़ रहे हैं। इसलिए आचार्यों ने कहा...

‘ज्ञानलक्ष्मी घनाश्लेषप्रभवानंदननंदितम्’

हमारी आत्मा ज्ञान लक्ष्मी से घनीभूत होकर के भरी हुई है और अगर हमारे पास में वह ज्ञान लक्ष्मी है तो सब लक्ष्मियाँ अपने पास आएँगी। लक्ष्मी कभी बेवकूफों के पास नहीं जाती और अगर कहीं भूल से चली भी गई तो तुरन्त बाहर निकल जाती है। लक्ष्मी को भी ज्ञानवान लोग चाहिएँ। लक्ष्मी कहाँ टिकेगी? ज्ञानियों के पास टिकेगी। कहा जाता है... कि लक्ष्मी का आसन उल्लू है मतलब वह उल्लूओं के ऊपर सवार है। यानी वह जो आँख से अन्धे हैं, उनके ऊपर सवार होकर के बताना चाहती है कि तुम अगर ज्ञान से अन्धे हो, अज्ञान के कारण से तुम्हें कुछ दिखाई नहीं दे रहा है तो तुम्हारे ऊपर बैठकर के हम ऐसे सवारी करेंगे। तुम्हें उसका कोई सुख नहीं मिलेगा और जिनके ज्ञान चक्षु खुले होंगे, उनके सामने सब कुछ होगा। ज्ञान की लक्ष्मी की आराधना करना यह तीर्थंकरों के द्वारा बताया गया, जिनेन्द्र भगवान के धर्म में बताया गया।

धन लक्ष्मी के साथ ज्ञान लक्ष्मी भी जरूरी है

धन लक्ष्मी अगर आपके पास में है और आप सोचो कि अगर आपके पास में ज्ञान न हो, क्या कर लोगे बताओ? दुकान चलाने का भी ज्ञान न हो, कैसे हमें ग्राहकी करनी है? कैसे हमारा व्यापार बढ़ेगा? इसका भी ज्ञान न हो तो लक्ष्मी टिक जाएगी? किससे टिकती है लक्ष्मी? ज्ञान से! ज्ञान हो गया तो समझदारी होगी,

सोच होगी, सूझबूझ होगी और इसी ज्ञान के माध्यम से जब आपकी सोच होगी, सूझबूझ होगी और जब आप लगन से काम करोगे...लक्ष्मी तो अपने आप आती है। उसके लिए दीपक लगा करके बुलाना नहीं पड़ता है, वह अपने आप आती है। हर तीर्थंकर ने हमें यही बताया कि आप अपने अन्दर ज्ञान लक्ष्मी को परिष्कृत करो। अपने आप आपके सामने वह लक्ष्मी आने लग जाएगी। जो आप नहीं भी चाहते वह भी आपको दिखने लग जाएगा। इस ज्ञान लक्ष्मी की आराधना ही तो विद्याधर ने की और आप देखो कि विद्याधर ने फिर उन ज्ञान लक्ष्मी की आराधना कैसे की? वह मुनि ज्ञानसागर जी महाराज के पास में रहकर के ऐसी ज्ञान लक्ष्मी की आराधना की कि उन्होंने दो-तीन वर्ष में ही इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया कि उन ज्ञानसागर जी महाराज के चले जाने के उपरान्त भी, आज पचासों वर्ष तक उसी ज्ञान की आराधना का फल प्राप्त करके वह दुनिया में सर्वश्रेष्ठ ज्ञानवान पुरुष बने बैठे हैं। किसके कारण से? ज्ञान की आराधना से! आत्मा ज्ञानमय है और ज्ञान से परिपूर्ण हैं और आत्मा का वह ज्ञान ही बढ़ेगा तो आपको सब कुछ मिलेगा।

आत्मा का ज्ञान गुण की वृद्धि ही केवलज्ञान लक्ष्मी है

जिनधर्म में, जिन मत में बताए जाने वाले अनेक गुणों में एक सबसे बड़ा गुण यह आपको दिखना चाहिए। निर्ग्रन्थ रूप भी अपने आप में एक गुण है और उस निर्ग्रन्थ रूप के साथ में जब आत्मा के ज्ञान गुण की वृद्धि की साधना की जाती है तो वह ज्ञान की वृद्धि ही, केवलज्ञान की प्राप्ति कराती है। जहाँ केवलज्ञान आत्मा में आ गया, वहाँ सारी लक्ष्मियाँ, सारा वैभव उनके अधिकार में आ गया, उनके समक्ष खड़ा है। लक्ष्मी जी भी समक्ष खड़ी मिलेंगी आपको हाथ जोड़ कर के और आप लक्ष्मी को सामने पाएँगे। लेकिन लक्ष्मी आपकी इच्छा करेगी, आप लक्ष्मी की इच्छा नहीं करेंगे क्योंकि आपके पास में उससे भी बड़ी लक्ष्मी है- केवलज्ञान लक्ष्मी। यह केवलज्ञान लक्ष्मी किसके द्वारा बताई गई? किसने समझाया इसको जगत के अन्दर? यह भगवान जिनेंद्र देव के धर्म में बताई गई। अगर यह धर्म में जिनेंद्र देव भगवान ने यह केवलज्ञान लक्ष्मी नहीं बताई होती तो आज हम भी अन्धे बने फिर रहे होते। हम भी आज कहीं धन के चक्कर में या तो धन किसी को दे रहे होते या धन किसी से ले रहे होते। लोग आज खुश रहते हैं, धन देकर के भी खुश रहते हैं क्योंकि जो लोग खरीदते हैं माल कुछ न कुछ सामान खरीदते हैं वह धन त्यागते हैं, देते हैं और दुकानदार इसलिए खुश होते हैं कि आज के दिन दुकानें खूब चलती हैं। लोगों के दिमाग में पड़ा है कि आज हम जो भी खरीदेंगे वह हमारे लिए अक्षय हो जाएगा। अब सोचो कौन सी वस्तु अक्षय हो जाएगी आपके घर की? कौन सा सोना, कौन सी गाड़ी, कौन से जेवर आपके अक्षय हो जाएँगे? जिनेंद्र भगवान के द्वारा बताए हुए गुणों में यह सबसे बड़ा गुण आपके दिमाग में होना चाहिए कि भगवान ने अक्षय धन को नहीं कहा, ज्ञान को कहा।

केवलज्ञान ही अक्षय सुख है

आपका ज्ञान अक्षय हो सकता है, आपका सुख अक्षय हो सकता है और वह ज्ञान के अक्षय होने पर सुख भी अपने आप अक्षय हो जाता है। अक्षय ज्ञान की प्राप्ति ही केवलज्ञान कहलाता है और केवलज्ञान की प्राप्ति को ही अक्षय ज्ञान की प्राप्ति कहते हैं। अक्षय ज्ञान मतलब जिस ज्ञान का फिर कभी विनाश न हो, ऐसा केवलज्ञान अगर आपकी आत्मा में आ गया तो फिर आपके लिए अक्षय सुख की प्राप्ति भी हमेशा के लिए

हो गई क्योंकि ज्ञान का और सुख का गठबन्धन है। किसका? ज्ञान है तो सुख है, अज्ञान है तो दुःख है और इसीलिए अज्ञान के कारण से दुनिया में हर आदमी कितना ही धनवान क्यों न बन जाए दुःख उठाता है। अपनी दुकान की ग्राहकी से किसी को सन्तोष नहीं होता। जब वह देखता है कि बगल वाले ने तो हमारी दुकान से भी आगे अपनी दुकान निकाल ली तो वह सोचता है कि मैं इसके भी और एक कदम आगे अपनी दुकान निकाल लूँ तो दुकान निकालने में तो tension एक दूसरे के लिए देते हैं। लेकिन अगर ग्राहकी होने के बावजूद भी, धन आने के बावजूद भी अगर ज्ञान नहीं है तो क्या होगा? उससे दुःख ही बढ़ेगा। अपनी दुकान में कितना भी धन आ जाए लेकिन दूसरे के दुकान का ऐश्वर्य देख कर के आपका दुःख बढ़ने लग जाएगा।

सबसे बड़ा सुख है ज्ञान लक्ष्मी की आराधना

वह दुःख आपके अज्ञान के कारण से होगा। आचार्य कहते हैं...सबसे बड़ा सुख मिलता है, ज्ञान लक्ष्मी की आराधना करने से। यह जिनधर्म की सबसे बड़ी विशेषता है कि अपने ज्ञान को प्रकट करो, अपने ज्ञान को बढ़ाओ। आत्मा का ज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं है...यह केवल जिनेन्द्र भगवान ने बताया। आत्मा का ज्ञान बढ़ते बढ़ते इतना ज्योतिर्मय हो जाता है कि उसमें आपको उस दुनिया के सभी पदार्थ, सभी मनुष्य, सभी चेतन-अचेतन वस्तुएँ सब आपके ज्ञान में दर्पण के सामने जैसे प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, दर्पण के अन्दर जैसे सब कुछ झलकता है, वैसे आपके ज्ञान दर्पण में सब कुछ झलकेगा। इसके लिए पुरुषार्थ करो और इसी के लिए यह उत्सव आते हैं, इसी के लिए यह सारे के सारे प्रयोजन होते हैं।

ज्ञान लक्ष्मी की आराधना से ही केवलज्ञान की प्राप्ति

लेकिन हम अपने धन की चाह में मूल प्रयोजन को भूलकर के, अन्य प्रयोजनों में लग जाते हैं। भगवान ने भी अगर धर्म की आराधना करते हुए अगर अपने अन्दर केवलज्ञान की ज्योति प्रकट कर ली। जब भगवान को केवलज्ञान हो गया तो केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद में, सारा वैभव समवशरण के माध्यम से उनके समक्ष खड़ा हो गया। लक्ष्मी के पास में भी इतना वैभव नहीं होगा, जितना कुबेर के पास होता है। आप लक्ष्मी के पीछे पड़े रहते हो, धन किसके पास होता है? कुबेर के पास होता है। कुबेर वह उत्तर दिशा का लोकपाल है, जिसके पास में सबसे ज्यादा रत्न होते हैं, सबसे ज्यादा धन होता है। उस कुबेर को भी आज्ञा मिलती है, इन्द्र के माध्यम से कि जाओ वहाँ पर महावीर भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई है, उनके लिए समवशरण की रचना करो और इस तरह की वह रचना करना कि दुनिया में कोई भी वैभव सम्पन्न व्यक्ति अगर वहाँ पर पहुँच जाए तो उसे लगे कि हमने अपने घर में जो कुछ भी अर्जित किया है वह तो सब तुच्छ है और यहाँ पर जो देखने में आ रहा है, वह सर्वश्रेष्ठ है। ऐसा वैभव सम्पन्न समवशरण कुबेर बनाता है। किसके लिए बनाता है?

केवलज्ञान की ज्योति में सूर्य चन्द्रमा भी दीपक से दिखते हैं

उन तीर्थंकर भगवान के लिए बनाता है और इतना सजाता है, इतनी चीजें दिखाता है, इतने उसमें हर

जगह-जगह पर रत्न, तो कहीं रखने के लिए नहीं होते हैं, भूमियाँ भी रत्नों की बनी होती हैं। हर खम्भे वहाँ पर जो लगे होंगे वह भी सब रत्नों के बने होंगे। जो रत्न आपने कभी एक भी नहीं देखा होगा वहाँ वह दीवारें, भूमियाँ, चारों ओर फर्श अगर कोई वापी भी है, बावड़ी भी है तो उसमें उतरने के लिए सीढ़ियाँ भी रत्नों की बनी रहती हैं। बहुमूल्य वस्तु का सबसे ज्यादा श्रृंगार अगर होता है तो वह भगवान के समवशरण में होता है। जिसने भगवान का समवशरण एक बार देख लिया फिर उसे दुनिया की हर सम्पदा तुच्छ लगने लग जाती है। उसे सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह होता है कि जिनका यह समवशरण है जिनके सामने यह कुबेर का खजाना है, वह आँख नीची किए हुए बैठे हैं, नासा दृष्टि किए हुए बैठे हैं। यह गुण अगर देखने को मिलेगा तो जिनेन्द्र भगवान के बताए हुए धर्म में ही देखने को मिलेगा, त्याग करके भी त्याग का अभिमान नहीं करना और त्याग के फल से ज्ञान लक्ष्मी की आराधना करते-करते केवलज्ञान की प्राप्ति कर लेना, यह जिनेन्द्र भगवान के धर्म का ही गुण है। आपको तो केवल बाहर का ही रूप इतना अच्छा लगता है। जब बाहर का निर्ग्रन्थ रूप अच्छा लगता है तो भीतर की निर्ग्रन्थता का रूप तो कितना अच्छा होगा? वह किसको देखने में आएगा? वह किसी को देखने में नहीं आएगा। वह भीतर की निर्ग्रन्थता का रूप अगर निखरता रहता है, तो वही रूप निखरते-निखरते केवलज्ञान की ज्योति से जगमगाने लग जाता है। यह सारे सूर्य चन्द्रमा उस केवलज्ञान की ज्योति में ऐसे ही दीपक की तरह टिमटिमाते हैं, जैसे आपके घरों में दीपक टिमटिमा रहे हैं। जब भी आपको दीपक की ज्योति देखने को मिले, अपने घरों में दीपक लगे हुए दिखाई दे, आजकल तो दीपक भी लोग कहाँ लगाते हैं? इतना घी भी कहाँ है लोगों के पास में? इतना तेल भी कहाँ है? दूसरों को बस तेल लगाते रहते हैं खाने को भी घी नहीं होता है। बुद्धि कुछ है नहीं, बस प्लास्टिक की झल्लरों से काम चलाते रहते हैं और उसी से समझ लेते हैं कि उजाला हो रहा है, उजाला हो रहा है। लेकिन सबसे बड़ा उजाला किसका कहा गया है? ज्ञान का प्रकाश, ज्ञान का उजाला। उस ज्ञान के उजाले से बढ़कर के कोई भी उजाला नहीं होता और हमेशा इस उजाले को जो व्यक्ति चाहता है उसके जीवन में यह उजाला आता रहता है।

समृद्धि ज्ञान से बढ़ती है

जितने भी समृद्ध लोग होंगे सब बुद्धिमान होंगे। उन्हें लक्ष्मी के पीछे नहीं पड़ना पड़ता है, उन्हें अपनी बुद्धि से काम लेना पड़ता है तो वह समृद्धि उनके पास में अपने आप आती चली जाती है। किसी भी लक्ष्मी सम्पन्न व्यक्ति से पूछ लेना, कैसे वह काम करते हैं? ज्ञान से काम करते हैं, सोच से काम करते हैं, सूझबूझ से काम करते हैं। हमेशा जागृत रहकर के काम करते हैं और वह वही काम करते हैं जो भगवान जिनेन्द्र देव के द्वारा बताए गए काम हैं। हर व्यक्ति से आप पूछ लेना अगर व्यक्ति समृद्ध हो रहा है तो वह जानता है...जितना हम दूसरे के भलाई के लिए काम करेंगे, जितना हम दूसरों को देंगे, जितना हम दूसरों के लिए अच्छा सोच कर के काम करेंगे, हमारी समृद्धि उतनी ही अधिक बढ़ेगी। समृद्धि धन से नहीं बढ़ती है, समृद्धि ज्ञान से बढ़ती है, विवेक से बढ़ती है, अच्छी समझ से बढ़ती है और यह समृद्धि अगर अच्छी आपके पास में है तो आपके पास हमेशा दिवाली है।

ज्ञान ज्योति चैतन्य ज्योति होती है और वह अक्षय होती है

एक दिन की क्या दिवाली मनाना? हम लोग तो उस इंतजार में बैठे हैं कि बस एक दिन वह आए कि जिस दिन एक भीतर से बस वह ज्योति जल जाए और उस ज्योति जलने के बाद में फिर कभी कोई अंधकार सामने टिके ही नहीं और हमेशा दीपावली अनन्तकाल के लिए मनती रहे। ऐसी ज्योति के इंतजार में यह निर्ग्रन्थ रूप धारण किया जाता है और इसकी साधना इस निर्ग्रन्थ रूप से की जाती है। यह गुण जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बताए गए धर्म में उनकी वाणी में ही है। बाकी सब तो अज्ञान के अंधकार में आमूल चूल डूबे हुए दिखाई देंगे लेकिन जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बताए गए धर्म में यह गुण बताया गया है... आप अगर बाहर कोई ज्योति भी देखना तो उससे अपनी अन्तरात्म ज्योति की कल्पना करना कि यह ज्योति तो फीकी है, हमारी ज्ञान ज्योति के आगे। हमारी ज्ञान ज्योति अगर प्रज्ज्वलित हो जाएगी तो यह ज्योति हमको बिल्कुल तुच्छ लगेगी क्योंकि ज्ञान ज्योति, चैतन्य ज्योति होती है और वह अक्षय होती है। एक बार जलने के बाद में वह कभी भी बुझती नहीं है और दो दिन के बाद में यह भी नहीं कहना पड़ता भैया! अब यह झल्लरे निकाल दो हो गई दिवाली। जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बताए गए धर्म का सबसे बड़ा गुण अगर आपसे पूछा जाए तो आपके दिमाग में यह आना चाहिए कि हर temporary चीज से हटा करके हमें शाश्वत की ओर ले जाने का जो भाव दिया जाता है, वह जिनेन्द्र भगवान के बताए हुए धर्म में दिया जाता है। क्षणभंगुर चीजों में आनन्द थोड़े समय के लिए मना भी लिया जाए तो कोई बात नहीं। लेकिन आपको ध्यान रहे कि यह क्षणभंगुर जीवन का आनन्द हमारा लक्ष्य नहीं है। हमारा लक्ष्य तो कुछ शाश्वत होना चाहिए। हमारे लक्ष्य में तो कोई शाश्वत चीज होनी चाहिए जो हमेशा रहे। अगर देखा जाए तो भगवान ने हमेशा उसी ज्ञान की आराधना करके आपके लिए, जगत के लिए उसी ज्ञान की प्राप्ति करने के लिए प्रोत्साहित किया। हर आत्मा अपने अन्दर केवलज्ञान की ज्योति को प्रकाशित करने के लिए, शरीर से भिन्न उस ज्योति को अपने अन्दर देखे, उसकी भावना करे, उसका ध्यान करे। किसी भी परमात्मा के अन्दर वह आत्म ज्योति अगर आपको दिखाई देगी तो उस आत्म ज्योति को देख कर के ही आप अपने अन्दर कल्पना कर पाओगे ऐसी ही ज्योति मेरी आत्मा में है।

आत्म ज्योति की आराधना का यह पर्व है

‘आत्मज्योतिर्दुरितनिवह ध्यातविध्वंसहेतुः’ वह आत्मा की ज्योति जो हर प्रकार के पाप के समूह का विध्वंस कर देती है। वह आत्मा की ज्योति जो हर प्रकार के अज्ञान के अंधकार को दूर कर देती है, उस आत्म ज्योति की आराधना करने का यह पर्व है और ज्ञान की आराधना करने का यह पर्व है। क्योंकि यह पर्व भी भगवान महावीर स्वामी के केवलज्ञान से और उनके मोक्ष से, निर्वाण से जुड़ा हुआ है। इसलिए आने वाले दो दिनों में आप वह देखेंगे जो भगवान महावीर स्वामी ने प्राप्त किया।



मणिमाली मुनि महाराज की कहानी

राजा श्रेणिक की बात तो चल ही रही थी, समवशरण तो उसी दिन से लगा हुआ है, जिस दिन से सतना में आगमन हुआ है। राजा श्रेणिक समवशरण में रोजाना आता ही है, आप भले ही कभी-कभी आओ यह बात अलग है। कभी कभी अगर राजा श्रेणिक

का नाम सभा में नहीं भी आता है तो यह समझ लेना चाहिए कि सभा में राजा श्रेणिक सुनते-सुनते मुग्ध हो गया। अभी भगवान ने राजा श्रेणिक के बारे में अलग से कुछ नहीं कहा लेकिन एक दो दिन श्रेणिक फिर से कहीं न कहीं चर्चा में आ ही जाता है। क्योंकि भगवान का समवशरण है तो श्रावक भी हैं और श्रावक में श्रेष्ठ श्रावक अभी श्रेणिक का ही नाम है। गणधर परमेष्ठी का ओहदा तो अलग ही है। लेकिन श्रावकों में लोग सोच रहे हैं कि महाराज वह कहानी कहाँ चली गई? अब उस कहानी में इतनी कहानियाँ बन गई कि लोगों को यही पता ही नहीं है कि वह कहानी कहाँ चली गई? अरे भाई वह कहानी कहीं नहीं चली गई कहानी वहीं पर है। राजा श्रेणिक फिर से मुनि महाराज की जब परीक्षा ले रहे थे तो उन्होंने तीन मुनि महाराज का पड़गाहन करने के लिए तैयारी की थी और तीनों मुनि महाराज लौट गए थे। फिर एक-एक के पास जाकर के उन्होंने पूछा...महाराज क्यों लौट गए? महाराज क्यों लौट गए? महाराज क्यों लौट गए? एक ने कहा कि हमारे पास में तीन में से केवल दो ही गुप्तियाँ थी, तुम्हारी रानी ने इशारा किया महाराज तीन गुप्ति वाले मुनि महाराज को पड़गाहना है आज हमें। दूसरे के पास भी एक नहीं थी, दो थी और तीसरे के पास भी एक नहीं थी, दो-दो गुप्तियाँ थी। एक मुनि महाराज के पास में जिन के पास में काय गुप्ति नहीं थी, उनके पास में वह पूछते हैं...महाराज! आपके पास कैसे काय गुप्ति नहीं थी? आप यह बताइए तो वह मुनि महाराज अपनी कहानी बताने लग गए कि मेरे पास काय गुप्ति कैसे नहीं थी? वह काय गुप्ति की कहानी चल रही थी, वह आप भूल गए। राजा श्रेणिक खड़े हैं उन मुनि महाराज के पास जिनका नाम है- मणिमाली मुनि महाराज, क्या नाम है? नाम बताने से भी याद रह जाए और उनके पास में खड़े होकर के वह मणिमाली मुनि महाराज से अपनी कहानी सुन रहे थे कि कैसे मैं शमशान में तपस्या कर रहा था? मेरा सिर जला दिया था। फिर मेरे लिए वह जिनेन्द्र भक्त जो सेठ था, वह मुझे उपचार कराने के लिए लाक्षा तेल लेने गया था। कैसे उसने तीन घड़े फोड़ दिए थे? फिर वह चौथे उपकरण में वह तेल लेकर के आया, उससे उपचार किया और उस जिनेन्द्र भक्त जिन दत्त सेठ ने मेरा उपचार करके मुझे बिल्कुल स्वस्थ बना दिया। यह कहानी चल रही है, कौन सुना रहा है? मणिमाली मुनि महाराज, राजा श्रेणिक को सुना रहे हैं, अपनी पुरानी कहानी। राजा श्रेणिक उनसे पूछ रहे हैं कि भाई आपकी काय गुप्ति कैसे नहीं है? वह अपनी उस काय गुप्ति के बारे में बता रहे हैं कि जैसे कि वहाँ शमशान में एक बार जो सिर हिल गया तो वह काय गुप्ति वहाँ पर नहीं रही। फिर आगे वह उसी के बारे में और बताते चले जाते हैं कि जब हम ठीक हो गए तो क्या हो गया? ठीक हो गए। चातुर्मास का समय आ गया और जब चातुर्मास का समय आ गया तो उस सेठ ने निवेदन किया कि महाराज! आप चातुर्मास यहीं कर लो। आप को इधर-उधर अभी जाने की जरूरत नहीं है, भले ही आप थोड़ा ठीक हो गए हो लेकिन हम चाहते हैं कि अब हमें आपका संयोग मिला है तो आपका सानिध्य हमें और मिल जाए और जो आपकी वैयावृत्ति की है, सेवा की है, उसका फल अगर हमें यही मिल जाए कि हमें आपके चातुर्मास के चार महीने का संयोग और मिल जाए तो इससे अच्छी बात क्या होगी? किसने कहा? जिनदत्त सेठ ने कहा। अब सेठ ने जब कहा तो मुनि महाराज ने वहीं पर चातुर्मास कर लिया, अब देखो चातुर्मास के अन्दर एक विशिष्ट घटना घटित होती है।

मणिमाली मुनि के चातुर्मास में एक विशिष्ट घटना होती है

सुनोगे की नहीं! एक विशिष्ट घटना! क्या हुआ? सेठ का एक लडका था, जो अपना ही उसका पुत्र था। वह थोड़ा सा ऐसा था कि सेठ को लगता था कि यह सारा धन हमारा कभी न कभी नाश कर देगा। सेठ ने विचार

किया कि क्या करें? जो उसके पास में अच्छा मोटा धन था, मोटा धन मतलब सोना-हीरा-जवाहरात वगैरह ये जो मोटा-मोटा धन होता है, जिसके लिए आप धन तेरस मना रहे हो। यह धन जो उसके पास में था, वह धन उसने इकट्ठा करके एक घड़े में भर कर के अपने बेटे से बचाने के लिए उसने क्या किया? जहाँ मुनि महाराज का निवास उन्होंने दिया था कि आप महाराज यहाँ पर रुकना, उसी स्थान पर उसने एक गड्ढा खोद कर और सारा धन बहुमूल्य रत्न आदि उसमें भर करके उस गड्ढे में वहीं पर उस घड़े को दबा दिया। किस लिए? ताकि यह बेटे के हाथ में यह धन न लग जाए। यह दिमाग का थोड़ा ठीक दिखाई नहीं दे रहा है कहीं यह धीरे-धीरे धन को नष्ट न कर दे। इसके पास में धन के मद कुछ ज्यादा ही दिखाई दे रहा है। उससे बचाने के लिए उसने ऐसा उपाय किया और वह महाराज के पास में इसलिए रख दिया कि महाराज को तो पता ही नहीं होगा, किसी को पता ही नहीं होगा और यह धन यहाँ सुरक्षित रहेगा। कोई यहाँ पर खोदने तो आएगा नहीं और यहाँ पर जो है धन की सुरक्षा आराम से बनी रहेगी तो उसने मुनि महाराज जहाँ निवास करते हो, वहीं पास में गड्ढा करके उस धन को घड़े में रख कर के रख दिया। संयोग से उसके बेटे ने वह कृत्य देख लिया। अब मुनि महाराज जब वहाँ नहीं थे तो सेठ ने यह कार्य कर लिया और मुनि महाराज वहाँ पर रहे हैं और उसे पता था कि यहाँ पर कोई आएगा जाएगा नहीं, धन की सुरक्षा बनी रहेगी। अब क्या हुआ? चातुर्मास हो गया और चातुर्मास हो गया तो मुनि महाराज वहाँ से विहार कर गए और वहाँ से विहार करके वह आगे दूसरे नगर में चले गए। किसी दिन उसके लड़के ने वह घड़ा अच्छा मौका देख कर के, उसमें से निकाल लिया। यह बात सेठ को पता नहीं, सेठ ने जब कुछ दिनों के बाद में देखा कि महाराज चले गए, स्थान असुरक्षित हो गया तो देख तो लो कि इस स्थान पर घड़ा है कि नहीं? जब सेठ ने देखा तो उस स्थान पर घड़ा था ही नहीं। वहाँ कुछ जो गड़ा हुआ था वह कुछ था ही नहीं। अब सेठ को लगा कि धन लक्ष्मी कहाँ चली गई? अब सेठ के दिमाग में आया कि यहाँ तो कोई रहता ही नहीं था, यहाँ तो मुनि महाराज रहते थे और उनके अलावा शायद किसी को पता भी नहीं था। महाराज को तो पता था लेकिन उनके अलावा और किसी को पता भी नहीं था। मैंने इतने चुपचाप से इसको छिपा करके रखा था और यह कहाँ चला गया? और महाराज चुपचाप चलते बने। अब सेठ के दिमाग में चक्कर आने लग गया, किसके कारण से? जितने भी चक्कर आते हैं, सब धन लक्ष्मी के कारण से ही आते हैं, ध्यान रखना आप! सब चाहते हैं तो धन लक्ष्मी! धन लक्ष्मी! धन लक्ष्मी! और जिस दिन तुमको depression होगा जिस दिन तुम्हारा दिमाग खराब होगा, इस धन लक्ष्मी के कारण से ही होगा। इसलिए जिनेन्द्र भगवान ने बताया ज्ञान लक्ष्मी की आराधना करो। ज्ञान सही रहेगा तो सब अच्छा रहेगा। अब क्या हुआ? अब सेठ के दिमाग में और कोई बात ही नहीं आए कि इस घड़े के बारे में और किसी को पता ही नहीं था। यहाँ कोई आता ही नहीं था और यह घड़ा चला कहाँ गया? अब सेठ को चैन नहीं पड़ी, महाराज दूसरी जगह पर पहुँच गए, दूसरे नगर में पहुँच गए। अब सेठ ने सोचा अब क्या करें? महाराज के अलावा इस घड़े का पता किसी को था ही नहीं तो घड़ा कहाँ गया? महाराज जी के पास। अब महाराज जी के पास होगा तो अब पूछे कैसे? हिम्मत तो करनी पड़ेगी तो गया महाराज के पास में हिम्मत करके पहुँचा। हिम्मत करके जब वहाँ पहुँचा, महाराज से निवेदन किया... महाराज! आपका चातुर्मास तो बहुत अच्छा हुआ। वहाँ पर आपको बहुत लोग याद करते हैं, आपके चातुर्मास में बहुत लोगों ने लाभ लिया। सब श्रावक-श्राविकाएँ आपके चातुर्मास में प्रसन्न होकर के चार महीने तक धर्म की आराधना करते रहे। एक धर्म की आराधना जो आपने अन्त अन्त में कराई, उसका तो कहना ही क्या है? जो आपने महामह नन्दीश्वर विधान कराया उसका तो कहना ही क्या है? अरे! तुम क्यों

ताली बजा रहे हो? वह तो उन्होंने कराया होगा, तुम्हारे यहाँ अभी कहाँ हुआ? अब उस श्रावक ने सब प्रशंसा कर दी और प्रशंसा करने के बाद में कहता है...महाराज! आपसे एक निवेदन है और वह निवेदन यह है कि हमारी इच्छा है कि आप फिर से हमारे यहाँ चलें। चलते-चलते उसने एक taunt कस दिया...क्या taunt कस दिया? **‘मन मलीन तन सुन्दर कैसे? मन मलीन तन सुन्दर कैसे? लोभ कषाय तो निष्परिग्रही कैसे?’** ज्ञानी तो बन ही जाते हैं सब लोग और यह व्यंग्य कस कर, यह taunt कस कर वह मुनि महाराज से निवेदन किया। महाराज! एक बार आपको मेरे स्थान पर फिर से आना ही पड़ेगा तो महाराज को लगने लग गया कि इसके दिमाग में कुछ गड़बड़ चल रहा है और यह कुछ अलग भाषा में बोल रहा है। यह जो सोच रहा है वह अब मैं समझ सकता हूँ कि यह क्या सोच रहा है? और क्या हो गया होगा? वह मुनि महाराज ने अपने ज्ञान से समझ लिया। अब क्या करें? न तो वह सीधा कहने की हिम्मत रखता है और जब वह ही सीधा कहने की हिम्मत नहीं रखता तो महाराज क्यों सीधा बोले? अब वह भी अपनी बात को इस रूप में कह रहा है कि महाराज! **‘मन मलीन तन सुन्दर कैसे? लोभ कषाय तो निष्परिग्रही कैसे?’** यानी वह बात उसने महाराज से कही तो महाराज को समझ में आ गया, इसे शंका हो रही है कि महाराज के अन्दर लोभ कषाय है तो यह निष्परिग्रही कैसे हो सकते हैं।

श्रावक ने क्यों सुनाई कहानी?

अब महाराज समझ गए और उसने कुछ नहीं कहा निवेदन किया और निवेदन को स्वीकार करके, मुनि महाराज उसके दिमाग को सही करने के लिए कि भाई! इसकी समस्या का अगर कोई समाधान हमारे माध्यम से हो सकता है तो कोई बात नहीं, महाराज उसके नगर में फिर से आ गए। अब नगर में आ गए तो अब वह श्रेष्ठी रोजाना महाराज के पास जाने लगा और जाकर के रोजाना कुछ न कुछ इसी तरह की बात कहने लगा। एक दिन वह बैठा था, कहने लगा...महाराज! आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। महाराज कहने लगे....जल्दी बोलिए क्या कहना चाहते हो? कहिए एक कहानी सुनाना चाहता हूँ। महाराज को लगा अब यह अपनी बात कहानी के माध्यम से कहेगा, कोई बात नहीं बेटा! सुना कहानी, कौन सी कहानी सुना रहा है? अब हमारी कहानियाँ सुनते सुनते तुझे भी कहानी आने लग गई, चल ठीक है तू भी कहानी सुना। अब वह सेठ कहानी सुनाने लगा कि महाराज क्या था? एक बनारस नाम की नगरी थी और उसमें एक वैद्यराज जी रहते थे, उनके दो पुत्र थे और दोनों पुत्र एक तरह से अज्ञानी थे। जैसे तैसे वह अपना पालन करते थे और जब तक वह वैद्यराज थे तो उसके कारण से उनका पालन हो जाता था। संयोग की बात है कि वह एक दिन राजा का निधन हो गया। जो दोनों पुत्र अज्ञानी थे, मूर्ख थे, अब इनकी जिन्दगी में संकट खड़ा हो गया। हुआ यह कि जैसे तैसे उन्होंने अपना जीवन चलाने के लिए किसी एक दूसरे वैद्य के पास गए और वहाँ वैद्य के पास रहकर के बड़ी लगन से कुछ विद्याएँ सीखी ली, कुछ वैद्यों के उपचार सीख लिए, जिससे इनके जीवन में कुछ भरण-पोषण का काम बन गया। वह उस विद्या को सीख कर के अपने घर पर वापस आ रहे थे कि रास्ते में वन में उन्हें एक सिंह दिखाई दिया और सिंह उस समय पर नेत्र ज्योति से रहित हो गया था। यानी उसकी आँखों में दिखाई नहीं दे रहा था। सिंह इस पीड़ा से ग्रस्त था और यह बात उन दोनों ने उस जंगल से गुजरते हुए देख ली तो एक ने दूसरे से कहा, दोनों पुत्र थे, बोले...देखो! हम वैद्य गिरी सीख कर के आए हैं, इतने अच्छे-अच्छे उपचार के formula सीख कर के आए हैं। अगर कहो तो मैं इस सिंह को अभी ठीक कर दूँ। यहीं पर हम एक विशिष्ट अंजन का निर्माण करते हैं और उस अंजन को हम जैसे ही इसके आँख में

लगाएंगे ठीक हो जाएगा और हमारे उपचार जो हम सीख करके आए, उसका एक अच्छा practical भी हो जाएगा। दूसरे भाई ने कहा...भाई! क्या मूर्खता की बातें कर रहा है? अभी उसको दिख नहीं रहा है तो ठीक है और जब दिख जाएगा तो वह तुझे छोड़ देगा क्या? वह कहता है...नहीं-नहीं ऐसा कुछ नहीं होगा। वह माना नहीं और दूसरा भाई उससे मना करता रहा। बोले...तेरे मन में आए सो तू कर। मैं तो ऐसा उल्टा काम कभी नहीं करूंगा। वह जाकर के एक पेड़ पर बैठ गया और इसका मन नहीं माना। यह वैद्यगिरी सीख कर के आया था, सो इसने एक अंजन बनाया और उसकी आँखों में लगा दिया और सिंह कई दिनों से भूखा था क्योंकि आँखें नहीं होने से उसे शिकार नहीं मिल रहा था। अंजन लगाते ही उसकी आँखें ठीक हो गईं और जैसे ही उसने आँखें खोली, आँखें ठीक हो गईं तो सबसे पहले उसने उसी के ऊपर झपट्टा मार दिया और अपना शिकार कर लिया। कहानी हो गई? सेठ ने कहानी सुना दी, किसकी? मुनि महाराज की। सेठ कहता है महाराज! आप बताओ! क्या सिंह को इस तरीके से करना अच्छी बात थी? जब सिंह ने उपकार अपने ऊपर देख लिया था कि एक सामने वाले व्यक्ति ने अपने ऊपर उपकार किया है, उसका उपचार किया है...देख रहे हो वह कहानी कहाँ जोड़ रहा है? सेठ ने महाराज का उपचार किया था न! वह कहता है कि अपने ऊपर उपकार करने वाले का इस तरह से नुकसान करना, उसे हानि पहुँचाना, यह सिंह के लिए क्या अच्छा था? महाराज कहते हैं...कदापि अच्छा नहीं था। अब महाराज समझ गए कि देखो! इसने एक कहानी सुना दी। यह सुना कर के क्या कहना चाह रहा है और क्या कहलवाना चाह रहा है? समझदार लोग बातों ही बातों में सब बातें करते हैं और direct कहने की हिम्मत न उसकी है और महाराज समझ भी रहे हैं तो महाराज भी कम नहीं है। उन्होंने भी एक कहानी सुनाना शुरू कर दी बेटा! अब सुन मैं तुझे एक कहानी सुनाता हूँ। अब आज नहीं सुनाऊँगा, आज तो time हो गया। आपको अपनी आँखें खोल करके रखना है, अपने ज्ञान का उपयोग करना है और यह देखना है कि धन महत्वपूर्ण है या हमारा ज्ञान महत्वपूर्ण है। अगर ज्ञान भी है तो वह ज्ञान सम्यक् ज्ञान है या ऐसा ज्ञान है जो अपने ऊपर आफत ले आए, ऐसा ज्ञान है। ज्ञान भी दो तरह के होते हैं। अब उसके पास में वैद्य का उपचार करने का ज्ञान तो आ गया और उसने अपने ज्ञान का क्या उपयोग कर दिया? उसे खुद समझ नहीं आ रहा कि मैं अगर सिंह की आँखें खोलूँगा तो मैं बचूँगा क्या? ऐसे भी ज्ञान को भी अज्ञान की श्रेणी में रखा जाता है, जिससे खुद का अहित हो जाए। भगवान जिनेन्द्र देव के बताए हुए धर्म का यह सबसे बड़ा गुण है कि आपको जो ज्ञान मिलता है, उस ज्ञान से आपका हित होगा, अहित नहीं होगा।

जिनेन्द्र देव के द्वारा बताए गए धर्म में अनेक गुण हैं

यह आपको प्रत्यक्ष रूप में एक गुण देखने को मिलेगा। आपके मन को अच्छा लगेगा, आपकी आत्मा का हित होगा। भगवान जिनेन्द्र देव के द्वारा बताए गए इस धर्म में जो अनेक गुण हैं उन गुणों में आपके अन्दर वह भाव आएगा कि भगवान ने यह धर्म बताया है। जो क्षमा का धर्म है, सत्य का धर्म है, मृदुता का धर्म है, शुचिता का धर्म है, इस धर्म में हमें अपने अन्दर कोई भी तरह का जब यह क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों से रहित होने का भाव आएगा तो इसके गुण हमें अपने आप दिखाई देते हैं। यह भी भगवान के द्वारा बताए हुए धर्म के गुण ही तो हैं और क्या गुण हैं? मानो आप भगवान की पूजा करते हैं, भगवान की आराधना करते हैं आपके अन्दर शान्ति आती है। विचारों में शुद्धता आती है, यह गुण भी आपको भगवान की उस पूजा आदि से महसूस होते हैं। भगवान की पूजा करने से हमारी आत्मा के अन्दर जो भगवान के

प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है, वह श्रद्धा भी हमारी रक्षा करने वाली होती है। यह गुण भी आपको भगवान की जिन धर्म की आराधना से आपको दिखाई देंगे और भी अनेक गुण कि भगवान ने कभी भी किसी के लिए भी बुरा करने की बात नहीं कही और हर आदमी के लिए भगवान बनने की बात बताई। यह बात जिन धर्म का सबसे बड़ा गुण है। हर आत्मा अपने इस संसार के दुःखों से अपने को कैसे बचाए? चाहे भले ही वह दुःख की परम्परा बहुत हो और उसको बताने के लिए भगवान ने बहुत लंबा-लंबा ज्ञान भी क्यों न दिया हो? लेकिन भगवान ने ज्ञान दिया और इसी ज्ञान को समझ कर के हम चार गतियों के दुःखों को समझ पाते हैं, तीन लोक में रहने वाले जीवों को समझ पाते हैं। हर जीव अपना हित अहित अपनी बुद्धि से अपने पुरुषार्थ से करता है, यह बात भी हमें भगवान के धर्म को समझ कर के ही आती है। यह भगवान के द्वारा जिनेन्द्र भगवान के बताए हुए धर्म के गुण हैं। अपने कर्म जो हमने स्वयं अनादि से अर्जित किए हैं, उनका विनाश, उनका क्षय करने की विधि और उनका क्षय होने पर केवलज्ञान को प्राप्त कर लेना। यह जो ज्ञान ज्योति की प्राप्ति है, यह ज्ञान ज्योति की प्राप्ति करने का उद्देश्य हमें जिनेन्द्र भगवान के बताए हुए धर्म ही में मिलता है। यह गुण कहाँ है? अहिंसा का गुण, अपरिग्रह का गुण, निर्विचार, निर्विकल्प, निर्विकार होने का गुण यह कहाँ मिलता है? जिनेन्द्र भगवान के बताए हुए धर्म में मिलता है। पूरा जीवन आत्म साधना से गुजारने का गुण कहाँ मिलता है? अनुशासन के साथ में रहने का गुण कहाँ मिलता है? भगवान के द्वारा इतना बड़ा यह निर्ग्रन्थ रूप की चर्या बताई गई, जो निर्ग्रन्थ रूप कोई भी धारण करने की बात तो क्या सोचने में ही इसके लिए कठिन लगता है। यह गुण भगवान ने बताया कि आप अगर इस तरह से निर्ग्रन्थता का पालन करेंगे, अचेलक के गुण का पालन करेंगे आपके पास में कोई भी चेल यानी वस्त्र आदि नहीं होंगे तो उससे बहुत-बहुत गुण प्रकट होंगे। यह गुण भी भगवान के द्वारा बताए हुए धर्म में ही मिलता है। अन्यथा आप देख लो, आप कल्पना करो कि अगर कोई व्यक्ति बिना भगवान की धर्म में दीक्षा लिए हुए या बिना कुछ किए हुए केवल ऐसा नग्न होकर के बाहर निकल जाए तो उसे कितने लोग पूज लेंगे, बता दो आज? पत्थर मारेंगे, सही कह रहे हैं।

निर्ग्रन्थता जिन धर्म का सबसे बड़ा गुण है

आप सोचो तो कभी विचार करके कि भगवान ने कितना बड़ा? मतलब जो उन्होंने शाश्वत सत्य है वह उन्होंने अपनी दिव्य ध्वनि में बताया। अपने समय में बताया और वह चीजें हमेशा चलती रहेंगी क्योंकि वह तीर्थंकर ने कही हैं। उसमें गुण हैं और वह गुण क्या हैं? कि उसको देख कर के लोगों के अन्दर अपने आप यह विश्वास आ जाता है कि यह किसी का बुरा नहीं करेंगे। यह विश्वास अपने आप देख कर के आ जाता है। यह विश्वास आता है कि नहीं आता, यह किसी का बुरा नहीं चाहेंगे, यह किसी का बुरा नहीं करेंगे, यह निर्ग्रन्थता का जो सबसे बड़ा गुण है, यह भगवान के द्वारा जो बताया गया है, उस अनुसार जो चलता है उसके अन्दर उपलब्ध होता है। अन्यथा कोई यूँ ही अपने आप वस्त्र छोड़ कर के बाहर निकल जाए, खड़ा हो जाए... आप देख लो क्या होगा उसके साथ में? जी पाएगा? वह निकल पाएगा? ऐसा कर पाएगा? यही चीज कितनी अच्छे ढंग से आसानी से कितने ही बड़े शहर हो, कितने ही लोग हो, उन सबके बीच में यह चीज बड़ी आसानी से चलती रहती है और कोई भी व्यक्ति कुछ जानता हो या न जानता हो लेकिन एक इस निर्ग्रन्थ रूप को देखकर हाथ में पिच्छी देखकर, अपने आप समझ लेता है कि यह तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का रूप है। यह कितना बड़ा गुण है? किसी को समझाना नहीं पड़ता, अपने आप भी समझ लेता

है। ऐसे गुण को बताने वाले इस धर्म के अन्दर कितनी और quality हैं? यह आपके लिए अगर खुद जानने में आए, प्रत्यक्ष रूप से समझने में आए तो आप समझ सकोगे कि हम कितने महान धर्म को जानते हैं? कितने महान धर्म के हम एक तरह से श्रद्धालु हैं? कितने महान धर्म के हम एक तरह से अभ्यास करने वाले श्रद्धालु बने हुए हैं और इस तरह की चीजें जब आपके दिमाग में आएंगी तो आचार्य कहते हैं...यह आपके अन्दर जो अज्ञान का अंधकार है, वह दूर होगा और यही अज्ञान अंधकार दूर होने पर आपको जिनमत में रमण करने में आनन्द आएगा। जिनधर्म में आनन्द आपको आएगा, हर तरह के व्रत में, चर्या में, हर तरह की अनुष्ठान में आपको आनन्द आएगा। यह गुण अगर आपकी समझ में आएगा तो फिर आपको कोई बहाना नहीं बनाना पड़ेगा...महाराज! अभी तो धनतेरस आई है, अभी दीपावली आ रही है, यह सब आएँगे, किसके कारण से आएँगे? यह सब उन्हीं तीर्थंकर महावीर भगवान की देन है, जिनके मोक्ष होने पर जगत आज भी दीपावली को उतने ही आनन्द से मना रहा है, जितना हजारों वर्ष पूर्व देवों ने भगवान की दीपावली मनाई थी, आज मनुष्य भी ऐसी दीपावली मना रहे हैं। यह उन्हीं के उस निर्वाण जाने के बाद इस दुनिया में ज्ञान का प्रकाश बना रहे, इस हेतु यह एक रूपक प्रस्तुत किया गया था कि भगवान के निर्वाण होने के बावजूद भी ज्ञान का प्रकाश कभी भी कम नहीं होगा। यह जिनेन्द्र भगवान के बताई हुई, जो धर्म देशना है, उसका अगर आप अनुभव करेंगे, उसका अनुपात करेंगे तो आपके लिए यह बात हमेशा समझ में आएगी। इसलिए धन लक्ष्मी से भी श्रेष्ठ है! बोलो! ज्ञान लक्ष्मी। ज्ञान का उजाला सबसे बड़ा उजाला है और उसी उजाले में हम सभी को प्रकाशित होना है।

गाथा: 98

अनन्त संसार का कारणभूत मिथ्यात्व शीघ्रता से छोड़ देना चाहिए

मिच्छे अणंतदोसा, पयडा दीसंति ण वि य गुणलेसो।
तहवि य तं चेव जिया, ही मोहंधा णिसेवंति ॥98 ॥

अन्वयार्थ- (मिच्छे) मिथ्यात्व में (पयडा अणंतदोसा) प्रगटरूप से, अनन्त दोष (दीसंति) दिखाई देते हैं (य) और (गुण-लेसो) गुण, लेश यानी अल्प (वि) भी (ण) नहीं हैं (तहवि) तथापि (मोह-अंधा जिया) मोह से, अंधे, जीव (ही) निश्चितरूप से (तं) उसको अर्थात् उस मिथ्यात्व को (चेव) ही (णि-सेवंति) पूर्णरूप से, सेवते हैं यानी सेवन करते हैं 'यही तो मिथ्यात्व का मायाजाल है, जो मोह से मूर्च्छित-जनों को समझ में नहीं आता है' ॥98 ॥

वैराग्य शतक एक लघुकाय कृति के माध्यम से प्रतिदिन हम पूर्वाचार्यों के भावों को समझते हुए, अपने अंतस् के अज्ञान को दूर करने की चेष्टा करते हैं और इसी क्रम में आज गाथा नम्बर 98 पढ़ते हैं...

मिच्छे अणंतदोसा, पयडा दीसंति ण वि य गुणलेसो।
तहवि य तं चेव जिया, ही मोहंधा णिसेवंति ॥98 ॥



कहते हैं... 'मिच्छे अणंतदोसा' मिथ्यात्व भाव में, मिथ्यात्व में अनन्त दोष होते हैं और वह दोष 'पयडा दीसंति' प्रकट दिखाई देते हैं, स्पष्ट दिखाई देते हैं। 'ण वि य गुणलेसो' और उस मिथ्यात्व में या मिथ्या भावों में या मिथ्या मतों में गुण लेशमात्र भी दिखाई नहीं देते। 'तहवि य' फिर भी 'तं चेव जिया' ये जीव जो हैं, वह मोह से अन्ये हुए 'णिसेवंति' उसी का सेवन करते हैं।

अतिक्रमण शाश्वत, परीक्षा आवश्यक

कल जिस गाथा में कहा था, उसमें जिनधर्म के गुणों के बारे में बताया गया था कि यह प्रकट रूप से जिनधर्म के प्रत्यक्ष रूप से अनन्त गुण दिखाई देते हैं। आज उसी का विपरीत कहते हुए यहाँ यह कहा जा रहा है कि मिथ्या भाव में अनन्त दोष दिखाई देते हैं। अब एक चीज दुनिया में अगर सही होगी तो उसके विपरीत भी चीजें दुनिया में अवश्य होंगी, यह सिद्धान्त है। सही वस्तु जहाँ पर होगी, वहाँ पर नकली वस्तुएँ भी वहाँ पर

अवश्य उपलब्ध होंगी। कभी-कभी नकली का बाजार इतना ज्यादा बढ़ जाता है कि हम सही वस्तु को भी समझ नहीं पाते कि सही वस्तु कहाँ मिलती है? जैसा त्यौहार आजकल दिखाई दे रहा है, ऐसा त्यौहार धर्म का, मत का, दर्शनों का हमेशा बना रहता है। जहाँ पर एक व्यक्ति अपनी सही दुकान लेकर बैठता है, अपना सही माल बेचने के लिए बैठता है, वहीं पर अनेक उसको घेर कर, उसी के पास में और उससे लम्बी-लम्बी, आगे निकाल-निकाल कर, दुकानें दिखा-दिखा कर अपना माल बेचने लग जाते हैं। क्योंकि दुनिया में हर आदमी के लिए स्वतंत्रता है। सबको बाज़ार लगाने की स्वतंत्रता है और कुछ त्यौहारों पर तो अतिक्रमण भी यदि होता है, तो वह भी माफ होता है, जैसे धन तेरस का त्यौहार। यह अतिक्रमण हमेशा जैसे धन की प्राप्ति के लिए रहा है, वैसे ही धर्म की प्राप्ति के लिए भी रहा है। जब भी कभी धर्म का उत्कर्ष हुआ है, तो उसी समय पर अनेक नकली लोग भी सामने आकर खड़े हुए और अपने-अपने एकान्त मत को धारण करते हुए, उन्होंने अपनी-अपनी तरह से अनेक तरह की धर्म की, दर्शन की, अध्यात्म की धाराएँ भी बहाई। क्योंकि इस भारतवर्ष में हमेशा हर प्राणी को सम्मान मिला है, स्वतंत्रता मिली है। व्यक्ति के पास में थोड़ा सा ज्ञान होना चाहिए और लोगों को समझाने की एक कला होनी चाहिए। हर व्यक्ति अपना एक नया मत खड़ा कर सकता है और एक नई दुकान अपने सामने लगा सकता है। ऐसा ही हमेशा से होता आ रहा है। धनतेरस की बात है, कल चौदस है और यह तेरस, चौदस और आगे की अमावस्या...ये सब एक ऐसे व्यक्ति से जुड़ी हुई चीजें हैं, यह कार्तिक कृष्ण पक्ष की यह त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या एक ऐसे व्यक्तित्व से जुड़ी हुई चीजें हैं, जिनके नाम पर आज हर जगह पर त्यौहार तो है लेकिन उनके नाम की चर्चा हर जगह पर नहीं है। जिनके नाम से त्यौहार शुरू तो हुआ था लेकिन लोगों ने धीरे-धीरे उस त्यौहार को एक मनोरंजन का विषय बना लिया और जो मूलभूत तथ्य थे, उनको छोड़ दिया। वह तथ्य जब छूट गए तो कभी-कभी ऐसा लगता है कि मूल छूट गया है और शाखाएँ इधर-उधर दिखाई दे रही हैं। भगवान महावीर स्वामी का समय है। अगर हम उन्हीं के परिप्रेक्ष्य में रखते हुए थोड़ा सा यह सम्यक्त्व और मिथ्यात्व की बात समझे तो वह भी समझी जा सकती है। जिस समय पर भगवान महावीर स्वामी का उदय हुआ, तीर्थंकर भगवान का उदय हुआ, उनका जो समय चल रहा था और उस समय से पहले भी पार्श्वनाथ भगवान हो चुके थे। उनसे 250 वर्ष पूर्व भगवान पार्श्वनाथ हो चुके थे। वह एक श्रमण संस्कृति का जो प्रवाह था, वह निरन्तर बना हुआ था। भगवान महावीर स्वामी के समय तक भी वह श्रमण संस्कृति चरम उत्कर्ष पर थी।

भगवान महावीर स्वामी के समकालीन व्यक्तित्व

ईसा से 600 वर्ष पूर्व की यह बात कही जाती है, जब इस भारत में ही नहीं, पूरे विश्व के अन्दर धर्म और दर्शन की जगह-जगह पर एक क्रान्ति सी आई थी। जब भगवान महावीर स्वामी का उदय हुआ था, उसी समय पर अनेक विदेशों में भी, चीन में **confucius**, लाओत्से जैसे लोग पैदा हुए थे। इधर ईरान में **जरथुस्त्र** जैसे लोग पैदा हुए थे। यूनान में **पाइथागोरस** जैसे लोग पैदा हुए थे और फिलिस्तीन में **मूसा** जैसे लोग पैदा हुए थे; यह वही युग था। पूरे विश्व के अन्दर एक धर्म की, अध्यात्म की क्रान्ति थी। इधर भारत में देखा जाए तो जिस समय पर भगवान महावीर स्वामी हुए उस समय पर जैसे वह अपनी अध्यात्म विद्या का, सिद्धान्त विद्या का प्रचार करते थे, उसी समय पर अनेक और भी ऐसे आध्यात्मिक ऋषि हुए, जिन्होंने वेदों का प्रचार किया, उपनिषदों का प्रचार किया। **उद्दालक**, **याज्ञवल्क्य** जैसे अनेक ऋषि हुए जिन्होंने उस समय पर इस अध्यात्म विद्या का प्रचार अपने-अपने ढंग से किया। भगवान महावीर स्वामी के समय की

ही ये सब बातें हैं। जब उस समय पर अनेक-अनेक दर्शन भी खड़े हो गए थे। सांख्य दर्शन खड़ा हुआ **कपिल** के माध्यम से, योग दर्शन खड़ा हुआ **पतंजलि** के माध्यम से, वैशेषिक दर्शन खड़ा हुआ **कणाद ऋषि** के माध्यम से, न्यायिक दर्शन खड़ा हो गया **गौतम ऋषि** के माध्यम से और उसी के साथ-साथ एक चार्वाक मत भी खड़ा हो गया, किसी एक **बृहस्पति** के माध्यम से और इस तरह से धीरे-धीरे करते हुए वहाँ पर अनेक दर्शन खड़े हो गए। उन्हीं के साथ में एक मीमांसक दर्शन भी खड़ा था जो **जैमिनी ऋषि** के माध्यम से खड़ा था। अनेक-अनेक ऋषि, अपने अलग-अलग तथ्यों को, अलग-अलग दर्शनों को व्याख्यायित कर रहे थे और यह सब वह समय था जब भगवान महावीर स्वामी का उदय था। आप विचार करें! महापुरुषों के सामने भी कई तरह के संघर्ष रहा करते हैं। जैसे आपकी दुकानों में धन की प्राप्ति के संघर्ष होते हैं, धन को बेचने और खरीदने के, वस्तुओं को बेचने और खरीदने के संघर्ष होते हैं, वैसे ही यह युग था जब धर्म की तमाम दुकानें खुल गई थी। भगवान महावीर स्वामी के उदय होते ही अनेक ऋषि, मुनि अपने अलग-अलग तरह के तथ्यों के साथ में, विचारधाराओं के साथ में दुनिया में घूम रहे थे और उस समय पर भगवान महावीर स्वामी के समक्ष भी उन्हीं को चुनौती देने के लिए अनेक-अनेक लोग और भी थे, जिन्होंने अपनी एकान्त धाराओं में भगवान महावीर स्वामी को सुनकर भी अलग-अलग उन्हींने प्रचार करना शुरू कर दिया था।

जैन दर्शन एवं बौद्ध दर्शन

पूरण, मस्करी, गौशालक, कात्यायन, काश्यप... ऐसे अनेक दर्शन को जानने वाले, अपना अलग-अलग दर्शन बनाकर, अपनी अलग-अलग एकान्त धारा बहा कर लोगों को तरह-तरह का ज्ञान देने वाले लोग इतिहास में पढ़ने को मिलते हैं। ये सब लोग उसी समय पर हुए, जिस समय पर भगवान महावीर स्वामी हुए। जैसे ही उनका उदय हुआ, इन सबका भी उदय हो गया और उस समय पर वह तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के बिल्कुल ही निकट में देखा जाए तो गौतम बुद्ध जो उन्हीं के समय पर, पहले से भी तपस्या करते हुए उनके समक्ष थे और वह गौतम बुद्ध अगर हम इतिहास के पन्नों में देखे तो वह अपने जीवन काल में विरक्ति को प्राप्त हुए और वह भी उसी बिहार में जन्म लिए जहाँ पर भगवान महावीर स्वामी का जन्म हुआ। वहीं आसपास ये दो महापुरुष एक साथ उस क्षेत्र को अपने-अपने तरह से धर्म के प्रकाश में आलीकित कर रहे हैं। लेकिन इतिहास यह भी बताता है कि ये दोनों महापुरुष कभी मिले नहीं और इन दोनों का एक अलग ही तरह का दर्शन था... बौद्ध दर्शन और जैन दर्शन। अगर आपने कभी थोड़ा सा इतिहास पढ़ा हो तो इन दोनों को नास्तिकता की श्रेणी में बताया जाता है, आज भी लिखा हुआ है। कई तरह की न्याय की, दर्शन की पुस्तकों में जो UGC से भी निकल कर आती हैं और वहाँ से पाठ्यक्रम होकर यह व्यवस्थित होकर आता है; वहाँ पर आज भी इन पुस्तकों में लिखा हुआ मिलता है कि यह नास्तिक दर्शन है। आपको पता होना चाहिए कि इनको नास्तिकता की उपाधि क्यों मिली? क्योंकि यह उस समय पर चलने वाले जो वेद और उपनिषदों के जो दर्शन चल रहे थे, जो उनका अध्यात्म चल रहा था, उनको मानने वाले नहीं थे। यह कभी भी एक भगवान में विश्वास नहीं करते थे। न गौतम बुद्ध ने किया, न भगवान महावीर स्वामी ने किया। इस जगत का कर्ता एक ब्रह्मा है, इस जगत का कर्ता एक भगवान है। एक भगवान में विश्वास करने वाली मान्यता न तीर्थंकरों की रही और न अन्य अनेक लोगों की रही और इसी कारण से इनको एक नास्तिकता की श्रेणी में व्याख्यायित कर दिया गया।

जैन दर्शन बनाम बौद्ध दर्शन

जब ये दोनों दर्शन सामने खड़े थे तो उस समय पर इन दर्शनों के माध्यम से इतिहासकारों ने यह लिखा है, इतिहास इस बात का गवाह है कि उस समय पर जो अनेक तरह के यज्ञों में हिंसाएँ होती थी और उस हिंसा को दूर करने का अगर प्रयत्न किया गया और वह प्रयत्न सफल हुआ तो वह इन्हीं जैन और बौद्ध धर्म की शिक्षाओं के माध्यम से ही हुआ। उस समय पर यह तमाम धर्म के लोग अपने-अपने तरह से धर्म को आगे बढ़ाते हुए, दर्शन को आगे बढ़ाते हुए अपने-अपने अनुयायियों के साथ में जिस तरह से भी ज्ञान पहुँच सकता है, उन्हें ज्ञान दे रहे थे। उस समय पर भगवान महावीर स्वामी भी अपनी तपस्या कर रहे थे। अगर उनके parallel में कोई भी बहुत ज्यादा शक्तिशाली बनकर उभरा तो वह गौतम बुद्ध उभरे। दुकानें तो तमाम थी, लोग तो तमाम थे लेकिन वह इतने ज्यादा हो करके उभर नहीं पाए, जितना गौतम बुद्ध उभरे और उस उभरने का कारण था कि उन्होंने अपने घर से जब विरक्ति धारण करके उन्होंने तपस्या की थी तो सबसे पहले उन्होंने जैन तपस्या ही अंगीकार की थी। भगवान पार्श्वनाथ के तीर्थ में उन्होंने वह जैन तपस्या अंगीकार कर ली थी और वह तपस्वी होने के उपरान्त हर तरह की साधना करते थे। अनशन, ऊनोदर, काय-क्लेश आदि अनेक तरह के तपों को तपते हुए भी उन्हें कुछ उपलब्ध नहीं हो रहा था और यह बात उन्हीं के ग्रन्थों में लिखी मिलती है कि जब उन्हें बहुत समय तक कुछ उपलब्ध नहीं हुआ तो वह एक बार किसी एक निरंजना नदी के किनारे पर खड़े थे और वहाँ खड़े-खड़े उन्हें अचानक से यह महसूस हुआ कि मैं जिस तरह से तपस्या कर रहा हूँ, मेरा शरीर जल्दी क्षीण हो जाएगा और शरीर क्षीण होने पर मेरी मृत्यु निश्चित हो जाएगी। इससे पहले कि मैं कुछ कर पाऊँ, मेरी मृत्यु हो जाएगी। इस कठिन तप से मुझे कुछ हासिल नहीं हो रहा है और वह कठिन तप कुछ और नहीं था...जो भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी थे, श्रमण थे, उन्हीं के श्रमणों की दीक्षा लेकर उन्होंने वह कठिन तप आचरण में लाया था। जब उनसे वह सहन नहीं हुआ तब उन्होंने एक मध्यम मार्ग बनाया और अपने आप को, एक वृक्ष के नीचे कि हमें अब बोधि की प्राप्ति हो गई है, ऐसा उद्घोष करके उन्होंने अपना एक अलग ही पन्थ बनाया और जिस पन्थ में अनेकान्त से बिल्कुल विपरीत सिद्धान्त थे।

जैन सिद्धान्तों से विपरीतता

अगर आत्मा को हमेशा नित्य माना जाता है, तो उन्होंने जगत के हर पदार्थ को क्षणिक मानने की घोषणा कर दी। दुनिया में कुछ भी नित्य नहीं है, स्थिर नहीं है, स्थाई नहीं है; आत्मा होती ही नहीं है और जो कुछ भी हमें जीवन दिखाई दे रहा है, वह सिर्फ क्षणिक है; हम उस क्षणिक जीवन पर बस विचार करें। इसके अलावा दुःख से मुक्त होने का और कोई उपाय नहीं है। यह उन्होंने अपना एक नया सिद्धान्त जगत में जारी कर दिया। इसको क्षणिकवाद कहा जाता है, भंगवाद कहा जाता है, क्षणभंगुरवाद कहा जाता है, अनित्य एकान्तवाद कहा जाता है। ऐसे ये सब नाम इस बौद्धमत के क्षणिक एकान्तमत के कहे जाते हैं। उनका वह प्रचार भारत में तो कम हुआ लेकिन विदेशों में इस धर्म का प्रचार खूब हुआ और भारत में वह संस्कृति ज्यादा पनप नहीं पाई लेकिन विदेशों में वह संस्कृति पनपी और यह वही युग था, जब भगवान महावीर स्वामी की आयु, अगर हम देखें तो गौतम बुद्ध से उनकी आयु कम थी। इतिहास में जब हम पढ़ते हैं तो भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के बाद भी पाँच वर्ष तक गौतम बुद्ध रहे। यह वही समय था जब भगवान महावीर स्वामी

तो केवलज्ञान प्राप्त करके इस जगत में भ्रमण करते हुए अपने ज्ञान-सूर्य, अपने ज्ञान-प्रकाश के माध्यम से लोगों को तत्त्व का ज्ञान दे रहे थे, अहिंसा का ज्ञान दे रहे थे, अनेकान्त दर्शन का ज्ञान दे रहे थे, उस समय पर उन भगवान महावीर स्वामी ने अपने उस केवलज्ञान होने के उपरान्त जो ज्ञान जगत को दिया, जो तीर्थ का प्रवाह उस समय पर बना, अनेक-अनेक राजा जो उस समय पर प्रभाव में रहा करते थे; उन सभी ने भगवान के दर्शन किए और भगवान ने हर जगह पर विहार करके धर्म का, तीर्थ का जो उपदेश इस रूप में दिया कि **“संसार का हर आत्मा स्वतंत्र है और हर आत्मा अगर सही रास्ते पर चले तो वह अपने पूर्व कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त कर सकता है और कर लेता है। हर आत्मा के अन्दर एक ज्ञान का अद्भुत, अपार साम्राज्य पड़ा हुआ है और हर आत्मा ज्ञान से परिपूर्ण है। उसे कहीं पर भी ज्ञान के लिए, सुख के लिए भटकने की जरूरत नहीं। सिर्फ अपने अन्तरंग में ध्यान, योग, साधना के माध्यम से आत्मा के नित्य और अनित्य स्वभाव को जानकर, उसमें नित्य स्वभाव पर अपना ध्यान रखकर, अगर वह अपने साधना को आगे बढ़ाता है, तो उसके जीवन में जरूर केवलज्ञान की उपलब्धि होगी”** और इस तरह का उपदेश देते हुए भगवान महावीर स्वामी ने इस पूरे भारत के अन्दर भ्रमण किया।

जैन धर्म में स्वयं के सुधार का पूर्ण अवसर

राजा श्रेणिक की बात जो आप सुनते आए हैं, यह भी भगवान महावीर स्वामी के समय के ही राजा रहे और भी अनेक-अनेक जगहों के राजा, चाहे वह राजा उदयन हो, चंद्रप्रद्योत हो, शतानीक हों, अनेक तरह के राजा चेटक हों, ये उस समय के बड़े-बड़े राजा हुआ करते थे और पूरा साम्राज्य इन्हीं वज्जि संघ के, वैशाली और लिच्छवी गण के इन राजाओं के माध्यम से चला करता था। उस समय पर यह गणतंत्र के रूप में इस देश के अन्दर राज्यत्व चलता था और इसकी जानकारी हमने आपको पहले भी खूब दी है और अगर हम उस समय पर देखे कि भगवान महावीर स्वामी के समय पर मगध का सम्राट कोई हुआ करता था तो वह थे राजा श्रेणिक; जिनकी चर्चा में एक पूरा चातुर्मास निकला है। राजा श्रेणिक जब भी भगवान के दर्शन करने के लिए पहुँचते थे तो वह बड़े खुश होते थे, प्रसन्न होते थे। भगवान की पूजा करते थे लेकिन उससे पहले वह बौद्ध धर्म को स्वीकार करने लगे थे। यह कथानक भी हमने आपको अच्छे ढंग से बताया है। वह बौद्धों से धीरे-धीरे जैनत्व की ओर आए तो उसमें सबसे बड़ा कारण क्या था? उनकी रानी चेलना। इसलिए अगर इतिहास में अगर भगवान महावीर स्वामी के समय पर किन्हीं भी महिलाओं को आदर्श महिला के रूप में अगर प्रस्तुत किया जाता है, तो वह रानी चेलना को प्रस्तुत किया जाता है। जिन्होंने अपने सम्राट को इस ढंग से बदला कि वह हमेशा के लिए उन जैनत्व की शिक्षाओं को अंगीकार करने लग गए और उसी के परिणामस्वरूप उन्हें भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में जाने का सम्मान मिलता था, मौका मिलता था। गलतियाँ कर चुके थे, कोई बात नहीं लेकिन जैन धर्म हमेशा कहता है...जो हो गया वह अतीत की बात है। आप आज भी अपने आप को अच्छा बनाने की कोशिश करो और तुम्हारी आत्मा ही तुमको क्षमा कर देगी। तुम्हारे कर्म आज भी अगर अच्छा करोगे तो पुराने कर्म नष्ट हो जायेंगे। इसलिए गलतियों पर पश्चाताप करके, उन्हें भूल करके एक नई राह पर आगे चलने की कोशिश हमेशा जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों में रही है। आप जहाँ खड़े हो, वहीं से उसी समय से नई शुरुआत करो। जब भी आपके जीवन में नया उजाला आएगा, आपको पुराने कृत्यों का पश्चाताप करके एक नई शुरुआत करने से आएगा। पश्चाताप का मतलब यह नहीं होता है कि मैं हमेशा एक ही बात को लेकर रोता रहूँ, उसी में झुलसता रहूँ, उसी में अपने आप को

गमगीन बनाए रखूँ, उसी में अपने आप को निराश बनाए रखूँ। पश्चाताप का मतलब होता है- एक बार अपने कृत्य का पश्चाताप खुले मन से गुरु के समक्ष करना, प्रायश्चित्त लेना और फिर निश्चिन्त होकर अपना जीवन आगे सद् राह पर बढ़ाना। यह सबसे अच्छा उपाय हमें जैनदर्शन में भगवान महावीर स्वामी ने बताया। आज इन उपायों को समझने की जरूरत है कि हमें अपनी आत्मशुद्धि करने लिए क्या करना चाहिए?

स्वास्थ्य के भेद एवं आत्मिक स्वास्थ्य का महत्त्व

त्यौहार आते हैं और उन त्योहारों पर हम सिर्फ धन की दौलत देखते हैं, धन-दौलत में लगे रहते हैं। दौलत और भी तरह की होती है। कल आपको बताया था, एक ज्ञान की दौलत होती है। यह ज्ञान की दौलत भगवान ने प्राप्त की, सुख की दौलत भगवान ने प्राप्त की और उसी के साथ-साथ स्वास्थ्य की दौलत भी भगवान ने प्राप्त की। स्वास्थ्य! स्वास्थ्य का मतलब? हमारे के लिए कोई बुखार नहीं है, जुकाम नहीं है, हमें कोई कहीं दर्द नहीं है तो हम स्वस्थ हो गए; लोग ऐसा समझ लेते हैं। जबकि यह कोई स्वस्थता की निशानी नहीं है। स्वस्थता कई पहलुओं पर निर्भर करती है। स्वस्थता शारीरिक होती है, स्वस्थता मानसिक होती है और स्वस्थता आत्मिक भी होती है। जैसे-जैसे हम भीतर की स्वस्थता को उपलब्ध होते चले जायेंगे, बाहर की स्वस्थताएँ अपने आप बनती जाएँगी। अगर हम आत्मिक स्वस्थता पर ध्यान देते हैं तो मानसिक स्वस्थता भी बनेगी, शारीरिक स्वस्थता भी बनेगी। मानसिक स्वस्थता पर ध्यान देते हैं तो शारीरिक स्वस्थता तो बनेगी, आत्मिक स्वस्थता बने न बने, कहा नहीं जा सकता। शारीरिक स्वस्थता पर ध्यान देते हैं तो शारीरिक स्वस्थता बनी रहेगी, मानसिक स्वस्थता बने न बने, कहा नहीं जा सकता; आत्मिक स्वस्थता बने न बने, कहा नहीं जा सकता। ये तीन तरह की स्वस्थताएँ हैं। भगवान महावीर स्वामी ने किसको चुना? आत्मिक स्वस्थता को चुना। **स्वस्थता** यह शब्द ही कहता है- **स्वयं में स्थित होना ही स्वास्थ्य है**, पर की चिन्ता में पड़ना ही अस्वास्थ्य है, रोग है। जब भगवान महावीर स्वामी 12 वर्ष तक तपस्या किए तो केवल किसके लिए? आत्मिक स्वास्थ्य के लिए। उन्होंने ध्यान किया, योग-साधना की; किसके लिए? आत्मिक स्वास्थ्य के लिए। मन तो अपने आप पकड़ में आता है, जब हम भीतर मन से भी सूक्ष्म आत्म-तत्त्व पर ध्यान रखेंगे तो मन अपने आप उसी में लग जाएगा और मन की कोई भी चेष्टाएँ उस आत्म-तत्त्व के लिए विपरीत नहीं होंगी। क्योंकि हमारा ध्यान आत्म-तत्त्व में लग रहा है, तो मानसिक स्वास्थ्य, मन का स्वास्थ्य तो अपने आप बन जाएगा। क्योंकि मन में अगर रोग आता है, तो वह दूसरों की चिन्ता से आता है और अगर हमने अपनी आत्मिक स्वास्थ्य की चिन्ता करना शुरू कर दिया तो मन का रोग भी अपने आप ठीक होने लग जाता है। आज मनोरोगी भी बहुत मिलते हैं, शारीरिक रोगी भी बहुत मिलते हैं और आत्मिक रोगी तो हर व्यक्ति, है ही है। जब तक आपका यह मिथ्या-भाव नहीं छूट रहा है, अनन्त दोषों का कारणभूत यह मिथ्यात्व भाव नहीं छूटेगा, तब तक हर आत्मा के अन्दर आत्मिक रोग लगा हुआ है और उस आत्मिक स्वास्थ्य की उपलब्धि नहीं होगी, जब तक कि आपको यह महसूस न होने लग जाए कि तीर्थंकर भगवान ने जो हमें मार्ग बताया है, इस मार्ग पर चलने से ही हमारी आत्मा का स्वास्थ्य बनेगा। हमारी आत्मा कर्म से मुक्त होगी और इस मार्ग को ही हमें एकान्त रूप से स्वीकार करके अपने अन्दर उसके प्रति श्रद्धा बना कर जब तक चलने का भाव नहीं आएगा तब तक आपका आत्मिक स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा; मानसिक हो सकता है। किन्हीं भी दर्शनों में जाकर आपका मानसिक स्वास्थ्य ठीक हो सकता है, कोई भी तरह के आप

प्राणायाम और ध्यान या श्वासोच्छ्वास की क्रियाओं पर मन को साध करके, आप अपनी थोड़ी सी मन की शान्ति ला सकते हैं। लेकिन आत्मिक स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा। आत्मा नित्य है; आत्मा का हर पर्याय छोड़ने के बाद में पुनः जन्म होता है, फिर मरण होता है और यह आत्मा का जो रोग बना हुआ है, यह आत्मिक स्वास्थ्य को ध्यान देने से ही ठीक होगा तो सबसे बड़ी चीज है- आत्मिक स्वास्थ्य।

जैन धर्म की प्राचीनता स्वयं-सिद्ध

भगवान महावीर स्वामी ने हमें क्या दिया? आज का दिन, तेरस का दिन। तीर्थकरों के लिए यह बताया गया है कि 24 तीर्थकरों में यह भगवान महावीर स्वामी 24वें तीर्थकर थे, अन्तिम तीर्थकर थे। लेकिन गौतम बुद्ध ने यहाँ से अपनी शुरुआत की। बुद्धमत से पहले कोई, गौतम बुद्ध से पहले कोई बुद्धमत नहीं था। गौतम बुद्ध से इस बुद्धमत की शुरुआत हुई और भगवान महावीर स्वामी से पहले 23 तीर्थकर हो चुके थे, इसलिए यह अनादिकालीन संस्कृति कहलाती है, यह अनादिकालीन धर्म कहलाता है, यह सनातन संस्कृति कहलाती है; पुरातन संस्कृति कहलाती है। इससे पहले भी ऋषभ आदि 23 भगवान हो चुके हैं, 24वें तीर्थकर भगवान महावीर स्वामी हुए तो बुद्ध के सामने जब जैनत्व आता है, तो कम से कम आपको इतना तो ज्ञान होना चाहिए कि बुद्ध ने तो केवल उस बौद्ध धर्म की वहाँ से शुरुआत की लेकिन जैनत्व की शुरुआत तो जब से यह कर्मभूमि प्रारम्भ हुई, युग का प्रारम्भ हुआ तब से आदिनाथ भगवान ने युग की आदि से यह जैनत्व की शुरुआत करी, श्रमण संस्कृति की शुरुआत करी।

भगवान महावीर स्वामी का योग-निरोध दिवस अर्थात् धन्य तेरस या धन तेरस

24 तीर्थकरों में जब हम देखते हैं, तो हर तीर्थकर ने अपने जीवनकाल के अन्त समय में समवशरण का त्याग करके योग-निरोध की साधना की। योग कहा जाता है- **अपने मन वचन काय की जो चेष्टाएँ हैं, उनको सूक्ष्मता से भी रोक देना।** यह योग-निरोध की साधना कहलाती है। जब तक वह अरिहन्त भगवान होकर भ्रमण करते हैं, केवली भगवान होकर भ्रमण करते हैं तब तक उनके मन-वचन-काय की चेष्टाएँ चलती हैं। लेकिन आत्मस्थ होते हुए भी वह शरीर के साथ में रहने के कारण से उनकी वह मन-वचन-काय के स्पंदन होते हैं। ये योग चलते हैं और ये मन-वचन-काय के योगों को भी रोकना जीवन के अन्त में हर तीर्थकर के लिए होता है, नियामक होता है। भगवान ऋषभ देव ने ये योगों को रोकने के लिए 14 दिन पहले से प्रयास किया। भगवान महावीर स्वामी ने केवल दो दिन पहले प्रयास किया। अपनी आयु पूर्ण होने के दो दिन पहले वह इस योग-निरोध की प्रक्रिया में बैठ गए और बाकी के तीर्थकर एक महीने पहले से इस योग-निरोध की प्रक्रिया में बैठ कर, मोक्ष जाने से एक महीने पहले वह समवशरण का त्याग करके, अपनी चेष्टाओं का त्याग करके ध्यान के लिए बैठ जाते हैं। यह तीर्थकरों की प्रक्रिया चलती है और इसी प्रक्रिया में जब हम वर्धमान भगवान महावीर स्वामी को देखते हैं तो यह आज का दिन वह दिन था जब उन्होंने समवशरण का, वैभव का, उनके सामने बिखरी हुई तमाम जो सम्पदा थी, जो इन्द्र और कुबेर के द्वारा लाकर उनके समक्ष रखी जाती थी और जिससे दुनिया आकर्षित होती थी; आज उन्होंने उस सम्पदा के बीच में बैठना भी छोड़ दिया था, बोलना भी छोड़ दिया था। क्योंकि बोलेंगे तो सिंहासन पर बैठना है और बैठना है तो सामने सब कुछ जलसा लगना है। 12 सभाएँ लगनी हैं, अष्ट प्रातिहार्य होना है और यह सब इन्द्र तब

तक कुबेर के माध्यम से करवाते रहे, जब तक कि भगवान स्वयं इन सब चीजों को छोड़कर अपनी आयु के दो दिन पहले वह नहीं बैठ गए और जब आयु के दो दिन बचे उनके, इन्हीं दो दिनों में उन्होंने आज त्रयोदशी के दिन वह योग-निरोध शुरू कर दिया। समवशरण को भी छोड़ दिया। देशना देना बन्द कर दिया। धर्म सभा लगाना बन्द कर दिया। उपदेश देने का काम उन्होंने बन्द कर दिया। विहार करने का काम बन्द कर दिया। किसी भी की तरह से कोई भी अपनी अब मन-वचन-काय की चेष्टा नहीं करेंगे और अन्तिम आत्मिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए, अपने आत्मा में ही पूर्ण रूप से स्थित हो जाने के लिए उन्होंने शुक्ल ध्यान को धारण कर लिया। आज त्रयोदशी का दिन, कल चतुर्दशी का दिन और चतुर्दशी की रात्रि; कई आचार्य भगवान महावीर का मोक्ष चतुर्दशी को कहते हैं लेकिन वह चतुर्दशी की रात्रि का वह अन्तिम प्रहर है इसलिए चतुर्दशी कहलाती है। लेकिन वास्तव में जब भगवान महावीर स्वामी को मोक्ष की प्राप्ति हुई तो उस समय पर न तो पूरा दिन था, न पूरी रात थी, जिसे कहते हैं- प्रत्यूष वेला। एक प्रभाती थोड़ी सी आने लग जाती है और एक ब्रह्म मुहूर्त का वह समय होता है, उस समय पर भगवान महावीर स्वामी को मोक्ष की प्राप्ति हुई। केवलज्ञान होने के उपरान्त भी उन्होंने शुक्ल ध्यान करने के लिए इस तरह का जब योग-निरोध का यह कार्य किया और यह कार्य दो दिन में उनका पूर्ण हो गया; तब उस समय पर जब आप सो रहे होते हो, जग भी नहीं पाते हो, भगवान महावीर स्वामी को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

मोक्ष कल्याणक मनाने / निर्वाण लाडू चढ़ाने का सही समय

जिस समय पर भगवान को मोक्ष हुआ; देव लोग आते हैं, तैयारी करते हैं, उसी समय पर देव लोग आकर मोक्ष कल्याणक मनाने लग जाते हैं और मोक्ष कल्याणक मनाते-मनाते उजेला हो जाता है। होना तो यही चाहिए वास्तविक रूप में। आपको तैयारी करते-करते उजेला होना चाहिए, न कि उजेले में तैयारी करना शुरू करना चाहिए। अरे! एक दिन तो भगवान के time से अपना time मिलाओ। भगवान के निर्वाण की पूजा करने के लिए वह time तो मिलाओ, जिसे काल मंगल कहा जाता है। वही समय, वही दिन, वही महीना, वही पक्ष, सब कुछ आपके सामने है तो आपका वह मुहूर्त भी वही होना चाहिए, जिस समय पर भगवान का निर्वाण हुआ। उस समय पर कम से कम हम भगवान के प्रतिबिम्ब के सामने तो बैठे हो, हम भगवान के दर्शन तो कर रहे हो और हम भगवान के समक्ष उनके मन्दिर में तो उपस्थित हो। इतना भी अगर हमारे लिए होगा, तो यह भगवान महावीर स्वामी का सही निर्वाण महोत्सव मनाना कहलाएगा। आप मन्दिर ही आ रहे हो 8 बजे, 7 बजे, 7:30 बजे, 10 बजे; यह सब गलत time हैं, ये गलत परम्पराएँ हैं, ये गलत ढंग हैं। कम से कम हमें उस समय पर, भगवान जब निर्वाण को प्राप्त हुए, उस समय को तो हमें अपनी बुद्धि से match कर लेना चाहिए और हमें उसी काल मंगल में कम से कम भगवान महावीर स्वामी का दर्शन तो होना चाहिए। जिनेन्द्र भगवान के मन्दिर में हमें उपस्थित होना चाहिए और वह ही एक दिन होता है, जब आप समय से पहले कोई भी काम करें। अपवाद भी हर जगह पर होते हैं। रोजाना की पूजन और रोजाना का अभिषेक अलग चीज है लेकिन किसी विशेष महोत्सव पर अगर हम कोई भी आयोजन समय से पहले भी करते हैं तो वह भी दोष का कारण नहीं होता है क्योंकि वह अपवाद मार्ग भी साथ-साथ में चला करता है और अगर हमें भगवान महावीर स्वामी के इस निर्वाण के दिन थोड़ा पहले से भगवान की पूजन-सामग्री और अभिषेक आदि की तैयारी करने का भाव आए, तब हम समय पर भगवान का निर्वाण कल्याणक, लाडू के माध्यम से चढ़ा पाएँगे। अगर आप कोई भी प्रक्रिया आठ बजे शुरू करेंगे तो फिर उस

प्रक्रिया का कोई महत्व रह नहीं जाता है। हम किसी भी चीज की महत्ता को अगर समझते हैं, तो हम समय की महत्ता को भी समझने की कोशिश करें और समय पर जो काम किया जाता है, वह अधिक फलदायी होता है। आपके लिए तो यह भी महत्वपूर्ण है कि जिस समय पर भगवान को निर्वाण होता है, हम मुनि महाराज लोग उस समय पर भगवान के निर्वाण कल्याणक की भक्तियाँ पढ़ते हैं। हम अपनी भक्तियों के माध्यम से निर्वाण कल्याणक मना लेते हैं। भले ही उस समय पर थोड़ा सा अंधेरा रहता है लेकिन उसी समय पर निर्वाण कल्याणक की भक्तियाँ पढ़ते हैं, जब थोड़ा सा अंधेरा होता है। आचार्य महाराज भी कभी अंधेरे में इस तरह से भक्तियाँ आदि पढ़ने की क्रिया नहीं करते लेकिन यह भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के दिन वह भी जल्दी से अपनी सारी क्रियाएँ पूरी करके और भगवान की निर्वाण महोत्सव की क्रियाएँ करने के लिए ये भक्तियाँ पढ़ने लग जाते हैं।

निर्वाण महोत्सव मनाने की सही प्रक्रिया

श्रावकों के लिए भी इसी तरह का विचार होना चाहिए और यही विचार आपके लिए एक अच्छी उमंग, एक अच्छा उत्साह भगवान के प्रति श्रद्धा का भाव लाता है और एक दिन ही होता है, जब हम अच्छे ढंग से सज-धज करके भगवान का निर्वाण महोत्सव मनाने के लिए सुबह-सुबह जल्दी उठकर के आते हैं, मन्दिर जी में। यह भगवान की निर्वाण की इस तरह की प्रक्रिया में आप जब शामिल होंगे तो आपको सुबह से लेकर के शाम तक अच्छे ढंग से सभी कार्यक्रम मिलेंगे। कार्य आपको करना है लेकिन भगवान महावीर स्वामी हमारे श्रद्धेय हैं...इसलिए उनकी पूजा, भक्ति में कार्य स्वयं करना और आपको भी उसमें जोड़ना, यह भी हमारा एक परम धर्म बन जाता है। भगवान महावीर स्वामी की उस आराधना में सबसे पहले आपको सुबह-सुबह भगवान का ध्यान भी करना चाहिए और जो भगवान ध्यान से ही मोक्ष को प्राप्त हुए हैं तो वह ध्यान अगर आप नहीं करेंगे तो आपको कैसे भगवान की सही feeling आएगी कि भगवान ने ध्यान में क्या किया? थोड़ा सा ध्यान का भी अभ्यास करना चाहिए। अगर आप इच्छा करेंगे तो आज मैं थोड़ा सा ध्यान भी आपको कराऊँगा और वह ध्यान आपको दीपावली के दिन सुबह-सुबह, अमावस्या के दिन सुबह-सुबह आपको उपलब्ध भी रहेगा और उस ध्यान के बाद में सुबह-सुबह जल्दी भगवान महावीर स्वामी की पूजन और उसके बाद में उनके पाँचों कल्याणकों का वर्णन करते हुए, जो वर्धमान स्तोत्र के माध्यम से भगवान के पाँचों कल्याणकों का क्रम से ज्ञान करते हुए, अर्घ चढ़ाते हुए जब भगवान के निर्वाण कल्याणक का अर्घ आए तो आपको निर्वाण कल्याणक का अर्घ भी चढ़ाने को मिलेगा। हम खुद भगवान के निर्वाण कल्याणक का अर्घ चढ़ाएँगे ताकि हमें भी भगवान के प्रति अपनी भक्ति बढ़ाने का मौका मिलता रहे। अपनी भक्ति अलग करके आते हैं लेकिन तुम्हारे साथ भी हम भक्ति करने को तैयार रहते हैं, जब हमें ऐसे तीर्थकरों की भक्ति करने का अवसर मिलता है; हमें double double फायदा होता है। अपनी भक्ति की क्रियाएँ करके अपना काम करना अलग है और फिर आपके साथ शामिल होकर भगवान की भक्ति करना अलग है और इन दोनों क्रियाओं का हम लाभ लेते हैं। अगर आप भी लाभ लेना चाहो तो आपके लिए भी माहौल उस दिन, समय उस दिन खुला हुआ रहेगा। आपके पास में यह अर्चना पथ किताब होती है, इसमें सभी भक्तियाँ लिखी होती हैं। आप अगर समय पर आओगे तो आपको भी भक्ति पाठ करने की भी मिलेगा लेकिन जल्दी जागना पड़ेगा...। भगवान के मोक्ष जाने से पहले तैयार होना पड़ेगा। तब आपके लिए सब लाभ मिलेंगे और सुबह की इस बेला में जब आपको ये सब लाभ मिलेंगे तो यह लाभ आपने

पहले भी अनेक बार दीपावली मनाई होंगी लेकिन आपको जो इस बार सानिध्य का लाभ मिलेगा, वह आपको याद रहेगा कि हाँ! ऐसे दीपावली मनाई जाती है। भगवान की अच्छी पूजा-स्तुति करते हुए, समय पर लाडू चढ़ा करके और फिर उसके बाद में आपको तो लड्डू-पेड़ा खाने का time हो जाएगा तो आप चले जाना और हम यहाँ पर अपनी निष्ठापन की क्रियाएँ कर लेंगे। जिन लोगों को हमारे साथ चातुर्मास का निष्ठापन करना होगा, वह कर ले और फिर दोपहर में आपको गणधर परमेष्ठी का पूरा चरित्र चित्रण सुनने की एक तैयारी की गई है। आपको पता नहीं है कि हमने आपके लिए क्या-क्या तैयारियाँ कर ली हैं? गणधर परमेष्ठी की एक कथा होगी और उस कथा के उपरान्त 64 ऋद्धियों के आपके लिए दीप जला कर आपको वह मंत्र के साथ में आपकी दीपावली की शुरुआत दोपहर में तीन बजे यहाँ पर करने की शुरुआत करेंगे और फिर उन्हीं दीपों को ले जाकर आप अपने मन्दिर से उन घरों में ले जायेंगे, जहाँ पर वह दीप आपके लिए मंगलकारी अपने आप सिद्ध हो जायेंगे। यह सुबह की और दोपहर की प्रक्रिया से शाम की प्रक्रिया आपकी अपने आप मंगलमय होगी और शाम को जिस तरह से आप अपनी दीपावलियाँ घर पर, दुकानों पर मनाते हैं, वह आप मनाना। यह सब कार्य में आप उत्साहित होकर अगर आनन्द लेंगे, भाग लेंगे तब तो वह बहुत अच्छा आपके जीवन में एक मंगल अवसर जैसा लगेगा और अगर यह सब कार्य होते हुए आपकी चेतनायें फिर भी सुसुप्त रही तो यह आपके लिए अवसर आकर के भी चला जाएगा। भगवान महावीर स्वामी की यह निर्वाण बेला त्रयोदशी से शुरू हो जाती है, कल चतुर्दशी का दिन है और परसों की सुबह से यह बेला शुरू होगी। यह निर्वाण कल्याणक का महत्व आपके दिमाग में होना चाहिए और इसी महत्व के कारण से यह दीपावली का महत्व हर इतिहासकारों ने, भगवान के ऊपर लिखे हुए जितने भी पुराण हैं, उन पुराणकारों ने यह कहा है कि निर्वाण बेला के उपरान्त देवों ने उस पावापुरी में जिसे मध्यम पावा कहा जाता था, उस पावापुरी के पद्म सरोवर से जहाँ भगवान निर्वाण को प्राप्त हुए, उसमें चारों ओर उस नगरी में इतना प्रकाश किया कि उस नगरी का प्रकाश ही पूरे देश के अन्दर फैलने लग गया। देवों के द्वारा पूरे आकाश मण्डल को प्रकाशित कर दिया गया और उसी प्रकाश के उपलक्ष में यह प्रकाश पर्व, उजाले का पर्व, यह दीपावली का पर्व लोग मनाते चले आ रहे हैं। सिद्धान्त भूल गए हैं, मूल भूल गए हैं लेकिन पतों के ऊपर अभी भी सिंचन कर रहे हैं। भगवान ने धन, वैभव का त्याग किया था, लक्ष्मी का त्याग किया था। सो लोग अब लक्ष्मी, जो भगवान ने छोड़ दी थी, उसी को अब अपने घर में बुलाकर, अब भगवान के ही धन वैभव को अपने पास में रखने के लिए तरह-तरह से उपाय करते हैं। क्या-क्या खरीदा था कल, बताओ? लोहे के बर्तन खरीदते हैं। अब आजकल लोगों के पास इतना पैसा भी नहीं है gold खरीदा जाए तो artificial jewellery खरीदते हैं, खुश हो लेते हैं। आपके लिए भगवान महावीर स्वामी का यह अवसर जो आया है और यह निर्वाण तिथि मनाने के लिए आपके समक्ष एक और चीज आपके घर तक पहुँचाने की कोशिश की गई है।

वर्धमान स्तोत्र की महिमा

पिछले वर्षों में भी होता आया है और इस वर्ष भी जो भगवान वर्धमान स्वामी का पूरा स्तोत्र है, वह स्तोत्र जो ताम्रपत्र पर लिखा हुआ है, वह स्तोत्र आपके घरों में दीपावली की एक सबसे अच्छी present होनी चाहिए, Gift होनी चाहिए जो आपके घरों में रखी रहे और उसी के माध्यम से भगवान की पूजा करते हुए आपको इस वर्ष की दीपावली मनानी चाहिए। वह स्तोत्र अभी एक साथ भले ही बहुत सारे न बन पाए हो,

सबके घर में न पहुँच पाए हो लेकिन हम आपसे कह सकते हैं, जब तक हम यहाँ हैं, आपकी दीपावली मनती रहेगी और जब तक हम यहाँ हैं तब तक भी आप अपने-अपने घरों में वह स्तोत्र एक बार रख लीगे तो हर साल आपको वह दीपावली पर काम आते रहेंगे और जिस तरह से घर में हर कोई एक अच्छी जिनवाणी रखना चाहता है, वह जिनवाणी का एक बहुत सुन्दर रूप आपके घर में रहेगा तो आपको वर्धमान स्तोत्र के माध्यम से भगवान वर्धमान स्वामी की याद आएगी तो उनकी कृपा, उनका प्रसाद भी आपके घर में अनवरत बरसता रहेगा। इसमें कोई शक और सन्देह की बात ही नहीं है। यह एक बहुत अच्छा उपाय है और यह उपाय आप सभी लोगों को सबसे पहले दीपावली पर यही सोचना चाहिए, हम क्या खरीद कर लायें? क्या लेकर आयें अपने घर में? हम भगवान महावीर स्वामी का वह वर्धमान स्तोत्र अपने उस अलमारी में ज़रूर रखें जहाँ पर हम भगवान की पूजा करते हैं। यह विचार जब आपके अन्दर आएगा, तो आपके अन्दर अपने आप वह सब positivity आएगी, जिसकी आपके घर में आपको और आपके घर के लोगों को ज़रूरत है और इस विचार के माध्यम से ही आपके आने वाले समय में हर तरह की उन्नतियाँ, समृद्धियाँ जिनवाणी के माध्यम से, भगवान की श्रद्धा के माध्यम से होंगी और यह सब पिछले सालों से होता आया है। इस साल भी आप लोग तैयार रहें। जिन लोगों को एक साथ नहीं भी मिल पाए, अब एक दिन समय पर जागते हो, अब कल आप कहोगे हमको भी चाहिए, हमको भी चाहिए। अब आप आगे के समय में उनको बुला लेना और जब तक यहाँ पर विधान होता है या पिछ्छी परिवर्तन जब तक नहीं होता है तब तक भी आप उन ताम्र पत्रों को अपने घर में लेकर रख सकते हो, सजा सकते हो और आपकी दीपावली मन सकती है।

आज के लिए इतना ही समझते हुए थोड़ी देर अब हम उस स्वास्थ्य की बात कर रहे थे, जिस स्वास्थ्य के माध्यम से भगवान ने हमको हमेशा खुश रहने के लिए एक दौलत दी थी। जिसका नाम है- स्वास्थ्य की दौलत, सुख की दौलत और ज्ञान की दौलत। ये तीन दौलत हमें भगवान महावीर स्वामी ने दी हैं। ज्ञान, सुख और स्वास्थ्य; ये तीनों एक साथ mutual combination के साथ चलते हैं। एक होगा तो दूसरा अपने आप साथ में होगा और ये तीनों चीजों का combination अगर सबसे अच्छा बनता है, तो वह meditation के time पर बनता है, ध्यान में बनता है। इसलिए भगवान महावीर स्वामी ने कहा, स्वस्थ रहने के लिए ध्यान करो। जब ध्यान करोगे तो थोड़ा सा योग भी होगा और योग और ध्यान के माध्यम से जब आप स्वस्थ रहोगे, अपनी आत्मा की श्रद्धा बना कर वह ध्यान करोगे तो आपको तीनों तरह के स्वास्थ्य आत्मिक, मानसिक और शारीरिक, तीनों तरह के स्वास्थ्य प्राप्त होंगे।

गाथा: 99

सच्चे धर्म की परीक्षा करने में कुशलता ही, विज्ञान की कसौटी है

धी धी ताण णराणं, विण्णाणे तह गुणेसु कुसलत्तं।
सुह-सच्च-धम्म-रयणे, सुपरिक्खं जे ण जाणंति ॥99॥

अन्वयार्थ- (जे) जो (सुह-सच्च धम्मरयणे) सुखरूप 'और' सत्यरूप, धर्मरत्न के विषय में (सु-परिक्खं) सम्यक्-परीक्षा को 'करना' (ण) नहीं (जाणंति) जानते हैं (ताण णराणं) उन, नरों यानी पुरुषों की (विण्णाणे) विज्ञान के विषय में (कुसलत्तं) कुशलता को (धी) धिक्कार है 'और' (तह) उसी प्रकार (जे) जो (गुणेसु) गुणों के विषय में (सु-परिक्खं) सम्यक्-परीक्षा को 'करना' (ण) नहीं (जाणंति) जानते हैं 'उनकी भी विज्ञान के विषय में' (कुसलत्तं) कुशलता को (धी) धिक्कार है ॥99॥

वैराग्य शतक, यह ग्रन्थ भी चातुर्मास के साथ-साथ चल रहा है और यह भी चातुर्मास की तरह ही निष्ठापित होते-होते हो रहा है। आज गाथा नंबर 99 पढ़ते हैं। शतक में १०० गाथाएँ होती हैं, इसलिए इसको शतक कहा जाता है और दो-चार गाथाएँ कभी ज्यादा भी हो जाते हैं, वह भव्य जीवों के भाग्य से कुछ थोड़ा बहुत ज्यादा भी मिल ही जाता है। जैसे आप लोगों को निष्ठापना होने के बावजूद भी अष्टाहनिका तक का आशीर्वाद मिल गया।



धी धी ताण णराणं, विण्णाणे तह गुणेसु कुसलत्तं।
सुह-सच्च-धम्म-रयणे, सुपरिक्खं जे ण जाणंति ॥99॥

सम्यक् परीक्षा में कुशल नहीं होने वाले मनुष्यों को धिक्कार है

‘धी’ यह शब्द पहले भी आया है। ‘धी’ अर्थात् धिक्कार हो। जिसे संस्कृत में धिक्-धिक् कहते हैं, उसे प्राकृत में धी-धी कहते हैं। आधे अक्षर प्राकृत में कभी भी किसी शब्द के अन्त में रहते नहीं हैं। इसलिए यहाँ आचार्य अन्त में फिर भी कुछ और धिक्कारते हुए कहते हैं...उन मनुष्यों के लिए धिक्कार हो, धिक्कार हो, ‘विण्णाणे’ अर्थात् विज्ञान में अर्थात् बहुत ही ज्ञान-विज्ञान में और ‘गुणेसु’ अर्थात् गुणों में ‘कुसलत्तं’ अर्थात् कुशलता धारण करते हैं, उनको भी धिक्कार किया गया है। जो ज्ञान-विज्ञान में कुशल हैं और अनेक तरह के गुणों में भी कुशल हैं लेकिन अगर उन्हें एक कुशलता नहीं आती है तो आचार्य कहते हैं...उनके लिए भी उस ज्ञान-विज्ञान, बुद्धि और गुणों का कोई महत्व नहीं बनता। किसमें कुशलता चाहिए? कहते हैं...

‘सुह-सच्च-धम्म रयणे’ जो सुख देने वाला और सत्य स्वरूप है ऐसे धर्म रूपी रत्न में **‘सुपरिक्खं जे ण जाणंति’** अच्छी तरह से परीक्षा करना जो नहीं जानते हैं उन्हें किसी भी तरह का कोई भी ज्ञान हो, विज्ञान हो उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है?

मिथ्या धर्म और सम्यक् धर्म की पहचान करना आवश्यक है

अगर हम देखे तो इन शब्दों में यह कहा गया है कि हमें मिथ्या धर्म और सम्यक् धर्म की पहचान जरूर करना चाहिए। इसलिए कहा गया है क्योंकि ऊपर की दो गाथाएँ अगर आपको ध्यान हो तो 97 नंबर की गाथा में सम्यक्त्व के गुण के बारे में बताया था और 98 नंबर की गाथा में मिथ्यात्व के दोषों के बारे में बताया था। उसी का उपसंहार करते हुए यहाँ कहते हैं कि सम्यक् धर्म में अनेक गुण दिखाई देते हैं, मिथ्या धर्म में अनेक दोष दिखाई देते हैं और इन गुण दोषों की पहचान जिन्हें नहीं है, वह ज्ञान में, विज्ञान में, विद्वत्ता में, अनेक प्रकार की डिग्रियाँ हासिल करने में कितने ही कुशल क्यों न हो, उनकी वह कुशलता, उनका वह ज्ञान-विज्ञान, भले पुरुषों के द्वारा, विवेकी पुरुषों के द्वारा प्रशंसनीय नहीं होता और जो अनेक प्रकार के गुण भी रखते हो। आपने देखा भी होगा बहुत से लोग बहुत ही नम्र स्वभावी, सरल स्वभावी होते हैं, बहुत से लोगों के लिए किसी भी तरह का कोई आग्रह नहीं होता है और उनका वह जीवन बड़ा सरलतम और सुखी भी दिखाई देता है। फिर भी अगर हम उनके जीवन में देखे तो यह गुण तो सब अच्छे हैं, जो मानवीय गुण होते हैं। उन सब मनुष्यता के गुणों से परिपूर्ण होकर भी, जो कभी किसी से लड़ाई झगड़ा नहीं करते, किसी का बुरा नहीं सोचते, सबके भले के लिए हमेशा काम करते हैं, ऐसे बहुत से लोग आपको दुनिया में मिल जाते हैं। उनको भी यहाँ पर शिक्षा देने के लिए कहा जा रहा है कि उन लोगों को भी अपनी सरलता में इतना निराग्रही नहीं होना चाहिए कि हमें कभी यही जरूरत न पड़े कि भाई सही धर्म क्या है और गलत धर्म क्या है? क्योंकि धर्म ही वह चीज है जो हमें अध्यात्म तक पहुँचाता है। अगर आपका धर्म सही होगा तो आपका धर्म के साथ जुड़ा हुआ दर्शन सही होगा और दर्शन सही होगा तो आपका अध्यात्म तक पहुँचने की आपकी गति भी सही होगी। क्योंकि धर्म से ही दर्शन बनता है और दर्शन से ही अध्यात्म आता है।

दर्शन शास्त्र और अध्यात्म शास्त्र

दर्शन और अध्यात्म, ये शब्द आपने सुने होंगे। जब BA, MA के Courses में यह चीजें पढ़ाई जाती हैं तो उनमें यह topic आते हैं। आपको जैन धर्म पढ़ना है? कि बौद्ध धर्म पढ़ना है? कि वैदिक धर्म पढ़ना है? दर्शन शास्त्र में Phd करना है? कि सिद्धांत शास्त्र में करना है? कि अध्यात्म शास्त्र में करना है? यह सब अलग-अलग वहाँ पर branches आती हैं और उस स्थिति में हम समझ सकते हैं कि जिस व्यक्ति को धर्म के साथ, सही धर्म के साथ जुड़ा होगा उसे सही दर्शन आएगा। सही दर्शन मिलेगा तो उसे सही अध्यात्म की जानकारी मिलेगी। धर्म एक नींव की तरह काम करता है और धर्म की नींव पर ही यह दर्शन और अध्यात्म के महल खड़े होते हैं। जिस धर्म को आप मानेंगे, आपके सामने उसी धर्म का दर्शन होगा। दर्शन का मतलब देखना भी होता है और अगर उस देखने के मतलब को हम यूँ समझे कि हम इस विश्व को किस रूप में देखे? वह हमें दर्शन शास्त्र बताता है। अर्थात् यहाँ पर जीवादि का स्वरूप क्या है? यह विश्व किसने बनाया है? हम इस शरीर में रह रहे हैं तो हमारा जीवात्मा स्वतंत्र है या परतंत्र है? हम किसी ईश्वर के अंश हैं

या हम स्वयं अपनी एक अलग इकाई हैं? इस तरह की सभी अवधारणाएँ clear होती हैं जब हम दर्शन शास्त्र को पढ़ते हैं और दर्शन शास्त्र धर्म से ही जुड़ा होता है। जब आप दर्शन पढ़ेंगे तो आपको न्याय भी पढ़ाया जाएगा और वह न्याय शास्त्र की रीढ़ भी उस धर्म से जुड़ी होगी। अगर आप अद्वैतवाद पढ़ेंगे तो आपको केवल हर चीज में अद्वैतवाद के साथ ही दर्शन शास्त्र दिखाया जाएगा और उसी में आपको न्याय शास्त्र बताया जाएगा।

साध्य और साधन की विचारधारा : (द्वैतवाद द्वारा अद्वैतवाद का खंडन)

अद्वैतवाद का मतलब होता है- कि दुनिया में दो कुछ नहीं है सब कुछ एक होता है। जिसे कहते हैं- ब्रह्म अद्वैतवाद अर्थात् दुनिया में सिर्फ ब्रह्म है और उसके अलावा कुछ भी नहीं है। इस तरह से अनेक दर्शन हैं जो इस तरह का कथन करते हैं। अब जब आप ब्रह्म अद्वैतवाद के माध्यम से दर्शन शास्त्र को देखेंगे तो उसमें आपको सिर्फ ब्रह्म ही ब्रह्म दिखाई देगा। यानी जितनी भी जीवात्मा है वह सब उस ब्रह्म के ही अंश हैं। यहाँ तक कि जो भी अजीव पदार्थ हैं, प्रकृति है, जहाँ पर भी हमें यह पृथ्वी, जल, वायु और भी कोई भी तरह के हमें अजीव पदार्थ, लकड़ी, लोहे आदि भी दिखाई पड़ते हैं तो उन सब में भी ब्रह्म का वास कहा जाता है। यह अद्वैतवाद होता है। अब आप इसे समझें। क्या दुनिया में सिर्फ एक ब्रह्म का विस्तार है? एक अद्वैतवाद के रूप में ही दुनिया का दर्शन हमें करना है? जब आप अद्वैतवाद पढ़ेंगे तो आपको दर्शन शास्त्र में सब कुछ ब्रह्म पर निर्भर बताया जाए। जब आप जैन शास्त्र पढ़ेंगे तो आपको उसमें दुनिया के अन्दर का दर्शन दो रूपों में दिखाया जाएगा... **‘जीवमजीवं द्वयं’** दो प्रकार के द्वय, पदार्थ, substances बताए जाएँगे, जो जीव के रूप में भी होते हैं और अजीव के रूप में भी होते हैं। अब आप समझें, विचार करें, यहाँ परीक्षा करने को कहा गया है। क्या दुनिया में एक चीज ब्रह्म के रूप में जो फैली हुई है वह हर चीज में ब्रह्म घुसा हुआ है क्या? क्या जीव और अजीव दो तरह के पदार्थ हमें दिखाई नहीं देते? हमारा विश्वास जिस तरह की धर्म की अवधारणा पर होगा, हमारे सामने दर्शन शास्त्र वैसा ही आएगा और न्याय भी वैसा ही आएगा। अगर आपको यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है... यह लकड़ी, यह लोहा, यह कपड़ा, यह सब चीजें नितान्त अजीव हैं, इनमें कहीं जीवत्व का कोई सम्बन्ध नहीं है। आपके चेहरे पर लगा हुआ वह Glass, वह Specs का वह frame या कोई भी तरह की कोई जो आपने अपने चेहरे पर अलग से चश्मा के रूप में लगा रखे हैं, यह सब जीव हैं कि अजीव हैं? यह सब अजीव पदार्थ है। अब अगर हम इसमें भी ब्रह्म-ब्रह्म सब जगह घुसेड़ दे और ब्रह्म का वास बता दे और सब जगह ब्रह्म-ब्रह्म की कृति रखें और ब्रह्म के अलावा दुनिया में कुछ न हो तो ब्रह्म तो जीव हो गया, चैतन्य रूप हो गया या चैतन्य का परिणाम हो गया तो सब जगह फिर चेतना हो गई। एक ही एकान्त हो गया। इसका नाम है- अद्वैतवाद।

दो चीज नहीं है। द्वैत नहीं मानना आपको। क्या मानना? अद्वैत इसका नाम है। अनेक शंकराचार्यों ने इस अद्वैतवाद की बड़ी भारी नींव इस दुनिया के अन्दर रख रखी है और वह चलती है। इधर जब हम इस अद्वैतवाद के साथ आगे बढ़ते हैं तो हमारे सामने एक एकान्तवाद आ जाता है। अर्थात् अब आपके सामने एक ही चीज रह गई, दो चीज कुछ नहीं होगी। वह ब्रह्म ही सब कुछ होगा। अब उस ब्रह्म की सिद्धि करने के लिए भी आपके सामने दो चीज नहीं होंगी क्योंकि ब्रह्म की सिद्धि करने के लिए भी हमें दो चीज चाहिए

पड़ेगी। एक साध्य होता है एक साधन होता है। जब सब कुछ ब्रह्म ही है तो अब साध्य और साधन की विचारधारा भी कहाँ रही? जहाँ साध्य और साधन की विचारधारा आ गई, वहाँ पर द्वैत आ गया और जहाँ द्वैत वहाँ अद्वैतवाद का खंडन अपने आप हो गया। यह एकान्त मत को आपको स्वीकार करना पड़ेगा। इसकी आप परीक्षा नहीं कर सकते हो।

अनेकान्तवाद से सही और गलत धर्म की परीक्षा

इधर जब हमें तीर्थंकर ज्ञान देते हैं तो तीर्थंकर क्या कहते हैं? द्रव्य पदार्थ इस संसार के अन्दर दो तरह के हैं- एक जीवात्मक है और एक अजीवात्मक है। एक चैतन्य रूप है, एक अचेतन रूप है। अचेतन को अचेतन की तरह जानो, चेतन को चेतन की तरह जानो। चेतन पदार्थ कभी अचेतन नहीं होता और अचेतन पदार्थ कभी चेतन नहीं होता। यह तीर्थंकरों के द्वारा दिया गया ज्ञान है। इस ज्ञान के साथ में उन्होंने अनेकान्तवाद का ज्ञान दिया। दर्शन न्याय की धारा में जब बहता है तो वह अनेकान्तवाद की तरफ जाता है। उस अनेकान्तवाद में हर पदार्थ के अन्दर अनेक पहलू हैं, अनेक धर्म हैं। उनके अनेक धर्मों को समझने के लिए हमारे पास जो अलग-अलग तरह के ज्ञान आएँगे वह सब ज्ञान सत्य हैं। यह अनेकान्तवाद के माध्यम से जाना जाता है। एकान्तवाद में जब न्याय चला जाता है तो फिर इतना ही कहा जाता है...भाई! आपको यह स्वीकार करना ही है और एक चीज को सिद्ध करने के लिए आपको केवल फिर एक ही बात को स्वीकार करना पड़ेगा। दो बात जहाँ पर आ गई तो वहाँ पर आपका एकान्तवाद खण्डित हो जाएगा। इस तरह से जब हम धर्म की परीक्षा करने की बुद्धि अगर सामने लाएँ तब तो हमारी Physics, Chemistry, Maths, Zoology, Biology, CA, MA, BSc, MBBS कुछ करने का मतलब निकलता है और इन सब पढ़ाइयों का कुछ मतलब निकलता है, यह आचार्य यहाँ यह कहना चाह रहे हैं। कितने ही आपके पास में विज्ञान हो, आप कितने ही तरीके के Business Management के Courses कर चुके हो लेकिन अगर आपके पास में सही और गलत धर्म की परीक्षा करने का उपाय नहीं है तो यहाँ पर आपको धिक्कारा गया है। अब आप चाहे बुरा माने, चाहे अच्छा माने। आपके पास में बहुत अच्छे गुण हैं, आप बहुत कुशल हैं, घर में बहुत आप शान्त रहते हैं, management आपका बहुत अच्छा है, आपको सबसे प्रेम है, सब आपसे प्रेम करते हैं, आपके अन्दर human nature के जितने भी अच्छी quality होनी चाहिए वह सब है। उसके बावजूद भी आचार्य कहते हैं...इन सब गुणों में भी कुशलता होने पर भी आपको धिक्कार है।

Real और Wrong Religion के विषय में अपने अन्दर knowledge लाना होगा

अब क्यों धिक्कार है? अब आप सोचोगे हमारा बेटा, हमारे घर के लोग कितने पढ़े-लिखे हैं और सब पढ़े-लिखे होने के साथ-साथ सब बहुत sincere हैं, disciplined हैं, सब कुछ है, सबके पास honesty है, quality है, सब कुछ है लेकिन फिर भी यहाँ पर उनको धिक्कारा जा रहा है। अब इन्हीं आचार्यों के माध्यम से मैं कुछ कह पाऊँगा क्योंकि जब तक अपने सामने कोई बीच में नहीं हो, तब तक अपनी भी सुरक्षा नहीं होती है। इनको सामने रख कर अपनी बात कह पाते हैं। भले ही वह explanation इसमें इतना अधिक नहीं है लेकिन सूत्रात्मक जो शब्द होते हैं उनको explain करना, वह जो उसका वक्ता होता

है, उसको आता है। विज्ञान का मतलब ही यही है कि आपने सब तरह का ज्ञान सीख लिया। सामाजिक शास्त्र, राजनीतिक शास्त्र, नीति शास्त्र सब पढ़ लिया आपने, भौगोलिक और जीव विज्ञान, कर्म विज्ञान सब पढ़ने के बावजूद भी अगर आपने सही और गलत धर्म की परीक्षा नहीं की तो आचार्य कहते हैं...आपको धिक्कार है। आज के पढ़े-लिखे बच्चों के लिए यह गाथा बहुत important है। उन्हें लगता है कि मैंने बहुत बड़ी-बड़ी पढ़ाई कर ली अब मैंने क्या गलती कर ली, जो महाराज के सामने आकर नीचा देखना पड़ता है? कई बच्चों के लिए ऐसी feeling आती है। मैं उनकी feeling देखता रहता हूँ। वे बहुत बड़ा-बड़ा पढ़ कर भी आते हैं, बहुत अच्छी अच्छी posts पर, अच्छी service करके भी आते हैं लेकिन यहाँ सामने आने के बाद में उनकी मुंडी झुक जाती है। वह विनय से नहीं झुकती है, वह कुछ न कुछ थोड़ी और शर्मिंदगी से भी झुकती है। कुछ न कुछ उनके अन्दर ऐसी feeling आती है कि अभी भी शायद कुछ कमी है मेरे अन्दर, जो हमें अभी उसको भी achieve करना है। ऐसी उनके अन्दर feeling आती है और वह feeling की वजह यही है। आपके पढ़े-लिखे बच्चे, अच्छी अच्छी संस्थानों में service करने वाले बच्चे, आपके अच्छे ढंग से आपको manage करने वाले बच्चे, उनको भी आप यह गाथा बताएँ, उन्हें सिखाएँ और उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करें कि बेटा हर तरह के ज्ञान-विज्ञान में कुशल होने के बावजूद भी, हर तरह की human nature की अच्छी quality अपने अन्दर आने के बावजूद भी, जब तक हम real और wrong religion के विषय में अपने अन्दर knowledge नहीं लाएँगे, तब तक हम सब भीतर से एक बराबर हैं। जिसे मिथ्यात्व कहा जाता है, यह परीक्षा से आएगा। इस वैराग्य में भी परीक्षा करनी पड़ती है।

सम्यक्त्व और मिथ्यात्व में भेद आवश्यक

वैराग्य शतक में परीक्षा का वैसे कोई काम नहीं था लेकिन सम्यक् क्या? और मिथ्या क्या? इन दोनों के बीच में परीक्षा किए बिना तो कहीं पर कोई गुजारा होता ही नहीं है। धर्म ही हमें दर्शन और अध्यात्म की गहराइयों तक ले जाता है। भाई आप भी किसी दुकान पर पहुँचते हो तो उस दुकान पर पहुँचने के बाद में कोई भी कपड़ा खरीदते हो, बर्तन खरीदते हो, कोई भी तरह का jewellery का सामान खरीदते हो, बिल्कुल अंधे होकर ले लेते हो क्या? कुछ तो package देखते हो, brand देखते हो, कुछ तो quality देखते हो कि नहीं देखते हो? वहाँ आपको सब देखना होता है कि भाई! यह कपड़ा S.Kumar का है कि Raymonds का है, कहाँ का है। वहाँ आपको सब देखना होता है और यहाँ आपके लिए भाई धर्म तो सब एक है। भाई! धर्म सब एक कैसे हो जाएगा? अगर आपने अद्वैतवाद को समझने की कोशिश कर ली तो आपका अद्वैतवाद आपके दर्शन में यह आ जाएगा कि आपको चारों ओर ब्रह्म का वास ही दिखाई पड़ेगा अर्थात् सब कुछ ब्रह्म का विस्तार दिखाई पड़ेगा। अर्थात् फिर आपको जीव और अजीव के बीच में भेद करना भी गुनाह होगा। फिर आप अगर अध्यात्म में उतरेंगे तो जीव और अजीव का भेद विज्ञान नहीं है तो आप अध्यात्म में उतर कर क्या करेंगे? कहाँ देखेंगे? अध्यात्म कहाँ मिलेगा आपको? सब जगह ब्रह्म दिख रहा है। शरीर में भी ब्रह्म है, मन में भी ब्रह्म है, आत्मा में भी ब्रह्म है, सब जगह ब्रह्म है तो फिर अब आप किसकी आराधना करेंगे? Focus किस पर करेंगे? प्राप्त किसको करेंगे? यह धर्म ही हमें दर्शन और अध्यात्म की गहराइयों तक ले जाता है। अगर धर्म गलत है तो दर्शनशास्त्र भी गलत हो जाएगा, न्याय शास्त्र गलत हो जाएगा और अध्यात्म की धारा भी गलत हो जाएगी।

तीन लोक की रचना का वर्णन

बहुत से बच्चे पढ़े-लिखे होते हैं, बहुत से पढ़े-लिखे लोग सामने आते हैं, कहते हैं- महाराज मुझे अध्यात्म की लाइन बताओ? अब अध्यात्म की लाइन पर आने के लिए आपको पहले दर्शनशास्त्र जानना जरूरी है, विश्व का दर्शन करना जरूरी है। जब आप बाहर सही देख पाएँगे, तब आप भीतर सही देख पाएँगे। जो बाहर है वही भीतर है। आप ने देखा होगा कि आपके शरीर की जो आकृति बनती है, वह आकृति एक लोक की आकृति बनती है। अर्थात् अगर इस लोक को भी हम शरीर के रूप में देखे तो हमारा शरीर ही हमारे लोक की संरचना को बताता है। अपने कमर पर हाथ रखकर जब आप खड़े हो जाएँ, पैर फैला कर, बस यह तीन लोक की रचना बन गई। कमर के नीचे का portion अधोलोक है, सात नरकों के, सात पृथ्वियों के माध्यम से फैला हुआ है। आपकी कमर का गोल portion यह मध्य लोक है और नाभि से ऊपर बस आप चलते चले जाएँ बस सौधर्म, ईशान, स्वर्ग शुरू हो जाएँगे और गले तक पहुँचते हुए ग्रैवेयक आ जाएँगे, पंच अनुत्तर में आपका मुख आ जाएगा और ऊपर यह ब्रह्म लोक। मतलब यह लोक का अन्तिम स्थान, यह लोक का अग्रभाग आ जाएगा, जहाँ पर सिद्ध भगवान विराजमान हैं। पूरे शरीर की रचना में तीन लोक समाया हुआ है। यही बाहर देखो, यही भीतर देखो। अगर आपके पास में बाहर लोक का दर्शन सही होगा, ज्ञान सही होगा तो आप भीतर कुछ देख पाओगे।

शरीर, मन व आत्मा का भेद विज्ञान ही अनेकान्तवाद

आपको पता होगा कि भाई मैं चेतन तत्त्व हूँ, मैं आत्म पदार्थ हूँ और मेरा आत्मा किसी का बनाया हुआ नहीं है, किसी का अंश नहीं है तो आपका focus अपनी आत्मा को सुधारने पर होगा। जब आपको यह पता ही नहीं है कि मैं आत्मा हूँ या कोई मैं एक अलग पदार्थ हूँ तो आप दुनिया में जैसे सभी लोगों को देख रहे हैं और जैसा आप महसूस कर रहे हैं, बस! आप वैसा ही महसूस करेंगे और आपके लिए न शरीर, न मन, न आत्मा, इन तीनों का कोई भी differentiation हो ही नहीं सकेगा, आपके अन्दर किसी भी तरह का कोई भेद विज्ञान आ ही नहीं सकेगा। अध्यात्म तो तब आएगा जब आपके अन्दर इस बात की श्रद्धा सही हो कि सही क्या है और गलत क्या है? एक तरफ एकान्तवाद है। एक तरफ अनेकान्त का दर्शन है। यह दर्शन शास्त्र है- एकान्त और एक अनेकान्त। अनेकान्त दर्शन के हिसाब से देखोगे तो आपको द्रव्य, गुण, पर्याय, चेतन, अचेतन सब पदार्थों में मिलेंगे और आपको सही ढंग से यह महसूस होगा कि शरीर के गुण धर्म अलग हैं, मन के अलग हैं, बुद्धि के अलग हैं, आत्मा के अलग हैं। जब आप एक एकान्तवाद को देखोगे तो आपको सब में वही अद्वैतवाद दिखाई देगा। आपकी धारणा में जो चीज है वही आप अध्यात्म की line में खोजोगे तो आपको अपने अध्यात्म का सही दर्शन कभी होगा ही नहीं।

विपासना के सिद्धान्त अनुसार आत्म-तत्त्व अव्याकृत

इसलिए यह बात उन सब पढ़े लिखे लोगों को जानना बहुत जरूरी है, जो अध्यात्म जानना चाहते हैं लेकिन सही धर्म की परीक्षा करना नहीं चाहते हैं। सही धर्म की परीक्षा किए बिना आप अध्यात्म की दृष्टि में कैसे आगे बढ़ोगे? मानो कि आपने बौद्ध धर्म को जाना, आज बहुत सारे लोग विपश्यना की practice करते हैं। और उस विपश्यना में सिद्धान्त है कि आपको आत्मा के बारे में कुछ नहीं बताया जाता। क्योंकि बुद्ध ने जब

भी आत्मा के बारे में बुद्ध से पूछा गया तो उन्होंने कह दिया यह सब बातें बेकार की बातें हैं। इन बातों से आदमी का मनुष्य का कोई लेना देना नहीं है। उन्होंने इसको अव्याकृत कह कर छोड़ दिया अर्थात् यह कहने योग्य नहीं है। मतलब कि वह आत्मा को मानते ही नहीं है। अब आत्मा को नहीं मानते तो फिर क्या मानते हैं? बस शरीर है, मन है, बुद्धि है। अब आप उस ध्यान से क्या पाओगे, हमें यह बताओ? आपको उस ध्यान के माध्यम से श्वास का वहाँ पर अभ्यास कराया जाता है। उस श्वास के अभ्यास से आपको थोड़ी मानसिक शान्ति तो मिल जाएगी, यह बात निश्चित है क्योंकि आपका मन श्वास के माध्यम से एकाग्र करने को कहा गया है वह आप कर लो। लेकिन आपकी अध्यात्म यात्रा प्रारंभ नहीं हो पाएगी क्योंकि अध्यात्म यह शब्द ही आत्मा से सम्बन्ध रखता है।

अध्यात्म की यात्रा के लिए आत्मा की शाश्वतता पर विश्वास आवश्यक

‘अधि आत्मनि वर्तते इति अध्यात्मं’ अर्थात् आत्मा को अधिकृत करके चलता है, उसका नाम अध्यात्म है। अगर आप अध्यात्म की यात्रा करना चाहते हैं तो आपके अन्दर आत्मा का विश्वास ही नहीं है तो आप यात्रा किसकी करेंगे? आपको हमेशा यह ध्यान रखना पड़ेगा कि जब तक हम आत्मा का अस्तित्व स्वीकार न करें, आत्मा का विश्वास न लाएँ, अध्यात्म की बात कहीं से कहीं तक हो ही नहीं सकती। इसलिए अनेक-अनेक तरह के ध्यान लोग करते हैं, कराए जाते हैं लेकिन उनमें अध्यात्म के नाम पर भी कहीं अध्यात्म की यात्रा होती ही नहीं है। यह बात बहुत अच्छे ढंग से मैं डंके की चोट पर कह रहा हूँ, क्योंकि मैं परीक्षा करके बैठा हूँ। मैं तुम्हारी तरह मूढ़ नहीं हूँ। हर धर्म को, हर दर्शन को परीक्षा करने के बाद मैं यह कहा जा सकता है जहाँ आत्मा की शाश्वतता का सिद्धान्त नहीं है, जहाँ आत्मा में अशुद्धता और शुद्धता का सिद्धान्त नहीं है, जहाँ आत्मा का अनादि कालीन सिद्धान्त नहीं है, उस आत्मा को हम अशुद्ध से शुद्ध कैसे बनाएँ? इस बात का जहाँ सिद्धान्त नहीं है, वहाँ अध्यात्म होगा कहाँ से? यह बात जब तक आपके ज्ञान में परीक्षा करके नहीं आएगी तब तक आपके अन्दर वह ज्ञान से कोई प्रयोजन नहीं है जो आपने दुनिया की डिग्रियाँ ले-ले करके कर लिया है, यह यहाँ कहा जा रहा है। इसका interpretation इसी तरीके से होगा। अब आप कहो कि मैं बहुत अच्छा हूँ। मुझे सब कुछ मान्य है। सब कुछ क्यों मान्य है? सब कुछ की मान्यता में आप कहीं नहीं पहुँचेंगे। सब कुछ तो सिर्फ जानने के लिए होता है, मानने के लिए तो एक ही चीज होती है, जो सही होती है। यह सीखेंगे कब? लोग कहते हैं...हमें सब कुछ मान्य है, वे बड़े अच्छे समझते हैं अपने आप को और आजकल एक secularism चलता है, उसमें यही सिखाया जाता है...भैया! सबको मानो, सबको देखो सबको। अरे भाई! मानो सबको नहीं, जानो सबको। हम किसी का निरादर नहीं कर रहे हैं। हम किसी के लिए कोई आक्षेप नहीं कर रहे हैं लेकिन हमें मानना सब कुछ नहीं है, जानना सब कुछ है। दुनिया को जानो, कितने दर्शन हैं? छह नहीं, तीन सौ साठ भी अगर दर्शन हो, तीन सौ तिरसठ भी अगर दर्शन हो, वे भी आप जानो, कोई दिक्कत नहीं है। जानने के बाद मैं मानने की चीज तो एक ही होगी। बस अगर आपको परीक्षा करना आए तो एक चीज को मानने की अगर आपकी भावना बनेगी, तब आपकी अध्यात्म की यात्रा शुरू होगी। यह पढ़े-लिखे बच्चों को जरूर सिखाना है। जो ध्यान के क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं, उनको सिखाना है। जो अध्यात्म की यात्रा पर उतरने जाते हैं, उनको बताना है कि दुनिया के तीन सौ तिरसठ मतों का दर्शन हमें इस अनेकान्त दर्शन में मिलता है और तीर्थकरों ने तीन सौ तिरसठ मतों के बारे में लिखा है, बताया है, बोला

है और उन तीर्थकरों के द्वारा जब हमें ज्ञान मिला तीन सौ तिरसठ मतों का तो उसमें अब आपको परीक्षा करना है कि एक तो उसमें सही होगा ही और उस एक की भी अगर आपने परीक्षा कर ली तो बस वहीं से आपकी अध्यात्म की यात्रा शुरू होगी।

सबको जानना और मानना एक को

सब कुछ जानकर एक को मानने से काम चलेगा। इसलिए यहाँ कहा जा रहा है...उस धर्म की शरण में जाओ जो हमें सुख दे, केवल अभी नहीं। यहाँ का केवल मानसिक सुख नहीं कि थोड़ी सी हम श्वासों पर टिक गए, थोड़ा सा हमारे लिए थोड़ा सा चैन मिल गया, मानसिक शान्ति मिल गई तो हम सुखी हो गए। अरे भाई! अगले जन्म में भी सुख चाहिए, अगर विवेकी हो, बुद्धिमान हो तो जन्म-जन्म की व्यवस्था करके चलो। नहीं तो गरीब हो और कोई बुद्धि नहीं है तो भाई आज खा लो, आज ही कमा लो, ऐसा करना है, तो बस ऐसा कर लो। जो लोग के पास में ज्यादा धन नहीं होता, ज्यादा जिनके पास में ज्ञान नहीं होता, वे अपना काम चलाते हैं। भाई! आज कमाया, आज खाया और जिनके पास में ज्ञान होता है, vision होता है, आगे देखने की जिनके पास में दूरदर्शिता होती है, तो आगे भी तब-सब सोच कर चलते हैं। भाई! अपने को ही खाना कमाना नहीं है, अपने पीछे भी बहुत लोग हैं उनके लिए भी कुछ इंतजाम करके जाना है। इस तरह की जहाँ पर उनके अन्दर ज्ञान-विज्ञान की शक्ति आएगी तो वह आगे की भी चीजें समझ कर चलते हैं और उसी समझ के माध्यम से उनका नाम दुनिया में होता है क्योंकि वे केवल इतने के लिए नहीं थे कि आज खा लिया, आज कमा लिया। उन्होंने इतना कमाया कि पीढ़ियों की पीढ़ियाँ उनकी खाती रहेंगी तो भी वह कभी कमी नहीं पड़ेगी। इस तरह की चीजों की परीक्षा करने के लिए यहाँ कहा जा रहा है, उस सुख की परीक्षा करो जो सुख हमें आगे भी मिले। अब जब आपके पास में आत्मा का विश्वास ही नहीं है तो आत्मा को सुख आगे कहाँ मिलेगा? बस! इसी जन्म में खाओ और कमाओ। यह जो आपके अन्दर अगर सुख की धारणा है तो यह सुख की धारणा आपको कभी भी सुख देने वाली नहीं है।

अर्ह ध्यान योग से ही आत्मिक सुख

धर्म के लिए यहाँ कहा जा रहा है...धर्म रत्न है। जैसे आप रत्न की परीक्षा करते हैं ऐसे ही आप धर्म रत्न की परीक्षा करें और धर्म रत्न की परीक्षा करने के लिए यह देखे- दो चीजें कि यह धर्म हमें सुख देता है कि नहीं देता है और वह सुख देता है तो कितने स्तर पर धर्म में सुख देने की बात है? शारीरिक स्तर पर सुख आप खूब exercise कर लो, व्यायाम कर लो, योग कर लो। दुनिया के योग चल रहे हैं सब आपको शारीरिक स्तर पर सुख देंगे। फिर थोड़े से आप ध्यान में आ जाओ, दुनिया में बहुत सारे ध्यान भी चल रहे हैं वह आपको मानसिक स्तर पर भी सुख देंगे। लेकिन हमेशा के लिए सुख देने की बात, आत्मिक स्तर पर सुख प्राप्त करने की बात, यह आपको केवल और केवल **अर्ह ध्यान योग** में ही मिलेगा क्योंकि यह तीर्थकरों के द्वारा बताया गया योग है। अब आपके ऊपर है कि आप कौन से योग और कौन से ध्यान को स्वीकारते हैं? जिसमें सुख भी मिले आगे और जो सत्य रूप भी हो। दो चीजें यहाँ बताई हैं।

धर्म की सत्यता की पहचान

धर्म की पहचान दो रूपों में करना... एक वह धर्म हमें सुख भी देने वाला हो और वह धर्म सत्य रूप हो। अगर आपने अपने जीवन में धर्म की सत्यता की पहचान नहीं की तो आपने कुछ नहीं किया। यह जैन आचार्यों का एक बहुत बड़ा आग्रह रहता है कि आप धर्म रत्न की पहचान करें। यह बहुत बड़ा रत्न है। आप बाहरी रत्नों की तो सब पहचान करते रहते हैं। यह नकली है, यह असली है, यह तेल असली है, यह तेल नकली है, यह घी असली है, यह घी नकली है लेकिन आप धर्म रत्न की quality नहीं समझना चाहते। अर्थात् आपके अन्दर धर्म का कोई importance आपको पता नहीं है। आज के पढ़े-लिखे बच्चों को धर्म का कोई importance पता नहीं होता। इसीलिए उनकी यह धारणा बनी होती है कि धर्म की हमें कोई भी आग्रह वाली बात में नहीं पड़ना और किसी एक को नहीं मानना। वह सबको मानते रहते हैं और जो सबको मानते रहते हैं, वे कहीं नहीं पहुँच सकते हैं, वे कुछ नहीं कर सकते हैं। क्या कहा? जानना सबको है और मानना एक को है। यह चीज समझने की है। भाई! दुनिया में सब कुछ है, सब कुछ जानो। कोयल भी है, कौवा भी है, जानना तो सबको पड़ेगा न? अब दोनों को एक कह दोगे... भाई! सब एक समान है तो एक समान कैसे हो जाएगा? फिर तो कोयल की कोई वकअत ही नहीं रही। जब कोयल और कौवा दोनों एक समान हो गए। आज के बच्चों से पूछो सब कुछ एक समान है, सब एक सा है। हमें सबको एक समान मानना चाहिए। अरे भाई! एक समान मानने पर आपके अन्दर किसी भी चीज की quality और उसकी जो भी दोषता है, वह कैसे समझ में आएगी? आपके अन्दर यह कैसे समझ में आएगा कि यह चीज अच्छी है? यह चीज बुरी है? यह अच्छे और बुरे का, सत्य और असत्य का, यह विभाजन जब तक आपके अन्दर नहीं हो, तब तक आपके ज्ञान को यहाँ पर सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जाएगा। इसलिए आचार्य कहते हैं... परखो। क्या करो? परखो। हर चीज को परखो। परखो अर्थात् परीक्षा से ही परखो शब्द बनता है। परिक्रखो! परखो अर्थात् चीज की परीक्षा करो। 'परिक्रखो' यह शब्द परीक्षा का प्राकृत रूप है- परिक्रखो। परीक्षा को प्राकृत में क्या बोलेंगे? परिक्रखो।

परखने की बुद्धि न होने पर जीवन की उपलब्धियाँ व्यर्थ

हर चीज आप अपनी हिंदी में बोलते रहते हो आपको पता ही नहीं होती है कि इसका originate कहाँ से हुई यह चीज? हर चीज को परखो। हर चीज के origin को समझो। यह जब तक बुद्धि नहीं आएगी तब तक आपकी पढ़ाई, लिखाई, आपकी job, आपके मनुष्य जीवन की यह उपलब्धियाँ, कोई भी काम की नहीं है। आचार्य यहाँ कह रहे हैं... धिक्-धिक्, आपको धिक्कार है। आपने अपने जीवन में इतना भी नहीं परखा? इतना भी नहीं समझा? कोई मतलब नहीं। अब इतना सब कुछ करने के बावजूद भी धिक्-धिक् हो गया तो बस! यह धिक्- धिक् हमारे अन्दर एक धक धक लगा देना चाहिए। फिर हमारे heart की beating बढ़नी चाहिए। भाई! इतना पढ़ने लिखने के बाद और इतना सब कुछ उपलब्ध करने के बाद आचार्य कहते हैं... धिक्, धिक्, धिक्कार है, धिक्कार है, धी-धी। जब यह धी-धी होने लग जाए तो हमें समझना कि हमारी 'धी' अर्थात् बुद्धि भी होता है। धी अर्थात्? शब्द ज्ञान तो रखते नहीं english-english पढ़ रखी है। बुद्धि को भी धिक्कार किया जा रहा है। अगर यहाँ पर दूसरा अर्थ निकालें... धी-धी अर्थात् तुम्हारी बुद्धि को धिक्कार है तो दूसरा अर्थ यह भी निकलता है। व्याख्यान कर्ता होना चाहिए, एक

के कई अर्थ भी निकाल सकता है। एक **धी** यानी बुद्धि और एक **धी** यानी धिक्कार। तुम्हारी बुद्धि को धिक्कार है, तुम्हारी बुद्धि को धिक्कार है, तुम्हारी बुद्धि को धिक्कार है, तीन बार तो बोलना ही पड़ेगा। जब आप जय तीन बार बोलते हो, नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु तीन बार बोलते हो तो तीन बार हमें भी तुम्हें धिक्कारना तो पड़ेगा ही। बुद्धि को धिक्कार किया जा रहा है। आपको धिक्कार होने का मतलब आपकी बुद्धि को धिक्कार है क्योंकि आपकी बुद्धि में परीक्षा नहीं आई और यह परीक्षा करना जरूरी बताया गया है। जब तक परीक्षा नहीं होगी तो आपको कैसे समझ में आएगा कि यह अंधेरा है? कि यह उजाला है? हर चीज हमें भेद से ही तो समझ में आती है। आदमी है, पशु है, यह भी तो भेद से ही तो समझ में आएगा? किससे समझ में आएगा? यह सब चीजों में जिस तरह से भेद के बिना कोई चीज समझ में नहीं आती और हम उसको एक कह दे- सूरज और चंद्रमा एक हो जाने से क्या एक हो जाएगा? क्या आपके एक मान लेने से? सूरज सूरज रहेगा, चंद्रमा- चंद्रमा? दिन रहेगा, रात- रात? आदमी- आदमी रहेगा, औरत-औरत? पशु-पशु रहेगा, मनुष्य- मनुष्य? बोलो तो? सब अलग-अलग नहीं है? हर चीज को एक मान लो तो फिर दीवाली, दशहरा, होली में भी कोई अन्तर बचेगा कि नहीं बचेगा? दीवाली दीवाली है, होली? अगर दीवाली होली हो जाएगी तो फिर आपको आगे होली की जरूरत ही क्या पड़ेगी? फिर आप कहोगे महाराज दीवाली हो गई, अब आप जाओ। दीवाली होने के बाद, जब होली आती है तभी तो आपके मन में भाव आता है कि महाराज! अगर दीवाली मन गई है, तो होली भी आपके साथ में! तुमने तो अभी तक नहीं कहा, मैं बता रहा हूँ। मतलब ऐसा भी तभी कहा जाएगा न दीवाली और होली अलग-अलग होगी? नहीं तो होली और दीवाली एक ही हो गई तो, फिर कुछ बचेगा कहाँ? यह जो बुद्धि में बैठा रखा है- पढ़े लिखे लोगों ने सब कुछ एक है, एक है, एक है, क्या एक है? एक से कैसे काम चलेगा? अद्वैतवाद से कैसे काम चलेगा? यह एकान्तवाद से कैसे काम चलेगा? काम तो अनेकों से चलता है, अनेकान्तवाद से काम चलेगा।

जैन वाणी व अन्य वाणी में भेद

एक छोटा सा पद्य है, इस विषय में किसी ध्यानतराय जी पंडित जी का है...

कैसे करि केतकी कनेर एक कहि जाय,
 आक-द्रूध गाय-द्रूध अंतर घनेर है।
 पीरी होत रीरी पै न रीस करै कंचन की,
 कहाँ काग-बानी कहाँ कोयल की टेर है॥
 कहाँ भान भारौ कहाँ आगिया बिचारौ कहाँ,
 पूनौ को उजारौ कहाँ मावस अँधेर है।
 पच्छ छोरि पारखी निहारौ नेक नीके करि,
 जैन वैन और वैन इतनीं ही फेर है॥
 जैन वैन और वैन इतनीं ही फेर है॥

कुछ समझ में आया? कितनी उपमा देकर कवि ने इसमें 'जैन वैन' यानी जैन वचन, जिनेंद्र भगवान की

वाणी में और अन्य वाणी में इतनी बड़ी फेर है। कितना बड़ों फेर है? परीक्षा कर। **‘कैसे करी केतकी कनेर एक कही जाए’** एक केतकी का फूल होता है, एक कनेर का फूल होता है। अब तुम न केतकी जानते हो, न कनेर जानते हो। ऐसे बुद्धुओं से तो पाला पड़ा है। अब क्या करें? उन्हें सब एक ही दिखता है। कहीं भी फसल में जैसे गधे को हरा हरा दिखता है न! ऐसे ही आजकल के पढ़े-लिखे बच्चों को सब एक दिखता है। उन्हें समझ नहीं आता कि यह गेहूँ की फसल है, कि यह मक्के की फसल है, कि यह आम का पेड़ है, कि यह नीम का पेड़ है। उन्हें सब एक ही दिखता है, उन्हें सब एक ही पढ़ाया गया है। आजकल के पढ़े लिखे बच्चों का काम यह है बस! उन्हें सब एक दिखाई देता है। जैसे गधों को सब एक ही दिखाई देता है बस! हरी-हरी दिखाई दे रही बस! हरी- हरी। वैसे ही सब आज के गधे बच्चों को सब एक ही हरी- हरी दिखाई देती है। उन्हें कोई अन्तर ही नहीं पता होता है। न उन्हें चने के झाड़ का मतलब मालूम होता है, न उन्हें टमाटर का झाड़ कैसा होता है? यह पता होता है, किसी को पूछ लो? किसी को पूछ लो? कोई बच्चा बता दे कि यह चने का पेड़ है, कि यह टमाटर का पेड़ है, कि यह नीम का है, कि आम का है, कि इमली का है, कि नारियल का है। कोई बता दे? जानते ही नहीं कुछ भी। सब गधे एक नंबर के। जैसे गधे को हमेशा बस हरा-हरा दिखाई देता है, चरना है बस। ऐसे हो गए आजकल के बच्चे। अरे काहे के होशियार? होश ही नहीं है यारों को तो काहे के होशियार? यार बनाने में पड़े हैं, होश ही नहीं है यारों को, सब होशियार- होशियार कहे जा रहे हो, काहे के होशियार? कोई होशियार नहीं। मैं जो कुछ भी है सत्य बोलता हूँ। मुझे किसी से डर नहीं पड़ा।

सही व गलत के भेद विज्ञान के बिना सही में रमण असंभव

आज के बच्चों को कोई भेद विज्ञान है ही नहीं किसी चीज का। उनके दिमाग में भर दिया गया, बस हर चीज...लड़का- लड़की बराबर, सब बराबर, सब एक। अरे क्या एक? जब तक आपको भेद नहीं आएगा तब तक आप किसी चीज का कैसे लुत्फ उठाएंगे? किसी चीज का आनन्द कैसे लेंगे? सही और गलत का अन्तर जाने बिना सही में रमण कैसे करेंगे? गलत को कैसे छोड़ेंगे? केतकी और कनेर सब एक हो गई। दूध- दूध, दूध- दूध, आक दूध, गाय दूध, एक अकौवा का दूध भी होता है, गय्या का भी दूध होता है...पी ले दोनों। दूध-दूध एक से, लड़का-लड़की एक से, सब मनुष्य एक से, सब जातियाँ एकसी, पी ले किसी का भी दूध। गय्या का दूध पीएगा तो जीएगा कि मरेगा? और अकौवा का पी लेगा तो मरेगा? अब इतना ही बुद्धि नहीं है। अरे! वह लड़का, वह भी तो कोई सी भी जात का हो महाराज! है तो आदमी ही। कई बेटी हमारे पास आकर कहती हैं, ऐसी तरस आती है उनकी बुद्धि पर। क्या बोले अब इनसे? है तो वह भी मनुष्य महाराज! बहुत simple है, बहुत gentleman है, मैंने उसको भीतर से देख लिया है। अब महाराज आप अनुमति दे दो तो घर वाले अनुमति दे देंगे। घर वालों ने मेरे को आपके पास भेज दिया। मुझे फंसा देते हैं लाकर। अब मैं क्या बोल दूँ? तुम्हारी बुद्धि खराब हो चुकी है, तुम्हें कुछ अच्छा और भला ही नहीं दिखाई दे रहा। कोई जाति, कुजाति, नीच, ऊँच, कुछ समझ में ही नहीं आ रहा। तुम्हारी बुद्धि में ऐसा गोबर भर दिया गया, सब कुछ एक है, सब कुछ एक समान है। अरे क्या खाक एक समान है? क्या समान है? जब खाना भी सबका अलग-अलग होता है, सब कुछ अलग-अलग होता है, धर्म अलग-अलग, अपने आचार-विचारों के साथ चलता है। क्या एक समान है? मांस खाना, सब्जी खाना सब एक समान है? सब एक समान है। सब दिमाग में भर रखा है सब एक समान है। ऐसे बच्चों के लिए कहना चाह रहा हूँ थोड़ी बुद्धि को संभाले।

यह जो उनके अन्दर बुद्धि भर दी गई है, यह बुद्धि इतनी गलत हो चुकी है कि इसी कारण से धर्म की हानि हो रही है। धर्म-अधर्म सब एक समान है। अगर एक समान सब हो जाएगा तो गय्या का दूध और अकौवा का दूध। अगर अकौवा का दूध कहीं भूल से जीभ में भी लग गया न तो मरोगे ही, उसके अलावा कुछ नहीं होगा, इतना जहरीला होता है। अब आपको सिर्फ दूध दिख रहा है, दूध है। मनुष्य है, भाई वह भी तो मनुष्य है, हमने उसके साथ सम्बन्ध बना लिए तो क्या बुरा कर लिया? बुद्धि कहाँ गई तुम लोगों की, यह समझ नहीं आ रहा? कितने तरीके के उदाहरण देकर यहाँ बताया गया है... **‘आक दूध- गाय दूध अंतर घनेर है।’** घनेर अर्थात् बहुत घनो अन्तर है। हर चीज तुम्हें पीली है तो हर चीज पीली एक जैसी होती है? भाई! पीतल भी पीली होती है और सोना भी पीला होता है। कंचन और कासे में कोई अन्तर होता है कि नहीं होता है? कितनी चीजें दे कर यहाँ समझाया जा रहा है।

**पीरी होत रीरी पै न रीस करै कंचन की,
कहाँ काग-बानी कहाँ कोयल की ढेर है।**

बोल तो सभी रहे हैं...अरे क्या बोल रहे हैं? एक कौवा बोल रहा है एक कोयल बोल रही है, दोनों में अन्तर होता है कि नहीं होता है? दोनों काले हैं तो दोनों काले होने से कौवा कोयल हो जाएगी? कोयल कौवा हो जाएगा क्या? अन्तर तो कहीं होता है कि नहीं होता है? दोनों के धर्म हैं, दोनों की अपनी वाणियाँ हैं। वाणी होते हुए भी दोनों वाणियों में कितना अन्तर है? एक अंधेरा है और उस अंधेरे के अन्दर भी अगर आपको यह समझ नहीं आ रहा है कि यह अंधेरा है कि यह उजेला है? यह भी आपकी बुद्धि का फेर कहलाएगा। **कहाँ भान भारी कहाँ आगिया बिचारै** आगिया जानते हो भानु तो मतलब सूर्य हो गया और आगिया ये जुगनू होते हैं एक उनका प्रकाश है और एक भानु का प्रकाश है दोनों के प्रकाश में कोई अन्तर होता है कि नहीं होता है? अरे भाई प्रकाश तो प्रकाश है। अगर आपके दिमाग में यह अन्तर नहीं आता है तो आप कभी भी **‘जैन वैन और वैन इतनी ही फेर है’** यह फेर आपके दिमाग में जब तक नहीं आएगा तब तक आप संसार में फिरते रहोगे, घूमते रहोगे। कहीं अन्त नहीं होने का आपके संसार का। बोलते तो हो ही नहीं। सुनना तो है महाराज समझ में आए या न आए?

आप्त मीमांसा ग्रंथ में भगवान की परीक्षा

यह अन्तर बताने के लिए यहाँ कहा जा रहा है...परीक्षा करो, अच्छे ढंग से परीक्षा करो, समझो चीजों को। हर तरह की परीक्षा करने के लिए आचार्यों ने challenge दे रखे हैं- न्याय शास्त्रों के माध्यम से और ऐसे-ऐसे आचार्य हो चुके हैं जिन्होंने भगवान तक की परीक्षा कर डाली। भगवान की परीक्षा करने वाले **आचार्य समंतभद्र** जैसे दिग्गज महाराज हुए, जिन्होंने **‘आप्त मीमांसा ग्रंथ’** केवल भगवान की परीक्षा पर ही लिख दिया पूरा। आप समझो कि जब तक आपके अन्दर परीक्षा करके ग्रहण करने की बुद्धि नहीं होगी तब तक आपको बुद्धिमान कहा नहीं जा सकेगा और आपकी बुद्धि को धिक्कारा जाएगा। परीक्षा करना जरूरी होता है। ऐसी परीक्षा जब आप करने में निष्णात होंगे तभी आपको कुछ समझ में आएगा और परीक्षा किए बिना अगर आप चलेंगे तो आपकी स्थिति भी वही होगी, जो राजा श्रेणिक के समय पर मणिमाली मुनि महाराज सुना रहे थे। क्या सुना रहे थे, कुछ ध्यान है? अरे महाराज सुनते- सुनते आपने कहाँ पहुँचा दिया। वहाँ पर भी क्या चल रहा है? कौन सा सेठ था? अब वह सेठ है, अब सेठ ने महाराज की

सेवा की और अपना धन उनके सिरहाने पर गाड़ दिया और जब धन नहीं मिला तो अब किसको शंका पैदा हो गई तो किस पर? अब उस सेठ को यह नहीं पता कि हमें शंका कहाँ करना चाहिए? क्या यहाँ शंका करना उचित है कि अनुचित है? यह इसलिए क्योंकि हमें परीक्षा नहीं है। अगर आपकी परीक्षा है तो भूलकर भी आपको कभी संदेह उत्पन्न नहीं होगा, उस चीज पर जिसकी आपने परीक्षा कर ली है। अब उसको संदेह हो गया और उस संदेह को दूर करने के लिए महाराज के सामने कहानी सुना दी उसने। कौन सी कहानी? शेर की, जिसकी आँखों में अंजन लगा दिया, उसने उसी को खा लिया। बताओ महाराज! उपकार की उपकारी के ऊपर कैसा यह उपकार हुआ? वह अपना यह कहना चाह रहा है मैंने आपकी सेवा करके आपके ऊपर उपकार किया था और ऐसा कुछ गलत हो गया मेरे साथ। अब यह चल रहा है। अब यह परीक्षा के बिना चल रहा है। यहाँ पर भी क्या है? परीक्षा की जरूरत पड़ती है। हर जगह पर परीक्षा है। उधर उस सेठ ने कहानी सुनाई तो इधर महाराज ने भी उसको कहा...बेटा! सेठ जी, बैठ जा यहीं पर, मैं भी तुझे कुछ बताता हूँ। महाराज ने भी उसको कहानी सुना दी। महाराज ने कहा...सुनना कहानी दो मिनट में भी कहानी सुना देता हूँ मैं।



वस्तु का अच्छा उपयोग करने की कला

महाराज ने कहा...देखो! क्या हुआ? कि एक बार एक राजा था और उस राजा का पुत्र था और एक रानी थी, यह तो सभी जानते हैं। राजा है, रानी है, एक पुत्र है। अब क्या हुआ? कि राजा के लिए किसी दिन किसी व्यक्ति ने आकर उन्हें कुछ उपहार दिए और उस उपहार में एक गुठली भेंट कर दी। गुठली समझते हो न किसकी? आम की कि इमली की? आम की गुठली भेंट कर दी। अब गुठली भेंट करने के बाद में वह गुठली राजा ने अपनी पत्नी को दे दी। जब वह गुठली सामने आई तो राजा ने पूछा कि भाई यह क्यों दे दी आपने मुझको? देने वाले ने कहा यह बहुत महत्वपूर्ण है और इससे आपके लिए बहुत सारे फल मिलेंगे, आप इनका उपयोग करे तो। उसने वह गुठली अपनी रानी के लिए दे दी कि इसका उपयोग तुम करना। रानी ने गुठली अपने बेटे को दे दी और बेटे ने गुठली फिर लाकर राजा को पकड़ा दी, अपने पिता को पकड़ा दी। राजा को समझ में आया कि यह कोई भी उपयोग इसका करना जानते नहीं तो उन्होंने अपने यहाँ के एक माली को कहा, इसका जो भी अच्छे से उपयोग हो सके इसका उपयोग करना। मुझे बहुत गिफ्ट में मिली मैं देखना चाहता हूँ इसका क्या उपयोग अच्छा हो सकता है? माली ने उस गुठली को बोया समय पर और धीरे-धीरे उसमें कुछ साल बाद उसमें एक अच्छा सा वृक्ष पनपने लगा और एक- दो साल, तीन साल बाद तो उसमें अच्छे से फल आने लगे और फल बहुत ही बढ़िया। अब आम की गुठली से जब वृक्ष बना तो किसके फल आएंगे? बोलो? आम के।

वस्तु को उपयोग में लाने से पहले परखना आवश्यक

अब आम के फल आए, अब आम के फल आने पर वह आम के फलों में किसी दिन एक आम पर कोई जहरीला सांप उसको काट गया और उस आम को जहरीला होने के कारण से वह समय से पहले पक गया। वह पक गया तो वह अपने आप गिर गया, गिर गया तो माली ने उठा लिया और माली ने लाकर, देखो!

पहली बार इसमें से आम निकला है अपने राजा को दे दिया और राजा को अपना बेटा बहुत प्रिय था सो उसने अपने बेटे को दे दिया, बेटे ने झट से खोला और खा लिया। परीक्षा करना तो किसी को आता ही नहीं है। कि इसका रंग लाल हो रहा है कि नीला हो रहा है कि पीला हो रहा है इतनी भी बुद्धि होती है कि नहीं? कि आम का रंग कैसा होता है? बताओ? अरे बच्चों से पूछने दो कैसा होता है आम? बोलो तो कोई नीला कह रहा है, कोई पीला कह रहा है, कोई हरा कह रहा है, कोई लाल कह रहा है। अरे! भाई आम पीला होगा तो सही होगा और ध्यान रखो जहर का रंग नीला होता है। अगर नीला हो गया तो समझ लेना चाहिए कोई भी खाद्य पदार्थ में अगर आपको कभी लगे कि इसमें नीलापन आ रहा है तो उसको taste कर लेना, कहीं जहर तो नहीं है। हाँ! क्या हो गया? taste करेगा तो मर जाएगा। अरे कम से कम देख कर तो समझ में आए कोई ऐसा भी तो हो जाए कि भाई देख रहे हैं तो कुछ समझ में तो आए, कहीं कुछ गड़बड़ तो नहीं है। इतनी बुद्धि भी तो होनी चाहिए न कि जहर का रंग कैसा होता है? अब बच्चे ने देखा, न कुछ समझा, खा लिया। खा लिया तो मूर्छित हो गया। अब मूर्छित हो गया तो राजा ने कहा...यह क्या हो गया? यह तो मुझे बड़ा उपहार दिया गया था और इसका फल यह क्या मिला मुझे? बेटा मूर्छित हो गया।

तरह-तरह के वैद्य आए, बुलाया गया सबने उपचार किया। वह ठीक ही न हो! बड़ी मुश्किल से वह किसी भी तरीके से वह वैद्य के माध्यम से उसका उपचार तो हुआ लेकिन उसकी मूर्छा धीरे-धीरे ठीक हो पाई और ठीक होने के बाद में जब उसे समझ में आया कि यह आम के कारण से इसका यह मूर्छा हुई है, यह अचेत पड़ गया है तो उस राजा ने आदेश दे दिया कि इस आम के वृक्ष को ही मेरे उद्यान से काट के बाहर कर दो। यह कौन से फल लगते हैं इसमें? उस समय पर वह जिसने उपहार दिया था, वह वैद्य आया और उसने कहा महाराज! आज्ञा देने से पहले आप थोड़ा सा और विचार कर ले। उस आम में दोष था आपने यह तो देखा नहीं और आपने पूरे आम को वृक्ष को काटने की आज्ञा दे दी। मैं दूसरा उसी वृक्ष से आम लेकर के आ रहा हूँ और यह आम आप देखिए। आप मेरे सामने खाइए, देखिए कौन सी मूर्छा आती है आप? और वह आम राजा ने खाया तो राजा को बहुत tasty लगा, उस आम को रानी ने खाया, रानी को बहुत tasty लगा और उस आम को उसी अचेत अवस्था में उसको सुंघाया गया उस बच्चे को और वह बच्चा उस आम के सुँघने से उठ कर बैठ गया। यह उस वैद्य की कलाकारी, उसने कुछ औषधि लगा कर उस आम में उसको सुंघा दिया, वह उठ कर बैठ गया। अब राजा से कहा...राजन देखो! आम अगर खराब था तो यह सारे आम खराब होने चाहिए थे। आम में जहर नहीं था जहर तो उसमें कहीं बाहर से लग गया था। आपको परीक्षा करके हर चीज की विचार करना चाहिए और तभी आदेश देना चाहिए। राजा को समझ में आया मैं बच गया, नहीं तो इतना अच्छा यह आम का पेड़ पूरा कट जाता और मुझे फिर बाद में पछतावा होता। इसलिए हर चीज की विचार करके, परीक्षा करके करना चाहिए और यह बात वैद्य ने राजा की समझाई।

काम बिगाड़े आपनो, जग में होत हँसाय ॥

गाथा: 100

**जिनधर्म ही कल्पवृक्ष है तथा स्वर्ग और मोक्षसुखरूप
फल को देने वाला है**

अनुष्टुप्वृत्तम्

**जिणधम्मोयं जीवाणं, अप्पुल्लो कप्पपायवो।
सग्गापवग्गसुक्खाणं, फलाणं दायगो इमो ॥100 ॥**

अन्वयार्थ- (अयं) यह (जिणधम्मो) जिनधर्म (जीवाणं) जीवों का (अप्पुल्लो कप्प-पायवो) अपूर्व, कल्प-पादप यानी अभूतपूर्व, कल्प-वृक्ष है तथा (इमो) यह (सग्ग-अपवग्ग-सुक्खाणं फलाणं) स्वर्गसुख और अपवर्ग यानी मोक्षसुखरूप, फल का (दायगो) दायक यानी देने वाला है ॥100 ॥

गाथा नम्बर 100, 101 पढ़ते हैं-

**जिणधम्मोयं जीवाणं, अप्पुल्लो कप्पपायवो।
सग्गापवग्गसुक्खाणं, फलाणं दायगो इमो ॥100 ॥**

**धम्मो बंधु सुमित्तो य, धम्मो य परमो गुरु।
मुक्ख-मग्ग-पयट्ठाणं, धम्मो परम-संदणो ॥101 ॥**

भोग भूमि की विशेषता

उपसंहार करते हुए कहा जा रहा है... **‘जिणधम्मोयं जीवाणं, अप्पुल्लो कप्पपायवो’** यह जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बताया हुआ धर्म, जीवों के लिए अपूर्व कल्प पादप है। कल्प पादप का अर्थ होता है- कल्पवृक्ष और यह अपूर्व कहा गया अर्थात् न तो इससे पहले कोई इस तरह का कल्पवृक्ष हुआ और न कभी इसके बाद कोई दूसरा होगा। संसार में भ्रमण करते हुए जीवों के लिए यह जिनधर्म एक कल्पवृक्ष की तरह कहा गया है। कल्पवृक्ष यद्यपि उस समय की देन होती है जब व्यक्ति प्रकृति में जीता है। प्रकृति में जीने का मतलब होता है कि व्यक्ति जिस तरह का वातावरण है उस तरह के वातावरण में, उससे बिना कुछ छेड़-छाड़ किए हुए वह अपना जीवन व्यतीत करता है। भोगभूमि के समय पर प्रकृति जिस तरह की रहती है, वह वैसी ही प्रकृति का सेवन करता है और उस प्रकृति को वैसा ही बनाए भी रखता है। भोगभूमि की एक खास बात होती है



कि भोगभूमि में जिस तरह का वातावरण होगा, जिस तरह की वहाँ पर मिट्टी होगी, घास होगी, वृक्ष होंगे, वह प्रकृति से स्वयं ही उत्पन्न होंगे; उन्हें मनुष्य आरोपित नहीं करेगा और मनुष्य के लिए जो मिलेगा, वह उस प्रकृति से प्रदत्त होगा लेकिन मनुष्य कुछ अपनी इच्छा से उसमें कुछ बदलाव नहीं ला सकता; इसका नाम भोगभूमि होता है। यूँ तो आपने भोगभूमि की परिभाषाएँ बहुत सारी अलग से पढ़ी होंगी पर आप यह समझे कि भोगभूमि में मनुष्य का जीवन अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी तरह की चीजों में परिवर्तित करके नहीं होता, जो उसे प्रकृति से प्राप्त है उसका वह उपभोग करता है। वहाँ की मिट्टी हो, घास हो, सब कुछ बहुत सुख देने वाली होती है। मनुष्य उसका केवल सेवन कर सकता है, उसको बदल नहीं सकता। कहा जाता है कि वहाँ की घास भी इतनी मीठी होती है कि वहाँ के पशु उस घास को खाकर बहुत सुखी होते हैं और हर जगह पर जमीन में वह चार अंगुल प्रमाण घास हमेशा बनी रहती है। वहाँ पर उस घास को काटने के लिए कोई भी मशीनें नहीं लगानी पड़ती, कोई भी दूसरे कर्मचारी नहीं लगाने पड़ते और वह घास न बढ़ती है, न कम होती है, हमेशा एक समान बनी रहती है; उसकी मिठास भी एक जैसी बनी रहती है। कल्पवृक्षों से जो सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं, वे सामग्री भी हमेशा एक जैसी quality की उन्हें प्राप्त होती रहती हैं। न कल्पवृक्षों में कभी पुरानापन आता है, न कभी वहाँ की जो प्राप्त सामग्री है उसमें पुरानापन आता है। यह कल्पवृक्षों के साथ में जीवन जीने का जो उपक्रम होता है, यह उपक्रम उन भोगभूमि के जीवों को मिलता है। अब ये जो कल्पवृक्ष हैं, ये कल्पवृक्ष उन्हीं जीवों को मिलेंगे जो कुछ विशेष पुण्य करके वहाँ पर पहुँचे हैं, जिन्हें भोगभूमि में उत्पन्न होने का कोई लाभ मिला है, उन्हीं को मिलेंगे, सबको नहीं मिलेंगे। कल्पवृक्ष का मतलब ही होता है कि जो न आरोपित किया जाए और न जिसको नष्ट किया जा सके, जो स्वयं अपनी ही शक्ति से फलता है; वह कल्पवृक्ष होता है।

जिनधर्म कल्पवृक्ष के समान स्वपोषित

इसलिए यहाँ पर जिनधर्म की उपमा कल्पवृक्ष से दी गई है। जिनधर्म भी कभी किसी के द्वारा आरोपित नहीं किया जाता, किसी भी धर्म की कोई स्थापना के रूप में जिनधर्म को कहीं स्थापित नहीं किया जाता और न ही कभी उस स्थापना को कभी मिटाने के लिए कोई पुरुषार्थ किया जाता है। जैसे कल्पवृक्ष समय पाकर स्वयं उत्पन्न होते हैं और जब समय आ जाता है, तो स्वयं ही चले जाते हैं, विलुप्त हो जाते हैं; इसी तरह से जिनधर्म को यहाँ कल्पवृक्ष की उपमा देकर कहा है कि जिनधर्म भी इस भरत क्षेत्र में समय पर आता है और समय पर यह अपने आप विलोप को भी प्राप्त हो जाएगा; समय पर होगा।

काल का परिणमन

इसको 'काल सहाय बलेण' ऐसा कहा गया है तिलोयपणत्ति ग्रन्थ में कि ये सब जो परिवर्तन होते हैं, ये काल स्वभाव के बल से होते हैं अर्थात् काल अपने आप में एक उदासीन द्रव्य होते हुए भी उसका परिणमन इस ढंग से चलता है कि वह परिणमन भौगोलिक स्थिति में भी परिवर्तन लाता है, प्राकृतिक स्थिति में भी परिवर्तन लाता है और वह परिवर्तन आने पर सब कुछ मानव का वह जो भी जीवन का क्रम है या जीने की जो भी पद्धति है, उसमें भी बदलाव आ जाता है। अब आप समझ सकते हैं कि यह कितना बड़ा एक काल का परिणमन है, इसमें किसी और सत्ता का, ईश्वर का हाथ नहीं है।

भोगभूमि का अभाव और कर्मभूमि का सद्भाव

काल का परिणामन होता है, तो अपने आप यह परिवर्तन देखने को मिल जाता है- भोगभूमि का अभाव और कर्मभूमि का सद्भाव और भूमि का ध्रुव बना रहना। क्षेत्र यही रहेगा; भरत क्षेत्र है तो भरत क्षेत्र ही रहेगा लेकिन इस भरत क्षेत्र पर जनजीवन पहले भोगभूमि का था और वही जनजीवन परिवर्तित होते-होते, होते-होते, धीरे-धीरे परिवर्तित हो-हो करके वह कर्मभूमि के रूप में आ गया। किया किसने? मनुष्य नहीं कर सकता, न कोई देवता का काम है, न किसी भगवान का काम है; यह काम सिर्फ काल के स्वभाव से होता है। **‘काल सहाय बलेण’** अर्थात् काल अपने आप में एक बड़ी चीज होती है।

समय की महत्ता का वर्णन

यूँ तो हम काल को कभी कोई महत्व नहीं देते लेकिन जैन दर्शन में काल को भी बहुत महत्व दिया गया है। लोग काल को महत्व नहीं देते लेकिन काल की पूजा जरूर करते हैं। काली देवी की पूजा करेंगे, महाकाल के पास जाएँगे, वहाँ पूजा करेंगे लेकिन काल को महत्व नहीं देते हैं कि काल, समय यह अपने आप में बहुत बड़ा बलवान द्रव्य है। समय पर सब काम होता है, समय पर ही सब चीजें फलती हैं, समय पर ही विद्या फलती है, समय पर ही बुद्धि काम आती है और समय पर ही हमें इष्ट-अनिष्ट फलों की प्राप्ति होती है। हर कार्य समय पर होता है और इस समय को अगर हम ध्यान रखें तो हर चीज हमारे दिमाग में रह सकती है कि देखो! समय पर चीजें अपने आप घटित होती चली जाती हैं। **समय बड़ा बलवान** इसीलिए कहा गया है।

समय आने पर कर्म अपना फल अवश्य देता है

समय बड़ा बलवान है; हम बलवान नहीं हैं, समय बलवान है। अगर हम कहें कि कर्म बलवान है, तो कर्म से भी ज्यादा बलवान समय है क्योंकि कर्म तो हमारे पास हमेशा रहते हैं, कर्म के उदय तो हमारे साथ हमेशा चलते हैं लेकिन वह कर्म भी समय को देखता है, फल देने के लिए। समय पर वह कर्म फलता है और समय पर ही वह इष्ट या अनिष्ट आपके साथ करता है तो कर्म से भी बड़ा बलवान समय हो जाता है क्योंकि कर्म का अस्तित्व हमारी आत्मा में रहता है। कर्म हमारी आत्मा में बंधा रहता है लेकिन वह निकल कर कब आएगा, उदय में कब आएगा, फल कब देगा? फल देने के लिए जो time आएगा, वह बिल्कुल appropriate time पर आकर अपना काम करेगा। आपको भी पता नहीं होगा कि आगे क्या होने वाला है? हमारे साथ क्या घटित होने वाला है? लेकिन वह कर्म जिस काल के कारण से, जिस समय को पाकर अपना फल देगा; उस कर्म के फल से वह काम कहलाएगा। लेकिन उससे भी बड़ी चीज है उसका वह समय जो देख रहा है, अपनी आत्मा में बंधा बैठा है और वह जैसे ही उचित समय आता है; वह उचित समय पर इष्ट या अनिष्ट आपका करा देता है। अच्छा भी आपके सामने फल दे सकता है, बुरा भी फल दे सकता है, आपके काम बना भी सकता है, आपके काम बिगाड़ भी सकता है। इष्ट-अनिष्ट जो कुछ भी आपके साथ घटित होगा वह बिल्कुल समय पर होगा। अगर किसी के लिए वह कर्म बंधे हुए हैं तो वह कर्म अपने आप फल न देकर केवल वह काल पाकर फल देते हैं।

काल को भी मनुष्य ने देवता मान लिया

इसलिए काल को लोगों ने देवता मान लिया, काल की लोग पूजा करने लग गए क्योंकि जिस पर मनुष्य का जोर नहीं चलता, मनुष्य उसी की पूजा करने लग जाता है। जो चीज मनुष्य के कब्जे में नहीं होती, मनुष्य उसको अपना भगवान मान लेता है; उसके सामने अपने आप को समर्पित कर देता है और उसकी पूजा हाथ जोड़कर करने लग जाता है, यह मनुष्य का स्वभाव है। उसे सोचना नहीं पड़ता कि हम जिनकी पूजा कर रहे हैं, इनका किस रूप में अस्तित्व है? यह भगवान हैं या नहीं हैं लेकिन अगर उसे दिखाई देता है कि नहीं! हमसे भी बलवान कोई चीज है, तो उसकी वह पूजा करने लग जाता है; बस! यह मनुष्य की आदत में है। उसे लगना चाहिए कि हमसे बलवान भी कुछ है। जब उसे समझ में आ जाता है कि हमसे भी बलवान कोई और है तो उसकी पूजा करना उसके लिए अपने आप उसके मन में आ जाता है कि नहीं! इसकी पूजा तो हमें करनी ही चाहिए। जब भी व्यक्ति अपने से बलवान को प्राप्त करके उसे परास्त नहीं कर पाता या उसे यह महसूस होता है कि मुझसे यह बहुत बलवान है और मैं इससे जीत नहीं सकता तो वह उसके सामने हाथ जोड़ लेता है। अपने आप उसकी वह अपना शक्तिशाली भगवान बना लेता है, मान लेता है।

मनुष्य की कल्पनाओं में ही हैं सभी देवता

जब भी कभी आदमी के समक्ष कोई ऐसा दृश्य आता है कि वह सोच में पड़ जाए कि यह क्या हो रहा है? वह सोचने लग जाता है कि कहीं न कहीं हमसे भी बलवान कोई है और उस बलवान के माध्यम से यह सब काम हो रहा है। यह आदमी की हमेशा से आदत रही है, इसलिए उसने कभी काल को देखा नहीं। सबसे मजे की बात कि काल कभी दिखाई देता नहीं, समय कभी दिखाई देता नहीं और हर काम समय पर ही होता है। काल अदृश्य रहता है, जैसे ईश्वर अदृश्य रहता है ऐसे ही काल भी अदृश्य रहता है। इसलिए व्यक्ति को जब कुछ दिखता नहीं है और उसका प्रभाव देखने को मिलता है, तो व्यक्ति उसको अपना भगवान मान लेता है और यही वजह है कि इस लोक में, इस जगत में काल को भगवान मानने वाले बहुत सारे लोग हैं। देखा नहीं उन्होंने कभी कि काल नाम का कोई भगवान होता है, महाकाल नाम का कोई भगवान है; कोई भगवान नहीं है लेकिन बस उसका अस्तित्व इसी रूप में है।

बचपन में पढ़ी कहानियों का प्रभाव

यमराज! आज तक किसी को यमराज दिखाई नहीं दिया लेकिन फिर भी लोग डरते हैं यमराज का नाम लेने से। जैसे यमराज नाम का कोई एक देव है वह आता है, कहानियाँ बन जाती हैं। सती सावित्री जैसी कोई कहानी शायद बचपन में कभी हमने भी पढ़ी है। किसी की मृत्यु के लिए कोई यमराज सामने आ गया और वह उसके सामने भीख मांगने लग जाती है कि नहीं! अभी मेरे पति को कुछ समय के लिए छोड़ दो, ऐसी कुछ कहानी। लोग उसी तरीके की कहानी भी बना लेते हैं और इस तरह के कल्पना लोक में विचरण करने वाले लोग इस तरह की कहानियाँ निर्मित कर देते हैं और उन कहानियों पर बड़ी-बड़ी फिल्में बन जाती हैं। वे फिल्में लोगों के दिमाग में पहुँच जाती हैं और जो देवता नहीं भी होता है, वह देवता बनकर सामने आ जाता है। दुनिया के अन्दर सिर्फ कल्पनायें हैं, उन कल्पनाओं को आकार दिए गए और उन आकारों को इतना प्रवाहित किया गया, इतना उनका advertise तरह-तरह से किया गया कि वे नहीं थे भगवान तो

भी भगवान बन गए।

लक्ष्मी, सरस्वती आदि की मूर्ति केवल काल्पनिक चित्रण

आज अगर आपके सामने कोई लक्ष्मी की, सरस्वती की कोई मूर्ति आती है तो आपके सामने एक photo आती है। आप विचार करो कि वह photo आपके लिए इतनी दिमाग में बैठ गई है कि यह photo लक्ष्मी की ही photo है। अगर उसका इतिहास देखोगे तो आपको पता पड़ेगा कि आज से 50 साल पहले किसी artist ने किसी लड़की को देखकर उसकी जैसी नकल करके एक photo बनाई थी और उसको लक्ष्मी का एक रूप देकर उसकी photo तैयार की थी और वह market में इतनी ज्यादा circulate हुई कि बस वह photo अब आज लक्ष्मी का रूप बन गई। अब आपको यह पता नहीं है कि यह लक्ष्मी का वास्तविक रूप है कि लक्ष्मी का किसी ने बनाया हुआ रूप है, यह आपको पता नहीं है लेकिन जब भी अब आप लक्ष्मी को देखोगे तो आपके दिमाग में वही लक्ष्मी घूमेगी। अब एक कलाकार ने कभी एक निर्दोष बच्ची का चेहरा देखकर उसकी photo बनाई और उस जैसी photo बनाकर उसने उसको लक्ष्मी के हाथ आदि बनाकर उसको आकार देकर बाजार में निकाल दिया और वह photo पर बिल्कुल trade mark लग गया कि हाँ, यह photo लक्ष्मी की है तो अब आज वही photo चलती है लक्ष्मी की। आपने कभी लक्ष्मी को देखा नहीं लेकिन अगर आपके दिमाग में लक्ष्मी आएगी तो वही photo सामने आएगी, लक्ष्मी वही है। अगर आपने रामायण देख ली है तो आपके सामने राम वही आएँगे... वह अरुण गोविल, वही राम हैं, राम का चेहरा वही है, वही आपके दिमाग में भर गया है। वही चेहरा है, वही राम के अलावा आपके दिमाग में और कुछ राम का चेहरा नहीं आएगा, वह दिमाग में भर गया है। अर्थात् photo का, serial का, फिल्मों का इतना हमारे दिमाग पर प्रभाव पड़ता है कि वे चीजें जो कुछ भी अस्तित्व नहीं रखती हैं। वे हमारे सामने बिल्कुल वास्तविक रूप में आ जाती हैं। अब आप सोचो! अगर कहीं पर राम की photo है तो वह किस रूप में है? लक्ष्मी की photo है तो किस रूप में है? कोई भी photo किसी वास्तविक रूप में होती नहीं है लेकिन हमें उसी छवि में वह लक्ष्मी, राम भगवान सभी दिखाई देते हैं।

जैन दर्शन में प्रतिबिम्ब महत्वपूर्ण

इसलिए जैन दर्शन में कभी भी भगवान की photo का महत्व नहीं दिखाया गया। photo का महत्व नहीं है, मूर्ति का महत्व हो सकता है, प्रतिबिम्ब का महत्व हो सकता है, उनके जैसा बिम्ब हो सकता है, इसलिए उसको प्रतिबिम्ब कहा गया। यूँ नहीं कहा गया कि यही भगवान महावीर का मुख है। भगवान महावीर की भी किसी ने photo ली नहीं और उस समय photo थी भी नहीं और कोई ले भी नहीं सकता था क्योंकि कोई भी camera की light उन भगवान की light को catch नहीं कर सकती थी। इतनी light भगवान में होती है तो कोई भी camera कभी भी उनके सामने काम कर ही नहीं सकता। भगवान की actual photo तो कभी आ ही नहीं सकती लेकिन उसका हमने एक प्रतिबिम्ब बनाया तो हमने कम से कम इतना तो बताया कि यह प्रतिबिम्ब है। हम यूँ नहीं कह रहे कि यह भगवान का बिम्ब है। हम क्या बोलते हैं? प्रतिबिम्ब है। प्रतिमा, 'प्रति' जो शब्द लगता है वह कोई होता है तब उसके लिए आता है- प्रतिबिम्ब। जैसे आप दर्पण में अपना मुख देखते हैं तो आपका बिम्ब आपके पास रहता है लेकिन दर्पण में जो reflect

होता है, वह कहलाता है- प्रतिबिम्ब। जैन दर्शन में हमेशा प्रतिबिम्ब की बात की गई, प्रतिमा की बात की गई। उसका जैसा कुछ रूप हो सकता है, वह बताया गया लेकिन जब हम दुनिया की और दूसरी चीजों को देखते हैं तो हमें लगता है कि actually यही राम हैं, यही लक्ष्मी की सूरत है, यही सरस्वती की सूरत है।

कल्पना की उड़ान वास्तविकता से परे

हमें उनकी वास्तविक सूरत के बारे में न कोई बताता है, न हम कभी जानना चाहते हैं और यह चलता रहता है। काल, महाकाल, यमराज ये तमाम तरह की चीजें हमारे सामने चलती रहती हैं। आज तक किसी ने यमराज को देखा नहीं लेकिन यमराज होता है क्योंकि उसकी कहानी हमने पढ़ी है। अब एक सती सावित्री की कहानी में जो यमराज famous हुआ तो वह यमराज दुनिया के सबके दिमाग में भर गया क्योंकि वह कहानी बच्चों को पढ़ाई जाती है। बच्चों के लिए जब से वह छठवीं-सातवीं कक्षा में आते हैं, बच्चे तब से वह कहानी सुन लेते हैं तो उनके दिमाग में जो भर गया एक बार तो भरा रहता है। हमारे भी दिमाग में भरा है तो निकल तो रहा है, कम से कम। वह भरा है तभी तो निकल रहा है, कभी-कभी ऐसे निकल आता है।

यमलोक की काल्पनिक कार्य प्रणाली

अब वह यमराज है, वह भैंसा के ऊपर बैठता है, सींग भी लगे हैं उसके, भैंसा के ऊपर बैठता है, वह यमराज आता है। पहले जब हम भी छोटे थे तो यह सोचते थे कि किसी की मृत्यु हो गई अर्थात् यमराज उसको ले गया, उसकी आत्मा को ले गया, अब वह भगवान के पास ले गया। अब वह भगवान के पास ले जाने के बाद में भी, कुछ कहानियों में ऐसा भी पढ़ा था कि भगवान entry नहीं देते तुरन्त ही...बेटा! अभी वहीं पर रुक; waiting में line लगी रहती है। वह निर्णय कभी-कभी भगवान करते हैं कि किसको पहले बुलाना है? वहाँ पर भी, जैसे जजों के पास में files pending में रहती हैं, ऐसे भगवान के पास सबकी files pending में रहती हैं। सबके दिमाग में भर रखा होता है कि बेटा! यमराज ले गया। वहाँ पर भी ले जाने के बाद में कई बार ऐसा हो जाता है कि भगवान कह देते हैं- अरे! तू पहले इसे क्यों ले आया? इसको समय से पहले क्यों ले आया? चल वापस ले जा तो यमराज फिर उसको वापस ले जाता है, भगवान की बात उसको भी माननी पड़ती है। न जाने कितनी तरीके की कल्पनायें, कितनी तरीके की कहानियाँ हम बच्चों के दिमाग में भर दी जाती हैं और वह दिमाग में तब तक भरी रहेंगी, जब तक कि उनको discharge करने वाली कोई दूसरी charging battery आपके सामने नहीं होगी। जब तक उसको discharge करने वाला कोई सम्यग्ज्ञान नहीं होगा तब तक वह मिथ्या ज्ञान दिमाग में भरा ही रहता है। किसी की मृत्यु होती है तो बस यही देखने को मिलता है कि यमराज आया था, ले गया। अब या तो सावित्री की तरह पूजा करो यमराज की, उसके हाथ-पैर जोड़ो, उससे प्रार्थना करो तो शायद बचा दे; इसलिए लोग तरह-तरह की प्रार्थना भी करते हैं। लेकिन वह यमराज इतना निर्दयी होता है कि वह किसी की कोई बात सुनता नहीं है और समय पर वह अपना काम करके चला जाता है; यह भी पढ़ाया जाता है। इसलिए सब देखते रह जाते हैं और उस यमराज के हाथ जोड़ते रह जाते हैं लेकिन यमराज कभी किसी की पकड़ में आता नहीं और किसी की प्रार्थना पर ध्यान देता नहीं।

जैन दर्शन के अनुसार भगवान की मान्यता

ये सब चीजें कल्पना लोक के माध्यम से हमारे दिमाग में ऐसी कहानियों के माध्यम से बैठा दी जाती हैं जिनका अस्तित्व नहीं भी होता है, तो हम जब भी कोई ऐसी घटना होती है तो हम उसे देख कर उसके अस्तित्व को जानने लग जाते हैं, डर जाते हैं। यहाँ उस काल की बात कही जा रही है कि जो काल आपके जीवन में समय पर परिवर्तन लाता है। अब यह काल भी दिखाई नहीं देता लेकिन कभी भी तीर्थंकरों ने यह नहीं कहा कि यह काल भगवान है। काल बलवान है यह ठीक है लेकिन काल भगवान नहीं है। जैन दर्शन में कभी भी भगवान की मान्यता पर हर किसी को भगवान नहीं बना दिया जाता, यह जैन दर्शन की सबसे अच्छी बात लगती है मुझे। दुनिया में कोई भी धर्म पढ़ोगे, कोई भी चीजें पढ़ोगे तो तुरन्त जैसे ही कोई भी शक्तिमान सामने आया, वह भगवान हो जाता है। कोई भी extraordinary व्यक्ति सामने आया, वह भगवान हो जाता है। कोई भी power उसकी supreme दिखाई दी तो बस वह supreme power वाला व्यक्ति भगवान हो जाता है। लेकिन जैन दर्शन इतना refined करता है हर चीज को, हर किसी को भगवान होने का अधिकार नहीं देता और जैन दर्शन के साँचे में हर कोई भगवान बैठता भी नहीं है। न काल भगवान है, न महाकाल भगवान है, न यमराज भगवान है। भगवान तो जो वास्तव में है, वही है और उसका जो अस्तित्व है वह वही रूप में है; आज भी, कल भी और आगे भी।

कल्पवृक्ष तो एक ही होता है पर उसके फल देने के गुण अलग-अलग हो सकते हैं

इसलिए जैन धर्म कल्पवृक्ष के समान कहा गया है। कल्पवृक्ष अनेक नहीं होते हैं, कल्पवृक्ष एक ही होता है। उसके फल देने के गुण अलग-अलग हो सकते हैं लेकिन कल्पवृक्ष मतलब कल्पवृक्ष। दुनिया में और जितने भी वृक्ष हैं, वे अनेक तरह के होंगे- नीम का वृक्ष है, आम का वृक्ष है, शीशम का वृक्ष है, बबूल का वृक्ष है, अनेक तरह के वृक्ष मिलेंगे आपको लेकिन कल्पवृक्ष एक ही होता है। अनेक देवता आपको दुनिया के अन्दर मिलेंगे लेकिन जिनदेव एक ही होता है, एक जैसा होता है, एक ही रूप होता है, एक ही उसकी पहचान के तरीके होते हैं और उसी को केवल भगवान के रूप में स्वीकार किया जाता है। लोगों के दिमाग में ये अनेक-अनेक तरह की जो देवताओं की फिल्में बैठी हुई हैं, ये इसी कारण से बैठी हुई हैं कि जो भी उन्हें बलवान दिखाई दिया, उन्होंने उसको देवता बना दिया। अगर हमारा काल पर बल नहीं चला तो हमने काल को भी भगवान कह दिया, हमारा सूरज पर बल नहीं चला तो हमने सूरज को भी भगवान कह दिया, हमारा चन्द्रमा पर बल नहीं चला तो हमने चन्द्रमा को भी भगवान कह दिया। किसी ने सूरज को भगवान मान लिया, किसी ने चन्द्रमा को भगवान मान लिया। भगवान का कोई एक रूप नहीं किसी ने बताया कि भगवान कैसे होते हैं? जब भी कभी हमारे सामने प्रकृति में घटित होने वाली कोई भी घटनायें extraordinary हो जाएँ बस! यह लोक, यह जगत उसको भगवान मानने लग जाता है और बस यही भगवान की बात फिर ऐसी प्रवाहित होती है कि लोक में चलती रहती है, चलती रहती है, छूटती नहीं है।

कल्पवृक्ष का स्वरूप

इसलिए यहाँ कहा जा रहा है- वृक्ष दुनिया में बहुत से होते हैं लेकिन कल्पवृक्ष के भेद नहीं होते हैं। कल्पवृक्ष एक ही प्रकार का होता है और अनेक तरह के वृक्ष अनेक प्रकार के हो सकते हैं। कोई कांटेदार है, कोई

फलदार है, तरह-तरह के वृक्ष अनेक हो सकते हैं और उनके अनेक-अनेक गुण हो सकते हैं लेकिन कल्पवृक्ष एक जैसा ही होता है, स्वरूप उसका एक ही होता है। चीजें देना अलग-अलग तरह से दस प्रकार की अलग-अलग हो सकती हैं लेकिन स्वरूप कल्पवृक्ष का एक ही है।

अवसर्पिणी काल में कल्पवृक्षों का सद्भाव

वह कल्पवृक्ष काल पर आएगा और काल पर जाएगा। जब इस भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल प्रारम्भ हुआ तो वृक्ष अपने आप आ गए। पहला काल आया **‘सुषमा-सुषमा काल’** कल्पवृक्ष आ गए। दूसरा काल आया **‘सुषमा काल’** उसमें भी कल्पवृक्ष रहे, तीसरा काल आया **‘सुखमा-दुखमा’** काल उसमें भी कल्पवृक्ष रहे और तीसरा काल पूर्ण होते-होते, होते-होते वह कल्पवृक्षों का भी अभाव हो गया क्योंकि यह अवसर्पिणी होते हुए भी हुण्डा अवसर्पिणी काल था, इसलिए तृतीय काल के अन्त में उन कल्पवृक्षों का अभाव हो गया अन्यथा सामान्य रूप से अवसर्पिणी काल होता तो तृतीय काल के अन्त तक पूरे कल्पवृक्षों का सद्भाव रहता। चतुर्थ काल जैसे ही प्रारम्भ हुआ कल्पवृक्ष गायब अर्थात् तीसरे काल के अन्त तक कल्पवृक्ष चल रहे हैं और चतुर्थ काल, जहाँ से उसका समय पूरा हुआ और कल्पवृक्ष गायब और उसका समय बना हुआ है- तीन कोड़ा कोड़ी सागर, दो कोड़ा कोड़ी सागर, चार कोड़ा कोड़ी सागर; ऐसे उनके काल बने हुए हैं। पहला काल चार कोड़ा कोड़ी सागर का, दूसरा तीन कोड़ा कोड़ी सागर का और तीसरा दो कोड़ा कोड़ी सागर का। दो कोड़ा कोड़ी जो सागर काल है यह जहाँ पर पूर्ण हुआ, बस! वहीं पर भोगभूमि का अवसान हुआ, समाप्त हुई और अगले ही क्षण से कर्मभूमि जहाँ लगी, वहीं पर अब कल्पवृक्ष दिखाई नहीं देंगे।

भोगभूमि का अन्त और कर्मभूमि के प्रारम्भ का वर्णन

अब इस काल को mark करने वाला आपके पास में कोई पैमाना नहीं है, कोई point नहीं है कि अब इस point पर यह हम दिखा सके कि यहाँ पर जो है भोगभूमि का अन्त हुआ और यहाँ पर कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ। बस इसके साक्षी तो जो लोग उस समय पर होंगे बस वही होंगे, इसके अलावा अपने आप इस परिवर्तन को देखने का और किसी के लिए लाभ नहीं मिल सकता है। अब यह कितना बड़ा परिवर्तन है? काल के माध्यम से होने वाला परिवर्तन है कि जो तृतीय काल का अन्तिम क्षण है तब तक कल्पवृक्ष दिख रहे हैं और जैसे ही तृतीय काल समाप्त हुआ, वह दो कोड़ा कोड़ी सागर का काल पूर्ण हुआ और जैसे ही वह काल पूर्ण हुआ, अगले क्षण में कल्पवृक्ष गायब। अगले ही क्षण से अब आपके सामने नई व्यवस्था आ जाएगी। कल्पवृक्ष गायब, हाय तूबा मचेगी, भाई! अभी तक सब कुछ दिख रहा था, अभी तक हमें कुछ करना नहीं पड़ रहा था, अब यह तमाम तरह के परिवर्तन प्रकृति में कहाँ से आ गए? अब उस समय पर सूर्य-चन्द्रमा दिखने लग गए, पहले नहीं दिख रहे थे। कल्पवृक्षों का इतना प्रकाश रहता है कि वह सूर्य-चन्द्रमा के प्रकाश को भी अपने में समाहित कर लेता है, वह सूर्य-चन्द्रमा का प्रकाश भी उसके आगे फीका पड़ता है। जब कल्पवृक्ष चले गए, अब सूर्य-चन्द्रमा दिखने लग गए। अब लोग डरने लग गए, यह लाल-लाल गोला क्या दिखाई दे रहा है? यह सफेद-सफेद आकाश में क्या दिखाई दे रहा है? तब उसको समझाते हैं, धीरे-धीरे करके, वह कहलाते हैं- **मनु, कुलकर** कहलाते हैं। वह उनको समझाते हैं धीरे-धीरे

करके, तब जाकर लोगों के दिमाग धीरे-धीरे करके adjust होते हैं कि हाँ, अब यह भोगभूमि का समय नहीं है, अब यह कर्मभूमि का समय आ गया है; अब हमें कर्म करने पड़ेंगे।

काल के स्वतः संचालित परिणमन से ही परिवर्तन

अब इस बदलाव को किसने कर दिया? बात यह थी, इसको समझने की चीज है; यह सिर्फ किसके माध्यम से? काल के माध्यम से। आप किसकी पूजा कर पाएँगे? काल की पूजा आप कैसे कर पाएँगे? ग्रीष्म ऋतु चल रही थी, वर्षा ऋतु आ गई, वर्षा ऋतु चल रही थी वह निकल गई शरद ऋतु आ गई, एकदम से आपके सामने अभी तक गर्मी लग रही थी, पसीना-पसीना हो रहे थे अब ठण्डी होने लग गई। अभी तक छतों पर सोना पड़ता था अब कमरों के अन्दर; यह जो काल में परिवर्तन आया इसके पीछे कौन हाथ चला रहा है? कौन इस चक्र को चला रहा है? जब आदमी को समझ नहीं आता है, तो या तो वह काल को ही भगवान मान लेता है या उस काल के पीछे भी कोई ईश्वर की सत्ता काम कर रही है, उसको भगवान मान लेता है लेकिन जैन धर्म कभी भी इस तरह के अन्धविश्वासों में पड़ने नहीं देता। यह सिर्फ काल का स्वतः संचालित परिणमन है, इसके पीछे ईश्वर की कोई सत्ता नहीं, इसके पीछे काल नाम का कोई भगवान नहीं, यह स्वयं संचालित होने वाला प्रकृति का परिणमन है। यह परिणमन आपको **‘स्वतः संचालित है’** इस रूप में स्वीकार करना पड़ेगा। इन ऋतुओं के परिवर्तन में कोई भी पीछे हाथ नहीं चला रहा है, कोई ईश्वर अपना हाथ नहीं घुमा रहा है, कोई चक्र नहीं चला रहा है लेकिन चक्र इसलिए कहलाता है क्योंकि यह चक्र की तरह चलता है। एक चक्र जिस तरह से अपनी पूरी घुरी पूरी कर लेता है और फिर शुरू हो जाता है, इसी तरह से काल अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी; फिर अवसर्पिणी फिर उत्सर्पिणी इस तरह से घूमता रहता है, इसलिए इसको चक्र कहा गया। **काल बड़ा बलवान** यह तो ठीक है लेकिन **काल महाभगवान नहीं**। अब यह जो आपके हाथ में परिणमन नहीं है, यह आपको समझना चाहिए। हमें इस तरह की चीजों को भी श्रद्धा से, आस्था से स्वीकार करना चाहिए कि देखो! ये परिणमन किसी के द्वारा नहीं हो रहे हैं, ये स्वतः हो रहे हैं। जब आप इस तरह के परिणमन की स्वीकारता करने लगेंगे तो आपके दिमाग में अपने आप एक चीज श्रद्धा में आने लग जाएगी कि जिस तरह से इस परिणमन का, इस change का कोई भी पीछे कर्ता नहीं है ऐसे ही इस सृष्टि में यह काल चक्र चल रहा है, मनुष्य का जन्म-मरण का चक्र चल रहा है, इसका इसके पीछे कोई कर्ता नहीं है; यह आपकी स्वीकार्यता में तब आएगा। पहले आपको यह स्वीकार करना पड़ेगा जो प्रत्यक्ष में दिखाई दे रहा है।

सृष्टि का आरम्भ भी मात्र कल्पना

चलो कोई बात नहीं चतुर्थ काल हमने नहीं देखा, तीसरा काल भोगभूमि का था, नहीं था, हमने नहीं देखा; कोई पता नहीं लेकिन यह जो आपके सामने आ रहा है इससे आप यह समझ सकते हो, यह व्यवस्था अनादि कालीन व्यवस्था है। कोई सृष्टि का प्रारम्भ जैसी कोई चीज है नहीं। ये जितनी भी कल्पनायें हैं, सिर्फ हमें पढ़ाई जाती हैं और पढ़ने के कारण से हमारे दिमाग में बैठ जाती हैं। यहाँ से सृष्टि प्रारम्भ हुई, यहाँ से मनुष्य प्रारम्भ हुआ, जबकि कभी कोई कल्पना, न उस समय पर कोई मनुष्य था जिसने देखा कि कहाँ से सृष्टि प्रारम्भ हुई? और न उस समय पर कोई मनुष्य copy pen लेकर बैठा था कि भाई! यहाँ से सृष्टि

प्रारम्भ हुई। तब यहाँ पर यह घटित हो रहा था, तब यहाँ से सृष्टि का जब यह प्रारम्भ हुआ तब मानव इस तरह का था और मानव ने इस तरह से विकास करके यहाँ तक आज पहुँचा; ये सिर्फ मनुष्य के मन की कल्पनायें हैं। किसी मनुष्य ने नहीं देखा कि सृष्टि कहाँ से शुरू हुई? किसी मनुष्य ने नहीं देखा कि कैसे मनुष्य का आगे विकास हुआ? मनुष्य कहाँ पाषाण युग में था, आदिमानव था? कि वह कैसे धीरे-धीरे इस कृषक युग में आया? ये मनुष्य के लिए सिर्फ कल्पनायें हैं। आप भी इसे कल्पना तो मान ही रहे हो, यह बात पक्की है। उधर आपको स्कूली किताबों में जो पढ़ाया जा रहा है वह भी कल्पना है और अगर हम यूँ कह ले कि जो हम धर्म की किताब में पढ़ा रहे हैं आपको, चलो हम एक समय के लिए यह भी कह देते हैं कि यह भी एक कल्पना है, तो आपके दिमाग में ये दोनों कल्पनाएँ तो कम से कम होनी ही चाहिए कि यह भी एक कल्पना है। आज के बच्चे तो स्कूली किताब की कल्पना को तो पूरा सच मानते हैं, 100 % truth है यह और जब धर्म की किताब की कोई भी past time की बात कही जाती है तो वह उन्हें बिल्कुल ही imaginary लगती है, बिल्कुल ही वह उन्हें गलत लगती है; जबकि है सब कल्पना। समस्या इस बात की है कि हम किताबों की कल्पना को तो science मान कर जो हमें पढ़ाया जा रहा है, सब स्वीकार कर रहे हैं इसलिए हम स्वीकार कर रहे हैं लेकिन धर्म की किताबों में अगर कोई इस तरीके की चीजें हैं और वह कल्पना इस रूप में है कि जो हमने देखी नहीं है, इसलिए हम उसको कल्पना कह रहे हैं तो वह कल्पना को समझा भी जा सकता है कि आखिर चीजें इस तरह से भी होती आई हैं, होती रहेंगी। लेकिन हमको अगर उस चीज को देखते ही उसको reject करने का भाव आता है और हमें उस पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देने का भाव आता है, तो इसका मतलब यह हो जाता है कि हमारे दिमाग में जो भर गया है, हम उसको delete करना नहीं चाहते हैं। हम उसको अपने दिमाग से हटाना नहीं चाहते हैं और हमारा विश्वास उसी पर बैठ गया है। बस इसी कारण से आपको यह जिनधर्म मिलने के बावजूद भी कभी नहीं लगता कि यह कल्पवृक्ष के समान दुर्लभ चीज है।

जिनधर्म कल्पवृक्ष से भी दुर्लभ

कल्पवृक्ष की उपमा क्यों दी? क्योंकि यह दुर्लभ है। अब आप कहोगे कल्पवृक्ष कहाँ दिखाई देता है? आज कल्पवृक्ष ही दिखाई नहीं देते हैं। कल्पवृक्ष दिखाई नहीं देते तो क्या कल्पवृक्ष नहीं होते हैं? नाम है तो कभी न कभी उसका अस्तित्व रहा होगा। यह कल्पवृक्षों का समय रहा, आज नहीं दिखाई देते। क्यों नहीं दिखाई देते? आज उनका समय बदल गया और समय बदल गया तो वे चीजें बदल गईं लेकिन उनके नाम हैं,, उनके काम हैं और वे नाम और काम दोनों शास्त्रों में दर्ज हैं। जब समय था तब उनका काम था, आज समय नहीं है उनका काम नहीं है लेकिन यह कल्पवृक्ष एक जो उपमा के रूप में हमारे सामने आ रहा है, वह इसलिए कि इसकी उपमा से आप इसकी दुर्लभता समझे। यह कभी-कभी मिलता है, किसी-किसी समय पर ही होता है और समय पर ही आता है और समय पर ही चला जाता है। इसलिए यहाँ पर कहा गया... **‘ये जिणधम्मो कप्पपायवो’** यह जिनधर्म कैसा है? कल्पवृक्ष है।

जिनधर्म रूपी कल्पवृक्ष आत्मा को संसार से पार उतारने में उपयोगी

भोगभूमि के काल में कल्पवृक्ष होते होंगे, उनसे तो हमें क्या मिलता? खाने-पीने की, पहनने-ओढ़ने की

चीजें मिल जाती और वे चीजें तो हमें आज भी मिल रही हैं। कल्पवृक्ष से नहीं भी मिल रही कोई बात नहीं, भोगभूमि के समय के कल्पवृक्ष हमारे लिए आज नहीं हैं कोई बात नहीं लेकिन हमें इससे यह समझना चाहिए कि आज भी जब हमारी आँखें खुली हैं, जब हम मनुष्य रूप में हैं, जिनधर्म रूपी कल्पवृक्ष तो हमारे पास आज भी है। यह उस कल्पवृक्ष से भी बड़ा कल्पवृक्ष है, उसका तो उपयोग ही क्या? खाने-पीने, अपना जीवन चलाने के लिए उसका उपयोग था और इसका उपयोग अपनी आत्मा को, अपने जीव को इस संसार से पार उतारने में अगर कोई उपयोगी चीज है, तो वह यह जिनधर्म का कल्पवृक्ष है। अब यह कल्पवृक्ष देखो! आज भी फल रहा है। वे कल्पवृक्ष नहीं फल रहे भोगभूमि वाले लेकिन जिनधर्म का यह कल्पवृक्ष आज भी फल रहा है। आज भी इस कल्पवृक्ष के नीचे जो आएगा, जो इसकी छाँव में आएगा, जो इसकी शरण में आएगा, वह अपने आप उस कल्पवृक्ष से प्रदत्त जो फल होंगे, उन फलों का उपभोग करने का आज भी उसको मौका मिल रहा है और मिलेगा। आप बस केवल इसके नीचे आकर बैठो, इसकी शरण में आओ। आपको शरण में आने के बाद अपने आप लगेगा कि दुनिया में मिथ्या क्या है, सही क्या है? कल्पवृक्ष की शरण में आने के बाद में एक बार उसकी हवा आपको लग जाए बस, सारी हवाएँ भूल जाओगे। सब हवाएँ आपको लगने लग जाएँगी कि ये सब ऊपर की हवाएँ हैं। सही हवा कौन सी है? यह कल्पवृक्ष की जो हवा है, इसके नीचे बैठ कर जो energy मिलती है, इसके नीचे बैठ कर जो हमें सही-सही बात समझ में आती है, यह हवा एक बार अगर हमारे भीतर पहुँच गई इसकी तो फिर आपको दुनिया में भटकना नहीं पड़ेगा।

कल्पवृक्ष अर्थात् सभी फलों को देने में समर्थ

न कभी आम के पास जाना पड़ेगा, न नीम के पास, न बबूल के पास, न साल के पास, न नारियल के पास, न कदली के पास, न लवंग के पास, किसी के पास नहीं जाना पड़ेगा; एक कल्पवृक्ष में ही आपको सारे फलों की प्राप्ति हो जाएगी। इसलिए इसको क्या कहा गया? कल्पवृक्ष; लोग पढ़कर निकल जाते हैं एक ही शब्द में। कल्पवृक्ष है तो उसका कोई मतलब भी तो होगा और कल्पवृक्ष का मतलब यही होता है कि जिसमें सारे फलों को देने की क्षमता हो, सारे फल जिसके सामने फीके पड़ जाएँ।

देवाधिदेव सभी देवताओं द्वारा पूजनीय

सभी फलों को देने में एक ही समर्थ है, एक ही बड़ा देवता है सब देवताओं को अपने वश में करने में, इसलिए इनके आगे कोई भी देवता फिर टिकता नहीं है। कैसे टिकेगा? भवनवासी होगा तो नहीं टिकेगा, व्यंतर होगा तो नहीं टिकेगा, वैमानिक होगा तो नहीं टिकेगा, ज्योतिषी होगा; सब उनके सामने हाथ जोड़ेंगे।

सभी देवता और ये सब देवता जब हाथ जोड़ेंगे तब अपने आप देवों के भी देव आपको लगने लग जाएगा इसलिए सभी तीर्थकरों के आगे एक title लगाना पड़ता है, लगा दिया जाता है और वह बोला भी जाता है- **देवाधिदेव**। बाकी तो सब देव हैं और ये क्या हैं? **देवाधिदेव**। सब इनकी पूजा करेंगे और यह आपको देखने को मिलेगा। जब आप महामह नन्दीश्वर विधान करेंगे तो आपको यही देखने को मिलेगा कि कितने तरीके के देव होते हैं? हर तरीके के देव भगवान की पूजा करते हैं और चार दिशाओं में चारों निकाय के देव अलग-अलग अपनी फौज लेकर खड़े होते हैं।

महामह नन्दीश्वर विधान की विशेषता

जिस समय भवनवासी देव जिस दिशा में खड़े होंगे, वहाँ व्यंतर देव एक भी नहीं पहुँचेगा, कल्पवासी नहीं पहुँचेगा, ज्योतिषी नहीं पहुँचेगा। एक दिशा में एक निकाय का देव पूजा करेगा, दूसरी दूसरी दिशा में तब तक दूसरा देव पूजा करेगा, तीसरी दिशा में तीसरे निकाय का देव पूजा करेगा और चौथी दिशा में चौथे समूह का देव पूजा करेगा। चार तरह के समूह हैं, चार ही दिशाएँ हैं। ऐसा कोई भी विधान नहीं, ऐसा कोई भी आयोजन नहीं, ऐसा कोई भी पर्व नहीं जहाँ चारों निकाय के देव एक साथ आकर भगवान की पूजा करने लग जाते हैं। वह अगर कोई पर्व है, तो उसका नाम है- महामह नन्दीश्वर पर्व, अष्टाह्निक पर्व। सिर्फ इसी पर्व में वे चारों निकाय के देव एक साथ आकर उन देवाधिदेव की पूजा करते हैं। उन अकृत्रिम जिनालयों के जिनबिम्बों की पूजा करते हैं। अगर आपके लिए यह भाव बने कि हमें चारों निकाय के देवों द्वारा एक साथ की गई पूजन को देखना है, हमें भी चारों निकाय के देव बनना है, तो यहाँ आप व्यंतर देव भी बन जाओगे तो भी आपको पाप का बन्ध नहीं होगा। चार निकाय के देव बनाने चाहिए, सही तरीका तो यही होता है।

महामह नन्दीश्वर विधान, अनादि निधन पूजा

सब सौधर्म इन्द्र के पीछे पड़े रहते हैं। अरे भई! सौधर्म इन्द्र तो एक कल्पवासी देव हो गया न। अब भवनवासी देवों का भी तो एक इन्द्र है, व्यंतर देवों का भी इन्द्र है, ज्योतिष देवों का भी इन्द्र है, उसकी नियुक्ति क्यों नहीं करते आप लोग? बस आपने कल्पवासी देवों के आठ पात्र बनाकर विधान की शुरुआत कर दी और पूरा हो गया विधान। इनकी नियुक्ति कौन करेगा? ये भवनवासियों को बुलाओ। **भवनवासी** वह होते हैं जो तरह-तरह के कपड़े-आभूषण पहनने के शौकीन होते हैं। ऐसे जितने भी लड़के बच्चे हैं, उन सबको भवनवासी देव बनाओ जिन्हें पहनने-ओढ़ने का शौक है। चल भाई! अच्छे-अच्छे कपड़े पहन रंग बिरंगे, चल भगवान की पूजा कर। **‘व्यन्तर देव’** जो बच्चा कहीं टिकता नहीं है, यहाँ आया तो वहाँ भागा, वहाँ से भागा तो यहाँ आया, यहाँ चिल्ला रहा है, वहाँ चिल्ला रहा है; जितने भी यहाँ मानस्तम्भ में चिल्लाते रहते हैं बच्चे शाम को, इन सबको व्यंतर देव बना करके पूजा करवाओ; ये सब शान्त हो जायेंगे। **ज्योतिषी देव**- जो घूमते रहते हैं, चमकते रहते हैं या अपने-अपने वाहनों में, कारों में ही जो हमेशा बैठे मिलते हैं, जब कभी भी हम रास्ते से निकल कर जाते हैं तो कार रोक कर ही नमोस्तु कर लेते हैं; उनको भी बुलाओ, उन्हें ज्योतिषी देव बनाओ और सबकी अलग-अलग पोशाक बनाओ। यह सही बता रहा हूँ, मजाक की बात नहीं कर रहा हूँ मैं। चारों निकाय के देवों की अलग-अलग पोशाक होती है और उस पोशाक के माध्यम से उनकी पहचान होती है और ऐसे चारों निकाय के देव जब आपके सामने होंगे, तब आप देखो! इस नन्दीश्वर विधान को करने का आनन्द आपको कितना आता है और इसीलिए यह विधान नन्दीश्वर न होकर क्या कहलाता है? **महामह नन्दीश्वर विधान।** महामह पूजा है यह, इससे बड़ी कोई पूजा है नहीं; अभी तक तो बनी नहीं और कभी बनेगी नहीं क्योंकि यह अनादिनिधन पूजा है।

जैन धर्म का महत्व

अब इस तरह के विचार में जब हम आते हैं तब समझ में आता है कि हमें जो मिला है वह बहुत बड़ा-बड़ा मिला है। कितने बड़े-बड़े पर्व मिले, कितने बड़े-बड़े देवाधिदेव मिले? कितने बड़े-बड़े महामह पूजा के कार्य

मिले? कितने बड़े-बड़े हमें कल्पवृक्ष मिल रहे हैं लेकिन हमारे भाव वे ही घिसे-पिटे, इसलिए हमारे अन्दर जिनधर्म घुसता नहीं है। हमारे भाव कभी भी खुलते नहीं हैं, हमें किसी भी चीज की महत्ता समझ में आती नहीं है और जब तक आपको किसी भी अपने ज्ञान से किसी चीज की importance पता नहीं होगी तब तक आपके दिमाग में उसकी कोई value होगी ही नहीं। आप जैन जरूर हैं लेकिन आपके अन्दर भी जैन धर्म की कोई value नहीं है क्योंकि आपको उसकी importance कुछ भी पता नहीं। value उसी की आदमी नापता है जिसकी उसे importance पता होती है और importance आती है उसको उसकी knowledge से। जिसको जितनी अच्छी deep knowledge होगी, right knowledge होगी उसको उतनी अच्छी importance उसकी समझ में आएगी और जब importance समझ में आती है तभी हम उसकी value करते हैं। इसलिए आपको हर एक चीज के लिए कहना पड़ता है, घिस्सा लगाना पड़ता है, मनवाना पड़ता है, तेल लगवाना पड़ता है यूँ कहना चाहिए। आज की भाषा में क्या बोलते हैं? तेल लगाना। सर्दी का time तो आ ही गया, तेल तो लगाना ही पड़ेगा। लगाते रहना चाहिए थोड़ा सा तेल भी ताकि त्वचा, skin ठीक-ठाक रहे। बहुत तरह के तेल होते हैं जिसको जो मिल जाए लगा लेना, सब काम में आते हैं। सरसों का तेल भी काम में आता है, बादाम का भी आता है, नारियल का भी आता है; कुछ नहीं मिले तो गुलाब जल भी काम में आता है। हर तरीके के जो तेल होते हैं, वह तेल अलग-अलग तरह के फायदा देते हुए भी एक फायदा सबसे होता है कि आपकी skin को रूखा नहीं बनाएँगे। यह सर्दी के समय पर आपके लिए तेल का उपयोग सबसे ज्यादा जरूरी है, इसलिए कुछ करो या न करो, तेल जरूर लगाते रहना। जिन लोगों के लिए अभी यह पता नहीं है कि यहाँ पर भी कुछ हो रहा है, होने वाला है उनको भी तेल लगाना। जिन्होंने इसमें पात्रता हासिल कर ली है, पात्र बन गए हैं उनको भी तेल लगाते रहना; बिना उसके तो कोई कुछ करता ही नहीं है, यह समाज का एक बहुत बड़ा रूप बन गया है। अधर्म के कामों में कोई तेल नहीं लगाना पड़ता लेकिन धर्म के काम में सबसे ज्यादा तेल लगवाते हैं लोग।

नन्दीश्वर विधान में चारों निकाय के देवों के दर्शन

यह समाज की जो विडम्बना है, यह इस कारण से है कि समाज के अन्दर रहने वाले लोगों को धर्म की A, B, C, D का भी कोई ज्ञान अब बचा नहीं है। अब आपके सामने हम कल्पवृक्षों की बातें कर रहे हैं अर्थात् ऐसी बातें समझो कि हमारे सामने यह कल्पवृक्षों की महिमा बताना, इन कल्पवृक्षों के बारे में बताना, यह ऐसा ही है कि जैसे किसी बच्चे के लिए कहना कि बेटा देख! वह चन्द्रमा है, वह सूर्य है, वह चन्दा मामा है, ऐसा है आपके सामने अर्थात् वस्तु को दिखाने के लिए भी, आपके समक्ष रखने के लिए भी अनेक प्रयास करने पड़ते हैं। यह कल्पवृक्ष अगर आपकी समझ में आ जाए तो आप सारे वृक्षों का मोह छोड़ सकते हैं क्योंकि जहाँ एक मिलता है वहाँ सब कुछ मिलता है और एक के पास ही सब कुछ देने की क्षमता होती है और उसका नाम ही होता है- कल्पवृक्ष। फिर हमें अलग-अलग वृक्षों के पास जाने की जरूरत पड़ती ही नहीं है। आम भी वहीं मिलेगा, केला भी वहीं मिलेगा, सेब भी वहीं मिलेगा, नारियल भी वहीं मिलेगा, पपीता भी वहीं मिलेगा, सब वहीं मिलेगा; उसका नाम क्या है? कल्पवृक्ष। इसलिए जहाँ एक देवाधिदेव आ गए, जहाँ एक जिन भगवान आ गए वहाँ सभी देवता आपको उपस्थित मिलेंगे और सभी के दर्शन आपको हो जाएँगे। दर्शन किस रूप में करने हैं? वह आपको विधान के समय में बताया जाएगा लेकिन दर्शन आपको दुनिया में जितने भी देवता हैं, सब देवताओं का दर्शन कराने का अगर कोई एक मौका है तो

वह नन्दीश्वर की पूजा में मिलता है। दुनिया के सब देवता इकट्ठे होंगे वहाँ पर, चाहे व्यंतर हो, चाहे भवनवासी हो, चाहे वैमानिक हो, चाहे ज्योतिषी हो। इसके अलावा कोई देवता होते ही नहीं, बस चार category में सब देवता विभक्त हैं।

अपूर्व जिन धर्म के ज्ञान से ही सुख सम्भव

अब आपके सामने कल्पवृक्ष है, तो कल्पवृक्ष की महिमा आपको पता होगी तो यह जिनधर्म आपके लिए कुछ अपूर्व दिखाई देगा। एक शब्द आया न- **‘अप्पुव्वो’** अप्पुव्व का मतलब? हमें यह महसूस होना चाहिए यह जिन धर्म हमारे लिए कैसा है? पूर्व में नहीं मिला बेदा! **अपूर्व** का मतलब होता है जिसे हमने पहले कभी पाया नहीं, जिसे हमने पहले कभी देखा नहीं, जिसे हमने पहले कभी जाना नहीं; ऐसी चीज जब हमारे सामने आती है तो उसे **अपूर्व** कहते हैं बेदा! दुनिया में सब वृक्ष बार-बार मिलेंगे लेकिन कल्पवृक्ष तो एक ही बार मिलेगा और कल्पवृक्ष का time आता है, जाता है; यह अच्छा अपने लिए सौभाग्य समझो कि हम जिस time पर हैं उस time पर कल्पवृक्ष हमारे सामने फल रहा है, इसलिए यह अपूर्व है। यह स्वर्ग और अपवर्ग के सुखों को देने वाला है और वह सुख ही फल होते हैं। इन कल्पवृक्षों से कौन से फल मिलेंगे? सुख के फल, स्वर्ग और मोक्ष के फल, ये देने वाला एक अपूर्व यह द्रुम अर्थात् एक तरह का यह वृक्ष है और इस वृक्ष के अलावा आपके लिए जो कुछ भी दिखाई देगा वह सामान्य होगा, ऐसे इस धर्म को अपना बन्धु मानो।



गाथा: 101

जिनधर्म ही बंधु है, सच्चा मित्र और गुरु है, वही मोक्षमार्ग में रथस्वरूप है

धम्मो बंधु सुमित्तो य, धम्मो य परमो गुरु।
मुख-मग्ग-पयट्ठाणं, धम्मो परम-संदणो ॥101॥

अन्वयार्थ-(धम्मो) धर्म (बंधु) बंधु है (य) और (सु-मित्तो) अच्छा, मित्र है (य) तथा (धम्मो) धर्म (परमो गुरु) परम, गुरु है 'और' (मुख-मग्ग-पयट्ठाणं) मोक्ष-मार्ग में, प्रवर्तन के लिए (धम्मो) धर्म (परम-संदणो) श्रेष्ठ-स्यंदनरूप यानी उत्तम-रथरूप है ॥101॥

अच्छे मित्र की विशेषता

क्या कहा दूसरी गाथा में? अरे! जिससे हमें सब कुछ मिलने वाला है वही हमारा बन्धु हो गया, जिससे हमें सब कुछ मिलने वाला है, वही हमारा मित्र हो गया। 'सुमित्तो' अर्थात् अच्छा वाला मित्र। एक मित्र होता है और एक यार होता है, यार। यार की बात नहीं की जा रही है यहाँ पर, किसकी बात की जा रही है? मित्र की बात की जा रही है। एक life management किताब है, **खोजो मत पाओ** जिसका हिन्दी में नाम है। उस किताब को पढ़ना तो उसमें आपको लिखा मिलेगा कि मित्र और यार में क्या अन्तर होता है? यार बाजार में मिलते हैं और मित्र जिन्दगी में आते हैं। इसलिए बेटा! मित्र अच्छा बनाना, यार मत बनाना। यार तो तब तक काम आएँगे जब तक तुम्हारी जेब में पैसा है और मित्र तब तक काम आएँगे जब तक तुम्हारी जिन्दगी चलेगी, जब तक तुम्हारे सामने तुम्हारी सांसें चलेंगी।

धर्म ही हमारी आत्मा का सुमित्र है

उस मित्र से बढ़कर यहाँ कहा गया **सुमित्र**। धर्म हमारा एक ऐसा मित्र होता है अगर हमने अपने धर्म से मित्रता कर ली तो क्या होगा? यह हमारी आत्मा में जन्म-जन्मान्तर तक हमें काम आता रहेगा, हमें सहयोग करता रहेगा। इसलिए धर्म को मित्र बनाना, धर्म ही परम गुरु है और गुरु क्या चीज है? अगर हमारे अन्दर धर्म नहीं है तो बाहर का गुरु हमारे लिए क्या कर लेगा? गुरु भी तो तुम्हें धर्म से ही जोड़ता है न? धर्म ही हमारा परम गुरु है, धर्म ही हमारे लिए सुमित्र है, धर्म ही हमारा बन्धु है। गुरु का काम इतना ही होता है कि वह उस धर्म से आपको मिला दे बस और वह काम यहाँ चार महीनों से निरन्तर किया जा रहा है कि आप धर्म को अपना गुरु बना लो, धर्म को अपना बन्धु बना लो, धर्म को अपना मित्र बना लो; मुझे मत बनाना कुछ भी। लोग मेरे पीछे पड़े हैं- महाराज! मैं आपको गुरु बनाना चाहता हूँ, मैं आपके लिए आगे भी मिलना चाहता हूँ जैसे मित्र से मिलते हैं, मैं आपके दर्शन करने आऊँगा, यह मेरे पीछे पड़ने की जरूरत नहीं है। मेरा

काम कितना था? बस आपको धर्म से मिला देना। आप धर्म के साथ रहोगे तो हमारा काम हो गया और हमें जो मिलना चाहिए था वह हमें मिल जाएगा। क्योंकि हमें मिल रहा है ऊपर से। ऊपर से जो हमें job मिला है, उस job में हमें यही काम दिया गया है कि बस आप इनको धर्म से मिलाते रहो, तुम्हारा जो payment है वह तुम्हें ऊपर से ही मिलता रहेगा; वे हमें देते रहेंगे। इसलिए न पिछ्छी के पीछे पड़ो, न हमारे पीछे पड़ो; किसके पीछे पड़ो? धर्म के पीछे पड़ो। धर्म साथ रहेगा तो हम भी साथ रहेंगे और आशीर्वाद भी साथ रहेगा और धर्म साथ नहीं होगा तो हम भी साथ नहीं होंगे, कुछ साथ नहीं होगा तुम्हारे।

धर्म रथ की सवारी से ही स्वर्ग-मोक्ष की यात्रा

इसलिए गुरु कभी किसी को मोहित नहीं करता और गुरु कभी किसी के मोह में पड़ता भी नहीं है। गुरु हमेशा आपको सही line पर ले जाने की कोशिश करता है और आपको पिछले चार महीनों में यही कोशिश की गई है कि किसी न किसी तरह से आप सच्चे धर्म की पहचान करना सीखो। धर्म ही हमें मोक्ष मार्ग में प्रस्थान कराने के लिए **‘परम-संदर्णो’** अर्थात् रथ का काम करता है। धर्म-रथ पर सवार हो जाओ, तुम्हारी यात्रा आगे की अपने आप बढ़ती चली जाएगी, आगे की यात्रा होती चली जाएगी; एक बार बस धर्म-रथ पर बैठ जाओ। उसमें घोड़े लगे हुए हैं वे तुम्हें अपने आप भगायेंगे, अपने आप आगे ले जाएंगे। बस एक बार तुम धर्म-रथ पर सवार हो जाओ; तुम्हारी यात्रा स्वर्ग-मोक्ष की अपने आप बनती चली जाएगी। तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा, बस एक बार उस धर्म-रथ पर बैठना है, एक बार उस कल्पवृक्ष को कल्पवृक्ष के रूप में स्वीकार कर लेना है, एक बार आपको लगना चाहिए कि जो हमने अभी तक नहीं किया, वह हमें इस जन्म में करना है। आखिर इस जिनधर्म का अगर हम स्वाद लेंगे तो स्वाद तभी आएगा, जब जैसा कहा गया है वैसा करते जाओगे तो स्वाद आएगा। लेकिन दिक्कत यह है कि जैसे ही हम करना शुरू करते हैं तो हम डरना शुरू कर देते हैं। इस जिनधर्म की एक खास बात यह है कि जैसे ही कोई व्यक्ति नया कुछ भी करना शुरू करता है तो वह डरना शुरू हो जाता है। बताओ क्या करना चाहोगे? उसी में डर लगने लग जाएगा- महाराज! क्या करें? जिसको मन्दिर नहीं आना, उससे कह दो मन्दिर आना है, तो डरने लग जाएगा; जिसको पूजा करना नहीं आता उससे कह दो पूजा करा करो बेटा तो डरने लग जाएगा; जिसने कोई व्रत-संयम नहीं लिया उससे कह दो भैया! व्रत-संयम ले लो तो डरने लग जाएगा।

धर्म को निडर होकर अपनाने में ही अपूर्व आनन्द

जिससे जो कहा जाएगा और जिसने जो नहीं किया है, वह पहली बार जब भी करेगा तो डरेगा और एक बार उसका उस काम में मन लग गया और एक बार अगर उसने वह काम कर लिया तो डर उसके पीछे होगा। फिर उसके ऊपर धर्म-रथ आगे ले जाकर उसे आगे बढ़ाता चला जाएगा और डर उसका हमेशा के लिए छूट जाएगा। आप देखो! कितनी बार आपको डर लगता है? आपसे कहा जाए कोई व्रत लेने के लिए, भाई! आपको भगवान के व्रत लेना है, वर्धमान स्तोत्र के व्रत लेना है तो पहली बार लगे तो आपको डर लगेगा। कोई संयम का पालन करना है, ब्रह्मचर्य का पालन करना है तो आपको डर लगेगा, कोई आपको पाँच अणुव्रतों का पालन करना है तो आपको डर लगेगा। आलू-प्याज का त्याग करना है तो आपको डर लगेगा, रात्रि-भोजन का त्याग करना है पहली बार तो आपको डर लगेगा। जब भी आप धर्म-रथ पर सवार होने की

केश लॉन्च भी एक उत्सव

गाथा: 102

संतप्त-संसार में अमृत के समान शीतल जिनवचन का सेवन करना चाहिए

आर्यावृत्तम्

चउगइणंतदुहाणल-पलित्त-भव-काणणे महाभीमे।

सेवसु रे जीव! तुमं, जिणवयणं अमिय-कुंड-समं ॥102 ॥

अन्वयार्थ-(रे जीव!) हे जीव! (तुमं) तुम (महाभीमे चउगइ-अणंत-दुह-अणल-पलित्त-भव-काणणे) महाभयंकर, चारगतिरूप, अनंत, दुःख की, अनल/अग्नि में, जलते हुए, संसाररूप, कानन यानी वन/जंगल में (अमिय-कुंड-समं जिणवयणं) अमृत के, कुंड, समान, जिनवचन को (सेवसु) सेवो अर्थात् सेवन करो ॥102 ॥

वैराग्य शतक ग्रन्थ की शतक के ऊपर भी कुछ चार गाथाएँ हैं, जिनमें तीन गाथाएँ अवशिष्ट हैं। उन गाथाओं का पहले पाठन करते हैं, फिर उनका अर्थ समझने की कोशिश करते हैं।

चउगइणंतदुहाणल-पलित्त-भव-काणणे महाभीमे।

सेवसु रे जीव! तुमं, जिणवयणं अमिय-कुंड-समं ॥102 ॥

विसमे भव मरुदेसे, अणंत-दुह-गिम्ह-ताव-संतत्ते।

जिणधम्म-कप्परुक्खं, सरसु तुमं जीव! सिव-सुह-दं ॥103 ॥

किं बहुणा जिणधम्मे, जइयव्वं जह भवोदहिं घोरं।

लहु तरिउमणंतसुहं, लहइ जिओ सासयं ठाणं ॥104 ॥

भगवान की वाणी का सेवन करने से ही आत्मा को शान्ति



गाथा 102 में कहते हैं... 'चउगइणंतदुहाणल' चार गतियों के अनन्त दुःखों की अग्नि से 'पलित्त' यानी प्रज्वलित है, यह भवकानन यानी संसार का जंगल। इस संसार के जंगल में चार गतियों के अनन्त दुःखों की आग लगी हुई है और यह संसार का जंगल महाभीम है, भयंकर है। अनेक तरह के दुःखों से तप्त जीवों को देखकर के भय उत्पन्न

करने वाला है। ऐसे इस संसार में रे जीव! **‘तुम’** अर्थात् तुम, **‘सेवसु’** अर्थात् सेवन करो। इसका सेवन करना यानी इसका पान करना। इसका हृदय से चिन्तन करना, ध्यान करना, श्रद्धा करना; यह इसका सेवन करना कहलाता है। किसका सेवन करो? **‘जिनवचन’** जो जिन वचन हैं, उनका सेवन करो। **‘अमिय कुंड सम’** ये अमृत के कुण्ड के समान हैं, जिनवचन अमृत कुण्ड हैं। जिनेन्द्र भगवान के वचनों के माध्यम से ही संसार के दुःखों की आग इस जीव के लिए सहन करने में आती है और इसे सहन करना ही पड़ता है। अतीत में किया है, वर्तमान में भी करता है, आगे भी करता ही रहेगा। उस आग को शान्त करने के लिए जो आग बाहर नहीं लगी है, भीतर लगी है; बाहर तो उसके कार्य दिखाई देते हैं जो चार गति रूप संसार है, वह बाहर का संसार हमें दिखाई देता है। लेकिन इस संसार में रहने वाले जो संसारी जीव हैं, वे सब तब तक उस आग में झुलसते रहते हैं, तब तक उनका जन्म-मरण का यह दुःख बना रहता है। तब तक उन्हें चारों गतियों के ये दुःख मिलते रहते हैं जब तक कि वह अपनी आग को अमृत कुण्ड का पान करके स्वयं बुझाते नहीं। अमृत कुण्ड के समान जो जल है, वह जल ही जिनेन्द्र भगवान के वचन हैं। अगर इस आग को भीतर से बुझाना है, इस आग को शान्त करना है, जिसे भवदाह कहा जाता है और इस दाह को अगर हम शान्त करने का कोई उपाय देखते हैं तो आचार्य कहते हैं...जिनवचनों का आश्रय लो, जिनवचनों का सेवन करो, जिनवचन का पान करो। यानी आपके दिमाग में, आपकी श्रद्धा में जितना जिनवचन उतरेगा उतना ही आपकी आत्मा को शान्ति मिलेगी। आग बहुत पुरानी लगी हुई है तो वह धीरे-धीरे बुझती है, धीरे-धीरे शान्त होती है और उस अग्नि की शान्ति के लिए अगर कुछ अमृततुल्य चीज हमारे पास है, तो भगवान की वाणी है। बस! यह जो वाणी जिस तरह से आप पीते आए हैं, पी रहे हैं, इसको पीते रहिएगा। इस वाणी का सेवन करने से ही आत्मा को शान्ति मिलेगी और चिरकाल से जो तप्त है यह आत्मा, उस आत्मा के लिए अगर आगे भी यह दाह न मिले तो इसका उपाय भी यही वाणी ही है। क्योंकि जब आग लगी हुई है उसको शान्त करने के लिए ऊपर से आप कुछ अमृततुल्य चीज उसमें डालोगे तो अमृत का काम न केवल आग को बुझाना होता है किन्तु अमृत का काम होता है उस भूमि को भी इतना अमृतमय बना देना कि उसमें आगे भी बहुत अच्छे-अच्छे फलों की प्राप्ति होती रहे। जब इस अवसर्पिणी काल का अन्त होता है, तो अन्त होते समय पर विष की वर्षायें होती हैं। जब पंचम काल के बाद भी छठवें काल का भी जब अन्त होता है, तो विष-वर्षा होती है, खारे जल की वर्षा होती है, अग्नि की वर्षा होती है और फिर उसके बाद में जब काल आता है, समय आता है, पुनः उत्सर्पिणी काल शुरू होता है तो फिर इसी भूमि को जो दग्ध हो गई है, जल गई है, उसको फिर से सही बनाने के लिए क्षीर जल की वर्षा होती है, अमृत की वर्षा भी होती है। उस अमृत की वर्षा से क्या होता है? कि जो पुराना जला हुआ स्थान है, वह इतना उपजाऊ हो जाता है, उसमें इतनी उर्वरा शक्ति आ जाती है कि वह बहुत अच्छी-अच्छी उपज उसमें से होने की क्षमता उसी भूमि में आने लग जाती है। अमृत का काम दोनों प्रकार का है। जो आग लगी है उसको भी शान्त करना और जो भूमि दग्ध हो गई है, उसको पुनः उपजाऊ बनाना। यानी हमारी आत्मा के अन्दर उस दाह की शान्ति होने पर आत्मा के गुण प्रकट कराने की क्षमता भी इन्हीं जिनवचनों में है।

जिनेन्द्र भगवान के वचन औषधि तुल्य

आत्मा की अपनी शक्तियों को उद्घाटित करने की क्षमता भी इन्हीं जिनवचनों में है इसलिए यह अमृत भी है और यह औषधि भी है। जब जल जाता है तो औषधि की भी जरूरत पड़ती है, तो जिनवचन ही औषधि बन

जाते हैं। इसलिए आचार्यों ने कह रखा है... **‘जिणवयणम् ओसहमिणं’** यह जिनेन्द्र भगवान के वचन औषधितुल्य हैं और ये वचन **‘अमिदभूदं’** इन्हीं को अमृतभूत कहा गया है। **‘विसयसुहविरयणं’** और इन्हीं जिनवचनों से विषय सुख का विरेचन होता है।

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरयणं अमिदभूदं।

जरमरणवाहिवेयणं खयकरणं सव्व दुक्खाणं ॥95॥ मूलाचार

यह आचार्यों की गाथा है जो मूलाचार में उपलब्ध होती है। जिनेन्द्र भगवान के ये वचन सभी दुःखों का क्षय करने वाले हैं, जन्म-जरा की व्याधियों को दूर करने वाले हैं, अमृतभूत हैं और यही वचन हमारी आत्मा के अन्दर जो विषय सुख की तृष्णा पड़ी हुई है उसको भी शान्त कर देने वाले हैं। जिनेन्द्र भगवान के वचनों का जितना आप सेवन करेंगे, जितना आप चिन्तन-मनन करेंगे; ये आपके सामने इस तरह की दवाईयाँ हैं जिनको जितना आप अपने पास में रखेंगे, उतना ही आपके अन्दर सुख की अनुभूति होगी अन्यथा इस संसार के जंगल में कोई शरण बाहर है नहीं।

भगवान को अपने हृदय में स्मरण करने मात्र से शरण मिलती है

शरण तो किसी को मिल भी जाए तो वह शरण भी छूट जाती है। अगर बाहर की शरण है, तो नियम से छूटेगी। इसलिए जितनी भी शरण बताई गई हैं, सब भीतर की शरण हैं। **‘चत्तारि सरणं पव्वज्जामि’** उन चार शरणों में कोई भी शरण बाहर नहीं है। सब शरण कहाँ हैं? हम भीतर से लेते हैं। **‘अरिहंत सरणं पव्वज्जामि’** अब अरिहन्त बाहर कहाँ हैं? कोई नहीं हैं और बाहर भी होंगे तो भी वह कितनी देर तक आपको शरण देंगे? जब गौतम गणधर को भी बाहर से अरिहन्त भगवान, महावीर स्वामी शरण नहीं दे पाए तो फिर क्या है? उन्हें अपनी शरण में आना पड़ा और फिर बाद में अगर कोई शरण रह जाती है, तो भगवान के स्मरण की ही शरण रह जाती है। आप अरिहन्त भगवान को भी अपने लिए शरणभूत देखेंगे तो कैसे देखेंगे? अपने हृदय में देखेंगे। भाई! अरिहन्त भगवान कहाँ हैं? बाहर नहीं हैं। कहाँ हैं? अपने भीतर हैं। **‘सिद्ध सरणं पव्वज्जामि’** अब सिद्ध भगवान की गोदी में जाकर कैसे बैठोगे? हे भगवन्! मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे अपनी गोदी में बिठा लो। कोई भगवान अपनी गोदी में तो बिठाएँगे नहीं। उन्हें हम अपने हृदय में बैठा सकते हैं। यह अपने लिए सहूलियत है, इसी का नाम शरण है। यानी हम कहते जरूर हैं कि भगवान हम आपकी शरण में आए हैं लेकिन हम भगवान की शरण में पहुँच कर के भी भाव क्या है? हमने भगवान को अपने हृदय में समाहित कर लिया है, इसलिए कहना पड़ता है...भगवन्! हम आपकी शरण में हैं। बात उल्टी है, देखो! हम अगर शरण में आए तो आपको अपने पास रखना चाहिए। आपको हमारा पूरा ख्याल रखना चाहिए। आपको अपने पास में हमें बिठा लेना चाहिए। यह तो आप कुछ करते नहीं और हम कहते हैं- हे भगवन्! अरिहन्त भगवान हमारे लिए शरण हैं, सिद्ध भगवान हमारे लिए शरण हैं तो शरण हैं तो कैसे शरण हैं? आप अगर बाहर शरण ढूँढोगे तो कोई शरण नहीं मिलेगी क्योंकि बाहर दुनिया में कहीं कोई शरण है ही नहीं और जो बाहर की शरण है, वह इस संसार के जंगल की आग में सब जल जाएगी। वह सब अनित्य होगी, वह सब तात्कालिक होगी। वह कभी भी आपके लिए सुख नहीं देगी। इसलिए जो श्रद्धालु होता है, वह शरण कहते हुए भी उस शरण का अनुभव कैसे करता है? भगवान अरिहन्त हमारे लिए शरण हैं तो अरिहन्त भगवान हमारे हृदय में हैं। सिद्ध भगवान हमारे लिए शरण हैं तो सिद्ध भगवान का ध्यान, सिद्ध

गाथा: 103

संसाररूपी रेगिस्तान में, मोक्षरूपी सुख-शांति को देने वाले, जिनधर्मरूपी कल्पवृक्ष की शरण को प्राप्त करो

विसमे भव-मरुदेसे, अणंत-दुह-गिह-ताव-संतते।
जिणधम्म-कप्परुक्खं, सरसु तुमं जीव! सिव-सुह-दं॥103॥

अन्वयार्थ-(जीव!) हे आत्मन्! (तुमं) तुम (अणंत-दुह-गिह-ताव-संतते विसमे भव-मरुदेसे) अनंत, दुःख स्वरूप, ग्रीष्मऋतु के, ताप से, संतप्त 'और' विषम यानी जिसमें संचरण करना अति कठिन है, 'ऐसे' संसाररूपी, मरुदेश यानी रेगिस्तान में **(सिव-सुह-दं) शिव-सुख को, देने वाले (जिणधम्म-कप्परुक्खं) जिनधर्मरूपी, कल्पवृक्ष को 'दिन-रात बारं-बार' (सरसु) स्मरण करो ॥103॥**

इस संसार में कोई शरण नहीं है

यही बात आगे की गाथा 103 में कही जा रही है... **'विसमे भव मरुदेसे'** अब यह संसार कैसा है? एक मरुस्थल की तरह है। जंगल भी है, मरुस्थल भी है और उस मरुस्थल में अनन्त दुःख की गर्मी है। उसके ताप से आपको जलना है। अब उस मरुस्थल में क्या चाहिए? मरुस्थल में दूर-दूर तक भी कहीं कोई छाया नहीं होती है। राजस्थान में कभी आप रेगिस्तान देखने गए हो तो जोधपुर की तरफ निकल जाना; उधर रेगिस्तान होते हैं। यद्यपि उधर की तरफ हम गए नहीं हैं, राजस्थान में थोड़ा सा गए तो हैं लेकिन हमने देखा कि यहाँ पर कहीं रेगिस्तान है ही नहीं। लोगों ने बताया- महाराज! वह तो जोधपुर की तरफ होते हैं। उधर रेगिस्तान में आप घूमोगे, उधर आप देखोगे, ऊंटों की सवारियाँ होती हैं। उधर लम्बे-लम्बे किलोमीटरों तक के मरुस्थल मिलेंगे और उन मरुस्थलों में क्या होता है? केवल जलती-जलती मिट्टी होती है। ग्रीष्म के ताप में अगर आप उस मरुस्थल में पहुँच गए तो वहाँ पर एक तिनका भी आपको नहीं मिलेगा जो हरा दिख जाए, वृक्ष की तो कोई बात ही नहीं है। एक छोटी सी भी फूस-फांस भी नहीं दिखती वहाँ पर और ऐसे उस मरुस्थल में जहाँ पर चारों ओर से गर्म हवाएँ आ रही हो, बालू तप रही हो, चारों ओर आकाश में आग ही आग दिख रही हो; इतनी गर्मी हो ऐसे उस मरुस्थल में आपके लिए सुख देने वाली चीज क्या मिल सकती है? इस संसार में कोई शरण नहीं है जैसे मरुस्थल में कोई शरण नहीं होती, ऐसे ही संसार में कोई शरण नहीं। दूर-दूर तक देखोगे आपको कोई नहीं दिखेगा। कोई अपना नहीं दिखेगा आपको, दूर-दूर तक देखोगे तो आपको लगेगा कि जो अपना है वह भी अपना-सा नहीं होता है और वह भी जब आपके लिए दुःख देने का कारण बन जाता है, तब आपके लिए क्या शरण आएगी? **'जिणधम्म कप्परुक्खं'** जिनधर्म का यह कल्पवृक्ष आपके पास अगर होगा तो कहीं पर भी इसको तान करके, छाता अगर आपके पास है तो कहीं

पर भी तान करके बैठ जाओ। जिनधर्म का ये कल्पवृक्ष अपने पास में बना करके रखो।

स्मृति से सुख और दुःख दोनों मिलते हैं

‘तुम’ हे जीव! तुम **सिव-सुह-दं** यह कल्पवृक्ष ही शिवसुख को देने वाला है। शिवसुख यानी? मोक्ष सुख को देने वाला है। इसको **‘सरसु’** अर्थात् तुम अपने स्मरण में लाते रहो। क्या करना है? जिनेन्द्र भगवान के वचन ही औषधि हैं, जिनेन्द्र भगवान ही कल्पवृक्ष की तरह हैं, जिनेन्द्र भगवान के वचन ही अमृततुल्य हैं; अब इनका आप स्मरण करो बस। अब स्मृतियाँ शेष जब रह जाती हैं तो फिर क्या करना पड़ता है? स्मरण करना पड़ता है। ज्यादा स्मरण करना होता है तो लोग कुछ न कुछ स्मारिका बना लेते हैं कि भाई! स्मरण रहे, हमने क्या-क्या सुना? क्या-क्या पढ़ा? क्या-क्या किया? यह एक स्मरण करने का तरीका यह भी तात्कालिक ही होता है। आपके दिमाग में वह स्मारिका होनी चाहिए कि हमने यहाँ पर शुरू से लेकर के आखिरी तक क्या-क्या सुना? क्या-क्या सीखा? क्या-क्या पढ़ा? यह सारी स्मारिका की तालिका आपके दिमाग में होनी चाहिए। तब यह स्मरण ही आपके उस दुःख को दूर करने वाला होगा, जो दुःख आपके अन्दर उत्पन्न होता है। हमेशा अपने अन्दर एक ही चीज होती है जो हमें सुख प्रदान करे और वह सुख मिलता है स्मृति से। चूँकि दुःख भी मिलता है तो वह भी स्मृति से मिलेगा तो सुख भी स्मृति से मिलेगा। आपको कभी भी दुःख होगा तो स्मृति से होगा, आप ध्यान रखना इस बात को। कोई भी दुःख आ जाए आपके सामने, आपको क्या दिखाई देगा? बस! हमें याद आ रही है किसी की, हमारे साथ कुछ हो गया था पहले घटित हो गया था, हमें उसकी याद आ रही है या जो हमारे साथ है वह अब नहीं रहा, उसकी याद आ रही है। हमारे लिए आगे भी किसी भी तरह का कोई भय है, डर है तो हमें उसकी भी याद सताती, पहले से ही आने लग जाती है कि ऐसा न हो जाए तो यह सब क्या है? यह सब स्मृति है यानी आपको जब भी दुःख होगा तो किससे होगा? स्मृति से होता है। यानी आपका कोई इष्ट बन्धु है अगर उसका वियोग हो जाता है, तो आपको दुःख किस बात का है? बताओ! वह चला गया इस बात का दुःख नहीं होता। चले जाने को तो ऐसे भी बहुत सारे बच्चे हैं जो कहीं जैसे विदेश चले गए; दो-दो साल, पाँच-पाँच साल तक माता-पिता उसका मुख नहीं देख पाते, चले जाने का दुःख नहीं होता। दुःख किस बात का? अब उसकी स्मृति जो आ रही है, वह स्मृति दुःखी बनाती है। जब कोई भी नया बच्चा कहीं hostel में चला जाता है, कहीं दूसरे शहर में पढ़ने को चला जाता है तो वहाँ पर उसको दुःख किस बात का? चलो! वह तो हम मृत्यु की बात नहीं कर रहे हैं, अभी उसके माता-पिता हैं। अब माता-पिता को भी बच्चे का दुःख हो सकता है और बच्चे को भी माता-पिता का दुःख हो सकता है। किस बात से आएगा वह दुःख? अब वहाँ पर कौन-सा दुःख का कारण है? बताओ! सिर्फ और सिर्फ स्मृति! स्मरण, याद करना, याद आ रही है। अब वह याद आ रही है, तो बस दुःख आ रहा है। याद आ रही है, तो दुःख आ रहा है। अब आपके अन्दर वह दुःख का कारण क्या है? सिर्फ याद है। कई लोगों के लिए वह याद अगर आती रहती है, आती रहती है और वह अपनी उस याद को रोक नहीं पाते हैं तो उनका दुःख निरन्तर बना रहता है। कई लोग ऐसे होते हैं जिनके घर में किसी इष्ट का वियोग हो जाता है और मानो कोई कम उम्र में हो गया हो, घर की जिम्मेदारियाँ हो, बच्चे हो और कोई घर का युवा व्यक्ति निकल गया हो, चला गया हो तो अब आप देखो! उसके लिए वह दुःख किस रूप में है? बस उसकी स्मृति और वह स्मृति भी ऐसी होती है कि अगर कोई भी व्यक्ति सामने आ जाए और उसको लगे कि यह उसको जानता होगा और हमें उस रूप में देख रहा है, तो उसके स्मरण करने मात्र से ही सामने वाले को रोना आने

लग जाता है। जैसे कि आप किसी उस व्यक्ति के सामने पहुँच जाएँ जिसके घर में किसी का वियोग हो चुका है और आपको पता है; आप उस व्यक्ति को भी जानते हैं जिसका वियोग हो चुका है और वह व्यक्ति भी जिसके सामने आप खड़े हो, वह व्यक्ति भी जानता है कि आप उसको जानते हो; तो आप केवल पहुँच ही जाओगे तो उसको एकदम से उसी समय पर रोना आने लग जाएगा। दुःख का कारण क्या बनता है? स्मृति। अब जब स्मृति से दुःख है तो सुख भी किससे मिलेगा? स्मृति से मिलेगा।

भगवान की सेवा यानी कल्पवृक्ष की सेवा

अब स्मृति किसकी करें? आचार्य कहते हैं... **‘जिणधम्म कप्परुक्खं’** जिनेन्द्र भगवान का यह धर्म ही कल्पवृक्ष है, इस कल्पवृक्ष की स्मृति करो। वह तो होती नहीं महाराज! बार-बार मुझे रह-रह के वही याद आते हैं, वही याद आता है। अब क्या करोगे? अब करने का तरीका यही एक है, आप अपनी स्मृति में भगवान के वचनों को सामने रखो। आपने अगर यह वैराग्य शतक पढ़ लिया है, तो आपको इसमें चारों गतियों के दुःखों का भान कराया गया है। पढ़ने के बावजूद भी इन वचनों को फिर से पढ़ सकते हो कि नहीं? अब नहीं पढ़ना महाराज! एक बार पढ़ लिया, आपने पढ़ा दिया; अब नहीं पढ़ेंगे। फिर आपके पास में कुछ भी शेष बचेगा नहीं। जो-जो पढ़ा है, उसको पढ़ना। जो-जो सुना है, उसको फिर-फिर सुनना। इस तरह से पुनः-पुनः पढ़ने से और पुनः-पुनः सुनने से यह जो आपके अन्दर बार-बार उस कल्पवृक्ष का स्मरण आएगा, वह स्मरण ही आपके भीतर जो दुःख उत्पन्न हो रहा है, उसको दूर करेगा। ऐसा यह भगवान का जो धर्म है, ये जो वचन हैं, जिनके माध्यम से हमारे दुःख दूर होते हैं, हम उसको उस दुःख को दूर करने की औषधि के रूप में काम में लाएँ, यह आचार्यों ने हमें बताया। **‘जिणवयण’** क्या है? **‘ओसह’** औषधि है। जब जब हमें दुःख हो, हमें इस दुःख को दूर करने के लिए और कोई उपाय नहीं करना। क्या करना? भगवान की स्मृति करना। वर्धमान महावीर भगवान की स्मरण में भी अगर आप अपनी स्मृति को ले आएँगे, आपके स्मरण में भगवान महावीर स्वामी आ जाएँगे तो अपने आप आपके दुःख में कमी आने लग जाएगी। वर्धमान स्तोत्र पढ़ोगे तो उसमें भी आपको एक काव्य मिलेगा, जिसमें भगवान को कल्पवृक्ष कहा गया है। **भगवान की सेवा करना यानी कल्पवृक्ष की सेवा करना है।** अगर आपके लिए कुछ स्मरण नहीं रहता है तो उस काव्य का स्मरण करो और उस काव्य के स्मरण से भी बहुत लाभ बहुत लोगों ने लिए हैं। सातवें नम्बर का वह काव्य है। आपके सामने जो है वह तो चला गया, कोई बात नहीं; जो आ सकता है, उसके लिए अगर आप भगवान की इस स्तुति के माध्यम से उस सातवें नम्बर के काव्य को ही केवल आप गुनगुनाते रहो, पढ़ते रहो तो आपको इच्छित वस्तु की प्राप्ति कुछ ही समय में हो जाएगी। यह practical हो चुका है लेकिन आपको पहले यह करना पड़ेगा। अब आप कहोगे... नहीं! हमें मन ही नहीं लगता है, हमें पढ़ते ही नहीं बनता है तो फिर कुछ नहीं होगा। केवल आप उस श्लोक का, उस छंद का आप मन ही मन नौ बार कम से कम, इक्कीस बार, जितना आपसे बन सके आप उसका स्मरण करके, अपने अन्दर भगवान के प्रति भक्ति का भाव लाओगे तो आपके दुःखों का जो आगे आगमन हो रहा है, वह दूर हो जाएगा। यह बहुत लड़कों ने, लड़कियों ने इसको करके देखा है और कई लोगों को इससे फायदा मिला है। आपको जो चाहिए तो सिर्फ भगवान से ही उसकी इच्छा करो और वह कल्पवृक्ष कहीं बाहर नहीं है, अपने भीतर है। स्मरण करो, आपके अन्दर सब कुछ है। अरिहन्त भगवान की शरण बाहर नहीं है। कहाँ है? भीतर है। आप कहीं भी हो, चाहे भगवान का मन्दिर आपके सामने हो, न हो; भगवान का बिम्ब आपके सामने हो, न हो; आप अपने मन में

वर्धमान भगवान का स्मरण करो बस। हमें अरिहन्त भगवान, सिद्ध भगवान, वर्धमान भगवान की शरण है और मैं उनकी शरण में यह काव्य पढ़ कर के उनका स्मरण कर रहा हूँ। वह काव्य क्या है? पढ़ सकते हैं आप लोग...

**रागादिदोष-युत-मानस-देवतानां,
सेवा किमप्यतिशयं न ददाति कस्य।
सेवां करोतु जिनकल्पतरोः सदैव,
सेवा किमल्पफलदाऽप्यफलाऽपि तस्य ॥**

**राग द्वेष से सहित रहे जो, ऐसे देवों की सेवा
क्या अतिशय फल दे सकती है, सेवा शिवसुख की मेवा।
श्रीजिनवर हैं कल्पवृक्ष सम, उनकी सेवा सदा करो
कल्पवृक्ष की सेवा भी क्या, अल्पफला या निष्फल हो?**

अब अगर आपको संस्कृत आती है, तो संस्कृत की चार लाइनें मन में रटते रहो; कम से कम नौ बार तो स्मरण करो, समय मिल जाए तो इक्कीस बार भी कर लो। हिन्दी की आती है तो हिन्दी की चार लाइनें स्मरण कर लो और इस स्मरण से आपको जो वर्धमान भगवान के प्रति भक्ति का भाव उत्पन्न होगा, यह स्मरण ही आपके लिए शरण बनेगा। 'स्मरणं एव शरणं' और कोई शरण नहीं है लेकिन किसका स्मरण? अपने इष्ट बन्धुओं का स्मरण करोगे जो चले गए हैं, गुजर गए हैं तो उससे तो अब आपको कुछ हाथ लगेगा नहीं। सांप निकल गया, चला गया अब उसकी लकीर बनी है तो उसको पीटते रहोगे तो उससे तो कुछ हाथ लगेगा नहीं। वही तो बोलते हैं न? सांप निकल गया अब लकीर पीट रहे हो। मतलब कोई सांप आया था घर में और वह जो है, निकल गया। आपके घर के व्यक्ति को मैं सांप नहीं कह रहा, वह तो उदाहरण बता रहा हूँ; अब वह सांप आया और निकल गया। अब उसका डर लगा हुआ है, तो अब वह डर को दूर करने के लिए मानो हम क्या करें? उसी की याद करें कि सांप यहाँ है तो उसको लोग क्या करें? उसी लकीर को पीटे कि यह सांप है, यह सांप है, यह सांप है, यहाँ सांप था, यहाँ सांप था, अब सांप नहीं होना चाहिए यहाँ पर तो लकीर को पीटने से तो सांप नहीं मर जाएगा, वह तो निकल गया सो निकल गया। इसी तरह से जो जीव आया था, वह तो... अगर उसकी मृत्यु हो गई है तो चला गया तो चला गया, अब उसकी याद करके आप उसकी लकीरों पर पीटते रहोगे अपने आपका सिर तो कुछ नहीं होने का। अब उन लकीरों पर अपना सिर पीटने की बजाय इन लकीरों पर सिर पीटो, जो यहाँ लिखी हुई हैं वर्धमान भगवान के स्मरण में। ये भी तो लकीरें हैं, ये चार लाइनें हैं, इन पर अपना सिर रखो; इनको अपने सिर पर रखो और इनको स्मरण में लाओ।

भगवान की भक्ति पूर्ण फल देने वाली होती है

'कल्प वृक्ष की सेवा भी क्या, अल्पफला या निष्फल हो' कभी आपने देखा? कल्पवृक्ष के समक्ष पहुँचने

पर अल्प फल नहीं मिलते हैं, न ही कोई व्यक्ति निष्फल होता है। कल्पवृक्ष हमेशा पूर्ण फल देता है और वही भाव यहाँ भगवान के भक्ति में लिखा हुआ था कि अगर हम भगवान की सेवा करेंगे, भगवान की भक्ति करेंगे तो हमें पूर्ण फल मिलेंगे। थोड़े से फल नहीं मिलते हैं या अल्प फल देने वाली भक्ति नहीं होती; भगवान की भक्ति पूर्ण फल देने वाली होती है। इसलिए कल्पवृक्ष की उपमा देकर के यह कहा गया कि आप इन जिनवचनों का हमेशा अपने अन्दर स्मरण बनाये रखो। जैसे भी बने वैसे बनाए रखो...हिन्दी के पद्य अच्छे लगते हो तो गुनगुनाते रहो हिन्दी के पद और संस्कृत में अच्छा लगे तो संस्कृत में पढ़ो। आपको भगवान की भक्ति से ही सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति होगी क्योंकि कल्पवृक्षों के फल कभी भी आधे-अधूरे, निष्फल नहीं होते हैं। वह हमेशा पूर्ण फल देने वाले होते हैं। ऐसे जिनेन्द्र भगवान भले ही हमारे सामने नहीं हो लेकिन हम उनकी शरण में हैं और उनकी अपने अन्दर स्मरण करके उनकी शरण में हमेशा बने रह सकते हैं। आपको अगर स्मरण में आता है, तो स्मरण में वे चीजें भी आनी चाहिए जो आपको यहाँ बताई जाती हैं।

मणिमाल मुनि महाराज

राजा श्रेणिक की वह घटना भी आपके समक्ष है जो आपके स्मरण में आती होगी और आ रही होगी। वह मुनि महाराज की परीक्षा करने के लिए और मुनि महाराज को अपने सामने रख कर के उनके समक्ष कई कहानियाँ सामने ला रहे हैं और मुनि महाराज भी कहानियाँ कह रहे हैं। ध्यान है आपको? किसके लिए? वह मणिमाली मुनि महाराज अपनी कहानी बता रहे थे और वह भी अगर कहानी चल रही थी तो उस स्मृति के कारण से चल रही थी कि जो सेठ था जिनदत्त, क्या हो गया था? उसके जो धन आदि और जो उसके लिए जो घड़ा आदि, जो उसने कहीं छुपा करके रख दिया था, वह चला गया। अब स्मरण आया मुनि महाराज का तो बताओ कैसे आया? किस रूप में उसको स्मरण आया? उसके लिए वह स्मरण सन्देह के रूप में आया। जबकि स्मरण मुनि महाराज के प्रति निःशङ्किता के रूप में आना चाहिए था लेकिन उसको किसके रूप में आया? सन्देह के रूप में आया और उस सन्देह में क्या हुआ? सीधा-सीधा वह महाराज से कुछ भी कह न सका तो उसने क्या किया? उसने एक कहानी सुनाई तो फिर महाराज ने भी एक कहानी सुना दी। फिर उसने एक कहानी सुनाई, फिर महाराज ने एक कहानी सुना दी। फिर उसने एक कहानी सुनाई, फिर महाराज ने एक कहानी सुना दी। कितनी हो गई? तीन ही हुई अभी। इस तरह महाराज ने भी छह कहानियाँ सुना दी, सेठ ने भी छह कहानियाँ सुना दी और जब सातवीं कहानी सुनाने को जैसे ही सेठ वह तत्पर हुआ तो उसका बेटा भी यह सब द्वंद्व देख रहा था; कौन सा बेटा? जिसने यह घड़ा छुपा रखा था, खुद ले लिया था, चोरी कर लिया था। अब वह इस द्वंद्व को देख कर के समझ गया कि यह क्या चल रहा है? फिर वह सामने आ जाता है और सामने आकर के मुनि महाराज के चरणों में गिर जाता है और अपनी बात को स्वीकार अपने पिता के सामने करता है।

सेठ के बेटे का दीक्षा ग्रहण करना

फिर वह कहता है कि महाराज! मैंने देख लिया कि यह धन क्या कराता है? जिन पिताजी को हम समझते

थे कि महाराज के प्रति अत्यन्त श्रद्धा है, उनका श्रद्धा का भाव भी इस धन के कारण से चला गया। ऐसे धन को धिक्कार हो! तब उस बेटे के अन्दर यह भाव आ जाता है और वह भाव इतना ज्यादा आ जाता है कि महाराज! यह संसार इसी तरह के दुःखों को देने वाला है और इस संसार की असारता को मैंने देख लिया। मैं जिस धन के पीछे दौड़ रहा था, उस धन ने मेरी आँखें खोल दी। इसलिए मैं अब आपकी शरण में आ गया हूँ। वह उन मुनि महाराज से दीक्षा लेने का निवेदन करने लग जाता है। जब बेटे ने दीक्षा का निवेदन किया तो वह सेठ भी सोचता रह गया कि यह धन जो मैं अपने बेटे के लिए ही रख रहा था और उसी के लिए ही सब कुछ था, अब यह बेटा ही जब मुझे छोड़कर जा रहा है तो उस सेठ के मन में भी आया कि मुझे भी यह संसार असार अब दिखने लगा है। वह सेठ ने भी उसी समय मन बना लिया महाराज! हमें भी आपके ही चरणों में दीक्षा लेनी है तभी हमारे पाप दूर होंगे। हमने आपके प्रति बहुत गलत सोच लिया, बहुत अनर्थ कर लिया और आप सोचो! पिता-पुत्र दोनों ने उन मुनि महाराज के चरणों में दिगम्बर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। यह स्मरण जो मणिमाली मुनि महाराज को रहा, वह सुना रहे हैं राजा श्रेणिक को और इस कहानी को सुनने के बाद, उन मुनि महाराज के इन घटनाओं को सुनने के बाद में फिर राजा श्रेणिक का मन तब जाकर के जिनेंद्र भगवान की श्रद्धा में दृढ़ हुआ। यशोधर मुनि महाराज के उस उपदेश को सुनने के बाद थोड़ी दृढ़ता आई थी लेकिन फिर बाद में विचलित हो गया किसी के कहने पर और बाद में फिर उसने परीक्षा ली, अब वह दृढ़ हुआ। अब दृढ़ होने के बाद में अब वह रानी चलना भी निश्चित हुई कि चलो! अब तो स्वामी को कुछ समझ आई और वह समझ आने के बाद में वह रानी चलना, राजा श्रेणिक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

कर्म-फल टाले नाहिं टले

लेकिन समय बढ़ता है तो कुछ न कुछ तो घटित होता ही रहता है क्योंकि आदमी के जीवन में सब कुछ हमेशा एक जैसा चलता नहीं है। अच्छा भी होता है तो कभी बुरा भी होता है। पुरुषार्थ आदमी करता है, फल क्या मिले? यह अपने भाग्य पर निर्भर करता है। अब फल किस रूप में? रानी चलना को गर्भ हो गया और जब उसको गर्भ हो गया तो उस समय पर उसके लिए एक दोहला आ रहा है और वह दोहला बड़ा खतरनाक है। दोहला समझते हो? वह भी एक स्मरण आता रहता है और जो गर्भस्थ शिशु है, उसके परिणामों के कारण से दोहला आता है। अब उसको दोहला आ रहा है और वह राजा देख रहा है कि इसकी शारीरिक हालत जो है दिन पर दिन गिरती जा रही है और उसका कारण है कि वह अपना दोहला राजा को बताना नहीं चाह रही क्योंकि वह दोहला खतरनाक है। उसे क्या दिख रहा है? मैं राजा के वक्षस्थल को, उनके खून को देखना चाहती हूँ। क्या देखना चाहती हूँ? यानी छाती पर से खून निकलता देखना चाहती हूँ। बताओ! कैसे वह बता दे राजा को कि मुझे यह दोहला आ रहा है? आखिर राजा ने एक दिन पूछ लिया और उसने बता दिया। तो राजा ने उसके भावों की शान्ति के लिए अपने ही नाखूनों से अपना वक्षस्थल खरोंच करके खून निकाल कर के उसे दिखा दिया। तब उसके परिणाम शान्त हुए, यह दोहला ऐसी चीज होती है। अब जब उसके परिणाम शान्त हुए तो परिणाम तो शान्त हो गए लेकिन जो जीव गर्भ में था, वह जीव जब नौ महीने बाद जन्म लिया तो जन्म लेते ही उस जीव के अन्दर इतनी क्रूरता के परिणाम उसके अन्दर थे कि जन्म लेने के बाद, आप सोचो कि जो बच्चा अभी जन्म लिया है, जन्म लेने के बाद ही वह कैसा दिख रहा है? उसने अपनी मुट्ठी भींच ली है, उसने अपना मुँह रौंद बना लिया है, उसने अपनी भृकुटियाँ तान ली हैं,

जन्म लेते ही बस बच्चे ने। यह चेलना ने जब देखा तो उसे लगा कि यह मेरे स्वामी के लिए, मेरे पति के लिए पुत्र जो है हानिकारक होगा, अमंगल होगा। उसने उस पुत्र को एक वन में एक सन्दूक में रख कर के बाहर भिजवा दिया। जब राजा श्रेणिक को पता पड़ा तो उन्होंने कहा कि नहीं! तुमने गलत किया। अब जो होगा सो होगा लेकिन पुत्र को तो वापस लाओ। उसने उस पुत्र को वापस बुला लिया और यह पुत्र कौन है? स्मरण में लाओ। अब एक कहानी आपको यशोधर मुनि महाराज ने सुनाई थी, उस समय पर आपको राजा श्रेणिक के पूर्वभव की कहानी सुनाई गई थी और उस समय पर ये बताया गया था कि एक सुमित्र थे और एक सुषेण थे। राजा सुमित्र थे और एक सुषेण उनका मित्र था और वह राजा फिर यह श्रेणिक राजा बने और उनका जो मित्र है, वही यह उनका जीव बना, जो पुत्र के रूप में उनका बदला लेने के लिए आ रहा है और वह बदला कब का है? ध्यान है कुछ? इसलिए कह रहा हूँ फिर से स्मरण करने के लिए। यह सारी प्रवचन श्रृंखला को फिर से सुनने की कोशिश करना। जो आनन्द आपको साक्षात् आया है, उससे भी ज्यादा आनन्द बाद में सुन-सुन कर के आएगा। यह वही जीव जो पहले जन्म में उसका मित्र था, फिर यह अब जाकर के उसका पुत्र बना है और यह पुत्र का नाम रखा गया कुणिक और यह पुत्र ही उनसे अब बदला लेने के लिए उनके घर में आ गया है। अब देखो आप! यह होता है कर्मों का खेल। पिता है, तो पुत्र के प्रति ऐसा दुर्भाव कैसे रख सकता है? लेकिन पुत्र है, तो पूर्व जन्म का बदला लेने के लिए घर में आया है। पिता उस पुत्र को वन से भी अपने मोह के कारण से बुलवा लिया। यह राजा श्रेणिक का पुत्र है।

राजा श्रेणिक के पुत्रों द्वारा दीक्षा ग्रहण करना

श्रेणिक के तो पुत्र पहले भी था, अभय कुमार थे। अब यह पुत्र है, रानी चेलना का पुत्र है। इस पुत्र के बाद में रानी चेलना को एक और पुत्र की प्राप्ति हुई। पाप तो उसको निकल गया। कई बार ऐसा होता है कि पाप पहले निकल जाता है, पुण्य बाद में आता है लेकिन आप पाप से डर जाते हो तो फिर बाद का पुण्य मिलता नहीं है। जो फलित होना था, वह फल गया। अब एक दूसरा पुत्र रानी चेलना को फिर हुआ, उसका नाम था...वारिषेण। यह बहुत पुण्यवान जीव, यह रानी चेलना का पुत्र हुआ और फिर उसके बाद में तीन पुत्र उसके और हुए। हल्ल एक का नाम था, दूसरे का नाम विदल था और तीसरे का नाम जितशत्रु था। कितने हो गए? पाँच हो गए और फिर उसके लिए एक पुत्र और हुआ जिसका नाम था...मेघकुमार। यह भी बहुत पुण्यशाली जीव था और ये वारिषेण, मेघकुमार; ये सब दीक्षा लिए बाद में भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में, ऐसे छह पुत्र तो चेलना के हो गए। एक पुत्र पहले से था, राजा श्रेणिक के सात पुत्र थे। अब धीरे-धीरे भगवान के समवशरण में ये लोग जाने लगे। सब बड़े हो गए और क्या हुआ? धीरे-धीरे राजा वारिषेण...उनको वैराग्य हो गया कुमार वारिषेण को। उनका वैराग्य देख लिया राजा श्रेणिक ने। अभय कुमार थे, वे भी चले गए। उन्होंने भी वैराग्य धारण करके दीक्षा धारण कर ली; वे भी चले गए। अब राजा श्रेणिक को एक समय समझ में आया कि देखो! अपने पुत्र सब इस तरह से दीक्षा ले रहे हैं। हमें भी थोड़ा धर्म ध्यान करने के लिए राज्यभार से मुक्त होना चाहिए। तब उन्होंने अपने आप को राज्यभार से मुक्त करने के लिए अपना राज्यभार अपने पहले पुत्र कुणिक को दे दिया। जब राज्यभार कुणिक को दे दिया तो कुछ ही दिनों में उसे अचानक से स्मरण हो आया कि यह मेरे पूर्व जन्म के शत्रु हैं। कौन? राजा श्रेणिक। अब उसे वह शत्रुता राजा बनने के बाद में स्मरण में आई। सारा खेल दुनिया में स्मरण का होता है बस। जाति स्मरण भी एक स्मरण होता है, पूर्व जन्म का स्मरण आ जाना और वह भी स्मरण समय पर आता है।

कुणिक को जाति स्मरण

जब वह राजा बन गया तो उसे स्मरण आ गया। स्मरण आया तो उसने गुस्से में आकर के कि ये मेरे पूर्व जन्म का बैरी है, उसने उसे कारागृह में बन्द कर दिया। यानी पुत्र ने अपने पिता को कारागृह में, जेल में, बन्दीगृह में डाल दिया। यह हो गया और उसके बाद में वह राजा श्रेणिक अब वहाँ जेल में बन्द रहे। वह कुणिक एक दिन अपने बेटे को खिला रहा था और बेटे की अंगुली किसी कारण से कट गई तो उसने उसकी अंगुली को अपने मुँह में रख लिया, उसका खून बन्द करने के लिए। उसी समय पर चलना सामने आ गई और कुणिक कहता है...देखो! जैसा मैं अपने बेटे को प्यार करता हूँ, दुनिया में कोई भी ऐसा पिता नहीं होगा जो अपने बेटे को प्यार करता हो। रानी चलना ने कहा...तुम्हारे पिता भी तुम्हें इसी तरह से प्यार करते थे। उसके लिए एकदम से झटका लगा कि ऐसा कैसे? रानी चलना ने कहा कि एक बार तुम्हारी अंगुली में इतना दुर्गन्धित घाव हो गया था कि उस घाव के कारण से कोई वैद्य भी तुम्हारे पास नहीं आना चाह रहा था और उस अंगुली के घाव को दूर करने के लिए तुम्हारे पिता ने उसे अपने मुँह में रख कर के उसकी पीव निकाली थी। यह बात जब उसने सुनी तब उसके दिमाग में आया कि मेरे पिता भी मुझसे ऐसा प्रेम करते थे और जब उसने यह सुना तो फिर वह कहने लगा- जब पिता मुझसे प्रेम करते थे तो फिर उन्होंने मुझे वन में क्यों भेज दिया था? यानी जब बुद्धि मिथ्या चलती है, तो आदमी को वे घटनाएँ तो याद रहती हैं, जो घटनाएँ घटित हुईं लेकिन वे घटनाएँ कैसे हुईं? वे घटनाएँ भी उसे उल्टे रूप में याद रहती हैं, जब आदमी की बुद्धि कुबुद्धि हो जाती है। तब उस रानी ने कहा कि नहीं! तुमको वन में भेजने का काम उन्होंने राजा श्रेणिक ने नहीं किया था, वह काम तो मेरा था। उन्होंने तो तुम्हें वापस बुलवा लिया था। यह तुम्हें किसने कह दिया? और तुम्हारे दिमाग में कैसे बैठ गया? कि उन्होंने इस तरीके से तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार किया। उसके दिमाग में यह किसी ने कह दिया, उसके दिमाग में यह बैठ गया। इसी तरीके के सुनाने वाले लोग दुनिया में मिल जाते हैं जो बुद्धि बिगाड़ने का काम करते रहते हैं और जब बुद्धि बिगड़ती है, तो फिर कर्म के उदय में ऐसी बिगड़ती चली जाती है।

जन्म सुनिश्चित मरण सुनिश्चित, कर्मों का फल मिलना निश्चित

वह बुद्धि फिर ठीक होने का समय आया तब उसके लिए लगा कि अरे! मेरे पिता मुझसे इतना प्रेम करते थे। वह अपने आप पर पश्चाताप करता है और फिर उस पश्चाताप में वह उस राजा श्रेणिक को, पिता को उस कारागृह से मुक्त करने के लिए तुरन्त निकल पड़ता है। वह राजा श्रेणिक...अब आप सोचो! महावीर भगवान के समवशरण में जिन्होंने भगवान की भक्ति करते हुए अपनी जो नरक आयु बांधी थी, उस नरक आयु को तो उन्होंने सातवें नरक से पहले नरक की कर लिया था। उसके साथ-साथ उन्होंने अपनी पवित्र भावनाओं से सोलह कारण भावनाओं को भा कर के तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध भी कर लिया यानी आगामी भव में वह तीर्थंकर बनेंगे। इस तरह का पुण्य कर्म का भी उन्होंने बन्ध कर लिया लेकिन जो होनी है वह तो होनी है। आयु बन्ध एक बार हो गया है तो वह टल नहीं सकता है और वह आयु बन्ध अगर हुआ है, तो नरक आयु का बन्ध हुआ है, तो उससे पहले उस तरह के परिणाम खराब होंगे जो परिणाम उसको नरक में ले जाने के योग्य होते हैं। इसलिए कहना पड़ता है... **‘जन्म सुनिश्चित मरण सुनिश्चित, कर्मों का फल मिलना निश्चित’** किसका जन्म कहाँ होना है? यह निश्चित रहता है। मरण किसका कैसे होगा? यह भी उसका

निश्चित हो जाता है और वह निश्चित आदमी अपने कर्मों से ही कर लेता है। कर्मों के फल से ही होगा वह निश्चित, वह निश्चित करने वाला कोई भगवान नहीं है। उस कुणिक का जन्म राजा श्रेणिक के ही पुत्र के रूप में हो गया और वह कुणिक ही उस राजा श्रेणिक की मृत्यु का कारण बन गया। भले ही वह कुणिक उस समय पर राजा श्रेणिक को उस बन्दीगृह से मुक्त करने के लिए दौड़ा लेकिन उसकी दौड़ को जब राजा श्रेणिक ने देखा तो वह समझ गया कि यह कुछ और हमारे ऊपर उपद्रव करने के लिए आ रहा है।

विनाश काले विपरीत बुद्धि

‘विनाश काले विपरीत बुद्धि’ इसी को कहते हैं और वह बुद्धि भी होना नियामक होती है। अगर आपने किसी आयु का बन्ध कर लिया है, गति बन्ध हो गया है, तो अब वह बुद्धि वैसी होगी ही। उसने सोचा कि इसके हाथों से मरे, यह मुझे मारने आ रहा है, यह मुझे और अब ज्यादा तड़पा करके मारेगा; उससे अच्छा मैं खुद ही आत्महत्या कर लूँ और उसने खुद जो है, आत्महत्या कर ली। अब आप सोचो! पुण्य अपनी जगह है... पाप अपनी जगह है। अच्छे कर्मों का फल अपनी जगह है बुरे कर्मों का फल अपनी जगह है। इस चीज को आप हमेशा ध्यान में रखा करो कि पुण्यात्मा जीवों के साथ भी गलत होता है और वह होगा तो वह भी उनके अपने पाप कर्म के उदय में होगा लेकिन पुण्य कर्म के उदय में उनको पुण्य की चीजें भी मिलेंगी और पाप कर्म के उदय में उनको पाप के फल भी मिलेंगे। सब कर्मों के फल एक साथ चलते रहते हैं, समय-समय पर सब फलते रहते हैं। आदमी समझता है कि यह भगवान के समवशरण में गए, भगवान की पूजा करी; इतनी पूजा करने के बाद में उसने आत्महत्या कर ली तो क्या मिला भगवान की पूजा करने से? तुम होते तो यूँ बोलते? आज के लड़के, बच्चे क्या बोलते हैं? अगर उनके कहीं माता-पिता का निधन हो गया और वह माता-पिता by chance अच्छे भक्त हो, भगवान की पूजा करते हो, अभिषेक करते हों तो लड़के, बहुओं को इतनी जल्दी विरक्ति होती है भगवान से, इतनी ज्यादा ईर्ष्या या घृणा उत्पन्न हो जाती है कि भगवान ने क्या दिया? उनकी पूजा करने से, भगवान की भक्ति करने से हमको क्या मिला? वह हमेशा के लिए भगवान का दर्शन करना, पूजन करना, मन्दिर आना छोड़ देते हैं। ऐसे उनके परिणाम हो जाते हैं। अब उन्हें कौन समझाए कि यह सब अपने-अपने पुण्य और पाप का खेल है। उन्होंने जो पुण्य किया है, वह पुण्य उनका काम आएगा लेकिन यह जो हमें फल मिला है कि उनके लिए असमय में मृत्यु हो गई, यह उनके पहले के पाप का फल है। यह पाप और पुण्य के फल का नाम ही तो संसार है अन्यथा संसार में आने के बाद में, संसार की दशा देखने के बाद में महापुरुषों को संसार से विरक्ति कैसे होगी? यही पाप और पुण्य का फल सब साथ चलता है। आपने पुण्य किया है तो वह आपके साथ गया, जहाँ जाओगे वहाँ आपके लिए पुण्य फलेगा। उसका पुण्य तो उसके साथ फल रहा है और आपको घृणा हो गई पुण्य से, धर्म से तो अब वह आपके लिए नुकसान हो गया। दूसरा तो अपना पुण्य लेकर के कहीं अच्छी जगह पर जन्म लिया होगा, सुखपूर्वक जी रहा होगा लेकिन अब आप अगर धर्म से घृणा कर रहे हैं, पुण्य से घृणा कर रहे हैं कि भगवान ने क्या दिया? मन्दिर से क्या मिला? यह आप अपने लिए नरक गति का बन्ध कर रहे हैं, यह आप अपनी दुर्गति आगे बना रहे हैं। अब इस दुर्गति से रोकने के लिए क्या चाहिए? बुद्धि चाहिए और वह बुद्धि अगर स्थिर होगी तो बनेगी, नहीं तो आदमी बह जाता है। क्या मिला हमें भगवान की पूजा करने से? क्या मिला हमें व्रत संयम का पालन करने से? हमारे साथ तो इतना बुरा हो गया, यह हो गया, वह हो गया; यह दिमाग में रहता है इसलिए ये चरित्र हमें बल देते हैं। तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करने वाला वह पुण्यात्मा जीव अभी

तो आत्महत्या कर लिया और आत्महत्या करके पहले जिसने यशोधर मुनि महाराज के ऊपर उपसर्ग किया इसलिए नरक में भी जाने का उसने आयु बन्ध कर लिया तो नरक में भी गया। पाप के फल से नरक जाएगा, नरक भी गया लेकिन नरक से निकलने के बाद में, यह अवसर्पिणी काल पूरा होने के बाद जब उत्सर्पिणी काल आएगा और उस काल का जो पहला तीर्थकर बनेगा तो वह महापद्म नाम का वही जीव, राजा श्रेणिक का जीव पहला तीर्थकर बनेगा। अब आप कहो कि पुण्य के फल से उसकी आत्महत्या कैसे हो गई? अगर वहाँ पर अभय कुमार होते या वारिषेण होते, वे रोते बैठते होते तो?

भगवान के श्रद्धान का फल

तुम्हारे बेटे इसी तरीके के होते हैं जिन्हें कोई न पुण्य-पाप का ज्ञान होता है, न कोई कर्म-सिद्धान्त का ज्ञान होता है, न कोई भगवान की आस्था होती है। बस! उन्हें तो क्या दिखता है? भगवान के मन्दिर जाते हो तो हमारे अन्दर सब अच्छा ही अच्छा होना चाहिए। यह जिम्मेदारी किसकी? भगवान की; इसलिए हम भगवान के मन्दिर जाते हैं, बस उनके दिमाग में यह बैठा रहता है। पापा रोजाना दो घण्टा मन्दिर में रहते हैं तो इसका मतलब है पापा की दुकान अच्छी चलनी चाहिए। नहीं चल रही तो मन्दिर जाते क्यों हो तुम? यह बस बच्चों के अन्दर इतनी सी knowledge होती है और इस knowledge का मतलब है कि उन्हें कोई धर्म के प्रति आस्था भी नहीं है, न उन्हें कोई सच्चा श्रद्धान है क्योंकि उन्हें जब ज्ञान ही नहीं है कि भगवान क्या करता है? भगवान से हमें क्या मिलता है? हम कर्म कब से कर रहे हैं? हमारे कर्म कब के कब फल देंगे? यह जब तक हमें श्रद्धान में नहीं होगा तब तक आपके लिए कभी सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होने वाला नहीं है।

इसलिए यह धर्म पुण्य और पाप के रूप में आपके साथ चलता रहता है। आपके पाप कर्म अगर तीव्र होंगे तो वह आयु कर्म आदि के रूप में बंधे हुए होंगे तो फल नियम से देंगे लेकिन दूसरे जो पाप कर्म होंगे, मान लो असाता हो, वह साता में बदल सकती है आपके पुण्य कर्म से अगर आपका जीवन रहे तो। जब जीवन ही नहीं है तो अगले जन्म में वह साता फल देगी। आपका जीवन हमेशा धर्म से ही आगे सुखमय बनेगा और धर्म ही आपके लिए एक शरण है... **‘केवली पणतो धम्मो सरणं पव्वज्जामि’** इसीलिए कहा गया है। भगवान की भक्ति ही अपने लिए धर्म को बढ़ाने वाली होती है।

जिनबिम्ब की रचना

देखो! आज सतना में ५६१६ जिनबिम्बों का आगमन हो गया है। अब जाना देखने। ऐसा यह दर्शन, एक तरह का इस धरा पर अगर हम कहे, यह प्रथम दर्शन होगा इस धरा पर जहाँ पर आपको ५६१६ जिनबिम्ब एक साथ और वह भी नन्दीश्वर की रचना के रूप में कि जहाँ पर एक-एक जिनालय में १०८-१०८ जिनबिम्ब होते हैं। हमें देखने की ख्वाहिश थी कि हम देखे तो! ऐसा कोई जिनबिम्ब बनवायें, जिसमें १०८ जिनबिम्ब एक साथ हों ऐसा कोई मन्दिर बनवायें तो हमने एक छोटा सा मन्दिर बनाने की कोशिश आगरा में की थी और आगरा के अन्दर भी जब यह विधान हो रहा था कमलानगर कॉलोनी में तो उस समय पर इसकी योजना बनी थी और वहाँ के लोगों ने उस समय पर अपनी दान राशि से एक-एक मन्दिर की घोषणा कर दी थी और उसी विधान में ५१-५२ नाम आ गए थे और उन्हीं के नामों से ये मन्दिर बन गए जो आज धर्म-प्रभावना

के लिए यहाँ आ गए हैं। अपना भी भाव कुछ ऐसा ही रहता है। अब बड़े-बड़े अकृत्रिम जिनालय नहीं देख पाते हैं तो कोई बात नहीं, छोटे ही उनके रूप देख ले। अगर आपकी भावनाएँ और अच्छी बनेंगी, भगवान की भक्ति बढ़ेगी तो कभी न कभी ऐसे भी कहीं जिनालय हम देख पाएँगे जहाँ पर हम एक-एक वेदी में १०८-१०८ जिनबिम्बों की संरचना देख पाएँ। यह भी कभी सम्भव है। सपने तो बना कर रखो ही, नुकसान क्या है? अरे! भगवान की ही तो भावना करने का भाव है, हमारे लिए तो पुण्य बढ़ेगा। बन जाएगा तो ठीक, नहीं बन जाएगा तो ठीक। एक सपना तो हमने छोटा सा जो अपना था, वह अपना साकार किया है। अभी यह चलित सपना है यानी लोगों को दिखाने के लिए चलित सपना है, कहीं पर अचल सपना भी यह पूरा करने की कोशिश की जाएगी। मतलब भगवान के चारों दिशाओं में १३-१३ जिनालय बने हो, कहीं अच्छे किसी क्षेत्र पर और उसमें, एक-एक जिनालय में १०८-१०८ जिनबिम्ब हो, ऐसी भावना करने में क्या जा रहा है? फोकट में भी भावना होती है, तो पुण्य का फल तो मिलता ही है। ऐसा जिनालय कहीं देखने की इच्छा, इस तरीके की कोई जिनालय बनाने की भावना करे, तब देखें। हाँ! उसको कभी उसकी भूमि हो, उसके लिए ऐसा मंगल आशीर्वाद मिले कि महाराज! हम अपने कहीं अच्छे किसी स्थान पर १३-१३ जिनालय चारों दिशाओं में बनाएँ और हर जिनालय में १०८-१०८ जिनबिम्ब हो और वे इससे भी बड़े बन सकते हैं क्योंकि जब स्थाई बनेंगे तो बड़े बन जाएँगे। ऐसे जिनालय अगर होंगे तो क्या होगा? आपको नन्दीश्वर द्वीप, जो हम स्थापना निक्षेप से ही कर सकते हैं क्योंकि मनुष्य कभी नन्दीश्वर द्वीप में जा ही नहीं सकते हैं तो वह नन्दीश्वर द्वीप की रचना, इस तरह की रचना आपके लिए बड़ी ही मनोज्ञ होगी और वह रचना आपके लिए कितना अद्भुत पुण्य देने वाली होगी कि उस नन्दीश्वर द्वीप को जो आठवाँ द्वीप है, उसकी रचना आपने अपनी भूमि पर कर ली, अपने स्थान पर कर ली। ऐसे मंगल भाव हमेशा बना कर के रखो। पूरे हो, न हो लेकिन भाव तो अच्छे बना कर के रखो।

भगवान की भक्ति के लिए युवाओं को आगे लाना

इसलिए भगवान की भक्ति करने का अवसर आया है और मैं फिर कह रहा हूँ कि भगवान की इस भक्ति में अपने पुत्रों को जो युवा हैं, उनको आगे लाओ। बड़े-बूढ़े लोग मेरी बात का बुरा न माना करे। यूँ न समझा करें कि महाराज मुझे पीछे कर देते हैं। आपको पीछे नहीं कर देते हैं, जिन युवाओं में अभी धर्म का भाव नहीं है, उनमें अगर आप ऐसी भक्ति के माध्यम से भाव लाओगे तो भाव उनका लम्बे समय तक चलेगा। यह आपका पुत्र के ऊपर उपकार होगा। आपको तो धर्म के प्रति श्रद्धा है ही है। आप तो उनको भी सामने रख कर के पीछे से आकर के बैठ जाओगे तो तुम्हें कोई मना नहीं करने वाला। लेकिन वे अगर घर से बाहर निकलेंगे तो कब निकलेंगे? वे कहेंगे- दुकान कौन देखेगा? आपकी जिम्मेदारी है कि नहीं बेटा! दुकान पर हम बैठ जाएँगे, दुकान हम चला लेंगे, तुम जाओ। अपने बेटे से कहो, बहू से कहो- बेटा! जोड़ी के साथ मैं भगवान का वहाँ पर पूजन करने के लिए जाओ। तब देखो कि तुम्हें अपने बेटों का कितना प्रेम मिलेगा? यह काम आपको करना है। अब वह कहेगा, बहू कहेगी... मेरे बेटे हैं छोटे-छोटे, उन्हें कौन खिलाएगा? फिर अब दादा और दादू की वह जिम्मेदारी होगी कि अब दादू नाती को खिलाए और बेटा-बहू विधान में बैठें तब तो धर्म की भावना आगे बढ़ेगी क्योंकि आपकी तो भक्ति है ही है। आप तो उस नाती को भी गोदी में लेकर के फिर देखने चले जाओगे तो कोई मना नहीं कर रहा। दुकान भी चलती रहेगी और बीच में देखने चले जाना कि हमारा बेटा ढंग से भक्ति कर रहा है कि नहीं कर रहा है, सबकी भक्ति हो जाएगी। मैं यही कह रहा हूँ कि

जिनधर्म प्राप्त होने पर, मोक्ष प्राप्ति का पुरुषार्थ, शीघ्रता से करना चाहिए

अन्वयार्थ-(बहुणा किं) बहुत 'कहने से भी', क्या 'लाभ हैं' **(घोरं भव-उदहिं)** भयंकर, संसाररूपी, समुद्र को **(लहु)** शीघ्रता से **(तरिउं)** तैरने के लिए अर्थात् पार उतरने के लिए **(जह)** जिस प्रकार से 'संभव हो उसी प्रकार से' **(जिणधम्मे)** जिनधर्म में **(जइयव्वं)** प्रयत्न करना चाहिए **(जह)** जिस कारण से **(जिओ)** जीव **(अणंत-सुहं सासयं ठाणं)** अनंत, सुखस्वरूप, शाश्वत, स्थान को **(लहु)** शीघ्रता से **(लहइ)** प्राप्त करता है ॥104॥

यहाँ अब अन्त में एक गाथा अन्त में और कही गई है... **‘किं बहुणा जिणधम्मे’** अब ज्यादा क्या बोले? थक गए हैं बोलते-बोलते तो ऐसा कहना पड़ता है- अब ज्यादा क्या कहें? यह वैराग्य शतक का अन्तिम भाग है। अगर तुम इस भवोदधि को पार करना चाहते हो और उस शाश्वत अनन्त सुख की प्राप्ति करना चाहते हो, तो जिनधर्म में ही प्रयत्न करना चाहिए। जिनधर्म को ही अपनी श्रद्धा में हमेशा रखना चाहिए। इसी से तुम्हारा यह संसार का दुःख सारा दूर होगा। अगर आपको अभी तक संसार में किसी भी तरह के सुख नहीं मिले तो वह भी इसी कारण से नहीं मिले कि आपने भगवान के धर्म को सही ढंग से जाना नहीं, समझा नहीं, उसकी श्रद्धा की नहीं। इसलिए यही आपके लिए अन्तिम उपदेश है कि आप अपने अन्दर राग की, मोह की कमी करके भगवान की भक्ति में अपना मन लगाएँ क्योंकि भगवान की भक्ति आपके राग-मोह में कमी से ही मिलेगी। जिनको राग-मोह ज्यादा होता है, उन्हें भक्ति करने का फिर भाव नहीं बनता। अगर बन रहा है तो बनाना चाहिए और यही भक्ति आपके लिए मुक्ति का कारण बनेगी। आज का दिन आपके लिए मंगलमय हो क्योंकि आज लोकतंत्र का, आपके मध्य प्रदेश का एक बहुत बड़ा दिन है और आज के दिन लोग छुट्टी का आनन्द ले रहे हैं तो हमने भी आज के दिन छुट्टी प्राप्त कर ली है, वैराग्य शतक पूर्ण हो गया है। आपकी भी छुट्टी है और अब हमारी भी छुट्टी है। आप लोग अपने अन्दर इस तरह का मन बना कर के रखें कि हम हमेशा जिनेन्द्र भगवान की शरण में ही रहेंगे।

Arham team

Editing team

Dr. Br. Rajni Jain, Indore
Deepti Jain, Rohini
Jolly jain, Uttar Pradesh
Jayant Jain, Maharashtra
Shikha Jain, Malaysia
Nikita Pahade, Germany
Rashmi Singhi, Mandsaur
Preeti Jain, Indore
Dr. priyanka Jain, Katangi
Sonal Jain, Gujarat
Savita Jain, Delhi

Conceptualisation Team

Bhawana jain, Delhi
Vipin Jain, Maharashtra
Kamal Naini Jain, Delhi
Priyanka Jain, Meerut
Prachi Jain, Kota
Sheetal Jain, Indore

Direction

Bhawana jain, Delhi
Kanvi parekh, Mumbai